<u>प्रतिवेद्य</u>

समक्ष भारतीय सर्वोच्च न्यायालय
सिविल अपीलीय न्यायक्षेत्र
<u>सिविल अपील सं. 10866–10867 / 2010</u>

एम सिद्दीक (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि .... अपीलार्थी

बनाम

महंत सुरेश दास एवं अन्य .... प्रत्यर्थी

सह

सिविल अपील सं. 4768–4771 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 2636 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 821 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 4739 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 4905–4908 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 2215 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 4740 / 2011
सह

सिविल अपील सं. 2894 / 2011

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सह

सिविल अपील सं. 6965 / 2011

सह

सिविल अपील सं. 4192 / 2011

सह

सिविल अपील सं. 5498 / 2011

सह

सिविल अपील सं. 7226 / 2011

और सह

सिविल अपील सं. 8096 / 2011

<u>नि र्ण य</u>

अनुक्रमणिका

A. परिचय

B. वादों का संक्षिप्त विवरण

C. साक्ष्यः संक्षेप में

D. 1856–7 का परिणाम

D.1 दीवार पर प्रतिक्रिया

D.2 1934–1949 के बीच की अवधि

E. धारा 145 के तहत कार्यवाहियाँ

F. विनिश्चय के बिन्दु

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

G. तीन उत्कीर्णन

H. न्यायिक समीक्षा और इस्लामी विधि में मस्जिद की विशेषताएं

I. उपासना स्थल अधिनियम

J. न्यायिक व्यक्तित्व

J.1 विधि का विकास

J.2 मूर्तियाँ और न्यायिक व्यक्तित्व

J.3 प्रथम वादी का विधिक व्यक्तित्व

J.4 दूसरे वादी का विधिक व्यक्तित्व

K. वाद का विश्लेषण

L. वाद 1: गोपाल सिंह विशारद

L.1 दलीलें

L.2 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

L.3 विश्लेषण

M. वाद 3: निर्मोही अखाड़ा

M.1 दलीलें

M.2 वाद 3 और वाद 5 में विरोध

M.3 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

M.4 वाद 3 में परिसीमा

M.5 निर्मोही साक्षीगणों के मौखिक साक्ष्य

M.6 निर्मोही अखाड़ा का आंतरिक अहाते पर कब्जे का दावा

मस्जिद से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य (1934–1949)

N. वाद 5: देवी देवता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

N.1 पक्षकारों की श्रृंखला

N.2 उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं

N.3 अभिकथन

N.4 लिखित कथन

N.5 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

N.6 सेवायत: मुकदमा करने का विशेषाधिकार

एक उपासक या हितबद्ध व्यक्ति द्वारा किया गया वाद

निर्मोही अखाड़ा और सेवायती अधिकार

N.7 वाद 5 में परिसीमा

शाश्वत अवयस्कता का तर्क

N.8 1885 का वाद और प्रांग्न्याय

N.9 पुरातत्व रिपोर्ट

N.10 विवादित ढाँचे की प्रकृति और अनुप्रयोग: मौखिक साक्ष्य।

N.11 विवादित संरचना की तस्वीरें

N.12 विष्णु हरि उत्कीर्णन

N.13 आस्था और विश्वास का ध्रुवतारा

यात्रा विवरण, गजेटियर तथा पुस्तकें

यात्रा विवरण, गजेटियर तथा पुस्तकें का साक्ष्यिक मूल्य

N.14 इतिहासकारों की रिपोर्ट

O. वाद 4: सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड

O.1 वादपत्र का विश्लेषण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

0.2 लिखित कथन

0.3 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

0.4 वाद 4 में परिसीमा

0.5 अनुप्रयोज्य विधिक व्यवस्था और न्याय, साम्या और सद्विवेक

0.6 अनुदान और मान्यता

0.7 विवाद और कब्जे को पुष्ट करने वाले वाद

1885 के वाद का प्रभाव

1934 और 1950 के बीच की घटनाएँ

0.8 नमाज़ का प्रमाण

0.9 1949 में मूर्तियों को रखना

0.10 नाज़ुल भूमि

0.11 उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ

0.12 कब्जा और प्रतिकूल कब्जा

0.13 विनष्ट अनुदान का सिद्धांत

0.14 विवादित परिसर का धूमपट–1858 की दीवार

0.15 वाद 4 में साक्ष्यों का विश्लेषण

0.16 मुस्लिमों का कब्जा हक का दावा

P. स्वत्व पर विश्लेषण

P.1 वाद 4 और 5 में साक्ष्यों का क्रम–बंधन।

P.2 स्वत्व पर निष्कर्ष

Q. अनुतोष और दिशानिर्देश

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

A. परिचय

1. ये पहली अपीलें दो धार्मिक समुदायों के बीच विवाद पर केन्द्रित हैं जिनमें से दोनों, अयोध्या शहर में 1500 वर्ग गज की भूमि पर स्वामित्व का दावा करते हैं। विवादित संपत्ति का हिंदुओं और मुस्लिमों के लिए बहुत महत्व रखता है। हिंदू समुदाय इसे भगवान विष्णु के अवतार भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में दावा करता है। मुस्लिम समुदाय इसे प्रथम मुगल सम्राट बाबर द्वारा निर्मित ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद के स्थल के रूप में दावा करता है। हमारे देश की भूमि आक्रमणों और वैमनस्यों का साक्षी है। फिर भी वे भारत के इस विचार में समाहित हो गए कि वे प्रत्येक को, जो भी यहाँ आया, चाहे वह व्यापारी, यात्री अथवा विजेता के रूप में हो। इस देश का इतिहास और संस्कृति सत्य की खोज, भौतिक, राजनीतिक और आध्यात्म के माध्यम से विरोध करने का घर रहा है। इस न्यायालय को अपने निर्णायक कार्य को पूर्ण करने के लिए कहा जाता है जहां यह दावा किया जाता है कि सत्य के लिए दो खोज अन्य की स्वतंत्रता पर प्रभाव डालते हैं अथवा कानून के शासन का उल्लंघन करते हैं।

2. इस न्यायालय को विवाद के समाधान के रूपतः कार्य दिया गया है, जिसकी उत्पत्ति उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं भारत के विचार। विवाद से जुड़ी घटनाओं में मुगल साम्राज्य, औपनिवेशिक शासन और वर्तमान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संवैधानिक शासन पद्धति का विस्तार है। संवैधानिक मूल्य इस राष्ट्र की आधारशिला बनाते हैं और इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के अड़तालीस दिनों के माध्यम से वर्तमान शीर्षक विवाद के वैध संकल्प की सुविधा प्रदान करते हैं। इन अपीलों में विवाद चार नियमित वादों से उद्भूत होता है जिन्हें 1950 और 1989 के बीच दायर किया गया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष, मौखिक और दस्तावेजी दोनों विस्तृत साक्ष्य रखे गए, जो 4304 पृष्ठों के थे। इस निर्णय को अपीलों में चुनौती दी गई है।

3. विवादित भूमि को कोट राम चंद्र के गांव का हिस्सा अथवा जैसा कि अयोध्या में रामकोट, परगना हवेली अवध में तहसील सदर फैजाबाद जिले के रूप में कहा जाता है। 6 दिसंबर 1992 तक उस स्थान पर एक पुरानी मस्जिद थी। राम के भक्तों के लिए इस स्थान का धार्मिक महत्व है, जो मानते हैं कि भगवान राम का जन्म विवादित स्थान पर हुआ था। इस कारण से, हिंदू विवादित स्थल को राम जन्मभूमि अथवा राम जन्मस्थान (यानी भगवान राम का जन्म–स्थान) के रूप में संदर्भित करते हैं। हिन्दुओं ने दावा किया है कि विवादित स्थल पर भगवान राम को समर्पित एक प्राचीन मंदिर मौजूद था, जिसे मुगल सम्राट बाबर द्वारा भारतीय उप महाद्वीप पर विजय पाने पर ध्वस्त कर दिया गया था। दूसरी ओर, मुस्लिमों ने तर्क दिया कि मस्जिद खाली जमीन पर बाबर के आदेश पर या उसके द्वारा बनाई गई थी। यद्यपि हिंदुओं के लिए स्थान के महत्व से इनकार नहीं किया जाता है, यह मुस्लिमों का मामला है कि विवादित संपत्ति पर हिंदुओं का कोई मालिकाना दावा मौजूद नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

4. 1950 में एक हिंदू पुजारी द्वारा फैजाबाद में सिविल न्यायाधीश के समक्ष एक वाद दायर किया गया, गोपाल सिंह विशारद ने घोषणा की कि उनके धर्म और प्रथा के अनुसार, वह मूर्तियों के पास मुख्य जन्मभूमि मंदिर में प्रार्थना करने का हकदार है।

5. निर्मोही अखाड़ा हिंदुओं में एक धार्मिक संप्रदाय का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे रामानंद बैरागी के रूप में जाना जाता है। सभी वस्तुगत समय पर, निर्मोहियों का दावा है कि वे विवादित स्थल पर संरचना के प्रभारी और प्रबंधक थे, उनके अनुसार 29 दिसंबर 1949 तक 'मंदिर' था, जिस तिथि पर दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 145 के तहत कुर्की का आदेश दिया गया था। वास्तव में, वे देवता की सेवा में सेवादार के रूप में दावा करते हैं, अपने मामलों का प्रबंधन करते हैं और भक्तों से प्रसाद प्राप्त करते हैं। 1959 का वाद 'मंदिर' के प्रबंधन और प्रभार के लिए है।

6. उत्तर प्रदेश सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक़्फ़ **("सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड")** और अयोध्या के अन्य मुस्लिम निवासियों ने विवादित स्थल पर अपने हक की घोषणा के लिए 1961 में वाद दायर किया। उनके अनुसार पुराना ढांचा एक मस्जिद था जिसका निर्माण मुगल सम्राट बाबर के अनुदेश पर सोलहवीं शताब्दी के तीसरे दशक में उप महाद्वीप पर विजय पाने के बाद मीर बाकी द्वारा किया गया था जो उसकी सेना का सेनापति था। मुस्लिम इस बात से इंकार करते हैं कि मस्जिद का निर्माण एक नष्ट हुए मंदिर के स्थल पर किया गया था। उनके अनुसार, 23 दिसंबर 1949 तक मस्जिद में निर्बाध रूप से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इबादत की गई थी, जब हिंदुओं के एक समूह ने इस्लामी धार्मिक संरचना को नष्ट करने, क्षति और अवहेलना करने के इरादे से अपनी तीन प्रमुख संरचना के दायरे में मूर्तियों को रखकर इसे अपवित्र कर दिया था। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड स्वत्व का दावा और यदि आवश्यक हो तो कब्जे के लिए एक डिक्री की घोषणा करता है।

7. 1989 में वाद मित्र द्वारा देवता **("भगवान श्री राम विराजमान")** और भगवान राम के जन्म–स्थान **("स्थान श्री राम जन्मभूमि")** की ओर से एक वाद संस्थित किया गया। यह वाद इस दावे पर दायर किया गया है कि कानून मूर्ति और जन्म–स्थान दोनों को न्यायिक संस्थाओं के रूप में मान्यता देता है। यह दावा है कि जन्म स्थान को पूजा के उद्देश्य के रूप में पवित्र किया जाता है, जो भगवान राम की दिव्य भावना को व्यक्त करता है। इसलिए, मूर्ति की तरह (जिसे कानून एक न्यायिक इकाई के रूप में मान्यता देता है), देवता के जन्म का स्थान एक विधिक व्यक्ति होने का दावा किया जाता है, अथवा जैसा कि कानूनी रूप से वर्णित है, एक न्यायिक स्थिति रखने के लिए। विवादित स्थल पर निषेधाज्ञा राहत के साथ स्वत्व की घोषणा मांगी गई है।

8. ये वाद, हिंदू उपासकों द्वारा एक अन्य मुकदमे के साथ, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा फैजाबाद सिविल न्यायालय से स्वयं को मुकदमे के विचारण के लिए स्थानांतरित किया गया था। उच्च न्यायालय ने चार वादों से उद्भूत मूल कार्यवाही में एक निर्णय दिया और ये अपील 30 सितंबर 2010

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दिनांकित की पूर्ण पीठ के निर्णय से उद्भूत हुई। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वादों को वर्जित कर दिया गया था। यह अवधारित करने के बावजूद कि उन दो वादों को समयानुसार वर्जित कर दिया गया था, उच्च न्यायालय ने 2:1 विभाजन के फैसले में अवधारित किया कि हिंदू और मुस्लिम पक्ष विवादित परिसर के संयुक्त धारक थे। उनमें से प्रत्येक को विवादित संपत्ति के एक तिहाई का हकदार ठहराया गया था। निर्मोही अखाड़ा को शेष एक तिहाई प्रदान किया गया। वाद मित्र के माध्यम से मूर्ति और भगवान राम के जन्म–स्थान द्वारा लाए गए वाद में उस प्रभाव के लिए एक प्रारंभिक डिक्री पारित की गई थी।

9. अपील तय करने से पूर्व, इस मुकदमेबाजी के विविध इतिहास में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं को निर्धारित करना आवश्यक है, जिसका विस्तार लगभग सात दशक तक है।

10. विवादित स्थल दशकों तक विवाद की जड़ रहा है। 1856–57 में, ढाँचा के आसपास हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दंगे हुए। औपनिवेशिक सरकार ने छह या सात फीट की ऊंचाई वाली ग्रिल–ईंट दीवार स्थापित करके कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए दोनों समुदायों के बीच सामंजस्य बढ़ाने का प्रयास किया। इससे परिसर को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: आंतरिक भाग जिसका उपयोग मुस्लिम समुदाय द्वारा किया जाएगा और बाहरी हिस्से या अहाता जिसका उपयोग हिंदू समुदाय द्वारा किया जाएगा। बाहरी अहाते में हिंदुओं के लिए धार्मिक महत्व की अनेक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संरचनाएं हैं, जैसे कि सीता रसोई और रामचबूतरा। सन् 1877 में उपनिवेशवादी सरकार ने बाहरी अहाते के उत्तरी छोर पर एक दूसरा दरवाजा खोला जिसे हिंदुओं को नियंत्रण और प्रबंध के लिए दिया गया। द्विभाजन, जैसा कि अभिलेख दिखाता है, ने मतभिन्नता का समाधान नहीं किया और एक या दूसरे पक्ष द्वारा दूसरे को अलग करने के लिए बहुत प्रयास किए गए।

11. जनवरी 1885 में, महंत रघुबर दास, राम जन्मस्थान के महंत होने का दावा करते हुए, उप–न्यायाधीश, फैजाबाद के समक्ष एक वाद[1] ("1885 का वाद") संस्थित किया। उन्होंने जो राहत मांगी थी वह बाहरी अहाते में स्थित रामचबूतरा पर एक मंदिर बनाने की अनुमति थी, जिसमें सत्रह फीट बाई–एक फीट की माप हुई थी। वाद के साथ एक मानचित्र लगाया गया था। 24 दिसंबर 1885 को, विचारण न्यायाधीश ने यह देखते हुए वाद को खारिज कर दिया कि मंदिर के प्रस्तावित निर्माण के कारण दोनों समुदायों के बीच दंगों की संभावना थी। हालांकि, विचारण न्यायाधीश ने अवलोकन किया कि चबूतरे पर हिंदुओं के कब्जे और स्वामित्व के विषय में कोई सवाल अथवा संदेह नहीं हो सकता है। 18 मार्च 1886 को, जनपद न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय[2] के निर्णय के विरूद्ध अपील को खारिज कर दिया, परन्तु विचारण न्यायालय के निर्णय में निहित चबूतरे को हिंदुओं के स्वामित्व से संबंधित अवलोकनों को खारिज कर दिया। 1 नवंबर 1886 को, अवध के न्यायिक आयुक्त ने दूसरी अपील[3] को यह देखते हुए खारिज कर दिया कि महंत चबूतरा के स्वामित्व के स्वत्व को संस्थित करने के साक्ष्य प्रस्तुत करने में

---

1 (OS No. 61/280 of 1885)
2 Civil Appeal No. 27/1885
3 No 27 of 1886

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विफल रहे थे। 1934 में दोनों समुदायों के बीच एक और टकराव हुआ। घटना के दौरान मस्जिद की गुंबद का ढाँचा क्षतिग्रस्त हो गया और बाद में औपनिवेशिक सरकार की खर्चे पर उसकी मरम्मत की गई।

12. विवाद 22 और 23 दिसंबर, 1949 की रात को एक नये चरण में पहुंचा, जब मस्जिद को लगभग पचास या साठ लोगों के एक समूह द्वारा अपवित्र किया गया, जिन्होंने उसके ताले खोल दिए और भगवान राम की मूर्तियों को केंद्रीय गुम्बद के नीचे स्थापित किया। घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट ("**एफ.आई.आर.**") दर्ज की गई थी। दिनांक 29 दिसंबर, 1949 को अपर सिटी मजिस्ट्रेट, फैजाबाद–सह–अयोध्या ने स्थिति को एक आकस्मिक प्रकृति मानते हुए दंड प्रक्रिया संहिता 1898[4] ("**सीआरपीसी 1898**") की धारा 145 के तहत एक प्रारंभिक आदेश जारी किया। इसके साथ ही, एक कुर्की आदेश जारी किया गया था और फैजाबाद नगर निगम बोर्ड के अध्यक्ष प्रिया दत्त राम को आंतरिक अहाते के प्रापत के रूप में नियुक्त किया गया था। दिनांक 5 जनवरी 1950 को प्रापत ने आंतरिक अहाते का कार्यभार संभाला और कुर्क संपत्तियों की एक सूची तैयार की। मजिस्ट्रेट ने संतुष्टि दर्ज करने पर एक प्रारंभिक आदेश पारित किया कि दोनों समुदायों के बीच ढाँचे पर पूजा और स्वामित्व के दावों पर विवाद से शांति भंग होने की संभावना होगी। हितधारकों को अपने लिखित

---

4 जहां भूमि या जल से संबद्ध विवादों से परिशांति भंग होना संभाव्य है वहां प्रक्रिया—

(1) जब कभी किसी कायर्पालक मजिस्ट्रेट का, पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट से या अन्य इत्तिला पर समाधान हो जाता है कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं से संबद्धमा ऐसा विवाद विद्यमान है, जिससे परिशांति भंग होना संभाव्य है, तब वह अपना ऐसा समाधान होने के आधारों का कथन करते हुए और ऐसे विवाद से संबद्ध पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित आदेश देगा कि वे विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर स्वयं या प्लीडर द्वारा उसके न्यायालय में हाजिर हों और विवाद की विषयवस्तु पर वास्तिवक कब्जे के तथ्य के बारे में अपने–अपने दावों का लिखित कथन पेश करें।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बयान दर्ज करने की अनुमति दी गई थी। मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत केवल दो या तीन पुजारियों को भोग और पूजा जैसे धार्मिक अनुष्ठानों को करने के लिए उस स्थान के अंदर जाने की अनुमति दी गई थी जहां मूर्तियों को रखा गया था। सामान्य जनता के प्रतिनिधियों को प्रवेश करने से प्रतिबंधित किया गया था और उन्हें केवल ग्रिल–ईंट की दीवार से परे दर्शन की अनुमति दी गई थी।

वादों का संस्थन

13. दिनांक 16 जनवरी, 1950 को एक हिंदू भक्त, गोपाल सिंह विशारद[5], ("**वाद 1**") द्वारा फैजाबाद में सिविल न्यायाधीश के समक्ष एक वाद चलाया गया, जिसमें आरोप लगाया गया कि उन्हें सरकार के अधिकारियों द्वारा विवादित स्थल के आंतरिक अहाते में पूजा करने के लिए प्रवेश करने से रोका जा रहा था। एक घोषणा में यह मांग की गई थी कि वादी को अपने धर्म ("**सनातन धर्म**") के संस्कारों और सिद्धांतों के अनुसार "मुख्य जनमभूमि" में मूर्तियों के पास, आंतरिक अहाते के भीतर, निर्बाध प्रार्थना करने की अनुमति प्रदान की जाए। उसी तिथि को, वाद में एक अंतरिम व्यादेश जारी की गई थी। दिनांक 19 जनवरी, 1950 को मूर्तियों को विवादित स्थल से हटाने और पूजा के प्रदर्शन में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए व्यादेश को संशोधित किया गया था। संशोधित के रूप में दिनांक 3 मार्च, 1951 को विचारण न्यायालय ने अंतरिम आदेश की पुष्टि की। दिनांक 26 मई, 1955

---

5 Regular Suit No 2 of 1950. Subsequently renumbered as Other Original Suit (OOS) No 1 of 1989.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को अंतरिम आदेश के विरूद्ध अपील[6] को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

14. दिनांक 5 दिसंबर, 1950 को एक अन्य वाद परमहंस रामचंद्र दास[7] ("**वाद 2**") द्वारा सिविल न्यायाधीश, फैजाबाद के समक्ष संस्थित किया गया था, जो वाद 1 के समान ही राहत की मांग कर रहे थे। बाद में दिनांक 18 सितंबर, 1990 को वाद 2 वापस ले लिया गया।

15. दिनांक 1 अप्रैल 1950 को विवादित परिसर का नक्शा तैयार करने के लिए वाद 1 में एक न्यायालय आयुक्त नियुक्त किया गया था।
दिनांक 25 जून, 1950 को आयुक्त ने विवादित परिसर की दो नक्शा नजरी के साथ एक रिपोर्ट प्रस्तुत की,
जिन्हें नक्शा सं. 1 और 2 के रूप में विचारण न्यायालय में कहा गया था। रिपोर्ट और नक्शे दोनों स्थल पर स्थिति का संकेत देते हैं और नीचे पुनर्प्रस्तुति किया जाता है:

आयुक्त की रिपोर्ट

"रिपोर्ट

महोदय,

मुझे उपरोक्त मामले में आयुक्त नियुक्त किया गया था ताकि वाद में पैमाने पर इलाके और भवन की नक्शा नजरी तैयार की जा सके।

---

6 FAFO No 154 of 1951

7 Regular Suit no 25 of 1950
(subsequently renumbered as Other Original Suit (OOS) No 2 of 1989)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तदनुसार, न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, मैंने दिनांक 16.4.50 को और फिर दिनांक 30.4.50 को पक्षों के अधिवक्ता को यथोचित नोटिस देने के बाद इलाके का दौरा किया, और मौके पर आवश्यक माप किए। मेरी यात्रा के पहले दिन कोई भी पक्ष मौजूद नहीं था, लेकिन दूसरे दिन प्रतिवादी सं. 1 श्री अजीमुल्ला खान और श्री हबीब अहमद खान अधिवक्ता के साथ मौजूद थे। दोपहर में जब माप का कार्य पहले ही समाप्त हो चुका था तब प्रतिवादी सं. 1 ने एक आवेदन प्रस्तुत कर उसके साथ संलग्न किया।

नक्शा संख्या 1 नक्शा संख्या 2 की तुलना में बड़े पैमाने पर आकृति ABCDEF द्वारा दिखाए गए वाद में भवन का प्रतिनिधित्व करती है, जो भवन को उसके इलाके के साथ दर्शाती है।

नक्शा सं. 1 के अवलोकन से यह पता चलता है कि भवन को दो द्वार मिले हैं, एक पूर्व में और दूसरा उत्तर में जो क्रमशः "हनुमतद्वार" और "सिंहद्वार" के नाम से जाना जाता है। भवन का मुख्य प्रवेश द्वार "हनुममतद्वार" है। इस द्वार पर "1–श्री जन्मभूमि नित्य यात्रा" नामक एक शिलालेख जमीन पर स्थापित है और श्री हनुमानजी का एक बड़ा रंगीन चित्र द्वार के शीर्ष पर स्थापित है। इस प्रवेश द्वार के मेहराब की ऊँचाई 10' जिस पर दो काले कसौटी पत्थर स्तंभों पर टिका हुआ है जिनमें से प्रत्येक की ऊँचाई 4' जो A और ब B के रूप में तराशी हुई है और क्रमशः जय और विजय की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। बाहरी दीवार पर इस द्वार के दक्षिण में एक पत्थर की छवि जो 5' लंबी है, जिसे "वराह भगवान" कहा जाता है। उत्तरी द्वार, जिसे "सिंहद्वार" के नाम से जाना जाता है जिसकी ऊंचाई 19'6" है, गरूड़ की ऊपरी छवियां बीच में और दोनों ओर दो सिंह हैं। मुख्य द्वार पर प्रवेश करने पर भीतरी भवन के पूर्वी और उत्तरी किनारे पर पक्का तल है, जिसे पूर्वी तल के उत्तर में GHJKL DGB अक्षरों से चिह्नित किया गया है, एक नीम का पेड़ है, और इसके दक्षिण में भंडारा (रसोई) है। इसके अतिरिक्त दक्षिण में एक ऊंचा पक्की मंच जो 17' x 21' और 4' ऊंचा है, जिसे "राम चबूतरा" कहा जाता है, जिस पर एक छोटा मंदिर है जिसमें राम और जानकी की मूर्तियां स्थापित हैं। दक्षिण–पूर्वी कोने ई में एक नीम–पीपल का संयुक्त पेड़ है, जो अर्ध–वृत्ताकार पक्के मंच से घिरा हुआ है, जिस पर पंचमुखी महादेव, पार्वती, गणेश और नंदी की संगमरमर की मूर्तियां स्थापित हैं। उत्तरी

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तल पर एक 8' x 9' का पक्का मंच है, जिसे "सीता रसोई" कहा जाता है, इस मंच पर एक पक्का चूल्हा है, जिसमें चौका और बेलन है, जिसे संगमरमर से बनाया गया है, जो इस तरफ संबद्ध है। चूल्हे के पूर्व में राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के संगमरमर के चार जोड़े पदचिन्ह हैं।

भीतरी (मुख्य) भवन के सामने पक्का अहाता दीवारों से घिरा हुआ है NHJK को लोहे की सलाखों से O और P में दो लोहे के छड़ से बने द्वार के साथ अंतःखण्डित है, जैसा कि नक्शा सं.1 में दर्शित है। इस अहाते के दक्षिणी छोर पर 14 सीढ़ियाँ हैं, जो कि भवन छत की ओर जाती हैं, और सीढ़ियों के दक्षिण में एक ऊंचा पक्का मंच है जो 2' ऊँचा है, जिसके दक्षिण–पश्चिम कोने में एक यूरिनल है जो U द्वारा चिह्नित है। तीन मेहराबदार द्वार हैं– X, Y और Z; जो मुख्य भवन तक जाते हैं, जो तीन भागों में विभाजित है, जिनमें Q और R पर मेहराब हैं। मेहराब Y के ऊपर एक छज्जा (अनुमानित छत) है।

तीन मेहराब, Y, Q और R 12 काले कसौटी पत्थर के स्तंभों पर टिका हुआ है, जिसमें प्रत्येक की ऊँचाई 6' है, जिसमें नक्शा सं.1 में c से n तक के अक्षरों के साथ चिह्नित किया गया है। स्तंभों पर e से m में कमल के फूलों की नक्काशी है। इस स्तंभ में शंकर भगवान की छवि तांडव नृत्य के रूप में है और एक अन्य विकृत छवि है। J स्तंभ में हनुमानजी की उत्कीर्णित प्रतिमा थी। स्तंभ N को भगवान कृष्ण की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जिसके साथ ही अन्य स्तंभों में चित्रों की नक्काशी भी की गई है, जो मिटी हुई हैं।

उत्तर–पश्चिमी कोने में भवन के मध्य भाग में दो सीढ़ियों के साथ पक्का मंच है, जिस पर बाल राम (शिशु राम) की मूर्ति स्थापित है।

जैसा कि नक्शा सं.1 में अलग से दर्शित है, भवन के तीन हिस्सों के शीर्ष पर तीन गुंबद हैं जो प्रत्येक अष्टकोण आधार पर है। न तो कोई मीनार है और न ही भवन में कोई गुसलखाना है।

भवन के आसपास एक पक्का मार्ग है जिसे परिक्रमा के रूप में जाना जाता है, जैसा कि नक्शा सं. 1 और 2 में पीले रंग में दिखाया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिक्रमा के पश्चिम में भूमि लगभग 20' कम है, जबकि उत्तरी दिशा में पक्की सड़क लगभग 18' कम है।
मुहल्ले पर मिली अन्य ढाँचों को उनके उचित स्थानों पर नक्शा सं.2 में दर्शित है।

S और T अक्षर द्वारा दर्शित भूमि साधुओं की झोपड़ियों और धूनी से आच्छादित है। T अक्षर द्वारा दर्शित भूमि के दक्षिण और उसके निकट एक ऊंचा मंच है, जो दीवारों से परिबद्ध है, जो 4' 6" ऊँचा है और पश्चिम की ओर जाने वाले मार्ग को "शंकर चबूतरा" के रूप में जाना जाता है, जिसे "सीता कूप" के नाम से जाना जाता है, इस पर एक टिन शेड बनाया गया है और एक पाषाण शिला "3–सीता कूप" के शिलालेख के साथ इसके निकट स्थापित किया गया है। इस कूप के दक्षिण–पश्चिम में एक और पाषाण शिला भूमि में "4–सुमित्रा भवन" नामक शिलालेख के साथ स्थापित किया गया है। सुमित्रा भवन के उन्नत मंच पर शेषनाग की मूर्ति के साथ एक पाषाण शिला जमीन पर स्थापित किया गया है।

नक्शा सं. 2 में उल्लिखित विभिन्न समाधियों और अन्य ढाँचों के नाम साधुओं और मौके पर मौजूद अन्य लोगों द्वारा दिए गए थे।

नक्शा सं. 1 और 2 जो इस रिपोर्ट के हिस्से हैं, पक्षों के अधिवक्ता को दिए गए दो नोटिस और प्रतिवादी सं. 1 द्वारा प्रस्तुत आवेदन संलग्न हैं।

ससम्मान उपस्थित,
महोदय,
आपका परम् आज्ञाकारी,
शिव शंकर लाल,

फैजाबाद।
प्लीडर
25.5.50

आयुक्त।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

16. दिनांक 17 दिसंबर, 1959 को फैजाबाद के दीवानी न्यायाधीश के समक्ष निर्मोही अखाड़ा ने अपने महंत (**"वाद 3"**) के माध्यम से वाद[8] संस्थित किया जिसमें दावा किया गया था कि जन्मस्थान के मामलों का प्रबंध करने का उसका "आत्यंतिक अधिकार" और मजिस्ट्रेट की कुर्की के आदेश द्वारा और धारा 145 के तहत प्रापत की नियुक्ति से मंदिर पर गहरा असर पड़ा था। वाद 3 में मंदिर के प्रबंध और प्रभार को वादी को सौंपने के लिए एक डिक्री मांगी गई थी।

17. दिनांक 18 दिसंबर, 1961 को फैजाबाद के दीवानी न्यायाधीश के समक्ष सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अयोध्या के नौ मुस्लिम निवासियों ने मूर्तियों को हटाकर कब्जे के परिदान के लिए और बाबरी मस्जिद का विवादित स्थल सार्वजनिक मस्जिद था, को उद्घोषित करने की माँग करते हुए एक वाद[9] दायर किया।

18. दिनांक 6 जनवरी, 1964 को वाद 1, 3 और 4 का परीक्षण समेकित किया गया था और वाद 4 को प्रमुख मामला बनाया गया था।

19. दिनांक 25 जनवरी, 1986 को उमेश चंद्र द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष ग्रिल–ईंट की दीवार पर लगाए गए ताले खोलने और जनता को आंतरिक अहाते के भीतर दर्शन करने की अनुमति प्रदान करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। दिनांक 1 फरवरी 1986 को जिला

---

8 Regular Suit No 26 of 1959
(subsequently renumbered as OOS No. 3 of 1989)

9 Regular Suit No. 12 of 1961
(subsequently renumbered as OOS No. 4 of 1989)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायाधीश ने ताले खोलने और ढाँचे के अंदर भक्तों को दर्शन करने के लिए निर्देश जारी किए। उपरोक्त आदेश को चुनौती देने वाले उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका[10] में, दिनांक 3 फरवरी 1986 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें निर्देश दिया गया था कि अगले आदेश तक, संपत्ति की प्रकृति जो मौजूद है उसमें तब्दीली नहीं की जाएगी।

20. दिनांक 1 जुलाई, 1989 को विवादित परिसर को स्वत्व और प्रतिवादियों को मंदिर के निर्माण पर कोई आपत्ति उठाने अथवा हस्तक्षेप करने से रोकने की घोषणा करने के लिए एक वाद मित्र के माध्यम से दीवानी न्यायाधीश, फैजाबाद के समक्ष देवता ("भगवान श्री राम विराजमान") और जन्म स्थान ("स्थान श्री राम जन्म भूमि, अयोध्या") द्वारा वाद[11] ("**वाद 5**") लाया गया। वाद 5 को अन्य वादों के साथ विचारित किया गया।

21. दिनांक 10 जुलाई, 1989 को सभी वाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया। दिनांक 21 जुलाई, 1989 को वादों के विचारण के लिए उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का गठन किया गया। उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा आवेदन पर, उच्च न्यायालय ने दिनांक 14 अगस्त 1989 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसमें पक्षकारों को विवाद में संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया।

---

10 Civil Misc. Writ No. 746 of 1986

11 Regular Suit No. 236 of 1989
(subsequently renumbered as OOS No. 5 of 1989)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

22. कार्यवाही के लंबन के दौरान, उत्तर प्रदेश राज्य ने विवादित परिसर और कुछ आस–पास के क्षेत्रों से युक्त 2.77 एकड़ क्षेत्र का अधिग्रहण किया। यह भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (**"भूमि अर्जन अधिनियम"**) की धारा 4(1), 6 और 17(4) के तहत दिनांक 7 अक्टूबर, 1991 और 10 अक्तूबर, 1991 की अधिसूचनाओं द्वारा प्रभावित था। यह अधिग्रहण 'अयोध्या में यात्रियों को विकास और सुविधाएं प्रदान करने के लिए' था। अधिग्रहण को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी। दिनांक 11 दिसंबर 1992 के निर्णय और आदेश द्वारा अधिग्रहण को अपास्त किया गया था।

23. दिनांक 6 दिसंबर 1992 को स्थल पर स्थिति में पर्याप्त बदलाव हुआ। भीड़ ने मस्जिद, चहारदीवारी, और रामचबूतरे को नष्ट कर दिया। इससे पूर्व केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थल पर एक मंदिर की एक अस्थायी ढाँचे का निर्माण किया गया था। वहां मूर्तियों को स्थापित किया गया था।

केंद्र सरकार द्वारा अधिग्रहण और इस्माइल फारुकी का मामला

24. केंद्र सरकार ने अयोध्या अधिनियम 1993 ("अयोध्या अधिग्रहण अधिनियम 1993") में कुछ क्षेत्र के अधिग्रहण नामक कानून द्वारा विवादित परिसर सहित लगभग 68 एकड़ क्षेत्र का अधिग्रहण किया। धारा 3 और 4 में उन सभी वादों की न्यूनीकरण परिकल्पित की गई थी जो उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थे। इसके साथ ही, भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

143 के तहत इस न्यायालय का संदर्भ दिया था। वह संदर्भ यह था कि *"उस क्षेत्र में राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद (इस तरह के परिसर में आंतरिक और बाहरी अहाते के परिसर सहित) के निर्माण से पूर्व एक हिंदू मंदिर अथवा कोई हिंदू धार्मिक ढाँचा मौजूद था, जिस पर ढाँचा बना है.....।"*

25. इलाहाबाद उच्च न्यायालय और 1993 के अधिनियम की वैधता को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की गई थी। राष्ट्रपति द्वारा सभी याचिकाओं और संदर्भ को एक साथ सुना गया और 24 अक्टूबर 1994 दिनांकित के निर्णय द्वारा निर्णीत किया गया। इस न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय, जिसका शीर्षक **डॉ. एम इस्माइल फारुकी** बनाम **यूनियन ऑफ इंडिया**[12] है, ने धारा 4(3) अवधारित किया, जो सभी लंबित वादों को असंवैधानिक घोषित करने के लिए उपसमन प्रदान करता है। शेष 1993 के अधिनियम को वैध अवधारित किया गया। संविधान पीठ ने राष्ट्रपति के संदर्भ का जवाब देने से इनकार कर दिया और, परिणामस्वरूप, विवादित परिसर के संबंध में सभी लंबित वादों और कार्यवाहियाँ पुनर्जीवित हो गई।

केंद्र सरकार को यथास्थिति को बरकरार रखने के लिए एक वैधानिक प्रापत के रूप में नियुक्त किया गया था और वाद में किए जाने वाले अधिनिर्णय के संदर्भ में विवादित क्षेत्र को सौंपना था।

---

12 (1994) 6 SCC 360

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संविधान पीठ द्वारा दिए गए निष्कर्ष नीचे दिया गया है:

"96 .... (1)(क) अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) सभी लंबित वादों और विधिक कार्यवाहियों को पक्षकारों के बीच विवादों के समाधान के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र का उपबंध किए बिना समाप्त करती है। यह विधि के शासन की उपेक्षा के लिए विवाद के समाधान के लिए न्यायिक उपाय की समाप्ति है। इसलिए, अधिनियम की धारा 4 की उप–धारा (3) असंवैधानिक और अमान्य है।

(1)(ख) अधिनियम के शेष उपबंध हमारे द्वारा किए गए सन्निर्माण पर किसी अविधिमान्यता से ग्रस्त नहीं हैं। अधिनियम की धारा 4 की उप–धारा (3) शेष अधिनियम से अलग है। तदनुसार, शेष अधिनियम की संवैधानिक वैधता के लिए चुनौती को उप–धारा 4 की उप–धारा(3) के सिवाय खारिज कर दिया है.

(2) इस्लामी देशों में लागू मुस्लिम विधि के तहत किसी मस्जिद की प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए, पंथनिरपेक्ष भारत में लागू मुस्लिम विधि के तहत किसी मस्जिद की प्रस्थिति किसी धर्म की उपासना के किसी अन्य स्थान के समान है और किसी अन्य धर्म के पूजा स्थल के बराबर है; और राज्य की संप्रभुता या विशेषाधिकार शक्ति को अन्य धर्मों के पूजा स्थलों की तुलना में अधिग्रहण से अधिक उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है।

(3) विवादित क्षेत्र से संबंधित लंबित वाद और अन्य कार्यवाहियां, जिनके भीतर ढाँचा (ऐसे ढाँचे के आंतरिक और बाह्य अहाते का परिसर सहित), जिन्हें आमतौर पर राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद कहा जाता है, उस विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए पुनर्जीवित की जाती हैं, साथ में अंतरिम आदेश दिए गए हैं, सिवाय उस सीमा तक जो अंतरिम आदेश अधिनियम की धारा 7 के उपबंधों द्वारा संशोधित किए गए हैं।

(4) अधिनियम की धारा 3 के गुण पर केन्द्र सरकार में उक्त विवादित क्षेत्र के निहितार्थ, अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) के तहत उसमें यथास्थिति बरकरार रखने की अपेक्षा करने वाले धारा 7 के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुसार उसके प्रबंधन और प्रशासन के लिए कर्तव्य सहित कानूनी प्रापत के रूप में सीमित है। वैधानिक प्रापत के रूप में केंद्र सरकार का कर्तव्य अंतिम निर्णय के कार्यान्वयन के लिए वाद में किए गए अधिनिर्णयन के संदर्भ में, अधिनियम की धारा 6 के अनुसार विवादित क्षेत्र को सौंपना है। यह वह उद्देश्य है जिसके लिए विवादित क्षेत्र का अधिग्रहण किया गया है।

(5) वादों में और अंतरिम आदेश करने में न्यायालयों की शक्ति अधिनियम की धारा 7 की परिधि से बाहर के क्षेत्र तक सीमित और प्रतिबंधित है।

(6) अधिनियम की धारा 3 के गुण पर केन्द्र सरकार में अधिनियम द्वारा अर्जित विवादित क्षेत्र से भिन्न सन्निकट क्षेत्र के निहितार्थ, जब तक कि अधिनियम की धारा 6 के अनुसार किसी न्यास के किसी प्राधिकारी या अन्य निकाय या न्यासियों में इसके आगे निहित नहीं हो जाता है, अधिनियम की धारा 7 की उप–धारा (1) के अनुसार उसका प्रबंधन और प्रशासन की शक्ति के साथ सुनिश्चित है।अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, विवादित क्षेत्र के अतिरिक्त, सन्निकट क्षेत्र के निहितार्थ उसके अधिग्रहण के उद्देश्य के दृष्टिगत उस समय और उसके अर्जन के प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए उपदर्शित रीति से की जानी चाहिए।

(7) अधिनियम की धारा धारा 3 और धारा 6 में "निहित" शब्द के अर्थ को विभिन्न संदर्भों में समझा जाना चाहिए।

(8) अधिनियम की धारा 8 केन्द्र सरकार में पूर्णतया निहित संपत्ति के मालिकों को प्रतिकर के संदाय के लिए अभिप्रेत है, जिसका स्वत्व ऐसे विवाद में नहीं है जो विवादित क्षेत्र से अधिक है जो केवल पुनर्स्थापित वादों का विषय है। यह विवादित क्षेत्र पर लागू नहीं होता है, वाद में कर्तव्य के साथ इसे मालिक को बहाल करने के लिए किए गए अधिनिर्णयन के संदर्भ में जिस स्वत्व को वादों में अधिनिर्णीत किया जाना है और जिसके संबंध में जैसा कि संकेत दिया गया है केंद्र सरकार केवल वैधानिक प्रापत है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(9) सन्निकट क्षेत्र के किसी भी हिस्से के अधिग्रहण की इस आधार पर यह चुनौती है कि लंबी अवधि से स्थायी विवाद को निपटाने के निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनावश्यक है और इस स्तर पर जांच नहीं की जा सकती है। हालांकि, विवाद के अधिनिर्णयन पर निर्धारित किए गए उद्देश्य के लिए अनावश्यक समुचित क्षेत्र पर पाए गए क्षेत्र को निर्विवाद मालिकों को बहाल किया जाना चाहिए।

(10) विवादित क्षेत्र के सन्निकट क्षेत्र में कुछ धार्मिक संपत्तियों के अर्जन के लिए अविवादित स्वामियों द्वारा चुनौती की अस्वीकृति, इस स्थिति पर, यदि आवश्यक हो तो बाद के उचित स्थिति पर, उनकी संपत्ति को केन्द्र सरकार द्वारा विवाद के अधिनिर्णयन पर अपेक्षित समुचित क्षेत्र से अधिक अविच्छिन्न प्रतिधारण के मामलों में, उनकी चुनौती का नवीकरण करने के लिए उन्हें प्रदान की गई स्वतंत्रता के साथ है।

(11) परिणामतः, भारत के राष्ट्रपति द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 143(1) के तहत दिया गया विशेष संदर्भ सं. 1/ 1993 निरर्थक और अनावश्यक है और उत्तर दिया जाना आवश्यक नहीं है। इस कारणवश, हम बहुत ससम्मान इसका उत्तर देने और उसको वापस करने के लिए इनकार करते हैं।

(12) उक्त अधिनियम की संवैधानिक वैधता और विशेष संदर्भ की पोषणीयता से संबंधित प्रश्न इन शर्तों में तय किए गए हैं।"

उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही

26. दिनांक 24 जुलाई 1996 को उच्च न्यायालय के समक्ष मौखिक साक्ष्य की रिकॉर्डिंग प्रारम्भ हुआ। सुनवाई के दौरान, उच्च न्यायालय ने दिनांक 23 अक्टूबर, 2002 को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ("ए एस आई") को एक वैज्ञानिक अन्वेषण करने के लिए निदेश जारी किए और भूमि भेदक तकनीकी या भू–विकिरण विज्ञान ("जी.पी.आर.") द्वारा विवादित स्थल का सर्वेक्षण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया गया। 17 फरवरी, 2003 दिनांकित की जी.पी.आर. रिपोर्ट में विभिन्न प्रकार की "असंगतियाँ" उपदर्शित की गई हैं जो विवादित स्थल के बड़े भाग में फैले स्तंभ, नींव, दीवार शिला और फर्श जैसी "प्राचीन और समकालीन संरचनाओं" से संबद्ध हो सकती हैं। आगे के विश्लेषण की सुविधा के लिए, उच्च न्यायालय ने दिनांक 5 मार्च, 2003 को ए.एस.आई. को विवादित स्थल की खुदाई करने का निर्देश दिया। चौदह सदस्यीय टीम का गठन किया गया था, और एक नक्शा नजरी तैयार की गई थी जिसमें यह दर्शाया गया था कि खाइयों की सं. निर्धारित की जाए और खुदाई की जाए। 22 अगस्त 2003 को, ए.एस.आई. ने अपनी अंतिम आख्या प्रस्तुत की। उच्च न्यायालय ने आख्या पर आपत्तियां सुनीं।

27. मौखिक और वृत्तचित्र दोनों साक्ष्य उच्च न्यायालय के समक्ष दर्ज किए गए थे। एक न्यायाधीश के रूप में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि उच्च न्यायालय ने 13,990 पृष्ठों की 533 प्रदर्शनियों और 87 गवाहों के जमा होने से पूर्व कहा था। इसके अलावा, अधिवक्ता ने संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी, तुर्की, फ्रेंच और अंग्रेजी में हजार से अधिक पुस्तकों के संदर्भ पर अवलम्ब लिया है, जो इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व और धर्म जैसे विविध विषयों से संबंधित हैं।

उच्च न्यायालय ने यह सुनिश्चित किया कि असंख्य पुरातात्विक शिल्पकृतियों को अभिलेख कक्ष में रखा जाए। इसने दर्जनों सीडी और अन्य अभिलेख प्राप्त किए, जिसे उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों ने व्यवस्थित किया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उच्च न्यायालय का निर्णय

28. दिनांक 30 सितंबर 2010 को न्यायमूर्ति एस. यू. खान, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा की पूर्ण पीठ ने फैसला सुनाया, जो अपील में है। न्यायमूर्ति एस. यू. खान और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने विवादित परिसर के संयुक्त धारकों के रूप में –मुस्लिम, हिन्दू और निर्मोही अखाड़े "तीनों प्रकार के पक्षकारों" को अवधारित किया और उनमें से प्रत्येक को प्रारंभिक डिक्री में एक तिहाई हिस्सा आवंटित किय. न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने निम्नलिखित प्रकार से अवधारित किया:

> "तदनुसार, तीनों प्रकार के पक्षकारों यानी मुस्लिम, हिंदू और निर्मोही अखाड़ा को संपत्ति/परिसर के संयुक्त स्वत्व धारकों के विवाद में पूजा के लिए एक तिहाई हिस्से का उपयोग और प्रबंधन करने के लिए वाद सं. 1 में न्यायालय द्वारा नियुक्त प्लीडर/आयुक्त श्री शिव शंकर लाल द्वारा निर्मित नक्शा योजना–1 में ए बी सी डी ई एफ द्वारा वर्णित है। इस आशय का प्रारंभिक डिक्री पारित की जाती है।
>
> हालांकि, आगे यह घोषित किया गया कि केंद्रीय गुम्बद के नीचे का हिस्सा जहां वर्तमान में मूर्ति को मंदिर में रखा गया है अंतिम डिक्री में हिंदुओं को आवंटित किया जाएगा।
>
> आगे यह निर्देशित किया गया कि निर्मोही अखाड़ा को उस हिस्से सहित वह हिस्सा आवंटित किया जाएगा जो शब्दों द्वारा उक्त मानचित्र में राम चबूतरा और सीता रसोई को दिखाया गया है।
>
> हालांकि यह आगे स्पष्ट किया गया है कि भले ही तीनों पक्षों को एक तिहाई हिस्सा घोषित किया गया हो परन्तु यदि समुचित अंश आवंटित करते समय हिस्से में कुछ मामूली समायोजन किया जाना है तो वही

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जाएगा और प्रतिकूल रूप से प्रभावित पक्ष को केंद्र सरकार द्वारा अधिगृहीत की गई निकटवर्ती भूमि के कुछ हिस्से को आवंटित करके मुआवज़ा दिया जा सकता है।

पक्षकार तीन महीने के भीतर मेट्स और बाउंड द्वारा वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव दाखिल करने के लिए स्वतंत्र हैं।

माननीय मुख्य न्यायाधीश से आवश्यक निर्देशों को प्राप्त कर अंतिम डिक्री तैयार करने के लिए कोई सुझाव/आवेदन दाखिल करने के तुरंत बाद सूचीबद्ध करें।

इस्माइल फारूकी (1994(6) धारा 360) के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार आज तक प्रचलित यथास्थिति में इसके सभी विवरण में तीन महीने की अवधि के लिए बनाए रखा जाएगा जब तक कि यह आदेश पूर्व में संशोधित अथवा खाली नहीं किया जाता।"

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने भागतः वाद सं. 1 और 5 की डिक्री दी। वाद सं. 3 और 4 को सीमा द्वारा बाधित कर दिया गया था। विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित निर्देशों के साथ निष्कर्ष निकाला:

"4566...
(i) यह घोषित किया जाता है कि वह क्षेत्र, जो तीन गुंबदाकार ढांचे के केन्द्रीय गुंबद द्वारा आच्छादित है, यानी वह विवादित ढांचा, भगवान राम जन्म स्थान और भगवान राम का जन्म स्थल देव होने के कारण हिन्दुओं की आस्था और विश्वास के अनुसार वादी गण (वाद–5) से सम्बन्धित है और प्रतिवादी गण द्वारा उसमें कोई भी हस्तक्षेप या व्यवधान नही किया जाएगा। इस क्षेत्र को इस निर्णय के लिए परिशिष्ट 7 में अक्षरों एए बीबी सीसी डीडी द्वारा दिखाया गया है।

(ii) चूँकि परिशिष्ट 7 (उपरोक्त (i) के सिवाय) में बी सी डी एल के जे एच जी द्वारा दर्शाए गए आंतरिक अहाते के भीतर का क्षेत्र दोनों समुदायों

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के सदस्यों का है यानी हिन्दुओं (यहां वादीगण, वाद–5) और मुसलमानों द्वारा इसका प्रयोग दशकों और शताब्दियों से किया जा रहा था। हालाँकि, यह स्पष्ट किया गया है कि वादीगणों के हिस्से के उद्देश्य से, वाद–5 के इस दिशानिर्देश तहत जो क्षेत्र (i) से आच्छादित किया गया है, उसे भी सम्मिलित किया जाएगा।

(iii) बाह्य अहाते में राम चबूतरा (परिशिष्ट 7 में ईई एफएफ जीजी एचएच) सीता रसोई (परिशिष्ट 7 में एमएम एनएन ओओ पीपी) और भंडार (परिशिष्ट 7 में आईआई जेजे केके एलएल) के रूप में ढांचों द्वारा आच्छादित क्षेत्र में निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी सं. 3) के हिस्से में घोषित किया गया है और वे किसी व्यक्ति के अभाव में कब्जे में बेहतर स्वत्व के हकदार होंगे।

(iv) चूँकि इसका उपयोग आमतौर पर हिंदू व्यक्तियों द्वारा दोनों स्थानों पर पूजा के लिए किया जाता है इसलिए बाह्य अहाते (परिशिष्ट 7 में ए जी एच जे के एल ई एफ) (उपरोक्त (iii) द्वारा आच्छादन को छोड़कर) के भीतर खुले क्षेत्र को निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी सं. 3) और वादीगणों (वाद–5) द्वारा साझा किया जाएगा।

(iv–क) हालांकि यह स्पष्ट किया जाता है कि मुस्लिम पक्षकारों का भाग परिसर के कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई (1/3) से कम नहीं होगा और यदि आवश्यक हो तो उसे बाहरी आंगन का कुछ क्षेत्र दिया जा सकेगा। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि मेट्स और बाउंड द्वारा विभाजन करते समय, यदि कुछ मामूली समायोजन विभिन्न पक्षों के हिस्से के संबंध में किए जाने हैं, तो प्रभावित पक्ष को उस क्षेत्र जो भारत सरकार के अधिग्रहण के तहत है उससे अपेक्षित भूमि को आवंटित करके मुआवज़ा दिया जा सकता है।

(v) वह भूमि जो भारत सरकार के पास उपलब्ध है, जो अयोध्या अधिनियम, 1993 के अधीन वे पक्षकार जो संपत्ति के बेहतर उपभोग के लिए वाद में सफल हैं उनको उपरोक्त संबंधित पक्षकारों को ऐसी रीति से उपलब्ध कराई जाएगी जिससे कि सभी तीनों पक्षकार उस क्षेत्र, जिसके वे हकदार हैं, का उपयोग एक–दूसरे के अधिकारों में लोगों के पृथक् निर्गमन और प्रवेश के लिए निर्बाध रूप से प्रविष्टि कर सकें। इस प्रयोजन

के लिए संबंधित पक्ष भारत सरकार से संपर्क कर सकते हैं जो उपरोक्त निर्देशों के अनुसार कार्य करेगा और डॉ. इस्माइल फारुकी (उपरोक्त) में शीर्ष न्यायालय के निर्णय में भी निहित है।

(vi) यथापूर्वोक्त (i से v) प्रभाव के लिए भागतः प्रारंभिक और भागतः अंतिम डिक्री पारित की गयी है। सूट –5 भाग के लिए उपरोक्त सीमा तक डिक्री की गई है। विशेष कार्याधिकारी, लखनऊ में अयोध्या बेंच अथवा रजिस्ट्रार, लखनऊ बेंच को, जैसा भी मामला हो, इस आशय का एक आवेदन प्रस्तुत करके मेट्स और बाउंड द्वारा निर्देशित तरीके से विवाद में संपत्ति के वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव दर्ज करने के लिए स्वतंत्र हैं।

(vii) तीन माह की अवधि के लिए अथवा जब तक अन्यथा निदेश न दिया जाए, जो भी पूर्वतर हो, पक्षकार विवाद में संपत्ति के बाबत आज तक यथास्थिति बनाए रखेंगे ”

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने वाद 5 को इसके संपूर्णता में डिक्री किया था। वाद 3 और 4 को सीमारेखा द्वारा बाधित करते हुए खारिज कर दिया गया था। न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने यह निष्कर्ष निकाला:

"वादी का वाद डिक्री किया गया है, लेकिन सामान्य लागत के साथ। इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का पूरा परिसर जैसा कि वाद के संलग्नक सं. 1 और 2 में वर्णित वादी सं. 1 और 2 के देवता हैं।प्रतिवादीगणों को स्थाई रूप से संदर्भित स्थल पर राम जन्म भूमि अयोध्या में मंदिर के निर्माण में किसी भी तरह की आपत्ति करने अथवा किसी भी तरह की आपत्ति करने या बाधा डालने से रोक दिया जाता है।"

पक्षकारों ने उच्च न्यायालय के फैसले के विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष कई सिविल अपील और विशेष अनुमति याचिकाओं को प्राथमिकता दी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाही

29. दिनांक 9 मई 2011 को, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की बेंच ने कई अपील स्वीकार किया और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री के संचालन पर रोक लगा दी। अपील के लंबन के दौरान, पक्षकारों को **इस्माइल फारुकी** मामले में जारी निर्देशों के अनुसार विवादित परिसर के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने के लिए निर्देशित किया गया था। अभिलेखागार को पक्षकारों को डिजिटल रिकॉर्ड की इलेक्ट्रॉनिक प्रतियां प्रदान करने के लिए निर्देशित किया गया था।

30. दिनांक 10 सितंबर 2013, 24 फरवरी 2014, 31 अक्टूबर 2015 और 11 अगस्त 2017 को, इस न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय से साक्ष्य और तर्कों का डिजिटल रिकॉर्ड और पक्षकारों को अनुवादित प्रतियां प्रस्तुत करने का सम्मन करते हुए निर्देश जारी किए। दिनांक 10 अगस्त 2015 को, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की बेंच ने कमिश्नर, फैजाबाद डिवीजन को अस्थाई ढाँचे पर पुरानी तिरपाल को बदलने की अनुमति दी, जिसके तहत मूर्तियों को एक ही आकार और गुणवत्ता की नई चादर के साथ रखा गया था।

31. दिनांक 5 दिसंबर 2017 को, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की बेंच ने इस दलील को खारिज कर दिया कि **इस्माइल फारुकी** के मामले में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संविधान पीठ के कुछ अवलोकनों के दृष्टिगत आक्षेपित निर्णय के विरूद्ध याचिका को वृहद पीठ में भेजा जाना चाहिए। दिनांक 14 मार्च 2018 को, तीन न्यायाधीशों की बेंच ने तर्कों को सुना कि **इस्माइल फारुकी** के निर्णय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है अथवा नहीं।दिनांक 27 सितंबर 2018 को, 2:1 के बहुमत से इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की बेंच ने पुनर्विचार के लिए **इस्माइल फारुकी** के मामले में निर्णय को संदर्भित करने से इनकार कर दिया और सुनवाई के लिए आक्षेपित नर्णय के विरूद्ध याचिका को सूचीबद्ध किया।

32. प्रशासनिक आदेश 8 जनवरी 2019 दिनांकित द्वारा सर्वोच्च न्यायालय नियमावली, 2013 के आदेश VI नियम 1 के प्रावधानों के अनुसार, भारत के मुख्य न्यायाधीश ने अपील की सुनवाई के लिए पांच न्यायाधीशों की बेंच का गठन किया। दिनांक 10 जनवरी 2019 को, रजिस्ट्री को अभिलेखों का निरीक्षण करने के लिए निर्देशित किया गया था और यदि आवश्यक हो, तो आधिकारिक अनुवादकों को संलग्न करें। दिनांक 26 फरवरी 2019 को, इस न्यायालय ने अपील में उठाए गए मुद्दों को एक स्थायी समाधान लाने की संभावना का पता लगाने के लिए नियुक्त और निगरानी के लिए पक्षकारों को संदर्भित किया। दिनांक 8 मार्च 2019 को (i)न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला, इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश (ii) श्री श्री रवि शंकर; और (iii) श्रीराम पान्चू, वरिष्ठ अधिवक्ता सहित मध्यस्थों का एक पैनल का गठन किया गया था।मध्यस्थता की कार्यवाही को पूर्ण करने के लिए मध्यस्थों को दिए गए समय को दिनांक 10 मई 2019 तक बढ़ाया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

था। दिनांक 2 अगस्त 2019 को कोई समझौता नहीं हुआ था, अपील की सुनवाई दिनांक 6 अगस्त 2019 से प्रारम्भ होने के लिए निर्देशित की गई थी। सुनवाई के दौरान, मध्यस्थों के पैनल द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी कि कुछ पक्षकार विवाद को निपटाने के लिए इच्छुक थे। इस न्यायालय ने अपने आदेश 18 सितंबर 2019 दिनांकित से यह अवलोकित किया कि जब सुनवाई आगे बढ़ेगी तो यदि कोई पक्षकार विवाद को निपटाने की इच्छा रखते हैं तो उनके लिए इस न्यायालय के समक्ष मध्यस्थों को स्थानांतरित करना और समझौता करना खुला था, यदि यह आया था। दिनांक 16 अक्टूबर 2019 को अपीलों के समूह में अंतिम तर्क दिए गए। उसी दिन, मध्यस्थता पैनल ने "समिति की अंतिम रिपोर्ट" शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि वर्तमान विवाद के लिए कुछ पक्षकारों द्वारा एक समझौता किया गया था। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के अध्यक्ष श्री जुफ़र अहमद फारुकी द्वारा इस समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे। यद्यपि समझौते के तहत सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड विवादित भूमि पर अपने सभी अधिकारों, हितों और दावों को त्यागने के लिए सहमत हो गया, यह अनुबन्धित कुछ शर्तों की पूर्ति के अधीन था। मध्यस्थता पैनल से इस न्यायालय द्वारा प्राप्त निपटान समझौते को वर्तमान विवाद के लिए सभी पक्षकारों द्वारा सहमत अथवा हस्ताक्षरित नहीं किया गया है। इसके अलावा, यह केवल कुछ शर्तों को पूरा करने पर सशर्त है। इसलिए, समझौते को विवाद के लिए पक्षकारों के बीच सशर्त अथवा निश्चित अनुबंध नहीं माना जा सकता है। हालांकि, हम इस न्यायालय द्वारा सौंपे गए कार्य को प्रारम्भ करने में मध्यस्थता पैनल के सदस्यों द्वारा किए गए ईमानदार प्रयासों की सराहना

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करते हैं। एक स्वतंत्र और स्पष्ट संवाद के लिए एक सामान्य मंच पर विवादों को एक साथ लाने में, मध्यस्थों ने एक कार्य किया है जिसकी सराहना करने की आवश्यकता है। हम उन पक्षकारों की भी सराहना करते हैं जिन्होंने मध्यस्थता की कार्यवाही को आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

B. वादों का संक्षिप्त विवरण

33. इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों के विभिन्न तर्कों की जांच करने से पूर्व, हम सर्वप्रथम प्रक्रियात्मक इतिहास, मूलभूत दावों और राहत में इस न्यायालय के समक्ष तीन वादों की दलीलों में प्रार्थना की गई।

वाद 1–ओओएस सं. 1/ 1989 (सामान्य वाद 2/1950)

34. यह वाद दिनांक 13 जनवरी, 1950 को अयोध्या के निवासी गोपाल सिंह विशारद द्वारा '*सनातन धर्म* के अनुयायी' के रूप में अपनी क्षमता के अनुसार गठित किया था:

(i) जन्मभूमि मंदिर में निर्बाध "धर्म और प्रथा के अनुसार" भगवान राम के दर्शन और पूजा करने के लिए अपने हक की घोषणा; और

(ii) एक स्थायी और शाश्वत निषेधाज्ञा प्रतिवादी सं. 1 से 10 को मूर्तियों की ओर जाने वाले रास्ते को बंद करने अथवा पूजा और दर्शन में हस्तक्षेप करने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और उस स्थान से देवता और अन्य मूर्तियों को हटाने से रोकती है, जहां वे स्थापित किए गए थे।

प्रतिवादी सं. 1 से 5 अयोध्या के मुस्लिम निवासी हैं; प्रतिवादी सं. 6 उत्तर प्रदेश राज्य का है; प्रतिवादी सं. 7 फैजाबाद का उपायुक्त है; प्रतिवादी सं. 8 फैजाबाद का अपर सिटी मजिस्ट्रेट, है; प्रतिवादी सं. 9 फैजाबाद का पुलिस अधीक्षक, है; प्रतिवादी सं. 10 सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड से और प्रतिवादी सं. 11 निर्मोही अखाड़े से सम्बन्धित है।

वाद 1 में वादी का मामला यह है कि अयोध्या के निवासी के रूप में वे "जन्मभूमि के उस स्थान पर" भगवान राम की मूर्ति और *चरण पादुका* (पद छाप) की पूजा कर रहे थे। वाद में वर्णित 'विवादित स्थल' की सीमाएँ इस प्रकार हैं:

> "विवादित स्थल
>
> पूर्व: राम जन्म भूमि का चबूतरा और कोषागार
> पश्चिम:परती
> उत्तर: सीता रसोई
> दक्षिणः परती"

वाद 1 के लिए कार्रवाई की वजह दिनांक 14 जनवरी 1950 को उत्पन्न हुआ था, जब सरकार के कर्मचारियों पर आरोप लगाया गया कि वे वादी को "स्थल के अंदर जाने से" और उनके पूजा करने के अधिकार का प्रयोग करने से अवैध रूप से रोका था। यह आरोप लगाया गया था कि "राज्य" ने प्रतिवादी सं. 1 से 5 द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए मुस्लिम निवासियों के इशारे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर इस कार्रवाई को अंगीकृत किया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदुओं को उनके "पूजा के न्यायसंगत अधिकार" से वंचित किया गया था। वादी ने स्वीकार किया कि भगवान राम की मूर्ति सहित मूर्तियों को हटा दिया जाएगा। ये कार्यवाहियां "वादी के अधिकार और स्वत्व पर प्रत्यक्ष आक्रमण" करने का अभिकथन किया गया था और यह कहा गया था कि यह कानून के विपरीत "दमनकारी कृत्य" है.

35. वाद में निहित आरोपों से इनकार करते हुए, प्रतिवादी सं. 1 से 5 ने अपने लिखित बयानों में यह कहा कि:

(i) वह संपत्ति, जिसके संबंध में मामला संस्थित किया गया है, जन्मभूमि नहीं है किन्तु सम्राट बाबर द्वारा बनाई गई मस्जिद है। मस्जिद का निर्माण वर्ष 1528 में मुगल सम्राट बाबर के निर्देशों पर उसके उप–महाद्वीप पर विजय पाने के बाद मीर बाकी ने किया, जो बाबर की सेना का कमांडर था।

(ii) मस्जिद को मुसलमानों के लिए वक्फ के रूप में समर्पित किया गया था, जिन्हें वहां प्रार्थना करने का अधिकार है। सम्राट बाबर ने मस्जिद के रख–रखाव और खर्च के लिए वार्षिक अनुदान दिया, जिसे अवध के नवाब और ब्रिटिश सरकार ने जारी रखा और उसे परिष्कृत किया।

(iii) 1885 का वाद केवल रामचबूतरे के संबंध में महंत रघुबर दास द्वारा स्वामित्व की घोषणा के लिए था अतः यह दावा है कि संपूर्ण भवन का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रतिनिधित्व जनमस्थान के लिए निराधार था। दिनांक 24 दिसंबर, 1885 को वाद खारिज होने के परिणामस्वरूप, "चबूतरे से संबंधित मामले को स्वीकार नहीं किया गया था";

(iv) उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1936 के तहत नियुक्त मुख्य आयुक्त वक्फ ने मस्जिद को सुन्नी वक्फ अभिनिर्धारित किया था;

(v) मस्जिद का कब्जा सदैव मुस्लिमों का पास में ही रहा है। यह स्थिति वर्ष 1528 में आरंभ हुई और उसके पश्चात् भी जारी रही और परिणामस्वरूप " प्रतिकूल कब्जे के रूप में....उस संपत्ति का कब्जा मुस्लिमों के पास में है"; प्रतिवादी सं. 1 से 5 अयोध्या के मुस्लिम निवासी हैं; प्रतिवादी सं. 6 उत्तर प्रदेश राज्य का है; प्रतिवादी सं. 7 फैजाबाद का उपायुक्त है; प्रतिवादी सं. 8 फैजाबाद का अपर सिटी मजिस्ट्रेट, है; प्रतिवादी सं. 9 फैजाबाद का पुलिस अधीक्षक, है; प्रतिवादी सं. 10 सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड से और प्रतिवादी सं. 11 निर्मोही अखाड़े से सम्बन्धित है।

(vi) बाबरी मस्जिद में जिस बिंदु पर केन्द्रीय गुंबद के नीचे कोई प्रतिमा नहीं थी वहां दिनांक 16 दिसंबर, 1949 तक नमाज़ अदा की गई थी। यदि किसी व्यक्ति ने मस्जिद के अंदर किसी मूर्ति को दुर्भावनापूर्ण आशय से स्थापित किया तो "मस्जिद का अप्रतिष्ठा जाहिर है और अभियुक्त व्यक्तिय अभियोजित होने का उत्तरदायी है;"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) पूजा करने के लिए अथवा दर्शन हेतु मस्जिद में प्रवेश करने के लिए वादी या किसी अन्य व्यक्ति का कोई भी प्रयास विधि का अतिक्रमण होगा। सीआरपीसी 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ की गई थी; और

(viii) बाबरी मस्जिद को जन्मस्थान के स्थल के रूप में दावा करने वाला वर्तमान वाद निराधार है, काफी लंबे समय तक, भगवान राम एवं अन्य की मूर्तियों वाला एक अन्य मंदिर, जो भगवान राम के जन्मस्थान का वास्तविक स्थान है।

राज्य, प्रतिवादी सं. 6 द्वारा लिखित बयान दायर किया गया था, जिसमें निम्नलिखित कथन प्रस्तुत किया गया:

(i) वाद की संपत्ति जिसे बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है, मुस्लिमों द्वारा लंबे समय तक मस्जिद का इबादत के प्रयोजनार्थ प्रयोग किया गया और उसका उपयोग भगवान राम के मंदिर के रूप में नहीं किया गया है;

(ii) दिनांक 22 दिसंबर, 1949 की रात को भगवान राम की मूर्तियों को मस्जिद के भीतर लोक हित और शांति के लिए स्थापित किया गया। दिनांक 23 दिसंबर 1949 को, सिटी मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी 1898 की धारा 144 के तहत एक आदेश पारित किया, जिससे विवादित संपत्ति को कुर्क करते हुए धारा 145 के तहत अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समान तिथि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का आदेश दिया गया। ये आदेश सार्वजनिक शांति बनाए रखने के लिए पारित किए गए थे; और

(iii) सिटी मजिस्ट्रेट ने संपत्ति के प्रापत के रूप में श्री प्रिया दत्त राम को नगरपालिका बोर्ड, फैजाबाद–सह–अयोध्या का अध्यक्ष नियुक्त किया।

इसी प्रकार का लिखित कथन अपर सिटी मजिस्ट्रेट प्रतिवादी सं. 8, और पुलिस अधीक्षक प्रतिवादी सं. 9, द्वारा दायर किए गए थे।

प्रतिवादी सं. 10, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने अपना लिखित कथन दर्ज कराया जिसमें कहा गया कि:

(i) विवादित भवन भगवान राम का जन्मस्थान नहीं है और इसमें कोई प्रतिमाएं कभी स्थापित नहीं की गईं;
(ii) वाद की संपत्ति में एक मस्जिद थी जिसे सम्राट बाबर के शासन–काल के दौरान निर्मित बाबरी मस्जिद कहा जाता था, जिन्होंने इसके रखरखाव और खर्च हेतु वार्षिक अनुदान दिया था और उन्हें अवध और ब्रिटिश सरकार के नवाब द्वारा सतत और परिष्कृत किया गया था।

(iii) दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 की रात को मूर्तियां गुप्त रूप से मस्जिद में लाई गईं;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) वर्ष 1528 से दिनांक 29 दिसंबर 1949 को धारा 145 के तहत मस्जिद के कुर्की की तिथि तक मस्जिद केवल मुस्लिमों के कब्जे में रहा था। उन्होंने नियमित रूप से 21 दिसंबर, 1949 तक इबादत और दिनांक 16 दिसंबर, 1949 तक शुक्रवार की नमाज अदा की।

(v) मस्जिद में वक्फ का गुण था और उसका स्वामित्व ईश्वर में निहित था;

(vi) वादी को महंत रघुबर दास (वादी को पूर्ववर्ती होने का वर्णित किया गया था) द्वारा संस्थित 1885 के वाद के रूप में मस्जिद को भगवान राम की जन्मभूमि के रूप में दावा करने से रोक दिया गया था जिसको केवल मस्जिद के बाहर सत्रह x इक्कीस फीट नापते हुए रामचबूतरा तक सीमित कर दिया गया था।

(vii) वहाँ पहले से ही एक राम जन्मस्थान मंदिर मौजूद था, जो बाबरी मस्जिद से थोड़ी दूरी पर है।

प्रतिवादी सं. 1 से 5 के लिखित बयान के लिए वादी के प्रत्युत्तर में, यह दावे के साथ कहा गया था कि वर्ष 1934 से विवादित स्थल का कभी भी मस्जिद के रूप में उपयोग नहीं किया गया है। आगे कहा गया था कि यह "सार्वजनिक ज्ञान" था जो हिंदुओं के नैतिक प्रकृति द्वारा सतत रूप से अधिकार में है, जिससे प्रतिवादियों का दावा समाप्त हो गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद 3–ओओएस सं. 3/1989 (सामान्य वाद सं. 26/1959)

36. यह वाद दिनांक 17 दिसंबर 1959 को महंत जगत दास के माध्यम से निर्मोही अखाड़ा द्वारा जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से प्रापत को हटाने और वादी को प्रदान करने के लिए एक डिक्री की मांग करते हुए दायर की गई थी।

वाद 3 में प्रतिवादी सं. 1 प्रापत है; प्रतिवादी सं. 2 उत्तर प्रदेश राज्य है; प्रतिवादी सं. 3 उपायुक्त, फैजाबाद है; प्रतिवादी सं. 4 सिटी मजिस्ट्रेट, फैजाबाद है; प्रतिवादी सं. 5 पुलिस अधीक्षक, फैजाबाद है; प्रतिवादी सं. 6 से 8 अयोध्या के मुस्लिम निवासी हैं; प्रतिवादी सं. 9 सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड है और प्रतिवादी सं. 10 उमेश चंद्र पांडे हैं।

वाद हेतुक दिनांक 5 जनवरी 1950 को उत्पन्न हुआ था जब जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार को सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा हटा दिया गया था और प्रापत को सुपुर्द किया गया था। निर्मोही अखाड़ा ने तर्क दिया कि:

(i) अयोध्या में, "प्राचीन काल से" विद्यमान प्राचीन मठ या अखाड़ा या रामानंदी बैरागियों के अखाड़ा निर्मोही कहलाते हैं। यह सार्वजनिक प्रकृति का एक धार्मिक संस्थान है;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) जन्मस्थान, सामान्यतः जिसे जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है जो कि भगवान राम का जन्म–स्थान है और जो हमेशा निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रबंधित किया जाता है;

(iii) जन्मस्थान प्राचीनतम से प्राचीन है जो कि रेखाचित्र में ए बी सी डी अक्षरों द्वारा दर्शित चहारदीवारियों के भीतर स्थित है जो उस वाद में संलग्न है जिसमें ई एफ जी के पी एन एम एल ई अक्षरों द्वारा चिह्नित "मंदिर भवन" है। ई एफ जी एच आई जे के एल ई अक्षरों द्वारा निरूपित इमारत मुख्य जन्मभूमि मंदिर है, जहां लक्ष्मण, हनुमान और सालिगराम के साथ भगवान राम की मूर्तियां स्थापित की गई हैं। मंदिर का निर्माण निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में है और केवल हिंदुओं को मंदिर में प्रवेश करने और पैसे, मिठाईयाँ, फूल और फल जैसे अनुष्ठान करने की अनुमति दी गई है। इस प्रकार निर्मोही अखाड़ा अपने पुजारियों के माध्यम से अनुष्ठानों को ग्रहण करता है।

(iv) निर्मोही अखाड़ा बैरागियों के रामानंदी पंथ का एक पंचायती मठ है जो एक धार्मिक संप्रदाय है। 19 मार्च, 1949 दिनांकित को निर्मोही अखाड़ा के रीति–रिवाजों को पंजीकृत विलेख द्वारा लिखे गए।

(v) निर्मोही अखाड़ा कई मंदिरों का स्वामित्व और प्रबंधन करता है;

(vi) वर्ष 1934 से किसी मुस्लिम को मंदिर भवन में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गई ; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 145 के उपबंधों के अधीन कार्य करते हुए, सिटी मजिस्ट्रेट ने मुख्य मंदिर और उसमें सभी लेखों को दिनांक 5 जनवरी, 1950 को प्रथम प्रतिवादी के प्रभार में प्रापत के रूप में रखा। परिणामस्वरूप, वादियों को गलत तरीके से मंदिर के प्रबंधन और आरोप से वंचित किया गया है।

37. अयोध्या के मुस्लिम निवासी प्रतिवादी सं. 6 से 8 की ओर से दायर लिखित कथन में कहा गया था कि वर्ष 1528 में सम्राट बाबर द्वारा बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था और इसे वक्फ के रूप में गठित किया गया था, जिसमें मुस्लिमों को इबादत करने का प्रस्ताव किया गया था। इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया गया:

(i) वर्ष 1885 का वाद रघुबर महंत दास द्वारा रामचबूतरे तक ही सीमित था और उप–न्यायाधीश फैजाबाद द्वारा उसे खारिज कर दिया गया था;

(ii) मस्जिद की संपत्ति उ.प्र. मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1936 के तहत वक्फ के रूप में गठित की गई थी;

(iii) वर्ष 1528 से मस्जिद का कब्जा लगातार मुस्लिमों के पास ही रहा है जिसके परिणामस्वरूप वादियों के समस्त अधिकार समाप्त कर दिये गए;

(iv) मस्जिद के पूर्वी और उत्तरी किनारों पर मुस्लिम कब्रें हैं;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) दिनांक 16 दिसंबर, 1949 तक संपत्ति में लगातार नमाज अदा की गई थी और यदि कोई मूर्ति स्थापित की गई है तो मस्जिद की प्रकृति नहीं बदल जाएगी; और

(vi) एक अन्य मंदिर अयोध्या में है जिसे भगवान राम का जन्मस्थान मंदिर कहते हैं जो काफी समय से अस्तित्व में है।

दिनांक 6 दिसंबर, 1992 को इस प्रकथन को शामिल करने के लिए वाद में संशोधन किया गया कि "मुख्य मंदिर को कुछ असामाजिक तत्वों ने ध्वस्त कर दिया, जिनके पास कोई धर्म, जाति या संप्रदाय नहीं था"।

निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रतिवादी सं. 6 से 8 के संयुक्त लिखित बयान में दायर प्रतिकृति में, एक अलग जन्मस्थान मंदिर के अस्तित्व से इनकार कर दिया गया था। यह कहा गया कि जन्मस्थान मंदिर जन्मभूमि मंदिर के उत्तर में स्थित है।

प्रतिवादी सं. 9 द्वारा सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा आरोपों से इनकार करते हुए वाद में एक लिखित बयान दायर किया गया था।

प्रतिवादी सं. 10, उमेश चंद्र पांडे द्वारा दायर लिखित बयान में, निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया गया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) जन्मस्थान "पूजा का एक पवित्र स्थान" है और लंबे समय तक श्री राम लला विराजमान के देवता का है। देवता के पास मंदिर का स्वामित्व है। राम जन्मभूमि के प्रमुख देवता भगवान राम हैं।

(ii) निर्मोही अखाड़ा ने जन्मस्थान को कभी प्रबंधित नहीं किया;

(iii) वर्ष 1857 में, ब्रिटिश सरकार ने एक आंतरिक बाड़ा बनाकर और उसके भीतर की चहारदीवारी को मस्जिद के रूप में वर्णित करके इमारत को विभाजित करने का प्रयास किया, लेकिन कोई भी "सच्चे मुस्लिम" वहाँ इबादत नहीं कर सकता था;

(iv) कसौटी स्तंभों और देवी देवताओं के उत्कीर्णनों की उपस्थिति से संकेत मिलता है कि स्थल का उपयोग प्रार्थना के लिए "सच्चे मुस्लिम" द्वारा नहीं किया जा सकता है;

(v) वस्तुतः वह स्थान ऐसे हिन्दू मंदिर द्वारा अवरुद्ध था जिसमें उस देवता की पूजा हुई थी;

(vi) निर्मोही अखाड़ा का वाद सन् 1959 में संस्थित किए गए परिसीमा द्वारा बाधित था, यद्यपि वाद हेतुक दिनांक 5 जनवरी, 1950 को उत्पन्न हुआ; और

(vii) निर्मोही अखाड़ा धारा 145 के तहत कार्यवाही में शामिल नहीं हुआ और न ही उन्होंने अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के विरूद्ध कोई पुनरीक्षण दायर किया।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्मोही अखाड़ा धारा 145 के तहत कार्यवाहियों में सम्मिलित नहीं हुआ और न ही उन्होंने अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण फाइल किया। निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रतिवादी सं. 10 को लिखित बयान में दायर प्रतिकृति में, संप्रदाय की स्थापना का एक विस्तृत विवरण था। सातवीं शताब्दी ईसवी के शंकराचार्य की परंपरा के बाद, रामानुजचार्य और बाद में रामानंद द्वारा मठ को स्थापित करने की प्रथा का पालन किया गया। रामानंद ने वैष्णव के एक पंथ स्थापित किया जिसे 'रामत्स' कहा जाता है, जो भगवान राम की पूजा करते हैं। रामानंदी पंथ के बैरागियों के आध्यात्मिक गुरूओं ने तीन 'अन्निस' नामतः (i) निर्मोही; (ii) दिगंबर; और (iii) निर्वाणी अखाड़ों की स्थापना की। ये अखाड़े पंचायती मठ हैं। निर्मोही अखाड़ा का राम जन्मस्थान मंदिर पर स्वामित्व है, जो भगवान राम के जन्म–स्थान से संबंधित है। धारा 145 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ होने तक बाह्य बाड़े का स्वामित्व और प्रबंधन निर्मोही अखाड़ा द्वारा किया गया था।

वाद 4–ओओएस 4/1989 (सामान्य वाद सं. 12/1961)

38. दिनांक 18 दिसंबर, 1961 को सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अयोध्या के नौ मुस्लिम निवासियों द्वारा वाद 4 की संस्थित की गई थी। यह प्रकथन किया गया है कि सीपीसी के आदेश 1 नियम 8 के तहत एक आवेदन के साथ संपूर्ण मुस्लिम समुदाय की ओर से वाद की स्थापना की गई है। संशोधित के रूप में, वाद में निम्नलिखित राहतें मांगी गई हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"(a) इस आशय की एक घोषणा यह है कि संपत्ति से जुड़े रेखाचित्र में अक्षरों ए बी सी डी से इंगित संपत्ति सार्वजनिक मस्जिद है, जिसे आमतौर पर "बाबरी मस्जिद" के नाम से जाना जाता है और यह कि मस्जिद से सटी हुई भूमि में एक सार्वजनिक मुस्लिम कब्रिस्तान है जो रेखाचित्र में अक्षरों ई के जी एच से दर्शाए गए पैरा 2 में डिक्री की जा सकती है।

(b) यह कि न्यायालय की राय में कब्जे के परिदान को उचित उपचार समझा जाता है तो उन मूर्तियों और अन्य लेखों को, जिन्हें हिंदू मस्जिद में रख सकते हैं, हटाकर वाद में मस्जिद और कब्रिस्तान के कब्जे के परिदान के लिए एक डिक्री प्रतिवादियों के विरुद्ध वादी के पक्ष में पारित की जानी चाहिए।

(bb) यह कि वैधानिक प्रापत को उस पर बनाए गए अनधिकृत ढांचों को हटाकर वाद की अनुसूची 'क' में वर्णित विवादित संपत्ति को सौंपने का आदेश दिया जाएगा।"

[नोट: प्रार्थना (bb) उच्च न्यायालय के आदेश 25 मई, 1995 दिनांकित के अनुसरण में वाद में संशोधन द्वारा की गई थी]।

वाद 4 में प्रतिवादी सं. 1 गोपाल सिंह विशारद हैं; प्रतिवादी सं. 2 राम चंद्र दास परम हंस हैं; प्रतिवादी सं. 3 निर्मोही अखाड़ा हैं, प्रतिवादी सं. 4 महंत रघुनाथ दास हैं; प्रतिवादी सं. 5 उ.प्र. राज्य हैं; प्रतिवादी सं. 6 कलेक्टर, फैजाबाद हैं; प्रतिवादी सं. 7 सिटी मजिस्ट्रेट, फैजाबाद हैं; प्रतिवादी सं. 8 फैजाबाद की पुलिस अधीक्षक हैं; प्रतिवादी सं. 9 प्रियादत्त राम हैं; प्रतिवादी सं. 10 अध्यक्ष, अखिल भारत हिंदू महासभा हैं; प्रतिवादी सं. 13 धरम दास हैं; प्रतिवादी सं. 17 रमेश चंद्र त्रिपाठी हैं; और प्रतिवादी सं. 20 मदन मोहन गुप्ता हैं।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह वाद इस प्रकथन पर आधारित है कि अयोध्या में एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद है जिसे आमतौर पर बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है, जिसका निर्माण 433 वर्ष पूर्व बाबर ने भारत पर विजय प्राप्त करने और उसके राज्य क्षेत्रों पर अधिपत्य करने के पश्चात किया था। यह माना गया है कि मस्जिद को सामान्य रूप से मुस्लिमों के इबादत के स्थल के रूप में और धार्मिक समारोहों के प्रदर्शन के लिए बनाया गया था। मस्जिद के मुख्य निर्माण को अक्षरों ए बी सी डी द्वारा वर्णित किया गया है जो कि वाद पर नक्शे को संलग्न किया गया है। सटी हुई भूमि एक कब्रिस्तान है। वादी के अनुसार, मस्जिद और कब्रिस्तान दोनों ईश्वर में निहित है और मस्जिद के निर्माण के बाद से मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने के लिए जबकि कब्रिस्तान को दफनाने के लिए इस्तेमाल किया गया है। वाद में कथित है कि मस्जिद की मुख्य इमारत के बाहर एक चबूतरे में हिंदू पूजा की जा रही थी जिसे 17x21 फीट माप किया गया था, जिस पर छावनी के रूप में एक छोटी लकड़ी की संरचना थी।

चबूतरे पर मंदिर के निर्माण की अनुमति महंत रघुबर दास द्वारा वर्ष 1885 के वाद की उक्ति में सम्मिलित है जिसे खारिज कर दिया गया था। वाद 4 में वादी का तर्क है कि महंत ने स्वयं की ओर से जन्मस्थान और इसमें रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों पर वाद दायर किया, और निर्णय पूर्ण न्याय के रूप में संचालित होता है क्योंकि यह मामला सीधे और काफी हद तक बाबरी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद के अस्तित्व पर था, और मस्जिद से सटे भूमि पर मंदिर बनाने के लिए हिंदुओं का अधिकार था।

वादियों के अनुसार, प्रतिवादियों द्वारा यह स्वीकार किए बिना कि उस स्थल पर कथित रूप से एक हिंदू मंदिर मौजूद था, जिसमें मस्जिद का निर्माण 433 वर्ष पूर्व सम्राट बाबर द्वारा किया गया था, मस्जिद के निर्माण से प्रारम्भ होने वाले और लंबे और सतत कब्जा होने से मुस्लिमों ने तब तक कब्जा किया जब तक कि अपना स्वत्व पूर्ण नहीं कर लिया। तब वादी दंप्रसं 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाहियों का संदर्भ देने के लिए आगे बढ़ता है। 1950 के वाद 2 में निषेधाज्ञा के व्यादेश के परिणामस्वरूप, हिंदुओं को मस्जिद के भीतर रखी मूर्तियों की पूजा करने की अनुमति दी गई, परन्तु मुस्लिमों को प्रवेश करने से रोक दिया गया।

वादीगणों के अनुसार, वाद के लिए वाद हेतुक दिनांक 23 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ जब कथित रूप से हिंदुओं ने मस्जिद में गलत तरीके से प्रवेश किया और मस्जिद के अंदर मूर्ति रखकर इसे दूषित कर दिया। क्षति को प्रकृति में जारी रखते हुए दावा किया गया। जैसा कि राज्य के विरूद्ध, वाद हेतुक दिनांक 29 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ, जब संपत्ति सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क की गई थी जिसने प्रापत को कब्जा सौंप दिया था। प्रापत ने दिनांक 5 जनवरी 1950 को पदभार ग्रहण किया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद में जो राहत का दावा किया गया है, वह उपरोक्त प्रकथनों पर आधारित है। अनिवार्यतः वादियों का मामला इस दलील पर आगे बढ़ती है कि:

(i) मस्जिद का निर्माण वाद से 433 वर्ष पूर्व सार्वजनिक इबादत स्थल के रूप में बाबर द्वारा किया गया था और मुस्लिमों द्वारा सतत इबादत करने के लिए उपयोग किया गया था; और

(ii) यहां तक कि यह मानते हुए कि यह एक अंतर्निहित मंदिर था जिसे मस्जिद के निर्माण के लिए रास्ता देने हेतु ध्वस्त किया गया था, मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे से अपना स्वत्व पूर्ण कर लिया। इस आधार पर, वादी स्वत्व की घोषणा का दावा करते हैं और इस घटना में इस तरह की प्रार्थना कब्जे के डिक्री के लिए आवश्यक है।

39. गोपाल सिंह विशारद, प्रथम प्रतिवादी (जो वाद 1 में भी वादी हैं), द्वारा दायर लिखित बयान में, यह कहा गया है कि यदि मस्जिद मुस्लिमों के कब्जे में था तो यह वर्ष 1934 में समाप्त हो गया। हिंदू वर्ष 1934 के बाद कब्जा होने का दावा करते हैं और उनके कब्जे को प्रतिकूल कब्जे में तैयार किया जाना कहा गया है। लिखित बयान के अनुसार, सन् 1934 से मस्जिद में कोई इबादत नहीं की गई थी। इसके अलावा, किसी भी व्यक्तिगत हिंदू अथवा महंत को संपूर्ण हिंदू समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। हिंदू पूजा को ढाँचे के अंदर करना जारी रखा गया है, जिसे वर्ष 1934 से मंदिर के रूप में वर्णित किया गया है और सिटी मजिस्ट्रेट के आदेश के बाद जनवरी 1950 से माना जाता है। एक अतिरिक्त लिखित बयान में, एक दलील दी गई है कि उ.प्र. मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1936

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकारातीत है। यह प्रकथित है कि अधिनियम के तहत कोई भी निर्धारण गैर–मुस्लिमों के विरूद्ध स्वत्व के प्रश्न को तय करने के लिए कार्य नहीं कर सकता है। आगामी लिखित बयान में कहा गया है कि हिंदुओं ने पुरातन काल से ही जन्मभूमि स्थल की पूजा की है; जन्मभूमि मंदिर कभी भी मुस्लिमों के कब्जे में नहीं था और यदि वह कब्जे में था भी तो वर्ष 1934 में यह बंद हो गया था। वाद को परिसीमा द्वारा बाधित कर दिया गया।

वर्ष 1885 के वाद के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि वादी प्रतिनिधि क्षमता में वाद नहीं कर रहा था और केवल अपने व्यक्तिगत हित का अनुसरण कर रहा था।

निर्मोही अखाड़ा का लिखित कथन मस्जिद के अस्तित्व से इनकार करता है। निर्मोही अखाड़ा द्वारा कहा गया है कि वह महंत रघुबर दास द्वारा दायर किसी भी वाद से अनभिज्ञ था। इसके अनुसार, इस स्थल पर कभी मस्जिद नहीं थी और इसलिए 23 दिसंबर 1949 तक मुस्लिम समुदाय के पास नमाज़ अदा करने का कोई अवसर नहीं था। यह आग्रह किया गया है कि बाबरी मस्जिद के रूप में वर्णित संपत्ति क्या है और हमेशा जन्मभूमि मंदिर के भीतर हिंदू देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित रही हैं। लिखित कथन के अनुसार, वर्ष 1885 के वाद में मंदिर पर रामचबूतरा को न्यायिक रूप से मान्यता दी गई थी। यह आग्रह किया गया था कि जन्मभूमि मंदिर हमेशा निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था और किसी और को नहीं बल्कि हिंदुओं को पूजा और प्रार्थना करने की अनुमति दी गई थी। निर्मोही अखाड़ा के प्रतिनिधि द्वारा चढ़ावा प्राप्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करना अभिकथित है। कुर्की के बाद, केवल निर्मोही अखाड़े के पुजारियों को मंदिर में मूर्तियों की पूजा करने का दावा किया गया है। लिखित कथन में कम से कम 1934 से ढाँचे में मुस्लिमों की इबादत से इनकार किया गया है और यह आग्रह किया गया है कि वाद 4 को सीमित करके रोक दिया गया है। अतिरिक्त लिखित बयान में, निर्मोही अखाड़ा ने इस बात से इनकार किया है कि वर्ष 1885 के वाद में निष्कर्ष *पूर्वन्याय* के रूप में कार्य करते हैं। इस आरोप से इनकार किया जाता है कि मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे से अपना स्वत्व पूर्ण किया है।

उत्तर प्रदेश राज्य ने अपने लिखित कथन में इस प्रभाव के लिए दायर किया कि सरकार विवादित संपत्ति में दिलचस्पी नहीं रखती और प्रतिवाद करने का प्रस्ताव नहीं करती है।

दसवें प्रतिवादी अखिल भारतीय हिंदू महासभा की ओर से दायर लिखित कथन में यह प्रकथित है कि भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने पर मूल हिंदू कानून का पुनरुद्धार किया है, जिसके परिणामस्वरूप वादी किसी भी कानूनी या संवैधानिक अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं। अतिरिक्त लिखित कथन में दसवें प्रतिवादी ने दिनांक 22 दिसंबर 1949 की घटना से इनकार किया और दावा किया कि मूर्तियाँ अनादिकाल से विचाराधीन स्थान पर अस्तित्व में थीं। लिखित बयान के अनुसार, यह स्थल भगवान राम का जन्म स्थान है और जन्म स्थान पर कोई मस्जिद नहीं बनाई जा सकती थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभिराम दास और धरम दास जो उनके चेला होने का दावा करते हैं, का लिखित कथन राम जन्मभूमि स्थल पर एक मस्जिद के निर्माण की वैधता पर सवाल उठाते हैं। लिखित कथन के अनुसार, यह स्थल हिंदू पूजा स्थलों से घिरा हुआ और भूमिबद्ध है और इसलिए ऐसी इमारत मुस्लिम विधि में वैध मस्जिद नहीं हो सकती। लिखित कथन में इस आधार पर वैध वक्फ में शामिल है कि एक वक्फ प्रतिकूल कब्जे पर आधारित नहीं हो सकता है। लिखित कथन के अनुसार, राम जन्मभूमि में विक्रमादित्य के शासन के पूर्व एक प्राचीन मंदिर था, जिसे मीर बाकी ने ध्वस्त कर दिया था। यह प्रकथित है कि राम जन्मभूमि अविनाशी है क्योंकि देवता दिव्य और अमर हैं। मस्जिद के निर्माण के विरोध में यह प्रस्तुत किया गया है कि यह क्षेत्र देवताओं के कब्जे में है और तीन गुंबददार संरचना में हिंदू पूजा स्थलों से गुजरने के अतिरिक्त कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता है। अन्य हिंदू प्रतिवादियों द्वारा दायर लिखित कथन व्यापक रूप से इसी तरह के विचारों का पालन करते हैं। हिंदू पक्षकारों के लिखित कथनों के लिए प्रत्युत्तर दायर किया गया था।

वाद 5–ओओएस सं. 5/1989 (सामान्य वाद सं. 236/1989)

40. निम्नलिखित राहत का दावा करते हुए वाद को दिनांक 1 जुलाई 1989 को स्थापित किया गया था:

> "(A) अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर, वादी देवताओं से संबद्ध है, जैसा कि संलग्नक I, II और III में वर्णित और चित्रित किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(B) श्री राम जन्म भूमि, अयोध्या में नए मंदिर भवन के निर्माण में किसी भी तरह की बाधा डालने, या किसी भी तरह का व्यवधान डालने अथवा मौजूदा भवनों और ढाँचों आदि को ध्वस्त करने और हटाने के बाद, प्रतिवादियों के विरूद्ध एक शाश्वत व्यादेश उक्त उद्देश्य के लिए ऐसा करने के लिए, जहाँ तक आवश्यक या समीचीन हो सकता है, वहाँ तक उपचार करें।"

यह वाद "श्री राम जन्मभूमि में भगवान श्री राम विराजमान, अयोध्या जिसे भगवान श्री रामलला विराजमान भी कहते हैं", के नाम से स्थापित किया गया है।

इस प्रकार वर्णित देवता पहले वादी है। दूसरे वादी को "स्थान श्री राम जनभूमि, अयोध्या" कहा जाता है। दोनों वादियों का प्रतिनिधित्व वाद मित्र के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री देवकी नंदन अग्रवाल ने किया था। पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र को तीसरे वादी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वाद के प्रतिवादियों में शामिल हैं:

(i) निर्मोही अखाड़ा जो वाद 3 में वादी है;

(ii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, वाद 4 में वादी;

(iii) अयोध्या के हिन्दू और मुस्लिम निवासी; और

(iv) उत्तर प्रदेश राज्य, कलक्टर और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अखिल भारतीय हिंदू महासभा और श्री राम जन्मभूमि न्यास के रूप में वर्णित न्यास सहित कई अन्य हिंदू संस्थाएं वाद के पक्षकार हैं जैसे कि शिया सेंट्रल वक्फ बोर्ड है।

वाद 5 में मुख्यतः यह प्रकथित है कि:

(i) प्रथम और द्वितीय वादी न्यायिक व्यक्ति हैं: भगवान राम उस स्थान के अधिष्ठाता देवता हैं और यह स्थान स्वयं पूजा का प्रतीक है;

(ii) वादपत्र के प्रयोजन के लिए राम जन्मभूमि की पहचान श्री शिव शंकर लाल द्वारा तैयार किए गए भवन, परिसर और आस–पास के क्षेत्र की योजनाओं पर आधारित है, जिन्हें वाद 1/1950 में फैजाबाद के दीवानी न्यायाधीश द्वारा आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था;

(iii) वादपत्र में दीवानी न्यायालय के समक्ष गठित पूर्वतर वादों का संदर्भ शामिल है और यह कि धारा 145 के तहत कार्यवाहियों में नियुक्त प्रापत द्वारा देवताओं की पूजा के लिए धार्मिक समारोहों की देखभाल की गई। यद्यपि देवता की सेवा और पूजा को संचालित किया गया परन्तु श्रद्धालुओं को केवल बैरियर के पीछे से ही दर्शन करने की अनुमति है।

(iv) यह आरोप लगाते हुए कि ईश्वर की प्रार्थना अनुचित रूप से की गयी है, यह कहा गया है कि "अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि पर पुराने ढांचे को हटाने के बाद" श्रद्धालु एक नए मंदिर के निर्माण करने के इच्छुक हैं। जन्मभूमि की संपत्ति और मामलों के प्रबंधन के उद्देश्य के लिए दिनांक 18 दिसंबर, 1985 को न्यास के विलेख का गठन किया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) यद्यपि, भगवान राम और राम जन्मभूमि के अधिष्ठाता देवता दोनों को एक विशिष्ट व्यक्तित्व वाला न्यायिक व्यक्ति होने का दावा किया जाता है, परन्तु उनमें से किसी को भी पूर्ववर्ती वादों का पक्षकार नहीं बनाया गया था। परिणामस्वरूप, उन वादों में पारित डिक्रियां देवताओं को आबद्ध नहीं करेंगी;

(v) लोक अभिलेख यह स्थापित करते हैं कि विवादित परिसर में भगवान राम का जन्म हुआ था और वे मानव रूप में विष्णु के अवतार के रूप में अवतरित हुए थे;

(vii) स्वयं वह स्थान–राम जन्मस्थान–पूजा करने की वस्तु है चूँकि यह भगवान राम के रूप में पूज्य दिव्य भावना को व्यक्त करता है। इस प्रकार देवता और जन्म स्थान दोनों के पास एक न्यायिक चरित्र है। हिन्दू परमात्मा के आत्मा की पूजा करते हैं न कि मूर्ति के रूप में उसके भौतिक स्वरूप की। पूजा की जाने वाली यह आत्मा अविनाशी है। इस आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हुए, राम जन्मभूमि एक स्थान के रूप में देवता के रूप में पूजा जाता है और इसलिए यह एक विधिक व्यक्ति है।

(viii) अपने भक्तों द्वारा "एक अचल ईश्वर" की पूजा का वास्तविक और निरंतर प्रदर्शन इसके अस्तित्व के लिए आवश्यक नहीं है चूँकि भूमि द्वारा निरूपित देवता अविनाशी है;

(ix) राम जन्मभूमि पर विक्रमादित्य के शासनकाल में एक प्राचीन मंदिर था। मंदिर आंशिक रूप से नष्ट हो गया था और सम्राट बाबर के सेनापति मीर बाकी ने एक मस्जिद बनाने का प्रयत्न किया। मस्जिद के निर्माण के लिए उपयोग की जाने वाली अधिकांश सामग्री मंदिर से प्राप्त की गई जिसमें उसके कसौटी स्तंभ सहित हिंदू देवी–देवताओं को उत्कीर्ण किया गया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(x) फैजाबाद गजेटियर के 1928 वें संस्करण में यह अभिलिखित है कि वर्ष 1528 में अपनी विजय के दौरान बाबर ने प्राचीन मंदिर को नष्ट कर दिया और उस स्थल पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया। वर्ष 1855 में हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच विवाद था। गजेटियर में अभिलिखित है कि विवाद के बाद, मस्जिद के सामने एक बाह्य बाड़े को स्थापित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप आंतरिक अहाते का उपयोग हिंदुओं के लिए निषिद्ध थी। परिणामस्वरूप, उन्होंने बाह्य अहाते में एक चबूतरे पर प्रार्थना की।

(xi) वह स्थान देवताओं से संबंधित है और कोई वैध वक्फ कभी नहीं बनाया गया था अथवा बनाया जा सकता था;

(xii) प्राचीन मंदिर के विनाश पर जो ढांचा खड़ा किया गया था, वह मंदिर की सामग्री का उपयोग करते हुए मस्जिद का गठन नहीं करता है। मस्जिद के निर्माण के बावजूद, राम जन्मभूमि उस देवता के कब्जे में नहीं रह गया जो विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से भक्तों द्वारा पूजा जाता रहा है।

(xiii) मस्जिद के भवन का उपयोग केवल हिन्दू पूजा के आस–पास के स्थानों से होकर किया जा सकता है। इसलिए राम जन्मभूमि में देवताओं की उपासना युगों से चलती रही है।

(xiv) वर्ष 1934 के पश्चात् मस्जिद में कोई इबादत नहीं की गई है दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 की रात में, भगवान राम की मूर्तियों को केंद्रीय गुम्बद के नीचे उचित अनुष्ठान के साथ स्थापित किया गया था। उस स्थिति पर, एक प्राथमिकी पर कार्रवाई करते हुए, अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा दंप्रसं की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई और दिनांक 29 दिसंबर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1949 को एक प्रारंभिक आदेश पारित किया गया। एक प्रापत नियुक्त किया गया था, जिसके बावजूद वादी देवताओं के कब्जे में गड़बड़ी नहीं की गयी थी;

(xv) वादी, किसी पूर्व मुकदमेबाजी के पक्षकार नहीं थे और इसलिए वे पूर्व की कार्यवाहियों के परिणाम से आबद्ध नहीं हैं; और

(xvi) अयोध्या में राम जन्मभूमि जिसमें अधिष्ठाता देवता के अलावा, अन्य मूर्तियों और देवताओं के साथ–साथ इसकी संपत्तियों से सम्बन्धित एकमात्र पहचान के साथ अभिन्न परिसर गठित होता है। मुस्लिमों का दावा ब्रिटिश द्वारा अवध के विलय के बाद स्थापित भीतरी चहारदीवारी के भीतर संलग्न क्षेत्र तक ही सीमित है। वादपत्र में दिनांक 6 दिसंबर 1992 को मस्जिद ढाँचे के विध्वंस का विवरण है और उसके बाद होने वाले घटनाक्रम में एक अध्यादेश की घोषणा शामिल है और बाद में भूमि के अधिग्रहण के लिए संसद द्वारा अधिनियमित एक कानून है।

41. निर्मोही अखाड़ा द्वारा लिखित लिखित कथन में, यह कहा गया है कि:

(i) भगवान राम की मूर्ति राम जन्मभूमि में नहीं बल्कि राम जन्मभूमि मंदिर में स्थापित की गई है। निर्मोही अखाड़ा ने राम जन्मभूमि मंदिर के प्रभार और प्रबंधन के लिए एक वाद की स्थापना की है;

(ii) जबकि भगवान राम का जन्म–स्थान विवाद में नहीं है, वहीं यह राम जन्मभूमि मंदिर है जो विवाद में है। मुस्लिम इसे मस्जिद होने का दावा करते हैं जबकि निर्मोही अखाड़ा इसे अपने प्रभार और प्रबंधन के लिए एक मंदिर होने का दावा करता है। राम जन्मभूमि मंदिर "स्थान राम जन्मभूमि" (भगवान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

राम का जन्म स्थान), अयोध्या के मोहल्ला राम कोट नामक स्थान पर स्थित है।

(iii) निर्मोही अखाड़ा विवादित मंदिर में स्थापित भगवान राम की मूर्ति के सेवायत है और यदि आवश्यक हो तो उन्हें मंदिर की जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण का विशेष अधिकार है; और

(iv) "राम जन्मभूमि स्थान" न्यायिक व्यक्ति नहीं है। वाद 5 के वादियों के पास मुकदमा करने का कोई वास्तविक स्वत्व नहीं है। प्रतिवादी ने उत्तर देते हुए कहा कि संपूर्ण परिसर निर्मोही अखाड़ा से संबंधित है। इसलिए, लिखित कथन के अनुसार वादी को घोषणा करने का कोई अधिकार नहीं है।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के लिखित कथन के अनुसार:

(i) न तो पहला और न ही दूसरा वादी न्यायिक व्यक्ति हैं;

(ii) विवादित स्थल पर भगवान राम का कोई अधिष्ठाता देवता नहीं है;

(iii) मूर्तियों को गुप्त रूप से दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 की रात को मस्जिद के भीतर रखा गया था। न तो कोई अधिष्ठाता देवता है और न ही जन्मस्थान;

(iv) 1885 का वाद महंत रघुबर दास ने अयोध्या के जन्मस्थान के महंत के रूप में एक मंच अथवा चबूतरे पर मंदिर स्थापित करने की अनुमति मांगने के लिए गठित किया गया था। नक्शे में मस्जिद का चित्रण चबूतरा के पश्चिमी हिस्से में किया गया था। यह वाद अयोध्या और फैजाबाद के अन्य महंतों और हिंदुओं की ओर से गठित किया गया था। वाद खारिज कर दिया गया था। पहली और दूसरी अपील भी खारिज कर दी गई। चूंकि पूर्व के वाद में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दावा केवल मस्जिद के बाहर सत्रह x इक्कीस फीट तक स्वीकार्य चबूतरे तक ही सीमित था, इसलिए वर्तमान मुकदमे में दावा वर्जित है।

(v) बाबरी मस्जिद से सौ गज से भी कम दूरी पर स्थित जन्मस्थान मंदिर के रूप में जाना जाने वाला यह एक अन्य मंदिर भी है;

(vi) किसी मौजूदा मंदिर के स्थल पर अथवा उसके विध्वंस पर मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था;

(vii) सम्राट बाबर के शासन काल में भूमि राज्य से संबंधित थी और मस्जिद का निर्माण रिक्त भूमि पर किया गया था जो किसी व्यक्ति से संबंधित नहीं थी;

(viii) सम्राट बाबर, जो सुन्नी मुसलमान था, उसके शासन काल में इसके निर्माण के समय से ही इस ढांचे का उपयोग हमेशा से मस्जिद के रूप में किया गया है।

(ix) मस्जिद के निर्माण के पश्चात् से दिनांक 22 दिसंबर, 1949 तक मुस्लिमों का कब्जा अबाधित और अविच्छिन्न था। इसलिए, इसके विपरीत किसी भी कथित अधिकार को प्रतिकूल कब्जे द्वारा समाप्त कर दिया गया माना जाता है;

(x) नियमित रूप से दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक मस्जिद में प्रतिदिन पाँच बार इबादत किया जाता था और दिनांक 16 दिसंबर 1949 तक शुक्रवार की नमाज अदा की जाती थी;

(xi) दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 को कुछ बैरागियों ने जबरन मस्जिद में प्रवेश किया और केंद्रीय गुम्बद के नीचे एक मूर्ति स्थापित कर दी। यह दिनांक 23 दिसंबर, 1949 को इबादत के लिए मस्जिद में उपस्थित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुस्लिमों को ज्ञान हुआ जिसके बाद दंप्रसं 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ की गई। भवन का कब्जा प्रापत के पास दिनांक 5 जनवरी 1950 से बना हुआ है;

(xii) वाद 5 का तीसरा वादी स्वयं को सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा संस्थित वाद के पक्षकार के रूप में अभियोजित कर सकता था। ऐसा करने में विफल रहने पर तीसरा वादी देवताओं के वाद मित्र के रूप में वाद 5 को निर्वाह नहीं कर सकता;

(xiii) तीसरा वादी कभी भी मूर्तियों के प्रबंधन और पूजा से संबंधित नहीं रहा है और वह स्वयं को भगवान राम का वाद मित्र होने का दावा नहीं कर सकता;

(xiv) जैसा कि प्रथम वादी द्वारा वर्णित है कि कोई अधिष्ठाता देवता नहीं है और यह कहना गलत है कि पदचिन्ह (“*चरण*”) और अन्य ढाँचे एकमात्र पहचान के साथ एक अभिन्न परिसर को संस्थित करती हैं;

(xv) मस्जिद की अवधारणा में यह परिकल्पना की गई है कि नीचे तथा ऊपर का संपूर्ण क्षेत्र अल्लाह को समर्पित है। इसलिए, यह न केवल मस्जिद की संरचना है बल्कि वह भूमि भी है जिस पर वह स्थापित है जो सर्वशक्तिमान अल्लाह को समर्पित है;

(xvi) प्रश्नगत स्थल का भगवान राम के जन्मस्थान से कोई संबंध नहीं है और उसका राम जन्मभूमि के कथित "स्थान" से कोई महत्व नहीं है;

(xvii) वाद हेतुक का कारण दिसम्बर 1949 में तब प्रोद्भूत होना माना जाता है जब संपत्ति कुर्क की गई थी और जब मुस्लिमों ने मस्जिद में पूजा करने के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिन्दुओं के दावे का स्पष्ट रूप से खंडन किया था. अतः, वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है;

(xviii) वाद का विषय वक्फ के रूप में रजिस्ट्रीकृत संपत्ति है जो उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1960 की धारा 30 के तहत सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा अनुरक्षित है जो राजस्व अभिलेखों में इस प्रकार दर्शित है; और

(xix) पुरातत्व विशेषज्ञ यह उपदर्शित करते हैं कि 700 ई.पू. के पूर्व स्थिति में न ही मानव निवास का कोई निशान है और न ही कोई साक्ष्य है कि बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई किला, महल अथवा प्राचीन मंदिर विद्यमान है।

प्रतिवादी सं. 5 जो अयोध्या के मुस्लिम निवासी है, की ओर से दायर लिखित कथन में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि:

(i) सोलहवीं शताब्दी में निर्माण के बाद से ही परिसर सदैव एक मस्जिद रहा है और इसका उपयोग केवल नमाज अदा करने के लिए किया गया है;

(ii) कसौटी स्तंभों के अस्तित्व से इनकार किया गया है। बाबरी मस्जिद में मुस्लिमों के अतिरिक्त किसी और ने इबादत नहीं किया। इसकी स्थापना से दिनांक 22 दिसंबर, 1949 तक मस्जिद में नमाज अदा की गई।

(iii) बाबरी मस्जिद का निर्माण ऐसे मंदिर के स्थल पर नहीं किया गया था जिसे सम्राट बाबर के आदेश पर ध्वस्त किया गया था;

(iv) अयोध्या में मौजूद राम जन्मस्थान मंदिर भिन्न है और प्रश्नगत परिसर से अलग है।

(iv) 1885 के वाद का निष्कर्ष पूर्वन्याय के रूप में कार्य करते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दिनांक 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद के विध्वंस के परिणामस्वरूप वादपत्र में संशोधनों से निपटने के लिए प्रतिवादी सं. 4 और 5 की ओर से एक अतिरिक्त लिखित कथन दायर किया गया था।

अयोध्या के मुस्लिम निवासी प्रतिवादी सं. 6 के लिखित कथन में प्रतिवादी सं. 5 के लिखित कथन को अपनाया गया है। अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष, प्रतिवादी सं. 11 के लिखित कथन ने वादपत्र में मांगी गई शर्तों के अनुसार एक डिक्री को प्रस्तुत किया है। हिंदू और मुस्लिम प्रतिवादियों द्वारा दायर लिखित कथन बड़े पैमाने पर उसी से संबंधित लाइनों का पालन करते हैं।

42. प्रतिवादी सं. 24, राजकुमार अंजुम क़ादेर द्वारा लिखित बयान इस प्रकार दायर किया गया है:

> "(a) वादी द्वारा वर्तमान में दावा किया जा रहा स्थल केवल दिनांक 22.12.1949 से राम जन्मभूमि के रूप में जाना जा रहा है।
>
> (b) बाबरी मस्जिद ढांचे के बाह्य अहाते में रामचबूतरा केवल वर्ष 1885 से राम जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है।
>
> (c) गली के उस पार बाबरी मस्जिद के सामने जन्मस्थान स्थल रसोई मंदिर को पारंपरिक रूप से प्राचीन काल से ही राम जन्मभूमि कहा जाता है।"

प्रतिवादी सं. 24 के अनुसार:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) वर्ष 1855 में अहाते के एक कोने में बाबरी मस्जिद के ढाँचे के बाहर एक स्थान को जन्मस्थान के रूप में दावा किया गया था। उस स्थिति में, सत्रह x इक्कीस फीट के मापन क्षेत्र को रामचबूतरे के रूप में नामांकन करते हुए विभाजित किया गया था।

(ii) दिनांक 22 दिसंबर, 1949 को जन्मस्थान का दावा रामचबूतरे से मस्जिद के मुख्य गुंबद के नीचे एक स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया।

(iii) वर्ष 1855 से पूर्व, बाबरी मस्जिद के सामने एक टीले पर निर्विवादित रूप से राम जन्मस्थान पुराने जन्मस्थान सीता रसोई मंदिर था;

(iv) प्रतिवादी सं. 24 के अनुसार, निम्नलिखित तीन स्थलों को अब भगवान राम के जन्म का संभावित स्थान माना जाता है, अर्थात्:

(a) वर्ष 1949 से मुख्य गुम्बद के नीचे स्थित बाबरी मस्जिद;

(b) वर्ष 1855 से बाबरी मस्जिद के प्रांगण में रामचबूतरा; और

(c) पुराने राम जन्मस्थान मंदिर में जहां सीता रसोई भी स्थित है।

(v) जबकि ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रकाशित फैजाबाद गजेटियर के 1928 के संस्करण में एक सप्ताह के लिए अयोध्या में सम्राट बाबर रुकते हुए, प्राचीन मंदिर को नष्ट करने और नष्ट मंदिर की सामग्री के साथ बाबरी मस्जिद बनाने का वर्णन है, यह इतिहास का एक तथ्य है कि बाबर कभी अयोध्या नहीं आया।

सम्राट बाबर के संस्मरण बाबर–नामा में अयोध्या आने, मंदिर को नष्ट करने या मस्जिद बनाने का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। प्रतिवादी सं 24 कहता है कि:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"हालाँकि, सब कुछ कहने और करने के बाद, यह सबसे सम्मानजनक रूप से प्रस्तुत किया जाता है कि यदि केवल इस दावे को साबित किया जाता है कि एक मंदिर को ध्वस्त किया गया था और बाबरी मस्जिद को मंदिर की भूमि पर बनाया गया था, तो यह प्रतिवादी और अन्य सभी मुस्लिम प्रसन्नतापूर्वक मस्जिद को ध्वस्त कर देंगे और आगे से मंदिर के निर्माण के लिए भूमि वापस कर देंगे।"

(vi) बाबरी मस्जिद का निर्माण मीर बाकी द्वारा खाली भूमि पर किया गया था न कि पूर्व–विद्यमान मंदिर के खंडहरों पर। चूंकि मीर बाकी शिया मुस्लिम थे, इसलिए वर्ष 1528 में उनके वंशजों को 'हक्क–ए–मुतावल्ली' स्वतः ही मिल गई। हालाँकि, शिया और सुन्नी दोनों ने बाबरी मस्जिद में नमाज अदा की। जब अयोध्या में शिया आबादी कम हो गयी तो सुन्नी मुस्लिमों को शिया मुतावल्ली ने वर्ष 1925 से मस्जिद में अपनी दैनिक जमात करने की अनुमति दी। बाबरी मस्जिद के सुन्नी इमाम ने दिनांक 22 दिसंबर 1949 को अंतिम नमाज़ अदा की।

प्रतिवादी सं. 25 के लिखित कथन में कहा गया है कि:

(i) बाबरी मस्जिद हमेशा मस्जिद के रूप में उपयोग की जाती रही है, जिसमें उसके निर्माण के बाद से दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक ही नमाज अदा की गई थी; और

(ii) दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 की रात को कुछ व्यक्तियों ने अवैध रूप से मस्जिद में अतिक्रमण किया जिसके परिणामस्वरूप एक प्राथमिकी दर्ज की गई और धारा 145 के तहत कार्यवाहियां आरंभ की गईं। दीवानी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायालय के समक्ष दीवानी वाद के लंबन के दौरान एक प्रापत नियुक्त किया गया था और यथास्थिति को सतत रखने का निर्देश दिया गया था।

वाद में वाद बिन्दुओं के शीर्षक

43. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवलोकन किया कि चार वादों में मुद्दों को बड़े पैमाने पर निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत वर्गीकृत किया जा सकता है:

"(a) सि.प्र.सं. की धारा 80 के तहत सूचना
(b) धार्मिक सम्प्रदाय
(c) पूर्वन्याय, अधित्याग और विबंधन
(d) 13/1936 का वक्फ अधिनियम आदि।
(e) वाद के प्रतिनिधि स्वरूप, न्यास, सि.प्र.सं. की धारा 91, पक्षकारों के असंयोजन, मूल्यांकन/अपर्याप्त न्यायालय शुल्क/अधिमूल्यन और विशेष खर्चों जैसे विविध मुद्दे।
(f) व्यक्ति और अवधि–विवादित भवन का निर्माण कब और किसके द्वारा किया गया
(g) ईश्वर, उनकी प्रास्थिति, अधिकार आदि।
(h) परिसीमा
(i) कब्जा/प्रतिकूल कब्जा
(j) स्थल जन्म स्थान के रूप में, मंदिर का अस्तित्व और विध्वंस यदि कोई हो।
(k) मस्जिद के प्रकृति
(l) संपत्ति की पहचान
(m) विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की बाधा
(n) अन्य, यदि कोई हो।"

C. साक्ष्यः संक्षेप में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

44. विचारण के दौरान न्यायालय के समक्ष बहुत सारी सामग्री आई। उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का निर्णय दस्तावेजी साक्ष्यों[13] को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। विचारण के दौरान पक्षकारों के दस्तावेजी प्रदर्शों में 533 प्रदर्श समाविष्ट हैं जिनका संक्षिप्त वर्गीकरण इस प्रकार है:

1. वादीगण (वाद–1)	–	प्रदर्श सं. 1 से 34	(कुल 34)
2. वादीगण (वाद–3)	–	प्रदर्श सं. 1 से 21	(कुल 21)
3. वादीगण (वाद–4)	–	प्रदर्श सं. 1 से 128	(कुल 128)
4. वादीगण (वाद–5)	–	प्रदर्श सं. 1 से 132	(कुल 132)
5. प्रतिवादीगण (वाद–1)	–	प्रदर्श सं. A1 से A72	(कुल 73)
6. प्रतिवादीगण (वाद–4)	–	(i) प्रदर्श सं. A1 से A16	(कुल 16)
		(ii) प्रदर्श सं. M1 से A7	(कुल 7)
		(iii) प्रदर्श सं. B1 से B16	(कुल 16)
		(iv) प्रदर्श सं. J1 से J31	(कुल 32)
		(v) प्रदर्श सं. T1–T6	(कुल 6)
		(vi) प्रदर्श सं. V1	(कुल 1)
		(vii) प्रदर्श सं. Q1 से Q6	(कुल 6)
7. प्रतिवादीगण (वाद–5)	–	(i) प्रदर्श सं. C1 से C11	(कुल 11)
		(ii) प्रदर्श सं. D1 से D38	(कुल 38)
		(iii) प्रदर्श सं. E1 से E8	(कुल 12)
		कुल योग –	533

इन प्रदर्शों में मुख्यतः शामिल हैं:–

(i) धार्मिक ग्रन्थ;

(ii) यात्रावृत्त

---

13 2010 (ADJ), Vol. I, pages 624–662

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) गजेटियर;

(iv) स्तंभों पर शिलालेखों के अनुवाद;

(v) पुरातत्वीय उत्खनन की आख्या;

(vi) विध्वंस से पूर्व की छायाचित्र; और

(vii) विवादित स्थल पर पाए गए शिल्पकृति के विवरण।

उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का निर्णय निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत चार वादों में मौखिक साक्ष्य को सारणीबद्ध करता है:

> **"274. (1) मौखिक गवाही:** इन वादों के पक्षकारों ने एक या अन्य विषय पर अभिसाक्ष्य देते हुए 88 साक्षियों को प्रस्तुत किया।
> मुख्यतः, इन गवाहों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है:
> **275. (क) वादी द्वारा सूट–4 में प्रस्तुत गवाह:**
>
> **(I) तथ्यों के गवाह:**
>
> 1. पी.डब्ल्यू. 1 श्री मो. हाशिम
> 2. पी.डब्ल्यू. 2 हाजी महबूब अहमद
> 3. पी.डब्ल्यू. 3 फारूक अहमद
> 4. पी.डब्ल्यू. 4 मो. यासीन
> 5. पी.डब्ल्यू. 5 श्री अब्दुल रहमान
> 6. पी.डब्ल्यू. 6 मो. यूनुस सिद्दीकी
> 7. पी.डब्ल्यू. 7 श्री हश्मत उल्लाह अंसारी
> 8. पी.डब्ल्यू. 8 श्री अब्दुल अजीज़
> 9. पी.डब्ल्यू. 9 सईद अखलक अहमद
> 10. पी.डब्ल्यू. 10 मो. इदरीस
> 11. पी.डब्ल्यू.11 मो. बुरहानुद्दीन
> 12. पी.डब्ल्यू. 12 राम शंकर उपाध्याय
> 13. पी.डब्ल्यू. 13 सुरेश चंद्र मिश्रा
> 14. पी.डब्ल्यू. 14 जलील अहमद
> 15. पी.डब्ल्यू. 21 डॉ. एम. हाशिम क़िदवई

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

16. पी.डब्ल्यू. 23 मो. क़ासिम अंसारी
17. पी.डब्ल्यू. 25 मो. सिब्ते नक़वी

(II) विशेषज्ञ साक्षी (इतिहासकार)

18. पी.डब्ल्यू. 15 सुशील श्रीवास्तव
19. पी.डब्ल्यू. 18 प्रो. सुविरा जायसवाल
20. पी.डब्ल्यू. 20 प्रो. शिरीन मुसावी

(III) विशेषज्ञ साक्षी (पुरातत्ववेत्ता)

21. पी.डब्ल्यू. 16 प्रो. सूरज भान
22. पी.डब्ल्यू. 24 प्रो. डी. मंडल
23. पी.डब्ल्यू. 27 डॉ. शीरीन एफ. रत्नागर
24. पी.डब्ल्यू. 28 डॉ. सीता राम रॉय
25. पी.डब्ल्यू. 29 डॉ. जया मेनन
26. पी.डब्ल्यू. 30 डॉ. आर. सी. ठाकरन
27. पी.डब्ल्यू. 31 डॉ. अशोक दत्ता
28. पी.डब्ल्यू. 32 डॉ. सुप्रिया वर्मा

(IV) निजी आयुक्त

29. पी.डब्ल्यू. 17 ज़फर अली सिद्दीकी

(V) विशेषज्ञ गवाह (धार्मिक मामले)

30. पी.डब्ल्यू. 19 मौलाना अतीक अहमद
31. पी.डब्ल्यू. 22 मो. खालिद नक़ी
32. पी.डब्ल्यू. 26 कल्बे जावेद

276. (ख) वादी द्वारा वाद–5 में प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के गवाह:

1. ओ.पी.डब्ल्यू. 1 महंत परमहंस राम चंद्र दास
2. ओ.पी.डब्ल्यू. 2 श्री डी.एन. अग्रवाल
3. ओ.पी.डब्ल्यू. 4 हरिहर प्रसाद तिवारी
4. ओ.पी.डब्ल्यू. 5 राम नाथ मिश्रा उर्फ बनारसी पंडा
5. ओ.पी.डब्ल्यू. 6 हौसिला प्रसाद त्रिपाठी
6. ओ.पी.डब्ल्यू. 7 श्री राम सूरत तिवारी
7. ओ.पी.डब्ल्यू. 8 अशोक चंद्र चटर्जी
8. ओ.पी.डब्ल्यू. 12 कौशल किशोर मिश्रा
9. ओ.पी.डब्ल्यू. 13 नारद सरन

(II) विशेषज्ञ साक्षी (पुरातत्ववेत्ता)

10. ओ.पी.डब्ल्यू. 3 डॉ. एस.पी. गुप्ता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

11. ओ.पी.डब्ल्यू. 14 डॉ. राकेश तिवारी
12. ओ.पी.डब्ल्यू. 17 डॉ. आर. नागास्वामी
13. ओ.पी.डब्ल्यू. 18 श्री अरुण कुमार शर्मा
14. ओ.पी.डब्ल्यू. 19 श्री राकेश दत्ता त्रिवेदी

(III) विशेषज्ञ साक्षी (पुरालेखवेत्ता और इतिहासकार)

15. ओ.पी.डब्ल्यू. 9 डॉ. टी.पी. वर्मा

(IV) विशेषज्ञ साक्षी (पुरालेखवेत्ता)

16. ओ.पी.डब्ल्यू. 10 डॉ. वोल्यूविल व्यासरायशास्त्री रमेश
17. ओ.पी.डब्ल्यू. 15 डॉ. एम.एन. कट्टी

(V) विशेषज्ञ साक्षी (इतिहासकार)

18. ओ.पी.डब्ल्यू. 11 डॉ. सतीश चंद्र मित्तल

(VI) विशेषज्ञ गवाह (धार्मिक मामले)

19. ओ.पी.डब्ल्यू. 16 जगद्गुरु रामानंदाचार्य
    स्वामी राम भद्राचार्य

277. (ग) वादी द्वारा वाद–1 में प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के साक्षी:

1. डी.डब्ल्यू. 1/1 श्री राजेंद्र सिंह
2. डी.डब्ल्यू. 1/2 श्री कृष्ण चंद्र सिंह
3. डी.डब्ल्यू. 1/3 श्री सहदेव प्रसाद दुबे

278. (घ) वादी द्वारा वाद–3/1989 में प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के साक्षी:

1. डी.डब्ल्यू. 3/1 महंत भास्कर दास
2. डी.डब्ल्यू. 3/2 श्री राजा राम पांडे
3. डी.डब्ल्यू. 3/3 श्री सत्य नारायण त्रिपाठी
4. डी.डब्ल्यू. 3/4 महंत शिव सरन दास
5. डी.डब्ल्यू. 3/5 श्री रघुनाथ प्रसाद पांडे
6. डी.डब्ल्यू. 3/6 श्री सीता राम यादव
7. डी.डब्ल्यू. 3/7 महंत रामजी दास
8. डी.डब्ल्यू. 3/8 पं. श्याम सुंदर मिश्रा उर्फ बड़कऊ महराज
9. डी.डब्ल्यू. 3/9 श्री राम आसरे यादव
10. डी.डब्ल्यू. 3/11 श्री भानु प्रताप सिंह
11. डी.डब्ल्यू. 3/12 श्री राम अक्षयबर पांडे
12. डी.डब्ल्यू. 3/13 महंत राम सुभाग शास्त्री

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

13. डी.डब्ल्यू. 3/15 नरेंद्र बहादुर सिंह
14. डी.डब्ल्यू. 3/16 श्री शिव भीख सिंह
15. डी.डब्ल्यू. 3/17 श्री माता बदल तिवारी
16. डी.डब्ल्यू. 3/18 श्री आचार्य महंत बंसीधर दास उर्फ उड़िया बाबा
17. डी.डब्ल्यू. 3/19 श्री राम मिलन सिंह
18. डी.डब्ल्यू. 3/20 महंत राजा रामचंद्र –आचार्य

(II) अन्य:

19. डी.डब्ल्यू. 3/10 श्री पतेश्वरी दत्त पांडे
20. डी.डब्ल्यू. 3/14 जगद् गुरु रामानंदाचार्य स्वामी हर्याचार्य

279. (ङ) वाद–4 में प्रतिवादी 2/1 द्वारा प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के साक्षी:

1. डी.डब्ल्यू. 2/1–3 महंत राम विलास दास वेदान्ती

(II) अन्य:

2. डी.डब्ल्यू. 2/1–1 श्री राजेंद्र
3. डी.डब्ल्यू. 2/1–2 श्री राम सरन श्रीवास्तव

280. (च) वाद–4 में प्रतिवादी 13/1 द्वारा प्रस्तुत साक्षी:

(I) विशेषज्ञ साक्षी (इतिहासकार):

1. डी.डब्ल्यू. 13/1–3 डॉ. बिशन बहादुर

(II) अन्य:

2. डी.डब्ल्यू. 13/1–1 महंत धर्म दास
3. डी.डब्ल्यू. 13/1–2 महंत अवध बिहारी दास पाठक

281. (छ) वाद–4 में प्रतिवादी 17 द्वारा प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के साक्षी:

1. डी.डब्ल्यू. 17/1 श्री रमेश चंद्र त्रिपाठी

282. (ज) वाद–4 में प्रतिवादी 20 द्वारा प्रस्तुत साक्षी:

(I) तथ्यों के साक्षी:

1. डी.डब्ल्यू. 20/1 श्री शशि कांत रूंगटा
2. डी.डब्ल्यू. 20/4 श्री एम.एम. गुप्ता

(II) विशेषज्ञ साक्षी (धार्मिक मामले)

3. डी.डब्ल्यू. 20/2 स्वामी अवमुक्तेश्वरन और सरस्वती
4. डी.डब्ल्यू. 20/3 ब्रम्चारी राम रक्षानंद

(III) विशेषज्ञ साक्षी (पुरातत्ववेत्ता)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

5. डी.डब्ल्यू. 20/5 श्री जयंती प्रसाद श्रीवास्तव

283. (i) वाद–3 में प्रतिवादी 6/1 द्वारा प्रस्तुत साक्षी:

(I) विशेषज्ञ साक्षी (पुरातत्ववेत्ता):

1. डी.डब्ल्यू. 6/1–2 श्री मो. आबिद

(II) अन्य:

2. डी.डब्ल्यू. 6/1–1 श्री हाजी महबूब अहमद।"

सि.प्र.सं. के आदेश X नियम 2 के तहत कथन

45. मुकदमे की सुनवाई के दौरान, विचारण न्यायालय ने दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908[14] ("सी.पी.सी.") के आदेश X नियम 2 के उपबंधों के तहत पक्षकारों और उनके प्लीडर के कथन अभिलिखित किए।

दिनांक 8 अगस्त 1962 को, यह सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से कहा गया था कि:

> "वाद में प्रतिवादित संपत्ति सर्वशक्तिमान अल्लाह को समर्पित संपत्ति है और बड़े पैमाने पर मस्जिद संपूर्ण मुस्लिम समुदाय के उपयोग के लिए है।"

---

14 2. पक्षकार की मौखिक परीक्षा, अथवा पक्षकार के सहयोगी–(1) मुकदमे की पहली सुनवाई में, यह न्यायालय–

(क) वाद में विवादित विषयों को स्पष्ट करने की दृष्टि से, व्यक्तिगत रूप से या न्यायालय में उपस्थित वाद के पक्षकारों में मौखिक रूप से परीक्षा करेगा, जो वह उचित समझे; और

(ख) किसी भी व्यक्ति के मुकदमे की मौखिक रूप से जांच कर सकता है, जो कि वाद से संबंधित किसी भी सारवान प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम है, जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है अथवा न्यायालय में उपस्थित होता है।

(2) किसी पश्चातवर्ती सुनवाई में, न्यायालय किसी पक्षकार या न्यायालय में उपस्थित किसी पक्षकार या किसी व्यक्ति का मौखिक रूप से परीक्षण कर सकेगा, जो वाद से संबंधित किसी सारवान प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ हो, जिसके द्वारा ऐसा पक्षकार अथवा उसका प्लीडर साथ रखता है।

(3) न्यायालय यदि उचित समझता है तो किसी भी पक्षकार द्वारा सुझाए गए इस नियम प्रश्नों के तहत परीक्षा के अनुक्रम में रख सकेगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दिनांक 28 अगस्त 1963 को सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा यह कहा गया था कि विकल्प में भले ही प्रतिवादियों का संपत्ति में कोई अधिकार था , यह समय की कमी से समाप्त हो गया और वादी (सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड) ने प्रतिकूल कब्जे का स्वत्व प्राप्त कर लिया था।

दिनांक 11 जनवरी 1996 को श्री जफरयाब जिलानी का कथन, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की तरफ से उपस्थित वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता को इस आशय के लिए दर्ज किया गया कि:

> "यह कि मस्जिद अयोध्या में रामकोट के नाम से प्रसिद्ध मोहल्ला, कोट रामचंद्र के 1931 के खसरा के नाज़ुल प्लॉट सं. 583 पर स्थित थी।"

दिनांक 22 अप्रैल 2009 को वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री ज़फ़रयाब जिलानी के निम्नलिखित कथन को सिप्रसं के आदेश X नियम 2 के तहत अभिलिखित किया गया था:

> "इस मामले के उद्देश्य के लिए बाल्मीकि रामायण में वर्णित अथवा वर्तमान के अनुसार अयोध्या में भगवान राम के जन्म के संबंध में भगवान राम के भक्तों के विश्वास पर कोई विवाद नहीं है। हालांकि, यह विवादित और इनकार किया गया है कि बाबरी मस्जिद का स्थान भगवान राम के जन्म का स्थान था। इस बात से भी इनकार किया गया कि किसी भी समय बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई राम जन्मभूमि मंदिर था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से निर्मोही अखाड़ा का अस्तित्व भी विवादित नहीं है। हालाँकि, यह इनकार किया गया और विवादित है कि निर्मोही अखाड़ा विशेष रूप से अयोध्या में 16 वीं शताब्दी ईस्वी अथवा 1528 ईस्वी में अस्तित्व में था और यह भी इनकार किया गया कि दिनांक 22 दिसंबर, 1949 तक बाबरी मस्जिद की इमारत में कोई भी मूर्तियाँ नहीं थीं।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुस्लिम पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य अधिवक्ता की ओर से इसी तरह के कथन किये गए थे। अन्य शब्दों में, इस न्यायालय के समक्ष हिंदुओं के आस्था और विश्वास के संबंध में कोई विवाद नहीं है जैसा कि वाल्मीकि के रामायण में वर्णित है कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ है। यह विवादित है कि क्या बाबरी मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे विवादित स्थल भगवान राम का जन्म स्थान है। मुस्लिम पक्षकारों ने बाबरी मस्जिद स्थल पर राम जन्मभूमि मंदिर के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से नकार दिया है। इस पृष्ठभूमि के साथ, दस्तावेजी साक्ष्य के मुख्य पहलुओं का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है जो अभिलेख पर प्रकट किया गया है।

D. 1856–7 का परिणाम

घ.1 दीवार पर प्रतिक्रिया

46. वर्ष 1856–7 में एक सांप्रदायिक दंगा हुआ। ऐतिहासिक लेखों से संकेत मिलता है कि इस दंगे का केन्द्र बिन्दु हनुमानगढ़ी और बाबरी मस्जिद था। कुछ लेख यह बताते हैं कि घटना से पूर्व, मुस्लिमों और हिंदुओं की पूजा के उद्देश्य के लिए मस्जिद के क्षेत्र तक पहुंच थी। औपनिवेशिक सरकार की सत्ता का हस्तांतरण के साथ यह घटना काफी निकट थी। इस घटना के कारण मस्जिद के बाहर एक ग्रिल–ईंट की दीवार से बनी एक रेलिंग स्थापित हुई। इसका उद्देश्य स्थल पर शांति और विधि व्यवस्था बनाए रखने के लिए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होगा। रेलिंग ने आंतरिक अहाते (जिसमें मस्जिद का ढाँचा स्थित था) का द्विभाजन किया और बाह्य अहाते में शेष क्षेत्र शामिल था। रेलिंग का समन्वायोजन आंतरिक और बाह्य चहारदीवारी पर मालिकाना अधिकारों का निर्धारण नहीं था बल्कि दोनों समुदायों के बीच शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए किया गया था। निर्णय का यह खंड विवादित स्थल पर वर्ष 1856–7 के बाद के प्रभावी दस्तावेजी साक्ष्य, आंतरिक और बाह्य चहारदीवारी में निरंतर झड़प, विभिन्न विवादियों के बीच की कार्यवाही और आंतरिक अहाते में हिंदुओं द्वारा पूजा करने का दावा करता है। साक्ष्य निम्नलिखित प्रकार हैं:

(i) दिनांक 28 नवंबर, 1858 को शीतल दुबे जो अवध[15] के थानेदार थे, द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। रिपोर्ट में एक घटना की बात कही गई जिसके दौरान एक निहंग सिख ने मस्जिद के अंदर हवन और पूजा का आयोजन किया था, जिसने एक धार्मिक प्रतीक की स्थापना की थी। रिपोर्ट में कहा गया है:

> "आज पंजाब के निवासी श्री निहांग सिंह फकीर खालसा ने गुरु गोबिंद सिंह के हवन और पूजा का आयोजन किया और मस्जिद परिसर में श्री भगवान का प्रतीक स्थापित किया। प्रतीक की स्थापना के समय, सुरक्षा के लिए 25 सिख वहां तैनात थे। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ। आपकी उन्नति हो। प्रसन्नता।"

(ii) मस्जिद[16] के मुअज़्ज़िम सैयद मोहम्मद खतीब द्वारा एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था। आवेदन का विषय थानेदार अवध की रिपोर्ट थी। आवेदन में

---

15 प्रदर्श 19

16 प्रदर्श 20

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा गया कि "महंत निहांग सिंह फकीर" "अवध में स्थित जन्म स्थान मस्जिद" में दंगा कर रहा था. आवेदन में कहा गया है:

> "मेहराब और मिम्बर के पास, उन्होंने इस मामले के अन्दर पृथ्वी चबूतरे का निर्माण लगभग चार उंगलियों से मापते हुए और उसमें कंकड़ों(कंक्रीट) द्वारा भरकर किया है। प्रकाश व्यवस्था की गई है... और लगभग $1^{1/4}$ गज चबूतरे की ऊंचाई बढ़ाने के बाद मूर्ति की एक छवि रख दी गई और उसके पास एक गड्ढा खोदने के बाद, मुंडेर की दीवार को पक्का बनाया गया है। वहां रोशनी और पूजा के लिए अग्नि प्रज्वलित की गई है और होम वहीं हो रहा है। संपूर्ण मस्जिद में कोयले से 'राम राम' लिख दिया गया है। कृपया, न्याय करें। यह मुस्लिमों पर हिंदुओं का खुला अत्याचार और अत्यधिक मनमाना है और न कि हिंदुओं का। पहले जन्मस्थान का प्रतीक सैकड़ो वर्षों से था और हिन्दुओं ने पूजा की थी। अवध सरकार के थानेदार शिव गुलाम के षड्यंत्र के कारण बैरागियों ने रात भर में एक "बालिश्त" की ऊंचाई तक एक चबूतरा निर्मित किया जब तक व्यादेश के आदेश जारी नहीं किए गए। उस समय उपायुक्त ने थानेदार को निलंबित कर दिया और बैरागियों पर जुर्माना लगाया गया। अब चबूतरे को लगभग $1^{1/4}$ गज तक उठाया गया है। इस प्रकार स्पष्टतः ज्यादती साबित हुई है। इसलिए, यह अनुरोध किया गया है कि कोतवाल सिटी मुर्तजा खान को आदेशित किया जा सकता है कि वह खुद मौके पर जाएं और नए निर्माणों का निरीक्षण करें और उन्हें ध्वस्त (उसी प्रकार) कर दें और हिंदुओं को वहां से बाहर कर दें; प्रतीक और मूर्ति को वहां से हटा दिया जा सकता है और दीवारों पर लिखना धोया जा सकता है।"

आवेदन की अन्तर्वस्तु से संकेत मिलता है कि इस समय तक मस्जिद के अंदर एक चबूतरे का निर्माण किया गया था जिसमें एक मूर्ति रखी गई थी। आग जलाई गई थी और पूजा की व्यवस्था की गई थी। निःसंदेह रेलिंग आंतरिक अहाते अथवा मस्जिद के अहाते तक नहीं पहुंच पाती थी।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) थानेदार द्वारा 1 दिसंबर 1858 को निहंग सिंह फ़कीर को समन करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जो मस्जिद जन्म स्थान[17] के भीतर निवास कर रहा है।रिपोर्ट में कहा गया है कि उन्होंने "उक्त फकीर" के लिए सम्मन लिया था और उसकी भर्त्सना की गई थी जिसके बावजूद वह इस बात पर जोर देते रहे कि "हर स्थान निरंकर का है;"

(iv) थानेदार द्वारा समन[18] की तामील को उपदर्शित करते हुए दिनांक 6 दिसंबर, 1858 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी।

(v) मोहम्मदी शाह जो रामकोट मोहल्ले के निवासी हैं, को 9 अप्रैल, 1860 दिनांकित को एक आवेदन किया गया था जिसमें ग्राम रामकोट के संबंध में पट्टे के स्थगन की मांग की गई थी, जब तक कि यह निर्णय नहीं लिया गया था कि भूमि नजूल भूमि[19] है अथवा नहीं;

(vi) दिनांक 5 नवंबर, 1860 को उपायुक्त को "बाबरी मस्जिद अवध के भीतर"[20] बनाए गए चबूतरे को हटाने के लिए एक आवेदन किया गया था। आवेदन में शिकायत और मांगी गई राहत निम्नलिखित उद्धरण में इंगित की गई है:

> "इसके अलावा, जब मोअज़्ज़िन अज़ान करता है तो विपक्षी पक्षकार शंख (शंख/नाकूस) बजाना प्रारम्भ कर देता है। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मैं यह प्रार्थना करना चाहूँगा कि आप दोनों पक्षों के लिए न्यायाधीश हैं।

---

17 प्रदर्श 21
18 प्रदर्श 22
19 प्रदर्श 23
20 प्रदर्श 31 15

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विपरीत पक्ष को उसके गैरकानूनी कृत्य से रोका जाना चाहिए और उचित जांच के बाद नवनिर्मित चबूतरे को, जो कभी मौजूद नहीं था, कृपया ध्वस्त किया जाए औरएक बंधन को विपरीत पक्ष से इस आशय से निष्पादित किया जाए कि वह गैरकानूनी और अवैध रूप से मस्जिद की संपत्ति में हस्तक्षेप नहीं करेगा और अज़ान के समय शंख (शंख /नाकूस) नहीं बजाएगा।"

(vii) आवेदन से संकेत मिलता है कि इस समय नमाज़ मस्जिद में की जा रही थी। मोअज़्ज़िन के अज़ान के समय हिंदुओं द्वारा शंख बजाई जाती थी। एक विवादास्पद स्थिति पैदा हो रही थी। फलतः निहंग सिख को स्थल से बाहर कर दिया गया और अभिलेख को पोषित किया गया।

(viii) वर्ष 1877 अथवा उसके आसपास बाह्य अहाते का अन्य दरवाजा पूर्व दिशा में विद्यमान द्वार के अतिरिक्त प्रशासन द्वारा उत्तरी स्थल पर खोले जाने की अनुज्ञा दी गई थी। उपायुक्त ने जन्मस्थान[21] की दीवार खोले जाने के विरूद्ध शिकायत दर्ज करने से इनकार कर दिया। उपायुक्त का आदेश कहता है कि:

"हाल ही में जन्म–स्थान की दीवार में एक द्वार खोला गया है जो बाबरी मस्जिद में नहीं बल्कि सामने की दीवार में एक रेलिंग द्वारा मस्जिद से विभाजित है। यह द्वार जन्म–स्थान के आगंतुकों को अनुकूल दिनों में एक अलग मार्ग देने के लिए आवश्यक था। **यह केवल एक द्वार का खोला जाना था, इसलिए लोगों का जमघट (मूलतः भीड़) अत्यधिक था और जीवन खतरे में था। मैंने खुलने वाले स्थान का आकलन स्वयं किया और किसी भी यूरोप अधिकारी को प्रतिनियुक्ति करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। यह याचिका केवल उस दूसरे दरवाजे को खोलने अथवा बंद करने के लिए नहीं बल्कि मस्जिद के व्यक्तियों की प्रसन्नता**

---

21 प्रदर्श 15

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर निर्भर करके हिंदुओं को नाराज करने का एक प्रयास है जिसमें मुस्लिमों को कोई अभिरूचि नहीं हो सकती।"

(प्रभाव वर्धित)

यह दिनांक 13 दिसंबर 1877 को एक अपील को खारिज करते हुए आयुक्त द्वारा स्वीकार किया गया था कि:

"लोक सुरक्षा के हित में उपायुक्त द्वारा खोले गए प्रश्नगत द्वार के लिए मैं हस्तक्षेप करने से इन्कार करता हूं। अपील खारिज की जाती है।"

(ix) न्यायमूर्ति अग्रवाल ने विशेष रूप से मोअज़्ज़िन के आवेदन 30 नवंबर, 1858 दिनांकित सहित उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य से संकेत किया है।

आवेदन में *मेहराब* और मिम्बर के पास चबूतरे के निर्माण की शिकायत की गई थी, जिस पर एक मूर्ति स्थापित की गई थी। यह शिकायत उस पूजा को संदर्भित करती है जो आग जलाने और पूजा करने के द्वारा की जा रही थी। पत्र में लिखा है कि पहले जन्मस्थान का प्रतीक सैकड़ों वर्षों से अस्तित्व में था और हिन्दुओं ने पूजा की थी। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने उल्लेख किया है कि इस दस्तावेज की वास्तविकता वाद में वादी द्वारा विवादित नहीं की गई है अथवा यह उस व्यक्ति द्वारा लिखा गया है जिसकी पहचान विवादित नहीं थी। विद्वत न्यायाधीश ने अवधारित किया कि दस्तावेज़ में स्वीकारोक्ति अन्तर्विष्ट हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि हिंदुओं ने बाह्य अहाते में सीता रसोई और आन्तरिक अहाते में रामचबूतरे सहित विवादित भवन के अंदर सतत रूप से प्रार्थनाएँ की थीं। हालाँकि, कार्यवाही के दौरान वाद 4 में वादी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की तरफ से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता श्री मो. निजामुद्दीन पाशा ने प्रदर्श के अनुवाद को चुनौती दी है।

(x) मोहम्मद असगर ने 374/943 वर्ष 1882[23] के महंत रघुबर दास, निर्मोही अखाड़ा के विरूद्ध वाद गठित की, जिसमें बाबरी मस्जिद के दरवाजे के पास फसली वर्ष 1288 में राम नवमी के अवसर पर कार्तिक मेला आयोजित करने हेतु चबूतरे और तखत के उपयोग के लिए किराए का दावा किया गया। उप–न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा दिनांक 18 जून 1883 को वाद खारिज कर दिया गया।

(xi) वर्ष 1856–7 में रेलिंग का निर्माण आंतरिक और बाह्य अहाते के बीच अलगाव का एक पैमाने के चलते बाह्य अहाते में रेलिंग के निकट हिंदुओं द्वारा एक चबूतरे का निर्माण हुआ। रामचबूतरा नामक मंच हिन्दुओं के लिए पूजा स्थल बन गया।

(xii) दिनांक 29 जनवरी, 1885 को स्वयं को "अयोध्या में जन्मस्थान का महंत" वर्णित करते हुए महंत रघुबर दास द्वारा मुंसिफ, फैजाबाद के न्यायालय में एक वाद चलाया गया। एकमात्र प्रतिवादी जो परिषद[24] में भारत के राज्य सचिव थे। मुकदमे में जो राहत मांगी गई थी वह एक व्यादेश थी जो प्रतिवादी को 17x21 फीट के मानने वाले चबूतरे के ऊपर मंदिर के निर्माण में बाधा डालने से रोकना था। वादपत्र में कहा गया कि अयोध्या में जन्मस्थान धार्मिक महत्व का स्थान है और वादी उस स्थान का महंत है। *चरण पादुका* को चबूतरा पर चिपका दिया गया और इसके बगल में बने एक छोटे से मंदिर की पूजा की गई। वादी ने कहा कि अप्रैल 1883 में, उपायुक्त,

---

23 प्रदर्श 24

24 मुकदमे की प्रमाणित प्रतिलिपि वाद 1 में प्रदर्श ए-22 है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

फैजाबाद ने मुस्लिमों की आपत्ति पर कार्य किया, एक मंदिर के निर्माण में बाधा डाली। एक बाउंड्री रेलिंग के भीतर "मस्जिद" के रूप में वर्णित तीन गुंबददार संरचना को दिखाते हुए एक मानचित्र संलग्न किया गया था। वादपत्र में संलग्न मानचित्र में उत्तर और पूर्वी दिशा पर बाह्य अहाते में दो प्रवेश द्वारों का संकेत दिया गया है। मस्जिद के मुतवल्ली के रूप में मोहम्मद असगर को वाद के दूसरे प्रतिवादी के रूप में प्रत्यारोपित किया गया था। उन्होंने दिनांक 22 दिसंबर, 1885 को एक लिखित कथन दायर किया जिसमें कहा गया था कि बाबर ने एक मस्जिद का निर्माण करके वक्फ बनाया और दरवाजे के ऊपर "अल्लाह" शब्द उत्कीर्णित करवाया था। बाबर ने भी इसके रखरखाव के लिए अनुदान घोषित किया था। मोहम्मद असगर ने तर्क प्रस्तुत किया कि मस्जिद के परिसर में भूमि के उपयोग के लिए कोई अनुमति प्रदान नहीं गई थी। यह प्रकथित था कि मस्जिद के निर्माण की तारीख से वर्ष 1856 तक कोई चबूतरा नहीं था और इसका निर्माण केवल 1857 में किया गया था। मंदिर के निर्माण के लिए प्रार्थना का विरोध किया गया था; और
उपरोक्त वाद को उप–न्यायाधीश ने दिनांक 24 दिसंबर 1885 को खारिज कर दिया था। विचारण न्यायालय ने अवधारित किया कि:

(क) चबूतरा वादी के कब्जे में था, जिसे दूसरे प्रतिवादी द्वारा विवादित नहीं किया गया था;
(ख) उस क्षेत्र को एक दीवार की रेलिंग द्वारा विभाजित किया गया था, जिसमें प्रमुख ढांचे को बाह्य अहाते से अलग किया गया था, जहां हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच किसी भी विवाद को रोकने के लिए चबूतरा मौजूद था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ग) 1885 में हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच हुए दंगों के कारण रेलिंग का निर्माण आवश्यक हो गया था;

(घ) विभाजन इस प्रकार किया गया कि मुस्लिमों के द्वारा अंदर और हिन्दुओं के द्वारा बाहर प्रार्थना की जा सके;

(ङ) चूंकि मस्जिद और मंदिर जाने का क्षेत्र वही था परंतु वह स्थान जहां हिंदुओं ने पूजा की थी वह उनके कब्जे में थी और उसके स्वामित्व के विषय में कोई विवाद नहीं हो सकता था; और

(च) यद्यपि वह व्यक्ति जो मालिक है और जिसका कब्जा था वह निर्माण करने का हकदार है, किसी मस्जिद से इतने निकट मंदिर बनाने की अनुज्ञा देने से हिन्दू और मुस्लिमों के बीच गंभीर विवाद हो सकता है और विधि व्यवस्था की समस्या पैदा हो सकती है। इस आधार पर वाद खारिज कर दिया गया।

विचारण न्यायालय की डिक्री के विरूद्ध, महंत रघुबर दास द्वारा एक अपील दायर की गई थी, जबकि मोहम्मद असगर द्वारा आपत्तियां दायर की गई थीं। जनपद न्यायाधीश के निर्णय 18/26 मार्च 1886 दिनांकित द्वारा वादी की अपील को खारिज कर दिया गया। जनपद न्यायाधीश ने यह अवधारित किया कि यह "अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण" था कि मस्जिद का निर्माण उस भूमि पर किया जाना चाहिए जो विशेषतः हिंदुओं द्वारा पवित्र अभिनिर्धारित की गई थी किंतु निर्माण 358 वर्ष पूर्व किया गया था, इस प्रक्रिया को बदलने के लिए बहुत देर हो चुकी थी। वाद को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि ऐसी कोई क्षति नहीं हुई थी जो वादी को कार्रवाई का अधिकार दे

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सके। मोहम्मद असगर की आपत्तियों पर, जनपद न्यायाधीश ने यह अवधारित किया कि विचारण न्यायालय का निष्कर्ष यह था कि वादी विवादित भूमि का अवावश्यक स्वामी था और वह निष्कासित होना चाहिए।

दूसरी अपील दिनांक 1 नवंबर 1886 को अवध के न्यायिक आयुक्त द्वारा इस आधार पर खारिज कर दी गई थी कि (i) यह अभिलेख पर दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि वादी प्रश्नगत भूमि का स्वामी था ; और (ii) पक्षकारों को *यथास्थिति* अशांत करने की अनुमति देना सर्वथा अनुचित था, विशेषतः जब मस्जिद लगभग 350 वर्षों से अस्तित्व में थी। न्यायिक आयुक्त ने अवधारित किया कि:

> "बात बस इतनी सी है कि अयोध्या के हिंदू श्री राम चंद्र की जन्मस्थली कहे जाने वाले अयोध्या में कथित पवित्र स्थान पर एक नया मंदिर अथवा संगमरमर का मण्डपम् बनाना चाहते हैं। अब यह स्थान सम्राट बाबर की धर्मान्धता और निरंकुशता के कारण लगभग 350 वर्ष पूर्व निर्मित एक मस्जिद के चारों ओर के मैदान के परिसर के भीतर स्थित है, जिसने हिंदुओं के पौराणिक कथा के अनुसार इस पवित्र स्थान को मस्जिद के स्थल के रूप में चुना था।
>
> ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं को मस्जिद से सटे अहाते के भीतर कुछ स्थानों तक पहुंचने के बहुत सीमित अधिकार प्राप्त हैं और उनके पास कई वर्षों से दुराग्रहपूर्वक उन अधिकारों को बढ़ाने और संलग्नक में वर्णित दो स्थानों पर भवनों को स्थापित करने का प्रयास किया जा रह है:
>
> (क) सीता की रसोई
> (ख) राम चंद्र की जन्म भूमि।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> कार्यकारी प्राधिकारियों ने दुराग्रहपूर्वक इन अतिक्रमणों से इनकार किया है और 'यथास्थिति' के किसी भी परिवर्तन को पूर्णतः मना किया है।
>
> मुझे लगता है कि यह उनकी ओर से बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण और उचित प्रक्रिया है और मेरा यह मत है कि दीवानी न्यायालयों ने वादी के दावे को उचित ढंग से खारिज कर दिया है।"

यह मुद्दा कि क्या वाद में निष्कर्ष *पूर्वन्याय* के रूप में कार्य करेंगे, निर्णय के पश्चातवर्ती अनुभाग में निपटा जाएगा।

वर्ष 1855–56 में जो टकराव हुआ उसका नतीजा ईंट की दीवार और मस्जिद के बाहर रेलिंग का होना था। अहाते के इस विभाजन को आन्तरिक भाग जो रेलिंग के भीतर और बाह्य भाग उसके परे विभाजित किया गया है। बाह्य भाग में स्थित स्थानों की हिन्दुओं द्वारा पूजा की जाती थी, उनमें से रामचबूतरा और सीता रसोई थे। दो प्रवेश द्वार (उत्तर और पूर्व में) बाह्य अहाते तक पहुँच प्रदान करते हैं। मस्जिद में प्रवेश बाह्य अहाते तक अभिगम बिंदुओं के माध्यम से था।

D.2 1934–1949 के बीच की अवधि

47. वर्ष 1934 में एक और सांप्रदायिक घटना हुई जिसके दौरान मस्जिद को क्षति पहुँची था जिसे बाद में पुनर्स्थापित कर दिया गया। दस्तावेजी साक्ष्य जो अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है जो यह दर्शाता है कि:

(i) औपनिवेशिक प्रशासन ने मस्जिद के क्षतिग्रस्त ढांचे की मरम्मत और नवीनीकरण के कार्य को मंजूरी दी;

(ii) मस्जिद को हुई क्षति के लिए हिन्दुओं पर जुर्माना अधिरोपित किया गया था;

(iii) पुनर्स्थापन का कार्य ऐसे मुस्लिम ठेकेदार को सौंपा गया था जिसके पास अवैतनिक बिलों के भुगतान पर और किए गए कार्य के सत्यापन के लिए पत्राचार का आदान–प्रदान हुआ था;

(iv) यह मुतवल्ली के साथ बकाए वेतन के भुगतान पर मस्जिद के पेश इमाम द्वारा दावा किया गया था; और

(v) मरम्मत के कार्य पर प्रशासन द्वारा नमाज प्रारम्भ करने की व्यवस्था की अनुमति दी गई।

(वाद 4 में, डॉ. राजीव धवन और श्री जफरयाब जिलानी ने मस्जिद की स्थिति और नमाज के कार्य के संकेत के रूप में इस दस्तावेजी साक्ष्य पर अवलम्ब लिया है)।

48. मार्च और दिसंबर 1949 के बीच कई घटनाएं घटीं। दिनांक 19 मार्च 1949 को निर्मोही अखाड़े के पंचों द्वारा कथित रूप से अखाड़े के रीति–रिवाजों को लिखने में कमी लाने के लिए कार्य को निष्पादित किया गया था। इस दस्तावेज[25] में "जन्मभूमि का मंदिर" के संबंध में निम्नलिखित उपबंध शामिल थे, जिनमें से प्रबंधन को अखाड़े में निहित करने का दावा किया गया था:

---

25 वाद 3 में प्रदर्श 1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"अयोध्या शहर के राम घाट मोहल्ले में जन्म भूमि मंदिर स्थित है, जो इस अखाड़े के बैठक के अंतर्गत आता है और इसका संपूर्ण प्रबंधन इस अखाड़े पर विश्वास करता है। यह महंत और प्रबंधक के रूप में अखाड़े के महंत के नाम पर है। यह अयोध्या का मूर्ति की पूजा का सर्वाधिक प्रतिष्ठित और भव्य मंदिर है। भगवान राम का जन्मस्थान होने के कारण यह अयोध्या का मुख्य मंदिर है। यहां भगवान राम ललाजी और अन्य देवता भी स्थापित हैं।"

49. वाद 4 में वादी की तरफ से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने अपने तर्कों के दौरान यह आग्रह किया कि उत्तर प्रदेश राज्य के अधिकारियों के बीच संचार का आदान–प्रदान प्रदर्शित करता है कि उनके पास मस्जिद के अन्दर योजनाबद्ध तरीके से मूर्तियों को स्थापित करने के बारे में पूर्व सूचना थी जिसके कारण मस्जिद का अपवित्रीकरण हुआ। इसके बावजूद, यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रशासन ने इस तरह की घटना को होने से रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। इसलिए इस पृष्ठभूमि में उन घटनाओं का उल्लेख आवश्यक है जिनके कारण दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 को घटना हुई:

(i) दिनांक 12 नवंबर, 1949 को उस क्षेत्र में पुलिस दल तैनात किया गया था;

(ii) फैजाबाद के पुलिस अधीक्षक कृपाल सिंह ने दिनांक 29 नवंबर, 1949 को फैजाबाद के उपायुक्त के. के. नायर और जिलाधिकारी को एक पत्र द्वारा संबोधित करते हुए कहा कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"मैं आज शाम अयोध्या में बाबरी मस्जिद और जन्मस्थान के परिसर में गया। मैंने देखा कि **मस्जिद के चारों ओर अनेक "हवन कुंड" बनाए गए हैं**। उनमें से कुछ का निर्माण वहां पहले से मौजूद पुराने निर्माणों पर किया गया है।"

...

मुझे जन्म स्थान के पास ईंट और चूना भी पड़ा मिला। **उनके पास एक बहुत बड़ा हवन कुंड बनाने का प्रस्ताव है जहां बहुत बड़े पैमाने पर पूर्णमासी को कीर्तन और यज्ञ आयोजित होगा। बाहर से कई हजार हिंदू बैरागी और साधू भी इसमें भाग लेंगे।** उनकी यह भी इच्छा है कि वे पूर्णमासी तक वर्तमान कीर्तन जारी रखें। **यह योजना मस्जिद को इस प्रकार घेरती हुई प्रतीत होती है कि मुस्लिमों के लिए प्रवेश बहुत मुश्किल होगा और अंततः उन्हें मस्जिद छोड़ने के लिए मजबूर किया जा सकता है। ऐसी अफवाह है कि पूर्णमासी पर हिंदुओं द्वारा देवता स्थापित करने के उद्देश्य से मस्जिद में प्रवेश करने का प्रयत्न किया जाएगा।**

(प्रभाव वर्धित)

(iii) दिनांक 10 दिसंबर, 1949 को वक्फ निरीक्षक मोहम्मद इब्राहिम ने मस्जिद के सचिव को एक रिपोर्ट सौंपी जिसमें कहा गया था कि हिंदुओं और सिखों के भय के कारण मुस्लिमों को मस्जिद में ईसा की नमाज़ (रात में नमाज) अदा करने से रोका जा रहा है और मस्जिद के खतरे की आशंका यह थी कि:

"फैजाबाद शहर में जांच के बाद यह पता चला कि हिन्दुओं और सिखों के भय के कारण कोई भी मस्जिद में ईसा की नमाज़ अदा नहीं करता। यदि संयोग से मस्जिद आने वाले किसी भी व्यक्ति को हिंदुओं द्वारा धमकाया और परेशान किया जाता है तो .... (उसी प्रकार).... कई नम्बरदार हैं ... (उसी प्रकार)..... यदि कोई मुस्लिम मस्जिद में है और उसे परेशान और दुर्व्यवहार किया जाता है। मैंने मौके पर पूछताछ की जो बताती है कि उक्त आरोप सही हैं। स्थानीय लोगों ने कहा कि हिंदुओं के कारण मस्जिद बहुत खतरे में है....(उसी प्रकार).... इससे पहले कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वे मस्जिद की दीवार को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करें, यह उचित लगता है कि उपायुक्त फैजाबाद को तदनुसार सूचित किया जा सकता है, ताकि कोई भी मुस्लिम जो मस्जिद में जा रहा हो, परेशान किया जा सकता है। मस्जिद एक शाही स्मारक है और इसे सुरक्षित रखा जाना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

(iv) दिनांक 16 दिसंबर, 1949 को के.क. नैय्यर ने उत्तर प्रदेश सरकार के गृह सचिव गोविंद नारायण को एक पत्र भेजा जिसमें कहा गया था कि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित स्थल पर एक "भव्य मंदिर" था जिसे बाबर ने मस्जिद के निर्माण के लिए ध्वस्त कर दिया था जिसे बाबरी मस्जिद कहते हैं।

पत्र में कहा गया कि मस्जिद के निर्माण में मंदिर की निर्माण सामग्री का उपयोग किया गया था और हिंदुओं को दो दीवारों के कोने पर स्थल के कब्जे को बहाल होने से पूर्व एक लंबा समय बीत चुका था। पत्र में हालिया घटनाओं का संदर्भ अभिलिखित किया और यह कहा गया कि:

"इस वर्ष संभवतः अक्टूबर अथवा नवंबर में कुछ कब्र–टीले आंशिक रूप से बैरागियों द्वारा नष्ट कर दिए गए थे जो इस पवित्र स्थान के साथ ही मुस्लिम संस्थाओं में बहुत नाराजगी थी। दिनांक 12.11.49 को इस स्थान पर एक पुलिस दल तैनात किया गया था। दल अभी भी अधिकाधिक संख्या में है।

कब्र–टीलों को नष्ट करने के अन्य प्रयास हुए थे। चार व्यक्तियों को पकड़ा गया और मामले उनके विरूद्ध कार्यवाही की जा रही है परंतु काफी समय से इस प्रकार का कोई प्रयास नहीं किया गया है। फैजाबाद के अधिकांश मुस्लिम इन घटनाओं को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करते आ रहे हैं और बड़े पैमाने पर इस रिपोर्ट को व्यापकता प्रदान कर रहे हैं कि कब्रों को व्यवस्थित रूप से ध्वस्त किया जा रहा है। यह एक पूर्णतः झूठी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> अफवाह है जो इस क्षेत्र के कब्जे अथवा किसी उच्चरित्र के अधिकारों से हिंदुओं को सुरक्षित रखने की इच्छा से स्पष्टतया प्रेरित है। इस हिसाब से मुस्लिमों की व्यग्रता हालिया नवमी रामायण के पाठ से बढ़ गई थी, जिसमें हजारों हिन्दुओं ने नौ दिन तक रामायण का भक्तिपरक पाठ किया था। इस अवधि में उन मुस्लिमों का शुक्रवार भी समाहित था जो कि मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिए जाना चाहते थे उन्हें पुलिस द्वारा सुरक्षित रूप से अनुरक्षित किया गया।
>
> जहां तक मैं इस स्थिति को समझने में सक्षम रहा हूं कि अयोध्या के मुस्लिम इस मुद्दे पर एक अनीसुर रहमान के अपवाद से दूर हैं, जो अक्सर उन्मादी संदेश प्रेषित करता है जिससे यह प्रभाव होता है कि बाबरी मस्जिद और कब्रें विध्वंस होने के खतरे में हैं।"

नैय्यर को पुलिस अधीक्षक के पत्र के बावजूद मस्जिद के लिए खतरे की कोई आशंका नहीं थी, जिसमें उन योजनाओं का विशिष्ट संदर्भ था जो मस्जिद में प्रवेश करने और इसके उपक्षेत्रों के भीतर मूर्तियों को स्थापित करने के लिए सक्रिय थे।

(v) दिनांक 22–23 दिसम्बर, 1949 की रात्रि को हिन्दू मूर्तियों को संदिग्ध रूप से बाबरी मस्जिद के भीतर 50–60 व्यक्तियों के समूह द्वारा स्थापित किया गया था। विवादित स्थल के आंतरिक अहाते के अंदर मूर्तियों की स्थापना की शिकायत करते हुए एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 295, 448 के तहत अपराधों की शिकायत दिनांक 23 दिसंबर 1949 को रात के 7:00 pm बजे उप–निरीक्षक राम देव दुबे द्वारा दर्ज की गई थी। प्राथमिकी में अभिलिखित किया गया कि कांस्टेबल सं. 7 माता प्रसाद से प्राप्त जानकारी पर, परिवादी सुबह 7:00 am बजे विवादित स्थल पर पहुंचा था और यह पता चला था कि 50 या 60 व्यक्तियों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की भीड़ ने मस्जिद परिसर में लगे हुए ताले तोड़ दिए थे और दीवारों पर हिंदू देवताओं के नामों को लिखने के अतिरिक्त मूर्तियों को अंदर स्थापित किया था। इसके बाद 5000 व्यक्ति कीर्तन करने के लिए एकत्र हुए थे। यह अभिकथित किया गया था कि अभय राम दास, राम शुकुल दास, शिव दर्शन दास और लगभग 50–60 व्यक्तियों ने मस्जिद में प्रवेश करके और मूर्तियों को स्थापित करते हुए अतिचार का कार्य किया था, जिससे मस्जिद को अपवित्र किया जा सके।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान के निर्णय में जिलाधिकारी की रिपोर्ट/डायरी का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि दिनांक 23 दिसंबर 1949 को दो अथवा तीन व्यक्तियों को भोग चढ़ाने की अनुमति देकर भीड़ को नियंत्रित किया गया था।

(v) के. के. नैय्यर ने जीवन खोने के भय से राज्य सरकार के मूर्तियों को हटाने के निर्देश का विरोध किया। दिनांक 25 दिसंबर, 1949 को के. क. नैय्यर ने अभिलिखित किया कि पूजा और भोग सामान्य रूप में किया गया था। मूर्तियों को हटाने के निर्देशों के बावजूद, के. के. नैय्यर ने यह कहते हुए मना कर दिया कि "यदि सरकार अभी भी इस बात पर जोर देती है कि इन तथ्यों के आलोक में हटाया जाना चाहिए तो मैं स्वयं को किसी अन्य अधिकारी द्वारा प्रतिस्थापित करने का अनुरोध करूंगा।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) के. के. नैय्यर ने दिनांक 26 और 27 दिसंबर, 1949 को उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव भगवान सहाय को दो पत्रों को संबोधित करते हुए कहा कि

दिनांक 23 दिसंबर, 1949 को हुई यह घटना घटनाओं के उपरोक्त कथन के आधार पर "अनुमोचित और अपरिवर्तनीय" थी। उपरोक्त दस्तावेजी तथ्य के आधार पर वरिष्ठ विद्वत अधिवक्ता डॉ. धवन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि:

(a) विवादित स्थल पर मस्जिद थी;

(b) राज्य प्राधिकारियों ने उस ढांचे को मस्जिद के रूप में अभिस्वीकृत किया और उसे लगातार अपने आंतरिक संसूचनाओं में मस्जिद के रूप में संदर्भित किया;

(c) दिनांक 10 दिसंबर, 1949 को वक्फ आयुक्त की रिपोर्ट से निम्नलिखित बिन्दु सामने आते हैं:

> "(a) हिंदुओं का मंदिर अहाते के बाहर था।
> नमाज़ बाबरी मस्जिद में पढ़ी जा रही थी क्योंकि मुस्लिम उपासकों को हिंदू समुदाय के सदस्यों द्वारा परेशान किया जा रहा था।"

(d) राज्य प्राधिकारियों ने हिन्दू समुदाय के सदस्यों द्वारा मस्जिद और इबादत करने वाले व्यक्तियों को दी गई धमकी को अभिस्वीकृत किया;

(e) राज्य प्राधिकारी मस्जिद और उपासकों को संभावित अपमान/आक्रमण का पूर्वाभास तो दे सकते हैं किन्तु ऐसी घटना को टालने के लिए कोई कदम नहीं उठा सकते।

(f) राज्य के अधिकारियों के आंतरिक संचार से यह स्पष्ट है कि मस्जिद को अपवित्र करने की योजना बनाई गई थी क्योंकि पुलिस अधीक्षक ने पुलिस उपायुक्त को सूचित किया था।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(g) मूर्ति को स्थापित करने के आशय से हिन्दुओं द्वारा मस्जिद में प्रवेश कराने की योजना थी;

(h) दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 का अपवित्रीकरण एक नियोजित हमला था, जिसका बीज दिनांक 19 मार्च, 1949 को "कस्टम डीड" के साथ बोया गया था, जब राम जन्मभूमि मंदिर का उल्लेख प्रथम बार किया गया था; और

(i) इसके पश्चात् राज्य के अधिकारियों ने राज्य सरकार के आदेशों के बावजूद गुप्त रूप से स्थापित मूर्तियों को हटाने से इनकार कर दिया और मस्जिद को अपवित्र करने वाले अवांछितों के साथ उनके गठबंधन की पुष्टि की।

E. धारा 145 के तहत कार्यवाहियाँ

50. दिनांक 29 दिसंबर 1949 को, फैजाबाद सह अयोध्या के अपर सिटी मजिस्ट्रेट द्वारा दं.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के तहत प्रारंभिक आदेश जारी किया गया था।

इसके साथ ही स्थिति को आपात स्थिति के रूप में मानते हुए, कुर्की का आदेश जारी किया गया था और विवादित स्थल को श्री प्रिया दत्त राम को सौंपा गया था जो नगर बोर्ड के अध्यक्ष थे। दिनांक 29 दिसंबर 1949 का आदेश नीचे दिया गया है:

> "चूँकि मैं मार्कण्डेय सिंह मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी और अपर सिटी मजिस्ट्रेट, फैजाबाद–सह–अयोध्या के पुलिस स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं और अन्य विश्वसनीय स्रोतों से पूर्णतः संतुष्ट हूं कि अयोध्या में हिंदू और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुस्लिमों के बीच स्वामित्व और पूजा के अधिकारों के प्रश्न पर और मेरे अधिकार–क्षेत्र की स्थानीय सीमा के अंतर्गत मोहल्ला राम कोट में स्थित भवन में बाबरी मस्जिद और जन्मभूमि मंदिर में विभिन्न दावे किए गए, जिससे शांति भंग होने की संभावना है।
मैं इसके द्वारा नीचे वर्णित पक्षकारों को निर्देशित करता हूं कि:

(1) ऐसे मुस्लिम जो अयोध्या के *सद्भावी* निवासी हैं अथवा जो विवादित सम्पत्ति में स्वामित्व अथवा पूजा के अधिकार का दावा करते हैं;

(2) ऐसे हिन्दू जो अयोध्या के *सद्भावी* निवासी हैं अथवा जो विवादित संपत्ति में स्वामित्व अथवा पूजा के अधिकार का दावा करते हैं;

दिनांक 17 जनवरी को प्रातः 11 बजे अयोध्या पुलिस थाने में व्यक्तिगत रूप से या प्लीडर द्वारा मेरे सामने हाजिर हों और विवादित विषय के वास्तविक कब्जे के तथ्य के संबंध में अपने–अपने दावों के लिखित बयान दें।

और निर्णय लंबित होने के दौरान मामला आपातकालीन में से एक होने के नाते मैं उक्त भवनों को कुर्क करता हूं।

कुर्की की कार्रवाई तुरंत स्टेशन अधिकारी, अयोध्या पुलिस स्टेशन द्वारा की जाएगी, जो फैजाबाद–सह–अयोध्या के नगरपालिका समिति के अध्यक्ष, श्री प्रिया दत्त राम को कुर्क संपत्तियों का प्रभार दिया जाएगा, जो उसके बाद प्रापत के रूप में होंगे और विवादित संपत्ति की संरक्षण के लिए इसकी व्यवस्था करेंगे।

प्रापत कुर्की के दौरान एक योजना को विवादित संपत्ति के प्रबंधन हेतु अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करेगा और प्रबंधन की लागत को पक्षकारों द्वारा इस विवाद में समय–समय पर तय किए जा सकते हैं।
यह आदेश, प्रकाशन के लिए विवादित पक्षकारों के वास्तविक नाम और पते के संबंध में जानकारी के अभाव में होगा:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1. द इंगलिश दैनिक, "द लीडर" इलाहाबाद,
2. द उर्दू साप्ताहिक "अख्तर" फ़ैज़ाबाद
3. हिन्दी साप्ताहिक "विरक्त" अयोध्या.

इस आदेश की प्रतियां विवादित भवनों की दीवारों और अयोध्या पुलिस थाने के सूचना पट्ट में भी चिपका दी जाएंगी।

उन्तीस दिसंबर, 1949 को अयोध्या में मेरे हाथ में इस पर न्यायालय की मुहर दी गई।

51. प्रापत ने दिनांक 5 जनवरी 1950 को कार्यभार संभाला और संपत्तियों की एक सूची बनाई जो कुर्क की गई थी। मस्जिद में आखिरी नमाज़ दिनांक 16 दिसंबर 1949 को अदा की गई। प्रापत ने निम्नलिखित लेखों की एक सूची बनाई:

"1. ठाकुर जी की मूर्तियाँ।
1–(क) श्री राम लला जी की दो मूर्तियाँ, एक बड़ी और एक दूसरी छोटी।
(ख) श्री शालिग्राम जी की छह मूर्तियाँ।
2 . दो फीट ऊंची चांदी की राजगद्दी।
3. हनुमान जी की एक मूर्ति।
4 (क) जर्मन चांदी का एक ग्लास।
(ख) चांदी का एक छोटा ग्लास।
(ग) चाँदी का एक बड़ा ग्लास।
5. एक गरूड़ घंटी।
6. एक धूपदान।
7. एक आरती का पात्र।
8. एक लैंप स्टैंड।
9. "हुस्रा" और एक चंदन।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

10. राम जानकी की दो बड़ी तस्वीरें।
11. चार फूलदान।
12. बद्रीनाथ जी की एक (छोटी) तस्वीर।
13. रामचंद्र जी की एक छोटी तस्वीर।
14. ईश्वर के आभूषण
रामलला के दो छत्र और हनुमान जी का एक छत्र और आठ देवता।
15. भवन–अहाते और चहारदीवारी के साथ तीन गुंबदाकार भवन, जो निम्नानुसार परिबद्ध है।

उत्तर–परिसर में छठी अहाता और निर्मोही अखाड़ा सम्मिलित है।
दक्षिण–खाली भूमि और "परिक्रमा" (परिक्रमा पथ)
पूर्व–निर्मोही अखाड़ा, और मंदिर परिसर के अहाते के कब्जे में राम मंदिर के अन्तर्गत 'चबूतरा'।
पश्चिम– परिक्रमा (परिक्रमा पथ)

16. पीतल का छोटा ग्लास
17. चंदन के लिए "फूल" (मिश्रधातु) की एक कटोरी।
18. "पंच पास" और एक पीतल की प्लेट।
19. पीतल का एक छोटा प्लेट।
20. लकड़ी का एक छोटा बोर्ड।"

फैजाबाद में विचारण न्यायालय के समक्ष सिविल वाद की कार्यवाही के दौरान, प्लीडर शिव शंकर लाल को इलाके और भवन का नक्शा तैयार करने के लिए आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था।

आयुक्त ने दिनांक 25 मई 1950 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें दो नक्शों को शामिल किया गया, जिन्हें नक्शा सं. 1 और 2 के रूप में माना गया था, जिन्हें निर्णय के पूर्व भाग में ऊपर उल्लिखित किया गया है।

52. आयुक्त की रिपोर्ट में प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) विवादित स्थल पर दो प्रवेश द्वारों की स्थिति, जिन्हें हनुमत द्वार और सिंह द्वार के रूप में वर्णित किया गया है;

(ii) हनुमत द्वार के प्रवेश बिंदु पर दो काले कसौटी पाषाण स्तंभों की उपस्थिति जिसमें जय और विजय की उत्कीर्णित छवियां हैं;

(iii) सिंह द्वार के ऊपर दोनों किनारों पर शेरों को जकड़े हुए 'गरूण' के चित्र;

(iv) बाहरी दीवार पर शूकर ('वाराह') की उत्कीर्णित पाषाण प्रतिमा, जो हनुमत द्वार के दक्षिण में है;

(v) एक छोटे से मंदिर से युक्त रामचबूतरे की 17 x 21 फीट मापन के साथ भगवान राम और जानकी की मूर्तियाँ;

(vi) दक्षिण–पूर्वी कोने पर, पंचमुखी महादेव, पार्वती, गणेश और नंदी की मूर्तियों से युक्त नीम –पीपल वृक्ष से जुड़ा एक अर्ध–वृत्ताकार चबूतरा;

(vii) भगवान राम, लक्ष्मण, भारत और शत्रुघ्न के पद चिन्हों सहित सीता रसोई नामक चबूतरा;

(viii) आंतरिक और बाह्य अहाते को अलग करने वाली रेलिंग।

(ix) मस्जिद के तीन मेहराबों को सहारा देने वाले बारह काले कसौटी पाषाण स्तंभों की उपस्थिति जिसमें निम्नलिखित नक्काशी की गई हैं:

(a) कमल के फूल;

(b) तांडव नृत्य;

(c) भगवान हनुमान; और

(d) भगवान कृष्ण।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(अन्य स्तंभों पर उत्कीर्णन मिटा दिये गए थे);

(x) गुंबदाकार ढांचे के केन्द्रीय भाग में दो पद चिन्ह के साथ चबूतरे पर स्थित शिशु भगवान राम की मूर्ति स्थापित की गई है;

(xi) विवादित ढाँचे के चारों ओर एक *परिक्रमा*; और

(xii) साधुओं/बैरागियों की कुटियों सहित विवादित स्थल के आसपास के ढाँचे का अस्तित्व और दीवार को "सीता–कूप" कहा गया है।

च. विनिश्चय के बिंदु

इन अपीलों में विनिश्चय के लिए निम्नलिखित बिंदु उत्पन्न होते हैं:

(i) क्या वाद 3, 4 और 5 अथवा उनमें से कोई परिसीमा द्वारा वर्जित है

(ii) क्या वाद 81/280 वर्ष 1885 में विनिर्णीत वादों 1, 3 और 5 में *पूर्व न्याय* के रूप में लागू होगा;

(iii) (a) क्या हिन्दू मंदिर विवादित स्थल पर विद्यमान था

(b) क्या मंदिर को बाबर द्वारा ध्वस्त किया गया था अथवा वर्ष 1528 में बाबरी मस्जिद के निर्माण के लिए उसके इशारे पर उसके सेनापति मीर बाकी ने किया था;

(c) क्या मस्जिद का निर्माण मंदिर के अवशेषों और उसके उपयोगी सामग्री द्वारा किया गया था; और

(d) उपरोक्त (a) (b) और (c) पर विनिश्चय से उद्भूत विधिक परिणाम यदि हैं, तो क्या हैं;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) क्या विवादित संपत्ति प्राचीन काल से भगवान राम का जन्मस्थान हिन्दुओं की आस्था और विश्वास के अनुसार है

(v) (a) क्या वाद 5 में प्रथम और द्वितीय वादी न्यायिक व्यक्ति हैं

(b) क्या तृतीय वादी वाद मित्र के रूप में प्रथम और द्वितीय वादी का प्रतिनिधित्व करने का हकदार था;

(vi) (a) क्या निर्मोही अखाड़ा ने विवादित परिसर में भगवान राम के सेवायत होने का अपना दावा स्थापित किया है;

(b) यदि (a) सकारात्मक है तो क्या वाद 5 की स्थिरता के लिए निर्मोही अखाड़ा की आपत्ति वैध है;

(vii) जैसा कि वाद 4 में वादपत्र में अभिवचन किया गया था, क्या दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्य रात्रि के दौरान हिंदू मूर्तियों को बाबरी मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के अन्तर्गत प्रतिष्ठापित किया गया था;

(viii) (a) क्या न्यायालय को यह अवधारित करने का अधिकार है कि क्या दिनांक 6 दिसंबर, 1992 से पूर्व विवादित स्थल पर विद्यमान तीन गुम्बदाकार ढाँचा इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार मस्जिद थी;

(b) यदि (a) का उत्तर सकारात्मक है तो क्या विवादित स्थल पर तीन गुंबदाकार ढाँचा इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार निर्मित की गई थी;

(ix) (a) क्या इसके निर्माण के समय वक्फ के रूप में तीन गुंबदाकार ढाँचे का लोकार्पण हुआ था;

(b) उपर्युक्त (a) के विकल्प के रूप में, वाद 4 में वादियों द्वारा किया गया दावा कि क्या सार्वजनिक उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ है;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(x) क्या वाद 4 में वादियों ने अपने प्रतिकूल कब्जे के वैकल्पिक मामले में प्रतिस्थापित किया है;

(xi) क्या मुस्लिमों और हिंदुओं ने उपासना का दावा स्थापित किया है और विवादित संपत्ति पर उनका हक है;

(xii) क्या वाद 4 में वादियों ने विवादित संपत्ति के लिए अपना हक स्थापित किया है;

(xiii) क्या वाद 5 में वादी ने विवादित संपत्ति में अपने हक को स्थापित किया है;

(xiv) क्या उच्च न्यायालय ने निर्मोही अखाड़ा, वाद 4 के वादियों और वाद 5 के वादियों के बीच समान हिस्सों में विवादित संपत्ति को तीन विभाजन के लिए प्रारंभिक डिक्री पारित करने में न्यायोचित ठहराया था;

(xv) जैसा वाद में दावा किया गया है कि क्या वाद 1 में वादी राहत का हकदार है; और

(xvi) क्या वाद 1, 3, 4 और 5 में, यदि कोई हो तो राहत दी जानी चाहिए

इन बिंदुओं का विश्लेषण किया जाएगा और इस निर्णय के दौरान निपटा जाएगा। व्यक्तिगत वादों में मुद्दों का विश्लेषण करने से पूर्व, विवाद में कुछ मामलों पर सबसे आगे चर्चा करना उपयुक्त होगा क्योंकि वे संपूर्ण मामले के सभी पहलू को परिपूर्ण करते हैं।

छ. तीन उत्कीर्णन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

53. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और वाद 4 में अन्य वादियों का मामला यह है कि अयोध्या शहर में, "भारत पर विजय पाने के बाद 433 वर्ष पूर्व सम्राट बाबर द्वारा निर्मित बाबरी मस्जिद के नाम से जानी जाने वाली एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद मौजूद है और अयोध्या शहर सहित उसके राज्य क्षेत्र पर कब्जा कर लिया गया।" यह दलील दी गई है कि मस्जिद सामान्य रूप से मुस्लिमों के उपयोग के लिए इबादत के स्थान के रूप में और धार्मिक समारोहों के प्रदर्शन के लिए थी। मस्जिद और उससे सटे कब्रिस्तान को "सर्वशक्तिमान में" निहित है और मस्जिद को अपने उत्कीर्णन के समय के बाद से मुस्लिमों द्वारा इबादत के लिए इस्तेमाल किया गया है। इस प्रकार, वादी के संबंध में एक सकारात्मक मामला सामने आया है कि:

(I) किसी मस्जिद का अस्तित्व;

(ii) वर्ष 1961 में संस्थित वाद में 433 वर्ष पूर्व बाबर द्वारा मस्जिद का सन्निर्माण;

(iii) पूजा स्थल के रूप में और धार्मिक समारोहों के लिए मस्जिद का निर्माण; और

(iv) नमाज़ अदा करने के प्रयोजन के लिए उसके निर्माण के बाद से मस्जिद का उपयोग।

54. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय में अभिलिखित किया कि यह सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया कि मस्जिद के निर्माण की तिथि विनिश्चित करने और मस्जिद पर स्थापित कथित उत्कीर्णनों को बाबर से संबंधित करने का एकमात्र आधार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है, जैसा कि गजेटियर्स और अन्य दस्तावेजों में संदर्भित है। प्रस्तर 1435 में, विद्वत न्यायाधीश ने अवलोकित किया कि:

> "व्यापक रूप से, वास्तव में हम पाते हैं कि श्री जिलानी द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि विवादित भवन के निर्माण की अवधि विनिश्चित करने और विवादित भवन में स्थापित कथित उत्कीर्णनों का सम्राट बाबर के साथ सह–संबंध करने का एकमात्र आधार है/हैं जैसा कि कुछ गजेटियर आदि में निर्दिष्ट किया गया है।"

अब उच्च न्यायालय के समक्ष और वर्तमान कार्यवाहियों के दौरान, इस बात पर बहस हुई कि क्या मस्जिद पर कथित उत्कीर्णनों के विषय साबित हुए हैं। अखिल भारतीय श्री राम जन्मभूमि पुनरूद्धार समिति की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता श्री पी. एन. मिश्रा ने उत्कीर्णनों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाया है। उन्होंने इस बात पर संदेह करने की मांग की कि क्या मस्जिद का निर्माण 1528 ईस्वी में अथवा बाबर के इशारे पर किया गया था।

55. फ्यूहरर द्वारा इस विषय पर अवलम्ब लिया गया पहला दस्तावेज जिसका शीर्षक "द शर्की आर्किटेक्चर ऑफ जौनपुर विद नोट्स ऑन ज़ाफराबाद, सहेत–महेत एण्ड अदर प्लेस इन दि नार्दर्न–वेस्टर्न प्रॉविन्सेस एण्ड अवध"[26] था। पुस्तक का मूल संस्करण वर्ष 1889 में प्रकाशित हुआ था और वर्ष 1994 में एएसआई ने इसका पुनर्प्रकाशन किया था। अध्याय X में तीन उत्कीर्णन संख्याओं XL, XLI, और XLII का उल्लेख है। इन तीन उत्कीर्णनों से पता चलता है कि फ्यूहरर ने एक राय बनाई थी कि वर्ष 1523

---

26 Führer, Alois Anton, Edmund W. Smith, and James Burgess, The Sharqi architecture of Jaunpur: with notes on Zafarabad, Sahet-Mahet and other places in the North-Western provinces and Oudh (1994)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ईस्वी अथवा हिज़री वर्ष 930 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था। उत्कीर्णन सं. XL का विवरण केंद्रीय *मेहराब* के ऊपर अरबी में और निम्नलिखित शब्दों में कलीमा को दो बार प्रस्तुत किया गया है:

> "अल्लाह के सिवा कोई ईश्वर नहीं है और मुहम्मद साहब उसके पैगम्बर हैं।"

उत्कीर्णन सं. XLI मिम्बर पर पाया गया था और फारसी में लिखा गया था। अंग्रेजी में अनुवादित उत्कीर्णन निम्नलिखित प्रकार से है:

> "1. विश्व सम्राट बाबर के आदेश द्वारा,
> 2. आसमान के समान उन्नत,
> 3. मजबूत इमारत निर्मित थी।
> 4. मंगलकारी श्रेष्ठ मीर खान द्वारा।
> 5. ऐसी नींव,
> 6. और दुनिया का ऐसा राजा हमेशा रहे।"

प्रवेश द्वार के ऊपर उत्कीर्णन सं. XLII पाया गया। फारसी में भी इस उत्कीर्णन का अनुवाद इस प्रकार किया गया है:

> "1. दयावान, अंश, ईश्वर के नाम पर।
> 2. उस हस्ती के नाम से जो.....उत्पत्तिकर्ता उसको कलम द्वारा अमर कर देता है।
> 3.....
> 4. विश्व का ऐसा प्रसिद्ध सम्राट जिसका अस्तित्व पृथ्वी के लिए प्रसन्नता का उदाहरण है।
> 5. उस शाही दरबार का एक विशाल नवाब है जो ख़ाक़ान (चीनी शासकों की उपाधि) जैसा सौभाग्यवश और द्वितीय फ़गकुर (चीनी शासकों की उपाधि) है।
> 6. धर्म के इस महद (गहवारे अर्थात मस्जिद) के आधार की शुभ तिथि 930 हिजरी प्रतीत करो।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

7. ऐ! खुदा संसार के बादशाह के साथ उसका ताज, सिंहासन, भाग्य और जीवन सदैव बाकी रहे।
8. बाबर सम्राट संसार में नेकियों के पुष्पों की वर्षा करता रहे और उसे सफलता मिलती रहे।
9. शासन का सलाहकार और देश का प्रशासक जो इस मस्जिद के किले का आधार रखने वाला है।
10. तिथि का यह किता और मस्जिद का विवरण निर्बल गुलाम फतहुल्लाह गौरी को कम्ज़ोर लिपि द्वारा लिखा गया।

उत्कीर्णनों को सन्दर्भित करने के बाद फ्यूहरर नोट करता है कि:

"जन्मस्थानम में रामचंद्र का पुराना मंदिर बहुत अच्छा रहा होगा, क्योंकि इसके कई स्तंभों का उपयोग मुस्लिमों द्वारा बाबर की मस्जिद के निर्माण में किया गया है। ये मजबूत, सघन, गहरे रंग वाले या काले पत्थर के हैं, जिन्हें मूल रूप से कसौटी "टच–स्टोन स्लेट" कहा जाता है और विभिन्न उपकरणों के साथ तराशा जाता है। वे सात से आठ फीट लंबे, आधार पर वर्गाकार, केंद्रस्थ और उत्कृष्ट, और मध्यवर्ती रूप में गोल अथवा अष्टभुज हैं।"

56. दस्तावेजी साक्ष्य का दूसरा भाग जिसमें इन उत्कीर्णनों का कथित रूप से "**बाबर–नामा**" में अनुवाद किया गया है। ए .एस. बेवरिज द्वारा किया गया अनुवाद प्रथम बार वर्ष 1921[27] में प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के अतिरिक्त, पक्षकारों द्वारा कार्यवाही के लिए इसके कुछ पन्नों के अंश प्रदर्शित किए गए थे।

---

27 विलियम एर्स्किन, जॉन लेडेन और एनेट सुसान्ना बेवरिज, अंग्रेजी में बाबर–नामा (बाबर का संस्मरण), लंदन: लूज़ैक एंड कंपनी (वर्ष 2006 में लो प्राइस पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रण)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिशिष्ट (यू) दो उत्कीर्णनों को संदर्भित करता है; एक आंतरिक और दूसरा मस्जिद के बाहर। परिशिष्ट (यू) के पृष्ठों की छायाप्रति वाद 4 में परिशिष्ट T3 के रूप में चिह्नित की गई थी।

57. बेवरिज ने अपनी पत्नी द्वारा किए गए अनुरोध पर फैजाबाद के उपायुक्त के माध्यम से उत्कीर्णन का विषय प्राप्त किया। **बेवरिज** नोट करते हैं कि विषय वस्तु की प्रतिलिपि को तैयार करने के दौरान उसने कुछ परिवर्तन किए थे। मस्जिद के अंदर के उत्कीर्णन की विषय वस्तु, जैसा कि **बेवरिज** ने उद्धृत किया था, निम्नलिखित प्रकार से है:

> "(1) सम्राट बाबर के आदेशानुसार जिसका न्याय एक ऐसी इमारत है जो आकाश के महल से जा मिली है।
> (2) भाग्यवान नवाब मीर बाकी ने फरिश्तों के उतरने के इस स्थान की आधार शिला रखी।
> (3) इसके आधार का वर्ष चूँकि एक खैर बाकी (शाश्वत भलाई) है। अतः मेरा यह कथन स्पष्ट हुआ।"

मस्जिद के बाहर के उत्कीर्णन की विषय वस्तु निम्नलिखित प्रकार है:

> "1. उसके नाम से जो सबसे महान बुद्धिमान है जो सारे संसार का स्त्रष्टा एवं सेथान की कैद से मुक्त है।
> 2. उसकी प्रशंसा के बाद मोहम्मद मुस्तफा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर दरूद हो जो दोनों संसार के नबियों के सरदार हैं।
> 3. बाबर कलंदर का यह चरचा सारे संसार में व्यापक है कि वह एक सफल सम्राट हैं।"

बेवरिज ने कहा कि मस्जिद के बाहर दूसरा उत्कीर्णन अधूरा था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

58. उत्कीर्णनों के समर्थन में विषय वस्तुओं का तीसरा समूह "**एपिग्राफिया इंडिका–अरेबिक–पर्शियन सप्लिमेंट (इन कंटीन्यूएशन ऑफ एपिग्राफिया इंडो–मोस्लेमिका) 1964 और 1965**"[28] (1987 में पुनर्मुद्रित) में प्रकाशित हुआ। यह एएसआई के महानिदेशक द्वारा प्रकाशित किया गया है और इसमें बाबर के उत्कीर्णनों का संदर्भ है। इस विषय का श्रेय मौलवी एम अशरफ हुसैन को है और इसका संपादन जेड ए देसाई द्वारा किया गया है। इस संस्करण का परिचयात्मक नोट यह कहता है कि:

> "लेखक द्वारा इस लेख का एक अपूर्ण मसौदा जो मेरा पूर्ववर्ती था, मेरे कार्यालय में विविध पत्रों के बीच पाया गया। वर्ष 1953 में अपनी सेवानिवृत्ति के समय, उन्होंने एक नोट छोड़ा था कि यह उनके उत्तराधिकारी द्वारा परिशोधन के बाद प्रकाशित किया जा सकता है। परिणामस्वरूप, नवीन तथ्यों और संदर्भों को समावेश करने और व्यापक परिशोधन और संपादन के बाद भी यहां उसी प्रकार प्रकाशित किया गया है। मेरे सहयोगी पुरालेख सहायक–संपादक श्री एस.ए.रहीम की सहायता से अध्ययन की जाँच, सुधार एवं पूरक भी किया गया है।"

बाबरी मस्जिद के निर्माण संबंधी विषय में निम्नलिखित विवरण शामिल हैं:

> "ए. फ्यूहरर के अनुसार नदी तट से एक नयनाभिराम दृश्य को दर्शाती हुई बाबरी–मस्जिद का निर्माण हिजरी संवत् 930 (1523–24 ईस्वी) में किया गया था, लेकिन उसके कालक्रमानुसार, जो उसे पूर्ति किए गए उत्कीर्णनों के गलत पढ़ने पर आधारित है वह त्रुटिपूर्ण है। बाबर ने इब्राहिम लोदी को केवल हिजरी संवत् 933 (1526 ईस्वी) में पराजित किया, और इसके अलावा निर्माण का वर्ष, नीचे वर्णित तीन में से दो उत्कीर्णनों, स्पष्टतः हिजरी संवत् 935 (1528–29 ईस्वी) में दर्ज किया गया है। दोबारा, जैसा कि उनके द्वारा कहा गया है कि यह मीर

---

28 Epigraphia Indica, Arabic and Persian Supplement (in continuation of Epigraphia Indo–oslemica) (Z A Desai Eds), Archaeology Survey of India (1987)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> खान द्वारा निर्मित नहीं किया गया था। ऐसा लगता है कि मस्जिद के निर्माण का आदेश हिजरी संवत् 934 (1527–28 ईस्वी) को अयोध्या में बाबर के रहने के दौरान जारी किया गया था लेकिन इसके पूर्ण होने का कोई उल्लेख बाबर नामा में नहीं किया गया है। हालांकि, यह याद किया जा सकता है कि वर्ष हिजरी संवत् 934 (1527–28 ईस्वी) के लिए उनकी डायरी कुछ नहीं बताती है और अवध के संबंध में पाठकों को अंधेरे में रखती है।"

यह पुस्तक उस रीति का हिसाब भी प्रदान करती है जिसमें लेखक ने फैजाबाद के सईद बदरूल हसन से एक उत्कीर्णनों को स्याही की छाप बनाने का कार्य किया था:

> "मस्जिद में अनेक उत्कीर्णन हैं। पूर्वी मुखाग्र पर एक छज्जा है, जिसके नीचे कुरान के शब्द और उसके ऊपर फ़ारसी पद्य में एक उत्कीर्णन है। केंद्रीय मेहराब पर धार्मिक पाठों जैसे कि कलीमा (प्रथम मत) इत्यादि उत्कीर्णित है। मंच के दक्षिणी मुख पर पूर्व से ही स्थापित शिलापट्ट थी जो फारसी पद्य में उद्धृत थी। मंच के दांए तरफ की दीवार में बनी फारसी पद्य में एक अन्य उत्कीर्णन भी था। इनमें से, अंतिम उल्लिखित दो पुरालेख गायब हो गए हैं। वर्ष 1934 ईस्वी में कथित तौर पर सांप्रदायिक बर्बरता में उन्हें बुरी तरह से नष्ट कर दिया गया था, परन्तु सौभाग्य से, मैं फेजबाद के सईद बदरुल हसन से उनमें से एक को स्याही की छाप बनाने में सफल रहा। मुस्लिम समुदाय द्वारा बहाल वर्तमान उत्कीर्णन न केवल नसतालीक (फारसी) अक्षरों से जड़े थे बल्कि शायद बहाल करने वाले लोगों द्वारा उचित ढंग से समझने की अक्षमता के कारण मूल से भिन्न भी थे।
>
> ऊपर वर्णित ऐतिहासिक पुरालेखों के पाठ और अनुवाद, एक के मामले को छोड़कर, फ्यूहरर और श्रीमती बेवरिज द्वारा प्रकाशित किए गए थे, लेकिन उनकी रचनाएं इतनी अधूरी, त्रुटिपूर्ण और पाठ से भिन्न हैं कि इस लेख में उनका समावेश न केवल वांछनीय है बल्कि अनिवार्य भी है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नीचे सुपठित पुरालेख एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण हुआ था, जिसकी माप लगभग 68 सेमी 48 सेमी थी। जिसे मस्जिद के मंच के दक्षिणी भाग में बनाया गया था, परन्तु जैसा कि ऊपर वर्णित है अब खत्म हो गया है। यह फ़ैजाबाद के सईद बदरूल हसन से प्राप्त मुद्रांकन से संपादित है। इसके तीन पंक्ति पाठ में फ़ारसी में छह पद्य हैं, जो फूलदार किनारों के अंदर व्यावहारिक नस्ख अक्षरों में उत्कीर्णित हैं। यह सम्राट बाबर के आदेशानुसार मीर बाकी द्वारा मस्जिद के निर्माण को अभिलिखित करता है और कालानुक्रम में हिजरी संवत् 935 (1528–29 ईस्वी) बताती है।"

लेखक का कहना है कि मस्जिद की मंच के दक्षिणी ओर 68 X 48 सेमी माप वाले शिलापट्ट पर एक उत्कीर्णन था, परन्तु मूल रूप से गायब हो गया था। यह उद्धरण उपरोक्त स्याही की छाप से प्राप्त किया गया है। जो उद्धृत किया गया है वह ऊपर उल्लिखित स्याही से प्राप्त संस्करण है। पहले उत्कीर्णन का पाठ इस प्रकार था:

"(1) सम्राट बाबर के आदेशानुसार जिसका न्याय एक ऐसी इमारत है जो आकाश के महल से जा मिली है।
2) भाग्यवान नवाब मीर बाकी ने फरिश्तों के उतरने के स्थान की आधारशिला रखी।
(3) वह खैर बाकी (सदैव रहने वाला एक भला कारनामा) है और उसके आधार का वर्ष यूं स्पष्ट हुआ जब मैंने कहा "बवुद खैर बाकी"।"

दूसरे उत्कीर्णन के संबंध में, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का निर्णय यह बताता है कि :

"1449. फ्यूहरर के उत्कीर्णन सं. XLI में उन्होंने उल्लेख किया है कि उसी मिम्बर पर (विवादित भवन के दाहिनी ओर) मस्जिद के अंदर पाया गया था जिसे मौलवी एफ. अशरफ हुसैन द्वारा दूसरे उत्कीर्णन के रूप में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा गया है। इसमें छह लाइनों में तीन द्विपद हैं। वह (हुसैन) स्पष्ट रूप से "पुरालेखीय तालिका" का अवलोकन करते हुए उक्त शिलालेख के गैर अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, जिसे मंच के दाहिनी तरफ की दीवार में बनाया गया था, अब अस्तित्व में नहीं है, और इसलिए, उत्कीर्णन का पाठ यहां फ्यूहरर के कार्य से उद्धृत किया गया है, उसी वजह से, इसका उदाहरण नहीं दिया जा सका है। हालांकि, हुसैन/देसाई फ्यूहरर द्वारा उत्कीर्णन की व्याख्या से सहमत नहीं थे और उन्होंने अवलोकन किया कि फ्यूहरर की व्याख्या गलतियों से मुक्त प्रतीत नहीं होती है।"

तीसरे उत्कीर्णन का पाठ निम्नलिखित प्रकार से है:

"(1) उस (खुदा) की प्रशंसा के बाद मोहम्मद मुस्तफा सल्लाल्लाहो अलैहि वसल्लम पर दरूद हो जो नबियों के सरदार और दुनिया के सर्वश्रेष्ठ हैं।
(2) बाबर कलंदर का चरचा सारे संसार में है कि वह एक सफल सम्राट है।
उनकी प्रशंसा के बाद, दुआएँ किसी एक (अर्थात पैगंबर) पर होना चाहिए, जो सभी पैगम्बरों के प्रमुख हैं और विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं। क़लंदर – जैसे कि बाबर (अर्थात सत्यप्रिय) विश्व प्रतिष्ठित हो गए हैं चूँकि उनके समय में दुनिया ने समृद्धि प्राप्त की।

(3) वह ऐसा सम्राट है कि जिसने सातों देशों पर विजय प्राप्त कर लिया, आकाश के समान पृथ्वी को भी अपने कब्जे में कर लिया।
उस शाही दरबार का एक विशाल नवाब है जिसका नाम मीर बाकी है द्वितीय आसिफ (आसिफ उपाधि रखता है) शासन का सलाहकार और उसके देश का प्रशासक जो इस मस्जिद और किले का आधार रखने वाला है।

(4) ऐ ख़ुदा संसार में उसका ताज, सिंहासन, भाग्य और जीवन सदैव बाकी रहे।
इस युग के इस इमारत की बुनियाद की शुभ तिथि की निशानी 935 ईस्वी है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बादशाह और पैगंबर के खुदा की स्तुति पूर्ण हुई। अल्लाह उसे रोशन करे।
तुच्छ लेखक और विनम्र प्राणी ईथुल्लाह मोहम्मद गोरी द्वारा लिखित।"

फ़्यूहरर द्वारा उल्लिखित उत्कीर्णनों के संबंध में, कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का उल्लेख करने की आवश्यकता है। जबकि दूसरे उत्कीर्णन में मस्जिद के निर्माण के लिए बाबर के आदेश का संदर्भ सम्मिलित है, निर्माण के लिए मीर खान (मीर बाकी नहीं) उत्तरदायी है। तीसरे उत्कीर्णन में हिजरी 930 में स्थापित मस्जिद के निर्माण की नींव का उल्लेख है जो 1523 ईस्वी से मेल खाती है। यह बाबर द्वारा आक्रमण और पानीपत के युद्ध से पूर्व था जिसके परिणामस्वरूप इब्राहिम लोधी की पराजय हुई। **बेवरिज** के कार्य के संबंध में, यह स्पष्ट है कि उसने न तो मूल पाठ देखा था और न ही उसने स्वयं उत्कीर्णनों के पाठ का अनुवाद किया था। **बेवरिज** ने अपने पत्नी के माध्यम से फैजाबाद के उपायुक्त से उत्कीर्णनों का एक तथाकथित पाठ प्राप्त किया। **बेवरिज** ने दावा किया कि उसने अपनी पत्नी द्वारा प्रारम्भ किए गए पत्राचार के माध्यम से पाठ की एक प्रति प्राप्त की जो औपनिवेशिक सरकार में एक आईसीएस अधिकारी था। उसने न तो मूल पढ़ी थी और न ही यह इंगित करने के लिए कि उसे अनुवाद करने की स्थिति में थी। **बेवरिज** का कहना है कि उसने "अभिव्यक्ति की शर्तों में कुछ मामूली परिवर्तन" किए। **बेवरिज** ने क्या बदलाव किए हैं इसकी व्याख्या नहीं की गई है। उनके अनुसार, दो उत्कीर्णनों का पाठ अपूर्ण था और यह सुपाठ्य नहीं था। **फ़्यूहरर** द्वारा प्रदान किए गए पाठ से पता चलता है कि वर्ष 1528 ईस्वी में मस्जिद का निर्माण नहीं हुआ था। उत्कीर्णन सं. XLI में मीर खान के नाम का उल्लेख है जबकि

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उत्कीर्णन सं. XLII में मस्जिद के निर्माण को हिजरी 930 के रूप में संदर्भित किया गया है।

59. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अशरफ हुसैन और जेड. ए. देसाई के कार्य का सन्दर्भ लेते हुए, उनकी सटीकता, शुद्धता और वास्तविकता के संबंध में एएसआई के प्राधिकार के तहत पाठ प्रकाशित करने में लेखक की "दोषपूर्ण और पूर्ण गलतबयानी" पर गंभीर से ध्यान दिया कि:

> "1463. हम उस तरीके से बहुत व्याकुल हैं जिस तरह से अशरफ हुसैन/देसाई ने कथित उत्कीर्णनों के पदों को एक त्रुटिहीन प्राधिकार प्रदान करने का प्रयत्न किया है, जो वे विवादित भवन पर मौजूद होने का दावा करते हैं, हालांकि बार–बार कहा गया है कि मूल पाठ गायब हो गया है। इस पाठ को सच्चाई का रंग देने का प्रयास करते हुए में लेखक की ओर से दोषपूर्ण और पूर्ण गलतबयानी लेखन को सतही रूप से पढ़ने से पूर्णतः स्पष्ट है। वास्तव में हमें यह जानकर कष्ट है कि इस विषय की सटीकता, शुद्धता और वास्तविकता की परवाह किए बिना, एएसआई भारत सरकार के अधिकार के तहत प्रकाशित पुस्तक में इस तरह की दोषपूर्ण सामग्री को प्रकाशित करने की अनुमति दी गई है।
> .... इन दोनों उत्कीर्णनों में से, यानी एक ने मंच के दक्षिणी दिशा पर होने का दावा किया और दूसरे को मंच की दाहिनी ओर की दीवार के रूप में अवलोकन द्वारा अनुपलब्ध होने पर कहा गया है, "जो कि इनमें से अंतिम वर्णित दो पुरालेख गायब हो गए हैं"। मौलवी अशरफ हुसैन के अनुसार गायब होने का यह समय 1934 ईस्वी था जब अयोध्या में सांप्रदायिक दंगे हुए। हालांकि, उन्होंने दावा किया कि फैजाबाद के सैयद बदरुल हसन के दो उत्कीर्णनों में से एक पर स्याही की छाप लग गई थी। सैयद बदरुल हसन के बारे में कि वह कौन थे, उनकी स्थिति क्या थी, किस तरीके से उन्होंने उक्त उत्कीर्णन की उस स्याही की छाप को किस प्रकार प्राप्त किया और इसके सही होने की प्रामाणिकता क्या है जब उत्कीर्णन का मूल पाठ ज्ञात नहीं है। वर्ष 1934 में खोने का

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> दावा करने वाले विवादित भवन में पाए गए उत्कीर्णन के सही पाठ के रूप में प्राप्त पाठ से संबंधित करने के लिए कुछ भी नहीं है।"

उच्च न्यायालय ने अवलोकित किया कि दो उत्कीर्णन, जो मंच के दक्षिणी दिशा और मंच के दाहिनी ओर दीवार पर उपलब्ध नहीं थे। अशरफ हुसैन के अनुसार, वर्ष 1934 में सांप्रदायिक दंगे के दौरान पुरालेख गायब हो गए। हालाँकि, जिस व्यक्ति से यह प्राप्त किया गया था, उसकी पहचान या उसके बारे में व्याख्या किए बगैर कथित रूप से "स्याही की छाप" पर अवलम्बित करने की मांग की गयी थी। उच्च न्यायालय की आलोचना आधार हीन नहीं है। जिस व्यक्ति से स्याही की छापों को प्राप्त की गई थी उसकी पहचान नहीं बताई गई थी। न ही उस तरीके के बारे में कोई स्पष्टीकरण था जिसमें उसने बदले में इसे प्राप्त किया था। अशरफ हुसैन और जेड. ए. देसाई द्वारा संकलित पाठ में अनुवाद के साथ उस व्यक्ति द्वारा प्राप्त पाठ को संबद्ध करने के लिए वास्तव में कुछ भी नहीं था। उच्च न्यायालय ने अवलोकित किया कि:

> "1464... जब मूल उत्कीर्णन पूर्व में ही खो गया था और उसके साथ पुनर्स्थापित किए गए उत्कीर्णन के पाठ को सत्यापित करने के लिए कुछ भी नहीं था और न तो बहाल किए गए व्यक्ति पर अवलम्ब लिया जा सकता है और न ही यह समझा जा सकता है कि कथित रूप से की गई बहाली की तुलना कैसे हो सकती है.....मूल... "

इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने अवलोकित किया कि:

> "1466... उपरोक्त उत्कीर्णन के संबंध में अशरफ हुसैन द्वारा जो पाठ, विवरण और जो कुछ भी स्थापित किया गया था वह अविश्वसनीय है और विश्वसनीयता का अभाव है। हम इस स्तर पर यह अवलोकन करने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> के लिए विवश हैं कि ऐतिहासिक घटनाओं के मामले में और वह भी जब यह एक धार्मिक महत्व रखता है और इस मामले ने दो समुदायों के बीच गंभीर विवादों को भी देखा है, जो लोग इतिहास से जुड़े हुए हैं..... कोई भी लेखन तैयार करने के पूर्व, बहुत सावधानीपूर्वक उन्हें जांचना, प्रति जाँच करना और सत्यापित करना चाहिए क्योंकि परिणामी रूप से उनके लेखन के लिए घातक और अपूरणीय हो सकते हैं।"

60. शिया सेंट्रल वक्फ बोर्ड बनाम **सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ**[29] के मामले में 26 मार्च 1946 दिनांकित को दीवानी न्यायाधीश के एक निर्देशानुसार उत्कीर्णन का चौथा संस्करण उभर कर आया। उन निर्देशों के अनुसरण में, श्री (Sr.) ए. अख्तर अब्बास के नाम से एक व्यक्ति ने उत्कीर्णन को पढ़ा और निरीक्षण नोट तैयार किया।

हालांकि, उच्च न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि 30 मार्च, 1946 दिनांकित के निर्णय में दिए गए पाठ में यह कहा गया है कि प्रथम उत्कीर्णन में, "शाह बाबर के आदेश द्वारा अमीर मीर बाकी ने हिजरी संवत् 923 अर्थात 1516–17 ईस्वी में फरिश्तों के विश्राम स्थल का निर्माण किया था "। दूसरे उत्कीर्णन के संबंध में, "हिजरी संवत् 935 अर्थात 1528–29 ईस्वी में इस्फहान के मीर बाकी" का संदर्भ है।

उच्च न्यायालय ने अवलोकित किया कि इस बात से अवगत नहीं कराया गया था कि क्या संपूर्ण बाबर–नामा में किसी मीर बाकी इस्फाहानी का संदर्भ था, यद्यपि बाकी तश्केंडी का संदर्भ था। इसके अतिरिक्त दोनों में से एक पट्ट नया था और उसे मूल पट्ट के लिए बदल दिया गया था जो वर्ष 1934 के सांप्रदायिक दंगों के दौरान ध्वस्त कर दिया गया था। साक्ष्य की उपरोक्त

---

29 Regular Suit No 29 of 1945

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थिति पर, उच्च न्यायालय ने उत्कीर्णनों के प्रतिलेखों की वास्तविकता और प्रामाणिकता पर संदेह किया, जो इससे पूर्व अवलम्बित थे।

61. इस स्तर पर, "**तुजुक–ए–बाबरी**"[30] का संदर्भ देना आवश्यक है। बाबर–नामा में 899 हिजरी (1494 ईस्वी) से प्रारम्भ होने वाली बाबर की दैनिक डायरी शामिल है। बाबर के जीवनकाल के अठारह वर्ष का विवरण विभिन्न अवधियों में उपलब्ध है। बाबर 1526 ईस्वी में भारत आया था। उसकी मृत्यु तक उपलब्ध विवरण निम्नलिखित अवधियों के लिए है, (न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा नोट किया गया):

> "1487...
> 1. 1 सफर 932 हिजरी (17 नवंबर 1525 ईस्वी) से 12 राजब 934 हिजरी (2 अप्रैल 1528 ईस्वी) तक।
> 2. 3 मुहर्रम 934 हिजरी (18 सितंबर 1528 ईस्वी) से 3 मोहर्रम 936 हिजरी (7 सितंबर 1529 ईस्वी) तक।"

2 अप्रैल 1528 से 17 सितंबर 1528 तक की अवधि के अभिलेख गायब हैं। इस अवधि में से, 2 अप्रैल 1528 से 15 सितंबर 1528 तक की अवधि 934 हिजरी की थी जबकि 15 सितंबर 1528 से 17 सितंबर 1528 तक की अवधि 935 हिजरी की थी। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उच्च न्यायालय में उल्लेख किया कि महत्वपूर्ण वर्ष 935 हिजरी था और गायब अभिलेख केवल तीन दिनों का था।

---

30 Rashid Akhtar Nadvi, Tuzk e Babri, Lahore: Sang e Mil (1995)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बाबर ने दिनांक 20 अप्रैल 1526 को पानीपत में इब्राहिम लोधी को पराजित किया था। दिनांक 28 मार्च, 1528 को बाबर घाघरा और सरयू नदियों के संगम पर पहुंचा। दिनांक 2 अप्रैल 1528 की तिथि के संदर्भ के बाद, दिनांक 15 सितंबर 1528 तक एक अन्तराल है।

62. बेवरिज के बाबर–नामा का अनुवाद आगरा और ग्वालियर सहित कई स्थानों पर भवनों के निर्माण में शिल्पकारों के रोजगार को निर्दिष्ट करता है:

> "1533... हिंदुस्तान में एक और अच्छी बात यह है कि इसमें हर तरह के असंख्य और अंतहीन कामगार लोग हैं। प्रत्येक कार्य को करने के लिए एक निश्चित वर्ग (जामई) होती है, जिसने पिता से पुत्र तक उस कार्य को किया है। तिमूर बेग की पत्थर की मस्जिद के निर्माण के सम्बन्ध में ज़फ़र–नामा में लिखते हुए मुल्ला शराफ इस तथ्य पर जोर देते हैं कि इस पर अजरबैजान, फारस, हिंदुस्तान और अन्य देशों से पत्थर काटने वाले 200 व्यक्तियों ने कार्य किया। लेकिन आगरा में और केवल आगरा के पत्थर काटने वाले 680 व्यक्तियों ने मेरे भवनों पर प्रतिदिन कार्य किया; जबकि आगरा, सिकरी, बियाना, दुलपुर, ग्वालियर और कुइल में मेरे भवनों पर पत्थर काटने वाले 1491 व्यक्तियों ने कार्य किया। इसी प्रकार हिंदुस्तान में हर तरह के असंख्य शिल्पकार और कामगार हैं।"

इस संदर्भ में, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अवलोकित किया कि:

> "1534. बाबर–नामा में ग्वालियर के मंदिर, दिल्ली की मस्जिद, आगरा, ग्वालियर सहित और अन्य कई स्थानों स्थानों का उल्लेख है लेकिन यह सत्य है कि न तो अवध क्षेत्र में बाबर द्वारा किसी भी धार्मिक स्थल के ध्वस्तीकरण करने का उल्लेख है और न ही यह दिखाने के लिए कुछ भी है कि वह या तो अयोध्या में प्रवेश किया था या किसी भवन निर्माण और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विशेषतः अयोध्या में मस्जिद निर्माण के लिए कोई निर्देश जारी किया था।"

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के अधिवक्ता श्री जिलानी के दलीलों को उच्च न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर 1577 में अभिलिखित किया कि चूंकि बाबर स्वयं अयोध्या में प्रवेश नहीं किया था, इसलिए उसके द्वारा मंदिर का विध्वंस और मस्जिद के निर्माण से सम्बन्धित कोई प्रश्न ही नहीं था। बाबर–नामा के अभाव में मस्जिद के निर्माण के संदर्भ में पूर्व–विश्लेषित उत्कीर्णनों को अप्रतिष्ठित करने के लिए एक कारक के रूप में अवलम्बित किया गया है। निरीक्षण की इस पंक्ति को सावधानीपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए जिसे ऐतिहासिक पाठ से नकारात्मक निष्कर्ष निकालते समय प्रयोग किया जाना चाहिए।

63. विद्वान अधिवक्ता श्री पी. एन. मिश्रा ने "**इंडियन टेक्स्ट्स सीरीज–स्टोरिया डो मोगोर इंडिया 1653–1708**"[31] शीर्षक से निक्कोलाओ मनुक्की के कार्य का विचार किया जिसका अंग्रेजी अनुवाद विलियम इरविन ने किया था। मनुक्की ने औरंगजेब द्वारा "नष्ट किए गए प्रमुख मंदिरों" की पहचान की, उनमें से एक थे:

(i) माएसा (मायापुर);
(ii) मातुरा (मथुरा);
(iii) कैक्सिस (काशी); और
(iv) हजुदिया (अजुध्या)।

---

31 Manucci, Niccol , and William Irvine, Storia do Mogor; or, Mogul India, 1653–1708, J. Murray: London (1907).

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मनुक्की एक यात्री था जो औरंगजेब के शासनकाल में भारत आया था।

इसके अतिरिक्त मनुक्की के कार्य में अबुल फजल अल्लामी द्वारा रचित "**आइन–ए–अकबरी**"[32] भी शामिल है। आइन–ए–अकबरी अवध प्रांत से संबंधित है और अयोध्या भगवान राम से इसके संबंध को संदर्भित करता है। पाठ में शहर के नजदीक "छह और सात गज की लंबाई में दो कब्रें संदर्भित हैं"। इस पाठ में अनेक तीर्थ स्थानों की पहचान की गई। यह विशेषतः अयोध्या की बात है जहां चैत्र मास में एक धार्मिक उत्सव आयोजित किया जाता है। श्री मिश्रा ने आग्रह किया कि अयोध्या में मस्जिद के निर्माण का आइन–ए–अकबरी में कोई संदर्भ नहीं है। इस पाठ में कुछ ऐसे नगर हैं जो ईश्वरत्व प्राप्त हैं, जिनमें से काशी और अयोध्या हैं। उच्च न्यायालय ने आदेश 18 मार्च 2010 दिनांकित से साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 57(13) के प्रावधानों के तहत उपरोक्त पाठ पर अवलम्ब लेने की अनुमति दी।

64. वाद 4 में वादीगणों की ओर से अपील करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री पी. एन. मिश्रा और श्री मोहम्मद निजामुद्दीन पाशा द्वारा मुख्य रूप से आग्रह किए गए उपरोक्त दलीलों को खण्डित करते हुए तर्क दिया कि मीर बाकी की पहचान पर एक अनावश्यक भ्रम पैदा करने की मांग की गई थी। उन्होंने तर्क दिया कि उन्हें बाबर –नामा में निम्नलिखित शीर्षकों/प्रत्ययों द्वारा जाना जाता है:

---

32 Ab al–Faz l ibn Mub rak and H. Blochmann, The Ain i Akbari, 1873, Calcutta: Rouse (Reprint of 1989 published by Low Price Publications, Delhi)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) बाकी शरघवाल–"मध्य एशियाई शासन का उच्च अधिकारी, जो सभी काज़ियों और मुल्ला से सर्वोपरि है"। (देखें **"बाबरनामा", ए. एस. बेवरिज द्वारा अनुवादित, 1921, पृष्ठ 463)।**

(ii) बाकी मिंगबाशी–एक हजार व्यक्तियों के सेनापति (देखें **"बाबरनामा", ए. एस. बेवरिज द्वारा अनुवादित, 1921, पृष्ठ 590**); और

(iii) बाकी तश्किन्ती–ताशकंद से सम्बन्ध (देखें **"बाबरनामा", ए. एस. बेवरिज द्वारा अनुवादित, 1921, पृष्ठ** 601)

श्री पाशा ने आग्रह किया कि बाबरी मस्जिद के दरवाजे के ऊपर का उत्कीर्णन मीर बाकी आसिफ सानी के रूप में पढ़ा जाता है, जिसे फैजाबाद के जनपद न्यायाधीश ने शिया वक्फ बोर्ड और सुन्नी वक्फ बोर्ड के बीच वाद में वर्ष 1946 के अपने आदेश में 'इस्फ़हानी' के रूप में गलत समझा।

65. इस दलील के समर्थन में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री को निर्धारित करने के बाद कि वर्ष 1528 में मीर बाकी द्वारा उप–महाद्वीप पर विजय के बाद सम्राट बाबर के निर्देश पर मस्जिद का नि्र्माण किया गया था, निष्कर्षों का विश्लेषण करना यहाँ आवश्यक हो जाता है जो उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों द्वारा प्राप्त किया गया है कि:

(i) **न्यायमूर्ति एस यू खान**

न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने अवधारित किया कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"मुस्लिम यह साबित नहीं कर पाए हैं कि जमीन बाबर की थी, जिसके आदेश से मस्जिद का निर्माण किया गया था।"

इसके अलावा, विद्वत न्यायाधीश ने यह अवधारित किया कि फ्यूहरर, बेवरिज और जेड. ए. देसाई द्वारा अनुवादित मस्जिद के उत्कीर्णन प्रामाणिक नहीं थे इसलिए केवल इन उत्कीर्णनों के आधार पर यह अवधारित नहीं किया जा सका कि या तो विवादित भवन बाबर द्वारा या बाबर के आदेश से या यह कि इसका निर्माण वर्ष 1528 में किया गया था। न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने विशेष रूप से अवधारित किया कि:

"इस सम्बन्ध में विस्तृत कारण मेरे विद्वान बन्धु न्यायमूर्ति एस. अग्रवाल, द्वारा दिए गए हैं जिनके साथ मैं पूर्णतः सहमत हूं"।

हालांकि, न्यायमूर्ति खान ने "निष्कर्षों का सार" शीर्षक से अपने निष्कर्ष के अनुक्रम में यह अवधारित किया कि:

"1. विवादित ढाँचे को बाबर द्वारा अथवा उसके आदेश से मस्जिद के रूप में निर्मित किया गया था।
2. यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है कि बाबर का सम्बन्ध विवादित परिसर सहित मस्जिद का निर्माण करने वाले व्यक्तियों अथवा जिसके आदेशों के तहत निर्मित मस्जिद से था।"

निष्कर्ष के उपरोक्त बिंदु सं. 1 का निष्कर्ष पूर्व के निष्कर्षों के विपरीत है कि यह अवधारित नहीं किया जा सका है कि या तो मस्जिद को बाबर द्वारा या बाबर के आदेशों के तहत या यह कि इसका निर्माण वर्ष 1528 में किया गया था। बिंदु सं. 1 का निष्कर्ष भी विशिष्ट अवलोकन के विपरीत है कि न्यायमूर्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एस. यू. खान उत्कीर्णनों की प्रामाणिकता के अभाव के संबंध में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले के अनुरूप ही थे।

(ii) न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अवधारित किया कि:

> "1679...इस निष्कर्ष को अभिलिखित करना कठिन है कि विवादित भवन का निर्माण वर्ष 1528 ईस्वी में या बाबर द्वारा या उसके आदेश पर किया गया था, चूँकि उक्त निष्कर्ष पर आने के लिए कोई विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसके विपरीत, प्रायिकता की प्रधानता से पता चलता है कि विवादित भवन का निर्माण कुछ समय बाद किया गया था और उत्कीर्णनों को बाद में नियत किया गया था, परन्तु दोनों की सटीक अवधि का पता लगाना मुश्किल है....
>
> ....
>
> 1681. किसी भी ठोस तथ्य के अभाव में, संबंधित मुगल सम्राट या किसी और के शासन, जिसके दौरान उपरोक्त निर्माण हुआ था उसके सही काल को दर्शाने के लिए हम इस पहलू पर कोई सकारात्मक निष्कर्ष अभिलिखित करने से परहेज कर रहे हैं सिवाय विवादित भवन के, हमारे अनुसार विवादित भवन सम्राट बाबर के शासन के बहुत बाद में निर्मित हुआ होगा और उत्कीर्णनों को उसके बाद नियत किया गया था और इसके पश्चात यही कारण है कि इस अवधि में भी संबंधित व्यक्ति के नाम के बारे में भी कुछ विसंगतियां हुई हैं। उत्कीर्णनों में परिवर्तन , प्रत्यावर्तन या फेरबदल की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है"

वाद में विरचित मुद्दों के उत्तर देते समय न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अवधारित किया कि:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "1682... (क) मुद्दा सं. 6 (वाद–1) और मुद्दा सं. 5 (वाद–3) के उत्तर नकारात्मक में दिए गए हैं। प्रतिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि विवादित संपत्ति 1528 ईस्वी में.... सम्राट बाबर द्वारा निर्मित की गई थी। तदनुसार, यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है और इसके उत्तर की कोई आवश्यकता नहीं है कि क्या बाबर ने 'मस्जिद' के रूप में विवादित संपत्ति का निर्माण किया है।
>
> (ख) मुद्दा सं. 1 (क) (वाद–4) का उत्तर नकारात्मक में दिया गया है। वादीगण यह सिद्ध करने में विफल रहे हैं कि विवादित भवन बाबर द्वारा निर्मित की गई थी। इसी प्रकार प्रतिवादी सं. 13 भी यह सिद्ध करने में विफल रहा है निर्माण मीर बाकी द्वारा किया गया था। आगे का प्रश्न यह है कि इसे कब और किसके द्वारा बनाया गया निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि न तो कोई दलील न ही कोई साक्ष्य और न ही इस पहलू पर एक ठोस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए हमारे सामने कोई तथ्य है। हालांकि, सुविज्ञ अनुमान के सिद्धांत को लागू करते हुए हमारा विचार है कि विवादित भवन का निर्माण संभवतः 1659 से 1707 ई. के बीच अर्थात् औरंगजेब के शासनकाल में किया जा सकता है"

उपरोक्त निष्कर्षों के अंतिम भाग में, न्यायाधीश ने यह अभिलिखित किया कि जब ढाँचा दलील या साक्ष्य के अभाव में निर्मित किया गया था तो निश्चित रूप से तथ्य के निष्कर्ष में पहुँचना संभव नहीं था। उपरोक्त अवलोकन के अंत में "सुविज्ञ अनुमान" को तथ्य के निष्कर्ष के आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता कि ढाँचा शायद औरंगजेब द्वारा वर्ष 1659–1707 के बीच निर्मित की गई थी।

(iii) **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अपने फैसले के दौरान यह निष्कर्ष निकाला कि:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"इस प्रकार, विशेषज्ञों की राय के आधार पर, अभिलिखित साक्ष्य पर, परिस्थितिजन्य साक्ष्य और ऐतिहासिक वर्णन से..., यह पता चलता है कि मंदिर को ध्वस्त कर दिया गया था और बाबर के आदेश से मीर बाकी द्वारा पुराने हिंदू मंदिर स्थल पर मस्जिद का निर्माण किया गया था। मुद्दा सं. 1 और 1(क) प्रतिवादियों के पक्ष में और वादी के विरूद्ध घोषित हैं।"

66. उच्च न्यायालय परिकल्पना के आधार पर उत्कीर्णनों की प्रामाणिकता को लेकर विवाद में पड़ गया कि उत्कीर्णन यह बताने का एकमात्र आधार था कि मस्जिद का निर्माण बाबर ने किया था। न्यायमूर्ति अग्रवाल इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उत्कीर्णन प्रामाणिक नहीं थे और इसलिए इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सका कि मस्जिद का निर्माण वर्ष 1528 ईस्वी में बाबर के इशारे पर या उसके द्वारा किया गया था। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, न्यायमूर्ति एस. यू. खान के निर्णय के पाठ का तर्क न्यायमूर्ति अग्रवाल के दृष्टिकोण के अनुरूप था परन्तु फिर भी उनका अंतिम निष्कर्ष कारणों के पूर्व भाग के अनुरूप नहीं है कि विवादित ढाँचे का निर्माण मस्जिद के रूप में बाबर द्वारा या बाबर के आदेश पर किया गया था न्यायमूर्ति शर्मा ने अवधारित किया कि मीर बाकी ने मस्जिद का निर्माण बाबर के आदेश से किया था।

67. हालांकि, मूल मुद्दा यह है कि क्या उच्च न्यायालय के लिए पक्षकारों की दलीलों के आधार पर इस घने जंगल में प्रवेश करना आवश्यक था। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड (वाद 4) द्वारा संस्थित वाद में, मामला यह है कि मस्जिद का निर्माण बाबर ने अयोध्या शहर सहित क्षेत्रों पर विजय और कब्जे के बाद किया था। उल्लेखनीय है कि वाद मित्र के माध्यम से भगवान राम और राम

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जन्मभूमि की ओर से संस्थित वाद 5 इस आधार पर भी आगे बढ़ता है कि मस्जिद का निर्माण मीर बाकी ने किया था जो बाबर की सेनाओं का सेनापति था।

वाद 5 में वादपत्र में याचिका इस प्रकार है:

> "23. इतिहास की पुस्तकें तथा विश्वसनीय प्रामाणिकता के सार्वजनिक अभिलेख निर्विवाद रूप से यह स्थापित करते हैं कि श्री राम जन्मभूमि अयोध्या में महाराजा विक्रमादित्य का एक प्राचीन मंदिर था। **उस मंदिर को आंशिक रूप से नष्ट कर दिया गया और बाबर की सेना के सेनापति मीर बाकी ने शस्त्रों के बल से मस्जिद बनाने का प्रयत्न किया।** उपयोग की गई लगभग सभी सामग्री मंदिर से ली गई थी, जिसमें इसके स्तंभ भी शामिल थे, जो कसौटी से बने थे, जिसमें हिंदू देवी–देवताओं की नक्काशीदार आकृति थी। हिन्दुओं ने बहुत विरोध किया और समय समय पर मस्जिद के निर्माण को रोकने के लिए कई युद्ध लड़े। आज तक इसमें मीनारें नहीं हैं और वज़ू के लिए पानी के संचयन का कोई स्थान नहीं है। इन युद्धों में कई लोग मारे गये। ऐसा अंतिम युद्ध वर्ष 1855 में हुआ। बाबर के समय में मीर बाक़ी द्वारा निर्मित भवन सहित श्री राम जन्म भूमि उस समय हिंदुओं के कब्जे और नियंत्रण में थी।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

उपरोक्त उद्धरण के तुरंत बाद की दलील का मूलपद फैजाबाद गजेटियर के 1928 संस्करण का संदर्भ है। गजेटियर का मूलपद को वादपत्र में शामिल किया गया है और इस प्रकार पढ़ता है:

> "23...वर्ष 1528 में बाबर अयोध्या आया और एक सप्ताह के लिए यहाँ रुका। उसने प्राचीन मंदिर को नष्ट कर दिया और उसके स्थल पर एक मस्जिद बनवायी जिसे अभी तक बाबरी मस्जिद कहा जाता है। पुराने ढांचे की सामग्री को मोटे तौर पर नियोजित किया गया था, और कई

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्तंभ अच्छे संरक्षण में हैं, वे सघन रूप से गहरे काले पत्थर के हैं, जिन्हें देसी कसौटी कहा जाता है और विभिन्न उपकरणों के साथ तराशा जाता है।"

68. वादी के अनुसार वाद 5 की दलील प्रदर्शित करता है कि मस्जिद का निर्माण बाबर की सेना के सेनापति मीर बाकी ने किया था। इसलिए वाद 4 और वाद 5 दोनों की दलील में अनिवार्य रूप से इस तथ्य से संबंधित कोई विवाद नहीं था कि मस्जिद को वर्ष 1528 ईस्वी में बाबर द्वारा या उसके इशारे पर बनाया गया था। वाद 5 का यह मामला है कि हिंदुओं ने मस्जिद पर कब्जा और नियंत्रण बनाए रखा। यह पूर्णतः एक अलग मामला है जिस पर फैसला किया जाना है। लेकिन, वाद 4 और वाद 5 में दोनों की दलीलों से मस्जिद के निर्माण की तिथि या उत्पत्ति के बारे में कोई विवाद प्रतीत नहीं होता है। इसके अनुसार वाद 3 में निर्मोही अखाड़ा ने यह स्वीकार नहीं किया कि यह ढाँचा एक मस्जिद है, ढाँचा हमेशा ही हिंदू मंदिर रहा है जिसे हमेशा ही निर्मोहियों द्वारा संचालित किया गया है। निर्मोहियों ने मंदिर होने का दावा करते हुए मस्जिद के अस्तित्व को ही विवादित किया। वाद 3 में उत्पन्न होने वाली दलीलों सबूतों और मुद्दों का आकलन करते समय निर्मोहियों के मामले पर अलग से विचार किया जाएगा। परन्तु वाद 4 और वाद 5 में दलीलों के आधार पर उत्कीर्णनों की प्रामाणिकता के संबंध में विवाद की कोई व्यावहारिक प्रासंगिकता नहीं होगी।

इस दृष्टिकोण को अपनाने का एक और कारण है। अंतिम विश्लेषण में, क्या मस्जिद का निर्माण वर्ष 1528 में किया गया था (जैसा कि वाद 4 और वाद 5 में वादी के दोनों समूहों ने दलील दी है) अथवा उसके बाद अनिवार्य रूप

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से प्रतिपक्षों के तर्कों पर कोई अन्तर नहीं होगा। वाद 4 में वादी ने इस न्यायालय के समक्ष कहा है कि जिन अभिलेखों पर वे पूजा संबंधित अपने दावे में अवलम्ब लेते हैं उनका उपयोग और कब्ज़ा लगभग वर्ष 1860 से प्रारम्भ हुआ। यह स्थिति होने के नाते, मस्जिद के निर्माण की सटीक तिथि एक ऐसा मामला है जिसमें वाद 4 और 5 में होने वाली दलीलों और प्रतियोगिता करने वाले हिंदू और मुस्लिम द्वारा इस न्यायालय के समक्ष अपनाए गए श्रेणी के संबंध में विवाद के परिणाम की कोई व्यावहारिक प्रासंगिकता नहीं है।

H. न्यायिक समीक्षा और इस्लामी विधि में मस्जिद की विशेषताएं

69. वाद 5 (अखिल भारतीय श्री राम जन्मभूमि पुनरूद्धार समिति) में प्रतिवादी संख्या 20 की तरफ से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता श्री पी. एन. मिश्रा यह प्रदर्शित करने के लिए पुरजोर प्रयास किया कि बाबरी मस्जिद में इस्लामी न्यायशास्त्र के तहत वैध मस्जिद की आवश्यक विशेषताओं का अभाव है। ये तर्क अनिवार्यतः दो तथ्यों से संबंधित हैं:

(i) किसी मस्जिद का स्थान, निर्माण और प्रारूप पर प्रभाव डालने वाली विशेषताएं; और

(ii) वैध समर्पण के लिए आवश्यकताएँ।

इस खंड में, तर्कों के प्रथम भाग में संबोधित किया गया है। क्या वाद 4 में एक अलग खंड में वैध समर्पण संबोधित होगा। श्री मिश्रा ने आग्रह किया कि

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बाबरी मस्जिद को वैध मस्जिद नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें स्थान, प्रारूप और निर्माण के संबंध में आवश्यक विशेषताओं का अभाव था।

70. वाद 4 में उच्च न्यायालय से पूर्व निम्नलिखित मुद्दों को विरचित किया गया था:

वाद 4 में मुद्दा सं. 1–जैसा कि वादीगणों द्वारा दावा किया गया था कि क्या प्रश्नगत भवन को वादपत्र से संलग्न रेखांकित नक्शे में एक मस्जिद के रूप में वर्णित किया गया था; यदि उत्तर सकारात्मक है तो:

(a) इसे कब और किसके द्वारा बनाया गया था–जैसा कि वादीगणों द्वारा कथित है कि इसे बाबर द्वारा निर्मित किया गया था या प्रतिवादी सं. 13 द्वारा कथित है कि इसे मीर बाकी द्वारा निर्मित किया गया था। और

(b) क्या भवन का निर्माण ध्वस्त करने के बाद एक कथित हिंदू मंदिर स्थल पर किया गया था, जैसा कि प्रतिवादी संख्या 13 द्वारा अभिकथित किया गया था, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव।

मुद्दा सं. 19(d)– क्या प्रश्नगत भवन में इस्लामिक कानून के तहत एक मस्जिद नहीं हो सकती, इस स्थिति में यह स्वीकार किया गया है कि इसमें मीनारें नहीं थीं।

मुद्दा सं. 19(e) – क्या प्रश्नगत भवन कानूनी रूप से एक मस्जिद नहीं हो सकती जैसा कि वादीगणों के रूप में स्वयं यह दर्शाते हैं कि यह तीन तरफ से कब्रिस्तान से घिरा हुआ था।

मुद्दा सं. 19(f) – क्या प्रश्नगत भवन के अंदर और बाहर के स्तंभों में हिंदू देवी–देवताओं की छवियां हैं। यदि यह निष्कर्ष सकारात्मक है तो क्या उस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रश्नगत भवन में इस्लाम के सिद्धांतों के तहत मस्जिद का स्वरूप नहीं हो सकता है।

71. प्रतिवादी सं. 20 का लिखित कथन इस दावे का आधार प्रदान करता है कि बाबरी मस्जिद ने इस्लामिक न्यायशास्त्र में एक मस्जिद के लिए आवश्यक विशेषताओं को पूरा या पालन नहीं किया है:

> "...(1) इस विवादित मस्जिद के मकबरे को यदि पीछे से देखना हो तो पता चलता है कि यह पंद्रहवीं शताब्दी में तुर्कियों द्वारा विकसित शैली में नहीं है और न ही उस शैली में मस्जिद का महराब पाया गया है। इस प्रकार विवादित मस्जिद में कोई मकबरा नहीं है जैसा कि अन्य मस्जिदों में सामान्यतया पाया जाता है।
>
> (2) उत्तरी दरवाजे पर एक दूसरे की ओर मुख किए हुए दो बाघ हैं। वे छलाँग लगाने की शैली में हैं और उनकी पूछँ उसी शैली में हैं जब एक बाघ छलांग लेता है। इन दोनों बाघों के बीच एक मोर है। यह मस्जिद की विशेषता नहीं है।
>
> (3) विभिन्न हिंदू मूर्तियाँ चित्रित है या उनके उत्कीर्ण विवादित मस्जिद में पाए जाते हैं
>
> (4) विवादित मस्जिद में नमाज़ पढ़ने का कोई प्रावधान नहीं है। आज तक इसमें कोई मीनार नहीं हैं, वजू के लिए पानी के भंडारण का कोई स्थान नहीं है।
>
> (5) पवित्र कुरान में वर्णित मुस्लिम आस्था मंदिर को ध्वस्त करने के पश्चात् मंदिर स्थल पर मस्जिद के निर्माण की अनुज्ञा नहीं देती है।
>
> (6) बाबर ने कभी भी विवादित मस्जिद की सम्पत्ति अल्लाह को समर्पित नहीं की। यहां तक कि यह स्वीकार किए बिना मानना कि बाबर ने विवादित मस्जिद का निर्माण किया, फिर भी यह अतिचार करके, भगवान के निवास स्थान, मंदिर को ध्वस्त करके या तो बाबर द्वारा या अवध के प्रशासक मीर बाकी के इशारे पर किया गया है, समर्पण पूरी तरह से अवैध और शून्य है। पुराने मंदिर की सामग्री बड़े पैमाने पर मस्जिद के निर्माण में काम में ली गयी थी और कुछ मूल स्तम्भ अभी भी अच्छे संरक्षण में हैं। वे विभिन्न हिंदी

नक्कासी(बस–रिलीफ्स) को धारण किए हुए काले पत्थर (कसौटी) के हैं। मुख्य संरचना की बाहरी बीम, चंदन की लकड़ी की है, स्तंभों की ऊंचाई 7 से 8 फीट है, आधार का आकार, मध्य खंड और शिखर(कैपिटल) वर्गाकार है, बाकी गोल या अष्टभुजाकार है। ... ... बाद में औरंगजेब ने अयोध्या के मंदिरों को भी अपवित्र कर दिया जिससे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच लंबे समय तक कटुता फैल गई। बाद में जन्मस्थान पर बलपूर्वक कब्जा भी कर लिया और हनुमानगढ़ी पर भी हमला कर दिया। मौलवी अमीर अली के नेतृत्व में हमले और जवाबी हमला जारी रहा।(फैजाबाद गजेटियर 1960 का पेज 352 देखें)

(7) मस्जिद को प्रशांति के स्थान पर और ऐसे स्थान के पास बनाया जाना चाहिए जहां विशाल और बड़ी संख्या में मुस्लिम जनसंख्या हो। इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार एक मस्जिद का निर्माण उस स्थान पर नहीं किया जा सकता जो मंदिरों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ हो, जहां संगीत की ध्वनि, शंख या घण्टा घरियाल हमेशा उस स्थान की प्रशांति को भंग करते हो।

(8) एक मस्जिद में अज़ान को बुलाने के लिए मीनार होनी चाहिए। बैले के अनुसार "जब इबादत करने वालों की एक सभा मस्जिद में अनुमति के साथ प्रार्थना करती है, अर्थात् अभिव्यक्ति(डिलेवरी)। लेकिन यह एक शर्त है कि प्रार्थना अज़ान या नियमित बुलावे के साथ होती है और सार्वजनिक होती है और निजी नहीं होती है, हालांकि इसके लिए एक सभा होनी चाहिए, फिर भी अगर यह इज़ाह के बिना है और प्रार्थना सार्वजनिक के बजाय निजी है, तो सच्चे अनुयायिओं के अनुसार वह स्थान कोई मस्जिद नहीं है।" वास्तव में पहली अर्द्धसदी की लड़ाई के बाद एक मीनार के बिना कोई मस्जिद नहीं है। (पी. आर. गणपति अय्यर का लॉ रिलेंटिंग टू हिन्दू और मोहम्डन एन्डाउमेन्ट्स, द्वितीय संस्करण, अध्याय 1918, पृष्ठ 388 देखिए)।

(9) वर्तमान वाद में मुस्लिमों द्वारा किए गए दावे के अनुसार, भवन बगल से कब्रिस्तान से घिरा हुआ है जिसे गंज शाहिदान कहा जाता है। फैजाबाद गजेटियर में भी जनमस्थान के गेट पर पचहत्तर मुसलमानों के दफन और 1855 की लड़ाई के बाद गंज शाहिदान के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नाम से जाने जाने वाले स्थान का उल्लेख है। यद्यपि श्री राम जन्मभूमि या इसके अहाते या संबंधित क्षेत्र में पिछले 50 वर्षों से अधिक समय से भवन के पास कहीं भी कोई कब्रें नहीं हैं और यदि भवन ब्रिटिश समय के दौरान एक कब्रिस्तान से घिरा हुआ था, तो उनके द्वारा अवध के विलय के थोड़े समय बाद भवन मस्जिद नहीं हो सकता है और अंतिम संस्कार की प्रार्थनाओं को छोड़कर प्रार्थना करने के लिए एक मस्जिद के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है।"

72. उपरोक्त चुनौती को कुछ मुस्लिम गवाहों के साक्ष्य का अवलम्बन लेते हुए सबल करने की मांग की गई है। इन गवाहों के बयानों के प्रासंगिक हिस्सों को सुनवाई के दौरान ध्यान आकर्षित किया गया है और नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

(i) मोहम्मद इदरीस (पी डब्ल्यू–10)

गवाह के अनुसार:

"बल द्वारा बनाई गई किसी भूमि पर निर्मित भवन मस्जिद नहीं होगी। इसलिए, इसके वैध या नाजायज होने का कोई सवाल ही नहीं है। इस्लाम में पूजा स्थल को ध्वस्त करना निषिद्ध है। इसलिए, इसको तोड़ने और इसके बदले एक मस्जिद बनाने का कोई सवाल ही नहीं है। यदि किसी भी गिरे हुए मंदिर का मलबा उसके मालिक द्वारा बेचा जाता है, तो ऐसी सामग्री खरीदकर मस्जिद के निर्माण पर कोई रोक नहीं है। यह एक और बात है कि वे इस मलबे को जबरन हथियाकर एक मस्जिद का निर्माण नहीं कर सकते।"

मनुष्य, जानवरों, पक्षियों या मूर्तियों की छवियों के चित्रण पर, गवाह ने कहा:

"यदि किसी इमाम को यह ज्ञान है कि पशुओं और पक्षियों के चित्र, देवप्रतिमा या मनुष्यों की मूर्तियों या प्रतिमाओं के चित्र, या किसी भी स्त्री की सीधी या कुटिल छवियां या प्रतिमाएं किसी भी संरचना में उकेरी गयी हैं, तो वह नमाज़ अदा करने से पहले इस तरह के उत्कीर्ण को हटाने करने का प्रयास करेगा। लेकिन अगर वह ऐसा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं करता, तब भी नमाज अदा होगी। मैंने पहले ही ऐसी नमाज की स्थिति और प्रभावकारिता के बारे में बात की है। कुछ परिस्थितियों में यह मकरूह होगा और कुछ परिस्थितियों में ऐसा नहीं होगा। यदि इमाम इस प्रकार के चित्रों और आकृतियों को हटाने की कोशिश नहीं करते है, तो यह उसकी ओर से अपराध होगा। इसी प्रकार 'शरीयत' में यह भी उल्लेख किया गया है कि यदि मस्जिद की दीवारों या स्तंभों पर किसी भी जीव का चित्र या मूर्ति मौजूद है, तो वहाँ भी अदा की गयी नवाज कुछ स्थितियों में मकरूह (अवांछनीय) होगा। 'फिक़ह' की 'हिदाया' में इसका उल्लेख मिलता है।"

(ii) मोहम्मद बुरहानुद्दीन (PW–11)

"यह सच है कि किसी और की जमीन पर जबरदस्ती मस्जिद बनाने पर प्रतिबंध है। यदि किसी भूमि पर किसी का स्वामित्व साबित है, तो मालिक की सहमति के अभाव में मस्जिद का निर्माण नहीं किया जाएगा।... यदि कोई संपत्ति गैर –मुस्लिम या यहां तक कि एक मुस्लिम की है, तो किसी भी परिस्थिति में उसको ध्वस्त करके मस्जिद को जबरन वहां नहीं बनाया जा सकता है। यदि यह साबित हो जाता है, तो मस्जिद को विधिक/उचित नहीं माना जाएगा।"

गवाह ने स्वयं को स्वच्छ करने का कार्य या वजू की व्यवस्था के बारे में बताया:

'तैमूम' (वजू का विकल्प) करके भी नमाज अदा की जा सकती है, यदि 'वजू' नहीं किया गया है और मस्जिद में 'वज़ू' करने की कोई व्यवस्था नहीं है और पानी भी दूर के स्थानों पर भी दस्तयाब(उपलब्ध) नहीं है।... मैंने ऐसी मस्जिदों को भी देखा है जहां 'वज़ू' करने की कोई व्यवस्था नहीं थी।"

मानव और अन्य छवियों पर, गवाह ने कहा:

"जब कोई भी मुस्लिम एक मस्जिद का निर्माण नए सिरे से करेगा, तो वह किसी भी जीवित व्यक्ति की तस्वीर नहीं लगायेगा, चाहे वह पशु–पक्षी हो या पुरुष–स्त्री हो या देवता–देवता हो, जिसे उसके अंदर दर्शाया गया हो और यदि वह ऐसा करता है, तो वह एक

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> अपराधी होगा। हालाँकि, इसे अभी भी एक मस्जिद कहा जाएगा यदि अन्य 'शरायत' को अवलोकन किया जाता है।"

इस बात पर कि किसी इमारत के विध्वंस पर मस्जिद का निर्माण किया जा सकता है, गवाह ने कहा:

> "यह सच है पैगम्बर के 'इहकाम'(अनुमोदन) के अनुसार यदि किसी भी इमारत को ध्वस्त कर दिया जाता है और मस्जिद को उसके मलबे से बनाया जाता है, तो वह मकरूह(आवंछनीय) है।"

(iii) मो खालिद नादवी (पीडब्ल्यू–22)

गवाह ने कहा:

> "यह सच है कि किसी भी धर्म से संबंधित पूजा स्थल को जबरन ध्वस्त करके एक मस्जिद का निर्माण नहीं किया जाएगा। इसी तरह इसका निर्माण किसी अन्य धर्म से संबंधित पूजा स्थल को जबरन हड़पकर नहीं किया जा सकता है।"

साक्षी के अनुसार, यदि किसी विशेष धर्म से संबंधित पूजा का स्थान ध्वस्त हो जाता है, तो यह उस आस्था के लिए पूजा का स्थान रहेगा और यदि यह साबित हुआ कि एक विवादित स्थल पर एक मंदिर को मस्जिद के निर्माण के लिए जबरन ध्वस्त कर दिया गया था, तो मंदिर को मंदिर के रूप में माना जाता रहेगा:

> "यह कहना सही है कि यदि किसी विशेष धर्म से संबंधित पूजा का स्थान ध्वस्त हो जाता है, तो यह उस आस्था से ही संबंधित पूजा का स्थान रहेगा। यह कहना सही है कि मंदिर अपना चरित्र नहीं खोएगा और मस्जिद बनाने के लिए ध्वस्त होने पर भी मंदिर बने रहेगा। यदि किसी मस्जिद को ध्वस्त कर दिया जाता है और उसके स्थान पर एक मंदिर का निर्माण किया जाता है, तो मस्जिद मस्जिद बनी रहेगी। यदि यह साबित हो जाता है कि विवादित स्थल पर एक मंदिर था, जिसे जबरन ध्वस्त कर दिया गया था, तो ऐसे मंदिर को मंदिर के रूप में माना जाएगा।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) शिया सम्प्रदाय के सिबते मो. नकवी (PW–25)

गवाह के अनुसार:

> "vii. एक स्थान पर दो पृथक उपासना भवन या दो धर्म विद्यमान नहीं हो सकते हैं।
>
> xv. मस्जिद में चित्रों वाले डिजाइन किए गए कपड़ों की तरह ही प्रतिबिंब, तस्वीर, चित्र, मूर्तियाँ आदि का भी निषेध है।
>
> xvii. संगीत के उपकरण अर्थात् घंटी आदि मस्जिद या उसके आसपास के क्षेत्र में स्वीकार्य नहीं है।
>
> xviii. जहां घंटी बजती है या शंख बजाये जाते हैं, वहां प्रार्थना नहीं की जाती।"

73. श्रीमान मिश्रा ने हदीस के शब्दों पर निर्भरता रखते हुए आग्रह किया कि इस्लामी कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण सिद्धांतों का उल्लंघन था:

(i) अज़ान को दिन में कम से कम दो बार बुलाया जाना चाहिए;

(ii) मस्जिद में वज़ू या स्वयं को धुलने का स्थान होना चाहिए;

(iii) मस्जिद में मूर्तियों, फूलों की डिजाइन या मानव रूप की दृश्य प्रतिमाएं नहीं होनी चाहिए;

(iv) मस्जिद के चारों ओर या उसके आसपास के क्षेत्र में घंटी बजाने की अनुज्ञा नहीं है;

(v) भूमि के एक भूखंड पर, दो धार्मिक स्थान अनुज्ञेय नहीं हैं;

(vi) मस्जिद में या उसकी निकटता में रसोईघर में भोजन तैयार करने की अनुमति नहीं है;

(vii) मस्जिद के निर्माण के लिए भूमि हड़पी हुई नहीं होनी चाहिए; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(viii) कोई कब्र मस्जिद की निकटता में स्थित नहीं होनी चाहिए।

इन तर्कों को वाद 4 में वादी की ओर से पेश विद्वत अधिवक्ता श्री मोहम्मद निजामुद्दीन पाशा द्वारा अपने मौखिक तर्कों के दौरान और लिखित तर्कों दोनों में अस्वीकार किया गया है। श्री पाशा ने आग्रह किया:

(i) इस प्रश्न पर कि क्या वज़ू मस्जिद में आवश्यक है:

(क) बाबरी मस्जिद के पास वज़ू के लिए चिन्हित एक विशिष्ट स्थान था;

(ख) हदीस के अनुसार किसी प्रसंग में, मस्जिद में आने से पूर्व घर पर वज़ू करना श्रेयस्कर है;

(ग) हदीस, जिसका हवाला दिया गया है, कहता है कि शुक्रवार को स्नान करना अनिवार्य है या इंगित करता है कि वज़ू कैसे किया जाना है;

(ii) इस प्रश्न पर कि क्या तस्वीरें या चित्रण किसी मस्जिद के चरित्र से अलग हैं:

(क) प्रतिषेध का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि उपासक प्रार्थना से अलग न रहे;

(ख) एक मुसलमान यह दावा कर सकता है कि तस्वीर प्रार्थना में विघ्न डाल रही है, कोई बाहरी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता है कि मस्जिद में छवियों की उपस्थिति के कारण प्रार्थना मकरूह है; और

(ग) निर्जीव वस्तुओं के चित्र विशेष रूप से अस्वीकृत नहीं किए जाते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) मीनारों के सम्बन्ध में:

(क) इस्लाम की पहली मस्जिद में न तो गुम्बद थे न ही मीनारें थीं; और

(ख) बड़ी संख्या में मस्जिदों में, उस अवधि सहित, मीनारें नहीं हैं।

(iv) पिलर/स्तंभों की उपस्थिति पर कोई पूर्ण व्यादेश नहीं है;

(v) एक भूमि में दो क़िबला नहीं हो सकते हैं। यह हदीस की गलत व्याख्या है जिसका अर्थ है कि राज्य में दो धर्म नहीं हो सकते।

(vi) इस दावे पर कि पास में घंटी नहीं होनी चाहिए:

(क) किसी जनसंख्या वाले शहर में व्यावहारिक रूप में ऐसे व्यादेश का पालन किए जाने में असमर्थ है;

(ख) मंदिरों के आसपास के मस्जिदों और घंटियों का बजना भारत में असामान्य नहीं था; और

(ग) इस्लाम का सूफ़ी विचार अन्य धर्मों का अधिक अनुकूलक है।

(vii) कब्रों की उपस्थिति के संबंध में, 1885 के वादपत्र में संलग्न नक्शे से पता चलता है कि मस्जिद के पश्चिमी मुख के सामने कोई कब्रें नहीं हैं। हदीस इंगित करता है कि कब्र की ओर मुख करके नमाज अदा नहीं करनी चाहिए; और

(viii) किसी भी मामले में जो कब्रों के संबंध में स्वीकार्य है या नहीं है, यह सूफियों और वहाबी के मध्य बहुत विवादित है जो इस बिन्दु पर धुर विरोधी हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अंत में, श्री पाशा ने तर्क दिया कि 'मकरूह' की अवधारणा का अर्थ कुछ ऐसा है जो अवांछनीय है, लेकिन निषिद्ध नहीं है , यह एक विशुद्ध आध्यात्मिक विचार है जो सर्वशक्तिमान अल्लाह को आराधना प्रिय बनाता है।

श्री पाशा ने श्री मिश्रा द्वारा दी गई व्याख्या को खारिज करते हुए इंगित किया है कि श्री मिश्रा ने समग्र रूप से और उनके संदर्भ में धार्मिक ग्रंथों को पढ़े बिना हदीस के कुछ पहलुओं पर चुनिंदा रूप से भरोसा जताया है।

74. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवलोकन किया कि सम्राट के रूप में बाबर के पास एक स्वतंत्र संप्रभु के रूप में पूर्ण शक्ति थी:

> "3389.... हमारे विचार में, बाबर की स्थिति सर्वोच्च शक्ति रखने वाले स्वतंत्र प्रभुसत्ता सम्पन्न सम्राट की थी। यह सर्वोच्च , अनियंत्रित और निरपेक्ष था, किसी के प्रति जवाबदेह नहीं था। चाहे आक्रमणकारी हो या कुछ और, तथ्य यह है कि वह उस क्षेत्र का सर्वोच्च अधिकारी था जिसे उसने जीता था। कोई उसे प्रश्नगत नहीं कर सकता था।"

न्यायाधीश ने अवलोकन किया कि "क्या विवादास्पद इमारत एक मस्जिद है, एक मस्जिद माना जाता है, एक मस्जिद होने का विश्वास किया जाता है और मस्जिद के रूप में प्रयोग किया जाता है, को शरीयत के सिद्धांतों के संदर्भ में नहीं बल्कि समय काल में लोगों के अनुसार कैसे विश्वास किया जाता है और अपना आचरण किया जाता है, के रूप में निर्णीत किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि क्या मुसलमानों ने इसके निर्माण के तुरंत बाद मस्जिद का इस्तेमाल इबादत करने के लिए किया था, किसी भी तरह से साबित नहीं किया गया था, लेकिन यह संकेत देने के लिए सबूत थे कि 1856–57 में विभाजन की दीवार स्थापित होने के बाद मुसलमान नमाज अदा करने के लिए मस्जिद गये थे। क्या नमाज अदा हुई थी, साबित नहीं

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हुई थी, लेकिन यह स्थापित किया गया था कि 1857 से, 16 दिसंबर 1949 को अंदरूनी आंगन में अंतिम नमाज अदा करने तक मुसलमान इबादत करने के लिए मस्जिद गये थे। इसलिए, क्या भवन शरीयत के सिद्धांतों के अनुसार एक मस्जिद हो सकती है, इसका कोई महत्व नहीं था चूँकि उन लोगों का आचरण जिन्होंने विश्वास किया और पूजा की, वे प्रश्नगत संपत्ति के प्रयोग और प्रकृति का निर्धारण करने के लिए निर्धारक कारक होंगे। बाबर या औरंगजेब (जिसने भी मस्जिद का निर्माण किया था) का अधिकार निरपेक्ष था और अदालत यह जांच नहीं कर सकती कि क्या मस्जिद का निर्माण शरीयत के सिद्धांतों के अनुसार या इसके विपरीत किया गया था:

> "3404... क्या बाबर या औरंगजेब या कोई और, वे सर्वोच्च प्राधिकारी थे। क्या उनकी कार्यवाही इस्लाम के सिद्धांतों के अनुरूप थी या नहीं, हमारे विचार में, इतनी शताब्दियों के बाद चुनौती देने योग्य नहीं है विशेष रूप से जब वे सर्वोच्च अधिकारी न्याय की किसी भी प्रणाली के अधीनस्थ नहीं थे। अन्यथा भी, हम इस बात की जांच नहीं कर सकते हैं कि क्या उन्होंने स्थान को मस्जिद के रूप में नामित कर सही या गलत तरीके से निर्माण किया है, खासकर जब कम से कम स्थानीय लोग प्रतिनिधित्व से विश्वास करते हैं, जो भी हो, जो निर्माण किया गया है, वह एक मस्जिद का है।"

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के दृष्टिकोंण में:

> "3405. जो कुछ लगभग 200 से अधिक वर्षों में हुआ, हम स्पष्ट रूप से इस दृष्टिकोण पर हैं, इस न्यायालय की न्यायिक जांच का विषय नहीं हो सकता है, जो संविधि की रचना है जो प्रणाली में विवादित भवन के संभवतः निर्माण के लगभग सौ से अधिक वर्षों के बाद अस्तित्व में आयी। सभी विशेषज्ञ धार्मिक गवाहों ने स्वीकार किया है कि यदि एक मस्जिद का निर्माण किया जाता है, तो जीवित प्राणियों की तस्वीर या

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

छवियों जैसे मानव छवियों या जानवारों की छवियों को वहां बने रहने की अनुमति नहीं दी जाएगी। विवादित इमारत के निर्माता ने अन्यथा सोचा, फिर भी इस्लाम के अनुयायियों ने नमाज़ के उद्देश्य से परिसर का उपयोग करने में संकोच नहीं किया। क्या ऐसे व्यक्तियों का विश्वास, जो इस तरह की इबादत के लिए परिसर जाते थे, श्रेष्ठ है या हीन है, क्या नमाज़ नियमित या लगातार या कभी–कभार और समयान्तराल पर होती थी, इसका कोई परिणाम नहीं होगा। पर्याप्त होगी यदि मुस्लिम द्वारा नमाज़ होती थी। विवादित भवन को यह जानते हुए कि यह एक मस्जिद है, हिन्दूओं द्वारा पूजा करना कुछ और है लेकिन उस आधार पर जिस तरह से विवादित भवन को पिछले लगभग 250 वर्षों से अधिक जाना जाता है बदला नहीं जा सकता है।"

1860 से 16 दिसंबर 1949 तक हालांकि समयान्तराल पर, मुसलमानों द्वारा नमाज अदा करना उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण थी।

75. उपरोक्त दृष्टिकोण का विरोध करते हुए, श्री मिश्रा द्वारा यह आग्रह किया गया है कि उच्च न्यायालय का संप्रेक्षण असतर्कता के कारण है और यह कि अवध कानून अधिनियम 1876 की धारा 3 के संदर्भ में, धार्मिक उपयोग या संस्थानों के मामलों पर निर्णय इस्लामी कानून या, जैसा भी मामला हो, हिंदू कानून के अनुसार तय किया जाना चाहिए।

76. अनिवार्य रूप से, इस न्यायालय के समक्ष जिन तर्कों का आग्रह किया गया है, उन्हें यह पता करने के लिए धर्मशास्त्रीय सिद्धांत की यात्रा शुरू करने और सिद्धांत को लागू करने की आवश्यकता है कि क्या मस्जिद के स्थान या निर्माण के लिए हदीस द्वारा निर्धारित विशेषताओं में से प्रत्येक एक को पूरा किया गया है।

77. तर्कों के दौरान, यह निकलकर आया है कि श्री पी एन मिश्रा द्वारा वर्णित इस्लाम का चरम और यहां तक कि पूर्ण दृष्टिकोण भी धर्मशास्त्र के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामले पर इस्लामिक कानून की एकमात्र उपलब्ध निर्वचन के रूप में सामने नहीं आता है। इसलिए, तथ्यों और परिस्थितियों के दिए गए सेट में, इस न्यायालय के लिए धर्मशास्त्र के क्षेत्र में प्रवेश करना और हदीस के व्याख्याकार की भूमिका ग्रहण करना अनुचित है। असली परीक्षण यह है कि जो लोग विश्वास और पूजा करते हैं, उन्हें उस स्थान के धार्मिक प्रभाव में विश्वास है जहां वे प्रार्थना करते हैं। किसी स्थान पर नमाज अदा करने में उपासक के आस्था और विश्वास को जो उपासकों के लिए एक मस्जिद है, को चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस न्यायालय के लिए इस आधार पर प्रश्न करना अतार्किंत होगा कि एक सच्चा मुस्लिम उस स्थान पर इबादत नहीं करेगा जो श्री मिश्रा द्वारा चुनिंदा रूप से दिए गए सिद्धांत की चरम व्याख्या को पूरा नहीं करता है। इस न्यायालय को, एक धर्मनिरपेक्ष संस्थान के रूप में, एक संवैधानिक शासन के तहत स्थापित किया गया है, जिसे धर्मशास्त्रीय सिद्धांत की कई संभावित व्याख्याओं में से एक को चुनने से बचना चाहिए और उपासक के विश्वास और आस्था को स्वीकार करने के सुरक्षित रास्ते को स्थगित करना चाहिए।

उपरोक्त सभी, धर्म का पालन संस्कृति और सामाजिक संदर्भ के अनुसार बदलता रहता है, इस्लाम कोई अपवाद नहीं है। यह वास्तव में हमारे बहुल समाज की ताकत है। सांस्कृतिक समावेशन एक महत्वपूर्ण कारक है जो धर्म के पालन के तरीके को आकार देता है। भारत में प्रचलित धार्मिक आस्थाओं की बहुलता में, सांस्कृतिक समावेशन को धार्मिक सिद्धांत की विनाशकारी विशेषता के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसके विपरीत, यह प्रक्रिया उस देश के वास्तविक चरित्र को मजबूत और पुष्ट करती है जो धार्मिक आस्थाओं

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और विचारों की विविधता को समायोजित, सहिष्णु और सम्मान द्वारा अपनी एकता को संरक्षित करने में सक्षम है। श्री मिश्रा द्वारा प्रस्तुत तर्कों को खारिज करने में कोई संकोच नहीं हो सकता है। हमारा न्यायालय एक संवैधानिक आदेश से अपने अस्तित्व पर आधारित है। हमें पूर्ण और चरम रूप में धार्मिक सिद्धांत की व्याख्या करने और उपासकों की आस्था पर सवाल उठाने के लिए अदालत को प्रभावित करने के किसी भी प्रयास को दृढ़ता से अस्वीकार करना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 25 में अंतर्निहित मूल्यों के विनाश के रूप में कुछ नहीं होगा।

I. उपासना स्थल अधिनियम

78. संसद ने उपासना स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1991[33] अधिनियमित किया। इस अधिनियम की धारा 3, धारा 6 और धारा 8 के उपबंध अधिनियमन की तिथि (18 सितम्बर 1991) को तुरंत प्रवृत्त हुए जबकि इसके शेष उपबंध 11 जुलाई, 1991 को प्रवृत्त हुए माने जाते हैं। प्रमुख शीर्षक कानून बनाने में संसद की मंशा को उजागर करता है, यह इसके लिए है:

> "किसी उपासना स्थल का संपरिवर्तन प्रतिषिद्ध करने के लिए और 15 अगस्त, 1947 को यथाविद्यमान किसी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप को बनाए रखने तथा उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम"

दो उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कानून बनाया गया है। पहले, यह उपासना के किसी स्थान के संपरिवर्तन पर रोक लगाता है। ऐसा करने में, यह भविष्य में यह अनिवार्य बनाता है कि सार्वजनिक उपासना स्थल के स्वरूप को

---

33 "उपासना स्थल अधिनियम"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बदला नहीं जाएगा। दूसरा, यह 15 अगस्त 1947 को, जब भारत ने औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्त की थी, यथाविद्यमान कानून उपासना के प्रत्येक स्थान के धार्मिक स्वरूप को बनाए रखने के लिए एक सकारात्मक दायित्व देना चाहता है।

79. 'उपासना स्थल' को धारा 2 (ग) में परिभाषित किया गया है:

> "2(ग) "उपासना स्थल" से कोई मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, गिरजाघर, मठ या किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके अनुभाग का, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, लोक धार्मिक उपासना का कोई अन्य स्थल अभिप्रेत है।"

धारा 2(क) में उपासना स्थल अधिनियम प्रावधान करता है कि "इस अधिनियम का प्रारंभ" का अर्थ 11 जुलाई 1991 को प्रारंभ है।

धारा 3 किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग के किसी उपासना स्थल को किसी अन्य धार्मिक संप्रदाय या उसी धार्मिक संप्रदाय के किसी अन्य पंथ में संपरिवर्तन पर रोक लगाता है:

> "3. उपासना स्थलों के संपरिवर्तन का वर्जन–कोई भी व्यक्ति किसी धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग के किसी उपासना स्थल का उसी धार्मिक संप्रदाय के भिन्न अनुभाग के या किसी भिन्न धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग के उपासना स्थल में संपरिवर्तन नहीं करेगा।"

धारा 4, 15 अगस्त 1947 को यथाविद्यमान उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप को संरक्षित करती है:

> "4. कतिपय उपासना स्थलों के धार्मिक स्वरूप के बारे में घोषणा और न्यायालयों, आदि की अधिकारिता का वर्जन–(1) **यह एतद्वारा घोषित किया जाता है कि 15 अगस्त 1947 को विद्यमान उपासना स्थल का धार्मिक स्वरूप वैसा ही बना रहेगा जैसा वह उस दिन विद्यमान था।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(2) यदि इस अधिनियम के प्रारंभ पर, **15 अगस्त 1947 को विद्यमान किसी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप के संपरिवर्तन के बारे में कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष लम्बित है तो वह उपशमित हो जाएगी** और ऐसे किसी मामले की बाबत कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही ऐसे प्रारंभ पर या उसके पश्चात् किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष नहीं होगी:

परंतु **यदि इस आधार पर कि ऐसे किसी स्थल के धार्मिक स्वरूप में 15 अगस्त 1947 के पश्चात् संपरिवर्तन हुआ है, संस्थित या दायर किया गया कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित है, तो ऐसा वाद, अपील या अन्य कार्यवाही इस प्रकार उपशमित नहीं होगी** और ऐसे प्रत्येक वाद, अपील या अन्य कार्यवाही का निपटारा उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) की कोई बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी, –

(क) उक्त उप–धाराओं में निर्दिष्ट कोई उपासना स्थल, जो प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1958 (1958 का 24) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अन्तर्गत आने वाला कोई प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक या कोई पुरातत्वीय स्थल या अवशेष है;

(ख) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी मामले की बाबत कोई वाद, अपील या अन्य कार्यवाही, जिसका इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चय, परिनिर्धारण या निपटारा कर दिया गया है;

(ग) ऐसे किसी मामले के बारे में कोई विवाद जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व पक्षकारों द्वारा आपस में तय हो गया है;

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(घ) ऐसे किसी स्थल का कोई संपरिवर्तन जो ऐसे प्रारंभ के पूर्व रजामंदी द्वारा किया गया है;

(ङ) ऐसे प्रारंभ के पूर्व ऐसे किसी स्थल का किया गया कोई संपरिवर्तन, जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष चुनौती देने योग्य नहीं है।

(प्रभाव वर्धित)

उपासना स्थल अधिनियम में उपासना स्थल जिसे "आमतौर पर राम जन्म भूमि– बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है" और इससे सम्बन्धित किसी वाद, अपील या कार्यवाही पर इसके प्रावधानों की प्रयोज्यता से छूट है। धारा 5 निर्धारित करती है:

"5.अधिनियम का राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद को लागू न होना–इस अधिनियम की कोई बात उत्तर प्रदेश राज्य के अयोध्या में स्थित राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद के रूप में सामान्यतया ज्ञात स्थान या उपासना स्थल को और उक्त स्थान या उपासना स्थल से संबंधित किसी वाद, अपील या अन्य कार्यवाही को लागू नहीं होगी।"

धारा 6 में धारा 3 के उपबंधों का उल्लंघन करने और उपशमन के कार्य या प्रयास के लिए तीन वर्ष के कारावास और अर्थ दण्ड़ का उपबंध है:

"6. धारा 3 के उल्लंघन के लिए दंड–(1) जो कोई धारा 3 के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक ही हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

(2) जो कोई उपधारा (1) के अधीन दंडनीय कोई अपराध करने का प्रयत्न करेगा या ऐसा अपराध कराएगा और ऐसे प्रयत्न में अपराध करने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की दिशा में कोई कार्य करेगा, वह उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा।

(3) जो कोई उपधारा (1) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का दुष्प्रेरण करेगा या उसे करने में आपराधिक षड्यंत्र का पक्षकार होगा, चाहे ऐसा अपराध ऐसी दुष्प्रेरणा के परिणामस्वरूप या ऐसे आपराधिक षड्यंत्र के अनुसरण में किया गया हो या न किया गया हो, वह भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 116 में किसी बात के होते हुए भी, उस अपराध के लिए उपबंधित दंड से दंडनीय होगा।"

धारा 7 उपासना स्थल अधिनियम को अध्यारोही बल और प्रभाव प्रदान करती है:

"7. अधिनियम का अन्य अधिनियमितियों पर अध्यारोही होना–इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे।"

80. कानून दो अटल और अनिवार्य मानदंड लागू करता है:

(i) धारा 3 द्वारा किसी धार्मिक संप्रदाय या किसी संप्रदाय के किसी वर्ग की उपासना स्थल का उसी धार्मिक संप्रदाय के किसी भिन्न वर्ग की या किसी विशिष्ट धार्मिक संप्रदाय की उपासना स्थल में संपरिवर्तन पर वर्जन अधिरोपित किया जाता है। सभी धर्मों और संप्रदायों की सार्वजनिक धार्मिक उपासना स्थलों को शामिल करने के लिए "उपासना स्थल" अभिव्यक्ति व्यापक संभव शब्दों में परिभाषित किया गया है; और

(ii) विधि उपासना के प्रत्येक स्थान के धार्मिक स्वरूप को, जैसा वह 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान था, बनाए रखती है। इस प्रयोजन को प्राप्त करने के लिए, यह 15 अगस्त, 1947 को विद्यमान उपासना के किसी स्थान के धार्मिक स्वरूप के संपरिवर्तन के संबंध में वादों और विधिक

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्यवाहियों के उपशमन का उपबंध करता है इसके साथ ही, उपासना स्थल अधिनियम नए मुकदमों या कानूनी कार्यवाही के संस्थन पर वर्जन लगाती है। एकमात्र अपवाद इस आधार पर विधि के प्रारंभ पर लंबित वादों, अपीलों या कार्यवाहियों के मामले में है कि उपासना स्थल का संपरिवर्तन 15 अगस्त 1947 के पश्चात् हुआ था। धारा 4 की उपधारा (2) का परंतुक उन वादों, अपीलों और विधिक कार्यवाहियों को बचाता (व्यावृति करता) है जो अधिनियम के प्रारंभ की तारीख पर लंबित हैं यदि वे निर्दिष्ट तिथि के पश्चात् उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप के संपरिवर्तन से संबंधित हैं। धारा 4 की उप–धारा (3) हालांकि यह निर्धारित करती है कि पिछले दो उप–खंड लागू नहीं होंगे:

(क) 1958 के अधिनियम 24 या किसी अन्य विधि द्वारा शासित प्राचीन और ऐतिहासिक स्मारक या पुरातत्व स्थल या अवशेष;

(ख) कोई वाद या विधिक कार्यवाही, जिसका अंतिम रूप से निर्णयन, तय या निपटारा किया गया है;

(ग) कोई विवाद जो अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व पक्षकारों द्वारा सुलझाया गया है;

(घ) अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व सम्मति द्वारा उपासना स्थल का संपरिवर्तन; और

(ड़) अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व, उपासना स्थल का कोई संपरिवर्तन जिसके संबंध में वाद हेतूक परिसीमा से वर्जित होगा।

धारा 5 निर्धारित करता है कि अधिनियम राम जन्मभूमि–बाबरी मस्जिद और उससे संबंधित किसी वाद, अपील या कार्यवाही पर लागू नहीं होगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नतीजन, एक विशिष्ट अपवाद है जिसे वर्तमान विवाद के संबंध में उपासना स्थल अधिनियम के प्रावधानों द्वारा बनाया गया है।

संसद का आशय

81. 10 सितंबर 1991[34] को लोकसभा में केंद्रीय गृह मंत्री द्वारा कानून बनाने के उद्देश्य को समझाया गया:

> "हम इस विधेयक को प्रेम, शांति और सौहार्द की अपनी गौरवशाली परंपराओं को प्रदान करने और विकसित करने के एक उपाय के रूप में देखते हैं। ये परंपराएं एक सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं, जिस पर प्रत्येक भारतीय को बहुत गर्व है। **सभी आस्थाओं के लिए सहिष्णुता अनंत काल से हमारी महान सभ्यता की विशेषताएं हैं।**
>
> स्वतंत्रता से पहले की अवधि के दौरान, एकता, सौहार्द और परस्पर सम्मान की ये परंपराएं अत्यधिक तनाव में थीं, जब औपनिवेशिक सत्ता ने देश में सांप्रदायिक विभाजन को सक्रिय रूप से सृजित और प्रोत्साहित करने का प्रयास किया था। **स्वतंत्रता के बाद हमने अतीत के घावों को भरने की दिशा में प्रयास किया और** सांप्रदायिक एकता तथा अपने प्राचीन गौरव के प्रति सद्भावना की परंपराओं को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। हम बड़े पैमाने पर सफल भी हो चुके हैं, हालांकि यह स्वीकार किया जाना चाहिए, **कुछ दुर्भाग्यपूर्ण अवरोध हुए है।** ऐसे अवरोधों से हतोत्साहित होने के बजाय, भविष्य के लिए उनसे सबक लेना हमारा कर्तव्य और प्रतिबद्धता है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

केंद्रीय गृह मंत्री ने संकेत दिया कि जो कानून उपासना स्थल के जबरन संपरिवर्तन को प्रतिबंधित करना चाहता है, वह "नए विवादों को पैदा करने और पुराने विवादों को बढाने के लिए नहीं था, जो लोगों द्वारा लंबे समय से भुलाए गए थे... बल्कि उस उद्देश्य को प्राप्त करने को सुविधाजनाक बनाता है

---

34 लोक सभा वाद-विवाद, खंड V, सं. 41-49, पृष्ठ 448

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिसके लिए बनाया गया है।"[35] 15 अगस्त 1947 की निर्दिष्ट तारीख के समर्थन में बोलते हुए, एक सदस्य (श्रीमती मालिनी भट्टाचार्या) ने व्याख्या की[36]:

> "लेकिन मुझे लगता है कि यह 15 अगस्त 1947 निर्णायक है, क्योंकि उस तारीख को हमें अतीत और सभी के लिए इस तरह की बर्बरता को पीछे छोड़ते हुए एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और संप्रभु राज्य के रूप में उभरना था। उस तारीख से, हमने अपने आप को सुभिन्न भी किया....राज्य के रूप में जिसका कोई आधिकारिक धर्म नहीं है और जो सभी विभिन्न धार्मिक संप्रदायों को समान अधिकार देता है। इसलिए इससे पहले जो कुछ भी हुआ हो, हम सभी यह आशान्वित थे कि उस तारीख से अतीत में वापस जाना नहीं चाहिए।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

82. संसद द्वारा 1991 में अधिनियमित उपासना स्थल अधिनियम संविधान के मूलभूत मूल्यों की रक्षा और सुरक्षा करते हैं। प्रस्तावना विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, आस्था और उपासना की स्वतंत्रता की रक्षा करने की आवश्यकता को रेखांकित करती है। यह मानवीय गरिमा और भाईचारे पर बल देता है। सभी धार्मिक मतों की समानता के प्रति सहिष्णुता, सम्मान और स्वीकृति बंधुता का एक मौलिक नियम है। यह विशेष रूप से 12 सितंबर 1991 को राज्य सभा[37] के समक्ष अपने संबोधन के दौरान केंद्रीय गृह मंत्री द्वारा विशेष रूप से दिया गया था यह कहते हुए:

> "मै विश्वास करता हूँ कि भारत अपनी सभ्यता के लिए जाना जाता है और विश्व संस्कृति के लिए भारत का सबसे बड़ा सहयोग सहिष्णुता के प्रकार, समझ, समायोजन भावना का प्रकार और सर्वदेशीय दृष्टिकोंण है यह दिखाता है...

---

35 लोक सभा वाद विवाद, खण्ड़ v, सं. 41-49, पृष्ट 448

36 लोक सभा वाद विवाद, खण्ड़ v सं. 41-49, पृष्ट 443-444

37 राज्य सभा का वाद विवाद, खण्ड़ सीएलएक्स, पृष्ट 519-520 और 522

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> अद्वैत दर्शन... स्पष्ट कहता है कि ईश्वर और हमारे बीच कोई अंतर नहीं है। हमें यह अनुभव करना होगा कि ईश्वर केवल मस्जिद में या मन्दिर में ही नहीं है, बल्कि ईश्वर व्यक्ति के हृदय में है.....
>
> सभी यह समझ लें कि वह संविधान के प्रति अपनी निष्ठा रखते हैं, देश की एकता के प्रति निष्ठा रखते हैं: बाकी चीजें अतात्विक हैं।"

15 अगस्त 1947 को यथाविद्यमान सार्वजनिक उपासना स्थलों के धार्मिक स्वरूप के संरक्षण की गारंटी प्रदान करने और सार्वजनिक उपासना स्थल के संपरिवर्तन के खिलाफ, संसद ने निर्धारित किया कि औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता हर धार्मिक समुदाय को विश्वास प्रदान करके अतीत के अन्याय को ठीक करने के लिए एक संवैधानिक आधार प्रस्तुत करती है कि उनके उपासना स्थल संरक्षित किए जाएंगे और उनके स्वरूप में बदलाव नहीं किया जाएगा। कानून राज्य के साथ–साथ राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को भी संबोधित करता है। इसके मानदंड उन लोगों को बाध्य करते हैं जो हर स्तर पर राष्ट्र के मामलों को नियंत्रित करते हैं। वे मानदंड अनुच्छेद 51क के अधीन मूल कर्तव्यों को कार्यान्वित करते हैं और प्रत्येक नागरिक को भी सकारात्मक अधिदेश देते हैं। राज्य ने कानून बनाकर, संवैधानिक प्रतिबद्धता और पंथनिरपेक्षता व सभी धर्मों की समानता को बनाए रखने के लिए अपने संवैधानिक दायित्वों को लागू किया है, जो संविधान के मूलभूत विशेषताओं का एक भाग है। उपासना स्थल अधिनियम भारतीय संविधान के तहत पंथनिरपेक्षता के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को लागू करने के लिए एक निर्बाध दायित्व लागू करते हैं। इसलिए कानून भारतीय राजनीति की पंथनिरपेक्ष विशेषताओं की रक्षा के लिए बनाया गया एक विधायी साधन है, जो संविधान की मूल विशेषताओं में से एक है। गैर–पश्चगमन मौलिक संवैधानिक सिद्धांतों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की एक मूलभूत विशेषता है जिसमें पंथनिरपेक्षता एक मुख्य घटक है। इस प्रकार उपासना स्थल अधिनियम एक विधायी हस्तक्षेप है जो हमारे पंथनिरपेक्ष मूल्यों की एक अनिवार्य विशेषता के रूप में गैर –पश्चगमन को संरक्षित करता है।

संवैधानिक मूल्य के रूप में पंथनिरपेक्षता

83. एस आर बोम्मई बनाम भारत संघ[38] में इस न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ के फैसले में, जस्टिस बीपी जीवन रेड्डी ने अवधारित किया:

> "304.... सामाजिक न्याय, विश्वास, आस्था या उपासना की स्वतंत्रता और स्थिति और अवसर की समानता के सांविधानिक वादे को कैसे प्राप्त किया जाये जब तक कि राज्य अपने विचार से व्यक्ति के धर्म, आस्था या विश्वास को हुए कुल मिलाकर उसके अधिकारों, उसके कर्तव्यों और उसके अधिकारों से परहेज करता है ? इस प्रकार धर्मनिरपेक्षता धार्मिक सहिष्णुता के निष्क्रिय रवैये से अधिक है। यह सभी धर्मों के समान व्यवहार की एक सकारात्मक अवधारणा है। इस दृष्टिकोण को कुछ लोगों ने धर्म के प्रति तटस्थता के रूप में या एक परोपकारी तटस्थता के रूप में वर्णित किया है। यह पश्चिमी उदारवादी विचार द्वारा विकसित एक अवधारणा हो सकती है या ऐसा हो सकता है, जैसा कि कुछ कहते हैं, समय के सभी बिंदुओं पर भारतीय लोगों के साथ एक स्थायी विश्वास हो सकता है। वह तात्विक नहीं है। तात्विक यह है कि यह एक संवैधानिक लक्ष्य है और संविधान का एक आधारभूत ढाँचा है जैसा कि केशवानंद भारती [केसवानंद भारती बनाम केरल राज्य, (1973) 4 एससीसी 225: 1973 सप्लीमेंट एससीआर 1] और इंदिरा एन. गांधी बनाम राज नारायण [1975 सप्लीमेंट एससीसी

---

38 (1994) 3 एससीसी 1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1: (1976) 2 एससीआर 347] में पुष्टि की गई। साधारण शब्दों में, इस संवैधानिक नीति से असंगत कोई भी कदम असंवैधानिक है।"

उपासना स्थल अधिनियम आंतरिक रूप से एक पंथनिरपेक्ष राज्य के दायित्वों से संबंधित हैं। यह सभी धर्मों की समानता के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। उपरोक्त सभी, उपासना स्थल अधिनियम एक सत्यनिष्ठ कर्तव्य की पुष्टि है जो सभी धर्मों की समानता को एक आवश्यक संवैधानिक मूल्य के रूप में संरक्षित और सुरक्षित करने के लिए राज्य पर डाला गया था, यह एक मानक है जो संविधान की एक मूलभूत विशेषता होने की प्रास्थिति रखता है। एक उद्देश्य उपासना स्थल अधिनियम के अधिनियमन में अंतर्निहित है। कानून हमारे इतिहास और राष्ट्र के भविष्य की बात करता है। जैसे कि हम अपने इतिहास से परिचित हैं और राष्ट्र को इसका सामना करने की जरूरत है, स्वतंत्रता अतीत के घावों को भरने के लिए एक निर्णायक क्षण था। ऐतिहासिक गलतियों को कानून को अपने हाथों में लेकर लोगों द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक उपासना स्थल के स्वरूप को संरक्षित करने में, संसद ने किसी अनिश्चित शब्दों में आदेश नहीं दिया है कि इतिहास और इसकी गलतियों का उपयोग वर्तमान और भविष्य का दमन करने के लिए साधन के रूप में नहीं किया जाएगा।

84. न्यायमूर्ति डी वी शर्मा द्वारा उपास्थना स्थल अधिनियम पर की गई टिप्पणियां कानून की योजना के विपरीत हैं क्योंकि वे संवैधानिक मूल्यों के ढांचे के लिए हैं। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने निम्न प्रकार अवलोकन किया:

"1 (ग). धारा 9 बहुत व्यापक है। किसी भी धार्मिक न्यायालयों की अनुपस्थिति में कोई भी धार्मिक विवाद संज्ञेय है, सिवाय बहुत ही दुर्लभ मामलों के, जहां मांगी गई उद्घोषणा धार्मिक कृत्य का गठन करती है। उपासना स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1991 उन मामलों को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं रोकती है जहां अधिनियम से पहले की अवधि के लिए घोषणा माँगी जाती है या उस अधिकार के प्रवर्तन के लिए हो जो अधिनियम के लागू होने से पहले मान्यता प्राप्त थी।"

न्यायमूर्ति डी वी शर्मा का उपरोक्त निष्कर्ष धारा 4(2) के प्रावधानों के बिल्कुल विपरीत है। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा उपरोक्त टिप्पणियों में मानते हैं कि उपासना स्थल अधिनियम निम्नलिखित प्रकृति के मामलों को चलाने से नहीं रोकेगी अर्थात्:

(i) जहां कोई घोषणा उपासना स्थल अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व की अवधि के लिए मांगी जाती है; या

(ii) जहां किसी अधिकार के प्रवर्तन की मांग की जाती है जिसे उपासना स्थल अधिनियम के प्रवर्तन के पूर्व मान्यता प्राप्त थी।

85. धारा 4(1) स्पष्ट रूप से निर्धारित करती है कि 15 अगस्त 1947 को विद्यमान उपासना स्थल का धार्मिक स्वरूप वैसा ही बनाए रखा जाएगा। धारा 4(2) विशेष रूप से इस बात पर विचार करती है कि 15 अगस्त 1947 को विद्यमान उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप के संपरिवर्तन के संबंध में, उपासना स्थल अधिनियम के प्रारम्भ की तिथि पर किसी न्यायालय, अधिकरण या प्राधिकारी के समक्ष लंबित सभी वाद, अपील और कानूनी कार्यवाही उपशमित हो जाएंगी और इस तरह के मामले के संबंध में कोई मुकदमा, अपील या कार्यवाही अधिनियम के प्रारम्भ होने के बाद नहीं रहेगा। उप–धारा (2) के परन्तुक में एकमात्र अपवाद यह है कि जहाँ एक वाद, अपील या कार्यवाही इस आधार पर संस्थित की जाती है कि उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप का संपरिवर्तन 15 अगस्त 1947 के बाद हुआ था और इस तरह की कार्यवाही उपासना स्थल अधिनियम के प्रारम्भ पर लंबित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थी। स्पष्ट रूप से, वैधानिक अधिदेश के बावजूद, न्यायमूर्ति डी वी शर्मा द्वारा जो अपवाद किया गया है, वह कानून की शर्तों के विपरीत है और इसलिए गलत है।

J. न्यायिक व्यक्तित्व

J.1 विधि का विकास

86. अपीलों के वर्तमान समूह में विधिक विवाद के केंद्र में सवाल यह है कि क्या वाद 5 में प्रथम व द्वितीय वादी– "भगवान श्री राम विराजमान" और "स्थान श्री राम जन्म भूमि, अयोध्या" अलग–अलग विधिक व्यक्तित्व रखते हैं या दूसरे शब्दों में "न्यायिक व्यक्ति" हैं। भारत के न्यायालयों ने माना है कि हिंदू मूर्तियाँ विधिक व्यक्ति हैं। इस निर्णय के दौरान इस सिद्धांत के अर्थ और महत्व की जांच की जाएगी। इस बिंदु पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि विवादित स्थल पर भगवान राम की भौतिक मूर्तियों द्वारा प्रतिनिधित्व के रूप में वाद 5 में प्रथम वादी('भगवान श्री राम विराजमान') का विधिक व्यक्तित्व किसी भी पक्षकार द्वारा विवादास्पद नहीं है। हालांकि क्या द्वितीय वादी ('स्थान श्री राम जन्म भूमि') एक न्यायिक व्यक्ति है, हमारे सामने मौखिक कार्यवाही में विवाद का विषय रहा है।

87. वर्तमान मामले में हमें दो महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर देने की आवश्यकता है: पहला, एक हिंदू मूर्ति को दिया गया विधिक व्यक्तित्व की सटीक आकृति क्या हैं? दूसरे शब्दों में, एक प्राकृतिक व्यक्ति के विधिक व्यक्तित्व के समान हिंदू मूर्ति को अदालतों द्वारा दी गई कृत्रिम विधिक व्यक्तित्व किस हद तक है? दूसरा, क्या एक मूर्त प्रकृति की संपत्ति (इस मामले में भूमि) को एक अलग विधिक व्यक्तित्व माना जा सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विधिक व्यक्तित्व को मान्यता देने या प्रदान करने के कानूनी नवाचार में अंतर्निहित दोनों वास्तविक उद्देश्य को समझना आवश्यक है और न्यायालयों ने हिंदू मूर्तियों को विधिक व्यक्तित्व को क्यों प्रदान किया है।

विधिक विषयः अधिकारों, स्वत्वों, कर्तव्यों और दायित्वो को मान्यता देना।

88. एक कानूनी प्रणाली का मूलभूत सिद्धांत यह है कि उसे उन विषयों को मान्यता देना होगा जिसे वह शासित करना चाहता है। यह कानून द्वारा भिन्न विधिक इकाइयों या 'विधिक व्यक्तियों' को मान्यता देने के लिए किया जाता है। विधिक व्यक्ति होने के लिए कानून द्वारा एक विषय के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए जो अधिकारों, स्वत्वों, दायित्वों और कर्तव्यों को समाविष्ट करता है। कानून विधिक व्यक्तियों के व्यवहार और एक दूसरे के संबंध में उनके व्यवहार को सीधे विनियमित कर सकता है। इसलिए एक विधिक व्यक्ति होने के लिए कानून के तहत कुछ अधिकारों और कर्तव्यों के अधिकारी होने और अन्य विधिक व्यक्तियों के साथ कानूनी रूप से प्रवर्तनीय करने योग्य संबंधों में संलग्न होने में सक्षम होना चाहिए। विधिक व्यक्ति कौन है या क्या है यह कानूनी प्रणाली का कार्य है। विधिक व्यक्तियों को बनाने या मान्यता देने की क्षमता हमेशा ऐतिहासिक परिस्थितियों के आधार पर भिन्न होती है। मान्यता देने के लिए कानूनी प्रणालियों की शक्ति और इसलिए विधिक व्यक्तित्व को अस्वीकार करने के लिए भी इतिहास में मानव अधिकारों के मौलिक उल्लंघनों को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया गया है। रॉस्को पाउण्ड "**विधिशास्त्र**" में निम्नलिखित उद्धरण में इसका उल्लेख करते हैं:

> "सभ्य भूमिओं में यहाँ तक कि आधुनिक दुनिया में भी ऐसा हुआ है कि सभी मनुष्य विधिक व्यक्ति नहीं थे। रोमन विधि में एंटोनियस पीज के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> संविधान तक गुलाम व्यक्ति नहीं थे। उन्हें न तो परिवार का अधिकार और न ही पैतृक सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था। वह एक वस्तु था, और जानवरों की तरह, संपत्ति के अधिकारों का विषय हो सकता था।.... फ्रांसीसी उपनिवेशों में, दासता को समाप्त करने से पहले, 23 अप्रैल 1833 के क़ानून द्वारा दासों को विधिक व्यक्तियों की श्रेणी में रखा गया था और 1845 के क़ानून द्वारा कुछ हद तक विस्तारित न्यायिक क्षमता प्राप्त की गई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में गृह युद्ध तक अनेक राज्यों में स्वतंत्र नीग्रों लोग बिना विधिक अधिकार के मुक्त मानव थे।"[39]

इस न्यायालय द्वारा **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर बनाम सोम नाथ दास**[40] में पाउण्ड के संप्रेक्षण को उद्धरित किया गया, जहां इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ को यह अवधारण करना पड़ा कि क्या "गुरू ग्रंथ साहिब" का विधिक व्यक्तित्व है। 'कौन विधिक व्यक्ति है' की चर्चा करते हुए न्यायमूर्ति ए पी मिश्रा ने संप्रेक्षित किया:

> "11. .... यदि हम विभिन्न देशों में "व्यक्ति" के इतिहास का पता लगाते हैं तो हम आश्चर्यजनक रूप से पाते हैं कि यह अलग –अलग समय पर अलग–अलग अनुमानित है।
>
> ...
>
> 13. समाज के विकास के साथ, जहां व्यक्ति की परस्पर क्रिया कम हो गई,... व्यक्तियों के एक बड़े समुदाय के सहयोग की आवश्यकता थी। इस प्रकार, निगमों और कंपनियों जैसे संस्थानों को बनाया गया था, ताकि वांछित परिणाम प्राप्त करने में समाज की मदद की जा सके। राज्य, नगर निगम, कंपनी आदि का गठन भी विधि की सभी रचनाएं हैं और ये "विधिक व्यक्ति" मानव विकास में आवश्यकताओं से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें एक कानूनी इकाई के रूप में कानून में मान्यता देने के लिए बनाया गया था।"

---

39 रॉस्को पाउण्ड, भाग IV, 1959 संस्करण

40 (2000) 4 एससीसी 146

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

89. दुनिया भर में कानूनी प्रणालियां अंधकाल से वर्तमान तक विकसित हुईं, जहां प्राकृतिक व्यक्तियों को विधिक व्यक्तित्व से मना कर दिया गया, संवैधानिक लोकतंत्रों में लगभग सभी प्राकृतिक व्यक्ति भी विधि की दृष्टि में विधिक व्यक्ति हैं। कानूनी प्रणालियों ने प्राकृतिक व्यक्तियों से परे कानूनी व्यक्तित्व की अवधारणा को भी बढ़ाया है। यह 'कृत्रिम विधिक व्यक्ति' या 'न्यायिक व्यक्ति' के सृजन से हुआ है, जहां एक वस्तु या चीज जो प्राकृतिक नहीं है, फिर भी कानून में विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस प्रतिमान के दो उदाहरण हैं, जहां प्राकृतिक व्यक्तियों के समुदाय को सामूहिक रूप से एक अलग विधिक व्यक्तित्व (एक सहकारी समिति या निगम के मामले में) प्रदान किया जाता है और जहां निर्जीव वस्तु (जहाज के मामले में) को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। प्राकृतिक व्यक्तियों के अलावा अन्य वस्तुओं को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना एक कानूनी विकास है जो अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है इसकी आज अदालतों द्वारा कुछ व्याख्या होती है। फिर भी कानूनी विकास अच्छी तरह से प्रलेखित है। सामण्ड अपने कार्य में शीर्षक **"विधिशास्त्र"** में नोट करते हैं:

> "इसके विपरीत, कानून में ऐसे व्यक्ति हैं जो पुरुष नहीं हैं। एक संयुक्त स्टॉक कंपनी या एक नगर निगम कानूनी चिंतन में एक व्यक्ति है। यह सच है कि यह केवल एक काल्पनिक है, वास्तविक व्यक्ति नहीं है; लेकिन यह एक काल्पनिक आदमी नहीं है। यह व्यक्तित्व है, मानव स्वभाव नहीं है, जिसे कानून द्वारा निकाय निगम को कृत्रिम रूप से आरोपित किया जाता है।
>
> जहां तक कानूनी सिद्धांत का सवाल है, एक व्यक्ति कोई भी है जिसे कानून अधिकारों और कर्तव्यों के समर्थ मानता है। ऐसा कोई भी जो सक्षम है कि वह एक व्यक्ति है, चाहे वह इंसान हो या न हों, और ऐसा कोई भी जो सक्षम नहीं है, व्यक्ति नहीं है, भले ही वह एक आदमी हो।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यक्ति वह सारवान है जिसके अधिकार और कर्तव्य गुण हैं। यह केवल इस संबंध में है कि व्यक्तियों का न्यायिक महत्व है और यह विशेष दृष्टिकोण है जिससे व्यक्तित्व को कानूनी मान्यता प्राप्त होती है।

लेकिन विश्लेषण में हम इससे एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। **कोई भी अधिकार के लिए सक्षम नहीं है, जब तक कि हितों में भी सक्षम न हो जो दूसरों के कृत्यों से प्रभावित हो सकते हैं।** प्रत्येक अधिकार के लिए इस प्रकृति का अंतर्निहित हित शामिल है। इसी तरह कोई भी कर्तव्यों में सक्षम नहीं है, जब तक कि उन कृत्यों में भी सक्षम न हो जिनके द्वारा दूसरों के हितों को प्रभावित किया जा सकता है। अधिकारों और कर्तव्यों को विशेषता देना, इसलिए उनके आवश्यक आधारों के रूप में हितों और कार्यों को विशेषता देना है। तब किसी को भी **एक व्यक्ति के रूप में कानून के उद्देश्यों के लिए परिभाषित किया जा सकता है, जिसे हितों व अधिकारों, कार्यों व कर्तव्यों की क्षमता विधि प्रदान करती है।"**[41]

(प्रभाव वर्धित)

90. एक विधिक व्यक्ति के पास हितों, अधिकारों और कर्तव्यों को वहन करने की क्षमता होती है। सामंड विधिक व्यक्तित्व और भौतिक काया के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर करते हैं, जिस पर कानूनी व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है:

"कानून, व्यक्तियों को बनाने में, हमेशा कुछ वास्तविक चीज को जीवत्व करके ऐसा करता है। ऐसे व्यक्ति का इस हद तक एक वास्तविक अस्तित्व है, और यह केवल उसका व्यक्तित्व है जो काल्पनिक है। वास्तव में, इसके लिए कोई सैद्धांतिक आवश्यकता नहीं है, क्योंकि **यदि कानून ऐसा समझे, तो विशुद्ध रूप से काल्पनिक को व्यक्तित्व प्रदान कर सकता है और फिर भी उन लक्ष्यों को प्राप्त करती है जिनके लिए व्यक्तित्व का यह काल्पनिक विस्तार बनाया गया है। तथापि, व्यक्तिकरण विचार और वाणी की सादगी के लिए इतना प्रेरित करता है कि उसकी सहायता हमेशा स्वीकार की जाती है। व्यक्तिकृत वस्तु को कानूनी व्यक्ति की काया कहा जा सकता है; यह वह काया है जिसमें कानून एक काल्पनिक व्यक्तित्व का आशय डाल देता है।**

---

41 जे डब्ल्यू, विधिशास्त्र, स्टीवेन और हेयने (1913)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

... .

> विधिक व्यक्ति, कानून की मनमानी रचना होने के नाते, इतने प्रकार के हो सकते हैं, जितना कानून चाहे। वे जो हमारी अपनी प्रणाली द्वारा वास्तविकः मान्यता प्राप्त हैं, हालांकि, सभी एक ही वर्ग अर्थात् निगम या निकाय कॉर्पोरेट के भीतर आते हैं। एक निगम व्यक्तियों का एक समूह या श्रृंखला है जिसे कानूनी परिकल्पना द्वारा स्वयं एक व्यक्ति के रूप में माना जाता है और व्यवहार किया जाता है। **यदि, हालांकि, हम अपनी स्वयं की अन्य प्रणालियों का ध्यान देते हैं, तो हम पाते हैं कि विधिक व्यक्तित्व की अवधारणा इसकी प्रयोज्यता में इतनी सीमित नहीं है..."**[42]
>
> (प्रभाव वर्धित)

विधिक व्यक्तित्व मानव स्वभाव नहीं है। विधिक व्यक्तित्व किसी वस्तु या काया को कुछ अधिकारों और कर्तव्यों के एक मूर्तिमान के रूप में कानून द्वारा मान्यता का गठन करता है। अधिकार और कर्तव्य जो आमतौर पर प्राकृतिक व्यक्तियों को प्रदान किए जाते हैं, वे चयनित स्थितियों में निर्जीव वस्तुओं या समूह को प्रदान किया जाता है, जिससे कृत्रिम विधिक व्यक्ति का निर्माण होता है। एक कृत्रिम विधिक व्यक्ति उस सीमा तक एक विधिक व्यक्ति है, जिस हद तक कानून चाहे वह संविधि द्वारा या न्यायिक निर्वचन द्वारा उन्हें दिए गए अधिकारों और कर्तव्यों को मान्यता देता है। सामंड स्पष्ट रूप से नोट करते है कि कृत्रिम विधिक व्यक्तियों को दिए गए अधिकार और कर्तव्य अंततः प्राकृतिक व्यक्तियों के हितों और लाभों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में, यह इस तरह की वस्तुओं या समूह से प्राकृतिक व्यक्तियों द्वारा प्राप्त सारवान लाभों के कारण ठीक है कि विधायकों और अदालतों को ऐसी वस्तुओं या समूहों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने पर विचार करने के लिए कहा जाता है।

---

42 जे. डब्लू. सामण्ड, विधिशास्त्र, स्टीवेन और हेयने (1913)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

91. विशुद्ध रूप से सैद्धांतिक स्तर पर, इस बात पर कोई प्रतिबंध नहीं है कि किसे कानूनी व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है। वह उद्देश्य महत्वपूर्ण है जिसे प्राप्त करने के लिए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, विधिक व्यक्तित्व को एक अमूर्त विचार को भी प्रदान किया जा सकता है। हालाँकि, सामंड नोट करते हैं कि विधिक व्यक्तित्व को आमतौर पर उन वस्तुओं को प्रदान किया जाता है जो आम आदमी की भाषा में विचार और अभिव्यक्ति की सादगी के लिए पहले से ही व्यक्तित्व या मानव रूपांतरण का विषय हैं। यह सवाल कि क्या विधिक व्यक्तित्व एक जहाज, मूर्ति या पेड़ को प्रदान किया जाता है, कानूनी रूप से समीचीन है और चुनी गई वस्तु प्रदत्त विधिक व्यक्तित्व के चरित्र का निर्धारण नहीं करती है। विधिक व्यक्तित्व का चरित्र विधिक व्यक्तित्व को प्रदान करके प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार विधिक व्यक्तित्व और भौतिक काया के बीच एक अंतर है जो तब कानूनी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करने के लिए आता है। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के कार्य द्वारा, काया को कुछ अधिकारों और कर्तव्यों वाले एक अलग विधिक व्यक्ति को मूर्त रूप देने के रूप में कानून में जीवंत किया जाता है।

92. विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके, कानूनी प्रणालियों ने प्राकृतिक व्यक्तियों से परे एक 'विधिक व्यक्ति' की परिभाषा का विस्तार किया है। इस तरह बनाए गए विधिक व्यक्तियों के पास मानव प्रकृति नहीं होती है। लेकिन उनका विधिक व्यक्तित्व क़ानून द्वारा या अदालतों द्वारा उनको दिए गए अधिकारों और कर्तव्यों को शामिल करती है जो ऐसे व्यक्तित्व के प्रदान द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हैं। यह उन परिस्थितियों को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समझने के लिए महत्वपूर्ण है जिनमें विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया है और इसके परिणामस्वरूप जिन निर्जीव वस्तुओं को यह प्रदान किया जाता है, उन्हें अधिकार और कर्तव्य दिए गए हैं।

निगम

93. सबसे व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त कृत्रिम विधिक व्यक्ति कंपनी विधि में निगम है। हालांकि, उन परिस्थितियों को समझने के प्रयोजनों के लिए जिनके तहत अदालतों ने विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया है, निगम का उदाहरण सीमित उपयोग का है। कानून में पहचान के प्रयोजनों के लिए एक इकाई के रूप में व्यक्तियों के सामूहिक व्यवहार करने का विचार उतना ही पुराना है जितना कि मानव सभ्यता। इस तरह की मान्यता के उदाहरणों की अधिकता संघ, साझेदारी और प्रारंभिक अनिगमित व्यवसायों के आगमन से मानव इतिहास में विकीर्ण है। जैसा कि फिलिप ब्लुमर्ग ने अपनी पुस्तक शीर्षक **"निगम विधि के लिए बहुराष्ट्रीय चुनौती"** में लिखते हैं:

> "जब क्राउन ने अंततः शिल्प संघ और व्यापारिक कंपनियों को चार्टर करना शुरू किया–पहली व्यापार निगम– पंद्रहवीं शताब्दी में, निगम की कानूनी प्रकृति की समझ पहले से ही सारवान रूप से मौजूद थी।....उनके पहले इस इतिहास के साथ, सत्रवहीं शताब्दी के शुरूआत में सर इडवर्ड कोड ने लिखते हुए,...और ब्लैकस्टोन व कीड अठारहवीं शताब्दी के अन्त में लिखते हुए आत्मविश्वास से इस बात पर जोर दे सकते थे कि निगम क्या था, इसे कैसे बनाया गया था, और इसके संगठन से क्या कानूनी विशेषताएं निकलती थीं। हालांकि उनके मस्तिष्क में मुख्य रूप से धार्मिक संस्था और नगर निगम थे, उनकी टिप्पणी व्यापार निगमों पर भी पूरी तरह लागू होती थी।"[43]
>
> (प्रभाव वर्धित)

---

43 फिलिप ब्लुमबर्ग, निगम विधि को बहुराष्ट्रीय चुनौती: नवीन निगम व्यक्तित्व के लिए खोज, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस (1993) ,पृष्ठ 3 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कानूनी मान्यता के प्रयोजनों के लिए एक एकल इकाई के रूप में उद्यमियों के एक सामूहिक के रूप में व्यवहार करने की न्यायिक अवधारणा पहले से ही अच्छी तरह से स्थापित थी जब पहला व्यवसाय निगम अस्तित्व में आया था और अदालतों द्वारा परीक्षण के लिए नहीं थे। लेखक आगे कहते हैं:

> "**उन्नीसवीं शताब्दी में सही होने तक, इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों में व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए एक निगम की मान्यता, निगम प्रास्थिति देने के लिए एक विशिष्ट शासकीय निर्णय अपेक्षित था।** इंग्लैंड में, इसने क्राउन या संसद के एक अधिनियम से एक प्रकृति का रूप लिया। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे एक विधायी अधिनियम की आवश्यकता थी।... **एक शताब्दी से अधिक समय पहले सामान्य निगमन विधियों की सार्वभौमिक विजय से, कुछ फॉर्म भरकर और कुछ शुल्क और करों का भुगतान करके निगमों का गठन किया जा सकता था।** राज्य की भूमिका प्रक्रियाओं के एक सामान्य विनिर्देश और सांविधिक औपचारिकताओं के साथ निगमितों के अनुपालन की एक प्रशासनिक स्वीकृति के लिए नाटकीय रूप तक सिमट गई।"[44]
>
> (प्रभाव वर्धित)

एक निगम का स्वतंत्र विधिक व्यक्तित्व कभी भी अदालतों द्वारा मान्यता पर निर्भर नहीं रहा है। निगम का विधिक व्यक्तित्व मूल रूप से सरकार के सकारात्मक कार्य द्वारा प्रदान किया गया था। बाद के वर्षों में, जैसा कि निगमन व्यवसाय करने का पसंदीदा तरीका बन गया, निगमित व्यक्तित्व को निगमन के सामान्य क़ानूनों द्वारा प्रदान किया गया, जिसने किसी भी व्यक्ति को कुछ वैधानिक शर्तों की संतुष्टि के अधीन कंपनी निगमन की अनुमति दी। ये ऐतिहासिक घटनाक्रम निगमित व्यक्तित्व के आधार के रूप में सरकार के सकारात्मक कार्य से हटकर वैधानिक ढांचे के निर्माण को रेखांकित करते हैं, जिसके तहत इसे प्रदान किया गया। हालाँकि, यह विधिक व्यक्तित्व के

---

44 फिलिप ब्लुमबर्ग, निगम विधि को बहुराष्ट्रीय चुनौती: नवीन निगम व्यक्तित्व के लिए खोज, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस (1993) ,पृष्ठ 22 पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रदानीकरण को रेखांकित करने वाले कारणों को रेखांकित नहीं करता है और वर्तमान स्थिति में बहुत कम सहायता करता है।

जलयान

94. वर्तमान उद्देश्यों के लिए एक और प्रासंगिक उदाहरण एक जलयान को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना है। समुद्री धारणाधिकार और सर्वबन्धी कार्यों की अवधारणाएँ समुद्री कानून के स्थापित नियम हैं। समुद्री धारणाधिकार एक जलयान के कारण हुए गलत कार्य या क्षति के मामले में उत्पन्न हो सकता है जो दावेदार को जहाज की 'वस्तु' पर प्रभार देता है। आरोप को 'सर्वबन्धी कार्यवाही' द्वारा क्रिस्टलीकृत किया जाता है, जिसके तहत जलयान को सीधे विधिक व्यक्ति के रूप में आगे बढ़ाया जाता है। 1881 में सर जॉर्ज जेसल एमआर ने **द सिटी ऑफ मक्का**[45] में इसे समझाया जहां उन्होंने संप्रेक्षित किया:

> "आप इंग्लैंड में और अधिकांश देशों में जलयान के विरूद्ध कार्यवाही कर सकते हैं। इस तरह के जलयान के मालिक के विरूद्ध लेख जारी किये जा सकते है, और शायद मालिक कभी भी उपस्थित नहीं हो और आपको शुरू से अन्त तक बिना किसी एक व्यक्ति के नाम के जलयान के विरूद्ध अपना निर्णय प्राप्त होता है। यह सर्वबन्धी कार्यवाही है और यह पूरी तरह से साफ जाहिर है कि निर्णय जलयान के विरूद्ध है।"

डी आर थॉमस ने अपनी पुस्तक शीर्षक **"मैरीटाइम लिअन्स"**[46] में जलयानों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के इतिहास का पता लगाया है। वह अवधारणा के विकास को समझाने में दो सिद्धांतों – 'व्यक्तिकरण सिद्धांत' और 'प्रक्रियात्मक सिद्धांत' की बात करते हैं:

---

45 द सिटी ऑफ मक्का 5 पी.डी. 106

46 डी आर थॉमस, मैरीटाइम लिअन्स इन ब्रिटिश शिपिंग लॉ: खण्ड़ 14 (स्टीवेन व सन्स लंदन 1980)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"पहला [सिद्धांत], जिसे आमतौर पर व्यक्तिकरण सिद्धांत के रूप में गढ़ा गया था, एक जलयान को व्यक्तित्व दिए जाने की न्यायिक तकनीक समुद्री धारणाधिकार की ऐतिहासिक उत्पत्ति और विकास का पता लगाता है जो मध्यकालीन समय से प्राप्त हुई है। इस सिद्धांत के तहत एक जहाज व्यक्तिकृत है और अपकृत्य करने व अनुबंध करने की क्षमता के साथ एक अलग न्यायिक इकाई के रूप में माना जाता है। जलयान दायित्व का स्रोत और सीमा दोनों है।

...

दूसरा सिद्धांत, जिसे प्रक्रियात्मक सिद्धांत के रूप में जाना जाता है, इस आधार पर आधारित है कि समुद्री धारणाधिकार एक पोत की गिरफ्तारी की प्रक्रिया से विकसित हुई है ताकि वस्तु के मालिक की उपस्थिति को मजबूर किया जा सके और सुरक्षा प्राप्त की जा सके।

...

यद्यपि यह बिंदु अनिश्चितता से मुक्त नहीं है, शायद यह मामला है कि एक समुद्री धारणाधिकार एक सारवान अधिकार है, जबकि सर्वबन्धी कार्यवाही का एक वैधानिक अधिकार मूलतः एक प्रक्रियात्मक उपचार है। सर्वबन्धी कार्यवाही के वैधानिक अधिकार की उपलब्धता के पीछे उद्देश्य एक दावेदार को क्षेत्राधिकार पाने में सक्षम बनाना और दावे के लिए सुरक्षा के रूप में वस्तु प्रदान करने में सक्षम बनाना है।"[47]

(प्रभाव वर्धित)

95. एक सीमित विधिक व्यक्तित्व के प्रदानीकरण और प्रदानीकरण द्वारा प्राप्त न्यायनिर्णयन उपयोगिता के बीच एक प्रत्यक्ष संबंध है। अदालतें जलयान की भौतिक संपत्ति को एक विधिक व्यक्ति के रूप में मानती हैं जिसके खिलाफ कुछ कार्रवाई की जा सकती है। जलयान को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करते हुए जहाज के मालिकों की उपस्थिति या उपलब्धता की स्वतंत्र कार्यवाही करने की अनुमति दी जाती है, जो बहुत से मामलों में दुनिया के अन्य हिस्सों में हो सकते हैं। जैसा कि एक जहाज केवल एक संक्षिप्त अवधि के लिए

---

47 डी आर थॉमस, मैरिटाइम लियन इन ब्रिटिश शिपिंग लॉजः खण्ड़ 14 (स्टीवेन व सन्स लंदन 1980) पृष्ठ 7 और 38 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बंदरगाह में हो सकता है, एक सर्वबन्धी कार्यवाही दावेदार को पूर्व–निर्णय सुरक्षा सुनिश्चित करने की अनुमति देती है। इस प्रकार, यहां तक कि एक अभिव्यक्त व्यक्तिकरण की अनुपस्थिति भी , विधिक व्यक्ति के रूप में जलयान के विरूद्ध कार्यवाही, नौसेना विवादों के प्रभावी अधिनिर्णयन को सुनिश्चित करती है।

96. एम वी एलिजाबेथ बनाम हरवान इन्वेस्टमेंट एंड ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड[48] में, इस न्यायालय ने नौसेना विधि के इस सिद्धांत के अंतर्निहित आधार को नोटिस किया। दो न्यायाधीशों की पीठ की ओर से न्यायमूर्ति थॉमेन ने अभिव्यक्त करते हुए आंग्ल अदालतों द्वारा नौसेना क्षेत्राधिकार के अनुप्रयोग का पता लगाया:

> "44. सर्वबन्धी नौसेना कार्यवाही की अतिमहत्वपूर्ण और विशिष्ट विशेषता यह है कि जलयान या उसके मालिकों की राष्ट्रीयता या व्यवसाय या अधिवास के स्थान या उसके मालिकों के निवास स्थान या वह स्थान जहां कार्रवाई का कारण पूरी तरह से या आंशिक रूप से उत्पन्न हुआ, की परवाह किए बिना, इस क्षेत्राधिकार को जहाज की गिरफ्तारी द्वारा किसी भी समुद्री दावे के संबंध में तटीय अधिकारियों द्वारा माना जा सकता है।"
>
> **".... नौसेना में पोत का एक विधिक व्यक्तित्व होता है, एक लगभग निगमित क्षमता, जिसमें न केवल अधिकार होते हैं, बल्कि दायित्व भी (कभी–कभी मालिक से अलग) होते हैं, जिसे सर्वबन्धी उपचारों में अर्थात् सम्पत्ति के विरुद्ध साथ ही साथ व्यक्तिबन्धी उपचारों में अर्थात् व्यक्तिगत पक्षकारों के विरूद्ध उपयुक्त मामलों में नौसेना के लिए पोत के विरूद्ध डिक्री और प्रक्रिया द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है जो उसके सभी हितबद्ध और अनन्यतः विश्व पर बाध्यकर है।...."** (बेनेडिक्ट, द लॉ ऑफ़ अमेरिकन एडमिरलिटी, 6 वाँ संस्करण, खण्ड़ 1 पी. 3)
>
> 45. नौसेना विधि मालिक के विरूद्ध आगे बढ़ने के लिए एक व्यक्तिबन्धी अधिकार से अलग जहाज या कार्गो के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए

---

48 1993 सप्लीमेंट (2) एससीसी 433

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> दावेदार पर एक सर्वबन्धी अधिकार प्रदान करता है। निर्णय को प्रवर्तित करने के लिए सुरक्षा प्राप्त करने के लिए जहाज की गिरफ्तारी को केवल एक प्रक्रिया के रूप में माना जाता है.... " (प्रभाववर्धित)

इस दृष्टि में, एक जहाज के विधिक व्यक्तित्व प्रदानीकरण ने व्यापार निश्चितता और समीचीनता के उद्देश्य को बढ़ावा दिया। जलयान के विरूद्ध डिक्री उसके सभी हितबद्धों पर बाध्यकर है और उसकी चलायमान प्रकृति के बावजूद पूर्व–निर्णय सुरक्षा सुनिश्चित करने की आवश्यकता को पूरा करता है। ब्रिटेन और भारत के अलावा, जहाजों के लिए विधिक व्यक्तित्व के आरोपण का व्यापक रूप से सभी क्षेत्राधिकारों में उपयोग किया गया है। अमेरिकी अदालतों के दृष्टिकोण का चित्रण करते हुए प्रोफेसर डगलस लिंड इस अवधारणा के विकास का पता लगाते हैं:

> "जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका ने राष्ट्र के व्यापार और वाणिज्य के बड़े भाग में साथ ही साथ व्यक्तियों के अधिकांश सामान्य परिवहन में अपनी पहली शताब्दी में प्रवेश किया, जो खुले समुद्र या देश के प्रचुर अंतर्देशीय समुद्री जलमार्गों पर हुए। **संविधान ने नौसेना और समुद्री क्षेत्राधिकार के सभी मामलों में संघीय न्यायिक शक्ति को विस्तारित किया।**
>
> ...
>
> [ब्रिग जेम्स वैल्स बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका] मामले ने उस मुद्दे को उठाया जो शीघ्र ही एक सामान्य मुद्दा बन रहा था: क्या संघीय विधि का अतिक्रमण करने के लिए किसी अमेरिकी पंजीकृत पोत की निंदा की जानी चाहिए। न्यायालय ने ब्रिग की निंदा अपरिहार्य माना। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि **जबकि इस मामले को पोत के नाम से किया गया था, न तो 'समुद्री धारणाधिकार' और न ही सर्वबन्धी, प्रकट होता है, और ऐसा कोई सुझाव नहीं है कि जहाज स्वयं, इसके प्रभारी लोगों के बजाय, अपराधी था... एक पोत के नाम से उसके विरूद्ध कार्यवाही करना, हालांकि, पोत के व्यक्तिकरण को सत्यापित नहीं करता। न्यायालय ने एक पोत के नाम से उसके विरूद्ध कार्यवाही को उससे हितबद्ध सभी को शामिल करते हुए "वाद के लिए पक्षकार" के रूप में माना।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

...

धारणाधिकार के प्रवर्तन से सम्बन्धित कई मामलों ने संघीय अदालतों को परेशान किया था जब जलयान में हितबद्ध प्रधानों (मालिक, प्रमुख) को कथित तौर पर गलत काम करने की पूर्व जानकारी या कोई सक्रिय भूमिका नहीं थी। **अभिकरण का पारंपरिक कानून, अभिकर्ता के रूप में जलयान के साथ, जिम्मेदारी और वसूली के एक सुसंगत नियम के खिलाफ कार्य करता था...** दन्तकथाओं, साहित्य, और कविताओं में जलयान की विशिष्ट प्राणिकवाद को देखते हुए, संघीय अदालतों ने अपने न्यायिक विवेक में जलयान की प्राणिकवाद की वास्तविकता के अनुकूलन के "मानसिक तरीके" को स्वीकार करने हेतू अपनी अवधारणा में मामूली परिवर्तन किया। सिद्धांत ने अदालतों को समुद्री कानून पर "पर्यावरण का नियंत्रण" दिया जो उनकी कमी थी... **जलयान के व्यक्तित्व के सिद्धांत से सर्वोच्च न्यायालय ने अभिकरण के सम्बन्ध को उलट दिया, जिससे अभिकर्ता के बजाय जलयान प्रमुख बना। इस तरह, एक सुसंगत, कार्य करने योग्य नौसेना क्षेत्राधिकार के "वांछनीय परिणाम" संभव प्रतीत होते हैं।** जलयान के व्यक्तित्व का सिद्धांत, यानी उन्नीसवीं शताब्दी के अमेरिकी नौसेना कानून का एक केंद्रीय हॉलमार्क बन गया क्योंकि यह सर्वोच्च न्यायालय को "विश्वास के रास्ते में अच्छा" प्रतीत हुआ.... **यह विचार नए अमेरिकी गणतंत्र की महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक जरूरतों को पूरा करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के व्यावहारिक प्रयासों विशेष रूप से जस्टिस मार्शल और स्टोरी से उत्पन्न हुआ, ।"**[49]

(प्रभाव वर्धित)

97. अमेरिकी अदालतों का अनुभव यह था कि अपराधकर्ता जहाजों के मालिक नियमित रूप से अदालतों के क्षेत्राधिकार से बचते थे। उस समय की विद्यमान विधि परिस्थितियों से निपटने में अपर्याप्त थी। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने इसलिए जलयान को मूर्तिमान बनाने के मौजूदा गैर–कानूनी अभ्यास का उपयोग किया और अपने क्षेत्राधिकार के भीतर

---

49 डगलस लिंड, प्रैगेमेटिज्म एंड एंथोपोमोरफिज्मः रिकन्सीविंग द डॉक्ट्रिन ऑफ द पर्सनैलिटी ऑफ द शिप, 22 यू.एस.एफ. मार.ल.जे. 39 (2009) पृष्ठ 91 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जलयानों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके इसे कानूनी महत्व दिया। गौरतलब है कि अभिकरण का मौजूदा कानून नौसेना विधि की अनूठी विशेषताओं से निपटने के लिए तैयार नहीं था। जलयानों के विरूद्ध कार्यवाही को अनुमति देने से यह एक साधन बना जिसके माध्यम से जलयानों और उसके कार्यों में हितबद्ध लोगों के दायित्वों , हालांकि न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर, को समुद्री पोत के व्यक्तित्व के कानून द्वारा मान्यता से पूरा किया जाएगा। आंग्ल नौसेना अदालतों के मामले में शायद ज्यादा ही, अमेरिकी अनुभव दर्शाता है कि जलयानों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना ऐतिहासिक परिस्थितियों, मौजूदा कानून में कमियों और समुद्री दावों पर व्यावहारिक रूप से और प्रभावी रूप से अधिनिर्णीत करने के लिए अदालतों की आवश्यकता का एक परिणाम था। कई मामलों के दौरान, अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने समुद्री दावों को अधिनिर्णीत करने के प्रयोजनों के लिए जलयान को एक अलग कानूनी व्यक्ति बनाकर गुणारोपण और अभिकरण की व्यावहारिक कठिनाइयों को हल किया।

इतिहास, आवश्यकता और सुविधा

98. ये अवलोकन नौसेना विधि के दायरे से परे भी सच हैं। येल लॉ जर्नल[50] में 1928 में प्रकाशित **'लीगल पर्सनैलिटी'** नामक एक महत्वपूर्ण लेख में ब्रायंट स्मिथ ने कहा कि आमतौर पर, अधिकारों और कर्तव्यों के विषय प्राकृतिक व्यक्ति हैं। हालाँकि, वह इस बात पर ध्यान देता है कि:

> **"...कुछ कारण या अन्य के लिए, जलयान या एक न्यासी या संरक्षक के रूप में कई क्षमताओं में एक मानव होने या एक भागीदार या एक निगम के रूप में मानवों के समुदाय में एकल**

---

50 ब्रायंट स्मिथ, विधिक व्यक्तित्व, 37 येल एल. जे. (1928) पृष्ठ 287,295 और 296 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

क्षमता जैसे निर्जीव वस्तुओं से निपटने के लिए यह सुविधाजनक या आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक व्यापारी, जिसने एक जलयात्रा के लिए आपूर्ति प्रस्तुत की है, या एक बॉस स्टीवडोर जिसने जहाज का नवीनीकरण किया है, वह पोत के मालिक तक नहीं पहुंच सकते हैं, जो अधिकार क्षेत्र से बाहर है। स्पष्ट समाधान जहाज पर ही प्राप्त करना है और इसके माध्यम से, मालिक के दायित्वों को संतुष्ट करना है। **लेकिन इस उद्देश्य के लिए विधिशास्त्र की एक नई प्रणाली तैयार करने के लिए, नए रूपों और सिद्धांतों और प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए, पेशे की सुपयोगिता को बहुत गंभीर कर देगा। इसका विकल्प न्यायाधीशों के लिए एक जहाज और एक आदमी के बीच असंगत मतभेदों के लिए अपनी आँखें बंद करना और जहाज को ऐसे मानना है जैसे कि यह एक अपलेख की रक्षा के उद्देश्य से एक आदमी था।**

...

यह निश्चित रूप से सच है कि मानव विषयों के अलावा अन्य में विधिक व्यक्तित्व का लाभ और भार, अंतिम विश्लेषण पर, मनुष्यों के लिए परिणाम है, जो, हमें कोई संदेह नहीं है, कि उपरोक्त से लेखकों का क्या मतलब है। लेकिन अवधारणा की उपयोगिता ही, विशेष रूप से निगमित व्यक्तित्व के मामले में, इस तथ्य में निहित है कि यह इस अंतिम विश्लेषण के लिए आवश्यकता से बचता है।

लेकिन, हालांकि कानूनी व्यक्तित्व का कार्य, जैसा कि उद्धरण से पता चलता है, व्यवहार को विनियमित करना है, **यह केवल उस विषय के आचरण को विनियमित करने के लिए ही नहीं है जिसे इसे प्रदान किया गया है; इसे विषय की ओर या एक–दूसरे की ओर मनुष्यों के आचरण को भी विनियमित करना है। यह जलयान को एक कानूनी व्यक्ति बनाने के लिए समाज के**

उद्देश्यों को सूट करता है, इसलिए नहीं कि जहाज का आचरण कोई अलग होगा, निश्चित रूप से, बल्कि क्योंकि इसका व्यक्तित्व कुछ विशेष मामलों में अपने मालिक या अन्य मनुष्यों के आचरण को नियंत्रित करने के लिए एक प्रभावी साधन है।"

(प्रभाव वर्धित)

उपरोक्त उद्धरण सामंड की टिप्पणियों की पुष्टि करता है कि काया का विकल्प (यानी वस्तु) जिस पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है वह सख्त कानूनी सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक परिस्थितियों, कानूनी आवश्यकता और सुविधा का एक परिणाम है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में अदालतों को विशिष्ट तथ्यात्मक स्थितियों पर निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। अमरीकी नौसेना विधि में, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को नौसेना क्षेत्राधिकार प्रदान करने से समुद्री अभियान में वृद्धि से समुद्री दावों से जुड़े मामलो की बाढ़ आ गयी। उस समय के विद्यमान कानून ने अदालत को इन नए दावों पर प्रभावी ढंग से अधिनिर्णीत करने की अनुमति नहीं दी, जिससे अनुचित, बेतुक या विकृत परिणाम आये। इसलिए, अदालतों द्वारा कानूनी नवाचार का सहारा लिया गया था। लिंड और स्मिथ दोनों ने जहाज की विशिष्टता से उत्पन्न होने वाली कई समस्याओं पर प्रकाश डाला– एक पोत जो कई क्षेत्राधिकारों से होकर यात्रा कर रहा है, जिसके मालिक उनसे अलग अन्य अधिकार क्षेत्र में निवास कर सकते हैं जहां उनके खिलाफ कार्रवाई करने की मांग की जाती है और जलयान के संचालन का या नियंत्रण का बहुत कम ज्ञान होता है। जहाज को विधिक व्यक्तित्व के प्रदानीकरण ने जहाज के व्यवहार को नहीं बदला। हालांकि इसने एक कानूनी ढांचा तैयार किया है जिसके तहत प्राकृतिक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यक्तियों और जहाज के बीच अन्तःक्रिया को सामाजिक स्तर पर परिणाम प्राप्त करने के लिए विनियमित किया जा सकता है जो कानूनी रूप से और संतोषजनक हैं।

99. दोनों लेखकों ने ध्यान दिया कि जहाज के मौजूदा व्यक्तिकरण को बनाने के लिए अदालतों की आवश्यकता होती है लेकिन विश्वास की एक छोटी अवधारणा का परिवर्तन, जिसके परिणामस्वरूप अदालतों के लिए महत्वपूर्ण कानूनी लाभ होते हैं। यह बिंदु कानूनी महत्व की तुलना में अधिक ऐतिहासिक है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि जहां किसी वस्तु का कोई व्यक्तिकरण नहीं है, एक अदालत को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने से रोक दिया जाता है। तर्कतः राज्य के कृत्यों द्वारा निगम को प्रदत्त स्वतंत्र विधिक व्यक्तित्व में कहीं अधिक संकल्पनात्मक परिवर्तन अंतर्वलित थी। फिर भी इसे आवश्यक माना गया और तब से निगमों के कानून में एक मूलभूत सिद्धांत में क्रिस्टलीकृत हो गया।

100. विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने का एक और कारण मौजूद है। वस्तुएँ कतिपय हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं और कुछ लाभों को प्रदान करती हैं। कुछ वस्तुओं के मामले में लाभ तात्विक होगा। लाभ जो विशुद्ध रूप से तात्विक है, से परे आगे बढ़ सकता है। एक कृत्रिम विधिक व्यक्ति चाहे कोई जलयान या कंपनी हो, वास्तव में इन लाभों का आनंद नहीं ले सकता है। ऐसे लाभों के अंतिम लाभार्थी प्राकृतिक व्यक्ति हैं। हालांकि, प्रत्येक मामले में, कृत्रिम विधिक व्यक्ति और ऐसे कृत्रिम व्यक्ति से लाभ प्राप्त करने वाले प्राकृतिक व्यक्तियों के बीच अंतर करने के लिए एक अदालत की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से जब निगमों और जहाजों के बढ़ते उपयोग के साथ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

युग्मित किया जाता है, तो यह लगातार कर रहा है। यह हमें विधिक व्यक्तित्व–सुविधा प्रदान करने के तीसरे औचित्य की ओर ले जाता है वस्तुओं को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना ऐतिहासिक रूप से दावों के व्यावहारिक अधिनिर्णय को सुनिश्चित करने के लिए नीति का एक शक्तिशाली उपकरण रहा है। एक कानूनी ढांचे का निर्माण करके, इसने विवादों के एक उभरते वर्ग पर निर्णय लेने के लिए आवश्यक उपकरणों से अदालत को सुसज्जित किया। इसने न्यायाधीशों को कृत्रिम और प्राकृतिक व्यक्तियों के बीच अंतर को कम करने की अनुमति देकर काफी न्यायिक प्रयास और समय बचा लिया जहां यह प्रासंगिक नहीं था। विधिक व्यक्तित्व को दिया जाना इस प्रकार कानूनी आवश्यकता और सुविधा का एक उपकरण था। विधिक व्यक्तित्व मानव प्रकृति या मानव विशेषताओं को नहीं दर्शाता है। विधिक व्यक्तित्व कानून में कुछ अधिकारों और कर्तव्यों की एक मान्यता है। एक वस्तु, विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने के बाद भी, कोई भी इच्छा व्यक्त नहीं कर सकती है, लेकिन यह प्राकृतिक व्यक्तियों को मिलने वाले कुछ हितों, अधिकारों या लाभों का प्रतिनिधित्व करता है। न्यायालय कानून में गोचर कमियों को दूर करने और व्यावहारिक अधिनिर्णयन की सुविधा के लिए विधिक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। कृत्रिम विधिक व्यक्तियों (विधिक व्यक्तित्व के साथ संलग्न) को अधिकार और कर्तव्य देकर, कानून आवश्यकता और सुविधा दोनों को हल और पूरा करता है। विस्तार द्वारा, अदालतें प्राकृतिक व्यक्तियों के दावों को प्रभावी ढंग से अधिनिर्णीत करने के लिए विधिक व्यक्तित्व देती हैं, जिस काया*(कार्पस)* द्वारा प्रभावित या लाभ उत्पन्न होते हैं उनको विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। इस सिद्धांत का

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मूलाधार यह है कि न्यायालयों द्वारा काया को दिए गए अधिकार कानून में विद्यमान कमियों को दूर करने और दावों को कुशलतापूर्वक अधिनिर्णीत करने की आवश्यकता तक सीमित हैं।

101. इस सिद्धांत को फिलिप ब्लुमर्ग द्वारा संक्षिप्त रूप से व्यक्त किया गया है:

> "उनके विशेष कानूनी अधिकारों और दायित्वों से विशिष्ट, कानूनी इकाई का प्रत्येक वर्ग अद्वितीय है। इनमें व्यक्तियों , समुद्री पोतों, भौतिक वस्तुओं, भागीदारी, संघों, विशेष खातों, धन, आर्थिक हित समूहों और सरकारी एजेंसियों, साथ ही निगम और कॉर्पोरेट समूह जैसे विभिन्न कानूनी विषय शामिल हैं। प्रत्येक मामले में, इकाई की कानूनी मान्यता की परिधि का सीमांकन करने वाले अधिकारों और जिम्मेदारियों का आरोपण सामाजिक कानून बनाने वाले सभी कारकों को दर्शाता है जैसे: कानून का ऐतिहासिक विकास, बदलते मूल्य और हित, सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक शक्तियाँ, और वैचारिक धाराएँ।
>
> कुछ मूलभूत मुद्दे हैं। प्रथमतः, न तो कानूनी अधिकार और न ही कानूनी इकाईयां "हवा में" विद्यमान हैं। कानूनी अधिकारों को एक कानूनी इकाई से संबंधित होना चाहिए जो उनका प्रयोग कर सकती है। **इसके अलावा, कानूनी अधिकारों और जिम्मेदारियों की कोई व्यापक सूची नहीं हो सकती है जो कानूनी इकाई के रूप में किसी विशेष विषय की मान्यता पर स्वचालित रूप से अस्तित्व में आती है। बिल्कुल विपरीत। यह विशिष्ट अधिकारों और दायित्वों (मुख्यतः अधिकार) को एक–एक करके मान्यता प्रदान करता है जो कानूनी इकाई की न्यायिक रूपरेखा को आकार देता है जिसके लिए उनका सृजन किया गया है।**
>
> जब कानून किसी विशेष अधिकार को मान्यता प्रदान करता है या एक प्रकल्पित कानूनी इकाई पर एक विशेष जिम्मेदारी लगाता है, तो यह आरोपण की सीमा तक एक कानूनी इकाई के रूप में मान्यता का गठन करता है। **विधि निर्माता–चाहे विधायक, प्रशासक, या न्यायाधीश– के विचार में इकाई की ऐसी मान्यता के आधार पर अन्य अधिकार और दायित्व मौजूद हो सकते हैं या नहीं हो सकते हैं, ये इस क्षेत्र में उस समय की कानून की अंतर्निहित नीतियों और उद्देश्यों को पूरा करेंगे।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> इसके अलावा, जैसा कि समाज बदलता है, कानूनी पहचान की अवधारणा और उनको दिए गए कानूनी परिणाम अनिवार्य रूप से बदल भी जाते हैं।"[51]
>
> (प्रभाव वर्धित)

सभी कानूनी इकाइयाँ एक जैसी नहीं हैं। कानूनी व्यक्तित्व प्रदान करना विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करता है जो इसकी मान्यता को सही ठहराते हैं। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना स्वचालित रूप से कानूनी अधिकारों का एक समूह प्रदान नहीं करता है। विधिक व्यक्तित्व की रूपरेखा अर्थात् विधिक व्यक्तित्व, जो विधिक व्यक्तित्व प्रदत्त वस्तु से जुड़ी है, अधिकारों और दायित्वों को उन विशिष्ट कारणों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए जिनके लिए इस तरह का विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था। नए विधिक व्यक्ति को दिए गए अधिकारों की सीमाओं को विधिक व्यक्तित्व को प्रदान करने के कारणों से निर्देशित किया जाना चाहिए। न्यायिक नवाचार के मानदण्ड़ उस उद्देश्य से निर्धारित किए गए हैं जिसके लिए न्यायाधीश नवाचार करता है। इसका एक उदाहरण यह है कि जब अदालतें निगमित व्यक्तित्व हटा देती हैं, जहां एक स्वतंत्र विधिक व्यक्तित्व दिया जाना अब उपरोक्त लक्ष्यों को पूरा नहीं करता है। सिद्धांत के प्रयोज्यता को इसके सृजन में अंतर्निहित उद्देश्य को पूरा करने की इसकी क्षमता द्वारा परिभाषित किया गया है। विधिक नवाचार अनियंत्रित हो जाएगा यदि न्यायालय किसी वस्तु को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना चाहते हैं और बाद में वस्तु के अधिकारों को उस बिंदु तक बढ़ा देते हैं जहां समझदारी और व्यावहारिक अधिनिर्णय

---

51 फिलिप ब्लुमवर्ग, द मल्टीनेशनल चैलेंज टू कॉर्पोरेशन लॉ (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 1993) पृष्ठ 207 पर,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का मूल लक्ष्य पराजित हो जाता है। इस समझ के साथ, अब हिंदू मूर्तियों के संबंध में इन सिद्धांतों की प्रयोज्यता पर आना आवश्यक है।

हिन्दू मूर्ति और देवत्व

102. आरम्भ में, यह समझना महत्वपूर्ण है कि हिन्दू मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना स्वयं देवत्व को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना नहीं है, जिसे हिन्दू धर्म में प्रायः 'परमात्मा' समझा जाता है। परमात्मा रूप और आकार से परे है, फिर भी उसकी उपस्थिति सार्वभौम है। हिंदू धर्मदाय के कानून में और वर्तमान कार्यवाही में, यह अक्सर कहा गया है कि 'मूर्ति के पीछे के उद्देश्य' से विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। वर्तमान निर्णय इस कथन के सटीक कानूनी महत्व का उल्लेख करेगा। वर्तमान के लिए, यह नोट करना पर्याप्त है कि विधिक व्यक्तित्व को स्वयं 'परमात्मा' को प्रदान नहीं किया गया है जैसा कि राम जानकीजी देवी बनाम बिहार राज्य[52] में इस न्यायालय द्वारा अवलोकन किया गया है:

> "19. ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है और उसकी उपस्थिति किसी विशेष रूप या छवि के कारण नहीं बल्कि सर्वशक्तिमान की उपस्थिति के कारण महसूस की जाती है। **वह निराकार है, वह आकारहीन है और उपासकों के लाभ के लिए है कि परमात्मा की छवि में एक अभिव्यक्ति है।** परमात्मा के पास कोई गुण नहीं है, जिसमें शुद्ध आत्मा होती है और जो बिना किसी दूसरी सत्ता के होती है अर्थात ईश्वर वास्तव में एकमात्र अस्तित्व होता है, उसे छोड़कर वास्तविक अस्तित्व में कोई अन्य नहीं है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

103. 1991 में **बम्पर डेवलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम कमिशनरी ऑफ पुलिस ऑफ द मेट्रोपोलिस** [52] में अपील के आंग्ल अदालत को यह

---

52 (1999) 5 एससीसी 50

52 (1999) 5 एससीसी 50

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सवाल तय करने के लिए बुलाया गया था कि क्या एक हिंदू मंदिर और एक हिंदू मूर्ति विधि के न्यायालय में मुकदमा कर सकते हैं। सन् 1976 में एक भारतीय मजदूर ने तमिलनाडु के पथूर में एक 'शिव नटराज' की खोज की जिसे बाद में मजदूर ने धार्मिक कलाकृतियों के एक डीलर को बेच दिया। बाद में एक 'शिवलिंगम' सहित अन्य कलाकृतियाँ पायी गयीं और पथुर मंदिर में पुनःस्थापित कर दिया गया। 1982 में बम्पर डेवलपमेंट कॉरपोरेशन ने लंदन के एक डीलर से 'शिव नटराज' को सद्भाव से खरीदा, जिसने बिक्री के प्रयोजनों के लिए 'नटराज की एक झूठी उत्पत्ति' प्रस्तुत की। बाद में नटराज को मेट्रोपॉलिटन पुलिस ने जब्त कर लिया। विचारण में भारत सरकार और तमिलनाडु की राज्य सरकार ने पथूर मंदिर और शिवलिंगम के साथ–साथ "विधिक व्यक्तियों" के रूप में हस्तक्षेप किया। अपील के न्यायालय ने आंग्ल न्यायालयों में विदेशी विधि पर लंबी चर्चा की। हालांकि , कानूनी इकाई के रूप में पथुर मंदिर द्वारा दावे की पोषणीयता का मूल्यांकन करने में, आंग्ल न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किए:

> "(1) **न तो ईश्वर और न ही कोई अलौकिक सत्ता कानून में व्यक्ति हो सकता है।** इस कथन की सत्यता का एक व्यावहारिक उदाहरण यह है कि यदि धर्मदाय एक अलौकिक शक्ति के रूप में ईश्वर में निहित होती , तो विभिन्न मंदिरों के बीच उनके संबंधित अधिकारों को लेकर मुकदमेबाजी असंभव होगी। तो किसी प्रसंग में समान "व्यक्ति" वादी और प्रतिवादी दोनों होंगे, जैसा कि डॉ. मुखर्जी बताते हैं, सभी हिंदू हमेशा एक परमात्मा की पूजा करते हैं। बिना संदेह के यह स्पष्ट है कि भारत में मंदिरों के मध्य बहुत मुकदमेबाजी है।
>
> ...
>
> (4) **कोई विधिक व्यक्ति पहचान के लिए समर्थ होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि 'व्यक्ति' का नाम या विवरण हो। चूंकि प्रत्येक हिंदू मूर्ति एक परमात्मा की अभिव्यक्ति है, इसलिए व्यक्ति को पहचान के लिए**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भगवान के नाम को छोड़कर कहीं और देखना चाहिए। पथूर मंदिर के संस्थापक का नाम इसके शीर्षक में है और यह तमिलनाडु में प्रथा प्रतीत होती है। इसलिए किसी भी मूर्ति को उस मंदिर के नाम के साथ संबंध द्वारा संदर्भित किया जाना चाहिए जिसमें यह है।"

(प्रभाव वर्धित)

104. हिन्दू धर्म परमात्मा को विश्व के हर पहलू में विद्यमान समझता है। परमात्मा सर्वव्यापी है। कानूनी प्रणाली के 'विषयों की पहचान करने' की आवश्यकता पर एक विधिक व्यक्ति का विचार आधारित है। एक सर्वव्यापी किसी भी तरीके से कानून के लिए सार्थक या चित्रित होने में असमर्थ है और कोई पहचान योग्य विधिक विषय सामने नहीं आएगा। यह समझ इस न्यायालय के निर्णयों में भी परिलक्षित होती है। **योगेंद्र नाथ नस्कर बनाम आयकर आयुक्त, कलकत्ता**[54] में, इस न्यायालय की तीन जजों की पीठ को यह निर्धारित करने के लिए बुलाया गया था कि क्या एक हिंदू मूर्ति (या देवता) आयकर अधिनियम 1922 की धारा 3 के तहत "एक व्यक्ति" की परिभाषा में आती है। न्यायमूर्ति वी रामास्वामी ने इस न्यायालय की तीन जजों की बेंच के लिए बोलते हुए कहा:

"महान दार्शनिक शंकर ने एक ही सत्य का उल्लेख किया है जो बुद्धि (मतिभेद) की विविधता के कारण पारंपरिक रूप से (परिकल्प्य) ब्रह्म, विष्णु और महेश्वर के रूप में विभिन्न प्रकार से कहा जाता है। **हालाँकि, यह संभव है कि उपासक या धर्मदाय के संस्थापक इस उच्चतम आध्यात्मिक आधार की कल्पना नहीं कर सकते हैं, लेकिन यह मानते हैं कि मूर्ति एक व्यक्तिगत भगवान का मूर्त रूप है, लेकिन इस मामले से कानून का कोई सरोकार नहीं है। न तो ईश्वर और न ही कोई अलौकिक कानून में व्यक्ति हो सकता है। लेकिन जहाँ तक देवता उस विशेष उद्देश्य के प्रतीक और प्रतिनिधि के रूप में होता है जिसे दाता द्वारा इंगित किया जाता है, यह एक विधिक व्यक्ति के रूप में हो सकता है।** सही कानूनी

---

54 (1969) 1 एससीसी 555

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> दृष्टिकोण यह है कि उस क्षमता में केवल समर्पित संपत्ति इसमें निहित है। कोई सिद्धांत नहीं है कि अगर इस तरह के विधिक व्यक्ति को कानून में संपत्ति रखने, भले ही आदर्श अर्थों में और संपत्ति के लिए मुकदमा करने, किराए की मान्यता देने और ऐसी संपत्ति का बचाव करने के लिए आदर्श अर्थों में कानून की अदालत में, अनुमति दी जाती है तो इस तरह के विधिक व्यक्ति के रूप में एक देवता पर कर क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए। हमारा निष्कर्ष यह है कि हिंदू मूर्ति एक न्यायिक इकाई है जो संपत्ति रखने में सक्षम है और इसके सेवादार के माध्यम से कर लगाया जा सकता है जिन्हें इसकी संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन सौंपा गया है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

परमात्मा को विधिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं किया जाता है। अपने अस्तित्व के आधार पर ही– परमात्मा की कोई भौतिक उपस्थिति नहीं है, क्योंकि वह सर्वव्यापक माना जाता है। अदालत देवत्व पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं करती है। हिन्दू दर्शन में द्वैवत्व असीम, विराट और अनन्त है। दैवत्व विश्व के हर पहलू में व्याप्त है। देवत्व का गुण वर्णन से परे है और उसे –भौतिक या विधिक सीमाओं के संदर्भ में परिभाषित नहीं करने के लिए मूल आधार प्रदान करता है। इस कारण से कि यह सर्वव्यापी है, यह भेद करना असंभव होगा कि कहाँ एक कानूनी इकाई समाप्त हो जाती है और अगली शुरू होती है। इस तरह के अभ्यास में कानून की संकीर्ण सीमाएँ दोषपूर्ण हैं और यह इस कारण से है, कि कानून इस दृष्टिकोण को अपनाने से दूर रहा है। हिन्दू धर्म में, परमात्मा की भौतिक अभिव्यक्तियाँ मूर्तियों के रूप में विद्यमान हैं, जिससे उपासक एक आकारहीन प्राणी का अनुभव कर सकें। मूर्ति परमसत्ता का एक प्रतिनिधित्व है। एक भौतिक रूप रखने से मूर्ति पहचान योग्य है।

105. हिन्दू मूर्तियों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए अपनाई गई पद्धति की खोज और प्रदान करने का कारण आवश्यक है। मुख्य न्यायाधीश

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बी. के. मुखर्जी की, **"धार्मिक और पूर्त न्यासों की हिन्दू विधि"** कालनिरपेक्ष गुण प्रदर्शित करता है और इस विषय पर हमारी विधि के विकास को समझने में उसका महत्व है। न्यायमूर्ति मुखर्जी ने नोट किया कि धार्मिक धर्मदाय की हिंदू प्रथा को विनियमित करने वाले न्यायालयों से पहले भी, धार्मिक उद्देश्यों के लिए समर्पित संपत्तियों को विनियमित करने में स्पष्ट सार्वजनिक हित की परिणति उस समय के शासकों द्वारा विनियमित करने में हुई। वह कहते हैं:

> "1.36... तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक समय से ही इस देश में धार्मिक और पूर्त संस्थान सत्तारूढ़ प्राधिकारी के विशेष संरक्षण में आ गए। प्रसिद्ध *रामेश्वर पगोडा* मामले में, न्यायिक समिति द्वारा यह इंगित किया गया था कि **इस देश के पूर्व शासकों ने हमेशा इस तरह के धर्मदाय पर जाने के अधिकार का दावा किया था ताकि उनके प्रबंधन में बुराईयों को रोका जा सके और उनका निवारण किया जा सके।** "इसमें कम ही संदेह हो सकता है", इस प्रकार उनके आधिपत्य का अवलोकन किया जा सकता है, "कि अधीक्षण प्राधिकारी का प्रयोग पुराने शासकों द्वारा किया गया था।" श्री नेल्सन ने अपने मदुरा मैनुअल में कहा है: "... धर्म कर्ता एक दूसरे के साथ लेकिन थोड़ा संवाद करते थे और खुद राजा को छोड़कर किसी भी सांसारिक श्रेष्ठ को मान्यता नहीं देते थे। **प्रत्येक व्यक्ति सभी नियंत्रणों से स्वतंत्र था और अपनी प्रसन्नता के साथ पूरी तरह से कार्य करता था। इस स्वतंत्रता ने स्वाभाविक रूप से घोर बुराईयां को जन्म दिया और राजा को कभी–कभी कुछ चर्चों के प्रबंधन में हस्तक्षेप करने के लिए मजबूर किया गया।**"[55]
>
> (प्रभाववर्धित)

106. 2010 में इकोनोमिकल एण्ड़ पॉलिटीकल वीकली में प्रकाशित एक लेख में गौतम पटेल ने धर्मदाय के ऐतिहासिक विकास का पता लगाया। उन्होंने मूर्तियों को कानून में व्यक्तित्व प्रदान करने का कारण बताया:

> "राजाओं और शासकों ने हिंदू मंदिरों की स्थापना, देखरेख और रखरखाव के लिए नियमित रूप से संपत्ति और नकदी दान की।

---

55 बी. के. मुखर्जी, द हिन्दू लॉ ऑफ रिलिजियस एण्ड़ चैरिटेबल ट्रस्ट, 5 वॉ संस्करण ईस्टर्न लॉ हाउस, (1983) पेज 28 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> जब भूमि पर मंदिर बन जाता था तो वह आज्ञापत्र द्वारा सनद या अनुदान या फरमान के रूप में होती थी। उदाहरण के लिए, नाथद्वार स्थित श्रीनाथजी मंदिर को बादशाह अकबर का फरमान प्राप्त होना कहा गया। सुव्यवस्था और प्रलेखन से औपनिवेशिक सनक को देखते हुए, इस स्थिति ने एक समस्या खड़ी कर दी– **भूमि के बड़े क्षेत्रों का स्वामित्व, प्रबंधन और निर्माण सेवायत और मंहत द्वारा किया गया जो स्पष्ट रूप से मालिक नहीं थे।** मंदिर अपनी प्रकृति से, नम्य व वृद्धि और बदलाव के लिए उपयुक्त थे। **कुछ स्थायित्व के साथ मूर्ति का अस्तित्व था** और यह संभवतः इस कारण से है कि हिंदू मूर्ति की कानूनी अवधारणा सम्पत्ति रखने वाली एक न्यायिक इकाई के रूप में विकसित की गई। कारण विशुद्ध रूप से राजकोषीय रहा होगा– इन भूमि का सर्वेक्षण किया जाना था, उनके स्वामित्व का पता लगाया गया था और फिर भू–राजस्व और अन्य करों के लिए (या छूट से) मूल्यांकन किया गया था। **लेकिन भूमि का स्वामित्व लगभग हमेशा फरमान, सनद या किसी अन्य लिखत द्वारा दिए गए सकारात्मक कार्य की स्थापना पर निर्भर करता था** जो कि स्पष्टतः मूर्ति को भूमि का समर्पण दर्शाता है।"[56]
>
> (प्रभाव वर्धित)

कानून में एक इकाई के रूप में मूर्ति की मान्यता का कारण आंतरिक रूप से उन ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़े होते हैं जिनमें मान्यता प्राप्त हुई थी। व्यक्तियों, व्यापारियों और शासकों द्वारा धार्मिक धर्मदायों की स्थापना भारत में एक सदियों पुरानी प्रथा है। तथापि, भारत में औपनिवेशिक प्रशासन और उस समय की आंग्ल विधि में उस विधिक ढांचे का अभाव था जिसके भीतर हिन्दू धार्मिक धर्मदाय के संबंध में दावों को अभिलिखित, कराधान और अंततः न्यायनिर्णीत किया जाए। समर्पित संपत्तियों की मूल्य वृद्धि से विवाद उत्पन्न हुए। देश भर में अदालतों की स्थापना ने धर्मदाय , मूर्तियों और

---

56 गौतम पटेल, आइडल्स इन लॉ, खण्ड़ 45 सं. 50
इकोनोमिक व पॉलिटीकल वीकली (11-17 दिसम्बर 2010) पेज 49 पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देवोत्तर संपत्तियों से संबंधित दावों पर निर्णय लेने के लिए निरंतर नेतृत्व किया।

जे. 2 मूर्तियाँ और न्यायिक व्यक्तित्व

107. भारत में अंग्रेजी और भारतीय न्यायाधीशों से हिंदू मूर्तियों और उनसे संबद्ध संपत्तियों की विधिक विशेषताओं का अवधारण करने का आह्वान किया गया। **मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम लखमिराम गोविंदराम**[57] में वादी डाकोर के मंदिर की धार्मिक स्थापन में हित रखने वाले व्यक्ति थे और प्रतिवादी मंदिर के चढ़ावे के प्राप्तकर्ता थे। वादी की प्रार्थना थी कि अदालत मंदिर में दिए गए प्रसाद के जवाबदेह निराकरण के लिए एक रिसीवर नियुक्त करे। दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने कहा कि मंदिर का प्रसाद उनकी अपनी पूर्ण और धर्मनिरपेक्ष संपत्ति थी। बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खण्ड़ पीठ ने उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया जिसमें मामला घटित हुआ और हिंदू मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने की आवश्यकता पर विचार किया। न्यायालय के न्यायमूर्ति आर बेस्ट ने संप्रेक्षित किया:

> "कई शताब्दियों तक मंदिर के राजस्व में उसकी सेवाओं को बनाए रखने के लिए अपेक्षित व्यय से अधिक हो गये प्रतीत होते हैं लेकिन हाल ही में ये राजस्व काफी बढ़ गये हैं। कानून जो बाहरी हिंसा के खिलाफ अधिष्ठान की रक्षा करता है, वह भी आंतरिक रूप से कुप्रशासन से रक्षा करता है, और संस्था के केंद्रीय सिद्धांत के अनुरूप, इसके बढ़े हुए धन का उपयोग करता है।"

108. मंदिरों और मूर्तियों को सम्पत्ति समर्पित करने की हिंदू प्रथा को अदालतों द्वारा पहली बार उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में अधिनिर्णीत किया

---

57 आईएलआर (1888) 12 बॉम्बे 247

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जाना था। भारत में अंग्रेजी न्यायाधीशों द्वारा हिंदू कानून को धार्मिक धर्मदाय पर लागू करने के कार्य से निपटते हुए यह सिद्धांत कि हिंदू मूर्तियों का एक अलग विधिक व्यक्तित्व है, को अपनाया गया था। संपत्ति विवाद उत्पन्न हुए और संपत्तियों के स्वामित्व के बारे में सवाल उठाया गया। दो स्पष्ट हितों को कानूनी सुरक्षा के विषय के रूप में मान्यता दी गई थी। सबसे पहले, शेबिट्स (यानी प्रबंधकों) द्वारा कुप्रबंधन की वास्तविक संभावना मौजूद थी, जहां एक विशेष पवित्र उद्देश्य के लिए प्रदान की गयी भूमि, आमतौर पर एक मूर्ति की पूजा के लिए, खराब रूप से प्रशासित या यहां तक कि अलग–थलग थी। दूसरा, जहां भूमि सार्वजनिक पूजा के लिए समर्पित थी, वहाँ यह भय था कि जनता तक पहुंच या जनता को अन्य धार्मिक लाभ से वंचित किया जाएगा, विशेष रूप से भक्तों के लिए। जहां धर्मदाय का मूल संस्थापक जीवित नहीं था और शेबैत भूमि का मालिक नहीं था, तो मूल समर्पण को प्रभावी करने के लिए अदालतें (और उनके माध्यम से राज्य) कैसी थीं। अदालतों को एक वैचारिक ढांचा प्रदान करने के लिए जिसके भीतर वे विश्लेषण कर सकते हैं और व्यावहारिक रूप से धर्मदाय संपत्तियों पर प्रतिस्पर्धी दावों से जुड़े विवादों पर निर्णय ले सकते हैं, अदालतों ने हिंदू मूर्ति के विधिक व्यक्तित्व को मान्यता दी। यह ऐतिहासिक परिस्थितियों, मौजूदा कानून में अंतर और सुविधा के विचार से आवश्यक कानूनी नवाचार था। यह एक वस्तु को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने का अतिरिक्त लाभ था जो कि हिंदू धर्म के भीतर लंबे समय से व्यक्तित्व के अधीन रहा था। इस प्रकार प्रदत्त विधिक व्यक्तित्व की सटीक आकृति वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक है, जिस पर यह निर्णय अब ध्यान आकर्षित करता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

109. हिंदू मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने में अदालतों ने रोमन कानून में तथ्यात्मक समानता के रूप में देखकर प्रेरणा प्राप्त की। न्यायमूर्ति बी के मुखर्जी ने स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया:

> "...पांचवी शताब्दी के बाद से– व्यक्तियों द्वारा सृजित प्रतिष्ठान को सही विधिक अर्थ में प्रतिष्ठान के रूप में मान्यता प्रदान की गई, किंतु यदि वे पिआ कॉजा का रूप लेते हैं, अर्थात् यदि वे केवल 'पूर्त उद्देश्य' के लिए समर्पित थे, संक्षेप में, यदि वे पूर्त संस्थाएं हों। **जब कभी कोई व्यक्ति संपत्ति चाहे जीवनकाल में उपहार के माध्यम से या वसीयत द्वारा – गरीबों या बीमार, या कैदियों या अनाथों, या वृद्ध लोगों के पक्ष में समर्पित करता है तो उसने वास्तव में कानूनी अधिकारों का एक नया विषय बनाया**–गरीब घर, अस्पताल और इसके आगे और समर्पित संपत्ति नए विषय की एकमात्र संपत्ति बन गई– यह **नए विधिक व्यक्ति की संपत्ति बन गई जिसे संस्थापक अस्तित्व में लाया था।**
>
> .....
>
> 1...एक निजी व्यक्ति पहले से ही अस्तित्व में एक निगम को विरासत या उपहार के माध्यम से संपत्ति दे सकता है और हो सकता है, उसी समय, उस विशेष उद्देश्य को निर्धारित करे जिसके लिए संपत्ति को नियोजित किया जाना था, उदाहरण के लिए, गरीबों को भोजन कराना, या बीमार या व्यथित को राहत देना। प्राप्तकर्ता निगम एक ट्रस्टी की स्थिति में होगा और विशेष उद्देश्य के लिए धन खर्च करने के लिए कानूनी रूप से बाध्य होगा। **दूसरा विकल्प स्वयं दाता के लिए एक प्रतिष्ठान या संस्थान बनाना था। यह एक नया विधिक व्यक्ति होगा, जो अपने मूल पर निर्भर, किसी और पर नहीं बल्कि संस्थापक की इच्छा पर निर्भर करता है, बशर्ते कि यह एक धर्मार्थ उद्देश्य के लिए निर्देशित था। प्रतिष्ठान समर्पित संपत्ति का मालिक होगा,** और प्रशासक प्रतिष्ठान के उद्देश्य को पूरा करने के लिए बाध्य न्यासी होंगे।"[58]

(प्रभाव वर्धित)

---

58 बी. के मुखर्जी, द हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस एण्ड चैरिटेबल ट्रस्ट, 5 वाँ संस्करण, ईस्टर्न लॉ हाउस (1983) पृष्ठ 9 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रोमन कानून में, जहां संपत्ति एक विशेष धार्मिक या पूर्त उद्देश्य के लिए समर्पित थी और एक अभिज्ञात आदाता को नहीं थी, तो धार्मिक/पूर्त उद्देश्य को स्वयं एक वैध प्रतिष्ठान की प्रास्थिति तक बढ़ाया गया था। प्रतिष्ठान एक अलग कानूनी इकाई थी और समर्पित संपत्ति का मालिक था। हिन्दू विधि धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के बीच अंतर नहीं करती है। हालांकि , हिंदू धर्मदाय के मामले में एक स्पष्ट सदृश मौजूद है।

110. **मनोहर गणेश तांबेकर** में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की खण्ड़ पीठ ने उस तर्क और उस प्रक्रिया के लिए औचित्य निर्धारित किया, जिसके द्वारा हिंदू मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। न्यायमूर्ति वेस्ट ने संप्रेक्षित किया:

> "हिंदू विधि, रोमन कानून और उससे व्युत्पन्न की तरह, न केवल निगमित निकायों को अपने व्यक्तिगत सदस्यों के अलावा निगम में निहित संपत्ति के अधिकारों के साथ, बल्कि विधिक व्यक्तियों को या प्रतिष्ठान नामक विषयों को भी मान्यता देता है। **एक हिंदू, जो एक धार्मिक या धर्मार्थ संस्थान स्थापित करना चाहता है, अपने कानून के अनुसार, अपना उद्देश्य व्यक्त कर सकता है और इसे धर्मस्व दे सकता है, और शासक उपहार को प्रभाव देगा... इस उद्देश्य के लिए एक न्यास की आवश्यकता नहीं है: ऐसे मामले में एक न्यास की आवश्यकता वास्तव में एक विशेषता और अंग्रेजी कानून की एक आधुनिक विशेषता है।** शुरुआती समय में एक उपहार, जैसा कि यह व्यक्त किया गया था, "ईश्वर की वेदी पर इस प्रकार समर्पित भूमि की चर्च को जानकारी देना पर्याप्त है।
>
> ...
>
> इस तरह की व्यावहारिक वास्तविकता कानून के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है; यह व्यापारियों द्वारा अपने खातों में भी उपयोग की जाती है, और एक संस्था के लिए एक आदर्श केंद्र प्रस्तुत करके किया जाता है जिसे आवश्यक मानव विशेषताएँ प्रदान की जाती है। ... लेकिन यदि विधिक व्यक्ति है, तो प्रतिष्ठान के केन्द्र के रूप में एक पवित्र या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> परोपकारी विचार के आदर्श मूर्तिमान के रूप में इन अधिकारों का कृत्रिम कर्ता, गहने और धन के चढ़ावे को लेने के लिए वैसे ही सक्षम है जैसे कि भूमि का। वे जो दूसरे प्रकार की संपत्ति की तरह ही किसी का भौतिक कब्जा लेते हैं, एतद्वारा प्रतिष्ठान के उद्देश्यों के लिए इसके उचित अनुप्रयोग की जिम्मेदारी लेते हैं।
>
> ...
>
> विधि जो बाहरी हिंसा के खिलाफ प्रतिष्ठान की रक्षा करती है, इसे आंतरिक रूप से कुप्रबन्धन के खिलाफ भी बचाती है, और संस्था के केंद्रीय सिद्धांत के अनुरूप, इसके बढ़े हुए धन का उपयोग करती है। यह केवल समुदाय के सामान्य हित में इस नियंत्रण के अधीन है कि कानून के अदालतों के माध्यम से राज्य मात्र एक कृत्रिम व्यक्ति को मान्यता देते हैं। यह निष्ठावान के रूप में संपत्ति और अधिकारों की रक्षा करता है, और इस प्रकार, बोलने के लिए, यह केवल अनुप्रयोग को अलग करने की शर्त पर एक विशेष अनुमति प्राप्त उद्देश्य से संबंधित है, जब या तो उद्देश्य अव्यावहारिक, बेकार या खतरनाक हो गया है, या धन की एक असाधारण मात्रा में वृद्धि हुई है।"

(प्रभाव वर्धित)

111. **मनोहर गणेश ताम्बेकर** का निर्णय बताता है कि धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्य की अभिव्यक्ति और इसे कार्यान्वित करने के लिए एक धर्मदाय का निर्माण पर्याप्त था। आंग्ल विधि की तरह एक न्यास का निर्माण आवश्यक नहीं था। एक धर्मदाय के निर्माण के परिणामस्वरूप एक कृत्रिम विधिक व्यक्ति का निर्माण हुआ। कृत्रिम या विधिक व्यक्ति इसके निर्माण में अंतर्निहित एक पवित्र या परोपकारी उद्देश्य का प्रतिनिधित्व या प्रतीक है। धर्मदाय बनाने वाले व्यक्ति के पवित्र उद्देश्य को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। जहां धर्मदाय एक मूर्ति के लिए किया जाता है, मूर्ति विधिक व्यक्ति के भौतिक प्रतिनिधित्व का निर्माण करती है। यह विधिक व्यक्ति (यानी मूर्ति द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया पवित्र उद्देश्य) कानून में चल और अचल संपत्ति के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

चढ़ावे को स्वीकार कर सकता है जो इसमें निहित होगा। मूर्ति का विधिक व्यक्तित्व और धर्मदाय संपत्ति पर मूर्ति के अधिकार तथा भक्तों के चढ़ावे, मूर्ति के दिन–प्रतिदिन के प्रबंधन के लिए सौंपे गये मानव अभिकरणों के द्वारा कुप्रबंधन के खिलाफ धर्मदाय की रक्षा के लिए कानून द्वारा संरक्षित हैं।

112. **मनोहर गणेश तांबेकर** के फैसले के तुरंत बाद, मद्रास उच्च न्यायालय को एक मठ के प्रमुख की नियुक्ति से संबंधित विवाद का फैसला करने के लिए बुलाया गया था। **विद्यापूर्णा तीर्थ स्वामी बनाम विद्यानिधि तीर्थ स्वामी**[59] में, एक खंडपीठ ने मूर्तियों, मंदिरों और मठों के कानूनी चरित्र की कुछ विस्तार से जांच की। न्यायमूर्ति बी अयंगर इस संप्रेक्षण पर पहुँचे:

> "जैसा कि पहले ही कहा गया है, उपासक केवल आध्यात्मिक अर्थों में लाभार्थी हैं, और धर्मदाय स्वयं मुख्य रूप से आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए अभिप्रेत है, अप्रत्यक्ष रूप से और संयोग से अधिक संख्या में लोग कार्यालय–धारकों, नौकरों या दान की वस्तुओं के रूप में वहाँ से सामग्री या आर्थिक लाभ प्राप्त करते हैं... इस सवाल का सुझाव या विचार नहीं किया गया है, क्या वह समुदाय स्वयं जिसके आध्यात्मिक लाभ के लिए संस्थान की स्थापना की गई थी और धर्मदाय को विधिक व्यक्ति का निर्माण करने वाली निगमित निकाय के रूप में उचित रूप से नहीं माना जा सकता है जिसमें संस्था की संपत्ति निहित हैं और जो निगमित निकाय का निर्माण करने वाले एक या अधिक प्राकृतिक व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करती है, ये उत्तरवर्ती धर्माकर्ता या पंचायत और सी. *(C.)*, संस्था के न्यासों के निष्पादन का प्रभार रखते हैं और धर्मदायों के अंतरण का सीमित अधिकार रखते हैं, जैसा कि ऊपर उद्धृत वादों में परिभाषित किया गया है। हालांकि व्यक्तियों का परिवर्तनीय और अनिश्चित निकाय *ए पैण्ड्रे इन एलियोनो सोनो* में लाभ का दावा नहीं कर सकते हैं, न ही किसी भी प्रकार की वास्तविक संपत्ति का अनुदानगृहीता हो सकता है। (गुडमैन बनाम मेयर ऑफ सालतेस, देखें)। फिर भी ऐसे समुदाय को धार्मिक अधिष्ठान और धर्मदाय के संबंध में एक निगम या विधिक व्यक्ति के रूप में मानने के लिए उच्च प्राधिकार होता है।

---

59 आईएलआर (1904) 27 मद्रास 435

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

...

> **सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए हालांकि यह सारहीन है कि क्या पीठासीन मूर्ति या उपासकों के समुदाय को निगम या विधिक व्यक्ति के रूप में माना जाता है जिसमें सम्पत्ति निहित होती हैं , हालांकि एक न्यायिक दृष्टिकोण से राय का अंतर हो सकता है कि कौन सिद्धांत अधिक वैज्ञानिक है।** विधिशास्त्र पर हाल के एक लेखक (सामंड की 'ज्यूरिसप्रूडेन्स' (1902), 346) के शब्दों में, "काया का विकल्प जिसमें कानून एक कृत्रिम व्यक्तित्व को जीवन प्रदान करेगा, वह तत्व के बजाय रूप का विषय है, कानूनी सिद्धांत के बजाय स्पष्ट और सारगर्भित अभिव्यक्ति का विषय है,"...."
>
> (प्रभाव वर्धित)

अदालतों द्वारा विधिक व्यक्तित्व का दिया जाना कानून में मौजूदा कमियों को दूर करना और सामाजिक रूप से संतोषजनक और विधिसम्मत परिणामों को सुनिश्चित करना है। न्यायमूर्ति आयंगर का मानना है कि मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके संरक्षित किए जाने के लिए एक प्रमुख सामाजिक हित, भक्तों के हितों का संरक्षण था। न्यायमूर्ति अयंगर नोट करते हैं कि सामूहिक रूप में भक्तों को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके भी इस तरह की सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। हालांकि, मूर्ति के व्यापक व्यक्तिकरण को देखते हुए, वह मानते हैं कि विधिक व्यक्तित्व को व्यावहारिकता और सुविधा के विचार पर मूर्ति में निहित होना चाहिए।

113. भूपति नाथ स्मृतितीर्थ बनाम राम लाल मैत्र[60] में, कलकत्ता उच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ का गठन इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए किया गया था कि क्या देवी काली की मूर्ति की स्थापना के लिए एक वसीयतकर्ता द्वारा न्यासियों को वसीयत और वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद मूर्ति की पूजा हिन्दू विधि के सिद्धांत के कारण अविधिमान्य थीं जिसमें यह

60 आईएलआर (1909-1910) 37 कलकत्ता 128

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा गया था कि उपहार केवल चैतन्य प्राणी को दिए जा सकते हैं। इस मामले में वसीयतकर्ता ने कुछ संपत्तियों को एक मूर्ति को समर्पित किया था। जबकि 1890 में वसीयतकर्ता की मृत्यु हो गई, 1894 तक मूर्ति को प्रतिष्ठित नहीं किया गया था। यह प्रश्न उठा कि क्या वसीयतकर्ता की मृत्यु के समय मूर्ति के अस्तित्व में न होने ने, समर्पित सम्पत्ति की वसीयत के प्रावधानों को अमान्य कर दिया था। एक विद्वतापूर्ण मत में यह धारित करते हुए कि इस तरह की वसीयत वैध थी, मुख्य न्यायाधीश लॉरेंस जेनकिंस ने अवधारित किया:

> "...लेकिन वसीयतकर्ता ने अपनी सभी संपत्ति को उसके द्वारा नामित व्यक्तियों के हाथों में रखने का निर्देश दिया और कुछ भुगतानों के अधीन इन व्यक्तियों को अधिशेष आय खर्च करने के लिए निर्देशित किया गया था जो कि अपनी माँ के नाम पर काली की छवि स्थापित करने के बाद काली की पूजा और शिबा में छोड़ दी जा सकती है। अब यह स्पष्ट रूप से धार्मिक उद्देश्यों के लिए एक प्रवृत्ति थी और इस तरह की प्रवृत्तियों का हिंदू विधि द्वारा पक्ष लिया जाता है।
>
> ...इंग्लैंड में यह माना गया है कि "मालिक और ईश्वर की सेवा में नियोजित किए जाने वाले" या "ईश्वर की उपासना के लिए" उपहार सही हैं। **फिर क्या यह उस प्रवृत्ति को अमान्य कर देता है कि "मेरी मां के नाम पर काली की छवि स्थापित करने के बाद" शिबा और काली की पूजा पर अधिशेष आय को खर्च करने के लिए विवेक है। मुझे नहीं लगता: पवित्र उद्देश्य अभी भी विरासत है, छवि की स्थापना केवल वह ढंग है जिसमें पवित्र उद्देश्य को प्रभावित किया जाना है।"**
>
> (प्रभाव वर्धित)

न्यायमूर्ति स्टीफन ने अपने अलग मत में कहा:

> "लेकिन यद्यपि एक देवता के प्रति समर्पण एक उपहार को गठित नहीं करता है, लेकिन इसका कानूनी प्रभाव है। दाता का इरादा यह है कि उपहार की विषय–वस्तु का उपयोग पूजा द्वारा देवता को सम्मान देने के लिए और उपासकों तथा देवता के मंत्रियों पर लाभ प्रदान करने के लिए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> किया जाएगा, जो इसे संचालित करते हैं। यह पूजा ठीक प्रकार से की जाती है और मैं समझता हूं कि यह किसी छवि या बाहरी भौतिक पदार्थ का सहारा लेकर की जाती है, लेकिन यह छवि तब तक कुछ नहीं है जब तक कि देवता द्वारा प्रेरणा प्राप्त न हो। **यह देखना संप्रभु का कर्तव्य है कि समर्पण के उद्देश्य पूरे किए जाएं।**
>
> (प्रभाव वर्धित)

यह मानते हुए कि वसीयतकर्ता की मृत्यु के समय मूर्ति की गैर –मौजूदगी मायने नहीं रखती थी, मुख्य न्यायाधीश जेन्किन्स की राय स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है कि धर्मदाय संपत्ति स्वंय उद्देश्य में निहित है। जैसा कि वह नोट करते है, "पवित्र उद्देश्य अभी भी वसीयत प्राप्तकर्ता है।" यह इस उद्देश्य पर है कि विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में पवित्र उद्देश्य को मान्यता देने में राज्य इसे प्रभाव देता है और धर्मदाय का संरक्षण करता है। मूर्ति वसीयतकर्ता के उपहार का तात्विक मूर्त रूप है। उपहार देवता की निरंतर पूजा सुनिश्चित करने के लिए है, मूर्ति वसीयतकर्ता के पवित्र उद्देश्य की एक शारीरिक अभिव्यक्ति है। जहां अदालतें मूर्ति के विधिक व्यक्तित्व को मान्यता देती हैं, वे वास्तव में वसीयतकर्ता की इच्छा को मान्यता देते हैं और उनका संरक्षण करते हैं कि देवता की पूजा की जाए।

114. ऊपर उल्लिखित निर्णयों द्वारा अपनायी गयी समझ को मुख्य न्यायाधीश बी के मुखर्जी ने निम्नलिखित शब्दों में संक्षेप में प्रस्तुत किया है:

> "1.48 क.– संस्थाओं के व्यक्तित्व के लिए सिद्धांत–– नैसर्गिक व्यक्तियों और निगमों के अतिरिक्त, जिन्हें अंग्रेजी विधि द्वारा मान्यता प्राप्त है, हिन्दू विधि के अधीन स्थिति यह है कि यदि न्यास की लिखत के बिना धार्मिक या पूर्त संस्था के लिए कोई धर्मदाय की जाती है और धर्मदाय का उद्देश्य वह है जिसे पवित्र समझा जाता है, **जो हिन्दू विधि की स्वीकृत धारणाओं के अधीन धार्मिक या पूर्त है, तो संस्था को संपत्ति धारण करने में समर्थ विधिक व्यक्ति माना जाएगा।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

...

1.48 ख. मूर्तियाँ– मूर्तियों की स्थिति विशेष प्रकृति की है। हिंदू देवोत्तर में, ऐसा लगता है, स्थिति थोड़ी अलग है, और पूरा धर्मदाय नहीं बल्कि **मूर्ति जो एक पवित्र या परोपकारी विचार के एक मूर्तिमान के रूप में है, प्रतिष्ठान के केंद्र का गठन करता है और विधिक व्यक्ति के रूप में देखी जाती है जिसमें देवोत्तर संपत्ति निहित है।** आखिरकार, विधिक व्यक्तित्व मात्र कानून का निर्माण है और इसकी उत्पत्ति न्यायिक संबंधों के केंद्र के रूप में प्रदान करके न्याय करने की इच्छा में है। जैसा कि सामंड कहते हैं: "यह उतने प्रकार का हो सकता है जितना कानून उचित समझे," और काया का विकल्प जिसमें कानून काल्पनिक व्यक्तित्व को जीवन प्रदान करेगा, वह सार की बजाय रूप का विषय है।[61]

(प्रभाव वर्धित)

115. हिन्दू किसी धार्मिक प्रयोजन के लिए धर्मदाय बना सकता है। धर्मदाय संपत्तियों के संरक्षण और यह सुनिश्चित करने में एक सार्वजनिक हित है कि समर्पण का मूल पवित्र उद्देश्य पूरा हो। कानून इस पवित्र उद्देश्य पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करता है। हालाँकि, जैसा कि मुख्य न्यायाधीश बी के मुखर्जी नोट करते हैं, विधिक व्यक्ति की तात्विक अभिव्यक्ति मूर्ति है जिसे उस केंद्र के रूप में देखा जाता है जिसमें संपत्ति निहित है। एक पवित्र या परोपकारी उद्देश्य के मूर्तिमान के रूप में मूर्ति को कानून द्वारा एक न्यायिक इकाई के रूप में मान्यता दी जाती है। इसलिए राज्य उस संपत्ति की रक्षा करेगा जो मूर्ति में निहित है, चाहे एक विशिष्ट या व्यक्त न्यास की स्थापना न भी हो। एक पवित्र उद्देश्य या 'परोपकारी विचार' को एक विधिक व्यक्ति की प्रास्थिति तक बढ़ाया जाता है और मूर्ति पवित्र उद्देश्य की भौतिक अभिव्यक्ति का निर्माण करती है जिसके माध्यम से कानूनी संबंध प्रभावित होते हैं। समर्पण

---

61 बी. के. मुखर्जी, द हिन्दू लॉ ऑफ रिलिजियस एन्ड चैरिटेबल ट्रस्ट, 5 वां संस्करण ईस्टर्न लॉ हाउस (1983) पृष्ठ 36 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का केन्द्र बिन्दु पवित्र उद्देश्य है जो मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने का आधार है और जो अधिकारों और कर्तव्यों का विषय है। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने की आवश्यकता कानूनी निश्चितता की आवश्यकता से उत्पन्न होती है कि कौन समर्पित संपत्ति का मालिक है, साथ ही साथ समर्पणकर्ता के मूल आशय और भक्तों के भविष्य के हितों की संरक्षण के लिए आवश्यक है। अदालतों के लिए कुछ स्थितियों में भक्तों के समुदाय को व्यक्तित्व प्रदान करना भी उपलब्ध था, लेकिन मूर्ति को कानूनी संबंधों के लिए एक केंद्र के रूप में चुना जाता है क्योंकि यह पवित्र उद्देश्य की शारीरिक अभिव्यक्ति है।

116. मोहतप बहादुर बनाम काली पाड़ा चटर्जी[62] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय में इसका कारण रेखांकित है। सुदूर अतीत में, बर्दवान के महाराजा ने एक मूर्ति ('त्रिलोकेश्वर शिव') की पूजा के लिए कुछ भूमि समर्पित की और प्रतिवादी के पूर्वाधिकारी को सेवायत के रूप में पूजा के प्रबंधन का कार्य सौंपा। समर्पण के बाद पास की एक नदी की बाढ़ से मूर्ति बह गयी। बाद में महाराजा ने उसी गांव में एक नई मूर्ति का निर्माण किया। हालांकि, प्रत्यर्थिओं ने इस आधार पर नई मूर्ति की जगह पर पूजा करने से इनकार कर दिया कि मूल मूर्ति बह गयी थी। अपीलार्थी ने नवीन निर्मित मूर्ति स्थल पर आवश्यक धार्मिक अनुष्ठान करने के लिए प्रत्यर्थिओं को बाध्य करने के लिए एक निदेश की मांग की। मुख्य न्यायाधीश जेकिंस और न्यायमूर्ति मुखर्जी की पीठ ने अवधारित किया:

> "4. .... यह स्पष्ट है कि संपत्ति को महाराज द्वारा प्रतिवादी के पूर्वाधिकारी के लिए बनाया गया होगा ताकि आय को त्रिलोकेश्वर शिव [की] छवि की पूजा के लिए लगाया जा सके। सवाल यह उठता है कि

---

62 ए.आई.आर. 1914 कलकत्ता 200

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

क्या यह न्यास तब समाप्त हो गया जब मंदिर बह गया और प्रतिमा टूट गई...

5. ... क्या धर्मदाय को लागू करने के लिए प्रतिवादी का तर्क समाप्त हो जाएगा, यदि, जैसा कि इस मामले में हुआ है, जिस भूमि पर मंदिर था वो नदी द्वारा बहा दिया गया था। यह दृष्टिकोंण हिन्दू विधि के किसी सिद्धांत या किसी उद्धरण द्वारा समर्थित नहीं है जिसे हमारे ध्यान में लाया गया है।

6. दूसरी ओर, **भूपति नाथ स्मृतितिर्थो बनाम रामलाल मैत्रा** के मामले में इस अदालत की पूर्ण पीठ द्वारा मान्यता प्राप्त सिद्धांत का स्पष्ट रूप से विरोध किया गया है। यदि तब धर्मदाय नष्ट नहीं हुई जब जिस भूमि पर मंदिर था, बह गया और प्रतिमा टूट गई थी, तो तब से पक्षकारों की स्थिति को बदलने के लिए क्या हुआ है? प्रतिवादी उसी स्थिति में है जैसे वह सेवा कार्यकाल में हो। भूमि उन्हें निश्चित उद्देश्य के लिए दी गई थी, अर्थात्, वह महाराजा द्वारा स्थापित प्रतिमा की सेवा के उद्देश्य से आय को लगा सकता है...।"

(प्रभाव वर्धित)

मूर्ति उस पवित्र उद्देश्य की अभिव्यक्ति या मूर्तिमान का गठन करती है जिस पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है। मूर्ति के विनाश के परिणामस्वरूप पवित्र उद्देश्य और फलतः धर्मदाय की समाप्ति नहीं होती है। यहां तक कि जहां मूर्ति नष्ट हो जाती है या मूर्ति की उपस्थिति स्वयं अनियमित अंतराल पर या पूरी तरह से अनुपस्थित होती है, तो धर्मदाय द्वारा निर्मित विधिक व्यक्तित्व जारी रहता है। हमारे देश में, धार्मिक आचरण के रूप में मूर्तियों को नियमित रूप से जल में विसर्जित किया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि इस तरह विसर्जन से पवित्र उद्देश्य भी समाप्त हो गया है। मूर्ति की स्थापना वह तरीका है जिसमें पवित्र उद्देश्य पूरा हो जाता है। मूर्ति को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना, वास्तव में, स्वयं पवित्र उद्देश्य की मान्यता है न कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वह तरीका जिसके माध्यम से उस पवित्र उद्देश्य को आमतौर पर व्यक्ति बनाया जाता है। पवित्र उद्देश्य वहाँ भी पूरा किया जा सकता है जहां मूर्ति की उपस्थिति अनियमित है या समर्पण के विलेख के आधार पर विद्यमान मन्दिर में मूर्ति अनुपस्थित है। ऐसे सभी मामलों में विधिक व्यक्तित्व को जिस पवित्र उद्देश्य से प्रदान किया जाता है, वह निर्वाह करना जारी रखता है।

117. स्वतंत्रता के पश्चात् धर्मदायों की हिन्दू विधि पर लागू सिद्धांतों की **देवकी नंदन बनाम मुरलीधर**[63] में इस न्यायालय की चार न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पुष्टि की गई थी। 1919 में एक हिंदू वसीयतकर्ता ने श्री राधाकृष्णजी (या 'ठाकुर') की मूर्ति को अपनी भूमि वसीयत की। ठाकुर के प्रबंधन पर वसीयतकर्ता के प्रत्यक्ष वंशज और उसके दूर के गोत्रज के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। यह तर्क दिया गया कि ठाकुर का कुप्रबंधन किया जा रहा था और जनता को पूजा से वंचित किया गया था। यह उद्घोषणा मांगी गयी कि ठाकुरद्वारा एक सार्वजनिक मंदिर था। इस न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा था कि वसीयतकर्ता की वसीयत में समर्पण के दायरे का निर्माण कैसे किया जाए। इस न्यायालय की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति वेंकटरामा अय्यर ने अवधारित किया:

> "6. ... मूर्ति को सम्पत्ति के दान का वास्तविक उद्देश्य ईश्वर को कोई लाभ प्रदान करना नहीं है, बल्कि उन लोगों को सुविधा और अवसर प्रदान करके आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करना है जो पूजा करना चाहते हैं। भूपति नाथ स्मृतितीर्थ बनाम राम लाल मैत्रा में इनका और अन्य उद्धरण को देखने पर यह अवधारित किया गया था कि 'चैतन्य व्यक्ति' के हस्तांरण पर लागू नियमों द्वारा एक मूर्ति को दिया गए उपहार को न्यायनिर्णीत नहीं किया जाना था, और **यह कि एक मूर्ति को सम्पत्ति का समर्पण उन पर से अपने प्रभुत्व के स्वामित्व को छोड़ने में शामिल था,**

---

63 1956 एससीआर 756

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जो उनके उद्देश्यों के लिए विनियोजित किए जाने के उद्देश्य से थे। इस प्रकार, सर लॉरेंस जेनकिंस सी.जे. द्वारा पृष्ठ 138 पर यह संप्रेक्षित किया गया था कि "पवित्र उद्देश्य अभी भी वसीयतदार है, छवि की स्थापना केवल वह तरीका है जिसमें पवित्र उद्देश्य को प्रभावित किया जाना है" और यह कि "एक देवता के प्रति समर्पण उस पवित्र उद्देश्य की एक सारगर्भित अभिव्यक्ति हो सकती है जिसके लिए समर्पण किया गया है।"

7. जब एक बार यह समझा जाता है कि **धार्मिक धर्मदाय के सच्चे लाभार्थी मूर्तियाँ नहीं हैं, बल्कि उपासक हैं, और यह कि धर्मदाय का उद्देश्य उपासकों के लाभ के लिए उस पूजा का रखरखाव है,** तो यह प्रश्न कि क्या एक धर्मदाय निजी या सार्वजनिक है, कोई समस्या प्रस्तुत नहीं करता। यह मूल बिंदु निर्णीत किया जाना है कि क्या यह संस्थापक का आशय था कि निर्दिष्ट व्यक्तियों को मंदिर में पूजा का अधिकार है, या आम जनता को है या उसके किसी निर्दिष्ट हिस्से में है।

(प्रभाव वर्धित)

धर्मदाय बनाने से, दाता धर्मदाय संपत्ति के सभी दावों को छोड़ देता है। संपत्ति अब धर्मदाय के मूल में स्थित पवित्र उद्देश्य में निहित है जिसे विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है। मूर्ति पवित्र उद्देश्य की भौतिक अभिव्यक्ति और विधिक संबंधों के परिणामी केंद्र का निर्माण करती है। धर्मदाय के लाभार्थी उपासक हैं और मूर्ति के लिए पूजा का उचित रखरखाव उपासकों को ईश्वर से संवाद करने के आध्यात्मिक लाभ को प्राप्त करने में सक्षम बनाना है।

118. योगेंद्र नाथ नस्कर बनाम आयकर आयुक्त, कलकत्ता[64] में, यह तय करने में कि आयकर अधिनियम 1922 की धारा 3 के तहत एक हिंदू मूर्ति (या देवता) "वैयक्तिक" की परिभाषा में आती है, न्यायमूर्ति रामास्वामी ने

---

64 (1969) 1 एससीसी 555

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए इस अदालत ने अवधारित किया:

> 6. ... हालांकि यह याद रखना चाहिए कि मूर्ति में न्यायिक व्यक्ति तात्विक छवि नहीं है, और यह एक खण्ड़ित सिद्धांत है कि प्राण प्रतिष्ठा अनुष्ठान द्वारा सजीव और अधिष्ठित होते ही छवि स्वयं एक कानूनी व्यक्ति के रूप में विकसित होती है। यह भी सही नहीं है कि परमात्मा जिसकी मूर्ति एक छवि या प्रतीक है, समर्पित सम्पत्ति का प्राप्तकर्ता या मालिक है।
>
> ...
>
> **सही कानूनी स्थिति यह है कि दाता के आध्यात्मिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करने और मूर्त करने के रूप में मूर्ति, कानून द्वारा मान्यता प्राप्त विधिक व्यक्ति है और इस विधिक व्यक्ति में समर्पित संपत्ति निहित है।** जैसा कि माननीय बी.के. मुखर्जी द्वारा संप्रेक्षित किया गया है: "देवोत्तर के संबंध में... यह न केवल एक सारगर्भित अभिव्यक्ति है, बल्कि पवित्र उद्देश्य का तात्विक मूर्तिमान है और **हालांकि यह मानना कि संपत्ति स्वयं उद्देश्य या लक्ष्य में ही रह सकती है, इसमें कठिनाई है। यह कहना विधिशास्त्र के मजबूत सिद्धांतों से काफी सुसंगत होगा कि एक भौतिक वस्तु जो किसी विशेष उद्देश्य का प्रतिनिधित्व या प्रतीक है, उसे कानूनी व्यक्ति का दर्जा दिया जा सकता है, और इसे समर्पित संपत्ति का मालिक माना जा सकता है।**".... कानूनी स्थिति रोमन कानून में विकास के कई मामलों में तुलना करने योग्य है।" (प्रभाव वर्धित)

समर्पण के पीछे उद्देश्य

119. सर्वबन्धी कार्यवाही का मानवीकरण करने के लिए नौसेना कानून में एक जलयान के मामले में न्यायिक व्यक्तित्व की अवधारणा के समान सर्मपण के पीछे उद्देश्य के मूर्तिमान रूप में भौतिक वस्तु (मूर्ति) को विधिक सम्बन्धों के बिन्दु के रूप में चुना गया। कानून में एक इकाई का न्यायिक निर्वचन द्वारा सृजन एक महत्वपूर्ण कार्य है। क्योंकि इसने उस स्थिति को दूर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जो पैदा होगी यदि एक पवित्र उद्देश्य के लिए एक हिंदू द्वारा समर्पण के बावजूद, कोई कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त इकाई मौजूद नहीं थी जो समर्पण प्राप्त कर सकती थी। ऐसी स्थिति को न्यायिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांत द्वारा दूर किया गया जहां एक धार्मिक या धर्मार्थ संस्थान के लिए धर्मदाय किया जाता है और उद्देश्य पवित्र है, संस्था को एक न्यास की अनुपस्थिति में भी एक विधिक व्यक्ति के रूप में माना जाएगा। इसी तरह, जहां समर्पण एक मूर्ति की पूजा करने के लिए है, वर्तमान और भावी भक्तों का हित एक कानूनी ढांचे के अभाव में जोखिम पर होगा, जो किए गए समर्पण के विनियमन को सुनिश्चित करता है। पवित्र उद्देश्य पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना यह सुनिश्चित करता है कि समर्पण प्राप्त करने के लिए एक ऐसी इकाई मौजूद है जिसमें संपत्ति एक आदर्श अर्थ में निहित होगी और जिसके माध्यम से भक्तों के हितों की रक्षा की जा सकती है। यह समर्पण के उद्देश्य को पूरा करने और धार्मिक ग्रंथों के अनुसार पूजा संचालन के उद्देश्य से यह सुनिश्चित करने के लिए था कि भक्तों को प्रार्थना के माध्यम से शांति का एहसास हो।

120. विधिक व्यक्तित्व की मान्यता अदालतों द्वारा एक धार्मिक या 'पवित्र' उद्देश्यों के लिए संपत्ति समर्पित करने की हिंदू प्रथा को कानूनी प्रभाव देने के लिए तैयार की गई थी। संस्थापक या वसीयतकर्ता एक पवित्र उद्देश्य के उपयोग के लिए संपत्ति समर्पित करने का चयन कर सकते हैं। उपरोक्त कई मामलों में, इस पवित्र उद्देश्य ने एक मूर्ति की पूजा और निरंतर रखरखाव का रूप लिया। संस्थापक या वसीयतकर्ता की इच्छा को प्रभावी करने में एक स्पष्ट राज्य हित था, जिसके पास ऐसी समर्पित संपत्ति है, साथ ही यह सुनिश्चित करने के लिए कि संपत्ति हर समय समर्पण के उद्देश्य के लिए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपयोग की जाती है। एक कानूनी परिकल्पना बनाई गई थी जिसके द्वारा उस धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्य को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था जिसके लिए धर्मदाय किया गया था। एक मूर्ति के लिए एक समर्पण के मामले में, विधिक व्यक्तित्व मूर्ति में ही 'सारगर्भित अभिव्यक्ति' पाता है। विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके, अदालत ने समर्पित संपत्तियों को प्राप्त करने के लिए एक इकाई बनाकर समर्पण को कानूनी प्रभाव दिया। यह बताते हुए कि बनाया गया कृत्रिम व्यक्ति वास्तव में समर्पित संपत्तियों का मालिक है, अदालत ने सेवायतों द्वारा कुप्रबंधन के खिलाफ रक्षा की। भले ही कृत्रिम विधिक व्यक्ति प्राकृतिक व्यक्ति की सहायता के बिना मुकदमा नहीं कर सकता है, एक कानूनी ढांचे को अस्तित्व में लाया गया था जिसके द्वारा समर्पित संपत्ति के लिए और उसके खिलाफ दावे किए जा सकते हैं।

121. यद्यपि वैचारिक रूप से अदालतों ने संस्थापक के इरादे को विधिक व्यक्तित्व की विशेषता दी, भौतिक मूर्ति में कानूनी संबंधों का एक सुविधाजनक भौतिक स्थान पाया गया। **देवकी नंदन** में इस न्यायालय के अवलोकनों द्वारा इस समझ को दोहराया गया है कि मूर्ति वसीयतकर्ता के पवित्र उद्देश्य की एक "सारगर्भित अभिव्यक्ति" है। मूर्ति, एक प्रतिनिधित्व के रूप में या पवित्र उद्देश्य (अब कृत्रिम विधिक व्यक्ति) की "सारगर्भित अभिव्यक्ति" के रूप में कानूनी संबंधों का एक स्थान है। यह इस समझ के अनुरूप भी है कि जहां एक मूर्ति नष्ट हो जाती है, धर्मदाय समाप्त नहीं होता है। पवित्र उद्देश्य की भौतिक अभिव्यक्ति होने के नाते, यहां तक कि जहां मूर्ति बह जाती है, अस्थायी रूप से अस्तित्व में नहीं है, या प्रकृति की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शक्तियों द्वारा नष्ट हो जाती है, एक विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त पवित्र उद्देश्य अस्तित्व में रहता है।

122. जिस सीमा तक विधिक आवश्यकता और सुविधा से सिद्धांत उत्पन्न होता है, उसे **विद्यापूर्णा तीर्थ स्वामी बनाम विद्यानिधि तीर्थ स्वामी** [65] में न्यायमूर्ति आयंगर द्वारा समझाया गया है। जब विद्वान न्यायाधीश ने उल्लेख किया कि कानूनी परिकल्पना द्वारा, एकल विधिक व्यक्ति के रूप में भक्तों के समुदाय या समूह को मान्यता देना भी संभव था। जैसा कि वह नोट करते हैं, इसने भक्तों के हित और समर्पित सम्पत्ति के संरक्षण के लिए एक पर्याप्त विधिक ढाँचा के निर्माण के न्यायालय के लक्ष्यों को भी पूरा किया होगा। हालांकि अदालत ने नोट किया कि जैसा कि कोई "व्यावहारिक" अंतर नहीं था, सुविधा के लिए मूर्ति पर कानूनी परिकल्पना लगायी गयी थी और भक्तों पर नहीं। इन पूर्व निर्णयों से संकेत मिलता है कि धार्मिक व्यवहार में कैसे मूर्ति के निरंतर व्यक्तिकरण ने अदालत के लिए मूर्ति को कानूनी संबंधों के केन्द्र के रूप में चुनने की नींव रखी।

123. इसलिए एक विधिक या "न्यायिक" व्यक्ति के रूप में हिंदू मूर्ति की मान्यता अदालतों द्वारा नियोजित दो क्षेत्रों पर आधारित है। पहला एक न्यास की अनुपस्थिति में, एक आदर्श अर्थ में संपत्ति धारण करने में सक्षम विधिक इकाई के रूप में वसीयतकर्ता के पवित्र उद्देश्य को मान्यता देना है। दूसरा मूर्ति और स्वयं पवित्र उद्देश्य का विलय है जो पवित्र उद्देश्य की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए पवित्र उद्देश्य को मूर्त रूप देता है। यथा मान्य, हिंदू मूर्ति एक विधिक व्यक्ति है। पवित्र उद्देश्य के लिए धर्मदाय संपत्ति आदर्श अर्थों में एक विधिक व्यक्ति के रूप में मूर्ति के स्वामित्व में रखी जाती है।

---

65 आईएलआर (1904) मद्रास 435

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अदालत ने इस तरह की कानूनी कल्पना क्यों की, इसका कारण बाहरी खतरों के साथ–साथ आंतरिक कुप्रशासन से पवित्र उद्देश्य के लिए समर्पित संपत्तियों की रक्षा के लिए एक आसान कानूनी ढांचा प्रदान करना था। जहां पवित्र उद्देश्य ने सभी भक्तों के लाभ के लिए एक सार्वजनिक न्यास को आवश्यक बना दिया और विधिक व्यक्तित्व प्रदान करते हुए अदालतों को भक्तों के लाभ के लिए पवित्र उद्देश्य की रक्षा करने की अनुमति दी।

124. हिन्दू मूर्तियों पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के पीछे विधिक नवाचार के इतिहास और अंतर्निहित आधार को उपवर्णित करते हुए, हमारे समक्ष मूल प्रश्न का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। वाद 5 में वादी की ओर से किए गए इस तर्क के जवाब पर वर्तमान मामला महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रथम और द्वितीय वादी– भगवान श्री राम विराजमान और अस्थान श्री राम जन्म भूमि विधिक व्यक्ति हैं। यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इस न्यायालय को दूसरी वादी के विधिक व्यक्ति घोषित किए जाने के कानूनी परिणामों को अधिनिर्णीत करने की आवश्यकता होगी।

J.3 प्रथम वादी का विधिक व्यक्तित्व

125. भगवान राम के भक्तों के लिए "भगवान श्री राम विराजमान", वाद 5 में प्रथम वादी भगवान राम के मूर्तिमान हैं और राम जन्मभूमि के निवासी देवता का गठन करते हैं। हिंदू भक्तों की आस्था और विश्वास उनकी अंतरात्मा के लिए व्यक्तिगत मामला है और इस न्यायालय का काम प्रथम–दृष्टतया परीक्षण से परे उनके दृढ़ विश्वास की ताकत या उनके विश्वासों की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तर्कसंगतता की जांच करना व यह पता लगाना नहीं है कि क्या इस तरह के विश्वासों को सद्भाव में धारण किया गया है।

126. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से पता चलता है कि भगवान राम के हिंदू भक्त उस स्थान पर भगवान राम की प्रार्थना करने से मिले धार्मिक गुण में एक वास्तविक, बहुत समय से और गहन विश्वास रखते हैं, जिसे वे उनका जन्म स्थान मानते हैं। विवादित स्थल पर भगवान राम की हिंदू उपासना का एक लंबा अभ्यास दिखाने के लिए वाद 5 में वादी द्वारा साक्ष्य दिया गया है। 18 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में **जोसेफ टाइफेंथालर** और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में **रॉबर्ट मोंटगोमरी मार्टिन** यात्रा वृतांत में विवादित स्थल पर हिंदू पूजा की प्रबलता दर्ज करते हैं। वे राम नवमी जैसे विशेष अवसरों का भी उल्लेख करते हैं, जिसके दौरान हिंदू भक्त भगवान राम की प्रार्थना करने की इच्छा से प्रेरित होकर दूर के क्षेत्रों से जन्मस्थान पर जाते हैं। तीन गुम्बदाकार संरचना के नीचे जन्मस्थान के अस्तित्व में हिंदू भक्तों की निरंतर आस्था और विश्वास, कई वर्षों के दौरान विवादित स्थल जाने वाले निर्मोहियों की गतिविधियों, वैयक्तिक भक्तों जैसे कि निहंग सिंह और हिंदू भक्तों की अंतहीन धारा से स्पष्ट है। यह हिंदू धर्म के लिए पूजा स्थल के रूप में विवादित स्थल की पवित्रता में लंबे समय से प्रचलित विश्वास का प्रमाण है। वाद 5 में प्रथम वादी के विधिक व्यक्तित्व के निर्धारण के लिए यह स्थापित करना आवश्यक नहीं है कि क्या भक्तों का मानना है कि केंद्रीय गुंबद के नीचे वही स्थान भगवान राम का जन्म–स्थान था या भक्तों की आस्था और विश्वास स्वयं स्वत्व प्रदान कर सकती है। ये प्रश्न इस निर्णय के बाद के भाग में संबोधित हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वर्तमान उद्देश्यों के लिए, यह नोट करना पर्याप्त है कि विवादित स्थल की पवित्रता में हिंदू आस्था का तथ्य साक्ष्य द्वारा स्थापित किया गया है।

127. किसी विधिक व्यक्ति को मान्यता देने के प्रयोजनों के लिए, सुसंगत जांच का उद्देश्य ऐसी मान्यता द्वारा प्राप्त किया जाना है। जिस सीमा तक ऐसा उद्देश्य प्राप्त किया जाता है, उस वस्तु का रूप या काया जिस पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, सारवान विषय नहीं है, बल्कि केवल रूप का प्रश्न है। जैसा कि सामंड़ द्वारा संप्रेक्षित किया गया है, जब तक कि विधिक व्यक्तित्व का प्रदान किया जाना प्रयोजित उद्देश्य को प्राप्त करता है, तब तक विधिक व्यक्तित्व को एक अमूर्त विचार पर भी प्रदान किया जा सकता है। हिंदू मूर्तियों के मामले में, साधारणतया मूर्ति पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं किया जाता है, बल्कि मूर्ति में अवतार के रूप में देवता की निरंतर पूजा के अंतर्निहित पवित्र उद्देश्य पर प्रदान किया जाता है। जहां एक देवता की निरंतर पूजा के उद्देश्य पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, तो मूर्ति का हट जाना या नष्ट होना इसके विधिक व्यक्तित्व को प्रभावित नहीं करता है। विधिक व्यक्तित्व मूर्ति की निरंतर पूजा के उद्देश्य में निहित है जैसा कि अदालत द्वारा मान्यता प्राप्त है। यह निरंतर पूजा के संरक्षण के लिए है कि कानून इस उद्देश्य को मान्यता देता है और इसे विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके इसे संरक्षित करना चाहता है।

128. देवता की निरंतर पूजा के अलावा, अदालतों को एक अवधारणात्मक ढांचा प्रदान करने के लिए हिन्दू मूर्ति पर कानूनी व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, जिसके भीतर रहकर व्यावहारिक रूप से हिंदू मूर्तियों को धर्मदाय या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उससे जुड़ी विवादित संपत्ति पर प्रतिस्पर्धी दावों से जुड़े विवादों को अधिनिर्णयन करना होता है। विवादों को अधिनिर्णित करने के क्रम में, अदालत मालिकाना दावों के निर्धारण करने के लिए, सेवायतों द्वारा कुप्रबंधन और भक्तों के हितों की रक्षा के लिए विधिक संबंधों के एक स्थान का पता लगाता है। इस प्रकार कानून एक विशिष्ट या व्यक्त न्यास की स्थापना की अनुपस्थिति में भी मूर्ति की संपत्तियों की रक्षा करता है। हमारे समक्ष कार्यवाही में, वाद 5 में प्रथम वादी के कानूनी अधिकार और सम्पत्ति विवादित थी। हालांकि, प्रथम वादी के विधिक व्यक्तित्व को चुनौती देने के लिए कोई दलील नहीं दी गयी थी। गौरतलब है कि वाद 4 में वादियों की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने प्रथम वादी के विधिक व्यक्तित्व को स्वीकार किया। प्रथम वादी के विधिक व्यक्तित्व का प्रश्न उन संपत्तियों से अलग है जो प्रथम वादी से संबंधित हैं। देवता में निहित संपत्तियों के निर्धारण पर इस निर्णय के आगे भाग में संपत्ति के लिए प्रतिस्पर्धी दावों के प्रकाश में चर्चा की गई है।

129. वर्तमान मामले में, प्रथम वादी कई सौ वर्षों से पूजा की वस्तु रही है और निरंतर पूजा का अंतर्निहित उद्देश्य ही स्पष्ट है चाहे किसी भी व्यक्त समर्पण या न्यास का अभाव हो। मूर्ति का अस्तित्व केवल रूप या काया का प्रश्न है, और प्रथम वादी का विधिक व्यक्तित्व मूर्ति के निरंतर अस्तित्व पर निर्भर नहीं है। वर्तमान विवाद के केंद्र में देवता के सही प्रबंधक और भगवान राम के भक्तों की मूर्तियों तक पहुंच से संबंधित प्रश्न हैं। अंतर्निहित उद्देश्य की कानूनी सुरक्षा सुनिश्चित करने और विवाद का व्यावहारिक रूप से

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिनिर्णयन करने के लिए, प्रथम वादी के विधिक व्यक्तित्व को मान्यता दी जाती है।

J.4 दूसरे वादी का विधिक व्यक्ति

दलीलें

130. वाद 5 में वादियों की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के . परासरन ने कहा कि दूसरा वादी एक विधिक व्यक्ति है। उन्होंने कहा कि हिंदू विधि में एक विधिक व्यक्ति की अवधारणा मूर्तियों तक सीमित नहीं है। श्री के. परासरन के अनुसार, प्रासंगिक प्रश्न यह है कि क्या देवता की प्रार्थना की जाती है, न कि वह रूप प्रासंगिक है जिसमें देवता प्रकट होते हैं। यह तर्क दिया गया कि "स्थान श्री राम जन्म भूमि" पूजा की एक वस्तु है और दिव्य की भावना को मूर्त रूप प्रदान करता है। भक्तजन इस भूमि को देवता मानते हैं और इसकी प्रार्थना की जाती है। इसलिए, इस आधार पर वाद 5 में वादी यह तर्क देते हैं कि इस अदालत को राम जन्मस्थान के रूप में प्रस्तुत भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना चाहिए। इस तर्क का समर्थन करने के लिए, यह कहा गया कि भगवान आकारहीन और निराकार है और इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि पूजा की वस्तु एक मूर्ति हो। यह कहा गया कि इस आस्था और विश्वास के साथ विवादित स्थान के चारों ओर परिक्रमा करना कि यह भगवान राम का जन्म–स्थान है, उस संपत्ति की सीमाओं को बताता है जिस पर एक न्यायिक इकाई की प्रास्थिति प्रदान की जानी चाहिए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस तर्क का समर्थन करने के लिए श्री परासरन ने निम्नलिखित निर्णयों पर अवलम्बन लिया, जिन्हें निर्णय के दौरान संदर्भित किया जाएगा:

मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम लखमिराम गोविंदराम[66], **भूपति नाथ स्मृतितिर्थ बनाम राम लाल मैत्र**[67], **रामपत बनाम दुर्गा भारती**[68], **राम ब्रह्म बनाम केदार नाथ**[69], **मदुरा, तिरुप्परनकुंद्रम बनाम अलिखान साहिब**[70], **द बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स फॉर रिलीजियस इनडाउमेन्ट्स, मद्रास बनाम पिडुगु नरसिम्हन**[71], **टीआरके रामास्वामी सेरवई बनाम द बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स फॉर द हिन्दू रिलीजियस इनडाउमेन्ट्स, मद्रास**[72], **द पोहरी फकीर सदावर्थी ऑफ बोन्दीपीपुत्रम बनाम द कमिश्नर्स, हिन्दू रिलीजियस एण्ड़ चेरिटेबल इनडाउमेन्ट्स**[73], **वेन्कटरमन मूर्ति बनाम श्री राम मन्धिराम**[74], **शास्त्री यग्नपुरूशाद जी बनाम मुल्दास भुदारदास वैश्य**[75], **योगेन्द्र नाथ नस्कर बनाम सीआईटी, कलकत्ता**[76], **कमराजू वेंकटा कृष्ण राव बनाम सब कलेक्टर, ऑनगोले**[77], **शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबंध कमेटी, अमृतसर बनाम सोम नाथ दास**[78] और **थयराम्मल बनाम कनकाम्मल**[79]।

---

66 आईएलआर 1888 12 बॉम्बे 247
67 आईएलआर 1909 37 कलकत्ता 128
68 एआईआर 1920 अवध 258
69 (1922) 36 सीएलजे 478
70 (1931) 61 मद्रास एलजे 285
71 1939 1 एमएलजे 134
72 आईएलआर 1950 मद्रास 799
73 1962 सप्लीमेंट 2 एससीआर 276
74 (1964) 2 एएनडब्ल्यूआर 457
75 (1996) 3 एससीआर 242
76 (1969) 1 एससीसी 555
77 (1969) 1 एससीआर 624
78 (2000) 4 एससीसी 146
79 (2005) 1 एससीसी 457

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

131. वाद 5 में वादियों की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी. एस. वैद्यनाथन ने श्री परासरन के तर्कों को अपनाया यह कि वाद 5 में द्वितीय वादी एक विधिक व्यक्ति है। उन्होंने कहा कि इनके मध्य अन्तर है: (i) भूमि के एक देवता होने में; (ii) भूमि के एक देवता का निवास होने में; और (iii) भूमि के एक देवता की संपत्ति होने में। यह कहा गया कि वर्तमान मामले में, विवादित स्थल का गठन करने वाली भूमि, पूजा की एक वस्तु है और स्वयं देवता है। श्री वैद्यनाथन ने कहा कि एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में द्वितीय वादी का अवधारण कब्जे, संयुक्त–कब्जे या प्रतिकूल कब्जे के अनावश्यक प्रश्नों का प्रतिपादन करता है क्योंकि भूमि स्वयं एक विधिक व्यक्ति है और कोई अन्य व्यक्ति विधिक व्यक्तित्व नहीं रख सकता है। यह कहा गया कि यह मात्र तथ्य कि विवादित स्थल पर मस्जिद विद्यमान है, यह सुन्नी वक्फ बोर्ड की ओर से हक या संयुक्त कब्जे के दावे का सबूत नहीं दे सकता है। इसी तर्क के विस्तार से, एक बार यह मान लिया जाता है कि विवादित स्थल एक विधिक व्यक्ति है, तो एक मान्यता प्राप्त विधिक व्यक्ति का एक देवता के रूप में भूमि का कोई भी विभाजन नहीं किया जा सकता है, यह अविभाज्य है और इसे विभाजित नहीं किया जा सकता है। संपत्ति का कोई भी विभाजन देवता के विनाश के समान होगा। यह इस आधार पर है कि संपत्ति के तीन तरीके के विभाजन का निर्देश देने वाले उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को चुनौती दी गई थी। इस संबंध में **प्रमथ नाथ मुलिक बनाम प्रद्युम्न कुमार मुलिक[80], ठाकुरजी श्री गोविंद देवजी महाराज, जयपुर बनाम राजस्व बोर्ड,**

---

80 (1924-25) 52 आईए 245

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

राजस्थान[81]**, और प्रफुल्ल कोरोन रिक्यूट बनाम सत्य कोरोन रिक्यूट**[82] के फैसलों पर अवलम्बन रखा गया।

132. श्री वैद्यनाथन ने कहा कि विवादित संपत्ति, एक विधिक व्यक्ति होने से, स्वामीहीन सम्पत्ति है। चूंकि विवादित संपत्ति एक विधिक व्यक्ति है , इसलिए यह हस्तांतरणीय नहीं है। यह तर्क दिया गया था कि भूमि जो स्वामीहीन सम्पत्ति है या व्यापार योग्य नहीं है, उसे प्रतिकूल कब्जे द्वारा अधिग्रहीत नहीं किया जा सकता है। यह कहा गया कि भले ही मूर्ति टूट जाए, लेकिन एक देवता अनश्वर है और इस प्रकार, उस भूमि पर मस्जिद का निर्माण एक देवता के रूप में उसकी प्रकृति से अलग नहीं होता। **महंत राम स्वरूप दासजी बनाम एसपी साही, हिंदू धार्मिक न्यास के विशेष प्रभारी अधिकारी**[83]**, राम जानकीजी देवी बनाम बिहार राज्य**[84]**, अमरेन्द्र प्रताप सिंह बनाम तेज बहादुर प्रजापति**[85]**, थयराम्मल बनाम कनकाम्मल**[86] और **राजस्थान हाउसिंग बोर्ड़ बनाम न्यू पिंक सिटी निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड**[87] के निर्णयों पर अवलम्बन लिया गया।

133. दूसरी ओर, वाद 4 में वादीगणों, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने कहा कि 'स्थान राम जन्मभूमि' (वाद 5 में द्वितीय वादी) विधिक व्यक्ति नहीं है। उन्होंने कहा कि विवादित भूमि एक विधिक व्यक्ति है यह तर्क पहली बार मात्र 1989 में उठाया गया था। डॉ. धवन ने कहा कि इस न्यायालय के समक्ष दो भिन्न और

---

81 (1965) 1 एससीआर 96
82 (1979) 3 एससीसी 409
83 1959 सप्लीमेंट (2) एससीआर 583
84 (1999) 5 एससीसी 50
85 (2004) 10 एससीसी 65
86 (2005) 1 एससीसी 457
87 (2015) 7 एससीसी 601

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अलग मुद्दे हैं। पहला इस आस्था और विश्वास से संबंधित है कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था और इस आशय का प्रमाण मिला है। दूसरा कानूनी परिणामों का समूह है जो विवादित संपत्ति को विधिक व्यक्ति की प्रास्थिति प्रदान करने से उत्पन्न होती है। डॉ. धवन ने कहा कि एक संप्रदाय की इस आस्था और विश्वास पर कि भगवान राम के जन्म–स्थान को धार्मिक महत्व प्राप्त है, इस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है, जन्म स्थान की सटीक स्थिति विवाद में है। इसके अलावा, संपत्ति को केवल इस आस्था और विश्वास के आधार पर एक विधिक व्यक्ति की प्रास्थिति नहीं दी जा सकती है कि यह भगवान राम का जन्म स्थान है। इस हेतू यह कहा गया था कि भक्तों के एक निश्चित वर्ग की व्यक्तिपरक आस्था, विधि में मालिकाना दावे के उद्देश्य को आगे नहीं बढ़ा सकती है। यह कहा गया कि वैदिक काल में प्रकृति की भौतिक वस्तुओं की पूजा प्राचीन भारत में की जाती थी। वस्तु की पूजा को प्राप्त किया जाना ही उसका उद्देश्य था। डॉ. धवन ने तर्क दिया कि धार्मिक महत्व की हर वस्तु से विधिक व्यक्तित्व की प्रास्थिति जुड़ी नहीं होती है और मान्यता या प्राण प्रतिष्ठित करने का कोई सकारात्मक कार्य अपेक्षित होता है।

134. डॉ. धवन ने आगे कहा कि अचल संपत्ति पर विधिक व्यक्तित्व दिया जाना, हिंदू मूर्तियों के विधिक व्यक्तित्व पर मौजूदा कानून द्वारा समर्थित नहीं है और यह कि भूमि पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना अधिनिर्णयन के किसी रूप से भूमि का पृथक्करण करने वाला एक नवाचार होगा। मात्र भक्तों की आस्था और विश्वास के आधार पर विधिक अखण्ड़नीयता प्रदान की जाएगी। यह कहा गया था कि द्वितीय वादी पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया

जाना दो विधिक व्यवस्था सृजित करेगा जो विशिष्ट अधिकारों, शक्ति, कर्तव्यों और हितों के साथ –पहला मूर्ति पर और दूसरा भूमि पर– लागू होगा। डॉ. धवन ने मूर्ति को शासित करने वाली लागू विधि व्यवस्था और भूमि को शासित करने वाली विधि व्यवस्था (वाद 5 में वादियों की दलीलों से जैसा पता चलता है) के बीच अन्तर को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया:

(i) **एक मान्यताप्राप्त हिन्दू मूर्ति के रूप में प्रथम वादी पर लागू विधिक व्यवस्था**–आदर्श अर्थ में मूर्ति में निहित सम्पत्ति के हक के लिए कोई दावा केवल सेवायत द्वारा अनुयोज्य है (जब तक कि सेवायत ने मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य नहीं किया है); और प्रतिकूल कब्जे तथा परिसीमा की विधि मूर्ति के स्वामित्व वाली संपत्ति के दावों पर लागू होगी; और

(ii) **द्वितीय वादी पर लागू विधिक व्यवस्था–** न्यायिक मान्यता भक्तों के व्यक्तिपरक विश्वास पर आधारित होगा कि यह क्षेत्र एक देवता है; न्यायिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना किसी भी प्रतिस्पर्धी मालिकाना दावों को निष्फल कर देता है; और विचाराधीन संपत्ति के लिए परिसीमा और प्रतिकूल कब्जे की विधि अप्रयोज्य है।

135. डॉ. धवन उपर्युक्त विभेद के आधार पर किसी परिणाम को स्वीकार करने के विरुद्ध तर्क करते हैं। डॉ. धवन ने तर्क दिया कि द्वितीय वादी को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाना विधिक अखण्डनीयता की परिधि को निर्धारित करेगा। उन्होंने कहा कि एक विधिक व्यक्ति के रूप में मूर्ति को मान्यता देते समय कानूनी रूप से इस न्यायालय के न्यायशास्त्र के अनुरूप और सुसंगत है, भूमि को विधिक व्यक्तित्व प्रदान करना एक कानूनी नवाचार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है जो पहले वादी के लिए उपलब्ध नहीं हैं। अंत में यह कहा गया कि भारतीय धर्मों और अन्य धर्मों के बीच कोई अंतर नहीं किया जाना चाहिए और संवैधानिक संरक्षण के लिए कोई दलील वाद 5 में अभियोगी द्वारा नहीं ली जा सकती है जो अनिवार्य रूप से एक सिविल मामला है। इसका परिणाम दो धार्मिक समुदायों के बीच निजी अधिकारों पर सिविल न्यायनिर्णयन के परिणाम को एक धर्म की आस्था और विश्वास में प्रभावित करना होगा।

इन विरोधी दलीलों का अब विश्लेषण किया जाएगा।

धार्मिक महत्व और विधिक व्यक्तित्व का विभेद करना

136. सार्वजनिक उपासना के स्थल के रूप में किसी स्थान के धार्मिक महत्व की मान्यता एक विधिक व्यक्ति के रूप में स्थान को मान्यता देने से वैचारिक रूप से अलग है। राम जन्मभूमि निस्संदेह इस आस्था और विश्वास के आधार पर हिंदुओं के लिए धार्मिक महत्व का है कि यह भगवान राम का जन्म–स्थान है। विवादित स्थल एक न्यायिक व्यक्ति है या नहीं, इस न्यायालय द्वारा इस बात का अवधारण किसी भी तरह से हिंदू समुदाय की आस्था और विश्वास के महत्व को कम नहीं करेगा।

137. उनके इस कथन का समर्थन करने के लिए कि दूसरा वादी एक न्यायिक व्यक्ति है, वाद 5 में वादियों की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कई पूर्व निर्णयों पर अवलम्बन लिया। इन निर्णयों को ध्यान से पढ़ने पर यह संकेत मिलता है कि अधिवक्ता ने इस तर्क का समर्थन करने के लिए कि विवादित स्थल एक विधिक व्यक्ति है, चुनिंदा रूप से उद्धरणों का अवलम्बन लिया है। जिस सीमा तक वाद 5 में वादी द्वारा दिए गए तर्कों का वे समर्थन करते हैं उनका अवधारण करने के लिए, अब उन मामलों का विश्लेषण करना

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और उस संदर्भ की जांच करना आवश्यक होगा जिसमें उन्हें अधिनिर्णीत किया गया था।

138. मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम लखमिराम गोविंदराम[88] में, वादी ने एक देवता को समर्पित मंदिर के धार्मिक प्रतिष्ठान के रखरखाव में हितबद्ध पक्षकार के रूप में एक वाद संस्थित किया। वादी ने उन्हें प्रतिवादी बनाने की मांग की जो मन्दिर में चढ़ावे प्राप्त करते थे व उचित न्यासियों के रूप में जबाबदेह थे। प्रतिवादियों ने दावा किया कि वे पूर्ण मालिक थे और सम्पूर्ण चढ़ावे को निजी संपत्ति के रूप में धारण करते थे। बॉम्बे उच्च न्यायालय की एक खण्ड़ पीठ ने अवधारित किया कि यद्यपि निजी निकाय हो सकते हैं, अंग्रेजी कानून के तहत एक संघ जिसमें व्यक्तियों के अनियमित या अपरिभाषित वर्ग शामिल हैं, चाहे वह धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए हों या न हों, निगमन के बिना संपत्ति निहित नहीं की जा सकती है। हालांकि प्रतिवादियों ने स्वयं को मूर्ति को अर्पित संचित चढ़ावे से मिले राजस्व के मालिक के रूप में प्रस्तुत किया। न्यायालय की ओर से न्यायमूर्ति आर वेस्ट ने संप्रेक्षित किया:

> "9. इस मामले में दर्ज किए गए सबूत जिसमें मूर्ति श्री रणछोड़ रायजी के कई दाता शामिल हैं, उनसे **पता चलता है कि देवता को उपहार देकर धार्मिक पुण्य प्राप्त करने या धार्मिक कर्तव्य का निर्वहन करने के पश्चात्, उपासक को इसमें कोई दिलचस्पी नहीं है कि बाद में चढ़ावे का क्या होता है .... फिर भी उसे एक उचित और व्यवस्थित पूजा के रखरखाव की आवश्यकता होनी चाहिए और वह उससे संबंधित है।... वह एक नियमित व निरन्तर अथवा कम से कम एक आवधिक समय में पवित्र अनुष्ठानों की कामना करता है, जो विफल हो सकती है यदि पिछले वर्षों के चढ़ावों का पूरी तरह से अपव्यय कर दिया गया हो, जबकि किसी दिए गए वर्ष में चढ़ावा काफी न हो।** ऐसा प्रतीत होता है कि सेवकों ने अचल

---

88 आईएलआर 1888 12 बॉम्बे 247

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और जंगम दोनों चढ़ावे इस चेतना के साथ, यद्यपि अस्पष्ट चेतना के साथ प्राप्त किया कि वे इस प्रकार उनके पास आने वाले धन में से मूर्ति की पूजा और मंदिर जाने वाले श्रद्धालुओं की सुविधा प्रदान करने के लिए बाध्य हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

सेवकों (प्रतिवादियों) ने मंदिर की देखभाल करने की अपनी जिम्मेदारी स्वीकार की। मूल्यवान वस्तुएँ भंडारी को दी जानी थी। यह इस संदर्भ में है कि न्यायालय ने संप्रेक्षित किया:

"11. .... श्री मैकफर्सन ने इस मामले में प्रतिवादियों के लिए स्वीकार किया कि वे मूर्ति श्री रणछोड़ रायजी को अर्पित की गई भूमि को नहीं बेच सकते। यह प्रतिबंध उसी की तरह है जिसके द्वारा सम्राट किसी भी परिस्थिति में समर्पित भूमि के अलगाव को मना करता है। व्याव. माय., अध्याय IV, एस. VII, पी. 23, नवम्बर 120, कैप. 10। यह डकोर में मूर्ति में प्रतीक या व्यक्ति के रूप में विधिक व्यक्ति को दिए गए अनुदान के अनुरूप है। इसे विधिक व्यक्ति के एक मात्र गुलाम या संपत्ति के रूप में मानना सुसंगत नहीं है, जिसका शीर्षक स्वामित्व नहीं है, बल्कि भगवान की सेवा है। यह वास्तव में एक अजीब बात है, अगर जानबूझकर नहीं, तो विचार का भ्रम है, जिसके द्वारा प्रतिवादियों ने उपहारों को आंमत्रित करने और आशीर्वाद प्रदान करने के उद्देश्य से एक देवता के रूप में श्री रणछोड़ रायजी की स्थापना की, बल्कि एक मात्र शिलाखण्ड़ के रूप में, उनके पैरों में रखे गये प्रत्येक उपहार को प्रयोग में लाने के उद्देश्य के लिए उनकी संपत्ति के रूप में भी स्थापित किया।... **लेकिन अगर एक न्यायिक व्यक्ति है, तो प्रतिष्ठान के केंद्र के रूप में एक पवित्र या परोपकारी विचार का आदर्श मूर्तिमान है, यह अधिकारों का कृत्रिम विषय भूमि की तरह नकदी और गहनों का चढ़ावा लेने में सक्षम है।"**

(प्रभाव वर्धित)

निर्णय स्पष्ट करता है कि एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में एक मूर्ति एक पवित्र या परोपकारी विचार का "आदर्श मूर्तिमान" है। एक न्यायिक व्यक्ति की

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रास्थिति को मूर्ति पर एक इकाई के रूप में प्रदान किया गया था जो उस उद्देश्य को शामिल करता है जिसमें चढ़ावा और सम्पत्ति निहित होती हैं। इस मामले में अवलोकन इस स्थिति की पुष्टि करते हैं कि न्यायिक व्यक्तित्व को पवित्र उद्देश्य पर प्रदान किया गया था और संचित या भेंट की गयी संपत्ति स्वयं एक न्यायिक इकाई नहीं बन गई थी। भेंट की गयी संपत्ति एक न्यायिक व्यक्ति नहीं है– यह मूर्ति है जो एक पवित्र उद्देश्य के मूर्तिमान के रूप में है जिसे एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है, जिसमें संपत्ति निहित है।

139. रामपत बनाम दुर्गा भारती[89] में, प्रतिवादी ने 'स्थान' के महंत के रूप में, साथ ही साथ बंदोवस्त विलेख के तहत दावा किया कि वह उन संपत्तियों को वसूलने का हकदार था जो परेला के 'स्थान' से संबंधित है। श्री गट्टारी ने परेला में एक मठ ('स्थान') का निर्माण किया और अपने तपस्वी भातृत्व की सेवा के लिए अपनी इमारत को अर्पित किया और संस्थान के रखरखाव के लिए मुकदमें वाले गांवों को खरीदा। न्यायमूर्ति नज़ीर हसन ने 'स्थान' की प्रकृति पर अवध न्यायिक आयुक्त की अदालत की ओर से बोलते हुए अवधारित किया:

> "मेरी राय में, परेला में स्थित 'स्थान', पूरी तरह से पुराने दिनों के मठों की प्रकृति के अनुरूप था। पूर्ववर्ती वर्णन से उद्भूत कई कानूनी अवधारणाओं को निम्नानुसार कहा जा सकता है: (1) **यह संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों का एक समूह है, जिसने पूरी तरह से सांसारिक संबंधों से स्वंय को अलग कर लिया है।** (2) स्थान से संबंधित सम्पत्ति स्थान के प्रयोजनों के लिए न्यास में रखे जाते हैं। (3) स्थान के प्रयोजनों में भक्तों का भरण–पोषण और परोपकार का प्रचार–प्रसार होता है। (4) स्थान का प्रमुख उस संस्था का और उससे जुड़ी

89 एआईआर 1980 अवध 258

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संपत्तियों का न्यासी है..... **इसलिए स्थान अनिवार्य रूप से संन्यासियों, ब्रह्मचर्यों और तपस्वियों की एक संस्था है– जिसका संपत्ति या परिवार से कोई सांसारिक संबंध नहीं होता है।**"

(प्रभाव वर्धित)

इस दृष्टि से 'स्थान' एक इमारत नहीं बल्कि धार्मिक शिक्षा का केंद्र था। 'स्थान' की प्रकृति प्रचुरतापूर्वक स्पष्ट करती है कि इसे मूर्त संपत्ति के रूप में नहीं माना गया था, लेकिन शिक्षा की एक धर्मार्थ संस्था को विधिक व्यक्ति माना जाता था। भौतिक संपत्ति जो मठ थी, उसे एक विधिक व्यक्ति के रूप में नहीं माना गया था। अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि धर्मार्थ संस्था एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में थी जिसमें मुकदमे वाले गांव निहित थे।

140. रामब्रह्म चटर्जी बनाम केदार नाथ बनर्जी[90] में, प्रत्यर्थियों ने इस उद्घोषणा के लिए एक वाद संस्थित किया कि वे तीन मूर्तियों को अर्पित भोग में भाग लेने के हकदार थे जो प्रत्यर्थियों और अपीलकर्ता के सामान्य पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठित किए गए थे। एक मंदिर का निर्माण किया गया था, और संपत्तियों को मूर्तियों को समर्पित किया गया था। प्रत्यर्थियों ने अपनी बेटियों के माध्यम से संस्थापकों के वंशज के रूप में भोग में भाग लेने की प्रथा का दावा किया और अधीनस्थ अदालतों ने पाया कि पुरुष शाखा में वंशज लगातार सेवायत रहे थे। इस प्रश्न का विनिश्चय करना था कि क्या संस्थापक यह निर्देश देने के लिए सक्षम था कि बेटे के माध्यम से वंशजों में सेवादारी निहित होनी चाहिए और बेटियों के माध्यम से वंशजों को अर्पित भोग में भाग लेने का अधिकार है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

---

90 (1922) 36 सीएलजे 478

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "एक धर्मार्थ निगम, जहां तक यह धर्मार्थ है, संस्थापक की रचना है... इसका कोई कारण नहीं है कि संस्थापक, जो न्यास की सरकार और प्रशासन प्रदान करने के लिए सक्षम है, वह इसके प्रबंधन के लिए एक निर्देश देने में सक्षम क्यों नहीं होना चाहिए, जो एक धार्मिक और धर्मार्थ न्यास के रूप में अपने स्वरूप से असंगत नहीं है... प्रत्येक मामले में परीक्षण यह है, कि क्या संस्थापक द्वारा दिया गया निर्देश धार्मिक और धर्मार्थ न्यास के रूप में धर्मदाय की प्रकृति से असंगत है और यह शाश्वतता की विधि के बचाव के लिए छद्म युक्ति है।"

अदालत ने उल्लेख किया कि दो शताब्दियों से अधिक समय से बेटों के माध्यम से वंशजों में सेवादारी अधिकार निहित थे और बेटियों के माध्यम से वंशजों ने भोग अर्पित करने में भाग लेने के अधिकार का प्रयोग किया था। इस संदर्भ में, अदालत ने अवधारित किया कि बिना किसी सवाल के लंबे समय तक इन अधिकारों के प्रयोग में हस्तक्षेप करना बुद्धिमत्ता नहीं होगी और इस तरह के अधिकार के पक्ष में एक उचित उपधारणा की जाएगी। वाद 5 में वादी इस अवलोकन पर निर्भर थे कि देवता को एक वास्तविक जीवित प्राणी के रूप में माना जाता है। इस संबंध में, अदालत ने उल्लेख किया:

> "...एक बोधगम्य व्यक्ति को उपहार और एक देवता को भेंट या समर्पण के बीच एक मौलिक अंतर है। इसके विपरीत विशेष प्रथा के अधीन, चढ़ावा कार्यवाहक पुजारी की संपत्ति नहीं बनते हैं, लेकिन इसके सभी अधिकारों, अनुष्ठानों और दान के साथ मंदिर के रखरखाव में योगदान देते हैं... **यह कहना ही पर्याप्त है कि देवता को, संक्षेप में, एक जीवित प्राणी के रूप में माना जाता है और उसी तरह से व्यवहार किया जाता है जैसे घर के मालिक से उसके विनम्र सेवक द्वारा व्यवहार किया जाएगा। जीवन की दैनिक दिनचर्या सूक्ष्म सटीकता के साथ पूरी हो जाती है; सजीव मूर्ति को वस्त्र बदलने से लेकर, पक्का व कच्चा भोजन का चढ़ावा और आराम कराने के सही क्रम में जीवन की आवश्यकताओं और विलासिता से प्रफुल्लित किया जाता है।** पूजा पूरी होने के बाद भोग के नाम से ज्ञात अर्पित भोजन को परिवार के सदस्यों के साथ–साथ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> आमंत्रित और न बुलाये गये अतिथियों के बीच दान में वितरित किया जाता है; प्राचीन ब्राह्मणवादी साहित्य में आतिथ्य को मानवता के लिए एक सामान्य ऋण का निर्वहन माना जाता है और अतिथि को एक देवत्व के रूप में सम्मानित किया जाता है। हमारी राय में, यह निर्देश कि संस्थापक की बेटियों के वंशजों को अर्पित भोजन के ऐसे वितरण में भाग लेना चाहिए, किसी भी तरह से धर्मदाय के उद्देश्य से असंगत नहीं है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में एक स्थापित देवता की पूजा करने की विधि कानून में विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने से अलग और भिन्न है। मानव व्यक्तित्व विधिक व्यक्तित्व से अलग है। अदालत ने एक स्थापित देवता के लिए पूजा करने के तरीकों का संदर्भ दिया, जो उपासक की आस्था और विश्वास के अनुसार है। इस मामले में एक विधिक व्यक्ति का कोई सवाल ही नहीं उठता।

मदुरा तिरुप्परनकुंडम

141. वाद 5 में वादी ने तब **मदुरा, तिरुप्परनकुंडम बनाम अल्खान साहिब**[91] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर अवलम्बन लिया है। यह कहा गया कि इस मामले में एक पूरी पहाड़ी को सार्वजनिक उपासना स्थल के रूप में इसके चारो ओर की गई परिक्रमा के आधार पर एक विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता दी गई थी। परिणामस्वरूप वर्तमान मामले में विवादित स्थल के चारो ओर परिक्रमा करने को विधिक व्यक्ति की प्रास्थित तक बढ़ाने से भूमि का प्रभाव (यह आग्रह किया गया है) दिया जाना चाहिए।

142. मदुरा तिरुप्परनकुंडम में प्रिवी काउंसिल, मद्रास के मदुरा जिले में एक बंजर पहाड़ी के स्वामित्व से संबंधित था। पहाड़ी के उच्चतम स्थान पर एक

---

91 (1931) 61 मद्रास एलजे 285

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद थी। तिरुप्परनकुंडम मंदिर ने अपने प्रबंधक के माध्यम से मंदिर की संपत्ति के रूप में पूरी पहाड़ी का दावा करते हुए एक वाद संस्थित किया (कुछ खेती की गई और मूल्यांकित भूमि और मस्जिद स्थल को छोड़कर)। मुस्लिम प्रतिवादियों ने मस्जिद और *नेल्लितोपे* के रूप में जानी जाने वाली पहाड़ी के एक हिस्से पर स्वामित्व का दावा किया। राज्य के सचिव ने पहाड़ी के सभी बिना कब्जे वाले हिस्सों के मालिक होने का दावा किया। मदुरा के अधीनस्थ न्यायाधीश ने वादियों के पक्ष में फैसला सुनाया (*नेल्लितोपे* , मस्जिद को और यहाँ तक जाने वाली सीढ़ीयों को छोड़कर)। मुस्लिम प्रतिवादियों ने एक अपील दायर की और राज्य के सचिव को अपील का पक्षकार बनाने का निर्देशित किया गया। इस निष्कर्ष के बावजूद कि हिंदुओं और मुसलमानों के पास पहाड़ी पर अधिकार थे, और यह निर्दिष्ट किए बिना कि ये अधिकार क्या थे, उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि सरकार पहाड़ी की मालिक थी। पहाड़ी के आधारतल के चारों ओर पहाड़ी की परिक्रमा करके उपासकों ने *प्रदक्षिणा* की। इस मार्ग का उपयोग रथयात्रा लिए भी किया जाता था और इसे *घिरी वीधि* के रूप में जाना जाता है। जबकि उच्च न्यायालय ने निर्णय में अभिलेख पर साक्ष्यों को नोट किया कि सम्पूर्ण पहाड़ी की पूजा हिंदू समुदाय द्वारा एक *लिंग* के रूप में की गई, विवाद का केन्द्र *घिरी वीधि* के भीतर पहाड़ी के बिना कब्जे वाले हिस्सों पर स्वामित्व के प्रश्न से संबंधित था। वर्ष 1801 में अजीम–उल–दौला के साथ लॉर्ड क्लाइव की संधि से मदुरा ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में आ गया। उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोंण लिया कि, वर्ष 1801 के बाद पूरी पहाड़ी गांव का हिस्सा होने के कारण सरकारी संपत्ति बन गई।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

143. प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया कि भूमि के सभी बिना कब्जे वाले हिस्सों पर सदी के ज्यादातर भाग में मंदिर द्वारा स्वामित्व के कृत्यों का निरंतर प्रयोग किया गया था। *घिरी वीथि* के भीतर स्थित छोटे मंदिरों के रखरखाव के लिए भी व्यय किया गया था। मंदिर को अनादिकाल से पहाड़ी के खाली हिस्से के कब्जे में होना कहा गया था जिसे मंदिर द्वारा मंदिर की संपत्ति के रूप में माना जाता था। प्रिवी काउंसिल ने कहा कि मस्जिद को छोड़कर, पहाड़ी के "शेष भाग से बिलगाव का कोई सबूत नहीं" था। सर जार्ज लोन्ड्स ने अवधारित किया:

> "एकमात्र अधिकार जो मंदिर प्रत्यर्थी के विरूद्ध जोर दे सकते हैं वे अधिकार हैं जो ईस्ट इंडिया कंपनी ने उन्हें दिए थे या उन्हें बनाए रखने की अनुमति दी थी... और उनके न्यायाधीश को लगता है कि सबूतों से पता चलता है कि 1801 के बाद मन्दिर को सभी के निर्बाध कब्जे में छोड़ दिया गया था जिसका अब यह दावा करता है... उनके न्यायाधीशों को संदेह नहीं है कि एक सामान्य उपधारणा है कि **अनुपयुक्त भूमि** क्राउन की संपत्ति है, लेकिन उन्हें लगता है कि यह वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं है **जहां कथित अनुपयुक्त सभी प्रसंगों में भौतिक रूप से संलग्न मन्दिर के अन्तर्गत है।**... सम्पूर्ण रूप से उनके न्यायाधीश इस मत पर हैं कि अपीलकर्ता ने दिखाया है कि पहाड़ी का **बिना कब्जे वाला** हिस्सा अनादिकाल से मंदिर के कब्जे में है और मंदिर प्राधिकारियों द्वारा अपनी संपत्ति के रूप में माना गया है।
>
> (प्रभाव वर्धित)

निर्णय का सूक्ष्म पाठन यह स्पष्ट करता है कि प्रिवी कौंसिल केवल, (i) भूमि के बिना कब्जे वाले हिस्से और पहाड़ी में अन्य मालिकाना अधिकारों की सुरक्षा और (ii) मंदिर द्वारा संपत्ति के स्वामित्व से, संबंधित थी। प्रिवी कौंसिल पहाड़ी के विधिक व्यक्ति की प्रास्थिति तक बढ़ाने से संबंधित नहीं थी। मंदिर द्वारा संपत्ति के स्वामित्व और भूमि पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किए जाने के मध्य अंतर है। जहां भूमि एक व्यक्ति के स्वामित्व में है, यह एक विधिक व्यक्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति एक विधिक व्यक्ति के रूप में एक देवता का मालिक नहीं हो सकता है। यह मामला वाद 5 में वादियों द्वारा दिए गए इस तर्क को आगे नहीं बढ़ाता है कि विवादित संपत्ति स्वयं एक विधिक व्यक्ति है।

संविधि द्वारा शासित मंदिर

144. **द बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स फॉर हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम पिडुगु नरसिम्हा**[92] में, बोर्ड ने इस आधार पर एक योजना बनाई कि विचाराधीन संस्था मद्रास हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम 1863 के अर्थ के अन्तर्गत एक मंदिर थी। प्रतिवादी ने अधिनियम के तहत एक मंदिर के रूप में संस्था की उद्घोषणा को चुनौती देते हुए एक वाद संस्थित किया। मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने अवलोकन किया कि संस्था कई शताब्दियों से अस्तित्व में थी और इस समय के दौरान उपासना स्थल बन गई थी। अदालत ने कहा कि सार्वजनिक धर्मदाय को आकर्षित करने के लिए पूजा पर्याप्त महत्व की होनी चाहिए। संस्था के भीतर किए गए आयोजनों के आकलन पर, अदालत ने निष्कर्ष निकाला कि संस्था के भीतर सार्वजनिक धार्मिक पूजा थी। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि बोर्ड इस प्रकार अधिनियम के तहत एक योजना तैयार करने के लिए अधिकृत था। न्यायमूर्ति वरदचारियर ने संप्रेक्षित किया:

> "परीक्षण यह नहीं है कि क्या यह आगम शास्त्र के किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुरूप है; हमें लगता है कि यह प्रश्न उन लोगों के वर्ग के दृष्टिकोण के

---

92 1939 1 एमएलजे 134

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संदर्भ में तय किया जाना चाहिए जो पूजा में भाग लेते हैं। यदि वे इस अर्थ में इसकी धार्मिक प्रभावकारिता में विश्वास करते हैं, कि इस तरह की पूजा से, वे स्वयं को किसी अलौकिक शक्ति के अधिदान की वस्तु बना रहे हैं, इसे 'धार्मिक पूजा' माना जाना चाहिए।"

145. वाद 5 में वादियों की ओर से पेश श्री परासरन ने इस उद्धरण के आधार पर तर्क दिया कि इस आस्था और विश्वास के साथ विवादित स्थल के चारो ओर परिक्रमा करना कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्म–स्थान है, भक्त मानते हैं कि धार्मिक पूजा का आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है। उन्होनें कहा यह ही पर्याप्त है इस न्यायालय को यह मानने के लिए कि द्वितीय वादी का गठन करने वाली भूमि एक न्यायिक व्यक्ति है। **पिडुगु नरसिम्हा** में मद्रास उच्च न्यायालय के अवलोकन यह आकलन करने के संदर्भ में थे कि क्या अनुष्ठानों का किया जाना "सार्वजनिक धार्मिक पूजा" के समान है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि क्या विचाराधीन संस्था अधिनियम के तहत एक मंदिर थी। मंदिर के विधिक व्यक्ति होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अधिक से अधिक यह मामला वाद 5 में वादियों द्वारा दिए गए इस प्रस्ताव का समर्थन करता है कि विवादित स्थल पर की गई पूजा की प्रकृति धार्मिक प्रकृति की है।

146. श्री परासरन ने मद्रास उच्च न्यायालय के **टीआरके रामस्वामी सेरवई बनाम द बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स फॉर हिन्दू रिलीजियस इनडाउमेन्ट, मद्रास**[93] के विनिश्चय पर यह प्रतिवाद करने के लिए अवलम्बन लिया कि मूर्ति की उपस्थिति धार्मिक उपासना के संबंध में एक अनावश्यक अपेक्षा है और यह कि उपासकों की आस्था और विश्वास के साथ–साथ विवादित भूमि के चारों ओर परिक्रमा की प्रथा न्यायालय के लिए विवादित स्थल पर विधिक

---

93 आईएलआर 1950 मद्रास 799

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। **टीआरके रामास्वामी सेरवई** में, दान के एक विलेख को यह घोषणा करते हुए निष्पादित किया गया था कि कुछ भूमि एक मंदिर देवस्थानम को धर्मदाय की गई थी और मंदिर निर्माणाधीन था। दाता के अलावा, दो न्यासी नियुक्त किए गए थे। 1937 में हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती बोर्ड ने न्यासियों से इस धारणा पर अंशदान की मांग की कि मंदिर का निर्माण पूरा हो गया। अपीलकर्ताओं द्वारा इस आधार पर विरोध किया गया कि मंदिर का निर्माण नहीं किया गया था और कोई भी मूर्ति स्थापित नहीं की गई थी। इसके बावजूद मंदिर को मद्रास हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1926 के दायरे में एक मंदिर घोषित किया गया। इसके बाद, मंदिर के लिए प्रबंधन की एक योजना तैयार करने की मांग की गई।

147. न्यायालय द्वारा बताये गये विभिन्न विवाद्यकों में से एक, अधिनियम के उद्देश्यों के लिए एक वैध मंदिर के अस्तित्व से संबंधित है। खण्ड़ पीठ के दो न्यायाधीशों में मतभेद था और मामले को फिर तीसरे न्यायाधीश के पास भेजा गया। यह मानते हुए कि अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक मंदिर मौजूद था, न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने अवधारित किया:

> "हिंदू विधि देवता की स्थापना और उसकी पूजा के रखरखाव के लिए समर्पण की वैधता को मान्यता देती है। यह सारहीन है कि दान के लिए देवता की प्रतिमा स्थापित नहीं की गई है या उसके लिए वसीयत की गई है.... यह परीक्षण नहीं है कि मूर्ति की स्थापना और इसकी पूजा का तरीका आगम शास्त्र के किसी विशेष संप्रदाय के अनुरूप है। यदि पूजा के लिए जाने वाली जनता या जनता का कोई भाग यह मानता है कि किसी स्थान विशेष में ईश्वरीय उपस्थिति है और उस स्थान पर पूजा करके उन्हें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होना संभाव्य है, **तो आपको अधिनियम की धारा 9, खंड 12 में परिभाषित एक मंदिर की आवश्यक**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विशेषताएं प्राप्त हुई हैं। एक मूर्ति की उपस्थिति, हालांकि हिंदू मंदिरों की एक अपरिवर्तनीय विशेषता है, यह अधिनियम की धारा 9, खंड 12 में एक मंदिर की परिभाषा के अन्तर्गत एक कानूनी आवश्यकता नहीं है।"

(प्रभाव वर्धित)

न्यायालय की टिप्पणियाँ यह आंकलित करने के संदर्भ में की गयी थीं कि क्या मद्रास हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1926 की धारा 9 के तहत संस्था को एक मंदिर के रूप में परिभाषित करने के लिए एक मूर्ति की उपस्थित आवश्यक थी। इस संदर्भ में न्यायालय ने माना कि भक्तों का यह विश्वास कि उन्हें ईश्वर का आर्शीवाद प्राप्त होगा , अधिनियम के तहत एक मंदिर माने जाने के लिए पर्याप्त है। न्यायालय की ये टिप्पणियां अधिक से अधिक यह स्थापित करती हैं कि भक्तों का यह विश्वास कि एक ईश्वरीय उपस्थिति है, सार्वजनिक उपासना स्थल का गठन है। हालांकि, यह विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने से अलग है। एक अधिनिर्णयन कि एक संस्था एक वैधानिक अधिनियमन के प्रयोजनों के लिए एक मंदिर है, यह इस विवाद्यक से अलग है कि क्या संस्था के पास विधिक व्यक्तित्व है। इस प्रकरण में टिप्पणियाँ एक वैधानिक परिभाषा के विशिष्ट संदर्भ में की गयी थीं और यह उस धार्मिक पूजा स्थल के लिए लागू नहीं किया जा सकता है जिसके लिए कोई वैधानिक अधिनियमन मौजूद नहीं है।

148. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **वेंकटरमन मूर्ति बनाम श्री राम मंधिराम**[94] में समान प्रश्न अधिनिर्णीत किया गया था जिसका अवलम्बन लिया गया था। इस प्रकरण में, अदालत को यह आकलन करना था कि क्या हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम 1951 के दायरे में एक मंदिर होने

---

94 (1964) 2 एएनडब्ल्यूआर 457

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के लिए उपासना स्थल के लिए एक मूर्ति पूर्व–आवश्यकता थी। अदालत ने पुष्टि की कि समर्पण और सार्वजनिक धार्मिक उपासना का अस्तित्व ही अधिनियम के तहत संस्था को एक मंदिर के रूप में घोषित करने के लिए पर्याप्त है, भले ही मूर्ति अनुपस्थित हो। यह मामला वाद 5 में वादी के मामले का समर्थन नहीं करता है।

149. कामराजु वेंकट कृष्ण राव बनाम उप जिलाधिकारी, ओंगोले[95] में इस न्यायालय के निर्णय में, जिस पर महत्वपूर्ण अवलम्बन लिया गया है, तीन न्यायाधीश पीठ के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या एक टैंक को आंध्र इनाम (रैयतवाड़ी में संपरिवर्तन एवं उन्मूलन अधिनियम) 1956 के अर्थ में एक धर्मार्थ संस्था माना जा सकता है। जिसने प्रश्नगत इनाम दिया, ज्ञात नहीं था। अपीलकर्ता ने एक उद्घोषणा की मांग की कि इनाम में शामिल संपत्ति उसके नाम पंजीकृत की जाये। इस तर्क को प्राधिकारियों ने अधिनियम के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया कि अभिलेखों के तहत, इनाम टैंक को ही दिया गया था और अपीलकर्ता का पूर्वज केवल धर्मार्थ संस्थान, टैंक का प्रबंधक था। अपीलकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि भले ही इनाम को एक धर्मार्थ उद्देश्य के लिए दिया गया था, लेकिन दान की वस्तु एक टैंक थी जिसे एक धर्मार्थ संस्थान नहीं माना जा सकता था। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने न्यायमूर्ति केएस हेगड़े के माध्यम से निम्न अवधारित किया:

> "9. उपरोक्त चर्चा से, यह देखा जाता है कि हिंदू विधि के तहत एक टैंक दान की वस्तु हो सकती है और जब एक टैंक के पक्ष में समर्पण किया जाता है, तो इसे एक धर्मार्थ संस्थान माना जाता है। **हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए यह तय करना आवश्यक नहीं है कि क्या वह संस्थान**

---

95 (1969) 1 एससीआर 624

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक विधिक व्यक्ति के रूप में माना जा सकता है। एक बार जब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस इनाम के साथ हम इस मामले में संबंधित हैं, वह "उराचेरूवु" (टैंक) के पक्ष में एक इनाम था इस टैंक को अधिनियम के तहत एक धर्मार्थ संस्थान माना जाना चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

इस न्यायालय के लिए केवल यह आकलन करना अपेक्षित था कि क्या एक टैंक को आंध्र इनाम (रैयतवाड़ी में संपरिर्वतन और उन्मूलन अधिनियम) 1956 के अर्थ के अन्तर्गत एक "धर्माथ संस्था" माना जा सकता है। इसलिए, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया गया था कि टैंक एक विधिक व्यक्ति है या नहीं, इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं थी। यह मामला वाद 5 में वादियों द्वारा दिए गए तर्कों को आगे नहीं बढ़ाता है।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति

150. इस चरण पर **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर बनाम सोम नाथ दास**[96] में इस न्यायालय के निर्णय पर ध्यान देना आवश्यक है। इस मामले में, एक दो न्यायाधीश पीठ ने गुरु ग्रंथ साहिब को एक विधिक व्यक्ति माना। वाद 5 में वादी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री परसरन ने यह प्रतिवाद करने के लिए इस निर्णय पर विशेष अवलम्बन लिया कि इस न्यायालय ने भौतिक संपत्ति को साधारणतया विधिक व्यक्ति माना है। इसलिए उन्होंने कहा कि विवादित संपत्ति पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए इस न्यायालय के विधिशास्त्र में एक कानूनी आधार है। इस तर्क का विश्लेषण करने के लिए प्रकरण पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक है।

---

96 (2004) 4 एससीसी 146

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

151. शिरोमणि गुरुद्वारा में 56 व्यक्तियों ने सिख गुरुद्वारा अधिनियम 1925 की धारा 7(1) के तहत इस उद्घोषणा के लिए एक याचिका दायर की कि कुछ विवादित संपत्ति सिख गुरुद्वारा थीं। इस आशय की एक अधिसूचना जारी करने पर यह आपत्तियां उठाई गयीं कि विवादित संपत्ति एक धर्मशाला और डेरा थी। अधिनियम के तहत न्यायाधिकरण ने इस आपत्ति को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ताओं में सुने जाने के अधिकार का अभाव था। इस बीच, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति[97] ने दावा किया कि विवादित संपत्ति एक सिख गुरुद्वारा थी और यह कि "गुरू ग्रन्थ साहिब" "पूजा की एकमात्र वस्तु था और यह गुरुद्वारा संपत्ति का एकमात्र मालिक था।" सिख गुरुद्वारा न्यायाधिकरण ने एसजीपीसी के पक्ष में डिक्री की और माना कि विवादित संपत्ति "एसजीपीसी की थी।"

152. वर्ष 1921 में जारी फरमान –ए–शाही के आधार पर राजस्व अधिकारी ने "गुरु ग्रंथ साहिब बारजमान धर्मशाला देह" के नाम पर नामान्तरण का आदेश दिया था। इस प्रकार, इसके नाम पर भूमि का स्वामित्व कॉलम तब तक जारी रहा जब तक कि सिख गुरुद्वारा के रूप में भूमि की घोषणा पर आपत्तियां दर्ज नहीं की गईं। न्यायाधिकरण के निष्कर्षों से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में, यह तर्क उठाया गया था कि गुरु ग्रंथ साहिब के नाम पर राजस्व अभिलेख में प्रविष्टि शून्य थी क्योंकि यह एक विधिक व्यक्ति नहीं है। उच्च न्यायालय ने माना कि गुरु ग्रंथ साहिब एक विधिक व्यक्ति नहीं हैं और परिणामस्वरूप गुरु ग्रंथ साहिब के नाम पर नामान्तरण अपास्त किए जाने के योग्य था। यह इस संदर्भ में था कि इस न्यायालय को यह अधिनिर्णीत करने के लिए आहूत किया गया था कि क्या

---

97 "एसजीपीसी"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गुरु ग्रंथ साहिब एक विधिक व्यक्ति है, जो विवादित संपत्ति को अपने नाम पर स्वामित्व रखने में सक्षम है।

153. विधिक व्यक्ति की संकल्पना के विकास का पता लगाते हुए न्यायमूर्ति एपी मिश्रा ने उल्लेख किया कि विधिक व्यक्ति की कानून में मान्यता कानून और समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए है। न्यायालय ने अवधारित किया:

> "19.... जब दानदाता मूर्ति के लिए या मस्जिद के लिए या किसी संस्था के लिए धर्मदाय करता है तो यह विधिक व्यक्ति के सृजन को आवश्यक बना देता है।
>
> 21... पवित्र या धार्मिक प्रयोजन के लिए एक बंदोबस्ती हो सकती है यह एक मूर्ति, मस्जिद, चर्च आदि के लिए हो सकता है। ऐसी धर्मदाय संपत्ति का उपयोग उस उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए। किसी देवता को निरूपित करते हुए एक हिंदू द्वारा किसी मूर्ति या किसी प्रतिमा की स्थापना और आराधना केवल एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से उसकी आस्था और विश्वास संतुष्ट होती है। इससे एक विधिक व्यक्ति के रूप में एक मूर्ति की मान्यता हुई है।
>
> 27. पूर्वोक्त सारांश यह कल्पना करता है कि समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए "न्यायिक व्यक्तियों" को कैसे गढ़ा गया था... **अलग–अलग वैचारिक मान्यताओं और विश्वास के साथ दुनिया के विभिन्न धर्मों में विभिन्न केन्द्र और आराधना के लिए अलग–अलग संस्थागत स्थल हैं, लेकिन सभी का एक ही उद्देश्य है।**"
>
> (प्रभाव वर्धित)

न्यायमूर्ति मिश्रा ने आगे उल्लेख किया:

> 29...गुरु ग्रन्थ साहिब को न्यायिक व्यक्ति के रूप में होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि इसे एक मूर्ति के समान होना चाहिए। जब दो अलग–अलग धर्मों का आस्था और विश्वास अलग होता है, तो एक की दूसरे से बराबरी करने का कोई सवाल ही नहीं है। यदि "गुरु ग्रन्थ साहिब" स्वयं में इसके ऐसा घोषित किए जाने के परीक्षण पर खरा उतर सकता है, तो इसे ऐसा घोषित किया जा सकता है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"31. अब इस सवाल पर लौटते हैं कि क्या गुरु ग्रंथ साहिब 'न्यायिक व्यक्ति' हो सकता है या नहीं या इसे समान स्थान पर रखा जा सकता है, हम पहले सिख धर्म पर एक नजर डाल लें.... सिख धर्म में, गुरु का सर्वोच्च श्रद्धेय व्यक्ति के रूप में आदर किया जाता है...

33. अंतिम जीवित गुरु, गुरु गोबिंद सिंह ने, बिना किसी अनिश्चितता के व्यक्त किया कि अब कोई भी जीवित गुरु नहीं होगा। गुरु ग्रंथ साहिब जीवन्त गुरु होगा। उन्होंने घोषणा की कि "अब से यह आपका गुरु होगा जिससे आपको अपना सारा मार्गदर्शन और उत्तर मिलेगा।" **इसी विश्वास के साथ इसे एक जीवित गुरु की तरह पूजा जाता है। इसी श्रद्धा और विश्वास के साथ ही जब यह किसी गुरुद्वारा में स्थापित किया जाता है तो यह पूजा का पवित्र स्थान बन जाता है।** गुरुद्वारा की पवित्रता केवल इसीलिए है क्योंकि गुरु ग्रन्थ साहिब इसमें स्थापित है। गुरु ग्रंथ साहिब की यह श्रद्धापूर्ण मान्यता इसके अनुयायियों के हृदय को भी उदार बनाती है कि वे इसके लिए धन और सम्पदा दे सकें। ऐसा नहीं है कि इसे इसकी जरूरत है, लेकिन जब इसे स्थापित किया जाता है, तो यह अपने अनुयायियों के लिए बढ़ता है, जो इसके प्रति अपनी श्रद्धा के माध्यम से अपने आप को पवित्र करते हैं और लंगर चलाने के लिए भी स्वयं को पवित्र करते हैं, जो गुरुद्वारा का एक अंतर्निहित हिस्सा है।

34. .... **इसे एक "मूर्ति" के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है जैसा कि मूर्ति पूजा सिख धर्म के विपरीत है। श्रद्धा की अवधारणा अथवा कल्पना के रूप में दो धर्म अलग–अलग हैं।** हां, एक विधिक व्यक्ति के रूप में इसकी कानूनी मान्यता के लिए, दोनों धर्मों के अनुयायी उन्हें क्रमशः एक ही श्रद्धेय मूल्य देते हैं...।

42.... सभी कारणों से, हमें इस निष्कर्ष में उच्च न्यायालय के तर्क में कोई बल नहीं मिलता है कि "गुरु ग्रन्थ साहिब" एक "न्यायिक व्यक्ति" नहीं है। उक्त निष्कर्ष तथ्य और कानून दोनों बिन्दुओं पर पोषणीय नहीं है।"

विद्वान न्यायाधीश का दृष्टिकोण यह था कि एक न्यायिक व्यक्ति का सृजन आस्था के धार्मिक विश्वासों के कानूनी संरक्षण को सुनिश्चित करना था:

"28. आस्था और विश्वास को किसी भी न्यायिक जांच के माध्यम से विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। यह इसके अनुयायियों द्वारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संपादित और स्वीकृत तथ्य है। **इस आस्था ने एक "न्यायिक व्यक्ति" के रूप में मान्यता प्राप्त एक इकाई के सृजन को आवश्यक बना दिया।** यह सब दर्शाता है कि न्यायिक व्यक्ति किसी परिभाषित सीमा से बंधा नहीं है। बदलते विचार के साथ, समाज की बदलती जरूरतों के साथ, **समय–समय पर नए न्यायिक व्यक्तित्व बनाए गए थे।**"

(प्रभाव वर्धित)

154. मामले के सूक्ष्म पठन से यह उभरता है: पहला, मामला अचल संपत्ति पर न्यायिक व्यक्तित्व के प्रदान करने से संबंधित नहीं था। इस निर्णय के दौरान इसकी प्रासंगिकता पर विचार किया जाएगा; दूसरा, धर्म के मामले में, सिख धर्म के सिद्धांत मूर्ति पूजा के विरोध में हैं। जहां विधिक व्यक्तित्व को हिंदू विधि में मूर्ति पर न्यायिक संबंधों के भौतिक स्थल के रूप में प्रदान किया गया था, वही सिख धर्म में भौतिक काया अनुपस्थित थी। इस न्यायालय को इस प्रकार एक काया का पता लगाने की आवश्यकता थी, जिस पर न्यायिक व्यक्तित्व को मान्यता दी जा सकती है, यह केवल इस अवधारण के परिणामस्वरूप था कि अदालत यह तय कर सकती थी कि क्या विवादित संपत्ति गुरु ग्रंथ साहिब में एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में निहित है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, आवश्यकता प्रायः न्यायिक व्यक्तित्व प्रदान करने का आधार होती है। इस मामले में, जैसा कि यह हिंदू विधि में मूर्ति के मामले में है, गुरु ग्रंथ साहिब के विधिक व्यक्तित्व को उस काया के रूप में मान्यता देना कानूनी रूप से समीचीन था, जिस पर न्यायिक व्यक्तित्व को यह निर्धारित करने के लिए प्रदान किया जाएगा कि क्या संपत्ति गुरु ग्रंथ साहिब में निहित हो सकती है।

155. शिरोमणि गुरुद्वारा का निर्णय इस बात की पुष्टि करता है कि एक अंतर्निहित उद्देश्य है जो वस्तुओं पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के केंद्र में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। विभिन्न धर्मों का मूल्यांकन उनकी स्वयं की आस्था और विश्वास के अनुसार किया जाता है। सिख धर्म में मूर्तिपूजा के अभाव ने गुरु ग्रंथ साहिब पर न्यायिक व्यक्तित्व प्रदान करने को आवश्यक बना दिया जो कि सिक्ख धर्म के सिद्धांतों के अनुसार गुरु हैं। तदनुसार, तब यह अवधारित किया गया कि विवादित संपत्ति गुरु ग्रन्थ साहिब में निहित है।

थयराम्मल

156. अंत में **थयराम्मल बनाम कनकाम्मल**[98] में एक पत्थर के शिलालेख पर लेखन के माध्यम से वाद संपत्तियों को धर्मचत्रम (कारवां सराय) के रूप में जनता के उपयोग के लिए समर्पित किया गया था जहां यात्री और श्रद्धालु आश्रय ले सकते थे और जलपान प्रदान किया जा सकता था। संपत्ति "एक विश्राम स्थल के रूप में आम जनता के लिए समर्पित थी।" किसी न्यासी का उल्लेख नहीं किया गया था और समर्पण के गवाह स्वयं भगवान त्यागराज थे। वादी ने समर्पित संपत्ति (अनुसूची ए) के एक हिस्से के कब्जे में होने का दावा किया और आरोप लगाया कि अनुसूची बी संपत्ति के एक हिस्से का प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण किया गया था जो बेदखली के लिए दायी थे। प्रतिवादियों ने मुकदमा इस आधार पर प्रतिवाद किया कि उन्होंने एक समझौता डिक्री निष्पादित करने के दौरान की गयी अदालती बिक्री में विक्रय के माध्यम से संपत्ति के हिस्से का स्वत्व प्राप्त किया था। उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि समझौता डिक्री दुरभिसंधि थी और वादी को भी एक प्रकल्पित न्यासी के रूप में कोई अधिकार नहीं था। तदनुसार, शासकीय न्यासी अधिनियम 1913 के तहत प्रधान प्रशासक को न्यास के प्रबंधन को

---

98 (2005) 1 एससीसी 457

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संभालने के लिए निर्देशित किया गया था। इस न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह था कि क्या एक न्यास या धर्मार्थ बंदोबस्ती बनाई गई थी।

157. न्यायालय ने शिलालेख का विश्लेषण किया और अवधारित किया कि वाद संपत्ति धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए समर्पित थी और इसे वादी द्वारा न्यासी के रूप में या प्रतिवादी द्वारा मालिक के रूप में दावा नहीं किया जा सकता था। हालाँकि निर्णय के दौरान न्यायालय की ओर से न्यायमूर्ति डीएम धर्माधिकारी ने अवधारित किया:

> "16. एक धार्मिक बंदोबस्ती किसी के पक्ष में समर्पित संपत्ति के संबंध में स्वत्व निर्मित नहीं करती है। एक संपत्ति जो धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्य के लिए समर्पित है, जिसके लिए संपत्ति के मालिक या दाता ने किसी प्रशासक या प्रबन्धक का उल्लेख नहीं किया है वो स्वामीहीन सम्पत्ति हो जाती है जिसे विद्वान लेखक ने किताब (उपरोक्त) में ऐसी सम्पत्ति को किसी से भी संबंधित नहीं होना बताया है। आम सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित ऐसी संपत्ति स्वयं एक न्यायिक व्यक्ति की श्रेणी में आ जाती है। पृष्ठ 35 पर विद्वान लेखक की टिप्पणी बताती है कि कैसे इस तरह की संपत्ति स्वयं व्यक्ति में एक न्यायिक व्यक्ति के रूप में निहित होती है... यह विचार वही है, अर्थात् जब संपत्ति किसी विशेष उद्देश्य के लिए समर्पित होती है, तो संपत्ति स्वयं जिस पर उद्देश्य प्रभावित होता है, एक न्यायिक व्यक्ति की श्रेणी में आ जाती है ताकि समर्पित संपत्ति ऐसे निर्मित व्यक्ति में निहित हो सके।"

निर्णय के सूक्ष्म पाठन से पता चलता है कि मामले में आग्रह किया गया प्रमुख तर्क यह था कि धर्मचत्रम के रूप में वर्णित संपत्ति तमिलनाडु हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम 1959 की धारा 6 (5) के तहत एक "धर्मार्थ बंदोबस्ती" के रूप में शामिल है। इस न्यायालय ने माना कि धर्मचत्रम के लिए संपत्ति का समर्पण, कठोर विधिक अर्थ में, न तो एक उपहार है और न ही एक न्यास है। इस न्यायालय ने माना कि संपत्ति जो

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक धर्मार्थ उद्देश्य के लिए समर्पित थी, उसे वादी द्वारा न्यासी के रूप में या प्रतिवादी द्वारा मालिक के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है। इस निष्कर्ष से न्यायालय का विचार था कि यह तमिलनाडु हिंदू और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम 1959 था जिससे मामला शासित है और तदनुसार 1959 अधिनियम के तहत आयुक्त और राज्य सरकार द्वारा प्रशासन, प्रबंधन और रखरखाव के लिए वाद संपत्ति को नियंत्रण में लिया जाएगा।

158. धार्मिक धर्मार्थ संस्थान की स्थिति का आकलन करने में इस न्यायालय ने प्रस्तर 16 में कुछ टिप्पणीयाँ की, जिस पर अवलम्बन लिया गया है। न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि वाद संपत्ति एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए समर्पित की गई थी और यह प्रतिवादी के स्वामित्व में नहीं हो सकती थी। यह उस उद्देश्य की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए था जिसके लिए संपत्ति समर्पित की गयी थी। गौरतलब है कि समर्पण विलेख ने धर्मदाय संपत्ति के लिए एक प्रबंधक की पहचान नहीं की और न्यायालय ने धर्मदाय के पीछे के आशय पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करके संपत्ति की रक्षा करने का प्रयास किया। यद्यपि न्यायालय ने ऊपर विश्लेषण किए गए सैद्धांतिक ढांचे के आधार पर कानून की स्थिति का आकलन किया, ऊपर दी गई टिप्पणियों से लगता है कि संपत्ति को स्वयं एक न्यायिक व्यक्ति की स्थिति तक बढ़ा दिया गया था। मामले को समग्र रूप से पढ़ने के साथ–साथ सैद्धांतिक व्याख्या से, जिसका विचार किया गया है, की गयी टिप्पणियों को धर्मदाय के पीछे के उद्देश्य की रक्षा के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए और यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि संपत्ति को स्वयं विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सम्पत्तियों का समर्पण

159. श्री सी एस वैद्यनाथन को संदर्भित मामले, विवादित भूमि पर इस न्यायालय द्वारा विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के परिणाम से संबंधित हैं। वाद 5 में वादी की ओर से किए गए तर्क की सहायता से दूर, कि द्वितीय वादी एक विधिक व्यक्ति है, ऊपर दिए गए मामले पुष्टि करते हैं कि हिंदू मूर्तियों पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने की प्रथा अदालतों द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए विकसित की गई थी कि कानून पर्याप्त रूप से धार्मिक उद्देश्यों के लिए धर्मदाय की गयी संपत्तियों की सुरक्षा करे। जैसा कि विशिष्ट मूर्तियों को बड़ी संख्या में धर्मदाय किए गए थे, न्यायालय ने मूर्ति को एक केन्द्र के रूप में रखा जिसमें धर्मदाय के अधिकार, शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियाँ निहित होगीं। ऐसी धर्मदाय की गयी संपत्तियों की रक्षा के लिए विशिष्ट सार्वजनिक हित को पूरा करने के लिए और न्यायिक संबंधों का एक केंद्र बनाने के लिए विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था। आवश्यकता ने कानून में एक इकाई के निर्माण और मान्यता को अनिवार्य बना दिया, यह अदालतों को प्राकृतिक व्यक्तियों और मूर्ति के बीच विधिक संबंधों और परिणामस्वरूप मूर्ति में निहित सम्पत्ति को विनियमित करने की अनुमति देता है। इन मामलों को उस स्थिति में संदर्भित किया जाएगा जब अदालत यह निर्धारित करती है कि द्वितीय वादी एक विधिक व्यक्ति है।

आस्था और विश्वास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

160. निर्णय और उनकी टिप्पणियाँ जिनको संदर्भित किया गया है, वे दान या समर्णण के सकारात्मक कार्य के अस्तित्व पर आधारित हैं। यह नोट करना प्रासंगिक है कि वादियों का विवादित स्थल अर्थात् भूमि पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किए जाने का दावा एक अभिव्यक्त समर्पण पर आधारित नहीं है। यह आग्रह किया गया था कि केन्द्रीय गुम्बज के नीचे जिस स्थान पर मूर्तियाँ रखी हुई हैं, वह भगवान राम का जन्मस्थान है। उपासकों की आस्था और विश्वास सर्वोपरि है। हिंदू विवादित स्थल के चारो ओर इस आस्था और विश्वास के साथ परिक्रमा करते हैं कि यह भगवान राम का जन्म–स्थान है। इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि धार्मिक उपासना स्थल के रूप में 'स्थान श्री राम जन्म भूमि' को उपासकों की आस्था और विश्वास के आधार पर एक विधिक व्यक्ति की प्रास्थिति तक बढ़ाया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया था कि हिंदू धर्म में एक मूर्ति की उपस्थिति गौण है, यह एक स्थिति पर विचार करता है जैसे कि हमारे समक्ष के मामले में, जहां भूमि को स्वयं एक देवता के रूप में पूजा जाता है। भक्त भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप में भूमि की प्रार्थना करते हैं, और परिणामस्वरूप, यह आग्रह किया गया है, द्वितीय वादी को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

161. वाद 5 में वादी की ओर से जो तर्क दिया गया है, वह एक हिंदू धर्मदाय पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के मामले से तात्विक रूप से अलग है। एक धर्मदाय के मामले में, न्यायालयों ने संस्था में निहित धर्मार्थ या धार्मिक उद्देश्य को संस्था पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के आधार के रूप में मान्यता दी है। ऐसा करने में न्यायालय इस प्रकार धर्मदाय की गयी सम्पत्ति के संरक्षण के लिए संस्थापक या वसीयतकर्ता के पवित्र उद्देश्य को मान्यता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देती है। हालांकि, यह वाद 5 में वादियों का मामला नहीं है कि द्वितीय वादी के रूप में संपत्ति देवोत्तर संपत्ति है। बल्कि एक "न्यायिक व्यक्ति" का तर्क देकर वादी ने इस न्यायालय से विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए एक अतिरिक्त आधार –भक्तों की आस्था और विश्वास को सृजित करने का आग्रह किया है। इस न्यायालय के समक्ष दिए विभिन्न तर्कों के मध्य, यह नवोन्वेषी विधिक दावा वर्तमान विवाद के केंद्र में है।

162. वाद 5 में वादियों द्वारा आग्रह किए गए तर्क को स्वीकार करने में पहली कठिनाई इस व्यावहारिक प्रश्न से ही उभरती है कि इस तरह की अचल संपत्ति को कैसे सीमांकित किया जाना है। धर्मदाय संपत्तियों के मामले के विपरीत जिन्हें स्वयं धर्मदाय विलेख या लिखत में सीमांकित किया जाता है, जहां भक्तों की आस्था और विश्वास के आधार पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने की मांग की जाती है, भक्त स्वयं इस संपत्ति की सटीक रूप–रेखा पर सहमत नहीं हो सकते हैं। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के मस्तिष्क में सीमांकन का प्रश्न आया जिन्होनें कहा:

> "1887. **शब्द "स्थान" का अर्थ क्या होगा और इसकी सीमा क्या होनी चाहिए?** क्या यह एक छोटी सी जगह होगी जो आम तौर पर एक इंसान के जन्म के लिए आवश्यक होती है या क्या यह पूरे कमरे, घर, इलाके, शहर के एक क्षेत्र को कवर करेगा या कभी–कभी कोई इससे भी अधिक कह सकता है। **हम जानते हैं कि हिंदू गंगा, यमुना, नर्मदा, मानसरोवर आदि नदियों और झीलों की पूजा करते हैं। वे बहुत पावन व पवित्र हैं। कई स्थानों पर बहुत से मंदिर इत्यादि उक्त नदियों के आसपास या इनके किनारे बनाए गए हैं। गंगोत्री, यमुनोत्री (उत्तरांचल राज्य) तथा अमरकंटक (नर्मदा नदी के लिए) जैसी पवित्र नदियों का उद्गम भी हिंदुओं के लिए उपासना स्थल है। क्या यह कहा जा सकता है कि इन नदियों द्वारा तय की गयी पूरी दूरी एक "विधिक व्यक्तित्व" का गठन और अपेक्षाओं को संतुष्टि करेगी।** यह अप्रांसगिक नहीं है कि कई स्थानों पर

गंगा, नर्मदा, यमुना आदि के मंदिर का निर्माण किया गया है और वे अपने स्वयं के अधिकारों में धार्मिक धर्मदाय हैं, ऐसे सभी विधिक अधिकारों और दायित्वों इत्यादि का उपभोग करते हैं जो इस तरह के धर्मदायों के लिए उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कुछ पहाड़ी या पर्वत या पहाड़ी भू–भाग जैसे कैलाश, गोबर्धन, कामथगिरी आदि उपासना स्थल माने जाते हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

परिक्रमा

163. इन कठिनाइयों के बावजूद विद्वान न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला कि 'स्थान श्री राम जन्म भूमि' एक विधिक व्यक्ति था। हमारे समक्ष यह आग्रह किया गया था कि संपूर्ण अयोध्या विधिक व्यक्ति नहीं है , बल्कि केवल विवादित संपत्ति है। जब खंडपीठ द्वारा कथित विधिक व्यक्ति की भौतिक सीमाओं का एक प्रश्न उठाया गया, तो यह कहा गया कि विवादित संपत्ति के चारों ओर परिक्रमा किए जाने ने उस संपत्ति को निरूपित किया जिसकी जन्मस्थान के रूप में उपासना की गई थी और दिव्य होने के कारण इस संपत्ति पर एक न्यायिक व्यक्ति की प्रास्थिति प्रदान की जानी चाहिए। इस दृष्टि से, परिक्रमा ने विधिक व्यक्ति की सीमाओं को चिह्नित करने का कार्य किया। दूसरी ओर, डॉ. धवन ने कहा कि परिक्रमा मात्र एक पूजा का रूप है न कि किसी संपत्ति की सीमाओं को चित्रित करने की विधि है।

164. एक छोटी–सी मूर्ति, तीर्थस्थल, मंदिर या भूमि, जिसमें मन्दिर स्थित है, के चारो ओर परिक्रमा की जा सकती है। फिर भी इसका मूल उद्देश्य दिव्य की उपासना करना है और यह इस विश्वास के साथ किया जाता है कि परिक्रमा से परिक्रमाकर्ता को कुछ आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होगा। जिस संपत्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जाता है, उसकी सटीक सीमाओं को चिह्नित करने के लिए परिक्रमा नहीं की जाती है। परिक्रमा करना, आस्था और विश्वास के मामले के रूप में की गई उपासना का एक रूप है, इसका संपत्ति पर मालिकाना दावे के लिए कानून में एक पात्रता के आधार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता है।

भगवान राम जानकीजी

165. भगवान राम जानकीजी बनाम बिहार राज्य[99] में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर वाद 5 में वादियों के अधिवक्ता ने यह तर्क करने के लिए अवलम्बन लिया कि किसी देवता को प्राण–प्रतिष्ठित करने का तरीका व्यक्तिपरक है और भक्तों के दृढ़ संकल्प पर आधारित है। यह तर्क दिया गया कि भक्तों द्वारा चुना गया प्राण–प्रतिष्ठा का कोई भी तरीका देवता पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। उस मामले में अदालत के समक्ष यह प्रश्न था कि क्या उचित अनुष्ठानों करके किसी देवता की दृश्यमान छवि के साथ प्राण प्रतिष्ठा करने से एक वैध देवता की स्थापना हुई जिस पर "बिहार भूमि सुधार (अधिकत्तम सीमा निर्धारण और अधिशेष भूमि अर्जन) अधिनियम 1961 के उद्देश्य के लिए" विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सकता है। दो समर्पण विलेख निष्पादित किए गए थे– एक भगवान राम जानकीजी को और दूसरा भगवान ठाकुर राजा को। दोनों देवताओं को भिन्न इकाईयों के रूप में मान्यता दी गई थी, उन्हें अलग–अलग संपत्तियाँ दी गई थी और सेवायत के माध्यम से कब्जे में रखा गया था। दोनों देवता समर्पित संपत्ति के भीतर अलग–अलग मंदिरों में स्थित थे।

---

99 (1999) 5 एससीसी 50

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

166. डिप्टी कलेक्टर ने सीलिंग क्षेत्र के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए देवताओं को इस आधार पर दो भूमि इकाइयों की अनुमति दी कि अलग – अलग देवता हैं जिनके लिए भूमि दान में दी गई थी। कलेक्टर ने असहमति जताई और इस आधार पर एकल इकाई की अनुमति दी कि दोनों देवताओं द्वारा धारित सम्पूर्ण संपत्ति को धार्मिक न्यास बोर्ड के तहत गठित एक समिति द्वारा प्रबंधित किया जाना था और देवताओं को दान की गई संपत्ति को अलग–अलग माने जाने का कोई सबूत नहीं था। इस अदालत ने इसका उत्तर चाहा कि क्या दो देवता अलग–अलग और भिन्न कानूनी इकाईयाँ थीं। यह ध्यान रखना उचित है कि उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने माना कि ठाकुर राजा (या राजा रानी) के रूप में देवता की छवि की जानकारी हिंदू धर्मग्रंथों में नहीं मिलती और इसलिए कोई दूसरा देवता नहीं है जिसके लिए एक अलग समर्पण किया जा सकता है। यह इस संदर्भ में है कि इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति उमेश बनर्जी के माध्यम से टिप्पणी की:

> "14. हिंदू प्राधिकारियों के अनुसार प्रतिमा दो प्रकार की होती है: पहली स्वयंभू या स्वयं अस्तित्वमान या स्वयं प्रकट के रूप में जाना जाती है, जबकि दूसरी प्रतिष्ठित या स्थापित है। पद्म पुराण में कहा गया है : "पत्थर, पृथ्वी, लकड़ी, धातु या इस प्रकार से बनाई गई हरि (ईश्वर) की प्रतिमा और वेदों, स्मृतियों व तंत्रों में निर्धारित अनुष्ठानों के अनुसार स्थापित की गई प्रतिमा को स्थापित प्रतिमा कहा जाता है... जिस स्थान पर स्वनियंत्रित विष्णु ने स्वयं को पत्थर या लकड़ी में मानव जाति के लाभ के लिए स्थापित किया है, उसे ही स्वयं प्रकट कहा जाता है। (बी. के. मुखर्जी– हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस और चेरिटेबल ट्रस्ट, 5 वां संस्करण) स्वयंभु या स्वयं–प्रकट प्रतिमा प्रकृति का एक उत्पाद है और यह अनादि है या बिना किसी प्रारंभ का है और उपासक केवल अपने अस्तित्व की खोज करते हैं और ऐसी प्रतिमाओं के लिए अभिषेक या प्राण–प्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं है किन्तु मानवनिर्मित प्रतिमा के लिए प्राण–प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है। इस मानव–निर्मित छवि को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> दीवार या कैनवास पर चित्रित किया जा सकता है। सालग्राम शिला नारायण को देवताओं के देवता के रूप में प्रदर्शित करती है और विष्णु भगवान को दर्शाती है। यह एक शिला है– शालग्राम रूप देवताओं के देवता, नारायण और विष्णु का रूप धारण करता है।"

न्यायालय ने तब यह मानने के लिए पूर्ववर्ती सर्वेक्षण किया कि जब एक मूर्ति को आमतौर पर एक मंदिर में प्राण–प्रतिष्ठित किया जाता है, तो यह एक आवश्यक शर्त नहीं प्रतीत होती है। न्यायालय ने माना:

> "16... यदि लोग मंदिरों की धार्मिक प्रभावोत्पादकता में विश्वास करते हैं तो अन्य क्षेत्रों के संबंध में कोई अन्य आवश्यकता नहीं है और विद्वान न्यायाधीश ने हिन्दू शास्त्रों के इस पहलू की पूरी तरह अनदेखी की है– किसी प्रसंग में हिंदुओं के पास शास्त्रों में अग्नि देवता, वायु देवता हैं– ये देवता आकारहीन और रूपहीन हैं, लेकिन हर अनुष्ठान के लिए हिंदू देवता के समक्ष अपनी आहुति देते हैं। देवता को दी जानी आहुति उसकी पूर्णता है– विद्वान एकल न्यायाधीश तथापि उस पर कोई अवलम्बन न लेने के लिए संतुष्ठ थे। एक विशेष प्रतिमा न्यायिक व्यक्ति नहीं है, बल्कि यह मन की एक विशेष प्रवृत्ति है जो प्रतिमा को अधिष्ठित करती है।"

167. न्यायालय द्वारा अवलम्ब लिए गए सभी मामले विभिन्न संविधियों के अधीन मंदिर की अपेक्षाओं से संबंधित हैं या जो धार्मिक उपासना स्थल गठित करता है, से संबंधित हैं। न्यायालय की टिप्पणियाँ पूजा के केंद्र का पता लगाने का आधार देती हैं, जिसके अनुसार इसे एक निश्चित छवि की आवश्यकता नहीं है और यह उपासक की आस्था और विश्वास पर आधारित है। न्यायालय की टिप्पणियां यह निर्धारित करने के संदर्भ में थीं कि क्या एक वैध देवता मौजूद है जिसके लिए समर्पण किया जा सकता है। यह सवाल कि क्या दूसरा देवता एक अलग विधिक व्यक्ति था, यह बिहार भूमि सुधार (अधिकत्तम सीमा निर्धारण और अधिशेष भूमि अर्जन) अधिनियम 1961 के प्रयोजनों के लिए एक अलग इकाई का गठन करने वाले दूसरे देवता के पक्ष

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में समर्पण के विलेख की वैधता को निर्धारित करने की आवश्यकता के कारण उत्पन्न हुआ था। यह केवल एक वैध देवता की स्थापना के परिणामस्वरूप है कि समर्पित संपत्ति आदर्श अर्थों में स्थापित देवता में निहित होगी।

168. यह नहीं कहा जा सकता है कि एक वैध देवता की स्थापना या प्राण–प्रतिष्ठा के संबंध में न्यायालय की टिप्पणीयाँ, भक्तों की आस्था और विश्वास के आधार पर संपत्ति पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के संबंध में समान बल के साथ लागू होती हैं। इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का अंतर्निहित औचित्य निम्नलिखित टिप्पणियों में स्पष्ट किया गया है:

> **"17. मूर्ति पूजा से संबंधित एक बुनियादी सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए**
>
> "कि उपासना के प्रयोजनों के लिए भक्त किसी भी भगवान को चुन सकता है और इस उद्देश्य के साथ किसी भी प्रतिमा को वह स्थापित तथा प्राण–प्रतिष्ठित कर सकता है, **प्रतिमा सर्वोच्च ईश्वर का प्रतिनिधित्व करती है और किसी को नहीं।** विभिन्न देवताओं के मध्य कोई श्रेष्ठता या हीनता नहीं है। शिव, विष्णु, गणपति या सूर्य प्रत्येक की सृष्टि के निर्माता, पालक और सर्वोच्च स्वामी के रूप में स्तुति की जाती है। **प्रतिमा केवल निराकार ईश्वर को एक नाम और रूप देती है और सनातन हिंदू विचार यह है कि रूप की अवधारणा केवल उपासक के लाभ के लिए है और कुछ नहीं।**"
>
> (बी. के. मुखर्जी– हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस एण्ड़ चैरिटेबल ट्रस्ट, 5 वां संस्करण)"

(प्रभाव वर्धित)

भगवान राम जानकीजी में की गयी टिप्पणियां एक देवता की स्थापना के लिए भक्तों की आस्था और विश्वास के आधार पर एक प्रतिमा की प्राण–प्रतिष्ठा करने के विशिष्ट संदर्भ में की गई थीं, जिसके लिए वैध समर्पण किया जा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकता है। इस मामले में टिप्पणियों से पता चलता है कि एक वैध देवता के अस्तित्व का परीक्षण हिंदू शास्त्रों के सापेक्ष नहीं बल्कि भक्तों की आस्था और विश्वास के आधार पर किया जाना था। एक बार भक्तों की आस्था और विश्वास स्थापित हो जाने के बाद, यह समर्पण का एक अभिव्यक्त विलेख था जिसके परिणामस्वरूप मूर्ति पर विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया। इस मामले में टिप्पणियों को एक विधिक व्यक्ति के रूप में संपत्ति की प्रास्थिति प्रदान करने से जोड़ा नहीं जा सकता है।

169. उस मामले में अदालत इस बात से संबंधित थी कि क्या किसी देवता की एक विशिष्ट प्रतिमा को हिंदू धर्मग्रंथों के सापेक्ष परीक्षित किया जाना चाहिए और यह इस संदर्भ में है कि अदालत ने यह माना कि "देवत्व रूपहीन, आकारहीन है लेकिन यह एक विशेष दिव्य अस्तित्व की मानव अवधारणा है जो इसे आकृति, आकार और रंग देता है।" वर्तमान मामले में समर्पण का कोई अभिव्यक्त विलेख नहीं है। **भगवान राम जानकीजी** का मामला इस प्रस्ताव के लिए एक प्राधिकार नहीं है कि केवल भक्तों की आस्था और विश्वास विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जबकि यह धार्मिक उपासना स्थल के अस्तित्व के लिए पर्याप्त था, यह समर्पण के एक विलेख के आधार पर था कि विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया था।

पवित्र पहाड़ी

170. श्रीमान सेठ हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह[100] में 25 वर्ग मील की पहाड़ी की पूजा के अधिकारों के संबंध में जैन समुदाय के दो संप्रदायों से संबंधित विवाद था जो धार्मिक महत्व जुड़ा हुआ था। दिगंबरों के अनुसार

---

100 (1993) 38 एलडब्ल्यू 306 (पीसी)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पहाड़ी की पवित्र प्रकृति की अपेक्षा होती है कि जिस क्षण वे पहाड़ी पर पैर रखते हैं, उन्हें प्रकृति के विरूद्ध किसी भी अपराध से दूर रहना चाहिए, यहां तक कि थूकना से भी। यद्यपि यह श्वेताम्बर द्वारा भी देखा जाता है, दिगंबर ने एक स्थिति को अपनाया कि कोई क्रियाविधि जो उनकी पूजा से असंगत है, जैसे कि पहाड़ी पर मानव का नियमित और निरंतर रहना पहाड़ी को अपवित्र करता है।

171. 1918 में श्वेतांबरों ने पालगंज के राजा से विक्रय द्वारा पहाड़ी का मालिकाना हक हासिल कर लिया। इसके बाद पहाड़ी पर संतरी और रात्रि चौकीदार तैनात किए गए जिनके लिए और अन्य पुजारियों के लिए आवास बनाए गए थे। दिगंबरों ने तर्क दिया कि पहाड़ी की तलहटी पर एक द्वार का प्रस्तावित निर्माण पहाड़ी तक उनकी पहुंच को बाधित करने के लिए था। यह तर्क करते हुए एक वाद संस्थित किया गया कि दोनों पंथों के लिए पहाड़ी पूजा की एक वस्तु थी और इसकी विशेष स्थिति के मद्देनजर इस पर कोई निर्माण नहीं होगा। विचारण न्यायाधीश ने अवधारित किया कि वादी दिगम्बर यह सुनिश्चित करने के हकदार थे कि देवताओं की धर्मदाय संपत्ति के रूप में पहाड़ी को उनकी आस्था के अनुसार एक विशुद्ध स्थिति में रखा जाये। उच्च न्यायालय ने इस फैसले को उलट दिया और अवधारित किया कि पहाड़ी देवोत्तर संपत्ति नहीं थी, बल्कि पालगंज के राजा की संपत्ति थी जिसका स्वत्व हस्तांतरित किया गया था। इसके अलावा द्वार का प्रस्तावित निर्माण दिगंबरों की पूजा के अधिकार को बाधित करना नहीं माना गया।

172. अपील में प्रिवी काउंसिल ने अभिलेख पर साक्ष्यों का परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला कि वैध रूप से विधिक हक राजा में निहित था। राजा और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

श्वेताम्बरों के बीच पिछले मुकदमे का परिणाम राजा के पक्ष में हक दिया गया था। 1903 में दिगंबरों द्वारा दायर एक वाद में भी राजा के हक को उनके पूजा के अधिकार के अधीन स्वीकार किया। प्रिवी काउंसिल ने तब पूजा करने के अधिकार के व्यवधान के बिना पहाड़ी पर की गई गतिविधियों की सीमा की जांच की और यह माना कि यह साबित नहीं हुआ कि तीनों पवित्र स्थानों में *चरण* रखने को छोड़कर वाद पत्र में शिकायत किए गए किसी कार्य से पूजा के अधिकार का अल्पीकरण हुआ।

173. विचारण न्यायाधीश ने निष्कर्ष निकाला कि पहाड़ी पूरी तरह से इसकी पवित्रता के विश्वास पर देवताओं की देवोत्तर संपत्ति थी। इन टिप्पणियों पर आपत्ति करते हुए, प्रिवी काउंसिल ने माना:

> "अधीनस्थ न्यायाधीश ने अपने निष्कर्ष का यह आधार बनाया है कि पूरी पहाड़ी इसकी पवित्रता में अब दोनो संप्रदायों द्वारा स्वीकार्य विश्वास के आधार पर जैन देवताओं की देवोत्तर संपत्ति है। जैसा कि जस्टिस रॉस द्वारा अवलोकन किया गया है **कि साक्ष्य निस्संदेह एक संदेह से परे स्थापित करते हैं कि जैन समुदाय का विश्वास है कि पहाड़ी में आध्यात्मिक गुण जुड़ा हुआ है, लेकिन यह आस्था का विषय है और अपने आप में पहाड़ी के भौतिक स्वामित्व का निर्धारण नहीं कर सकता है।**"
>
> (प्रभाव वर्धित)

प्रिवी कौंसिल ने मालिकाना दावे के लिए दिगम्बरों द्वारा दिए गए तर्क को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया जो संप्रदाय की आस्था और विश्वास पर आधारित थे।

पूर्ण स्वत्व का परिणाम

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

174. वर्तमान मामले में, 'श्री राम जन्म भूमि स्थान' की एक विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता से प्रश्नगत भूमि के लिए सभी प्रतिस्पर्धी मालिकाना दावे समाप्त हो जाएंगे। 'पूर्ण स्वत्व' (भूमि को विधिक व्यक्ति का दर्जा दिये जान के परिणामस्वरूप) का दर्जा दिये जाने से वास्तव में स्वत्व की अवधारणा ही निरर्थक हो जाएगी। इसके अलावा, प्रतिस्पर्धी दावों का समापन स्थापित विधिक सिद्धान्तों से नही, बल्कि विशुद्ध रूप से आस्था और श्रद्धालुओं के विश्वास के आधार पर होगा। इसे कानून में नहीं माना जा सकता है। अदालतों द्वारा विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना आवश्यकता और सुविधा से उत्पन्न एक नवाचार है। हिंदू मूर्तियों को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिये जाने की बात इस मूल प्रश्न के कारण उत्पन्न हुई कि, संपत्ति किसे समर्पित थी और समर्पित भूमि किसमें निहित थी। श्रद्धालुओं के हित और संपत्ति का कुप्रबंधन से संलक्षण ऐसे दो स्पष्ट हित थे जिनका विधिक संरक्षण आवश्यक था। वर्तमान मामले में, समर्पित किये जाने का कोई कार्य विद्यमान नहीं है इसलिए यह प्रश्न कि संपत्ति किसे समर्पित की गई थी , नहीं उठता। परिणामस्वरूप विधिक व्यक्ति के रूप में समर्पण के पीछे के पवित्र उद्देश्य को पहचानने की आवश्यकता भी उत्पन्न नहीं होती है।

स्वंभू तर्क

175. इस बात पर ध्यान देना प्रासंगिक है कि, जवाब में, श्री परासरन ने थोड़ा अलग तर्क दिया है। वाद 5 में वादीगण की ओर से दिया गया प्रारंभिक तर्क यह था कि विवादित स्थल पर इस आस्था और विश्वास के साथ पूजा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जाना कि यह स्थान भगवान राम का जन्म–स्थान है, इस न्यायालय के लिए विवादित स्थल को न्यायिक व्यक्तित्व का दर्जा देने के लिए पर्याप्त है। प्रत्युत्तर में दिया गया तर्क यह था कि, भूमि स्वयंभू देवता (यानी स्व–अवतरित देवता) है। श्री परासरन ने कहा कि हिंदू धर्म में पूजा के लिए मूर्ति आवश्यक नहीं है। यह तर्क दिया गया कि मूर्ति देवत्व के प्रतीक के रूप में पवित्र है, हालांकि सभी पूजा एक अखंड सर्वोच्च सत्ता की होती है। मूर्ति और देवताओं की बहुतायत केवल सर्वोच्च सत्ता के विभिन्न पहलुओं का गठन करती है। इसलिए विधि को, जिस रूप में भी ईश्वर प्रकट होता है, उसे मान्यता देनी चाहिए। यह तर्क दिया गया था कि दूसरा वादी एक देवता है जो खुद को 'भूमि के रूप में प्रकट करता है' और इसलिए राम जन्मभूमि का न्यायिक व्यक्तित्व विवादित स्थल की अचल संपत्ति में निहित है। श्री परासरन के तर्क के अनुसार, विवादित स्थल पर पूजा केवल भगवान राम की ही नहीं की जाती थी बल्कि उस भूमि की भी जिस पर भगवान राम का जन्म लेना कहा जाता है। इस संबंध में कई मंदिरों के अस्तित्व का अवलंब लिया गया है, जहां किसी मूर्ति की अनुपस्थिति के बावजूद पूजा की जाती थी, इनमें सबसे महत्वपूर्ण है– तमिलनाडु का चिदंबरम मंदिर।

176. दूसरे वादी के विधिक व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए, श्री परासरन ने आग्रह किया कि चूंकि राम जन्मभूमि एक 'स्वयंभू देवता' है, इसलिए न्यायालय को इसके न्यायिक व्यक्तित्व को मान्यता देने के लिए किसी समर्पण या अभिषेक की आवश्यकता नहीं है। यह तर्क दिया गया कि इस देवता की प्रकृति से ही इसके चारों ओर परिक्रमा करना आवश्यक हो

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जाता है, जिसने उस संपत्ति की सीमाओं का अंकन हो जाता है जिसे न्यायिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना चाहिए। श्री परासरन ने तर्क दिया कि न्यायिक व्यक्तित्व के दर्जे से भूमि की अतिक्रमण या विलगित किये जाने से बचाने की आवश्यकता की पूर्ति होगी। भूमि को जन्म–स्थान माना जाता है और हिंदु इसमें श्रद्धा रखते हैं जो वहां पर पूजा करना चाहते हैं। परिणामस्वरूप, भूमि की सुरक्षा के लिए इसे विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना चाहिए। इन तर्कों के समर्थन में श्री परासरन ने निम्नलिखित प्रमाणों का अवलंब लिया :

काशी विश्वनाथ मंदिर के श्री आदि विश्वेश्वरा बनाम उ.प्र. राज्य[101] , राम जानकी जी विभूतियां बनाम बिहार राज्य[102], योगेंद्र नाथ नस्कर बनाम सीआईटी, कलकत्ता[103], भूपति नाथ[104], मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम लखमीराम गोविंदराम[105], गुरुवायूर देवस्वोम प्रबंध समिति बनाम सी के राजन[106], श्री सभानायगर मंदिर, चिदंबरम बनाम तमिलनाडु राज्य[107], पिंचाई बनाम आयुक्त, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ अनुदान बोर्ड[108], सरस्वती अम्मल बनाम राजगोपाल अम्मल[109]; कामराजु वेंकट कृष्ण राव बनाम उप–जिलाधिकारी[110], थायरम्मल बनाम कनकम्मल[111], शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक

---

101 (1997) 4 SCC 606
102 (1999) 5 SCC 50
103 (1969) 1 SCC 555
104 ILR (1909) 37 Cal 128
105 ILR 1888 12 Bom 247
106 (2003) 7 SCC 546
107 (2009) 4 CTC 801
108 AIR 1971 Mad 405
109 1954 SCR 277
110 (1969) 1 SCR 624
111 (2005) 1 SCC 457

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समिति, अमृतसर बनाम सोम नाथ दास[112] **और सपनेश्वर पूजापण्डा बनाम रत्नाकर महापात्रा**[113]।

177. डा. धवन ने संक्षेप में यह प्रतिवाद किया कि यद्यपि हिन्दू धर्म *स्वयंभू देवता* मान्यता देता है, फिर भी ऐसे सभी उदाहरणों में भौतिक अभिव्यक्ति पायी जाती है। श्रद्धालुओं की आस्था और विस्वास के अलावा विवादित स्थल को ऐसी ही किसी भूमि से अलग करने वाली कोई भौतिक अभिव्यक्ति सामने नहीं आई है।

178. श्री परासरन के विचार में, चाहे विवादित स्थल ऐसी दिव्यता की अभिव्यक्ति के प्रमाण स्वरूप कोई विशिष्ट विशेषता न हो, श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास इस बात को मान्यता देने के लिए पर्याप्त है कि विवादित स्थल एक स्वयंभू देवता है। श्री परासरन द्वारा दिए गए संशोधित तर्क के मूल में यह बात है श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास इस न्यायालय द्वारा विवादित स्थल को स्वंभू देवता के रूप में मान्यता देने और परिणामस्वरूप उसे विधिक व्यक्तित्व का दर्जा देने के लिए पर्याप्त है। इस सीमा तक, श्री परासरन ने अपने उत्तर में जो तर्क दिया है, वह श्रद्धा और विश्वास वाले पहले तर्क के समान ही है, जिस आधार पर न्यायिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना चाहिए। वाद 5 में वादीगण द्वारा दी गयी दोनों दलीलों में, श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास को न्यायिक व्यक्तित्व का दर्जा दिए जाने के लिए एकमात्र आधार होने का दावा किया जाता है। आस्था और

---

112 (2000) 4 SCC 146

113 AIR 1916 Pat 146

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विश्वास के तर्क का ऊपर पहले ही विश्लेषण किया जा चुका है। हालांकि, दिया गया तर्क कि विवादित भूमि एक *स्वयंभू देवता* है, हिंदू विन्यास विधि की परिधि से बाहर कुछ अतिरिक्त मुद्दों को उठाती है। इन मुद्दों पर आना अब आवश्यक है।

179. वाद 5 में वादीगण द्वारा दिए गए तर्कों को देखते हुए, उन मामलों पर ध्यान देना आवश्यक है जिनका प्रत्युत्तर में अवलंब लिया गया है। जिन टिप्पणियों पर अवलंब लिया गया है, वे चुनिंदा रूप से निकाली गई हैं और एक बार उस संदर्भ को पूरी तरह से समझ लेने पर जिनमें वे की गई हैं, उनसे श्री परासरन द्वारा दिया गया तर्क नहीं निकलता।

180. यह तर्क देने के लिए कि कोई मंदिर स्वयं एक न्यायिक इकाई है, **गुरुवायूर देवस्वोम प्रबंध समिति बनाम सी. के. राजन**[114] के मामले का अवलंब लिया गया। विवाद देवस्वोम समिति द्वारा मंदिर मामलों के कुप्रबंधन से संबंधित था। इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों में जहां राज्य प्राधिकारियों के कार्य या निष्क्रियता द्वारा श्रद्धालुओं का संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अन्तर्गत अधिकारों का उल्लंघन होता हो, वे लोकहित वाद के माध्यम से उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में जा सकते हैं। मंदिर के न्यायिक व्यक्ति होने का एकमात्र संदर्भ निर्णय के प्रस्तर 40 में दर्ज किया गया है। न्यायमूर्ति एस बी सिन्हा की टिप्पणी :

---

114 (2003) 7 SCC 546

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "40. **श्री सुब्बा राव के अनुसार**, जनहित याचिका के रूप में शुरू की गई कोई कार्यवाही उच्च न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष तभी आएगी, जहां यह पाया गया हो कि वैधानिक प्रावधानों के अस्तित्व के बावजूद, राज्य या अन्य वैधानिक अधिकारी, शिकायतों के उपचारार्थ उन प्रावधानों का सहारा नहीं ले रहे थे। **किसी भी स्थिति में, चूंकि एक हिंदू मंदिर एक न्यायिक व्यक्ति होता है, इस तथ्य के कारण ही कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 में उसके संरक्षण का आशय है, इस उद्देश्य के लिए ही, अनुच्छेद 226 और 32 का भी सहारा लिया जा सकता है। इस संबंध में हमारा ध्यान** योगेन्द्र नाथ बनाम सीआईटी और मनोहर गणेश ताम्बेकर बनाम लखमीराम गोविंदराम की ओर आकर्षित किया गया है "
>
> (प्रभाव वर्धित)

यह टिप्पणी कि मंदिर एक विधिक व्यक्ति होता है, अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील का एक हिस्सा था बनाया और न्यायालय द्वारा अभिलेख के लिए संरक्षित किया गया था। इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि इस न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार किया कि मंदिर एक विधिक व्यक्ति होता है। इस निर्णय पर या प्रस्तर 40 में की गई टिप्पणी पर इस तर्क हेतु कोई अवलंब नहीं लिया जा सकता कि मंदिर एक विधिक व्यक्ति होता है।

181. आगे, बिना किसी निवासी मूर्ति के एक मंदिर के अभिलिखित अस्तित्व को दर्शाने के लिए श्री परासरन ने **श्री सभानायगर मंदिर, चिदंबरम बनाम तमिलनाडु राज्य**[115] का अवलंब लिया। निर्णय में तमिलनाडु के चिदंबरम मंदिर का एक संक्षिप्त इतिहास अभिलिखित है। मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति टी राजा ने धारित किया:

---

115 (2009) 4 CTC 801

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "...चिदंबरम मंदिर में एक वेदी है जिसमें कोई मूर्ति नहीं है। वास्तव में कोई लिंगम् भी नहीं है, बल्कि, एक दीवार से एक परदा लटका हुआ है, जब लोग पूजा करने जाते हैं, तब 'लिंगम्' देखने के लिए परदा हटाया जाता है। परन्तु परम भक्त को दिव्य आश्चर्य का अनुभव होगा कि भगवान शिव निराकार हैं अर्थात स्थान जिसे "आकाश लिंगम्" कहते हैं। परदे के सामने आराधना की जाती है। इस पूजा पद्धति को "चिदम्बरा रहस्यम" अर्थात चिदम्बरम का रहस्य कहा जाता है। "

यह निर्णय श्री परासरन के इस तर्क का अनुसमर्थन करता है कि मूर्ति के बिना भी कोई मंदिर हो सकता है। कोई मूर्ति परम सत्ता की एक अभिव्यक्ति होती है और यह नहीं कहा जा सकता है कि बिना मूर्ति के परम सत्ता का अस्तित्व ही नहीं होता जिसकी पूजा की जा सके। हालांकि, मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या अपीलार्थी और उसके पूर्वज मंदिर के संस्थापक थे और क्या यह मंदिर के लौकिक मामलों में राज्य विनियमन के प्रयोजनों के लिए एक सांप्रदायिक मंदिर था. उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि क्या एक मंदिर एक विधिक व्यक्ति हो सकता है और निर्णय श्री परासरन के इस तर्क का समर्थन नहीं करता है कि भौतिक अभिव्यक्ति के बिना, केवल खाली भूमि या 'स्थान' की पूजा मात्र, विधिक व्यक्तित्व का दर्जा प्रदान कर सकता है। इसके अलावा, मामले के तथ्य वर्तमान मामले से स्पष्टः भिन्न हैं क्योंकि चिदंबरम मंदिर पवित्र माने जाने वाले एक विशिष्ट स्थान के आसपास निर्मित एक भौतिक संरचना है। मूर्ति की अनुपस्थिति के बावजूद, मंदिर देवता की भौतिक अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करता है और पूजा की संस्थागत प्रकृति को प्रदर्शित करता है। यह वर्तमान मामले के विपरीत है। भगवान राम की मूर्ति की पूजा की जाती है। विवादित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थल धार्मिक महत्व का एक स्थल है, लेकिन यही मात्र भूमि को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा देने के लिए पर्याप्त नहीं है।

182. यह तर्क देने के लिए मूर्ति न होने पर भी मंदिर को सार्वजनिक पूजा स्थल माना जाता है, **पिचल उर्फ चोकलिंगम पिल्लई बनाम हिन्दू धार्मिक एवं सेवार्थ विन्यास (प्रशासनिक प्रभाग) मद्रास**[116] के मामले का अवलंब लिया गया। मामला अवनियापुरम के कल्याणसुंदरेश्वर मंदिर से संबंधित था। बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में चोकलिंगम पिल्लई नाम के एक व्यक्ति ने श्री कल्याणसुंदरेश्वर सहित चार मूर्तियों के निर्णाम, स्थापना और सतत रखरखाव के लिए, समर्पण विलेख निष्पादित किया। चोकलिंगम पिल्लई की 1926 में मृत्यु हो गई और 1954 में समझौता विलेख के कारण मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी प्रबंध न्यासी बन गये। अपीलार्थीगण पर मूर्ति के रखरखाव और सेवा में असफल रहने का आरोप लगाया गया और हिन्दू धर्म एवं सेवार्थ विन्यास आयुक्त ने मंदिर का प्रबंधन अपने नियंत्रण में लेने की योजना बनाई। अपीलार्थीगण ने आयुक्त की सक्षमता पर इस आधार पर चुनौती दी कि मंदिर मद्रास हिन्दू धार्मिक एवं सेवार्थ निन्यास अधिनियम 1959 की धारा 6(20) के अन्तर्गत मंदिर नहीं है। अपीलार्थीगण का मूल तर्क यह था कि कल्याणसुंदरेश्वर मंदिर की मूर्तियां विधिवत स्थापित व प्राणप्रतिष्ठित नहीं थी। मद्रास उच्च न्यायालय की खंड पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति के रेड्डी ने धारित किया कि किसी सार्वजनिक पूजा स्थल के "मंदिर" होने के लिए उक्त अधिनियम की धारा 6 (20) के तहत मूर्ति का अस्तित्व आवश्यक नहीं है। उन्होंने आगे कहा:

---

116 AIR 1971 Mad 405

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "..... ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उक्त मंदिरों में पूर्वोक्त मूर्तियाँ आगम शास्त्रों में वर्णित विधि विधान के अनुसार स्थापित और प्राण प्रतिष्ठित की गई हैं। वे हिंदू समुदाय द्वारा इस स्थान के लंबे समय से उपयोग के कारण सार्वजनिक धार्मिक पूजा स्थल बन गए हैं। इसलिए, हमारा यह मत है कि हिंदू शास्त्रों द्वारा निर्धारित प्राण प्रतिष्ठा आदि जैसे अनुष्ठान तथा मूर्तियों की स्थापना सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। किसी भी स्थिति में, यह अधिनियम के अन्तर्गत मंदिर की परिभाषा की विधिक पूर्वापेक्षा नहीं है..."

दो बिंदुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए: पहला, न्यायालय की टिप्पणी 'मंदिर' की पूर्व–मौजूदा वैधानिक परिभाषा के संदर्भ में है। इसी संदर्भ में, मद्रास उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि मंदिर की वैधानिक परिभाषा के लिए मूर्ति का अस्तित्व कोई पूर्वापेक्षा नहीं है। दूसरा, मामले में इस सवाल पर कोई बहस नहीं हुई कि क्या मूर्ति के बिना कोई मंदिर एक विधिक व्यक्ति हो सकता है। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि मूर्ति के बिना *मंदिर* कई वर्षों से मौजूद था। इन टिप्पणियों के आलोक में, निर्णय श्री परासरन के इस तर्क का समर्थन नहीं करता है कि मूर्ति या प्रकट अभिव्यक्ति या पहचान के बिना भूमि कोई विधिक व्यक्ति हो सकता है।

183. श्री परासरन ने यह तर्क देने के लिए **सरस्वती अम्मल बनाम राजगोपाल अम्मल**[117] के निर्णय का अवलंब लिया है कि राम जन्मभूमि के रूप में मान्य भूमि की पूजा और व्यापक आस्था उसे विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता देने के लिए पर्याप्त है। मामला एक समझौता विलेख से संबंधित था जिसके द्वारा एक विधवा ने दैनिक पूजा और उसके पूर्व पति के मकबरे

---

117 1954 SCR 277

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की 'गुरूपूजा' हेतु कुछ अचल संपत्ति की मालगुजारी शाश्वत रूप से समर्पित कर दिया। अपीलार्थीगण द्वारा मामले में यह कहा गया कि समर्पण पूजा करने और बड़े पैमाने पर वार्षिक 'श्राद्ध' करने के लिए था, और इसलिए समर्पण धार्मिक और सेवार्थ उद्देश्य के लिए था। इस तर्क को खारिज करते हुए, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीश पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति बी जगन्नाथदास ने धारित किया:

> "6..... अतः इस सीमा तक, कि धार्मिक मेरिट के आधार पर, भले ही सार्वजनिक लाभ का न हो, किसी प्रयोजन के शाश्वत समर्पण के लिए वैध होने के लिए, जहां तक हिन्दुओं का संबंध है, इसका शास्त्रीय आधार होना दर्शित किया जाना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि तब से अन्य धार्मिक रिवाज और आस्थाओं का विकास हुआ जिन्हें कुछ वर्गों से मान्यता मिली, जो धार्मिक मेरिट के अनुकूल उद्देश्य का गठन करते हैं। यदि संपत्ति के शाश्वत समर्पण के वैध होने के लिए ऐसी आस्थाओं को न्यायालय द्वारा पर्याप्त माना जाए, अर्थात वास्तविक या कल्पित लाभ के बिना, कम से कम यह दर्शित किया जाना चाहिए कि उन्हें व्यापक मान्यता मिली है और एक बड़े वर्ग के धार्मिक रिवाज का हिस्सा है। **वह एक ऐसा प्रश्न है जो मामले में सीधे निर्णय के लिए नहीं आता। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसे एक या दो व्यक्तियों की आस्था उन्हें संपत्ति के संबंध में वैध स्थायी समझौता करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त होगा। धार्मिक मेरिट प्राप्त करने में आस्था द्वारा निर्धारित धार्मिक प्रयोजनों के प्रमुखों को लोक नीति और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप विस्तार की अनुमति नहीं दी जा सकती।**
>
> (प्रभाव वर्धित)

उपरोक्त निर्णय इस बात से संबंधित है कि क्या बड़ी संख्या में हिंदुओं का कोई महत्वपूर्ण और व्यापक रिवाज, धार्मिक या धर्मार्थ प्रथा के रूप में इसे मान्यता दिलाएगा। इसके अलावा, न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि इस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक नहीं था क्योंकि लोकनीति का आधार कुछ इक्का–दुक्का व्यक्तियों द्वारा मकबरे की पूजा के रिवाज को अप्रतिष्ठिक करने के लिए पर्याप्त है। यह इस प्रश्न पर विचार नहीं करता कि न्यायालय को किसी मूर्ति या भूमि को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा कब प्रदान करना चाहिए। हालांकि किसी विशिष्ट धार्मिक रिवाज को उसको अपनाए जाने के पैमाने के आधार पर न्यायालय द्वारा "धार्मिक" या "धर्मार्थ" के रूप में मान्यता दी जा सकती है या नहीं दी जा सकती है, विधिक व्यक्ति की अवधारणा के संबंध में उससे समानता नहीं की जा सकती जो कि विधि के पूर्णतः भिन्न क्षेत्र में कार्य करता है। निर्णय इस तर्क का अनुसमर्थन नहीं करता है कि किसी स्थल की धार्मिक प्रकृति में व्यापक विश्वास उस स्थल को विधिक व्यक्तित का दर्जा प्रदान करने के लिए पर्याप्त है।

अंत में श्री परासरन ने दो निर्णयों **सप्नेश्वर पुजापांडा बनाम रत्कानर महापात्रा**[118] और **काशी विश्वनाथ मंदिर के श्री आदि विश्वेश्वरा बनाम उ.प्र. राज्य**[119] का अवलंब यह तर्क देने हेतु लिया है कि, वाद 5 में दूसरा वादी एक 'स्वंभू' देवता है, जिसका एक मान्य विधिक व्यक्तित्व है। निर्णय में मात्र इस बात का उल्लेख है कि हिंदू धर्म स्वयंभू देवता की अवधारणा को मान्यता देता है, जिस पर वर्तमान विवाद के किसी पक्ष द्वारा कोई विवाद नहीं है। इनमें से किसी निर्णय से श्री परासरन द्वारा दिया गया तर्क नहीं निकलता। वाद 5 में वादीगण द्वारा दी गई दलीलों की मूल सामग्री पर आगे विचार किया गया है।

---

118 AIR 1916 Pat 146

119 (1997) 4 SCC 606

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

184. श्री परासरन का कथन है कि हिन्दू धर्म के विभिन्न देवी–देवता और मूर्तियाँ एक ही अविभाज्य ईश्वर के रूप हैं। इस प्रकार यह तर्क दिया गया कि अविभाज्य ईश्वर की प्रत्येक अभिव्यक्ति विधिक सुरक्षा और विधिक व्यक्तित्व का दर्जा पाने की हकदार है।

185. योगेंद्र नाथ नस्कर बनाम सीआईटी, कलकत्ता[120] के मामले में इस न्यायालय ने श्रद्धालु की धारणा, कि मूर्ति सर्वोच्च सत्ता की अभिव्यक्ति है, और इस विधिक स्थिति कि विधिक व्यक्तित्व का दर्जा वसीयतकर्ता के पवित्र प्रयोजन को दिया जाता है, जो विधिक संरक्षण का हकदार है, के बीच अंतर किया है। हिन्दू धर्म एक व्यापक धर्म है जो सृजन के हर पहलू में परम सत्ता के रूप में विद्यमान देवत्व में विश्वास करता है। हिन्दू धर्म में ईश्वर की पूजा केवल मन्दिर या मूर्तियों तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि प्रायः प्राकृतिक आकृतियों, पशुओं और यहां तक कि उपासक के जीवन में महत्व रखने वाली दैनिक वस्तुओं तक विस्तारित हो सकती है। धर्म के रूप में, परम सत्ता की प्रत्येक अभिव्यक्ति दिव्य और पूजा योग्य है। हालांकि विधिक दृष्टि से परम सत्ता की प्रत्येक अभिव्यक्ति विधिक व्यक्ति नहीं है। विधिक व्यक्तित्व विधिक आवश्यकता और न्याय निर्णयन की व्यवहारिकता से उत्पन्न एक नवाचार है। बिना समर्पण के दिया गया विधिक व्यक्तित्व का प्रत्येक दर्जा मामले के तथ्यों के आधार पर जांचा जाना चाहिए और यह कोई दृढ़ विधिक धारणा नहीं कि परम सत्ता की प्रत्येक अभिव्यक्ति को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा प्राप्त है।

---

120 (1969) 1 SCC 555

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

186. वर्तमान मामले में यह तर्क दिया गया है कि विवादित स्थल की भूमि ही भगवान राम की अभिव्यक्ति है। दो विधिक उपधारणाएं प्रस्तुत करने के लिए ऐसे मंदिरों के अस्तित्व का महत्वपूर्ण अवलंब लिया गया है जिनमें मूर्तियां नहीं हैं विशेषकर तमिलनाडु का चिदंबरम मंदिर : पहला यह कि विधिक व्यक्तित्व वाला कोई हिंदू देवी–देवता बिना मूर्ति के भी अस्तित्वमान हो सकता है और दूसरा यह कि किसी विशिष्ट विशेषता से रहित कोई भूमि *स्वयंभू देवता* फलस्वरूप विधिक व्यक्ति हो सकती है। यथा ध्यातव्य, श्री परासरन द्वारा चिदंबरम और कल्याणसुंदरेश्वर मंदिर के संदर्भ में लिया गया अवलंब विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना संदर्भित नहीं करता है। हालांकि यह सत्य है कि मूर्ति विधिक व्यक्ति के अस्तित्व की पुर्वापेक्षा नहीं है। जहां प्रत्यक्ष समर्पण विलेख विद्यमान हो, विधिक व्यक्तित्व संस्थापक के पवित्र प्रयोजन में निहित होता है। मूर्ति पवित्र प्रयोजन का भौतिक मूर्त रूप होता है और विधिक संबंधों का स्थान होता है। मूर्तियों के जलमग्न होने या विध्वंस होने तक के भी मामले हुए हैं लेकिन इसके बावजूद यह धारित किया गया कि विधिक व्यक्तित्व विद्यमान रहता है। यदि कोई वसीयतकर्ता किसी धार्मिक प्रयोजन के लिए समर्पण करना चाहे लेकिन समर्पण के समय मूर्ति विद्यमान न हो या परम सत्ता का प्रकटीकरण मूर्ति के रूप में न हो कर किसी अन्य आकार या धार्मिक महत्व के रूप में हो, तो विधिक व्यक्तित्व समर्पण के ही पवित्र उद्देश्य में निहित रहेगा। लेकिन वर्तमान मामले में वह स्थिति नहीं है। वाद 5 में दूसरे वादी के मामले में, समर्पण का प्रत्यक्ष विलेख नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

187. यह सच है कि दूसरे वादी को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा देने से केवल इसलिए अवरूद्ध नहीं किया गया है क्योंकि दूसरा वादी मूर्ति नहीं है , और कोई समर्पण विलेख मौजूद नहीं है। स्वंभू देवता, इस तथ्य से ही कि वे प्रकृति से प्रकट होते हैं, पारंपरिक अर्थों में मूर्ति के सदृश नहीं होते हैं। न्यायालयों को परमसत्ता की ऐसी मूर्तिमान अभिव्यक्तियों को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता देने की मनाही नहीं है। भौतिक आकार के रूप में अभिव्यक्ति ही परिभाषिक विशेषता होती है। हालांकि वर्तमान मामले में प्रत्युत्तर में वादीगण की ओर से वाद 5 में दिए गए तर्क दो तरफा दावे पर आधारित हैं। पहला यह– कि स्वयंभू देवता के संबंध में विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिए जाने के लिए किसी भौतिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। इस आलोक में इस आस्था और विश्वास के साथ पूजा कार्य संपन्न करना कि कायिक या भौतिक गुणधर्म परम सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं– विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिए जाने के लिए पर्याप्त है। दूसरा– वैकल्पिक रूप से, यह मानकर कि भौतिक अभिव्यक्ति स्वयंभू देवता के लिए एक पूर्वापेक्षा है, विवादित स्थल की भूमि भौतिक अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है और धार्मिक पूजा होने के चलते विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दर्जा दिए जाने के लिए किसी अन्य साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय के समक्ष चिदंबरम मंदिर सहित कई ऐसे मूर्ति रहित मंदिरों के उदाहरण यह तर्क देने के लिए रखे गए कि भगवान राम की अभिव्यक्ति भूमि के रूप में ही हुई है। वाद 5 में वादी गण के अनुसार, विवादित स्थल पर भगवान राम का जन्म श्रुति है और राम जन्मभूमि स्थित देवता स्वयं को भूमि के रूप में अभिव्यक्त करते हैं, यह कि ऐसी अभिव्यक्ति विवादित भूमि ही है। चिदंबरम मंदिर में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वहां स्थित देवता भगवान शिव की कोई मूर्ति नहीं है। वेदी पर एक पर्दा लगा है। पूजा के समय पर्दे को हटा दिया जाता है और खुले आकाश वाली वेदी को खोल दिया जाता है। वेदी का खुला आकाश ही पूजा पाठ की विषय वस्तु होती है और श्रद्धालु नियमित रूप से वेदी पर नैवेद्य चढ़ाते हैं। श्री परासरन ने उससे समतुल्यता दर्शित करने के लिए कि कैसे मूर्ति रहित या किसी विशिष्ट विशेषता के बिना मुक्त आकाश भी पूजा की विषय वस्तु थी और एक वैधानिक देवता के रूप में थी जिसे विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जा सकता है।

188. श्री परासरन द्वारा अपने प्रत्युत्तर में दिए गए तर्क हमारे विनिश्चय के लिए तीन प्रश्न उठाते हैं: पहला, क्या भौतिक अभिव्यक्ति रहित स्वयंभू देवता को मान्यता दी जा सकती है; दूसरा, क्या भूमि देवता की अभिव्यक्ति हो सकती है; और तीसरा, क्या अचल संपत्ति को स्वंयमेव विधिक व्यक्ति का दर्जा दिया जा सकता है।

189. कोई *स्वयंभू देवता* ऐसे ईश्वर की अभिव्यक्ति होता है, जो कि 'स्वप्रकट' या 'विद्यमान पाया' जाता है, न कि कोई पारंपरिक मूर्ति जो कि हस्त निर्मित हो और अनुष्ठान द्वारा प्राण प्रतिष्ठित की गई हो। 'स्वंय' शब्द का अर्थ है 'स्वयं' या 'स्वतः' और 'भू' का अर्थ है 'जन्म लेना'। स्वंय भू देवता वह होता है जिसने मानवीय शिल्पकारिता के बिना प्रकृति में स्वंय को अभिव्यक्त किया हो। इन देवताओं के सामान्य उदाहरण हैं– ऐसे वृक्ष जो हिंदू देवी या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देवता के रूप आकार हो या ऐसे प्राकृतिक गठन जैसे कि बर्फ या चट्टान जो एक मान्य हिंदू देवी– देवता के रूप में हो।

190. डॉ. धवन ने दलील दी है कि *स्वयंभू देवता* का कोई भी तर्क आवश्यक रूप से निम्नलिखित पर आधारित होना चाहिए: (i) ईश्वर की भौतिक अभिव्यक्ति के कुछ साक्ष्य और साथ ही; (ii) आस्था और विश्वास कि कोई विशेष भौतिक गुणधर्म परमसत्ता का प्रतिनिधित्व करता है; और (iii) पारंपरिक प्राण प्रतिष्ठा के अभाव में, ऐसी संस्थागत पूजा जिससे यह धार्मिक मान्यता मिले कि अभिव्यक्ति दैविक है। इस दृष्टि से, स्वयंभू देवता का आधार भौतिक अभिव्यक्ति और धार्मिक मान्यता के साथ आस्था और विश्वास आधारित होता है।

191. *स्वयंभू देवता* भौतिक आकार में ईश्वर का प्रकटीकरण होता है जिसकी श्रद्धालुओं द्वारा पूजा की जाती है। स्वयंभू देवता की मान्यता इस धारणा पर आधारित है कि ईश्वर सर्वव्याप्त है और वह स्वयं को किसी भौतिक आकार में अभिव्यक्त कर सकता है। ऐसी अभिव्यक्ति का देवत्व के सगुण रूप में पूजा की जाती है। इन सभी मामलों में देवत्व के गुण का आधार देवता का भौतिक आकार में अभिव्यक्ति पर आधारित है। निसंदेह किसी देवता का बिना भौतिक अभिव्यक्ति के अस्तित्व हो सकता है उदाहरण के रूप में सूर्य और वायु की पूजा। लेकिन *स्वयंभू* सिद्धांत ईश्वर के भौतिक अस्तित्व की अभिव्यक्ति पर आधारित है जिससे आस्था और विश्वास जुड़ा होता है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

192. वर्तमान मामले में जो कठिनाई आती है वह यह है कि इस न्यायालय से मान्यता चाहने वाला स्वयंभू देवता अवतरित हिंदू देवताओं के प्रचलित रूपों से सामान्यतः संबद्ध नहीं है। वाद 5 में वादीगण ने यह तर्क देते हुए कि वह भूमि ही देवता की अभिव्यक्ति है और श्रद्धालु न सिर्फ भगवान राम की मूर्ति की पूजा करते हैं बल्कि उस भूमि की भी पूजा करते हैं, विवादित भूमि पर ही ध्यान केंद्रित करने की कोशिश किया है। उस भूमि में वहां पर स्थित भगवान राम की कोई भौतिक अभिव्यक्त नहीं है। श्रद्धालुओं की आस्था और विश्वास से इतर, उस भूमि में ऐसी कोई विशिष्ट विशेषता नहीं है कि उसे न्यायालय द्वारा विवादित स्थल पर देवी अभिव्यक्ति के साक्ष्य के रूप में मान्यता प्रदान की जा सके। यह सत्य है कि आस्था एवं विश्वास के विषयों में साक्ष्य की अनुपस्थिति उसकी अनुपस्थिति का साक्ष्य नहीं होता। लेकिन अभिव्यक्ति से रहित भूमि को स्व –अवतरित देवता की मान्यता देने से पक्षकारों के ऐसे तर्कों की बाढ़ आ जाएगी कि धार्मिक महत्व की कोई भूमि जो देवता के किसी मानवीय अवतार से जुड़ी कोई भूमि (जैसे विवाह स्थल, या स्वर्गारोहण) हो, वास्तव में भूमि के रूप में अभिव्यक्त स्वयंभू देवता है। यदि श्री परासरन द्वारा दिए गए इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाए कि भौतिक अभिव्यक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है तो यह दावा किया जा सकता है कि धार्मिक महत्व का कोई भी क्षेत्र स्वयंभू देवता है जो विधिक व्यक्ति का दर्जा दिए जाने की योग्य है। समस्या इस तथ्य से और बढ़ जाती है कि किसी धार्मिक स्थल पर किसी विशेष देवता और उस उस भूमि की पूजा सभी भेदरहित उद्देश्यों एवं आशयों से की जाती है। स्वयंभू देवता को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मान्यता देने के लिए विधिशास्त्रीय आधार प्रदान करने हेतु अभिव्यक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसी अभिव्यक्ति जो उस भूमि को अन्य संपत्तियों से अलग करती हो, से रहित भूमि को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा नहीं दिया जा सकता है।

193. यह बोधगम्य है कि कुछ उदाहरणों में भूमि में कुछ विशिष्ट विशेषताएं हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यह दावा किया जा सकता है कि समुद्र तट के किनारे कुछ निश्चित विन्यास या फसल आकार परमसत्ता की अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन मामलों में, अभिव्यक्ति भूमि से अविभाज्य है और इससे संबंधित है। एक स्वतंत्र प्रश्न यह उठता है कि क्या कोई भूमि देवता की भौतिक अभिव्यक्ति हो सकती है। यदि कोई न्यायालय भूमि को देवता की अभिव्यक्ति मान भी ले, क्योंकि ऐसी भूमि अचल संपत्ति के सिद्धांतों से शासित होती है, न्यायालय के लिए इससे उत्पन्न परिणामों की विवेचना करना आवश्यक होगा। ऐसा करने में न्यायालय को विधिक व्यक्तित्व की विधिक व्यवस्था की अचल संपत्तियों की विधिक व्यवस्था से सुसंगतता का विश्लेषण करना चाहिए। अब इस विषय पर आना आवश्यक है।

अधिदेव में निहित संपत्ति और अधिदेव के रूप में संपत्ति

194. किसी प्रतिष्ठान में विहित संपत्ति (यथा रोमन विधि में) या विधिक व्यक्तित्व के रूप में देवी–देवता (यथा हिंदू विधि में) और तद्रुरूप संपत्ति के विधिक व्यक्ति होने में महत्वपूर्ण अंतर है। जहां संपत्ति पवित्र प्रयोजन से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गठित किसी प्रतिष्ठान में निहित हो, यह अचल संपत्ति के रूप में अपनी विशेषताओं को बरकरार रखता है। यह उन मामलों में भी सच है जहां संपत्ति आदर्श अर्थों में देवता में निहित हो। विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिये जाने का उद्देश्य विधिक संबंधों का केंद्र एवं श्रद्धालुओं के लाभकारी हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। हालांकि, यह उस संपत्ति के चरित्र को नहीं बदलता है जो विधिक व्यक्ति में निहित है। यह उस विधिक ढांचे के अधीन रहता है जो संपत्ति के संबंध में मांगे गए अधिकारों या हितों और संपत्ति के विधिक संव्यवहार से उत्पन्न होने वाले दायित्वों को शासित करने वाले संबंधों को परिभाषित करता है।

195. इस विशेषता पर, जो अचल संपत्ति की विशेषताओं को रेखांकित करती है, प्रिवी कौंसिल द्वारा **द् मास्क, मस्जिद शहीदगंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी अमृतसर**[121] के मामले में विचार किया गया। उस मामले में फलक बेग खान नाम के किसी व्यक्ति द्वारा 1972 में मस्जिद को समर्पित किया गया था। समर्पण विलेख द्वारा शेख दिन मोहम्मद और उसके वंशजों को मुतवलिस नियुक्त किया गया। हालांकि 1762 से, इमारत और कोर्ट–यार्ड ,कुआं व समीपस्थ भूमि सिक्खों के आधिपत्य और कब्जे में थी। मस्जिद के समीप की भूमि एक सिक्ख तीर्थस्थल बन गयी। वर्ष 1849 में ब्रिटिश द्वारा विलय के समय मस्जिद और समीपस्थ भूमि दोनों की का कब्जा सिखों के पास था।

---

121 AIR 1940 PC 116

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

196. तत्पश्चात सिख संरक्षकों "द्वारा या उनकी मौन सहमति से" इमारत को ढहा दिया गया। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, जिनके पास विवादित संपत्ति का कब्जा था, के विरुद्ध, इस उद्घोषणा की मांग करते हुए कि इमारत मस्जिद थी जिसमें इमारत के पुनर्निर्माण के अनिवार्य व्यादेश के साथ वादी गण और इस्लाम के सभी अनुयायियों को इबादत का अधिकार था, 1935 में एक वाद संस्थित किया गया। 18 वादी गणों में से एक खुद मस्जिद थी– स्थल और इमारत। प्रिवी कौंसिल ने इस तर्क का आंकलन किया कि मस्जिद और समीपस्थ संपत्ति विधिक व्यक्ति हैं। इस तर्क को खारिज करते हुए न्यायमूर्ति जॉर्ज रैनकिन ने धारित किया :

> "इस तर्क में कि किसी मस्जिद की भूमि और भवन संपत्ति बिल्कुल भी नहीं हैं क्योंकि वे एक विधिक व्यक्ति हैं, कई सारी गलत अवधारणाओं का समावेश हो जाता है। यह कई ऐसे निर्णयों के साथ पूरी तरह से असंगत है, जिसके तहत एक पुजारी या मुतवल्ली को एक अतिचारक के निष्कासन द्वारा वक्फ के प्रयोजनों के लिए भूमि और इमारतों को पुनर्प्राप्त करने के लिए किसी वाद को बरकरार रखने की अनुमति दी गई है... कि मुस्लिमों के इबादत के लिए समर्पित किसी इमारत की विधिक स्थिति और हिन्दू धर्म के वैक्तिक देवता के बीच कोई अनुमानित सादृश्य होना...यह माननीय न्यायाधीशों के लिए आश्चर्य का विषय है... भारत में प्रक्रिया आवश्यक रूप से हिंदू धर्म के बहुलवादी और अन्य विशेषताओं का ध्यान रखती है और आवश्यक रूप से हिंदू विधि के कुछ सिद्धांतों को मान्यता देती है, जैसे कि **एक मूर्ति संपत्ति की स्वामी हो सकती है**...
>
> किसी मस्जिद को "विधिक व्यक्ति" की मान्यता देने वाला निर्णय पंजाब तक ही सीमित प्रतीत होता हैं: 153 पीआर 1884; शंकर दास बनाम सईद अहमद (1884) 153 पीआर 1884 59 पीआर 1914; मौला बक्स बनाम हफीजुद्दीन (1926) 13 एआईआर लाह 372 एआईआर 1926 लाह 372. 6. उन मामलों में से किसी में भी मस्जिद वाद में एक पक्ष नहीं थी, और शायद आखिरी मामले को छोड़कर अन्य किसी में भी निर्णय के लिए मस्जिद को काल्पनिक व्यक्तित्व प्रदान नहीं किया गया है। **लेकिन ये मामले मस्जिद संस्थान को एक काल्पनिक व्यक्ति के**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रूप में मान्यता का समर्थन करते हैं–स्पष्टतः अमूर्तता के मानवीयकरण का। जैसा कि वर्तमान मामले में विद्वत मुख्य न्यायाधीश ने इंगित किया है, यह किसी इमारत को व्यक्ति का दर्जा देकर उसे उसके अचल संपत्ति के रूप में चरित्र से रहित करने से अलग है।"

(प्रभाव वर्धित)

197. प्रिवी कौंसिल ने पाया कि यदि मस्जिद को न्यायिक व्यक्ति का दर्जा दे दिया जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि परिसीमन उस पर लागू नहीं होगा और यह कि यह संपत्ति नहीं है बल्कि संपत्ति का स्वामी है। प्रिवी कौंर्सिल द्वारा अपनाई गई तक प्रणाली को यह बात रेखांकित करती है कि अचल संपत्ति को विधिक व्यक्ति का दर्जा दिए जाने से संपत्ति अचल संपत्ति के रूप में अपने चरित्र को खो देगी। अचल संपत्ति अपने प्रकृति के कारण ही इस पर विरोधी मालिकाना दावे की अनुमति प्रदान करती है। अचल संपत्ति को विभाजित किया जा सकता है। हालांकि भूमि को ही न्यायिक व्यक्ति की मान्यता देने से यह आवश्यक गुण खो सकता है। जहां पर कायिक संपत्ति जैसे की मूर्ति के मामले में विधिक व्यक्तित्व की मान्यता दी गई इससे वह बृहद उद्देश्य पूरा हुआ जिसके लिए विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया गया था अर्थात दाता द्वारा तय किए गए पवित्र उद्देश्य की पूर्ति और सुरक्षा और श्रद्धालुओं के लाभदाई हितों का संरक्षण। हालांकि अचल संपत्ति को विधिक व्यक्ति का दर्जा दिया जाने से ऐसे परिणाम निकलते हैं जिनका उस सीमित उद्देश्य से कोई संबंध नहीं है जिसके लिए विधिक व्यक्ति का दर्जा दिया जाता है। यह उस अचल संपत्ति को अन्य सभी अचल संपत्तियों के प्रकार से अलग कर देता है जिसे विधिक व्यक्ति का दर्जा दिया जाता है । इससे यह दावा निकलता है कि ऐसी विधि व्यवस्था जो दूसरे ('सामान्य अचल संपत्ति') पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लागू होती है वह उस श्रेणी की अचल संपत्ति पर लागू नहीं होगी जिसे विधिक व्यक्ति का दर्जा प्राप्त है । यदि यह तर्क स्वीकृत कर लिया जाए तो प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत और सीमांकन विधिक व्यक्ति के रूप में भूमि लागू नहीं होगा जो "कब्जा" किए जाने योग्य नहीं है। धर्मदाय के संबंध में विधिक व्यक्ति का दर्जा दिया जाना समर्पित संपत्ति की विधिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए था न कि संपत्ति को विधि की पहुंच से बाहर कर इसे विधिक अभेद्यता प्रदान करने के लिए। किसी भूमि को विधिक व्यक्ति का दर्जा देने से अचल संपत्ति के रूप में इसके विशेषता में मौलिक बदलाव आ जाता है , इसके गंभीर निहितार्थ हैं जिससे न्यायालय को रक्षा करनी चाहिए। न ही यह धारणा बनाना वैध है कि किसी विशेष अचल संपत्ति को विधिक दर्जा मिलना चाहिए या नहीं इसका निर्धारण न्यायालय मामला दर मामला आधार पर करेगा। प्रयोग के किसी वस्तुनिष्ठ मानक के अभाव में, ऐसे निर्धारण की प्रक्रिया अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ हो जाएगी और न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावोत्पादकता से हीन कर देगी।

198. विचाराधीन भूमि को 1989 तक हिंदू समुदाय के लोगों सहित वर्तमान विवाद के लिए सभी पक्षों द्वारा अचल संपत्ति माना गया है। विवादित संपत्ति पर मुकदमेबाजी 1885 से शुरू हुई, और किसी भी बिंदु पर, 1989 में वाद 5 आने से पहले यह दलील नहीं दी गई थी कि विचाराधीन भूमि विधिक व्यक्ति है। जिन कारणों को ऊपर उल्लिखित किया गया है, उनके अलावा, अदालत के पास अब मात्र 1989 में वाद 5 में वादीगण द्वारा दी गई नई दलील के आधार पर संपत्ति को अलग मानने का विकल्प नहीं होगा।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पारंपरिक ढांचे में स्वामित्व का दावा

199. वर्तमान मामले के तथ्य पूजा स्थल तक श्रद्धालुओं की पहुंच का प्रश्न उठाते हैं और यह प्रश्न उठाते हैं कि भूमि पर स्वामित्व किसका है। पहला कृतिम विधिक व्यक्ति बनाए बिना कई तरीकों से न्यायालय द्वारा संरक्षित हो सकता है। कुप्रबंधन से संरक्षण सीधे इस दायरे में पड़ता है कि सेवादार की मान्यता किसे दी जाए और इस पर वर्तमान निर्णय के अन्य हिस्सों में विचार किया गया है। सामान्यतः न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के अंतर्गत आवेदन दिए जाने पर ऐसे मामलों पर विचार करने में सक्षम होता है। स्वामित्व के प्रश्न पर न्याय निर्णयन अचल संपत्ति के बारे में प्रयोज्य मौजूदा विधिक व्यवस्था का प्रयोग करके किया जा सकता है। इसमें आवश्यकता या सुविधा का कोई कारण नहीं है जिसके कारण न्यायालय को वाद 5 में वादी गण द्वारा दिए गए नए तर्क को स्वीकार कर विवादित भूमि को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा देना चाहिए।

200. विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना एक विधिक नवाचार है जिसका प्रयोग उन स्थितियों में होता है जब तात्कालिक मौजूदा विधि में कुछ कमियां होती हैं या ऐसे दर्जे से न्याय निर्णयन की सुविधा बढ़ती है। वर्तमान समय में मौजूदा विधि श्रद्धालुओं के हितों के संरक्षण के लिए पूरी सक्षम है और भूमि को विधिक व्यक्ति के रूप में मान्यता दिए बिना कुप्रशासन से उनके हितों की सुरक्षा करने में सक्षम है। जहां विधि श्रद्धालुओं के हितों की सुरक्षा करने में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर्याप्त रूप से सक्षम हो और विधिक व्यक्ति का दर्जा दिए बिना धार्मिक स्थलों के उत्तरदाई प्रबंधन में सक्षम हो, विधिक कल्पना की राह पर चलना आवश्यक नहीं है जिसके अनिच्छित परिणाम हो सकते हैं। अतः आस्था और विश्वास के तर्क में कोई मेरिट नहीं है और दूसरे वादी के लिए आस्था और विश्वास का संरक्षण ही विधिक दर्जा आवश्यक बना सकते हैं। इसके विपरीत इस तर्क को न मानने में काफी खतरा है। किसी धार्मिक वर्ग द्वारा यह तर्क दिया जा सकता है कि श्रद्धालुओं के आस्था और विश्वास के अनुसार कोई विशेष भूमि खंड देवता का जन्म स्थान, विवाह स्थल या वह स्थान है जहां पर माननीय अवतार का स्वर्गारोहण हुआ। देवता के माननीय अवतार से संबद्ध बहुत सारी घटनाओं से कई अधिभौतिक संपत्ति जोड़ी जा सकती है जिसका उपासकों के आस्था और विश्वास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। ऐसे में संपत्ति को विधिक व्यक्ति का दर्जा देने के आधार के लिए न्यायालय विश्वास के महत्व का मूल्यांकन करने की रेखा कहां खींचता है? वस्तुनिष्ठ मानदण्ड की अनुपस्थिति में, ऐसा प्रयास व्यक्तिपरक हो जाएगा। वाद में वादीगण के तर्क को मानने का परिणाम भूमि पर ऐसे सभी दावों को विधिक व्यक्ति का दर्जा देने में हो सकता है। ऐसा दर्जा उस आस्था के बाहर के वास्तविक वादी गणों के विरूद्ध हो सकता है जिनका वही विस्वास नही होने से उनका स्वामित्व खत्म हो सकता है। आगे, अचल सम्पत्ति को ऐसा विधिक दर्जा दिया जाना श्रद्धालुओं की आस्था और विस्वास के आधार पर होगा जो कि मूल रूप से व्यक्तिनिष्ठ चीज है और जिस पर इस न्यायालय द्वारा प्रश्नचिन्ह नहीं उठाया जा सकता।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

201. जिस उद्देश्य के लिए विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाता है, उसे एक ऐसी हानिकर युक्ति में नहीं बदला जा सकता जो धार्मिक आस्था और विश्वास के आधार पर संपत्ति पर सभी प्रतिस्पर्धी मालिकाना दावों को समाप्त करने के साथ–साथ संपत्ति को अचल संपत्ति की आवश्यक विशेषताओं से रहित करने की अनुमति देता हो। यदि वाद 5 में वादी गण की ओर से दिया गया तर्क स्वीकार कर लिया जाता है, तो इसकी परिणति विधि की ऐसी स्थिति में होती है जो जहां 'पूर्ण स्वत्व' के दावे को केवल श्रद्धालुओं की आस्था और विस्वास के आधार पर बरकरार रखा जा सकता है। कायिक संपत्ति को विधिक दर्जा देना संपत्ति को न केवल प्रतिस्पर्धी स्वत्व के दावों से प्रतिरक्षा करेगा, बल्कि ऐसी अनेक विधियों को, जो दीवानी वादों, जैसे सीमा, स्वामित्व, कब्जे और विभाजन, के सार्थक न्याय निर्णयन के लिए आवश्यक हैं, पूरी तरह से निरर्थक बना देगा। वाद 5 में वादी गण की ओर से दिया गया तर्क अधिक से अधिक इस दावे को बनाए रखेगा कि विशेष स्थान श्रद्धालुओं के लिए धार्मिक महत्व का स्थान है। हालांकि भूमि को ही विधिक व्यक्तित्व का दर्जा देकर इसे विधिक मालिकाना दावों को बनाए रखने या भूमि पर दूसरों के मालिकाना या स्वत्व आधारित दावों से भूमि की प्रतिरक्षा करने के लिए विस्तारित नहीं किया जा सकता है।

संवैधानिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता

202. मामले के इस पहलू पर, जिसका अभिप्रायपूर्ण महत्व है, अंतिम अवलोकन किया जाना चाहिए। वाद 5 में वादी गणों की ओर से दिये गये तर्क

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का अस्वीकरण पंथनिरपेक्षता के लिए हमारी संवैधानिक प्रतिबद्धता के मूल को छूती है। पूजापद्धति जिसके आधार पर किसी मालिकाना दावे को कायम रखा जा सकता है वह किसी विशेष धर्म से संबंध योग्य है। धार्मिक विन्यासों से निःसृत मूर्तियों को विधिक व्यक्तित्व का दर्जा दिया जाना एक ऐसा विधिक विकास है जो केवल हिंदू समुदाय की प्रथा पर लागू होता है। *परिक्रमा* करना एक ऐसी पूजा–पद्धति है जो अधिकतर हिन्दू धर्म तक सीमित है। इस तथ्य को अलग करते हुए कि वाद 5 में वादी गण द्वारा दिया गया तर्क हिंदू धार्मिक विन्यासों पर लागू विधि का एक नवीन विकास है, यह एक महत्वपूर्ण मामला है जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है।

203. धार्मिक विविधता के लिए निस्संदेह विविध पूजा पद्धतियों और धार्मिक समारोहों के विविध तरीकों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। हालाँकि, एक धर्म के विशिष्ट पूजा पद्धति के कारण दीवानी संपत्ति के न्याय निर्णयन में एक धर्म के पक्षकार पर दूसरे धर्म के पक्षकार को पूर्ण स्वत्व दिया जाना हमारे संविधान के तहत नहीं टिक सकता। यह ऐसी विधि प्रस्तुत करेगा, जो किसी पक्ष को किसी वाद विशेष के गुणावगुण के आधार पर नहीं बल्कि उस धर्म के ढ़ांचे या गठन के आधार पर जिससे वे संबंधित हैं, उसके या उसकी कानूनी दावे के संबंध में लाभ प्रदान करने वाला अंतिम निष्पक्ष मध्यस्थ होना चाहिए। यदि वाद 5 में वादी गण की ओर से दिये गये तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो एक धर्म की पूजा पद्धित को ही विवादित संपत्ति पर सभी प्रतिस्पर्धी मालिकाना दावों को खत्म करने की शक्ति मिल जाएगी।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

204. यह सत्य है कि एक व्यक्ति और जिसे वह दैवीय मानता है के बीच संबंध आंतरिक होता है। यह एक व्यक्तिगत क्षेत्र के दायरे में निहित होता है जिसमें किसी अन्य व्यक्ति को घुसपैठ नहीं करनी चाहिए। यही कारण है कि संविधान सभी नागरिकों की धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचारित करने की स्वतंत्रता की समान रूप से रक्षा करता है। प्रायः मानवीय दशाओं को पूजा में सान्त्वना मिलती है। लेकिन पूजा को एक सीधे सूत्र में सीमित नहीं किया जा सकता है। भारतीय समाज के सामाजिक ताने–बाने में धर्म की गहरी पैठ के कारण ही धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार को निरपेक्ष नहीं बनाया गया था। इस न्यायालय के न्यायशास्त्र में धार्मिक से पंथनिरपेक्ष का सीमांकन करने का प्रयास किया गया है। यदि संवैधानिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को बरकरार रखा जाना है, तो निजी संपत्ति पर दीवानी दावों का न्यायनिर्णयन धर्मनिरपेक्ष के दायरे में रहना चाहिए। चार दशक पूर्व, संविधान में संशोधन किया गया और इसके पंथनिरपेक्ष स्वरूप का एक विशिष्ट संदर्भ उद्देशिका में शामिल किया गया। इसके मूल में, इसने उस बात को दोहराया जिसका संविधान ने सदैव सम्मान किया और स्वीकार किया : सभी धर्मों की समानता। पंथनिरपेक्षता हर किसी के द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता के प्रयोग से बेखबर समय की रेत खोई रिट नहीं हो सकती।

205. उपरोक्त सभी कारणों की वजह से ही विधि ने आज तक अचल संपत्ति का विधिक व्यक्तित्व का दर्जा स्वीकार नहीं किया है। धर्म ने हृदय एवं मस्तिष्क को प्रभावित किया है। न्यायालय ऐसी स्थिति को नहीं अपना सकता जो न्यायिक विलगाव और साथ ही सम्पूर्ण विधिक व्यवस्था पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रधानता प्रदान करने के आधार के रूप में एक ही धर्म के आस्था और विश्वास को प्रधानता देती है। शहीद गंज से अयोध्या तक, हमारे जैसे देश में, जहां धार्मिक समुदायों द्वारा संपत्ति पर विरोधी दावे अपरिहार्य हैं , हमारे न्यायालय स्वत्व के प्रश्न को, जो धर्म से बाहर सुदृढ़ रूप से पंथनिरपेक्ष दायरे में आता है, इस प्रश्न में नहीं बदल सकते कि किस समुदाय की आस्था मजबूत है।

उपरोक्त उल्लिखित सभी कारकों पर विचार कर, यह धारित किया जाता है कि वाद 5 में दूसरा वादी – 'श्रीराम जन्मभूमि स्थान' विधिक व्यक्ति नहीं है।

K. वाद का विश्लेषण

206. गोपाल सिंह विशारद द्वारा दायर किया गया वाद 1 अनिवार्य रूप से एक उपासक द्वारा जन्मभूमि में भगवान राम की पूजा करने के अपने अधिकार के प्रवर्तन के लिए एक वाद है। निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वाद 3 जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार को सौंपने के लिए है। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा दायर वाद 4 कब्जे के लिए डिक्री और इस उद्घोषणा के लिए है कि बाबरी मस्जिद और आसपास के कब्रिस्तान सहित सम्पूर्ण विवादित स्थल एक सार्वजनिक मस्जिद है। वाद 5 भगवान राम और जन्मस्थान (दोनों के विधिक व्यक्ति होने का दावा किया गया है) के देवता द्वारा तीसरे वादी के रूप में एक मित्र के माध्यम से वर्तमान इमारत के ध्वंस के बाद नये मंदिर के निर्माण में किसी हस्तक्षेप के विरूद्ध व्यादेश और इस घोषणा के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए दायर किया गया है कि वाद के संलग्नक 1, 2 और 3 को मिलाकर पूरा परिसर राम जन्मभूमि है।

निर्णय अब मुकदमों में दावों का विश्लेषण और न्यायनिर्णयन की ओर अग्रसर होता है।

L. वाद 1: गोपाल सिंह विशारद (मृतक) द्वारा राजेन्द्र सिंह बनाम जहूर अहमद व अन्य

L.1 दलीलें

207. 16 जनवरी, 1950 को, फैजाबाद में दीवानी न्यायाधीश के समक्ष गोपाल सिंह विशारद द्वारा, स्वयं को हिन्दू भक्त बताते हुए, एक वाद संस्थित किया गया। वे अयोध्या के निवासी हैं और 'सनातन धर्म' के अनुयायी हैं। उनकी शिकायत यह थी कि उन्हें सरकार के अधिकारियों द्वारा पूजा के लिए ढांचे के अंदरूनी आँगन में प्रवेश करने से रोका जा रहा था। वादी का दावा है कि वह भगवान राम की पूजा करने का हकदार है। निम्नलिखित अनुतोष मांगा गया:

(i) "धर्म और रीति के अनुसार" जन्मभूमि मंदिर में बिना बाधा के भगवान राम की पूजा और दर्शन करने के उसके अधिकार की उद्घोषणा; और

(ii) प्रतिवादी गण 1 से 10 को देवता की मूर्तियां और अन्य मूर्तियों को उस स्थान, जहां वे रखी गयी हैं, से हटाने से रोकने; मूर्ति की ओर जाने वाले

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रास्ते को बंद करने; या दर्शन और पूजन में व्यवधान करने से रोकने वाला स्थायी और सतत व्यादेश।

वाद 1 का वाद हेतुक 14 जनवरी 1950 को उत्पन्न होना अभिकथित है, जिस दिन ऐसा आरोप है कि सरकार के कर्मचारियों ने वादी को गैरकानूनी रूप से "स्थान के अन्दर जाने से" और पूजा के उसके अधिकार का प्रयोग करने से रोका। यह आरोप लगाया गया है कि "राज्य" ने मुस्लिम निवासियों प्रतिनिधित्व द्वारा प्रतिवादी सं. 1 से 5 के इशारे पर यह कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप हिंदुओं को उनके "पूजा के वैध अधिकार" से वंचित किया जाना अभिकथित है। वादी को आशंका थी भगवान राम की मूर्ति सहित मूर्तियों को हटा दिया जाएगा। इन कार्यवाहियों का "वादी के अधिकार और स्वत्व पर एक सीधा हमला " गठित करना और विधि के विरुद्ध एक "दमनात्मक कार्य" होना अभिकथित है।

208. वाद में निहित आरोपों से इनकार करते हुए, मुस्लिम प्रतिवादी सं. 1 से 5 ने अपने लिखित बयान में कहा कि:

(i) वह संपत्ति, जिसके संबंध में वाद संस्थित किया गया है, जन्मभूमि नहीं बल्कि बाबर द्वारा बनाई गई मस्जिद है। मस्जिद का निर्माण मुगलों द्वारा उपमहाद्वीप की विजय के पश्चात 1528 में बाबर के निर्देश मीर बाकी द्वारा कराया गया था जो उसकी सेना का कमांडर था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) मस्जिद को मुसलमानों के लिए वक्फ के रूप में समर्पित किया गया था, जिन्हें वहां नमाज का अधिकार है। बाबर ने मस्जिद के रखरखाव और खर्च के लिए वार्षिक अनुदान निर्धारित किया, जिसे अवध के नवाब और ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी रखा और बढ़ाया गया;

(iii) 1885 का वाद केवल रामचबूतरा के संबंध में महंत रघुबर दास द्वारा स्वामित्व की घोषणा के लिए एक मुकदमा था और इसलिए, यह दावा कि पूरी इमारत जन्मस्थान का प्रतिनिधित्व करती है, निराधार है। 24 दिसंबर 1885 को मुकदमे को खारिज किये जाने के परिणामस्वरूप "चबूतरा के संबंध में मामले पर विचार नहीं किया गया";

(iv) वक्फ अधिनियम, 1936 के अधीन नियुक्त वक्फ के मुख्य आयुक्त ने मस्जिद का सुन्नी वक्फ होना धारित किया है;

(v) मस्जिद का कब्जा सदैव से मुसलमानों के पास रहा है। यह स्थिति 1528 में शुरू हुई और उसके बाद जारी रही , और फलस्वरूप, " ... .प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से उस संपत्ति का कब्जा मुस्लिमों के पास है" ;

(vi) बाबरी मस्जिद में 16 दिसंबर, 1949 तक नमाज़ अदा की गई थी, जिस बिंदु तक केन्द्रीय गुंबद के नीचे कोई मूर्ति नहीं थी। यदि किसी व्यक्ति ने दुर्भावना से मस्जिद के अंदर कोई मूर्ति रखा दिया, तो "मस्जिद का अपकर्ष स्पष्ट है और आरोपी व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए" ;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) पूजा या दर्शन करने के लिए मस्जिद में प्रवेश करने का वादी या किसी अन्य व्यक्ति का कोई प्रयास विधि का उल्लंघन करेगा। द.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी; और

(viii) बाबरी मस्जिद के जन्मस्थान होने का दावा करने वाला वर्तमान मुकदमा आधारहीन है, क्योंकि काफी लंबे समय से, भगवान राम और अन्य की मूर्तियों वाला एक और मंदिर, जो भगवान राम का वास्तविक जन्मस्थान है।

प्रतिवादी सं. 6 राज्य द्वारा एक लिखित बयान यह कथन करते हुए दायर किया गया था, कि:

(i) वाद की संपत्ति जिसे बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है, मुस्लिमों द्वारा लंबे समय तक इबादत के प्रयोजन के लिए मस्जिद के रूप में प्रयोग की गई है और उसका उपयोग भगवान राम के मंदिर के रूप में नहीं हुआ है;

(ii) सार्वजनिक शांति व्यवस्था से छेड़छाड़ करते हुए 22 दिसंबर, 1949 की रात को भगवान राम की मूर्तियों को मस्जिद के भीतर चोरी छिपे रख दिया गया। 23 दिसंबर 1949 को, नगर मजिस्ट्रेट ने दंप्रसं 1898 की धारा 144 के तहत एक आदेश पारित किया, जिसके बाद अपर नगर मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के तहत विवादित संपत्ति को कुर्क करने का उसी दिन एक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आदेश पारित किया गया। ये आदेश सार्वजनिक शांति बनाए रखने के लिए पारित किए गए थे; और

(iii) नगर मजिस्ट्रेट ने श्री प्रिय दत्त राम, अध्यक्ष नगरपालिका बोर्ड, फैजाबाद सह अयोध्या को संपत्ति का प्राप्त कर्ता नियुक्त किया।

प्रतिवादी सं. 8, अतिरिक्त नगर मजिस्ट्रेट और प्रतिवादी सं. 9, पुलिस अधीक्षक द्वारा ऐसे ही लिखित बयान दर्ज कराये गए।

प्रतिवादी सं. 10, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने यह अभिकथित करते हुए अपना लिखित बयान दर्ज कराया:

(i) विवादित इमारत भगवान राम का जन्मस्थान नहीं है और इसमें कभी कोई मूर्ति स्थापित नहीं की गई थी ;

(ii) वाद की संपत्ति बाबरी मस्जिद के नाम से जानी जाने वाली मस्जिद थी जो सम्राट बाबर के शासन के दौरान बनवाई गई थी जिसने उसके रख–रखाव और व्यय के लिए वार्षिक अनुदान निर्धारित किया था और जिसे अवध के नवाब और ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी रखा गया और बढ़ाया गया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) 22–23 दिसंबर, 1949 की रात को मूर्तियां चोरी–छिपे रूप से मस्जिद में लाई गईं;

(iv) 1528 से 29 दिसंबर, 1949, जब इसे धारा 145 के तहत कुर्क किया गया, तक मस्जिद का कब्जा केवल मुसलमानों के पास ही था। उन्होंने 23 दिसंबर, 1949 तक नियमित रूप से इबादत की थी और 16 दिसंबर, 1949 तक शुक्रवार की नमाज अदा की।

(v) मस्जिद की प्रकृति वक्फ के रूप में थी और उसका स्वामित्व ईश्वर में निहित था;

(vi) वादी मस्जिद को भगवान राम की जन्मभूमि के रूप में दावा करने से विबंधित था क्योंकि महंत रघुबर दास (जिन्हें वादी का पूर्ववर्ती बताया गया है) द्वारा 1885 में संस्थित वाद में दावा मस्जिद के बाहर सत्रह फीट गुणा इक्कीस फीट आकार का रामचबूतरा तक ही सीमित था।

(vii) वहाँ पर पहले से ही एक राम जन्मस्थान मंदिर मौजूद था, जो बाबरी मस्जिद से थोड़ी दूरी पर है।

वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 1 से 5 के लिखित बयान के प्रत्युत्तर में यह दावा किया गया कि 1934 से विवादित स्थल का मस्जिद के रूप में कभी उपयोग नहीं किया गया। आगे कहा गया कि यह एक "सामान्य जानकारी" थी कि हिंदू के पास सतत कब्जा था जिसके आधार पर प्रतिवादियों का दावा समाप्त हो गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

L.2 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

209. 1. क्या वाद की संपत्ति श्री राम चंद्र जी का जन्म भूमि स्थल है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। बाबर के समय में मस्जिद का निर्माण होने तक विवादित परिसर को भगवान राम का जन्म–स्थान नहीं माना जाता था या ऐसा विश्वास नहीं किया जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – जन्म स्थान, जैसा कि हिन्दुओं द्वारा माना और पूजा जाता है, आंतरिक अहाते में विवादित ढ़ाचे के केंद्रीय गुंबद से आच्छादित स्थान है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के विरुद्ध निर्णीत।

2. क्या वाद के स्थान पर भगवान राम चंद्र जी की कोई मूर्ति है या उनकी चरण पादुका स्थित है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान –** मस्जिद के अंदर मंच पर पहली बार मूर्तियां 22–23 दिसंबर, 1949 की रात में रखी गयीं थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– आंतरिक अहाते के अंदर विवादित ढ़ाचे के केन्द्रीय गुम्बद के नीचे मूर्तियां 22–23 दिसंबर, 1949 की रात को रखी गयीं थीं किंतु इसके पूर्व वे बाहरी आंगन में विद्यमान थीं।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के विरुद्ध निर्णीत।

3. क्या वादी को वाद के स्थान पर स्थित 'चरण पादुका' और मूर्तियों की पूजा करने का कोई अधिकार है?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – केवल यही कहा जा सकता है कि रामचबूतरा मस्जिद के निर्माण के बाद टेफेन्थैलर की यात्रा से पहले अस्तित्व में आया। दोनों पक्षों का संयुक्त कब्जा था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी को सुरक्षा और रखरखाव जैसे युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन पूजा करने का अधिकार है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

4. क्या वादी को वाद के स्थल का दर्शन करने का अधिकार है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – केवल यही कहा जा सकता है कि रामचबूतरा मस्जिद के निर्माण के बाद टेफेन्थैलर की यात्रा से पहले अस्तित्व में आया। दोनों पक्षों का संयुक्त कब्जा था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– वादी को सुरक्षा और रखरखाव जैसे युक्तियुक्त निर्बंधनों के अधीन पूजा करने का अधिकार है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

5 (क). क्या वाद की संपत्ति उप–न्यायाधीश (फैजाबाद रघुबर दास महंत बनाम भारत के राज्य सचिव और अन्य) की अदालत में मूल वाद सं. 61/280 वर्ष 1885 में शामिल थी?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – 1885 के वाद में कुछ भी तय नहीं किया गया था और पूर्व न्याय का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल –** नकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – संपत्ति नजूल भूमि के रूप में विद्यमान थी।

5 (ख). क्या यह वादी के विरुद्ध निर्णीत था?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –1885 का वाद महंत भास्कर दास के विरूद्ध निर्णीत था और उन्हें कोई अनुतोष नहीं दिया गया था।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – संपत्ति नजूल भूमि के रूप में विद्यमान थी।

5 (ग). क्या वह वाद आमतौर पर हिंदुओं की जानकारी में था और क्या सभी हिन्दूओं की इसमें रूचि थी?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तरित। यह साबित करने के लिए कोई भी दस्तावेजी सामग्री नहीं है कि वाद महंत रघुबर दास की प्रतिनिधिक क्षमता में दायर किया गया था।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा –** प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

5 (घ). क्या वह निर्णय वर्तमान वाद को पूर्वन्याय के सिद्धान्त या किसी अन्य तरीके से बाधिक करता है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

6. **क्या वाद की संपत्ति बाबर द्वारा 1528 ईस्वी में बनाई गई मस्जिद है जिसे आमतौर पर बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है?**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – बाबर द्वारा या उसके आदेश के तहत एक मस्जिद बनाई गयी। यह प्रश्न कि क्या इसे वास्तव में मीर बाकी ने बनवाया था किसी और ने, महत्वपूर्ण नहीं है। मुसलमानों ने 1934 तक नियमित नमाज अदा की जिसके बाद 22 दिसंबर 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की गई। यह सतत कब्जे और उपयोग के लिए पर्याप्त है। मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल –** वादी गण ढ़ाचे का निर्माण 1528 ई. में बाबर द्वारा हुआ सिद्ध करने में असफल रहे।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के विरुद्ध निर्णीत।

7. क्या वाद की संपत्ति का कब्जा 1528 ई. से लगातार, खुले तौर पर और प्रतिवादी गण और आम तौर पर हिन्दुओं की जानकारी में, मुसलमानों के पास था? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान –** स्वामित्व कब्जे से आता है और दोनों पक्षों का विवादित परिसरों पर संयुक्त कब्जा था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पक्ष में निर्णीत।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

8. क्या वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक द्वारा बाधित है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – बाधित नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – बाधित नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादियों के पक्ष में निर्णीत।

9. क्या वाद मुस्लिम वक्फ अधिनियम (उ.प्र. अधिनियम 13,वर्ष 1936) की धारा 5 (3) के प्रावधानों द्वारा बाधित है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पक्ष में निर्णीत।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

9 (क). क्या उक्त अधिनियम की आमतौर पर हिंदुओं और विशेषकर वर्तमान वाद के वादी के पूजा के अधिकार के संबंध में कोई प्रयोज्यता नहीं है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल –** आमतौर पर हिन्दू पक्षकारों के पक्ष में।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

9 (ख). क्या उक्त अधिनियम के अधीन पैरा 15 में निर्दिष्ट कार्यवाही दुरभिसंधिपूर्ण थीं? यदि हां तो इसका प्रभाव?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।

  न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – वादी के विरुद्ध निर्णीत।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी के पक्ष में निर्णीत।

9 (ग). क्या उ.प्र. अधिनियम 13, वर्ष 1936 के उक्त प्रावधान वादी के अधिवक्ता के 9. 3. 62 दिनांकित और पेपर सं. 454–ए पर अंकित बयान में दिये गये कारणों से विधि विरुद्ध है?

- न्यायमूर्ति एस यू खान – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल – नकारात्मक में उत्तरित।

10. क्या वर्तमान वाद समय बाधित है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

11 (क). क्या सि.प्र.सं. की धारा 91 के प्रावधान वर्तमान वाद पर लागू होते हैं? यदि हां, क्या वाद महाधिवक्ता द्वारा लिखित अनुमति न होने के कारण त्रुटिपूर्ण है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – नकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वादी के पक्ष में निर्णीत।

11 (ख). क्या इस वाद में अधिकार सि.प्र.सं. की धारा 91 के प्रावधानों से मुक्त वादी द्वारा बनाए गये हैं? यदि नहीं, तो इसका प्रभाव।

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – सकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वादी के पक्ष में निर्णीत।

12. क्या वाद सि.प्र.सं. के आदेश 1, नियम 8 के तहत कार्य और नोटिस न होने के कारण त्रुटिपूर्ण है? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वादी के पक्ष में उत्तरित।

13. क्या 50 का वाद 2 (श्री गोपाल सिंह विशारद बनाम जहूर अहमद) सि.प्र.सं. की धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में त्रुटिपूर्ण है?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – बाधित होने के कारण खारिज नहीं किया गया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – प्रतिवादी गण के पक्ष में निर्णीत।

14. क्या 50 का वाद सं. 25 परम हंस राम चन्द्र बनाम जहूर अहमद सि.प्र.सं. की धारा 80 के अधीन विधिमान्य नोटिस के अभाव में त्रुटिपूर्ण है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वाद वापस लेने के कारण निरस्त होने के बाद विषय अर्थहीन हो गया।

15. क्या प्रतिवादी गण के असंयोजन के अभाव में वाद त्रुटिपूर्ण है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– नकारात्मक में और वादी के पक्ष में उत्तरित।

16. क्या प्रतिवादी गण या उनमें से कोई सि.प्र.सं. की धारा 35–ए के तहत विशेष लागत के हकदार हैं?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – अधिवक्ता ने इस विषय को नहीं उठाया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वादी अनुतोष का हकदार नहीं है और आसान लागत के साथ खारिज किया गया।

17. किस अनुतोष, यदि कोई, के लिए वादी हकदार है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्ष से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – वादी के पूजा अधिकार पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि विवादित स्थल में उस भूमि का हिस्सा शामिल है जिसे भगवान राम का जन्म स्थान माना जाता है। इस हद तक वादी उन निर्बंधनों के अधीन उद्घोषणा का हकदार है जो पूजा के स्थान की सुरक्षा, संरक्षा और रखरखाव के लिए आवश्यक हो।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादी अनुतोष का हकदार नहीं है और मुकदमा आसान लागत के साथ खारिज कर दिया जाता है।

L.3 विश्लेषण

210. वाद 1 में वादी की ओर से प्रस्तुत विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार ने, दं.प्र.सं. की धारा 145 के अधीन, मजिस्ट्रेट के 29 दिसंबर, 1949 दिनांकित आदेश को संदर्भित किया जिसके द्वारा विवादित परिसरों को कुर्क किया गया और एक प्राप्तकर्ता नियुक्त किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि 8–16 फरवरी 1950 के बीच सि.प्र.सं. के आदेश

XIX, नियम 1 के तहत कुछ मुसलमानों द्वारा चौदह हलफनामे दायर किए गए थे, जिसमें कहा गया था:

(i) वह स्थान जहां बाबरी मस्जिद स्थित थी, भगवान राम का जन्म–स्थान है। बाबरी मस्जिद भगवान राम के जन्म–स्थान को तोड़कर बनाई गयी थी;
(ii) ब्रिटिश शासन के पश्चात् मुसलमान उस मस्जिद में केवल शुक्रवार की नमाज पढ़ते थे;
(iii) मस्जिद बन जाने के पश्चात्, हिन्दुओं ने अपना कब्जा नहीं छोड़ा और वहां पूजा करना जारी रखा।
(iv) हिन्दू और मुस्लिम दोनों ने विवादित स्थल पर पूजा करना जारी रखा;

(v) 1934 के दंगों के बाद, मुसलमानों ने डर के मारे मस्जिद जाना बंद कर दिया और तब से हिन्दुओं ने मस्जिद में मुख्य स्थान पर कब्जा कर लिया ; और

(vi) मस्जिद का कब्जा हिन्दुओं को सौंपने में कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि उस स्थान पर नमाज़ पढ़ना शरीयत के विरुद्ध है।

211. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने शपथपत्रों को पूरी तरह अविश्वसनीय मानते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि:

> "3020. इस तथ्य को साबित करने के लिए उपरोक्त दस्तावेजों पर कोई विवाद नहीं है कि मजिस्ट्रेट के सामने इन्हें दायर किया गया था

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और सिटी मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 145 दं.प्र.सं. कार्यवाही का हिस्सा थे, लेकिन हमारे विचार में सामग्री पर विश्वास करने के लिए, यह आवश्यक था कि दस्तावेजों के लेखकों को प्रस्तुत किया जाय और अन्य पक्षों को, जिनके हितों के विरुद्ध दस्तावेजों में प्रकथन किये गये हैं, जिरह का अवसर दिया जाय। उक्त दस्तावेजों के किसी भी लेखक को प्रस्तुत नहीं किया गया और वे व्यक्तिगत रूप से कार्यवाही का हिस्सा भी नहीं हैं। हमें उक्त दस्तावेजों की सामग्री की शुद्धता का परीक्षण करने का कोई लाभ नहीं है। हमारे विचार में, उक्त दस्तावेजों की सामग्री को साबित करने के लिए किसी भी व्यक्ति की उपलब्धता की अनुपस्थिति में उन पर पर भरोसा नहीं किया जा सकता और इसलिए, उपरोक्त दस्तावेजों से किसी के पक्ष में या किसी भी पक्षकार के विरुद्ध कुछ भी नहीं निकलता है।"

न्यायमूर्ति एस यू खान न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा की गई टिप्पणियों से सहमत थे। हालांकि, न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने हलफनामों को स्वीकार्य माना है और धारित किया कि:

"...उन व्यक्तियों के हलफनामें जिनके तहत या माध्यम से वादी दावा कर रहे हैं मजिस्ट्रेट द्वारा अधिकार प्राप्त अधिकारी के समक्ष बने थे और स्वीकार्य साक्ष्य हैं।..."

212. श्री रंजीत कुमार ने निम्नलिखित तर्क दिया है:

(i) 1885 के वाद का वर्तमान वाद पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि पहले वाले वाद में मांगा गया अनुतोष किसी ऐसे स्थान पर मंदिर बनाने के लिए था जो मस्जिद के बाहर चबूतरा तक सीमित था। लेकिन वर्तमान वाद "धर्म और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रीति–रिवाजों के अनुसार" जन्ममभूमि मंदिर में भगवान राम के दर्शन की पूजा के अधिकार के संबंध में है;

(ii) 3 मार्च, 1951 को, विचारण न्यायालय ने वाद 1 के 19 जनवरी, 1950 दिनांकित अंतरिम आदेश की अभिपुष्टि की जिसके द्वारा व्यादेश को मूर्तियों को विवादित स्थल से हटाने से रोकने और पूजा में बाधा डालने से रोकने संबंधी संशोधन किया गया था। विचारण न्यायाधीश ने अयोध्या के कुछ मुस्लिम निवासियों के हलफनामों का उल्लेख किया और कहा कि कम से कम 1936 से "मुस्लिमों ने न तो इस स्थान का मस्जिद के रूप में प्रयोग किया है और न ही वहां इबादत की है" और "संदर्भित शपथपत्र वादी का पक्ष पोषण करते हैं।" उपरोक्त आदेश की पुष्टि 26 अप्रैल 1955 को अपील में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने की थी, हालांकि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी किया कि निर्णय के आरक्षित होने के बाद हलफनामों को अभिलिखित करना सही नहीं है;
(iii) धारा 145 की कार्यवाहियों के संबंध में आपत्तियां आमंत्रित करने वाले सार्वजनिक नोटिस के प्रकाशन के बावजूद किसी भी मुस्लिम प्रतिवादी ने कोई प्रतिकूल बयान नही दर्ज कराया;

(iv) इन हलफनामों का पुष्टिकारक मूल्य है: जब 21 फरवरी, 1950 को वाद 1 में प्रतिवादी सं. 1 से 5 ने अपने लिखित बयान दर्ज किए, तो धारा 145 की कार्यवाई में दाखिल हलफनामों की जानकारी होने के बावजूद उन्होंने मुसलमानों द्वारा लिए गए रुख पर आपत्ति नहीं जताई।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) उच्च न्यायालय से पहले, शपथपत्र वर्तमान वाद में अभिलेख में शामिल थे और सम्यक् प्रदर्शित थे। वे प्रासंगिक ऐतिहासिक तथ्यों का हिस्सा हैं और उन्हें एकमुश्त खारिज नहीं किया जा सकता है;

(vi) प्रतिवादी सं. 1 से 5 ने यह प्रार्थना करते हुए आवेदन दायर किया कि वाद 1 को आदेश। नियम 8 के अधीन प्रतिनिधि वाद माना जाए जिसका वादी द्वारा विरोध किया गया था। 27 अक्तूबर दिनांकित एक आदेश द्वारा सिविल जज ने आवेदन खारिज कर दिया;

(vii) इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान,1858 से कब्जा दिखाने के लिए सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा जिन प्रदर्शों का अवलंब लिया गया है, उनमें विवादित स्थल को "जन्मस्थान मस्जिद" या "मस्जिद जन्मस्थान" के रूप में संदर्भित किया गया है, जो यह संकेत देता है कि इस स्थान को हमेशा जन्मस्थान या भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप में संदर्भित किया गया;

(viii) "दर्शन" या पूजा के प्रयोजनों के लिए मंदिर में प्रवेश का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो संस्था की प्रकृति से ही प्रवाहित होता है (**नर हरि शास्त्री बनाम श्री बद्रीनाथ मंदिर समिति**[122])। पूजा में किसी देवता या देवताओं के दर्शन के उद्देश्य से मंदिर में उपस्थिति शामिल है (**शास्त्री यज्ञपुरुषदजी बनाम मुल्दास भूदरदास वैश्य**[123])। यदि आम जनता ने हमेशा सार्वजनिक पूजा और भक्ति के लिए मंदिर का उपयोग उसी तरह किया है

---

122 1952 SCR 849
123 (1966) 3 SCR 242

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जैसे वे अन्य मंदिरों में करते हैं, तो यह सार्वजनिक मंदिर के आत्यंतिक अस्तित्व के पक्ष में (**बाला शंकर महा शंकर भट्टजी बनाम चैरिटी कमिश्नर, गुजरात राज्य**[124]) एक मजबूत परिस्थिति है।

विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार, ने 30 जुलाई 1953 दिनांकित मजिस्ट्रेट के आदेश का उल्लेख किया, जिसके द्वारा धारा 145 के तहत कार्यवाही में फाइल को 3 मार्च 1951 को दी गई अस्थायी व्यादेश के मद्देनजर रिकॉर्ड में भेज दिया गया था। मजिस्ट्रेट ने नोट किया कि धारा 145 के तहत मामला 'अनावश्यक' रूप से लंबित है और इस उम्मीद में तारीखें दी जा रहीं हैं कि दीवानी वाद का निस्तारण हो जाएगा या अस्थायी निषेधाज्ञा रद्द कर दी जाएगी। तथापि, मजिस्ट्रेट ने यह उल्लेख किया कि दीवानी न्यायालय का निष्कर्ष आपराधिक न्यायालय के लिए बाध्यकारी है और धारा 145 के अधीन पृथक कार्यवाही आरंभ करने का कोई प्रयोजन नहीं है। श्री रंजीत कुमार ने इस न्यायालय का ध्यान गोपाल सिंह विशारद द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष फाइल किए गए 22 जुलाई 1954 दिनांकित आवेदन पर आकर्षित करते हुए धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में सभी फाइलों को परिरक्षित करने और सिविल न्यायालय के निर्णय की परिणति तक उन्हें निराकृत न करने का अनुरोध किया था।

213. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने प्रत्युत्तर में निम्नलिखित तर्क दिये है:

---

124 1995 Supp (1) SCC 485

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) प्रतिवादी सं. 1 से 5 तक के लिखित कथन में सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड सम्मिलित नहीं है;

(ii) मस्जिद का निर्माण बाबर ने अपने सेनापति मीर बाकी के माध्यम से किया था और वह वैध वक्फ के रूप में समर्पित थी। मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1936 के तहत मुख्य आयुक्त वक्फ ने यह अभिनिर्धारित किया कि मस्जिद एक सुन्नी वक्फ है;

(iii) मुसलमानों का सन् 1528 से मस्जिद पर कब्जा रहा है और 400 वर्ष से अधिक समय से कब्जे में रहना, विवादित संपत्ति पर उनके प्रतिकूल कब्जे के अधिकार की पुष्टि थी;

(iv) वाद 1 मुख्य रूप से राज्य प्राधिकारियों के विरुद्ध दायर किया गया है क्योंकि मुख्य शिकायत वादी को विवादित परिसर के भीतर पूजा करने से निवारित करने वाले प्राधिकारियों के विरुद्ध थी;

(v) वाद वादी के व्यक्तिगत अधिकार अर्थात् विवादित ढांचे के भीतर पूजा करने का अधिकार लागू करने के लिए दायर किया गया था और इस प्रकार यह अधिकार उसकी मृत्यु पर स्वतः समाप्त हो जाता है;

(vi) अयोध्या के मुस्लिम व्यक्तियों द्वारा धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में दिये गए चौदह हलफनामे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं हैं। हलफनामों की कोई प्रासंगिकता नहीं है क्योंकि

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हलफनामों के लेखकों की प्रतिपरीक्षा नहीं की गई है और चूंकि वे व्यक्तिगत रूप से किसी भी वाद के पक्षकार नहीं हैं, इसलिए उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इन हलफनामों को अविश्वसनीय पाया है;

(vii) इस बात का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि क्या वादी ने पहले विवादित ढांचे के भीतर कोई पूजा की थी और उसने केन्द्रीय गुंबद के नीचे भगवान राम के जन्म के सही स्थान का उल्लेख नहीं किया है; और

(viii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा जिन प्रदर्शों का अवलंब लिया गया है उनसे स्पष्ट पता चलता है कि दिए गए प्रदर्शनों से स्पष्ट पता चलता है कि हिंदू पक्षकारों की पहुंच रामचबूतरा और सीता रसोई तक सीमित बाहरी आंगन तक थी। आंतरिक आंगन में अतिचार के सभी प्रयास विफल कर दिये गए और अधिकारियों ने उन लोगों को बेदखल करने का कर दिया जिन्होंने आंतरिक आंगन में प्रवेश करने का प्रयास किया।

214. जिन व्यक्तियों पर धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में हलफनामा दायर करने का अभिकथन है उनमें से किसी की भी उच्च न्यायालय के समक्ष सिविल विचारण के दौरान साक्ष्य में परीक्षा नहीं की गई। हलफनामे पर किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए बयान की विश्वसनीयता को केवल तभी स्वीकार किया जा सकता है जब गवाह साक्ष्य में उपस्थित किया जाय। लेकिन, वर्तमान मामले में, धारा 145 के तहत कार्यवाही में मजिस्ट्रेट के समक्ष

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हलफनामों को प्रस्तुत करने वाले मुस्लिम निवासियों को गवाह के रूप में उद्धृत या प्रस्तुत नहीं किया गया। हलफनामों में दिए गए बयानों को चुनौती देने के लिए विपक्षी के पास किसी भी अवसर के अभाव में, हलफनामों की विषयवस्तु पर कोई अवलंब नही लिया जा सकता।

215. मुकदमे के विचाराधीन रहते मूल वादी गोपाल सिंह विशारद का निधन हो गया और 22 फरवरी, 1986 दिनांकित न्यायालय के आदेश के अनुसरण में वाद उनके पुत्र राजेन्द्र सिंह विशारद द्वारा स्थानापन्न हो गया। यह तर्क दिया गया था कि मूल वादी ने विवादित संपत्ति पर पूजा करने के अपने निजी अधिकार के प्रवर्तन हेतु वाद संस्थित किया था और उनकी मृत्यु पर, इस तरह का अधिकार समाप्त हो गया और मुकदमा समाप्त हो गया। यह निर्धारित करने के लिए कि मूल वादी द्वारा दावा किया गया अधिकार एक निजी अधिकार था या अन्य उपासकों के साथ आम तौर पर दावा किया गया एक वृहद सार्वजनिक अधिकार था, वाद 1 में दी गई दलीलों का उल्लेख करना आवश्यक है। वाद 1 का पैराग्राफ 3 इस प्रकार है:

> ... प्रतिवादी सं. 6 ने वादी को उस स्थान के अंदर जाने से रोका जहां श्री रामचंद्र जी और अन्य की मूर्तियां रखी गई हैं और यह पता चला था कि प्रतिवादी सं. 1 से 5 और उनके अन्य साथियों की आधारहीन और झूठी सनक के प्रभाव में, **प्रतिवादी सं 7 से 9 ने हिंदू जनता को पूजा करने और दर्शन करने के अपने वैध अधिकार से वंचित कर दिया** और प्रतिवादी सं. 1 से 5 आदि के अनुचित आग्रह के कारण, **प्रतिवादी सं. 6 घोषित करता है कि हिंदू जनता को भविष्य में भी उसी तरह से उसके उपरोक्त अधिकारों से वंचित किया जाएगा** और उपरोक्त अनुचित कार्य के कारण,मूल वादी का मालिकाना अधिकार, जिसका उसने सदैव

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपयोग किया था, का उल्लंघन किया जा रहा है और उपरोक्त परिस्थितियों में, वर्तमान वादी के पास प्रतिवादी गण के प्रति उपर्युक्त धार्मिक अधिकार के प्रयोग में अवैध हस्तक्षेप की पूरी आशंका और भय है।"

(प्रभाव वर्धित)

प्रतिवादी सं. 6 उत्तर प्रदेश राज्य है प्रतिवादी सं. 7 से 9 क्रमशः उपायुक्त, अपर सिटी मजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक, फैजाबाद हैं। दलीलों से यह संकेत मिलता है दावा किया गया अधिकार व्यक्तिगत अधिकार नहीं था बल्कि विवादित संपत्ति पर अन्य हिन्दू श्रद्धालुओं के हित में पूजा करने के एक सामान्य अधिकार के लिए था। मांगा गया अधिकार विवादित संपत्ति पर अनुचित हस्तक्षेप के बिना पूजा करने का "हिन्दू जनता" का अधिकार था। 22 फरवरी 1986 दिनांकित एक आदेश द्वारा न्यायालय ने मूल वादी के बेटे राजेंद्र सिंह विशारद को वाद 1 में पहले वादी के रूप में प्रतिस्थापित करने की अनुमति दी। राजेंद्र सिंह विशारद भी *'सनातन धर्म'* के अनुयायी हैं और विवादित स्थल पर पूजा करते थे। वृहद 'हिन्दू जनता' की ओर से मांगा गया अधिकार मूल वादी की मृत्यु पर समाप्त नहीं होता और इसका प्रयोग उसके बेटे द्वारा किया जा सकता है जो स्वंय एक उपासक है।

216. वाद 1 के शेष विवादित विषय वाद 5 में अभिकथित विषयों से संबद्ध हैं। वाद 5 में मांगे गये अनुतोष का वाद 1 में यथा याचित वादी के पूजा के अधिकार पर सीधा प्रभाव पड़ेगा। तदनुसार, हम वाद 1 में दिये गये तर्कों पर वाद 5 पर चर्चा करते समय विचार करेगें।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

M. वाद 3: निर्मोही अखाड़ा

M. 1 तर्क

217. निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि जन्मस्थान, जिसे आमतौर पर जन्मभूमि के रूप में जाना जाता है, जो भगवान राम का जन्म–स्थान है, "उसकी है और सदैव उसकी रही है" और वह उसका प्रबंधन करता रहा है और प्रशासी महंत और सरबराहकार से चढ़ावा प्राप्त करता रहा है। प्राप्तकर्ता के अलावा, दूसरे से पांचवां प्रतिवादी गण उत्तर प्रदेश राज्य और उसके अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत आधिकारिक प्रत्यर्थीगण हैं। किया जाता है। वाद में एक प्रकथन है कि मंदिर "हमेशा से निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहा है" और कम से कम 1934 से केवल हिंदुओं को इसमें प्रवेश करने और पूजा करने की अनुमति दी गई है। दूसरे शब्दों में, निर्मोही अखाड़ा विवादित ढ़ाचे की मस्जिद के रूप में स्थिति से इनकार करता है। वाद संस्थित करने का आधार नगर मजिस्ट्रेट द्वारा दंप्रसं 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू करना है। कार्यवाहियों पर विधिक कारण से रहित होने और छठें और आठवें प्रतिवादी गण द्वारा प्रस्तुत मुस्लिम पक्षकारों के "गलत आग्रह" के तहत होने का आरोप है। परिणामस्वरूप, निर्मोहियों का आरोप है कि उन्हें "उक्त मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से" गलत तरीके से वंचित किया गया है और हालांकि वे धारा 145 के तहत कार्यवाही के समापन की प्रतीक्षा कर रहे थे, कार्यवाही प्रतिवादियों की मिलीभगत से लंबे समय से चली आ रही है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुस्लिम पक्षकारों को इसलिए आरोपित किया गया है क्योंकि उन पर आरोप है कि उनकी रुचि यह सुनिश्चित करने में है कि मंदिर का प्रभार और प्रबंधन निर्मोही अखाड़ा को न सौंपा जाय। वाद का वाद हेतुक 5 जनवरी 1950 को उत्पन्न हुआ कहा गया है जब प्राप्तकर्ता द्वारा निर्मोही अखाड़ा से मंदिर का प्रबंधन और प्रभार अवैध रूप से ले लिया जाना आरोपित है। 6 दिसंबर 1992 को हुई घटना के बाद (जिसे निर्मोही "कुछ बदमाशों" द्वारा मंदिर के संपत्ति का विध्वंस कहते है), वाद में संशोधन किया गया था। संशोधित वाद 19 मार्च 1949 को निर्मोही अखाड़ा द्वारा निष्पादित ट्रस्ट विलेख को संदर्भित करता है, जिससे इसका अस्तित्व लिखित रूप में आ गया। अखाड़ा ने अनेक मंदिरों और संपत्तियों के स्वामित्व का दावा किया है, जो इसमें निहित हैं। वाद में मांगा गया अनुतोष प्राप्तकर्ता को उक्त जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से हटाने और इसे वादी को देने को लेकर है।

वाद में निहित प्रकथन और साथ ही निर्मोही अखाड़ा द्वारा मांगा गया अनुतोष संकेत करते हैं कि दावा स्वामित्व पर आधारित है, जिसे मंदिर का प्रभार और प्रबंधन माना गया है। उस हैसियत से,निर्मोहियों ने अभिकथन किया है कि जन्मभूमि मंदिर का कब्जा उनके पास रहा है और भक्तों द्वारा चढ़ाई गई भेंट उन्हें मिली है। वाद में उन मंदिरों का एक संदर्भ है जो निर्मोही अखाड़ा के स्वामित्व और प्रबंधन में हैं। अंतत: अनुतोष का दावा प्राप्तकर्ता को मंदिर का प्रबंधन और प्रभार इसे सौंपने का निर्देश है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

218. लिखित बयान में, जो मुस्लिम पक्षकारों (प्रतिवादी सं. 6 से 8) द्वारा दायर किया गया था, लिया गया अभिवचन 1885 के वाद में था जिसे महंत रघुबर दास द्वारा संस्थित किया गया था, अनुतोष मस्जिद के बाहर चबूतरा तक सीमित था और उस मस्जिद के संबंध में कोई आपत्ति नहीं की गयी थी जो साइट प्लान में दर्शाई गयी थी।

अपने प्रत्युत्तर में, निर्मोही अखाड़ा ने महंत रघुबर दास द्वारा दायर वाद के बारे में अनभिज्ञता प्रकट की। अखाड़े का दावा है कि कार्यवाही के परिणामस्वरूप इसे गलत तरीके से मंदिर के प्रबंधन के अधिकार और प्रभार से वंचित कर दिया गया है। हालांकि वाद में यह प्रतीत होता है कि मुकदमे में दावा आंतरिक आंगन के संबंध में था, दसवें प्रतिवादी के लिखित बयान के प्रत्यत्तर में निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर जवाब में यह कहा गया है कि बाहरी घेरा उसके कब्जे और स्वामित्व में था और 1982 तक इसके द्वारा प्रबंधित जब यह उस संबंध में एक नियमित वाद 39 वर्ष 1982 द्वारा प्राप्तकर्ता के कब्जे में आ गया।

219. वाद 3 में निर्मोही अखाड़ा की दलीलों में निहित प्रकथन को वाद 5 के बचाव की प्रकृति के साथ पढ़ा जाना चाहिए। वाद 5 भगवान राम और जन्मस्थान की ओर से एक वाद मित्र द्वारा दायर किया गया है। निर्मोही अखाड़ा ने वाद 5 में अपने लिखित बयान में इस आधार पर वाद की पोषणीयता का विरोध किया गया है कि जन्मस्थान एक विधिक व्यक्ति नहीं है और वाद मित्र को देवता और जन्मस्थान की ओर से वाद संस्थित कराने का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कोई अधिकार या प्राधिकार नहीं है। निर्मोही अखाड़ा ने स्वंय को वाद 5 से यह कह कर अलग कर लिया कि भगवान राम की मूर्ति "राम लला विराजमान" के रूप में नहीं जानी जाती और जन्मस्थान केवल एक स्थान है न कि एक विधिक व्यक्ति।

निर्मोही अखाड़ा ने अपने लिखित कथन में दावा किया है कि यह "विवादित मंदिर में रखे भगवान श्री राम के सेवादार है" और मंदिर के नियंत्रण, अधीक्षण और मरम्मत और यहां तक कि आवश्यक होने पर मंदिर के पुनर्निर्माण का भी अधिकार "मात्र" अखाड़ा के पास है। इसका दावा है कि सेवादार और प्रबंधक की हैसियत से "मंदिर निर्मोही अखाड़ा का है" और वाद 5 में वादी के पास मुकदमा करने के लिए "कोई वास्तविक स्वत्व नहीं है"। यह आग्रह किया गया है कि वाद 5 मंदिर के प्रबंधन का निर्मोही अखाड़ा के अधिकारों पर अतिक्रमण करता है। निर्मोही अखाड़ा का आग्रह है कि पूरा परिसर इसका है और वाद 5 के वादी को निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध उद्घोषणा का कोई अधिकार नहीं है। अतिरिक्त लिखित बयान में, यह दावा किया गया है कि कुर्क किये जाने तक जब वाद 239 वर्ष 1982 में प्राप्तकर्ता नियुक्त किया गया, बाहरी हिस्सा निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार में था।

M.2 वाद 3 और वाद 5 में विरोध

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

220. वाद 3 में निर्मोही अखाड़ा के तर्कों और वाद 5 में प्रतिवादी के रूप में विश्लेषण से निम्नलिखित स्थिति उभरती है:

(i) निर्मोही अखाड़ा का दावा राम जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के लिए है।

(ii) मांगा गया अनुतोष प्राप्तकर्ता द्वारा मंदिर का प्रबंधन और प्रभार इसे सौंपने के लिए है;

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) के संदर्भ में, निर्मोही अखाड़ा ने दावा किया है कि मंदिर का कब्जा इसके पास था;

(iv) दावा किये गये अधिकार से तब वंचित हुआ जब प्राप्तकर्ता ने 5 जनवरी, 1950 को प्रबंधन और प्रभार ले लिया;

(v) निर्मोही अखाड़ा का दावा एक सेवादार की हैसियत और मंदिर के प्रबंधक के रूप में है;

(vi) निर्मोही अखाड़ा ने वाद 5 की पोषणीयता का इस आधार पर विरोध किया है है कि एक सेवादार के रूप में, केवल वही भगवान राम का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) मुकदमा करने का निर्मोही अखाड़ा का हक किसी तीसरे पक्ष के अपवर्जन का है और इसलिए, वाद 5, जो एक वाद मित्र के माध्यम से संस्थित किया गया है, का पोषणीय न होना ख्यापित है; और

(viii) राम जन्मस्थान का विधिक व्यक्तित्व नकार दिया गया है और इसलिए यह (निर्मोही अखाड़ा के अनुसार) वाद 5 में दावे को आगे बढ़ाने का हकदार नहीं होगा।

सुनवाई के दौरान निवेदित किये गये तर्क और कथन दोनों के आधार पर, वाद 3 और वाद 5 में वादी के दावों और अधिकारों के बीच स्पष्ट विरोध सामने आया है।

221. वाद 5 में वादी गण की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरन ने कहा है कि वाद 3 परिसीमा बाध्य है, यह एक ऐसा तर्क है जो वाद 4 में वादी की ओर से डॉ धवन द्वारा भी दिया गया है। दूसरी ओर, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि डॉ. धवन का कथन है कि, तथ्य और साक्ष्य के रूप में, निर्मोही अखाड़ा जन्मभूमि में भगवान राम की मूर्तियों के संबंध में सेवादारी अधिकारों का दावा करने का हकदार है। हालांकि उनका कहना है कि वाद 3 सीमा बाध्य है और इसलिए, उनके मुकदमे में कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता था या नहीं दिया जाना चाहिए था। इसलिए, इस न्यायालय के समक्ष तर्कों से यह सामने आया है कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) वाद 4 और वाद 5 के वादी गणों ने वाद 3 को सीमा बाध्य होने के आधार पर चुनौती दी है;

(ii) वाद 5 के वादी गण भगवान राम की मूर्ति का सेवादार होने संबंधी वाद 3 के वादी के दावे का विरोध करते हैं;

(iii) वाद 4 का वादी इस कैविएट के अधीन कि वाद सीमा बाध्य है, वाद 3 के वादी का सेवादार होने संबंधी स्वत्व स्वीकार करता है।

222. इस न्यायालय द्वारा वाद 3 में वादी की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वत अधिवक्ता श्री एस के जैन को एक प्रश्न संबोधित किया गया था, कि क्या सेवादार के लिए देवता के दावे के विरुद्ध स्वत्व या स्वामित्व के दावे का विकल्प है। प्रत्युत्तर में, श्री जैन ने कहा कि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के लिए निर्मोही अखाड़ा का दावा सेवादार के रूप में है किसी और रूप में नहीं। इसलिए, हालांकि इसमें 'स्वामित्व होना' और 'संबंधित होना' शब्द का प्रयोग हुआ है, सेवादार से अधिक या उससे ज्यादा पूर्ण स्वामित्व का दावा करने का उनका इरादा नहीं है। श्री जैन की कथन के इस पहलू की शीघ्र ही परिसीमा के विषय के सन्दर्भ में जांच की जाएगी। हालाँकि, इस स्तर पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि, सुनवाई के दौरान, श्री जैन ने निम्नलिखित शब्दों में वाद 5 की पोषणीयता पर निर्मोही अखाड़ा के रुख संबंधी एक बयान दिया:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"1. निर्मोही अखाड़ा वाद सं. OOS सं. 5 वर्ष 1989 की पोषणीयता के मुद्दे पर जोर नहीं देगा जो देवताओं–वादी सं. 1 और 2 की ओर से उनके वाद मित्र वादी सं. 3 के माध्यम से सि.प्र.सं. के नियम 1 आदेश 32 के अन्तर्गत दायर किया गया है बशर्ते अन्य हिंदू पक्षकार अर्थात OOS सं. 1 वर्ष 1989 का वादी और OOS सं. 5 वर्ष 1989 का वादी सं. 3 प्रश्नगत देवताओं के संबंध में निर्मोही अखाड़ा के सेवादारी अधिकारों और निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद OOS सं. 3 वर्ष 1989 पर सवाल न उठाएं या जोर न दें।

2. यह कहा गया है कि वादी– निर्मोही अखाड़ा वाद OOS सं. 3 वर्ष 1989 में देवताओं की पक्षकारों के रूप में अनुपस्थिति में भीस्वतंत्र रूप से वाद को चला सकता है क्योंकि देवताओं की पहचान सेवादार–निर्मोही अखाड़ा की पहचान में निहित है। "सेवादार के रूप में" निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वाद देवताओं की ओर से देवताओं द्वारा दायर वाद है।

3. यह कहा गया है कि, "प्राप्तकर्ता से प्रभार और प्रबंधन लेने के लिए" निर्मोही अखाड़ा द्वारा मांगे गये अनुतोष को देवताओं के हित के "विरुद्ध" अनुतोष के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है, जिसके लिए यह कहा जा सकता है कि उनका प्रतिनिधित्व एक निष्पक्ष वाद मित्र के माध्यम से प्रतिवादी के रूप में होना चाहिए।"

दूसरे शब्दों में, निर्मोही अखाड़ा का रुख यह है कि सेवादार के रूप में वही देवता के हित का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है, जो कि इसने वाद 3 में किया गया है। इसके अलावा, सेवादार की ओर से किसी कुप्रबंधन के आरोप की अनुपस्थिति में, वाद मित्र द्वारा देवता के नाम पर कोई वाद संस्थित नहीं किया जा सकता, जैसा कि वाद 5 में किया गया है। वाद 5 की पोषणीयता का विश्लेषण करने पर इस पहलू पर अधिक विस्तार से विचार किया जाएगा। इस स्तर पर, हमें डॉ. धवन द्वारा निर्मोही अखाड़ा के सेवादारी दावे को स्वीकार किये जाने के निहितार्थों पर भी ध्यान देना चाहिए। रियायत ऐसे ही

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं हो सकती। दावा उसी सन्दर्भ में किया जा सकता है जिसमें ऐसे देवता के अस्तित्व को स्वीकार करती हो जिसका सेवादार प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए, डॉ. धवन से एक विशिष्ट प्रश्न पूछा गया था कि क्या, परिसीमा के विषय से अलग, उनकी ओर से की गई रियायत का राम जन्मस्थान पर देवता की उपस्थिति के बारे में आवश्यक रूप से विधिक निहितार्थ होंगे। यहां डॉ. धवन की प्रतिक्रिया ध्यातव्य है जिनके कथनानुसार, रामचबूतरा पर देवता की उपस्थिति के लिए, हिंदू भक्तों को केवल पूजा का सुखाधिकार और उस उद्देश्य के लिए अहाते तक पहुंच पाना प्रकल्पित था।

M.3 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

223. आगे विश्लेषण करने से पहले, इस स्तर पर,उन विषयों और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को सूचीबद्ध करना आवश्यक है जो वाद 3 में विरचित किए गए थे।

1. क्या वाद 3 के वादपत्र के पैरा 3 में यथा आरोपित जन्मभूमि मंदिर है जिसमें मूर्तियां रखी गयी हैं ?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मूर्तियों को मंच पर पहली बार 22/23 दिसंबर 1949 की रात में मस्जिद के निर्मित हिस्से के अंदर रखा जाना कहा गया है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–विवाद के परिसरों को उस रीति से मंदिर नहीं माना जा सकता जैसा वाद 3 में वादी द्वारा दावा किया गया है। इसलिए, विषय 1 का नकारात्मक उत्तर दिया गया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि ढ़ाचे के अंदर निर्मोही अखाड़ा से संबंधित कोई मंदिर था जिसमें प्राचीन काल से मूर्तियां रखी हैं।

2. **क्या वाद की संपत्ति वाद 3 के वादी की है?**

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–उस संपत्ति में, जो वाद 3 में दावे की विषयवस्तु है, आंतरिक के परिसर शामिल हैं। स्वत्व स्थापित करने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है और न ही प्रतिकूल कब्जा स्थापित करने के लिए कोई सबूत है।
- **जस्टिस डी वी शर्मा** ने वादी के विरुद्ध अवधारित किया।

3. **क्या वादी गण ने 12 वर्ष से अधिक समय तक प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व प्राप्त किया है?**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–1855 से पहले की अवधि के लिए, प्रतिकूल कब्जे का प्रश्न अभिनिर्णीत करने की आवश्यकता नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** ने वादी के विरुद्ध अवधारित किया।
- **जस्टिस डी वी शर्मा** ने वादी के विरुद्ध अवधारित किया।

4. **क्या वादी गण उक्त मंदिर का प्रबंधन और प्रभार पाने के हकदार हैं?**

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** ने वादी के विरुद्ध अवधारित किया। मूर्तियां केन्द्रीय गुंबद के नीचे 22/23 दिसंबर, 1949 की रात में रखी गयी थीं। इसे विवादित करने वाले वादी को केन्द्रीय गुम्बद के नीचे रखी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मूर्ति का सेवादार नहीं माना जा सकता क्योंकि आंतरिक अहाते में केन्द्रीय गुम्बद के नीचे रखी देवमूर्ति का उनके द्वारा देखभाल किये जाने का कोई साक्ष्य नहीं है।

- **जस्टिस डी वी शर्मा** ने वादी के विरुद्ध अवधारित किया।

5. क्या वाद की संपत्ति सम्राट बाबर द्वारा बनवाई गई मस्जिद है जिसे बाबरी मस्जिद कहा जाता है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– विवादित परिसर का निर्मित हिस्सा बाबर के द्वारा या उसके आदेश पर मस्जिद के रूप में बनवाया गया था। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि इसे मीर बाकी या किसी अन्य द्वारा बनवाया गया था। लेकिन प्रत्यक्ष साक्ष्य से यह सिद्ध नहीं है कि निर्मित भाग सहित विवादित परिसर बाबर का या उस व्यक्ति का था जिसने मस्जिद बनवाया। केवल उत्कीर्णनों के आधार पर यह धारित नहीं किया जा सकता कि इमारत बाबर के द्वारा या उसके आदेश पर बनबायी गयी थी या कि इसे 1528 में बनवाया गया था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–प्रतिवादी गण यह साबित करने में विफल रहे कि

  विवादित संपत्ति का निर्माण बाबर ने 1528 में कराया था।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–विवादित संपत्ति का निर्माण बाबर द्वारा कराया गया है।

6. **क्या कथित मस्जिद बादशाह बाबर द्वारा आमतौर पर मुसलमानों द्वारा इबादत के लिए समर्पित की गयी थी और सार्वजनिक वक्फ संपत्ति बनाई गयी थी?**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–यह धारित नहीं किया जा सकता कि मस्जिद किसी और की भूमि पर बनवाई गयी एक वैध मस्जिद नहीं थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–प्रत्यक्ष, परिस्थितिजन्य या अन्यथा साक्ष्य की अनुपस्थिति में, विषय सं. 6 साबित नहीं हुआ है और नकारात्मक में उत्तरित है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – विषय सं. 1 के साथ निर्णीत।

7 . क्या मुस्लिम वक्फ अधिनियम (1936 का अधिनियम सं. 13) के अधीन वाद की इस संपत्ति को सुन्नी वक्फ के रूप में घोषित करने की अधिसूचना जारी की गई है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वाद 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार।

7(ख). क्या उक्त अधिसूचना अंतिम और बाध्यकारी है? इसका प्रभाव।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वाद 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार।

8. **क्या वाद से पूर्व 12 वर्षों तक कब्जा न होने के कारण वादी गण के अधिकार समाप्त हो गए हैं?**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–पक्ष संयुक्त कब्जे का लाभ ले रहे हैं और इसलिए, प्रतिकूल कब्जे के मुद्दे का अभिनिर्धारण आवश्यक नहीं था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सूट 1959 में संस्थित किया गया था और यह नहीं कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती 12 वर्षों में, वादी के पास कभी भी आंतरिक आंगन का कब्जा नहीं था. वादी गण में से किसी ने भी यह स्थापित करने का दायित्व नहीं निभाया है कि वे विवाद की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संपत्ति के स्वामी थे और न ही प्रतिवादी गण ने यह स्थापित किया है कि वादी गण 12 वर्षों से कब्जाविहीन रहे और प्रतिवादी गण ने प्रतिकूल कब्जे की शर्तों को पूरा किया है। इस विषय का तदनुसार नकारात्मक में उत्तर दिया गया है।

- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादी के विरुद्ध उत्तरित और वाद 4 में निकाले गए निष्कर्षों के अनुसार।

9. क्या वाद समय के भीतर है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–वाद परिसीमा के भीतर है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 के तहत परिसीमा बाध्य है। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 47, 142 और 144 अप्रयोज्य थे।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वाद परिसीमा बाध्य है।

10(a). क्या वाद धारा 80 सी के तहत नोटिस के अभाव में अनुचित है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –वादी गण के पक्ष में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादी गण के पक्ष में उत्तरित।

10 (ख). क्या उपरोक्त अभिवाक विरोधी प्रतिवादी गण को उपलब्ध है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** ने–वादी गण के पक्ष में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादी गण के पक्ष में उत्तरित।

11. क्या वाद आवश्यक प्रतिवादी गण के असंयोजन के कारण अनुचित है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–हालांकि इस विषय पर विनिर्दिष्टया विचार नहीं किया गया है, वह न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों से सहमत हैं जो उनके स्वयं के निष्कर्षों से असंगत नहीं हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– बल न देने के कारण वादी गण के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वाद 4 में विषय 21 पर निष्कर्षों के संदर्भ में निर्णीत।

12. क्या प्रतिवादी गण सि.प्र.सं. की धारा 35 के तहत विशेष लागत के हकदार हैं?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –बल न देने के कारण वादी गण के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – नकारात्मक में उत्तरित।

13. वादी कौन सा अनुतोष,यदि कोई, पाने का हकदार है?

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–तीनों पक्षों में से प्रत्येक (मुस्लिम, हिंदू और निर्मोही अखाड़ा) संयुक्त स्वत्व की घोषणा और एक तिहाई हिस्से की सीमा तक कब्जा करने का हकदार है और उस हेतु एक प्रारंभिक डिक्री प्रदान की जाती है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वाद 3 का वादी किसी भी अनुतोष का हकदार नहीं है। इसके बावजूद, यह धारित किया गया है कि बाहरी अहाते का रामचबूतरा, सीता रसोई और भंडार बेहतर स्वत्व के दावे के अभाव में, निर्मोही अखाड़ा का हिस्सा घोषित किया जाता है। इसके अलावा, बाहरी अहाते का खुला क्षेत्र निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद 5 के वादी के साथ साझा किया जाएगा।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वाद को निरस्त किया जाता है और निर्मोही अखाड़ा कोई भी अनुतोष पाने का हकदार नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

14. क्या विरचित रूप में वाद पोषणीय नहीं है?

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**– विषय विनिर्दिष्ट रूप से निर्णीत नहीं। प्रकीर्ण निष्कर्ष– रूप से निर्णय नहीं लिया गया। विविध निष्कर्ष–वह अपने (न्यायमूर्ति एस. यू. खान के) निर्णय में इसके विपरीत किसी बात के अध्यधीन न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वाद अपोषणीय धारित। दं.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के तहत संपत्ति के कुर्क किये जाने पर,वादीगण मजिस्ट्रेट के सामने आपत्ति दर्ज कर सकते थे। वादी ने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की या स्वत्व के घोषणा की मांग नहीं की,जिसके अभाव में सिविल जज प्राप्तकर्ता द्वारा वादी को प्रभार सौंपने का निर्देश न दे पाता।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–यह विषय वादीगण के पक्ष में निर्णीत किया जाता है।

15. क्या वाद संपत्ति मूल्यवान है और न्यायालय फीस पर्याप्त संदत्त है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– बल न देने के कारण वादीगण के पक्ष में उत्तरित।

16. क्या उ.प्र. अधिनियम 13 वर्ष 1936 की धारा 83 के अन्तर्गत नोटिस के अभाव में वाद अनुचित है?

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक में उत्तरित।

17. क्या वादी निर्मोही अखाड़ा, बैरागियों के रामानंद संप्रदाय का एक पंचायती मठ है और इस तरह, अपने धार्मिक विश्वास और वाद के अनुसार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपने रीति रिवाज के हिसाब से एक धार्मिक अभिधान है? (माननीय उच्च न्यायालय के 23 फरवरी, 1996 दिनांकित आदेश द्वारा जोड़ा गया)

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** ने–वादीगण के पक्ष में उत्तरित।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगण के पक्ष में उत्तरित।

M. 4 वाद 3 में परिसीमा

224. वाद सं. 3, 17 दिसंबर, 1959 को संस्थित किया गया था। वर्ष 1908 का परिसीमा अधिनियम वाद के संस्थित होने की तिथि पर प्रवर्तन में था। परिसीमा अधिनियम की धारा 3 उपबंध करती है कि धारा 4 से 25 (समावेशी) में निहित प्रावधानों के अधीन, प्रथम अनुसूची द्वारा निर्धारित परिसीमा अवधि के बाद संस्थित प्रत्येक वाद, की गई अपील और दिया गया आवेदन खारिज कर दिया जाएगा, हालांकि परिसीमा को बचाव के रूप में नहीं रखा गया है। परिसीमा अधिनियम 1963 की धारा 31 (ख)[125] ऐसे वाद, अपील और आवेदनों को विधान के प्रयोग से मुक्त रखती है जो इसके प्रवर्तन की तिथि पर लंबित थे। परिणामस्वरूप, वाद 3 के उद्देश्य के लिए परिसीमा का विषय परिसीमा अधिनियम 1908 द्वारा शासित है।

2:1 के एक विभाजित फैसले से, उच्च न्यायालय ने धारित किया कि वाद 3 परिसीमा द्वारा बाध्य है, न्यायमूर्ति एस यू खान इस विषय पर असहमत होने वाले न्यायाधीश थे।

---

125 धारा 31. बाध्य या लंबित वाद इत्यादि के संबंध में उपबंध...

(b) ऐसे प्रारम्भ के पूर्व संस्थित या किए गए और ऐसे प्रारम्भ के समय लम्बित किसी वाद, अपील या आवेदन पर प्रभाव न डालेगी।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

225. सहायता के लिए परिसीमा अधिनियम, 1908 की अनुसूची के तीन अनुच्छेदों पर बल दिया गया है और विषय यह है कि उन अनुच्छेदों में से कौन सा लागू होगा। प्रासंगिक अनुच्छेद हैं– अनुच्छेद 47, 120 और 142 हैं। ये अनुच्छेद नीचे दी गई तालिका में दिये गए है

वाद का विवरण	**परिसीमा की अवधि**	**समय जहां से अवधि प्रारम्भ होती है**
47. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1998, या मामलातदार्स कोट्र्स एक्ट 1906 या ऐसे आदेश में शामिल संपत्ति को ऐसे व्यक्ति से लेने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति के द्वारा अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में किसी आदेश द्वारा बाध्य व्यक्ति के द्वारा ।	[तीन वर्ष]	वाद में अन्तिम आदेश की तिथि से
120. ऐसा वाद जिसके लिए इस अनुसूची में और कहीं अवधि नहीं दी गई है।	[छः वर्ष]	जब से मुकदमा करने का अधिकार मिलता है।
142. अचल संपत्ति के कब्जे के लिए जब संपत्ति पर कब्जा रखने वाला वादी बेदखल कर दिया गया हो या कब्जा बाधित हो गया हो।	[बारह वर्ष]	बेदखली या बाधित होने की तिथि से

प्रासंगिक तिथियां

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

226. इससे पहले कि हम परिसीमा के विषय पर आएं, इस विषय पर प्रभाव डालने वाली सुसंगत तिथियों को संक्षेप में दुहराना आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं :

(i) 29 दिसंबर, 1949 को अपर नगर मजिस्ट्रेट द्वारा दं.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के अंतर्गत प्रारंभिक आदेश पारित किया गया और कुर्की का आदेश करते समय, एक प्राप्तकर्ता नियुक्त किया गया ;

(ii) 5 जनवरी, 1950 को प्राप्तकर्ता ने प्रभार ग्रहण किया और कुर्क संपत्तियों की सूची बनाई;

(iii) 16 जनवरी, 1950 को गोपाल सिंह विशारद द्वारा इस उद्घोषणा की मांग करते हुए वाद 1 संस्थित किया गया कि वह मूर्ति के निकट मुख्य जन्मभूमि में पूजा और प्रार्थना करने का हकदार हैं। उसी तिथि को वाद में अन्तरिम व्यादेश दिया गया ;

(iv) 19 जनवरी, 1950 को, वाद 1 में अंतरिम व्यादेश को निम्नलिखित शब्दों में संशोधित किया गया था:

> "विरोधी पक्षों को एतद्द्वारा अस्थायी व्यादेश के माध्यम से विवादित स्थल से प्रश्नगत मूर्तियों को हटाने और पूजा आदि में हस्तक्षेप करने से निरुद्ध किया जाता है। 16. 01. 1950 दिनांकित आदेश तद्नुसार संशोधित किया जाता है।"

(v) 3 मार्च, 1951 को 16 जनवरी, 1950 दिनांकित अस्थायी व्यादेश, 19 जनवरी 1950 को यथा संशोधित, की अभिपुष्टि हुई;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) 30 जुलाई, 1953 को अपर नगर मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाहियों में निम्नलिखित आदेश पारित किया:

> "सिविल न्यायालय की प्राप्तियां आपराधिक न्यायालय के लिए बाध्यकारी होंगी। इस प्रकरण में दं.प्र.सं. की धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू करना और विशेष रूप से अस्थायी व्यादेश के रहते साक्ष्य अंकित करने का कोई महत्व नहीं है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि पक्षकारों के साक्ष्य अंकित करने के पश्चात इस न्यायालय की प्राप्तियां क्या हो सकती हैं। प्रशासनिक दृष्टिकोण से संपत्ति पहले से ही कुर्की प्रक्रिया में है और शांति का उल्लंघन नहीं हो सकता है।
> इसलिए, मैं आदेश देता हूं कि धारा 145 दं.प्र.सं. के तहत फाइल को अभिलेख विभाग को सौंपी जाए क्योंकि इसे व्यादेश की समाप्ति पर आगे कार्यवाही के लिए लिया जाता है/जाएगा।"

(vii) 31 जुलाई, 1954 को अपर नगर मजिस्ट्रेट ने निम्नलिखित निदेश जारी किए:

> "इस फाइल को अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि इस फ़ाइल का निस्तारण नहीं हुआ है। आप कैसे रिपोर्ट करते हैं कि इसे अलग किया जाएगा? "

(viii) 26 अप्रैल, 1955 को, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLIII, नियम 1 (r) के तहत 3 मार्च, 1951 दिनांकित आदेश के विरुद्ध अपील को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया ; और

(ix) 17 दिसंबर, 1959 को, मंदिर का प्रभार और प्रबंध सौंपने हेतु प्राप्तकर्ता के विरुद्ध डिक्री के लिए निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद 3 संस्थित किया गया।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उच्च न्यायालय के कारण

227. न्यायमूर्ति एस यू खान ने यह धारित करने के लिए कि वाद परिसीमा द्वारा बाध्य नहीं है, निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया :

(i) प्रथम, धारा 145 के अंतर्गत कार्यवाहियों में पारित अंतिम आदेश 30 जुलाई, 1953 को था (पदधारी की मृत्यु पर प्राप्तकर्ता को प्रतिस्थापित करने के लिए 1970 में एक आदेश के सिवाय). इस आदेश और मजिस्ट्रेट के 31 जुलाई 1954 दिनांकित पश्चातवर्ती आदेश से पता चलता था कि धारा 145 के तहत कार्यवाही को समाप्त या अंतिम रूप नहीं दिया गया था। अंतरिम व्यादेश प्रदान करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील खारिज किये जाने के बाद या किसी और तिथि पर मजिस्ट्रेट द्वारा अंतिम आदेश पारित किये जाने की स्थिति में, वाद दायर करने के लिए परिसीमा के उद्देश्य से नया प्रारम्भ बिन्दु मिल जाता।

(ii) यदि यह धारित भी किया जाता कि वाद 3 परिसीमा बाध्य है, तो विरोधी पक्षकारों के अधिकारों और हक का विनिश्चय वाद 1 में किया जाना चाहिए जो परिसीमा की अवधि के भीतर संस्थित किया गया था। वाद 1 में निर्मोही अखाड़ा के स्वत्व पर निर्णय दं.प्र.सं. की धारा 146 (1) के उद्देश्य के लिए पर्याप्त होगा।

(iii) 6 दिसंबर, 1992 को परिसर के निर्मित भाग का विध्वंस, संघ सरकार द्वारा परिसर और आस–पास के क्षेत्र का अर्जन और **डॉ एम इस्माइल**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

फारुकी बनाम भारत संघ[126] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने परिसीमा के लिए एक नया प्रारंभ बिन्दु प्रदान किया। यद्यपि कि सभी पक्षों के उपचार (वाद 1 में वादी को छोड़कर) परिसीमा बाध्य था तथापि उनके अधिकार विद्यमान थे। ढ़ाचे के विध्वंस ने विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम 1877 की धारा 42 के तहत ज्ञापक वाद के लिए नया वाद हेतुक प्रदान कर दिया।

(iv) मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के अधीन नियुक्त प्राप्तकर्ता कुर्की के पश्चात् संपत्ति को अनिश्चित काल तक धारित नहीं कर सकता है। इसलिए, एक उदार दृष्टिकोण रखना होगा, जिसके अभाव में अनिश्चितता पैदा हो जाएगी। जहां कुर्की के कारण, कब्जे के लिए वाद दायर नहीं किया जा सका, धारा 28 पक्षकारों के अधिकारों को समाप्त नहीं करेगी। इसके अलावा, परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 23 के तहत एक सतत अपकृत्य का सिद्धांत प्रयोज्य था और निर्मोही अखाड़ा को लगातार प्रभार और प्रबंधन के उसके अधिकार से वंचित किया जा रहा था; और

(v) किसी भी स्थिति में, यद्यपि कि वाद परिसीमा द्वारा बाध्य था तथापि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के नियम 2 (1) आदेश XIV द्वारा यथा अपेक्षित सभी विषय पर अधिघोषणा करने के लिए बाध्य था।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह धारित करने के लिए कि वाद 3 परिसीमा बाध्य था, निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया :

---

126 (1994) 6 SCC 360

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) वाद का वाद हेतु 5 जनवरी 1950 को उत्पन्न हुआ जब प्रापक ने आंतरिक अहाते का प्रभार ग्रहण किया;

(ii) वाद 3 आंतरिक अहाते के परिसर तक सीमित था। अपनी दलीलों में वादी गणों ने ना तो स्वत्व के घोषणा की मांग की थी न ही उन्होंने अवैध रूप से कब्जा बेदखल किए जाने का दावा किया है। दावा यह है कि नगर मजिस्ट्रेट ने अवैध रूप से मंदिर का प्रबंधन एवं प्रभार ले लिया है। नगर मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अंतर्गत एक वैधानिक आदेश पारित किया और कुर्की के आदेश के अनुसरण में आंतरिक अहाते का कब्जा प्रापक को दे दिया गया। धारा 145 के अंतर्गत कुर्की के आदेश में वास्तविक स्वामी को कब्जे के अधिकार से वंचित करना शामिल नहीं हो सकता। लेकिन प्रापक द्वारा वास्तविक स्वामी की ओर से संपत्ति धारित करना आक्षेपित है। यदि निर्मोही अखाड़ा की बेदखली न होती तो धारा 142 की कोई प्रयोज्यता न होती; और

(iii) अनुच्छेद 47 भी लागू नहीं होता। अतः परिसीमा के विषय पर न्याय निर्णयन अनुच्छेद 120 के सन्दर्भ में किया जाना था। वाद अनुच्छेद 120 में निर्दिष्ट छः साल की अवधि से परे संस्थित किया गया था और इसलिए परिसीमा द्वारा बाध्य था।

न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने कहा कि वाद 3 में परिसीमा निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए,अनुच्छेद 120 प्रयोज्य था। वाद 3, 17 दिसंबर 1959 को दायर किया गया था। वादहेतुक मिलने के छः वर्ष के भीतर वाद संस्थित न किये जाने के कारण यह परिसीमा बाध्य था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्मोही अखाड़ा के तर्क

228. वाद 3 में वादी गणों की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. के. जैन ने परिसीमा के संबंध में निम्नलिखित तर्क दिए:

I. **धारा 145 के तहत कार्यवाहियों में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है। अतः परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 47 के तहत परिसीमा प्रारम्भ नहीं हुई है:**

(i) वाद में वाद हेतुक 5 जनवरी, 1950 को उत्पन्न हुआ जब प्रापक ने भीतरी प्रांगण का प्रभार संभाला;

(ii) धारा 145 के अधीन 29 दिसंबर, 1949 दिनांकित मजिस्ट्रेट का आदेश एक प्राथमिक आदेश था और उसने वादहेतुक प्रदान किया। हालांकि, ऐसे वाद के लिए परिसीमा धारा 145 के तहत कार्यवाही में अंतिम आदेश पारित होने पर ही शुरू होगी। वर्तमान वाद में, जैसा कि मजिस्ट्रेट द्वारा 31 जुलाई 1954 दिनांकित आदेश में उल्लेख किया गया है, धारा 145 के तहत कार्यवाही का **निपटारा नहीं किया गया था** और इसलिए, **अंतिम आदेश अभी पारित नहीं किया गया था**। धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां लंबित ही हैं; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) यह वाद परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 47 द्वारा शासित है। अनुच्छेद 47 के अधीन वाद के लिए तीन वर्ष की परिसीमा मामले में अंतिम आदेश की तिथि से प्रारंभ होती है। अनुच्छेद 47 के अधीन प्रथम स्तंभ में वाद का विवरण अंतर्विष्ट है और **दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में आदेश** से आबद्ध व्यक्ति का उल्लेख है। अनुच्छेद 47 के अधीन तीसरा स्तंभ वह समय विनिर्दिष्ट करता है जिससे परिसीमा प्रारंभ होती है और **अंतिम आदेश** के पारित होने की तारीख से परिसीमा प्रारंभ होने का उल्लेख करता है। प्रथम कॉलम में वर्गीकृत किया गया वाद,तीसरे कॉलम में शब्दों के प्रयोग से अप्रभावित ,केवल उसी द्वारा शासित होगा। परिसीमा अधिनियम परिसीमा अवधि "के बाद" दायर किये गये वादों को बाधित करता है लेकिन अवधि प्रारम्भ होने "से पहले" वाद संस्थित होने से नहीं रोकता।

II निर्मोही अखाड़ा के प्रबंध और प्रभार के 'पूर्ण' सेवादारी अधिकार से इनकार एक सतत अपकृत्य है। परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 23 के आधार पर, एक नया वादहेतुक प्रत्येक दिन उत्पन्न हुआ:

(i) वाद 3 के लिए परिसीमा अनुच्छेद 142 द्वारा शासित होती है क्योंकि वादी गण को उनकी संपत्ति से बेदखल कर दिया गया था। अनुच्छेद 142 तब लागू होता है जब अचल संपत्ति के कब्जे के लिए वाद दायर किया जाता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है जब संपत्ति के कब्जेदार वादी को कब्चा बेदखल कर दिया गया है या बाधित कर दिया गया है। वाद 3 के वादीगण के पास मूर्तियों और मंदिर का प्रबंधन और प्रभार था क्योंकि वे पूजा करते थे, श्रद्धालुओं की देखभाल करते थे और अन्य कर्तव्यों का पालन करते थे। पूजा इत्यादी करने का अधिकार अर्थात सेवादारी अधिकार अचल संपत्ति के कब्जे से जुड़े हैं। वादी ने संपत्ति में अपने मालिकाना हित को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित दृष्टान्तों का अवलंब लिया है:

(क) **अंगुरबाला मलिक बनाम देबब्रत मलिक**[127] जहां यह धारित किया गया कि सेवादार का सेवार्थ संपत्ति में कुछ तरह का अधिकार या हित होता है जो आंशिक रूप से कम से कम मालिकाना अधिकार जैसा होता है; और

(ख) **आयुक्त, हिन्दू धार्मिक विन्यास बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामीयर** [128], जहां यह धारित किया गया कि सेवादारी में पद और संपत्ति,कर्तव्य और व्यक्तिगत हित दोनों के तत्व साथ–साथ रहते हैं। महंत का पद मालिकाना हक वाला होता है, जो हालांकि कुछ हद तक असंगत है, फिर भी एक वास्तविक कानूनी अधिकार है।

(ii) सेवादारी अधिकारों की बहाली के लिए वाद कब्जे की पुनर्प्राप्ति और प्रबंधन की बहाली के लिए होगा। अनुच्छेद 142 लागू होगा जो बेदखली की तिथि से 12 वर्ष की परिसीमा अवधि प्रदान करती है।

---

127 1951 SCR 1125
128 1954 SCR 1005

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) वादहेतुक 5 जनवरी, 1949 को उत्पन्न हुआ जिसके द्वारा निर्मोही अखाड़ा को सेवादार के रूप में उसके पूर्ण अधिकार से वंचितकर दिया गया और यह उन अधिकारों से वंचित ही है। वादी द्वारा *भोग* और और प्रार्थना का स्वतंत्र रूप से प्रबंधन किये जाने में बाधा परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के अंतर्गत एक सतत अपकृत्य है और ऐसा प्रत्येक अवरोध नया वादहेतुक प्रदान करता है। **सर सेठ हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह**[129] के मामले में प्रिवी कौंसिल के फैसले पर अवलंब लिया गया, जहां प्रार्थना और पूजा में बाधा सतत अपकृत्य माना गया है।

III परिसीमा अधिनियम, 1908 का अनुच्छेद 120 एक अवशिष्ट उपबंध है और तब लागू होता है जब अनुच्छेद 47 और 142 सहित कोई अन्य उपबंध लागू नहीं होता है। विलय का सिद्धांत लागू होता है, और 29 दिसंबर 1949 को धारा 145 के तहत पारित प्रारंभिक आदेश का 26 अप्रैल 1955 दिनांकित आदेश के साथ विलय हो गया जिसके द्वारा वाद 1 में अंतरिम व्यादेश को उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था:

(i) तर्क (बिना स्वीकार किए) इस धारणा पर आधारित है कि अनुच्छेद 47 और 142 प्रयोज्य नहीं हैं और अनुच्छेद 120 लागू होता है;
(ii) विलय के सिद्धांत के आधार पर, वाद 1 में यथास्थिति बनाए रखने के लिए अपर नगर मजिस्ट्रेट का दं.प्र.सं. की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में 29 दिसंबर, 1949 दिनांकित आदेश का उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश के विरुद्ध अपील में दिये गए 26 अप्रैल, 1955 दिनांकित आदेश के

---

129 (1933) 38 LW 306 (PC)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साथ विलय हो गया। अतः वादी को वाद का अधिकार 26 अप्रैल, 1955 को प्राप्त हुआ। वाद 3 जो 17 दिसंबर 1959 को दायर किया गया, छः वर्ष की परिसीमा के भीतर था। इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर अवलंब लिया गया:

(क) **चंडी प्रसाद बनाम जगदीश प्रसाद**[130], जहां यह धारित किया गया कि विलय का सिद्धांत यह अभिधारणा करता है कि किसी निश्चित समय पर एक ही विषय–वस्तु को शासित करने वाली एक से अधिक सक्रिय डिक्री नहीं हो सकती। जब अपीलीय न्यायालय कोई डिक्री पारित करता है, तो विचारण न्यायालय की डिक्री का अपीलीय न्यायालय की डिक्री के साथ विलय हो जाता है, भले ही अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री की अभिपुष्टि करे, संशोधित करे या उलट दे ; और

(ख) **एस एस राठौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य** [131], जहां यह धारित किया गया कि प्राथमिक न्यायालय की किसी डिक्री की अपील में पारित किसी डिक्री के साथ विलय हो जाता है।

IV प्रापक से कब्जा पुनर्प्राप्ति हेतु दायर किसी वाद में, परिसीमा का प्रश्न कभी नहीं उठ सकता और ऐसे वाद कभी भी परिसीमा बाध्य नहीं हो सकते।

---

130 (2004) 8 SCC 724
131 (1989) 4 SCC 582

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) जब तक किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति, जिससे कब्जा ले लिया गया हो, प्रापक के अधीन रहती है, परिसीमा का प्रश्न कभी नहीं उठ सकता; और

(ii) संपत्ति अनंत काल तक विधिक अभिरक्षा में नहीं रह सकती है और स्वत्व के प्रश्न पर न्याय निर्णयन न्यायालय का दायित्व है और वाद को परिसीमा बाध्य कह कर खारिज नहीं किया जा सकता है।

V **मध्यवर्ती लाभ के लिए पात्रता का निर्धारण करने में, स्वत्व के प्रश्न पर न्याय निर्णयन करना होगा और प्रापक को वास्तविक स्वामी को कब्जा सौंपना होगा:**

चूंकि संपत्ति प्रापक के नियंत्रण में है, प्रापक द्वारा प्राप्त आय के मध्यवर्ती लाभ के लिए वास्तविक स्वामी द्वारा वाद दायर किया जा सकता है और ऐसे वाद में, कोई भी लाभ जो अर्जित हुआ हो, सतत वाद हेतुक को जन्म देगा।

VI **यह वादी का दावा है कि निर्मोही अखाड़ा भी जन्मस्थान और मूर्तियों का सेवादार है। उसी कारण से जिससे वाद 5 वर्ष 1989 को परिसीमा के भीतर माना गया अर्थात यह कि देवता एक चिर नाबालिग हैं, वादी का वाद परिसीमा बाध्य नहीं हो सकता।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

229. वाद 5 में वादीगण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरन ने श्री एस के जैन के तर्कों का खंडन किया और परिसीमा और वाद 3 की पोषणीयता के संबंध में निम्नलिखित तर्क दिया:

I **धारा 145 के तहत मजिस्ट्रेट का आदेश शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस शक्तियों का प्रयोग है और संपत्ति पर स्वत्व या कब्जे का निर्धारण नहीं करता है। चूंकि इस तरह के आदेश का उद्देश्य किसी भी पक्ष को कब्जा देना नहीं है, इसलिए धारा 145 की कार्यवाही के तहत दिये गए आदेश के कारण निर्मोही अखाड़ा की बेदखली का सवाल ही नहीं उठता।**

(i) धारा 145 के अधीन आदेश शांति व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए पुलिस शक्तियों का प्रयोग है। यह केवल शांति के उल्लंघन को रोकने के लिए है और संपत्ति पर स्वत्व के संबंध में पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण नहीं करता है। धारा 145 की कार्यवाही केवल वास्तविक स्वामी के अधिकारों को स्थिर या संरक्षित करती है। कार्यकारी कार्य के प्रयोग में मजिस्ट्रेट का कोई आदेश कभी भी अनुचित कार्य नहीं हो सकता या क्षति कारित नहीं कर सकता है। सिविल न्यायालय के आदेश को 'अनुचित' नहीं माना जा सकता जो वादहेतुक को जन्म देता हो। केवल एक न्यायिक प्राधिकारी को ही यह तय करने की शक्ति है कि क्या सिविल न्यायालय की कोई कार्रवाई अनुचित है या नहीं। स्वत्व और कब्जे से संबंधित प्रश्न अनन्य रूप से

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सिविल न्यायालयों के विषय हैं और धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश सिविल न्यायालय की अधिकारिता का उल्लंघन नहीं कर सकता है;

(ii) धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां अलग हैं और मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश पारित किए जाने के पश्चात् स्वत्व या कब्जे के लिए सिविल वाद दायर करने के लिए पक्षकारों के लिए कोई रोक नहीं है। धारा 145 के तहत मजिस्ट्रेट के
आदेश से सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार क्षेत्र में कोई कटौती नहीं होती और दीवानी कार्यवाही को स्वतंत्र रूप चलाया जा सकता है। इस न्यायालय के निम्नलिखित मामलों में दिए गए निर्णयों पर अवलंब लिया गया:

(i) **भिंका बनाम चरण सिंह** [132], जहां यह धारित किया गया कि धारा 145 (1) के अधीन मजिस्ट्रेट की अधिकारिता केवल यह विनिश्चय करने के लिए सीमित है कि, कोई और यदि ऐसा है तो, किस पक्षकार के पास प्रारंभिक आदेश की तिथि पर विवादग्रस्त भूमि का कब्जा था। आदेश केवल एक निर्दिष्ट तिथि पर किसी पक्ष के वास्तविक कब्जे की घोषणा करता है और किसी भी पक्ष को कब्जा नहीं देता या कब्जा लेने के लिए अधिकृत नहीं करता है;

---

132 1959 Supp (2) SCR 798

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) झुम्मामल उर्फ देवदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य[133], जहां यह धारित किया गया कि धारा 145 के अधीन किया गया आदेश केवल एक निश्चित दिन पर किसी पक्षकार के कब्जे के तथ्य से संबंधित होता है। यह विवादित संपत्ति पर कब्जा बनाए रखने का कोई हक नहीं देता है। इसलिए असफल पक्ष को केवल सिविल न्यायालय में सम्यक रूप से संस्थित वाद में ही अनुतोष प्राप्त करना चाहिए। कोई पक्ष उद्घोषणा के लिए वाद दायर कर सकता है और कब्जे का श्रेष्ठतर अधिकार साबित कर सकता है। सिविल न्यायालय के पास यह अधिकारिता है कि वह ऐसा निष्कर्ष दे सके जो मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के तहत कार्यवाही करते समय प्राप्त निष्कर्ष से भिन्न हो; और

(iii) **देवकुंवर बनाम शिवप्रसाद सिंह**[134], जहां यह धारित किया गया कि धारा 145 के अधीन कुर्क की गई संपत्ति के स्वत्व की घोषणा के लिए दायर किये गये वाद में कब्जे के परिदान के अनुतोष की मांग करना आवश्यक नहीं है।

(iii) वाद 3 में श्री एस के जैन का यह तर्क कि धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां समाप्त नहीं हुई हैं और इसलिए, अनुच्छेद 47 के अधीन परिसीमा प्रारंभ नहीं हो सकती, स्वीकार नहीं किया जा सकता। धारा

---

133 (1988) 4 SCC 452
134 (1965) 3 SCR 655

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

145 के तहत कार्यवाही के बावजूद, निर्मोही अखाड़ा स्वतंत्र रूप से स्वत्व और कब्जे के लिए वाद दायर कर सकता था।

II **परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 3 में यह प्रावधान है कि परिसीमा की अवधि के बाद संस्थित प्रत्येक वाद खारिज हो जाएगा। उच्चतम न्यायालय केवल परिसीमा के आधार पर अपीलों का निस्तारण कर सकता है। विचारण न्यायालय के विपरीत जिसे सभी मुद्दों पर निर्णय करना होता है, इस निष्कर्ष पर पहुँच जाने के बाद कि वाद परिसीमा बाध्य है ,सर्वोच्च न्यायालय ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है।**

(i) **यशवंत देवराव देशमुख बनाम वालचंद रामचंद कोठारी**[135] के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया गया, जिसमें यह धारित किया गया कि साम्या नियम वहां लागू नहीं होंगे जहां उन आधारों को विनिर्दिष्ट करने वाले निश्चायक विधिक प्रावधान हों जिसके आधार पर काल गणना में एकमात्र रुकावट या स्थगन उत्पन्न हो। हालांकि न्यायालय धोखाधड़ी को "मात देने या उससे लड़ने में अवश्य सक्षम" हैं, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परिसीमा का विधान सीमित अवधि का विधान हैं।

III **उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया जाना चाहिए। डिक्री अभिवचन की विधि के विरुद्ध है। निर्मोही अखाड़ा द्वारा भूमि के बंटवारे के**

---

135 (1950) SCR 852

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई थी। उच्च न्यायालय का आदेश न्यायहित में नहीं पारित किया गया है बल्कि न्याय का अंत है।

IV परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 28 किसी व्यक्ति के सारवान अधिकारों को निर्वापित करती है। तद्नुसार, यदि पक्षकार परिसीमा के विषय पर विफल हो जाता है, तो यह अन्य सभी सारवान विषयों पर भी विफल हो जाता है और इसलिए, यह न्यायालय वाद 3 में निर्मोही अखाड़ा को कोई अनुतोष प्रदान नहीं कर सकता।

V निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वाद केवल अनुच्छेद 120 से शासित है। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 और 144 प्रयोज्य नहीं हैं। एक बार परिसीमा प्रारम्भ हो जाने पर, इसे रोका नहीं जा सकता है।

(i) प्रिवी कौंसिल द्वारा **राजा राजगन महाराजा जगतजीत सिंह बनाम राजा परताब बहादुर सिंह**[136] के मामले में दिए गए निर्णय पर अवलंब लिया गया जिसमें परिसीमा की वैधानिक अवधि के बारे में यह धारित किया गया कि अनुच्छेद 47 लागू नहीं होता है क्योंकि धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा कब्जे का कोई आदेश नहीं किया गया है। स्वत्व की घोषणा के वाद में अनुच्छेद 142 और 144 लागू नहीं होते और वाद अनुच्छेद 120 द्वारा शासित होता है

---

136 (1942) 2 Mad LJ 384

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

230. वाद 4 में वादी के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने वाद 3 की सीमा के संबंध में निम्नलिखित तर्क दिये:

I **वाद 3 में निर्मोही अखाड़ा द्वारा मांगा गया अनुतोष प्रबंधन और प्रभार के लिए है। हालाँकि, अपने वादपत्र में, इसने यह दावा किया गया है कि जन्मस्थान उससे संबंधित है और सदैव उससे संबंधित रहा है और किसी संदर्भ में उदार प्रयोग किये जाने पर इन शब्दों का अर्थ 'कब्जा', 'स्वामित्व' और 'प्रच्छन्न स्वत्व' लगाया जा सकता है।**

(i) निर्मोही अखाड़ा द्वारा मांगा गया अनुतोष केवल भगवान राम की मूर्तियों के प्रबंधन और प्रभार के संबंध में था। निर्मोही अखाड़ा का पक्ष दं.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के तहत एक आदेश द्वारा सेवादारी अधिकारों से वंचित किए जाने पर आधारित है। दावा राज्य के विरुद्ध कब्जे के भोगाधिकार के लिए है और देवता को सेवाएं प्रदान करने के लिए है। "संबंध" या "संबंधित " जैसे शब्दों का लचीला अर्थ है। इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मामलों में दिए गए निर्णयों पर अवलंब लिया गया:

(क) **स्वर्गीय नवाब सर मीर उस्मान अली खान बनाम धन कर आयुक्त, हैदराबाद** [137] 'से संबंधित' के अर्थ पर बहस के संबंध में;

---

137 1986 Supp SCC 700

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ख) **राजा मोहम्मद अमीर अहमद खान बनाम नगर बोर्ड सीतापुर** [138], वाद में सुस्पष्ट अभिकथन करने के बारे में हुई बहस के संबंध में और सही अर्थ को समझने के लिए वाद को उसकी संपूर्णता में पढ़ने के संबंध में।

(ii) निर्मोही अखाड़ा ने अपने वाद के प्रस्तर 2 में यह दावा किया है कि जन्मस्थान उससे संबंधित है और सदैव उससे संबंधित रहा है। आगे वाद के प्रस्तर 4 में यह दावा किया गया है कि मंदिर वादी के कब्जे में रहा है। हालांकि, लिखित कथन में वादी ने स्वामित्व और कब्जे का सन्दर्भ दिया है।

(iii) किसी दिए गए सन्दर्भ में 'संबंध रखता है' या 'संबंधित है' शब्द का प्रयोग 'कब्जा', 'स्वामित्व' और 'प्रच्छन्न स्वत्व' लगाया जा सकता है। 'संबंध रखता है' या 'संबंधित है' शब्द कला का शब्द नहीं है और इसका निश्चित अर्थ नहीं है। इसकी व्याख्या का विकल्प होता है।

II **निर्मोही अखाड़ा 'संबंध रखता है' शब्द का प्रयोग स्वत्व का दावा करने और परिसीमा के वर्जन का निवारण करने के लिए कर रहा है। 'संबंध रखता है' शब्द को इसके सामान्य अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए। यदि निर्मोही अखाड़ा अपने लिए स्वत्व का दावा करता है, तो भगवान के वाद के विरुद्ध होगा। यह केवल अनुषंगिक अधिकारों का दावा कर सकता है:**

---

138 AIR 1965 SC 1923

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) निर्मोही अखाड़ा केवल मूर्ति की सेवा करने का दावा करता है और मूर्ति का ही दावा नहीं कर रहा है। निर्मोही अखाड़ा कर्तव्य पूर्ति की मांग कर रहा है स्वामित्व और स्वत्व के अधिकार का नहीं। तद्नुसार, केवल धारा 120 लागू हो सकती है ; और

(ii) यूनाइटेड किंगडम में न्यासों की विधि के विपरीत , भारत में सेवादारी के आधार पर कोई स्वामित्व या स्वत्व नहीं मिलता। सेवादार मूर्ति की संपत्ति का स्वामी नहीं है।

III निर्मोही अखाड़ा ने धारा 145 के तहत कार्यवाही का उपयोग यह निवेदन करने के लिए किया है कि उन्हें पूर्ण सेवादारी अधिकार से वंचित करने का सरकार का कार्य एक सतत अपकृत्य है :

(i) धारा 145 की कार्यवाहियां स्वत्व या हक के दावों का निर्धारण करने के लिए नहीं हैं। निर्मोही अखाड़ा को कब्जे और स्वत्व के लिए घोषणात्मक वाद दायर करने के लिए कुछ भी निवारित न करता ; और

(ii) वह कही गई विशिष्ट तिथि, जब वादहेतुक उत्पन्न हुआ, 5 जनवरी, 1950 थी। जहां विधि ने मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत कब्जा लेने में हस्तक्षेप किया है, छः वर्ष की अवधि उस तिथि को प्रारम्भ हुई और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सतत अपकृत्य लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं थी क्योंकि कार्रवाई पूरी हो गई थी, और उपचार कहीं और था।

इस विषय पर कि, क्या वाद 3 परिसीमा बाध्य है,वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता के अभिकथनों का उल्लेख करने के पश्चात, अब हम दं.प्र.सं. 1898 के विभिन्न प्रावधानों और परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेदों का विश्लोषण करने की ओर उन्मुख होते हैं।

धारा 145 की कार्यवाही की प्रकृति और विषयक्षेत्र

231. मजिस्ट्रेट ने दं.प्र.सं. 1898 की धारा 145 के तहत 29 दिसंबर 1949 दिनांकित आदेश संपत्ति को कुर्क कर दिया। वाद 3 के वादीगण का कहना है कि वाद हेतुक 5 जनवरी 1950 को उत्पन्न हुआ जब प्रापक ने संपत्ति का प्रभार ग्रहण किया और उन्हें मंदिर का प्रभार और प्रबंधन देने से मना कर दिया गया।

232. धारा 145 को 1898 की संहिता के अध्याय XII में शामिल किया गया था, जिसका शीर्षक था "अचल संपत्ति के संबंध में विवाद"। धारा 145 इस प्रकार है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"धारा 145। प्रक्रिया जहां भूमि इत्यादि से संबंधित विवाद से शांतिभंग होने की आशंका हो

(1) जब कभी किसी जिलाधिकारी, उप जिलाधिकारी या प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से या अन्य इत्तिला पर समाधान हो जाता है कि उसकी स्थानीय अधिकारिता के अंदर किसी भूमि या जल या उसकी सीमाओं से सम्बद्ध ऐसा विवाद विद्यमान है, जिससे परिशान्ति भंग होना संभाव्य है, तब वह ऐसा समाधान होने के आधारों का कथन करते हुए और ऐसे विवाद से सम्बद्ध पक्षकारों से यह अपेक्षा करते हुए लिखित आदेश देगा कि वे विनिर्दिष्ट तारीख और समय पर स्वंय या प्लीडर के द्वारा उसके न्यायालय में हाजिर हो, और विवाद की विषय वस्तु पर वास्तविक कब्जे के तथ्य के बारे में अपने–अपने दावों का लिखित कथन प्रस्तुत करें।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए "भूमि या जल" पद के अंतर्गत भवन, बाजार, मीनक्षेत्र, फसलें, भूमि की अन्य उपज और ऐसी किसी सम्पत्ति के भाटक या लाभ भी हैं।

(3) इस आदेश की एक प्रति की तामील इस संहिता द्वारा समनों की तामील के लिए उपबंधित रीति से ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों पर की जाएगी, जिन्हें मजिस्ट्रेट निदिष्ट करे, और कम से कम एक प्रति विवाद की विषय वस्तु या उसके निकट किसी सहजदृश्य स्थान पर लगाकर प्रकाशित की जाएगी।

(4) मजिस्ट्रेट तब विवाद की विषय वस्तु को पक्षकारों में से किसी के भी कब्जे में रखने के अधिकार के गुणागुण या दावे के प्रति निर्देश किए बिना उन कथनों का, जो ऐसे पेश किए गए हैं,परिशीलन करेगा, पक्षकारों को सुनेगा और ऐसा सभी साक्ष्य लेगा जो उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाए, ऐसा अतिरिक्त साक्ष्य यदि कोई हो, लेगा जैसा कि वह आवश्यक समझे और यदि संभव हो तो यह विनिश्चित करेगा कि क्या उन पक्षकारों में से कोई उपधारा के अधीन उसके द्वारा दिये गए आदेश की तारीख पर विवाद की विषयवस्तु पर कब्जा रखता था और यदि रखता था तो वह कौन सा पक्षकार था:

बशर्ते, कि यदि मजिस्ट्रेट मामले को आपातकालीन में से एक मानता है, तो वह किसी भी समय, इस धारा के अधीन अपने निर्णय के लंबन के दौरान, विवाद की विषय वस्तु को कुर्क कर सकता है।

(5) इस धारा की कोई बात, हाजिर होने के लिए ऐसे अपेक्षित किसी पक्षकार को या किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति को यह दर्शित करने से नहीं रोकेगी कि कोई पूर्वोक्त प्रकार का विवाद वर्तमान नहीं है या नहीं रहा है

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और ऐसी दशा में मजिस्ट्रेट अपने उक्त आदेश को रद्द कर देगा और उस पर आगे की कार्यवाहियां रोक दी जाएगी, किन्तु उपधारा (1) के अधीन मजिस्ट्रेट का आदेश ऐसे रद्दकरण के अधीन रहते हुए अंतिम होगा।

(6) यदि मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि किन्हीं पक्षकारों में से एक का उक्त विषय वस्तु पर ऐसा कब्जा था या उपधारा (4) के परन्तुक के अधीन ऐसा कब्जा माना जाना चाहिए, तो वह यह घोषणा करने वाला कि ऐसा पक्षकार उस पर तब तक कब्जा रखने का हकदार है जब तक उसे विधि के सम्यक अनुक्रम में बेदखल न कर दिया जाए और यह निषेध करने वाला कि जबतक ऐसी बेदखली न कर दी जाए, तब तक ऐसे कब्जे में कोई विघ्न न डाला जाए , आदेश जारी करेगा, और जब वह उपधारा (4) के परन्तुक के अधीन कार्यवाही करता है तब उस पक्षकार को, जो बलात् और सदोष बेकब्जा किया गया है, कब्जा लौटा सकता है।

(7) जब किसी ऐसी कार्यवाही के पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तब मजिस्ट्रेट मृत पक्षकार के विधिक प्रतिनिधि को कार्यवाही का पक्षकार बनवा सकेगा और फिर जांच जारी रखेगा और यदि इस बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है कि मृत पक्षकार का ऐसी कार्यवाही के प्रयोजन के लिए विधिक प्रतिनिधि कौन है तो मृत पक्षकार का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले सब व्यक्तियों को उस कार्यवाही का पक्षकार बना लिया जाएगा।

(8) यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि उस संपत्ति की, जो इस धारा के अधीन उसके समक्ष लंबित कार्यवाही में विवाद की विषय वस्तु है, कोई फसल या अन्य उपज शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है तो वह ऐसी सम्पत्ति की उचित अभिरक्षा या विक्रय के लिए आदेश दे सकता है और जांच के समाप्त होने पर ऐसी सम्पत्ति के या उसके विक्रय के आगमों के व्ययन के लिए ऐसे आदेश दे सकता है, जो वह ठीक समझे।

(9) यदि मजिस्ट्रेट ठीक समझे तो वह इस धारा के अधीन कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम में पक्षकारों में से किसी के आवेदन पर किसी साक्षी के नाम समन यह निर्देश करते हुए जारी कर सकता है कि वह हाजिर हो या कोई दस्तावेज या चीज पेश करे।

(10) इस धारा की कोई बात धारा 107 के अधीन कार्यवाही करने की मजिस्ट्रेट की शक्तियों का अल्पीकरण करने वाली नहीं समझी जाएगी।

धारा 145 को मजिस्ट्रेट के निवारक क्षेत्राधिकार की एक शाखा माना जाता है।[139] मजिस्ट्रेट को यह समाधान हो जाने पर कि "शांति भंग होने की

---

139 Commentary on the Criminal Procedure Code by Ratanlal and Dhirajlal , 20th edition (2016) at page 426

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संभावना वाले विवाद मौजूद हैं".. धारा 145 (1) को लागू किया जा सकता है। यह प्रावधान भूमि या पानी या इसकी सीमाओं के कब्जे से संबंधित विवादों से संबंधित है जिसके परिणामस्वरूप शांति भंग हो सकती है। मजिस्ट्रेट का कार्य स्वत्व के प्रश्नों में नहीं जाना है, बल्कि पक्ष को कब्जे में रखकर स्थिति की तात्कालिकता से निपटना है। मजिस्ट्रेट को वास्तविक कब्जे के अपने दावे के समर्थन में लिखित बयान प्रस्तुत करने के लिए पक्षकारों को बुलाने का अधिकार है। ऐसा आदेश पक्षकारों को समन के रूप में दिया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को, यह विनिश्चय करने के लिए कि आदेश की तिथि पर कब्जा किसके पास था, बयानों का परिशीलन करना होता है, पक्षों को सुनना होता है और साक्ष्यों पर विचार करना होता है। मजिस्ट्रेट, "यदि ऐसा करना संभव हो" तो, निर्धारण कर सकता है। इसके अलावा निर्धारण "विवाद की विषयवस्तु पर कब्जे के **अधिकार** के किसी पक्ष के दावे के गुणागुण को संदर्भित किये बिना" आदेश की तिथि पर कब्जे का तथ्यात्मक विवरण होता है। इन शब्दों से पता चलता है कि मजिस्ट्रेट कब्जे के विरोधी अधिकारों या विरोधी दावों के गुणागुण पर विनिश्चय या न्यायनिर्णयन नहीं करता। मजिस्ट्रेट केवल यह निर्धारण करता है कि आदेश की तिथि पर कब्जा किसके पास था। यदि कब्जा आदेश की तिथि के दो माह के भीतर अनुचित तरीके से लिया गया है तो ऐसे बेदखल व्यक्ति को कब्जाधारी माना जाए। आकस्मिकता की स्थिति में,मजिस्ट्रेट निर्णय के विलंबन के कारण विवाद की वस्तु को कुर्क कर सकता है। अंततः धारा 145 के अन्तर्गत अभिकल्पित कार्यवाही दण्डात्मक नहीं है बल्कि निवारक है, और उस उद्देश्य के लिए विधि की सम्यक प्रक्रिया में सक्षम न्यायालय

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

द्वारा अधिकारों का औपचारिक या अन्तिम न्यायनिर्णयन किए जाने तक मात्र प्राविधिक है। अतः, उपबंध के अन्तर्गत पक्षकारों के भूतकालीन, वर्तमान और भविष्यत् अधिकारों को प्रभावित करने वाला कुछ भी अभिकल्पित नहीं है।

233. उपबंध का उद्देश्य केवल कानून व्यवस्था बनाए रखना और सिविल न्यायालय द्वारा एक पक्ष के वास्तविक अधिकार का निर्धारण होने तक एक पक्ष का कब्जा, विवाद के ठीक पहले जिसका कब्जा मजिस्ट्रेट को प्रतीत हो, बनाए रखना है।[140] इसका उद्देश्य विवाद की विषयवस्तु को विवादकों के हाथ से बाहर करना है जिससे अभिरक्षक अधिकार की रक्षा कर सके जब तक कि एक पक्ष ने सिविल न्यायालय में कब्जे के अपने अधिकार को (यदि कोई) स्थापित किया है।[141] यह धारा 146 की उप–धारा (6) के प्रावधानों से स्पष्ट है। मजिस्ट्रेट उस पक्ष की घोषणा करता है जो कब्जे का हकदार है "जब तक कि विधि की सम्यक प्रक्रिया में उसे वहां से हटाया न जाय"। हालांकि प्रथम परन्तुक के अन्तर्गत कार्य करते हुए मजिस्ट्रेट उस पक्ष का कब्जा बहाल कर सकता है जिसे अनुचित तरीके से और जबरन बेदखल कर दिया गया है। किसी भी पक्ष को धारा 145 के प्रावधानों का उपयोग अंतरस्थ उद्देश्य के लिए या सिविल उपचार के अनुपूरक के रूप में करने की अनुमति नहीं होगी। सिविल न्यायालय की अधिकारिता और शक्ति किसी भी प्रकार से बाधित नहीं की जा सकती है।[142]

---

140 Commentary on the Criminal Procedure Code by Ratanlal and Dhirajlal , 20th edition (2016) at page 427

141 Commentary on the Criminal Procedure Code by Ratanlal and Dhirajlal , 20th edition (2016) at page 427

142 Commentary on the Criminal Procedure Code by Ratanlal and Dhirajlal , 20th edition (2016) at page 451

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

234. इस न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों में धारा 145 के तहत कार्यवाही की प्रकृति और दायरे का विश्लेषण किया है:

(i) **भिंका बनाम चरण सिंह** [143] में, प्रत्यर्थी ने विवादित भूमि को "महाराज की भूमि होने का दावा" किया, जबकि अपीलार्थीगण ने वंशानुगत किरायेदारों के रूप में भूमि पर कब्जा होने का दावा किया। मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की, विवादित भूमि को कुर्क कर दिया और उन कार्यवाहियों के लंबित निस्तारण के चलते उन्हें सुपुर्दगीदार के कब्जे में रखने का निर्देश दिया। जांच के बाद मजिस्ट्रेट ने कहा कि अपीलार्थीगण विधि की सम्यक प्रक्रिया द्वारा निकाले जाने तक कब्जेदार रहने के हकदार हैं। तत्पश्चात् प्रत्यर्थी ने राजस्व न्यायालय के समक्ष एक वाद दायर किया। उस कार्यवाही के बाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की गई। इस न्यायालय के समक्ष रखे गये विषयों में से एक यह था कि क्या अपीलार्थीगण ने धारा 145 के प्रावधानों के अनुसार कब्जा लिया है। तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने यह धारित किया :

> "16.... संहिता की धारा 145 (6) के अधीन, मजिस्ट्रेट ऐसी उद्घोषणा करने वाला आदेश जारी करने के लिए प्राधिकृत होता है कि कोई पक्षकार विधि की सम्यक प्रक्रिया में निकाले जाने तक किसी भूमि पर कब्जे का हकदार है। **मजिस्ट्रेट किसी पक्ष के स्वत्व या भूमि पर कब्जे के अधिकार का निर्धारण नहीं करता, लेकिन स्पष्ट रूप से उस प्रश्न को विधि की सम्यक प्रक्रिया में विनिश्चय किए जाने हेतु आरक्षित रखता है। उसकी अधिकारिता का आधार शांतिभंग की आशंका पर**

---

143 1959 Supp (2) SCR 798

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आधारित है, उस उद्देश्य से वह पक्षकारों के अधिकारों के बावजूद एक अस्थायी आदेश देता है, जिस पर बहस होनी चाहिए और विधि द्वारा उपबंधित रीति से निस्तारण होना चाहिए। उक्त आदेश का जीवनकाल किसी सिविल न्यायालय द्वारा डिक्री पारित करने तक होता है और जैसे ही सिविल न्यायालय निकाले जाने का आदेश देता है, वैसे ही आपराधिक न्यायालय द्वारा दिया गया आदेश विस्थापित हो जाता है।

दिनोमोनी चौधरीनी बनाम ब्रोजो मोहिनी चौधरी [(1901) LR 29 IA 24, 33] के मामले में प्रिवी काउंसिल ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत आदेशों के प्रभाव को संक्षेप में इस प्रकार बताया है :

" ये आदेश केवल पुलिस आदेश हैं जो शांतिभंग रोकने के लिए बनाए गए हैं। ये स्वत्व के किसी प्रश्न का निर्धारण नहीं करते ...."।

इसलिए, हमारा मानना है कि पक्षों के अधिकार के बावजूद कब्जे के संबंध में मजिस्ट्रेट का एक अनंतिम आदेश किसी व्यक्ति को अधिनियम की धारा 180 के तहत वाद का विरोध करने में सक्षम नहीं बनाता।

(प्रभाव वर्धित)

(ii) **आरएच भूटानी बनाम मिस मणि जे देसाई** [144] के मामले में, अपीलार्थी ने अपने स्वामित्व वाले केबिन पर कब्जा करने के लिए पहले प्रतिवादी के साथ एक अनुमति एवं अनुज्ञप्ति अनुबंध किया। जब पक्षकारों के मध्य क्षतिपूर्ति में वृद्धि को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ तब प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को निकालने और कब्जा दूसरे और तीसरे प्रत्यर्थी को हस्तगत करने की मांग की। इसके बाद, अपीलार्थी ने धारा 145 के तहत एक आवेदन दाखिल किया और मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही शुरू की। कार्यवाहियों के लंबित रहते, प्रत्यर्थी ने एक सिविल वाद दायर किया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि अपीलार्थी के पास केबिन का वास्तविक कब्जा था और उसे जबरन बेदखल किया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका में मजिस्ट्रेट के आदेश को अपास्त कर दिया गया और यह धारित किया गया कि मजिस्ट्रेट

---

144 (1969) 1 SCR 80

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ने धारा 145 के अधीन अपनी शक्तियों के दायरे का अतिक्रमण है। उच्च न्यायालय के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई जिसने उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया और मजिस्ट्रेट के आदेश को बहाल कर दिया। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीश पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति जेएम शेलाट ने धारा 145 के तहत कार्यवाही के विषयक्षेत्र पर निम्नलिखित शब्दों में चर्चा की :

> "8. **इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 145 का उद्देश्य शांतिभंग को रोकना** और उस हेतु पक्षकारों को न्यायालय के समक्ष लाकर त्वरित उपचार प्रदान करना है **और यह अभिनिर्धारिति करना है कि उनमें से किसके पास वास्तविक कब्जा था और सक्षम न्यायालय द्वारा उनके अधिकारों के निर्धारण होने तक यथास्थिति बरकरार रखना है... धारा 145 के तहत जांच इस प्रश्न तक सीमित है कि पक्षकारों के अधिकारों के बावजूद प्रारंभिक आदेश की तिथि पर कब्जा किसके पास था।"**
>
> (प्रभाव वर्धित)

(iii) **शांति कुमार पांडा बनाम शकुंतला देवी** [145] के मामले में, पक्षकारों के मध्य एक दुकान को लेकर विवाद था। अपीलार्थी द्वारा दायर परिवाद के आधार पर धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू की गई और मजिस्ट्रेट ने संपत्ति कुर्क कर दी। प्रत्यर्थी, जिसने विवाद के विषय–वस्तु से हितबद्ध होने का दावा किया था,को कार्यवाही में अभियोजित किए जाने की स्वीकृति नहीं दी गई। धारा 145 के तहत अंतिम आदेश अपीलार्थी के पक्ष में था। आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण याचिकाएं खारिज कर दी गईं। इसके बाद, प्रत्यर्थी ने एक दीवानी वाद दायर किया और व्यादेश प्राप्त कर लिया। तथापि, जिला न्यायालय द्वारा इस आधार पर व्यादेश को रद्द कर दिया गया कि चूंकि धारा

---

145 (2004) 1 SCC 438

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

145 की कार्यवाहियां अपीलार्थी के पक्ष में गई थी, अतः विचारण न्यायालय द्वारा व्यादेश जारी करना न्यायोचित नहीं था जब तक कि मजिस्ट्रेट का आदेश दीवानी न्यायालय की डिक्री द्वारा रद्द न कर दिया गया हो हो और संपत्ति के न्यायिक अभिरक्षा में रहते कोई व्यादेश न दिया जा सका हो। उच्च न्यायालय ने जिला न्यायालय के आदेश को उलट दिया। इस न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय के निर्णय को चुनौती दी गयी। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपील को खारिज कर दिया और धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों की प्रकृति के बारे में विचार किया। न्यायमूर्ति जे . एम. शेलत ने न्यायालय की ओर से अभिनिर्धारित किया:

> "10. संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाहियों को अर्ध–दीवानी, अर्ध–आपराधिक प्रकृति का या कार्यकारी या पुलिस कार्रवाई माना गया है। उपबंधों का उद्देश्य त्वरित और सारांश उपाय प्रदान करना है ताकि संपत्ति पर कब्जे के सवाल को विवादित करने वाले पक्षकारों के बीच विवाद को समाधान के लिए कार्यकारी मजिस्ट्रेट को सौंपकर शांति के उल्लंघन को रोका जा सके। विवाद का संज्ञान लेकर मजिस्ट्रेट प्रारंभिक आदेश की तिथि या उक्त आदेश के ठीक दो महीने पहले के भीतर, धारा 145 की उप–धारा 4 के परंतुक में यथा संदर्भित को संदर्भित कर केवल विनिश्चय करेगा कि विवाद के पक्षकारों में से कब्जा किसके पास था और दीवानी अधिकारों का न्यायनिर्णयन करने में सक्षम न्यायालय द्वारा कब्जे के हक के संबंध में निर्धारण किये जाने तक, जो कि कार्यकारी मजिस्ट्रेट नहीं कर सकता , यथास्थिति बनाए रखेगा। कार्यकारी मजिस्ट्रेट उस विवाद का संज्ञान नहीं लेगा जो केवल स्वामित्व या कब्जे के अधिकार के लिए संदर्भित है और केवल कब्जे के लिए नहीं ..."

निम्नलिखित टिप्पणियों में न्यायालय ने मजिस्ट्रेट के आदेश और दीवानी अदालत की अधिकारिता की अन्तर्क्रिया पर विचार किया:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"15. यह सुस्थापित है कि आपराधिक न्यायालय का निर्णय दीवानी न्यायालय को बाध्य नहीं करता है जबकि दीवानी न्यायालय का निर्णय आपराधिक न्यायालय को बाध्य करता है। (देखिए, Sarkar on Evidence 15 वां संस्करण, पृष्ठ 845) । संहिता की धारा 145 के अधीन दिया गया निर्णय प्रासंगिक होता है और यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होता है: (i) कि किसी संपत्ति विशेष से संबंधित विवाद था; (ii) यह कि विवाद पक्षकार विशेष के बीच था; (iii) कि ऐसे विवाद के कारण किसी दी गयी तिथि पर धारा 145 (1) के अधीन प्रारंभिक आदेश या धारा 146 (1) के अधीन कुर्की का आदेश पारित किया गया था; और (iv) यह कि मजिस्ट्रेट ने प्रारंभिक आदेश की तारीख को विवादित संपत्ति पर किसी एक पक्षकार का कब्जा या काल्पनिक कब्जा होना पाया। **मजिस्ट्रेट द्वारा अंकित तर्क या उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की कोई प्रासंगिकता नहीं होती और सक्षम न्यायालय के समक्ष साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं होते और सक्षम न्यायालय मजिस्ट्रेट द्वारा कब्जे के प्रश्न पर भी प्राप्त निष्कर्षों से बाध्य नहीं होता, यद्यपि यथा पक्षकारों के मध्य, मजिस्ट्रेट का आदेश *कब्जे का साक्ष्य* होगा। मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज निष्कर्ष अदालत को बाध्य नहीं करता। सक्षम अदालत के पास अधिकारिता होती है और उसका कब्जे के प्रश्न पर भी कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त निष्कर्ष से असंगत निष्कर्ष पर पहुंचना न्यायोचित होगा।"**

(प्रभाव वर्धित)

न्यायालय ने धारित किया कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX के तहत दीवानी न्यायालय की अंतर्वर्ती अधिकारिता के रूप में बाध्यकारी नहीं होगी:

"22... दीवानी न्यायालय भी ऐसे आदेश का सम्मान करेगा और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दिये गए आदेश से असंगत अंतरिम व्यवस्था पर पहुंचने से बचेगा। **हालांकि, यह ये धारित करने से अलग है कि दीवानी न्यायालय के पास कार्यकारी मजिस्ट्रेट के आदेश से असंगत व्यादेश जारी करने की अधिकारिता नहीं होती। अधिकारिता होती है लेकिन उसका प्रयोग अपवाद के रूप में होगा न कि नियम के रूप में।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कार्यकारी मजिस्ट्रेट के आदेश को अधिकारिता हीन, स्पष्ट रूप से गलत या विरोधाभासी निष्कर्षों वाला दिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि मजिस्ट्रेट ने दो महीने से अधिक समय से कब्जाहीन पक्षकार को कब्जावान मानकर आदेश दे दिया हो। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा इसके समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर दिये गये आदेश के बावजूद, सक्षम न्यायालय, ऐसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, यह धारित कर सकता है कि वाद संपत्ति पर प्रथम दृष्टया एक पक्ष का कब्जा बरकरार रखने या एक पक्ष को कब्जा देने का आधार है या कार्यकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसार संपत्ति पर एक पक्ष को कब्जा देना अन्यायोचित एवं असंगत होगा। ऐसी अपवाद स्वरूप स्थितियों में, सक्षम न्यायालय (जो अधिकांशतः एक सिविल न्यायालय होगा) के पास कार्यकारी मजिस्ट्रेट के द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत की गई उद्घोषणा और प्राप्त निष्कर्षों से हटकर व्यादेश प्रदान करने की अधिकारिता हो सकती है। धारा 146 के तहत आदेश उस परिमाण की समस्या नहीं होगी। जहां तक संपत्ति कुर्क है और प्रापक को दी गयी है, सिविल न्यायालय सरलता से जांच कर सकता है कि सिविल वाद के विलम्बन के दौरान क्या कुर्की जारी रखना और उसी प्रापक को रखना, या अन्य प्रापक नियुक्त करना या कोई अन्य अन्तरिम व्यवस्था करना उचित और समीचीन होगा।"

(प्रभाव वर्धित)

(iv) **सुरिंदर पाल कौर बनाम सतपाल**[146] के मामले में, शांति कुमार पांडा के मामले में दिये गये निर्णय का अवलंब लिया गया। न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा (तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश) दो न्यायाधीश पीठ की ओर से निम्नवत धारित किया:

"10... यह एक सुस्थापित विधिक स्थिति है कि दंप्रसं की धारा 145 के तहत की गई कार्यवाही में दी गई टिप्पणियां सक्षम अदालत को इससे समक्ष प्रारंभ की गई कानूनी कार्यवाही में बाध्य नहीं करती।"

---

146 (2015) 13 SCC 25

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

235. धारा 145 की कार्यवाही किसी पक्षकार के स्वत्व या भूमि पर कब्जे के अधिकार को तय करने का उद्देश्य नहीं रखती है। धारा 145 के तहत कार्यवाही में कुर्क संपत्ति 'न्यायिक अभिरक्षा' में होती है। इसलिए, उस पार्टी से कब्जा प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता जो कब्जे में नहीं है और इसलिए, कब्जा देने की स्थिति में नहीं है। इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णयों में कुर्क संपत्ति की प्रकृति का विश्लेषण किया है:

(i) **देवकुवंर बनाम शिवप्रसाद सिंह**[147] के मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 145 के अधीन कुर्क सम्पत्ति 'न्यायिक अभिरक्षा' में होती है। अपील अपीलार्थियों द्वारा 1947 में इस उद्घोषणा के लिए लाए गए वाद से उद्भूत है कि किन्हीं विलेखों के तहत प्रतिवादियों को संपत्ति का कोई अधिकार या स्वत्व प्राप्त नहीं है और यह कि विलेख निष्क्रिय और शून्य थे। वाद को विचारण न्यायालय ने डिक्री कर दिया था, लेकिन अपील पर, उच्च न्यायालय ने डिक्री अपास्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने कहा कि चूंकि अपीलकर्ताओं का वाद की तिथि पर संपत्ति पर कब्जा नहीं था, इसलिए उनका वाद विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक के तहत विफल होना चाहिए क्योंकि वे प्रत्यर्थियों से कब्जे की बहाली के अनुतोष की मांग करने में विफल रहे। वाद की तिथि पर, विवाद की संपत्ति मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए कुर्क कर दी गयी थी और किसी भी पक्ष का कब्जा नहीं था। इस न्यायालय के समक्ष जो विषय उठा, वह यह था कि क्या कुर्की के मद्देनजर, अपीलार्थी अपने वाद में कब्जा उन्हें दिये जाने का अनुतोष मांग

---

147 (1965) 3 SCR 655

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकते थे। तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से न्यायमूर्ति एके सरकार ने निम्नवत धारित किया:

> "4. हमारे विचार में, संपत्ति के स्वत्व की उद्घोषणा के लिए दायर वाद में जबकि उसे संहिता की धारा 145 के कुर्क कर दिया गया हो, कब्जा दिये जाने के अनुतोष की मांग करना आवश्यक नहीं है। हमारे विचार से, इस तरह की कुर्की के मामले में मजिस्ट्रेट का उस पक्षकार की ओर, जिसे वह अन्ततः कब्जावान पाता है, कब्जा होने का तथ्य, यदि ऐसा हो, अप्रासंगिक है। हालांकि, इस प्रश्न पर कि क्या मजिस्ट्रेट वास्तव में ऐसा करता है या नहीं, वर्तमान मामले में कोई राय व्यक्त करना अनावश्यक है।
> 5. प्राधिकारी स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि जहां प्रतिवादी का कब्जा न हो और वादी को कब्जा देने की स्थिति में न हो, वादी के लिए संपत्ति पर स्वत्व की उद्घोषणा के वाद में कब्जे का दावा करना आवश्यक नहीं है: देखें, सुंदर सिंह–मल्लाह सिंह सनातन धर्म हाई स्कूल, ट्रस्ट बनाम प्रबंध समिति, सुंदर सिंह–मल्लाह सिंह राजपूत हाई स्कूल [(1957) LR 65 IA 106]। अब यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में, कुर्की के बाद प्रत्यर्थीगण का कब्जा नहीं था और अपीलार्थियों को कब्जा देने की स्थिति में नहीं थे। कब्जा मजिस्ट्रेट का था, जिनके लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता और वह निश्चित रूप से वाद का एक पक्षकार नहीं था। यह देखना प्रासंगिक है कि नवाब हुमायूँ बेगम बनाम नवाब शाह मोहम्मद खान [AIR (1943) PC 94] में यह माना गया है कि विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के परंतुक में अभिकल्पित अनुतोष केवल प्रतिवादी के विरुद्ध अनुतोष है। हम यह जोड़ सकते हैं कि के. सुंदरेश अय्यर बनाम सर्वजन सोकियाबिल विर्धी निधि लिमिटेड [(1939) ILR Mad 986] में यह कहा गया कि संपत्ति के न्यायिक अभिरक्षा में होने पर कब्जे की मांग करना आवश्यक नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि संहिता की धारा 145 के तहत कुर्क संपत्ति न्यायिक अभिरक्षा में है। इससे यह स्पष्टतः स्थापित हो जाता है कि अपीलार्थियों के लिए कब्जे की मांग करना आवश्यक नहीं था।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) **शांति कुमार पांडा** के मामले में, इस न्यायालय ने धारा 145/146 के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के प्रभाव को शासित करने वाले विधिक सिद्धान्त तैयार किये जब सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय के समक्ष कानूनी कार्यवाही शुरू की जाती है:

> "(1) संहिता की धारा 146 की उपधारा (1) में यथा प्रयुक्त सक्षम न्यायालय शब्द का अर्थ केवल दीवानी न्यायालय नहीं है। एक सक्षम न्यायालय वह है जिसमें कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही की विषय–वस्तु संपत्ति पर कब्जे के संबंध में स्वत्व या पक्षकारों के अधिकारों के प्रश्न को निर्धारित करने की अधिकारित शक्ति होती है:
>
> (2) धारा 145 (1) के अधीन किसी आदेश में असफल पक्षकार सफल पक्षकार के विरुद्ध विवादित संपत्ति पर कब्जा करने का अपना हक स्थापित करने के लिए सक्षम न्यायालय में कार्यवाही आरंभ करेगा। सामान्यतः, कब्जा प्राप्ति का अनुतोष उचित होगा। **संहिता की धारा 146 (1) के तहत कुर्की के परिणामस्वरूप एक सक्षम न्यायालय के समक्ष शुरू की गई कानूनी कार्यवाही में कब्जे की प्राप्ति का अनुतोष मांगना आवश्यक नहीं है। चूंकि संपत्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा उस पक्षकार के लिए और उसकी ओर से न्यायिक अभिरक्षा में रखा गया है, जो अंततः न्यायालय से सफल होगा, अतः केवल कब्जे के लिए स्वत्व के अधिकारों का निर्धारण किये जाने की मांग करना पर्याप्त होगा। ऐसा वाद कब्जे का अनुतोष न मांगने के कारण गलत नहीं होगा।**
>
> (3) किसी दांडिक न्यायालय द्वारा किया गया विनिश्चय दीवानी न्यायालय को आबद्ध नहीं करता जबकि दीवानी न्यायालय द्वारा किया गया कोई विनिश्चय दांडिक न्यायालय को आबद्ध करता है। संहिता की धारा 145/146 के तहत कार्यवाही में कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दांडिक न्यायालय का आदेश होता है और वह भी सारांश जांच पर आधारित। यह आदेश अंतर्वर्ती मंच पर सक्षम न्यायालय के समक्ष सम्मान और वजन का हकदार होता है। अधिकारों के न्याय निर्णयन के अंतिम चरण में, जो अदालत के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों पर होगा , मजिस्ट्रेट का आदेश साक्ष्यों के कई टुकड़ों में से केवल एक है।
>
> (4) न्यायालय अंतरिम व्यादेश का आदेश जारी करने या कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश से असंगत अंतरिम व्यवस्था का आदेश

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देने से बचेगा। हालांकि, ऐसा कहना न्यायालय के विवेकाधिकार के प्रयोग के संबंध में केवल सावधानी या संयम के नियम की उक्ति, बुद्धिमत्ता की मांग और अपनी अधिकारिता में दिये गए तत्काल/आकस्मिक कार्यकारी आदेशों के लिए सम्मान है; और निश्चित रूप से न्यायालय की शक्ति पर अंकुश नहीं। न्यायालय के पास कार्यकारी मजिस्ट्रेट के आदेश से असंगत अंतरिम व्यादेश सहित अंतरिम आदेश देने की अधिकारिता होती है। अधिकारिता होती है लेकिन उसका प्रयोग अपवाद के रूप में किया जाएगा नियम के रूप में नहीं। यहां तक कि अंतरिम आदेश पारित करने के चरण में भी, कार्यकारी मजिस्ट्रेट के सामने असफल पक्षकार, न्यायालय में प्रस्तुत सामग्री के आधार पर कार्यकारी मजिस्ट्रेट के निष्कर्षों को अधिकारिताहीन, गलत या असंगत दिखाकर प्रथम दृष्टया मजबूत पक्ष रख सकता है, जिस मामले या मामलों में, अदालत अपने कारणों और संतुष्टि को अंकित कर, कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश से असंगत या हटकर आदेश दे सकती है। न्यायालय के अंतिम या अंतर्वर्ती आदेश का प्रभाव, एक पक्ष के कब्जे के स्वत्व की घोषणा और धारा 145 की उपधारा (6) के अर्थों में कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष सफल पक्षकार का निष्कासन होगा।"

(प्रभाव वर्धित)

उपरोक्त सूत्रीकरण अनिवार्य रूप से उन सिद्धांतों की पुनरूक्ति है जो न्यायालय की सुसंगत परिपाटियों से उदभूत होते हैं [देखें, **झूम्मामल उर्फ देवनदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[148]]

236. जहां कोई वाद सक्षम दीवानी न्यायालय के समक्ष कब्जे के लिए या हक की घोषणा के लिए संस्थित किया जाता है, वहां धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां जारी नहीं रहनी चाहिए। इस न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों में उपरोक्त विधिक उपधारणाओं का विश्लेषण किया है:

---

148 (1988) 4 SCC 452

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) **अमरेश तिवारी** बनाम **लालता प्रसाद दुबे**[149] के मामले में, न्यायमूर्ति एस. एन. वरियावा ने इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से निम्नवत धारित किया:

> "12... इस विषय–वस्तु पर विधि राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (दांडिक) 98] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा सुस्थापित है। इस मामले में निम्नानुसार धारित किया गया है: (एससीसी पीपी. 428–29, पैरा 2)
> – जब कोई दीवानी वाद उस संपत्ति के लिए लंबित है जिसमें कब्जे का प्रश्न अंतर्वलित है और न्यायनिर्णीत किया गया है तो हम संहिता की धारा 145 के अधीन समानांतर दांडिक कार्यवाही आरंभ करने के लिए शायद ही कोई औचित्य देखते हैं इस स्थिति पर संदेह या विवाद करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि दीवानी न्यायालय का फैसला, वर्तमान जैसे मामलों में, दांडिक न्यायालय को आबद्ध करता है... समानांतर कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और दीवानी की डिक्री की स्थिति में दांडिक न्यायालय को अपनी अधिकारिता के प्रयोग की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, खासकर जब कब्जे की जांच दीवानी अदालत द्वारा की जा रही है और पक्षकार वाद के विलंबन की स्थिति में, अंतरिम आदेशों जैसे कि व्यादेश या संपत्ति की पर्याप्त सुरक्षा के लिए प्रापक की नियुक्ति के लिए दीवानी अदालत का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में हैं। मुकदमेबाजी की बहुलता पक्षकारों के हित में नहीं है और न ही सार्वजनिक समय को निरर्थक मुकदमेबाजी पर बर्बाद होने दिया जाना चाहिए। इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि समानांतर कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए..."

न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि **राम सुमेर पुरी महंत बनाम यूपी राज्य**[150] वाला सिद्धांत दीवानी अदालत द्वारा इस मुद्दे पर न्यायनिर्णयन किए जाने के बाद ही लागू होगा:

---

149 (2000) 4 SCC 440
150 (1985) 1 SCC 427

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"13. हम यह तर्क स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (दांडिक) 98] के मामले में दिया गया सिद्धान्त केवल तभी लागू होगा जब दीवानी न्यायालय ने पहले ही संपत्ति के संबंध में न्यायनिर्णयन कर दिया है और निष्कर्ष दे दिया है। हमारे विचार में राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (दांडिक) 98] का मामला यह निर्धारित कर रहा है कि मुकदमेबाजी की बहुलता से बचा जाना चाहिए क्योंकि यह पक्षकारों के हित में नहीं है और सार्वजनिक समय निरर्थक मुकदमेबाजी पर बर्बाद हो होगा। इस सिद्धांत पर यह कहा गया है कि जब दीवानी न्यायालय द्वारा कब्जे की जांच की जा रही है और पक्षकार विवाद के विलम्बन के दौरान संपत्ति के पर्याप्त संरक्षण के लिए दीवानी न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्थिति में हैं, तो समानांतर कार्यवाही अर्थात धारा 145 की कार्यवाही जारी नहीं रहनी चाहिए..."

इस विषय पर विचार करते हुए कि कि कब न्याय निर्णयन के लिए वाद संस्थित हो जाने पर धारा 145 के तहत कार्यवाही को आगे नहीं बढ़ायी जानी चाहिए, इस न्यायालय ने धारित किया:

"14. झुम्मामल बनाम मप्र राज्य [(1988) 4 SCC 452: 1988 SCC (Cri) 974] के मामले का अवलंब लिया गया है। यह कहा गया है कि यह प्राधिकारी केवल यह कहता है कि केवल इसलिए कि एक दीवानी वाद लंबित है इसका मतलब यह नहीं है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही शून्य हो जानी चाहिए। हमारे विचार में यह प्राधिकारी इस तरह का कोई व्यापक प्रस्ताव नहीं रखता है। इस मामले में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही का परिणाम एक निष्कर्षित आदेश हुआ था। इसके बाद, जो पक्ष हार गया, उसने सिविल कार्यवाही दायर किया। सिविल कार्यवाही दायर करने के बाद उसने प्रार्थना की कि धारा 145 की कार्यवाही में पारित अंतिम आदेश को रद्द कर दिया जाए। यह उस संदर्भ में है कि इस न्यायालय ने यह माना कि केवल इसलिए कि एक दीवानी वाद दायर किया गया था,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसका मतलब यह नहीं था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत पास आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। यह पूरी तरह से एक अलग स्थिति है। इस मामले में पहले दीवानी वाद दायर किया गया था। यथास्थिति का आदेश सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा पहले ही पारित कर दिया गया था। इसके बाद धारा 145 की कार्यवाही शुरू की गई। धारा 145 के तहत कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था। वर्तमान मामले के तथ्यों के आलोक में, हमारे विचार में, राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1985) 1 एससीसी 427: 1985 एससीसी (दांडिक) 98] में निर्धारित अनुपात पूरी तरह से लागू होता है। हम स्पष्ट करते हैं कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि हर मामले में जहां एक दीवानी वाद दायर किया जाता है, धारा 145 की कार्यवाही कभी नहीं चलेगी। यह केवल उन मामलों में है जहां दीवानी वाद कब्जे के लिए है या उसी संपत्ति के संबंध में स्वत्व की घोषणा के लिए है और जहां संबंधित संपत्ति के संरक्षण के बारे में अनुतोष के लिए आवेदन किया जा सकता है और दीवानी न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है, वहां धारा 145 के तहत कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि दीवानी न्यायालय स्वत्व के प्रश्न के साथ–साथ पक्षकारों के बीच कब्जे का फैसला करने के लिए सक्षम होते हैं और दीवानी न्यायालय के आदेश मजिस्ट्रेट के लिए बाध्यकारी होंगे।"

(प्रभाव वर्धित)

धारा 145 की कार्यवाही के संबंध में स्थापित विधिक स्थिति को रखने के पश्चात, अब हम वर्तमान मामले में तथ्यों पर विधि के प्रयोज्यता पर आते हैं। धारा 145 के प्रावधानों को केवल तभी लागू किया जा सकता है जब शांति भंग होने का खतरा हो। मजिस्ट्रेट की अधिकारिता स्वत्व के विवादित प्रश्नों के न्यायनिर्णयन तक विस्तृत नहीं है। मजिस्ट्रेट को स्थिति की तात्कालिकता को पूरा करने और शांति बनाए रखने का प्राधिकार दिया गया है। मजिस्ट्रेट का विनिश्चय इस बात तक सीमित है कि आदेश की तिथि पर किस पक्ष का वास्तविक कब्जा था। वास्तविक उद्देश्य यह तय करना है कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तविक भौतिक कब्जा, न कि भूमि पर स्वत्व द्वारा समर्थित कानूनी कब्जा, किसके पास है। धारा 145 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए, मजिस्ट्रेट को एक विवाद के अस्तित्व से संतुष्ट होना पड़ता है जिससे शांति भंग होने की आशंका हो। मजिस्ट्रेट द्वारा जांच एक सारांश प्रकृति की होती है, उद्देश्य इलाके में शांति सुनिश्चित करने का होता है जबकि विवाद के परिणामस्वरूप शांति भंग होने की आशंका होती है।

237. 29 दिसंबर, 1949 को अपर नगर मजिस्ट्रेट फैजाबाद–सह–अयोध्या द्वारा धारा 145 की उपधारा (1) के अधीन प्रारंभिक आदेश जारी किया गया। इसके साथ ही साथ स्थिति को आपात स्थिति मानते हुए उप–धारा (4) के दूसरे परंतुक के तहत कुर्की का आदेश भी पारित किया गया था। 5 जनवरी 1950 को, प्रापक ने प्रभार लिया और कुर्क वस्तुओं की एक सूची बनाई। मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसार, केवल दो या तीन पुजारियों को उस स्थान के अंदर जाने की अनुमति दी गई थी जहां मूर्तियों को भोग और पूजा जैसे धार्मिक कार्यों के लिए रखा गया था और आम जनता को केवल झरोखा दर्शन करने की अनुमति थी। धारा 145 के तहत कार्यवाही न्यायिक नहीं थी; प्रावधान के तहत अधिकार का प्रयोग करते समय मजिस्ट्रेट को पक्षकारों के सारवान अधिकारों से बरतने का अधिकार नहीं था। धारा 145 के तहत कार्यवाही एक सिविल न्यायालय में विचारण के समान नहीं है। संपत्ति पर स्वत्व और स्वामित्व के ठोस दावों का निर्णय एक सक्षम सिविल कार्यवाही में किया जा सकता है। धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां दीवानी न्यायालय के समक्ष विचारण की प्रकृति की नहीं हैं और केवल पुलिस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्यवाहियों जैसी हैं। मजिस्ट्रेट का आदेश पक्षकारों के सारवान अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता। संपत्ति की कुर्की और प्रापक की नियुक्ति के पश्चात, संपत्ति न्यायिक अभिरक्षा में आ गयी और प्रापक वास्तविक स्वामी के हित के लिए संपत्ति धारण की। इस प्रकार नियुक्त किए गए प्रापक को हितबद्ध पक्षकार नहीं कहा जा सकता। 30 जुलाई 1953 और 31 जुलाई 1954 के अपने आदेशों द्वारा मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही को स्थगित कर दिया और कुर्की के आदेश को जारी रखा।

238. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने ठीक ही यह मत व्यक्त किया कि वाद 1 के अंतरिम व्यादेश, जिसके द्वारा यथास्थिति और सेवापूजा जारी रखने का आदेश दिया गया था, को ध्यान में रखते हुए, धारा 145 के अधीन कार्यवाहियां समाप्त नहीं की जा सकती थीं क्योंकि इससे यथास्थिति बिगड़ जाती। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह मत व्यक्त किया:

> **"2244. ... दीवानी न्यायालय द्वारा पारित व्यादेश के अवलोकन से, हम पाते हैं कि 16 जनवरी, 1950 को अंतरिम व्यादेश आवेदन में की गई प्रार्थना के तहत एक सरल आदेश, पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए पारित किया गया था। इसके बाद 19 जनवरी, 1950 को, आदेश को संशोधित किया गया था, लेकिन दीवानी न्यायालय ने अपना स्वयं का प्रापक नियुक्त नहीं किया और सिटी मजिस्ट्रेट को यह निर्देश नहीं दिया कि वह किसी अन्य व्यक्ति या मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त प्रापक के बजाय न्यायालय के किसी अन्य प्रापक को कब्जा हस्तांतरित करे। इसके विपरीत, सूट–1 में, सिटी मजिस्ट्रेट को भी प्रतिवादियों में रखा गया था और दीवानी न्यायालय ने प्रतिवादियों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया। इसने यह भी स्पष्ट किया कि सेवा, पूजा जैसी चल रही थी, जारी रहेगी.... मजिस्ट्रेट इस आदेश को कार्यवाही छोडकर नजरअंदाज नहीं कर सकता था क्योंकि इसका परिणाम प्रापक की उन्मुक्ति और उसके प्रभार में रखी कुर्क संपत्ति की रिहाई**

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होता। दूसरे शब्दों में, इसे दीवानी न्यायाधीश के यथास्थिति के आदेश की अवहेलना करने वाला आदेश माना जा सकता था। यदि दीवानी न्यायाधीश ने अदालती प्रापक नियुक्त किया होता मजिस्ट्रेट को संपत्ति का कब्जा उसे देने का निर्देश दिया होता, तो स्थिति अलग हो सकती थी। इन परिस्थितियों में, यदि मजिस्ट्रेट ने कार्यवाही को नहीं छोड़ा, बल्कि केवल इसे स्थगित कर दिया, तो हमें उसकी ओर से कोई गलती नहीं मिली। इसके अलावा, जब संपत्ति को कुर्क करने और इसे प्रापक के प्रभार में रखने का मजिस्ट्रेट का पूर्व का आदेश, वादी को वाद दायर करने के लिए वादहेतुक नहीं दे सका, तो हम यह समझने में विफल हैं कि बाद का आदेश, जो केवल लंबित कार्यवाही को स्थगित करता है, कैसे कोई मदद करेगा। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कुर्की का आदेश स्वयं वादहेतुक नहीं बनता है और इसके विपरीत यह केवल पक्षकारों को चीजों से अवगत कराता है कि संबंधित संपत्ति के स्वत्व और/या कब्जे के बारे में कुछ विवाद है और सार्वजनिक शांति और व्यवस्था की गड़बड़ी की भी आशंका है। वादहेतुक पक्षकार को ज्ञात है कि कुछ विवाद मौजूद है न कि मजिस्ट्रेट का आदेश जिसके तहत उसने संपत्ति को कुर्क कर प्रापक के प्रभार में रखा।"

(प्रभाव वर्धित)

239. सुस्थापित विधिक स्थिति के आलोक में, जैसा कि इस अदालत के फैसलों से सामने आता है, संपत्ति की कुर्की के लिए मजिस्ट्रेट के 29 दिसंबर 1949 के आदेश के बाद, निर्मोही अखाड़ा को कब्जे और स्वत्व के लिए उद्घोषक वाद दायर करने से किसी ने नहीं रोका। मजिस्ट्रेट का आदेश कब्जे के विरोधी अधिकारों या किसी पक्ष के दावे के गुणागुण का विनिश्चय या न्याय निर्णयन नहीं करता। संपत्ति के स्वत्व और कब्जे के संबंध में सारवान अधिकारों पर केवल दीवानी अदालत के समक्ष दीवानी कार्यवाही में विचार किया जा सकता था। मजिस्ट्रेट के पास स्वामित्व और स्वत्व के प्रश्नों का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं होती। धारा 145 के तहत कार्यवाही के परिणामस्वरूप वास्तविक स्वामी के स्वत्व या कब्जे पर भी कोई निर्णय नहीं हो सकता था क्योंकि यह दीवानी न्यायालयों के अनन्य क्षेत्र के भीतर है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्मोही अखाड़ा इससे बचाव नहीं कर सकता कि धारा 145 की कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया और परिणामस्वरूप परिसीमा प्रारम्भ नहीं हुई। मजिस्ट्रेट ने सूट 1 में यथास्थिति बनाए रखने के संबंध में दीवानी न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन किया और तदनुसार, धारा 145 के तहत कार्यवाही को स्थगित कर दिया।

परिसीमा अधिनियम 1898 के अनुच्छेद 142 के तहत मामला

240. अनुच्छेद 142 अचल संपत्ति के कब्जे के लिए किसी वाद को शासित करता है जब कब्जे वाले वादी को बेकब्जा कर दिया गया हो या "कब्जा अवरूद्ध हो गया हो।" अनुच्छेद 142 के अधीन परिसीमा काल 12 वर्ष होता है। समय बेकब्जा या अवरुद्ध होने की तारीख से प्रारम्भ होता है। निर्मल अखाड़ा का दावा है कि वादहेतुक 5 जनवरी 1950 उत्पन्न हुआ और वाद जो 17 दिसंबर 1959 को संस्थित किया गया, बारह वर्ष की परिसीमा के भीतर है।

बेकब्जा होने या कब्जा अवरुद्ध होने की अवधारणाएं

241. निर्मोही के वाद में जन्मस्थान मंदिर पर कब्जा करने के संबंध में, विनिर्दिष्ट अनुतोष के अलावा कब्जा होने या कब्जा अवरुद्ध होने की अवधारणाओं की वर्तमान मामले के तथ्यों में प्रयोज्यता संबंधी एक और आयाम पर विचार किया जाना है। परिसीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

142 में अचल संपत्ति के कब्जे के लिए वाद शामिल है। इसमें अचल संपत्ति के कब्जे के लिए उन वादों को शामिल किया गया है जो दो विवरणों में से किसी एक के अन्तर्गत आते हैं। पहला वह है जब संपत्ति के कब्जे में रहते हुए वादी को बेकब्जा कर दिया गया हो। दूसरा एक ऐसी स्थिति से संबंधित है जब कब्जे में रहते हुए वादी का कब्जा अवरूद्ध हो गया हो। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 142 जो अचल संपत्ति के कब्जे के लिए वाद से संबंधित है, इस शर्त के साथ अर्हता लागू होता है कि वादी को उस समय संपत्ति के कब्जे में होना चाहिए जब दोनों में से कोई भी घटना हुई हो– अर्थात् बेकब्जा होने या कब्जा अवरुद्ध होने घटना, जैसा भी मामला हो। अनुच्छेद 142 ने वाद के विवरण को केवल अचल संपत्ति पर कब्जा करने के लिए वाद तक सीमित नहीं किया है। प्रावधान में वादी के पूर्व कब्जे की शर्त और या तो बेकब्जा या वादी के कब्जे में रहते कब्जा अवरुद्ध होने की शर्त शामिल है। परिसीमा काल 12 वर्ष होता है। समय बेकब्जा या अवरुद्ध होने की तारीख से प्रारम्भ होता है।

242. अनुच्छेद 144 एक अवशिष्ट उपबंध है जो स्थावर संपत्ति पर कब्जा या स्थावर संपत्ति में किसी हित के लिए वाद से संबंधित है, जो विनिर्दिष्ट रूप से अन्यत्र उपबंधित नहीं है। अवशिष्ट उपबंध के रूप में, अनुच्छेद 144 अचल संपत्ति पर कब्जा करने के लिए वादों पर लागू होता है जो ऐसे विवरण के अंतर्गत नहीं आते जो अनुसूची के अनुच्छेदों में विशेष रूप से शामिल हों. अनुच्छेद 144 के मामले में, परिसीमा काल 12 वर्ष और समय तब प्रारम्भ होता है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो गया हो।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

243. जैसा कि ऊपर देखा गया है, अनुच्छेद 142 में दो अलग–अलग अवधारणाएं शामिल हैं। पहला बेकब्जा का है और दूसरा कब्जे का अवरुद्ध होने संबंधी है। बेकब्जा का तात्पर्य बेदखली है; इसमें एक ऐसी स्थिति शामिल है जहां किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के कब्जावान होने से उसके कब्जे से वंचित कर दिया जाता है। बेकब्जा का अर्थ कब्जा के अधिकार से वंचित करना है जो स्वैच्छिक नहीं है और इसमें निष्कासन का कार्य शामिल है जो उस व्यक्ति को विस्थापित करता है जिस का संपत्ति पर कब्जा था। बेकब्जा शब्द को **ब्लैक लॉ डिक्शनरी**[151] में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

> "संपत्ति पर उचित कब्जे के अधिकार से वंचित करना, या निष्कासन; ऐसे व्यक्ति से जो विधितः उसका हकदार हो भूमि छीनना या कब्जा रखना; निष्कासन।

'अवरुद्ध होने' और 'बेकब्जा' शब्द को **पी रामानाथ अय्यर** के **एडवांस लॉ लेक्सिकॉन** [152] में परिभाषित किया गया है:

> "अवरुद्ध होने का अर्थ है कि कब्जे वाला व्यक्ति बाहर जाता है और उसके पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कब्जा कर लिया जाता है इसका तात्पर्य यह है कि कब्जे के सभी संकेत वापस ले लिए गए हैं।"
> "बेदखली या निष्कासन का अर्थ है किसी सही मालिक से भूमि का कब्जा गलत तरीके से ले लेना। बेदखली केवल उन मामलों पर लागू

---

151 Black's Law Dictionary, Tenth Edition at p. 572

152 P Ramanantha Aiyar's Advanced Law Lexicon, Fifth Edition at pgs. 1537 and 1563

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होता है जहां भूमि के मालिक को किसी व्यक्ति के कार्य से, भूमि पर अपने प्रभुत्व से या इसके मुनाफे की प्राप्ति से पूरी तरह से वंचित किया गया है । एक व्यक्ति को तब तक अचल संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है जिस समय तक वह उसके कब्जे में हो।"

बेदखली एक निश्चित समय पर एक ऐसे व्यक्ति के पहले से मौजूद कब्जे की उपधारणा करता है जिसे बाद में बेदखल कर दिया गया हो। एक ऐसे को व्यक्ति जिसके पास कब्जा न हो, उसे बेदखल नहीं कहा जा सकता है। दूसरी ओर अवरोध, कब्जे को छोड़ने की धारणा का प्रतीक है और कभी–कभी उस व्यक्ति के स्वैच्छिक कार्य के रूप में वर्णित किया जाता है जो अपने स्वयं के कब्जे छोड़ दिया हो। **जी डब्ल्यू पेटन**[153] ने "न्यायशास्त्र" पर अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ में कहा है "कि अंग्रेजी भाषा में अधिकांश शब्दों की तरह, कब्जा शब्द के विभिन्न उपयोग और विभिन्न अर्थ होते हैं, जो संदर्भ और उपयोग के आधार पर होता है।" लेखक हमें बताता है कि "शब्द के लिए एक उपयुक्त, पूर्ण अर्थ की खोज का निष्फल होना संभाव्य है।"

ब्लैक लॉ डिक्शनरी[154] ने 'कब्जा' शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है :

"1. संपत्ति को अपने अधीन रखने या धारण करने का तथ्य; संपत्ति पर प्रभुत्व का प्रयोग।
2. वह अधिकार जिसके तहत कोई अन्य सभी को छोड़कर किसी चीज पर नियंत्रण कर सकता है; एक भौतिक वस्तु के अनन्य उपयोग के लिए एक दावे का निरंतर प्रयोग।"

---

153 G. W. Paton and David P. Derham, A Text–book of Jurisprudence, 3rd Edition, Oxford: Clarendon Press (1964)

154 Black's Law Dictionary, Tenth Edition at page 1351

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुपरिंटेंडेंट एंड रेमेम्बरेंस ऑफ लीगल अफेयरप पश्चिम बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा[155] के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि "कब्ज़ा एक बहुरूपी शब्द है" और इसलिए, हर संदर्भ में लागू होने वाले अर्थ संभव नहीं। सालमंड के न्यायशास्त्र से सन्दर्भ देते हुए, न्यायालय ने कहा कि कब्जे का अर्थ एक अधिकार और एक तथ्य है; संपत्ति के अधिकार और वास्तविक इरादे के तथ्य से संलग्न आनंद का अधिकार। एक अवधारणा के रूप में कब्जा का अर्थ है– कब्जाधीन वस्तु और कब्जे का आशय। पहले में कब्जे की वस्तु के प्रयोग की शक्ति और ऐसी अपेक्षा के आधार का अस्तित्व है कि कब्जे के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं होगा। दूसरे में कब्जा की गयी वस्तु के अन्य प्रयोग को सुलभ बनाने की उपधारणा है।

244. श्याम सुंदर प्रसाद बनाम राज पाल सिंह[156] के मामले में, इस अदालत ने तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ के माध्यम से बोलते हुए परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 142 और 144 के बीच विस्तृत अंतर स्पष्ट किया। न्यायालय ने धारित किया :

> "3... पुराने परिसीमा अधिनियम के अधीन कब्जे के लिए सभी वाद, चाहे वे हक के आधार पर हों या पिछले कब्जे के आधार पर अनुच्छेद 142 द्वारा शासित थे, जिसमें वादी के कब्जे में रहते हुए उसे बेदखल कर दिया गया था या अवरुद्ध कर दिया गया था। जहां मामला वादी की बेदखली का या उसके कब्जा के अवरुद्ध होने का न रहने पर, अनुच्छेद 142 लागू नहीं हुआ। केवल हक के आधार पर वाद, न कि कब्जा या

---

155 (1979) 4 SCC 274

156 (1995) 1 SCC 311

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कब्जा अवरुद्ध होने के आधार पर, अनुच्छेद 144 द्वारा शासित थे जब तक कि वे विनिर्दिष्ट रूप से किसी अन्य अनुच्छेदों द्वारा उपबंधित नहीं किए गए हों। इसलिए, अनुच्छेद 142 की प्रयोज्यता के लिए, वाद केवल स्वत्व के आधार पर नहीं बल्कि कब्जे के आधार पर भी हो।"

245. वाद को अनुच्छेद 142 की परिधि के भीतर लाने के लिए निम्नलिखित अपेक्षाएं पूरी होनी चाहिए :

(i) वाद स्थावर संपत्ति के कब्जे के लिए होना चाहिए;
(ii) वादी को यह स्थापित करना होगा कि उसका संपत्ति पर कब्जा था; और
(iii) संपत्ति के कब्जे में रहते हुए वादी को बेदखल कर दिया गया हो या कब्जा अवरुद्ध हो गया हो।

अनुच्छेद 142 को लागू होने के लिए, इन अपेक्षाओं को संचयी रूप से स्थापित किया जाना चाहिए।

246. निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वाद में इस बात की उपधारणा की गयी है कि जन्मस्थान, जिसे आमतौर पर जनमभूमि के रूप में जाना जाता है, जो भगवान राम का जन्म–स्थान है " निर्मोही अखाड़ा का है और हमेशा निर्मोही अखाड़ा का था", जिसने इसे "प्रबंधित किया और चढ़ावा प्राप्त किया।" वादी के अनुसार, मंदिर तब से निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में है। मुकदमे में शिकायत यह है कि धारा 145 के तहत कुर्की के आदेश के परिणामस्वरूप वादी गलत तरीके से अपने प्रबंधन और मंदिर के प्रभार से वंचित कर दिया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गया और मजिस्ट्रेट द्वारा मुस्लिम पक्ष के साथ मिलकर कार्यवाही लंबे समय खींची गई। निर्मोही अखाड़ा प्रापक को प्रबंधन और प्रभार से हटाने और इसे वादी को देने के लिए प्रार्थना करता है। अनिवार्य रूप से, दलील के पैरा 2 में "संबंधित" है और पैरा 4 में "कब्जा" शब्द के आधार पर ही निर्मोही अखाड़ा ने वाद को अनुच्छेद 142 (और इसलिए, अवशिष्ट अनुच्छेद 120 के दायरे से बाहर) के दायरे में लाने की मांग की है।

247. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन, जो सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत थे, ने यह प्रदर्शित करने के लिए एक श्रमसाध्य प्रयास किया है कि कैसे निर्मोही अखाड़ा की ओर से दलीलों से परे जाने का सावधानीपूर्वक प्रयास किया गया है और विशेष रूप से अनुतोष जो वाद में मांगा गया है, से लिखित कथन में वाद के विषय क्षेत्र को बढ़ाकर।

248. हमारे विचार में, यह वाद 3 के दायरे को निर्धारित किया जाना यह दिखाने के लिए शिक्षाप्रद होगा, कि कैसे लिखित कथन (काउंसिल के शिल्प के माध्यम से) वाद को परिसीमा के दायरे में लाने के लिए इसकी प्रकृति को बदलने का प्रयास करता है। पहले सिद्धांत के रूप में, वाद को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। हालाँकि, यह वाद के वादी को अपील में लिखित कथन के आधार पर इसकी प्रकृति को बदलने के लिए अनुमति देने से काफी अलग है। केवल सीपीसी के आदेश VI नियम 17 के तहत एक संशोधन द्वारा ही एक वाद की सामग्री में कोई परिवर्तन हो सकता है। इसके बजाय, जैसा कि हम देखेंगे, लिखित कथन में वाद की सामग्री को नजरअंदाज करने का सरल

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रयास किया गया है। यह अनुमन्य नहीं है। श्री एस के जैन, वाद 3 में वादी की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी लिखित कथन के पैरा 13 (डी) में निम्नलिखित तर्क दिया है :

> "(डी) **वादी– निर्मोही अखाड़ा न केवल संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे का दावा कर रहा था** अर्थात मुख्य मंदिर या आंतरिक कोर्टयार्ड, बल्कि "जन्मस्थान" के साथ–साथ भगवान राम चंद्र, लक्ष्मणजी, हनुमानजी और सालिग्रामजी की मूर्तियों का प्रबंधक (सेवायत) होने भी दावा कर रहा था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

लिखित कथन के पैरा 17 (जे) में, यह कहा गया है:

> "(जे) चूंकि संपत्ति को कुर्क कर दिया गया था और प्रापक के अधीन कर दिया गया था, अतः **न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह हक के विषय का विनिश्चित करे** और न्यायनिर्णीत करे और वाद को परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं किया जा सकता। संपत्ति को सही मालिक को वापस करना चाहिए और अनन्त समय के लिए विधित अभिरक्षा में नहीं रह सकती। इसलिए प्रापक से कब्जे की प्राप्ति के लिए वाद में, परिसीमा का सवाल कभी नहीं उठ सकता है और इस तरह के वाद (sic) कभी भी परिसीमा से बाध्य नहीं हो सकते हैं जब तक कि ऐसी संपत्ति कम से कम एक ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रापक के तहत न हो जिससे कब्जा लिया गया था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

फिर से, पैरा 18 (के) में, यह कहा गया है:

> "(के) चूंकि संपत्ति प्रापक के नियंत्रण में है, इसलिए वास्तविक स्वामी द्वारा प्रापक द्वारा प्राप्त आय के लिए के लिए फिर भी वाद द्वारा दायर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जा सकता है और इस तरह के वाद में, जिसके लिए वादहेतुक तब बनता है जब कोई लाभ प्राप्त होता है,एक सतत वाद हेतुक बनता है। प्राप्त लाभ के हक के विषय का विनिश्चय करते समय स्वत्व के प्रश्न का न्याय निर्णयन करना होगा और न्याय निर्णयन पर प्रापक को वास्तविक स्वामी को कब्जा देना होगा।

(i) एल्लप्पा नाइकेन बनाम लक्ष्मण नाइकेन ए आई आर 1949 मद्रास 71

(ii) वेंकटगिरि के राजाब बनाम इस्कापल्ली सुब्बैया, आईएलआर 26 मद्रास 410"

(प्रभाव वर्धित)

फिर, पैरा 18 (एम) में, यह कहा गया है:

"(एम) **वादी– निर्मोही अखाड़ा न केवल संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे का दावा कर रहा था अर्थात मुख्य मंदिर या आंतरिक कोर्टयार्ड,** बल्कि "जन्मस्थान" के साथ–साथ भगवान राम चंद्र, लक्ष्मणजी, हनुमानजी और सालिग्रामजी की मूर्तियों का **प्रबंधक (सेवायत) होने भी दावा कर रहा था**। यह उन कारणों से भी कहा गया है जिसे अदालत का समर्थन मिला है कि वाद ओओएस नंबर 5, 1989 परिसीमा के भीतर है क्योंकि देवता एक स्थायी नाबालिग है, निर्मोही अखाड़ा के वाद को भी परिसीमा द्वारा बाध्य नहीं माना जा सकता।"

(प्रभाव वर्धित)

अंत में, पैरा 18 में यह कहा गया है कि :

"18. वाद में वादी से "संबंधित" संपत्ति का दावा दोहरे तर्क पर आधारित है–(i) यह कि संपत्ति प्रबंधक/सेवायत की क्षमता में वादी की है; और (ii) **यह कि वादी के कब्जे में होने के कारण धारा 110 साक्ष्य अधिनियम के मद्देनजर अधिकार प्राप्त होता है और कब्जे में रहने और**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> **जारी रखने का हकदार है** जब तक कि प्रतिवादी वादी की तुलना में बेहतर शीर्षक नहीं दिखा सकता है।
>
> (प्रभाव वर्धित)

यह वाद में दी गयी दलील से पूरी तरह भिन्न है।

249. "संबंधित" शब्द कला का शब्द नहीं है और इसकी विषयवस्तु संदर्भ के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। **राजा मोहम्मद अमीर अहमद खान बनाम सीतापुर नगरपालिका बोर्ड** के मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने विचार किया कि क्या एक किरायेदार द्वारा "उससे संबंधित" पद का प्रयोग सरकार के प्रत्यावर्तन हित के अस्वीकरण के लिए किया गया था। उस संदर्भ में, न्यायमूर्ति एन राजगोपाल अयंगर ने तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ की ओर से धारित किया:

> "24...यद्यपि कि "संबंधित" पद पूर्ण स्वामित्व का भाव व्यक्त करने में सक्षम है फिर भी उसी भाव तक सीमित नहीं है। पूर्ण स्वामित्व से कम हित धारण भी उस शब्द द्वारा व्यकत हो सकता है। वेबस्टर में "संबंधित" शब्द को अन्य बातों के साथ साथ "स्वामित्व" और "कब्ज़ा" के रूप में व्याख्यायित किया गया है। शब्द का सटीक अर्थ केवल दस्तावेज़ को समग्र रूप में पढ़कर और उस संदर्भ में जाकर ही पाया जा सकता है।"

मामले के तथ्यों पर, यह कहा गया कि किरायेदारी की परिस्थितियां दावे की प्रकृति का निर्धारण करने के लिए सारवान थीं। किरायेदारी की उत्पत्ति निश्चित रूप से ज्ञात नहीं थी, पट्टेदार ने संरचनाओं का निर्माण किया था और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपीलकर्ता और उसके पूर्वज तीन चौथाई शताब्दी से अधिक समय से संपत्ति का आनंद ले रहे थे। अंतरण प्रभावी हुआ और संपत्ति विरासत का विषय थी। इस आशय का एक सार्वजनिक दस्तावेज था कि यद्यपि यह सरकारी भूमि थी, लेकिन एक स्थायी न्यायसंगत और हस्तांतरणीय अधिकार था। इस संदर्भ में, यह कहा गया कि "संबंधित" शब्द का उपयोग सरकार के स्वत्व के निराकरण के लिए नहीं किया गया था। इसी तरह, न्यायालय ने कहा कि स्वामी शब्द का प्रयोग पूर्ण अर्थों में स्वामित्व को निरूपित नहीं करता ताकि वह किरायेदारी के त्याग या अस्वीकरण के बराबर हो जाय :

> "25... यद्यपि अपने संदर्भ से हटाकर इन शब्दों का अर्थ पूर्ण स्वामित्व के रूप में किया जा सकता है, हमारे विचार से उस स्थिति जिसमें ये होते हैं और अपीलार्थी और उसके पूर्वजों द्वारा इस संपत्ति के उपभोग को ध्यान में रखकर इसे पूर्ण स्वामित्व के निर्विवाद दावे के रूप में नहीं माना जा सकता कि वह इस तरह की स्थायी किरायेदारी को जब्त करने के लिए पर्याप्त हो। इस संबंध में यह देखा जा सकता है कि यह उपभोग सरकार की सहमति से बताया गया है। यदि दावे के स्वामी के रूप में सरकार के अधिकारों के विरोध में एक पूर्ण मालिक के रूप में समझा जाता था, तो इस तरह के उपभोग के लिए सरकार की सहमति का संदर्भ पूरी तरह से अनुचित होगा। सहमति की प्रासंगिकता केवल तभी होगी जब सरकार का संपत्ति में हित होगा और इसलिए, हम प्रस्तर का अर्थ स्थायी, हस्तांतरणीय और विरासती, विशेष रूप से हस्तांतरण का अधिकार जो नगरपालिका द्वारा अस्वीकार किया जा रहा था, को सरकार की सहमति से प्रयुक्त कहा गया। यह हमारे द्वारा यह कहे जाने का एक अतिरिक्त कारण है कि, अधिक से अधिक, दावा किरायेदारी जब्त करने के लिए निर्विवाद नहीं था।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

250. स्वर्गीय नवाब सर मीर उस्मान अली खान बनाम वेल्थ टैक्स कमिश्नर [158] के मामले में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ ने पद का अर्थ धन कर अधिनियम 1957 की धारा 2 (एम) में "मूल्यांकन तिथि पर निर्धारिती से संबंधित" किया। जिस वैधानिक प्रावधान की व्याख्या की जा रही थी, उसके संदर्भ में, इस न्यायालय ने यह माना कि कानूनी अधिकार के बिना केवल कब्जा संपत्ति को नेट वेल्थ पद के अर्थ के भीतर नहीं लाएगा, क्योंकि यह एक संपत्ति नहीं होगी जो निर्धारिती की है। न्यायालय ने **राजा मोहम्मद** के निर्णय का सन्दर्भ लेते हुए कहा कि यद्यपि संबंधित वाक्यांश एक पूर्ण स्वत्व को निरूपित करने में सक्षम था, फिर भी यह उस अर्थ को व्यक्त करने तक सीमित नहीं था। मामले में, न्यायालय ने धारित किया:

> "29... हमने उन मामलों पर चर्चा की है जहां "संबंधित" और "स्वामित्व" के बीच विभेद किया गया है। निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं : (1) निर्धारिती कब्जे से अलग हो गया था जो स्वामित्व का एक आवश्यक भाग है। (2) निर्धारिती केवल क्रेता और निर्धारिती से कब्जा वापस लेने के लिए अनधिकृत था, जब तक कि स्वत्व के दस्तावेज को निष्पादित नहीं किया जाता है, दूसरों के खिलाफ कब्जे के लिए मुकदमा करने का हकदार था अर्थात इस मामले में कब्जेवान क्रेता के अलावा । वास्तव में स्वत्व निर्धारिती में निहित था। (3) क्रेता विक्रेता के विरुद्ध उचित कब्जावान था (4) तथापि, विधिक हक विक्रेता का था (5) निर्धारिती के पास ऐसे अधिकारों की समग्रता नहीं थी जिससे उसका स्वत्व बनता हो बल्कि इसका अंश था और एक महत्वपूर्ण अंश।"

डॉ. धवन की सहायता से दिये गए इन दोनों निर्णयों से संकेत मिलता है कि "संबंधित" पद को संदर्भ के आधार पर अर्थ दिया जाना चाहिए। किसी दिए

---

158 1986 Supp SCC 700

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गए संदर्भ में, शब्द एक अर्थ पूर्ण स्वत्व कर सकते हैं लेकिन अन्य तथ्यात्मक स्थितियों में शब्द कुछ ऐसा व्यक्त कर सकता है जो पूर्ण हित से कम हो।

251. वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि "संबंधित" पद का प्रयोग निर्मोही अखाड़ा द्वारा केवल प्रबंधन और प्रभार के संदर्भ में किया गया है। निर्मोही अखाड़ा का पूरा मामला धारा 145 के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश द्वारा उसके सेवायती अधिकारों से वंचित करने का है। निर्मोही अखाड़ा का दावा राज्य के खिलाफ है ताकि वादी को देवता को सेवाएं प्रदान करने के सुखाधिकार करने में सक्षम बनाया जा सके। दूसरे शब्दों में निर्मोही अखाड़ा प्रबंधन और प्रभार के संदर्भ में अनुषंगिक अधिकारों का दावा करता है। वास्तव में, वाद 3 मांगी गये अनुतोष से सबसे महत्वपूर्ण पहलू जो उभरता है वह "उक्त जन्मभूमि मंदिर के प्रबंधन और प्रभार से पहले प्रतिवादी को हटाने और उसे वादी को देने के लिए डिक्री है।" इसलिए निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर किया गया वाद 3 कब्जे के लिए वाद नहीं है जो अनुच्छेद 142 के अर्थ और दायरे में आता है।

252. निर्मोही अखाड़ा ने सेवायत होने का दावा करते हुए वाद 3 संस्थित किया है।

सतत अपकृत्य

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

256. श्री एस के जैन द्वारा निर्मोही अखाड़े की तरफ से किया गया आग्रह वैकल्पिक तर्क जो परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 23 के प्रावधानों पर आधारित है। यह तर्क दिया गया है कि निर्मोही अखाड़े के प्रबंधन और प्रभार के 'पूर्ण' अधिकार के निषेध या अवरोध सतत अपकृत्य है और धारा 23 के आधार पर प्रत्येक दिन एक नया वाद हेतुक उत्पन्न हुआ। धारा 23 इस प्रकार है:

> "23. उल्लंघन और अपकृत्यों को जारी रखना – अनुबंध के सतत उल्लंघन के मामले में और अनुबंध से सतत अपकृत्य होने के मामले में, अवधि के समय में एक नई परिसीमा ऐसे प्रत्येक क्षण पर प्रारम्भ हो जाती है जिसके दौरान उल्लंघन या अपकृत्य, जैसा भी मामला हो, जारी रहता है।"

257. श्री एस. के. जैन का तर्क है कि कुर्की के आदेश पर जन्मस्थान मंदिर की संपत्ति से संबंधित अधिकारों के साथ प्रभार और प्रबंधन को हटा दिया गया है और ये वाद 3 के विषय वस्तु हैं। यह आग्रह किया गया कि यह एक सतत अपकृत्य संस्थित करता है जब तक कि उन्हें बहाल नहीं किया जाता। इस संदर्भ में, **सर सेठ हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह**[163] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर तर्क के समर्थन में अवलम्ब लिया गया है कि प्रार्थना और पूजा में अवरोध एक सतत अपकृत्य है। तर्क यह है कि वादीगणों का अवरोध *भोग* और प्रार्थनाओं को स्वतंत्र रूप से प्रबंधित करने का अधिकार एक प्रापत की नियुक्ति के परिणामस्वरूप धारा 23 के अर्थ के तहत सतत अपकृत्य है और इसलिए अवरोध का प्रत्येक कार्य एक नवीन हेतुक और परिसीमा के लिए एक नया प्रारंभिक बिंदु प्रदान करता है।

---

163 (1933) 38 LW 306 (PC)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

258. हुकुम चंद के निर्णय में पारसनाथ पहाड़ी की पूजा के अधिकार को लेकर श्वेताम्बरी और दिगंबरी जैन संप्रदायों के बीच प्रतिवाद शामिल था। श्वेताम्बरों ने पहाड़ी में पालगंज के राजा का मालिकाना हक खरीदकर अधिगृहीत कर लिया। उन्होंने मंदिर के अन्य कर्मचारियों के लिए धर्मशालाओं के निर्माण के अलावा चौकीदार के लिए पहाड़ी के ऊपर आवास का निर्माण प्रारम्भ किया। दिगंबरों ने श्वेताम्बरों के विरूद्ध यह दावा करते हुए इस पर आपत्ति जताई जिन्होंने वाद संस्थित किया कि संपूर्ण पहाड़ी पवित्र थी। पुराने पवित्र स्थानों में *चरण* थे जिनमें सन्तों के पदचिह्नों की छाप थी और उनमें कमलाकृति थी। श्वेताम्बरों ने *चरण* का एक अन्य रूप विकसित किया जिसका विरोध दिगम्बरों ने किया जिन्होंने इसे मानव शरीर के एक अलग हिस्से के रूप में पूजा करने से इनकार कर दिया था। दोनों अधीनस्थ न्यायालय ने यह अवधारित किया कि मंदिरों में चरणों को रखने का कार्य गलत था जिसके संबंध में दिगम्बरी शिकायत करने के हकदार थे। प्रिवी काउंसिल के समक्ष उठने वाले प्रश्नों में से एक अधीनस्थ न्यायाधीश के निष्कर्ष के संबंध में था कि दिगंबरों द्वारा किया गया मुकदमा परिसीमित था। उस संदर्भ में, प्रिवी काउंसिल के निर्णय को सुनाते हुए सर जॉन वालिस ने यह अवधारित किया कि:

> "जहां तक परिसीमा का संबंध है, अधीनस्थ न्यायाधीश ने अपर्याप्त आधारों पर माना है कि छह वर्ष के भीतर किए गए कार्यों की शिकायत की गई थी ताकि दावे का यह भाग अनुच्छेद 120 द्वारा वर्जित न की जा सके, परन्तु उन्होंने यह भी अवधारित किया कि उस अनुच्छेद के तहत वर्जन नहीं लगाई जा सकती क्योंकि यह सतत अपकृत्य था, जिसके

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कारण परिसीमा अधिनियम की धारा 23 के तहत अवधि के समय में एक नई परिसीमा ऐसे प्रत्येक क्षण पर प्रारम्भ हो जाती है जिसके दौरान अपकृत्य जारी रहता है। दूसरी ओर उच्च न्यायालय की राय थी कि यह सतत अपकृत्य नहीं था और अनुच्छेद 120 के तहत दावा वर्जित था। उनके लॉर्डशिप की राय में अधीनस्थ न्यायाधीश यह अवधारित करने में सही थे कि जिन कार्यों की शिकायत की गई थी वे सतत अपकृत्य थे और परिणामस्वरूप यह दावे का यह भाग वर्जित नहीं है।कृत्रिम रूप से जल धारा को मोड़ने और वादी की निचली पड़ी भूमि की जल आपूर्ति को काटने के इस प्रश्न को *राजरूप कौर* बनाम *अबुल हुसैन* [(1880) आई.एल.आर 6 कलकत्ता 394 : एल.आर. 7 आई.ए. 240] मामले में इस बोर्ड के निर्णय द्वारा शामिल किया गया है।"

259. उपर्युक्त उद्धरण के तर्क के समर्थन में अवलम्ब लिया गया है कि पूजा के अधिकार से वंचित करना सतत अपकृत्य है। गौरतलब है कि प्रिवी काउंसिल ने **महारानी राजरूप कौर** बनाम **सैयद अब्दुल हुसैन**[164] के अपने पूर्व के फैसले पर अवलम्ब लिया जिसमें वादीगणों से संबंधित भूमि की जलापूर्ति को काटकर कृत्रिम जल–धारा का अधिकार शामिल किया गया था। प्रिवी काउंसिल ने **महारानी राजरूप कौर** मामले में सर मोंटेग ई स्मिथ के माध्यम से कहते हुए यह अवधारित किया कि वादी का जल प्रवाह में हस्तक्षेप अवरोधों को जारी रखने की प्रकृति में था:

"यदि न्यायाधीशों का मतलब वास्तव में ऊपरोक्त अनुच्छेद 34 की परिसीमा को लागू करने के लिए है तो उनका निर्णय स्पष्ट रूप से गलत है; जिन अवरोधों के लिए वादी के महल में जलप्रवाह में अवरोध किया गया था वह निरंतर बाधा की प्रकृति में थे, जो कि वाद हेतुक *दिन प्रतिदिन* नवीनीकरण किया गया था जब तक कि इस तरह के हस्तक्षेप के कारण अवरोधों को जारी रखने की अनुमति दी गई थी। वास्तव में क़ानून की धारा 24 में इस आशय का स्पष्ट प्रावधान है।"

---

164 (1879–80) 7 IA 240

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

260. प्रत्येक मामले में शामिल तथ्यात्मक संदर्भ के आधार पर , इस न्यायालय के निर्णयों के माध्यम से सतत अपकृत्य का गठन करने की धारणा विकसित हुई है। **बिहार राज्य** बनाम **देवकरन नेन्शी**[165] में दो न्यायाधीशों का निर्णय खदान अधिनियम 1952 की धारा 66 और 79 के प्रावधानों के साथ विचार किया है। धारा 66 रिटर्न दाखिल करने के लिए जुर्माने का उपबंध करती है जो 1000/– रुपए तक हो सकती है। हालाँकि, धारा 79 में निर्धारित है कि कोई भी न्यायालय किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं लेगी जब तक कि कथित अपराध होने की तिथि से छह माह के भीतर या जिस दिन कथित अपराध निरीक्षक के संज्ञान में आया था उस तिथि से छह माह के भीतर, जो भी बाद में हो, शिकायत दर्ज नहीं की जाती है। हालांकि, स्पष्टीकरण यह निर्धारित करता है कि यदि अपराध एक सतत अपराध है तो परिसीमा की परिकलन प्रत्येक समय बिन्दु के संदर्भ में की जाएगी जिसके दौरान अपराध होना जारी रहा। विनियमन 3 के तहत, पिछले वर्ष में वार्षिक रिटर्न प्रत्येक वर्ष जनवरी के इक्कीस दिन पूर्व या उससे पहले दायर करने की आवश्यकता थी। परिसीमा के प्रश्न से निपटते हुए इस न्यायालय ने विचार किया कि क्या रिटर्न दाखिल करने में विफलता से जुड़ा अपराध धारा 79 के मूल भाग द्वारा शामिल किया गया है (जिस मामले में शिकायत का समय वर्जित था) या स्पष्टीकरण द्वारा एक सतत अपराध शामिल है। न्यायमूर्ति जे. एम. शेलत ने पीठ के लिए अवलोकन करते हुए कहा कि:

> "5. सतत अपराध वह है जो निरंतरता के लिए संवेदनशील और प्रभेद्य है जो एक बार और प्रत्येक के लिए प्रतिबद्ध है। यह उन अपराधों में से

---

165 (1972) 2 SCC 890

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक है जो किसी नियम या इसकी आवश्यकता का अनुपालन करने या आज्ञा का पालन करने में विफलता से उत्पन्न होता है और जिसमें जुर्माना शामिल होता है, जिसके लिए दायित्व तब तक जारी रहता है जब तक कि नियम या इसकी आवश्यकता का पालन अथवा अनुपालन नहीं किया जाता है। प्रत्येक अवसर पर कि इस तरह की अवज्ञा अथना गैर–अनुपालन होता है और फिर से अपराध कारित होता है। दो प्रकार के अपराधों के बीच का अंतर कार्य अथवा विलोपन के बीच होता है जो एक बार और प्रत्येक के लिए एक अपराध बनता है और कार्य अथवा चूक जो सतत होता रहता है और इसलिए प्रत्येक अवसर पर एक नया अपराध होता है जिस पर यह जारी रहता है।"

न्यायालय ने अवधारित किया कि संबंधित वर्ष के 21 जनवरी या उससे पूर्व वार्षिक रिटर्न दाखिल करने में विफलता पर उल्लंघन हुआ और उस दिन तक स्वामी पूर्ण वार्षिक रिटर्न प्रस्तुत करने में विफल हो गया था। न्यायालय ने अवधारित किया कि यह प्रावधान निर्धारित नहीं करता है कि स्वामी अथवा प्रबंधक दोषी होगा यदि वह रिटर्न प्रस्तुत किए बिना खदान को जारी रखता है या यह अपराध तब तक जारी रहता है जब तक कि विनियमन 3 की आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया जाता है। दूसरे शब्दों में:

"9....जैसे कि किसी स्थानीय निकाय के उप–नियम के उल्लंघन में एक दीवार के निर्माण के मामले में अपराध किसी एक और प्रत्येक के लिए इस तरह का निर्माण शीघ्र ही पूर्ण हो जाएगा जो कि निर्धारित तिथि तक रिटर्न प्रस्तुत करने में एक डिफ़ॉल्ट होता है।"

261. **संपत्ति कर आयुक्त अमृतसर** बनाम **सुरेश सेठ**[166] के मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों का अन्य निर्णय संपत्ति कर अधिनियम के

166 (1981) 2 SCC 790

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपबंधों पर आधारित था। धारा 18(1)(ए) में बिना उचित कारण के कुल संपत्ति का रिटर्न दाखिल करने में विफलता के लिए जुर्माना लगाने का प्रावधान किया गया। इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या रिटर्न राशियों को दाखिल करने में डिफ़ॉल्ट एक सतत अपकृत्य है। न्यायमूर्ति ई एस वेंकटरमैय्या (तब मुख्य न्यायाधीश के रूप में थे) ने इस न्यायालय में यह कहा कि:

> "11 कानून में एक दायित्व आमतौर पर आयोग के कार्य या विलोपन के कार्य से उद्भूत होता है। जब कोई व्यक्ति एक कार्य करता है तो जो कानून उसे ऐसा करने से रोकता है और उसे यह करने के लिए जुर्माना देता है उसे आयोग का एक कार्य करने के लिए कहा जाता है जो कानून की नजर में गलत है। इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करने के लिए छोड़ देता है जो कानून द्वारा उसके द्वारा किया जाना आवश्यक है और इस तरह के विलोपन के लिए जुर्माना देता है तो उसे कहा जाता है कि उसने विलोपन का कार्य किया है जो कानून की नजर में भी गलत है। सामान्यतः एक गलत कार्य या कानून द्वारा अपेक्षित कार्य को करने में विफलता, कार्य करने या विलोपन एक पूर्ण कार्य बन जाता है, जैसा मामला हो और जैसे ही पूर्व मामले में गलत कार्य किया जाता है जब किसी कार्य को करने के लिए कानून द्वारा निर्धारित समय बाद के मामले में समाप्त हो जाता है और कार्य करने या विलोपन के कार्य को पूर्ण होने के बाद उत्पन्न होने वाला दायित्व बढ़ जाता है।"

इस न्यायालय ने एक सतत अपकृत्य और गलती या डिफ़ॉल्ट के बीच अंतर किया जो निम्नलिखित अवलोकनों में प्रतिबद्ध होने पर पूर्ण हो जाता है:

> "11... सतत अपकृत्य की विशिष्ट प्रकृति यह है कि जिस कानून का उल्लंघन किया जाता है वह अपकृत्य करने वाले को सतत दंड के लिए उत्तरदायी बनाता है। कोई डिफ़ॉल्ट जो पूर्ण हो गया है लेकिन जिसका

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रभाव उसके पूर्ण होने के बाद भी महसूस किया जा सकता है, हालांकि वह सतत अपकृत्य या डिफ़ॉल्ट नहीं है।"

संविधि के प्रावधानों से निपटते हुए इस न्यायालय ने अवधारित किया कि डिफ़ॉल्ट केवल वही है जो रिटर्न दाखिल करने की अंतिम तिथि की समाप्ति पर होता है और यह सतत अपकृत्य नहीं है। परिणामस्वरूप, डिफ़ॉल्ट प्रत्येक दिन कार्रवाई के एक नए कारण को जन्म नहीं देता है। निम्नलिखित उद्धरण में सतत अपकृत्यों के चित्रण में संकेत देते हुए न्यायालय ने यह अवधारित किया:

"17. वास्तविक सिद्धांत यह दर्शित होगा कि जहां पर गलत शिकायत सकारात्मक कर्तव्य करने के लोप से सम्बन्धित है जिसमें किसी व्यक्ति से निश्चित कार्य करने करने की अपेक्षा की जाती है ताकि यह जांच की जा सके कि क्या यह गलत शिकायत लगातार की जा रही थी, प्रश्नगत कर्तव्य उससे यह कार्य करने की अपेक्षा करता है। परिसर को अच्छे रखरखाव के लिए प्रसंविदा का उल्लंघन, सतत गारंटी का उल्लंघन, रास्ते के अधिकार में बाधा, पानी के अबाधित जल प्रवाह के लिए किसी व्यक्ति के अधिकार में बाधा, किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पत्नी और बच्चों को संभालने से इनकार करना जिसे वह कानून के तहत संभालने के लिए बाध्य है और खनन कार्यों या किसी कारखाने को चलाने के लिए कार्य करने वालों की सुरक्षा और भलाई के लिए किए गए उपायों का अनुपालन किए बिना नागरिक या आपराधिक दायित्व को जन्म देने वाले उल्लंघनों या गलतियों को जारी रखने के उदाहरण हो सकते हैं, दिन-प्रतिदिन जैसा कि मामला हो सकता है।"

इस न्यायालय के दृष्टिकोण में, धारा 18(1)(ए) में उल्लिखित किसी भी कार्य का न करना एकल उल्लंघन और एक ही दंड को को जन्म देता है, जिसका माप हालांकि वह तिथि जिस पर रिटर्न दाखिल किया जाना है और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिस तिथि को यह वास्तव में दाखिल किया गया है उसके बीच के समय अंतराल से संबंधित है।

262. एक अन्य राजस्व संविधि का प्रावधान आयकर अधिनियम 1961 **माया रानी पुंज** बनाम **सीआईटी**[167] में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार के लिए प्रस्तुत हुआ था। इस मामले में, आयकर अधिनियम 1961 की धारा 271 (1)(ए) में रिटर्न दाखिल करने में विलम्ब के लिए जुर्माने का प्रावधान था। जुर्माना न केवल प्रथम डिफ़ॉल्ट के लिए अधिरोपित किया जा सकता था, बल्कि जब तक डिफ़ॉल्ट जारी रहा। कर निर्धारिती ने नियत तिथि के सात माह से अधिक समय बाद अपना रिटर्न दाखिल किया। तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **सुरेश सेठ** के निर्णय को खारिज कर दिया। न्यायमूर्ति सब्यसाची मुखर्जी (तब विद्वत मुख्य न्यायाधीश के रूप में थे) ने अवधारित किया कि डिफ़ॉल्ट तब तक जारी रहा जब तक कि रिटर्न दाखिल नहीं किया गया था और इसलिए यह सतत अपकृत्य था:

> "19. जुर्माना अधिरोपित करने का प्रावधान प्रथम डिफ़ॉल्ट तक सीमित नहीं है परन्तु सतत डिफ़ॉल्ट का संदर्भ स्पष्ट रूप से इस आधार पर है कि रिटर्न बनाने के दायित्व के साथ गैर–अनुपालन एक उल्लंघन है जब तक कि डिफ़ॉल्ट जारी रहा। कानून की मंजूरी के बिना डिफ़ॉल्ट आचरण के संदर्भ में कोई जुर्माना अधिरोपित करने योग्य नहीं है। वह स्थिति जो न केवल पहली चूक के लिए बल्कि जब तक चूक होती रहती है, तब तक जुर्माना लगाया जा सकता है और इस तरह के दंड की गणना मासिक आधार पर निर्धारित दर से की जानी चाहिए, यह सुस्पष्ट शब्दों में विधायी मंशा का संकेत है कि जब तक मूल्यांकन नहीं होता है तब तक कानून की आवश्यकताओं का अनुपालन वह उल्लंघन के लिए

167 (1986) 1 SCC 445

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जारी रहता है और कानून द्वारा प्रदान किए गए दंड के लिए खुद को उजागर करता है।"

263. सेवा न्यायशास्त्र के संदर्भ में सतत अपकृत्य के सिद्धांत का प्रयोग **भारत संघ** बनाम **तरसेम सिंह**[168] में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष आया। उस मामले में, प्रत्यर्थी को नवंबर 1983 में चिकित्सीय आधार पर भारतीय सेना से बाहर कर दिया गया था। उन्होंने वर्ष 1999 में विकलांगता पेंशन की मांग करते हुए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्च न्यायालय ने विकलांगता पेंशन के भुगतान के लिए एक परमादेश जारी किया, परन्तु रिट याचिका संस्थित होने से पूर्व इसे 38 माह की अवधि तक सीमित कर दिया। हालांकि प्रत्यर्थी का दावा था कि विकलांगता पेंशन नवंबर 1983 से प्रभावी होनी चाहिए, जिसे लेटर्स पेटेंट अपील में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के उपरोक्त निर्णय के लिए इस न्यायालय के समक्ष चुनौती में दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन ने कहा कि इस सिद्धांत पर किसी विलम्बित सेवा का दावा अतिविलम्ब के आधार पर खारिज करने के लिए उत्तरदायी है और सतत अपकृत्य के संबंध में एक अपवाद है।हालांकि, अपवाद का एक अन्य अपवाद है जहां शिकायत एक निर्णय के संबंध में है जो प्रतिकूलित सेवा में दूसरों को प्रभावित करने के लिए उत्तरदायी है। न्यायालय ने यह अवधारित किया कि:

---

168 (2008) 8 SCC 648

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"7. संक्षेप में, सामान्यतः एक विलम्बित सेवा से संबंधित दावे को अतिविलम्ब (जहां रिट याचिका दायर करके उपचार की मांग की जाती है) या सीमा (जहां प्रशासनिक न्यायाधिकरण को एक आवेदन द्वारा उपचार की मांग की जाती है) के आधार पर खारिज कर दिया जाएगा। उक्त नियम के अपवाद सतत अपकृत्य से संबंधित मामले हैं। जहां सेवा–संबंधित दावा सतत अपकृत्य पर आधारित होता है तो राहत दी जा सकती है, भले ही उपचार की माँग करते हुए दीर्घ विलम्ब हुआ हो, उस तारीख के संदर्भ में जिस पर सतत अपकृत्य प्रारम्भ हुआ हो, यदि इस प्रकार का सतत अपकृत्य क्षति का निरंतर स्रोत बनाता है। परन्तु अपवाद के लिए एक अपवाद है। यदि शिकायत किसी आदेश या प्रशासनिक निर्णय के संबंध में है जो कई अन्य लोगों से भी संबंधित या प्रभावित होता है, और यदि मुद्दे को फिर से खोलने से तीसरे पक्षकारों के व्यवस्थित अधिकारों को प्रभावित किया जाएगा तो दावे पर विचार नहीं किया जाएगा। उदाहरणार्थ, यदि मुद्दा वेतन या पेंशन के भुगतान या पुनर्निर्धारण से संबंधित है, तो विलम्ब के बावजूद भी राहत दी जा सकती है क्योंकि यह तीसरे पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है। परन्तु यदि दावे में वरिष्ठता अथवा पदोन्नति इत्यादि से संबंधित मुद्दे शामिल हैं तो अन्य को प्रभावित करते हुए विलम्ब के पुराने दावे को प्रस्तुत करेगा और अतिविलम्ब/सीमा के सिद्धांत को लागू किया जाएगा। जहाँ तक पूर्व की अवधि के लिए बकाए की प्राप्ति के परिणामी राहत का संबंध है, आवर्ती/क्रमिक अपकृत्यों से संबंधित सिद्धांत लागू होंगे।"

अपील में उच्च न्यायालय को रिट याचिका संस्थित होने से तीन साल पहले भुगतान के लिए बकाया का भुगतान करने का निर्देश देने में न्यायसंगत नहीं ठहराया गया था।

264. उपरोक्त कई निर्णयों ने **बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे** बनाम **श्री ध्यानेश्वर महाराज संस्थान**[169] में तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को

---

169 1959 Supp (2) SCR 476

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सन्दर्भित किया है। अपीलार्थियों ने एक धार्मिक संस्था में पैतृक उपासकों के अधिकारों का दावा किया और यह कि मंदिर और मंदिर की पूजा सहित इसके मामलों का प्रबंधन उनके पूर्वजों के कब्जे में था। न्यासियों ने कदाचार के कारण कुछ पुजारियों को हटा दिया। इस बीच वर्ष 1922 में, पुजारियों ने मंदिर पर जबरन कब्जा कर लिया। न्यासियों ने एक वाद दायर की जिसका परिणाम एक डिक्री थी। डिक्री के निष्पादन में मंदिर का कब्ज़ा प्राप्त किया गया। बाद में, पुजारियों ने धार्मिक संस्थान के तहत पैतृक अधिकारों का दावा करते हुए एक वाद स्थापित की। वाद में डिक्री से उद्भूत एक अपील में उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 को लागू किया गया था और अनुच्छेद द्वारा विहित छह वर्ष की अवधि के पहले वाद को खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय के समक्ष अपील में यह आग्रह किया गया था कि अनुच्छेद 120 के तहत वाद वर्जित नहीं किया गया था क्योंकि परिसीमा अधिनियम की धारा 23 लागू होती है, न्यासियों का प्रणाली सतत अपकृत्य है। इस तर्क पर विचार करते हुए न्यायमूर्ति पीबी गजेन्द्रगडकर (तब विद्वान मुख्य न्यायाधीश के रूप में थे) द्वारा अवधारित किया गया:

> "31.... इस तर्क से निपटने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि धारा 23 सतत अधिकार का नहीं बल्कि सतत अपकृत्य का निर्देश करती है। यह सतत अपकृत्य का सार है कि यह एक ऐसा कार्य है जो क्षति का निरंतर स्रोत बनाता है और उक्त क्षति की निरंतरता के लिए जिम्मेदार और उत्तरदायी कार्य के कर्ता का प्रतिपादन करता है। यदि अनुचित कार्य जो पूर्ण हो गया है वह क्षति का कारण बनता है तो कुछ भी अनुचित नहीं है, भले ही कार्य से उत्पन्न क्षति सतत रह सकती है। हालांकि, यदि एक अनुचित कार्य इस तरह की प्रकृति का है कि इसके

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कारण हुई क्षति स्वयं जारी है तो वह कार्य सतत अपकृत्य का गठन करती है। इस संबंध में अनुचित कार्य के कारण हुई क्षति के बीच अंतर करना आवश्यक है और जिसे उक्त क्षति के प्रभाव के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह केवल उन कृत्यों के संबंध में है जिन्हें उचित रूप से सतत अपकृत्य माना जा सकता है कि धारा 23 को लागू किया जा सकता है।"

265. इस न्यायालय ने अवधारित किया कि अपीलार्थीगणों के कथित अधिकारों को पैतृक पुजारियों के रूप में और 1922 के वाद में उनसे कब्जे का दावा करने और प्राप्त करने में न्यासियों के कार्य को सतत अपकृत्य नहीं ठहराया जा सकता है। न्यायालय ने अवधारित किया कि न्यासियों द्वारा प्राप्त डिक्री ने अपीलार्थीगणों के अधिकारों को प्रभावी ढंग से और पूर्ण रूप से क्षति पहुँची है, हालांकि क्षति बाद में भी जारी रही हो। डिक्री के निष्पादन पर, अपीलार्थीगणों के अधिकार विफल हो गए थे और हालांकि उनकी बेदखली जारी रही, परन्तु इसे सतत अपकृत्य नहीं माना गया। उस संदर्भ में न्यायालय ने निम्नलिखित उल्लेख किया:

"हमारे विचार से इसमें कोई संदेह नहीं है कि जहां अनुचित कार्य की शिकायत बेदखली के बराबर होती है, वहां परिणामी क्षति बेदखली की तिथि पर पूर्ण हो जाती है और इसलिए ऐसे मामले में धारा 23 के आवेदन की कोई गुंजाइश नहीं होगी। यही वह दृष्टिकोण है जिसे उच्च न्यायालय ने लिया है और हमें इससे अलग होने का कोई कारण नहीं दिखता है।"

इस न्यायालय ने **महारानी राजरूप कौर** बनाम **सैयद अब्दुल हुसैन**[170] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय को इस आधार पर प्रतिष्ठित किया कि यह एक

---

170 (1879-80) 7 IA 240

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ऐसा मामला था जहां जल–प्रवाह के कारण निरंतर बाधा बनी रहती थी। इसी प्रकार, **सर सेठ हुकुम चंद** बनाम **महाराज बहादुर सिंह**[171] के निर्णय ने **महारानी राजरूप कौर** के मामले में पूर्व के निर्णय पर अवलम्ब लिया। निर्णय का अंतर स्पष्ट करते हुए इस न्यायालय ने अवधारित किया वह कार्य जो आक्षेपित थी वह वादीगणों के निष्कासन या पूर्ण बेदखली के बराबर नहीं थी।

266. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अवधारित **बालकृष्ण सांवलराम** मामले में सतत अपकृत्य एक ऐसा कार्य है जो क्षति का निरंतर स्रोत बनाता है। यह क्षति की निरंतरता के लिए कार्य करने वाले को उत्तरदायी बनाता है। हालांकि, वर्तमान मामले की तरह जहां एक अपकृत्य बेदखली के लिए होता है, परिणामी क्षति बेदखली की तिथि पर ही पूर्ण हो जाती है। एक डिफ़ॉल्ट जिसके परिणामस्वरूप क्षति पूर्ण हो जाती है वह सतत अपकृत्य या चूक नहीं है भले ही इसके पूर्ण होने के बावजूद इसका प्रभाव महसूस किया जाता है।

267. निर्मोही अखाड़ा का तर्क सतत अपकृत्य की परिसीमा की दलील के बचाव के सिद्धांत पर आधारित है। तर्क का मूल्यांकन करने में, विधिक क्षति के स्रोत और क्षति के प्रभाव के बीच एक अंतर किया जाना चाहिए। एक विधिक क्षति का स्रोत किसी दायित्व के उल्लंघन में स्थापित किया गया है। जहां विधि, समझौता या अन्यथा कार्य जारी रखने या किसी विशेष तरीके से कार्य करने से रोकने के लिए अधिरोपित किया जाता है वहाँ सतत अपकृत्य उत्पन्न होता है। इस तरह के दायित्व का उल्लंघन एकल पूर्ण अधिनियम या लोप से परे है। उल्लंघन एक निरंतर प्रकृति का है, एक विधिक क्षति का

---

171 (1933) 38 LW 306 (PC)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रारम्भ होना जो किसी सतत अपकृत्य की प्रकृति माना जाता है। सतत अपकृत्य होने के लिए, प्रथम स्थान में एक अपकृत्य होना चाहिए जो कार्रवाई के योग्य है क्योंकि अपकृत्य के न होने से कुछ भी गलत नहीं हो सकता है। यह अपकृत्य तब होता है जब कोई जांच की एक रेखा होती है कि क्या सतत अपकृत्य होगा। बिना किसी अपकृत्य के सतत अपकृत्य नहीं हो सकता। एक व्यक्ति को जहां सकारात्मक या नकारात्मक एक विशेष तरीके से कार्य करने या कार्य करने से रोकने के लिए पूर्वमान्य अपकृत्य के दायित्व का उल्लंघन करता है। एक व्यक्ति पर दायित्व किसी अधिकार का एक संगत प्रतिबिंब होता है जो अन्य को विरासत में मिला है। एक सतत अपकृत्य निरंतर कर्तव्य या दायित्व का उल्लंघन है जो एक सतत प्रकृति का है। यह वास्तव में वह आधार था जिस पर **माया रानी पुंज** मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक फैसले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नलिखित वक्तव्यों में इस बयान को मंजूरी दी:

> "जी.डी. भट्टर बनाम राज्य [AIR 1957 Cal 483 : 61 CWN 660 : 1957 क्रि एलजे 834] में यह बताया गया था कि एक सतत अपराध या एक सतत अपकृत्य आखिरकार कर्तव्य का निरंतर उल्लंघन है जो स्वयं ही सतत है। यदि एक कर्तव्य दिन–प्रतिदिन जारी रहती है, तो दिन–प्रतिदिन उस कर्तव्य का गैर–प्रदर्शन एक सतत अपकृत्य है।"

इसलिए, यह मूल्यांकन करने में कि क्या धारा 23 के अर्थ में सतत अपकृत्य है, केवल इस तथ्य के कारण कि क्षति का प्रभाव जारी है यह सतत अपकृत्य के रूप में गठित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उदाहरणार्थ , जब कार्य या लोप के परिणामस्वरूप अपकृत्य पूर्ण हो जाता है, जिसकी शिकायत

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की जाती है तो कोई भी सतत अपकृत्य उत्पन्न नहीं होता है, भले ही भविष्य में जो प्रभाव या क्षति बनी हुई हो। अपकृत्य क्या होता है, अपकृत्य को सतत प्रकृति का अपकृत्य बनाने वाली चीज है कर्तव्य का उल्लंघन जो कि खत्म नहीं हुआ है बल्कि अभी विद्यमान है। इस तरह के कर्तव्य का उल्लंघन एक सतत अपकृत्य का निर्माण करता है और इसलिए परिसीमा की दलील का बचाव करता है।

268. वर्तमान मामले में, निर्मोही अखाड़े की तर्क को स्वीकार करने में कई कठिनाइयाँ हैं जो सतत अपकृत्य थी। जैसा कि मजिस्ट्रेट ने आदेश की तिथि में निष्कर्ष निकाला कि प्रथम और मुख्यतः धारा 145 के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश का अभिप्राय और उद्देश्य अधिकार प्राप्त करके शांति के उल्लंघन को रोकना है। मजिस्ट्रेट न ही अधिकारों पर निर्णय नहीं लेता है और न ही प्रश्नगत स्वत्व की कार्यवाही पर एक निर्णय में परिणत होती है। मजिस्ट्रेट का आदेश दीवानी न्यायालय के आदेश या डिक्री के अधीन है।

इसलिए, यह मानने के लिए कि मजिस्ट्रेट का आदेश एक अपकृत्य को जन्म देगा और परिणामस्वरूप एक सतत अपकृत्य होने पर स्वाभाविक रूप से पतन होता है।दूसरे, दिनांक 22 से 23 दिसंबर 1949 के बीच रात को मूर्तियों की गुप्त स्थापना निर्मोही अखाड़ा के पक्ष में अधिकार की स्थापना करेगी? निर्मोही अखाड़ा इस घटना का खंडन करता है। निर्मोही अखाड़ा को जिस अधिकार का दावा करना है, वह इस आधार पर स्थापित नहीं किया जा सकता है और यदि कोई अधिकार नहीं है तो कोई भी समरूपी अपकृत्य नहीं हो सकता है जो एक सतत अपकृत्य की नींव को प्रस्तुत कर सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्मोही अखाड़ा में कोई अधिकार अंतर्निहित नहीं था जो मजिस्ट्रेट के आदेश से खलल पड़ता। निर्मोही अखाड़े का दावा प्रबंधन और आंतरिक अहाते के प्रबंधन और प्रभार के लिए एक सेवादार की क्षमता में था। निर्मोही अखाड़े ने स्वयं दलील दी है कि वाद के लिए वाद हेतुक दिनांक 5 जनवरी 1950 को सामने आया। इस दावे के आधार पर आगे बढ़ते हुए यह स्पष्ट है कि बेदखली, जो अखाड़ा अपनी भूमिका से एक सेवादार के रूप में दावा करता है और इसलिए सतत अपकृत्य के सिद्धांत का कोई प्रश्न ही नहीं था।

269. **एल्लप्पा नाइकेन** बनाम **के लक्ष्मण नाइकेन**[172] में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय से निर्मोही अखाड़े को कोई सहायता नहीं मिली है। यह एक ऐसा मामला था जहां धारा 145 के तहत कार्यवाही के लंबन के दौरान, मजिस्ट्रेट ने एक प्रापत की नियुक्ति के लिए धारा 146 के तहत एक आदेश पारित किया था क्योंकि न्यायालय स्वयं को संतुष्ट करने में असमर्थ थी कि पक्षकारों में से किसके पास कब्जा था। प्रत्यर्थियों ने स्वत्व और कब्जे की घोषणा के लिए एक वाद दायर किया था जिसे चूक में खारिज कर दिया गया था और आदेश को सीपीसी के आदेश IX का नियम 9 के तहत एक आवेदन को भी खारिज कर दिया गया था। आदेश की अपील भी खारिज कर दी गई। इसके बाद याचिकाकर्ता जो प्रतिवादी था, ने इस आधार पर वाद को खारिज करने के बाद मजिस्ट्रेट के समक्ष कब्जे के लिए आवेदन किया कि मुंसिफ ने अपने अधिकारों का निर्धारण किया था। मजिस्ट्रेट ने यह धारण करते हुए आदेश पारित किया कि किसी दीवानी न्यायालय द्वारा कोई घोषणा नहीं की गई थी कि वाद परिसर का हकदार कौन था, अतः भूमि प्रापत के कब्जे में

---

172 AIR 1949 Madras 71

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ही रहेगी। इस संदर्भ में विद्वत न्यायाधीश ने यह अवधारित किया कि या तो धारा 146 के तहत एक निर्णय के लिए किसी भी पक्ष को परिसीमा की अवधि में स्वत्व की घोषणा के लिए वाद दायर करना होगा या भूमि के मुनाफे की वसूली के लिए वाद लाना होगा। ऐसे वाद में प्रश्न यह है कि मुनाफे का हकदार कौन है इसके परिणामस्वरूप यह तय होगा कि स्वत्व का प्रश्न को अधिनिर्णयन भी करना होगा। यह धारा 146 के उद्देश्य के लिए प्रांङ्गन्याय के रूप में कार्य करेगा। इन अवलोकनों को मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा सत्तारूढ़ के समर्थन में की गई थीं कि ऐसा नहीं था कि पक्षकार बिना किसी उपचार के थे, जिसके परिणामस्वरूप हमेशा के लिए विधि की अभिरक्षा की संपत्ति शेष रहती थी।या तो पक्ष परिसीमा के भीतर मुनाफे की वसूली के लिए वाद दायर करने का हकदार था, जहां प्रश्नगत स्वत्व का अधिनिर्णयन किया जाएगा। यह निर्णय निर्मोही अखाड़े के लिए सहायक नहीं है। निर्मोही अखाड़े द्वारा कुछ निर्णयों पर अवलम्ब लिया गया है परन्तु ये निष्पादन द्वारा किसी डिक्री के प्रवर्तन के लिए परिसीमा के आरम्भ के संबंध में हैं। **चंडी प्रसाद** बनाम **जगदीश प्रसाद**[173] में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने अवधारित किया कि संविधि के तहत अपील सतत रूप से सभी प्रयोजन एवं उद्देश्यों के लिए है। इसलिए, जब एक उच्चतर फोरम एक अपील की सुनवाई करता है और गुणावगुण पर आदेश पारित करता है, तो विलय का सिद्धांत लागू होता है और अपीलीय न्यायालय के आदेश के साथ विचारण न्यायालय की डिक्री का विलय होता है। इसलिए, एक बार डिक्री निष्पादित करने के उद्देश्य से लागू करने की मांग की जाती है, भले ही मूल या अपीलीय होने के बावजूद डिक्री की तिथि या

---

173 (2004) 8 SCC 724

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किसी निश्चित तिथि पर धन के भुगतान या संपत्ति के वितरण का निर्देश देते हुए परिसीमा के आरंभ का अनुवर्ती आदेश माना जाएगा। इसी सिद्धांत को **यूनियन ऑफ इंडिया** बनाम **वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स लिमिटेड**[174] और **शांति** बनाम **टी डी विश्वनाथन**[175] में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा जोर दिया गया है। आवश्यक मुद्दा यह है कि क्या उनका वाद परिसीमा में था और जिन कारणों से सूचित किया गया है उनका उत्तर नकारात्मक में होना चाहिए।

M.5 निर्मोही साक्षीगणों के मौखिक साक्ष्य

270. निर्मोही अखाड़ा द्वारा स्थापित वाद 3 परिसीमा द्वारा वर्जित किया गया है, इस न्यायालय के लिए साक्ष्य, मौखिक और वृत्तचित्र पर विचार करने के लिए कठोरता से कहना आवश्यक नहीं है। श्री परसरन ने आग्रह किया कि विचारण न्यायालय से भिन्न इस न्यायालय को उन सभी प्रश्नों का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है जो पहली अपील में उद्भूत होते हैं यदि परिसीमा केवल मुद्दे का निष्कर्ष निकालती है तो विवाद में सभी मुद्दों पर विचार करना अनावश्यक है। यह आग्रह किया गया था कि विचारण न्यायालय को सभी मुद्दों पर विचार करना होगा क्योंकि इसका निर्णय अपील के अधीन है। इस तर्क का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करने के बाद, निर्मोही अखाड़ा द्वारा उद्धृत किये गए साक्ष्यों की जांच करना और विवाद की प्रकृति के संबंध में अधिनिर्णय प्रस्तुत करना उचित है। अपील की सुनवाई के दौरान सभी वादों में दर्ज साक्ष्य पर अवलम्ब लिया गया है। इसलिए मौखिक साक्ष्य

---

174 (2004) 2 SCC 747

175 2018 SCCOnLine SC 2196

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। सुनवाई के दौरान निर्मोही अखाड़ा ने निम्नलिखित गवाहों के मौखिक साक्ष्य का अवलम्ब लिया:

271. महंत भास्कर दास (डीडब्ल्यू 3/1): साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 29 अगस्त, 2003 है। बयान की तिथि में उनकी उम्र 75 वर्ष थी और उन्होंने बाबा बलदेव दास का शिष्य होने का दावा किया था। वह श्री मंच रामानंदिया निर्मोही अखाड़ा के सरपंच थे और इससे पूर्व राम जन्मभूमि मंदिर के पंच और पुजारी होने का दावा किया था। साक्षी ने कहा कि:

(i) निर्मोही अखाड़ा विवादित मंदिर, राम जन्मभूमि और आसपास के अन्य मंदिरों में कई सौ वर्षों तक मूर्तियों का अधिकारी है।

(ii) राम जन्मभूमि मंदिर में विराजमान भगवान राम और राम चबूतरे की प्राण प्रतिष्ठा निर्मोही अखाड़े के महंत द्वारा किया गया था;

(iii) यह जानकारी उनके प्राचीन उपदेशकों से शिष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी;

(iv) वह 1946 से 1949 तक रामचबूतरा मंदिर में पूजा और आरती कर रहा था;

(v) आन्तरिक और बाह्य दोनों अहाते सदैव निर्मोही अखाड़े के कब्जे में रहे हैं जिसके आंतरिक भाग में एक गर्भगृह था, जिसमें कुर्की की गई थी;

(vi) संपूर्ण बाह्य भाग चिरकाल से निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था;

(vii) जब वह विवादित संरचना के उत्तरी गुंबद के नीचे सो रहे थे तो दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात के दौरान कोई घटना घटित नहीं हुई, ;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(viii) गर्भगृह में भगवान राम की आरती और पूजा दिनांक 29 दिसंबर, 1949 से पूर्व भी संचालित की जा रही थी और आंतरिक मंदिर को दिनांक 19 दिसंबर, 1949 को कुर्क किया गया था;

(ix) वर्ष 1934 के दंगों के पश्चात् विवादित स्थल पर किसी मुस्लिम ने नमाज़ अदा नहीं किया था;

(x) दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 को रामचबूतरा मंदिर से कोई मूर्ति नहीं ली गई थी और विवादित मंदिर का कब्जा निर्मोही अखाड़े के पास था;

(xi) निर्मोही अखाड़ा के पास दिनांक 29 दिसंबर, 1949 तक मुख्य मंदिर से संबंधित सेवा कार्य का अधिकार था। निर्मोही अखाड़ा फरवरी 1982 में दूसरी कुर्की होने तक बाह्य परिसर में भगवान राम एवं अन्य मूर्तियों की पूजा करता रहा था; और

(xii) 1934 से पूर्व भी भगवान राम आंतरिक भाग में विराजमान थे जो तब से निर्मोही अखाड़े के सतत रूप से कब्जे में थे। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की तरफ से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ. धवन ने साक्षी के साक्ष्य में निम्नलिखित विरोधाभासों को बताया है:

(i) जबकि साक्षी ने कहा कि दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना नहीं हुई थी और वह विवादित ढाँचे के उत्तरी गुंबद के नीचे सो रहा था, उच्च न्यायालय ने निर्मोही अखाड़ा के अधिवक्ता का कथन इस आशय के लिए अभिलिखित किया है कि मूर्तियों को रामचबूतरे से स्थानांतरित कर दिया गया था और विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद में रखा गया था; और

(ii) साक्षी ने प्रारंभ में यह कहा था कि विवादित भवन में राम लला की दो मूर्तियाँ थीं; एक सिंहासन पर और एक सीढ़ी पर किन्तु बाद में उसने यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्पष्ट किया कि दो प्रतिमाओं से उसका आशय एक रामलला से और दूसरे लक्ष्मण से था। इसके अलावा, साक्षी का दावा है कि स्वयं उसने दिनांक 29 दिसंबर 1949 को इसकी कुर्की से पूर्व विवादित स्थल के अंदर भगवान राम की आरती की थी जिसके बावजूद भी वह विवादित संरचना के अंदर मूर्तियों की संख्या के संबंध में कोई कथन करने के योग्य नहीं था। इसके अलावा, जबकि एक ओर साक्षी ने कहा कि *परिक्रमा* विवादित ढाँचे के पीछे की जाती थी, बाद में उन्होंने कहा कि रामचबूतरे के आसपास परिक्रमा की जा रही थी।

272. कुछ अन्य पहलुओं पर साक्षी का बयान भी जांच का गुण है। साक्षी ने कहा कि राम जन्मभूमि मंदिर को ध्वस्त करके वर्ष 1528 में बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था। उन्होंने यह कहा कि:

> "चूँकि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित भवन 2500 वर्ष पुरानी थीं, वे स्वयं ही ढह गईं और वर्ष 1528 में जन्मभूमि मंदिर को ध्वस्त कर दिया गया। वर्ष 1528 में जिस भवन को ध्वस्त किया गया वह मूल रूप से विक्रमादित्य द्वारा निर्मित था।"

साक्षी ने कहा कि विक्रमादित्य द्वारा राम जन्मभूमि मंदिर का निर्माण और वर्ष 1528 में मंदिर के विध्वंस पर विवादित ढाँचे का निर्माण वह था जो उसने अपने पूर्वजों से सुना था और उसे कहीं भी नहीं पढ़ा गया था। साक्षी के अनुसार, वर्ष 1934 से पूर्व हिंदुओं द्वारा मस्जिद में पूजा हो रहा था। उनके अनुसार, मूर्तियों को वर्ष 1934 से पहले स्थापित किया गया था परन्तु वह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस बात से अनभिज्ञ थे कि वे किसके द्वारा स्थापित किए गए थे। तब साक्षी ने कहा कि:

> "मैंने अपने पूर्वजों से यह सुना था कि वर्ष 1934 से पूर्व ही वहां पर मूर्तियाँ मौजूद थीं। मैं यह भी बताने योग्य नहीं हूँ कि तीन गुंबदाकार विवादित ढाँचे के निर्माण के कितने वर्ष पश्चात यानी वर्ष 1528 के बाद विवादित ढाँचे में मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं।"

साक्षी के अनुसार वर्ष 1946 में भक्तों के लिए ग्रिल–ईंट की दीवार के द्वार खोले गए थे और मंदिर खुला रहता था। उन्होंने कहा कि दिसंबर 1949 तक विवादित ढाँचे में नमाज अदा नहीं की गई थी। दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को घटना के संबंध में साक्षी के पास निम्नलिखित स्पष्टीकरण है:

> "दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित ढाँचे में कोई घटना घटित नहीं हुई। यदि कोई दावा करता है कि दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित ढाँचे में कुछ घटनाएं घटित हुईं तो वे गलत कह रहे हैं। मैं दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में विवादित परिसर में मौजूद था। मैं रात को 11.30 बजे बिस्तर पर जाता हूं और सुबह 4.30 बजे उठ जाता हूं। मैं उस रात यानी दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात में सो गया था। उस समय यानी उस रात मैं गुंबद के नीचे उस स्थान पर सोया था।"

साक्षी जिस घटना की अज्ञानता को बता रहा है वह स्पष्ट है। साक्षी का बयान महत्व रखता है क्योंकि वह वर्ष 1950 से निर्मोही अखाड़ा का पंच था और सरपंच के भौतिक समय पर था। उनके साक्ष्य में कई विरोधाभास हैं। उन्होंने कहा:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "यह सिंहासन वर्ष 1950 से पहले के विवादित ढांचे में मौजूद था। यह सिंहासन विवादित ढांचे में वर्ष 1950 से दस वर्ष पूर्व विद्यमान था। यह सिंहासन वर्ष 1950 में विवादित ढांचे में था, परंतु यह कुर्क नहीं किया गया था।"

दूसरी ओर, साक्षी ने कहा:

> "1986 से पहले, इन तस्वीरों में दिखाई देने वाला सिंहासन विवादित स्थल पर मौजूद नहीं था। वर्ष 1986 में ताला खोलने के बाद यह सिंहासन विवादित भवन में स्थापित किया जा सकता था।"

साक्षी ने तब स्वीकार किया कि उन्होंने भगवान राम की दो मूर्तियों का उल्लेख किया था जब भगवान राम और लक्ष्मण की केवल एक मूर्ति थी। जहां तक रामचबूतरे की मूर्तियों का संबंध है, साक्षी ने कहा कि वे अकबर के शासनकाल में स्थापित की गयी थीं। जबकि एक ओर, साक्षी ने कहा कि बाबर के समय से ही मस्जिद में कभी नमाज अदा नहीं की गई थी, दूसरी ओर, जब उसे विवादित ढाँचे में रामलला की मूर्ति के बारे में परिचय देना हुआ तो उसने कहा कि यह वर्ष 1934 के पूर्व था लेकिन सटीक तिथि और अवधि उसे नहीं पता थी। साक्षी के अनुसार, सिंहासन पर विराजमान रामलला की मूर्ति चल–विग्रह या जंगम मूर्ति थी। साक्षी के अधिकांश अनुश्रुत साक्ष्य हैं।

उनके बयान अन्य के द्वारा उन्हें बताई गई बातों पर आधारित हैं। साक्षी का स्पष्टीकरण है कि वह दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को विवादित परिसर में सो रहा था और कोई घटना घटित नहीं हुई थी यह उसकी मनगढंत बात है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रामलला की मूर्तियों को वर्ष 1934 से बहुत पहले विवादित ढाँचे में स्थापित किया गया है, यह कथन विश्वसनीयता के योग्य नहीं है।

273. राजा राम पांडे (डीडब्ल्यू 3/2): साक्षी के मुख्य परीक्षा की तिथि 22 सितंबर, 2003 है। गवाह ने कहा कि बयान के समय वह 87 वर्ष का था और वह वर्ष 1930 में अयोध्या आया था, जब उसने राम जन्मभूमि मंदिर का दौरा करने का दावा किया था। साक्षी ने कहा कि:

(i) उसने आंतरिक अहाते की कुर्की से पूर्व निर्मोही अखाड़ा आरती देखी थी;

(ii) बाहरी अहाते के द्वार खोलने और बंद करने का कार्य निर्मोही अखाड़े द्वारा किया गया था;

(iii) किसी भी मुस्लिम को 1930–1949 के बीच बाहरी द्वार से प्रवेश करने की अनुज्ञा नहीं दी गई थी और वह गर्भगृह के भीतरी भाग को देखने में सक्षम था जहां कुछ मूर्तियां उत्कीर्ण की गई थीं; और

(iv) उसके पहुंचने के बाद से कुर्की की तिथि तक परिसर का उपयोग मस्जिद के रूप में कभी नहीं किया गया।

डॉ. धवन ने अपने तर्कों के दौरान प्रति–परीक्षा के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया है:

(i) साक्षी ने स्वीकार किया है कि चबूतरे को पहले जन्मभूमि मंदिर के रूप में जाना जाता था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) साक्षी इस बात से अनभिज्ञ था कि विवादित ढाँचे को तीन गुंबदों के साथ कब और किसके द्वारा निर्मित किया गया था; उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि विवादित ढांचे के भीतर कब और किसने मूर्ति स्थापित की थी; और

(iii) साक्षी इस बात से अनभिज्ञ था कि कब और किसके द्वारा निर्मोही अखाड़े को राम जन्मभूमि मंदिर का मालिक बनाया गया था।

साक्षी ने अपनी परीक्षा के दौरान कहा कि वह वर्ष 1949 से बाबरी मस्जिद के बारे में सुन रहा था, लेकिन वह इस बात से अनभिज्ञ था कि अयोध्या में वह कहां पर है या कहाँ पर स्थित है। उन्होंने कहा कि उन्हें बाद में प्रति – परीक्षा से पता चला कि जिस भवन को उन्होंने राम जन्मभूमि मंदिर कहा, उसे मुस्लिमों द्वारा बाबरी मस्जिद कहा जाता है। यद्यपि, उन्होंने कहा कि उन्होंने वर्ष 1992–93 में मुस्लिमों के साथ बैठक की थी, उन्होंने कहा कि उन्हें उनमें से किसी के द्वारा सूचित नहीं किया गया था कि दिनांक 6 दिसंबर 1992 को मस्जिद को ध्वस्त कर दिया गया है। साक्षी ने घटनाओं को स्मरण करने की अपनी क्षमता पर कहा:

> "मैं 87 वर्ष का हो गया हूं और मेरा विवेक उचित तरीके से कार्य नहीं करता है। इस कारण मैं यह याद रखने में विफल हूं कि मैंने एक विशेष समय में किस विशेष बात को कहा था। उपरोक्त कथनों में से आज मेरे द्वारा दिया गया उपर्युक्त कथन सही है; मैंने दिनांक 30.09.2003 को अनुचित बयान दिया है।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्षी ने दर्शाया कि उन्हें इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि किसने तीन गुंबददार विवादित ढाँचे में मूर्तियों को स्थापित किया था, लेकिन दावा किया गया है कि जब से वह वहाँ जा रहे थे तब से उसे देख रहे थे। जबकि एक ओर साक्षी ने अपनी स्मृति की अक्षमता को स्वीकार किया वहीं वे उस चीज का बयान दे रहे हैं जो 73 वर्ष पूर्व 1930 में हुआ था जब वह विवादित ढांचे पर दर्शन के लिए गये थे। उनके अनुसार, उनके पिता ने कहा था कि स्तंभों में भगवान हनुमान की मूर्तियां थीं।

274. सत्य नारायण त्रिपाठी (डीडब्ल्यू 3/3): साक्षी की मुख्य परीक्षा दिनांक 30 अक्टूबर, 2003 को हुई थी जब वह 72 वर्ष का था। साक्षी ने कहा कि जब वह दस साल का था तब वह प्रथम बार वर्ष 1941 में राम जन्मभूमि मंदिर गया था और तब से लगातार जा रहा था। साक्षी ने कहा कि विवादित स्थल पर न ही कोई नमाज नहीं अदा की गई थी और न ही किसी मुस्लिम ने इबादत की थी। यद्यपि, साक्षी ने कहा कि वह लगातार विवादित ढाँचे का दौरा कर रहा है, जब भौतिक विशेषताओं के विषय में पूछा गया तो उसने कहा कि उसने कभी भी विवादित संरचना के किसी भी हिस्से को बहुत ध्यान से नहीं देखा था।

साक्षी ने इस बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की कि क्या कुछ व्यक्तियों ने मस्जिद में प्रवेश किया था और दिनांक 23 दिसंबर 1949 की रात को मूर्तियों को स्थापित की थी। उच्च न्यायालय ने नोट किया है कि इस साक्षी के अधिकांश बयान धारणा और सुने सुनाए हैं। जबकि एक ओर, उन्होंने उन मूर्तियों का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उल्लेख किया जिन्हें विवादित ढाँचे में *सिंहासन* पर रखा गया था जो वर्ष 1941–1992 तक वहां बने रहे, बाद में तस्वीरों को दिखाए जाने पर वह अपने बयान से मुकर गए और कहा कि यह उनके लिए स्पष्ट नहीं था कि वे कब जाते थे और मूर्तियों को किस तरीके से रखते थे।

275. महंत शिव शरण दास (डीडब्ल्यू 3/4): साक्षी की परीक्षा दिनांक 14 नवंबर, 2003 को हुई थी। वह 83 वर्ष के थे। उन्होंने कहा कि वह वर्ष 1933 से श्री राम जन्मभूमि के दर्शन को जा रहे हैं और वर्ष 1949 में हुई कुर्की तक गर्भगृह के अंदर भगवान राम का दर्शन किया।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ. धवन ने इस साक्षी के कथन के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया है:

(i) साक्षी ने प्रस्तुत किया कि उसने अपने साक्ष्य के शपथपत्र को केवल सहज रूप से पढ़ा था और उसे पूर्ण रूप से नहीं पढ़ा था;
(ii) यद्यपि साक्षी ने यह कथन किया कि जब वह वर्ष 1936 में विवादित स्थल पर गया था तब कोई दीवार या लोहे के छड़ नहीं थे, यह नोट करना सुसंगत है कि भीतरी और बाहरी अहातों को पृथक् करने के लिए वर्ष 1856–57 में ग्रिल–ईंट की दीवार बनाई गई थी; और
(iii) हालांकि, अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान साक्षी ने कहा कि उन्होंने वर्ष 1949 में इसकी कुर्की तक आंतरिक गर्भगृह का दर्शन किया था, अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान उन्होंने कहा कि वे वर्ष 1986 से पूर्व विवादित भवन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं गए थे। उपरोक्त आधार पर यह आग्रह किया गया कि वास्तव में साक्षी ने भौतिक समय पर विवादित स्थल का दौरा नहीं किया है।

अयोध्या में अपने निवास पर साक्षी ने कहा:

> "मैं अयोध्या में वर्ष 1938 से 1950 तक नहीं रहा परन्तु जब भी मैं अयोध्या आता था तो विवादित स्थल की ओर नहीं जाता था और यदि मैं वहां जाता था तो स्थल को हाथ जोड़कर प्रणाम करने के बाद बाहर से ही लौट आता था।"

साक्षी ने कहा कि वह विवादित ढाँचे में एक पुजारी था जिसे उसने सैकड़ों बार देखा होगा। हालांकि उसे उस वर्ष की स्मृति नहीं थी जिसमें वह पुजारी था। अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान साक्षी ने कहा कि वह "2–4 वर्षों" के लिए तीन गुंबदाकार ढाँचे में पुजारी था परन्तु बाद में उसने स्वीकार किया कि उसका कथन गलत था:

> "प्रश्न– आपके स्वयं के पूर्वोक्त कथनानुसार, वर्ष 1931 से 1957 के बीच आप अयोध्या में लगातार 5–6 माह रहे हैं। क्या यह सत्य है?
> उत्तर: हां, श्रीमान। यह सत्य है।
> प्रश्न: तब मुझे कहना होगा कि पृष्ठ 74 पर उल्लिखित दिनांक 5 फरवरी, 2004 का आपका कथन 'तीन गुंबदाकार विवादित भवन में 2–4 वर्षों के लिए एक पुजारी के रूप में किया गया कार्य'–गलत हो जाता है। इस संबंध में आपको क्या कहना है?
> उत्तर: उपरोक्त साक्षी के माध्यम से–मेरा यह कथन गलत हो गया है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बाद में, उन्होंने स्वीकार किया कि मुख्य परीक्षा में उनका कथन कि वह वर्ष 1933 से राम जन्मभूमि में दर्शन के लिए जा रहे थे, इस वर्ष का संदर्भ गलत था। इसके अलावा, साक्षी ने स्वीकार किया कि उसे याद नहीं है कि वह फरवरी 1986 से पूर्व विवादित भवन गया था या नहीं। साक्षी ने यह भी कहा कि उसने गलत तरीके से 1930–42 तक लगातार अयोध्या में रहने का संदर्भ दिया था।

276. रघुनाथ प्रसाद पांडे (डीडब्ल्यू 3/5): साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 18 नवम्बर, 2003 की है। जब उन्हें पदस्थापित किया गया था तब उनकी आयु 73 वर्ष की थी। उनके अनुसार, राम जन्मभूमि मंदिर उनके गाँव से लगभग 16 या 17 किलोमीटर की दूरी पर है और 7 वर्ष की आयु से ही उनका आना जाना है।

277. डॉ. धवन द्वारा प्रतिपरीक्षा के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया गया है:

(i) साक्षी को इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि छायाचित्र क्या पश्चिमी तरफ की दीवार की थीं अथवा विवादित भवन के मध्य गुंबद के निचले भाग की क्योंकि वह दर्शन के लिए जाता था और उसने दीवारों पर ध्यानाकर्षण नहीं किया था;

(ii) यद्यपि उसने ग्रिल–ईंट की दीवार देखी थी, तथापि उसे यह याद नहीं था कि विवादित ढाँचे में प्रवेश करने के लिए उसे बैरिकेडों से गुजरना पड़ा था; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) यद्यपि साक्षी ने वर्ष 1937–1948 तक अपनी माता के साथ अयोध्या जाने का दावा किया था, और यह कि भगवान रामलला की मूर्तियां केंद्रीय गुंबद के नीचे भवन के अंदर थीं, फिर भी बाद में उसने विभिन्न छायाचित्रों पर विरोधाभास प्रकट किया।

उच्च न्यायालय द्वारा नोट किया गया है कि उनके अधिकांश कथन प्राचीन काल से चले गए थे और अस्वीकार्य थे क्योंकि उन्हें तथ्यों का कोई व्यक्तिगत ज्ञान नहीं था। जब उनके ज्ञान के स्रोत के बारे में पूछताछ की गई, तो उन्होंने कहा कि उन्होंने अपने शिक्षकों से कहानियाँ सुनी थीं। प्रारंभ में, साक्षी ने कहा कि तीन गुंबदाकार ढाँचे का निर्माण विक्रमादित्य द्वारा किया गया था। फिर उन्होंने कहा कि विक्रमादित्य द्वारा निर्मित भवन को ध्वस्त कर दिया गया था और विवादित भवन का निर्माण किया गया था। यद्यपि, उन्होंने इस जानकारी को अयोध्या महात्म्य का गुण बताया और निर्मोही अखाड़ा के अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया कि दस्तावेज़ में यह उल्लिखित नहीं है कि भवन का निर्माण विक्रमादित्य द्वारा किया गया था और ध्वस्त कर दिया गया था जिसके बाद विवादित ढाँचे का निर्माण किया गया था। यद्यपि, साक्षी ने वर्ष 1948–1988 तक भारतीय रेलवे में अपनी सेवा दी थी, परन्तु उन्होंने प्रथम बार दिनांक 18 नवंबर 2003 को बाबरी मस्जिद का नाम सुनने का दावा किया था।

278. श्री सीता राम यादव (डीडब्ल्यू 3/6): साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 6 जनवरी, 2004 है। साक्षी ने कहा कि उसका जन्म वर्ष 1943 में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हुआ था और 1951 में जब वह 8 वर्ष का था तब सही गलत की समझ प्राप्त हुआ। इस साक्षी के कथन इसलिए विवाद के लिए प्रासंगिक नहीं थे क्योंकि उनका तथ्यात्मक ज्ञान वष 1951 के बाद की अवधि से संबंधित है। इस साक्षी का जन्म वर्ष 1943 में हुआ था और दिसंबर 1949 तक तथ्यों का कोई व्यक्तिगत ज्ञान नहीं था। साक्षी के साक्ष्य अनुश्रुतियों की प्रकृति में थे।

279. महंत रामजी दास (डीडब्ल्यू 3/7): कथन के निम्नलिखित पहलुओं पर डॉ. धवन द्वारा जोर दिया गया है:

(i) साक्षी ने यह स्वीकार किया कि विवादित भवन सम्राट बाबर द्वारा निर्मित किया गया था किंतु उसने कहा था कि इसका निर्माण सीता पाक के रूप में किया गया था किंतु मस्जिद के रूप में नहीं, जो अपने लिखित कथन में निर्मोही अखाड़े के प्रतिकूल है;

(ii) साक्षी के अनुसार, गुदार बाबा (जो किसी हिंदू पक्षकारों के अभिवचन का मामला नहीं है) के माध्यम से सम्राट बाबर द्वारा जन्मस्थान मंदिर के विध्वंस के बाद विवादित मंदिर का निर्माण किया गया था; और

(iii) बाबर ने विवादित भवन पर लिखित 'सीता पाक' प्राप्त किया क्योंकि वह मस्जिद का निर्माण करने में असमर्थ था क्योंकि जब भी मस्जिद निर्माण का प्रयास किया जाता था तब हनुमानजी ढांचे को ध्वस्त कर देते थे।

अपने स्वयं के व्यक्तिगत ज्ञान में, साक्षी ने कहा कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "मैं निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता कि वर्ष 1934 से 1948 के बीच मैं किन अवसरों पर अयोध्या गया था। मुझे यह स्मृति नहीं कि वर्ष 1934 से 1948 के बीच जब मैं अयोध्या गया तो मेरी आयु क्या थी। जब मैं अपने पिता के साथ गया था। मुझे याद नहीं है कि वर्ष 1934 के बाद मैं अयोध्या कब गया था, लेकिन जब मैं प्रथम बार वर्ष 1934 के बाद अयोध्या गया तो मैं 3–4 दिन रहा था।"

निर्मोही अखाड़ा के रुख के विपरीत, उन्होंने कहा कि विवादित ढाँचा बाबर द्वारा निर्मित की गई थी, यद्यपि सीता पाक की आकृति में:

> "विवादित ढाँचा, जिसे दिनांक 6 दिसंबर, 1992 को ध्वस्त कर दिया गया था, बाबर द्वारा 'सीता पाक' के आकार में बनाई गई थी (एवं) न कि मस्जिद के आकार में.... अकबर के काल में, मुस्लिमों को विवादित ढांचे में जुम्मे की नमाज अदा करने की अनुमति थी और शेष अवधि के लिए हिंदुओं को प्रार्थना–पूजा करने की अनुमति दी गई थी। साहित्य अथवा इतिहास में यह उल्लिखित नहीं है कि क्या बाबर से अकबर के कालावधि में, विवादित ढांचे में मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा की गई थी अथवा नहीं, या भगवान राम की प्रार्थना–पूजा की गई थी अथवा नहीं। मेरे ज्ञान के अनुसार और जैसा कि मुझे बताया गया है कि वर्ष 1934 के दंगों के बाद विवादित ढाँचे में कभी नमाज अदा नहीं की गई थी और इसके बजाय बाद के दिनों में नियमित रूप से प्रार्थना–पूजा की गई थी। मेरे ज्ञान के अनुसार जो कि अनुश्रुतियों पर आधारित है कि अकबर के काल से वर्ष 1934 तक विवादित ढाँचे पर जुम्मे की नमाज अदा की गई थी। अन्य दिनों में नमाज अदा नहीं की गयी थी।"

आखिरकार, साक्षी ने कहा कि उसने हस्ताक्षर करने के समय मुख्य परीक्षा के माध्यम से अपने शपथपत्र को नहीं पढ़ा था और इसे न्यायालय कक्ष में पढ़ा था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

280. पं. श्याम सुंदर मिश्रा (डीडब्ल्यू 3/8): इनका जन्म वर्ष 1914 में हुआ था और इनके द्वारा कहा गया था कि राम जन्मभूमि उनके घर से 400 गज से भी कम की दूरी पर स्थित है। बयान करने के समय वह 90 साल के थे।

281. डॉ. धवन द्वारा साक्षी के कथन के निम्नलिखित पहलुओं पर जोर दिया गया है:

(i) साक्षी का कथन है कि केन्द्रीय गुंबद *स्वयंभू* है, निर्मोही अखाड़े के अभिवचन मामले के विरुद्ध है;

(ii) साक्षी के अनुसार वर्ष 1992 में जन्मस्थान मंदिर का गुंबद अपनी प्राचीनता और उचित रखरखाव के अभाव में जीर्ण–शीर्ण हो गया था; और

(iii) बयान देते समय, साक्षी रामचबूतरा मंदिर और "तीन गुंबदाकार मंदिर" के बीच विभेद करता प्रतीत होता है और कथन किया कि रामचबूतरा मंदिर निर्मोही अखाड़े के स्वामित्व में था, वहीं "तीन गुंबदाकार मंदिर" के प्रबंधन और स्वामित्व के विषय में कुछ नहीं कहा।

साक्षी ने कहा कि उसे 14 वर्ष की आयु से पूर्व विवादित स्थल पर पूजा के पालन अथवा गैर–पालन के बारे में कोई ज्ञान नहीं था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

282. श्री राम आसरे यादव (डीडब्ल्यू 3/9): साक्षी की मुख्य परीक्षा दिनांक 22 मार्च, 2004 को अभिलिखित किया गया था जब वह 72 वर्ष का था। वह राम जन्मभूमि मंदिर के करीब रहने का दावा करता है।

283. डॉ. धवन ने तर्क प्रस्तुत किया है कि यह साक्षी अपनी मुख्य परीक्षा में बताई गई बातों से पूर्णतः अनभिज्ञ है, जिन्हें निम्नलिखित कारणों से पूर्ण रूप से असहमत होने की आवश्यकता है:

(i) अपनी प्रतिपरीक्षा के अनुक्रम में, साक्षी ने स्वीकार किया कि जब उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि उसके शपथपत्र में क्या लिखा गया था, वह पुनर्स्मृति नहीं कर सकता कि वास्तव में क्या लिखा गया था, यद्यपि उसे पढ़ाया गया था;
(ii) उसने जो उत्तर दिए हैं वे शायद सही या गलत हैं और उसकी स्मृति प्रभावित हो चुकी है;
(iii) वह इस बात से अनभिज्ञ था कि मुख्य शपथपत्र फैजाबाद में टाइप किया गया था या लखनऊ में;
(iv) वह दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 के पूर्व भी दर्शन के लिए गर्भगृह में गया था और यह कथन असत्य था कि मूर्ति को उन्हीं तिथियों पर स्थापित किया गया था, और
(v) साक्षी इस बात से अनभिज्ञ था कि दिनांक 22/23 दिसम्बर की तिथियाँ वर्ष 1949 से संबंधित थीं अथवा नहीं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यद्यपि, शपथपत्र केवल दस माह पूर्व तैयार किया गया था, साक्षी दस्तावेज़ से कुछ भी पुनर्स्मृति करने में असमर्थ था। वह निर्मोही अखाड़ा के इतिहास से अनभिज्ञ था और उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं था कि विवादित मंदिर कुर्क था अथवा नहीं। इस साक्षी ने कहा कि वह मुख्य परीक्षा के माध्यम से अपने शपथपत्र के तथ्यों से अनभिज्ञ था:

> "आज, मैंने इस न्यायालय में एक शपथपत्र दायर किया है। मैं स्वयं पढ़ने में सक्षम नहीं था कि मेरे द्वारा दायर हलफनामे में क्या लिखा गया था। यह शपथपत्र मुझे 'मुंशी' (अधिवक्ता क्लर्क) द्वारा पढ़ाया गया था, लेकिन मुझे उनका नाम याद नहीं है। मैंने केवल उसी को सुनने के बाद शपथपत्र पर अपना हस्ताक्षर किया था, लेकिन मुझे इसके तथ्य के बारे में नहीं पता है। यह शपथपत्र तीन या चार पृष्ठों में दायर हुआ था।"

बाद में, उन्होंने कहा कि उनका दिमाग आठ–दस माह से ठीक से काम नहीं कर रहा था और उनकी स्मृति कमजोर हो गई थी। उन्होंने कहा:

> "मुझे याद नहीं है कि इस प्रस्तर में उल्लिखित तथ्य मेरे द्वारा शामिल किए गए थे अथवा नहीं। ... इस प्रस्तर की दूसरी और तीसरी पंक्ति में मैंने उल्लेख किया है कि 'दिनांक 22–23 दिसंबर को 'गर्भ–गृह' वाले हिस्से में मूर्तियों की स्थापना पूर्णतः गलत है'। मुझे याद नहीं है कि यह तथ्य वर्ष 1949 की घटना से संबंधित है अथवा नहीं। इस प्रस्तर में मैंने यह भी उल्लेख किया है कि 'कुछ स्थानीय मुस्लिमों ने ... कूटरचित कार्रवाई की'। मुझे याद नहीं है कि किस ओर से यह कूटरचित कार्रवाई थी। अपने दम पर यह कहते हुए कि मैं यह नहीं बता सकता कि मेरे द्वारा उल्लिखित कूटरचित कार्रवाई वर्ष 1934 की घटना से संबंधित थी अथवा नहीं।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

284. श्री पातेश्वरी दत्त पांडे (डीडब्ल्यू 3/10): साक्षी की मुख्य परीक्षा दिनांक 23 मार्च, 2004 को की गई है। 74 वर्ष की आयु के साक्षी ने कहा कि वह उस समय स्थानीय आयुक्त थे जिसने एक अन्य मामले (**निर्मोही अखाड़ा** बनाम **राम लखन शरण दास– वाद 9 वर्ष 1973**) के संबंध में स्थल का सर्वेक्षण किया था।

डॉ. धवन ने साक्षी के कथन के संबंध में निम्नलिखित बिंदुओं को निर्दिष्ट किया है:

(i) यद्यपि, उनकी आख्या विवादित स्थल पर मंदिर के अस्तित्व को चिह्नित करती है, तथापि उन्होंने स्वीकार किया कि 'मंदिर' शब्द उनके द्वारा कतिपय अन्य व्यक्तियों के इशारे पर अंतःस्थापित किया गया था। उन्हें यह नहीं पता था कि उस स्थान पर बाबरी मस्जिद थी या कुछ और था और कहा कि वह लिख चुका था कि उसे दूसरों के द्वारा क्या सूचित किया गया था; और

(ii) परिणामस्वरूप, साक्षी की आख्या को सिद्ध करने पर अवलम्बित नहीं किया जा सकता कि विवादित ढाँचा एक मंदिर है क्योंकि उसने इसे केवल दूसरों के सुझाव पर एक मंदिर के रूप में चिह्नित किया था।

साक्षी के इन स्वीकारोक्तियों पर उसकी विश्वसनीयता पर गंभीर संदेह होता है।

285. श्री भानु प्रताप सिंह (डीडब्ल्यू 3/11): इस साक्षी की मुख्य परीक्षा दिनांक 28 अप्रैल, 2004 को अभिलिखित किया गया था जब वे 70 वर्ष के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थे। उन्होंने 10 वर्ष की आयु से राम जन्मभूमि मंदिर में जाने का दावा किया। साक्षी ने कहा कि उनकी स्मृति कमजोर है। वह यह बताने में असमर्थ थे कि राम जन्मभूमि मंदिर के अलावा कोई अन्य मंदिर निर्मोही अखाड़ा से संबंधित है अथवा नहीं। जब उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा का सामना किया, तो उन्होंने कहा कि:

> "मेरे उपरोक्त कथन का भाग 'चारों ओर मंदिर' गलत है क्योंकि मंदिर केवल दो ओर थे... इस संबंध में, मैं गलत कथन करने का कोई कारण नहीं दे सकता। मैं कुछ तथ्यों को भूल जाता हूं जिसके कारण ऐसा कथन कर देता हूँ। यह भूलकर, मेरा आशय है कि उस समय मुझे उन तथ्यों की स्मृति नहीं है।"

286. श्री राम अक्षयबर पांडे (डीडब्ल्यू 3/12): मुख्य परीक्षा दिनांक 25 मई, 2004 को अभिलिखित किया गया था। 70 वर्ष की आयु के साक्षी ने कहा कि वह 12 वर्ष से राम जन्मभूमि मंदिर जा रहे थे।

साक्षी के कथन के निम्नलिखित पहलू महत्वपूर्ण हैं:

(i) साक्षी ने स्वीकार किया कि विवादित ढाँचे के विषय में जानकारी उसके दादा से प्राप्त की गई थी;

(ii) यद्यपि उसने अपने मुख्य परीक्षा में कहा था कि वह अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान *परिक्रमा* करता था, उसने कहा कि उसने ढांचे के पीछे से तीन गुंबदों को कभी नहीं देखा था;

(iii) साक्षी ने कहा कि उसने राम जन्मभूमि की परिक्रमा नहीं किया बल्कि रामचबूतरे की किया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) साक्षी के अनुसार, उसे ग्रामीणों द्वारा यह सूचित किया गया था कि राम जन्मभूमि जिसमें रामलला विराजमान थे प्राचीन होने के कारण ढह गई थी; और

(vi) साक्षी ने कहा कि उसने इस विषय में न तो पढ़ा और न ही सुना कि विवादित ढाँचे के तीन गुंबदों का निर्माण किसने किया था। साक्षी ने अंततः अपनी ही स्मृति की कमजोरी स्वीकार की और उसे गलत बना दिया।

287. महंत राम सुभाग शास्त्री (डीडब्ल्यू 3/13): मुख्य परीक्षा दिनांक 25 मई, 2004 को अभिलिखित किया गया था। साक्षी की आयु 86 वर्ष थी, उन्होंने कहा कि वे वर्ष 1933 में अयोध्या आए थे और उनके गुरु निर्मोही अखाड़ा से जुड़े थे। साक्षी के कथन के निम्नलिखित पहलू प्रासंगिक हैं:

(i) साक्षी ने कहा कि विवादित ढाँचे में दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात में अशांति थी और यद्यपि उसे उस रात किए गए प्रबंधों के विषय में जानकारी नहीं थी, यह हुआ कि नई मूर्तियां स्थापित की गई थीं;
(ii) मस्जिद के निर्माण के संबंध में, साक्षी ने कहा:

"बाबर ने मंदिर के ढांचे को ध्वस्त करके मस्जिद बनाई थी, लेकिन वह उसे पूर्णतः मस्जिद निर्मित करने में असमर्थ था। इस ढाँचे में 14 स्तंभ निर्धारित किए गए थे, जिन पर मूर्ति प्रतिष्ठित थी और इस प्रकार यह मूर्ति का स्थान बन गया।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) साक्षी ने कहा कि संभवतः वर्ष 1933–34 के पश्चात् की अवधि से संबंधित तथ्य उसकी स्मृति से मिट गए थे। साक्षी का कथन कि दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की रात को विवादित ढाँचे में मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं यह निर्मोही अखाड़े के मामले के विपरीत है।

निर्मोही अखाड़ा के अनुसार, विवादित स्थल पर कभी कोई मस्जिद नहीं थी और सबके साथ एक मंदिर था जो इसके प्रबंधन में था और दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को कोई घटना नहीं हुई थी।

288. जगद गुरु रामानंदाचार्य स्वामी हर्याचार्य (डीडब्ल्यू 3/14): मुख्य परीक्षा दिनांक 23 जुलाई, 2004 को अभिलिखित की गई थी जब साक्षी 69 वर्ष का था। वह वर्ष 1985–86 से रामानंद संप्रदाय के प्रमुख थे। वे वर्ष 1949 वर्ष की आयु में अयोध्या आए। उनके अनुसार, उन्होंने केंद्रीय गुंबद के साथ–साथ रामचबूतरे के बाहर विवादित ढाँचे के अंदर राम लला की मूर्ति को देखा था। साक्षी ने गवाही दी कि जब उसने प्रथम बार 15 फीट की दूरी से दर्शन किया था तो यह गुम्बद के नीचे नहीं बल्कि अहाते से था। अयोध्या आने से पूर्व ही साक्षी को इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि विवादित ढाँचे में नमाज अदा की गई थी। साक्षी ने इस संभावना को खारिज नहीं किया कि मूर्तियों को वर्ष 1949 में विवादित ढाँचे के अंदर रखा गया था, जब उन्होंने कहा कि:

> "यह संभव है कि वर्ष 1949 में हुए विवाद और घटना में, जिसमें विवादित भवन में मूर्ति को रखा गया था, अयोध्या के स्थानीय हिंदुओं

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की कोई भूमिका नहीं थी, बल्कि बाहरी साधु संत इसके लिए जिम्मेदार थे।"

289. नरेंद्र बहादुर सिंह (डीडब्ल्यू 3/15): मुख्य परीक्षा दिनांक 17 अगस्त, 2004 को अभिलिखित की गई थी। साक्षी की आयु 72 वर्ष थी। उनके अनुसार, जब वे 11 वर्ष के थे तो वह अपने माता–पिता के साथ राम जन्मभूमि गए और उन्होंने देखा कि राम लला की मूर्ति केंद्रीय गुम्बद के नीचे विराजमान है। उन्होंने दावा किया कि 15 वर्ष की आयु से विध्वंस तक वह अकेले ही मंदिर जा रहे थे। डॉ. धवन ने साक्षी के बयान के संबंध में निम्नलिखित बिंदुओं को सन्दर्भित किया है:

(i) जब वह विवादित स्थल जाना प्रारंभ करता है जिसके लिए उसने विभिन्न समयावधि प्रस्तुत की है इसके लिए साक्षी की पूर्णतः अवहेलना आवश्यक है।यद्यपि, उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि वे प्रथम बार 11 वर्ष की आयु में प्रथम बार गए थे, अपनी प्रतिपरीक्षा में उन्होंने कहा कि वे 5–6 वर्ष और 8–9 वर्ष की आयु से निर्मोहियों को विवादित ढाँचे का प्रबंधन करते हुए देखा था।;

(ii) अपने कथन के संबंध में उन्होंने कहा कि विवादित स्थल पर नमाज अदा होते कभी नहीं देखा था, उन्होंने कहा किं वह उस स्थल पर वहा नहीं था और इसलिए यह नहीं देख सका कि क्या नमाज़ अदा की जा रही थी; और

(iii) साक्षी ने उत्तर दिशा में जन्मस्थान मंदिर के अस्तित्व से इनकार किया जिसे निर्मोही अखाड़ा ने इसकी प्रतिकृति में स्वीकार किया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

290. शिव भीख सिंह (डीडब्ल्यू 3/16): साक्षी की आयु उस तिथि को 79 वर्ष थी जब दिनांक 24 अगस्त, 2004 को मुख्य परीक्षा के माध्यम से उसने अपने शपथपत्र में शपथ किया था। उन्होंने दावा किया कि वह 12 वर्ष की आयु से राम जन्मभूमि मंदिर गए थे और उन्होंने केंद्रीय गुम्बद के नीचे भगवान राम की मूर्ति देखी थी। साक्षी ने कहा कि राम लला की मूर्ति राम जन्मभूमि मंदिर में स्थित थी और तीन गुफाएँ थीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मूर्तियों को दिनांक 23 दिसंबर 1949 को विवादित ढाँचे में रखा गया था। उनके अनुसार, मूर्तियाँ उनके पूर्वजों से पूर्व भी विवादित ढाँचे पर मौजूद थीं। साक्षी ने तीन गुंबदाकार ढाँचे में दर्शन के विषय में बात की जहां मूर्ति मौजूद थी, परन्तु कहा कि ग्रिल–ईंट की दीवार के अंदर परिक्रमा किया गया था। उनके अनुसार विवादित परिसर में सीता रसोई नाम का कोई स्थान नहीं था। साक्षी ने यह भी कहा कि जब वह प्रथम बार तीन गुंबदाकार ढाँचे में गया था, तो वह बिल्कुल केंद्रीय गुंबद के नीचे नहीं था और उसने गुंबद के निचले हिस्से के सामने वाले द्वार से दर्शन किया था।

291. श्री माता बदल तिवारी (डीडब्ल्यू 3/17): मुख्य परीक्षा 31 अगस्त, 2004 दिनांकित की तिथि में साक्षी की आयु 84 वर्ष थी। उसने दावा किया कि वह 15 वर्ष की आयु में प्रथम बार वर्ष 1935 में राम जन्मभूमि मंदिर गया था और तब से अयोध्या जाता रहा है। साक्षी को अयोध्या की बाबरी मस्जिद के विषय में या वह कहाँ स्थित है इसकी कोई जानकारी नहीं थी। हालांकि उसने कहा कि उसने मस्जिद के बारे में सुना था। मस्जिद के विषय में इस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्षी की जागरूकता के अभाव में वर्ष 1934 के दंगों पर उसके विवरण द्वारा विरोधाभास है:

> "मैंने अयोध्या के दंगे का जिक्र किया है। यह दंगा वर्ष 1934 में हुआ। उस समय विवादित ढाँचे का कुछ हिस्सा क्षतिग्रस्त हो गया था। कई लोगों ने इन गुंबदों को क्षतिग्रस्त किया। क्षतिकर्ता हिंदू धर्म को मानने वाले थे।"

साक्षी के अनुसार वर्ष 1934 में जिन व्यक्तियों ने गुंबद को क्षतिग्रस्त किया यदि वे धर्म से हिंदू थे तो मस्जिद के अस्तित्व के विषय में उनकी जागरूकता का अभाव स्वीकार करना असंभव है।

292. श्री आचार्य महंत बंसीधर दास (डीडब्ल्यू 3/18): 1905 में जन्मे साक्षी ने कहा कि वे अयोध्या वर्ष 1930 में आए थे। दिनांक 15 सितंबर 2004 को मुख्य परीक्षा की तिथि में उनकी आयु 99 वर्ष थी। उन्होंने कहा कि वह लगातार विवादित ढांचे में जा रहे थे और आंतरिक अहाते में मूर्तियों की पूजा कर रहे थे। इस गवाह की गवाही के निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है:

(i) साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि रामचबूतरे को *बेदी* भी कहा जाता है और इस शब्द का उपयोग छोटे या बड़े चबूतरे के लिए किया जा सकता है;
(ii) साक्षी ने कहा कि यदि कोई धार्मिक स्थान है और कोई उसे गलत साधनों से प्राप्त कर रहा है या उस पर बलात् कब्जा कर रहा है तो झूठ बोलने में कोई हानि नहीं है;

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) साक्षी ने स्वीकार किया कि उसकी स्मृति आयु के कारण अच्छी नहीं है

(iv) साक्षी ने लगभग दो सौ वादों में बयान दिया था। साक्षी के पास वादकारी हिंदू पक्षकारों के अभिकथित मामले के विपरीत मंदिर के निर्माण के विषय में विभिन्न सिद्धांत थे:

(क) उनके अनुसार, राम जन्मभूमि की मरम्मत निर्मोही अखाड़े द्वारा पिछले 700 वर्षों के दौरान की गई थी;

(ख) कसौटी काले पत्थरों के मंदिर का निर्माण निर्मोही अखाड़ा द्वारा किया गया था;

(ग) विक्रमादित्य की कालावधि में निर्मित मंदिर का निर्माण कन्नौज के राजा द्वारा किया गया था न कि अयोध्या के राजा द्वारा;

(घ) मीर बाकी ने राम मंदिर को नष्ट कर दिया लेकिन मस्जिद का निर्माण नहीं किया, मंदिर का पुनर्निर्माण गोविंद दास ने किया जो बाबर के शासन के दौरान निर्मोही अखाड़ा के महंत थे;

(ङ) गोविंद दास जी ने तीन गुंबदाकार भवन का निर्माण किया;

(च) मंदिर का कुछ हिस्सा बाबर के शासन काल में निर्मित हुआ था जो हुमायूं के शासन के दौरान नष्ट हो गया था किंतु उसका पुनर्निर्माण गोविंद दास जी द्वारा कराया गया था; और

(छ) रामानंद के शिष्य अनंतानंद ने विवादित स्थल पर मंदिर का पुनर्निर्माण किया।

293. श्री राम मिलन सिंह (डीडब्ल्यू 3/19): साक्षी की आयु दिनांक 17 अगस्त, 2004 को 75 वर्ष थी जब उसकी मुख्य परीक्षा अभिलिखित की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गई थी। उसने केंद्रीय गुंबद के अंदर मूर्तियों के अस्तित्व को साबित करना चाहा और कहा कि वह

वह 1940 से 1951 तक और कभी–कभी 1952 के बाद से आता रहा। जब उसके शपथपत्र के विषय में प्रश्न किया गया तो उसने कहा कि:

> "इस शपथ–पत्र को तैयार करने वाला व्यक्ति ही केवल इस विषय में बता सकता है। मैंने इस पर हस्ताक्षर करने से पूर्व मुख्य परीक्षा के शपथपत्र को पूर्णतः नहीं पढ़ा था... मैंने उच्च न्यायालय लखनऊ में इस शपथपत्र पर अपना हस्ताक्षर किया था। मैं यह नहीं बता सकता कि यह शपथपत्र लखनऊ में टाइप किया गया था अथवा नहीं। जब मेरे इस शपथपत्र का मसौदा तैयार किया गया था, मैं अयोध्या में अपने अधिवक्ता के यहाँ था। उन्होंने कहा था कि 'मैं आपके शपथपत्र का प्रारूप तैयार कर रहा हूं'। मैंने शपथपत्र का मसौदा तैयार होने के बाद इसके तथ्य नहीं देखे थे।"

उपरोक्त स्वीकृति उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय और विश्वसनीयता के योग्य नहीं बनाता है।

294. महंत राजा रामचन्द्र आचार्य (डीडब्ल्यू 3/20): दिनांक 27 अक्तूबर, 2004 को मुख्य परीक्षा की तिथि को साक्षी की आयु 76 वर्ष थी। वह वाद 3 में द्वितीय वादी महंत रघुनाथ दास के शिष्य थे। साक्षी ने कहा कि 1943 में, जब वह पहली बार अयोध्या आए तो बाबरी मस्जिद मौजूद नहीं थी और विवादित भवन मस्जिद नहीं है:

> "वर्ष 1943 में जब मैं अयोध्या आया तो वहाँ बाबरी मस्जिद नहीं थी। वर्ष 1943 में विवादित स्थल पर कोई मस्जिद नहीं थी क्योंकि वहाँ पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मूर्तियों की पूजा की जाती थी। मैंने बाबरी मस्जिद का नाम सुना है। विवादित भवन बाबरी मस्जिद है। (पुनः कहा गया) यह बाबरी मस्जिद नहीं है; यह एक मंदिर है। विवादित भवन में तीन गुम्बद हैं। यह कोई मस्जिद नहीं है। यह भगवान राम का जन्मस्थान है। वर्ष 1943 में जब मैं पहली बार अयोध्या आया तो मैंने बाबरी मस्जिद नहीं देखी थी। मैंने कभी भी विवादित भवन में नमाज अदा होते नहीं देखा। मैंने वहीं पूजा होते देखी है। (स्वयं के द्वारा कहा गया) पूजा स्थल पर नमाज़ अदा करने का कोई सवाल ही नहीं उठता। वर्ष 1943 में जब मैं पहली बार अयोध्या आया तो मैंने एक मंदिर देखा, वहाँ कोई मस्जिद नहीं है। (स्वयं के द्वारा कहा गया) वहाँ पर पूजा सेवा (पूजा करना और सेवा प्रदान करना) होता था। विवादित भवन में तीन गुम्बद बनाये गये थे।"

साक्षी के अनुसार वर्ष 1943 से 1950 तक विवादित भवन पर नमाज अदा नहीं की गई थी और पूजा की जा रही थी; और मंदिर परिसर विवादित भवन की तीन गुंबदाकार ढाँचे के नीचे स्थित था।

295. निर्मोही अखाड़े के समर्थन में अपदस्थ साक्षियों के मौखिक साक्ष्य के उपरोक्त विवरण से संकेत मिलता है कि उनके कथन अनुश्रुतियों से परिपूर्ण हैं।

कई अवसरों पर विवादित स्थल का दौरा करने का दावा करने वाले साक्षी इसकी भौतिक विशेषताओं को अभिलिखित करने में असमर्थ थे। यद्यपि, साक्षियों द्वारा कथित रूप से कहा गया है कि दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को कोई घटना नहीं हुई थी और उनमें से एक ने इस आधार पर अनभिज्ञता व्यक्त की कि वह उस समय विवादित ढाँचे के अंदर सो रहा था, इसे एक प्रमाणिक अथवा विश्वसनीय विवरण के रूप में स्वीकार करना असंभव है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्षियों के कथन विसंगतियों और विरोधाभासों से परिपूर्ण हैं। साक्षी *परिक्रमा* मार्ग की प्रकृति और मूर्तियों की संख्या के विषय में अनिश्चित था। विवादित ढाँचे के अंदर मूर्तियों का विवरण प्रस्तुत करते समय, कई साक्षियों ने अभिस्वीकृति दी कि वे विवादित ढाँचे में नहीं गए थे। कई साक्षियों ने मुख्य परीक्षा के लिए अपने शपथपत्रों को पढा नहीं था और विषय वस्तुओं को समझे बिना केवल अपने हस्ताक्षर किए थे। कई साक्षी मुख्य परीक्षा में अपने दावे की पुष्टि कर पाने में सक्षम नहीं हैं और वास्तव में उनके स्वयं के कथनों पर विरोधाभासी तथ्य हैं। कई साक्षियों ने विवादित ढांचे के संबंध में विवरणों को प्रस्तुत किया जो निर्मोही अखाड़े के अभिकथित मामले से अलग हैं। वास्तव में वाद 4 में कुछ साक्षियों ने इस मामले का समर्थन किया कि जहां प्रार्थना की गई थी वहाँ बाबरी मस्जिद मौजूद थी। परिणामस्वरूप साक्षी के विवरणों को निर्मोही अखाड़े के मामले के समर्थन में विश्वसनीय प्रमाण नहीं माना जा सकता है।

M.6 निर्मोही अखाड़ा का आंतरिक अहाते पर कब्जे का दावा

296. वाद 3 में निर्मोही अखाड़े का दावा आंतरिक अहाते के संबंध में है, जिसमें मस्जिद की तीन गुंबदाकार ढाँचा शामिल है। निर्मोही अखाड़ा दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की घटना को अस्वीकार करता है जिसके दौरान मूर्तियों को विवादित ढाँचे में स्थापित किया गया था। निर्मोही अखाड़े के अनुसार ढाँचा एक मंदिर है न कि मस्जिद।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस कथन का समर्थन करने के लिए जो मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किये गए हैं, उनका पूर्व विश्लेषण किया गया है। निर्मोही अखाड़े के मौखिक साक्ष्य किसी भी अस्पष्ट, विश्वसनीय या भरोसेमंद विवरण को इंगित नहीं करता है जो आंतरिक अहाते या ढाँचे के कब्जे में है। निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रस्तुत साक्षियों के मौखिक साक्ष्य के संबंध में इस स्थिति के साथ, यह जांच करना आवश्यक हो जाता है कि क्या दस्तावेजी साक्ष्य निर्मोही अखाड़े के मामले का समर्थन करता है जो आंतरिक अहाते और ढाँचे के कब्जे में है।

297. वाद 3 में वादियों की तरफ से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री एस. के. जैन ने न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा के निर्णयों में दिए गए निष्कर्षों पर बल दिया कि महंत गोविंद दास के जयपुर छोड़कर अयोध्या आने के बाद वर्ष 1734 से निर्मोही अखाड़े की उपस्थिति थी। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने वाद 3 में विवाद्यक 17 का निर्णय करते हुए कहा कि:

> "799.... निर्मोही अखाड़ा वादी सं. 1 बैरागियों के रामानंदी पंथ का एक पंचायती मठ है और इस तरह यह एक धार्मिक संप्रदाय है जो अपनी धार्मिक आस्था और प्रथा के अनुसार अनुसरण कर रहा है। हालांकि, हम यह भी मानते हैं कि अयोध्या में इसकी निरंतरता 1734 ईस्वी के बाद कभी–कभी (यथावत) मिलती है और इससे पहले नहीं।"

न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने महंत भास्कर दास (डीडब्ल्यू 3/1) और राजा रामचंद्राचार्य (डीडब्ल्यू 3/20) के साक्ष्य पर अवलंब लिया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"निर्मोही अखाड़ा बैरागियों के रामानंद पंथ की एक पंचायती है और यह धार्मिक संप्रदाय के रूप में है। यह प्रथा वर्ष 1949 में मान्य हो चुकी है।"

298. ये निष्कर्ष आंतरिक अहाते को निर्मोहियों के कब्जे में होने की पुष्टि नहीं करते हैं। उनके द्वारा अवलम्बित दस्तावेजी साक्ष्यों की जांच करते हुए, अयोध्या में निर्मोही अखाड़ा की उपस्थिति मात्र अथवा विवादित स्थल के आसपास और विवादित संरचना के वास्तविक कब्जे के बीच अंतर स्पष्ट किया जाना चाहिए। उस संदर्भ में श्री एस के जैन ने वर्ष 1770 के **टिफेंथालर** के विवरण को संदर्भित किया, जो भगवान राम के जन्म स्थान का प्रतीक *बेदी* या पालने की उपस्थिति को संदर्भित करता है। **टिफेंथालर** के विवरण में पालने के संदर्भ को विवादित ढाँचे या मस्जिद के आंतरिक अहाते के कब्जे के सूचक के रूप में नहीं माना जा सकता है। **श्री आचार्य महंत बंसीधर दास उर्फ उड़िया बाबा (डीडब्ल्यू 3/18)**, जो निर्मोही अखाड़े के गवाह थे, ने कहा कि रामचबूतरा को भी *बेदी* कहा जाता है। इस साक्षी के कथन का आशय कि *बेदी*/पालना रामचबूतरे में था, को संदर्भ से बाहर नहीं किया जा सकता और इसे साक्ष्यों की संपूर्णता के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें उन्होंने **टिफेंथालर** के अवलोकनों सहित नोटिस किया था। अन्य दस्तावेजों के बीच, जिन पर अवलम्ब लिया गया है:

(i) **वाल्टर हैमिल्टन** की "ईस्ट इंडिया गजेटियर ऑफ हिन्दुस्तान";

(ii) **एडवर्ड थॉर्नटन** की "द गजेटियर ऑफ द टेरीटोरीज अण्डर द गवर्नमेंट ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी";

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) दिनांक 25 सितंबर, 1866 को मस्जिद परिसर के भीतर कुछ बैरागियों द्वारा निर्मित "कोठरी" के संबंध में मीर राजब अली खातीब द्वारा की गई शिकायत;

(iv) **कार्नेगी** की "हिस्टोरिकल स्केच ऑफ फैजाबाद";

(v) उत्तरी दिशा में एक नए द्वार के निर्माण हेतु दिनांक 13 अप्रैल, 1877 को महंत खेम दास को अनुमति प्रदान की गई;

(vi) नए द्वार के लिए अनुज्ञा दिए जाने के विरुद्ध दिनांक 13 दिसंबर, 1877 को अपील दायर की गई;

(vii) उपरोक्त अपील के दृष्टिगत उपायुक्त द्वारा बनाई गई रिपोर्ट;

(viii) अपील को खारिज करने वाला 13 दिसंबर, 1877 दिनांकित को आयुक्त का आदेश ;

(ix) अवध प्रांत (1877–78) का गजेटियर;

(x) सैयद मोहम्मद असगर द्वारा महंत रघुबर दास के विरूद्ध चबूतरे के उपयोग के लिए किराए की मांग करते हुए दिनांक 8 नवंबर, 1882 को वादपत्र में वाद संस्थित किया गया;

(xi) दिनांक 18 जून, 1883 को फैजाबाद के उप–न्यायाधीश का वाद को खारिज करने वाला आदेश;

(xii) सैयद मोहम्मद असगर द्वारा मस्जिद की मरम्मत करने की अनुमति के लिए दिनांक 2 नवंबर, 1883 को दायर किया गया आवेदन;

(xiii) 12 जनवरी, 1884 दिनांकित का उपायुक्त का आदेश;

(xiv) 22 जनवरी 1884 दिनांकित का सहायक आयुक्त का आदेश; और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(xv) 27 जून, 1884 दिनांकित को महंत रघुबर दास द्वारा की गई शिकायत में सैयद मोहम्मद असगर द्वारा मस्जिद की दीवारों को सफेद करने के लिए किए जा रहे कार्यों के मद्देनजर स्थल निरीक्षण की मांग की गई थी।

299. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले में इन दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है, जिसमें पाया गया है कि मूर्ति रामचबूतरे में मौजूद थी और निर्मोही अखाड़ा मूर्ति की पूजा की देखरेख कर रहे थे, जो अन्य हिंदू पक्षकारों द्वारा गंभीरता से विवादित नहीं था। हालांकि, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अवलोकन किया कि यह मानने का कोई आधार नहीं था कि दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को ढाँचे के अंदर मूर्तियों के स्थानांतरण करने के बाद भी निर्मोही अखाड़ा ऐसा करता रहा है। यह निष्कर्ष इसलिए था क्योंकि निर्मोही अखाड़ा ने दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को कोई भी घटना होने से स्पष्टतः इनकार कर दिया था और उनके पास उस रात हुई घटनाओं को बताने का कोई ठोस स्पष्टीकरण नहीं था। निर्मोही अखाड़े द्वारा जिन दस्तावेजों पर अवलम्ब लिया गया है, उनकी सावधानीपूर्वक जांच से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि निर्मोही अखाड़े का विवादित ढांचे पर विशेष कब्जा था। हमें श्री एस के जैन के तर्क को ध्यान में रखना चाहिए कि मस्जिद के विवादित ढाँचे को स्थलबद्ध कर दिया गया था और बाह्य अहाते जिसमें रामचबूतरा, सीता रसोई और भंडार शामिल थे, मस्जिद में प्रवेश के लिए बाधित किए गए थे। बाह्य अहाते में दो द्वार–सिंह द्वार और हनुमत द्वार थे। किंतु, क्या विवादित ढाँचे का स्थलबद्ध होना इस निष्कर्ष के तथ्य की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ओर ले जाएगा कि क्या निर्मोही अखाड़े का आंतरिक ढाँचे पर कब्जा था? प्रायिकताओं के पूर्वसर्ग पर उस निष्कर्ष को रेखांकित करना संभव नहीं है।

300. वर्ष 1885 में चबूतरे पर मंदिर के निर्माण की अनुमति मांगते हुए महंत रघुबर दास द्वारा एक वाद संस्थित किया गया था। फैजाबाद में उप – न्यायाधीश ने 24 दिसंबर 1985 दिनांकित के निर्णय में अवलोकित किया कि यद्यपि चबूतरे के कब्जे वाला क्षेत्र वादी के कब्जे और स्वामित्व में था, किंतु निर्माण कार्य करने की अनुमति इस आधार पर मना कर दी जानी चाहिए कि यह लोक हित में नहीं था और यह हिंदुओं और मुस्लिम समुदायों के बीच संघर्ष की नींव डालेगा। अपील में, जिला न्यायाधीश फैजाबाद ने दिनांक 18/26 मार्च 1886 को महंत रघुबर दास के पक्ष में किए गए चबूतरे के स्वामित्व पर अवलोकनों को हटा दिया। श्री एस के जैन ने अपने लिखित कथनों में स्पष्टतः स्वीकार किया है कि वर्ष 1885 के वाद से उत्पन्न होने वाली घटनाओं को बाह्य अहाते में रामचबूतरे पर महंत रघुबर दास की उपस्थिति दर्शित करने के लिए अवलम्ब लिया गया है। इसके अलावा, निर्मोही वर्ष 1885 के वाद के विषय में अस्पष्ट रहे हैं, एक समय इसके बारे में अनभिज्ञता का संकेत देते हैं और फिर अन्य समय में असंगत स्थिति को अपनाते हैं।

301. निर्मोही अखाड़े द्वारा अवलम्बित दस्तावेजों की अगली श्रेणी वर्ष 1900 से प्रारम्भ होता है। ये दस्तावेज अग्रलिखित हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) श्रद्धालुओं को पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए झिंगू को अनुमति देने वाला अनुबंध[176];

(ii) एच. आर. नेविल की " द गजेटियर ऑफ द यूनाइटेड प्रॉविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध 1905" यह कहते हुए कि निर्मोही अखाड़ा पंथ पूर्व में रामकोट में राम जन्मभूमि मंदिर था, जिसके अवशेष अब भी उनके हैं;

(iii) महंत रघुनाथ दास के पक्ष में दाखिल खारिज;[177]

(iv) दिनांक 13 अक्टूबर, 1942 को ठेका दुकान का अनुबंध;[178]

(v) महंत रघुनाथ दास द्वारा एक दुकान के संबंध में निष्पादित 29 अक्तूबर, 1945 दिनांकित का अनुबंध;[179]

(vi) वक्फ निरीक्षक द्वारा यह रिपोर्ट कि हिन्दू और सिखों के भयवश मुस्लिम मस्जिद में नमाज़ अदा नहीं कर पा रहे थे;[180]

(vii) 29 दिसंबर, 1949 दिनांकित की वक्फ निरीक्षक की रिपोर्ट में दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949[181] के बीच पुलिसकर्मियों की उपस्थिति दर्ज की गई थी और यह कि शुक्रवार को जब मस्जिद 3–4 घंटे के लिए खुली है, सिवाय इसके कोई नमाज अदा नहीं की जा रही थी और कई बैरागी मस्जिद पर जबरन कब्जा करने की कोशिश कर रहे थे;

(viii) 5 जनवरी, 1950 दिनांकित को प्रापत की रिपोर्ट जो निर्मोही अखाड़ा को संदर्भित करती है, जबकि उसके कब्जे में ली गई संपत्ति की सीमाओं का चित्रण करती है।[182] दिनांक 5 जनवरी 1950 को कुर्की के बाद,

---

176 Exhibit 8
177 Exhibit 49
178 Exhibit 9
179 Exhibit 10
180 Exhibit A–63 – Suit 1
181 Exhibit A– 64 – Suit 1
182 Exhibit A– 3 – Suit 4

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह तर्क दिया गया है कि महंत बलदेव दास द्वारा धारा 145[183] के तहत कार्यवाही में आपत्तियां दर्ज की गई थीं;

(ix) वर्ष 1961 में, बाह्य अहाते में निर्माण के लिए अनुमति मांगी गई थी; और

(x) सिटी मजिस्ट्रेट के स्पष्टीकरण 9 फरवरी, 1961 दिनांकित में यह कहा गया कि कैनवास या कवर के स्थान पर कोई आपत्ति नहीं थी।

निर्मोही अखाड़े द्वारा जिन दस्तावेजों को सन्दर्भित करते हुए अवलम्ब लिया गया है, उनके अनुसार, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया कि दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु जिनके पक्षकार प्रतिवादी नहीं थे, प्रश्नगत स्वत्व और आधिपत्य पर प्रासंगिक नहीं हैं। निर्मोही अखाड़ा द्वारा अवलम्बित दस्तावेजी साक्ष्य आंतरिक अहाते के भीतर के परिसर के संबंध कुछ नहीं बताते हैं।

302. अपील की सुनवाई के दौरान डॉ. राजीव धवन ने उन प्रदर्शों पर एक विस्तृत प्रतिक्रिया दायर की जिस पर निर्मोही अखाड़ा ने अवलम्ब लिया था। सांप्रदायिक संघर्ष के इतिहास के घटनाक्रम में वर्ष 1856–57 एवं 1934 में हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच कई विद्रोहों का संकेत देता है। वर्ष 1934 में मस्जिद आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गई और इसके बाद मस्जिदों में नमाज अदा करने के दौरान मुस्लिमों को नमाज अदा करने के अधिकार से वंचित रखने में बाधाएं डाली गईं।इसके बाद 22/23 दिसंबर 1949 को हुई घटनाओं के बाद गुप्त रूप से मूर्तियों को केंद्रीय गुंबद के नीचे रखा गया।

---

183 Exhibit 6 –Suit 3

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसके तुरंत बाद, धारा 145 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ की गई जिसके परिणामस्वरूप संपत्ति की कुर्की की गयी। इस पृष्ठभूमि में, निर्मोही अखाड़ा के मामले को स्वीकार करना मुश्किल है कि विवादित ढाँचा एक मंदिर था जो उनके अनन्य कब्जे में था और दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को कोई घटना नहीं हुई थी।

मस्जिद से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य (1934–1949)

303. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी ने विवादित ढाँचे के कब्जे संबंधित निर्मोही अखाड़े के दावे का खंडन करते हुए इस मामले का समर्थन करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य पर अवलम्ब लिया कि आंतरिक अहाते के भीतर स्थित ढाँचा एक मस्जिद थी और यह कि वर्ष 1934 से 1949 तक मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने के लिए उपयोग किया जाता रहा था। इस दस्तावेजी साक्ष्य का असर मस्जिद के अनन्य कब्जे संबंधित निर्मोही अखाड़े के दावे की सत्यता पर पड़ता है और इसलिए इसकी जांच करने की आवश्यकता है। दस्तावेजी साक्ष्य में निम्नलिखित शामिल हैं:

(i) अपर दीवानी न्यायाधीश, फैजाबाद[185] के समक्ष नियमित वाद 95/1941 (महंत रामचरण दास बनाम रघुनाथ दास) में 6 जुलाई, 1942 दिनांकित को डिक्री और दिनांक 4 जून, 1942[184] के आदेश की प्रमाणित

---

185 Exhibits A–5 – Suit 4

184 Exhibit A–4 – Suit 4

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रति। वाद में समझौता हुआ था। समझौते की शर्तों में "बाबरी मस्जिद"[186] का एक विशिष्ट संदर्भ है:

> "2. मोहल्ला रामकोट, सिटी अयोध्या, परगना हवेली अवध, तहसील और जनपद फैजाबाद में स्थित भूमि के साथ एक पक्का मंदिर, जिसकी सीमाओं को निम्नानुसार वर्णित किया गया है:
> पूर्वः परती और कब्रिस्तान
> पश्चिमः बाबरी मस्जिद
> उत्तर: पक्की रोड
> दक्षिण: कब्रिस्तान।"

वाद निर्मोहियों के मध्य था। उपरोक्त दस्तावेज इंगित करते हैं कि मस्जिद के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता है;

(ii) दिनांक 27 मार्च, 1934 को या बकरीद के अवसर पर हुए दंगों के पश्चात् मस्जिद का एक भाग नष्ट हो गया। उस संबंध में, परिसर की मरम्मत से संबंधित दस्तावेज निम्नलिखित हैं:

(क) बाबरी मस्जिद की सफाई और धार्मिक सेवाओं के उपयोग के लिए मंजूर की गई अनुज्ञा[187];

(ख) मस्जिद क्षतिग्रस्त होने के कारण बैरागियों से जुर्माने की प्राप्ति के लिए 5 जून, 1934 दिनांकित को मोहम्मद जकी एवं अन्य का आवेदन[188];

(ग) मस्जिद को हुई क्षति के मुआवजे के भुगतान हेतु 6 अक्तूबर, 1934 दिनांकित को जिलाधिकारी का आदेश[189];

---

186 Exhibit A–6 – Suit 4
187 Exhibit A–49– Suit 1
188 Exhibit A–6– Suit 1
189 Exhibit A–43– Suit 1

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(घ) मस्जिद की मरम्मत के लिए अपने बिलों के भुगतान हेतु ठेकेदार ताहावर खान का 25 फरवरी, 1935 दिनांकित का आवेदन[190];

(ङ) मस्जिद की मरम्मत के लिए बिलों का संदाय करने से पूर्व उपखण्ड मजिस्ट्रेट सदर द्वारा किए गए कार्य के निरीक्षण के लिए 26 फरवरी, 1935 दिनांकित को फैजाबाद उपायुक्त का आदेश[191];

(च) दिनांक 15 अप्रैल, 1935 को ठेकेदार द्वारा प्रस्तुत मरम्मत का आकलन जिसके अंतर्गत गुंबद की मरम्मत भी शामिल है[192];

(छ) कार्य पूर्ण होने में विलंब संबंधित 16 अप्रैल, 1935 दिनांकित को ठेकेदार का आवेदन। इस पत्र में कहा गया कि गुंबद की मरम्मत उसी प्रकार की जा रही थी जैसे कि संगमरमर की पट्टियाँ जिसमें अल्लाह के उत्कीर्णन था[193]।

(ज) बाबरी मस्जिद की मरम्मत में सहायक अभियंता, लोक निर्माण विभाग, फैजाबाद के 21 नवंबर, 1935 दिनांकित के निरीक्षण नोट में यह उल्लेख किया गया है कि कार्य का निरीक्षण किया गया था और वह संतोषजनक मिला था[194];

(झ) मस्जिद की मरम्मत के संबंध में ठेकेदार के बिल पर 27 जनवरी, 1936 दिनांकित की बिल क्लर्क की रिपोर्ट[195];

(ञ) बाबरी मस्जिद की मरम्मत के कार्य के लिए भुगतान के संबंध में 29 जनवरी, 1936 दिनांकित को श्री ए डी डिक्सन का आदेश[196]; और

---

190 Exhibit –A– 51 – Suit 1
191 Exhibit A–45– Suit 1
192 Exhibit –A–44– Suit 1
193 Exhibit –A–50– Suit 1
194 Exhibit A–48– Suit 1
195 Exhibit A–46 – Suit 1
196 Exhibit A–47– Suit 1

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ट) बाबरी मस्जिद की मरम्मत के लिए उसके बिल से की गई कटौतियों की शिकायत 30 अप्रैल, 1936 दिनांकित को ठेकेदार के आवेदन में की गई है।[197]

उपरोक्त दस्तावेज जो विधिवत प्रदर्शित किए गए हैं यह दर्शाता है कि वर्ष 1934 के दंगों के बाद, एक मुस्लिम ठेकेदार बाबरी मस्जिद की मरम्मत के लिए लगा हुआ था। मस्जिद को हुए नुकसान और ठेकेदार द्वारा किए गए कार्य का संदर्भ दिया गया है।

304. मरम्मत से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, दस्तावेजों का एक अन्य समूह बाबरी मस्जिद में इमाम की सेवाओं से संबंधित है:

(i) दिनांक 25 जुलाई, 1936 को बाबरी मस्जिद के न्यासी सैयद मोहम्मद ज़की द्वारा बाबरी मस्जिद के पेश इमाम मौलवी अब्दुल गफ्फार के पक्ष में एक करार/वचन निष्पादित किया गया, जो वर्ष 1935 तक उनके बकाया वेतन के भुगतान के संबंध में था[198];
(ii) मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1936 की धारा 4 के तहत एक नोटिस की प्रतिक्रिया में वक्फ आयुक्त के समक्ष 19/20 जुलाई, 1938 दिनांकित को सैयद मोहम्मद जकी का आवेदन[199];
(iii) वक्फ आयुक्त फैजाबाद के समक्ष 20 अगस्त, 1938 दिनांकित को अब्दुल गफ्फार, बाबरी मस्जिद के पेश इमाम का दिनांक 31 जुलाई, 1938

197 Exhibit A–52– Suit 1
198 Exhibit A–7– Suit 1
199 Exhibit A– 67– Suit 1

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तक अपने वेतन के बकाया के भुगतान के लिए मुतवल्ली को निदेश देने की मांग का आवेदन[200];

(iv) सैयद मोहम्मद जकी (भूतपूर्व मुतवल्ली) के भाई का दिनांक 20 नवंबर, 1943 दिनांकित को सुन्नी वक्फ बोर्ड की 27 अक्तूबर, 1943 दिनांकित की नोटिस पर उत्तर[201]। पत्र की अन्तर्वस्तु में मस्जिद के लिए दैनिक आवश्यकताओं के साथ ही साथ जुमे की नमाज को बनाए रखने की व्यवस्था का स्पष्ट संदर्भ है:

> "यह कि चटाई, कालीन और जानमाज–इबादत करने की कालीन आदि केवल दैनिक आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होते हैं। अन्य कालीन और इबादत करने की कालीन पेश इमाम मौलवी अब्दुल गफ्फार के पास हैं। इन्हें हर शुक्रवार को मस्जिद में लाया जाता है और जुमे की नमाज के बाद वापस उसी स्थान पर रखा जाता है क्योंकि कालीन अक्सर मस्जिद से चोरी हो जाती है। यही कारण है कि मस्जिद में सभी चटाई और कालीनों को नहीं रखा जाता है।"

(v) उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1936 की धारा 5(2) के तहत वाद संस्थित करने से पूर्व सुन्नी वक्फ बोर्ड को शिया वक्फ बोर्ड के 11 अप्रैल, 1945 दिनांकित की नोटिस में सुन्नी वक्फ के रूप में मस्जिद घोषित करते हुए 26 फरवरी, 1944 दिनांकित की अधिसूचना को चुनौती दी गई[202];

(vi) मुतावल्ली की मृत्यु के कारण तौलियत के प्रभार के बारे में सुन्नी वक्फ बोर्ड के सचिव का दिनांक 5 नवंबर, 1948 का नोटिस[203];

---

200 Exhibit A– 61– Suit 1
201 Exhibit A–66– Suit 1
202 Exhibit A–65– Suit 1
203 Exhibit A–62– Suit 1

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) इबादत करते समय मुस्लिमों के उत्पीड़न संबंधित वक्फ निरीक्षक की दिनांक दिनांक 10/12 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट[204]; और

(viii) बाबरी मस्जिद की दशा संबंधित 23 दिसंबर, 1949 दिनांकित की वक्फ निरीक्षक की रिपोर्ट में यह कहा जा रहा था कि चाबियां मुस्लिमों के पास ही रहेंगी और केवल शुक्रवार को नमाज पढ़ी जा जा रही थीं[205]:

> "मुझे दिनांक 22 दिसंबर 49 को बाबरी मस्जिद अयोध्या और कब्रिस्तान की मौजूदा हालत की जांच करनी पड़ी, मैंने सारा दिन पूछताछ में बिताया। मेरी पूछताछ ने मुझे निम्नलिखित परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में अवगत कराया। बाबा रघुनाथ के जन्मस्थान आगमन के लिए तीन माह की अवधि बीत चुकी है। उन्होंने बैरागियों और पुजारियों से आग्रह किया कि रामायणपाठ –रामायण का पाठ– जन्मस्थान में होना चाहिए। यह संदेश आसपास के सभी क्षेत्रों में फैल गया। बाबा रघुबरदास के प्रस्थान के एक माह बाद हजारों हिंदू पुजारी और पंडित रामायण पाठ करने के लिए वहां इकट्ठा हुए। पाठ एक सप्ताह तक चलता रहा। इस बीच में बैरागियों ने मस्जिद के सामने वाले हिस्से और क़ब्रिस्तान के हिस्से के बाहर खुदाई की और इस जमीन को समतल कर दिया। उन्होंने एक अस्थायी संरचना भी स्थापित किया और कुछ कब्रस्थल पर पत्थर लगाए। रामायण के पाठ के समय पुलिस का बंदोबस्त था। इसके बावजूद कब्रों को खोदा गया। पुलिस ने चार व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जिन्हें बाद में बंधपत्र पर रिहा कर दिया गया। एक उभरे हुए टीले पर स्थित कब्रिस्तान, जिसमें ख्वाजा रहमतुल्लाह का मकबरा है वह भी खोदी गयी और भूमि समतल कर दी गई। एक बैरागी ने वहां रहना प्रारम्भ कर दिया है। बैरागी, मस्जिद की दीवारों से सटे अहाते के दरवाजे के पास स्थित पक्की कब्र के पास बैठ रहे हैं। बैरागियों ने एक कुटिया बनाई है। इस पाठ के प्रारम्भ होने से पूर्व ही बैरागियों ने लूटपाट की थी और बाड़े को तोड़ दिया था। मुअज़्ज़िन को पीटा गया और उसके बाद उन्होंने मस्जिद के उत्कीर्णन खोदने का प्रयास किया। दो अजनबी मुस्लिमों को पीटा गया जिससे उन्हें गंभीर

204 Exhibit A–63– Suit 1

205 Exhibit A–64– Suit 1

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

चोटें आईं। अब मस्जिद के बाहर दो कैंप हैं। उनमें से एक में पुलिस कांस्टेबल तैनात हैं और दूसरे में बटालियनों के सिपाही हैं। (कांस्टेबलों और सिपाहियों) कुल सं. लगभग 7 से 8 है। **अब मस्जिद बंद है। जुमा का दिन और समय को छोड़कर किसी भी अज़ान की अनुमति नहीं है और न ही नमाज़ अदा की जाती है। चाबियां मुस्लिमों के पास रहती हैं। लेकिन पुलिस उन्हें ताला खोलने की अनुमति नहीं देती। ताला जुमा के दिन, यानी शुक्रवार को दो या तीन घंटे के लिए खोला जाता है। इस अवधि के दौरान, मस्जिद को साफ किया जाता है और जुमे की नमाज अदा की जाती है। इसके बाद यह हमेशा की तरह बंद कर दिया जाता है। जुमे के समय बहुत शोर मचाया जाता है। जब नमाजियों को सीढ़ी से नीचे जाना होता है तो उन पर जूते और धूल मिट्टी फेंक दिए जाते हैं। लेकिन मुस्लिम डर के मारे इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं देते हैं।** राघवदास के बाद, श्री लोहिया भी अयोध्या आए थे और उन्होंने लोगों को संबोधित करते हुए कहा था कि फूलों के पौधों को कब्रों की जगह पर लगाया जाना चाहिए। एक मंत्री भी लखनऊ से आए थे। बैरागियों ने उन्हें बताया कि मस्जिद जन्मभूमि है। हमें इसे प्राप्त करने में सहायता करें। उसने बलपूर्वक ऐसा करने से इनकार कर दिया। यह सुनकर बैरागियों को क्रोध आ गया और उन्हें पुलिस सुरक्षा के बीच फैजाबाद वापस जाना पड़ा। इस बीच अयोध्या के कनक भवन मंदिर में महंत बाबास्थान, महंत रघुबरदास, वेदांती जी, नारायण दास, आचार्य जी मुस्लिमों को बुलाना चाहते थे, परन्तु ज़हूर अहमद को छोड़कर कोई भी वहाँ नहीं आया। हिंदुओं ने ज़हूर अहमद से कहा कि वे मस्जिद पाने में उनकी सहायता करें। उसे बताया गया कि यदि ऐसा किया जाता है तो हम भाई हैं, अन्यथा, हम दुश्मन हैं। मैं रात भर अयोध्या में रहा। सुबह मुझे पता चला कि बैरागियों की कोशिश मस्जिद पर जबरन कब्जा करने की है। आज जुमे का शुक्रवार है। जब मैं स्थल पर पहुंचा, तो 10 से 15 बैरागी गदा और कुल्हाड़ी लेकर मस्जिद के अहाते में मौजूद थे और कई बैरागी गदा लेकर मस्जिद के दरवाजे पर बैठे थे। आसपास के क्षेत्र के हिंदू भी वहां इकट्ठे हो रहे हैं। सिटी मजिस्ट्रेट, शहर के पुलिस अधिकारी और अन्य पुलिस बल पर्याप्त संख्या में तैनात हैं। फैजाबाद के मुस्लिम जुमे (शुक्रवार) की नमाज़ अदा करने ज़रूर आते थे। उनका क्या हश्र होगा मैं नहीं जानता। अब मैं नदी पार कर लक्कड़मंडी गोण्डा जा रहा हूं।

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया कि पेश इमाम को बकाए सहित वेतन भुगतान का उपक्रम/अनुबंध[206] साबित नहीं हुआ है। साक्ष्य में प्रदर्शित होने के अलावा, इस दस्तावेज को वक्फ निरीक्षक के समक्ष पेश इमाम द्वारा अनुबंध के संदर्भ में उसके वेतन भुगतान के लिए एक आवेदन में संदर्भ मिलता है जिसकी एक प्रति आवेदन[207] के साथ दायर की गई थी। जैसा कि वक्फ निरीक्षक की सूचनाओं के संबंध में निर्मोही अखाड़ा की ओर से दायर लिखित कथन, दोनों सूचनाओं पर वास्तव में भरोसा करती है। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल द्वारा सूचनाओं पर भरोसा न करने के लिए संकेत दिया गया कारण–यह कि वक्फ निरीक्षक को किसी ने नहीं देखा है, वह सदृश है। रिपोर्ट 10/12 दिसंबर 1949 दिनांकित को खासतौर पर वाद 5 में वादपत्र पर और वाद 5 में वादी 3 की मुख्य परीक्षा पर अवलम्ब लिया गया है।

305. उपरोक्त दस्तावेज निरूपित करते हैं कि:

(I) वर्ष 1934 के दंगों के बाद मस्जिद की पुनर्स्थापन के लिए उठाए गए कदम;

(ii) ठेकेदार द्वारा मस्जिद की मरम्मत और लोक निर्माण विभाग द्वारा किए गए भुगतान;

(iii) पेश इमाम की सेवाओं का जुड़ाव और अपने बकाया वेतन का संदाय न करने संबंधित परिचर विवाद;

---

206 Exhibit A–7– Suit 1

207 Exhibit A–61

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) दिसंबर, 1949 में वक्फ निरीक्षक की रिपोर्ट में यह कहते हुए कि मुस्लिमों को मस्जिद में नमाज़ अदा करने के लिए परेशान किया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप केवल शुक्रवार की नमाज अदा की जा रही थी; और
(v) वक्फ इंस्पेक्टर ने मस्जिद के लिए खतरे की आशंका व्यक्त की।

306. मौखिक साक्ष्य और दस्तावेजी सामग्री के उपरोक्त विश्लेषण के मद्देनजर, निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:
(i) निर्मोही साक्षियों के मौखिक विवरणों में बहुत कमियाँ हैं कि विवादित ढाँचा एक मस्जिद नहीं बल्कि जन्मभूमि मंदिर था;
(ii) निर्मोही अखाड़े द्वारा दिए गए दस्तावेजी साक्ष्य आंतरिक अहाते और उसके भीतर मस्जिद का ढाँचा, जो वाद 3 के विषय है, को अपने कब्जे को स्थापित नहीं करते हैं;
(iii) निर्मोही अखाड़ा के दावों के विपरीत, दस्तावेजी साक्ष्य वर्ष 1934 से 1949 के बीच मस्जिद ढाँचे के अस्तित्व को स्थापित करता है; और
(iv) जहां तक मस्जिद में नमाज़ का संबंध है, मुस्लिमों को इबादत करने में बाधा डाली जा रही थी जिसके परिणामस्वरूप दिसंबर, 1949 तक शुक्रवार की नमाज अदा की जा रही थी।

दिसंबर 1949 तक मस्जिद के होने और उपयोग के संबंध में यह दस्तावेजी साक्ष्य विशेष रूप से पुलिस अधीक्षक फैजाबाद के पत्र 29 नवंबर 1949 दिनांकित का समर्थन करते हैं, जिसमें मस्जिद को घेरने के लिए किए जा रहे प्रयासों का जिक्र था कि मुस्लिम इसे छोड़ दें। यह मुख्य सचिव को मस्जिद

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की सुरक्षा के संबंध में आशंकाओं को दूर करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के 16 दिसंबर 1949 दिनांकित के पत्र के साथ युग्मित है,।

307. वाद 3 को परिसीमा द्वारा वर्जित अभिनिर्धारित किया गया है। निर्मोही अखाड़े के दावों का पूर्ण निर्णय प्रस्तुत करने के लिए ऊपर उल्लिखित मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का विश्लेषण किया गया है:
(i) मस्जिद के अस्तित्व को नकारते हुए; (ii) यह दावा करते हुए कि आंतरिक अहाते में ढाँचा एक ऐसा मंदिर है जो इसके अनन्य कब्जे में था; और (iii) दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 के बीच रात की घटना से इनकार करते हुए। निर्मोही अखाड़ा अपने दावे को साबित करने में नाकाम रहे हैं। दस्तावेजी साक्ष्य निर्मोही अखाड़े (सुन्नी केंद्रीय वक्फ बोर्ड द्वारा समर्थित) द्वारा वाद 5 की पोषणीयता के लिए उठाई गई आपत्तियों का निर्धारण करने में प्रासंगिक होंगे। क्या निर्मोही अखाड़ा द्वारा कहा गया है है कि वे भगवान राम की सेवा में सेवायत के रूप में थे जो कि वाद 5 में एक मुद्दा था और इसलिए उस वाद से निपटते समय इस पर विचार किया जाएगा। ऊपर जिन साक्ष्यों पर चर्चा की गई है वे भी प्रश्नगत स्वत्व पर प्रासंगिक हैं और इस निर्णय के दौरान उपयुक्त स्थित में पुनर्प्रस्तुत किया जाएगा।

N. वाद 5: देवी देवता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

N.1 पक्षकारों की श्रृंखला

308. वाद 5 को वाद मित्र के माध्यम से पहली और दूसरे वादी की ओर से संस्थित किया गया था जिसे तीसरे वादी के रूप में अभियोजित किया गया था। प्रथम और द्वितीय वादी: "भगवान श्री राम लला विराजमान" और "स्थान श्री राम जन्मभूमि, अयोध्या" हैं। तृतीय वादी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री देकी नंदन अग्रवाल थे। तृतीय वादी की मृत्यु के परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय के एक आदेश द्वारा उसे प्रतिस्थापित किया गया था।

309. पहले प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधि गोपाल सिंह विशारद (वाद 1 में वादी) हैं; दूसरा प्रतिवादी वाद 2 में वादी था (जिसे बाद में वापस ले लिया गया था); तीसरा प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा (वाद 3 में वादी); चौथा प्रतिवादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड (वाद 4 में वादी) हैं; पांचवें और छठे प्रतिवादी अयोध्या और फैजाबाद के मुस्लिम निवासी हैं; सातवें, आठवें, नौवें और दसवें प्रतिवादी उत्तर प्रदेश राज्य और इसके अधिकारी हैं; ग्यारहवें प्रतिवादी अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष हैं; बारहवें और तेरहवें प्रतिवादी क्रमशः अखिल भारतीय आर्य समाज और अखिल भारतीय सनातन धर्म सभा का प्रतिनिधित्व करते हैं; चौदहवें प्रतिवादी श्री धर्म दास थे जिन्हें बाबा अभिराम दास के चेले के रूप में वर्णित किया गया था जो कथित तौर पर दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को होने वाली घटना में शामिल किया गया था; पंद्रहवें और सोलहवें प्रतिवादी के रूप में अयोध्या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और फैजाबाद के हिंदू निवासी हैं; प्रतिवादी सं. सत्रह फैजाबाद जिले का निवासी था (अब हटा दिया गया); अठारहवें और उन्नीसवें प्रतिवादी के रूप में महंत गंगा दास और स्वामी गोविंदाचार्य मानस मार्तंड हैं; बीसवें प्रतिवादी उमेश चंद्र पांडे थे जिन्होंने वाद 3 में निर्मोही अखाड़े के दावे का विरोध किया था (परन्तु कुछ साक्ष्य नहीं दिए);

प्रतिवादी सं. इक्कीस को ट्रस्ट "श्री राम जन्म भूमि न्यास" के रूप में वर्णित किया गया है जिसका प्रबंध न्यासी श्री अशोक सिंघल के माध्यम से निहित किया गया है; प्रतिवादी सं. बाईस से पच्चीस शियाओं का व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व करने वाला वक़्फ़ शिया सेंट्रल बोर्ड है; प्रतिवादी सं. छब्बीस जमैतुल उलेमा हिंद उ.प्र. के महासचिव हैं और प्रतिवादी सं. सत्ताईस फैजाबाद का मुस्लिम निवासी है।

N.2 उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कोई प्रतिवाद नहीं।

310. उत्तर प्रदेश राज्य ने एक कथन (वाद 4 वर्ष 1989 में) दायर किया जिसमें कहा गया था कि "विवादित संपत्तियों में सरकार की कोई रूचि नहीं है" और विवादित संपत्तियों के संबंध में अधिकारियों के कार्य उनके शासकीय कर्तव्यों के सम्यक् निर्वहन में सद्भाविक थे।

N.3 अभिकथन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

311. वाद 5 का वादपत्र इस आधार पर आगे बढ़ता है कि पहले और दूसरे वादी '"भगवान श्री राम के साथ उस स्थान के प्रमुख देवता के रूप में न्यायिक व्यक्ति हैं"। तीसरे वादी को "वैष्णव हिंदू" के रूप में वर्णित किया गया है। वादपत्र में राम जन्मभूमि से सम्बन्धित विवरण इस प्रकार हैं , "जिसमें भवन परिसर के दो साइट प्लान, वाद 1 में दीवानी न्यायाधीश, फैजाबाद के न्यायालय द्वारा नियुक्त आयुक्त शिव शंकर लाल द्वारा" अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में इससे जुड़े हुए क्षेत्र का निर्माण कराया गया जो श्री राम जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है। ये नक्शा नजरी अपनी आख्या के साथ वादपत्र के अनुलग्नक I, II और III में हैं।

312. दीवानी न्यायालय[208] के समक्ष संस्थित पूर्ववर्ती वादों के इतिहास को स्थापित करने के पश्चात् और धारा 208 के तहत की गई कार्यवाहियों में वादपत्र कहता है कि ये वाद "उनकी त्वरित सुनवाई की मंद संभावना के साथ" लंबित रहते हैं। यद्यपि, वादी देवताओं की सेवा और पूजा को ठीक से किया जाना कहा गया है और यह कहा गया है कि केवल हिंदू भक्तों के लिए एक बैरियर के पीछे से दर्शन की अनुमति दी गई है। वादी देवताओं और भक्तों को मुकदमों के निस्तारण में विलंब के साथ , मंदिर के मामलों के प्रबंधन में गिरावट और पुजारियों और मंदिर के अन्य कर्मचारियों द्वारा उपासकों के प्रसाद के कथित दुरुपयोग के साथ "बेहद नाखुश" कहा जाता है। यह कहा गया है कि हिंदू भक्त राम जन्मभूमि में मौजूदा ढाँचे को हटाने के बाद एक नया मंदिर बनाने के इच्छुक हैं। वादपत्र के अनुसार, रामानंद

---

208 Suit 2 of 1950, Suit 25 of 1950, Suit 26 of 1959 and Suit 12 of 1961

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संप्रदाय के प्रमुख को मंदिर के कुप्रबंधन को बताते हुए और एक नए मंदिर के निर्माण की सुविधा सौंपी गई थी। अंततः 18 दिसंबर 1985 दिनांकित को न्यास का विलेख हुआ जो उप–निबन्धक द्वारा पंजीकृत किया गया था। ट्रस्ट का नाम "श्री राम जन्मभूमि न्यास" रखा गया है और इसमें दस न्यासी हैं। इसके अलावा, विश्व हिंदू परिषद को अपने मार्ग दर्शक मंडल के माध्यम से चार न्यासियों को नामित करना है, जो उसने किया था। आगे, पांच न्यासियों को "भारत के श्रेष्ठ हिंदू नागरिक" में नामित किया गया है। उपरोक्त पांच व्यक्तियों में से, तीसरे वादी को न्यासियों में से एक के रूप में नामित किया गया था। यह कहा गया है कि राम जन्मभूमि न्यास वादी देवताओं की सेवा–पूजा और अन्य मामलों में प्रत्यक्ष हितबद्ध है। वादी आगे संकेत देता है कि मौजूदा वाद "अपर्याप्त हैं" और विवाद का निपटारा नहीं कर सकते क्योंकि न तो पीठासीन देवता भगवान श्री राम विराजमान और न ही अस्थान श्री राम जन्म भूमि (जिनमें से दोनों को न्यायिक व्यक्ति कहा गया है) को पूर्व वाद में अभियोजित किया गया था। इसके अलावा , यह अभिकथित किया गया है कि पूर्व के वादों में से कुछ पक्षकार वादी देवताओं की पूजा पर नियंत्रण प्राप्त करके अपने व्यक्तिगत हित को प्राप्त करने के लिए शामिल हैं। इस पृष्ठभूमि में, वादी ने अपने स्वयं ही एक वाद की स्थापना की है।

313. वादपत्र कहता है कि "असंदिग्ध प्राधिकारी" द्वारा यह प्रतिस्थापित किया गया है कि विवादित परिसर उस स्थान का प्रतिनिधित्व करता है जहां भगवान राम का जन्म हुआ था। दूसरे वादी को "अस्थान श्री राम जन्म भूमि"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के रूप में वर्णित किया गया है और पूजा की एक स्वतंत्र वस्तु के रूप में कहा गया है, जिसे भक्तों द्वारा भगवान राम की दिव्य आत्मा के मूर्त रूप में पूजा जाता है। इसलिए, यह प्रकथित है कि राम जन्मभूमि की भूमि के मौजूदा ढाँचे के निर्माण अथवा केंद्रीय गुंबद के भीतर मूर्तियों की स्थापना से पूर्व भी न्यायिक व्यक्तित्व का कब्जा रहा है। यह कहा गया है कि हिंदुओं द्वारा न केवल मूर्ति के भौतिक रूप अथवा आकार की पूजा की जाती है बल्कि उस दिव्य आत्मा की जिसे प्राण प्रतिष्ठा द्वारा आह्वान किया जाता है। यह कहा गया है कि दूसरे वादी के स्थल पर एक देवता के रूप में दिव्य आत्मा को पूजा जाता है और इसलिए यह कहा गया है कि वह स्थल स्वयं एक देवता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि ये देवता अविनाशी होने के नाते तब तक अस्तित्व में है जब तक कि वह जगह मौजूद है और जिस स्थान पर भूमि है, उस पर किसी भी निर्माण के बावजूद वह मौजूद है।

314. तर्क के समर्थन में फैजाबाद गजेटियर के वर्ष 1928 के संस्करण पर अवलम्ब लेने के लिए वादपत्र आगे बढ़ता है कि राम जन्मभूमि मंदिर कहे जाने वाले प्राचीन मंदिर को बाबर ने वर्ष 1528 में नष्ट कर दिया था और इस स्थल पर नष्ट हुए मंदिर की सामग्री से एक वृहद मस्जिद का निर्माण कसौटी स्तंभ सहित किया गया था। वादपत्र के अनुसार फिर भी उपासकों ने चरण और सीता रसोई और परिसर के भीतर रामचबूतरे पर भगवान राम की मूर्ति जैसे प्रतीकों के माध्यम से भगवान राम की पूजा करना जारी रखा। यह कहा गया है कि कोई भी भवन में प्रवेश नहीं कर सकता है सिवाय उन क्षेत्रों से गुजरने के जहां हिंदू पूजा करते थे। वादपत्र में यह विवादित है कि क्या एक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिंदू मंदिर के स्थल पर इस्लामिक सिद्धांतों के अनुसार एक मस्जिद का निर्माण वैध रूप से किया जा सकता है जो हिंदू पूजा स्थलों से घिरा हुआ है। वादियों के अनुसार, देवताओं के उपासक सदियों से राम जन्मभूमि में प्रार्थना करते रहे हैं; यह स्थान देवताओं का है और कोई वैध वक्फ कभी नहीं बनाया गया था या बनाया जा सकता था। मुस्लिम निवासियों द्वारा यदा–कदा अतिचार के बावजूद यह कहा गया है कि स्वत्व और कब्जा वादी देवताओं में निहित है। यह अभिकथित है कि मस्जिद में कोई इबादत नहीं की गई थी। स्वतंत्रता के बाद बैरागियों द्वारा राम जन्मभूमि के आसपास की कब्रें खोदी गईं और अंततः दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि को भगवान राम की एक मूर्ति विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद में विधि विधान के साथ स्थापित की गई थी। इसके बाद धारा 145 के तहत कार्यवाही की गई जिसमें वादी देवता पक्षकार नहीं थे। वादी देवताओं में निहित मूल हक के तर्क के विकल्प में यह कहा गया है कि देवताओं का कब्जा है और देवताओं के प्रतिकूल हक का कोई भी दावा प्रतिकूल कब्जे से समाप्त हो जाता है।

315. वादपत्र में यह उपवर्णित किया गया है कि हिन्दू भक्त विवादित स्थल पर एक मंदिर बनाने के इच्छुक थे और "सक्रिय आंदोलन" दिनांक 30 सितंबर, 1989 से 9 नवंबर, 1989 को आधारशिला रखे जाने के साथ प्रारंभ किया गया था। यह कहा गया है कि निर्मोही अखाड़े ने वादी–देवताओं की पूजा के प्रबंधन में व्यक्तिगत हित रखा है और उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई अन्य उपयुक्त व्यक्ति नहीं है, तीसरे वादी ने वाद को वाद मित्र के रूप में संस्थित किया है। यह प्रकथित है कि नए मंदिर के निर्माण के लिए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आंदोलन पूर्ण होने में किसी बाधा को दूर करने के लिए विवादित स्थल पर संपूर्ण परिसर "एकल पहचान" के साथ "एक अभिन्न परिसर" का गठन करता है। मुस्लिमों के दावे को आंतरिक चारदीवारी के भीतर बाड़े तक सीमित बताया गया है।

वर्ष 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद वादपत्र में विध्वंस के दौरान और उसके बाद की परिस्थितियों से संबंधित प्रकथन शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था। वादी के अनुसार, अधिग्रहण के अध्यादेश और संसद द्वारा अधिनियमित कानून के पालन के बाद सेवायती अधिकारों को छीन लिया गया और वैधानिक प्रापत को सुपुर्द कर दिया गया।

वाद संस्थित किए जाने के लिए वाद हेतुक के बारे में कहा गया है कि "दैनिक" उपार्जन किया गया, विशेष रूप से तब जब नये मंदिर के निर्माण की योजना पर कुछ मुस्लिमों की ओर से हिंसात्मक कार्रवाई से बाधा डालने का अभिकथन किया गया था।

उपरोक्त तर्कों पर, वाद 5 में दो राहतें मांगी गई हैं:

(क) एक घोषणा जो कि अनुलग्नक I, II और III में वर्णित श्री राम जन्मभूमि का पूरा परिसर वादी–देवताओं से संबंधित है; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ख) मौजूदा भवनों और संरचनाओं को हटाने और विध्वंस के बाद श्री राम जन्मभूमि में एक नए मंदिर के निर्माण में हस्तक्षेप या बाधा डालने से प्रतिवादियों को प्रतिबंधित करने वाली एक स्थायी निषेधाज्ञा।

N.4 लिखित कथन

निर्मोही अखाड़ा

316. वाद 5 के प्रत्युत्तर में निर्मोही अखाड़े ने अपना लिखित कथन दर्ज करते हुए कहा कि एक वाद मित्र के माध्यम से संस्थित वाद दुर्भावनापूर्ण है और "जवाब देने वाले प्रतिवादियों के हक और हित को नुकसान पहुंचाने के लिए एक रूपरेखा" है। निर्मोही अखाड़ा वाद मित्र के स्थान का खंडन करता है जो तीसरे वादी के रूप में देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। यह विशेष रूप से न्यायिक व्यक्ति के रूप में दूसरे वादी की स्थिति से इनकार करता है। निर्मोही अखाड़ा के अनुसार, भगवान श्री राम राम जन्मभूमि में नहीं बल्कि उस मंदिर में स्थापित हैं जिसे जन्मभूमि मंदिर के रूप में जाना जाता है जिसके प्रभार और प्रबंधन के लिए इसने वाद 3 संस्थित किया है। लिखित कथन के अनुसार, अस्थान का सामान्य आशय केवल एक स्थान है और यह एक विधिक व्यक्ति नहीं है। तीसरे वादी द्वारा यह दावा किया गया है कि वह वैष्णव है और देवता का उपासक नहीं है और उसके पास देवता या "तथाकथित अस्थान" का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई स्थान नहीं है। यह कहा गया है कि नए मंदिर के निर्माण के लिए 25 करोड़ रुपये की राशि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जुटाने का प्रयास किया गया था। निर्मोही अखाड़ा बताता है कि भगवान राम का जन्म–स्थान विवादित नहीं है और यह अयोध्या में स्थित है जहाँ राम जन्मभूमि मंदिर खड़ा है। राम जन्मभूमि मंदिर को विवादित भूमि में बताया गया है, जिसको मुस्लिम मस्जिद होने का दावा करते हैं। अस्थान जन्मभूमि को भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में जाना जाता है, जिसमें संपूर्ण अयोध्या शहर शामिल हैं।निर्मोही अखाड़े ने दावा किया है कि यह विवादित मंदिर में स्थापित भगवान राम की मूर्ति का सेवायत है और केवल इसको ही मंदिर पर नियंत्रण, पर्यवेक्षण, मरम्मत और पुनर्निर्माण का अधिकार है। यह कहा गया है कि निर्मोहियों ने वाद को वर्ष 1959 में दायर किया था जबकि राम जन्मभूमि न्यास वर्ष 1985 में "अखाड़े के हक और हित को नुकसान पहुंचाने के लिए एक स्पष्ट रूपरेखा के साथ" अस्तित्व में आया। निर्मोही अखाड़े ने अभिकथित किया कि भगवान राम की मूर्ति राम जन्मभूमि मंदिर में स्थापित की गई थी और मंदिर इसके अंतर्गत आता है और किसी अन्य को नया मंदिर बनाने का अधिकार नहीं है। वाद 5 का इस आधार पर विरोध किया गया है कि वादी के पास "मुकदमा करने के लिए कोई वास्तविक हक नहीं है" और यह वाद मंदिर का प्रबंधन करने के लिए निर्मोहियों के अधिकारों पर अतिक्रमण है। इसलिए इसके अनुसार, वाद 5 में वादियों द्वारा उल्लिखित विवादित परिसर निर्मोही अखाड़े से संबंधित है और वादी निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और हक के विरूद्ध घोषणा नहीं कर सकते। तदनुसार, निर्मोही अखाड़े ने वाद 5 को खारिज करने के लिए प्रार्थना की है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपने अतिरिक्त लिखित बयान में, निर्मोही अखाड़े ने कहा है कि बाहरी सहान (अहाता) में भगवान राम का "एक छोटा मंदिर" बनाया, जिसकी पूजा नियमित रूप से रामानंदी बैरागियों के बीच प्रचलित रीति–रिवाजों के अनुसार की गई थी। इस मंदिर का बाहरी हिस्सा सामान्य वाद सं. 239 वर्ष 1982 में दिनांक 16 फरवरी 1982 को कुर्क होने तक निर्मोही अखाड़े के प्रबंधन और प्रभार के रूप में था। यह कहा गया है कि बाहरी हिस्सा निर्मोही अखाड़े के कब्जे और प्रबंधन में रहा है और रामचबूतरे पर स्थापित भगवान राम की मूर्ति को निर्मोही अखाड़ा के स्वामित्व वाली अलग विधिक निकाय कहा जाता है। यह कहा गया है कि धारा 145 के तहत कुर्की के लिए मजिस्ट्रेट का आदेश केवल उन तीन गुंबदाकार ढांचे से संबंधित है जहां भगवान राम की मूर्ति को निर्मोही अखाड़ा द्वारा अनादिकाल से स्थापित किया गया है और जो हमेशा ही इसके प्रबंधन और कब्जे में था। एक अन्य लिखित कथन में निर्मोही अखाड़े ने दावा किया है कि राम जन्मभूमि न्यास का गठन अवैध है।

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा

317. अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष ने एक लिखित कथन दायर किया जिसमें दावा किया गया था कि श्री राम जन्मभूमि न्यास के लिए एक पक्षकार के रूप में यह प्रत्यक्ष रूप से राम जन्मभूमि मंदिर के सेवा–पूजा और अन्य मामलों को समर्पित है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड

318. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने वादी–देवताओं के वाद का विरोध किया है। अपने लिखित कथन में यह पहले और दूसरे वादी की विधिक स्थिति और तीसरे वादी के स्थान को वाद मित्र के रूप में कार्य करने से इनकार करता है। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के अनुसार, जब तक कि दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 के बीच रात्रि को गुप्त रूप से मूर्ति को लाया नहीं गया तब तक बाबरी मस्जिद परिसर के भीतर किसी भी देवता को स्थापित नहीं किया गया था। लिखित कथन किसी पीठासीन देवता या "किसी अस्थान" के होने से इनकार करता है। महंत रघुबर दास द्वारा संस्थित वर्ष 1885 के वाद के खारिज होने पर अवलम्ब लेते हुए यह कहा गया है कि "अस्थान राम जन्मभूमि" के नाम से एक विधिक व्यक्तित्व मानते हुए वादी बाबरी मस्जिद के किसी भी हिस्से का दावा नहीं कर सकते, विशेष रूप से विधि या हिंदू धर्म के सिद्धांतों के अनुसार प्राण प्रतिष्ठा या देवता की स्थापना न होने पर। लिखित कथन में इस आरोप का खंडन किया गया है कि बाबरी मस्जिद स्थल पर किसी भी मंदिर का अस्तित्व था या मस्जिद का निर्माण कथित मंदिर को नष्ट करने के बाद इसकी सामग्री से किया गया था। यह प्रकथित है कि बाबर के शासन के दौरान इसके निर्माण के बाद से मस्जिद हमेशा एक मस्जिद के रूप में उपयोग किया जाता रहा है। यह कहा गया है कि इसका निर्माण होने पर यह भूमि राज्य की थी, और मस्जिद का दावा किया गया है कि यह खाली भूमि में निर्मित की गयी थी। यह अभिकथित किया गया है कि रामचबूतरे को वर्ष 1857 के आसपास बनाया गया था। मस्जिद के निर्माण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के बाद से दिनांक 23 दिसंबर 1949 तक मुस्लिमों का कब्जा निर्बाध और निरंतर रहा है और इसलिए, इसके विपरीत कोई भी अधिकार, हक या हित प्रतिकूल कब्जे द्वारा समाप्त हो जाएगी। लिखित कथन के अनुसार, दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक नियमित रूप से और दिनांक 16 दिसंबर 1949 तक शुक्रवार की नमाज अदा की गई। लिखित कथन के अनुसार, वाद हेतुक को दिसंबर 1949 में उपार्जित माना जाना चाहिए जब संपत्ति कुर्क की गई थी और मुस्लिमों ने मस्जिद में पूजा करने के लिए हिंदुओं के दावे से इनकार किया था। इसलिए वाद को परिसीमा द्वारा बाधित कर दिया गया है।

319. पांचवें प्रतिवादी[209] ने अपने लिखित कथन में न्यास के स्थान से इनकार किया है। इसके अलावा, यह कहा गया है कि परिसर हमेशा सोलहवीं शताब्दी में इसके निर्माण के बाद से एक मस्जिद रहा है और मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया गया था। पांचवें प्रतिवादी ने पहले और दूसरे वादियों की न्यायिक स्थिति और तीसरे वादी के स्थान से इनकार किया। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और पांचवें प्रतिवादी द्वारा संयुक्त रूप से दायर एक अतिरिक्त लिखित कथन में संशोधित वादपत्र की अन्तर्वस्तु से इनकार कर दिया गया है और यह कहा गया है कि दिनांक 6 दिसंबर 1992 को हटाए जाने के बाद मूर्तियों के संबंध में दावा समाप्त हो गया था।

N.5 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

---

209 Mohammad Hashim

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

320. जिन मुद्दों को वाद में विरचित किया गया था और उच्च न्यायालय में तीन न्यायाधीशों के निष्कर्षों को नीचे सूचीबद्ध किया गया है जो निम्नलिखित हैं:

1. **क्या प्रथम और द्वितीय वादी न्यायिक व्यक्ति हैं।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–यह मूर्ति संपत्ति धारण करने में सक्षम है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर–वादी 1 और 2 दोनों विधिक व्यक्ति हैं।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में फैसला दिया।

2. **क्या पहले और दूसरे वादी के रूप में वादपत्र में वर्णित देवताओं के नाम पर वाद को वाद मित्र के रूप में तीसरे वादी द्वारा पोषणीय नहीं है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निर्णय का अनुसरण किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वाद को पोषणीय माना गया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वाद को पोषणीय माना गया।

3(क). **क्या प्रश्नगत मूर्ति को दिनांक 23 दिसंबर, 1949 के प्रारंभिक घंटों में विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद (ध्वस्त होने के बाद से) में स्थापित किया गया था, जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 27 में वादी द्वारा अभिकथित है और दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश X नियम 2 के तहत उनके कथन में स्पष्ट किया गया है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मूर्तियों को प्रथम बार दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की रात्रि को मस्जिद के अंदर रखा गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सकारात्मक उत्तर।

3(ख). **क्या एक ही मूर्ति को चबूतरा पर एक ही स्थान पर वितान में पुनर्स्थापित किया गया था।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सकारात्मक उत्तर।

3(ग). **क्या मूर्तियों को न्यायालय के आदेश 14 अगस्त 1989 और 15 नवंबर 1991 दिनांकित का अतिक्रमण करते हुए दिनांक 6 दिसंबर 1992 अथवा उसके पश्चात विवादित स्थल पर रखा गया था।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में फैसला दिया।

3(घ). **यदि उपरोक्त विवाद्यक का उत्तर सकारात्मक है, तो क्या तब भी इस प्रकार रखी गई मूर्तियाँ देवता की प्रस्थिति प्राप्त करेंगी।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सकारात्मक उत्तर।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

4. **क्या प्रश्नगत मूर्तियों का अस्तित्व "शिखर" के अन्तर्गत दिनांक 6 दिसंबर 1992 से पूर्व चिरकाल से था, जैसा कि निर्मोही अखाड़े (तीसरे प्रतिवादी) के अतिरिक्त लिखित कथन के प्रस्तर 44 में अभिकथित है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मूर्तियों को प्रथम बार दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद के अंदर रखा गया था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –नकारात्मक उत्तर; केंद्रीय गुम्बद के अन्तर्गत मूर्तियां दिनांक 6 दिसंबर 1992 से पूर्व अस्तित्व में थीं, लेकिन दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 की रात्रि के दौरान रखी गई थीं।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–ये मूर्तियां दिनांक 22–23 दिसंबर 1949 से पूर्व केंद्रीय गुम्बद के अंतर्गत नहीं थीं।

5. **क्या प्रश्नगत संपत्ति को वादपत्र में यथोचित रूप से अभिचिन्हांकित और वर्णित किया गया है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। बाबर के शासन काल के दौरान जब तक मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था तब तक परिसर को भगवान राम के जन्म–स्थान होने का न तो विश्वास किया जाता था न ही माना जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –संपत्ति की पहचान या विवरण में कोई अस्पष्टता नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादी के पक्ष में उत्तर।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

6. **क्या तीसरा वादी वाद मित्र के रूप में वादी सं. 1 और 2 का प्रतिनिधित्व करने का हकदार नहीं है और इस सम्बन्ध में यह वाद सक्षम नहीं है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**– न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादियों के पक्ष में नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में फैसला दिया।

7. **क्या अकेला निर्मोही अखाड़ा (तीसरा प्रतिवादी) पहले और दूसरे वादियों का प्रतिनिधित्व करने का हकदार है और उस आधार पर, जैसा कि निर्मोही अखाड़ा (तीसरा प्रतिवादी) के अतिरिक्त लिखित कथन के प्रस्तर 49 में अभिकथित है, यह वाद सक्षम नहीं है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादियों के पक्ष में निर्मोही अखाड़ा के विरूद्ध नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में निर्मोही अखाड़ा के विरूद्ध उत्तर।

8. **क्या प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा भगवान श्री राम का "सेवायत" विवादित ढाँचे में स्थापित किया गया है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**– न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–निर्मोही अखाड़े के विरुद्ध उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–निर्मोही अखाड़ा के विरुद्ध उत्तर देते हुए अवधारित किया कि निर्मोही अखाड़ा पहले और दूसरे वादी का प्रतिनिधित्व करने के लिए अक्षम है।

9. **क्या विवादित ढाँचा बाबरी मस्जिद के नाम से जानी जाने वाली एक मस्जिद थी?**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा या उसके आदेश पर किया गया था। वर्ष 1934 तक मुस्लिमों ने नियमित रूप से इबादत किया और उसके बाद दिनांक 22 दिसंबर, 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादियों के विरूद्ध जवाब।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध और वादियों के पक्ष में जवाब।

10. **क्या विवादित ढाँचे को वादपत्र के प्रस्तर 24 में अंतर्विष्ट आरोपों पर मस्जिद माना जा सकता है।**

- **जस्टिस एस. यू. खान**–मस्जिद एक विधिमान्य मस्जिद थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–मस्जिद का निर्माण मंदिर के विध्वंस पर किया गया था।

11. **क्या वादी के प्रस्तर 25 में किए गए प्रकथन पर विवादित ढाँचे के संबंध में कोई विधिमान्य वक्फ इसे मस्जिद के रूप में गठित करने के लिए बनाया नहीं किया गया था।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मस्जिद एक विधिमान्य मस्जिद है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–विवादित संपत्ति के संबंध में कोई विधिमान्य वक्फ नहीं है।

12. **दिनांक 23 फरवरी, 1996 के आदेश द्वारा हटाई गई।**

13. **क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–यह वाद परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है।

14. **विवादित ढाँचे का दावा है कि क्या बाबरी मस्जिद का निर्माण जन्मस्थान मंदिर को ध्वस्त करने के बाद उस स्थल पर हुआ था।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–मस्जिद के निर्माण हेतु किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था। जब तक बाबर के शासन काल में मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था तब तक परिसर को भगवान राम के जन्म–स्थान पर विश्वास नहीं किया जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– सकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध और वादियों के पक्ष में फैसला दिया।

15. **विवादित ढ़ांचा जिसे बाबरी मस्जित होने का दावा किया गया है क्या उसका प्रयोग इसके कथित निर्माण सन् 1528 से 22 दिसंबर 1949 तक**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लगातार नमाज पढ़ने के लिए किया जा रहा था, जैसा कि प्रतिवादीगण 4 और 5 द्वारा बताया गया।

न्यायमूर्ति एस. यू. खान–वर्ष 1934 तक मुस्लिम मस्जिद में नियमित रूप से इबादत कर रहे थे। इसके बाद, दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की गई थी।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–कम से कम वर्ष 1860 से आंतरिक अहाते में नमाज अदा की गई थी। दिनांक 16 दिसंबर 1949 को अंतिम बार नमाज़ अदा की गई थी।
- **न्यायमूर्ति डी . वी. शर्मा**–विवाद्यक सं. 1–बी(सी), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19 (ए), 19(बी), 19(सी), 27 और 28 वाद 4 संबंधित हैं जो सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध निर्णीत हुए थे।

16. **क्या वादी 1 और 2 का हक, यदि कोई हो, तो प्रतिवादी 4 के लिखित कथन के प्रस्तर 25 में कथित रूप से समाप्त कर दिया गया था। यदि हाँ, तो वादपत्र के प्रस्तर 29 में कथित रूप से प्रतिकूल कब्जे से वादी 1 और 2 का पुनर्प्राप्त हक है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–दोनों पक्षकारों का वर्ष 1855 से पूर्व संयुक्त कब्जा था और इसलिए प्रतिकूल कब्जे के मुद्दे का फैसला करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–पहले और दूसरे वादी का हक कभी समाप्त नहीं किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति डी . वी. शर्मा**–विवाद्यक सं. 1B–(c), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19 (ए), 19(बी), 19(सी), 27 और 28 वाद 4 से संबंधित हैं जो सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध निर्णीत थे।

17. **दिनांक 23 फरवरी, 1996 के आदेश द्वारा हटाई गई।**

18. **क्या प्रतिवादी सं. 3 के अतिरिक्त लिखित बयान के प्रस्तर 42 में कथित विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 34 के अनुसार वाद को वर्जित कर दिया गया है और प्रतिवादी 4 के लिखित बयान के प्रस्तर 47 और प्रतिवादी 5 के लिखित बयान के प्रस्तर 62 के रूप में भी अभिकथित है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–तीसरे चौथे और पांचवें प्रतिवादियों के विरुद्ध नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–प्रतिवादियों के विरुद्ध और वादियों के पक्ष में उत्तर।

19. **क्या यह वाद आवश्यक पक्षकारों का असंयोजन के लिए बुरा है जैसा कि प्रतिवादी 3 के अतिरिक्त लिखित कथन के प्रस्तर 43 में अभिकथित है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वाद को पोषणीय अवधारित किया।

20. क्या कथित न्यास प्रतिवादी सं. 21 का लिखित कथन प्रतिवादी सं. 3 के लिखित कथन के प्रस्तर 47 में वर्णित तथ्यों और आधारों पर शून्य है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–उत्तर नहीं दिया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–उत्तर नहीं दिया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में उत्तर दिया।

21. **क्या प्रश्नगत मूर्तियों को प्रतिवादी 4 के लिखित कथन के प्रस्तर 1,11,12,21,22,27 और 41 में और प्रतिवादी 5 के लिखित कथन के प्रस्तर 1 में कथित रूप से देवताओं के रूप में नहीं माना जा सकता है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को स्वीकार किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और पांचवें प्रतिवादी के विरूद्ध जवाब।

22. **क्या प्रश्नगत परिसर या उसका कोई भाग परंपरा, आस्था और विश्वास द्वारा भगवान राम का जन्मस्थान है, जैसा कि वाद के प्रस्तर 19 और 20 में अभिकथित है, यदि हां, तो इसका प्रभाव क्या होगा?**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न तो मस्जिद के निर्माण के लिए कोई मंदिर ध्वस्त किया गया और न ही मस्जिद के निर्माण तक परिसर या भगवान राम का जन्म स्थान माना गया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–जैसा कि हिंदुओं द्वारा विश्वास और पूजा किया जाता है, भगवान राम के जन्म का स्थान विवादित परिसर के आंतरिक अहाते में केंद्रीय गुंबद के अंतर्गत आता है।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वाद 4 में विवाद्यक सं. 1, 1(ए), 1(बी), 1 बी–(बी), 11, 19(डी), 19(ई) और 19(एफ) के साथ जुड़े। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध फैसला सुनाया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

23. **क्या विशेष न्यायाधीश, फैजाबाद की अदालत में महंत रघुबर दास द्वारा दायर 1885 के वाद में फैसला वादियों के लिए बाध्यकारी है, जैसा कि प्रतिवादियों 4 और 5 द्वारा कथित रूप से विबंधन और पूर्वन्याय के सिद्धांतों के आवेदन द्वारा किया गया है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–वस्तुतः 1885 के वाद में कुछ भी निर्णीत नहीं हुआ था अतः सीपीसी की धारा 11 आकर्षित नहीं करता है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक उत्तर।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों के पक्ष में उत्तर।

24. **क्या वाद में परिसर में कथित वादी–देवता की उपासना अनादिकाल से की गई है जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 25 में अभिकथित है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न तो मस्जिद के निर्माण के लिए कोई मंदिर ध्वस्त किया गया था और न ही परिसर को मस्जिद के निर्माण होने तक भगवान राम का जन्म स्थान माना गया था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –पहले और दूसरे वादी की पूजा अनादिकाल से हुई है : पुष्टि में उत्तर दिया गया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वाद 4 के विवाद्यक सं. 1–बी(सी), 2, 4, 12, 13, 14, 15, 19(ए), 19(बी), 19(सी), 27 और 28 के साथ जोड़ा गया। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के विरूद्ध उत्तर दिया।

25. **क्या वाद सं. 29 वर्ष 1945 में पारित 30 मार्च, 1946 दिनांकित का निर्णय और डिक्री वादी द्वारा कथित रूप से वादी के लिए बाध्यकारी नहीं है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगण वाद के पक्षकार नहीं थे और इसलिए निर्णय उन पर बाध्यकारी नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादी के पक्ष में फैसला किया।

26. **क्या प्रतिवादी 4 और 5 द्वारा यथा अभिकथित दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के लिए वाद गलत है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादी के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादी के पक्ष में उत्तर दिया।

27. **क्या दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के लिए वाद की दलील प्रतिवादी 4 और 5 द्वारा उठाई जा सकती है।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–जस्टिस सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादी के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादी के पक्ष में उत्तर दिया।

28. **क्या प्रतिवादी 4 और 5 द्वारा यथा अभिकथित उ.प्र. मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1960 की धारा 65 के तहत नोटिस के लिए वाद गलत है। यदि हां, तो इसका क्या प्रभाव होगा।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–यह प्रावधान लागू नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादीगण के पक्ष में फैसला किया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

29. **क्या वादीगण मुंसिफ सदर, फैजाबाद की न्यायालय के वाद 57 वर्ष 1978 (भगवान श्री राम लला बनाम राज्य) की बर्खास्तगी के कारण वर्तमान वाद लाने से पीछे हैं।**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादीगण के पक्ष में उत्तर दिया।

30. **क्या राहत, यदि कोई हो, पाने के लिए वादी या उनमें से कोई हकदार हैं?**

- **न्यायमूर्ति एस. यू. खान**–न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निष्कर्षों को अपनाया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–यह वाद प्रस्तर 4566 में निहित निर्देशों के अनुसार आंशिक रूप से कम हो गया था।
- **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वादियों को अनुतोष पाने का हकदार माना गया और वाद की डिक्री कर दी गई।

321. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने वाद में निम्नलिखित अनुतोष दिए:

> "(i) यह घोषित किया जाता है कि तीन गुंबदाकार ढाँचे के केंद्रीय गुंबद द्वारा ढँका हुआ क्षेत्र अर्थात, विवादित ढाँचा हिंदुओं की आस्था और विश्वास के अनुसार भगवान राम जन्मस्थान के देवता और भगवान राम का जन्म स्थान है और वादीगणों (वाद–5) से संबंधित हैं और प्रतिवादियों द्वारा किसी भी तरीके से अवरूद्ध या बाधित नहीं किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जाएगा। यह क्षेत्र AA BB CC DD अक्षरों द्वारा दर्शित है जो इस निर्णय के लिए परिशिष्ट 7 है।

(ii) परिशिष्ट 7 में B. C. D. L. J. H. G. द्वारा दर्शाए गए आंतरिक अहाते के भीतर का क्षेत्र (उपरोक्त (i) को छोड़कर) दोनों समुदायों के सदस्यों अर्थात् हिन्दू (वाद–5 के वादीगण) और मुस्लिम से सम्बन्धित है, चूंकि इसका प्रयोग दशकों और शताब्दियों से किया जा रहा था। हालाँकि, यह स्पष्ट किया गया है कि वादीगणों के हिस्से के उद्देश्य से, इस निर्देश के तहत वाद–5 जो क्षेत्र उपरोक्त (i) से ढँका हुआ है उसे भी शामिल किया जाएगा।

(iii) ढाँचों द्वारा आच्छादित क्षेत्र, अर्थात राम चबूतरा (परिशिष्ट 7 में EE FF GG HH), सीता रसोई (परिशिष्ट 7 में MM NN OO PP) और भंडार (परिशिष्ट 7 में II JJ KK LL) को बाह्य अहाते में निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी संख्या 3) के हिस्से में घोषित किया गया है और वे बेहतर स्वत्व वाले किसी भी व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसके कब्जे के हकदार होंगे।

(iv) बाह्य अहाते (परिशिष्ट 7 में A G H J K L E F) (ऊपर (iii) के अंतर्गत आने वाले को छोड़कर) के भीतर उन्मुक्त क्षेत्र को निर्मोही अखाड़ा (प्रतिवादी सं. 3) और वादीगणों (वाद–5) द्वारा साझा किया जाएगा, चूँकि इसका उपयोग आमतौर पर हिंदुओं द्वारा दोनों स्थानों पर पूजा के लिए किया जाता है।

(iv–क) हालांकि यह स्पष्ट किया जाता है कि मुस्लिम पक्षकारों का हिस्सा परिसर के कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई (1/3) से कम नहीं होगा और यदि आवश्यक हो तो उसे बाह्य अहाते का कुछ क्षेत्र दिया जा सकेगा। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि *मेट्स और बाउंड* ? द्वारा विभाजन करते समय, यदि कुछ मामूली समायोजन विभिन्न पक्षों के हिस्से के संबंध में किए जाने हैं, तो प्रभावित पक्ष को उस क्षेत्र से अपेक्षित भूमि आवंटित करके मुआवज़ा दिया जा सकता है जो अधिग्रहण भारत सरकार के अधीन है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) अयोध्या अधिनियम 1993 के तहत भारत सरकार के पास जो भूमि उपलब्ध है, वह उन पक्षकारों को प्रदान करने के लिए है, जो संपत्ति के बेहतर उपभोग के लिए वाद में सफल हैं, उन्हें उपरोक्त संबंधित पक्षकारों को इस तरह से उपलब्ध कराया जाएगा ताकि तीनों पक्षकार उस क्षेत्र जिसमें एक–दूसरे के अधिकारों के लिए बगैर परेशानी लोगों को आने और जाने के लिए अलग–अलग प्रवेश करने के द्वारा उपयोग कर सकें जिसके वे हकदार हैं। इस प्रयोजन के लिए संबंधित पक्षकार भारत सरकार के पास जा सकते हैं जो उपरोक्त दिशानिर्देशों के अनुसार कार्य करेगा और डॉ. इस्माइल फारुकी (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में निहित है।

(vi) यथापूर्वोक्त (i से v) आंशिक रूप से प्रारंभिक और आंशिक रूप से अंतिम, एक डिक्री जो पारित किया गया है। वाद–5 उपरोक्त सीमा के भाग में कमी है। पक्षकार विवादित संपत्ति के वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव दाखिल करने के लिए स्वतंत्र हैं, जैसा कि ऊपर दिए गए *मेट्स और बाउंड?* के अनुसार, विशेष कार्याधिकारी, अयोध्या पीठ को लखनऊ अथवा रजिस्ट्रार, लखनऊ पीठ को, जैसा भी मामला हो, इस आशय का एक आवेदन सौंपकर किया जाता है।

(vii) तीन माह की अवधि के लिए अथवा जब तक कि अन्यथा निर्देश न दिया जाए, जो भी पहले हो, पक्षकार विवादित संपत्ति के बाबत आज तक यथास्थिति बनाए रखेंगे।"

न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"तदनुसार, पक्षकारों के सभी तीनों समूह अर्थात मुस्लिम, हिंदू और निर्मोही अखाड़ा को विवादित संपत्ति/परिसर के संयुक्त स्वत्व धारक घोषित किया जाता है, जैसा कि प्लीडर/आयुक्त द्वारा वाद संख्या 1 में श्री शिव शंकर लाल द्वारा तैयार किए गए मानचित्र योजना–I में A B D E F द्वारा वर्णित है, पूजा के लिए एक तिहाई हिस्से का उपयोग और प्रबंधन करने के लिए न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया है। इस आशय की एक प्रारंभिक डिक्री पारित की जाती है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हालांकि, यह आगे घोषित किया गया है कि केंद्रीय गुम्बद के नीचे का हिस्सा जहां वर्तमान में मूर्ति को मंदिर में रखा गया है, अंतिम डिक्री में हिंदुओं को आवंटित किया जाएगा।

यद्यपि आगे यह निर्देशित किया गया है कि निर्मोही अखाड़े को उस हिस्से सहित वह हिस्सा आवंटित किया जाएगा जो उक्त मानचित्र में राम चबूतरा और सीता रसोई शब्दों द्वारा दिखाया गया है।

यह आगे स्पष्ट किया गया है कि भले ही तीनों पक्षकारों को एक –एक तिहाई हिस्सा घोषित किया गया हो, हालांकि अगर समुचित हिस्सा आवंटित करते समय हिस्से में कुछ मामूली समायोजन किया जाना है, तो वही किया जाएगा और केंद्र सरकार द्वारा अधिगृहीत की गई निकटवर्ती भूमि के कुछ हिस्से को आवंटित करके प्रतिकूल रूप से प्रभावित पक्ष को मुआवज़ा दिया जा सकता है।

पक्षकार तीन माह के भीतर *मेट्स और बाउंड?* द्वारा वास्तविक विभाजन के लिए अपने सुझाव दाखिल करने के लिए स्वतंत्र हैं।"

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने निम्नलिखित शब्दों में वादीगणों के वाद की डिक्री की:

"वादीगणों का मुकदमा डिक्री कर दिया गया है परन्तु आसान लागत के साथ। यह घोषित किया जाता है कि अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर, जैसा कि वादपत्र के अनुलग्नक संख्याओं 1 और 2 में वर्णित और चित्रित किया गया है जो और 2 वादी संख्या 1 और 2 देवता से सम्बन्धित हैं। वादपत्र में संदर्भित है कि राम जन्म भूमि अयोध्या स्थल पर मंदिर के निर्माण में कोई बाधा डालने, अथवा किसी भी आपत्ति को उठाने अथवा रखने से प्रतिवादियों को स्थायी रूप से रोक दिया जाता है।"

N.6 सेवायत: मुकदमा करने का विशेषाधिकार।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सेवायत की भूमिका और स्थिति

322. न्यायालयों ने हिन्दू मूर्ति को वसीयतकर्ता के पवित्र प्रयोजन के लिए तात्विक रूप में मान्यता दी है। कानूनी व्यक्तित्व को भी *स्वयंभू* देवता में प्रदत्त किया जा सकता है जो प्रकृति में आत्म–निर्माण है। कोई मूर्ति एक न्यायिक व्यक्ति है जिसमें संपत्ति के निहित होने का हक है। मूर्ति प्राकृतिक व्यक्तियों के समान संपत्ति पर कब्जा नहीं करती है। संपत्ति आदर्श अर्थों में केवल मूर्ति में ही निहित है। मूर्ति को किसी मानव साधन के माध्यम से कार्य करना चाहिए जो अपनी संपत्तियों का प्रबंधन करेगा, पूजा से जुड़े समारोहों के प्रदर्शन की व्यवस्था करेगा और अन्य बातों के साथ–साथ मूर्ति की ओर से कार्यवाहियों द्वारा धर्मदाय की रक्षा के लिए कदम उठाएगा। सेवायत वह व्यक्ति है जो इस भूमिका का निर्वहन करता है।

323. निर्मोही अखाड़ा ने इस आधार पर वाद 3 संस्थित किया है कि यह विवादित स्थल पर भगवान राम के देवताओं का सेवायत है। क्या निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत है अथवा नहीं, वाद 3 और 5 में पक्षकारों के बीच परस्पर अधिकारों का निर्धारण है। इस विवाद पर निर्णय लेने के लिए, हमारे कानून में एक सेवायत की स्थिति का विश्लेषण करना आवश्यक है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

324. पोसन्नो कुमारी देब्या बनाम **गोलाब चंद बाबू**[210] में प्रिवी काउंसिल द्वारा एक प्रारंभिक निर्णय दिया गया था। एक वाद के सेवायत द्वारा उनके तत्काल पूर्ववर्ती के विरूद्ध एक वाद संस्थित किया गया था, जो अपास्त दो डिक्रियों के निष्पादन के लिए संपत्ति की विक्रय को निर्देशित करता है। यह विश्लेषण करते हुए कि क्या एक सेवायत के कार्य अनुवर्ती सेवायतों को बांधती है , प्रिवी काउंसिल के माध्यम से न्यायमूर्ति एम. ई. स्मिथ ने यह अवधारित किया:

> "यह प्रतीत होता है कि व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार सौंपा जाना चाहिए उसे मूर्ति की सेवा के लिए और अपनी संपत्ति के लाभ और संरक्षण के लिए कम से कम एक छोटे उत्तराधिकारी के प्रबंधक के रूप में एक बड़ी डिग्री के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो वह करने के लिए सशक्त होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो मूर्ति की संपत्ति नष्ट या बर्बाद हो सकती है, और उसकी पूजा उन्हें संरक्षित करने और बनाए रखने के लिए आवश्यक धन की इच्छा के लिए बंद कर दी जाती है।"

प्रिवी काउंसिल ने उपरोक्त सारांश में सही कार्य और उद्देश्य एक सेवायत की अवधारणा को संक्षेप में अंतर्निहित किया है। चूंकि, आदर्श अर्थों में समर्पित संपत्ति एक मूर्ति में निहित है और सेवायत को इसका प्रबंधन सौंपा गया है। एक मूर्ति व्यक्तिगत रूप से अपनी संपत्ति के लाभ और संरक्षण के लिए आवश्यक कार्रवाई नहीं कर सकती है। मूर्ति को आवश्यक रूप से मनुष्य के माध्यम से कार्य करना चाहिए और यह इस कारण से है कि मूर्ति के प्रबंधन को कानून द्वारा एक सेवायत की स्थिति के साथ प्रदत्त किया गया है। कानून मूर्ति के कानूनी व्यक्तित्व को मान्यता देता है कि वह मूर्ति के अधिकारों और

---

210 (1875) 14 L Beng LR 450

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कर्तव्यों के संरक्षण की सुविधा प्रदान करे। सेवायत का प्राकृतिक व्यक्तित्व मनुष्य का माध्यम है जिसके माध्यम से मूर्ति की आवश्यकताओं और प्रयोजन को पूर्ण किया जाता है।

325. प्रिवी काउंसिल द्वारा 1875 में पेश किए गए कानून ने 1979 में इस न्यायालय के एक फैसले में प्रतिध्वनि पाई है। **प्रोफुल्ला कोरोन रिक्विट्टे** बनाम **सत्या कोरोन रिक्विट्टे**[211] में, एक सवाल उत्पन्न हुआ कि क्या यह संस्थापक का इरादा था कि वह अपनी इच्छा में न्यासी के रूप में पदधारी व्यक्ति पर सेवायत की स्थिति प्रदान करे। इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया ने बोलते हुए यह अवधारित किया कि:

> "20 ....आदर्श अर्थ में समर्पित संपत्ति केवलमूर्ति में निहित है ; पूर्व अनिवार्यता, कब्जे और प्रबंधन को कुछ मनुष्य माध्यम को सौंपा जाना है। मूर्ति के ऐसे माध्यमों को उत्तरी भारत में *सेवायत* के रूप में जाना जाता है। एक *सेवायत* के कानूनी चरित्र को यथार्थता और परिशुद्धता के साथ परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मोटे तौर पर वर्णित है कि वह मूर्ति के मानव कार्य संपादक और अभिरक्षक हैं , इसके सांसारिक प्रवक्ता, इसके सभी अस्थायी मामलों से निपटने और अपनी संपत्ति का प्रबंधन करने के लिए हकदार हैं।"

326. किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को सेवायत के रूप में पहचान , देवता के मामलों का प्रबंधन करने के अधिकार का एक मूलभूत विचार – विमर्श है। एक सेवायत की स्थिति का एक आवश्यक अनुबद्ध, एक मूर्ति की ओर से कार्यों के होने और इसके गुणों को परिणामों के लिए बांधने का अधिकार है। जिस उद्देश्य के लिए विधिक व्यक्तित्व को एक मूर्ति के रूप में

---

211 (1979) 3 SCC 409

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रदत्त किया जाता है, वह पवित्र उद्देश्य की सामग्री के रूप में संरक्षित और मनुष्यों के कार्यों के माध्यम से महसूस किया जाता है, वह सेवायत है। सेवायत को मूर्ति और उसकी संपत्तियों के संबंध में दाता के उद्देश्य को पूरा करने की शक्ति और कर्तव्य सौंपा गया है। अधिकांश मामलों में, एक सेवायत को समर्पण के एक विलेख के अनुसार नियुक्त किया जाता है जिसके द्वारा एक मूर्ति को संपत्ति दी जाती है। यह इस संपत्ति के संरक्षण के लिए है कि कानून या तो दाता या धर्मदाय विलेख में नामित व्यक्ति को सेवायत रूप में पहचानता है। स्पष्ट रूप से नियुक्त अथवा पहचाने गए सेवायत की अनुपस्थिति में, कानून ने मूर्ति के संपत्तियों की सुरक्षा को वस्तुतः एक सेवादार की मान्यता द्वारा सुनिश्चित किया है। जहां एक व्यक्ति देवता के मामलों के पूर्ण और निरंतर प्रबंधन में शामिल है, वह संबद्ध संपत्ति के लंबे, अनन्य और निर्बाध कब्जे के साथ है, ऐसे व्यक्ति को एक सेवायत के अधिकारों के लिए कानूनी हक की अनुपस्थिति के बावजूद एक सेवायत के रूप में मान्यता दी जा सकती है। इसे निर्णय के दौरान संदर्भित किया जाएगा।

327. हिंदू विधि में एक सेवायत की स्थिति आंग्ल विधि में न्यासी की स्थिति से अलग है। **विद्या वरुथि तीर्थ** बनाम **बालुसामी अय्यर**[212] में प्रिवी काउंसिल के समक्ष यह प्रश्न था कि क्या शब्द "न्यास में व्यक्त किए गए" और "न्यासी" के रूप में एक हिंदू मठ के महंत को दी गई संपत्तियों पर लागू होते हैं वे परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 134 में दिखाई देते हैं। प्रिवी काउंसिल ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि धर्मदायिक संपत्तियों का

---

212 AIR 1922 PC 123

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रबंधन करने वाले व्यक्ति आंग्ल विधि के तहत न्यासियों की स्थिति में हैं। न्यायमूर्ति अमीर अली ने यह अवधारित किया:

> "यह भी याद रखना चाहिए कि आंग्ल विधि में जिस अर्थ में अभिव्यक्ति का उपयोग किया जाता है उसमें एक "ट्रस्ट" हिंदू प्रणाली में अज्ञात, शुद्ध और सरल है। हिंदू धर्मनिष्ठों ने मूर्तियों और छवि को मंदिरों में और हर तरह के धार्मिक संस्थानों में स्थापित किए... जिन्हें अलग –अलग नामों से जाना जाता है, और एक ही "न्यायिक" क्षमता रखने वाले के रूप में जाना जाता है, और उपहार उन्हें *ईओ ?* नामित किए जाते हैं...**जब उपहार सीधे मूर्ति अथवा मंदिर में होता है, तो उपहार को पूरा करने के लिए मानव एजेंसी द्वारा कब्जा लेना आवश्यक होता है। जिस भी नाम से पुकारा जाता है, वह केवल संस्था का प्रबंधक और अभिरक्षक होता है। किसी भी मामले में संपत्ति को उसके द्वारा अवतरित या निहित नहीं किया गया था, और न ही वह इस शब्द की अंग्रेजी अर्थ में एक 'न्यासी' है, यद्यपि दायित्वों और कर्तव्यों के दृष्टकोण में , वह सामान्य अर्थों में एक न्यासी के रूप में कुप्रबंधन के लिए जवाबदेह है ...यह अनुसरण करेगा कि एक प्रबंधक या श्रेष्ठ द्वारा किसी भी नाम से एक अलगाव को "न्यासी" के रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता है, जिसे संपत्ति "न्यास में व्यक्त" किया गया है और उसके द्वारा जो उसके पास निहित क्षमता है, जो आंग्ल विधि में "न्यासी" के पास है।"**
>
> ...
>
> न तो हिंदू विधि और न ही मुस्लिम प्रणाली के तहत किसी संपत्ति को किसी समर्पण के मामले में सेवायत अथवा मुतावल्ली को 'प्रदत्त' की जाती है। न ही उसके पास कोई संपत्ति निहित है, जो भी संपत्ति है वह मूर्ति या संस्था के लिए रखता है वह रीति रिवाज और उपयोग द्वारा विनियमित कुछ लाभकारी हित के साथ प्रबंधक के रूप में रखता है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

328. **विद्या वरुथि** के निर्णय में हिंदू विधि में एक सेवायत की स्थिति और आंग्ल विधि में एक न्यासी के बीच अंतर की पुष्टि करता है। न्यास के मामले

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के विपरीत, समर्पित संपत्ति विधिक रूप से सेवायत में निहित नहीं है। जिस उद्देश्य के लिए संपत्ति एक मूर्ति को समर्पित की जाती है, उसे सेवायत द्वारा निष्पादित और संरक्षित किया जाता है। यद्यपि समर्पित संपत्ति सेवायत में निहित नहीं है, वे संपत्तियों के प्रबंधन के लिए जिम्मेदार हैं और धर्मदाय की गई संपत्तियों के किसी भी कुप्रबंधन के लिए विधिक रूप में जवाबदेह हैं। सेवायत मूर्ति के लाभ के लिए किसी मूर्ति की संपत्ति रखता है। इस प्रकार आंग्ल विधि में एक न्यासी के मालिकाना अधिकार और हिंदू विधि में एक सेवायत के बीच अंतर है। मुख्य न्यायाधीश बी. के. मुखर्जी ने अपने **"हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस चैरिटिबल ट्रस्ट"** में कहा है:

> "आंग्ल विधि में न्यास की संपत्ति में कानूनी संपदा न्यासी में निहित है जो न्यास के हिताधिकारी के लाभ के लिए रखता है। एक हिंदू धर्म के धर्मदाय में समर्पित संपत्ति का पूरा स्वामित्व देवता अथवा संस्था के न्यायिक व्यक्ति के रूप में हस्तांतरित किया जाता है और सेवायत अथवा महंत केवल एक प्रबंधक हैं।"[213]

इस न्यायालय द्वारा **प्रोफुल्ला चोरोन** में उपरोक्त अंतर की पुष्टि की गई थी। एक सेवायत की अवधारणा से निपटने में, न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया ने अभिनिर्धारित किया:

> "जहां तक देवोत्तर संपत्ति के प्रबंधन का संबंध है, उसकी स्थिति एक न्यासी के अनुरूप है; फिर भी, वह आंग्ल अर्थ में एक न्यासी की स्थिति में ठीक नहीं है, **क्योंकि हिंदू विधि के तहत, संपत्ति संपूर्ण रूप से एक मूर्ति को समर्पित है, मूर्ति में निहित है और न कि सेवायत में।** यद्यपि यह

---

213 B.K. Mukherjea, The Hindu Law of Religious and Charitable Trust (5th Edn. Eastern Law House, 1983) at page 204

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देवोत्तर संपत्ति कभी भी सेवायत में निहित नहीं होता, फिर भी, लगभग हर मामले में ही, सेवायत को भोगाधिकार के एक हिस्से पर अधिकार है, और यदि वह संस्थापक द्वारा बनाया नहीं गया है तो उपभोग और मात्रा के आधार पर भोगाधिकार की राशि का अधिकार होता है।"

(प्रभाव वर्धित)

329. ये अवलोकन पुष्टि करते हैं कि आंग्ल विधि में एक न्यासी से एक सेवायत की स्थिति अलग है। आदर्श अर्थ में समर्पित संपत्ति विधिक रूप से मूर्ति में निहित है न कि सेवायत में। सेवायत एक व्यक्तिगत क्षमता में संपत्ति की प्राप्ति के लिए कार्य नहीं करता परन्तु मूर्ति के लिए समर्पित संपत्ति की सुरक्षा के लिए मूर्ति की ओर से करता है। आमतौर पर, समर्पण के विलेख में सेवायत के कर्तव्यों का प्रावधान नहीं होगा। हालांकि, एक अभिव्यक्त अनुबंध और यहाँ तक कि इसकी अनुपस्थिति से भी यह अर्थ नहीं निकलता कि देवता की संपत्ति सेवायत में निहित है। यद्यपि संपत्ति विधिक रूप से सेवायत में निहित नहीं है और सेवायत से उत्पन्न भोगाधिकार में कुछ हित हो सकता है। एक सेवायत के कर्तव्यों के लिए सम्बद्ध यह हित एक सेवायत के कार्यालय की प्रकृति में परिलक्षित होता है।

330. मनोहर मुखर्जी बनाम **भूपेंद्रनाथ मुखर्जी**[224] में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ के समक्ष प्रश्न यह था कि चाहे हिंदू विधि में सेवादारी की संपत्ति हो या किसी कार्यालय की, जिसमें एक धर्मदाय का संस्थापक उत्तराधिकार के किसी भी क्रम में व्यक्तियों को नियुक्त करने अथवा नामित करने के लिए सक्षम है। सर्वेक्षण करते हुए न्यायाधीश मुखर्जी ने अवधारित किया:

---

224 ILR (1933) 60 Cal 452

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"…. मुझे इस प्रस्ताव के लिए कोई प्राधिकार नहीं मिल सकता है कि सामान्य मामलों में सीमित स्वामित्व जो एक सेवायत का देवोत्तर संपत्ति पर प्रयोग हिंदू विधि के दृष्टिकोण में संपत्ति नहीं है …उन अधिकारों के संबंध में, जो सामान्यतः किसी सेवायत के कार्यालय से संबद्ध हैं, कार्यालय और धर्मदाय की संपत्ति एक साथ जाती है और यह कि जब यह दावा करने वाले दो व्यक्तियों के बीच एक सवाल है और दूसरा विवादित होने का अधिकार रखता है, तो यह प्रश्न संपत्ति का प्रश्न है…निश्चित रूप से स्वयं धार्मिक कार्यालय बिक्री का उद्देश्य नहीं हो सकता और गहने और धार्मिक पूजा में उपयोग की जाने वाली अन्य सामग्री, जिन्हें अभिरक्षा में लेने के लिए कथित विक्रेता हकदार है और उसकी सावधानीपूर्वक अभिरक्षा के लिए बाध्य है और वे विधि की समस्त प्रणालियों के अनुसार और हिंदू विधि द्वारा अन्य की तुलना में सशक्त रूप से अधिक है और निजी स्वामित्व की विषय वस्तु नहीं है।"

(प्रभाव वर्धित)

331. देवोत्तर संपत्ति के संबंध में जिन कर्तव्यों का निर्वहन किया जाना चाहिए, उनके अलावा देवोत्तर संपत्ति के भोगाधिकार के लिए किसी सेवायत में रुचि हो सकती है। इस दृष्टि से, सेवादारी एक सरल कार्यालय नहीं है, बल्कि न्यागमन के प्रयोजनों के लिए भी संपत्ति है।[215] इस दृष्टिकोण को **अंगुरबाला मलिक** बनाम **देवब्रत मलिक**[216] में इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है। उस मामले में विवाद यह था कि क्या अपीलार्थी सेवायत की विधवा के रूप में अपने पहले विवाह से उत्पन्न हुए सेवायत के नाबालिग पुत्र जो प्रतिवादी था उसके बजाय मूर्ति के सेवायत के रूप में कार्य करने का हकदार था। यह तर्क दिया गया था कि सेवादारी का कार्यालय हिंदू महिला संपत्ति

---

215 Approved by Privy Council in Ganesh Chunder Dhur v Lal Behary Dhur (1935–36) 63 IA 448, and Bhabatarini Debi v Ashalata Debi (1942–43) 70 IA 57

216 1951 SCR 1125

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का अधिकार अधिनियम 1937 के अनुसार न्यागत होगा। इस न्यायालय की चार न्यायाधीश पीठ के लिए न्यायमूर्ति बी के मुखर्जी ने इस तर्क को स्वीकार किया और यह अवधारित किया:

> "12..... परन्तु हालांकि कोई सेवायत एक प्रबंधक है और तकनीकी अर्थों में न्यासी नहीं है, केवल एक कार्यालय के रूप में सेवादारी का वर्णन करना सही नहीं होगा। सेवायत के पास न केवल धर्मदाय के संबंध में निर्वहन करने के लिए कर्तव्य हैं बल्कि उनका देवोत्तर संपत्ति में भी लाभकारी हित है। जैसा कि उपरोक्त मामले में न्यायिक समिति ने अवलोकित किया कि लगभग ऐसे सभी धर्मदायों में सेवायत में देवोत्तर संपत्ति के भोगाधिकार में एक हिस्सा है जो अनुदान की शर्तों पर अथवा रीति रिवाज या प्रथा पर निर्भर करता है। यहां तक कि जहां सेवायत के कार्यालय से कोई परिलब्धि जुड़ी नहीं है, वह धर्मदाय संपत्ति में किसी प्रकार के अधिकार या हित का उपभोग लेता है, जो आंशिक रूप से कम से कम एक मालिकाना अधिकार की प्रकृति है। इस प्रकार, *सेवादारी* की अवधारणा में कार्यालय और संपत्ति के तत्वों, कर्तव्यों और व्यक्तिगत हित दोनों को एक साथ मिश्रित किया जाता है; और तत्वों में से एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। यह धर्मदाय संपत्ति में इस व्यक्तिगत या लाभकारी हित की उपस्थिति है जो मालिकाना अधिकारों की प्रकृति के साथ सेवादारी का निवेश करती है और इसे संपत्ति की विधिक घटनाओं को संलग्न करती है।"

न्यायालय ने अवधारित किया कि किसी सेवायत की देवोत्तर संपत्ति के भोगाधिकार में एक लाभकारी हित है। यह लाभकारी हित एक मालिकाना अधिकार के रूप में है। यद्यपि मूर्ति के लिए कुछ कर्तव्यों के लिए सेवायत की भूमिका का आधार है और लाभ आशंकित हैं, न तो दूसरे से अलग किया जा सकता है। इस प्रकार, कार्यालय और संपत्ति दोनों को सेवादारी में मिश्रित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जाता है, एक सेवायत का व्यक्तिगत हित उनके कर्तव्यों के लिए *अनुलग्न* है।[217]

पुजारी

332. सेवायतों के संबंध में अंतिम बिंदु बनाया जा सकता है। एक पुजारी जो किसी मंदिर में पूजा करता है उससे वह एक सेवायत की स्थिति को प्राप्त नहीं कर लेता है। पुजारी सेवायत द्वारा नियुक्त व्यक्ति या एक सेवक है और वह एक सेवायत के रूप में लंबे समय तक अनुष्ठानों का संचालन करने के बावजूद भी कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं कर लेता। इस प्रकार मात्र पुजारियों की उपस्थिति से उनमें सेवादारी का कोई अधिकार निहित नहीं होता है। **गौरी शंकर** बनाम **अंबिका दत्त**[218] में वादी एक मूर्ति की पूजा के लिए समर्पित संपत्ति पर एक पुजारी के रूप में नियुक्त व्यक्ति का वंशज था। मंदिर में पूजा के अधिकारों का विभाजन और चढ़ावे के वितरण का दावा करने के लिए वाद संस्थित की गई थी। पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने अवधारित किया कि प्रासंगिक प्रश्न यह है कि क्या देवोत्तर ने पुजारी को सेवायत के रूप में नियुक्त किया गया था। न्यायमूर्ति रामास्वामी ने यह अवधारित किया कि:

> "7... यह बताना महत्वपूर्ण है कि पुजारी या अर्चक सेवायत नहीं है। पूजा करने के लिए सेवायत द्वारा पुरोहित के रूप में पुजारी की नियुक्ति की जाती है। परन्तु यह पुरोहित को सेवायत के अधिकारों और दायित्वों

---

217 Affirmed in Badri Nath v Punna, AIR 1979 SC 1314; Profulla Chorone Requitte v Satya Chorone Requitte, (1979) 3 SCC 409

218 AIR 1954 Pat 196

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को हस्तांतरित नहीं करता है। वह पुजारी के रूप में अपने कार्यालय में अधिकार के सम्बन्ध में सतत रखने के लिए हकदार नहीं है। वह अनुष्ठान के लिए सेवायत द्वारा नियुक्त केवल एक नौकर है। जहां एक पुरोहित की नियुक्ति संस्थापक की इच्छापत्र पर हुई है, केवल यह तथ्य कि कई पीढ़ियों के लिए नियुक्तकर्ताओं ने पूजा की है इसलिए नियुक्त किए गए परिवार के सदस्यों पर स्वतंत्र अधिकार प्रदान नहीं करेगा और उन्हें पुजारी के रूप में पद पर बने रहने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा..."

333. एक सेवायत का प्राधिकार है कि वह देवता की संपत्तियों का प्रबंध करे और उस उद्देश्य की पूर्ति सुनिश्चित करे जिसके लिए संपत्ति समर्पित की गई थी। इस प्रबंधकीय भूमिका के एक आवश्यक तत्व के रूप में, एक सेवायत पूजा करने के लिए पुजारियों को नियुक्त कर सकता है। यह नियुक्त किये गए पुजारियों को एक सेवायत की स्थिति प्रदान नहीं करता है। सेवायत की नियुक्ति के रूप में, वे कार्यालय से हटाए जाने के लिए उत्तरदायी हैं और कार्यालय में रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं। एक सेवायत और एक पुजारी के बीच के अंतर को इस न्यायालय ने **श्री श्री कालीमाता ठाकुरानी ऑफ कालीघाट** बनाम **जिबांधन मुखर्जी**[219] में मान्यता दी थी। श्री श्री काली माता ठकुरानी और उनके सह देवताओं की सेवा–पूजा के समुचित प्रबंधन के लिए योजना विरचित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत एक वाद संस्थित किया गया था। न्यायमूर्ति जे आर मुधोल्कर के माध्यम से बोलते हुए इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह अवधारित किया कि:

---

219 AIR 1962 SC 1329

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "...सेवायत को मात्र पुजारी या अर्चक कहना गलत है। जैसा कि मुखर्जी जे. (जैसे कि वे उस समय थे) द्वारा धार्मिक और धर्मार्थ न्यासियों के हिंदू विधि पर अपने टैगोर विधि व्याख्यान में बताया गया है कि सेवायत देवता का मानवीय सेवक है जबकि एक पुजारी की नियुक्ति संस्थापक या सेवायत द्वारा पूजा करने के लिए की जाती है। इस प्रकार पुजारी सेवायत का सेवक है। सेवादारी मात्र पद ही नहीं संपत्ति भी है।"

334. पूजा करने के लिए संस्थापक या किसी सेवायत द्वारा पुजारी की नियुक्ति की जाती है। यह नियुक्ति पुजारी को एक सेवायत की स्थिति प्रदान नहीं करती है। वे कुप्रबंधन या अनुशासनहीनता के किसी भी कार्य के लिए हटाए जाने के लिए उत्तरदायी हैं जो उनके कर्तव्यों के प्रदर्शन के साथ असंगत है। आगे, जहां एक पुजारी की नियुक्ति वसीयतकर्ता के इच्छापत्र पर हुई है, यह तथ्य कि कई पीढ़ियों के लिए नियुक्तकर्ताओं ने पूजा की है इसलिए नियुक्त किए गए परिवार के सदस्यों पर स्वतंत्र अधिकार प्रदान नहीं करेगा और उन्हें पुजारी के रूप में पद पर बने रहने का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। और न ही एक पुजारी के कार्य मात्र से ही एक व्यक्ति सेवायत नहीं हो जाता है।

मुकदमा चलाने का अनन्य अधिकार?

335. किसी सेवायत का स्थान विधि में एक सारवान स्थान है जो व्यक्ति को अन्य सभी के अपवर्जन के लिए मूर्ति की संपत्तियों के प्रबंधन का विशेष अधिकार प्रदान करता है। मूर्ति की संपत्तियों का प्रबंधन करने के अनन्य अधिकार के अतिरिक्त, सेवायत को मूर्ति की ओर से कार्यवाहियों का

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संस्थापन करने का अधिकार है। क्या मूर्ति की ओर से वाद करने का अधिकार का प्रयोग केवल सेवायत द्वारा ही (उस स्थिति में जहां कोई सेवायत है) किया जा सकता है अथवा या किसी "वाद मित्र" के माध्यम से मूर्ति द्वारा भी प्रयोग किया जा सकता है जो हमारे समक्ष कार्यवाहियों में विवाद का विषय रहा है। वाद 3 में वादी–निर्मोही अखाड़े का तर्क है कि निर्मोही विवादित स्थल पर भगवान राम की मूर्तियों के सेवायत हैं। निर्मोही अखाड़े की ओर से पेश वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री एस के जैन ने तर्क दिया कि वाद 5 में वादपत्र प्रकथित कुप्रबंधन या दुराचरण के किसी भी आरोप की अनुपस्थित में देवकी नंदन अग्रवाल मूर्तियों की ओर से एक वाद मित्र के रूप में वाद को पोषित नहीं कर सकते थे। श्री जैन ने इस तर्क पर महत्वपूर्ण अवलम्बन लिया कि वाद 5 में वादपत्र निर्मोहियों द्वारा कोई कुप्रबंधन नहीं करता है। यद्यपि श्री एस के जैन ने तर्क किया कि वाद 5 के (जो वर्ष 1989 में संस्थित किया गया था) वादीगणों को वाद 3 के विषय में पता था जिसे निर्मोही अखाड़ा द्वारा (वर्ष 1959 में) एक सेवायत के रूप में दावा करते हुए संस्थित किया गया था, वाद 5 में वादपत्र निर्मोही अखाड़े को एक सेवायत के रूप में स्थिति को चुनौती नहीं देता है। परिणामस्वरूप निर्मोही अखाड़ा ने कहा कि मूर्ति की ओर से वाद मित्र द्वारा वाद पोषणीय नहीं है। यह तर्क कि निर्मोही अखाड़ा मूर्तियों का सेवायत है और परिणामस्वरूप भगवान राम की मूर्तियों की ओर से कार्रवाई करने का अनन्य अधिकार उसमें निहित है, इस तर्क को 4 में वादकारियों की ओर से पेश वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ. धवन द्वारा भी समर्थन किया गया था। उन्होंने कहा कि उनके तर्क के बावजूद कि वाद 3 को परिसीमा द्वारा बाधित कर दिया गया था, उस वाद की बर्खास्तगी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ने केवल निर्मोही अखाड़ा के कब्जे के लिए वाद दायर करने के उपचार को समाप्त कर दिया, परन्तु निर्मोहियों के अधिकारों को सेवायत के रूप में समाप्त नहीं किया। अतः डा. धवन के तर्कों में निर्मोही अखाड़ा सेवायत बना रहा और वर्ष 1989 में भी भगवान राम की मूर्तियों की ओर से मुकदमा चलाने का अनन्य अधिकार रखता था। यह यह कहा गया है कि वाद 5 पोषणीय नहीं है।

336. वाद 5 की पोषणीयता की चुनौती इस तर्क पर आधारित है कि केवल एक सेवायत मूर्ति की ओर से मुकदमा चला सकता है। मूर्ति की विशिष्ट प्रकृति के कारण मूर्ति की ओर से कौन मुकदमा कर सकता है इस पर प्रश्न उठता है। मूर्ति एक न्यायिक व्यक्ति और देवोत्तर संपत्ति का स्वामी है, परन्तु (जैसा कि हमने पहले चर्चा की है) केवल एक आदर्श अर्थ में है। विधि में मूर्ति मुकदमा करने और अपने नाम पर मुकदमा चलाने में सक्षम है। हालांकि, मूर्ति द्वारा किसी भी वाद को सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए किसी इंसान द्वारा लाया जाना चाहिए। **महाराजा जगदींद्र नाथ राय बहादुर** बनाम **रानी हेमंता कुमारी देबी**[220] में प्रतिवादी द्वारा कुछ भूमि पर आरोप लगाते हुए बेदखल कर दिया जिसके लिए वादी ने एक मूर्ति के सेवायत के रूप में वाद संस्थित किया। प्रतिवादी ने परिसीमा के आधार पर मुकदमे का विरोध किया। सेवायत ने आरोप लगाया कि बेदखली के समय वह नाबालिग था और इसलिए परिसीमा की अवधि उसके विरूद्ध नहीं प्रारम्भ हुई जब तक कि उसने वयस्कता प्राप्त नहीं किया। सर आर्थर विल्सन के माध्यम से कहते हुए प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया:

---

220 (1903-04) 31 IA 203

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"लेकिन धार्मिक समर्पण को कठोर प्रकृति का मानते हुए भी, यह अभी भी बना हुआ है कि समर्पित संपत्ति का **कब्जा और प्रबंधन *सेवायत* से संबद्ध है। और इसके साथ यह अधिकार है कि संपत्ति की सुरक्षा के लिए जो भी वाद आवश्यक हों, उसे लाने का अधिकार है। वाद लाने का ऐसा हर अधिकार *सेवायत* में निहित है मूर्ति में नहीं।** और वर्तमान मामले मुकदमा चलाने का अधिकार वादी को तब प्राप्त था जब वह अवयस्क था। इसलिए मामला परिसीमा अधिनियम की धारा 7 की स्पष्ट भाषा के अन्तर्गत आता है जो कहता है कि: "यदि कोई व्यक्ति वाद संस्थित करने का हकदार है.....उस समय जहां से परिसीमा की अवधि की गणना की जानी है, अवयस्क है" तो वह एक समय के भीतर जो वर्तमान मामले में तीन वर्ष होगी, आयु प्रापत करने के पश्चात् वाद संस्थित कर सकेगा।"

(प्रभाव वर्धित)

प्रिवी काउंसिल ने बेदखली के समय जांच की कि क्या सेवायत के विरूद्ध परिसीमा प्रारम्भ हो गई थी। ऐसा करने में प्रिवी काउंसिल ने वाद चलाने के अधिकार को सेवायत में निहित रखा, न कि मूर्ति में। अंतत: प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया कि वाद को परिसीमा द्वारा बाधित नहीं किया गया क्योंकि बेदखली के समय सेवायत अवयस्क था। इस प्रकार, यह प्रासंगिक नहीं था कि परिसीमा देवता के वाद चलाने के अधिकार के विरूद्ध है अथवा नहीं जो कि इस तरह के अधिकार सेवायत में निहित हैं।

337. साधारणतया, मूर्ति की ओर से वाद चलाने का अधिकार सेवायत में निहित है। हालांकि इसका आशय यह नहीं है कि मूर्ति कुछ स्थितियों में अपने नाम पर वाद चलाने के अपने अंतर्निहित और स्वतंत्र अधिकार से वंचित है। संपत्ति मूर्ति में निहित है। संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए वाद चलाने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का अधिकार संपत्ति के स्वामित्व वाले अधिकारों का एक अंतर्निहित घटक है। सेवायत मात्र मानव अभिकर्ता है जिसके माध्यम से वाद चलाने के अधिकार का प्रयोग किया जाता है। मूर्ति के तत्कालीन रक्षक और उसके संपत्तियों के अनन्य प्रबंधक के रूप में, मूर्ति की ओर से केवल सेवायत द्वारा एक वाद चलाया जाना चाहिए। जहां विधिपूर्वक नियत किया गया सेवायत मौजूद है जो देवता के हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक सभी कार्यों को करने में सक्षम है और इसकी निरंतर सुरक्षा और प्रबन्ध को सुनिश्चित करने के लिए, वाद चलाने के लिए देवता के अधिकार को देवता की ओर से वाद चलाने के सेवायत के अधिकार से अलग नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थितियों में, मूर्ति के वाद चलाने का अधिकार मूर्ति की ओर से सेवायत के वाद चलाने के अधिकार के साथ जुड़ जाता है। इस व्यवस्था को न्यायमूर्ति बी के मुखर्जी ने **"द हिंदू लॉ ऑफ धार्मिक और धर्मार्थ ट्रस्ट"** में निम्नलिखित तरीके से संक्षेपित किया है:

> "इसलिए यह निर्णय [जगदीन्द्र नाथ में] तीन बातों को स्थापित करता है: –
> (1) यह कि मूर्ति की सम्पत्ति के संबंध में वाद का अधिकार सेवायत में है;
> (2) यह अधिकार सेवायत का व्यक्तिगत अधिकार है जो उसे परिसीमा अधिनियम द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार का दावा करने का अधिकार देता है; और
> (3) सेवायत अपने नाम से वाद चला सकता है और वाद में वादी के रूप में देवता की नाम की आवश्यकता नहीं है, यद्यपि अभिवचन से यह प्रदर्शित होना चाहिए कि सेवायत वाद चला रहा है।"[221]

---

221 बी के मुखर्जी, "द हिंदू लॉ ऑफ धार्मिक और धर्मार्थ ट्रस्ट" (पाँचवाँ संस्करण, ईस्टर्न लॉ हाऊस, 1983) पृष्ठ 257–258 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

338. किसी मूर्ति की ओर से सेवायत द्वारा एक वाद मूर्ति को बांधता है। इस कारण से, एक मूर्ति की ओर से वाद कौन चला सकता है, यह प्रश्न मूल विधि का प्रश्न है। किसी अपरिचित को मूर्ति की ओर से कार्यवाहियों को संस्थित करने और उसे आबद्ध करने के अधिकार के साथ निहित करते हुए मूर्ति और उसकी संपत्तियों को ऐसे कई व्यक्तियों की अनुकंपा पर छोड़ देगा जो 'वाद मित्र' होने का दावा करते हैं। इसलिए, मूर्ति के हितों को मूर्ति की ओर से लाए गए कार्यों को प्रतिबंधित और जांच करते हुए संरक्षित किया जाता है। साधारणतया इस वजह से केवल एक विधिक सेवायत मूर्ति की ओर से वाद चला सकता है। जब एक विधिक सेवायत देवता की ओर से वाद चलाता है, तो यह प्रश्न कि क्या देवता कार्यवाही के लिए एक पक्षकार है यह मात्र प्रक्रिया का विषय है। जब तक कि वाद एक सेवायत की क्षमता में दायर किया जाता है तो यह विवक्षित है कि इस तरह का वाद मूर्ति की ओर से और लाभ के लिए है।

किसी उपासक या हितबद्ध व्यक्ति द्वारा चलाया गया वाद

339. ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जहां एक सेवायत कर्तव्यों के प्रदर्शन में परित्यक्त है, चाहे कोई कार्य न करके या धर्मदाय संपत्ति के अपकृत्य हस्तांतरण में सहयोग करके। ऐसी स्थिति में, जहां देवता की संपत्ति की प्रत्युद्धरण के लिए वाद संस्थित की जाती है, यह कार्य सेवायत और उस व्यक्ति दोनों के विरूद्ध है जो संपत्ति को देवता के प्रति शत्रुतापूर्ण तरीके से रखता या दावा करता है। एक सेवायत द्वारा सामान्य कुप्रबंधन के विरूद्ध

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्य का उपचार सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 में पाया जा सकता है। हालांकि, जहां न्यास के लिए किसी अपरिचित के विरूद्ध कार्य पर विचार किया जाता है वहाँ उपचार सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत एक वाद नहीं है परन्तु सामान्य विधि में एक वाद है।

340. **वेमारेड्डी रामाराघव रेड्डी** बनाम **कोंडुरु सेशू रेड्डी**[222] में वादकारियों ने प्रतिवादियों पर आरोप लगाया जो मंदिर के प्रबंधकों और इसकी संपत्तियों का कुप्रबंधन था। इसके बाद, प्रतिवादियों और हिंदू धार्मिक धर्मदाय बोर्ड के बीच एक समझौता डिक्री निष्पादित की गई, जिसमें अन्य बातों के साथ–साथ मंदिर की संपत्तियों को प्रतिवादियों की व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में घोषित किया। वादकारियों ने विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 की धारा 42 के तहत यह कहते हुए समझौते के प्रावधान की एक घोषणा की मांग की कि मंदिर की संपत्ति प्रतिवादी के पूर्ण व्यक्तिगत संपत्ति मंदिर पर बाध्यकारी नहीं थे। प्रतिवादियों ने इस तर्क का इस आधार पर विरोध किया कि वादकारियों को मंदिर अथवा मंदिर की संपत्ति में कोई विधिक हित नहीं था और और मात्र उपासक ही थे जिनके वाद मंदिर को बाध्य नहीं कर सकते थे। न्यायमूर्ति वी रामास्वामी ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ के लिए बोलते हुए अवधारित किया:

> "13 ....विधिक रूप में, एकमात्र व्यक्ति जो देवता का प्रतिनिधित्व कर सकता है या जो देवता की ओर से वाद चला सकता है वह सेवायत है, और यद्यपि एक देवता एक न्यायिक व्यक्ति है जो संपत्ति धारित करने में सक्षम है, यह केवल एक आदर्श अर्थ में है कि संपत्ति इस प्रकार धारित

222 1966 Supp SCR 270

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की गई है।**सामान्य प्रक्रिया में संपत्ति के कब्जे और प्रबंधन के संबंध में वाद चलाने का अधिकार सेवायत में निहित है लेकिन हालांकि जहां सेवायत उपेक्षित है अथवा जहाँ सेवायत, जिसके विरूद्ध देवता को राहत की आवश्यकता है वह स्वयं दोषी पक्षकार है और यह धार्मिक धर्मदाय में हितबद्ध उपासकों अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए न्यास की संपत्तियों के संरक्षण के लिए वाद चला सकता है।**

ऐसे मामले में, यह अनुचित तरीके से हस्तांतरित संपत्ति के कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए अथवा अन्य राहत के लिए वाद मित्र के रूप में किसी व्यक्ति के माध्यम से देवता वाद दायर कर सकते हैं। **ऐसा वाद मित्र वह व्यक्ति हो सकता है जो देवता का उपासक हो अथवा भावी सेवायत के रूप में धर्मदाय में विधिक रूप से हितबद्ध हो।** ऐसे मामले में जहां सेवायत ने देवता के समर्पित संपत्तियों के अधिकार से इनकार किया है, यह स्पष्ट रूप से वांछनीय है कि देवता को न्यायालय द्वारा नामित हितबद्ध न रखने वाले वाद मित्र के माध्यम से वाद दायर करना चाहिए...."

(प्रभाव वर्धित)

341. मंदिर की संपत्तियों के प्रबंधन का एक आवश्यक अनुबद्ध उक्त संपत्तियों की प्रत्युद्धरण के लिए वाद चलाने का अधिकार है। सामान्यतः केवल सेवायत ही मूर्ति की ओर से वाद चलाने का हकदार होगा। मूर्ति के लिए तत्काल सहारा प्रदान करने के अलावा, यह अपरिचितों के विरूद्ध वाद चलाने के लिए महत्वपूर्ण जांच भी प्रदान करता है, जिसके परिणामस्वरूप मूर्ति अथवा सेवायत के ज्ञान के बिना मूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं। लेकिन ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां एक सेवायत का आचरण विचाराधीन है। कुछ मामलों में, जहां सेवायत मूर्ति के लिए स्वयं ही उपेक्षित अथवा पक्षद्रोही दावा करता है, यह उपासक अथवा वाद मित्र के लिए है जो परिस्थित के उपचार के लिए वाद दायर करने के लिए मूर्ति की संपत्तियों को संरक्षित करने में हितबद्ध है। उपरोक्त मामले में, समझौता डिक्री में प्रवेश

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करते हुए मंदिर की संपत्तियों को प्रतिवादी सेवायतों के व्यक्तिगत संपत्तियों के रूप में घोषित करते हुए प्रतिवादियों ने मूर्ति के हक के विपरीत हक स्थापित किया। इस न्यायालय ने अवधारित कि यह वादकारियों के लिए स्वीकार्य थाजो समझौता डिक्री को अमान्य करने के लिए वाद पोषित करने के लिए एक उपासक थे।

342. हालांकि **वेमारेड्डी रेड्डी** में देवता की ओर से वाद नहीं चलाया गया था। वाद को उपासक द्वारा *व्यक्तिगत क्षमता* में एक घोषणा के लिए संस्थित किया गया था कि प्रश्नगत संपत्ति देवोत्तर संपत्ति थी। इस संदर्भ मेंन्यायालय ने अवधारित किया:

> "11 .... यदि एक सेवायत ने अनुचित रूप से न्यास की संपत्ति को हस्तांतरित कर दिया है तो एक घोषणा के लिए हितबद्ध किसी व्यक्ति द्वारा एक वाद लाया जा सकता है कि देवता के लिए इस तरह का अंतरण बाध्यकारी नहीं है, परन्तु कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए कोई डिक्री ऐसे वाद में नहीं ली जा सकती जब तक कि वाद में वादी के कब्जे का वर्तमान अधिकार है। मंदिर के उपासक आध्यात्मिक अर्थ में हिताधिकारी अथवा *न्यास लाभी* की स्थिति में हैं।.... **चूंकि उपासक अपने हितों को संरक्षित करने के लिए देवता के वाद चलाने की शक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं इसलिए वे सेवायत द्वारा अनुचित रूप से हस्तांतरित संपत्ति के कब्जे को पुनर्प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं, परन्तु उन्हें एक घोषणात्मक डिक्री दी जा सकती है कि हस्तांतरण देवता पर बाध्यकारी नहीं है...."**
>
> (प्रभाव वर्धित)

देवता *की ओर से* वाद चलाने और देवता *के लाभ के लिए* व्यक्तिगत क्षमता में वाद का संस्थन के बीच अंतर का महत्व शीघ्र ही संदर्भित किया जाएगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

343. बिश्वनाथ बनाम **श्री ठाकुर राधा बल्लभजी**[223] में मूर्ति के वाद मित्र ने प्रतिवादी सेवायत द्वारा अपनी संपत्तियों के हस्तांतरण को चुनौती दी। सेवायत द्वारा प्रतिरक्षा में से एक यह था कि वाद मित्र देवता की ओर से वाद चलाने में सक्षम नहीं था। न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इस न्यायालय की तीन न्यायाधीश पीठ के लिए बोलते हुए इस सिद्धांत की पुष्टि की कि सामान्यतः एक मूर्ति की ओर से वाद चलाने का विशिष्ट अधिकार है:

> "9. तीन कानूनी अवधारणाएं अच्छी तरह से तय की गई हैं: (1) हिंदू मंदिर की एक मूर्ति न्यायिक व्यक्ति है; (2) जब एक सेवायत है, तो सामान्यतः सेवायत के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति मूर्ति का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है; और (3) यद्यपि केवल आध्यात्मिक अर्थों में मूर्ति के उपासक इसके लाभार्थी हैं। हिंदू विधि और धर्म के अनुसार यह भी अवधारित किया गया है कि जो लोग केवल भक्ति के उद्देश्य के लिए ही जाते हैं उनका मंदिरों में मात्र सेवकों, जो वहां कुछ धन–संबंधी लाभ के लिए कार्य करते हैं, की अपेक्षा कहीं अधिक और गहरी रूचि होती है ..."

विद्वान न्यायाधीश ने तब मूल्यांकन किया जब एक सेवायत के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति देवता की ओर से मुकदमा पोषित करने के हकदार हो सकते हैं:

> "10. प्रश्न यह है कि **क्या ऐसा व्यक्ति उस मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है जब सेवायत अपने हित के प्रतिकूल कार्य करता है और अपने हितों की रक्षा के लिए कार्य करने में विफल रहता है। सिद्धांत रूप में हमें उपासक के लिए इस तरह के अधिकार से इनकार करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है। एक मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है जब इसका प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति इसे एक झटके में छोड़ देता है, मूर्ति की**

---

223 (1967) 2 SCR 618

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> **पूजा में हितबद्ध व्यक्ति निश्चित रूप से अपने हित की रक्षा के लिए प्रतिनिधित्व की *तदर्थ* शक्ति प्रदान की जा सकती है। यह तथ्यात्मक है, फिर भी एक कठिन परिस्थिति का विधिक समाधान है।** यह अवधारित किया जाना चाहिए कि कोई सेवायत, जिसने संपत्ति हस्तांतरित की है केवल प्रत्युद्धरण के लिए वाद ला सकता है, अधिक से अधिक बार वह अपने चूक को स्वीकार नहीं करेगा और संपत्ति की प्रत्युद्धरण के लिए कदम उठाएगा, इसके अलावा वाद में अन्य तकनीकी दलीलें अंतरिती के लिए हो सकती हैं। **क्या यह अवधारित किया जाना चाहिए कि एक उपासक केवल सेवायत को हटाने के लिए एक वाद दायर कर सकता है और संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए कदम उठाने की इस तरह की प्रक्रिया दीर्घकालीन और जटिल हो जाएगी और मूर्ति के हित को अपूर्णीय क्षति हो सकती है।इसीलिए ऐसे निर्णय ने ऐसी परिस्थितियों में एक उपासक को मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने और मूर्ति के लिए संपत्ति के प्रत्युद्धरण करने की अनुमति दी है।** यह कई फैसलों में अवधारित किया गया है कि उपासक किसी धर्मदाय की ओर से किसी संपत्ति के कब्जे के लिए प्रार्थना पत्र दायर कर सकते हैं..."
>
> (प्रभाव वर्धित)

344. यह निर्णय **वेमारेड्डी रेड्डी** के इस निर्णय को दोहराता है कि जहां एक सेवायत किसी मूर्ति के लाभ के लिए कार्य करने से इनकार करता है, अथवा जहां सेवायत के कार्य मूर्ति के हित के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण हैं, मूर्ति के हितों की रक्षा के लिए एक वैकल्पिक विधि प्रदान की जानी चाहिए। ऐसे मामलों में, धर्मदाय संपत्तियों के संरक्षण में हितबद्ध एक वाद मित्र को वाद संस्थित करने के अधिकार के साथ निहित किया जाता है। जहां मूर्ति के हितों के लिए पूर्वाग्रही कार्य सेवायत द्वारा की जाती है, यह संभावना नहीं है कि सेवायत अपने कार्यों को चुनौती देने वाला वाद संस्थित करेगा। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि वाद मित्र को उस सेवायत और उस अपरिचित के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विरुद्ध जो मूर्ति के हितों को खतरा पैदा करता है, विधि में कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान किया जाए।

345. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि **वेमारेड्डी रेड्डी** की तरह ही, **बिश्वनाथ** में भी इस न्यायालय ने उपासकों को मूर्ति की ओर से वाद चलाने की अनुमति दी। **बिश्वनाथ** मामले में वाद को एक उपासक द्वारा अपनी व्यक्तिगत क्षमता में नहीं बल्कि मूर्ति के प्रतिनिधि के रूप में सेवायत के अपवर्जन के लिए संस्थित किया गया था। वाद मित्र मुकदमेबाजी के सीमित उद्देश्य के लिए सेवायत की भूमिका का निर्वहन करता है।

346. जब एक उपासक कार्यवाही संस्थित करता है तो इस संबंध में विधिक स्थिति तय की जाती है। एक उपासक एक अपरिचित के विरूद्ध देवता के हितों की रक्षा के लिए एक वाद का संस्थन कर सकता है जहां एक सेवायत अपने कर्तव्यों में उपेक्षित है अथवा ऐसे कार्यों को करता है जो देवता के प्रति पक्षद्रोही हैं। प्रश्न यह है कि क्या उपासक के लिए उपलब्ध उपचार व्यक्तिगत क्षमता में एक वाद है या मूर्ति की ओर से एक वाद (वाद मित्र के रूप में) वह है जिसका उत्तर दिया जाना चाहिए। **वेमारेड्डी रेड्डी** मामले में यह उनकी व्यक्तिगत क्षमता में उपासकों द्वारा दायर किया गया वाद था और न्यायालय के पास यह निर्धारित करने का कोई अवसर नहीं था कि मूर्ति की ओर से वाद मित्र द्वारा मुकदमे को पोषित रखा जा सकता है अथवा नहीं। हालांकि अभिव्यक्त अभिनिर्धारण कि एक उपासक देवता के मुकदमा करने के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता, इस मामले पर विचार किया जाना चाहिए।

347. इस संबंध में, डॉ. धवन ने कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के सदस्य के रूप में **तरित भूषण राय** बनाम **श्री श्री ईश्वर श्रीधर सालग्राम शिला ठाकुर**[224] में न्यायमूर्ति पाल की अलग राय को हमारे संज्ञान में लाए। मामला एक अद्वितीय तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से उत्पन्न हुआ। अनुपमा द्वारा एक सूट की स्थापना की गई, जो सेवायत नहीं बल्कि तत्कालीन सेवायत की पुत्री थी। अनुपमा ने इस आधार पर कुछ संपत्ति के विक्रय पर रोक लगाने की मांग की, जो संपत्ति पूर्ण देवोत्तर संपत्ति थी। अनुपमा के वाद को बाद में खारिज कर दिया गया था और सेवायत द्वारा नए सिरे से उचित कार्यवाही संस्थित की गई थी। न्यायमूर्ति नसीम अली और न्यायमूर्ति पाल दोनों ने अवधारित किया कि अनुपमा एक सेवायत नहीं थी और इस प्रकार नए वाद को तय करने के उद्देश्यों के लिए उनके वाद को खारिज करना अप्रासंगिक था। हालांकि, न्यायमूर्ति पाल ने आगे अभिनिर्धारित किया:

> "ऐसे धर्मदाय के तहत व्यक्तिगत अधिकार रखने वाले व्यक्ति मूर्ति के नाम पर वाद चलाने के लिए बाध्य किए बिना अपने नाम में एक साधारण वाद द्वारा ऐसे व्यक्तिगत अधिकारों को लागू करने के लिए वाद ला सकते हैं। *देवोत्तर* में हितबद्ध उपासकों अथवा अन्य व्यक्तियों के हितों की सुरक्षा के लिए इस अधिकार को पर्याप्त रूप से उपासकों को आरक्षित कर दिया गया है। **उस समय यह मूर्ति के हितों को उन व्यक्तियों की दखलंदाजी द्वारा प्रभावित होने के द्वारा जोखिम में डालने की अनुमति देता है**

---

224 AIR 1942 Cal 99

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिनकी उपयुक्तता पर कभी भी पूछताछ और न्यायनिर्णयन नहीं किया गया है।

(प्रभाव वर्धित)

न्यायमूर्ति पाल ने कहा कि उन स्थितियों में भी जहां सेवायत मूर्ति के हितों के विपरीत कार्य करता है, परन्तु केवल व्यक्तिगत क्षमता में एक उपासक मूर्ति की ओर से वाद नहीं चला सकता है। यह इस विचार से आता है कि जिन व्यक्तियों की उपयुक्त या सद्भावनापूर्ण की जांच नहीं की गई है या अदालतों द्वारा स्थगित नहीं किया गया है, वे मूर्ति और उसकी संपत्तियों को प्रतिकूल रूप से बांध सकने में सक्षम हैं। इस दृष्टि से, उपासक देवता की ओर से वाद दायर नहीं करता है, परन्तु उच्चतम स्तर पर, सेवायत के कार्यों को चुनौती देते हुए एक घोषणात्मक डिक्री प्राप्त कर सकता है जो देवता के लिए बाध्यकारी नहीं है।

348. जहां कोई सेवायत देवता के हितों के प्रतिकूल रूप से कार्य करता है तो इस प्रकार वहां हितबद्ध उपासक को उपलब्ध उपचारों पर दो दृष्टिकोण विद्यमान हैं। **बिश्वनाथ** मामले में इस न्यायालय द्वारा ली गई स्थिति यह है कि एक उपासक देवता की ओर से वाद मित्र के रूप में वाद चला सकता है। वाद मित्र के रूप में उपासक देवता के वाद चलाने के अधिकार का प्रत्यक्ष प्रयोग करते हैं। **तरित भूषण राय** में न्यायमूर्ति पाल द्वारा लिया गया वैकल्पिक दृष्टिकोण और जैसा कि **वेमारेड्डी रेड्डी** में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि एक उपासक देवता के हितों की रक्षा के लिए व्यक्तिगत क्षमता में वाद दायर कर सकता है परन्तु देवता की ओर से प्रत्यक्ष वाद नहीं कर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकता है, यद्यपि यह वाद देवता के लाभ के लिए हो सकता है। इस दृष्टि से, देवता उपासक के वाद से बाध्य नहीं है जब तक कि प्रदान किया गया उपचार सर्वबन्धी प्रकृति का नहीं हो। यह मामला दो प्रश्न उठाता है: पहला, क्या एक उपासक द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में दायर एक वाद जो देवता के हितों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त और समीचीन विधि है? दूसरा, एक वाद मित्र को देवता की ओर से वाद करने की अनुमति देता है, बिना किसी सद्भावनापूर्ण आशय और योग्यताओं को स्थापित करता है और देवता को हितों को जोखिम में डालती है ?

349. किसी उपासक द्वारा अपनी व्यक्तिगत क्षमता में किया गया वाद कुछ मामलों में समुचित उपचार हो सकता है। उदाहरण के लिए, जहां एक सेवायत मूर्ति तक पूजा करने वालों की पहुंच से इनकार करता है, मूर्ति तक अभिगमन के लिए व्यक्तिगत क्षमता में उपासक द्वारा एक वाद सेवायत के विरूद्ध उपयुक्त उपचार हो सकता है। व्यक्तिगत क्षमता में दायर होने वाले उपासकों के वाद को सीमित करने का एक और लाभ यह है कि संपत्ति के प्रत्युद्धरण से संबंधित मामलों में, एक व्यक्तिगत क्षमता में एक उपासक द्वारा किसी वाद का यह प्रश्न नहीं उठाया जाता है कि भूमि का कब्जा किसको दिया जाएगा। हालांकि, जहां देवता की ओर से एक वाद मित्र द्वारा वाद दायर किया जाता है तो एक समस्या उत्पन्न होती है: किसी वाद में मूर्ति की ओर से संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए न्यायालय संपत्ति का कब्जा वाद मित्र को नहीं दे सकती है। वाद मित्र व्यक्तिगत मुकदमे के सीमित उद्देश्यों के लिए मूर्ति का मात्र एक अस्थायी प्रतिनिधि है। जहां एक उपासक केवल अपनी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यक्तिगत क्षमता पर वाद चला सकता है वहाँ कब्जे प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

350. उपासक द्वारा उनकी व्यक्तिगत क्षमता में किया गया वाद, आशंका की सीमा को नहीं बता सकता है जो मूर्ति को उपेक्षित सेवायत से होगी और न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वह मूर्ति के हितों की रक्षा करने के लिए मूर्ति की ओर से वाद मित्र को पर्याप्त रूप से वाद चलाने की अनुमति प्रदान करे। उदाहरणरणार्थ, जहां एक सेवायत देवता की ओर से कब्जे के लिए वाद दायर करने में विफल रहता है वहीं उपासक द्वारा उसके व्यक्तिगत क्षमता में किया गया वाद अपर्याप्त होता है। बल्कि, संपत्ति के कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए मूर्ति की ओर से वाद मित्र द्वारा वाद की आवश्यकता है। यह सत्य है कि वाद मित्र को कब्जा नहीं दिया जाएगा। हालांकि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92[225] के तहत महाधिवक्ता अथवा दो व्यक्तियों द्वारा एक आवेदन पर योजना तैयार करने सहित कई प्रकार की राहत दे सकती है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि

---

225 92. लोक पूर्त कार्य– (1) पूर्त या धार्मिक प्रकृति के लोक प्रयोजनों के लिए सृष्ट किसी अभिव्यक्त या आन्वयिक न्यास के किसी अभिकतित भंग के मामले में, या जहां ऐसे किसी न्यास के प्रशासन के लिए न्यायालय का निदेश आवश्यक समझा जाता है वहाँ महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले ऐसे दो या अधिक व्यक्ति, जिन्होंने [न्यायालय की इजाजत] अभिप्राप्त कर ली है, ऐसा बाद, चाहे वह प्रतिविरोधात्मक हो या नहीं, आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किए गए किसी अन्य न्यायालय में जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर न्यास की सम्पूर्ण विषय–वस्तु या उसका कोई भाग स्थित है, निम्नलिखित डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए संस्थित कर सकेंगे–

(क) किसी न्यासी को हटाने की डिक्री;

(ख) नए न्यासी को नियुक्त करने की डिक्री;

(ग) न्यासी में किसी सम्पत्ति को निहित करने की डिक्री;

[(गग) ऐसे न्यासी को जो हटाया जा चुका है या ऐसे व्यक्ति को जो न्यासी नहीं रह गया है, अपने कब्जे में की किसी न्यास–सम्पत्ति का कब्जा उस व्यक्ति को जो उस सम्पत्ति के कब्जे का हकदार है, परिदत्त करने का निदेश देने की डिक्री;]

(घ) लेखाओं और जांचों को निर्दिष्ट करने की डिक्री;

(ङ) यह घोषणा करने की डिक्री कि न्यास–सम्पत्ति का या उसमें के हित का कौन सा अनुपात न्यास के किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए आवंटित होगा;

(च) सम्पूर्ण न्यास–सम्पत्ति या उसके किसी भाग का पट्टे पर उठाया जाना, विक्रय किया जाना, बन्धक किया जाना या विनिमय किया जाना प्राधिकृत करने की डिक्री;

(छ) स्कीम स्थिर करने की डिक्री; अथवा

(ज) ऐसा अतिरिक्त या अन्य अनुतोष अनुदत्त करने की डिक्री जो मामले की प्रकृति से अपेक्षित हो।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संपत्ति मूर्ति को वापस कर दी जाए। जहां पहले से ही सेवायत के कार्य की निष्क्रियता या दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई स्थापित की गई है, ऐसी योजना उपयुक्त उपचार हो सकती है। हालांकि यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी।

351. इन टिप्पणियों के मद्देनजर, जहां मूर्ति के हितों को संरक्षित करने की आवश्यकता है, विधि में मात्र इच्छुक उपासकों को उनकी व्यक्तिगत क्षमता पर वाद चलाने की अनुमति देने से देवता की पर्याप्त सुरक्षा नहीं हो सकती। कुछ स्थितियों में, प्रत्यक्ष रूप से देवता को वाद चलाने के अधिकार के प्रयोग को मूर्ति की ओर से वाद चलाने की अनुमति वाद मित्र को दी जानी चाहिए। राहत का प्रश्न मौलिक रूप से प्रासंगिक है और न्यायालय द्वारा विरचित प्रत्येक मामले की परिस्थितियों में इसके समक्ष पक्षकारों के प्रकाश में लाया जाना चाहिए।

352. हालांकि यह हमें दूसरे प्रश्न पर लाता है कि क्या वाद मित्र को मूर्ति की ओर से वाद चलाने की अनुमति देना मूर्ति को जोखिम में डालना है। मूर्ति और उसकी संपत्तियों की रक्षा एक स्वच्छन्द वाद मित्र की धमकी के विरुद्ध की जानी चाहिए। जहां सेवायत दुर्भावनापूर्ण रीति से कार्य करता है वहां कोई व्यक्ति जो 'वाद मित्र' होने का दावा करता है वह वाद ला सकता है। ऐसे व्यक्ति का आशय वास्तव में देवता के प्रति शत्रुतापूर्ण हो सकता है और झूठे आधार में वाद कर सकता है। यहां तक कि एक सुविचारित उपासक भी वाद मित्र के रूप में वाद कर सकता है और विशुद्ध रूप से वित्तीय बाधाओं या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपेक्षा के कारण वाद हार सकता है और देवता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। **तरित भूषण राय** के मामले में न्यायमूर्ति पाल द्वारा पेश किया गया समाधान, और वर्तमान कार्यवाहियों में डॉ. धवन द्वारा कहा गया है कि केवल न्यायालय द्वारा नियुक्त वाद मित्र मूर्ति की ओर से वाद चला सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह न्यायालय को संतुष्ट करेगा कि वाद मित्र सद्भावनापूर्ण है और संतोषजनक रूप से देवता का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

353. यह सच है कि जब तक कि वाद मित्र की उपयुक्तता का किसी प्रकार से जाँच नहीं हो जाती, तब तक एक व्यक्ति जिसकी सद्भावना निर्धारित नहीं की गयी है वह मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिए बाध्य कर सकता है। हालाँकि, प्रत्येक वाद मित्र को पहले न्यायालय द्वारा नियुक्त करना अथवा न्यायालय के लिए देवता का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक अहितबद्ध व्यक्ति प्राप्त करना अनावश्यक रूप से बोझिल होगा। देवता के हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा की जाएगी, यदि उन मामलों में जहां वाद मित्र सद्भावनापूर्वक किसी अन्य पक्ष द्वारा तर्क किया जाता है तो न्यायालय दृढ़ता से जांच करती है कि क्या वाद मित्र मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपयुक्त है। एक उपयुक्त मामले में, न्यायालय अपने स्वयं के समझौते के अनुरूप ऐसा कर सकता है जहाँ वह देवता के हित संरक्षित करना आवश्यक समझता है। किसी भी आपत्ति के अभाव में, और जहां न्यायालय वाद मित्र के कार्यों में कोई कमी नहीं देखती है, वहाँ कोई कारण नहीं है कि एक उपासक को उस देवता की ओर से वाद करने का अधिकार नहीं होना चाहिए जहां एक सेवायत अपने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पवित्र और विधिक कर्तव्यों का पालन करता है। बहुत बार, उपासकों को एक सेवायत द्वारा किसी कुप्रबंधन के विरूद्ध कार्य करने और साक्ष्य के लिए सबसे अच्छा माना जाता है। इसलिए जहां सेवायत देवता के हितों के प्रतिकूल कार्य करता है वहाँ एक उपासक देवता के वाद मित्र के रूप में देवता की ओर से वाद चला सकता है, बशर्ते कि यदि वाद मित्र की सद्भावना तर्क करते हैं तो न्यायालय को जांच करनी चाहिए कि वाद मित्र के आशय और क्षमताओं को पर्याप्त रूप से देवता का प्रतिनिधित्व करना है। न्यायालय अपने स्वयं के अनुरूप न्यायिक दायित्व का निर्वहन कर सकती है।

तीसरे वादी की सक्षमता

354. वर्तमान कार्यवाही में श्री एस के जैन और डॉ. धवन दोनों ने आग्रह किया कि वाद 5 में तीसरा वादी पहले और दूसरे वादी का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपयुक्त नहीं था। वाद 5 वर्ष 1989 में वैष्णव देवकी नंदन अग्रवाल द्वारा संस्थित किया गया। वैष्णव धर्म के प्रमुख देवता भगवान विष्णु हैं। वैष्णव संप्रदाय भगवान राम को भगवान विष्णु के कई अवतार में से एक के रूप में पूजते हैं। सिविल जज के एक आदेश दिनांकित 1 जुलाई 1989 द्वारा देवकी नंदन अग्रवाल को पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र के रूप में नियुक्त किया गया था।

355. मो. हाशिम ने श्री देवकी नंदन अग्रवाल की नियुक्ति को चुनौती देते हुए एक दीवानी प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र[226] दायर किया। सुसंगत जांच यह है कि क्या

---

226 सामान्य वाद सं. 236 वर्ष 1989 में दीवानी प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र सं. 10(0) वर्ष 1989

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पहले और दूसरे वादी का प्रतिनिधित्व करने के लिए तीसरे वादी की सद्भावना का कोई सारवान प्रतिवाद किया गया था। प्रार्थना पत्र में कहा गया:

> "5. यह कि वादपत्र प्रकथनों के सत्य होने को ध्यान में रखते हुए कथित वादी संख्या 1 और 2 विधिक व्यक्ति नहीं हैं, और इस तरह, विधिक व्यक्ति के लिए वाद न होने से वाद मित्र की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है और प्रथमदृष्ट्या इस संतुष्टि के बिना कि यह वाद विधिक व्यक्ति द्वारा दायर किया गया है, वादमित्र की नियुक्ति के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है।
>
> 8. यह कि वाद मित्र की नियुक्ति के लिए **एक प्रकथन होना चाहिए कि कथित वाद मित्र का उस व्यक्ति के हित के प्रतिकूल कोई हित नहीं है जिसके लिए उसे वाद मित्र नियुक्त किया जा रहा है** और इसके संबंध में किसी प्रकथन के न अभाव में और **प्रतिकूल हित के अभाव के बारे में संतुष्ठ किए बिना न्यायालय द्वारा** वादी सं. 3 को वाद मित्र के रूप में नियुक्त करने का आदेश गलत और अवैध है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

प्रार्थना पत्र के प्रस्तर 5 में प्रार्थी ने पहले और दूसरी वादी के विधिक व्यक्तित्व पर सवाल उठाया। यह प्रकथित किया गया कि एक स्थापित विधिक व्यक्ति के अभाव में वाद मित्र को नियुक्त करने का सवाल ही नहीं उठता। चाहे जो हो प्रकथन को तीसरे वादी की सद्भावना को चुनौती देने के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। प्रस्तर 8 में प्रार्थी ने कहा कि वाद मित्र की नियुक्ति के लिए कोई प्रार्थना पत्र इस विशिष्ट प्रकथन के साथ होना चाहिए कि प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति का देवता के प्रतिकूल कोई हित नहीं है। इसके अलावा प्रार्थी को प्रतिकूल हित के अभाव के बारे में अदालत को संतुष्ट करना चाहिए। यह सच है कि जहां वाद मित्र की फिटनेस विवाद में है, अदालत को वाद मित्र की सद्भावना की जांच करनी चाहिए। हालांकि केवल आरोप, जो किसी साक्ष्य से पुष्ट नहीं है, वाद मित्र की सद्भावना के प्रतिवाद

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को गठित नहीं करता है। प्रस्तर 8 में एक विरल कथन को छोड़कर प्रार्थना पत्र ने तीसरे वादी की सद्भावना का न तो प्रतिवाद किया या न ही सिद्ध किया।

356. 8 अप्रैल, 2002 को देवकी नंदन अग्रवाल का निधन हो गया और डा. टी. पी. वर्मा को प्रथम और द्वितीय वादी का वाद मित्र नियुक्त करने की अनुमति देने के लिए न्यायालय में एक प्रार्थना पत्र दिया गया। 25 अप्रैल 2002 के एक आदेश द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने डॉ. टी पी वर्मा को वाद मित्र के रूप में नियुक्त किया गया। इसके बाद डॉ. टी पी वर्मा की जगह त्रिलोकी नाथ पांडे को प्रथम और द्वितीय वादी के वाद मित्र के रूप में अनुमति देने के लिए एक प्रार्थना पत्र दायर किया गया। इस प्रार्थना पत्र को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। अपील पर दिनांक 8 फरवरी 2010 के एक आदेश द्वारा इस न्यायालय ने अवधारित किया:

> "3. अपीलकर्ताओं की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के.एन. भट ने जोरदार तरीके से तर्क किया कि डॉ. ठाकुर प्रसाद वर्मा के बजाय श्री त्रिलोकी नाथ पांडे को दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXII नियम 8 के प्रावधानों के तहत अपीलकर्ता–वादी सं. 1 व 2 के वाद मित्र के रूप में नियुक्त किया जाए चूँकि डॉ. वर्मा को गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं हैं। वह आगे कहते हैं कि जहाँ तक कि पहले से की गई लागतों का संबंध है वर्तमान वाद मित्र डॉ वर्मा उच्च न्यायालय को यह दर्शित करने वाला एक शपथ पत्र देंगें कि वह पहले से किए गए खर्चों के लिए जिम्मेदार होगें।
>
> 4. दूसरे पक्ष को इस व्यवस्था से कोई आपत्ति नहीं है। इसके दृष्टिगत हमारे लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की शुद्धता या अन्य की जांच करने की आवश्यकता नहीं है। यदि उक्त शपथ पत्र दिया जाता है और श्री त्रिलोकी नाथ पाण्डे की इच्छा उच्च न्यायालय को दर्शायी जाती है तो उस स्थिति में डॉ वर्मा द्वारा दिए गए शपथ पत्र के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अध्यधीन श्री त्रिलोकी नाथ पाण्डे अपीलकर्ता–वादी सं. 1 व 2 के वाद मित्र के रूप में कार्य करेंगें।"

इस न्यायालय के आदेश द्वारा त्रिलोकी नाथ पांडे को प्रथम और द्वितीय वादी के वाद मित्र के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई थी। इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में त्रिलोकी नाथ पांडे की नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं जताई गई। इस न्यायालय के पास टीपी वर्मा को वाद मित्र के रूप में कार्य करने से सेवानिवृत्त होने की अनुमति देने वाले उच्च न्यायालय के आदेश की शुद्धता की जांच करने का कोई कारण नहीं था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने बाद में 18 मार्च 2010 के एक आदेश द्वारा त्रिलोकी नाथ पांडे को वाद मित्र के रूप में नियुक्त किया।

357. जहां वाद मित्र की फिटनेस विवाद में है, अदालत को वाद मित्र की सद्भावना की जांच करनी चाहिए। हालांकि वर्तमान मामले में यह जांच आवश्यक नहीं है जैसा कि वाद 5 में तीसरे वादी को अदालत के आदेशों के तहत पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र के रूप में नियुक्त किया गया है। त्रिलोकी नाथ पांडे की नियुक्ति से इस अदालत ने इस प्रश्न पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया है और त्रिलोकी नाथ पांडे को पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र के रूप में कार्य करने की अनुमति दी। इस जाँच को देखते हुए कि वाद मित्र की नियुक्ति वर्तमान कार्यवाहियों में शर्तों के अधीन की गयी है, इस दलील में कोई बल नहीं है कि वाद 5 में तीसरा वादी पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र के रूप में एक वाद संस्थित के लिए उपयुक्त नहीं है।

निर्मोही अखाड़ा और सेवायत अधिकार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

358. जहां सेवायत की पहचान करने के लिए समर्पण का अभिव्यक्त विलेख विद्यमान है वहां मूर्ति की ओर से कौन वाद कर सकता है, उसकी बाबत विधि की स्थिति इस प्रकार है:

(i) वाद करने का अधिकार विधिपूर्वक नियुक्त सेवायत में अनन्यतः निहित है; हालांकि,

(ii) जहां सेवायत अभिव्यक्त कार्य या निष्क्रियता से मूर्ति के हितों के प्रतिकूल या उपेक्षित रूप से कार्य करता है, वहां कोई व्यक्ति जो धर्मदाय में हितबद्ध है, मूर्ति की ओर से वाद संस्थित कर सकेगा; और (iii) वाद मित्र द्वारा धारित हित की सटीक प्रकृति और क्या वाद मित्र सद्भावी है, ये सारवान विधि के मामले हैं। यदि प्रतिवादित होता है, तो इसे अदालत द्वारा अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए।

वाद 5 की पोषणीयता इस प्रश्न पर निर्भर करती है कि क्या निर्मोही अखाड़ा सेवायत थी और क्या उन्होंने मूर्ति के हितों के लिए प्रतिकूल तरीके से काम किया है। इसी के कारण अब हमें इस मुद्दे पर आना चाहिए।

इस अदालत के समक्ष मौखिक तर्कों के दौरान श्री जैन से एक प्रश्न किया गया कि क्या मूर्ति के वाद की पोषणीयता को चुनौती देकर निर्मोही अखाड़ा ने मूर्ति के हितों के प्रतिकूल एक दावा स्थापित किया है। जवाब में श्री एस के जैन ने इस न्यायालय में एक बयान प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि वाद 5 की पोषणीयता के संबंध में निर्मोही अखाड़ा की स्थिति को सशर्त रूप से संशोधित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि निर्मोही अखाड़ा वाद 5 की पोषणीयता के मुद्दे पर बल नहीं देगा, बशर्ते कि वाद में वादी 3 निर्मोही अखाड़ा के सेवायती अधिकारों पर प्रश्न नहीं उठाए। यह प्रस्तुत किया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि निर्मोही अखाड़ा स्वतंत्र रूप से अपने वादों को सेवायत के रूप में बनाए रख सकता है।

359. निर्मोही अखाड़ा द्वारा किया गया कथन इसके दावे को नहीं बदलता है कि यह भगवान राम की मूर्तियों का सेवायत है। यह केवल इस बात को निर्धारित करता है कि उस स्थिति में कि वाद 5 में वादीगण निर्मोही अखाड़ा को मूर्तियों के सेवायत के रूप में मान्यता का विकल्प चुनते हैं, तो यह अब वाद 5 की पोषणीयता को चुनौती नहीं देगा। विधि के न्यायालय में ऐसी स्थिति असमर्थनीय है। निर्मोही अखाड़ा ने लगातार यह कहा है कि निर्मोही भगवान राम की मूर्तियों के सेवायत हैं। यदि यह न्यायालय पाता है कि वे मूर्तियों की सेवायत हैं, तो अकेले वे ही मूर्तियों की ओर से मुकदमा कर सकते हैं और इस न्यायालय द्वारा इस अधिनिर्णयन के बिना, कि निर्मोहियों ने मूर्ति के हितों के विपरीत कार्य किया है, वाद मित्र द्वारा संस्थित वाद 5 पोषणीय नहीं होगा।

360. वर्तमान मामला एक सेवायत को मान्यता देने वाले समर्पण के एक अभिव्यक्त विलेख से संबंधित नहीं है। बल्कि यह निर्मोही अखाड़ा का तर्क है कि विवादित स्थल पर उनकी लम्बे समय से उपस्थिति के आधार पर और मूर्ति के संबंध में कुछ कार्यों के उनके अभ्यास द्वारा वे वस्तुतः सेवायत हैं। इसके अलावा वर्तमान कार्यवाही की अनूठी प्रकृति यह है कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा वाद के तीस साल बाद, वाद मित्र द्वारा संस्थित वाद, कथित सेवायत निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर मुकदमे के साथ–साथ अधिनिर्णीत किया जा रहा है। इसका परिणाम यह है कि जब वाद मित्र का मुकदमा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1989 में संस्थित किया गया था, तब तक कोई निर्धारण नहीं किया गया था कि निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत था।

361. वर्तमान कार्यवाही एक समग्र प्रकृति की है, इसलिए वाद 5 की पोषणीयता के सवाल का जवाब क्रमबद्ध रूप से दिया जाना चाहिए। पहला प्रश्न यह है कि क्या निर्मोही अखाड़ा वास्तव में भगवान राम की मूर्तियों के सेवायत हैं। यदि इसका उत्तर सकारात्मक रूप में दिया जाता है, तो दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या निर्मोही अखाड़ा ने मूर्ति के हित के प्रतिकूल कार्य किया है। यदि निर्मोही अखाड़ा का वास्तव में सेवायत होना पाया जाता है और उसने प्रतिकूल रूप से कार्य नहीं किया है, तो वाद 5 पोषणीय नहीं है क्योंकि यह सेवायत है जो देवता की ओर से मुकदमा करने के अनन्य अधिकार का प्रयोग करता है। वैकल्पिक रूप से, यदि निर्मोही अखाड़ा को मूर्तियों का वस्तुतः सेवायत होना नहीं पाया जाता है या मूर्तियों के सम्बन्ध में प्रतिकूल रूप से कार्य किया गया होना पाया जाता है, तो वाद मित्र द्वारा किया गया वाद पोषणीय है। इसी के साथ हम इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या निर्मोही अखाड़ा वास्तव में सेवायत हैं।

वस्तुतः सेवायत का वाद लाने का अधिकार

362. देवता की ओर से वस्तुतः सेवायत का वाद संस्थित करने का अधिकार प्रिवी काउंसिल के दो प्रारंभिक निर्णयों: **महंत राम चरण दास बनाम नौरंगी लाल**[227]और **महादेव प्रसाद सिंह बनाम करिया भारती**[228] से पता लगाया जा सकता है। **महन्त राम चरन दास** में पालीगंज मठ के महन्त ने मठ की 70 एकड़ भूमि के लिए एक पट्टा निष्पादित किया और बाद में पट्टे के

---

227 एआईआर 1933 प्रिवी कौंसिल 75

228 एआईआर 1935 प्रिवी कौंसिल 44

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधीन बिक्री विलेख निष्पादित किया। उनकी मृत्यु होने पर एक अन्य व्यक्ति ने महंत होने का दावा करते हुए कब्जा ले लिया और बाद में वादी, जो एक अन्य मठ का महंत था (पालीगंज मठ जिसके अधीनस्थ था) को एक पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से अपने सभी अधिकारों को छोड़ दिया। वादी ने यह दावा करते हुए एक वाद संस्थित किया कि पट्टा विलेख और उसके बाद की बिक्री विलेख के निष्पादन की कोई आवश्यकता नहीं थी। वादी की ओर से मुकदमे की पोषणीयता के प्रश्न पर प्रिवी काउंसिल की ओर से लॉर्ड रसेल ने अवधारित किया:

> "…. न्यायाधीशगण हालांकि अब हक के किसी प्रश्न पर केन्द्रित नहीं हैं क्योंकि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने पाया है कि वादी पालीगंज मठ का वास्तविक कब्जाधारी व्यक्ति है और उसी रूप में स्वयं के लाभ के लिए नहीं बल्कि मठ के लाभ के लिए संपत्ति प्राप्त करने के लिए एक वाद जारी रखने का हकदार है।

363. **महादेव प्रसाद सिंह** में एक गाँव जो एक मठ में संलग्न संपत्ति का हिस्सा था, 1914 में महंत द्वारा बेचा गया था। 1916 में उनकी मृत्यु के बाद, 1926 में प्रश्नगत वाद संस्थित किया गया था, जिसमें मठ का महंत होने का आरोप लगाते हुए एक व्यक्ति द्वारा हस्तांतरण को चुनौती दी गई थी। वाद पर एक आपत्ति यह थी कि प्रतिवादी वाद को बनाए रखने का हकदार नहीं था क्योंकि वह न तो पिछले महंत का चेला था, न ही वह किसी अन्य क्षमता में महंत होने का हकदार था। इस तर्क को खारिज करते हुए प्रिवी काउंसिल की ओर से सर शादी लाल ने अवधारित किया:

> "इसमें कोई संदेह नहीं है कि करिया 1904 से संस्थानों के मामलों का प्रबंधन कर रहे हैं और राजबंश की मृत्यु से इसमें हितबद्ध सभी व्यक्तियों द्वारा इसके महंत माने गए है। राजबन के नाम पर राजस्व अभिलेख में दर्ज की गई संपत्ति, उनकी मृत्यु पर, करिया को नामांतरित की गई थी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> और यह सुझाया नहीं गया है कि कोई भी व्यक्ति है जो महंत के पद पर उसके शीर्षक को विवादित करता है। इन परिस्थितियों में न्यायाधीशगण उच्च न्यायालय से सहमत है कि करिया मठ के लाभ के लिए उस सम्पत्ति को प्राप्त करने का हकदार था जो संपत्ति मठ से संबंधित थी और अब अपीलकर्ताओं द्वारा गलत तरीके से ली गयी है। वे अतिचारियों की तरह हैं। जैसा कि 1933 पीसी 75 (1) में इस बोर्ड द्वारा देखा गया है, मठ के वास्तविक कब्जाधारी व्यक्ति को अपने स्वयं के लाभ के लिए नहीं, बल्कि मठ के लाभ के लिए इससे संबंधित संपत्ति को प्राप्त करने के लिए एक वाद बनाए रखने का अधिकार है।"

प्रिवी काउंसिल ने निम्नलिखित नोट किया: (i) करिया को ग्रामीणों द्वारा महंत के रूप में मान्यता दी गई थी; (ii) राजस्व अभिलेख में करिया का नाम था; और (iii) यह नहीं सुझाया गया था कि महंत के पद पर उसके हक के लिए कोई विवाद था। यह इन विचारों के आधार पर है कि प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया कि करिया द्वारा प्रयोग किए गए अधिकार एक महंत की प्रकृति में थे। ऊपर उल्लिखित विचार प्रिवी काउंसिल के अपने विश्लेषण में प्रभावी रहे कि क्या प्रयोग किए गए अधिकार, एक महंत द्वारा प्रयोग किए अधिकारों की प्रकृति के थे।

364. यद्यपि ऊपर संदर्भित प्रिवी काउंसिल के दोनों निर्णय एक मठ की ओर से कार्यवाही करने के लिए एक महंत के अधिकार के संदर्भ में थे, यह विधिक स्थिति कि एक वस्तुतः महंत को मठ की ओर से इसके लाभ के लिए कार्यवाही संस्थित करने का हकदार है, इसको समान रूप से एक मूर्ति के वस्तुतः सेवायत और इसकी सम्पत्ति पर लागू किया गया है। **पंचकारी रॉय बनाम अमोडे लाल बर्मन**[229] में रामदास महंत एक वसीयत के आधार पर कुछ मूर्तियों को संपत्ति समर्पित की और अपनी विधवा को तब तक संपत्ति

---

229 (1937) 41 सीडब्ल्यूएन 1349

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के प्रबंधक के रूप में नियुक्त किया, जब तक कि उनकी बेटी वयस्कता की आयु प्राप्त नहीं कर लेती, वयस्कता प्राप्त करने पर वह एक सेवायत के रूप में कार्यभार संभाल लेगी। विधवा ने संपत्ति को लौकिक संपत्ति के रूप में बेच दिया और बेटी ने वयस्कता प्राप्त करने पर अभिकथन किया कि यद्यपि संपत्ति लौकिक थी परन्तु वसीयत के आधार पर यह उसको प्राप्त थी। उसने संपत्ति को दूसरे पक्षकार को बेच दिया। वादी ने देवोत्तर का धार्मिक गुरू होने का दावा करते हुए एक वाद संस्थित किया जिसमें आरोप लगाया गया कि मूर्तियों को उसे सौंप दिया गया था। अदालत के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या वादी, जो परिवार का सदस्य नहीं था या वसीयत में नामित था, वैध रूप से एक निजी धर्मदाय में एक वाद संस्थित कर सकता है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष प्रासंगिक प्रश्न यह था कि क्या वादी एक वस्तुतः सेवायत था। न्यायमूर्ति बी.के. मुखर्जी (जैसा कि वह तब थे) ने अवधारित किया:

> "न्यायिक समिति ने राम चंद्र बनाम नौरंगी लाल (4) और फिर महादेव प्रसाद सिंह बनाम करिया भारती (5) में निर्धारित किया कि मठ का वास्तविक कब्जाधारी व्यक्ति अपने स्वयं के लाभ के लिए नहीं बल्कि मठ के लाभ के लिए इससे संबंधित संपत्ति को प्राप्त करने के लिए एक वाद जारी रखने का हकदार है।... हो सकता है और वास्तव में एक मठ और एक मूर्ति के बीच अंतर है लेकिन मुझे कोई कारण नहीं दिखता कि क्यों एक परिवारिक धर्मदाय या निजी देवोत्तर के मामले में वस्तुतः सेवायत को वाद चलाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।.... हालांकि एक व्यक्ति को वस्तुतः सेवायत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह पद और देवोत्तर सम्पत्ति का वास्तविक कब्जाधारी होना चाहिए।.... मेरी राय में, वस्तुतः सेवायत वह होगा जो सेवायत के सभी कृत्यों का प्रयोग करता हो और देवोत्तर संपत्ति का कब्जाधारी हो हालांकि विधिक हक की कमी हो सकती है।"

(प्रभाव वर्धित)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

365. जहां कोई व्यक्ति विधिक हक की कमी के बावजूद सेवायत होने का दावा करता है, तो वहां न्यायालय के समक्ष सुसंगत जांच यह है कि क्या उस व्यक्ति का देवोत्तर संपत्ति पर वास्तविक कब्जा था और वह सेवायत के सभी अधिकारों का प्रयोग कर रहा था। देवोत्तर संपत्ति के संरक्षण में सर्वोपरि हित वस्तुतः सेवायत की मान्यता को रेखांकित करता है। जहाँ कोई विधितः सेवायत नही है, अदालत एक ऐसी स्थिति का अनुमोदन नहीं करेगी जहां सभी प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग करने वाले एक सद्भावी वादकारी को संपत्ति के संरक्षक के रूप में कानून में मान्यता नहीं दी जा सकती है। यह केवल संस्था के सर्वोपरि हित के लिए है कि वाद लाने का अधिकार प्रबंधकों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों को दिया जाता है, हालांकि एक प्रबंधक के विधिक हक का अभाव है।

366. इस तर्काधार को मद्रास उच्च न्यायालय ने **सुब्रमण्य गुरुक्कल बनाम अभिनव पूर्णप्रिया ए श्रीनिवास राव साहिब**[230] में रेखांकित किया था। प्रतिपाल्य न्यायालय ने इस आधार पर 'अर्चक' के एक मंदिर से संबंधित भूमि के कब्जे को खारिज कर दिया कि वह सेवाएं प्रदान करने और संपत्ति पर किए गए कुछ खर्चों के लिए खाता प्रस्तुत करने में विफल रहा है। तब जागीरदार ने संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने के लिए मंदिर के न्यासी के रूप में प्रतिपाल्य न्यायालय के तहत अपने वाद मित्र संपत्ति के प्रबन्धक द्वारा एक मुकदमा दायर किया गया। बर्खास्तगी का आदेश पिछले जागीरदार की मृत्यु के बाद पारित किया गया था। वाद को संस्थित करने के बाद और वाद में निर्णय से पहले एक अधिसूचना जारी की गयी जिसमें अधिनियम के तहत एक प्रतिपाल्य को नया जागीरदार बनाया गया। यह सवाल उठता है कि क्या

---

230 एआईआर 1940 मद्रास 617

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बर्खास्तगी का आदेश वैध रूप से पारित किया गया था। न्यायालय ने माना कि जहां जागीरदार के उत्तराधिकारी ने नियंत्रण ग्रहण करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया, प्रतिपाल्य न्यायालय ने वस्तुतः न्यासी की स्थिति की प्रकल्पना की। न्यायमूर्ति वोड्सवर्थ ने अवधारित किया:

> "न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह न्यास संपत्ति को दुर्विनियोग से और जिस उद्देश्य के लिए यह समर्पित थी, उसके परिवर्तन से संरक्षण करे। जब न्यासी की नियुक्ति के लिए मशीनरी में दोषों के कारण या विधिक न्यासी की कार्य करने की अनिच्छा के कारण न्यास संपत्ति एक विधिक संरक्षक के बिना होती है, तो यह एक सरासर अजीब बात होगी यदि किसी भी बेहतर हक के अभाव में उन कार्यों को करने के लिए जो न्यास के उद्देश्यों की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं, न्यास के हितों में सक्रिय रूप से इसके मामलों को नियंत्रित करने वाला और संस्था के प्रभारी के रूप में मान्यता प्राप्त कोई ईमानदार व्यक्ति हकदार नहीं होना चाहिए।"

367. मद्रास उच्च न्यायालय का यह अवधारण दो कारणों से सूक्ष्मतर दृष्टिपात के योग्य है: पहला, न्यायालय ने माना कि न्यासी के हित का संरक्षण करने के लिए कार्यवाही करने का अधिकार उस व्यक्ति में निहित होता है जो 'संस्था के प्रभारी के रूप में मान्यता प्राप्त है और सक्रिय रूप से इसके मामलों को नियंत्रित करता है।' प्रबंधन का एकल या इक्का दुक्का कार्य किसी व्यक्ति को एक वस्तुतः सेवायत के रूप में निर्धारित होने का हकदार नहीं बनाता है। इस अवलोकन की प्रासंगिकता पर शीघ्र ही विचार किया जाएगा। दूसरा, वस्तुतः सेवायत मे कार्यवाही करने का अधिकार केवल तभी निहित होता है जब एक बेहतर हक वाले व्यक्ति अर्थात् विधितः सेवायत की अनुपस्थिति हो। उपरोक्त शर्तों के साथ, न्यायालय ने अवधारित किया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "... इसके अलावा मैं इन वैधानिक प्रावधान से अलग सोचने के लिए प्रवृत्त हूँ, कि एक हिंदू मंदिर का एक वस्तुतः न्यासी जो उस मन्दिर के वास्तविक प्रबन्धन में हो और संस्था के हितों के लिए सद्भावनापूर्वक कार्य कर रहा हो, वह एक मंदिर सेवक को या अधिकारी को बर्खास्त करने का आदेश वैध रूप से पारित कर सकता है, बशर्ते कि बर्खास्तगी का उचित आधार हो और यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है.. इसके अलावा मंदिर की भूमि को प्राप्त करने हेतू एक वाद लाने के लिए एक मंदिर के प्रबन्धन और कब्जे में एक वस्तुतः न्यासी की क्षमता में कोई संदेह नहीं है।"

इस दृष्टिकोंण में, संस्था के हितों के लिए सद्भावनापूर्वक कार्य करने वाला और वास्तविक प्रबन्धन वाला व्यक्ति एक वस्तुतः सेवायत के रूप में मंदिर की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए दावा कर सकता है।

368. **शंकरनारायण अय्यर बनाम श्री पूवानानाथस्वामी मंदिर**[231] में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले पर कुछ विस्तार से ध्यान देना यहाँ प्रासंगिक है। इस मामले में, विधितः न्यासी ने एक मंदिर की संपत्तियों को हस्तांतरित कर दिया और उसके बारे में पता नहीं चला। अदालत द्वारा पारित एक समझौता डिक्री के तहत नियुक्त उत्तरवर्ती न्यासी ने मंदिर की संपत्ति के रूप में विवादग्रस्त संपत्ति के कब्जे को प्राप्त करने के लिए एक वाद संस्थित किया। यह तर्क दिया गया था कि समझौता डिक्री से स्वतंत्र, वस्तुतः सेवायत के रूप में देवोत्तर संपत्ति के संरक्षण के लिए एक वाद संस्थित करने का अधिकार उसमें निहित था। मुख्य न्यायाधीश पी वी राजामन्नार ने अवधारित किया:

> "इन धर्मदायों के मामले में तथाकथित न्यासी तकनीकी अर्थ में वास्तव में न्यासी नहीं है, जिसमें संपत्ति निहित है। वह वास्तव में एक प्रबंधक है (यहां तक कि उन मामलों में भी जहां उसका भोगाधिकार में लाभकारी

---

231 एआईआर 1949 मद्रास 721

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हित है) और हक हमेशा मूर्ति या संस्था में निहित होता है। किसी भी मामले में, सादृश्यता एक व्यक्ति से की गयी है जिनके पास अपने मामलों और संपत्तियों के प्रशासन को चलाने के लिए एक प्रबंधक है। इस प्रकाश में देखा गया कि स्थिति खुद को इस तक कम कर देती है। कुछ मामलों में प्रबंधक के पास प्रबंधक के पद के लिए एक वैध दावा है, अन्य मामलों में उसका एकमात्र दावा यह है कि वह कार्यालय का वास्तविक कब्जाधारी है। *"**डी जूरे**"* (विधितः) अर्थात् **"स्वत्वाधिकार द्वारा"** इसके विपरीत *"**डी फैक्टो**"* (वस्तुतः) का अर्थ है, **"कब्जे के हक द्वारा"**। जब तक कि कार्यवाही वास्तविक मालिक अर्थात् मूर्ति या मठ के लाभ के लिए होती है और **कार्यवाही करने वाला व्यक्ति केवल वह व्यक्ति होता है जो तत्समय मठ या मूर्ति के मामलों का प्रबंधन करता है,** इसका कोई कारण नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को मठ या मूर्ति की ओर से कार्यवाही को बनाए रखने की अनुमति क्यों नहीं दी जानी चाहिए।"

(प्रभाव वर्धित)

उपरोक्त अवलोकन स्पष्ट करते हैं कि वस्तुतः सेवायत होने का दावा करने वाले व्यक्ति को देवोत्तर संपत्ति के अनन्य कब्जे में होना चाहिए और उसे संपत्ति के प्रबंधन में एकमात्र व्यक्ति होना चाहिए।

369. न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने अपनी पृथक राय में एक वस्तुतः सेवायत द्वारा प्रबंधन की शक्ति का प्रयोग करने के लिए चुनौती के आधारों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया:

"... यदि वस्तुतः न्यासी न्यास के किसी उल्लंघन का दोषी है, तो उसे विधितः न्यासी की तरह से हटाया जा सकता है। कानून उसे न्यास के उचित प्रशासन के लिए जिम्मेदारी देता है और उसे न्यास के हितों में और उसकी ओर से कार्य करने की शक्ति भी देता है, जब तक कि एक वैध न्यासी उभरकर नहीं आता है... एक व्यक्ति जो धार्मिक धर्मदाय की संपत्ति के लिए अपने स्वयं के हक का दावा करता है, जो धर्मदाय के न्यासी या प्रबंधक के रूप में मुकदमा नहीं करता है और जो न्यास के लिए नहीं बल्कि अपने लिए संपत्ति को प्राप्त करने का दावा करता है,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> उसे कभी भी वस्तुतः न्यासी के रूप में मुकदमा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। जहाँ तक न्यास का संबंध है वह पूरी तरह से एक अतिचारी की स्थिति में है और उसने न्यासी के कर्तव्यों और दायित्वों को अपने ऊपर लिया है ऐसा नहीं माना जा सकता।"[232]

एक धर्मदाय की संपत्तियों के संबंध में एक सेवायत के अधिकारों पर विधिशास्त्र के अनुरूप, एक वस्तुतः सेवायत को मूर्ति और उसकी संपत्तियों के संबंध में देवोत्तर के उद्देश्य को पूरा करने की शक्ति और कर्तव्य सौंपा गया है। हालांकि सेवायत का देवोत्तर संपत्ति के भोगाधिकार में हित हो सकता है, देवोत्तर संपत्ति पर स्वतंत्र स्वत्वाधिकार वस्तुतः सेवायत में निहित नहीं है। इस प्रकार जहां एक वस्तुतः सेवायत मूर्ति की देवोत्तर संपत्ति के लिए एक स्वतंत्र दावा करता है, यह एक अतिचारी की स्थिति को प्रकल्पित करता है और उसकी ओर से कोई कार्यवाही पोषणीय नही है। मूर्ति के प्रतिकूल एक सेवायत द्वारा किया गया दावा उस उद्देश्य को पराजित करता है जिसके लिए मूर्ति और उसकी संपत्ति के प्रबंधन का अधिकार सेवायतों में निहित होता है।

370. कब एक व्यक्ति को वस्तुतः सेवायत माना जा सकता है इसके संबंध में विद्वान न्यायाधीशों द्वारा अपने पृथक राय में निर्धारित मानक पर विचार करना निर्णायक महत्व का है। न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने अवधारित किया:

> "**एक धार्मिक धर्मदाय की संपत्ति के संबंध में एक व्यक्ति का क्षणिक या कभी–कभार का कार्य उसे *वस्तुतः* न्यासी नहीं बनायेगा। एक फूल के खिलने से बहार नहीं आती। एक सतत कार्य व्यवहार होना चाहिए, इसकी अवधि वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है।** पद या संस्था का कब्जा जो न्यास की वस्तु है और पद से संबंधित अधिकारों का प्रयोग *वस्तुतः* न्यासिता का महत्वपूर्ण लक्षण होगा।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

---

232 सपना कोटेश्वर गोदत गोवा इन्डॉउमेन्ट (ट्रस्ट) बनाम रामचन्द्र वासुदेव कित्तर
एआईआर 1956 बॉम्बे 615 में अनुसरित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसी प्रकार, न्यायमूर्ति राघव राव ने अवधारित किया:

> "हालांकि मुझे स्वीकार करना चाहिए, कि मुझे विवादित बिंदु के निर्धारण में अधिक कठिनाई महसूस होनी चाहिए थी... वस्तुतः प्रबन्धक का वाद लाने का अधिकार कहाँ से आता है? वहाँ फिर से, कि हमें कहाँ और कैसे किसी विशेष अवसर पर कभी कभार कार्य करने वाले एक वस्तुतः प्रबंधक और तदर्थ प्रबन्ध के बीच अन्तर करना है। मैं अपने विद्वान भाई न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री के मनोहारी अवलोकन से सम्मानपूर्वक सहमत है कि एक फूल के खिलने से बहार नहीं आती ; लेकिन व्यावहारिक प्रश्न अभी भी बना हुआ है तो कितने से होता हैं?.... यह कैसे सुनिश्चित किया जाए कि संस्था की ओर से वादकारी व्यक्ति डिक्री–पूर्व या डिक्री–पश्चात कोई अनुचित समझौता या सुलह न करे। या संस्था की ओर से प्राप्त एक विशेष डिक्री के फलस्वरूप प्राप्त धन को लेकर न भाग जाए? यदि यह संभव न हो, तो यह कैसी सांत्वना है कि विधितः प्रबन्धक के हाथों से भी संस्था को कभी कभार समान हानि हो सकती है?

371. उपरोक्त सभी अवलोकन निर्णायक महत्व के हैं। **शंकरनारायण अय्यर** में और उसके बाद हमारी अदालतों के लगातार न्यायशास्त्र में [233] यह अवधारित किया गया है कि प्रबन्धन का इक्का दुक्का कार्य या अनियमित कार्य किसी व्यक्ति में वस्तुतः सेवायत के अधिकारों को निहित नहीं करता है। समर्पण विलेख की अनुपस्थिति में, निर्मोही अखाड़ा द्वारा दिया गया तर्क कि वे विवादित संपत्ति के प्रभार और प्रबंधन में रहे हैं, विधि में यह वस्तुतः सेवायत के रूप में प्रबंधन के अधिकारों के लिए दावा है। **शंकरनारायण अय्यर** में दोनों न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री और राघव राव ने स्पष्ट रूप से कहा कि कभी–कभार के कृत्य एक व्यक्ति में वस्तुतः सेवायत के अधिकारों

---

233 **पलानीअप्पा गौंडन बनाम नल्लप्पा गौंडन** एआईआर 1951 मद्रास 817; **मोहिदीन खान बनाम गणखान एआईआर** 1956 आन्ध्र प्रदेश 19, **वंकामामिदि बालकृष्णमूर्ति बनाम गोगिनेनी सम्बेय्या** एआईआर 1959 आन्ध्र प्रदेश 186, **हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त, मद्रास बनाम वी.आर. जगनाथ राव** (1974) 87 एलडब्ल्यू 675; **डी गणेशमूर्ति बनाम श्री सप्पनिकरुप्पुस्वामी की मूर्ति** एआईआर 1975 मद्रास 23, **लालजी धर्मसे बनाम भगवानदास रणछोड़दास** 1981 एमएएच एलजे 573; **श्री पार्शवनाथ जैन मंदिर बनाम प्रेम दास के विधिक प्रतिनिधि** (2009) 1 आरएलडब्ल्यू (रेव) 523

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को निहित नहीं करते हैं। प्रश्नगत आचरण यह दिखाने के लिए एक निरंतर प्रकृति की होना चाहिए कि व्यक्ति ने लंबे समय तक लगातार एक सेवायत के सभी अधिकारों का प्रयोग किया है। समय की अवधि जो इस अपेक्षा को पूरा करेगी, वह आवश्यकतावश प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होगी। न्यायमूर्ति राघव राव ने न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री के दृष्टिकोण का समर्थन किया किंतु एक ऐसा मानक निर्धारित करने में व्यावहारिक कठिनाइयों की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए एक कदम और आगे बढ़े, जिसके सापेक्ष वस्तुतः सेवायत होने का दावा करने वाले व्यक्ति के कार्यों का परीक्षण किया जाना चाहिए। एक ऐसे व्यक्ति को जिसके पास केवल देवोत्तर संपत्ति का कब्जा है और अनियमित प्रबंधकीय अधिकारों का उपयोग करता है, वस्तुतः न्यासी की स्थिति प्रदान करने के लिए एक निम्नतर कानूनी सीमा अपनाने के विरूद्ध सावधानी सुस्थापित है।

372. देवोत्तर संपत्ति का प्रबन्ध करने का अधिकार और मूर्ति की ओर से कार्यवाही करने का अधिकार एक वस्तुतः सेवायत में निहित है। मूर्ति के लाभ के लिए एक सद्भावी कार्यवाही इसे और इसकी संपत्तियों को बाध्य करती है। विधितः सेवायत जिसके अधिकारों को समर्पण विलेख से कानूनी रूप से पता लगाया जा सकता है उसकी तुलना में एक वस्तुतः सेवायत में केवल कब्जे द्वारा और प्रबन्धकीय अधिकारों के प्रयोग द्वारा अधिकार निहित है। अधिकारों के इस असाधारण रूप से प्रदान करने के केंद्र में संपत्ति का संरक्षण है। यदि अदालतों को एक मानक अपनाना था जो आसानी से संतुष्ट करने वाला है, तो देवोत्तर संपत्ति के बड़े क्षेत्र को ऐसी संपत्तियों के कब्जे और प्रबंधन में होने का दावा करने वाले व्यक्तियों की दया पर छोड़ दिया जा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकता है। प्रत्येक मामले में अदालत का यह कर्तव्य है कि वह यह आकलन करे कि क्या न केवल अनन्य कब्जा रहा है, बल्कि सभी प्रबंधन अधिकारों का एक निरंतर और निर्बाध प्रयोग है, जो किसी व्यक्ति को अधिकार देने से पहले न्यास संपत्ति के हिताधिकारियों द्वारा मान्यता प्राप्त है, जिसके लिए उनके पास कोई विधिक हक नहीं है।

373. कर्तव्य जो एक विधितः सेवायत की शक्तियों के प्रयोग को आबद्ध करता है एक वस्तुतः सेवायत पर समान रूप से लागू होता है। इस प्रकार वस्तुतः सेवायत द्वारा कोई ऐसी कार्यवाही नहीं की जा सकती जो मूर्ति या उसकी संपत्ति के लाभकारी हित में नहीं है। हालाँकि एक वस्तुतः सेवायत और एक विधितः सेवायत सभी मामलों में समान नहीं है। **शंकरनारायण अय्यर** में, न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने अवधारित किया:

> "यह देखा जाना चाहिए कि एक वस्तुतः न्यासी के अधिकार सभी मामलों में एक विधितः न्यासी के समान नहीं हैं। सार्वजनिक धार्मिक धर्मदाय के विधितः न्यासी को केवल कदाचार के लिए हटाया जा सकता है और वह भी केवल मद्रास अधिनियम II 1927 की धारा 73 या दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 73 द्वारा निर्धारित मंजूरी से संस्थित एक वाद में ही। हालांकि जहाँ केवल एक वस्तुतः सेवायत है जो इस तरह से कार्य कर रहा है, यह न्यास में हितबद्ध व्यक्तियों के लिए है, कि वे उपरोक्त प्रावधानों के तहत एक वाद लाये जिसमें यह अभिकथित हो कि पद पर एक रिक्ति है और यह अपेक्षित करते हुए हो कि इसे अदालत द्वारा एक न्यासी की नियुक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए। यह वस्तुतः न्यासी को उसकी ओर से बिना किसी कदाचार के हटा देगी... वस्तुतः न्यासी जब तक वह इस तरह से कार्य कर रहा है, उसे आवश्यक परिस्थितियों में न्यास के प्रतिकूल दावा करने वाले अतिचारियों को बाहर निकालने के लिए न्यास की ओर से और उसके हित में वाद लाने का अधिकार है। इस संबंध में और इस उद्देश्य के लिए उसके अधिकार और शक्तियां एक विधितः न्यासी की तरह समान हैं..."

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक विधितः सेवायत को केवल कुप्रबंधन के आधार पर या मूर्ति के प्रतिकूल हित का दावा करने के आधार पर पद से हटाया जा सकता है। हालांकि, एक विधितः सेवायत को हटाने के लिए किसी ऐसे प्रकथन की आवश्यकता नहीं है। जब तक कि एक वस्तुतः सेवायत का अधिकार प्रतिकूल कब्जे द्वारा परिष्कृत न किया गया हो, एक विधितः सेवायत, वस्तुतः सेवायत को पद से विस्थापित कर सकता है और किसी भी समय मूर्ति के प्रबंधन को ग्रहण कर सकता है। इसके अलावा जहां एक वस्तुतः सेवायत है, दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत एक वाद संस्थित किया जा सकता है, जिसमें अदालत से एक योजना तय करके रिक्ति को भरने की अपेक्षा की जाती है। यह मूर्ति के संरक्षण के लिए एक कार्यवाही लाने के सीमित उद्देश्य के लिए है कि वस्तुतः सेवायत के अधिकार और शक्तियाँ उसी समान हैं जैसी कि विधितः सेवायत की है।

374. विधिक स्थिति कि देवोत्तर संपत्ति का निरन्तर और अनन्य कब्जा रखने वाला व्यक्ति जो मूर्ति के हितों में प्रबन्धन अधिकारों का प्रयोग करता है, वह इसकी ओर से वाद ला सकता है, इसे **विक्रम दास महन्त बनाम दौलत राम अस्थाना**[234] में इस न्यायालय द्वारा मान्यता दी गई है। प्रिवी कौंसिल के एक निर्णय द्वारा (इस आधार पर कि पिछले महन्त ने उसे संपत्ति अन्तरित कर दी थी) अपीलकर्ता को एक प्रबंधक के रूप में पुष्टि की गई थी। प्रिवी काउंसिल के निर्णय की तिथी से पहले, तत्कालीन महंत द्वारा कुछ व्यक्तियों के साथ एक और समझौता डिक्री की गई, जिन्होंने उसे हटाने के लिए कार्यवाही संस्थित की। जबकि कुछ व्यक्ति जिन्होंने कार्यवाही की, समझौते की शर्तों के तहत न्यासी के रूप में पद पर काबिज हो गए, उनमें से

---

234 एआईआर 1956 एससी 382

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक ने महंत के रूप में पदभार संभाला और संपत्ति पर कब्जा कर लिया। तीन न्यासियों और पिछले मंहत के उत्तराधिकारी ने अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा दायर किया। दोनों निचली अदालतों ने अपीलकर्ता के विरूद्ध अवधारित किया। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि भले ही समझौता डिक्री अपास्त हो जाए, वादीगण वस्तुतः न्यासी होने के आधार पर मुकदमा बनाए रखने के हकदार हैं जिनका कब्जा स्पष्ट और निर्विवाद है। दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने दर्ज किया कि समझौता डिक्री के अनुसार वादीगण और नियुक्त महंत कब्जे में आ गए और संपत्तियों को महंत के नाम पर नामांतरित कर दिया गया और तब से कब्जे में थे। न्यायमूर्ति बी जगन्नाथदास ने इस न्यायालय की संविधान पीठ के लिए बोलते हुए अवधारित किया:

> "33... हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या कोई व्यक्ति जिसके पास 1934 से 1941 तक (और उसके बाद अब तक) अस्थान और इसकी संपत्ति का प्रबन्धन और वस्तुतः कब्जा रहा हो, जो किसी न्यायालय की वैध या अवैध डिक्री के अधीन इसका न्यासी होने का दावा करता हो, क्या उसका अस्थान के हितों के विरूद्ध प्रतिवादी के कार्यों से उत्पन्न संशय को दूर करने की कार्यवाहियों को जारी रखने में पर्याप्त हित नहीं है..."
>
> "34.. जहां तक लोक न्यासों का संबंध है, न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे देखें कि उनके हित और हिताधिकारियों के हित सुरक्षित हैं... हम विचार करते हैं कि महंत के रूप में राम सरूप दास के दीर्घ अवधि प्रबन्धन तथा कब्जे के मद्देनजर और इस तथ्य के मद्देनजर कि वह इसके हित के लिए और इसकी ओर से कार्य करने का दावा कर रहे है, यह उचित है कि उसे न्यास की ओर से कार्य जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक कि उचित कार्यवाही में उसके हक की परीक्षा नहीं की जाती और यह कि न्यायालय को न्यास के लाभ के लिए इन कार्यवाहियों में उसके पक्ष में एक डिक्री प्रदान करना चाहिए।"

न्यायालय ने पुष्टि की कि यह केवल संस्था के सर्वोपरि हित के लिए है कि वाद का अधिकार प्रबंधकों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों को दिया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जाता है, यद्यपि प्रबंधक के कानूनी हक में कमी हो। मामले में दावेदार के कब्जे और लम्बे समय तक प्रबन्धन ने देवता की ओर से इसके हितों के संरक्षण के लिए कार्य करने का अधिकार उसमें निहित किया।

375. **श्री श्री कालिमाता ठकुरानी कालीघाट बनाम जिबंधन मुखर्जी**[235] में, श्री काली माता ठकुरानी और उनके संबंधित देवी–देवताओं की सेवा–पूजा के उचित प्रबंधन के लिए और निहित संपत्तियों के उचित प्रबंधन के लिए एक योजना तैयार करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत एक वाद संस्थित किया गया था। एक योजना तैयार की गई थी और बाद में इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि योजना में प्रबंधन समिति में वस्तुतः सेवायत को शामिल करना अनुज्ञेय नहीं था। न्यायमूर्ति जे आर मुधोल्कर ने इस न्यायालय की संविधान पीठ के लिए बोलते हुए इस तर्क को खारिज कर दिया और अवधारित किया:

> "जो भी हो, हम इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकते कि वर्तमान पूर्वाधिकारीगण बहुत लंबे समय से सेवायत के रूप में कार्य कर रहे हैं और इस संबंध में उनके अधिकारों को पहले कभी भी प्रश्नगत नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में हम विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि उन्हें मंदिर के प्रबंधन से पूरी तरह से बाहर रखा जाना चाहिए।"

अनुतोष देने में, न्यायालय सेवायत के रूप में अधिकारों का लम्बे समय तक प्रयोग करने वाले के प्रति सचेत था। उच्च न्यायालय द्वारा बनाई गई प्रारंभिक योजना में प्रबंधकीय बोर्ड में अठारह सदस्य शामिल थे जिनमें से बारह सेवायत थे। न्यायालय ने इसे ग्यारह सदस्यों के बोर्ड में संशोधित किया, जिसमें पांच सेवायत और अधिकांश हिंदू थे जो सेवायत नहीं थे।

---

235 एआईआर 1962 एससी 1329

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

376. न्यास संपत्ति का संरक्षण सर्वोपरि महत्व का है। यह इस कारण से है कि कार्यवाही संस्थित करने का अधिकार प्रबंधकों के रूप में कार्य करने वाले व्यक्तियों को दिया जाता है, हालांकि एक प्रबंधक के कानूनी हक का अभाव है। वस्तुतः सेवायत होने का दावा करने वाला व्यक्ति मूर्ति के प्रतिकूल दावा और देवोत्तर संपत्ति में मालिकाना हक का दावा नहीं कर सकता है। जहां एक व्यक्ति वस्तुतः सेवायत होने का दावा करता है, तो यह अधिकार एक बेहतर हक के किसी व्यक्ति अर्थात् विधितः प्रबन्धक की अनुपस्थिति पर आधारित है। यह दिखाया जाना चाहिए कि न्यास की संपत्ति पर वस्तुतः प्रबन्धक का अनन्य कब्जा है और किसी भी तरफ से बिना किसी बाधा के संपत्तियों के प्रबंधन के अधिकार पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वह व्यक्ति न्यास संपत्ति के प्रभारी व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है। सार्वजनिक अभिलेखों में प्रबन्धक के रूप में मान्यता , प्रबंधक के रूप में मान्यता प्राप्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करेगा।

377. गौरतलब है कि प्रबंधन का एकल या इकलौता कार्य एक व्यक्ति में वस्तुतः सेवायत के अधिकारों को निहित नहीं करता है। व्यक्ति को संपत्ति का दीर्घ, निर्बाध और अनन्य कब्जा और प्रबंधन को प्रदर्शित करना चाहिए। कितनी अवधि पर्याप्त अवधि का गठन करती है यह मामले –दर–मामले के आधार पर निर्धारित किया जाता है। पुजारी के रूप में धार्मिक पूजा करना, प्रबंधन के अधिकारों के अभ्यास के समान नहीं है। आवश्यक अनुष्ठानों का संचालन करने के लिए एक प्रबंधक एक या कई पुजारियों को नियुक्त कर सकता है। अंतिम विश्लेषण में, न्यास की संपत्तियों के कब्जे के लिए एक विधितः न्यासी के अलावा अन्य व्यक्ति का वाद करने का अधिकार अमूर्त में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तय नहीं किया जा सकता है और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। कृत्य जो एक सेवायत के रूप में दावा किए गए अधिकारों का आधार बनते हैं, उन्हें उसी रूप में होना चाहिए जैसा कि एक विधितः सेवायत द्वारा प्रयोग किया जाता है। एक वस्तुतः सेवायत में देवता की ओर से वाद संस्थित करने का अधिकार निहित है और इसकी संपत्ति पर लागू होता है बशर्ते कि यह अधिकार सद्भावनापूर्वक तरीके से प्रयोग किया जाता है। इस कारण से अदालत को सावधानीपूर्वक यह आकलन करना चाहिए कि क्या प्रबंधन के कार्य पर्याप्त अवधि तक अनन्य, निर्बाध और निरंतर हैं।

समय अवधि

378. एक अंतिम प्रश्न जो हमारी वर्तमान जांच के लिए प्रासंगिक है यह है कि क्या एक वस्तुतः सेवायत अनिश्चित काल तक पद पर रहने के अधिकार का दावा कर सकता है। जैसा कि पहले देखा गया है, एक विधितः सेवायत और एक वस्तुतः सेवायत मूर्ति के लाभ के लिए सीमित अर्थ में कार्य करने के समान अधिकारों का प्रयोग करते हैं। यहां तक कि सेवायत द्वारा कुप्रबंधन का कोई प्रकथन न होने पर भी, कोई व्यक्ति किसी योजना को तय करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत कार्यवाही संस्थित कर सकता है। इस दृष्टिकोंण से, कानूनी निश्चितता और देवता के निरंतर हित को एक वस्तुतः सेवायत के रूप में अधिकारस्वरूप जारी रखने के दावे को सीमित करके पूरा किया जाएगा।

379. गोपाल कृष्णजी केतकर बनाम महोमेद जाफर मोहम्मद हुसैन[236] में वादी ने इस उद्घोषणा के लिए प्रार्थना करते हुए एक वाद संस्थित किया कि

---

236 एआईआर 1954 एससी 5

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दूसरा वादी दरगाह का संरक्षक और 'वहिवाटदार' है। प्रतिवाद ने इसका वैध प्रबन्धक तथा मुतवल्ली होने का दावा किया। वादीगण के परिवार 1817 से प्रबंधक थे। 1902–03 से, प्रतिवादी को मंदिर में हर साल एक निश्चित अवधि के दौरान उपासना का प्रबंधन करने और उसके रखरखाव के लिए चढ़ावे को एकत्र करने का अधिकार दिया गया था। वादियों के प्रबंधन और चढ़ावा संग्रहित करने के अधिकार पर कथित हस्तक्षेप पर वाद संस्थित किया गया था। न्यायालय ने पाया कि वादीगण और उनके परिवार कम से कम वर्ष 1886 से प्रबंधन कर रहे थे। न्यायालय ने माना कि जैसा कि प्रतिवादी द्वारा दावा किया गया अधिकार वंशानुगत न्यासी का नहीं था, अधिकार उसके साथ ही खत्म हो जाता है और एकमात्र प्रश्न यह था कि वादी प्रबंधन और चढ़ावे के हकदार थे या नहीं। न्यायमूर्ति विवान बोस ने इस न्यायालय की तीन–न्यायाधीश पीठ के लिए बोलते हुए अवधारित किया:

> "30. अब एक वस्तुतः प्रबन्धक या एक स्वयं के अपकृत्य से बने न्यासी के कुछ अधिकार हैं। वह न्यास की ओर से और इसके लाभ के लिए प्रबंधन के सामान्य अनुक्रम में संपत्तियों और धन की वसूली के लिए मुकदमा कर सकता है। हालांकि यह कहना एक बात है कि क्योंकि एक व्यक्ति एक 'वस्तुतः' प्रबन्धक है, इसलिए वह प्रबन्धन के सामान्य अनुक्रम में इसके लाभ के लिए व इसकी ओर से किसी विशेष संपत्ति या किसी विशेष राशि की वसूली करने का हकदार है, जो अन्यथा न्यास को हानि कारित करेगा, लेकिन यह कहना बिल्कुल अलग है कि उसे बिना किसी स्वत्व के अनिश्चित काल तक 'वस्तुतः' प्रबंधन को जारी रखने का अधिकार है, जो इस तरह की घोषणा को आशयित करेगा। हम ऐसी कोई व्यापक उद्घोषणा करने में संकोच महसूस करते हैं... ऐसा होने के कारण, हमें लगता है कि यह अवांछनीय है कि चीजों को इस अनिश्चित तरीके से जाने दिया जाय, कोई भी यह नहीं जानता कि प्रबंधन के कानूनी अधिकार कहाँ हैं या उनमें से क्या शामिल हैं; कोई भी यह नहीं जानता कि अधिकार कैसे विकसित होते हैं या बड़े धर्मार्थ चढ़ावे जो एकत्र किए जाते हैं, उन्हें कैसे वितरित और उपयोग किया जाना है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(प्रभाव वर्धित)

380. न्यायालय ने कानून में देवताओं की ओर से कार्यवाही करने के निहित अधिकार और एक वस्तुतः सेवायत के रूप में अनिश्चित काल तक जारी रहने के दावे के मध्य अंतर किया, जो सभी उद्देश्यों के लिए, विधितः सेवायत के साथ वस्तुतः सेवायत की बराबरी करेगा और पूर्ववर्ती को एक विधिक इकाई प्रदान करेगा जहां यह हमेशा अनुपस्थित रहा है। विधिक निश्चितता और न्यास संपत्तियों का अंतिम संरक्षण, सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 92 के तहत निहित है। इस प्रावधान के तहत, महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले और न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त करने वाले, ऐसे दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आवेदन पर न्यासियों को बदलने और न्यास संपत्तियों के संबंध में एक योजना तय करने की व्यापक शक्तियाँ न्यायालय में निहित है। इसे ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने उपरोक्त टिप्पणियों के अनुसार निर्देश तैयार किए:

> "32. हमें विद्वान सॉलिसिटर जनरल द्वारा बताया गया है कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत एक मुकदमा विचाराधीन है। मामले पर किसी भी तरह प्रभाव डाले बिना जो वहां उत्पन्न होंगे, हम निम्नलिखित आदेश देते हैं। हम निदेश देते हैं–
>
> 1. यह कि चढ़ावे के संग्रह और निस्तारण से संबंधित वर्तमान व्यवस्था इस निर्णय की तिथि से छः माह की अवधि के लिए जारी रहे।
>
> 2. यह कि अन्तरावधि में एकत्र किए गए चढ़ावे, साथ ही पहले से जमा चढ़ावे, सिर्फ आवश्यक खर्चों को पूरा करने के लिए आवश्यक राशि को छोड़कर द्वितीय वादी को न सौंपा जाए। उन चढ़ावे पर प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों का कोई अधिकार नहीं है।
>
> 3. यदि ऐसा वाद उक्त अवधि के भीतर संस्थित किया जाता है, तो उक्त चढ़ावा और संग्रह को ऐसी योजना के अनुसार निस्तारित किया जाएं,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जैसा तब बनाया जाए, और ऐसे निर्देशों के अनुसार जैसा कि उस वाद में दिए जाएं।

4. यदि उक्त छः माह के अन्दर ऐसा कोई वाद संस्थित नहीं किया जाता है तो द्वितीय वादी दरगाह के वस्तुतः प्रबन्धक व्यक्ति के रूप में अभिग्रहण की तिथी 13–11–1938 से वाद करने की तिथि 7–10–1946 तक दरगाह की ओर से तथा इसके लाभ के लिए कोष में जमा चढ़ावे को प्राप्त करने का हकदार होगा और दरगाह की ओर से और इसके लाभ के लिए भविष्य में वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण चढ़ावे को प्राप्त करने का हकदार होगा जब तक कि उसे एक बेहतर हक के व्यक्ति या न्यायालय से व्युत्पन्न प्राधिकारी द्वारा विस्थापित किया जाता है।

381. **विक्रम दास महंत बनाम दौलत राम अस्थाना**[237] में समझौता डिक्री जिसके आधार पर महंत ने अधिकार का दावा किया और कब्जा लिया, उसे प्रभावशील नहीं किया गया। समझौता डिक्री को प्रभावी बनाने वाले विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया गया। हालांकि अदालत ने महंत के अधिकारों को एक वस्तुतः प्रबन्धक के रूप में जारी रखा, न्यायालय ने अवधारित किया:

"19. लेकिन यह केवल एक अन्तःकालीन उपाय है। हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते कि हमारे सामने एक लोक न्यास है, अब हमारे सामने तथ्यों के आधार पर, जिस पर एक डिक्री के तहत जिसका शून्य होना कहा गया है, दावा करने वाला कथित इंटरमेडलर का कब्जा और प्रबंधन है। यह हो सकता है, जब मामले को निर्धारित करने के लिए उचित कार्यवाही शुरू की जाती है, तो यह पाया जाएगा कि वह कानूनी अधिकार के बिना नहीं है या उसे वह प्राधिकार देना उचित हो सकता है यदि वह पहले से ही इसे प्राप्त नहीं है, या फिर यह बेहतर हो सकता है कि कोई अन्य व्यक्ति या निकाय हो।

लेकिन वे मामले नहीं हैं जिन्हें हमें इन कार्यवाही में तय करने की आवश्यकता है। हमे तथ्यों की वर्तमान स्थिति को उत्तर प्रदेश के महाधिवक्ता के संज्ञान में लाना है और इस पर विचार करने के लिए

237 एआईआर 1956 एससी 382

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

छोड़ना है कि क्या उसे अपने स्वयं के प्रस्ताव पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत कार्यवाही संस्थित करनी चाहिए या अन्य कोई उचित कदम उठाना चाहिए। इस निर्णय की एक प्रति उसे भेजी जाए।"

382. **गोपाल कृष्णजी केतकर** और **विक्रम दास** में इस न्यायालय के निर्णय ने पुष्टि की कि मूर्ति की ओर से सद्भावी वादों को संस्थित करने के सीमित अधिकार को वस्तुतः सेवायत को प्रदान करने का आधार न्यास की संपत्तियों को संरक्षित करने का हित था। जहाँ कोई विधितः सेवायत नहीं था वहाँ कानून ने मूर्ति और उसकी संपत्तियों के संरक्षण करने की सीमा तक संपत्ति का प्रबंधन करने वाले व्यक्ति को मान्यता दी। हालाँकि, इस सीमित मान्यता ने वस्तुतः सेवायतों को अनन्त काल तक बने रहने का अधिकार नहीं दिया।

निर्मोही का दावा

383. ऐसे विधिक मानक को संदर्भित करने के बाद जिसे न्यायालय को एक विधिक सेवायत को मान्यता देने के लिए संतुष्ट करना चाहिए, निर्मोही अखाड़ा द्वारा दिए गए इस तर्क को अधिनिर्णीत करने की स्थिति आ गयी है कि यह विवादित स्थल पर मूर्तियों का सेवायत है। निर्मोही अखाड़ा बैरागियों की रामानंद संप्रदाय की एक पंचायती मठ है जो एक धार्मिक संप्रदाय है। 19 मार्च 1949 को एक पंजीकृत विलेख द्वारा निर्मोही अखाड़ा के रीति–रिवाजों को लिखने का दावा किया गया है। यह तर्क दिया गया था कि विवादित ढाँचा एक मंदिर भवन है जो निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रही है और केवल हिंदुओं

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को मंदिर में प्रवेश करने और चढ़ावा चढ़ाने की अनुमति दी गई है। निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि यह अपने पुजारियों के माध्यम से चढ़ावा प्राप्त कर रहा है। वाद पत्र में निहित प्रकथनों से साथ ही निर्मोही अखाड़ा द्वारा दावा किए गए अनुतोषों से संकेत मिलता है कि दावा मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के अधिकार के लिए है। निर्मल अखाड़ा ने तर्क दिया कि यह संपत्ति के कब्जे में रहे हैं और प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग किया है जो कि उनको एक वस्तुतः सेवायत की प्रास्थिति देने के बराबर है।

384. शुरुआत में निर्मोही अखाड़ा द्वारा यह प्रतिवाद किया गया था कि भगवान राम की मूर्ति के सेवायत के रूप में इसकी प्रास्थिति को विवादित करते हुए वाद 5 में वाद पत्र में एक प्रकथन की अनुपस्थिति से सेवायत के रूप में उनकी प्रास्थिति को विवादित नहीं किया जा सकता है। यह आगे कहा गया कि किसी भी मुकदमे में सेवायत के अधिकारों का कोई विरोधी दावा नहीं किया गया है। नतीजतन, यह आग्रह किया गया था कि यह धारित किया जाना चाहिए कि निर्मोही भगवान राम की मूर्तियों के सेवायत हैं। इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि निर्मोही अखाड़ा को एक वस्तुतः सेवायत के रूप में मान्यता दी जाये तो यह विधितः अन्य सभी व्यक्तियों के अधिकारों का अपवर्जन करते हुए मूर्ति की ओर से कार्यवाही करने के लिए इसे एक सारवान अधिकार प्रदान करेगा। सेवायत के कार्य से मूर्ति और उसकी संपत्ति बाध्य है। निर्मोही अखाड़ा को सेवायत अधिकार प्रदान करने के अभिव्यक्त समर्पण विलेख के अभाव में, यह प्रदर्शित करने के लिए इस पर एक सकारात्मक भार है कि यह वास्तव में मूर्तियों का एक सेवायत था। इस कारण से, निर्मोही अखाड़ा को मौखिक और दस्तावेजी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्ष्य के आधार पर यह स्थापित करना चाहिए कि उन्होंने एक वस्तुतः सेवायत के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए आवश्यक सभी अधिकारों का प्रयोग किया है।

385. निर्मोही अखाड़ा 22/23 दिसंबर 1949 की घटना से इनकार करता है, जिसके दौरान मूर्तियों को विवादित ढ़ाँचे के आंतरिक पवित्र स्थान में गुप्त तरीके से रखा गया था। यह दावा कि निर्मोही अखाड़ा का अभिलेख के साक्ष्य के आधार पर आंतरिक अहाता पर कब्जा था, इसे पहले ही खारिज कर दिया गया है। निर्मोही अखाड़ा यह साबित करने में नाकाम रहा है कि उस समय विवादित ढ़ाचा एक मंदिर था, जो इसके कब्जे में था और यह कि 22/23 दिसंबर 1949 को कोई घटना नहीं हुई थी। यह दावा कि निर्मोही अखाड़ा सेवायत के रूप में आंतरिक अहाते का प्रबंधन कर रहा था, आंतरिक अहाते के अनन्य कब्जे के अभाव में यह द्वावा उत्पन्न नहीं होता है। यह इस संदर्भ में था कि न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया:

> "2994. अब विवाद्यक संख्या 3 (वाद– 3) पर आते हैं, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह वाद आंतरिक अहाते के भीतर के परिसर तक ही सीमित है, न कि पूरे परिसर, अर्थात् भवन सहित बाहरी और आंतरिक अहाते के लिए। यह वही है जो निर्मोही अखाड़ा के अधिवक्ता ने आदेश X नियम 1 सीपीसी के तहत दिनांक 17.5.1963 को दिए गए अपने बयान में कहा है।
>
> 4537. इन विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में और निर्मोही अखाड़ा के रुख से, हमारे पास यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि जहाँ तक विवादित ढ़ाचें में अर्थात् आंतरिक अहाते के भीतर स्थापित भगवान श्री राम की मूर्तियों का संबंध है। प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा को इसका सेवायत नहीं कहा जा सकता है।"

386. निर्मोही अखाड़ा की लिखित दलीलों में यह तर्क दिया गया है कि आंतरिक और बाहरी अहाता एक समग्र क्षेत्र बनाते हैं और वाद 3 केवल

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आंतरिक अहाते के संबंध में दायर किया गया था क्योंकि केवल आंतरिक अहाता कुर्की की कार्यवाही का विषय था। निर्मोही अखाड़ा का कहना है कि कुर्की आदेश ने आंतरिक और बाहरी अहाते के बीच एक मनमाना विभेद किया और आंतरिक अहाते के संबंध में एक निष्कर्ष पूरे परिसर की सेवादारी के उनके दावे को कमजोर नहीं करती है। यहां तक कि अगर इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो यह निर्धारित करने के अलावा कि निर्मोही अखाड़ा आतंरिक अहाते के कब्जे में नहीं था, हमारे निर्धारण के लिए जो स्वतंत्र प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या निर्मोही अखाड़ा ने भगवान राम की मूर्तियों के वस्तुतः सेवायत के रूप में कानून में अधिकार के दावे के लिए बाहरी अहाते में मूर्तियों पर प्रबंधन अधिकारों का निरन्तर प्रयोग किया है? अपने तर्कों का समर्थन करने के लिए निर्मोही अखाड़ा ने वाद 3 और 5 में गवाहों के मौखिक साक्ष्य पर अवलम्ब किया है और सेवायत के रूप में अपनी प्रास्थिति स्थापित करने के लिए कुछ अतिरिक्त दस्तावेज भी प्रस्तुत किए हैं।

387. वाद 3 में वादी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस के जैन ने वाद 3 में गवाह महंत भास्कर दास (डीडब्ल्यू 3/1) और राजा राम पांडे (डीडब्ल्यू 3/2) के बयानों पर यह प्रतिवाद करने के लिए अवलम्ब लिया कि यह स्वीकार किया गया था कि निर्मोही अखाड़ा स्मारणातीत काल से एक सेवायत के अधिकारों का प्रयोग कर रहा था। निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रस्तुत मौखिक साक्ष्य का पहले ही इस निर्णय के दौरान विश्लेषण किया जा चुका है। विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा द्वारा की गई गतिविधियों का एक ठोस लेखा स्थापित करने के लिए उनके गवाहों द्वारा बयानों पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवलम्बन नहीं लिया जा सकता है। कई गवाहों ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उन्होनें अपने स्वयं के शपथपत्र नहीं पढ़े हैं। गवाहों ने केवल उसमें निहित गवाही को समझे बिना संबंधित दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए। इसके अलावा जिरह में कई गवाहों ने स्पष्ट रूप से अपने स्वयं के बयानों का खंडन किया। कई गवाहों ने विवादित ढाँचे में प्रवेश नहीं करना स्वीकार किया या विवादित ढ़ाँचे की उनकी यात्राओं के बारे में पहले के बयानों को रद्द कर किया। इन टिप्पणियों के प्रकाश में, सेवायत के रूप में अपनी स्थिति को स्थापित करने के लिए निर्मोही अखाड़ा द्वारा अवलम्ब लिए गए मौखिक साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। हालांकि पूर्णता के लिए, प्रासंगिक उद्धरण को नीचे परीक्षित किया गया है।

388. महंत भास्कर दास (डीडब्ल्यू 3/1) वर्ष 1950 से निर्मोही अखाड़ा के पंच थे और प्रासंगिक समय पर सरपंच थे। उनके हलफनामे में, यह कहा गया था:

> "81. भगवान राम लला 1934 के पूर्व से ही आंतरिक भाग में विराजमान हैं **और यह 1934 से निर्मोही अखाड़ा के निरन्तर कब्जे में रहा था।** मुसलमान इसके बारे में अनभिज्ञ नहीं हैं। भगवान वहीं विराजमान हैं। उनकी पूजा, शाही चढ़ावा सब निर्मोही अखाड़े की ओर से किया जाता है। आंतरिक भाग की कुर्की के दिन भी (अर्थात् 29. 12. 1949) को यह अखाड़ा के कब्जे में था। इसके धार्मिक न्यास होने के कारण निर्मोही अखाड़ा में स्वामित्व विहित हो गया।"

इस निर्णय के दौरान अभिलेख पर सबूतों के विश्लेषण पर यह अवधारित किया गया है कि 22/23 दिसंबर 1950 की रात में मूर्तियों को केंद्रीय गुम्बद के नीचे स्थानांतरित कर दिया गया था। इस गवाह के हलफनामे में 200 साल से अयोध्या में और विवादित स्थल में निर्मोही अखाड़ा के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अस्तित्व के बारे में संदर्भ हैं। हालांकि सेवायती अधिकारों के अभ्यास के संबंध में गवाह बताता है:

> "35. श्री राम जन्मभूमि के पूर्वी दरवाजे के मंदिर के आगंतुकों को फूल, फल, बताशा आदि प्रदान करने के लिए एक वार्षिक संविदा की गई थी। यह प्राचीन समय से निर्मोही अखाड़ा के पूर्ववर्ती महंतों द्वारा किया जा रहा था और इसके लिए एक करार किया गया था। ब्राह्मणों को सीता कूप से आगंतुक/भक्तों को पवित्र और ताजा पानी देने का अनुबंध दिया गया। अखाड़े के महंत को कर का भुगतान किया गया था। मैंने अपने सभी उपलब्ध करारों को प्रस्तुत किया है और कई दस्तावेज लूट लिए गए थे। इसके लिए रिपोर्ट दर्ज करायी गई थी।"

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के लिए पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी द्वारा दिनांक 11 सितंबर 2003 को इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा में साक्षी ने जवाब दिया:

> "कुर्की के बाद जो चढ़ावे विवादित भवन में रखी मूर्तियों पर किए गए थे, वे निर्मोही अखाड़ा द्वारा की गई किसी संविदा का भाग नहीं थे। मेरे हलफनामे के प्रस्तर 36 में संविदा के बारे में करार का उल्लेख है, **लेकिन मुझे याद नहीं है कि निर्मोही अखाड़ा की ओर से ऐसे कितने करार इस अदालत में प्रस्तुत किए गए थे। मुझे इस समय उन लोगों के नाम याद नहीं है जिनसे निर्मोही अखाड़ा द्वारा तथाकथित करार लिखाया गया था। मुझे इस समय कोई नाम याद नहीं है।** मैनें न्यायालय में अपने हलफनामें के प्रस्तर 35 में ऐसा करार प्रस्तुत करने के बारे में लिखा है और बिन्देश्वरी दुबे उन में से एक थे जिन्होनें करार लिखा और यह न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है। **जो दस्तावेज सं. 39 C–1/39 है, मैं इसे संख्या द्वारा नहीं बता सकता लेकिन कागज का शीर्षक था।**"
>
> (प्रभाव वर्धित)

यद्यपि गवाह ने विवादित स्थल में निर्मोही अखाड़ा की उपस्थिति का संदर्भ दिया है, लेकिन गवाह सबूत के रूप में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए किसी भी दस्तावेज को याद करने में असमर्थ है कि निर्मोही अखाड़ा सेवायत के रूप में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग कर रहे थे। 17 सितंबर 2003 को जिरह में श्री जिलानी द्वारा पूछे गए प्रश्न का इस गवाह द्वारा दिए गए उत्तर पर भी ध्यान देना महत्वपूर्ण है:

> "प्रश्नः– क्या मैं मान लूँ कि इस हलफनामे का अधिकांश हिस्सा आपके अधिवक्ता ने अपने ज्ञान के आधार पर तैयार किया था?
>
> उत्तर:– ऐसा कहना गलत है। इस हलफनामे का कुछ हिस्सा मेरे अधिवक्ता के ज्ञान पर आधारित है लेकिन मुझे याद नहीं है कि वह कौन सा हिस्सा है और मैं यह नहीं बता पाऊंगा।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

डीडब्ल्यू 3/1 के बयान संकेत करते हैं कि गवाह साक्ष्य के रूप में उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों से पूरी तरह से अनभिज्ञ था। बयान इस आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं कि निर्मोही अखाड़ा सेवायत के रूप में प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग कर रहा था।

389. श्री एस के जैन ने राजा राम पांडे (डीडब्ल्यू 3/2) के शपथ–पत्र के माध्यम से मुख्य परीक्षा पर अवलम्बन लिया, जिसमें यह कहा गया था:

> 14. ...गर्भ ग्रह की कुर्की के पहले और रिसीवर द्वारा अपना कार्यभार संभालने तक, मैंने निर्मोही अखाड़ा के पुजारी और सहायक पुजारी को आरती का पाठ करते हुए, विभिन्न चीज करते हुए और 'प्रसाद' तथा 'चरणामृत' देते हुए देखा है। और इसी तरह मैंने फरवरी 1982 तक निर्मोही अखाड़ा के पुजारी, सहायक पुजारी, पंच को 'चबूतरा मंदिर और "छठी पूजा स्थल" में आरती का पाठ करते हुए और पूजा (उपासना) करते हुए देखा है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, एक मंदिर में पूजा करने वाले पुजारी को सेवायत की प्रास्थिति तक नहीं बढ़ाया जाता है। लंबी अवधि तक अनुष्ठान करने के बावजूद एक पुजारी को कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं है। इस प्रकार पुजारियों की मात्र उपस्थिति उनमें सेवायत होने का कोई अधिकार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निहित नहीं करती है। एक पुजारी के कार्य करने मात्र से उसमें और अपने आप में एक व्यक्ति सेवायत नहीं हो जाता है। डीडब्ल्यू 3/2 का बयान अच्छी तरह से स्थापित करता है कि निर्मोही अखाड़ा के कुछ पुजारी पुजारियों के रूप में कार्य कर रहे थे, लेकिन एक सेवायत के रूप में उनकी स्थिति की मान्यता के लिए प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग किए जाने का सबूत नहीं देता है।

390. श्री एस के जैन ने भी वाद 3 में श्री आचार्य महंत बंसीधर दास उर्फ उड़िया बाबा (डीडब्ल्यू 3/18) की गवाही पर यह प्रतिवाद करने के लिए अवलम्बन लिया कि निर्मोही अखाड़ा पूजा करने सहित विवादित स्थल पर प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग कर रहा था। 1930 से डीडब्ल्यू 3/18 अयोध्या के रामकोट का एक अनिरन्तर निवासी था और उसने विवादित स्थल के करीब विभिन्न मंदिरों और धार्मिक स्थलों में रहने का दावा किया था। अपनी मुख्य–परीक्षा के दौरान डीडब्ल्यू 3/18 ने कहा:

> "1930 में मैं श्री राम जन्म भूमि मन्दिर के दर्शन के लिए गया जिसके बारे में मुकदमा विचाराधीन है। उस समय भी भगवान राम लला वहां विराजमान थे, मैंने दर्शन किया और प्रसाद, आरती और चरणामृत (पवित्र जल) भी लिया। मैं बाहरी भाग अर्थात् राम चबूतरा के उत्तर में हनुमान द्वार नामक मुख्य पूर्वी दरवाजे के उत्तर में स्थित संत निवास और भण्ड़ार गृह में रहने वाले निर्मोही अखाड़ा के पुजारी और साधुओं से प्रसाद, आरती और चरणामृत प्राप्त कर रहा था।"

(प्रभाव वर्धित)

साक्षी ने कहा कि पूजा के प्रभारी पुजारी निर्मोही अखाड़ा के पुजारी थे। हालांकि विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जिलानी द्वारा जिरह में गवाह ने कहा:

> "....सबसे पहले मैं रामचबूतरा का दर्शन करता, फिर रामलाल, सीता किचन और शंकर चबूतरा का और वहां से मैं वापस आता था। कभी–

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> कभी मैं दर्शन के दौरान आंतरिक भीतर में चढ़ाने के लिए पुजारी को प्रसाद देता था। **मुझे पुजारी का नाम याद नहीं है। पुजारी बदलते रहते थे। उसने खुद कहा कि हनुमानगढ़ी फैजाबाद के महंत लंबे समय तक पुजारी बने रहे। मुझे वर्तमान में उनका नाम याद नहीं है। विद्वान जिरह करने वाले अधिवक्ता द्वारा याद दिलाने पर, उसने कहा कि पुजारी का नाम भास्कर दास था।**
>
> ...
>
> **भास्कर दासजी वर्षों तक विवादित स्थल के पुजारी रहे लेकिन वह कभी निर्मोही अखाड़ा के महन्त नहीं थे। वह हनुमानगढ़ी, फैजाबाद के एक पुजारी थे। वर्तमान में वह न तो निर्मोही अखाड़ा के महंत हैं और न ही एक पुजारी हैं।** वह समिति के एक सदस्य हैं। मुझे नहीं पता कि समिति में कितने सदस्य हैं।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

विवादित स्थल पर पूजा निर्मोही अखाड़ा द्वारा की जाती थी इस प्रारंभिक बयान के बावजूद, गवाह जिरह में इस बयान का खंडन करता है। साक्षी ने कहा कि भास्कर दास पूजा करते थे। स्वयं साक्षी के अनुसार, भास्कर दास निर्मोही अखाड़ा से नहीं जुड़े थे। गवाह के विरोधाभासी रुख का यह स्थापित करने के लिए अवलम्बन नहीं लिया जा सकता है कि निर्मोही अखाड़ा प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग कर रहे थे या यहां तक कि 1949 से पहले विवादित स्थल पर पूजा का कार्य भी कर रहे थे।

391. वाद 3 में वादी द्वारा अवलम्ब लिए गए कई गवाहों की गवाही विसंगतियों और विरोधाभासों से भरी है। डीडब्ल्यू 3/18 की गवाही अलग नहीं है। अपनी गवाही के दौरान उसने कहा:

> ".... चबूतरे का आकार लगभग तीन–चार फुट था, चौड़ाई में तीन फीट और जमीन स्तर से डेढ़ फीट ऊंची थी। यह चबूतरा मध्य गुम्बद के ठीक नीचे था।और सीमेंट तथा ईंटों से बना है। यह चबूतरा पश्चिमी दीवार से दो फीट की दूरी पर था और पूर्व में था...

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

...

यह कहना सही नहीं है कि 5–6 हजार हिंदुओं ने बलपूर्वक प्रवेश करके 22/23.12.49 की रात को वहां मूर्तियों को रखा है। यह कहना भी सही नहीं है कि इन लोगों ने मस्जिद को अपवित्र किया है। **यह कहना भी गलत है कि मूर्तियाँ वहाँ रात में रखी गयी थी क्योंकि मूर्तियाँ वहाँ पहले से है।** प्राथमिकी में दर्ज किया गया यह बिन्दु कि मूर्तियाँ 22.12.1949 की रात को रखी गयीं थी, गलत थी...."

(प्रभाव वर्धित)

इस निर्णय के दौरान पक्षकारों द्वारा बहुत से साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि रामचबूतरा कभी मस्जिद के केन्द्रीय गुंबद के नीचे था या यह कि दिसम्बर 1949 से पूर्व मस्जिद के भीतर मूर्तियाँ विद्यमान थीं। साक्षी आगे बताती है:

"धर्मशास्त्र में झूठ बोलने को पाप के रूप में बताया गया है। लेकिन यदि झूठ बोलकर, भला होता है तो झूठ बोलने में कोई बुराई नहीं है। इसी तरह भूख से मर रहे व्यक्ति द्वारा झूठ बोलने में कोई बुराई नहीं है। यदि कोई धार्मिक स्थान है और यदि कोई इसे गलत तरीके से प्राप्त कर रहा है या जबरन कब्जा कर रहा है, तो झूठ बोलने में कोई बुराई नहीं है। यदि धार्मिक स्थल को झूठ बोलकर दूसरों द्वारा जबरन लिया जाता है तो यह सही है।"

(प्रभाव वर्धित)

गवाह द्वारा इन बयानों के मद्देनजर उसकी गवाही पर कोई अवलम्बन नहीं लिया जा सकता है।

392. श्री एस. के. जैन ने दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश X नियम 2 के अधीन 22 अप्रैल, 2009 को अभिलिखित श्री जिलानी के कथन पर अवलम्बन लिया जहां यह कहा गया था:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "...नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के बाद से निर्मोही अखाड़ा का अस्तित्व भी विवादित नहीं है। हालांकि इस बात से इनकार किया जाता है और विवादित है कि निर्मोही अखाड़ा विशेषकर अयोध्या में 16 वीं शताब्दी ईस्वी या 1528 ईस्वी में अस्तित्व में था और इसने इस बात से भी इनकार किया कि कोई भी मूर्ति 22 दिसंबर 1949 तक बाबरी मस्जिद के भवन में थी।"

अयोध्या में या विवादित स्थल के आसपास निर्मोही अखाड़ा की मात्र उपस्थिति और विवादित स्थल के वास्तविक कब्जे और प्रबंधन के बीच अंतर है। किसी क्षेत्र का कब्जा या किसी क्षेत्र में मात्र उपस्थिति, सेवायत की शक्तियों के निहित होने के लिए पर्याप्त नहीं है। श्री जिलानी के बयान में कुछ भी, निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रबंधन या केवल कब्जा प्रदर्शित या स्वीकार नहीं करता है।

393. वाद 5 में वादी साक्षियों के मौखिक साक्ष्य पर अवलम्ब लिया गया। श्री एस के जैन ने कहा कि इन गवाहों ने स्वीकार किया है कि कुर्की से पहले और बाद में निर्मोही अखाड़ा के पुजारी विवादित ढाँचे में मूर्तियों का प्रबंधन कर रहे थे। यह प्रस्तुत किया गया था कि वाद 5 में गवाहों ने निर्मोही अखाड़े की स्थिति को सेवायत के रूप में स्वीकार किया था, इस अदालत के समक्ष यह स्थापित करने के लिए कोई और सबूत रखने की आवश्यकता नहीं थी कि निर्मोही सेवायत हैं। इन गवाहों के बयानों के प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं:

(i) श्री महंत परमहंस राम चरण दास (ओपीडब्ल्यू–1)

> "...कुर्की से पहले, हिन्दू दर्शन करने के लिए बिना किसी प्रतिबंध के गर्भ ग्रह जा रहे थे। भगवान सालिग्राम, हनुमानजी और रामलला की मर्तियाँ वहां स्थापित थी। निर्मोही अखाड़ा से जुड़े व्यक्तियों ने किसी भी हिंदू को गर्भ गृह जाने में कभी कोई बाधा नहीं पहुँचायी। कुर्की से पहले, निर्मोही अखाड़ा के सदस्य गर्भ ग्रह का प्रबंधन किया करते थे... "

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) देवकी नंदन अग्रवाल (ओपीडब्ल्यू–2)

> "...निर्मोही अखाड़े के बैरागियों ने, जो राम चबूतरा में पूजा करते थे, मुस्लिमों को अंदर प्रवेश नहीं करने दिया। इसलिए लगातार किए गए प्रयासों के बावजूद इस जगह पर नमाज नहीं हो सकी।"
>
> "...राम चबूतरा पर पूर्व विद्यमान मूर्तियों और 1949 के बाद स्थापित की गई मूर्ति की पूजा धरमदासजी के साथ झगड़ा होने तक केवल निर्मोही अखाड़े के दो लोगों द्वारा करायी जाती थी।"

(iii) श्री राम नाथ पांडा @ बंसरी पांडा (ओपीडब्ल्यू–5)

> "वर्जित दीवार में, दो दरवाजे थे जो बंद रहते थे और उन दरवाजों को निर्मोही अखाड़े के पुजारियों द्वारा खोला और बंद किया जाता था। वही पुजारी राम चन्द्र और सीता रसोई आदि में प्रार्थना करते थे और आरती करते थे। हम रेलिंग से ही श्रद्धालुओं के लिए गर्भ गृह के दर्शन की व्यवस्था करते थे। वहां एक दान पात्र भी रखा गया था। मुख्य द्वारों पर बताशा और फूल मालाओं की दुकानें थीं। उनमें से एक सहदेव माली की है।"
>
> "ताला की चाबी निर्मोही अखाड़े के लोगों के कब्जे में होती थी और जिसका पुजारी ताला खोलता था, ताला बंद करता था और आरती पूजा करता था और घंटियाँ और बिगुल बजाता था।"
> "... 1949 से 1970 तक, मैं नियमित रूप से राम जन्म भूमि मंदिर जाता था। 1949 की कुर्की के बाद, गर्भ ग्रह के रिसीवर बाबू प्रिया दत्त राम नगर पालिका फैजाबाद के अध्यक्ष बने और राम चबुतरा मंदिर, छठी पूजा स्थल, भंडार स्थल और शिव दरबार जैसी जगहों पर पूजा उसी तरह से जारी रही जैसी पहले की जाती थी और उन्ही लोगों द्वारा की जाती थी, जो पहले इसे करते थे।"

वाद 5 में वादी साक्ष्यों की गवाही को चुनिंदा रूप से उद्धृत किया गया है और यह इस निष्कर्ष को दर्शित नहीं करता है कि निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

था। ओपीडब्ल्यू–1 का यह बयान कि निर्मोही अखाड़ा आंतरिक अहाते का प्रबन्धन करता था, प्रस्तुत साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है, जिसके बारे में निष्कर्ष इस निर्णय में अन्यत्र दर्ज है। इसी तरह , ओपीडब्ल्यू–5 द्वारा इकलौता बयान कि निर्मोहियों के पास बाहरी अहाते की चाबी थी, यह किसी अन्य बयान से संपुष्ट नहीं है। यदि निर्मोहियों के पास बाहरी अहाते की चाबी होती, तो विवादित स्थल पर आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम, प्रवेश करने के लिए निर्मोहियों से अनुमति लेने की आवश्यकता होती। यदि सच है, तो ऐसी स्थिति निश्चित रूप से अन्य गवाहों द्वारा उनकी गवाही में दर्ज की गई होगी। ओपीडब्ल्यू–2 का बयान एक बार फिर केवल विवादित स्थल में और उसके आसपास निर्मोही की उपस्थिति का संकेत देता है। यह 1949 में आंतरिक अहाते में मूर्तियों की आवाजाही के बारे में निर्मोही और धरम दास के बीच असहमति का संकेत देता है। यह बयान देवता के अनन्य प्रबंधकों के रूप में निर्मोहियों के दावे को कम करता है क्योंकि यह मूर्तियों की स्थापना के बारे में असहमति का साक्ष्य देता है। निर्मोही अखाड़ा द्वारा 22/23 दिसंबर की घटनाओं को लगातार अस्वीकार करना, इस अवलोकन को विश्वसनीयता प्रदान करता है।

394. निर्मोही अखाड़ा द्वारा अवलम्ब ली गयी मौखिक गवाही अधिक से अधिक यह स्थापित करती है कि वे विवादित स्थल में और उसके आसपास मौजूद थे। हालाँकि विवादित स्थल के आसपास निर्मोहियों की उपस्थिति, प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग के समान नहीं है जो उन्हें विधि में एक वस्तुतः सेवायत की प्रास्थिति के लिए हकदार बनाता है। वाद 3 में मौखिक साक्ष्य जिस पर अवलम्ब लिया गया था, वह विसंगतियों से भरा हुआ है और यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निष्कर्ष नहीं निकालता है कि निर्मोही अखाड़ा ने भगवान राम की मूर्तियों की ओर से प्रबंधन अधिकारों का प्रयोग किया था। वाद 5 में तीनों गवाहों के मौखिक साक्ष्य को चुनिंदा रूप से उद्धृत किया गया है और उसमें दिए गए बयानों की किसी अन्य गवाह की गवाही द्वारा पुष्टि नहीं की गई है। मौखिक गवाही से स्वतंत्र, निर्मोही अखाड़ा ने विवादित स्थल पर मूर्तियों के सेवायत के रूप में अपनी प्रास्थिति स्थापित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य पर अवलम्बन लिया है। ये दस्तावेज इस प्रकार हैं:

मस्जिद के परिसर के अन्दर कुछ बैरागियों द्वारा बनाई गई कोठरी के संबंध में तुलसीदास के विरूद्ध मीर रजब अली खातीब द्वारा 25 सितंबर 1866 का परिवाद;

प्रदर्श 30 – वाद 1: उत्तरी तरफ एक नए दरवाजे के निर्माण की अनुमति देने के आदेश के संबंध में महंत खेम दास के विरूद्ध मोहम्मद असग़र द्वारा 13 दिसंबर 1877 की अपील।

प्रदर्श 7 – वाद 5: अवध प्रांत का गजेटियर (1877–78);

प्रदर्श 24 – वाद 1: महन्द रघुबर दास के विरूद्ध चबूतरे के प्रयोग के लिए किराये की मांग करते हुए सैयद मोहम्मद असग़र द्वारा संस्थित वाद में दिनांक 8 नवंबर 1882 का वाद पत्र;

प्रदर्श 28 – वाद 1: मस्जिद की पेन्टिंग के लिए सैयद मौहम्मद असग़र द्वारा किए जा रहे कार्य के मद्देनजर स्थल निरीक्षण की मांग करते हुए महंत रघुबर दास द्वारा 27 जून 1884 का परिवाद;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रदर्श ए– 22– वाद 1: रामचबूतरा स्थल पर मन्दिर के निर्माण के लिए अनुमति मांगते हुए महन्त रघुबर दास द्वारा दायर दिनांक 19 जनवरी 1885 का वाद;

प्रदर्श 8 – वाद 3: दिनांक 11 जून 1900 के करार की प्रति जिसमें अयोध्या में राम जन्मभूमि स्थल के श्रद्धालुओं को पेयजल उपलब्ध कराने के लिए झिंगू (गया के पुत्र) को अनुमति दी गई थी;

एच आर नेविल का "द गजेटियर ऑफ द यूनाइटेड प्रोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध" (1905) जिसमें यह कहा गया है कि रामकोट में स्थित जन्मस्थान मन्दिर पहले निर्मोही अखाड़ा संप्रदाय के पास था, जिसके अवशेष अभी भी उन्हीं के हैं।

प्रदर्श 9 – वाद 3: नरोत्तम दास द्वारा गोपाल (बाबू का पुत्र) के पक्ष में निष्पादित जन्मभूमि राम कोट अयोध्या की थेका दुकान के संबंध में 13 अक्तूबर 1942 के करार की प्रति;

प्रदर्श 10 – वाद 3: महंत रघुनाथ दास द्वारा एक दुकान के संबंध में 29 अक्टूबर 1945 को किया गया करार;

प्रदर्श 49 – वाद 4: महंत रघुनाथ दास के पक्ष में नामांतरण प्रविष्टि; और

डीडब्ल्यू –10 का बयान – उमेश चंद्र पांडे द्वारा।

आगे यह तर्क दिया गया कि जबकि सुपुर्दगिनामा, जिसके द्वारा रिसीवर ने कब्जा प्राप्त किया था, अभिलिखित नहीं करता है कि किसके कब्जा लिया गया था, दस्तावेज़ बाहरी अहाते में निर्मोही अखाड़ा की उपस्थिति को इंगित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करता है। अंत में यह कहा गया था कि धारा 145 की कार्यवाही में अंतरिम आदेश पारित होने के बाद, सेवा–पूजा "पहले की तरह" जारी रही और निर्मोही अखाड़ा के पुजारियों द्वारा संचालित की गयी।

395. निर्मोही अखाड़ा ने कहा कि विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा के कई बैरागी की उपस्थिति प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग का सबूत है। इसका समर्थन करने के लिए निर्मोही अखाड़ा निम्नलिखित पर अवलम्बन लिया:

- एडवर्ड थार्नटन (1854, ईस्ट इंडिया कंपनी के अन्तर्गत राज्यक्षेत्रों के गजेटियर) लगभग 500 बैरागियों की उपस्थिति का उल्लेख करते हैं;

- पत्रांक दिनांकित 29 नवंबर 1949: फैजाबाद के उस समय के पुलिस आयुक्त कृपाल सिंह ने उपायुक्त के. के. नायर को यह उल्लेख करते हुए एक पत्र लिखा कि प्रस्तावित कीर्तन में "कई हजार हिंदूओं, बैरागियों और साधुओं को भाग लेना है।

- पत्रांक दिनांकित 16 दिसंबर 1949: के. के. नायर (उपायुक्त और जिलाधिकारी, फैजाबाद) ने गोविन्द नारायण को यह कहते हुए एक पत्र भेजा कि "इस साल किसी समय संभवतः अक्टूबर या नवंबर में कुछ कब्रों को स्पष्ट रूप से बैरागियों द्वारा आंशिक रूप से नष्ट किया गया था जिसने इस मठ से मुस्लिम संगठनों को बहुत नाराज कर दिया"; और

- वाद 1 में प्रदर्श ए–64 के रूप में चिह्नित वक्फ निरीक्षक की 23 दिसंबर 1949 की आख्या में बैरागियों की उपस्थिति का संदर्भ भी दिया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस संबंध में निर्मोही अखाड़ा द्वारा अवलम्ब लिया गया साक्ष्य, अधिक से अधिक विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा के बैरागियों की उपस्थिति का साक्ष्य देता है। यह दिखाने के लिए कोई अन्य विश्वसनीय दस्तावेज या सबूत पेश नहीं किया गया था कि इन बैरागियों ने वास्तव में एक सेवायत के प्रबंधन के अधिकारों का प्रयोग किया था।

396. मीर रजब अली खातीब द्वारा दायर 25 सितंबर 1866 की परिवाद में कहा गया है कि यह 'तुलसीदास' के खिलाफ दायर किया गया है। निर्मोही अखाड़ा ने यह साबित करने के लिए मौखिक साक्ष्यों पर अवलम्बन लिया कि तुलसीदास वास्तव में निर्मोहियों के महंत थे और निर्मोही अखाड़ा ने "कोठरी" का निर्माण किया। यह पहले ही अवधारित किया गया है कि निमोहियों द्वारा उनके दावे को प्रमाणित करने के लिए अवलम्ब लिया गया मौखिक साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हैं। दस्तावेज़ स्वयं न तो यह साबित करता है कि तुलसीदास निर्मोहियों के महंत थे और न ही यह कि निर्माण निर्मोहियों द्वारा किया गया था। यह उस समय सामान्यतः इस तरह के निर्माण से जुड़े किसी अन्य दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा पुष्ट नहीं किया गया है और एक सेवायत के रूप में अधिकारों के प्रयोग का साक्ष्य नहीं देता है।

397. वाद 3 में प्रदर्श 8, 9 और 10 से पता चलता है कि निर्मोही विवादित ढाँचे पर आने वाले श्रद्धालुओं को विभिन्न सेवाएं प्रदान कर रहे थे। हालांकि तीनों प्रदर्श विवादित ढ़ाँचे के बाहर इन सेवाओं को प्रदान करने की अनुमति देने से संबंधित हैं। इन प्रदर्शों से अधिक से अधिक यह पता चलता है कि निर्मोही विवादित ढाँचे में और आसपास उपस्थित थे और श्रद्धालुओं को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सहायता प्रदान करते थे। हालांकि यह मूर्तियों या विवादित स्थल पर किसी प्रबंधन का साक्ष्य नहीं देता है।

398. निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में रघुबर दास की भूमिका पर महत्वपूर्ण अवलम्बन लिया गया। इस संबंध में उपरोक्त संदर्भित वाद 1 में **प्रदर्श 24** (किराए के संग्रह के लिए दायर वाद दिनांकित 8 नवंबर 1882), **प्रदर्श 28** (स्थल निरीक्षण की मांग करते हुए परिवाद दिनांकित 27 जून 1884) और **प्रदर्श ए–22** (रामचबूतरा पर मंदिर के निर्माण के लिए दायर वाद 1885) पर अवलम्ब लिया गया। यह तर्क दिया गया कि महंत रघुबर दास ने उपरोक्त वाद निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में दायर किए। इस आधार पर यह तर्क दिया गया कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा देवता का प्रबंधन और प्रभार लिया गया था। सूक्ष्म विश्लेषण से महंत रघुबर दास के संबंध में निर्मोही अखाड़ा के रुख में कई विरोधाभासों का पता चलता है। 1885 के वाद में महन्त रघुबर दास ने "जन्मस्थान, अयोध्या का महन्त" होने का दावा किया। निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर लिखित तर्कों में यह कहा गया कि महंत रघुबर दास ने 1885 का वाद व्यक्तिगत क्षमता में दायर किया:

> "…. उक्त मुकदमा [1885] **महन्त रघुबर दास द्वारा निर्मोही अखाड़ा के नाम का उल्लेख किए बिना, अपनी व्यक्तिगत क्षमता में** दायर किया गया था और किसी भी मामले में उक्त मुकदमे में विषय संपत्ति (बाहरी अहाते में चबूतरा), वाद–संपत्ति (आंतरिक अहाता) से अलग थी जो कि ओओएस सं. 3 की विषयवस्तु है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

हालाँकि वक्फ निरीक्षक की आख्या दिनांकित 23 दिसंबर 1949 की बात करते हुए इन्ही लिखित तर्कों में यह कहा गया था:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "उन्होंने अन्य लोगों के साथ महंत रघुबर दास के नाम का उल्लेख किया है जिन्होंने मुसलमानों को बातचीत के लिए आमंत्रित किया था। **महंत रघुबर दास निर्मोही अखाड़े के महंत हैं।**"
>
> (प्रभाव वर्धित)

प्रत्युत्तर में, निर्मोही अखाड़ा ने महंत रघुबर दास द्वारा मुकदमें के बारे में कोई जानकारी होने से इनकार किया:

> "... वादियों को उक्त वाद के बारें में जानकारी नहीं है, यदि कोई, जन्म स्थान के महन्त के रूप में महन्त रघुबर दास के रूप में ज्ञात किसी व्यक्ति द्वारा दायर किया गया हो।"

वाद 4 में निर्मोही अखाड़ा की ओर से दायर लिखित कथन में यह कहा गया था:

> "... स्वंय को जन्म स्थान के महन्त होने के रूप में प्रस्तुत करते हुए महन्त रघुबर दास के रूप में ज्ञात किसी व्यक्ति द्वारा दायर किए गए किसी वाद की, उत्तरदाता प्रतिवादियों को जानकारी नही है..."

1885 के वाद में महंत रघुबर दास ने अयोध्या के जन्मस्थान का महंत होने का दावा किया। इस न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय के समक्ष मौखिक सुनवाई में निर्मोही अखाड़ा ने दावा किया कि महंत रघुबर दास निर्मोही अखाड़ा के महंत थे। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल निम्नलिखित अवलोकन करते हैं:

> "964. जैसा कि हमने पहले से ही ध्यान दिया हैं, निर्मोही अखाड़ा द्वारा यह विवादित नहीं किया गया है कि 1885 में रघुबर दास निर्मोही अखाड़ा के महंत थे..."

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि निर्मोही अखाड़ा ने महंत रघुबर दास का निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में यह स्थापित करने के लिए समर्थन किया कि उन्होंने 1800 के दशक से सेवायत के रूप में काम किया है। फिर भी वे

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्राङ्न्याय के प्रश्न पर विचार करते समय स्वयं को महंत से अलग कर लेते हैं। यहाँ तक कि निर्मोही अखाड़ा ने कहा कि यह 1885 के मुकदमे से अनभिज्ञ था। महंत रघुबर दास के संबंध में निर्मोही अखाड़ा का असंगत रवैया उनके विरूद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष की ओर ले जाता है।

399. निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य यह नहीं दर्शाते हैं कि यह प्रश्नगत संपत्ति का प्रबंधन कर रहा था। उपरोक्त विश्लेषित दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, जो निर्मोही अखाड़ा के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है, निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग को दिखाने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। इक्का दुक्का कार्य, एक वस्तुतः सेवायत के अधिकारों और कर्तव्यों के निर्मोही अखाड़ा द्वारा निरंतर, अनन्य और निर्बाध प्रयोग को स्थापित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं देते हैं। इस न्यायालय के समक्ष मरम्मत, निर्माण, पुजारियों की नियुक्ति या अन्य गतिविधियों का साक्ष्य देने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है। गौरतलब है कि यात्रियों के विवरण में इक्का दुक्का संदर्भ के अलावा , प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग को दिखाने के लिए निर्मोही अखाड़ा का कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं रखा गया है। निर्मोही अखाड़ा की प्रथाओं को 19 मार्च 1949 को ही एक पंजीकृत विलेख द्वारा लिख दिया गया था।

400. जब श्री एस के जैन से सेवायत के रूप में निर्मोही अखाड़ा के दावे को स्थापित करने वाले मूल दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए प्रश्न पूछा गया, तो यह तर्क दिया गया कि एक कथित डकैती के कारण दावे को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक दस्तावेज खो गए। इस दावे को प्रमाणित करने के लिए, यह तर्क दिया गया कि धरम दास के खिलाफ 18 फरवरी 1982 को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। हालाँकि निर्मोहियों द्वारा प्रस्तुत लिखित कथन में यह कहा गया है कि यद्यपि धरम दास दो महीने तक जेल में रहे, लेकिन बाद में एक समझौते के आधार पर मामले को रद्द कर दिया गया। एकल गवाह– राजा रामचन्द्रचार्य (डीडब्ल्यू 3/20) के बयान पर अवलम्ब लेने के अलावा इस दावे को प्रमाणित करने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह तर्क निर्मोहियों द्वारा प्रबंधन अधिकारों के प्रयोग के किसी प्रामाणिक सबूत के अभाव को छिपाने के लिए एक प्रयास है, जो उन्हें एक सेवायत की प्रास्थिति प्रदान करने के लिए है। कानून में एक सेवायत की स्थिति अत्यधिक महत्व की है। सेवायत मूर्ति के मानवीय सेवक और संरक्षक हैं और इसके अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। सेवायत में देवता की ओर से कार्यवाही करने का अधिकार निहित होता है और इस पर बाध्यकारी है। इस दृष्टि से निर्मोही अखाड़ा का यह दावा कि यह एक वस्तुतः सेवायत है, अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर विश्लेषण किया गया है और यह पाया गया है कि दावा सेवायत अधिकारों में नहीं परिणत हो गया।

401. एक वस्तुतः सेवायत के रूप में अधिकारों का दावा इस सबूत से प्रमाणित किया जाना चाहिए कि न्यास संपत्ति व्यक्ति के अनन्य कब्जे में है और किसी भी तरह से बिना किसी बाधा या हस्तक्षेप के संपत्तियों के प्रबंधन के अधिकार पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, इस व्यक्ति को न्यास संपत्तियों के प्रभारी व्यक्ति के रूप में मान्यता दी जाती है। हालांकि वर्तमान कार्यवाही में इससे इनकार नहीं किया जा सकता है और इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि निर्मोही अखाड़ा विवादित स्थल

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर मौजूद था, निर्मोही अखाड़ा का दावा अधिक से अधिक कुछ प्रबंधन अधिकारों के अनियमित प्रयोग का है। उनके अधिकार परिव्यापी थे, जिसमें सामान्यतः श्रद्धालुओं की सहायता शामिल थी और उनको लगातार चुनौती दी गयी थी। जैसा कि ऊपर अवधारित किया गया है, प्रबंधन अधिकारों के इक्का दुक्का कार्य या अनियमित प्रयोग एक दावेदार को कानून में एक वस्तुतः सेवायत की स्थिति प्रदान नहीं करते है। यह नहीं कहा जा सकता है कि निर्मोही अखाड़ा के कार्य प्रभार और प्रबंधन के कानूनी मानक को संतुष्ट करते हैं जो पर्याप्त समयावधि में अनन्य , निर्बाध और निरंतर हैं। विवादित स्थल पर उनकी निर्विवाद उपस्थिति के बावजूद, ऊपर उल्लिखित कारणों के लिए, निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत नहीं है।

402. इस अवधारण के आलोक में कि विवादित स्थल पर भगवान राम की मूर्तियों के लिए निर्मोही अखाड़ा सेवायत नहीं है, यह एक हितबद्ध उपासक के लिए देवता की ओर से मुकदमा करने के लिए खुला था। विधि में कोई मान्यता प्राप्त सेवायत नहीं था। ऐसी स्थिति में मूर्ति का मुकदमा करने का स्वतंत्र अधिकार, इसके वाद मित्र, मूर्ति की सुरक्षा और उसके हितों में रुचि रखने वाले उपासक के माध्यम से प्रयोग किया गया। वाद 5 ऐसे वाद के रूप में पोषणीय है जो एक विधिपूर्ण मान्यता प्राप्त सेवायत की अनुपस्थिति में प्रथम तथा द्वितीय वादियों की ओर से एक वाद मित्र द्वारा संस्थित हो।

403. वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी 12, महन्त श्री धरम दास की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयदीप गुप्ता ने कहा कि वह स्वर्गीय बाबा अभिराम दास के उत्तराधिकारी (चेला) हैं, जो 1949 से पहले राम जन्मभूमि के पुजारी थे। वर्तमान प्रत्यर्थी अखिल भारतीय श्री पंच निर्वाणी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनी अखाड़ा और हनुमान गढ़ी, अयोध्या के महंत हैं। स्वर्गीय बाबा अभिराम दास वाद 4 में प्रतिवादी संख्या 13/1 और वाद 5 में प्रतिवादी संख्या 14 थे और उनकी मृत्यु पर, वर्तमान प्रतिवादी को उक्त मुकदमों में प्रतिवादी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था। यह कहा गया है कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास जन्मस्थान मंदिर के पुजारी थे और उन्होंने इसके मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि 1949 से पहले, स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने पूजा की और विवादित ढाँचे के अंदर मूर्ति को रखने के बाद भी, उन्होंने 5 जनवरी 1950 तक तब तक पूजा करना जारी रखा जब रिसीवर ने कार्यभार संभाला। यह कहा गया है कि वर्तमान प्रतिवादी स्वर्गीय बाबा अभिराम दास का चेला होने के नाते, सेवायत के रूप में विवादित ढाँचे में भोग और सेवा पूजा करने का हकदार है। उपरोक्त के समर्थन में, निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं:

- भगवान राम की मूर्ति को 22–23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि में विवादित ढांचे में रखा गया था। तीन गुम्बदाकार संरचना के अंदर रखे जाने के बाद देवता (*प्रतिष्ठित*) और रामजन्मभूमि (*स्वयंभू)* विधिक व्यक्ति हैं और विवादित ढाँचे पर अधिकार व हक रखता है;
- निर्मोही अखाड़ा अपनी दलीलों में अपनी मौजूदगी से इनकार करने के बाद न्यायिक इकाईयों के संबंध में सेवायत होने का दावा नहीं कर सकता है। जब यह घटना 22–23 दिसंबर की मध्यरात्रि में हुई, तो निर्मोही अखाड़ा का कोई व्यक्ति वहां मौजूद नहीं था और कार्यवाही में निर्मोही अखाड़ा के किसी भी सदस्य को अभियुक्त के रूप में नामित नहीं किया गया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- प्रतिवादी एकमात्र व्यक्ति है जो जन्मभूमि और राम लला के मठ का सेवायत होने का दावा कर सकता है। प्रत्यर्थी के गुरु स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने कई अन्य लोगों के साथ 2 अक्टूबर 1949 को हुई एक सार्वजनिक बैठक में विजयादशमी के अवसर पर सामूहिक प्रतिज्ञा लेकर पवित्र जन्मस्थान को उसकी प्राचीन महिमा को बहाल करने का संकल्प लिया, जिसके अनुसरण में विवादित स्थल के चारो ओर के आसपास क्षेत्र को साफ कर दिया गया था। इसके बाद तीन गुम्बदाकार संरचना के अंदर और बाहर नवहना पथ, जाप और संकीर्तन किया गया।

- जब तक कोई सेवायत है तब तक देवता का प्रबंधन वाद 5 में वाद मित्र या राम जन्मभूमि न्यास को नहीं सौंपा जा सकता। वाद 1 और वाद 5 दोनों व्यक्तिगत क्षमता में दायर किए गए हैं और उन्हें कोई प्रबंधन या कब्जा नहीं सौंपा जा सकता है; और
- यह तथ्य कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास देवता के पुजारी/पुरोहित/ सेवायत थे, इसे निम्नलिखित तथ्यों और अभिलेखों से स्थापित किया गया हैं:
- वाद 4 में श्री भास्कर दास (डीडब्ल्यू 3/1), जो निर्मोही अखाड़ा के सरपंच थे, उन्होनें अपनी जिरह में कहा और पुष्टि की कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास विवादित ढाँचे के पुजारी थे, न कि निर्मोही अखाड़ा के पुजारी थे।
- धारा 145 के अधीन मजिस्ट्रेट के समक्ष दिए गए 29 दिसंबर, 1950 के अपने बयान में, स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने स्पष्ट रूप से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा था कि वह और उनके अन्य सह–पुजारी 1934 से जन्मभूमि मंदिर और आसपास की भूमि का रखरखाव और प्रबंधन कर रहे थे;

- उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी ने कहा कि विवादित परिसर में विभिन्न धार्मिक कृत्य उनके गुरु, स्वर्गीय बाबा अभिराम दास की देखरेख में आयोजित किए गए थे और उनके नाम पर विद्युत कनेक्शन भी थे;
- मोहम्मद हाशिम, जो वाद 4 में वादी संख्या 7 और वाद 5 में प्रतिवादी संख्या 3 है, उसने अपनी जिरह में कहा कि मूर्तियों को मस्जिद के अंदर अभिराम दास, धरम दास और अन्य द्वारा रखा गया था;
- 30 अप्रैल, 1992 को, वाद 5 में वादी संख्या 3 स्वर्गीय देवकी नंदन अग्रवाल ने कहा था कि मूर्ति को केन्द्रीय गुंबद के अंदर 22–23 दिसंबर, 1949 को श्री परमहंस रामचंद्र और स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने अन्य लोगों के साथ रखा था;
- स्वर्गीय बाबा अभिराम दास को 23 दिसंबर, 1949 की दोनों एफआईआर में और विवादित ढाँचे के अंदर मूर्ति रखने के लिए दिनांक 1 फरवरी, 1950 के आरोप पत्र में अभियुक्त संख्या 1 के रूप में नामित किया गया है। स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने कहा है कि वह 1 फरवरी 1950 के जमानत पत्र में राम जन्मभूमि के पुजारी हैं;
- जिला अधिकारी, फैजाबाद ने दिनांक 23 दिसंबर, 1949 की अपनी आख्या में यह मत व्यक्त किया कि विवादित ढाँचे के भीतर मूर्ति को भोग देने के लिए अभिराम दास, राम शुक्ल दास और सुदर्शन दास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सहित दो या तीन व्यक्तियों को अनुमति देकर भीड़ को नियंत्रित किया गया था; और

- 21 दिसंबर, 1962 के एक आवेदन द्वारा, स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने 62 जयंती समरोह के कार्यक्रम के आयोजन के लिए रिसीवर के समक्ष अनुमति के लिए आवेदन किया। ऐसा कहा जाता है कि उक्त समरोह प्रत्येक वर्ष आयोजित किया गया था और स्वर्गीय बाबा अभिराम दास और जन्म भूमि सेवा समिति द्वारा आयोजित किया गया।

404. निर्मोही अखाड़ा और निर्वाणी अनि अखाड़ा के मध्य विवाद मौजूदा विवाद की विषय वस्तु नही है। निर्वाणी अनि अखाड़ा ने अपना दावा स्थापित करने के लिए अपनी कोई कार्यवाही नहीं की है। यह दावा कि निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत था, इसको अस्वीकार कर दिया गया है। निर्मोही अखाड़ा के दावे पर चर्चा करते हुए, यह माना गया है कि एक सेवायत के रूप में दावा स्थापित करने के लिए या यहां तक कि एक वस्तुतः सेवायत के रूप में दावा स्थापित करने के लिए, ऐसे सबूतों पर अवलम्ब रखने की आवश्यकता होती है जो केवल पुजारी के कार्यों को करने के अलावा अधिक कार्य करने को दर्शाता हो। पुजारी केवल एक सेवायत का नियुक्त किया गया व्यक्ति या एक सेवक है और समयावधि के दौरान अनुष्ठानों को करने के बावजूद एक सेवायत के रूप में कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं करता है। स्वर्गीय बाबा अभिराम दास के दावे का समर्थन करने के लिए अवलम्ब लिए गए सभी साक्ष्य विवादित परिसर में उनके पूजा करने तक ही सीमित है और उनको कोई सेवायत अधिकार प्रदान नहीं करते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एन. 7 वाद 5 में परिसीमा

405. वाद 5 को संस्थित करने के लिए वाद हेतूक, वाद पत्र के प्रस्तर 14, 18, 30 और 36 में अभिकथित किए गए हैं जो इस प्रकार हैं:

> "14. यह कि उक्त मुकदमों की सुनवाई और निस्तारण में लंबे समय तक देरी और मंदिर के मामलों के बिगड़ते प्रबंधन से वादी देवता और उनके भक्त बहुत दुखी हैं, विशेष रूप से उपासकों द्वारा दी जाने वाली धनराशि, जो बड़ी संख्या में आते हैं, इसे पुजारी और अन्य मंदिर कर्मचारियों द्वारा गलत तरीके से किया जा रहा है, और रिसीवर ने इस बुराई को नियंत्रित नहीं किया है। वादी देवताओं के भक्त अयोध्या में श्री राम जन्म भूमि के पुराने ढाँचें को हटाकर उसकी प्राचीन महिमा को लौटाने के लिए श्री राम जन्म भूमि के एक नये मन्दिर निर्माण के इच्छुक हैं।
>
> ...
>
> 18. यह कि यद्यपि पूर्वोक्त मुकदमे इतने असाधारण रूप से लंबे समय से विचारण के लिए लंबित रहे हैं, वे अपर्याप्त हैं और विवाद के निपटारे का परिणाम नहीं दे सकते हैं, जिसके कारण उनका संस्थन हुआ या वहां से उत्पन्न समस्याएँ, जितना कि न तो भगवान श्री राम विराजमान और न ही अस्थान श्री राम जन्म भूमि के पीठासीन देवता, इसमें वादी सं. 1 और 2, जो दोनों न्यायिक व्यक्ति हैं, को इसमें योजित किया गया था, हालांकि उनका अपना स्वयं का एक अलग व्यक्तित्व है, जो उनके उपासकों और सेवकों से अलग है, और उसके कुछ वास्तविक पक्षकार, जो उपासक हैं, कुछ हद तक वादी देवता की उपासना का नियंत्रण प्राप्त करके उनके व्यक्तिगत हितों को पूरा करने की मांग करने में संलिप्त हैं। इसके अलावा, श्रीराम जन्म भूमि, अयोध्या और इससे संलग्न भूमि व भवन व अन्य चीजों से संबंधित विवाद के उचित निर्धारण के लिए, वादी देवताओं के दृष्टिकोंण से इन चार दशकों के दौरान हुई घटनाओं और कई भौतिक तथ्यों और कानून के बिंदुओं को अभिकथित किए जाने की आवश्यकता है। तदनुसार वादी को अपना नया मुकदमा दायर करने की सलाह दी गई है।
>
> ...

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

30. यह कि हिंदू जनता और वादी देवताओं के भक्तों, जिन्होंने स्वंतत्र भारत में राम–राज्य की स्थापना, अर्थात् धर्म और नीतिपरायणता का शासन, का सपना देखा था, जिसके प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जी महाराज थे, महात्मा गांधी द्वारा हमें दी गई उस राष्ट्रीय आकांक्षा के पहले चरण के रूप में, इसकी प्राचीन महिमा को लौटाने के लिए उत्सुक रहे हैं। इसे प्राप्त करने के लिए वे सार्वजनिक रूप से नागर शैली में एक भव्य मंदिर के निर्माण के लिए आंदोलन कर रहे हैं। सोमनाथ मंदिर का निर्माण करने वाले वास्तुविदों के परिवार द्वारा ही प्रस्तावित मंदिर का ढाँचा और मॉडल तैयार कर लिया गया हैं। सक्रिय आंदोलन 30 सितंबर, 1989 से शुरू करने की योजना है और यह घोषित किया गया है कि नए मंदिर भवन की आधारशिला 9 नवंबर, 1989 को रखी जाएगी।

...

36. **यह कि इस मुकदमे के लिए वाद हेतूक दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है, विशेष रूप से हाल ही में जब कुछ मुस्लिम सम्प्रदायिकों की तरफ से हिंसक कार्रवाई द्वारा मंदिर पुनर्निर्माण की योजनाओं को बाधित करने की मांग की जा रही है।"**

(प्रभाव वर्धित)

वाद हेतूक के उपरोक्त प्रकथन में निम्नलिखित घटक शामिल हैं:

(i) वाद 1, 3 और 4 की सुनवाई और निस्तारण में लम्बे समय तक विलम्ब;

(ii) मंदिर के क्रियाकलापों के प्रबंधन में विफलता और उसे नियंत्रित करने में रिसीवर की विफलता;

(iii) उपासकों के चढ़ावे को पुजारियों और मंदिर कर्मचारियों द्वारा गलत तरीके से प्रयोग किया गया है;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) पहले और दूसरे वादी, जिनके बारे में विधिक व्यक्ति होने का दावा किया जाता है, उनको आरंभिक वादों में पक्षकार के रूप में योजित नहीं किया गया था;

(v) उपासक और सेवक तथा वाद के कुछ पक्षकार देवताओं की पूजा को नियंत्रित करने के लिए अपने निजी हित को पूरा करने की मांग कर रहे हैं;

(vi) हिन्दू भक्त एक नए मंदिर के निर्माण के लिए आंदोलन कर रहे हैं जिसके लिए योजनाएं बनाई गई हैं; और

(vii) "कुछ मुसलमान सांप्रदायिकों की तरफ से हिंसक कार्यवाही द्वारा" पुनर्निर्माण की योजनाओं को बाधित करने की माँग की गयी है।

406. अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि के पूरे परिसर, जैसा कि वादी देवताओं से संबंधित अनुलग्नक I, II और III में वर्णित और दर्शित किया गया है, और परिणामी शाश्वत व्यादेश की उद्घोषणा के लिए वाद 5 संस्थित किया गया। वादी देवताओं के लिए और परिणामी स्थायी निषेधाज्ञा के लिए है। अनुलग्नक I, II और III को "शिव शंकर प्लीडर द्वारा तैयार, साथ ही उनकी आख्या दिनांकित 25.05.1950 में भवन परिसर के दो साइट योजनाओं और श्री राम जन्म भूमि के रूप में ज्ञात संलग्न क्षेत्र" के रूप में प्रस्तर 2 में वर्णित किया गया था। डॉ एम इस्माइल फारुकी बनाम भारत संघ[238] में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के बाद, विवाद को आंतरिक और बाहरी अहाते में शामिल क्षेत्र तक सीमित किया गया है।

वाद 5, दिनांक 1 जुलाई 1989 को संस्थित किया गया, इस तिथी को परिसीमा अधिनियम 1963 लागू था।

---

238 (1994) 6 एससीसी 360

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दलीलें

407. परिसीमा का वर्जन स्थापित करते हुए, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ राजीव धवन ने निम्नलिखित कथनों को रेखांकित किया:

(क) परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 10 वर्तमान मामले में प्रयोज्य नहीं है क्योंकि किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास में निहित हो गई है, या उसके विधिक प्रतिनिधि को या समनुदेशितियों के विरूद्ध (विधि सम्मत प्रतिफल से भिन्न) उसके या उनके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उसके आगमों के अनुगामी या उस संपत्ति या उसके आगम के लेखा के लिए, वाद को यह उपबन्ध लागू होता है;

(ख) जब देवता को इसके सेवायत – निर्मोही अखाड़ा– के माध्यम से "अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व" किया जा रहा था, तब वाद संस्थित नहीं किया जा सकता था और कदाचार पर आधारित शिकायत के कारण सेवायत को हटाने की कोई मांग नहीं की गई है।

(ग) यह प्रतिरक्षा कि देवता स्थायी रूप से अवयस्क है, वाद 5 में वादियों की इस कारण सहायता नहीं करेगा कि मूर्ति का प्रतिनिधित्व सेवायत द्वारा किया गया था और वाद केवल तभी उपासक द्वारा वाद मित्र के रूप में संस्थित किया जा सकता है जब सेवायत देवता के हित के प्रतिकूल कार्य करता पाया जाता है। हालांकि वाद मित्र द्वारा सेवायत के विरूद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया है;

(घ) यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि परिसीमा शाश्वत अवयस्क के विरुद्ध चलती है; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ङ) वाद 5 पोषणीय नहीं है क्योंकि इसको संस्थित करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं था अन्यथा भी परिसीमा अधिनियम के जो भी प्रावधान लागू होते हैं, वाद 5 को परिसीमा द्वारा अपवर्जित कर दिया जाएगा।

23 सितंबर 2019 को डॉ. धवन ने अपने मौखिक तर्कों के दौरान श्री परासरन के परिसीमा के तर्कों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की। ऐसा करते समय, डॉ. धवन इस आधार पर आगे बढ़े कि श्री परासरन ने यह कहते हुए परिसीमा अधिनियम की धारा 10 का लाभ मांगा था कि मुकदमा परिसीमा के अन्तर्गत था। इसके बाद 24 सितंबर 2019 को, इस न्यायालय के वर्जन (*परिसीमा*) की निष्पक्ष परंपरा में, डॉ. धवन ने स्पष्ट किया कि उन्हें श्री परासरन द्वारा सूचित किया गया था कि वह धारा 10 का लाभ नहीं उठा रहे थे और उस प्रावधान का लाभ नहीं मांग रहे थे। अतः डॉ. धवन ने कहा कि धारा 10 के तहत तर्कों को उनके द्वारा दिए गए तर्कों के रूप में पढ़ा जाए।

408. श्री परासरन ने कहा कि प्रतिवादी–सुन्नी वक्फ बोर्ड की ओर से पेश डॉ. धवन के तर्क इस आधार पर आगे बढ़ते है कि वादी न्यायिक व्यक्ति नहीं हैं और निर्मोही अखाड़ा के महंत प्रथम व द्वितीय वादी दोनों के लिए एक वैध सेवायत हैं। परिसीमा के मुद्दे पर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों ने सर्वसम्मति से वादी के पक्ष में अवधारित किया (सिवाय इसके कि न्यायमूर्ति एस यू खान ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया कि क्या दूसरी वादी एक न्यायिक व्यक्ति है)। इसलिए श्री परासरन ने कहा कि परिसीमा का मुद्दा वाद 5 में विवाद्यक 1, 6 और 8[239] पर इस न्यायालय के निष्कर्षों पर निर्भर करेगा और इस प्रसंग में कि ये विवाद्यक वाद 5 में वादी के पक्ष में

---

239 विवाद्यक 1: क्या प्रथम और द्वितीय वादी न्यायिक व्यक्ति हैं।

विवाद्यक 6: क्या तृतीय वादी को वादी 1 और 2 के वाद मित्र के रूप में प्रतिनिधित्व करने का हकदार है और क्या इस कारण वाद सक्षम नही है।

विवाद्यक 8: क्या प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा विवादित ढाँचें में स्थित भगवान श्री राम का "सेवायत" है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवधारित किए गए हैं, परिणामस्वरूप प्रतिवादियों का हमला परिसीमा से वर्जित होने के कारण विफल हो जाएगा।

409. आरंभ में, यह अभिलिखित करना आवश्यक है कि वर्तमान निर्णय के अनुक्रम में, यह अवधारित किया गया है कि:

(i) निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत होने के अपने मामले को स्थापित करने में विफल रहा है;

(ii) पहले(i) के परिणामस्वरूप, वाद 5 की पोषणीयता को इस आधार पर चुनौती कि सेवायत के रूप में केवल निर्मोही अखाड़ा द्वारा ही वाद संस्थित किया जा सकता था, यह विफल होना चाहिए; और

(iii) वाद 5 में प्रथम वादी एक न्यायिक व्यक्ति है।

इसलिए परिसीमा के मुद्दे को उपरोक्त स्थिति के आधार पर संबोधित किया जाएगा।

अनिवार्य रूप से, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने अपने तर्कों के दौरान तीन व्यापक आधारों पर परिसीमा पर उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को चुनौती दी:

(i) वाद 5 को तब संस्थित नहीं किया जा सकता था, जब देवता का उसके सेवायत के माध्यम से 'अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व' किया जा रहा था, जिसके आचरण के खिलाफ कोई शिकायत नहीं है और चूंकि सेवायत को हटाने की मांग नहीं की गई है;

(ii) शाश्वत अवयस्क होने के कारण देवता का बचाव, वादी की सहायता नहीं कर सकता है क्योंकि देवता का प्रतिनिधित्व एक सेवायत द्वारा किया जा रहा है और एक वाद मित्र द्वारा वाद तभी किया जा सकता है जब सेवायत ने देवता के हित के प्रतिकूल कार्य किया हो; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि परिसीमा के प्रयोजन के लिए देवता अवयस्क नहीं है।

ऊपर उल्लिखित पहला और दूसरा आधार अब इस निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत नहीं था और इसलिए वाद 5 को वाद मित्र की ओर से पोषणीय होना अवधारित किया गया है।

इस चरण पर जो मुद्दा विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या वाद 5 को इस आधार पर परिसीमा के भीतर होना अवधारित किया जा सकता है कि देवता एक शाश्वत अवयस्क है। इसे फिर से दोहराना आवश्यक है कि वाद 5 में वादी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी एस वैद्यनाथन का तर्क केवल प्रथम वादी को शासित करेगा जिसे एक न्यायिक व्यक्ति माना गया है।

विश्राम की एक विधि

410. परिसीमा की विधि एक ऐसे क़ानून में सन्निहित है जो विश्राम या शांति के सिद्धांत आधारित है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **पुंडलिक जालम पाटिल बनाम अधिशाषी अभियंता, जलगांव मध्यम परियोजना**[240] में अवधारित किया गया।

> "परिसीमा का असीमित और शाश्वत खतरा, असुरक्षा और अनिश्चितता पैदा करता है; सार्वजनिक व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की परिसीमा आवश्यक है..."

परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता को सादृश्य या निहितार्थ द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता है। शाश्वत दावे का अधिकार एक

---

240 (2008) 17 एससीसी 448

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विशिष्ट स्थिति में सन्निहित है जिसे धारा 10 में संदर्भित किया गया है और प्रावधान के दायरे को निहितार्थ के मामले के रूप में नहीं बढ़ाया जा सकता है। 1929 से पहले, धारा 10 को निम्नलिखित शब्दों में रखा गया था:

> "10. न्यासियों और उनके प्रतिनिधियों के विरूद्ध वाद– इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबन्धों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हुई हो अथवा उसके विधिक प्रतिनिधियों या समनुदेशितियों के विरूद्ध (जो मूल्यवान प्रतिफलार्थ समनुदेशिती न हों) उसके या उनके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उसके आगमों के अनुगामी प्रयोजन से या उस संपत्ति या उसके आगमों के लेखा के लिए कोई वाद कितना भी समय बीत जाने के कारण वर्जित न होगा।"

भारतीय परिसीमा (संशोधन) अधिनियम 1929 (वर्ष 1929 का 1) द्वारा धारा 10 में एक स्पष्टीकरण जोड़कर संशोधन किया गया। यथा संशोधित, प्रावधान निम्न प्रकार है:

> "10. अभिव्यक्त न्यासियों और उनके प्रतिनिधियों के विरूद्ध वाद – इसमें एतस्मिनपूर्व अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी , किसी ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हो गई हो अथवा उसके विधिक प्रतिनिधियों के या समनुदेशितियों के विरूद्ध (जो मूल्यवान प्रतिफलार्थ समनुदेशिती न हो) उसके या उनके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उसके आगमों के अनुगामी प्रयोजन से या उस संपत्ति या उसके आगमों के लेखा के लिए कोई वाद कितना भी समय बीत जाने के कारण वर्जित न होगा।"

411. संशोधन की पृष्ठभूमि को **विद्या वरूथि तीर्थ बनाम बालुसामी अय्यर**[241] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर विचार करके समझा जाता है। संपत्ति के अंतरण से निपटते हुए, निर्णय का व्यापक निहितार्थ था, जिसके कारण 1929 में वैधानिक परिवर्तन हुए। प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया:

---

241 एआईआर 1922 पीसी 123

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "हिन्दू और मुस्लिम पूर्त संस्थानों से संबंधित सामान्य विधि की उपर्युक्त समीक्षा, प्रथम दृष्टतया इसका अनुसरण करेगी कि **एक प्रबंधक या किसी भी नाम के वरिष्ठ द्वारा अन्तरण को न्यासी के कार्य के रूप में नहीं माना जा सकता है जिसे न्यास में संपत्ति दी गई है और उसके आधार पर उसमें निहित क्षमता है, जो आंग्ल विधि में एक "न्यासी" को प्राप्त है।** बेशक, एक हिंदू या एक मुस्लिम किसी विशिष्ट व्यक्ति को एक विशिष्ट और निश्चित उद्देश्य के लिए एक विशिष्ट संपत्ति न्यास में दे सकता है, और स्वयं को अभिव्यक्त रूप से आंग्ल विधि के अधीन कर सकता है, जब वह व्यक्ति जिसे विधिक स्वामित्व हस्तांतरित किया जाता है, तो वह विशिष्ट अर्थ में एक न्यासी बन जाएगा।" (प्रभाव वर्धित)

प्रबन्धक द्वारा अन्तरण एक ऐसे न्यासी का कृत्य नहीं माना गया जिसे न्यास में संपत्ति उसी अर्थ में दी गयी हो जिस अर्थ में इस पद का आंग्ल विधि में प्रयोग किया गया था। 1929 के संशोधन के फलस्वरूप, एक अभिगृहित कल्पना पेश की गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप एक हिंदू, मुस्लिम या बौद्ध धार्मिक या धर्मार्थ धर्मदाय में शामिल संपत्ति को एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए न्यास में निहित संपत्ति माना गया।

धारा 10 निम्न के विरूद्ध दायर मुकदमों पर लागू होती है:

(i) कोई व्यक्ति, जिसमें संपत्ति किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास में निहित हो गई है; और

(ii) विधिक प्रतिनिधि और ऐसे न्यासी के समनुदेशिती।

हालांकि, यह मूल्यवान विचार के लिए इस तरह के न्यासी के समुदेशिती को कवर नहीं करता है। वाद निम्न उद्देश्य के लिए दायर किया जा सकता है:

(i) न्यासी के हस्तगत ऐसी संपत्ति का;

(ii) न्यासी के हस्तगत ऐसी संपत्ति के आगमों का; और

(iii) ऐसी संपत्ति या आगमों के लेखे के लिए।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धारा 10 के शुरुआती शब्दों में "के द्वारा या के विरूद्ध" जैसे शब्दों की अनुपस्थिति महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, यह धारा न्यासी द्वारा तीसरे पक्ष के विरूद्ध किए गए वादों पर लागू नहीं होती है। (इस संदर्भ में **पलानिअंदी ग्रामनी मणिकम्मल वी बनाम मुरुगप्पा ग्रामनी**[242] में मद्रास उच्च न्यायालय की खण्ड़पीठ का निर्णय भी देखें)। धारा 10, वाद 5 पर प्रयोज्य नहीं है।

शाश्वत अवयस्कता का तर्क

412. वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री सी. एस वैद्यनाथन ने कहा कि मूर्ति विधिक कल्पना द्वारा अवयस्क है। इसलिए अवयस्क के खिलाफ कोई प्रतिकूल हक हासिल नहीं किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, डॉ. राजीव धवन ने कहा कि हालांकि एक मानव अभिकरण के माध्यम से मुकदमा करने के सिवाय मुकदमा करने की असमर्थता के कारण देवता को अवयस्क माना जाता है, लेकिन परिसीमा के प्रयोजनों के लिए देवता अवयस्क नहीं है। उन्होंने कहा कि **बिश्वनाथ बनाम श्री ठाकुर राधा बल्लभजी**[243] में यह सिद्धांत कि देवता एक स्थायी अवयस्क है, परिसीमा के संदर्भ में नहीं दिया गया था।

413. **बिश्वनाथ** में, इस न्यायालय को यह निर्णय लेना था कि यदि सेवायत मूर्ति के हित के विपरीत कार्य करता है तो क्या मूर्ति की ओर से निष्कासन के लिए एक उपासक वाद चला सकता है। मुख्य न्यायाधीश सुब्बा राव ने इस न्यायालय की दो–न्यायाधीश पीठ के लिए बोलते हुए इस प्रकार अवधारित किया:

> "10.सवाल यह है कि क्या ऐसा व्यक्ति उस मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है जब सेवायत इसके हित के प्रतिकूल कार्य करता है और इसके

242 एआईआर 1935 मद्रास 438
243 (1967) 2 एससीआर 618

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हितों की रक्षा के लिए कार्यवाही करने में विफल रहता है। सिद्धांत रूप में हमें उपासक के लिए इस तरह के अधिकार से इनकार करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है। **एक मूर्ति एक अवयस्क की स्थिति में है जब इसका प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति इसे एक अधर में छोड़ देता है, तो मूर्ति की उपासना में हितबद्ध व्यक्ति को निश्चित रूप से इसके हित की रक्षा के लिए प्रतिनिधित्व की तदर्थ शक्ति आवृत्त हो सकती है। यह एक कठिन स्थिति के लिए एक व्यावहारिक, फिर भी एक विधिक समाधान है।** क्या यह माना जाना चाहिए कि एक सेवायत, जिसने संपत्ति हस्तांतरित की, केवल प्रत्युद्धरण के लिए एक वाद ला सकता है, अधिकांश मामलों में यह सेवायत के कर्तव्य के तिरस्कार की अप्रत्यक्ष स्वीकृति होगी, अधिकत्तर, वह अपनी चूक को स्वीकार नहीं करेगा और अन्य तकनीकी दलीलों के अलावा जो एक वाद में अंतरिति के लिए खुले हो सकते हैं, संपत्ति की वसूली के लिए कदम उठाएगा। क्या यह माना जाना चाहिए कि एक उपासक केवल एक सेवायत को हटाने के लिए और दूसरे की नियुक्ति के लिए मुकदमा दायर कर सकता है ताकि उसे संपत्ति की वसूली के लिए कदम उठाने में सक्षम बनाया जा सके, इस तरह की प्रक्रिया एक लंबी और जटिल होगी और मूर्ति का हित अपूरणीय रूप से प्रभावित हो सकता है। **इसीलिए विनिर्णयों द्वारा ऐसी परिस्थितियों में एक उपासक को मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने और मूर्ति के लिए संपत्ति की वसूली करने की अनुमति दी गयी है। यह कई निर्णयों द्वारा अवधारित किया गया है कि उपासक एक धर्मदाय की ओर से संपत्ति के कब्जे की प्रार्थना करते हुए एक वाद दायर कर सकते हैं।**..."

(प्रभाव वर्धित)

414. उस मामले में मुकदमा श्री ठाकुर राधा बल्लभजी द्वारा संस्थित किया गया था, देवता का अचल संपत्ति के कब्जे और मध्यवर्ती लाभ के लिए एक वाद मित्र द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया। वादी का मामला यह था कि दूसरा प्रतिवादी, जो सरवरकर और प्रबंधक था, उसने संपत्ति को पहले प्रतिवादी को हस्तांतरित कर दिया था और बिक्री आवश्यकता के लिए या मूर्ति के लाभ के लिए नहीं थी, यह देवता पर बाध्यकारी नहीं थी। विचारण न्यायालय और अपील दोनों में, उच्च न्यायालय ने माना कि बिक्री देवता के लाभ के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए नहीं थी और प्रतिफल पर्याप्त नहीं था। लेकिन यह कहा गया कि कब्जे के लिए मुकदमा केवल सेवायत द्वारा दायर किया जा सकता था तथा कोई और देवता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता था। यह उस संदर्भ में था, कि इस न्यायालय ने यह अवधारित किया कि सिद्धांत रूप में हस्तांतरण को चुनौती देते हुए एक वाद संस्थित करने के लिए एक उपासक को एक स्थान रूप देने से इनकार करने का कोई कारण नहीं था, जब सेवायत ने देवता के हित के प्रतिकूल कार्य किया था। यह अवलोकन कि मूर्ति एक अवयस्क की स्थिति में है, परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में नहीं किया गया था। अवलोकन यह निर्णीत करने के संदर्भ में था जब प्रबंधक ने देवता के हित के प्रतिकूल कार्य किया था तो क्या एक उपासक द्वारा वाद किया जा सकता था। यह सिद्धांत कि मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है, इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि मूर्ति को परिसीमा अधिनियम 1963 की प्रयोज्यता से छूट दी गई है।

415. बी के मुखिया के **"द हिन्दू लॉ ऑफ रिलिजियस एण्ड़ चैरिटेबल ट्रस्ट"**[244] में, विधिक स्थिति संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत की गई है:

> "एक हिंदू मूर्ति को कभी–कभी एक शाश्वत शिशु के रूप में बोला जाता है, लेकिन यह सादृश्यता न केवल गलत है, बल्कि सकारात्मक रूप से भ्रामक है। हिंदू विधि के नियमों में इस तरह के सिद्धांत का कोई आह्वाहन नहीं है और जैसा कि सुरेंद्र बनाम श्री श्री भुवनेश्वरी में रैंकिन, सीजे द्वारा अवलोकन किया गया था, यह दामोदर दास बनाम लखन दास में ऐसे मामलों में न्यायिक समिति के निर्णय के विपरीत एक असाधारण सिद्धांत है। यह सच है कि एक शिशु की तरह देवता विधिक अक्षमता से ग्रसित है और किसी अभिकर्ता के माध्यम से कार्य करता है और देवता के सेवायत तथा एक शिशु के संरक्षक की शक्तियों के बीच

---

244 बी के मुखिया, द हिन्दू लॉ ऑफ रिलिजियस एण्ड़ चैरिटेबल ट्रस्ट, 5 वां संस्करण, ईस्टर्न लॉ हाउस, (1983) पृष्ठ 256–257 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समानता भी है। लेकिन सादृश्यता वास्तव में वहाँ समाप्त होती है। **परिसीमा अधिनियम के प्रयोजनों के लिए मूर्ति किसी भी विशेषाधिकार का उपभोग नहीं करती है और संविदात्मक अधिकारों के बारे में भी मूर्ति की स्थिति किसी अन्य कृत्रिम व्यक्ति की तरह ही है। अवयस्कों या अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों द्वारा वाद से संबंधित सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान कम से कम एक मूर्ति पर लागू नहीं होते हैं; और इस परिकल्पना पर प्रक्रिया के कानून का निर्माण करना कि मूर्ति एक शिशु है, यह प्रकट रूप से अवांछनीय और विसंगति पैदा करेगा।"**[245]

(प्रभाव वर्धित)

ये एक दूरदर्शी न्यायाधीश के दूरदर्शी शब्द हैं। वर्षों से न्यायालयों ने मूर्ति के विधिक स्वरूप पर एक अवयस्क और इस विधिक परिकल्पना के परिणामों को स्पष्ट किया है।

416. 1903–4 में, प्रिवी काउंसिल **महाराजा जगदीन्द्र नाथ राय बहादुर बनाम रानी हेमंत कुमारी देबी** [246] में एक ऐसे मामले से संबंधित था, जहां वादी ने एक मूर्ति के सेवायत के रूप में अपनी क्षमता में, किसी संपत्ति में मालिकाना हक के लिए वाद संस्थित किया। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि मूर्ति संपत्ति धारण करने में सक्षम एक विधिक व्यक्ति है, इसलिए उसके विरूद्ध परिसीमा काल अंतरण की तिथी से प्रारम्भ हो गई थी और इसलिए सेवायत द्वारा किया गया वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था।

प्रिवी काउंसिल ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के साथ इस पर सहमति व्यक्त की, कि एक न्यायिक व्यक्ति होने के नाते, मूर्ति संपत्ति धारण करने में सक्षम थी। हालाँकि, परिसीमा काल अवशेष था क्योंकि जब वाद हेतुक उत्पन्न हुआ, तो सेवायत जिसका संपत्ति पर कब्जा और प्रबंधन था, वह

---

245 अशिम कुमार बनाम नरेन्द्र 76 सीडब्ल्यूएन 1016

246 (1903-04) 31 आईए 203

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवयस्क था। इसलिए प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया कि मूर्ति में निहित संपत्ति की सुरक्षा के लिए वाद संस्थित करने का अधिकार, सेवायत के वयस्कता प्राप्त करने के तीन साल के भीतर लाया जा सकता है। सर आर्थर विल्सन ने अभिनिर्धारित किया:

> "लेकिन धार्मिक समर्पण को कठोर प्रकृति का मानते हुए भी, यह अभी भी बना हुआ है कि समर्पित संपत्ति का कब्ज़ा और प्रबंधन सेवायत से संबद्ध है। और इसके साथ यह अधिकार है कि संपत्ति की सुरक्षा के लिए जो भी वाद आवश्यक हों, उसे लाने का अधिकार है। वाद लाने का ऐसा हर अधिकार सेवायत में निहित है, मूर्ति में नहीं। और वर्तमान मामले में मुकदमा चलाने का अधिकार वादी को तब प्राप्त था जब वह अल्पवयस्क था। इसलिए मामला परिसीमा अधिनियम की धारा 7 की स्पष्ट भाषा के अन्तर्गत आता है, जो कहता है कि, "यदि कोई व्यक्ति एक वाद संस्थित करने का हकदार है ... तो, उस समय से जहाँ से परिसीमा की अवधि की गणना की जानी है, अवयस्क है", तो वह एक समय के भीतर जो वर्तमान मामले में तीन वर्ष होगी, आयु प्राप्त करने के पश्चात् वाद संस्थित कर सकेगा।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

वाद का परिसीमा के भीतर होना, यह मानने का आधार यह नहीं था कि मूर्ति परिसीमा विधि के अधीन नहीं थी, बल्कि यह कि कार्यवाही प्रोद्भूत की तिथी पर वह अवयस्क था। सेवायत के वयस्कता प्राप्ति के तीन साल के भीतर वाद संस्थित किया जा सकता था।

417. 1909–10 में प्रिवी काउंसिल द्वारा **महन्त दामोदर दास बनाम अधिकारी लखन दास**[247] में एक निर्णय दिया गया था जहां महंत के निधन के बाद उत्तराधिकार के संबंध में एक मठ के वरिष्ठ चेला और कनिष्ठ चेला के बीच विवाद था। यह एक इकरारनामा दिनांकित 3 नवंबर, 1874 से

---

247 (1909-10) 37 आईए 147

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुलझाया गया था। इकरारनामा के अन्तर्गत भद्रक में एक मठ को शाश्वत रूप से वरिष्ठ चेला और उसके उत्तराधिकारियों को आवंटित किया गया था, जबकि बिविसराय में मठ को और उससे जुड़ी संपत्तियों को एक *'अधिकारी'* की क्षमता में कनिष्ठ चेला को आवंटित किया गया था, जो भद्रक *मठ* के खर्चों के लिए रू. 15 लाख के वार्षिक संदाय के अधीन था। वरिष्ठ चेला की मृत्यु के बाद, बिविसराय में मठ के कब्जे के लिए उसके उत्तराधिकारी द्वारा एक वाद संस्थित किया गया। यह तर्क दिया गया था कि संपत्ति वादी की मूर्ति की उपासना और सेवा के लिए समर्पित थी और एक *अधिकारी* की क्षमता में कनिष्ठ चेला द्वारा धारित की गयी थी। प्रतिवादी ने यह दावा करते हुए परिसीमा को प्रतिरक्षा के रूप में स्थापित किया कि न तो वादी का और न ही उसके पूर्ववर्ती का, वाद के संस्थन से पहले बारह साल के भीतर विवादित संपत्ति पर कब्जा था। विचारण न्यायालय ने अवधारित किया कि मुकदमा परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस आधार पर डिक्री को उलट दिया कि प्रतिवादी ने विवादित मठ को बारह साल से अधिक समय तक प्रतिकूल रूप से रखा था। प्रिवी काउंसिल ने वरिष्ठ चेला की दलील को खारिज कर दिया कि वरिष्ठ चेला की मृत्यु पर वाद हेतुक उत्पन्न हुआ और उच्च न्यायालय के इस फैसले की पुष्टि की कि मुकदमा वरिष्ठ चेला की मृत्यु के बारह साल के भीतर, लेकिन इकरारनामा के सत्ताइस साल बाद संस्थित किए जाने से परिसीमा द्वारा बाधित था। सर आर्थर विल्सन ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

> "उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने ठीक ही अवधारित किया है कि कानून की दृष्टि से *इकरारनामा* द्वारा विचारित संपत्ति इसकी तिथि से पहले इसे महंत में निहित नहीं मानी गयी, बल्कि विधिक इकाई में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> अर्थात् मूर्ति में निहित मानी गयी क्योंकि महंत केवल उनका प्रतिनिधि और प्रबंधक है। और यह इस बात से निकलता है कि विद्वान न्यायाधीश आगे यह अभिनिर्धारित करने में सही थे कि *इकरारनामा* की तारीख से, उस *इकरारनामा* की शर्तों के आधार पर, जूनियर चेला का कब्जा मूर्ति के अधिकार और उस मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ चेला के अधिकार के प्रतिकूल था और इसलिए, वर्तमान वाद परिसीमा द्वारा बाधित था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

यद्यपि उपरोक्त टिप्पणियों में विशेष रूप से इस बात पर कोई विचार नहीं किया गया था कि क्या एक मूर्ति को स्थायी अवयस्क माना जा सकता है, प्रिवी काउंसिल ने स्पष्ट शब्दों में अवधारित किया कि मूर्ति के अधिकार के विरूद्ध प्रतिकूल कब्जे का अभिवचन उपलब्ध था और इसलिए वाद परिसीमा द्वारा बाधित था।

418. **छत्र मल बनाम पंचु लाल**[248] में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस पर विचार किया कि क्या एक मूर्ति एक स्थायी अवयस्क होने के नाते अक्षमता से ग्रसित है और इसलिए अंतरण की तिथी के बाद किसी भी अवधि में एक मूर्ति द्वारा वाद परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के तहत परिसीमा की वर्जना से सुरक्षित रहेगा। शास्त्री के "**हिन्दू लॉ**"[249] के पांचवें संस्करण में निम्नलिखित राय के आधार पर तर्क प्रस्तुत किया गया।

> "परिसीमा के संबंध में यह विचार किया जाना चाहिए कि क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 7, किसी हिंदू देवता से संबंधित संपत्ति के सेवायत द्वारा अनुचित हस्तांतरण को अपास्त करने के लिए किए गए वाद पर लागू नहीं है। चूंकि भगवान अपनी संपत्ति का प्रबंधन करने में असमर्थ हैं , इसलिए उन्हें परिसीमा के उद्देश्य के लिए एक स्थायी अवयस्क माना जाना चाहिए।"

हालांकि, खण्ड़ पीठ ने अवधारित किया:

---

248 एआईआर 1926 ऑल 392

249 अध्याय 1926, 5 वाँ संस्करण पृष्ठ 769 पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "...सादर, यह इंगित किया जा सकता है कि एक अवयस्क द्वारा हस्तांतरण में उचित या अनुचित हस्तांतरण का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। संविदा अधिनियम के तहत एक अवयस्क द्वारा अंतरण शून्य होगा और न कि केवल शून्यकरणीय होगा: मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष [(1902) आई.एल.आर., 30 कलकत्ता, 539]। यदि नियम लागू कर दिया जाये तो देवता की संपत्ति को बाजार में कोई मूल्य नहीं मिलेगा, जब मंदिर के लाभ के लिए इसे अंतरित करने की आवश्यकता उत्पन्न हो, जहां मूर्ति स्थापित की जा सकती है... इसलिए हमारे पास वादी के तर्क को स्वीकार करने से मना करने का स्पष्ट प्राधिकार है।"

इस दृष्टिकोण को अपनाने में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने **महाराजा जगदींद्र नाथ** और **दामोदर दास** में प्रिवी काउंसिल के निर्णयों पर अवलम्बन लिया।

419. स्थायी अवयस्क की परिकल्पना को मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा **रामा रेड्डी बनाम रंगदसन**[250] में अपनाया गया था। उस मामले में, वादी ने 1918 में मंदिर के प्रबंधक के रूप में वादी के एक पूर्वज को दी गई संपत्ति पर कब्जा प्राप्त करने के लिए वादग्रस्त मंदिर के पुजारी और न्यासी के रूप में एक वाद संस्थित किया गया। विवादित संपत्ति को प्रतिवादी सं. 1 और 2 (वादी के पिता और चाचा) द्वारा 1893 में प्रतिवादी सं. 3 को बेच दिया गया था। यह वादी का तर्क था कि संपत्ति को एक पुजारी के रूप में सेवा प्रदान करने के लिए उसके परिवार को सेवा इनाम के रूप में दिया गया था और हस्तांतरण वैध नहीं था। जिला मुंसिफ ने वाद को परिसीमा द्वारा बाधित के रूप में खारिज कर दिया और अपील पर, अधीनस्थ न्यायाधीश ने इसको उलट दिया और मुकदमे को वापस लिया। जिला मुंसिफ ने फिर से मुकदमा खारिज कर दिया और अपील पर, जिला न्यायाधीश ने डिक्री की

---

250 एआईआर 1926 मद्रास 769

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पुष्टि की। निचली अपीलीय अदालत ने पाया कि वादी वादग्रस्त संपत्ति का पुजारी या न्यासी था और यह अवधारित किया कि वाद संपत्ति मंदिर से संलग्न थी। वादी ने एक दूसरी अपील दायर की, जिसे एक एकल न्यायाधीश ने सुना, जिसने यह अवधारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था। एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध लेटर्स पेटेंट अपील में, खंडपीठ को यह अवधारण करना था कि क्या वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 134 या 144 द्वारा वर्जित किया गया था

420. उच्च न्यायालय ने **विद्या वरूथि तीर्थ बनाम बालुसामी अय्यर**[251] में निर्णय का उल्लेख किया जहां प्रिवी काउंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि मठ संपत्ति का एक स्थायी पट्टा, अनुदानकर्ता के जीवन से परे निर्वाह करने के लिए संपत्ति में कोई हित निर्मित नहीं कर सकता है और फलस्वरूप, अनुच्छेद 134 संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए अनुदानकर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा लाए गए वाद पर लागू नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि न्यासी अंतरिती को विधिमान्य हक नहीं दे सकता, इसलिए अनुच्छेद 134 लागू नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत उन मामलों पर लागू होगा जहां कोई व्यक्ति जो अपने स्वत्व का दावा कर सकता है, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के अधीन नियत अवधि के भीतर ऐसा नहीं करता है। एक मूर्ति की संपत्ति के संबंध में, न्यायमूर्ति देवदास ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

> "विधिक परिकल्पना यह है कि एक मूर्ति हर समय अवयस्क है और इसे स्थायी संरक्षण के अन्तर्गत होना चाहिए और ऐसा होने पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि मूर्ति कभी भी वयस्कता प्राप्त कर सकती है, और एक व्यक्ति जो मंदिर के न्यासी से हक प्राप्त करता है, वह मूर्ति के

---

251 एआईआर 1922 पीसी 123

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रतिकूल कोई भी हक प्राप्त नहीं कर सकता है, मूर्ति हर समय एक शिशु है और उत्तरवर्ती न्यासी किसी भी समय मूर्ति के लिए संपत्ति का प्रत्युद्धरण कर सकता है।"

यह उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि प्रबंधक मूर्ति की संपत्ति के प्रतिकूल हक स्थापित नहीं कर सकता है। यह निष्कर्ष निकाला गया कि परिणाम में, प्रबंधक अपने कार्य द्वारा एक ऐसे व्यक्ति को अनुमति नहीं दे सकता है जो एक प्रतिकूल हक का दावा करने के लिए उससे हक प्राप्त करता है।

सुरेंद्रकृष्ण रॉय बनाम श्री श्री ईश्वर भुवनेश्वरी ठकुरानी[252] में, कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जब किसी मूर्ति को समर्पित संपत्ति दूसरे के प्रतिकूल धारित की गई है और मूर्ति के साथ कोई वैश्वासिक संबंध नहीं है, तो परिसीमा चलेगी और अधिनियम के अनुच्छेद 144 द्वारा शासित होगी। स्थायी अवयस्कता के मुद्दे पर, मुख्य न्यायाधीश रैंकिन, ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:

"21.**मेरे निर्णय में यह सिद्धांत कि एक मूर्ति एक स्थायी अवयस्क है, *दामोदर दास बनाम लखन दास* [(1910) 37 कलकत्ता 885: 37 आईए 5147: 7 आईसी 240 (पीसी)] जैसे मामलों में न्यायिक समिति के निर्णय के विपरीत एक असाधारण सिद्धांत है।** देवोत्तर प्रयोजनों के लिए मूर्ति की संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए वाद लाने का विकल्प सेवायत या धर्मदाय में हितबद्ध किसी भी व्यक्ति पर है..."

(प्रभाव वर्धित)

उच्च न्यायालय के निर्णय की **श्री श्री ईश्वरी भुबनेश्वरी ठकुरानी बनाम ब्रजनाथ डे**[253] में प्रिवी काउंसिल द्वारा पुष्टि की गई थी।

---

252 एआईआर 1933 कलकत्ता 295

253 (1936-37) 64 आईए 203

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

421. **मस्जिद, शाहिद गंज मस्जिद बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर**[254] में, प्रिवी काउंसिल ने विचार किया कि क्या एक मस्जिद को एक न्यायिक व्यक्ति माना जा सकता है और प्रतिकूल कब्जे के अधीन हो सकता है। सर जॉर्ज रेंकिन ने अभिनिर्धारित किया:

> "यह कि मुसलमानों के लिए प्रार्थना स्थल के रूप में और हिंदू धर्म के व्यक्तिगत देवताओं को समर्पित एक इमारत की विधिक स्थिति के बीच कोई कथित सादृश्यता होनी चाहिए, यह न्यायाधीशों के लिए कुछ आश्चर्य का विषय है। यह प्रश्न कि क्या एक ब्रिटिश भारतीय न्यायालय, विधि के न्यायालय में सुने जाने के अधिकार के रूप में एक मस्जिद को मान्यता देगा, यह एक प्रक्रिया का प्रश्न है। ब्रिटिश भारत में न्यायालय प्रक्रिया के मामलों में मुस्लिम कानून का पालन नहीं करते हैं [जाफरी बेगम बनाम अमीर मोहम्मद खान [आई.एल.आर. 7 ऑल 822 पृष्ठ 841 पर, 842 (1885)], न्यायमूर्ति महमूद के अनुसार] इससे अधिक वे साक्ष्य के प्राचीन मुस्लिम नियमों के मुस्लिम आपराधिक कानून लागू करते हैं। साथ ही हिंदू या मुस्लिम विधि को लागू करने में न्यायालयों की प्रक्रिया को उन कानूनों के लिए उपयुक्त होना चाहिए जो वे लागू करते हैं। इस प्रकार भारत में प्रक्रिया, आवश्यक रूप से, हिंदू धर्म के बहुदेववादी और अन्य विशेषताओं को ध्यान में रखती है और हिंदू विधि के कुछ सिद्धांतों को आवश्यकता के रूप में मान्यता प्रदान करती है, उदाहरणार्थ, एक मूर्ति संपत्ति का मालिक हो सकता है। **हमारे न्यायालयों की प्रक्रिया एक मूर्ति या देवता के नाम पर वाद करने की अनुमति देती है, हालांकि वाद का अधिकार वास्तव में सेवायत में है। [जगदींद्रनाथ बनाम हेम्मत कुमारी [एल.आर. 31 आई.ए. 203: एस.सी. 8 सी.डब्ल्यू.एन. 609 (1605)]] इन सिद्धांतों में अत्यधिक कठिनाईयां आती हैं–विशेष रूप से, अंतर के संबंध में, यदि कोई हो, जो देवता और छवि के बीच किया जाना उचित है। [भूपति नाथ बनाम राम लाल [आई.एल.आर. 37 कलकत्ता 128, 153: एस.सी. 14 सी.डब्ल्यू.एन. 18 (1910)] ,गोलपचंद्र सरकार, शास्त्री का "हिंदू लॉ", 7 वां संस्करण पृष्ठ 865 वगैरह]। किंतु इसमें कभी कोई संदेह नहीं रहा है कि हिन्दू धार्मिक धर्मदाय की संपत्ति –ठाकुरबरी सहित–**

---

254 एआईआर 1940 पीसी 116

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिसीमा विधि के अध्यधीन है। [दामोदर दास बनाम लखन दास [एलआर 37 आई.ए. 147: एससी 14 सी.डब्ल्यू.एन. 889 (1810)] और श्री श्री ईश्वरी भुबनेश्वर ठाकुरानी बनाम ब्रज नाथ डे [एल.आर. 64 आई.ए. 203: एस. सी. 41 सी. डब्ल्यू. एन. 968 (1937)]]। इन विमर्शों से लेकर हिंदू कानून तक कोई भी सामान्य लाइसेंस काल्पनिक व्यक्तियों के आविष्कार के लिए नहीं लिया जा सकता है।...”

(प्रभाव वर्धित)

यह इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया था:

"वर्तमान प्रश्नगत संपत्ति पर वक्फ के प्रतिकूल और 12 साल से अधिक समय तक इसके अन्तर्गत सभी हितों के लिए सिखों का कब्जा है, वक्फ के प्रयोजनों के लिए मुतावाली का कब्जे का अधिकार, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के तहत समाप्त हो गया और व्यवस्थापक या *वाकिफ* से समर्पण के तहत व्युत्पन्न हक धारा 28 के तहत समाप्त हो गया। ब्रिटिश भारतीय न्यायालयों के किसी भी प्रयोजन के लिए संपत्ति अब "उनकी सृष्ट वस्तुओं के परिणामस्वरूप ईश्वर की संपत्ति" नहीं रही।..."

तरित भूषण राय बनाम श्री श्री ईश्वर श्रीधर सालगराम शिला ठाकुर[255] में कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के एक फैसले में, न्यायमूर्ति नसीम अली ने हिंदू विधि में एक अवयस्क और एक मूर्ति की स्थिति के बीच अंतर के बिन्दु और समानताओं को नोट किया:

“ एक अवयस्क और एक हिन्दू मूर्ति के मध्य समानता के निम्न बिन्दु हैं: (1) दोनों में संपत्ति का स्वामित्व रखने की क्षमता है। (2) दोनों अपनी सम्पत्ति का प्रबंधन करने और अपने हितों का संरक्षण करने में असमर्थ हैं। (3) दोनों की संपत्ति किसी अन्य मानव द्वारा प्रबंधित और संरक्षित की जाती है। अवयस्क का प्रबंधक उसका विधिक संरक्षक है और मूर्ति का प्रबंधक उसका सेवायत है। (4) उनके प्रबंधकों की शक्तियां समान हैं। (5) दोनों को वाद करने का अधिकार प्राप्त है। (6) धारा 11 का वर्जन और सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 9, नियम 9, दोनों पर लागू होता है।

255 एआईआर 1942 कलकत्ता 99

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दोनों के बीच अंतर के निम्न बिंदु हैं: **(1) हिन्दू मूर्ति एक न्यायिक या कृत्रिम व्यक्ति है लेकिन अवयस्क एक प्राकृतिक व्यक्ति है।** (2) हिन्दू मूर्ति अपने स्वंय के हित के लिए साथ ही साथ अपने उपासकों के हित के लिए विद्यमान होती है लेकिन अवयस्क किसी अन्य व्यक्ति के हितों के लिए अस्तित्वमान नहीं होता है। (3) संविदा अधिनियम (सारवान विधि) ने अवयस्क की संविदा करने की विधिक क्षमता को छीन लिया है लेकिन हिन्दू मूर्ति की संविदा करने की विधिक क्षमता को इस अधिनियम द्वारा या किसी अन्य संविधि द्वारा प्रभावित नहीं किया गया है। **(4) परिसीमा अधिनियम (एक विशेषण विधि) ने किसी अवयस्क को परिसीमा वर्जन के प्रवर्तन से छूट दी है किंतु यह संरक्षण हिन्दू मूर्ति को विस्तारित नहीं किया गया है। उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि अवयस्क और हिन्दू मूर्ति के मध्य कुछ सादृश्यता है लेकिन बाद वाला न तो अवयस्क न ही शाश्वत अवयस्क है।"**

(प्रभाव वर्धित)

राधाकृष्ण दास बनाम राधारमण स्वामी[256] में उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष, वादी देवता को उसके अभिषेक के मूल स्थान पर पुनर्स्थापित करने का निर्देश देने के लिए वादी देवता के वाद मित्र द्वारा एक वाद संस्थित किया गया था। उच्च न्यायालय की खण्ड़ पीठ ने अवधारित किया कि एक मूर्ति को परिसीमा के प्रयोजनों के लिए एक अवयस्क नहीं माना जा सकता है और वादी के इस तर्क को खारिज कर दिया है कि देवता का अपने मंदिर में अवस्थित होने का अधिकार, देवता के अपनी ओर से कार्य करने की अक्षमता के कारण सतत अधिकार है। खण्ड़ पीठ ने अवधारित किया:

> "... मूर्ति निस्संदेह एक शिशु की स्थिति में है क्योंकि यह केवल एक सेवायत द्वारा या एक प्रबन्धक द्वारा कार्य कर सकता है। लेकिन हमे इस अवधारणा के लिए कोई प्राधिकार नहीं दिया गया है कि उसे एक स्थायी शिशु के रूप में माना जाए, ताकि उसके द्वारा या उसके विरूद्ध संव्यवहार को परिसीमा अधिनियम द्वारा शासित न किया जाए।

---

256 एआईआर 1949 उड़ीसा 1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> यह सिद्धांत कि एक मूर्ति एक स्थायी अवयस्क है, एक असाधारण सिद्धांत है क्योंकि देवोत्तर प्रयोजनों के लिए सेवायत या धर्मदाय के किसी व्यक्ति को मूर्ति की संपत्ति को पुनर्प्राप्त करने के लिए एक वाद लाने का अधिकार है। इसलिए मूर्ति एक प्राकृतिक व्यक्ति के रूप में परिसीमा विधि के अधीन है और इस आधार पर छूट का दावा नहीं कर सकती है कि वह एक स्थायी शिशु है। न ही सभी उद्देश्यों के लिए एक हिंदू देवता को अवयस्क माना जाता है। इसलिए एक मूर्ति परिसीमा विधि से छूट का दावा नहीं कर सकती है।"

एक अवयस्क के रूप में एक देवता की विधिक परिकल्पना को, देवता द्वारा विधिक कार्यवाहियों करने की अक्षमता को दूर करने के लिए विकसित किया गया है। अक्षमता को दूर करने के लिए एक मानव अभिकर्ता को देवता की ओर से कानूनी कार्यवाही करनी चाहिए। हालांकि देवता को परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट देने के लिए परिकल्पना को बढ़ाया नहीं गया है।

422. वर्तमान मामले में, यह स्थापित किया गया है कि देवता की ओर से कार्य करने के लिए वस्तुतः या विधितः सेवायत नहीं था। इसलिए सेवायत में निहित "वाद के अधिकार" के संदर्भ में और देवोत्तर संपत्ति के प्रतिकूल कब्जे के लिए परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता पर एक सेवायत की अनुपस्थिति के परिणाम के लिए इस न्यायालय के निर्णयों को संदर्भित करना उचित है। **राय साहिब डॉ. गुरदित्तमल कपूर बनाम महंत अमर दास चेला महंत राम सरन**[257] में इस अदालत ने एक मामले पर विचार किया, जहां प्रथम प्रतिवादी द्वारा 1957 में एक मुकदमा दायर किया गया था, जो सुल्तानविंद दरवाजा, अमृतसर के नव नियुक्त महंत थे। दूसरे प्रतिवादी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के तहत कार्यवाही में, महंत के पद से हटा दिया गया था और प्रथम प्रतिवादी को बाद में उनके स्थान पर नियुक्त किया गया था। यह

---

257 एआईआर 1965 एससी 1966

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आरोप लगाया गया था कि दूसरे प्रतिवादी द्वारा संपत्ति का अंतरण अनधिकृत था क्योंकि अंतरण विधिक आवश्यकता के लिए या संपत्ति के लाभ के लिए नहीं था। इसके अलावा यह तर्क दिया गया था कि इस तथ्य का कि अपीलकर्ता का बारह साल से अधिक समय तक भूमि पर कब्जा था, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता और चूंकि भूमि न्यास की संपत्ति थी , इसलिए इसके प्रत्युद्धरण के लिए वाद ऐसी संपत्ति के प्रबन्धक की मृत्यु, इस्तीफा या निष्कासन की तिथी से बारह साल के भीतर लाया जा सकता था। इस अदालत की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने अवधारित किया कि प्रथम प्रतिवादी द्वारा दायर किया गया मुकदमा खारिज किए जाने योग्य था क्योंकि अपीलार्थी का बारह साल से अधिक समय से प्रतिकूल कब्जा था। इस न्यायालय के लिए बोलते हुए, न्यायमूर्ति जे. आर. मुधोल्कर ने अवधारित किया कि अधिनियम की धारा 144 के प्रयोजनों के लिए, बिक्री के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता के "प्रभावी कब्जे" से, प्रतिकूल कब्जे की गणना की जानी है:

> "12... इस बिषय पर विधि को मुखर्जी के हिन्दू लॉ ऑफ रिलीजियस एण्ड़ चैरिटेबल ट्रस्ट के दूसरे संस्करण में पृष्ठ 274 और 275 पर बहुत स्पष्ट रूप से बताया गया है। **यह दर्शित किया गया है कि देवोत्तर संपत्ति की निष्पादन बिक्री के मामले में, मठ के पदधारी की मृत्यु की तारीख से नहीं, बल्कि बिक्री के परिणामस्वरूप प्रभावी कब्जे की तारीख से, जहाँ से क्रेता के प्रतिकूल कब्जे की शुरुआत हुई वहाँ से परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के प्रयोजनों के गणना की जानी है।...** इस प्रकार यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 को पहले के दो वादों में अखाड़े का प्रतिनिधित्व किया गया होना कहा जा सकता है, तो उनमें दी गयी डिक्री प्रत्यर्थी संख्या 1 पर बाध्यकारी होगी क्योंकि वह प्रत्यर्थी संख्या 2 के पद का उत्तराधिकारी है। दूसरी ओर यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 अखाड़े का प्रतिनिधित्व नहीं करता है, तो इन मुकदमों में पारित डिक्री के तहत

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपीलकर्ता का कब्जा स्पष्ट रूप से, प्रिवी काउंसिल के संदर्भित दो निर्णयों में लिए गए दृष्टिकोण के आधार पर, अखाड़ा के प्रतिकूल होगा। अपीलकर्ता द्वारा प्रतिकूल कब्जे के 12 साल से अधिक समय पूरा करने के बाद प्रथम प्रतिवादी के वाद को संस्थित किया गया है, इसलिए समय द्वारा बाधित होना अवधारित किया जाना चाहिए। इन कारणों से अधीनस्थ न्यायालयों से असहमत होने के कारण हम अधीनस्थ न्यायालयों की डिक्रियों को अपास्त करते हैं और सभी अदालतों में खर्चों के लिए प्रत्यर्थी संख्या 1 के मुकदमे को खारिज करते हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

423. इस न्यायालय के एक बाद के निर्णय **सरंगदेव पेरिया मतम बनाम रामास्वामी गौंडर (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण**[258] में, मठाधिपति ने विवादित संपत्ति के एक हिस्से को वार्षिक किराए पर वादीगणों के दादा को दिया था। 1883 से जब पट्टा दिया गया था और जनवरी 1950 तक, संपत्ति प्रत्यर्थियों के निर्बाध कब्जे में थी। 1915 में, उत्तराधिकारी के बिना मठाधिपति की मृत्यु हो गई और वादीगणों ने कोई किराया नहीं दिया। 1915 और 1939 के मध्य, कोई मठाधिपति नहीं था और कोई व्यक्ति बीस वर्षों से मठ के प्रबंधन में था। 1939 में एक मठाधिपति का चुनाव हुआ। 1928 में, मदुरई के कलेक्टर ने इनाम भूमि को फिर से शुरू करने के लिए एक आदेश पारित किया और भूमि के पूर्ण मूल्यांकन और इसके रखरखाव के लिए मठ को मूल्यांकन के भुगतान का निर्देश दिया। पुन: शुरू करने के बाद, भूमि के कब्जाधीन वादी और अन्य व्यक्तियों के नाम पर एक संयुक्त पट्टा जारी किया गया था। प्रत्यर्थियों ने जनवरी 1950 तक तब तक वाद भूमि पर कब्जा जारी रखा जब मठ ने कब्जा प्राप्त किया। 18 फरवरी 1954 को, प्रत्यर्थियों ने मठ के विरूद्ध वाद भूमियों के कब्जे के प्रत्युद्धरण का दावा करते हुए एक

---

258 एआईआर 1966 एससी 1603

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद संस्थित किया, मठ का प्रतिनिधित्व इसके तत्कालीन मठाधिपति और मठ के एक अभिकर्ता द्वारा किया गया था। विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री प्रदान की। अपील में, जिला न्यायाधीश ने डिक्री को अपास्त कर दिया और वाद को खारिज कर दिया। दूसरी अपील में, मद्रास के उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री को बहाल कर दिया। प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि उसने प्रतिकूल कब्जे से और इनाम को फिर से शुरू करने पर उसके पक्ष में रैयतवारी पट्टा जारी करने से, भूमि के लिए हक प्राप्त किया था। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि मठ की संपत्तियों के प्रत्युद्धरण के लिए मुकदमा करने का अधिकार कानूनी रूप से नियुक्त मठधिपति में निहित है और उसके विरूद्ध प्रतिकूल कब्जा उसकी नियुक्ति तक चलायमान नहीं होगा। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने उल्लेख किया कि एक मूर्ति की तरह ही मठ एक न्यायिक व्यक्ति है जिसे एक मानव अभिकरण के माध्यम से कार्य करना चाहिए और इसके विरूद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा पोषणीय था:

> "6. हम प्रत्यर्थियों के तर्क को स्वीकार करने को इच्छुक हैं। भारतीय परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 144 के अधीन मठ द्वारा या इसका प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा इससे संबंधित स्थावर संपत्तियों के कब्जे के वाद के लिए परिसीमा उस समय से प्रारंभ होती है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है। मठ धर्मदाय संपत्ति का मालिक है। **एक मूर्ति की तरह ही मठ एक न्यायिक व्यक्ति है जिसके पास संपत्ति प्राप्त करने, स्वामित्व रखने और कब्जा रखने की शक्ति होती है और मुकदमा करने और उसके विरूद्ध मुकदमा चलाने की क्षमता होती है। एक आदर्श व्यक्ति होने के नाते, इसे मानव अभिकरण के माध्यम से अपने सांसारिक मामलों के संबंध में आवश्यक कार्य करना चाहिए... यह चिरभोग द्वारा संपत्ति प्राप्त कर सकता है और इसी तरह प्रतिकूल कब्जे से संपत्ति खो सकता है।** यदि मठ का अपनी संपत्ति पर कब्जा है और इसे बेदखल कर दिया जाता है या यदि किसी अजनबी का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो इसे हानि होती है और संपत्ति के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> प्रत्युद्धरण के लिए मुकदमा करने का अधिकार है। यदि कानूनी रूप से नियुक्त मठाधिपति है, तो वह इसकी ओर से मुकदमा दायर कर सकता है; यदि नहीं, तो वस्तुतः मठाधिपति ऐसा कर सकते हैं, महालेव प्रसाद सिंह बनाम कोरिया भारती [(1934) एल. आर. 62 आईए 47, 50] देखें; और जहां, आवश्यक हो, मठ का कोई शिष्य या अन्य हिताधिकारी इसकी ओर से मुकदमा करने के प्राधिकार से एक रिसीवर की नियुक्ति द्वारा या न्यायालय द्वारा नियुक्त वाद मित्र द्वारा अपने नाम से वाद संस्थित करके इसके विधिक अधिकारों की रक्षा के लिए कदम उठा सकेगा। सम्यक् परिश्रम से, मठ या इसमें हितबद्ध व्यक्ति समय के चलने से बच सकते हैं। **अनुच्छेद 144 के तहत मठ के विरुद्ध परिसीमा, विधिक रूप से नियुक्त मठाधिपति की अनुपस्थिति से निलंबित नहीं होती है; स्पष्टतः, जहां यह वस्तुतः मठाधिपति द्वारा प्रबंधित की जाती है इसके विरूद्ध परिसीमा चलायमान होगी। विठलबोवा बनाम नारायण दाजी ठाइट [(1893) आईएलआर 18 बॉम्बे 507, 511] देखें, और हमें लगता है यह समान रूप से चलेगा, अगर कोई न तो विधितः और न ही वस्तुतः मठाधिपति है।**"

(प्रभाव वर्धित)

न्यायमूर्ति आरएस बचावत ने अवधारित किया कि जब संपत्ति का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो मठ के विरूद्ध एक विधितः या वस्तुतः मठाधिपति की अनुपस्थिति में भी परिसीमा चलायमान रहेगी। **महाराजा जगदिन्द्र नाथ** में प्रिवी काउंसिल के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने इस सिद्धांत का विस्तार करने से इनकार कर दिया कि "कब्जे के लिए वाद करने का अधिकार" संपत्ति के लिए "मालिकाना अधिकार" से पृथक करना है जो मूर्ति में निहित है:

> "8... सेवायत को भारतीय परिसीमा अधिनियम 1877 की धारा 7 का लाभ देने में, प्रिवी काउंसिल इस आधार पर आगे बढ़ी कि कब्जे के लिए मुकदमा करने का अधिकार उस संपत्ति के मालिकाना अधिकार से पृथक करना है जो मूर्ति में निहित है। हम जगदिंद्र नाथ राय मामले [आईएलआर 32 कलकत्ता 129, 141] की शुद्धता पर एक या दूसरे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तरीके से कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं। इस मामले के प्रयोजनों के लिए, यह कहना पर्याप्त है कि हम उस मामले के सिद्धांत का विस्तार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। उस मामले में, परिसीमा की अवधि शुरू होने पर, मूर्ति की ओर से मुकदमा करने के लिए एक सेवायत अस्तित्व में था, और वाद के संस्थन पर उसने सफलतापूर्वक दावा किया कि जिस समय से अवधि की गणना की जानी है, उस समय वाद संस्थित करने का जो व्यक्ति हकदार है, उसे भारतीय परिसीमा अधिनियम 1877 की धारा 7 का लाभ मिलना चाहिए। वर्तमान मामले में, 1915 में उस समय कोई मठाधिपति अस्तित्व में नहीं था जब परिसीमा चलना शुरू हुई। ना ही 1915 में मुकदमा करने के हकदार मठाधिपति की अवयस्कता पर या भारतीय परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 6 को लागू करने पर कोई प्रश्न है।"

उच्च न्यायालय का निर्णय

424. इस पहलू पर कि क्या किसी देवता को स्थायी रूप से अवयस्क माना जा सकता है, न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने यह अभिनिर्धारित किया कि परिसीमा के प्रयोजन के लिए किसी देवता की मूर्ति स्थायी अवयस्क नहीं है और देवोत्तर संपत्ति प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से लुप्त हो सकती है। विद्वान न्यायाधीश का दृष्टिकोण था कि **बिश्वनाथ बनाम श्री ठाकुर राधा बल्लभजी**[259] में यह अवधारण कि एक मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है, परिसीमा विधि के संदर्भ में नहीं थी। इसके विपरीत , विद्वान न्यायाधीश के विचार में, **डॉ गुरदीत्तमल कपूर** और **सरंगादेवी पेरिया मातम** में निर्णयों को तीन न्यायाधीशों की पीठ ने दिया था (**बिश्वनाथ**, दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णीत)। दोनों तीन न्यायाधीश की पीठ के फैसलों ने इस विचार का समर्थन किया कि परिसीमा विधि लागू होगी। इसके अलावा प्रिवी काउंसिल ने **मस्जिद**

259 (1967) 2 एससीआर 618

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शाहिदगंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर[260] में उल्लेख किया था कि इसमें कोई संदेह नहीं था कि हिंदू धार्मिक धर्मदाय की संपत्ति परिसीमा के अधीन है।

दूसरी ओर, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का विचार था कि यद्यपि पहले दायर किया गया मुकदमा एक व्यापक क्षेत्र से संबंधित था, विवाद का क्षेत्र (**इस्माइल फारुकी** में इस न्यायालय के निर्णय के बाद) आंतरिक और बाहरी अहाते तक सीमित था। न्यायमूर्ति अग्रवाल के विचार में, यह भगवान राम का जन्म–स्थान है जिसका हिन्दू अनादि काल से दौरा करते आए थे और "देवता एक स्थान के रूप में", "यह कभी भी नष्ट नहीं हो सकती है" और "न ही इसे नष्ट किया जा सकता है"। इसलिए यदि देवता न्यायालय से एक घोषणा करने का दावा करता है, तो परिसीमा की दलील लागू नहीं होगी और परिसीमा अधिनियम की धारा 6 या धारा 7 के लिए सहारा लेने का कोई कारण नहीं था।

न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने **बिश्वनाथ** के वाद में दिए गए निर्णय पर अवलम्ब लिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनों के लिए देवता एक अवयस्क है और एक अवयस्क को एक देवता के लिए उपलब्ध लाभ का विस्तार बड़े पैमाने पर दुनिया के लिए कोई अन्याय नहीं करेगा।

425. न्यायमूर्ति एसयू खान द्वारा स्थायी अवयस्क पर विधिक की प्रयोज्यता पर विधिक स्थिति का विश्लेषण अपनी ही अनुशंसा करता है। ऊपर विश्लेषित न्यायिक पूर्वनिर्णयों के आधार पर, यह एक स्थापित स्थिति है कि एक देवता एक स्थायी अवयस्क होने के आधार पर परिसीमा अधिनियम की

---

260 एआईआर 1940 पीसी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रयोज्यता से छूट प्राप्त नहीं कर सकता है। श्री सी एस वैद्यनाथन द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क, इस मुद्दे पर एक सदी के करीब के विधिशास्त्र के विपरीत हैं। हम प्रिवी काउंसिल, इस न्यायालय और पहले उल्लिखित कई उच्च न्यायालयों से प्राप्त पूर्वनिर्णयों की पंक्ति का पालन करते हैं। परिसीमा विधि की प्रयोज्यता को स्थायी अवयस्क के सिद्धांत के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

उन कारणों से जिसे हमने पहले ही ऊपर उद्धृत कर दिया है, परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता का अर्थ लगाते हुए न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डीवी शर्मा जिन कारणों पर प्रभावी थे, वे गलत हैं। **बिश्वनाथ** के वाद में दो न्यायाधीशों की पीठ का फैसला, परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के मुद्दे पर विचार नहीं करता और यह अवधारण कि देवता एक अवयस्क है, इसे परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट देने के लिए निहितार्थ द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता है। ऐसा विस्तार प्रिवी काउंसिल के साथ–साथ इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के निर्णयों से प्राप्त सुसंगत पूर्व निर्णयों के विपरीत होगा। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों को बताया है कि एक अवयस्क पर लागू होने वाला सिद्धांत एक देवता पर भी लागू होता है। इस तरह के विस्तार पर निहितार्थ या अर्थान्वयन द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता है।

वाद 5 में परिसीमा

426. वाद 5 परिसीमा के भीतर था, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों ने इस अवधारण के अपने–अपने कारणों को बताया। न्यायमूर्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एस. यू. खान ने परिसीमा पर विचार करते हुए एक समेकित विश्लेषण कर पांच कारण बताये जिसमें से पहला और पांचवां, वाद 5 पर लागू होता था। विद्वान न्यायमूर्ति का मत इस प्रकार हैः

(i) मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों को अनिश्चित काल तक लंबित रखकर अधिकारिता के आधिक्य में कार्य किया। परिणामस्वरूप, धारा 145 की कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं हुआ। ऐसा न करने से, यह अभिनिर्धारित किया गया कि इससे परिसीमी अवधि की बाध्यता उत्पन्न नहीं होगी; और

(ii) किसी भी अवसर पर न्यायालय से यह अपेक्षा थी कि वे सभी विवाद्यकों पर आदेश XIV के तहत निष्कर्ष पर वापस आये।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अवधारित किया कि वाद पत्र 5 में परिसीमा संबंधी जो दलील दी गयी है उसको निम्नलिखित तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिएः

(i) हिन्दू विवादित स्थान को भगवान राम की जन्म–स्थली मानते हैं, और इस स्थान की स्मरणातीत काल से पूजा की जा रही है;

(ii) टिफेन्थॉलर (1766–71) के आगमन से पूर्व मुस्लिम शासक के आदेश पर मस्जिद की प्रकृति में एक गैर हिन्दू ढ़ाँचे को खड़ा किया गया था;

(iii) उपरोक्त निर्माण के बावजूद, हिन्दू इसको भगवान राम का जन्म–स्थान मानकर यहां जाया करते थे और अपने विश्वास के अनुसार पूजा करते थे;

(iv) यद्यपि भवन के इस ढांचे को मस्जिद के तौर पर मान्यता प्रदान की गयी थी फिर भी इससे हिंदुओं की मान्यताओं पर प्रभाव नहीं पड़ा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) अविभाजित मस्जिद के परिसर के भीतर, एक *बेदी* की गैर इस्लामी संरचना थी जिसका उल्लेख टिफेंन्थॉलर ने अपने विवरण में किया था;

(vi) समय बीतने के साथ अन्य हिंदू संरचनाओं जैसे सीता रसोंई, राम चबूतरा और भण्ड़ार को जोड़ा गया;

(vii) इन संरचनाओं को 1858, 1873, 1885, 1949, 1950 में और लगातार संपूर्ण संरचना के विध्वंस 6 दिसंबर, 1992 तक देखा गया;

(viii) यद्यपि संपूर्ण विवादित ढांचे को मस्जिद कहा जाता था, किंतु ब्रिटिश सरकार ने विवादित क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करके दोनों समुदायों के विपरीत दावों को मान्यता दी जिसमें प्रत्येक समुदाय अलग –अलग से प्रार्थना और उपासना कर सकता था।

(ix) इस विभाजन के बावजूद, हिंदुओं ने न केवल बाहरी अहाते को अपने कब्जे में रखा बल्कि पुनरावृत्त शिकायतों और निष्कासन आदेश, जो 1858 से 1885 के बीच अभिलेख में दर्ज है, के बावजूद आंतरिक अहाते में प्रवेश जारी रखा।

(x) ब्रिटिश सरकार ने विवादित संरचना को मस्जिद मानते हुए दो मुसलमानों को ननकार प्रदान किया जिनके अनुसरण में उन्होंने भवन के रख–रखाव पर व्यय किए हुए खर्चों का दावा किया था;

(xi) 22/23 दिसंबर 1949 को भगवान राम की मूर्तियों को हिंदुओं द्वारा भीतरी अहाते में रखा गया था;

(xii) 29 दिसंबर 1949 को आंतरिक अहाते को धारा 145 के तहत संलग्न कर दिया गया जिसके बावजूद मजिस्ट्रेट ने यह सुनिश्चित किया कि केंद्रीय गुंबद के नीचे रखी गई मूर्तियों की पूजा जारी रही जिसके पश्चात् दीवानी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायालय ने 16 जनवरी 1950 को व्यादेश जारी किया, जिसको 19 जनवरी 1950 को स्पष्टीकृत किया गया, जिसकी पुष्टि 3 मार्च 1951 को की गई और जो 26 अप्रैल 1955 को अंतिम हो गया;

(xiii) 23 दिसंबर 1949 से हिन्दुओं द्वारा पूजा जारी रही थी, जबकि दूसरी ओर, किसी मुस्लिम ने परिसर में प्रवेश नहीं किया था और न ही नमाज़ अदा की थी;

(xiv) 29 दिसंबर 1949 से हिंदुओं द्वारा विभाजनकारी दीवार में लगे लोहे के ग्रिल वाले दरवाजे से पूजा जारी रही और केवल पुजारियों को पूजा करने के लिए परिसर में प्रवेश करने की अनुमति दी गई थी; और

(xv) जिला न्यायाधीश ने 1 फरवरी, 1986 के आदेश द्वारा हिन्दुओं को भीतरी अहाते में मूर्तियों की पूजा करने की अनुज्ञा देने के लिए ताले और दरवाजे खोलने का निदेश दिया।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया कि देवताओं की पूजा जारी थी और कोई कार्य या निष्क्रियता नहीं हुई, जिससे वादी किसी विशेष परिसीमा अवधि द्वारा शासित वाद दायर करने के अधिकार का दावा कर सकता। विद्वान न्यायमूर्ति ने धारित किया कि बीते सौ वर्षों में वादी के हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाली एकमात्र कार्य यह हो सकता है कि विवादित ढ़ांचे को खड़ा किया गया था। इसके बावजूद, हिंदूओं द्वारा विवादित ढ़ांचे को पूजा के प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जा रहा था। दूसरी ओर, किसी भी मुस्लिम का निर्माण की तारीख से 1856–57 तक नमाज अदा करने का कोई उल्लेख नहीं है। उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, हिन्दूओं के साथ विशेष तिथि पर कोई ऐसा कार्य नहीं हुआ था

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिससे परिसीमा के प्रयोजनों के लिए वाद दायर करने का अधिकार उत्पन्न होता। परिणामस्वरूप न्यायाधीश ने अभिनिर्णीत किया कि वाद 5 को परिसीमा द्वारा बाधित होना अवधारित नहीं किया जा सकता।

न्यायमूर्ति डी.वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के उद्देश्य के लिए देवता अवयस्क है और इस निष्कर्ष पर पहुंचें कि वाद 5 परिसीमा के अधीन था।

427. अब मूल मुद्दे पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या वाद 5 परिसीमा द्वारा बाधित है। इस बात का आंकलन करना कि क्या वाद 5 परिसीमा के तहत है या नहीं, इसमें वही स्थिति रही होगी कि शेष वादों (वाद 1, 3 और 4) में किसी वादीगण को पक्षकार नहीं बनाया गया जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष शुरू किए गए थे। वाद 5 में जो कथन किया गया वह इस प्रकार है कि प्रथम और द्वितीय दोनों वादियों का अपना अलग न्यायिक व्यक्तित्व है। प्रथम वादी का उपासकों से स्वतंत्र अलग न्यायिक व्यक्तित्व है। वादपत्र के प्रस्तर 18 में, वादी यह प्रकथन करता है कि पूर्व वादों के कुछ पक्षकार जो उपासक थे वे कुछ हद तक वादी देवताओं की पूजा पर नियंत्रण प्राप्त करके अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति करने का प्रयास कर रहें हैं।

428. गौरतलब है कि दिनांक 29 दिसंबर 1949 को विवादित संपत्ति की कुर्की के बाद भी वादी देवताओं की सेवा– पूजा जारी रही। इसलिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि वाद 5 में वादहेतुक 29 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ और पूजा की बाधा या विवादित संपत्ति की कुर्की से संबंधित है। वाद 5 में दी गई दलीलें विवादित संपत्ति के संबंध में दायर सभी पूर्व वादों को

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संदर्भित करती हैं। वाद 5 में प्रतिवादियों में मुस्लिम और हिंदू पक्षकारों और राज्य और उसके अधिकारियों के अलावा वाद 1, 3 और 4 के वादी शामिल हैं। वाद 5 इस दलील पर आधारित है कि वास्तव में, देवताओं के हित को उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा सुरक्षित नहीं किया जा रहा था जो पूर्व कार्यवाही संचालित कर रहे थे। जब वाद 5 संस्थित किया गया था, तो प्रथम और द्वितीय वादी के विधिक व्यक्तित्व को न्यायनिर्णीत नहीं किया गया था। वाद 5 के संस्थन पर, वाद 3 और वाद 4 में वादीगणों ने साफ –साफ इनकार किया कि दूसरा वादी उपासना की एक स्वतंत्र वस्तु और विधिक व्यक्ति था। आगे, देवता भगवान राम के हित को संरक्षित न करने की वादियों की आशंका के संबंध में, 14 अगस्त 1989 को दायर अपने लिखित कथन में निर्मोही अखाड़ा द्वारा लिए गए रुख में पर्याप्त रूप से स्थापित किया गया था। निर्मोही अखाड़ा ने इनकार कर दिया कि वादीगण किसी भी अनुतोष के अधिकारी हैं, और इस दलील को स्थापित किया कि जिस परिसर का वादीगणों ने उल्लेख किया है वह निर्मोही अखाड़ा से संबंधित है और वादीगण "**निर्मोही अखाड़ा के अधिकार और स्वत्वों के विरूद्ध घोषणा"** की मांग का अधिकार नहीं रखते हैं। वास्तव में, निर्मोही अखाड़ा ने वाद का अर्थान्वयन "निर्मोही अखाड़ा के मंदिर को ध्वस्त करने की धमकी जिसके लिए अखाड़ा का वाद लम्बित है" के रूप में किया है। निर्मोही अखाड़ा ने यह दलील दी कि भगवान राम की मूर्ति को अयोध्या के राम जन्मभूमि में नहीं, बल्कि राम जन्मभूमि मंदिर के रूप में ज्ञात मन्दिर में स्थापित किया गया है, जिसके प्रभार और प्रबंधन के लिए निर्मोही अखाड़ा ने अपना मुकदमा दायर किया था। वादी द्वारा मांगे गये व्यादेश अनुतोष के जवाब में, निर्मोही अखाड़ा ने यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दलील दी कि केवल उसे ही मंदिर के नियंत्रण, पर्यवेक्षण, और मरम्मत का अधिकार है और यदि आवश्यक हो तो पुनः निर्माण का भी अधिकार है। निर्मोही अखाड़ा ने यह दलील दी कि न्यास जिसका गठन 1985 में किया गया है उसमें निर्मोही अखाड़ा के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने की "स्पष्ट बनावट" मौजूद थी। वाद 5 की पोषणीयता पर, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और निर्मोही अखाड़ा दोनों ने समान आपत्तियां उठाईं, जो वर्तमान कार्यवाही के दौरान उठाए गए उनके रुख से पुनः पुष्ट हो चुकी हैं। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की तरफ से डॉ. राजीव धवन ने यह तर्क दिया कि यद्यपि वाद 3 परिसीमा से बाधित है, तब भी निर्मोही अखाड़ा का सेवायत के रूप में दावा प्राप्त करने की अधिकार समाप्त नहीं होता है। यह तर्क दिया गया कि निर्मोही अखाड़ा एक शेवायत है इसलिए वाद पोषणीय नहीं है। वादियों का प्रकरण इस प्रकार है कि चूँकि देवता को पूर्वतर वाद में पक्षकार नहीं बनाया गया था इसलिए वाद 5 के संस्थन की आवश्यकता हुई और इस आशंका पर आधारित था कि मौजूदा वादों में देवता भगवान राम के स्वतंत्र हितों और चिंताओं को सुरक्षित किये बिना प्रमुख पक्षकारों के व्यक्तिगत हितों को साधा जा रहा था, यह कार्यवाही द्वारा ठीक और सही मायने में उत्पन्न हुई है क्योंकि उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष चल रही कार्यवाही में इसका रहस्योघाटन किया है। वाद के संस्थन के लिए वाद हेतुक के आधार का उचित अर्थान्वयन करने पर वाद 5 में वादहेतुक को परिसीमा द्वारा बाधित नहीं माना जा सकता है।

निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर वाद (वाद 3) रामजन्म भूमि मंदिर के रूप में वर्णित के प्रबंधन और प्रभार के लिए था। उनका सेवायत होने का दावा वाद

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

3 के संस्थन की तिथि तक न्यायनिर्णीत नहीं किया गया था। यह विधितः सेवायत नहीं था (कोई समर्पण विलेख नहीं है) और इसके तथ्यतः सेवायत के दावे को साक्ष्य पर स्थापित करना था। वाद 5 इस दलील पर आधारित है कि देवता भगवान राम के हितों और चिंताओं की रक्षा नहीं की जा रही थी और पूर्व के वादों के पक्षकार अपने हितों को साध रहे थे। चूंकि, निर्मोही अखाड़ा ने अपने बचाव में स्वयं के अभिकथित "अधिकार एवं स्वत्व" एवं "स्वत्व और हित" पर अवलम्ब लेने की मांग करते हुए प्रबंधन और प्रभार के दावे से परे चले गये, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। वाद मित्र के माध्यम से इसके हितों की रक्षा के लिए देवता की हकदारी को, अपनी चुनौती को सहारा देने के लिए सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड़ ने सेवायत के रूप में निर्मोही अखाड़ा के हेतु को समर्थित कर इसके साथ संयुक्त हेतु का निर्माण किया। निर्मोही अखाड़ा का अपने देवता के प्रति पक्षद्रोही हित हो जाता है जब वह अपने खुद के स्वत्व और हित की बात करता है। इस पृष्ठभूमि में देवता भगवान राम की ओर से वाद 5 में जिस हेतु की दलील दी गयी उसे परिसीमा काल से परे नहीं अभिनिर्धारित जा सकता है।

429. श्री परासरन ने कथन किया कि वाद 5 आवश्यक रूप से भविष्य की ओर देखता है और राम जन्मभूमि पर भगवान राम को समर्पित मंदिर के निर्माण की आवश्यकता को बताता है। डा. धवन ने इसका साथ ही साथ 1985 में गठित न्यास और व्यापक एजेंड़ा के रूप में न्यास की आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप 1992 की घटना घटित हुई। जब हम यह तय करे रहें हो कि क्या कानूनन वाद 5 परिसीमा द्वारा बाधित है यह तर्क हमारे विचार में कारक नहीं हो सकता है। सीधे शब्दों में कहें, तो वाद 5 में यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दलील दी गयी है कि पूर्व वाद में देवता पक्षकार नहीं थे इस आधार पर पूर्व वादों, जिसमें हिंदुओं द्वारा दायर वाद सम्मिलित है, उनमें इनके हितों और चिंताओं को अच्छे से रक्षित नहीं किया जा रहा था। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने जिन तर्कों के बल पर वाद 5 को उपरोक्त उल्लिखित विस्तार तक परिसीमा के भीतर माना, वह तर्क स्वीकार करने योग्य हैं। उपरोक्त के आधार पर यह माना जाना चाहिए कि वाद 5 का संस्थन परिसीमा अवधि के भीतर था।

एन. 8 1985 का वाद और पूर्वन्याय

विवाद्यक

430. *पूर्व न्याय* की दलील वाद की अन्तर्वस्तु और परिमाण पर आधारित है जिसे महंत रघुबर दास द्वारा रामचबूतरा पर मंदिर के निर्माण के लिए डिक्री की मांग करते हुए 1885 में दायर किया गया था। क्या पूर्वन्याय का सिद्धान्त आकर्षित होता है इस पर विनिर्दिष्ट विवाद्यों को वाद 1, 4 और 5 में उठाया गया था।

<u>वाद 1</u>

विवाद्य 5(ख)– क्या वाद की सम्पत्ति मूल वाद 61/280 1885 उप–न्यायाधीश, फैजाबाद के न्यायालय में रघुबर दास महंत बनाम राज्य सचिव, भारत संघ एवं अन्य में अन्तर्निहित है।

विवाद्य 5(ख)– क्या यह वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था।

विवाद्य 5(ग)– क्या हिंदुओं को वाद की जानकारी थी और क्या सभी हिंदू इसमें हित रखते थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवाद्य 5 (घ)– क्या यह निर्णय, पूर्व न्याय और अन्य किसी द्वारा वर्तमान वाद को बाधित करता है।

<u>वाद 4</u>

विवाद्य 7(क)– क्या वादी महंत रघुबर दास ने, जो वाद 61/280 वर्ष 1885 में वादी हैं, जन्मस्थान और जन्मस्थान में हितबद्ध सभी व्यक्ति निकायों की ओर से वाद दायर किया था।

विवाद्य 7(ख)–क्या मोहम्मद असगर कथित बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली थे और क्या उन्होंने ऐसी किसी भी मस्जिद के लिए और उसकी ओर से मुकदमा लड़ा था।

विवाद्य 7(ग)– क्या उक्त वाद में निर्णय के दृष्टिगत, वर्तमान वाद के वादियों सहित हिन्दू समुदाय के सदस्यों को, जिनके अंतर्गत विरोधी प्रतिवादी भी हैं, वादग्रस्त संपत्ति पर मुस्लिम समुदाय के हक को मना करने से विवन्धित किया गया है; यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव.

विवाद्य 7(घ)– क्या पूर्वोक्त वाद में, वादग्रस्त संपत्ति या उसके किसी भाग पर मुस्लिमों के हक को उस वाद के वादी द्वारा स्वीकार किया गया था; यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव।

विवाद्य 8– क्या 1885 का वाद 6/280, महंत रघुबर दास बनाम राज्य सचिव और अन्य के मामले में पारित निर्णय, वाद में प्रतिवादियों के विरूद्ध *पूर्वन्याय* से प्रभावित है।

<u>वाद 5</u>

<u>विवाद्य 23–</u> क्या महंत रघुबर दास द्वारा विशेष न्यायाधीश फैजाबाद के न्यायालय में दायर वाद 61/280 वर्ष 1885 में पारित निर्णय विबंधन और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पूर्वन्याय के सिद्धान्तों के तहत बाध्यकारी है जैसा कि प्रतिवादीगण 4 और 5 द्वारा अभिकथित है।

1885 का वादपत्र

431. 1885 में दायर वाद महंत रघुबर दास द्वारा संस्थित किया गया था जिसमें उन्होनें स्वयं को "महंत जन्मस्थान, अयोध्या" बताया। प्रारम्भ में वाद सचिव, भारत सरकार के विरूद्ध दायर किया गया था। 1885 में दायर वाद का वाद–पत्र निम्नानुसार हैः–

"समक्ष

मुंसिफ न्यायालय, साहिब बहादुर

महंत रघुबर दास

महंत जन्मस्थान, अयोध्या

... ... वादी

बनाम

सचिव, भारत सरकार, परिषद सत्र

... ...प्रतिवादी

वादी ने निम्नानुसार कथन किया:

यह वाद मंदिर के निर्माण की अनुमति प्रदान करने के लिए है जिसमें प्रतिवादी के विरूद्ध निषेधाज्ञा की मांग करते हुए यह कहा गया कि वादी को जन्मस्थान, अयोध्या में उत्तर 17 फीट, पूर्व 21 फीट, दक्षिण 17 फीट, पश्चिम 21 फीट में मंदिर के निर्माण से रोका नहीं जाना चाहिए और बाजार मूल्य पर मंदिर की मालियत नहीं तय की जा सकती है इसलिए मद 17, प्रस्तर 6, परिशिष्ट–II, अधिनियम, 1870 के अनुसार, न्यायालय शुल्क लगाया गया था। उस स्थान की स्थिति को संलग्न मानचित्र/स्केच से अच्छी तरह से जाना जा सकता है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धारा 1: यह कि अयोध्या शहर, फैजाबाद में स्थित जन्मस्थान हिंदुओं के लिए पूजा का एक बहुत पुराना और पवित्र स्थान है और वादी इस पूजा स्थल का महंत है।

धारा 2: यह कि जन्मस्थान का चबूतरा पूर्व–पश्चिम 41 फीट और उत्तर–दक्षिण 17 फीट है जिस पर चरण पादुका रखी है उस पर एक छोटा मंदिर भी स्थित है जिसकी पूजा की जाती है।

धारा 3: यह कि उक्त चबूतरा वादी के कब्जे में है। चूंकि यहां पर कोई इमारत नहीं नहीं बनी है इसलिए वादी और अन्य फकीरों को गर्मी में धूप से, मानसून में बारिश से और सर्दियों में कड़ाके की ठंड से सामना करना पड़ता है। चबूतरा पर मंदिर के निर्माण से किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा। किन्तु, मंदिर के निर्माण से वादी और अन्य फकीरों और श्रद्धालुओं को राहत मिलेगी।

धारा 4: यह कि मार्च और अप्रैल 83 के दौरान उपायुक्त बहादुर फैजाबाद ने, कुछ मुसलमानों द्वारा मंदिर बनाये जाने की आपत्ति के कारण, इस याची ने इस प्रकरण से संबंधित इस याचिका को स्थानीय सरकार के पास प्रेषित किया, जहां पर इसका कोई जवाब नहीं मिला। तब वादी ने 18 अगस्त 1883 को दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 444 के तहत यथा अपेक्षित एक नोटिस सचिव, स्थानीय सरकार के कार्यालय को भेजा, लेकिन इसका भी कोई जवाब नहीं दिया गया। इसलिए निषेधज्ञा की तिथि से अयोध्या में इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के तहत वाद दायर करने का कारण उत्पन्न हो जाता है।

धारा 5: यह कि एक सुभेच्छु प्रजा के पास अपनी इच्छानुसार अपने स्वामित्व और कब्जे की भूमि पर निर्माण का अधिकार होता है। यह निष्पक्ष और न्यायपूर्ण सरकार का कर्तव्य है कि वह अपने प्रजा की रक्षा करे और उन्हें अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करें और कानून तथा व्यवस्था को बनाये रखने का उचित प्रबंध करें। इसलिए **वादी अयोध्या में रामजन्मस्थान चबूतरे पर मंदिर के निर्माण की आज्ञप्ति पारित किये जाने की प्रार्थना करता है जो उत्तर में 17 फीट, पूर्व में 41 फीट, दक्षिण में 17 फीट और पश्चिम में 41 फीट है और यह भी देखने के लिए कि प्रतिवादी मंदिर के निर्माण पर न कोई रोक लगाये और न ही दखलंदाजी करे और प्रतिवादी द्वारा वाद खर्च का वहन किए जाने का आदेश दिया जाए।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मैं रघुबर दास, महंत जन्मस्थान, अयोध्या प्रमाणित करता हूं कि वादपत्र के कथन और सभी पाँचों बिन्दु मेरे ज्ञान सत्य हैं और इसमें कुछ भी नहीं छिपाया गया है।

हस्ताक्षर

महंत जनमस्थान (हिन्दी में)।"

(प्रभाव वर्धित)

वादी ने कहा कि जन्मभूमि का स्थान प्राचीन और पवित्र है और हिंदुओं के लिए पूजा का स्थान है। वादी ने दावा किया कि वह इस पूजास्थल का महंत है। जिस स्थान का उल्लेख "जन्मस्थान चबूतरा" के रूप में किया गया है वह पूर्व–पश्चिम में 41 फीट और उत्तर–दक्षिण में 17 फीट है।

यह अभिकथित किया गया था कि वहाँ पर एक *चरण पादुका* लगी थी और छोटा सा मंदिर था जिसकी पूजा की जाती थी। वादी ने दावा किया कि चबूतरा उसके कब्जे में था। वादी ने कहा कि उसे और अन्य फकीरों को सख्त मौसम में असुविधा का सामना करना पड़ता था और चबूतरा पर मंदिर के निर्माण से किसी को कोई हानि पहुंचेगी। हालांकि, यह कहा कि उपायुक्त, फैजाबाद ने मंदिर के निर्माण का विरोध किया था और 18 अगस्त 1883 को सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत नोटिस दिये जाने के बावजूद, सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की थी। उस दावे का आधार यह था कि किसी "प्रजा" को उस भूमि पर भवन बनाने का अधिकार है जो उसके पास है और उसके स्वामित्व में है।

1885 में लिया गया बचाव

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

432. हालांकि मुसलमानों को मूल रूप से वाद के पक्षकारों के रूप में अभियोजित नहीं किया गया था, मोहम्मद असगर ने मुतवल्ली की अपनी क्षमता में पक्षकार बनाये जाने के लिए आवेदन किया और उन्हें वाद में पक्षकार बना दिया गया। मोहम्मद असगर ने अपने लिखित कथन में यह दलील दी कि मस्जिद का निर्माण बाबर ने किया था। उन्होंने कहा कि वह वादी स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता जिसने दलील के समर्थन में सम्राट या उस समय के शासक से संबंधित कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की है। मूलतः जो बचाव लिया गया वह इस प्रकार है:

(i) वादी का चबूतरा पर कोई स्वत्व नहीं था;

(ii) उपासना के प्रयोजनों के लिए आना और जाना स्वामित्व साबित नहीं करता है;

(iii) चबूतरा 1857 में अस्तित्व में आया; और

(iv) चबूतरा के निर्माण से किसी प्रकार का स्वामित्व का अधिकार प्राप्त नहीं होता और सरकार द्वारा इस पर नए निर्माण को रोका गया था जिसके परिणामस्वरूप फकीर द्वारा इस पर बनायी गयी झोपड़ी को ध्वस्त कर दिया गया था।

यह तर्क दिया गया कि उस स्थान पर हिंदुओं और मुस्लिमों के मध्य विवाद चल रहा है जिसके परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक घटनाएँ हुईं।

निष्कर्ष

433. उप–न्यायाधीश, फैजाबाद ने 24 दिसंबर 1885 के अपने फैसले में उस क्षेत्र पर हिंदुओं के कब्जे और स्वामित्व को स्वीकार कर लिया जो मस्जिद की दीवार से घिरी थी। हालांकि, उप–न्यायाधीश ने कहा कि यदि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मंदिर के निर्माण की अनुमति दी जाती तो दो समुदायों के बीच कानून और व्यवस्था को खतरे में डालने वाली एक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जाती। उप–न्यायाधीश ने निम्नवत अवधारित किया:

> "उपरोक्त के अतिरिक्त जहां पर मंदिर था वहीं पर ठाकुरजी की मूर्ति रखी गयी थी और उसकी पूजा होती थी। चबूतरा वादी के कब्जे में है और उस पर जो कुछ भी चढ़ाया जाता है वह वादी द्वारा ले लिया जाता है।
>
> वादी का कब्जा वादी के गवाह द्वारा सिद्ध किया गया हैं और हिंदुओं तथा मुसलमानों की सीमा को अलग करने वाली रेलिंग दीवार लंबी अवधि से वहां पर मौजूद है...
>
> वर्ष 1855 में, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच झगड़े के बाद विवाद से बचने के लिए रेलिंग के रूप में एक दीवार खड़ी की गई थी। ताकि मुसलमान उसके भीतर उपासना कर सकें और हिन्दू उसके बाहर उपासना कर सकें। इसलिए चबूतरा के साथ बाहर की जमीन जो वादी के कब्जे में है, हिंदुओं की है।
>
> यद्यपि वह स्थान जहां हिन्दू पूजा करते हैं वह प्राचीन काल से इस पर काबिज हैं इसलिए उनके कब्जें मस्जिद के दीवार के आस–पास के क्षेत्र के संबंध में आक्षेप नहीं हो सकता है और बाहरी दीवार पर अल्लाह का नाम उत्कीर्ण था।"

उपरोक्त निष्कर्षों के बावजूद कि वह स्थान हिंदुओं के कब्जे और स्वामित्व में था फिर भी मुकदमा खारिज कर दिया गया क्योंकि इससे कानून और व्यवस्था को गंभीर खतरा था। अपील में, विचारण न्यायालय के वाद को खारिज करने के निर्णय को जिला न्यायाधीश, फैजाबाद द्वारा दिनांक 18/26 मार्च 1886 को पुष्ट कर दिया गया। जिला न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि जबकि यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि हिंदु जिसे पवित्र स्थान

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मानते थे उस भूमि पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था, घटना जो तीन शताब्दी पहले घटित हुई थी, उसका निदान नहीं किया जा सकता है:

> "यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिस स्थान को हिन्दू विशेषतया पवित्र भूमि मानते थे उस स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया था। किन्तु वह घटना 356 वर्ष पूर्व हुई, इसलिए समस्याओं के निदान के लिए काफी देर हो चुकी है, अब जो भी किया जा सकता है वह यह है कि पक्षकारों के मध्य यथास्थिति बनाये रखा जाए।"

जिला न्यायाधीश ने स्थल निरीक्षण के बाद यह टिप्पणी की कि चबूतरे पर हिन्दू काबिज थे जिस पर "तम्बू के रूप में, एक छोटा सी लकड़ी की अधिसंरचना" बनायी गयी थी। ऐसा कहा गया कि यहां पर भगवान राम का जन्म हुआ था। वाद का निस्तारण करते हुए जिला न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय में कब्जे और स्वामित्व के संबंध में जो अवलोकन किये थे, वह अनावश्यक है अतः इसको अभिखण्ड़ित किया जाए। प्रथम अपीलीय अदालत का निर्णय न्यायिक आयुक्त, अवध के समक्ष लाया गया जिसने 2 नवंबर 1886 को मुकदमे को खारिज करने की पुष्टि की थी। न्यायिक आयुक्त ने इस प्रकार अवधारण किया:

> "सामान्यतः मामला यह है कि अयोध्या के हिन्दू अयोध्या में उस कल्पित पवित्र स्थान पर... संगमरमर का मंदिर बनाना चाहते थे जिसे वे श्री राम चन्द्र का जन्म स्थान मानते थे। अब यह स्थान उस जगह स्थित है जिसके आसपास बाबर ने अपने बर्बरता और तानाशाही के चलते 350 वर्ष पूर्व मस्जिद का निर्माण कराया था। हिंदू पौराणिक कथा के अनुसार बाबर ने अपने मस्जिद के लिए इसी स्थान का चुनाव किया था।
>
> ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदुओं के पास मस्जिद से लगी क्षेत्र में कुछ स्थानों पर आने जाने के सीमित अधिकार थे। वे लगातार कई वर्षों से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपने अधिकारों को बढ़ाने और अहाते में दो स्थानों पर इमारत बनाने का प्रयास कर रहें हैं जो इस प्रकार हैंः

(1) सीता की रसोई (ब) रामचंद्र की जन्म भूमि।

कार्यकारी प्राधिकारियों ने इन अतिक्रमणों का लगातार दमन किया है और 'यथा स्थिति' में किसी भी बदलाव से इंकार कर दिया।

मेरा मानना है कि उनकी ओर से उठाया गया यह कदम बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण और उचित प्रक्रिया के तहत है। मेरा आगे यह मानना है कि दीवानी न्यायालयों ने वादी के दावे को खारिज कर दिया है, जो उचित है।

इस अपील की दलीलें... मामले के तथ्यों एवं किसी दस्तावेज द्वारा समर्थित नहीं हैं जो कि मेरे समक्ष हैं... सिविल न्यायालय की अधिकारिता की परिसीमाओं के संबंध में निचली अपील अदालत के कुछ तर्क। हालांकि मैं उनके अंतिम निष्कर्ष से सहमत हूं जिस निष्कर्ष पर न्यायालय पहुंचे– और मुझे प्रथम बार के न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के किसी भाग की शब्द संरचना में संशोधन कर हस्तक्षेप करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है। यहां अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह दर्शित हो कि वादी किसी भी अर्थ में विवादित भूमि का मालिक है। सभी अदालतीय वाद खर्चों सहित यह अपील खारिज की जाती है।"

दलीले

434. न्यायिक आयुक्त के उपरोक्त अवलोकनों का अवलम्ब लेकर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शेखर नफाडे ने निर्णय से पांच पहलूओं पर जोर दिया जो इस प्रकार हैः

(i) मस्जिद का अस्तित्व;

(ii) निकट क्षेत्र में चबूतरे का निर्माण;

(iii) हिन्दुओं के पहुंच के सीमित अधिकार की उपलब्धता;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) हिन्दुओं द्वारा प्रयत्न किए गए अतिक्रमण पर कार्यपालिका द्वारा अधिरोपित निर्बंधन; और

(v) स्वामित्व और कब्जे के लिए हिंदुओं के दावे की अस्वीकृति।

435. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों ने *पूर्व न्याय* की दलील को खारिज कर दिया। न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने अभिनिर्णीत किया कि 1885 में निर्णीत वाद एकमात्र इस बिंदु पर था कि दोनों समुदायों के बीच दंगों की संभावना को कम करने के लिए *यथास्थिति* बनाए रखी जानी चाहिए। उनके विचार में:

> "उक्त वाद का वास्तविक निर्णय, विवाद के निस्तारण को मना कर देना था।"

उपरोक्त निष्कर्ष पर कटाक्ष कर श्री नापडे ने कहा कि विद्वान न्यायाधीश का यह निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण था कि 1885 के वाद में किसी सारवान तथ्य को निर्णीत नहीं किया गया था। उन्होंने कहा कि न्यायिक आयुक्त के फैसले से दर्शित होता है कि उस क्षेत्र में हिंदुओं के पहुंच के सीमित अधिकार थे और कब्जे और स्वामित्व का दावा खारिज हो गया।

436. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्णीत किया कि 1885 के वाद में एकमात्र विवाद चबूतरा पर निर्माण की मांग को लेकर था। अतः वाद विवादित स्थल या भवन से पूरी तौर पर संबंधित नहीं था और विवादित भूमि के किसी भाग के संबंध में स्वामित्व या कब्जे का अधिकार अन्तर्निहित नहीं था। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्णीत किया कि जिन वादों का उच्च न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन किया जा रहा था, उससे भिन्न 1885 में दायर वाद में केवल सम्पत्ति का केवल एक भाग अन्तर्निहित था।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

437. इन निष्कर्षों पर कटाक्ष कर श्री नेफड़े ने न्यायालय से निम्नलिखित याचना की:

(i) न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल इस भाव से पूर्ववर्ती वाद में न्यायिक आयुक्त के निष्कर्षों का अवलोकन करने में असफल रहे कि विवादित स्थान पर हिंदुओं के आने जाने के अधिकार सीमित थे तथा उनके पास कब्जे या स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं था;

(ii) *पूर्व न्याय* के विषय पर निष्कर्ष, **के. इथिराजन v लक्ष्मी**[261] में पारित इस न्यायालय के निर्णय के विपरीत है, जहाँ पर यह अभिनिर्णीत किया गया है कि *पूर्व न्याय* का सिद्धान्त ऐसी परिस्थिति में भी आकर्षित होगा जहां पूर्ववर्ती वाद में सम्पत्ति का केवल एक भाग विवादित था, जबकि पश्चातवर्ती वाद में पूरी सम्पत्ति दावे की विषय वस्तु बन जाती है; और

(iii) न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह भी अभिनिर्णीत किया कि न्यायालय के समक्ष ऐस कुछ तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे यह दर्शित हो कि हिन्दू बड़े पैमाने पर पूर्ववर्ती वाद से अवगत थे। जब 1885 का वाद दायर किया गया था उस समय दो समुदायों के बीच झगड़ा उत्पन्न हो गया था जिससे कानून और व्यवस्था के लिए एक गंभीर चुनौती पैदा हो गयी थी। अतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदुओं को वाद के विषय में जानकारी थी। प्राथमिक तथ्यों से एक युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला

---

261 (2003) 10 एससीसी 578

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जा सकता है, भले ही पूर्व वाद के संस्थन के विषय में हिंदुओं की जानकारी संबंधी कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य न हों।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा, जब इस निष्कर्ष पर थे कि *पूर्व न्याय* का सिद्धान्त को आकर्षित नहीं हुआ, तब उन्होंने अभिनिर्णीत किया कि पूर्व वाद प्रतिनिधित्व प्रकृति का नहीं था क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता 1882 की धारा 539 के तहत दी गयी लोक सूचना की आवश्यक्ताओं का अनुपालन नहीं किया गया था। विद्वान न्यायाधीश ने अवलोकन किया कि पूर्व वाद के कोई भी पक्षकार वर्तमान में चल रही कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे, और न ही विषय वस्तु समान थी क्योंकि पूर्व वाद केवल चबूतरा से संबंधित था। इन निष्कर्षों को चुनौती देते हुए, श्री नफाड़े ने कहा कि पूर्व वाद में जो वाद पत्र था वह हिंदुओं के लाभ के लिए था; सचिव, राज्य परिषद ने समुदाय के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व किया, और किसी भी स्थिति में, धारा 539 के तहत लोक सूचना का न दिया जाना *पूर्व न्याय* की बाधा को दूर नहीं करेगा। उन्होंने कहा कि सिविल प्रक्रिया संहिता[262] की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI आदेश 1 नियम 8 के विषयाधीन नहीं है।

438. प्रांङ्न्याय की दलील पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों में से प्रत्येक द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों को चुनौती देने के अलावा, श्री नफाड़े ने कहा है कि सीपीसी 1908 की धारा 11 में निहित प्रावधान निम्नलिखित कारणों से आकर्षित होते हैं:

---

262 धारा 11 इस प्रकार प्रावधान करती है::

स्पष्टीकरण VI- जहाँ कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के या किसी ऐसे प्राइवेट अधिकार के लिए सद्भावनापूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वे अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यतः दावा करते हैं वहाँ ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) पक्षकारों के मध्य पूर्वतर वाद में यह तथ्य प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्यक रहा है:

(क) हिन्दुओं के कब्जे के स्वामित्व के दावे को न्यायिक आयुक्त ने 1885 के वाद में नामंजूर कर दिया था; और

(ख) पूर्वतर वाद में मस्जिद के अस्तित्व को कोई चुनौती नहीं दी गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिमों के हक और अधिकार की अंतर्निहित स्वीकृति है,

(ii) पूर्ववर्ती वाद में वादी जिसने स्वयं को जन्मस्थान के महंत के रूप में वर्णित किया है, अनिवार्य रूप से हिंदुओं के वाद हेतुक का प्रतिनिधित्व करता है और इसलिए *पूर्व न्याय* का सिद्धान्त लागू होगा। पूर्ववर्ती वाद "उन्हीं पक्षकारों के बीच था या उन पक्षकारों के बीच था जिनके तहत वे या उनमें से कोई एक ही हक के तहत मुकदमेबाजी का दावा करते हैं"; और

(iii) पूर्व वाद में वाद हेतुक वही है जो वर्तमान मामलों के समूह में है। हिंदुओं द्वारा दावा की गई संपत्ति का स्वत्व दोनों वादों में समान है और वाद हेतुक मंदिर के निर्माण के अधिकार पर आधारित है।

इन आधारों पर, श्री नेफाड़े ने तर्क दिया कि धारा 11 के साथ सीपीसी के भाग 4 को पढ़ने पर *पूर्व न्याय* का वर्जन आकर्षित होता है। उन्होंने आग्रह किया कि 1882 की संहिता की धारा 30 (सीपीसी 1908 के आदेश 1 नियम 8 के समान) के प्रावधानों का पालन करने में विफलता से कोई फर्क

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि धारा 11 के प्रावधान आदेश 1 नियम 8 के अधीन नहीं हैं।

श्री नेफाडे ने यह भी आग्रह किया कि धारा 11 के स्पष्टीकरण IV के तहत *प्रलक्षित पूर्व न्याय* का सिद्धांत आकर्षित होता है। अंत में, उन्होंने तर्क दिया कि 1885 के वाद के पूर्वतर निष्कर्ष, विवन्धन के मुद्दे के रूप में काम करेंगे और चूंकि पूर्व वाद का आदेश सर्वबन्धी आदेश था। सभी हिंदू निष्कर्ष से बंधे होंगे। उन्होंने आग्रह किया कि योजना, जो 1885 के वाद में संलग्न थी, वह अनिवार्य रूप से समान थी और इसलिए अभिलेख के द्वारा विबन्धन का सिद्धांत आकर्षित होगा।

तर्कों का विरोध करते हुए, वाद सं.5 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के परासरन द्वारा कहा गया कि *पूर्व न्याय* का सिद्धांत निम्नलिखित कारणों से आकर्षित नहीं होता है:

क. पक्षकार अलग अलग हैं:

(i) न तो देवता (वाद 5 में वादिगण) और न ही सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड (वाद 4 में वादी) 1885 के वाद के पक्षकार थे; और

(ii) 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा प्रतिनिधि की हैसियत से संस्थित नहीं किया गया था

ख. यह मुकदमा चबूतरा पर एक मंदिर बनाने के लिए एक व्यक्तिगत अधिकार का दावा करने के लिए था:

(i) जब पूर्वतर वाद संस्थित किया गया था तो दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश I नियम 8 से संबंधित सिविल प्रक्रिया संहिता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1882 की धारा 30, जो प्रवृत्त थी, के तहत आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था;

(ii) न तो देवताओं और न ही हिंदू जनता ने 1885 में महंत रघुबर दास के माध्यम से किसी अधिकार का दावा किया;

(iii) वाद 4 में, 8 अगस्त, 1962 को एक आदेश पारित किया गया था, जिसके अधीन वादियों ने मुस्लिमों की ओर से अपनी प्रतिनिधि हैसियत में वाद किया और प्रतिवादी सं. 1 से 4 को हिंदुओं की ओर से वाद दायर करने की अनुज्ञा दी गई; और

(iv) यह मानते हुए भी कि पूर्ववर्ती वाद सभी हिंदुओं की ओर से दायर किया गया था, वाद 5 में वादी–देवता इस न्यायालय के **नारायण भगवंतराव गोसावी बाला जी वालें बनाम गोपाल विनायक गोसावी**[263] के निर्णय को ध्यान में रखते हुए इसके परिणाम से आबद्ध नहीं हैं

ग. पूर्ववर्ती वाद के विवाद्यक और मांगे गये अनुतोष अलग–अलग हैं:

(i) 1885 का वाद मंदिर के निर्माण की अनुज्ञा के लिए भारत के राज्य सचिव के विरुद्ध था;

(ii) वर्तमान कार्यवाहियां संपत्ति के स्वरूप से संबंधित हैं चाहे वह लोक मस्जिद हो या हिंदुओं के लिए लोक उपासना स्थल हो; और

(iii) वाद 5 में, यह मुद्दा कि क्या 'स्थान राम जन्मभूमि' एक न्यायिक व्यक्तित्व है, यह एक ऐसा मुद्दा है जो 1885 के वाद में मांगे गए मंदिर के निर्माण के अनुतोष से परे है।

---

263 1960 (1) एससीआर 773

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

घ. वाद की संपत्तियाँ भिन्न हैं:

(i) 1885 के वाद में, विषय–वस्तु केवल 17X21 फीट के माप का चबूतरा था; और

(ii) वर्तमान कार्यवाहियों में वाद सं. 4 और 5 दोनों में वाद संपत्ति में आंतरिक और बाह्य आहाते सन्निहित हैं।

ङ. 1885 का वाद तब संस्थित किया गया था जब सीपीसी 1882 लागू थी। सीपीसी 1882 की धारा 13 *पूर्व न्याय* से सम्बन्धित है। स्पष्टीकरण V ने केवल उन व्यक्तियों को आच्छादित किया जो अपने और दूसरों के लिए सामान्य रूप से दावा किए गए निजी अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी कर रहे थे। सीपीसी 1908 में, अभिव्यक्ति "सार्वजनिक अधिकार" स्पष्टीकरण VI में धारा 91 के प्रावधान के तहत जोड़ा गया था। सीपीसी के प्रावधान प्रक्रियात्मक और सारवान हैं। 1885 के वाद में केवल एक निजी अधिकार को लागू करने की मांग की गई थी, जबकि वर्तमान कार्यवाही में पूजा करने के सार्वजनिक अधिकार को लागू करने की मांग की गई है। यद्यपि सीपीसी 1882 को लागू किया जाना था, 1885 के वाद के दाखिल होने की तारीख में उक्त विधि लागू थी, उस वाद में निष्कर्ष (जो केवल एक निजी अधिकार को लागू करने की मांग करता है) *पूर्व न्याय* के रूप में संचालित नहीं होगा।

विश्लेषण

439. धारा 11 की प्रयोज्यता कुछ अधिशासित सिद्धांतों पर आधारित है। ये हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्यक मामला पूर्ववर्ती वाद में सीधे और सारतः विवाद्यक होना चाहिए।

(ii) पूर्ववर्ती वाद या तो उन्हीं पक्षकारों के बीच होना चाहिए जो अनुवर्ती वाद में हैं या उन पक्षकारों के बीच होंना चाहिए जिनके अधीन वे या उनमें से कोई एक ही हक के अधीन वाद दायर करने का दावा करते हैं;

(iii) वह न्यायालय, जिसने पूर्वर्ती वाद का विनिश्चय किया था, पश्चातवर्ती वाद या उस वाद का विचारण करने के लिए सक्षम होना चाहिए जिसमें विवाद्यक को तत्पश्चात् उठाया गया है; और

(iv) विवाद्यक को पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा सुना और अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया होना चाहिए।

स्पष्टीकरण VI से धारा 11 एक धारणा प्रावधान की प्रकृति में है जो अभिव्यक्ति "पक्षकारों के मध्य जिसमें वे या उनमें से कोई समान हक के अधीन मुकदमेबाजी करने वाले" के दायरे का विस्तार करती है। स्पष्टीकरण VI के तहत, जहां व्यक्ति सार्वजनिक अधिकार या एक निजी अधिकार के संबंध में सद्भावनापूर्वक मुकदमेबाजी करते हैं, जिसकें द्वारा वे अपने और दूसरों के लिए सामान्य रूप से दावा करते हैं, इस तरह के अधिकार में हितबद्ध सभी व्यक्तियों को इस तरह मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के अधीन दावा करने के लिए समझा जाएगा। दूसरे शब्दों में, स्पष्टीकरण VI को आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ सद्भावनापूर्वक मुकदमेबाजी होना चाहिए जिसमें एक सार्वजनिक या निजी अधिकार के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संबंध में एक दावा हो जो दूसरों के साथ सामान्य रूप से दावाकृत हो। यह केवल तब है जब सभी व्यक्ति जो इस तरह के अधिकार में हितबद्ध हैं, उन्हें धारा के उद्देश्य के लिए मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के अधीन दावा करने के लिए समझा जाएगा।

आदेश 1 नियम 8[264] में ऐसे प्रावधान हैं जिनके तहत एक व्यक्ति, सभी हितबद्ध व्यक्तियों के लाभ के लिए या उनकी ओर से वाद या प्रतिवाद कर सकता है।

440. 1885 का वाद तब संस्थित किया गया था जब सीपीसी 1882 लागू था। धारा 13 में पूर्व न्याय के संबंध में एक उपबंध है। धारा 13 कुछ तथ्यात्मक विभेद के साथ सीपीसी 1908 की धारा 11 से मेल खाती है। धारा 13 के स्पष्टीकरण V में यह कहते हुए एक धारणा उपबन्ध था कि कब समान हक के अधीन मुकदमा करने वाले व्यक्तियों को दावा करने के लिए समझा जाएगा। हालांकि धारा 13 का स्पष्टीकरण V केवल उन व्यक्तियों को आच्छादित करता है जो अपने लिए और दूसरों के लिए सामान्य रूप से

---

264 . आदेश 1 नियम 8 इस प्रकार प्रावधान करता है:

समान हित के लिए एक व्यक्ति, सभी व्यक्तियों की तरफ से वाद दायर और बचाव कर सकता है।

जब किसी वाद में कई व्यक्ति किसी समान हित के लिए हों–

(क) ऐसे व्यक्तियों में से एक या अधिक, ऐसे व्यक्ति न्यायालय की अनुज्ञा से, ऐसे सभी हितबद्ध व्यक्तियों की ओर से या उनके लाभ के लिए वाद कर सकते हैं या उस वाद का प्रतिवाद कर सकते हैं;

(ख) न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्तियों में से एक या अधिक व्यक्ति इस प्रकार हितबद्ध सभी व्यक्तियों की ओर से या उनके लाभ के लिए वाद ला सकेगा या उस वाद का प्रतिवाद कर सकेगा।

(2) न्यायालय, प्रत्येक मामले में जहां उपनियम (1) के अधीन कोई अनुज्ञा या निदेश वादी के व्यय पर दिया जाता है, वाद की संस्था को व्यक्तिगत सेवा द्वारा या तो हितबद्ध सभी व्यक्तियों को, या जहां व्यक्तियों की सं. या किसी अन्य कारण से ऐसी सेवा युक्तियुक्त रूप से व्यावहारिक नहीं है, सूचना देगा, जैसा कि प्रत्येक मामले में न्यायालय निदेश दे सकता है।

(3) कोई व्यक्ति, जिसकी ओर से या जिनके लाभ के लिए, उपनियम (1) के अधीन वाद संस्थित या प्रतिवाद किया जाता है, न्यायालय में ऐसे वाद के लिए पक्षकार बनाए जाने के लिए आवेदन कर सकेगा।

(4) ऐसे किसी वाद में दावे का कोई भाग उपनियम (1) के अधीन नहीं छोड़ा जाएगा और ऐसा कोई वाद, आदेश XXII के नियम 1 के उपनियम (3) के अधीन वापस नहीं लिया जाएगा और उस आदेश के नियम 2 के अधीन ऐसे किसी वाद में तब तक कोई समझौता, सुलह या ऋणमुक्त नहीं किया जाएगा जब तक न्यायालय ने वादी के व्यय पर, ऐसे हितबद्ध सभी व्यक्तियों को, जो उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट रीति में इस प्रकार हितबद्ध है, सूचना न दे दी हो।

(5) जहां ऐसे किसी वाद में मुकदमा चलाने या प्रतिवाद करने वाला कोई व्यक्ति वाद या प्रतिरक्षा में सम्यक तत्परता से कार्यवाही नहीं करता है, वहां न्यायालय वाद में समान हित रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति के स्थान पर अपना स्थान रख सकेगा। (6) इस नियम के अधीन वाद में पारित डिक्री उन सभी व्यक्तियों के लिए आबद्धकर होगी जिनकी ओर से या जिनके फायदे के लिए, यथास्थिति, वाद संस्थित किया जाता है या प्रतिवाद किया जाता है।

स्पष्टीकरण।–यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि मुकदमा करने वाले या वाद दायर करने वाले या प्रतिवाद करने वाले व्यक्तियों का एक ही हित है, यह स्थापित करना आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्तियों के पास वाद हेतुक समान ही है जैसे कि वह व्यक्ति, जिस पर या जिनके फायदे के लिए, वे वाद करते हैं या वाद दायर करते हैं या वाद का प्रतिवाद करते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दावा किए गए एक निजी अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं। इसके विपरीत, धारा 13 का स्पष्टीकरण VI उन व्यक्तियों को आच्छादित करता है जो स्वयं के लिए एवं अन्य लोगों के लिए व्यक्तिगत अधिकार एवं निजी अधिकार के तहत मुकदमेंबाजी करते हैं। सीपीसी 1882 की धारा 13 के स्पष्टीकरण V और सीपीसी 1908 की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI के बीच यह अंतर निम्नलिखित तालिका में बताया गया है जिसमें दो प्रावधान हैं:

सीपीसी 1882 की धारा 13	सीपीसी 1908 की धारा 11
स्पष्टिकरण–V जंहा व्यक्ति स्वयं के लिए और अन्य के लिए निजी अधिकार के तहत सदभावनापूर्वक समान दावा करते है, इस अनुभाग के उद्देश्य के लिए सभी व्यक्तियों के ऐसे हितबद्ध अधिकार, मुकदमेंबाजी करने वाले व्यक्तियों के अन्तर्गत दावा करने वालें माने जायेगें।	**स्पष्टिकरण–VI** जहां कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के या किसी ऐसे निजी अधिकार के लिए सद्भावपूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वें अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत दावा करते है वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोंजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते है।

इस स्तर पर यह ध्यान दिया जा सकता है कि सीपीसी 1908 की धारा 92, सीपीसी 1882 की धारा 539 के प्रावधान के अनुरूप है। हालांकि, सीपीसी 1908 की धारा 91 में लोक न्यूसेन्स और लोक को प्रभावित करने वालें अन्य अपकृत्यों के बारें में विचार किया गया है। धारा 91 में निगमित लोक न्यूशेन्स से संबंधित मुकदमों को उचित प्रभाव देने के लिए सीपीसी 1908 की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में ''सार्वजनिक अधिकार'' शब्द को प्रस्तुत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया गया था। इस प्रकार सीपीसी 1882 की धारा 13 के स्पष्टीकरण V में निहित धारणा उपबन्ध का विस्तार सीपीसी 1908 की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में निहित संबंधित प्रावधान में उन मामलों को कवर के लिए किया गया था, जहां व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के समान दावा किए गए निजी अधिकार या लोक अधिकार के संबंध में सद्भावनापूर्वक मुकदमेबाजी करते हैं। जब 1885 का पहले का वाद संस्थित किया गया था, स्पष्टीकरण V की उस स्थिति में कोई प्रयोज्यता नहीं थी, जहां व्यक्ति एक निजी अधिकार से भिन्न सार्वजनिक अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी कर रहे थे।

441. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरन ने यह तर्क दिया कि सीपीसी के प्रावधानों में कुछ ऐसे प्रावधान हैं जो प्रक्रियात्मक विषयों से संबंधित हैं जबकि अन्य सारवान विषयों के बारे में है (**दुर्गेश शर्मा बनाम जयश्री** को देखें[265])। उदाहरण के लिए, यह अवधारित किया गया है कि एक निर्णय से अपील दायर करने का अधिकार और एक मुकदमे में डिक्री का अधिकार एक सारवान अधिकार है और यह अधिकार उस कानून द्वारा शासित है जो वाद के संस्थित होने की तारीख पर अधिभावी था। इसीलिए **गरिकापति वीरया बनाम एन. शुबिआ चौधरी**[266] में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने यह अवधारित किया है:

> "23...(iii) वाद संस्थित करने का यह निहितार्थ है कि तब प्रवृत्त अपील के सभी अधिकार वाद के शेष जीवन तक पक्षकारों के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं।
>
> (iv) अपील का अधिकार एक निहित अधिकार है और श्रेष्ठ न्यायालय में प्रवेश करने का ऐसा अधिकार वादकारी को प्रोद्भूत होता है और वाद आरंभ होने की तारीख को और से विद्यमान होता है और यद्यपि यह

---

265 (2008) 9 एससीसी 648

266 1957 एससीआर 488

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तव में तब प्रयोग किया जा सकता है जब प्रतिकूल निर्णय दे दिया जाता है, ऐसा अधिकार वाद या कार्यवाही के संस्थन की तारीख पर विद्यमान विधि द्वारा शासित होना चाहिए और न कि उस विधि द्वारा जो उसके विनिश्चय की तारीख को थी या अपील दाखिल करने की तिथि को होती है।

(V) अपील का निहित अधिकार उत्तरवर्ती अधिनियमन के द्वारा ही छीना जा सकता है, यदि ऐसा है तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक अभिप्राय प्रदान करता है और अन्यथा नहीं।"

श्री के परासरन ने कहा कि सीपीसी 1882 की धारा 13 का स्पष्टीकरण V के तहत *पूर्व न्याय* की प्रयोज्यता से अपवर्जित कर दिया गया जहां पूर्ववर्ती वाद दूसरों के साथ समान रूप से दावा किए गए सार्वजनिक अधिकार पर मुकदमा चलाने के लिए था।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस दलील को खारिज कर दिया कि सीपीसी 1882 को पूर्व न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता का विश्लेषण करते समय लागू किया जाना चाहिए। हालाँकि इस आधार पर भी कि यहाँ सीपीसी 1908 लागू होगा, विद्वान न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 1885 का वाद और न्यायिक आयुक्त द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, *पूर्व न्याय* के रूप में कार्य नहीं करेंगे।

श्री के. परासरन के तर्क अनिवार्य रूप से इस पर बल देते हैं: उनके अनुसार, सीपीसी 1882 की धारा 13 का स्पष्टीकरण V (जो 1885 के वाद के संस्थन के समय था) को लागू किया गया था, जब पूर्ववर्ती वाद को अन्यों के साथ समान रूप से दावा किए गए एक निजी अधिकार के आधार पर चलाया जा रहा था। इसलिए अन्य लोगों के साथ समान रूप से दावा किए गए एक सार्वजनिक अधिकार को प्राप्त करने के लिए एक अनुवर्ती वाद, पूर्व न्याय के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सिद्धांतों द्वारा वर्जित नहीं है जैसा कि स्पष्टीकरण V में सन्निहित है। स्पष्टीकरण के दायरे का विस्तार सीपीसी 1908 में किया गया था, जबकि धारा 11 के स्पष्टीकरण VI को सार्वजनिक के साथ–साथ दूसरों के समान रूप से निजी अधिकार पर आधारित दावे को कवर करने के लिए प्रस्तुत किया गया था। श्री के. परसरन ने कहा कि यह प्रावधान जो स्पष्टीकरण VI में प्रस्तुत किया गया है, उसे सीपीसी 1908 के प्रवर्तन के बाद संस्थित किए गए एक वाद को, सीपीसी 1882 के लागू रहते हुए 1885 में संस्थित वाद में दिए गए निर्णय के आधार पर रोकने वाला नहीं माना जा सकता है। उनका तर्क था कि यह प्रक्रिया का माामला नहीं होगा, बल्कि यदि पूर्व न्याय का वर्जन लागू होगा तो पक्षकार को प्राप्त एक सारवान अधिकार छीन लिया जायेगा। परिणामस्वरूप, जब तक कि एक सार्वजनिक अधिकार प्राप्त करने के वाद पर पूर्व न्याय के सिद्धांत को लागू करने का सीपीसी 1908 में एक अभिव्यक्त उपबन्ध नहीं था, तो 1885 में संस्थित वाद सीपीसी 1908 के स्पष्टीकरण VI के वर्जन के दायरे के अन्दर नहीं आ सकता है।

वर्तमान कार्यवाहियों के उद्देश्य के लिए, इस मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, श्री के परासरन द्वारा प्रस्तुत इस तर्क को विस्तृत में विश्लेषित करना वास्तव में आवश्यक नहीं है, यह स्पष्ट है कि 1882 की संहिता की धारा 13 के प्रावधानों की प्रयोज्यता पर या 1908 की संहिता की धारा 11 की प्रयोज्यता पर, 1885 का वाद *पूर्व न्याय* के रूप में संचालित नहीं होगा। 1885 के पूर्वतर वाद के अभिवचन और निष्कर्ष दर्शाते हैं कि महंत रघुबर दास केवल एक अधिकार का दावा कर रहे थे जो उनके लिए व्यक्तिगत था। पूर्ववर्ती वाद को प्रतिनिधि क्षमता में संस्थित नहीं किया गया था ; विरचित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवाद्यक और मांगी गई राहतें अलग–अलग थीं और इसी तरह वादग्रस्त संपत्ति अलग थी।

442. आदेश 1 नियम 8 के अधीन किसी वाद के अभियोजित या प्रतिवाद किए जाने के पूर्व, यह आवश्यक है कि वाद में समान हित रखने वाले कई व्यक्ति होने चाहिए। अन्य व्यक्तियों की ओर से वाद चलाने या बचाव करने की अनुमति किसी व्यक्ति को दिए जाने से पहले न्यायालय की विशिष्ट अनुमति अनिवार्य है। आदेश 1 नियम 8 के उप–नियम 2 में वाद को संस्थित करने के लिए उसमें हितबद्ध सभी व्यक्तियों को सार्वजनिक विज्ञापन द्वारा या निर्देशित तरीके से नोटिस दिया जाना आवश्यक है। एक व्यक्ति जिसकी ओर से या जिसके लाभ के लिए एक वाद संस्थित किया गया है या बचाव किया जा रहा है, उसे वाद में पक्षकार के रूप में जोड़ा जा सकता है। उप–नियम 4 के तहत, वाद में दावे का कोई भाग नहीं छोड़ा जा सकता है और मुकदमा वापस नहीं लिया जा सकता है और न ही समझौता अनुबधं या संतुष्टि दर्ज की जा सकती है जब तक कि सभी हितबद्ध व्यक्तियों को नोटिस नहीं दिया गया हो। आदेश 1 नियम 8 में निहित प्रावधानों के अनुपालन के अधीन, इस तरह के मुकदमे में एक डिक्री उन सभी व्यक्तियों के लिए बाध्यकारी है जिनकी ओर से या जिनके लाभ के लिए वाद को संस्थित या प्रतिवाद किया जाता है।

कुमारवेलु चेट्टियार बनाम टी पी रामास्वामी अय्यर [267] में, प्रिवी काउंसिल ने यह अवधारित किया:

> "स्पष्टीकरण 6, नियम 8 आदेश 1 द्वारा कवर किए गए मामलों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि किसी भी मुकदमेबाजी को शामिल करने के लिए

---

267 एआईआर 1933 पीसी 183

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विस्तारित है, जिसमें नियम के अलावा, पक्षकार स्वयं के अलावा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के हकदार हैं।"

इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों ने **नारायण प्रभु वेंकटेश्वर प्रभु बनाम नारायण प्रभु कृष्ण प्रभु**[268] के निर्णय में उपरोक्त सिद्धांत का पालन किया गया था। इस अदालत ने कहा कि एक विभाजन के मुकदमे में, संयुक्त संपत्ति का दावा करने वाला प्रत्येक पक्षकार एक अधिकार का प्राख्यान करते हैं और एक ही हक के अधीन मुकदमेबाजी करते हैं जो समान दावा करने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्य है। इसलिए:

"20... एक विभाजन के वाद में संयुक्त संपत्ति का दावा करने वाला प्रत्येक पक्षकार एक अधिकार का प्राख्यान करता हैं और एक ही हक के अधीन मुकदमेबाजी करते हैं जो समान दावा करने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्य है। यदि इस विवाद्यक के तहत दूसरा मुकदमा किया जाता है और निर्णय दिया जाता है, तो हम यह नहीं देखते हैं कि समान दावा करने वाले अन्य लोगों को "स्वयं और अन्य लोगों के लिए सामान्य रूप मे" एक अधिकार का दावा करने के लिए क्यों नहीं अभिनिर्धारित किया जा सकता है। उनमें से प्रत्येक को स्पष्टीकरण V। के कारण सामान्य या सभी समान प्रकृति के दावों तथा हित का प्रतिनिधित्व करने के लिए धारित किया जा सकता है। यदि हम अन्यथा धारित करें, तो आवश्यक रूप से इसका अर्थ यह होगा कि दो असंगत डिक्री हो जायेंगी। यह तय करने में कि क्या पूर्व न्याय का सिद्धांत किसी विशेष मामले पर लागू होता है या नहीं, इस अवधारण के लिए एक परीक्षण यह है कि क्या दो असंगत डिक्री अस्तित्व में आएंगी यदि इसे लागू नहीं किया जाता है। हमें लगता है कि यहाँ यही मामला होगा।"

---

268 (1977) 2 एससीसी 181

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

443. **गुरुशिद्दप्पा गुरुबसप्पा भूसनूर बनाम गुरुसिद्दप्पा चेनाविरप्पा चेतनी**[269] में, बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश (न्यायमूर्ति रंगनेकर) ने अभिनिर्धारित किया:

> "आदेश 1, नियम 8 उन विषयों के संबंध में संपूर्ण है, जिसके बारे में यह बात करता है और यह इससे स्पष्ट है कि यह केवल तब लागू होती है जब कई पक्षकार होते हैं तो वाद आदेश I, नियम 8 के प्रावधानों के तहत लाया जा सकता है। यह कि एक वाद का स्पष्टीकरण VI के अर्थ के भीतर एक प्रतिनिधि वाद होना संभव है, हालांकि इसका आदेश I, नियम 8 के तहत आना आवश्यक नहीं है और इसलिए उस आदेश के प्रावधानों के तहत लाने की आवश्यकता नहीं है, यह इस देश में बहुत समय से अवधारित किया गया है...
>
> इसलिए स्पष्टीकरण VI, आदेश I नियम 8 के अन्तर्गत आने वाले मामलों तक ही सीमित नहीं है, लेकिन समग्र नियम से अलग, इसमें कोई मुक़दमा भी शामिल होगा, जिसमें पक्षकारगण स्वयं के अलावा अन्य हितबद्ध व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के हकदार हैं।"

इसलिए श्री नैफाडे के तर्क पर विचार करने के उद्देश्य से, हम इस सिद्धांत पर आगे बढ़ते हैं कि आदेश I नियम 8 के उपबंध सीपीसी 1908 की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI की प्रयोज्यता को नियंत्रित नहीं करते हैं। वर्तमान मामले के तथ्यों में, *प्रांङ्न्याय* के सिद्धांतों की प्रयोज्यता का विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता है। धारा 11 में निहित सिद्धांतों की कसौटी पर उभरने वाली स्थिति इस प्रकार है:

(i) विचार किया जाने वाला पहला बिन्दु यह है कि क्या पश्चातवर्ती वाद के पक्षकार, पूर्वतर के वाद के पक्षकारों के समान हैं या क्या वे उसी हक के अधीन मुकदमेबाजी करते हैं। पूर्वतर वाद को स्वंय को अयोध्या में स्थित जन्मस्थान के महंत के रूप में वर्णित करते हुए महंत रघुबर दास द्वारा

---

269 एआईआर 1937 बॉम्बे 238

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संस्थित किया गया था। यह वाद रघुबर दास द्वारा निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में संस्थित नहीं किया गया था। 1885 के वाद में निर्मोही अखाड़ा का कोई संदर्भ स्पष्टतः अनुपस्थित है। इसलिए धारा 11 के स्पष्टीकरण VI की प्रयोज्यता के लिए प्राथमिक आवश्यकता आकृष्ट नहीं होती है। 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा अपनी व्यक्तिगत क्षमता में संस्थित किया गया था। यह या तो निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में उनकी क्षमता में या हिंदुओं की ओर से संयुक्त रूप से संस्थित वाद नहीं था;

(ii) न तो ऐसे देवता जो वाद 5 के प्रथम और द्वितीय वादी हैं और न ही सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, जो वाद 4 में वादी है, 1885 के वाद के पक्षकार थे। महंत रघुबर दास ने प्रारंभ में केवल सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर कॉउन्सिल इन इण्डिया को पक्षकार बनाते हुए पूर्वतर वाद संस्थित किया गया था। बाद में, मोहम्मद असगर को मुतावल्ली के रूप में उनकी क्षमता में पक्षकार बनाया गया था। पूर्वतर कार्यवाहियों के पक्षकार अलग थे;

(iii) पूर्वतर मुकदमे में जो अनुतोष मांगा गया था, वह रामचबूतरा पर मंदिर के निर्माण की अनुज्ञा के लिए था। वर्तमान कार्यवाहियों में, जो अनुतोष मांगा गया है, वह अन्य बातों के साथ–साथ विवादित संपत्ति की प्रकृति के संबंध में एक अधिनिर्णयन करना है कि क्या यह एक मस्जिद है जो जनता के लिए समर्पित है या क्या यह हिंदुओं के लिए उपासना स्थल है; और

(iv) 1885 के वाद में केवल जन्मस्थान में 17x21 फीट के चबूतरा पर विचार किया गया था, जिसका वादी के कब्जे में होने का दावा किया गया था। उस वाद की विषय वस्तु को दर्शाने वाले मानचित्र को कार्यवाही में संलग्न कर दिया गया है। दूसरी ओर, वाद 4 और 5 में वादग्रस्त संपत्ति में आंतरिक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और बाहरी अहाता, दोनों शामिल हैं। वाद 5 में, जिस अनुतोष का दावा किया गया है वह है:

> "एक ऐसी उद्घोषणा कि अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का पूरा परिसर, संलग्नक I, II और III में यथा वर्णित और सीमांकित, वादी देवताओं से संबंधित है।"

वाद पत्र के प्रस्तर 2 में संलग्नक I, II और III का वर्णन है:

> " प्लीडर शिव शंकर लाल द्वारा भवन परिसर और राम जन्म भूमि के रूप में ख्यात संलग्न क्षेत्र का बनाया गया नक्सा नजरी... साथ ही उनकी 25. 05. 1950 दिनांकित रिपोर्ट इस वाद पत्र के साथ संलग्न की जा रही हैं और संलग्नक क्रमशः I, II और III के रूप में इसका हिस्सा बनायी जा रही है।"

डॉ. एम इस्माइल फारुकी बनाम भारत संघ[270] के मामले में संविधान पीठ के निर्णय के पश्चात विवाद अब केवल वाद 5 के वाद पत्र के संलग्नक I में वर्णित आंतरिक और बाहरी अहाते तक सीमित है। उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्देशों के अधीन इस विवाद पर न्याय निर्णयन किया। वाद 4 और 5 में वाद की संपत्ति 17 x 21 फीट माप वाले चबूतरे से बड़ी है जो कि 1885 के वाद की विषयवस्तु थी, हालांकि निस्संदेह चबूतरा भी वाद की संपत्ति का एक हिस्सा है।

444. वी राजेश्वरी (श्रीमती) बनाम टी सी सर्वनाभव[271] के मामले में, अपीलार्थी ने वर्ष 1984 में 1817 वर्ग फीट माप वाली संपत्ति के स्वत्व की

---

270 (1994) 6 SCC 360
271 (2004) 1 SCC 551

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

घोषणा और कब्जे की बहाली की घोषणा की मांग करते हुए वाद संस्थित किया। इससे पहले 1965 में, उसके एक पूर्ववर्ती स्वत्वधारी ने संपत्ति पर बनी इमारत के ऊपरी तल पर स्थित 240 वर्ग फीट से अधिक क्षेत्र के कब्जे और स्वत्व की घोषणा के लिए प्रत्यर्थी के विरुद्ध वाद संस्थित किया।

उच्च न्यायालय ने धारित किया कि स्वत्व और कब्जे का विषय अपीलार्थी के पूर्ववर्ती स्वत्वधारी द्वारा संस्थित वाद में निर्णीत हो चुका है और पश्चातवर्ती वाद प्राङ्न्याय द्वारा बाधित है। उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटते हुए इस न्यायालय ने धारित किया:

> "15. वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हुए, निःसंदेह प्राङ्न्याय की दलील विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आवश्यक दलीलें देकर स्वीकार नहीं की गई। प्रथम अपीलीय न्यायालय में वादी ने पिछले वाद में, जिसमें पूर्ववर्ती स्वत्वधारी एक पक्षकार था, निर्णय और डिग्री को एक साक्ष्य के रूप में अभिलेख में लाने की मांग की। उसका निवेदन था कि वह न केवल दस्तावेजों द्वारा वाद संपत्ति पर अपने स्वत्व को सिद्ध करने में सफल रहा बल्कि पूर्व के निर्णय में, जो कि इस वाद संपत्ति के एक हिस्से से संबंधित था, भी उसके पूर्ववर्ती के स्वत्व को बरकरार रखा गया था जिससे उसका पक्ष मजबूत हुआ। उसमें प्रत्यर्थी को दस्तावेजों की जानकारी थी फिर भी उसने प्रांङ्निर्णय की दलील नहीं दी। उच्च न्यायालय को यह सोचने के झंझट में नहीं पड़ना था कि पिछले वाद में मामला क्या था, सुनवाई क्या हुई और क्या निर्णय हुआ। **तथ्य यह है कि पिछला वाद वर्तमान वाद की पूरी संपत्ति की एक छोटे हिस्से तक सीमित था और संपत्ति के एक विनिर्दिष्ट हिस्से से संबंधित निर्णय से, आवश्यक रूप से, संपूर्ण संपत्ति के लिए प्राङ्निर्णय नहीं बनता जो कि अब मुकदमे की विषय वस्तु थी।"**
>
> (प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

445. इस उपधारणा के समर्थन में कि धारा 11 के अन्तर्गत प्राङ्निर्णय का सिद्धान्त तब लागू होता है जब दो पक्षों के मध्य पिछले और पश्चातवर्ती वादों में प्रत्यक्ष और सारवान विषय समान हों और यद्यपि कि पिछला वाद संपत्ति के एक हिस्से से संबंधित रहा हो और पश्चातवर्ती वाद में सम्पूर्ण सम्पत्ति विवाद की विषय वस्तु हो, श्री नाफड़े ने **के इथिराजन बनाम लक्ष्मी**[272] के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय का अवलंब लिया है। श्री नाफड़े द्वारा दी गई प्राङ्निर्णय की दलील स्वीकार करने में मात्र यही कठिनाई है :

(i) महंत रघुबर दास द्वारा वर्ष 1985 का पिछला वाद प्रतिनिधिक हैसियत से नहीं था। महंत रघुबर दास ने स्वयं को जन्मस्थान का महंत होने का दावा किया था। उन्होंने निर्मोही अखाड़ा के महंत के रूप में कोई दलील नहीं दी। दावा उनका व्यक्तिगत था;

(ii) न तो वाद 4 का वादी और न ही वाद 5 के वादी देवता पूर्ववर्ती कार्यवाहियों के पक्षकार थे। वर्ष 1985 का वाद प्रतिनिधिक हैसियत से हिंदुओं की ओर से और उनके लिए नहीं संस्थित किया गया था न ही उसके लिए कोई दलील थी। महंत रघुबर दास ने सेवादारी अधिकारों के लिए कोई दावा नहीं किया और न ही न्याय निर्णयन में सेवादारी किस्म के किसी दावे पर विचार हुआ। दूसरी ओर, यह वाद 3 में दावे का और निर्मोही अखाड़ा की ओर से वाद 5 की पोषणीयता के बचाव का आधार ही है।

---

272 (2003) 10 SCC 578

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) वर्ष 1985 के वाद को खारिज करते हुए विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि चबूतरे पर हक और कब्जा हिन्दुओं का था। हालांकि वाद इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मंदिर बनाने की अनुमति देना कानून व्यवस्था का गंभीर उल्लंघन होगा। अपील में जिला न्यायाधीश द्वारा इस आधार पर वाद खारिज किये जाने की अभिपुष्ट की गई थी। हालांकि, चबूतरा के कब्जे और स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष निरर्थक हो गई थी और उसे तद्नुसार हटा दिये जाने का निर्देश दिया गया। न्यायिक आयुक्त ने वाद के निरस्तीकरण की अभिपुष्टि की। यद्यपि कि न्यायिक आयुक्त ने माना कि यह प्रतीत होता है कि हिन्दुओं को संलग्न मस्जिद के परिसर के भीतर कुछ स्थानों तक पहुंच का सीमित अधिकार था, उन्होंने धारित किया कि यह स्थापित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि वादी (महंत रघुबर दास) प्रश्नगत भूमि के स्वामी हैं। किसी ऐसे वाद में दिया गया यह निष्कर्ष जिसमें न तो वादी देवता न ही निर्मोही अखाड़ा पक्षकार हों, उनके विरुद्ध *प्राङ्निर्णय* की तरह कार्य नहीं कर सकता।

(iv) *प्राङ्निर्णय* का सिद्धांत किसी व्यक्ति को एक ही वादहेतुक पर आधारित विवाद के संबंध में दो बार की परेशानी से बचाता है। जैसा कि पहले देखा गया है, वर्ष 1885 के वाद के लिए वादहेतुक पूरी तरह भिन्न था; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) वर्ष 1885 के वाद में निर्णय वाद में वादी द्वारा किए गए दावे के आधार पर 1885 के वाद में विनिश्चय उस वाद में वादी द्वारा किए गए दावे के आधार पर व्यक्तिगत रूप से किया गया था न्यायिक आयुक्त के फैसले में कोई भी अवलोकन न तो देवताओं (वाद 5 में वादी) को बांध देगा, जो पहले की कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे और न ही हिंदू। इसके अलावा, वाद 4 में मुसलमानों द्वारा किए गए शीर्षक के दावे के संबंध में 1885 के वाद में कोई स्थगन नहीं था।

446. इस तर्क में कोई मेरिट नहीं है कि रचनात्मक *प्राङ्न्याय* का सिद्धान्त पश्चातवर्ती वादों को बाधित करेगा। पक्षकार अलग–अलग थे। पिछले वाद में दाव अलग था। दावे का आधार वस्तुतः वह नहीं था जो पश्चातवर्ती वाद की विषयवस्तु है। इसी तरह, विवादक विबंधक या अभिलेख विबंधक सिद्धान्त के आधार पर दिए गए विनम्र तर्क में भी कोई मेरिट नहीं है। परिणामस्वरूप, और उपरोक्त कारणों से, *प्राङ्निर्णय* के आधार पर वाद 5 की पोषणीयता का विरोध कर रहे वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री नाफड़े द्वारा दिए गए तर्कों में कोई मेरिट नहीं है।

एन. 9 पुरातात्विक रिपोर्ट

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

447. सुन्नी वाद्रल वक्फ बोर्ड[273] द्वारा संस्थित और देवताओं[274] द्वारा संस्थित दोनों वादों में एक विषय यह विरचित था कि क्या विवादित ढ़ाचा किसी मंदिर को ध्वस्त करके बनाया गया है जो उस स्थान पर पहले से था।

448. 1 अगस्त, 2002 को उच्च न्यायालय ने प्रस्तावित किया कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग[275] द्वारा उत्खनन किया जाए। उच्च न्यायालय ने प्रस्तावित किया कि उत्खनन से पहले, एएसआई ग्राउंड पेनेट्रेटिंग राडार[276] या जियो–रडियोलॉजी सिवादम का उपयोग करके विवादित स्थल का सर्वेक्षण करेगी। प्रस्तावित निर्देशों पर आपत्तियों की सुनवाई कर 23 अक्टूबर 2002 को उन्हें उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। एएसआई ने एक कॉर्पोरेट इकाई द्वारा जीपीआर सर्वेक्षण करवाया जिसने 17 फरवरी 2003 को अपनी रिपोर्ट उच्च न्यायालय को सौंप दी। रिपोर्ट में "रामचबूतरा क्षेत्र से लगे गर्भगृह के उत्तर और दक्षिण में मुख्य स्थान में विसंगति संरेखण की उपस्थिति मिली। विसंगतियों से निम्न स्थितियों का पता चला:

> "..... अपनी अनुप्रस्थ बनावट और स्थानीय पैटर्न से "विसंगति संरेखण" की संगति किसी तरह की दीवार की नींव के अनुरूप हो सकती है। राम चबूतरा क्षेत्र में, उन संरेखणों के क्रॉसिंग पैटर्न और उन विभिन्न प्रस्तरीय इकाइयों जिनसे वे उभरते हैं, से एक दूसरे के समकालीन होने के बजाय उनके अनुक्रमिक निर्माण अवधियों से संबंधित होने का पता चलता है" .

---

273 Issue 1(b) in OOS No. 4 of 1989 as follows : —Whether the building had been constructed on the site of an alleged Hindu Temple after demolishing the same as alleged by defendant no. 13? If so, its effect?

274 Issue No. 14 in OOS No. 5 of 1989 reads as follows : —Whether the disputed structure claimed to be Babri Masjid was erected after demolishing Janma Sthan Temple at its Site?॥

275 "ASI"

276 "GPR"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रिपोर्ट में यह भी पाया गया कि रामचबूतरा क्षेत्र के दक्षिणी भाग में अनुक्रम"किसी प्रकार की सतह संरचना का सूचक हो सकता है, संभवतः पत्थर के स्लैब यदि इसका उद्भव प्राचीन है।" इसके अलावा रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि:

> " एक तीसरे प्रकार की दफ्न संरचनाएं स्थल की पूरी पूर्वी सीमा तक विस्तृत हैं।इसमें कुछ आंतरिक बनावट या ध्वस्त सामग्री वाले कुछ दफ्न ढेर संरचनाएं शामिल हैं। इलाके की ढलानों से ठीक पहले दक्षिण पश्चिम क्षेत्र में इसी तरह की विसंगतियों का पता चला है। ”

अंत में, जीपीआर सर्वे में 0. 5 से 5. 5 मीटर तक की गहराई वाली विविध संरचनाओं का पता चला है जो किसी प्राचीन समकालिक संरचना जैसे स्तंभों, नींव, दीवार स्लैब, स्थल के बड़े हिस्से पर फैली हुई सतह से जुड़ी हो सकती हैं। हालांकि, सर्वेक्षण ने संकेत दिया कि इन विसंगतियों की सही प्रकृति का निर्धारण पुरातात्विक खुदाई के आधार पर किया जा सकता है। इस रिपोर्ट के प्राप्त होने पर, उच्च न्यायालय ने एएसआई को विवादित स्थल पर निम्नलिखित हद तक खुदाई करने का निर्देश दिया:

> " वाद सं. 2 वर्ष 1950 (ओओएस सं.1 वर्ष 1989) में प्रस्तुत आयुक्त की रिपोर्ट में दिखाए गये लगभग 100x100 फैले हुए, नक्सा नजरी सं. 1 में दर्शित और ए, बी, सी, डी, ई अक्षरों द्वारा दिखाए गए क्षेत्र तक तथा तत्पश्चात चबूतरे की सीमा तक उत्तरी हिस्से में और आगे उक्त स्थल के पश्चिम, दक्षिण और पूर्व में 50 फीट की सीमा तक।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

449. पुरातत्वविदों को उस क्षेत्र को जहां भगवान राम की मूर्ति लगी है और मूर्ति के चारों ओर 10 फीट तक के क्षेत्र में व्यवधान न उत्पन्न करने का निर्देश दिया गया था एएसआई से कहा गया था कि वह स्थल पर पूजा न रोके। इस आदेश के बाद, उच्च न्यायालय ने 26 मार्च 2003 को स्थल पर पाये गये उत्खनन की प्रकृति का अंकन करने और पक्षकारों और उनके अधिवक्ता की उपस्थिति में पाए गए कलाकृतियों को सील करने का निर्देश जारी किया। एएसआई टीम को उन गड्ढों की गहराई और प्रस्तर की परत का, जहां कलाकृतियां पायी गयी थी, रिकॉर्ड बनाने का निर्देश दिया गया। प्राप्तियों की तस्वीरें लेने की अनुमति थी। प्रक्रिया में निष्पक्षता लाने और पक्षकारों के विश्वास की रक्षा करने के लिए, उच्च न्यायालय ने सुनिश्चित किया कि "एएसआई टीम के संचालन और मजदूरों को रखने के काम में" दोनों समुदायों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व रखा जाए। प्रक्रिया के दौरान, उच्च न्यायालय ने खुदाई के संबंध में पक्षकारों द्वारा दायर विभिन्न आपत्तियों पर विचार किया। एएसआई ने 22 अगस्त 2003 को अपनी अंतिम रिपोर्ट सौंपी, जिस पर सुन्नी वाद्रल वक्फ बोर्ड और अन्य पक्षकारों ने आपत्तियां दर्ज की। उच्च न्यायालय ने इन आपत्तियों पर विचार किया।

450. वर्तमान विवाद में पुरातत्व संबंधी साक्ष्य पर बहुत सारे तर्क दिये गये हैं। इन तर्कों में रिपोर्ट के निष्कर्ष , उनसे निकाले गये निगमनों, एक निगमनात्मक विज्ञान के रूप में पुरातत्व और विवादों में पुरातात्विक साक्ष्य का महत्व जैसे कि वर्तमान विवाद के संबंध में, आदि विविध विषयों का समावेश किया गया है। अन्य बातों के साथ–साथ इस न्यायालय को विचार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करना चाहिए: (I) रिपोर्ट के निष्कर्षों और अपनाई गई कार्यप्रणाली पर; (ii) रिपोर्ट के निष्कर्षों के विरुद्ध उठाई गई आपत्तियों पर; (iii) विशेषज्ञ साक्ष्य को न्यायिक अंतरण की सीमा सहित वर्तमान चरण में जांच का दायरा; (iv) पुरातात्विक साक्ष्य को दी गयी चुनौती का पूर्णतः अनुमान पर आधारित और व्यक्तिपरक होना; (v) साक्ष्य का स्तर और (vi) रिपोर्ट का निर्गत होना और प्रश्नों का अनुत्तरित होना। अंत में, वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक जांच स्वत्व के निर्धारण में पुरातात्विक साक्ष्य का सारवान मूल्य है जिसे निर्णय के दौरान संदर्भित किया जाएगा।

451. एएसआई की रिपोर्ट में रिपोर्ट की शुरुआत में ही इसका लक्ष्य और कार्यप्रणाली दर्शित की गई है। जिस तरीके से खुदाई के लिए गड्ढों की योजना बनाई गई थी वह इस प्रकार है:

> "उत्खनन की योजना बनाने में, उन स्थानों पर जहां सीमित जगह है,गड्ढों के रेखांकन की नवीनतम तकनीकी अपनाई गई थी और इसलिए 10x10 वर्गमीटर के 4. 25x4. 25 मीटर के चार चतुर्थांश में विभाजित, 0. 50 मीटर चौतरफा पट्टी से विभक्त रेखांकन की जगह उत्तर–दक्षिण और पूरब–पश्चिम दोनों दिशाओं में प्रत्येक 5 मीटर की दूरी पर कील लगाकर चारों तरफ 0.5 मीटर की पट्टी छोड़कर 4 x 4 मीटर का क्षेत्र निकालकर किया गया जिसमें समीपस्थ गड्ढों के बीच पुरातत्वविदों और मजदूरों के आने–जाने के लिए प्रभावी तौर पर 1. 0 मीटर की जगह छोड़ी गई थी। एक मीटर चौड़ी पट्टी विशेषकर इस तथ्य को ध्यान में रखकर प्रदान की गई थी कि नये जमाव और मलबे से संवेदनशील क्षेत्र में धरती के दबाव के कारण गड्ढे धंस न जांए।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

टीम ने, उस स्थान को छोड़कर जहां देवता को स्थापित किया गया है, पूरे विवादित क्षेत्र में गड्ढे खुदवाए और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए नमूने एकत्र किए :

> "वैज्ञानिक अध्ययन और विश्लेषण के लिए प्लावादर, सतह, हड्डियां, कोयला, प्रागैतिहासिक– वानस्पतिक अवशेषों को भी एकत्र किया गया। उस अस्थायी ढांचे को छोड़कर जहां रामलला विराजमान हैं और उच्च न्यायालय द्वारा यथा निर्दिष्ट राम लला से 10 फीट की दूरी की परिधि को छोड़कर पूरे विवादित स्थल पर सभी तरफ गड्ढे खोदे गये। खुदाई के कार्य की योजना जीपीआर सर्वेक्षण द्वारा मिले विसंगतियों के महत्वपूर्ण संकेतों के अनुसार चरणबद्ध तरीके से बनाई गई थी।"

खुदाई के कार्य और इसके निष्कर्षों को वादिल और वीडियो फुटेज द्वारा अभिलिखित किया गया। एएसआई ने पांच महीने की अवधि में नब्बे खाइयों की खुदाई की है और खुदाई के पूरा होने के पंद्रह दिनों के भीतर खुदाई की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। एएसआई टीम ने पक्षकारों और उनके अधिवक्ता की उपस्थिति में अपना कार्य किया है। उत्खनित सामग्री में पुरातन वस्तुएं, रुचिकर वस्तुएं, चकी हुई मिट्टी के बर्तन, टाइल और हड्डियों को पक्षकारों और उनके अधिवक्ताओं की उपस्थिति में सील किया गया और फैजाबाद डिवीजन के आयुक्त द्वारा प्रदान किए गए एक सुरक्षित कमरे में रखा गया।

पूर्वी क्षेत्र

452. एएसआई टीम ने शुरू में पूर्वी क्षेत्र में खुदाई की, जहां प्रवेश द्वार के अवशेष के साथ घेरे की दीवार दिखी, जिसके नीचे पहले की समयावधि के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सतह और दीवारें थीं। इस स्थान का केन्द्रीय भाग जिसे रामचबूतरा कहा जाता है इसी क्षेत्र में पाया गया जो पांच चरणों में बनाया गया था। जिन मुख्य विशेषताओं को उद्घाटित किया गया है उनका विश्लेषण निम्नवत् है:

> "इस क्षेत्र में पायी गयी प्रमुख विशेषताओं में घेरे की दीवार के भीतर अक्षत पड़े पुनर्प्रयुक्त ईंटों व चूना पत्थर के चौदह निर्माण जिसमें दीवार के बीच में 2. 12 मीटर का एक हिस्सा था जो प्रवेश द्वार प्रतीत होता है जिसके शीर्ष पर संगमरमर के स्लैब और चूने व सीमेंट के बने सतह प्रस्तर जिस पर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अर्पित संगमरमर स्लैब लगे थे। कुछ लंबे चूल्हे और उत्तर मुगल काल की भट्ठी पायी गयी।(Pl. 3). "

दक्षिणी क्षेत्र

चबूतरे के दक्षिण की ओर तेइस गड्ढे खोदे गये थे। उत्खनन के परिणामस्वरूप पहले की अवधि के लगभग पचास स्तंभ आधार दो बिंदुओं पर मिले, इन स्तंभ आधारों के नीचे पहले के स्तंभों के आधारों के निशान पाए गए। इस क्षेत्र में खुदाई के परिणामस्वरूप इसके बाहरी हिस्से में ईंट के एक वृत्ताकार पीठ का पता चला जो आंतरिक संरचना में वर्गाकार थी और पूर्व में प्रवेश और उत्तर में निकास के लिए आयताकार बनावट थी। एएसआई की रिपोर्ट का प्रासंगिक हिस्सा निम्नवत है:

> 'उत्तरी और पश्चिमी दीवारों के हिस्से और उनकी नींव और चूना पत्थर खंड के बने हुए विवादित ढ़ाचे के दक्षिणी और पूर्वी पार्श्वों की नींव मिली जिसका आधार सीधे पश्चिम की ओर पहले की अवधि के बने 1.77 मी चौड़ी ईंट की दीवार पर था जिसके निचले हिस्से में सुसज्जित ईंटे और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

चूना पत्थर की नींव है और नियत अंतराल पर लगे 50 से अधिक स्तंभों के आधार हैं, जो एक सतह पर चूना–ईंट की दीवार से जुड़े हैं। विवादित ढ़ाचे की दीवार की नींव में ईंटो के टुकड़े भरे थे। स्तंभ आधार वर्गाकार या वृत्ताकार बनावट में ईंट की टुकड़ों के बने थे जिस पर दो से पांच चूना पत्थर ब्लाक रखे हैं संभवतः नीचे और उत्तरी क्षेत्र में पाये गये शिलाखण्ड की तरह, यद्यपि कि इस क्षेत्र में मात्र एक शिलाखण्ड पाया गया था। पुनश्च, उपरोक्त वर्णित ईंट की दीवार के नीचे एक और ईंट की दीवार देखी गयी जिसके शीर्ष पर सुसज्जित शिलाखण्ड प्रयुक्त पाये गये। इससे नीचे स्तरों में, ई 8 और एफ 8 गड्ढों में ईंट की संरचनाएं पायी गयी, हालांकि उनकी पूरी आयोजना का पता नहीं चला। आधार स्तंभ के नीचे दो बिन्दुओं पर एफ 8 और एफ 9 गड्ढों में पहले के स्तंभ आधारों के अवशेष भी पाये गये जो उस सतह के नीचे दूसरे सतह से जुड़े थे, जिससे अधिकांश स्तंभ आधार जुड़े थे। ऊपर उद्धृत ईंट की दीवार संभवतः इसकी ईंटे निकालने के कारण दक्षिणी ओर बुरी तरह क्षतिग्रस्त पायी गयी। यह दीवार चबूतरे के उत्तरी तरफ विस्तृत पायी गयी। उपरोक्त उद्धृत दीवारों के प्रस्तर के नीचे ईंट की एक पीठ पायी गयी जो बाहर से वृत्ताकार और आन्तरिक आयोजना में वर्गाकार थी और जिसमें पूर्व की ओर आयताकार प्रवेश और उत्तर की ओर छोटा निकास था। गड्ढों के और दक्षिण क्षेत्र में तीव्र ढाल के कारण वहां उत्खनन करना संभव नहीं था। G7 में 10.84 मी. की गहराई पर प्राकृतिक मृदा पायी गयी जिसकी पुष्टि 13. 20 मी. की गहराई तक खुदाई करके की गयी। (Pl. 5)।"

पश्चिमी क्षेत्र

कुछ स्थानों पर ईंट की दीवार की पचास बनावटें देखी गयी।

उत्तरी क्षेत्र

एएसआई टीम ने पाया कि :

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"दक्षिणी क्षेत्र में स्थित विशाल ईंट की दीवार इस क्षेत्र में उत्तर –दक्षिण दिशा में जाती पायी गयी और इसके स्तर के नीचे, जैसा कि दक्षिणी क्षेत्र में पहले देखा गया था, एक और दीवार पायी गयी। शीर्ष तीन तल और स्तंभ आधार जो शीर्ष तल से जुड़े थे, भी दिखे (पीआई/10)। इस क्षेत्र में स्तंभ के आधारों की दिलचस्प विशेषताएं यह थी कि चूना पत्थर शिलाखण्डों के ऊपर इन आधारों को बालू पत्थर के वर्गाकार शिलाखण्ड लगाकर सही तरह से संवारा गया था जिन पर स्तंभों को सहारा देने के दीवारों के चारों तरफ चार खड़े शिलाखण्ड लगे थे ताकि कोई झुकाव न हो। शिलाखण्ड सतह से थोड़ा ऊपर थे।

चबूतरा

विवादित ढांचे के ध्वंस के बाद, और 5 मार्च 2003 दिनांकित उच्च न्यायालय के आदेश के तहत, नब्बे गड्ढों में आंशिक रूप से खुदाई की गई। दक्षिण क्षेत्र में चार गड्ढों के हिस्से चबूतरे के नीचे थे। यहां एएसआई टीम को चबूतरे पर भी विवादित ढ़ाचे के सतह और दीवार के नीचे ईंट की संरचनाएं, सतह और स्तंभ आधार मिले।

453. एएसआई की रिपोर्ट का अध्याय III अन्य बातों के साथ–साथ स्तर विज्ञान और कालानुक्रम से संबंधित है। रिपोर्ट से यह पता चलता है कि उत्खनन से 10. 80 मीटर की गहराई तक एक सतत सांस्कृतिक अनुक्रम प्राप्त हुआ है। इसे मिट्टी के बर्तनों के अनुक्रम, संरचनात्मक अवशेष और अन्य कालक्रमणीय प्राप्तियों के सम्मिलित और अनुसमर्थनात्मक साक्ष्य के आधार पर चार सांस्कृतिक अवधियों में विभक्त (निम्नवत् व्याख्यायित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जा सकता है। रिपोर्ट से पता चलता है कि उत्खनित क्षेत्र में संरचनात्मक गतिविधियाँ कुषाण काल से गुप्त और गुप्तोत्तर कालों तक हुई।

> " उत्खनन से यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि इस स्थल पर उत्तरोत्तर संरचनात्मक गतिविधियां हुई हैं जो इस स्थल पर कुषाण काल में प्रारम्भ हुई। ईंट और पत्थर की संरचनाओं से, जो कुषाण काल और पश्चातवर्ती गुप्त और गुप्तोत्तर कालों में बनाई गयीं , टीले की ऊंचाई बढ़ी है। पूर्वकालीन अवशेष पर और संरचनात्मक निर्माण के लिए बाद के लोगों ने टीले की परिधि से खोदी गई मिट्टी जमा की, जो कि काफी पहले के सांस्कृतिक कालखण्ड से संबंधित था। यह शेष संरचनात्मक चरणों के लिए भी सत्य है।"

एएसआई की रिपोर्ट से पता चला कि पहले के कालखण्डों (अवधि । से ।।।) के कोयले के नमूनों के C14 निर्धारण से दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व की अंतिम शताब्दियों से शुरू होने वाली तारीखें मिलती हैं।

एएसआई की रिपोर्ट में, यथा उपरोक्त वर्णित, नौ सांस्कृतिक अवधियों के निक्षेपों का पता चलता है।

(i) **अवधि– ।**

उत्तरी काले चमकीले बर्तन का प्रस्तर

यह अवधि छठी से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व की है, जहां उस स्थल पर बसने वाले प्रारम्भिक लोगों ने उत्तरी काले चमकीले बर्तनों का प्रयोग किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और अन्य संलग्न बर्तन (भूरे बर्तन, काले रंगे हुए बर्तन और लाल बर्तन) जो उस अवधि के परिच्छेदक पात्र हैं। जली हुई मिट्टी पर पत्ती की छाप के अलावा कोई सारवान संरचनात्मक गतिविधि नहीं पायी गई। उत्खनन के निष्कर्ष निम्नानुसार हैं:

> "अवधि––। (उत्तरी काले चमकीले बर्तन प्रस्तर)
> ....मृदभांड के अतिरिक्त इस प्रस्तर में टूटे बाट, कलश के टुकड़े (votive tank), कर्णफूल, तश्तरियां, चिबिड्डी (hopscotch), तश्तरी पर बना हुआ पहिया, एक टूटी पशु मूर्तिका (सभी मिट्टी की बनी हुई), लोहे की चाकू (टूटी हुई), काँच के टुकड़े, हड्डी इत्यादि मिले। हालांकि इस प्रस्तर से मिली सबसे महत्वपूर्ण प्राप्ति है पीछे की तरफ सादा और आगे की तरफ अशोक कालीन ब्राह्मी में भारी उभार युक्त अनुश्रुत 'सिधे' वाली हरे कांच में गोल रत्नफलक (पंजी. सं. 778)"

(ii) **अवधि – II**

शुंग प्रस्तर

शुंग प्रस्तर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से संबंधित है। इस अवधि के दौरान, इस स्थल पर ईंट और पत्थर की पहली संरचनात्मक गतिविधि प्रारम्भ हुई। एएसआई की रिपोर्ट में कहा गया है:

> "..... इसी अवधि में, ज J3 में यथादृष्टव्य, इस स्थल पर पत्थर और ईंट की पहली संरचनात्मक गतिविधि देखी। इस प्रस्तर में मानव और पशु आकृतियां, चूड़ी के टुकड़े, बॉल, व्हील और टूटी छत मिलती है जिस

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर ब्राह्मी में केवल 'श्री' अक्षर मिलता है (पंजी. सं. 701); प्रस्तर के अवधि की मृदभांड के अलावा, एक काठी चकरी और पत्थर का एक ढक्कन का हिस्सा, एक कांच का दाना, एक हेयरपिन और हड्डी पर एक उत्कीर्णक और एक हाथीदांत का पांसा।

(iii) **अवधि – III**

कुषाण प्रस्तर

यह अवधि जो लगभग पहली– तीसरी शताब्दी से संबंधित है, यहां से भृदभांड के समृद्ध भण्डार प्राप्त हुए हैं। एक गड्ढे में निचले प्रस्तर पर एक बड़ा चूल्हा मिला। उत्खनन के निष्कर्ष निम्नवत हैं:

" हालांकि, जी7 गड्ढे में, सीमित क्षेत्र में मानव और पशु मूर्तिका, चूड़ियों के टुकड़े, और कलश का एक हिस्सा, सभी मिट्टी के बने हुए, हड्डी की बना हुआ एक बालपिन, कांच की माला और तांबे के उपधातु की छड़। 15 वें गड्ढ़े में, हालांकि ऑपरेशन क्षेत्र में नियमित प्रस्तरीय निक्षेप नहीं मिले, पूर्वी खंड ने रिकार्ड मात्रा में नियमित निक्षेप और स्थल की लगभग सभी संरचनात्मक गतिविधियां दिखीं। उत्खनित सतह के ऊपर 22 क्रमों में विशाल ईंट निर्माण J5–J6 के नीचे देखा गया है जो इस अवधि से संबंधित है। कुषाण काल ने निश्चित रूप से बड़े आयामों की संरचनाओं के निर्माण की हलचल दी, जो उनकी सार्वजनिक हैसियत की पुष्टि करता है। इसके अलावा इसी गड्ढ़े में एक पाषाण संरचना का साक्ष्य मिला जिसकी प्रकृति बहुत स्पष्ट नहीं है।

(iv) **अवधि – IV**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गुप्त प्रस्तर

यह अवधि चौथी–छठी शताब्दी ईस्वी से संबंधित है जो मृदभांड आकृतियों और एक तांबे के सिक्के की उपस्थिति से सत्यापित है। एएसआई की रिपोर्ट से पता चलता है:

> " परत 7 और 8 जी 7 द्वारा लगभग 2 मीटर मोटा निक्षेप, J5–J6 में प्रस्तर 9 और 10 और E8 और F8 गड्ढ़े में प्रस्तर 7 और 8 पूर्ववर्ती अवधि के अवशेषों के ऊपर गुप्त काल (लगभग चौथी–छठी शताब्दी ए. डी.) से संबंधित है, जिसकी उपस्थिति ज्यादातर मृदभांड आकृतियों जो की उस अवधि की प्रतिनिधिक हैं और पार्श्व में राजा की तस्वीर और सामने गरुड़ की आकृति और 'श्री'चन्द्र(गुप्त) अंकित एक तांबे के सिक्के (3. 75 मीटर की परत 8, जी 7, आरजी सं. –1030) द्वारा सत्यापित है।"

(v) अवधि – V

गुप्तोत्तर–राजपूत प्रस्तर

यह अवधि सातवीं से दसवीं शताब्दी ई. से संबंधित है। उपरोक्त अवधि के उत्खनन के परिणामस्वरूप इस अवधि के अंतिम प्रस्तर से संबंधित एक वृत्ताकार सहायक मंदिर का खुलासा हुआ है:

> "इस अवधि में छुरे के किनारे वाले पात्र, जो सातवीं से दसवीं शताब्दी ई. तक की अवधि के हैं, प्रमुखता से मिलते हैं। इस अवधि में भी खाई E8 और F8 में अनेक चरणों में संरचनात्मक गतिविधियां देखी गईं। इस अवधि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के अंतिम प्रस्तर से संबंधित एक वृत्ताकार सहायक मंदिर खाई ई 8–एफ 8 (चित्र 24 और 24 ए) में मिला। मिट्टी के बर्तनों के बीच कुषाण प्रकार इस अवधि के प्रकारों से अधिक है।"

(vi) अवधि VI

मध्यकालीन–सल्तनत प्रस्तर

यह अवधि ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी ई. से संबंधित है । खुदाई के निष्कर्ष निम्नवत हैं:

" ईंट–चूरा से बनी मोटी सतह मिली, परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर, एक विस्तृत और विशाल उत्तर–दक्षिण उन्मुख ईंट दीवार से जोड़ी गई (सं. 17) जो कि स्पष्ट रूप से पूर्व की ओर मुड़ी है (खड्ड D 7 और E 2–E 1, F 1 और ZF में पायी गयी) जो अवधि की प्रमुख संरचनात्मक गतिविधि थी (लगभग ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी ई.)। इसी अभिविन्यास में एक और दीवार G2 और ZG1 में 180 सेमी की गहराई पर देखी गई है जिसे G2 में परत 6A द्वारा सील किया गया है। लाल ईंट के सतह को अलग–अलग मोटाई के साथ ढूह के विस्तृत क्षेत्र में खड्ड E8, F8, G7, J5 & J6 तक पायी गयी। इसी स्तर पर, खड्ड G5 में, शिलाखण्ड पाये गये जो जो बड़े आकार के हो सकते हैं।"

(vii) अवधि – VII

मध्यकालीन स्तर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह अवधि बारहवीं शताब्दी ई. के आरंभ से सोलहवीं शताब्दी ई. के अंत तक चली और इसमें तीन उप–अवधियों –ए, बी और सी में संरचनात्मक गतिविधियां शामिल हैं।

> "... उप–अवधि–ए में, उत्तर–दक्षिण अभिविन्यास में एक बड़ी दीवार (सं. 16) का निर्माण किया गया था, जिसकी नींव खाई पिछली अवधि के लाल ईंट– सतह को काटती है। इस काल में निर्माण की एक नई शैली दिखाई देती है, तथापि एक सीमित क्षेत्र में। आसपास से खुदाई की गई सामग्री द्वारा ढूह की ऊंचाई काफी हद तक बढ़ गई, जिससे चूने बालू और ईंट की सतह बन गयी जिस पर एक स्तंभ आधारित संरचना बनाई गई थी (स्तंभ आधारों के साक्ष्य F 9, F 8 और G 7 खड्ड में उपलब्ध हैं)।"

उप–अवधि–बी के लिए, एएसआई रिपोर्ट इंगित करती है:

> " बड़ी ईंट के पटरियों (Pl.67) को काटने से विशेष रूप से एक वृत्ताकार झुकाव है। जिसका व्यास 1.05 मीटर है जिसका बनावट पश्चिम में आयताकार 0. 46x0. 32 मीटर है। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि यदि मध्य भाग को दीवार 16 या दीवार 17 की मौजूदा लंबाई और उत्तर से दक्षिण तक स्तंभ आधारों के संरेखण की लंबवत लंबाई के आधार पर परिकलित किया जाता है, तो फुटपाथ के केंद्र में वृत्ताकार अवनमन आता है। इस प्रकार, यह महत्वपूर्ण स्थल प्रतीत होता है। इसके अलावा, वृत्ताकार अवनमन विवादित संरचना के केंद्रीय भाग की ओर उन्मुख है जिस पर 'राम लल्ला' विराजमान हैं। 50x50x8 से 10 सेमी और 50x47x8 और 40x40x6 तक की ईंटें फुटपाथ पर विशेष रूप से निर्मित सतह टाइलों की तरह प्रयुक्त थीं।"

उप–अवधि बी के लिए उपरोक्त निष्कर्ष एक वृत्ताकार अवनमन के अस्तित्व का सूचक है, इसकी केंद्रीयता इसे महत्व का स्थान बताती है। यह भी कहा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गया है कि वृत्ताकार अवनमन विवादित संरचना के केंद्रीय भाग का सामना करता है, जिस पर देवता विराजमान हैं।

उप–अवधि सी में, स्तंभों या कालम को सहारा देने के लिए आधार मिला है:

> "इस निक्षेप तल में स्तंभों या कालमों को सहारा देने के लिए बने आधार डूबे हुए थे जिस पर 4–5 सेमी मोटी सतह थी और जिनमें बाहरी स्तंभों के लिए वर्गाकार सैंडवादोन ग्रिड थी, उनमें से कुछ ही अब बचे हैं। अधिकतर स्तंभ आधारों के आस–पास सतह टूटी है और स्तंभ आधार बहुत खराब स्थिति में है।"

(viii) अवधि – VIII

मुग़ल प्रस्तर

रिपोर्ट इंगित करती है:

> " पिछली अवधि (अवधि VII–C) का सतह विवादित संरचना (मस्जिद) की नींव के पत्थर के काले (ज्यादातर पथरीले) द्वारा काटा है। हालाँकि, अवधि VII–A की उत्तर–दक्षिण दीवार को पिछली दीवार के लिए नींव के रूप में बरकरार रखा गया है। नींव के अंदर और बिल्कुल सामने वाले भाग में, मिट्टी की एक परत बिछी है, जो भूरे रंग के कंकड़ के गहरे जमाव और राख के पतली परत जिसमें नदी के सफेद पत्थर हैं, के ऊपर पड़ी है । कुल निक्षेप लगभग 20–25 सेमी की मोटाई का है जो मुगल काल की

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पहली मंजिल के अंदर और साथ ही संरचना के बाहर कुछ दूरी तक पूर्व में नींव के रूप में कार्य करता है। ”

(ix) अवधि – IX

सुदूर और उत्तर मुगल प्रस्तर

इस अवधि में, दो क्रमिक तल बने, एक और चबूतरा पूर्व में टेरेस आकार में जुड़ा और बाद में दो क्रमिक बाड़े की दीवारें बनाई गई थीं। इसके अलावा:

"इस अवधि में टेरेस वाले चबूतरे को पूर्व में मौजूदा वाले से जोड़ने के लिए पूर्व की अवधि के निक्षेप की खुदाई की गई और हटाया गया जिसमें VII–C की अवधि की सतह कटी थी और पूर्वी क्षेत्र में नष्ट हो गयी थी। बाद में, केंद्र में एक छोटे से कदम के साथ पहले टेरेस वाले चबूतरे में एक विभाजक दीवार जोड़ी गई। और फिर संरचना के अंदर एक और सतह जुड़ी जो अब संलग्न चबूतरे तक विभाजक दीवार से वादी थी। कुछ बाद में, पूरे परिसर में बिना आधार वाली एक बाड़े की दीवार जोड़ी गई, जो मौजूदा सतह पर टिकी हुई थी, जिसमें दो द्वार, उत्तर में बड़ा और पूर्व में एक छोटा लगा हुआ था। इस अवधि के आसपास किसी समय, शवों को विवादित संरचना के उत्तर और दक्षिण में दफनाया गया, जिनसे ऊपरी सतह कटी है और जो प्रस्तर 1 द्वारा बंधी है।”

454. एएसआई की रिपोर्ट का अध्याय IV संरचनाओं से संबंधित है। इस अध्याय का एक महत्वपूर्ण पहलू एक खंड है जिसका शीर्षक है– “विवादित संरचना के नीचे विशाल संरचना”। प्रासंगिक निष्कर्ष नीचे दिए गए हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"उत्खनन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि उत्तर से दक्षिण में स्तंभ आधारों की सत्रह कतारें थी। प्रत्येक कतार में पांच स्तंभ आधार थे। क्षेत्र प्रतिबंध और प्राकृतिक बाधा के कारण, चबूतरे पर अस्थायी संरचना द्वारा घिरे केंद्रीय भाग में स्तंभ आधारों का पता नहीं चल पाया। उत्खनित पचास स्तंभ आधारों में से केवल बारह पूरी तरह से दिख रहे थे, पैंतीस आंशिक रूप से दिख रहे थे और तीन को केवल अंशतः देखा जा सकता था। पहले के उत्खनन के दौरान कुछ स्तंभ आधार मिले, जिसके बाद विभिन्न परतों के साथ उनके संबंध और उनकी भार वहन क्षमता के बारे में विवाद हुआ। वर्तमान खुदाई में ईंट की नींव पर उचित तरीके से व्यवस्थित और स्थापित किए गए पथरीले और पत्थर के ब्लॉकों के आधार के मूल रूप को निकाल कर और विवादित संरचना से पहले की संरचना के शीर्ष से उसकी जुड़ाव को उजागर कर विवाद को खत्म कर दिया गया है।

पश्चिम में उत्तर–दक्षिण जाने वाली ईंट दीवार (दीवार 16) से लगे सत्रह स्तंभों का निर्माण किया गया था। दीवार से प्रत्येक पंक्ति में प्रथम स्तंभ आधार की दूरी 3. 60 से 3. 86 मीटर तक है। स्तंभों के आधार की सत्रह पंक्तियों को उत्तर–दक्षिण दूरी के आधार पर तीन अलग–अलग समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जो विभिन्न समूहों में भिन्न –भिन्न हैं, जबकि प्रत्येक स्तंभ आधार के मध्य से केन्द्र तक पूर्व –पश्चिम दूरी 2.90 से 3.30 मी. है। उत्तर और दक्षिण में आधार स्तंभों की छः कतारें समान दूरी पर थीं जो 3 से 3.30 मी. तक है। केंद्रीय पाँच पंक्तियों में पच्चीस स्तंभ आधार अलग–अलग हैं – केंद्रीय पंक्ति के दोनों ओर लगभग 5. 25 मीटर की दूरी पर दो कतारें थीं, जबकि इन तीन पंक्तियों के दोनों ओर अन्य दो कतारें 4. 20–4. 25 मीटर की दूरी पर स्थित थीं। इससे आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सका कि स्तंभ वाली संरचना का केन्द्रीय हिस्सा महत्वपूर्ण था और वास्तु नियोजन में उसे महत्व दिया गया।

दक्षिणी क्षेत्र में एक स्तंभ के आधार पर केवल एक सुसज्जित शिला पायी गयी, जबकि उत्तरी क्षेत्र में कई स्तंभ आधार एक सादे रेत पत्थर ब्लॉक द्वारा घिरी, जो ईंट की नींव पर लगे थे, जिसमें उन पर चूना पत्थर ब्लॉक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थे। (Pl.36)। कई जगह सपाट शिलाखण्डों मिले, जिनमें चारों तरफ से पत्थर की जमावट थी, संभवतः ब्लॉक (Pls. 37–38) पर रखे गए स्तंभ को खिसकने से बचाने के लिए। पत्थर के जमावट का शीर्ष भाग मध्य में उभरा था। उत्तरी क्षेत्र में कुछ स्थानों पर जहां पत्थर के खंडों को नहीं पाया गया था, स्तंभ के आधारों की ईंट की नींव के पथरीले ब्लॉकों पर रेत के पत्थर के स्लैब पाए गए थे। आधार 32 पर सज्जित अष्टभुजाकार बालुकाश्म खंड, जिसके चारों कोनों पर फूलों की मॉटिफ है, दक्षिणी क्षेत्र में F7 खाई में स्थित है, इस स्थल का विशिष्ट उदाहरण है। (Pl.39)। जो निश्चित रूप से बारहवीं शताब्दी ई. से संबंधित है क्योंकि यह सारनाथ में कुमारादेवी (Pl.40) के धर्मचक्र में पाए गये के समान है जो आरंभिक बारहवीं सदी ईस्वी से संबंधित है।"

(प्रभाव वर्धित)

एएसआई की रिपोर्ट में 47 स्तंभों के आधारों का विस्तृत विश्लेषण है।

वृत्ताकार वेदिका

एएसआई की रिपोर्ट में पूर्व की ओर मुख वाली ईंट के पूजा स्थल का विश्लेषण है जो उत्खनन के परिणामस्वरूप मिली। रिपोर्ट में नोट किया गया है:

" एक अंशतः क्षतिग्रस्त पूर्व की ओर मुख वाला ईंटों का बना *वेदिका,* संरचना 5 (Pls. 59–60, चित्र 17, 24 और 24 ए) को खाई E8 और F8 के बीच मेड़ हटाने के बाद देखा गया था। यह पूर्व में एक आयताकार प्रक्षेप वाली एक वृत्ताकार संरचना है, दूसरी मेड़ को हटाने से पहले दिखाई दे रहा था। वृत्ताकार भाग के उत्तरी भाग में ईंटों की नींव के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ऊपर इसके निचले आठ क्रम मोजूद हैं, जबकि दक्षिणी आधे को बाद के चरण की निर्माण गतिविधि से क्षतिग्रस्त कर दिया गया है, जिसके ईंटों ने संरचना को अपने क्रियाशील स्तर तक क्षतिग्रस्त कर दिया है। **संरचना भीतरी तरफ से वर्गाकार थी और 0.04 मीटर चौड़ी और 0. 53 मीटर लंबी चट्टा या आउटलेट को उत्तरी दीवार के माध्यम से अन्त तक पाया गया, जहां निचले क्रम में V आकार में 5. 0 सेमी मोटी ईंट का कट लगा था जो टूटी हुई पाई गई थी और जो पानी को, स्पष्टतः देवता के अभिषेक के बाद, बाहर निकालने के लिए परनाला के रूप में वृत्ताकार बाहर की ओर 3. 5 सेमी निकला हुआ था, जो अब मंदिर में मौजूद नहीं है**। संरचना का प्रवेश पूर्व से एक आयताकार रूप में है, जिसमें वृत्ताकार संरचना के साथ, जिसमें किनारे पर 70x27x17 सेमी आकार की ईंटों का एक क्रम है, ईंटों का बारह क्रम लगा है। पूजा स्थल के निर्माण में 28x21xx5.5 सेमी और 22x18x5 सेमी के दो माप वाले ईंटों का उपयोग किया गया था। प्रवेश का आयताकार आकार लंबाई 1. 32 मीटर लम्बा और पूर्व की ओर 32. 5 सेमी है।"

(प्रभाव वर्धित)

रिपोर्ट में पानी को बाहर निकालने के लिए एक परनाले के अस्तित्व को अनुमान लगाया गया है, "जाहिर है कि देवता के अभिषेक के बाद, जो अब मंदिर में मौजूद नहीं है।" खुदाई के परिणामस्वरूप जो ईंट मंदिर पाया गया है, वह श्रावस्ती और रीवा में एएसआई द्वारा किए गए उत्खनन के निष्कर्षों के समान है। तुलनात्मक विश्लेषण पर, एएसआई ने अनुमान लगाया है कि वृत्ताकार मंदिर लगभग दसवीं शताब्दी ई. के होने का निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

परिणामों का सारांश

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

455. परिणाम का संक्षिप्त विवरण एएसआई रिपोर्ट के अध्याय X में दिया गया है। खुदाई के परिणाम नीचे दिए गए हैं:

" उत्तरी काले रंगे बर्तन (एनबीडब्ल्यू) का उपयोग करने वाले व्यक्ति पहली सहस्राब्दि ईसा पूर्व के दौरान अयोध्या में विवादित स्थल पर जमने वाले पहले लोग थे। हालांकि जांच किए गए सीमित क्षेत्र में कोई संरचनात्मक गतिविधि नहीं पायी गयी , लेकिन भौतिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व नारी देवताओं की मृदभांड आकृतियों द्वारा किया गया है, जो पुरातन विशेषताओं, टेराकोटा और ग्लास के मनके, पहियों और कलश के टुकड़ों आदि को दर्शाते हैं। चीनी मिट्टी उद्योग में एनबीडब्ल्यू का संगह है, जो ग्रे, काला सपाट और लाल रंग की वस्तुओं के अलावा इस अवधि का मुख्य नैदानिक लक्षण है। अशोक की ब्राह्मी में आख्यान सहित गोलाकार चिह्न इस स्तर का एक और महत्वपूर्ण चिह्न है। भौतिक उपकरणों और 14 सी तारीखों के आधार पर इस अवधि का निर्धारण लगभग 1000 ई.पू. से 300 ई.पू के रूप में की जा सकता है।

स्थल पर सांस्कृतिक कब्जे के क्रम में सुंग क्षितिज (दूसरी–पहली शताब्दी ई.पू.) अगले स्थान पर आता है। प्ररूपी मृदभांड मातृ देवियां, मानव और पशु आकृतियां , मनके, हेयरपिन उत्कीर्णक आदि स्तर के सांस्कृतिक आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मिट्टी के बर्तनों के संग्रह में काले सपाट, लाल और भूरे रंग के सामान आदि शामिल हैं। इस स्तर पर पायी जाने वाली पाषाण और ईंट संरचना इस स्थल पर संरचनात्मक गतिविधि की शुरुआत दर्शाती है।

कुषाण काल (प्रथम से तृतीय शताब्दी ईस्वी) सुंग के बाद आया। मृदभांड मानव और जानवरों की आकृतियां, कलश के टुकड़े, माला, एन्टिमनी छड़ , बाल पिन, चूड़ी के टुकड़े और लाल बर्तन वाला चीनी मिट्टी उद्योग, इस स्थल पर कुषाण काल का विशिष्ट चिन्ह हैं। इस अवधि की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता बड़े आकार की संरचनाओं का निर्माण है जैसा कि – बाईस क्रमों की विशाल संरचना द्वारा देखा गया है।

गुप्त काल (चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी) के आगमन से भवन निर्माण गतिविधि में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया , हालांकि यह अवधि अपने शास्त्रीय कलात्मक तत्वों के लिए जानी जाती है। हालाँकि, इस पहलू का प्रतिनिधित्व विशिष्ट मृदभांड चित्र और एक तांबे के सिक्के से किया जाता है, जिसमें श्री चंद्र (गुप्ता) और दृष्टांतपूर्ण बर्तनों द्वारा होता है।

गुप्तोत्तर–राजपुत अवधि (सातवीं से दसवीं सदी ईस्वी) के दौरान भी इस स्थल पर संरचनात्मक गतिविधि देखी जा सकती है जो मुख्य रूप से पकी हुई ईंटों द्वारा निर्मित है। हालांकि, मिली हुई संरचनाओं में, एक वृत्ताकार ईंट मंदिर है जो पहली बार इसकी कार्यात्मक उपयोगिता की बात करता है। संक्षिप्त आयोजना– बाहरी रूप से नियोजित वृत्ताकार, जबकि आंतरिक रूप वर्गाकार एवं पूर्व में प्रवेश द्वार। यद्यपि संरचना क्षतिग्रस्त हो गई है, उत्तरी दीवार में अभी भी एक परनाला है, अर्थात जलनिकास जो गंगा–यमुना मैदान में पहले से ही ज्ञात समकालीन मंदिरों की एक विशिष्ट विशेषता है।

इसके बाद, प्रारंभिक मध्यकाल (ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी ई.) के दौरान लगभग 50.... उत्तर–दक्षिण अभिविन्यास का निर्माण किया गया, जो कि अल्पकालिक प्रतीत होता है, क्योंकि खुदाई के दौरान पाये गये पचास स्तंभ आधारों में से केवल चार इस स्तर के हैं जिसमें ईंट की सतह है। उपरोक्त संरचना के अवशेषों पर कम से कम तीन संरचनात्मक चरणों और इसके साथ संलग्न तीन क्रमिक मंजिलों वाले एक विशाल संरचना का निर्माण किया गया था। पहले के विशाल अल्पकालिक संरचना के वास्तुशिल्प सदस्यों... और वृत्तान्तों का संरचना के निर्माण में बड़े पैमाने पर पुनर्प्रयोग किया गया, जिसमें एक विशाल स्तंभयुक्त हॉल (या दो

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हॉल) थे, जो आवासीय संरचनाओं से अलग है, जो सार्वजनिक प्रयोग के एक ऐसे निर्माण के पर्याप्त प्रमाण प्रदान करते हैं जो अवधि VII (मध्य–सल्तनत स्तर–बारह से सोलहवीं शताब्दी ईस्वी) के दौरान लंबे समय तक अस्तित्व में रहा। **इसी निर्माण के शीर्ष पर सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में विवादित संरचना का निर्माण इसी पर किया गया था। विवादित संरचना के ठीक नीचे उत्तर–दक्षिण और पूर्व–पश्चिम दिशाओं में क्रमशः 50x30 मीटर की न्यूनतम आयाम वाले विशाल और स्मारकीय संरचना के अस्तित्व का पर्याप्त प्रमाण है। वर्तमान उत्खनन के दौरान, ईंट की नींव वाले लगभग 50 स्तंभ आधार, बालुकाश्म खंडों के ऊपर पथरीले खंड से नीचे पाए गए। उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों में वर्तमान खुदाई के दौरान मिले स्तंभ आधार भी पहले के निर्माण की विशाल दीवार की लंबाई का संकेत देते हैं जिसके साथ वे जुड़े हुए हैं और जो मूल रूप से लगभग 60 मीटर (जिसमें से 50 मीटर लंबाई वर्तमान में उपलब्ध है) के रहे होंगे।** विवादित संरचना के केंद्रीय कक्ष का केंद्र पूर्ववर्ती अवधि की विशाल दीवार की लंबाई के केंद्रीय बिंदु पर ही पड़ता है, जिसे अस्थायी–संरचना में विराजमान राम लला की उपस्थिति के कारण उत्खनित नहीं किया जा सका। यह क्षेत्र चबूतरे पर लगभग 15x15m है। इस केंद्रीय बिंदु के पूर्व की ओर एक वृत्ताकार अवनमन जिसमें पश्चिम की ओर प्रक्षेपण जो बड़े आकार के गलियारे में मिला था, उस स्थान का संकेत करता है जहां कुछ महत्वपूर्ण वस्तु रखी गई थी। विभिन्न खाइयों से और ट्रेंच G 2 में अवधि VII के स्तर में एक समूह में पायी गयी टेराकोटा लैंप संरचनात्मक चरण से जुड़े हुए हैं।

अवधि VII के अंतिम चरण में, चमक वाले बर्तन मिले और अगली अवधियों के उत्तरवर्ती स्तरों में मिलते रहे, जहां वे चमकते टाइल के साथ हैं, जो संभवतः विवादित संरचना के मूल निर्माण में उपयोग किए गए थे। इसी प्रकार बहुत कम मात्रा में सेलाडान और पोर्सेलिन चमकीले बर्तन मिले जो द्वितीयक संदर्भ से आते हैं। विभिन्न अवधियों के विभिन्न स्तरों से पशु हड्डियां पायी गयी , लेकिन उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों में खाइयों में देखे गए कंकाल के अवशेष अवधि IX से संबंधित हैं क्योंकि कब्रों के गड्ढे बाद की विवादित संरचनाओं के समकालीन पाये गये और ऊपरी निक्षेप द्वारा बंद हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस दौरान सुंग से गुप्त काल तक मिली विभिन्न संरचनाओं से उनकी प्रकृति या क्रियाशील उपयोगिता के बारे में कुछ पता नहीं चलता क्योंकि उसकी पुष्टि करने वाला कोई साक्ष्य नहीं मिला। एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि केवल अवधि IV (गुप्त स्तर) के दौरान और उसके बाद और अवधि IX (मुगल काल के अन्तिम दौर और उत्तर मुगल स्तर) तक ही संबंधित स्तरों में नियमित आवासीय निक्षेप नहीं मिलते और संरचनात्मक दौर या तो संरचनात्मक अवशेषों से संबंधित हैं या निर्माण उद्देश्य के लिए जमीन को समतल करने के लिए संलग्न क्षेत्र से ली गयी भराव सामग्री से।जिसके परिणामस्वरूप पूर्ववर्ती कालखंड, स्थलाकृति और पूर्ववर्ती अवधियों की अन्य वस्तुओं, विशेष रूप से अवधि 1 (एनबीडब्ल्यू स्तर) और अवधि III (कुषाण स्तर) के रूप में पहले की अधिकांश सामग्री उनकी समकालीन सामग्री के साथ मिश्रित बाद की अवधियों के निक्षेप में पाई जाती है। इस प्रकार विवादित स्थल के नीचे का क्षेत्र अवधि VIII (मुगल स्तर) में विवादित संरचना का निर्माण हो जाने तक, लंबे समय तक सार्वजनिक उपयोग का स्थान बना रहा जो कि एक सीमित क्षेत्र तक ही सीमित था और इसके चारों ओर जनसंख्या बस गई थी, जैसा कि मृदभांड सहित समकालीन पुरातात्विक सामग्री में वृद्धि से स्पष्ट है। इसकी पुष्टि अवधि IV (गुप्त स्तर) से और विशेष रूप से अवधि VI (प्रारंभिक मध्यकालीन–राजपूत स्तर) और अवधि VII (मध्यकालीन–सल्तनत स्तर) में आवासीय संरचनाओं जैसे घर परिसर, नाला, कुएं, चूल्हें या भट्टियां इत्यादि की स्पष्ट अनुपस्थिति द्वारा भी होती है।"

(प्रभाव वर्धित)

निष्कर्षों के तिथि निर्धारण के संबंध में रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि प्रारंभिक मानव गतिविधियां तेरहवीं शताब्दी ई. की है:

"…. प्राचीनतम अवशेष तेरहवीं शताब्दी ई.पू. के हो सकते हैं, जिसकी पुष्टि एनबीडब्ल्यू स्तर (अवधि I), अर्थात 910 ± 100 ई.पू. और 880 ± 100 ई.पू.) से दो और सुसंगत C14 द्वारा होती है। ये तिथियां खाई

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

G7 से हैं। ऊपरी निक्षेप से, यद्यपि कि एनबीपीडब्ल्यू और संबंधित मृदभाण्ड के साथ, चार और तिथियों का रेडियो कार्बन डेटिंग द्वारा 780 = 80 ई.पू. , 710 = 90 ई.पू. , 530 = ई.पू. और 320 = 80 ई.पू. के रूप में निर्धारण किया गया है। उत्तरी काले चमकीले बर्तन (एनबीपीडब्ल्यू), जिन्हें सामान्यतः लगभग 600 ई.पू. से 300 ई.पू. के बीच का माना जाता है, के साथ उक्त तिथियों के अवलोक में, इसे लगभग 1000 ई.पू. का माना जा सकता है और दूरस्थ तिथि के रूप में भी तीन शताब्दियां पहले एनबीपीडब्ल्यू के साथ संबद्ध नहीं है, इस स्थल पर ऐसी दखल की प्रारंभिक तिथि का पुरातात्विक साक्ष्य देने वाली वैज्ञानिक तिथि निर्धारण प्रणाली के आधार इस स्थल पर मानव गतिविधियां लगभग तेरहवीं शताब्दी ई.पू. की हैं।

अन्ततः एएसआई यह कहते हुए अपनी बात समाप्त करता है :

"अब, समग्रता में देखने पर और विवादित ढ़ाचे के ठीक नीचे एक विशाल संरचना के पुरातात्विक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और पत्थर और सुसज्जित ईंटें तथा दैवीय युगल की क्षतिग्रस्त मूर्ति, पर्ण पत्रक प्रतिकृति, *अमालक*, *कपोतपाली* वाला नक्काशीदार वास्तु, अर्ध–वृत्ताकार भित्तिस्तंभ युक्त कपाटभाग, काले चट्टानी स्तंभ का भग्न अष्टकोणीय शाफ्ट,कमल चित्रण, उत्तर में प्रनाला (जलनिकास) वाली वृत्ताकार वेदिका, विशाल संरचना से संलग्न पचास आधार स्तंभ तथा दसवीं शताब्दी से लेकर विवादित ढ़ाचे के निर्माण तक संरचनात्मक चरणों में निरन्तरता ऐसे अवशेष के सूचक हैं जो उत्तर भारत के मंदिर से जुड़ी विशिष्ट विशेषताएं हैं।"

(प्रभाव वर्धित)

456. एएसआई की रिपोर्ट पर कई आपत्तियां की गयी हैं और इस पर विचार किया जाएगा। रिपोर्ट से पता चलता है कि सातवीं से दसवीं शताब्दी ई. के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गुप्तोत्तर काल में इस स्थल पर महत्वपूर्ण संरचनात्मक गतिविधियां हुई। रिपोर्ट में कहा गया है कि इससे ईंट की एक वृत्ताकार वेदिका के अस्तित्व का पता चलता है जिसमें पूर्व में प्रवेश द्वार था और वाह्य वृत्ताकार था। एएसआई ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मंदिर की उत्तरी दीवार में एक प्रनाला अर्थात जलनिकास था, जिसे उसने गंगा–यमुना के मैदानी इलाकों के मंदिरों की एक विशिष्ट विशेषता माना है। रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि ग्यारहवीं – बारहवीं शताब्दी ई. से संबंधित खुदाई से 50 मीटर गुणा 30 मीटर के आयाम वाले " एक विशाल संरचना" के अस्तित्व का पता चला है। ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी ई. के प्रारंभिक मध्यकाल के दौरान गतिविधि से लगभग पचास स्तंभ आधारों के अस्तित्व का पता चलता है। रिपोर्ट में कहा गया है कि उपरोक्त संरचना के अवशेषों पर, कम से कम तीन संरचनात्मक चरणों और इसके साथ संलग्न तीन क्रमिक मंजिलों के साथ एक विशाल संरचना का निर्माण किया गया था। एक बड़े स्तंभयुक्त दीवार वाली विशाल संरचना, जो इसके सार्वजनिक प्रयोग का साक्ष्य है, के निर्माण के लिए साज विन्यास सहित प्रारंभिक संरचना की वास्तु विशेषताओं को संशोधित किया गया था। रिपोर्ट में कहा गया है कि सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में विवादित संरचना का निर्माण पहले की संरचना से ठीक ऊपर किया हुआ पाया गया है और विवादित संरचना के केंद्रीय कक्ष का केंद्र पूर्ववर्ती अवधि की विशाल दीवार की लंबाई के केन्द्र बिंदु पर पड़ता है।

एएसआई की रिपोर्ट पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

457. अपने निर्णय में न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने एएसआई की रिपोर्ट का कोई अवलंब नहीं लिया। विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया है:

> " पूर्व उद्धृत एएसआई रिपोर्ट 2003 के निष्कर्ष, इस संबंध में दो कारणों से अधिक मददगार नहीं हैं। प्रथमतः, यह निष्कर्ष कि 'दसवीं सदी से विवादित संरचना के निर्माण तक संरचनात्मक चरणों में निरंतरता का साक्ष्य है' दलीलों, गजेटियर और इतिहास पुस्तकों के ठीक विपरीत है। न तो किसी भी पक्ष द्वारा यह दलील दी गयी है और न ही किसी गजेटियर या अधिकांश इतिहास पुस्तकों में ऐसा उल्लेख है कि पहली शताब्दी ई.पू. (या कुछ के अनुसार तीसरी या चौथी शताब्दी ई.) में विक्रमादित्य द्वारा मंदिरों के निर्माण के बाद से 1528 ई. के आसपास प्रश्नगत मस्जिद के निर्माण तक विवादित परिसर में या उसके आसपास कोई निर्माण कार्य किया गया। दूसरे, यदि मस्जिद के निर्माण के लिए किसी मंदिर को ध्वस्त किया गया होता तो मंदिर की संरचना सामग्री जमीन के अंदर न जाती। या तो इसे फिर से इस्तेमाल किया जाता या हटा दिया गया होता। किसी भी हिन्दू पक्षकार की ओर से प्रस्तुत कोई भी विद्वत अधिवक्ता इस स्थिति को स्पष्ट नहीं कर सका।"

न्यायमूर्ति एस यू खान ने जिस प्रथम कारण का आंकलन किया वह यह था कि किसी भी पक्ष द्वारा यह दलील नहीं दी गयी है कि पहली शताब्दी ई.पू. (या कुछ के अनुसार तीसरी या चौथी शताब्दी ई.) में विक्रमादित्य द्वारा मंदिरों के निर्माण के बाद से सोलहवीं शताब्दी में मस्जिद के निर्माण उस स्थल पर कोई निर्माण कार्य किया गया। वाद 5 में वादी का तर्क यह है कि मस्जिद का विवादित ढ़ाचा मंदिर को तोड़कर बनाया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा आदेशित उत्खनन का उद्देश्य यह था कि न्यायालय को एएसआई द्वारा वैज्ञानिक जांच का लाभ मिल सके। उत्खनन के आधार पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ही न्यायालय एएसआई द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से अवगत होगा। पक्षकारों की दलील में चूक को दोष देना इस कारण से अनुचित है कि न्यायालय के सामने आए पुरातात्विक साक्ष्य एएसआई द्वारा किए गए उत्खनन के परिणामस्वरूप थे। उत्खनन का आदेश देने के बाद, विचारण के दौरान उन निष्कर्षों का मूल्यांकन करना उच्च न्यायालय के लिए यह आवश्यक था। जवादिस एस यू खान ने ऐसा नहीं किया। विद्वत न्यायाधीश द्वारा आंका गया दूसरा कारण अनुमान के आधार पर आगे बढ़ता है। न्यायमूर्ति एस यू खान ने कहा कि यह बोधगम्य नहीं है कि बाबर या औरंगजेब ने भगवान राम के सही जन्म–स्थान का पता लगाने के लिए पूर्व अनुसंधान करवाया होगा और फिंर उस स्थल पर एक मदिर का निर्माण कराया होगा। उत्खनन का उद्देश्य न्यायालय को यह निर्धारित करने में सक्षम बनाना था कि क्या विवादित स्थल पर उत्खनन से सदियों के पूर्व संरचनात्मक गतिविधि के अस्तित्व का पता चला और यदि ऐसा है, तो क्या इसका कोई हिस्सा धार्मिक प्रकृति का था। न्यायमूर्ति एस यू खान ने एएसआई की दोनों खोजों वृत्ताकार वेदिका और सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त संरचना का निर्माण जिसकी नींव पर विवादित ढ़ाचा स्थित था, का मूल्यांकन नहीं किया है और वर्तमान विवाद में उसके संभावित मूल्य पर विचार नहीं किया है।

458. अपने निर्णय में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने कहा कि उत्खनन से कुछ निर्विवाद तथ्य उभरते हैं। इन्हें निम्नानुसार सूचीबद्ध किया गया :

> "(i) शुंग और कुषाण काल के प्रस्तर में विवादित स्थल पर बहुत सारी संरचनात्मक और निर्माण कार्य विद्यमान थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) हालांकि एएसआई द्वारा उद्धृत मंजिलों, स्तंभ आधारों और दीवारों की वादीक संख्या पर आपत्ति की गयी थी लेकिन विवादित इमारत के नीचे कई मंजिलों, दीवारों और स्तंभ आधारों के अस्तित्व पर कोई विवाद नहीं है।

(ii) विवादित ढ़ाचे के नीचे की संरचना को कनटी मस्जिद या ईदगाह के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया। ऐसा कोई संकेत नहीं है कि विवादित ढ़ाचे के नीचे की संरचना गैर–धार्मिक प्रकृति की थी।

(iii) कुछ निर्माणों या कलाकृतियों को जैनों या बौद्धों से संबंधित करने का प्रयास किया गया है लेकिन वहां पर भी ऐसा नहीं है कि यह इस्लामिक प्रकृति का रहा हो या गैर–धार्मिक रहा हो।

(iv) यद्यपि व्यावसायिक शैली में स्वतंत्रता की कमी के आरोप का समर्थन रिपोर्ट के कुछ भाग में अभिकथित गलत निर्वचन या त्रुटिपूर्ण निर्वचन या लोप या विरोधाभास और विसंगतिपूर्ण होने से किया गया है किंतु एएसआई टीम के किसी भी, व्यष्टि या समूह को निष्ठा या स्वतंत्रता रहित होकर काम करते नहीं दिखाया गया है (सिवाय उस बात को छोड़कर जहां मुस्लिम पक्ष के दो नाम निर्दिष्ट लोगों अर्थात् डा. जया मेनन (PW 29) और डा. सुप्रिया वर्मा (PW 32) ने 21. 5. 2003 और 7. 6. 2003 दिनांकित शिकायत द्वारा ट्रेंच जी 2 में आधारों के सृजन की सूचना दी है) ।"

प्रारंभ में, सुन्नी वाद्रल वक्फ बोर्ड का पक्ष यह था कि विवादित इमारत का निर्माण उस स्थान पर किया गया था जिस पर हिंदू धार्मिक संरचना का कोई अस्तित्व नहीं था और यह इस बात को कोई साक्ष्य नहीं कि संरचना उसी स्थान पर बनी थी जिसे हिंदू भगवान राम का जन्म–स्थान मानते हैं। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने उल्लेख किया है कि जब उत्खनन आगे बढ़ा तो वाद 4 के वादी के दृष्टिकोण में एक उल्लेखनीय बदलाव आया और एक नया मामला स्थापित करने की कोशिश की गई कि विवादित संरचना के नीचे की संरचना, जैसा कि खुदाई में दिखाया गया है, इस्लामिक मूल की है, या तो ईदगाह या एक कनाती मस्जिद। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने कहा कि मुस्लिम

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पक्षकारों के रुख में इस बदलाव ने स्पष्ट रूप से इस संभावना को अपवर्जित कर दिया कि विवादित संरचना के नीचे जो संरचना पाई गई थी वह एक ऐसे मूल की थी जो धार्मिक नहीं है। जांच तब इस बात तक सीमित हो गयी कि संरचना प्रकृति में इस्लामिक थी या गैर–इस्लामिक। विद्वान न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला कि :

> "3905 रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि स्तंभ के तल 4 जो स्तंभ आधारों की नींव को सहारा देता है वह मंदिर का तल था। यह ईदगाह या कनाती मस्जिद का तल नहीं हो सकता क्योंकि ईदगाह में खंभे कभी नहीं रहते ताकि प्रार्थना करने के लिए न्यूनतम स्थान में अधिकतम व्यक्तियों को समायोजित किया जा सके।"

459. न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह उल्लेख किया कि अपनी संलग्न वास्तु विशेषताओं युक्त एक वृत्ताकार वेदिका के अस्तित्व से संभवतः शैव मंदिर की उपस्थिति का संकेत मिलता है और यह कि यह एक मुस्लिम मकबरा नहीं था। उन्होंने कहा कि एक ओर संरचना की विमा मकबरे के लिए बहुत छोटी थी थे, वहीं एक व्यालमुख परनाला किसी मकबरे में कभी नहीं बनाया जाएगा बल्कि यह शिवलिंगम् पर डाले गए जल को बाहर निकालने के लिए एक शिव मंदिर के गर्भगृह का अभिन्न अंग होता है। उस संदर्भ में, सबूतों का विश्लेषण करने के बाद, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने पाया कि PW 29, 31 और 32 जो वाद 4 में वादी के गवाह थे, ने स्वीकार किया कि उत्खनित वेदिका में जो विशेषताएं पाई गई थीं, वे गैर–इस्लामी मूल की थीं । PW 29, 31 और 32 के प्रासंगिक साक्ष्य नीचे दिए गए हैं:1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(a) डॉ. जया मेनन (PW–29)

"इस स्तंभ पर घट (पात्र) का चित्रण दिखाई पड़ता है। यह सच है कि घट को कलश के रूप में भी जाना जाता है। सामान्यतः स्तंभ पर इस प्रकार के घट मस्जिद में नहीं पाए जाते। यह कहना सही है कि उत्खनन के दौरान हाथी, कछुए और घड़ियाल की आकृतियां , जो सभी टेराकोटा से बने थे, पाये गए। ऐसी आकृतियां एक से अधिक खाई में पाई गयीं थी। मैं जानता हूं कि मगर हिन्दूओं की पवित्र नदी गंगा का वाहन है। मैं इस बात से सहमत हूं कि कछुआ पवित्र नदी यमुना का वाहन है।"

(b) डा. अशोक दत्ता (PW 31)

"जैसा कि मैंने उल्लेख किया है कि मुसलमान लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते, इसलिए मुस्लिम संस्कृति के साथ मृदभांडों को जोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं है। जहां तक मैं जानता हूं और मेरी जानकारी है , मृदभांडों को मुस्लिम संस्कृति से जोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। " "यह सच है कि ऐसी पशु आकृतियों को मस्जिद में रखने की अनुमति नहीं है। "

"मकर परनाल हिन्दू मंदिर वास्तुशिल्प का एक भाग है। मुझे पक्के तौर पर यह नहीं कह सकता कि मकर परनाल का मस्जिद से कोई संबंध है या नहीं। मैंने ऐसी कोई मस्जिद नहीं देखी है जिसमें मकर परनाल हो."

(c) डा. सुप्रिया वर्मा (PW–32)

" मैंने कलश शब्द सुना है। कलश मस्जिद में नहीं पाया जाता... ।"
"मेरे अनुसार, 'वॉल नंबर 16, का प्रयोग विवादित संरचना के निर्माण के पहले दीवार के रूप में किया जाता था। इस तरह, वाल 16 किसी अन्य निर्माण की दीवार थी जो विवादित संरचना के निर्माण से पहले मौजूद थी. "

"हालांकि, यह सच है कि वॉल नंबर 17 का निर्माण वाल नंबर 16 से पहले हुआ था."

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

" मुझे मगरमच्छ पता है। मंदिरों के लिए भी यह बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसे मकर मुख कहते हैं। मैंने किसी मस्जिद में मकर मुख नहीं देखा है.....।"

न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया :

"3979. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की रिपोर्ट, जो उत्खनन के विशेषज्ञ की एक रिपोर्ट है, में सभी विवरण शामिल हैं, जिसमें वाद्रैटिग्राफी, कलाकृतियां, अवधि निर्धारण और संरचनाओं और दीवारों के विवरण शामिल हैं। रिपोर्ट में उल्लिखित स्तंभ आधार सभी संदेह से परे एक विशाल संरचना के अस्तित्व को स्थापित करते हैं। उपरोक्त के अलावा, वृत्ताकार वेदिका का अस्तित्व, दीवारों में पत्थर के स्लैब, हिंदू मॉटिफ के साथ और विशेष रूप से दीवार नंबर 5 (विवादित संरचना की दीवार) में मकर परनाल चिन्ह, दिव्य युगल और अन्य मंदिर सामग्री, आदि, निर्णायक रूप से विवादित संरचना के नीचे एक हिंदू धार्मिक संरचना के अस्तित्व को साबित करता है। यह आम तौर पर गवाहों द्वारा स्वीकार किया जाता है कि उत्खनन पक्षकारों, विशेषज्ञों और पर्यवेक्षकों की उपस्थिति में पुरातत्व के तय मानदंडों के अनुसार की गई थी और सभी संबंधित पक्षों की उपस्थिति में तीन आयामी रिकॉर्डिंग, फोटोग्राफी, प्रत्येक खाई, संरचना, कलाकृति की वीडियोग्राफी, एएसआई द्वारा उत्खनन के दौरान की गई थी। दिन–प्रतिदिन के रजिवादर, पर्यवेक्षक की डायरी और विशिष्ट रजिवादर को नियमित रूप से लिखा जा रहा था।

3980. कुछ और आपत्तियां हैं, जिन्हें हम इस कारण से मूल्यवान नहीं समझते कि मुस्लिम पक्षकारों के विशेषज्ञों ने यह समझकर कि विवादित ढ़ाचे के नीचे एक अन्य संरचना का अस्तित्व था, अपने बयान में एक नई बात कही। हालांकि, एक नया रुख जो वादी का मामला नहीं है, निवेदित नहीं किया गया है अतः स्वीकार्य नहीं है। "

उच्च न्यायालय के समक्ष एक अन्य आपत्ति यह थी कि एएसआई की रिपोर्ट में विशेष रूप से इस बात का जवाब नहीं दिया कि क्या कोई पूर्व –मौजूदा संरचना थी जिसे मस्जिद के निर्माण के लिए ध्वस्त कर दिया गया था और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

क्या पूर्व–मौजूदा संरचना एक मंदिर थी। इस आपत्ति का जवाब देते हुए, उच्च न्यायालय ने धारित किया :

> "3990. हमारे विचार में, एएसआई ने यह स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज न करके ठीक किया है कि क्या कोई विध्वंस हुआ था या नहीं जबकि किसी इमारत का निर्माण किया गया और वह भी सैकड़ों साल पहले। यह पता लगाना कभी–कभी मुश्किल हो सकता है कि किन परिस्थितियों में भवन का निर्माण किया गया और क्या पहले की इमारत अपने दम पर या प्राकृतिक शक्तियों के कारण ढह गई थी या इसके नुकसान के लिए इच्छुक कुछ व्यक्तियों के कारण । एएसआई द्वारा इस बात का पर्याप्त संकेत दिया गया है कि विवादित इमारत की अपनी आधारशिला नहीं थी, बल्कि यह मौजूद दीवारों पर बनायी गयी थी। यदि बाद की इमारत के निर्माण से पहले कोई इमारत मौजूद नहीं होती, तो बनाने वाली इसकी ताकत और नई संरचना के लोड को वहन करने की इसकी क्षमता को जाने बिना पूर्ववर्ती इमारत की नींव का उपयोग न कर पाता । विवादित इमारत की सतह पहले की इमारत की सतह पर थी। कई स्तंभ आधारों का अस्तित्व सभी एक पर्याप्त बड़ी संरचना के पूर्व अस्तित्व को दर्शाता है, अगर विवादित संरचना से बड़ी नहीं तो उससे कम भी नहीं। "

साक्ष्यों का विश्लेषण करने के बाद, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया :

> "4055. उपरोक्त परिचर्चा और सामग्री से इस न्यायालय द्वारा अंतिम अनुमान जो यथोचित रूप से लगाया जा सकता है, यह है: (i) विवादित ढ़ाचा किसी खाली, निर्वसित, खुली भूमि पर नहीं बनाया गया था। (ii) विवादित स्थल पर एक संरचना विद्यमान थी यदि विवादित संरचना से बड़ी नहीं तो उससे तुलनीय या बड़ी । (iii) विवादित संरचना को बनाने वाला पूर्व ढांचे, उसकी शक्ति, क्षमता, दीवारों के आकार आदि का विवरण जानता था और इसलिए बिना किसी सुधार के दीवारों आदि का उपयोग करने में संकोच नहीं किया। (iv) पूर्ववर्ती ढांचा धार्मिक प्रकृति

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का था और वह भी गैर–इस्लामी था (v) पूर्ववर्ती ढांचे के पत्थर, स्तंभ, ईटों आदि जैसी सामग्री का उपयोग विवादित ढांचे को बनाने में किया गया था। (vi) उत्खनन के दौरान मिली कलाकृतियां अधिकतर ऐसी हैं जो गैर–इस्लामी अर्थात् हिन्दू धार्मिक स्थानों से संबंधित हैं, भले ही हम यह स्वीकार कर लें कि उनमें से कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जिनका अन्य धर्मों में भी प्रयोग किया जा सकता है। इसके साथ ही कोई भी ऐसी कलाकृति नहीं मिली, जिसका प्रयोग केवल इस्लामी धार्मिक स्थल पर ही किया जा सकता हो।"

कसौटी पाषाण स्तंभों पर अंकन

460. विवादित संरचना के स्तंभों पर अंकन का साक्ष्य उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। 10 जनवरी 1990 के एक आदेश के अनुसार राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा ली गई तस्वीरों वाले एल्बम के तीन वाद प्रस्तुत किये गये। डॉ. राकेश तिवारी (ओपीडब्ल्यू–14) जो राज्य पुरातत्व विभाग के निदेशक थे, ने तस्वीरों का सत्यापन किया। पहले एल्बम में 204 रंगीन तस्वीरें थीं और उन्हें पेपर सं. 200 C1/1–204 के रूप में अंकित किया गया। दूसरे एल्बम में 111 काली और सफेद तस्वीरें थीं और उन्हें पेपर सं. 201C/1–111 के रूप में अंकित किया गया । उच्च न्यायालय ने अपने फैसले के परिशिष्ट 5 (ए) से 5 (डीडी) के रूप में तस्वीरों को संलग्न किया। तस्वीरों में काले कवादी पत्थर स्तंभों की जानकारी है। वाद 4 में वादी की ओर से कई गवाहों को इन तस्वीरों के संबंध में उनके साक्ष्य के दौरान दर्शाया गया है। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले में फारूक अहमद (PW–3) के बयान से प्रासंगिक अंश को पुन: प्रस्तुत किया गया है। गवाही से उद्धरण नीचे दिए गए हैं:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

फारूक अहमद (PW–3):

" फोटोग्राफ सं. 57 में मूर्तियां दिखाई दे रही हैं, जो उस समय मौजूद नहीं थे। यह तस्वीर विवादित संपत्ति की भी है, लेकिन यह संभव है कि इसे बदल दिया गया हो क्योंकि उस समय स्तंभों पर कोई मूर्ति नहीं थी। एक मूर्ति तस्वीर सं. 58 के ऊपरी हिस्से में दिखाई दे रही है। गेट पर एक काला स्तंभ था, जिसमें कोई मूर्ति नहीं थी और यह संभव है कि इसे बाद में बदल दिया गया हो... यह केवल तस्वीर को देखने के बाद है कि मैं यह कह रहा हूं कि स्तंभों को बदल दिया गया हो सकता है। इन स्तंभों के शीर्ष पर मूर्तियां हैं और इन्हें देखकर ही मैं कह रहा हूं कि ये स्तंभ बदले गए हैं।"

"तस्वीर सं. 62 में ग्रिल के पास एक स्तंभ की तरह संरचना है, जिसमें मूर्तियां हैं। यह स्तंभ विवादित संपत्ति के उत्तरी द्वार पर है... यह तस्वीर सं. 64 के साथ–साथ सफेद रंग में दिखाई देता है, और मूर्तियां भी दिखाई दे रही हैं...तस्वीर सं. 65 मुख्य द्वार का है। हालांकि, इसके स्तंभ में मूर्तियां थीं, जो परिवर्तन के परिणामस्वरूप हैं। तस्वीर सं. 66 भी पूर्वी दिशा का है, लेकिन इसमें मूर्तियां हैं, जो परिवर्तन का परिणाम हैं."

"तस्वीर सं. 72 में काले स्तंभ तो हैं किंतु उनके ऊपरी और निचले भाग में मूर्तियां हैं.....। वही स्थिति तस्वीर सं. 71 में दिखाए गए दो स्तंभों की है। वही हाल तस्वीर सं. 73 के स्तंभ की भी है। इसमें भी मूर्तियां हैं। तस्वीर सं. 74 भी उसी समान है, जिसमें स्तंभों पर प्रतिमाएं हैं। यह स्तंभ सभी तरफ से पूरी तरह दिखाया गया है, जो वहां पर लगे थे। "

"तस्वीर सं. 101 भी उस जगह का है, लेकिन उसमें कई बदलाव किए गए हैं। मूर्ति भी मौजूद हैं और कलश भी मौजूद हैं। "

"यह सच है कि इस एल्बम में शामिल सभी तस्वीरें मेरे अधिवक्ता की उपस्थिति में ली गई थीं. ये सभी तस्वीरें विवादित भूमि और संपत्ति की हैं।"

ऐसे गवाह थे जिन्होंने लड़ने वाले हिंदू पक्षकारों की ओर से बयान दिया। उन्होंने स्तंभों की तस्वीरों में चित्रित मूर्तियों के बारे में भी बताया। इन मूर्तियों

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में हिन्दूओं द्वारा पूज्य देवी देवताओं यथा हनुमान, नरसिंह, गणेश और दुर्गा के चित्र हैं। गवाहों ने मोर, गरुण और कमल की आकृतियों के बारे में भी बयान दिया। हिंदू पक्षकारों की ओर से इस संबंध में जिन गवाहों ने बयान दिया वे थे डीडब्ल्यू–3/5–1–2, 17/1, बी/1–1, 17/1, 20/1 और 12/1 ।

तस्वीरों के साथ युग्मित तथ्य यह है कि उत्खनन के दौरान, एएसआई द्वारा 62 मानव और 131 पशु आकृतियां पायी गयी। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि इसमें कोई विवाद नहीं था कि उत्खनन के दौरान कोई इस्लामी प्रकृति की कलाकृति नहीं पायी गयी जबकि हिंदू धार्मिक मूल से संबंधित कलाकृतियाँ बहुतायत में पाई गईं। उनमें से , जैसा कि विद्वत न्यायाधीश ने उल्लेख किया है, फूलों के अंकन थे (प्लेट्स सं. 51 और 62); एक नाग का फन (प्लेट सं. 129) और मानव आकार में अन्य देवी–देवताओं से संबंधित (प्लेट सं. 104–112, 114–116, 118–123 और 125–126) । जिन गवाहों ने एएसआई के निष्कर्षों और रिपोर्ट का समर्थन किया, वे थे डॉ. आर नागस्वामी (OPW–17), अरुण कुमार (OPW–18) और राकेश दत्त त्रिवेदी (OPW–19) ।

एएसआई की रिपोर्ट पर आपत्तियां

461. वरिष्ठ विद्वत अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा ने एएसआई की रिपोर्ट पर निम्नलिखित आपत्तियां द्वारा अपना तर्क रखा है:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) एएसआई रिपोर्ट प्रत्यक्ष त्रुटियों और आंतरिक विसंगतियों से ग्रस्त है;

(ii) एएसआई रिपोर्ट साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 के मद्देनजर पुरातत्वविदों की केवल एक राय है; और

(iii) पुरातत्व एक निगमनात्मक विज्ञान है जिससे रिपोर्ट का साक्ष्य का कमजोर हो गया है।

तीसरे कथन को स्पष्ट करते हुए, सुश्री अरोड़ा ने कहा कि पुरातत्व प्राकृतिक विज्ञान से अलग एक सामाजिक विज्ञान है। उनके कथनानुसार, पुरातत्वविज्ञान प्राकृतिक विज्ञान के विपरीत वादीक नहीं होता जो सत्यापन योग्य परिकल्पनाओं पर आधारित होते हैं। विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि पुरातत्वविज्ञान उत्खनन से प्राप्त सामग्री से निष्कर्ष निकालने पर आधारित होता है और इससे सत्यापन योग्य निष्कर्ष नहीं निकालता है।

सुश्री अरोड़ा ने एएसआई रिपोर्ट के संबंध में निम्नलिखित अतिरिक्त आपत्तियों निवेदित किया:

(i) एएसआई रिपोर्ट को साबित करने के लिए किसी गवाह को नहीं बुलाया गया ;

(ii) एएसआई द्वारा इस बारे में कोई निष्कर्ष अंकित नहीं है कि क्या कोई ऐसा मंदिर है जिसे मस्जिद के निर्माण के लिए ध्वस्त कर दिया गया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) व्यक्तिगत अध्यायों के विपरीत, रिपोर्ट के निष्कर्ष में अभिलिखित परिणामों का सारांश किसी लेखक विशेष का नहीं है; और
(iv) रिपोर्ट में यह दर्शित नहीं है कि उत्खनन कार्य करने के लिए उत्तरदायी टीम के सदस्यों के बीच कोई बैठक हुई थी या नहीं। यदि बैठक हुई तो बैठक के नोटों को दिया जाना चाहिए था।

इसके बाद, रिपोर्ट को चुनौती देने के बारे में अपने कथन के दौरान, वाद 4 में वादी की ओर से प्रस्तुत विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने कहा कि परिणाम का सारांश हस्ताक्षरित किया गया है या नहीं, यह जांच की एक निरर्थक लाइन है क्योंकि यह केवल रिपोर्ट की प्रामाणिकता और लेखक पद पर जाता है। डॉ. धवन ने ठीक ही कहा कि एएसआई रिपोर्ट के लेखक पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह एएसआई की है और उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में प्रस्तुत की गयी है। इस तर्क के आलोक में, परिणाम के सारांश के लेखक के बारे में सुश्री अरोड़ा द्वारा पहले उठाए गए संदेह खत्म किया जाता है। रिपोर्ट बी आर मणि और हरि मांझी द्वारा सह –लिखित है। रिपोर्ट एएसआई से निकलती है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा कार्य सौंपा गया था। रिपोर्ट के लेखक, उत्पत्ति या प्रामाणिकता के बारे में कोई विवाद नहीं है , हम उस आधार पर सुश्री अरोड़ा द्वारा उठायी गयी आपत्ति में कोई सार नहीं पाते ।

आपत्तियों का गुणावगुण

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

462. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अरोड़ा द्वारा एएसआई की रिपोर्ट के खिलाफ जिन आपत्तियों को उठाया गया है, उन्हें लिखित कथन के खंड ए–91 में विस्तार से बताया गया है, जिसका शीर्षक है **" स्ट्रैटीग्राफी/अवधिकीकरण, स्तंभ आधार, दीवार,वृत्ताकार वेदिका, दैवीय युगल एवं अन्य कलाकृतियां, चमकीले बर्तन एवं चमकीले टाइल्स,पशु हड्डियां"** । प्रारंभिक तर्क हैं:

(i) एएसआई ने उत्खनन पर मिट्टी की परतों को ठीक से चिह्नित नहीं करता;

(ii) एएसआई विशिष्ट परतों से कलाकृतियों के मिलने का सही अभिलेख नहीं रखा और संदर्भ खो दिया.

(iii) यद्यपि उत्खनन में पाई जाने वाली हड्डियों के कालानुक्रम के बेहतर अनुमानों हेतु कार्बन डेटिंग और पेलियो–बौटानिकल अध्ययन कराया जा सकता था, किंतु केवल चारकोल नमूने कार्बन डेटिंग के लिए भेजे गए थे;

(iv) यद्यपि एएसआई ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में उच्च न्यायालय को यह आश्वासन दिया था कि वह मिट्टी और गारे (कार्बन डेटिंग के लिए), मिट्टी के बर्तन (थर्मोल्युमिनेसेंस के लिए), अनाज और पराग (पेलियो बोटेनिकल अध्ययनों के लिए) और हड्डियों (जन्तु अवशेषों के अध्ययन के लिए) के नमूने एकत्र करेगा, लेकिन यह नहीं किया गया।

(v) उच्च न्यायालय ने एएसआई को निर्देश जारी किए थे कि प्रत्येक सतह से कलाकृतियों के सही अभिलेखीकरण के लिए रजिवादर रखा जाए; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) एएसआई ने 15 दिनों में त्वरित रीति से अपनी रिपोर्ट तैयार की और प्रस्तुत की।

463. एएसआई को एक जटिल कार्य करना पड़ा। इसका उत्खनन समयबद्ध था। उत्खनन करने वाली टीम को देवता की पूजा को प्रभावित किए बिना एक अस्थायी मंदिर के चारों ओर अपना काम करना था। खाइयों को सावधानी से व्यवस्थित करना था। एएसआई के सामने कई कठिनाइयां थीं। इसकी टीम ने लोगों की जानकारी में, पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों की उपस्थिति में उत्खनन किया । रिपोर्ट में उन असामान्य परिस्थितियों को नोट किया गया है जिसका इसने उत्खनन के दौरान सामना किया :

> "a. उत्खनन की योजना में, खाइयों के लेआउट की नवीनतम तकनीक को अपनाने का निर्णय लिया गया, जहां सीमित स्थान उपलब्ध थे और इसलिए 10 x 10 मीटर के लेआउट के सामान्य अभ्यास के स्थान पर 4. 25x4. 25m के चार चतुर्थांश को विभाजित किया गया।
>
> b. माननीय उच्च न्यायालय के निर्देश पर, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने पांच माह के सीमित समय में ही नब्बे खाइयों की खुदाई की है, जिसके बाद पंद्रह दिनों के भीतर उत्खनन रिपोर्ट प्रस्तुत की जानी आवश्यक है। सर्वेक्षण के अस्तित्व के एक सौ चालीस साल के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना है।
>
> c..... इस प्रकार उनके प्रलेखन, अध्ययन, फोटोग्राफी, ड्राइंग और रासायनिक संरक्षण के लिए उपलब्ध समय केवल कुछ घंटे तक ही सीमित था और वह भी उस दिन का काम बंद करने की ओर खाई से प्राप्त सामग्री के मामले में नहीं... सुरक्षा जांच और ऐसी अन्य प्रशासनिक आवश्यकताओं में शामिल औपचारिकताओं के कारण अक्सर कार्य प्रभावित और विलंबित होता था...
>
> d. मानसून के आ जाने पर जून से कार्य की स्थिति और बिगड़ गई जब पूरी साइट अनेक बहुरंगी जलरोधी चादर से ढंक दी गयी जिससे गड्ढों में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अंधेरे के अलावा ताप और आर्द्रता पैदा होती थी। बंदरों ने उन चादरों को नुकसान पहुंचाया जिससे उन्हें बांस और लकड़ी के खंभों पर फैलाया गया। उससे और अधिक अंधेरा हो गया। स्तर निरीक्षण विशेषकर सतह निर्धारण में बहुत समस्या आयी। इन कारकों से जारी कार्य की प्रक्रिया को धीमा कर दिया।"

सुश्री अरोड़ा का कहना है कि इन कठिनाइयों के कारण त्रुटियां हुईं । जिस तरह से एएसआई ने वाद्रेटिग्रेफिकल अवधिकरण किया था, उसे उच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्नांकित किया गया। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने आपत्तियों को खारिज करते हुए कहा:

"3846. वादी (वाद–4) की ओर से पेश किए गए छह विशेषज्ञ गवाहों के बयान से, हम पाते हैं कि वे सभी यह कहने में एकमत नहीं हैं कि एएसआई द्वारा की गयी पूरी वाद्रैटीग्राफी या अवधिकरण खराब या गलत है या ऐसी सामग्री या अवैधता या अनियमितता से ग्रस्त है कि उसे खारिज कर दिया जाय जिससे कि अन्ततः पूरी रिपोर्ट ही खारिज हो जाय। उनके बयान भी विरोधाभासी, अस्पष्ट, भ्रमित और... अनुमानों पर आधारित हैं।
3863.... इसके विपरीत उनमें से अधिकांश इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक या अधिक पद्धति से वाद्रैटिग्राफी/कालक्रम का निर्धारण किया जा सकता है जो अच्छी तरह से पहचानी जाती हैं और वे हैं... (1) वंश वार, (2) शताब्दी वार और (3) सतह वार और एएसआई ने तीनों प्रणालियों का पालन किया है।"

उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

"3979. भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण की रिपोर्ट, जो उत्खनन के विशेषज्ञ की एक रिपोर्ट है, में सभी विवरण शामिल हैं, जिसमें वाद्रैटिग्राफी, कलाकृति, अवधिकरण के साथ–साथ संरचनाओं और दीवारों का विवरण भी शामिल है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

464. एएसआई की रिपोर्ट का विश्लेषण करने के क्रम में, एएसआई द्वारा अपनायी गयी कार्यप्रणाली और दर्ज निष्कर्षों पर की गई आलोचना को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। उन्हें ध्यान में रखना इस न्यायालय के लिए एक महत्वपूर्ण मूल्यांकन तकनीक होगी जो वैध पाये जाने पर ऐसी प्रकृति की होंगी कि रिपोर्ट की उपयोगिता को रद्द कर देंगी। वैकल्पिक रूप से , इस न्यायालय को एक अधिक बारीक दृष्टिकोण से विचार करना पड़ सकता है जिसके तहत रिपोर्ट में मौजूद कमियों से संभावना, प्रासंगिकता और असंगति के आधार पर निष्कर्ष का यथार्थवादी मूल्यांकन हो सकता है। निर्णय को मूल प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि क्या एएसआई के निष्कर्षों का स्वत्व के निर्धारण में प्रासंगिकता है।

465. सुश्री अरोड़ा ने आर सी थकरान (PW–30) की मौखिक गवाही पर प्रकाश डाला है, जिन्होंने एएसआई रिपोर्ट का खण्डन किया है। PW–30 ने उल्लेख किया है कि 'वाद्रेटिग्राफी और रेडियोलॉजी' शीर्षक से अध्याय III के VI से VII अवधि को बाद में 'परिणामों के सारांश' में बदल दिया गया था। प्रारंभ में रिपोर्ट के 38 से 41 पृष्ठों पर, अवधि V, VI और VII का नामकरण इस प्रकार है:

> "अवधि V: गुप्तोत्तर राजपूत, 7 वीं से 10 वीं सदी।
> अवधि VI: मध्यकालीन–सल्तनत, 11 वीं–12 वीं सदी.
> अवधि VII: मध्यकालीन, 12 वीं से 16 वीं सदी ।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

PW–30, हालांकि इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित करता है कि परिणामों के सारांश में उपरोक्त नामकरण को निम्नानुसार संशोधित किया गया है:

> "अवधि V: गुप्तोत्तर राजपूत, 7 वीं से 10 वीं सदी।
> अवधि VI: प्रारंभिक मध्यकाल, 11 वीं–12 वीं सदी.
> अवधि VII: मध्यकालीन–सल्तनत, 12 वीं से 16 वीं सदी ।"

सुश्री अरोड़ा द्वारा ध्यान से उजागर की गई उपरोक्त विसंगतियों को ध्यान में रखना चाहिए।

PW–30 के अनुसार, मध्ययुगीन–सल्तनत को अवधि VI से VII में अंतरित करने से इस्लामिक अवधि की सामग्री जैसे कि ग्लेज़्ड वेयर या चूना–पंजर को अवधि VI के स्तरों से मनमाने ढंग से अवधि VII में हटाकर उनकी अनदेखी करने का 'लाभ' है, ताकि उन स्तरों में उनकी वास्तविक उपस्थिति एएसआई को अवधि VI में एक कथित "विशाल" या "भव्य" मंदिर का निर्माण रखने में कोई चुनौती न हो।

अवधिकरण–स्तरीकरण के पहलू पर जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू–20/5) जो पूर्व में एएसआई में पुरातत्व अधीक्षक थे, ने कहा:

> "…. यद्यपि कि मैं एएसआई की राय से सहमत हूं, जिसका उल्लेख पृष्ठ 37–ए पर उनके द्वारा तैयार किए गए चार्ट में किया गया है, जहां उन्होंने सतह 4 और 5 को प्रारंभिक मध्यकालीन सल्तनत अवधि का बताया है। चार्ट में पृष्ट 37–ए पर एएसआई ने प्रारंभिक मध्यकालीन सल्तनत अवधि का उल्लेख किया है जबकि पृष्ठ 40 पर उन्होंने मध्यकालीन अवधि का उल्लेख किया है। मेरे दिमाग में ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के बीच अंतर है, लेकिन मैं इसे स्पष्ट नहीं कर सकता।
> प्र. क्या यह कहना सही है कि चार्ट में पृष्ट 37–A पर हल्के हरे रंग से इंगित शब्द "प्रारंभिक मध्यकालीन सल्तनत अवधि" वही अवधि है जो

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एएसआई की रिपोर्ट वॉल्यूम । के पृष्ट 40 पर 11 वीं–12 वीं शताब्दी की अवधि VI (मध्यकालीन सल्तनत स्तर)के रूप में वर्णित है।

उ. चूंकि "प्रारंभिक मध्यकालीन" शब्द का कालानुक्रमिक अर्थों में एक निश्चित अर्थ है, इसलिए मैं इसकी मध्यकालीन–सल्तनत स्तर से बराबरी नहीं कर सकता । इसलिए उत्खननकर्ता, जिन्होंने यह चार्ट तैयार किया गया है, उन्हें हमारे द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले स्थिति को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

गवाह के जवाब से रेखांकित किए गए अंश एएसआई से उस वर्गीकरण पर स्पष्टीकरण के महत्व पर जोर देते हैं जिसे उसने अपनाया था। यह ठीक उन कठिनाइयों में से एक है जिनका आपत्तिकर्ताओं को सामना करना होगा। यदि स्पष्टीकरण आवश्यक था (जैसा कि गवाह स्वीकार करता है), लेकिन यह उचित था कि ऑर्डर XXVI नियम 10 (2) के तहत, एएसआई से एक उपयुक्त गवाह के परीक्षण के लिए अदालत में एक अनुरोध किया जाता। ऐसा नहीं किया गया।

स्तंभ आधारों के संबंध में आपत्ति

466. एएसआई की रिपोर्ट में कहा गया है कि:

"उत्खनन से यह अनुमान लगाया जा सका कि उत्तर से दक्षिण स्तंभों की सत्रह कतारें थी प्रत्येक कतार में पांच स्तंभ आधार थे। "

दूसरी ओर यह स्वीकार करता है कि: " उत्खनन किए गए पचास स्तंभ आधारों में से केवल बारह ही पूरी तरह दिख रहे थे, पैंतीस आंशिक रूप

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से दिख रहे थे और तीन अंशतःही देखे जा सकते थे। पहले के उत्खनन के दौरान कुछ स्तंभ आधार पाये गये थे जिसके बाद विभिन्न प्रस्तरों के साथ उनके संबंध और उनकी भार वहन क्षमता के बारे में विवाद हुआ।"

सुश्री अरोड़ा का कथन है कि तथाकथित स्तंभ आधार निम्नलिखित कारणों से या तो कथित रूप से विशाल संरचना/मंदिर का एक हिस्सा नहीं हो सकते या उसको आधार प्रदान नहीं कर सकते थे जैसा कि एएसआई द्वारा दावा किया गया है:

(i) उत्खनन के दौरान, एएसआई ने विभिन्न अवधियों से संबंधित विभिन्न परतों की पहचान की। विभिन्न परतों के भीतर , इसने चार अलग–अलग तहों की उपस्थिति की पहचान की जिनका अस्तित्व नींबू–सूर्खी या सुर्खी के स्पष्ट रूप से सीमांकित तहों से चिन्हित है, ये तह विभिन्न प्रस्तरों पर हैं, सतह 1 ध्वस्त मस्जिद का स्तर है और सतह 2, 3 और 4 इसके नीचे विभिन्न स्तरों पर है जैसा कि रिपोर्ट में चित्रित किया गया है। यह देखते हुए कि कथित स्तंभ आधार विभिन्न तहों में पाए गए हैं या विभिन्न तहों को काटते हुए, यह स्पष्ट है कि इन स्तंभ आधारों का निर्माण अलग–अलग समय पर किया गया है। इसलिए, तथाकथित स्तंभ आधार समकालीन रूप से एक विशाल संरचना तो छोड़िए एक एकल संरचना का हिस्सा भी नहीं हो सकते ;

(ii) एएसआई रिपोर्ट के विभिन्न हिस्सों में विभिन्न तहों पर पाए गए कथित स्तंभ आधारों की संख्या में विसंगतियां और भिन्नताएं हैं। चित्र 23 ए में सममितीय दृश्य में कई कल्पित या अनुमानित स्तंभ आधार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हैं जो नहीं पायी गयी हैं। इसलिए विशाल ढांचे का दावा एक निराधार परिकल्पना है क्योंकि स्तंभ आधारों की वादीक संख्या ज्ञात नहीं है;

(iii) किसी भी दशा में, तथाकथित स्तंभ आधार वास्तविक माप और दूरी में साम्य में नहीं हैं (जैसा कि विशेषज्ञ साक्षियों डीडब्ल्यू–20/5 और ओपीडब्ल्यू–17 द्वारा स्वीकार किया गया है जिन्होंने एएसआई रिपोर्ट के समर्थन में बयान दिया)। स्तंभ आधार मोटी पश्चिमी दीवार से अलग दूरी पर हैं। इसके अलावा, इन कथित स्तंभ आधारों के आकार और माप दीर्घवृत्ताकार से गोलाकार से वर्गाकार से आयताकार तक विभिन्न विमाओं वाले हैं। इससे न केवल यह पता चलता है कि वे अलग–अलग समय अवधि में बनाए गए थे, बल्कि यह भी पता चलता है कि वे किसी भी बड़े ढांचे या मंदिर का सहारा नहीं हो सकते थे। इसके अलावा, इन स्तंभ आधारों में से कोई भी किसी भी स्तंभ के साथ जुड़ा नहीं पाया गया ; और

(iv) एएसआई द्वारा दर्शाए गए तथाकथित स्तंभ आधारों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जो ज्यादातर ईटों से बने थे, वे अधिक से अधिक अपने ऊपर केवल लकड़ी के स्तंभों को आधार प्रदान कर सकते थे (जैसा कि डीडब्ल्यू–20/5 द्वारा स्वीकार किया गया है, जो कि एक विशेषज्ञ गवाह हैं जिसने एएसआई रिपोर्ट के समर्थन में गवाही दी थी)। ऐसे लकड़ी के खंभे विशाल ढांचे के भारी बोझ को वहन नहीं कर सकते थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपरोक्त आपत्तियों को अधिवक्ता के कथन के निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत साक्ष्य के आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया गया है :

(i) स्तंभ आधार एक ही तह से संबंधित नहीं हैं

जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5); अरुन कुमार शर्मा (ओपीडब्ल्यू 18) अशोक दत्ता (पी डब्ल्यू 31); और डा शिरीन रत्नागर (पीडब्लयू 27) ने कहा कि सभी स्तंभ आधार एक ही तह से संबंधित नहीं हैं। ओपीडब्ल्यू 18 ने कहा कि 46 स्तंभ सातवीं (बारहवीं शताब्दी ई.) की अवधि के सतह 3 से संबंधित हैं और 4 स्तंभ सतह 4 (ग्यारहवीं शताब्दी ई.) से संबंधित हैं। पी डब्ल्यू 31 ने कहा कि ढूह के उत्तरी भाग में पाए गए कुछ स्तंभ आधार एक अलग ऊंचाई और संरचनात्मक गतिविधि से संबंधित थे। पीडब्लयू 27 ने कहा कि स्तंभ आधार प्रस्तर से संबंधित नहीं हैं।

(ii) स्तंभ और स्तंभ आधार काल्पनिक हैं

आर नागस्वामी (ओपीडब्ल्यू 17), जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5) और अशोक दत्ता (पीडब्ल्यू 31) ने अपनी परीक्षा के दौरान दावा किया कि प्रत्येक यह कहना एक अनुमान है कि स्तंभ आधारों की 17 पंक्तियां थीं जिसमें प्रत्येक में पांच स्तंभ आधार थे क्योंकि सभी 85 स्तंभ आधारों का उत्खनन नहीं किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) स्तंभ आधार संरेखण में नहीं हैं

आर सी ठकरान (पीडब्लयू 30), अशोक दत्त (पी डब्ल्यू 31) और सुप्रिया वर्मा (पी डब्ल्यू 32) ने कहा कि स्तंभ आधार वादीक संरेखण में नहीं थे जैसा कि एक स्तंभ वाले हॉल में अपेक्षित होगा।

(iv) स्तंभ आधार विभिन्न आकृति आकार के हैं

जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5) ने कहा कि स्तंभ आधार सं. 42 (43X120X28 सेमी) आकार में सबसे छोटा था जबकि सबसे बड़ा स्तंभ आधार नंबर 35 (170X160X38 सेमी) है।

(v) स्तंभ/स्तंभ आधार भार को वहन करने लायक नहीं थे

आर नागस्वामी (ओ. पी. डब्ल्यू. 17) ने बयान दिया कि स्तंभ आधारों में जो स्तंभ प्रयुक्त किए गए थे वे शायद लकड़ी के थे और पत्थर नहीं थे –ऐसे स्तंभ पर टाइल की छत का भार हो सकता है, किंतु भारी अधिरचना का नहीं। अशोक दत्ता (पीडब्ल्यू 31) ने कहा कि तथाकथित आधार स्तंभ आधार नहीं हैं, बल्कि वास्तव में ईंट –पट्टी के जमाव हैं। पीडब्ल्यू 27, पीडब्ल्यू 30 और पीडब्ल्यू 32 ने भी यह बयान दिया है कि स्तंभ आधार और स्तंभ भार वहन करने लायक नहीं थे।

दीवार के संबंध में आपत्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

467. उत्खनित दीवारों की उपस्थिति के संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष एएसआई की रिपोर्ट पर निम्नलिखित आपत्तियां की गयी:

> "शास्त्रीय शैली का एक मध्यकालीन मंदिर का एक केंद्रीय भाग होता जिसमें मोटी आंतरिक दीवारें होती हैं जो एक उच्च अधिरचना को सहारा देती. टेंच एच 1 में स्थित संरचनाओं की मुख्य योजना में दो दीवारें या दो छोटी दीवारें हैं, जिनमें से प्रत्येक एक मीटर से कम लंबी है, जिसमें लगभग 70 सेमी का अंतर है। योजना में यह चित्रण और एक पंक्ति इस 'प्रवेश' के बारे में दी गई सारी जानकारी है।"

आपत्तियों पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष दिया:

> "3926. उत्खनन के दौरान, कुल 28 दीवारें देखी गयी जैसा कि चित्र 3A में दिखाया गया है। जिसमें से दीवार सं. 1 से 15 या तो विवादित संरचना के समकालीन हैं या विवादित संरचना की हैं। दीवार सं. 16 से 28 विवादित संरचना से पहले की हैं और विवादित संरचना के नीचे पाए गए... 3928. दीवार और सतहों के संबंध में वादी (वाद–4) के विशेषज्ञों (पुरातत्वविदों) के बयानों को पहले ही संक्षेप में कहा जा चुका है कि इस बात को छोड़कर कोई पर्याप्त आपत्ति नहीं है कि राय यह या वह होनी चाहिए। लेकिन वह भी इस सावधानी के साथ उससे इस या उस दोनों तरह से निपटा जा सकता है लेकिन एक निश्चित तरीके से नहीं। दूसरे शब्दों में इस पहलू पर गवाह अस्थिर और अनिश्चित हैं। इसलिए हमें इस संबंध में एएसआई की रिपोर्ट पर संदेह करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं मिलता। "

सुश्री अरोड़ा ने दीवारों के संबंध में निम्नलिखित आपत्तियां उठाई हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) भीतरी दीवारें (दीवारें 18A, 18B, 18C और 18D) भार वाहक नहीं हो सकती थीं क्योंकि वे बहुत संकीर्ण हैं, केवल दो से तीन क्रम ऊंचे हैं और ईंट से निर्मित हैं। दीवार 16 तो 1. 77 मीटर चौड़ा है जबकि दीवारें 18A, B, C और D अपेक्षाकृत पतली हैं।

(ii) मोटी पश्चिमी दीवारें मस्जिद निर्माण की एक विशेषता होती हैं;

(iii) दीवार 16 केवल बाबरी मस्जिद की नींव हो सकती थी; और

(iv) जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5) के अनुसार, दीवार 16 लगभग 1130 ईस्वी के आसपास निर्मित की गयी थी जब वेदिका के सामने एक स्तंभ युक्त हाल बनाया गया था। दीवार 17 के निर्माण के बाद, दीवार 17 के पूर्व की ओर सतह 3 के नीचे खड़ी संरचनाओं को बाढ़ से बचाया गया और इसे और मजबूत करने के लिए, दीवार 16 का निर्माण किया गया।

वृत्ताकार वेदिका के संबंध में आपत्तियां

468. उच्च न्यायालय ने वृत्ताकार वेदिका के अस्तित्व पर एएसआई के निष्कर्षों के संबंध में निम्नलिखित आपत्तियों का उल्लेख किया:

> "1. संरचना की मंदिर संरचनाओं के साथ न कि वृत्ताकार दीवारों और इमारतों के साथ तुलना त्रुटिपूर्ण है।
> 2. इस स्तर में हिन्दू पूजा की कोई वस्तु नहीं मिली।
> 3. एएसआई के अनुसार बची दीवार गोले का केवल एक चौथाई थी। ऐसे आकार मुस्लिम निर्माण की दीवारों में काफी लोकप्रिय हैं।
> 4. चित्र या पवित्र खंड के रूप में संरचना में कुछ भी नहीं मिला जिसे 'वेदिका' कहा जा सकता हो.
> 5. श्राइन 6 वीं या 7 वीं सदी ई. का बना स्तूप हो सकता था।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इन आपत्तियों को खारिज करते हुए, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्षों को अंकित किया:

> "3931. 'वृत्तिका वेदिका', खासकर जिसका अस्तित्व एएसआई द्वारा पाया गया है, मुस्लिम पक्षकारों के अधिकांश विशेषज्ञों (पुरातत्वविदों) द्वारा स्वीकार किया गया है, हालांकि यह कहकर इसकी पहचान को बदलने के लिए एक अनिच्छुक प्रयास किया गया है कि यह एक 'बौद्ध स्तूप' हो सकता है या पूर्ववर्ती इस्लामी धार्मिक संरचना का एक मकबरा। PW–30 ने स्पष्ट रूप से इसे पृष्ठ 15 पर स्वीकार किया है और कहा है कि हलफनामे के पैरा 14 में उनका बयान घटनास्थल पर मंदिर देखने के बाद नहीं बल्कि इसकी तस्वीर के आधार पर था।
>
> 3935. खाइयों के बीच विवादित स्थल पर उत्खनन के दौरान ई–8 और एफ–8 में पूर्वोन्मुख जली हुई ईंटों की एक वृत्ताकार संरचना मिली, जिसे आमतौर पर "वृत्ताकार वेदिका" कहा जाता है, जो रिपोर्ट के पृष्ठ 70 से 72 वाल्यूम 1 पर विस्तृत है, और आकृति 17, 24, 24 ए, और रिपोर्ट की प्लेटों 59, 60 और 62 (खंड 2) में दिखाया गया है। यहां प्रयुक्त ईंटों के दो आकार हैं: 28x21x5. 5 सेमी और 22x18x5 सेमी। गारे की सामग्री कीचड़ वाली थी। इसके पूर्वी हिस्से में, एक आयताकार उद्घाटन है, जिसकी लंबाई 1.32 मीटर और चौड़ाई 32. 5 सेमी है, जो संरचना का प्रवेश द्वार था। एक पथरीला ब्लॉक, 70x27x17 सेमी माप का, यहां भी पाया गया है, जाहिर है, दरवाजे के रूप में। यह एक स्वतंत्र लघु मंदिर था। वास्तुकला की विशेषताओं से पता चलता है कि यह एक शिव मंदिर था।
>
> 3939. यह अकल्पनीय है कि शिव मंदिर की इन स्पष्ट विशेषताओं के बावजूद, आपत्तिकर्ता इसे मुस्लिम कब्र के समान ही पहचान रहे हैं।
>
> 3940. दूसरे, यह मकबरे के लिए बहुत छोटी संरचना है, यह अंदर से केवल 4. 4 वर्ग फीट है। न तो यह अपने आंतरिक भाग में एक कब्र को समायोजित कर सकता था, न ही इसकी पश्चिमी दीवार पर एक क़िब्ल्लाह–मिहराब; क़िब्ल्लाह मिहराब सल्तनत काल (1192–1526 ई.) के दौरान

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मकबरे–संरचना का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा था, जैसा कि पूरे उत्तरी भारत में कई उदाहरणों द्वारा चित्रित किया गया है।

3941. तीसरा, मकबरे पर गुंबद बनाने के लिए आवश्यक मेहराब का कोई निशान नहीं है। इसमें कोई हुक–शाफ्ट नहीं है और मेहराब के रैखिक दबाव का कोई संरचनात्मक निशान नहीं है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि मेहराब की उप–संरचना को चार कोनों के किनारों पर बड़े पैमाने पर बनाया गया है, रैखिक दबाव को रोकने के लिए। आश्चर्य है कि यदि यह बिना किसी गुम्बद के, और बिना किसी कब्र के भी हो?

3942. इस प्रकार एक ओर इस संरचना का आयाम मकबरे के लिए बहुत छोटा है और दूसरी ओर व्यालमुख कभी कब्रों में नहीं होता , जबकि शिवलिंग पर डाले गए पानी को बाहर निकालने के लिए यह शिव मंदिर का एक अभिन्न अंग होता था।

3943. वेदिका एक पवित्र स्थान है जहां पूजा की जाती है। यह एक ऐसी संरचना है जिसमें पवित्रता होती है। इनकार के लिए मना करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। "इस संरचना को एक वेदिका मानने का कोई साक्ष्य नहीं" और " एक कोरी कल्पना,बिना किसी स्पष्ट आधार के अनुमान", इस तरह की टिप्पणियों में तकनीकी कौशल की कमी है और स्पष्ट रूप से तार्किक सोच की कमी है। ये स्वयं केवल "स्पष्ट आधार" की कमी के तर्क हैं। ये और कई तरह के तर्क वादी के 'शुतुरमुर्गी रवैये' को दर्शाते हैं।

3952. समग्र दृष्टिकोण में हमें इस पहलू पर एएसआई के निष्कर्षों पर संदेह करने का कोई कारण नहीं मिलता है और आपत्तियों को अन्यथा तदनुसार खारिज कर दिया जाता है। ”

विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अरोड़ा ने वृत्ताकार वेदिका पर रिपोर्ट में निष्कर्षों पर निम्नलिखित आपत्तियां उठाई हैं:

(i) संरचना सातवीं से दसवीं शताब्दी ई.(गुप्तोत्तर राजपूत काल) से संबंधित है और इसलिए इसका 12 वीं शताब्दी ई. के कथित राम जन्मस्थान मंदिर से कोई संबंध नहीं होगा;

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) उत्खनन रिपोर्ट में यह दर्शित किया गया है कि मंदिर के ठीक ऊपर स्थित स्तंभ आधार हैं जो इस दावे का खंडन करता है कि वृत्ताकार मंदिर बारहवीं शताब्दी के हिंदू ढांचे की उसी समय अवधि का था; और
(iii) किसी जल अवशेष का कोई साक्ष्य नहीं है

दैवीय युगल एवं अन्य कलाकृतियां

469. निम्नलिखित आपत्तियों को उच्च न्यायालय के समक्ष रखा गया था:

> " दैवीय युगल:
> 1. टुकड़े इतने क्षतिग्रस्त हैं कि अपठनीय है।
> 2. उसे दैवीय कहने का कोई कारण नहीं। ट्रेंच K3–K4 में टुकड़े पाये गये अंकित प्रस्तर मलबा है। इस प्रकार यह टुकड़ा एक क्रमबद्ध संदर्भ से नहीं आता है।
> 3. अष्टकोणीय शाफ्ट: सर्वोच्च तह (तल 1) के ऊपर ट्रेंच एफ 3 (Pl. 140) में ऊपरी सतह से आता है। इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है। 4. अन्यः 383 वास्तु टुकड़ों में से केवल 40 ही परिमार्जित संदर्भों से आते हैं। इन 40 में से कोई भी एक मंदिर के लिए विनिर्दिष्ट नहीं था, अलग से उल्लिखित 8 टुकड़े (दरवाजा, आमलक, दैवीय युगल, श्रीवास अंकन, कमल के पदक आदि) का कोई महत्व नहीं है। उदाहरणार्थ, श्रीवत्स की रचना जैन धर्म से संबंधित है, कमल की डिजाइन बौद्ध या मुसलमान हो सकती है।"

उच्च न्यायालय ने उपरोक्त आपत्तियों को खारिज कर दिया। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने आयोजित किया:

> "3958. मानव या पशु आकृति आदि जैसे उत्खनन सामग्री की पहचान विशेषज्ञों का काम है। इन आठ विशेषज्ञ में से किसी भी (मुस्लिम पार्टियों

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के पुरातत्वविदों) ने पुरातत्व की इस शाखा का विशेषज्ञ होने का दावा नहीं किया..। अन्यथा इन खोजों के संबंध में उनका रुख भिन्न होता है। एक गवाह का कहना है कि ये निष्कर्ष उन परतों से बरामद नहीं हुए थे, जिनका दावा किया जाता है जबकि अन्य अन्यथा कहते हैं। हमने इस तरह के कई कलाकृतियों की तस्वीरें देखी हैं और पाते हैं और व्यापकता में , कि एएसआई या अन्य पहचान की प्राप्तियों में ऐसी कोई अंतर्निहित कमी या विकृति नहीं है जो इस अदालत की टिप्पणी आवश्यक बनाए... या उनकी रिपोर्ट को रद्द करे। इसमें विवाद नहीं है कि उत्खनन के दौरान कोई भी इस्लामिक धार्मिक कलाकृति नहीं पायी गयी, जबकि हिंदू धार्मिक प्रकृति से संबंधित कलाकृतियां बहुतायत में थी। कुछ वस्तुओं के लिए, यह दावा किया जाता है कि इसका उपयोग गैर–हिंदू लोगों द्वारा भी किया जा सकता है, लेकिन यह एएसआई की राय पर संदेह करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। प्लेट नंबर 50 (कपोटपल्ली), दीवार 16 और 17 में दिखाए गए नंबर 51 और 62 (फूलों की मोटिफ) प्लेट नंबर 88, कोबरा हुड (नाग देवता) प्लेट नंबर 129 और मानव आकार में विभिन्न अन्य देवी देवताताओं (प्लेट सं. 104, 105, 106,107,108, 109, 110, 111, 112, 114, 115, 116, 118, 119, 120, 121, 122, 123, 125, 126) हमारी राय में काफी स्पष्ट हैं और कोई संदेह नहीं है। श्री अरुण कुमार (OPW–18), डॉ. आर. नागस्वामी (OPW–17) और श्री राकेश दत्त त्रिवेदी (OPW–19) तीन गवाहों को प्रस्तुत किया गया है जिन्होंने एएसआई के निष्कर्षों और रिपोर्ट का समर्थन किया। वे एएसआई में वरिष्ठ पद धारण करने वाले सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। उनके बयान पर्याप्त लंबे और बेहद विस्तृत हैं। चूंकि उन्होंने एएसआई की रिपोर्ट का समर्थन किया है, इसलिए हमने इस कारण से अपने बयानों का विस्तार से उल्लेख नहीं किया है कि हमने एएसआई रिपोर्ट के खिलाफ उठायी गयी आपत्तियों का परीक्षण करने का इरादा किया है कि वादी (वाद 4) के गवाहों को क्या दर्शाया गया है और केवल तभी हमें कुछ संदेह होगा, हम ओपीडब्ल्यू 17 से 19 के बयान का उल्लेख करेंगे और तुलना करेंगे। समग्र रूप से हमें चित्र आदि के संबंध में आपत्ति में कोई सामग्री नहीं मिलती और तद्नुसार खारिज किया जाता है।"

उपरोक्त आपत्तियों के अलावा , विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अरोड़ा ने निम्नलिखित आपत्तियां उठाई हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) एएसआई की ऐसी पृथक टीमें, जिन्होंने रिपोर्ट के विभिन्न अध्याय लिखे, उन अवधियों पर असंगत निष्कर्षों पर पहुंचे जिनसे कलाकृतियां संबंधित थी।;

(ii) दैवीय युगल की तथाकथित मूर्ति पूर्णतः छिन्न–भिन्न है;

(iii) दैवीय पद के प्रयोग के लिए कोई आधार नहीं है क्योंकि आलिंगन मुद्रा भी स्पष्ट दिखाई नहीं देती है; और

(iv) कमल की आकृति जैसी अन्य कलाकृतियां आवश्यक रूप से हिन्दू धार्मिक संरचनाओं से संबंधित नहीं हैं।

चमकीले बर्तन और चमकीले टाइल्स के संबंध में आपत्तियां

470. मिट्टी के बर्तनों के कुल 647 टुकड़े मिले, उन्हें नीचे दर्शाई गई नौ अवधियों में व्यवस्थित किया गया:

"अवधि I: 99
अवधि II: 73
अवधि III: 105
अवधि IV: 74
अवधि V: 85
अवधि VI: 63
अवधि VII, VIII और IX: 148
कुल: 647. ”

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

647 टुकड़ों में से 148 टुकड़े VI, VIII और IX की अवधि में रखे गये।
सुश्री अरोड़ा की प्रमुख आपत्तियां थीं:

(i) चमकीले बर्तन सातवीं अवधि के अंतिम चरण में रखे गये , अन्यथा यह उस अवधि में बनाए जा रहे किसी मंदिर के विरुद्ध होता;
(ii) चमकीले बर्तन मुस्लिम अधिवास का सूचक है और मध्यकालीन हिंदू मंदिरों में नहीं मिलता है; और
(iii) चमकती वस्तुओं के दो टुकड़े VI में पाये गये जो यह दर्शाते हैं कि परतों को गलत तरीके से समनुदेशित किया गया था।

जानवरों की हड्डियों के बारे में आपत्ति

471. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा ने पशु हड्डियों के संबंध में निम्नलिखित आपत्तियां उठाई हैं:
(i) साइट के प्रत्येक स्तर पर उत्खनन के दौरान पाई गई हड्डियों का कोई अध्ययन नहीं किया गया था;
(ii) एएसआई की रिपोर्ट में अस्थियों के अध्ययन के संबंध में एक पृथक अध्याय नहीं है और संरचनात्मक अवशेषों के साथ बरामद अस्थियों के प्रासंगिक संबंध की किसी भी समझ के बिना परिणाम के संक्षेप में केवल आकस्मिक संदर्भ है; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) कटे निशानों वाले अस्थि–खंडों का मिलना ऐसे पशुओं का खाने के लिए उपयोग किए जाने का लक्षण है जो किसी मंदिर की संभावना को समाप्त कर दे।

सुश्री अरोड़ा द्वारा ध्यान से उजागर की गई उपरोक्त विसंगति को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

सिविल प्रक्रिया संहिता: धारा 75 और आदेश XXVI

472. सुश्री अरोड़ा द्वारा ऊपर वर्णित प्रारंभिक पहलुओं और रिपोर्ट (जो बाद में उपवर्णित की जाएगी) पर गुणागुण के आधार पर उठाए गए आक्षेपों पर विचार करने के पूर्व, न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा एएसआई को अन्वेषण की प्रकृति और परिधि पर विचार करना चाहिए।

473. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 75[277] न्यायालय को "ऐसी शर्तों और परिसीमाओं के अधीन रहते हुए, जो विहित की जाएं, कमीशन जारी करने की शक्ति प्रदान करती है। अदालत अन्य बातों के अलावा वैज्ञानिक, तकनीकी या विशेषज्ञ जांच कराने के लिए एक कमीशन जारी कर सकती है।

---

277 धारा 75। आयोग जारी करने की न्यायालय की शक्ति।–ऐसी शर्तों और सीमाओं के अधीन जो निर्धारित की जा सकती हैं, न्यायालय एक आयोग जारी कर सकता है –

(a) किसी व्यक्ति की जांच के लिए
(b) स्थानीय जांच के लिए
(c) लेखा परीक्षा या समायोजन के लिए
(d) बंटवारे के लिए
(e) वैज्ञानिक, तकनीकी या विशेषज्ञ जांच के लिए
(f) प्राकृतिक रूप से या जल्द खराब होने वाली वस्तु की त्वरित विक्री के लिए जो वाद के निर्धारण के लम्बित रहते न्यायालय की अभिरक्षा में है।
(g) किसी मंत्रिस्तरीय कार्य को करने के लिए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस विशिष्ट प्रावधान को 1 फरवरी 1977 से प्रभावी कर 1976 के संशोधन अधिनियम 104 द्वारा शामिल किया गया था।

आदेश XXVI आयोगों से संबंधित है। नियम 1 से 8 गवाहों की परीक्षा के लिए कमीशन को आवृत करता है। नियम 9 और 10 स्थानीय जांच के लिए आयोगों से संबंधित हैं, जबकि वैज्ञानिक जांच के लिए और मंत्रालयिक कृत्यों के उद्देश्य से और संपत्ति की बिक्री नियम 10 ए, 10 बी और 10 सी के अन्तर्गत आते हैं।

शेष प्रावधानों में खातों की जांच और विभाजन है और विदेशी न्यायाधिकरणों के लिए कमीशन सहित सामान्य प्रावधान शामिल हैं।

474. वर्तमान प्रयोजन के लिए, न्यायालय को नियम 9, 10, 10क और 10ख के बारे में कार्य करना है। नियम 9 न्यायालय को किसी स्थानीय अन्वेषण के प्रयोजन के लिए, जिसे वह विवाद में किसी मामले को स्पष्ट करने के प्रयोजन के लिए अपेक्षित या उचित समझता है, कमीशन जारी करने की शक्ति प्रदान करता है स्थानीय निरीक्षण के बाद, नियम 10 आयुक्त को सबूत के साथ एक हस्ताक्षरित रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत करने का अधिकार देता है। नियम 10 इस प्रकार है:

> "10 आयुक्त की प्रक्रिया–(1) आयुक्त, ऐसे स्थानीय निरीक्षण के पश्चात्, जो वह आवश्यक समझे और उसके द्वारा लिए गए साक्ष्य को लेखबद्ध

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करने के पश्चात्, ऐसे साक्ष्य को, उसके द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रिपोर्ट सहित, न्यायालय को लौटा देगा।

(2) रिपोर्ट और बयान का वाद में साक्ष्य होना. आयुक्त की रिपोर्ट और उसके द्वारा लिए गए सबूत (लेकिन रिपोर्ट के बिना सबूत नहीं) वाद में सबूत होंगे और रिकॉर्ड का हिस्सा बनेगा; लेकिन कोर्ट या, कोर्ट की अनुमति के साथ, वादकारी कोई भी पक्ष व्यक्तिगत रूप से खुले न्यायालय में आयुक्त की जांच कर सकता है जो उसे संदर्भित मामलों के किसी हिस्से से संबंधित हो या जिसका उसकी रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, या जिस तरीके से उसने जांच की है।

(3) जहां न्यायालय किसी कारणवश आयुक्त की कार्यवाहियों से असंतुष्ट है, वहां वह ऐसी अतिरिक्त जांच करने का निदेश दे सकेगा जो वह ठीक समझे।"

नियम 10 ए वैज्ञानिक जांच के प्रयोजनों के लिए एक आयोग की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करता है:

"10क. वैज्ञानिक जांच के लिए कमीशन (1) जहां किसी वाद में उद्भूत होने वाले किसी प्रश्न में कोई वैज्ञानिक अन्वेषण अंतर्वलित है जो न्यायालय की राय में, न्यायालय के समक्ष आसानी से संचालित नहीं किया जा सकता है, वहां न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्याय के हित में आवश्यक या समीचीन समझता है, तो ऐसे व्यक्ति को, जिसे वह ठीक समझता है, कमीशन जारी कर सकेगा और उसे ऐसे प्रश्न की जांच करने और उस पर न्यायालय को रिपोर्ट करने का निदेश दे सकेगा।"

(2) इस आदेश के नियम 10 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस नियम के अधीन नियुक्त आयुक्त के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे नियम 9 के अधीन नियुक्त आयुक्त के संबंध में लागू होते हैं।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नियम 10 बी एक मंत्रिस्तरीय कार्य को करने के लिए कमीशन की नियुक्ति पर लागू होता है जिसे अदालत के समक्ष आसानी से नहीं किया जा सकता है।

475. एएसआई को एक वैज्ञानिक जांच करने का निर्देश देते हुए, उच्च न्यायालय आदेश XXVI की धारा 75 और नियम 10 ए के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहा था। इस तरह की जांच के लिए, नियम 10 ए के उप–नियम 2 में कहा गया है कि नियम 10 के प्रावधान लागू होंगे, जहां तक हो सकता है, जैसा कि वे नियम 9 के तहत नियुक्त आयुक्त के संबंध में लागू होते हैं। नियम 10 (2) में कहा गया है कि रिपोर्ट और आयुक्त द्वारा लिए गए सबूत "**वाद में सबूत होंगे**"। क़ानून का एक जनादेश है कि रिपोर्ट और साक्ष्य को वाद में सबूत के रूप में माना जाता है और यह 'रिकॉर्ड का हिस्सा बनेगा'। हालांकि, या तो अदालत अपने स्वयं के आधार पर या कोई पक्षकार (अदालत की अनुमति के साथ) व्यक्तिगत रूप से आयुक्त की जांच कर सकती है। यह एक सक्षम प्रावधान है जिसके तहत आयुक्त की जांच या तो अदालत द्वारा अपने स्वयं के आधार पर या किसी पक्षकार की ओर से की जा सकती है। जिस विषय पर आयुक्त की जांच की जा सकती है, वह नियम 10 के उप–नियम 2 में भी वर्णित है। आयुक्त की जांच की जा सकती है:

(i) निर्दिष्ट विषयों में से कोई;

(ii) रिपोर्ट में उल्लिखित विषयों में से कोई भी;

(iii) रिपोर्ट के बारे में; या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) उस रीति के बारे में, जिससे अन्वेषण किया गया है।

यह जांच करने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और रिपोर्ट के मूल पहलुओं दोनों मामलों को शामिल करता है।

476. डॉ. भुवन विक्रम सिंह

उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के अनुक्रम में, वाद 5 में वादियों ने एक आवेदन फाइल किया जिसमें डा. भुवन विक्रम सिंह, जो उत्खनन दल का हिस्सा थे, की परीक्षा का अनुरोध किया गया था उच्च न्यायालय ने गवाह को तलब किया। डा. भुवन विक्रम सिंह ने एक अर्जी[278] दाखिल की जिसमें यह अनुरोध किया गया था कि उन्हें न्यायालय के साक्षी के रूप में बुलाया जाए क्योंकि वह न्यायालय द्वारा नियुक्त उत्खनन दल का भाग थे और वह वाद के किसी पक्षकार का साक्षी होने के लिए तैयार नहीं थे. वाद 5 में वादी के अधिवक्ता ने आवेदन का विरोध नहीं किया और बयान दिया कि वह वाद 5 में गवाह के रूप में डॉ. भुवन विक्रम सिंह की जांच नहीं करना चाहता। तथापि, अधिवक्ता ने अनुरोध किया कि डा. भुवन विक्रम सिंह को न्यायालय के साक्षी के रूप में मानकर परीक्षा की जानी चाहिए। 4 दिसंबर 2006 के एक आदेश द्वारा, उच्च न्यायालय ने बयान को दर्ज किए बिना गवाह को छुट्टी दे दी, यह देखते हुए कि अदालत के पास खुद किसी भी गवाह को बुलाने का शक्ति थी और किसी पक्ष द्वारा अदालत के गवाह के रूप में परीक्षित किये जाने के लिए आवेदन द्वारा न्यायालय को नहीं सुझाया जा सकता।

---

278 Application no 25(o) of 2006

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

477. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय के दौरान यह उल्लेख किया कि पक्षकारों ने रिपोर्ट पर आक्षेप लगाए थे, जिनका विनिश्चय न्यायालय द्वारा किया जाना था लेकिन तब, यह पाया गया कि आपत्तियों की प्रकृति ऐसी थी कि जब तक पक्षकारो को सबूत देने की अनुमति न दी जाय तब तक आपत्तियों पर निर्णय नहीं लिया जा सकता। इसलिए, 3 फरवरी 2005 को, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि एएसआई रिपोर्ट को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाएगा, लेकिन पक्षकारों द्वारा उठाए गए आपत्तियों का फैसला मुकदमों की अंतिम सुनवाई में किया जाएगा, जिस समय तक साक्ष्य का अभिलेखीकरण पूरा हो जाएगा। उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि कानून या नियम 10 या 10A या आदेश XXVI में कोई आवश्यकता नहीं है कि रिपोर्ट को तब तक ठोस सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता है जब तक कि आयुक्त की गवाह के रूप में जांच नहीं की जाती है। उच्च न्यायालय ने कहा कि किसी भी पक्ष ने रिपोर्ट से संबंधित मामले या आयुक्त की जांच करने का विकल्प नहीं चुना। इसके अलावा, उनके द्वारा दायर आपत्तियों ने रिपोर्ट की संपूर्णता को चुनौती नहीं दी, बल्कि केवल परिणामों के सारांश में निकाले गए निष्कर्षों को। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष पूर्वाग्रह और दुराशय के आरोप भी निवेदित किये गये हालांकि, इस अदालत के समक्ष, सुश्री अरोड़ा द्वारा सुनवाई के दौरान उन पर बल नहीं दिया गया।

478. तथ्यात्मक स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं है कि कोई भी पक्ष आदेश XXVI के नियम 10 (2) में निहित प्रावधानों के संदर्भ में आयुक्त की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जांच करने का प्रयास नहीं किया, जो, जैसा कि ऊपर देखा गया है, नियम 10A (2) के आधार पर वैज्ञानिक जांच के लिए गठित कमीशन पर लागू होते हैं । आदेश XXVI का नियम 9 एक महत्वपूर्ण शक्ति है जो अदालत को स्थानीय जांच करने के लिए आयोग जारी करने की शक्ति देता है। नियम 10 प्रकृति में प्रक्रियात्मक है। नियम 10 सारवान है जो वैज्ञानिक जांच करने के लिए आयोग जारी करने में न्यायालय को सक्षम बनाता है। नियम 10A (2) जो नियम 9 के अधीन वैज्ञानिक अन्वेषण के लिए किसी आयोग में नियुक्त किए गए आयुक्त पर नियम 10 के प्रावधानों को लागू करता, में 'जहां तक हो सके' पद अन्तर्विष्ट है। ये शब्द उस धारणा को और आयोग को जारी करने या नियुक्त करने के लिए अदालत की शक्ति के निर्वहन की व्यवहार साध्यता को समझते हैं। नियम 10 (2) का दूसरा भाग सक्षमकारी है क्योंकि यह न्यायालय को रिपोर्ट या जांच से संबंधित मामलों पर आयुक्त का स्वयं परीक्षण करने का विवेकाधिकार और परीक्षण के लिए आयुक्त को बुलाने का न्यायालय से अनुरोध करने के लिए पक्षकारों को सक्षम बनाता है। नियम 10 आयुक्त की रिपोर्ट पर सवाल उठाने के अधिकार को निरस्त नहीं करता है यदि आयुक्त को प्रतिपरीक्षा के लिए बुलाने की सक्षमकारी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता है। रिपोर्ट पर असर डालने वाले मामलों पर आयुक्त की परीक्षा की मांग करके एक पक्षकार उस अवसर का लाभ उठा सकता है। एक पक्षकार अपने स्वयं के गवाहों के साक्ष्य भी ले सकता है जो वैज्ञानिक जांच के संचालन के लिए नियुक्त आयुक्त की कार्यप्रणाली या निष्कर्षों को चुनौती देना चाहते हैं। आयुक्त की रिपोर्ट पर आपत्ति करने का एक पक्ष का अधिकार केवल इसलिए निरस्त नहीं किया जाता है क्योंकि आयुक्त को जिरह के लिए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं बुलाया जाता है। बहुत कुछ उन आपत्तियों की प्रकृति पर निर्भर करेगा जो न्यायालय के समक्ष एक पक्ष द्वारा निवेदित किये गये हों, हालांकि आयुक्त को परीक्षा के लिए नहीं बुलाया गया था।

479. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय का विचार था कि वाद में रिपोर्ट को साक्ष्य के रूप में मानने के लिए आयुक्त को साक्ष्य देने के लिए आहूत करने की कोई पूर्वशर्त नहीं है। उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण न्यायोचित है क्योंकि आदेश XXVI के नियम 10 (2) में कहा गया है कि आयुक्त द्वारा ली गई रिपोर्ट और साक्ष्य 'वाद में सबूत होंगे और रिकॉर्ड का हिस्सा बनेंगे'। इसलिए, रिपोर्ट को वाद में सबूत के रूप में और रिकॉर्ड के हिस्से के रूप में ठीक ही माना गया था। हालांकि, इसने कार्यवाही के किसी भी पक्ष को उस रिपोर्ट पर सवाल उठाने से पूर्वनिवारित नहीं किया , जिसके लिए निम्नलिखित कार्रवाहियों में से किसी एक या अधिक का विकल्प होता है:

(i) आयुक्त की खुले न्यायालय में परीक्षा की मांग करना;
(ii) आयुक्त की रिपोर्ट को विस्थापित करने के लिए अपने स्वयं के साक्षियों के साक्ष्य दिलवाना; और
(iii) आयुक्त की रिपोर्ट पर अपने आक्षेप को न्यायालय के विचारार्थ रखना ।
न्यायमूर्ति अग्रवाल का निर्णय वास्तव में नोट करता है कि रिपोर्ट पर पक्षकारों की आपत्तियों को मुकदमों की अंतिम सुनवाई के बाद अभिनिर्णीत किया जाएगा, जिस समय तक साक्ष्य पूर्ण होंगे। ऊपर (ii) और (iii) में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्दिष्ट कार्रवाई का हक नियम 10 ए (2) के उत्तरार्द्ध द्वारा प्रदत्त पक्षकार की सक्षमकारी शक्ति से अलग था।

480. यह कहने के पश्चात् साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45[279] को ध्यान में रखना आवश्यक है। अन्य बातों के अलावा जब अदालत को एक राय बनानी होती है, विज्ञान के एक बिंदु पर, उस विषय के विज्ञान पर उस विज्ञान में विशेष रूप से कुशल व्यक्तियों की राय महत्तवपूर्ण तथ्य होते हैं। ऐसे व्यक्ति, जैसा कि कानून उपबंध करता है, " विशेषज्ञ" कहलाते हैं। **चंदन मल इंद्र कुमार बनाम चिमन लाल गिरधर दास पारेख**[280] के मामले में प्रिवी काउंसिल के एक फैसले में उस रीति का अभिनिर्धारण है जिस तरह से एक विशेषज्ञ की रिपोर्ट का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। लॉर्ड रोमर ने अंकित किया है जो कि उस मामले में अधीनस्थ न्यायाधीश ने वह धारित किया है कि किस तरीके से स्थानीय आयोग की रिपोर्ट को देखा जाना चाहिए :

> "यह निर्धारित किया गया है कि एक लंबी और सावधान स्थानीय जांच के परिणाम के निष्कर्ष को स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त आधार पर ही अवमूल्यित किया जाना चाहिए। एक अदालत के लिए एक विशेषज्ञ के रूप में कार्य करना और एक ऐसे आयुक्त की विस्तृत रिपोर्ट को रद्द करना सुरक्षित नहीं है, जिसकी ईमानदारी और सावधानी निर्विवाद है, जिसका

---

279 धारा 45 उपबंध करती है:

विशेषज्ञों की रायें – जब कि न्यायालय को विदेशी विधि की या विज्ञान की या कला की किसी बात पर या हस्तलेख या अंगुली–चिन्हों की अनन्यता के बारे में राय बनानी हो तब उस बात पर ऐसी विदेशी विधि, विज्ञान या कला में या हस्तलेख या अंगुली–चिन्हों की अनन्यता विषयक प्रश्नों में, विशेष कुशल व्यक्तियों की रायें सुसंगत तथ्य है।ऐसे व्यक्ति विशेषज्ञ कहलाते है।दृष्टान्त–

(क) प्रश्न यह है कि क्या क की मृत्यु विष द्वारा कारित हुई।

जिस विष के बारे में अनुमान है कि उससे क की मृत्यु हुई है, उस विष से पैदा हुए लक्षणों के बारे में विशेषज्ञों की रायें सुसंगत है।

(ख) प्रश्न यह है कि क्या क अमुक कार्य करे के समय चित्ताविकृति के कारण उस कार्य की प्रकृति, या यह कि जो कुछ वह कर रहा है वह दोषपूर्ण या विधि के प्रतिकूल है, जानने में असमर्थ था।

इस प्रश्न पर विशेषज्ञों की रायें सुसंगत हैं कि क्या क द्वारा प्रदर्शित लक्षणों से चित्ताविकृति सामान्यतः दर्शित होती है तथा क्या ऐसी चित्ताविकृति लोगों को उन कार्यों की प्रकृति, जिन्हें वे करते हैं या वह कि जो कुछ वे कर रहे हैं, वह या तो दोषपूर्ण या विधि के प्रतिकूल है, जानने में प्रायः असमर्थ बना देती है।(ग) प्रश्न यह है कि क्या अमुक दस्तावेज क द्वारा लिखी गयी थी। एक अन्य दस्तावेज पेश की जाती है जिसका क द्वारा लिखा जाना साबित या स्वीकृत है।

इस प्रश्न पर विशेषज्ञों की रायें सुसंगत है कि क्या दोनों दस्तावेज एक ही व्यक्ति द्वारा या विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखी गयी थी। इलैक्ट्रॉनिक साक्ष्य के लिए परीक्षक एक विशेषज्ञ होगा।)

280 AIR 1940 PC 3

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> सावधानीपूर्ण और श्रमसाध्य कार्य निष्पादन उसकी रिपोर्ट से साबित हुआ था, और जिसने पक्षकारों के दावों को आँख बंद करके नहीं माना।"

विचारण न्यायाधीश की उक्त टिप्पणी को अंकित कर, प्रिवी काउंसिल ने उनके द्वारा कानून के सही स्थिति के निरूपण की अभिपुष्टि की है:

> "यह माननीय न्यायाधीश के निर्णय में आयुक्त की रिपोर्ट के संबंध में अपनाए जाने वाले सिद्धांत का एक सही कथन है। यह सारवान रूप से इस बोर्ड द्वारा रनी सुरुत सोंदरी देबिया बनाम बाबू प्रोसोनो कोमार टैगोर [(1870) 13 Moo I.A. 607 at p. 617] के मामले में पहले से ही निर्धारित सिद्धांत है।"

[इस संदर्भ में **न्यू मुल्तान टिम्बर स्टोर बनाम रतन चंद सूद**[281] के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय भी देखें]

481. डॉ. राजीव धवन ने अपने लिखित कथन के दौरान इस बात को ठीक ही स्वीकार किया है कि "न्यायालय के पास विशेषज्ञों पर निर्णय की दक्षता नहीं हो सकती है।" फिर भी, कथन के अनुसार, कमिश्नर की विशेषज्ञता पर निर्णय किए बिना न्यायालय द्वारा निश्चित रूप से कुछ पहलुओं की जांच की जा सकती है।

वे पहलू इस प्रकार हैं:

(i) क्या आयोग ने उत्तर देने के लिए न्यायालय के निवेदन को पूरा किया है

(ii) क्या दशाओं और सीमाओं का पालन किया गया है;

(iii) क्या निष्कर्ष प्राप्तियों के अनुरूप हैं;

(iv) क्या रिपोर्ट में स्पष्ट विसंगतियां हैं; और

---

281 (1997) 43 DRJ 270

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) क्या निष्कर्ष युक्तियुक्त संभाव्यता से परे निकाले गए हैं।

इसलिए, डॉ. धवन ने कहा है कि प्रथम अपील में, अपीलीय न्यायालय के पास विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की जांच करने का विकल्प होता है यदि वे रिपोर्ट से असंबंधित हैं और उससे बाहर हैं। इसके अलावा, जहां सभी पक्षों ने आयुक्त की प्रतिपरीक्षा नहीं की है , विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा संगति, प्रासंगिकता और संभावना के आधार पर आपत्तियों की जांच करना उनकी अधिकारिता में होगा।

482. सिद्धांतः, हमारा विचार है कि एक पक्ष को आयुक्त की रिपोर्ट पर आपत्तियां उठाने से या रिपोर्ट के निष्कर्षों को चुनौती देने के लिए स्वयं के गवाहों के साक्ष्य देने से केवल इसलिए पूर्व निवारित नहीं किया जाएगा कि उसने अदालत से परीक्षण के उद्देश्य से आयुक्त को समन करने का अनुरोध नहीं किया है । लेकिन, वह पक्ष जो अदालत में आयुक्त की परीक्षा की अनुमति देने के लिए अदालत से अनुरोध करने के लिए नियम 10 (2) द्वारा प्रदत्त सक्षमकारी शक्ति का सहारा लेने में विफल रहता है , , आयुक्त की विशेषज्ञता वाले विषय के संबंध में मुश्किल का सामना कर सकता है। वर्तमान मामले में, एएसआई एक विशेषज्ञ प्राधिकरण है। इसकी विश्वसनीयता और विशेषज्ञता संदेह से परे है। आपत्तियों की प्रकृति जिसे अदालत द्वारा वैध रूप से माना जा सकता है, आयुक्त द्वारा की जाने वाली जांच की प्रकृति और ज्ञान की विशेष शाखा में ज्ञान और अनुभव दोनों को शामिल करने वाले डोमेन विशेषज्ञता पर निर्भर करेगा। वैज्ञानिक जांच से संबंधित एक मामले पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आयुक्त की रिपोर्ट के कुछ पहलू हो सकते हैं जिन्हें सबसे अच्छा आयुक्त द्वारा ही समझाया जा सकता है। नियम 10 (2) आयुक्त को रिपोर्ट में उल्लिखित किसी भी मामले पर या रिपोर्ट के संबंध में या जिस तरीके से जांच की गई है, उस पर परीक्षित करने की अनुमति देता है। नियम 10 (2) में प्रदान की गई सक्षमकारी शक्ति को लागू करने में विफलता का परिणाम परीक्षण के दौरान आयुक्त के स्पष्टीकरण को समझने में विफलता हो सकती है। वैज्ञानिक जांच से संबंधित एक मामले में, अदालत को डोमेन ज्ञान की आवश्यकता वाले मुद्दों पर विशेषज्ञता का अभाव होता है, यही कारण है कि आयुक्त को नियुक्त किया गया। एएसआई को नियुक्त करने का उद्देश्य विवादित स्थल पर खुदाई का निर्देश देना था ताकि अदालत को मिली सामग्री और एएसआई द्वारा तैयार किए गए निष्कर्षों के आधार पर विवाद के विषय पर एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण बना सके। आयुक्त की रिपोर्ट पर सवाल उठाने की वाले पक्ष की आयुक्त को प्रतिपरीक्षा के लिए बुलाने में विफलता न्यायालय के समक्ष उठाई जाने वाली आपत्तियों की प्रकृति को इस कारण सीमित कर सकती क्योंकि आयुक्त जो रिपोर्ट को समझाने के लिए सबसे अच्छी स्थिति में था,को परीक्षा के लिए नहीं बुलाया गया।

483. हम विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. धवन द्वारा दी गयी इस धारणा को स्वीकार करते हैं कि सिद्धांतः जांच के लिए आयुक्त को नहीं बुलाने के बावजूद, एक पक्ष निम्नलिखित मामलों पर इस न्यायालय के समक्ष आपत्तियां कर सकता है:

(i) क्या आयुक्त द्वारा निम्न सहित न्यायालय का निदेश पूरा किया गया है

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

a. क्या आयुक्त ने वह अभिनिर्धारित किया है जो संदर्भित नहीं किया गया था; या

b. क्या आयुक्त ने ऐसा कुछ अभिनिर्धारित नहीं किया है जिसे संदर्भित किया गया था;

(ii) क्या आयुक्त की रिपोर्ट में विरोधाभास या विसंगतियां हैं; और

(iii) क्या आयुक्त की प्राप्तियां या निष्कर्ष रिपोर्ट से उद्भूत होते हैं।

अंततः, यह निर्णय लेना न्यायालय की अधिकारिता में है कि क्या एएसआई की रिपोर्ट में निहित निष्कर्ष सत्य और न्याय हित की प्रासंगिकता और संभावनाओं के आधार पर रक्षा करते हैं। विधि की अन्य शाखाओं की तरह यहां भी न्यायिक विवेकाधिकार का सामान्य विवेक द्वारा मार्गदर्शन होना चाहिए।

विश्लेषण

दलीलें

484. वाद 5 में वादीगण ने यह उद्घोषणा मांगी कि, " अयोध्या में श्री राम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर.... वादी देवताओं का है।" वाद के पैराग्राफ 23 में यह दलील दी गयी है कि श्री राम जन्मभूमि पर विक्रमादित्य के शासन में एक प्राचीन मंदिर था जिसे आंशिक रूप से नष्ट कर दिया गया था और इस स्थल पर मस्जिद को बनाने का प्रयास किया गया था:

> "23. यह कि, इतिहास की पुस्तकें तथा असंदिग्ध प्रमाणिकता वाले सार्वजनिक अभिलेख निर्विवाद रूप से यह स्थापित करते हैं कि **महाराजा विक्रमादित्य के समय का एक प्राचीन मंदिर श्री राम जन्मभूमि, अयोध्या**

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में था। उस मंदिर को आंशिक रूप से नष्ट कर दिया गया और हथियारों के बल पर मस्जिद बनाने का प्रयत्न किया गया. 1528 ई. में **बाबर अयोध्या आया और वहाँ एक सप्ताह के लिए रुका. उसने प्राचीन मंदिर को नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद बनवा दी** जिसे अभी तक बाबर की मस्जिद कहा जाता है. "

(प्रभाव वर्धित)

वाद 5 में दावा है कि (i) राम जन्मभूमि के स्थान पर एक प्राचीन मंदिर मौजूद था; (ii) मंदिर विक्रमादित्य के समय का था; और (iii) बाबर ने 1528 में मंदिर को नष्ट करके और उसी स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया।

विषय

485. पक्षकारों की दलीलों के मद्देनजर, वाद 4 और वाद 5 में निम्नलिखित विषय विरचित किये गये:

"(a) वाद सं. 4 में विषय सं. 1 (ख)
"क्या इमारत का निर्माण एक कथित हिंदू मंदिर के स्थान पर उसे ध्वस्त करने के बाद किया गया था, जैसा कि प्रतिवादी सं. 13 द्वारा आरोपित है? यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव? "

(ख) वाद सं. 5 में विषय 14
"क्या बाबरी मस्जिद कही जाने वाली विवादित संरचना राम जन्मस्थान मंदिर को ध्वस्त करके उसके स्थान पर बनायी गयी थी? "

अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए, वाद 5 में वादीगण को यह सिद्ध करने की आवश्यकता है कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) विवादित स्थल पर एक प्राचीन हिन्दू मंदिर विद्यमान था;

(ii) विद्यमान प्राचीन हिन्दू मंदिर को बाबरी मस्जिद बनाने के लिए ध्वस्त कर दिया गया था; और

(iii) मस्जिद को निर्माण के स्थान पर ही बनाया गया था।

साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 101 से 103 के संदर्भ में एक सकारात्मक पक्ष स्थापित करने के लिए साक्ष्य का भार वाद 5 में वादीगण पर निहित है।

उच्च न्यायालय द्वारा आदेशित उत्खनन का उद्देश्य

486. जीपीआर सर्वेक्षण का आदेश देते हुए, उच्च न्यायालय ने 23 अक्टूबर 2002 के अपने आदेश में निम्नलिखित शब्दों में इसका उद्देश्य स्पष्ट किया:

> " ऊपरी संरचना की प्रकृति काफी हद तक नींव से संबंधित होती है। ..... यदि किसी भी निर्माण की कोई नींव मौजूद है, तो वह इस पर प्रकाश डाल सकती है कि क्या कोई संरचना मौजूद थी और यदि ऐसा है तो उस समय संभावित संरचना क्या हो सकती थी.....।"

17 फरवरी 2003 की जीपीआर सर्वेक्षण रिपोर्ट में 0. 5 से 5. 5 मीटर तक की गहराई की विसंगतियों पायी गयी, जो कि प्राचीन और समकालीन संरचनाओं जैसे खंभे, नींव की दीवारों और स्लैब सतह से जोड़ कर देखा जा सकता था जो कि उस स्थान के विस्तृत हिस्से पर था। तथापि, सर्वेक्षण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रिपोर्ट में यह उपदर्शित किया गया कि इन विसंगतियों की पुष्टि औपचारिक आधार पर सिस्टमेटिक ग्राउंड ट्रोथिंग जैसे पुरातत्वीय खुदाई द्वारा किया जाना चाहिए। जीपीआर सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात 184 विसंगतियों में से, 39 की खुदाई के दौरान पुष्टि की गई।

5 मार्च 2003 को, जब उच्च न्यायालय ने एएसआई को साइट पर उत्खनन करने का निर्देश दिया, तो यह निम्न निर्धारित करने के लिए था:

> "क्या कोई मंदिर/संरचना ऐसी थी जिसे गिराया गया हो और विवादित स्थल पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था।"

एएसआई ने 22 अगस्त 2003 को अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें यह बताया गया था:

> "अब, समग्रता में देखते हुए और विवादित संरचना के ठीक नीचे एक विशाल संरचना के पुरातात्विक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और दसवीं शताब्दी के बाद से संरचनात्मक चरणों में निरंतरता के साक्ष्य के साथ–साथ पत्थर और अलंकृत ईंटों से विवादित संरचना के निर्माण तक साथ ही दैवीय युगल की क्षतिग्रस्त मूर्ति, आमलक, कपोतपाली द्वारजंब सहित अर्ध–वृत्ताकार भित्तिस्तंभ, काले शिष्ट स्तंभ के टूटे अष्टकोणीय शाफ्ट, उत्तर में परनाला (जलनिकास) वाली वृत्ताकार वेदिका, विशाल संरचना से संबंधित पचास स्तंभ, **ऐसे अवशेषों के संकेत हैं जो उत्तर भारत के मंदिरों से जुड़ी विशिष्ट विशेषताएं हैं।"**
>
> (प्रभाव वर्धित)

एएसआई की रिपोर्ट पर मूल आपत्ति यह है कि इस बात पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया है कि किसी अंतर्निहित मंदिर या संरचना को ध्वस्त कर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दिया गया था और इसके स्थल पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था। इस संदर्भ में, यह कहा गया है कि अपनी प्रकृति से ही, जो रिपोर्ट एक राय है (हालांकि एक विशेषज्ञ निकाय की) एक तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और स्वाभाविक रूप से अनुमानपरक और अनिर्णायक है।

487. साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 3 "तथ्य" पद को इस प्रकार परिभाषित करती है:

> "तथ्य का अर्थ है और इसमें शामिल है –
> (1) कोई भी वस्तु, चीजों की स्थिति, या चीजों के संबंध, इंद्रियों द्वारा महसूस किए जाने योग्य;
> (2) कोई मानसिक दशा, जिसके प्रति कोई व्यक्ति सचेत है।"

हालांकि, धारा 45 विशेषज्ञ की राय को एक प्रासंगिक तथ्य के रूप में अनुमति देती है जब अदालत को विदेशी कानून, विज्ञान या कला के बिंदु पर या लिखावट या उंगली के छापों की पहचान पर एक राय बनानी होती है।

तथ्य के एक गवाह और एक विशेषज्ञ गवाह के बीच अंतर को **प्रेम सागर मनोचा बनाम राज्य (दिल्ली के एनवादी)**[282] के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय में स्पष्ट किया गया है:

> "20.... किसी विशेषज्ञ का कर्तव्य न्यायालय को उसकी राय और सभी सामग्रियों के साथ उसकी राय के कारणों को प्रस्तुत करना होता है। इसके बाद अदालत को यह देखना होता है कि क्या राय का आधार सही और उचित है और फिर अपना निष्कर्ष बनाना होता है। लेकिन, तथ्यों के गवाह के संबंध में ऐसा नहीं होता है। तथ्य तथ्य होते हैं और वे वैसे ही रहते हैं और हमेशा उसी तरह बने रहना होता है। तथ्यों का गवाह तथ्यों पर

---

282 (2016) 4 SCC 571

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपनी राय नहीं देता है, लेकिन इस तरह के तथ्यों को प्रस्तुत करता है। हालांकि, विशेषज्ञ राय देता है कि उसने परीक्षण किया है या किसी चीज की जांच की है। उसके बाद जो निष्कर्ष निकाला गया वह फिर भी उसके ज्ञान पर आधारित एक राय होती है...? "

एएसआई द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट एक राय है; फिर भी पुरातत्व के क्षेत्र में विशेषज्ञ एक सरकारी एजेंसी की राय। रिपोर्ट एक विशेषज्ञ की राय का गठन करती है। विशेषज्ञ की राय को अदालत द्वारा प्राप्त और मूल्यांकन किया जाना चाहिए और अपने आप में निर्णायक नहीं हो सकती है।

एक विषय के रूप में पुरातत्व

488. एएसआई द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की इस आधार पर अलोचना की गयी है कि प्राकृतिक विज्ञान से अलग, पुरातत्व विज्ञान सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है और स्वाभाविक रूप से व्यक्तिपरक है। तर्क यह है कि पुरातत्वविज्ञानी, निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, इतिहास, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान सहित कई अन्य विषयों से निष्कर्ष निकालता है। यह कहा गया है कि आगमनात्मक तर्क की प्रक्रिया अंतिम निष्कर्ष को प्रभावित करने वाली व्यक्तिनिष्ठता की कई परतों को जन्म दे सकता है। इसलिए, यह कहा गया है कि एक पुरातात्विक रिपोर्ट सत्यापन योग्य निष्कर्ष प्रस्तुत नहीं करती है, लेकिन खुदाई के दौरान पाए गए डेटा या वस्तुओं से निकाले गए अनुमान प्रदान करती है। यह कहा गया है कि व्याख्याएं भिन्न–भिन्न होती हैं और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पुरातत्वविदों का एक ही डेटा पर निकाला गया निष्कर्ष भिन्न भिन्न हो सकते हैं। इसलिए, कोई पूर्ण या सार्वभौमिक सत्य नहीं है।

न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अपने फैसले में अभिमत व्यक्त किया:

> "3896. पुरातत्वविज्ञान प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री, संस्कृति, समझ के पुनर्निर्माण के लिए वैज्ञानिक तथ्यात्मक आंकड़े प्रदान करता है। पुरातत्वविज्ञान... एक बहुविधात्मक वैज्ञानिक विषय है और प्रभावी परिणाम के लिए श्रमिकों की एक टीम की आवश्यकता होती है। प्राचीन स्थलों का उत्खनन पुरातत्वविदों की एक प्रमुख कार्य होता है। वैज्ञानिक विषय होने के नाते यह अपने काम में वैज्ञानिक तरीकों का इस्तेमाल करता है. "

विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा का कथन है कि उपरोक्त निष्कर्ष के विपरीत, विशेषज्ञ गवाहों ने पुरातत्व के अनुमान और व्याख्या का विषय होने की गवाही दी है:

(i) **जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5)**, जो एएसआई में अधीक्षण पुरातत्व विशेषज्ञ के रूप में सेवानिवृत्त हुए, ने रिपोर्ट के समर्थन में बयान दिया। उन्होंने कहा:

> "...व्याख्या उत्खनन का एक महत्वपूर्ण पहलू है..."
> "...अनुमान शब्द से मेरा तात्पर्य अनुमानित चित्र से है जो उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित हो सकता है और यह पुरातात्विक खुदाई में बहुत चलन में है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) **आर नागस्वामी (PW 17)**, जो तमिलनाडु सरकार में पुरातत्व निदेशक के रूप में सेवानिवृत्त हुए थे और वे वाद 5 में वादियों के विशेषज्ञ साक्षी थे, ने कहा:

> "...पुरातत्व में उत्खनन में प्राप्त डेटा का प्रामाणिक स्रोतो और सामग्री के संदर्भ में व्याख्या करनी होती है यदि हमें उत्खनन रिपोर्ट में जो उल्लेख किया गया है, उसे दोहराना हो, **तो उत्खनन का उद्देश्य जो इतिहास का पुनर्निर्माण है**, संभव नहीं है.....
>
> (प्रभाव वर्धित)

(iii) जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में पुरातत्व विज्ञान के भूतपूर्व प्रोफेसर, **डॉ. शीरीन एफ रतनगर (PW 27)**, जो वाद 4 में वादियों के विशेषज्ञ साक्षी थे, ने कहा:

> "एक तथ्य का गठन ही विवादित हो सकता है। लेकिन यदि तथ्य सिद्ध हो जाता है तो दो पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा इस तथ्य पर दो राय हो सकती हैं...."

(iv) **डॉ. सुप्रिया वर्मा (PW 32)**, जो हैदराबाद विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान स्कूल में पुरातत्व के एसोसिएट प्रोफेसर थे, ने कहा:

> ".... जब पुरातत्ववेत्ताओं ने पुरातत्वीय सामग्री की खुदाई और खोज की, जिसमें मिट्टी के बर्तन और हड्डियां हो सकती हैं, और व्याख्या पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा उस संदर्भ के आधार पर किए गए हैं जिसमें ये पाए जाते हैं. आंकड़ा अपने लिए नहीं बोलता है। अनुमान पुरातत्व के कुछ सिद्धांतों और पद्धतियों के आधार पर किए जाते हैं....."

489. उत्तर से दक्षिण तक 17 पंक्तियों में प्रत्येक पंक्ति में 5 स्तंभ आधार के अस्तित्व के बारे में, आर. नागस्वामी (ओ. पी. डब्ल्यू. 17) ने कहा कि यह केवल एक अनुमान था क्योंकि सभी 85 स्तंभ आधार नहीं मिले थे। इसी

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तरह का बयान कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग में एक वरिष्ठ व्याख्याता डॉ. अशोक दत्ता (PW 31) ने दिया था। एएसआई की रिपोर्ट के आंकड़ा 23 (सममितीय आंकड़े) पर विचार करते हुए, उन्होंने उल्लेख किया कि यह विभिन्न सतह स्तरों पर नहीं था और इसे विशुद्ध रूप से अनुमान कहा जा सकता है। आर नागस्वामी (ओपीडब्ल्यू 17) और जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 20/5) ने विवादित स्थल पर एक बड़े हिंदू मंदिर के अस्तित्व के बारे में एएसआई रिपोर्ट के दृष्टिकोण का समर्थन किया। दूसरी ओर, डॉ. सुप्रिया वर्मा (PW 32) ने विवादित संरचना के नीचे संरचना के अस्तित्व के बारे में एएसआई की खोज से सहमति व्यक्त की , लेकिन व्याख्या से असहमत थे। इन बयानों पर यह कहने के लिए अवलंब लिया गया है कि पुरातत्वविद डेटा की व्याख्या पर असहमत हो सकते हैं और असहमत होते हैं क्योंकि क्षेत्र अनिवार्य रूप से अनुमानात्मक है।

490. विज्ञान के रूप में पुरातत्व बहुविधात्मक या अंतरविधात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। पुरातात्विक साक्ष्यों की प्रकृति पर विचार करते हुए, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ज्ञान की एक शाखा के रूप में पुरातत्व विज्ञान सीखने के विज्ञान, अनुभव के ज्ञान और व्याख्या की प्रक्रिया को रेखांकित करने वाले दृष्टि से चलता है। एक अनुशासन के रूप में, यह एक प्रशिक्षित दिमाग को पोषित करता है। यह इतिहास, समाजशास्त्र और मानव विज्ञान जैसे अन्य विषयों के साथ संक्रिया पर निर्भर करता है। यह एक कमजोरी नहीं बल्कि एक ताकत है। पुरातत्वविज्ञान में विज्ञान और कला दोनों शामिल हैं। एक विज्ञान के रूप में, यह वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के सिद्धांत पर आधारित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। एक कला के रूप में, यह एक ऐसे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जो वर्षों के दौरान ज्ञान के इतिहास पर आधारित होने की प्रतिबद्धता के माध्यम से प्राप्त होता है। एक अनुशासन के रूप में पुरातत्व को अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। पुरातत्वविज्ञान के मूल्य को उस तरीके से कम नहीं किया जा सकता है जिसे इसको कमजोर सबूत बताकर सुझाया गया है।

491. साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के ढांचे के भीतर पुरातात्विक साक्ष्य और सीपीसी के आदेश XXVI के नियम 10 ए के प्रावधानों के संदर्भ में अदालत–अधिकृत खुदाई पर विचार करते समय, फिर भी अदालत के लिए यह आवश्यक है कि वह इस विषय की शक्ति और सीमा दोनों को समझे। पुरातत्वविज्ञान कोई अपवाद नहीं है। एक विशिष्ट पुरातत्वविद् सर मोर्टिमर व्हीलर ने उस अनुभव को संक्षेप में प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने प्राप्त किया था, जिसका शीर्षक था " **धरती से पुरातत्व** " [283] । स्ट्रेटिग्राफी पर विचार करते हुए, सर मोर्टिमर ने उल्लेख किया है:

> "पूर्व का एक प्राचीन शहर कभी समतल नहीं होता। बहुत कम ही कोई शहर पूरी तरह से नष्ट हो जाता है और एक ही समय में और एक क्षितिज पर पूरी तरह से पुनर्निर्मित होता है। आम तौर पर, एक घर को फिर से बनाया जाता है या प्रतिस्थापित किया जाता है जैसा कि यह बताता है, या इसके मालिक की सनक पर। कुल मिलाकर यह नगर विभिन्न प्रकार के विनाश और निर्माण की स्थिति में निरंतर बना रहता है। व्यक्तिगत भवन स्थल अपने पड़ोसियों से ऊपर उठते हैं; शहर का आकार स्वयं ऊंचा होता है और एक पहाड़ी नुमा बन जाता है; इसकी ढलानों पर इमारतें अपने शिखर पर इमारतों के साथ समकालीन होती हैं। दरवाजे के नीचे 10 फीट की दूरी पर या दूसरे स्थान पर ठीक उसी तारीख का एक टूटा टुकड़ा हो सकता है? "

---

283 Mortimer Wheeler, Archaeology from the earth, Oxford: Clarendon Press (1954)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सतहों का उत्खनन अपने आप में एक जटिल कार्य है। बदले में निष्कर्षों की व्याख्या करने में कई स्तरों की जटिलताएं शामिल हैं। सर मोर्टिमर ने नोट किया है:

> "ठीक है, विभिन्न प्रकार के स्ट्रेटिग्राफिकल साक्ष्य के उदाहरण हैं: उन परतों की जो एक दूसरे के साथ समकालीन हैं, वे परतें जो अधिक या कम समय के अंतराल से अलग होती हैं, जो अटूट उत्तराधिकार में जमा हो गई हैं एक खंड का पढ़ना एक भाषा का पठन है जिसे केवल प्रदर्शन और अनुभव द्वारा सीखा जा सकता है। विद्यार्थी को परामर्श देने का शब्द। हालाँकि अभ्यास किया जाता है, बहुत जल्दबाजी में न पढ़ो। निर्णय करने से पहले अपने सबसे बड़े आलोचक बनो। और जहां भी संभव हो, अपने जांच को विद्यार्थियों, सहकर्मियों और पूर्ववर्तियों के साथ विचार–विमर्श करें। (एक व्यक्ति की गवाही कोई गवाही नहीं है; ऐसा बुद्धिमान वेल्श विधि–दाता हाइवेल डा का कहना है) विनम्र बनें. अनिर्दिष्ट की राय को अनदेखा न करें। सब लोग जितना जानते हैं उतना ही ज्ञानी जानते हैं।अहंकारी दिमाग की दीवारें पूरी तरह से तथ्यों, विचारों के साथ के साथ खुरच जाती हैं। इमर्सन ने ऐसा कहा, और वह सही था। यदि आप प्रश्न करने वाले लोगों के विचारों को स्वीकार नहीं करते हैं, तो भी प्रश्न पूछने का एक मात्र कार्य ही संयम और प्रेरणा है। "

सर मोर्टेमर की सावधानी विधि के लिए उतना ही लागू होगी जितना पुरातत्व के लिए: यह ऐसी बात है जिसे हम न्यायाधीशों के रूप में इन अपीलों निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अच्छी तरह से ध्यान में रखते हैं।

492. अपनी पुस्तक "द लॉजिक ऑफ साइंटिफिक डिस्कवरी"[284] में कार्ल पोपर एक दार्शनिक और वैज्ञानिक के कार्य को अलग करता है। पोपर ने लॉर्ड एक्टन को उद्धृत किया जब वह कहता है:

---

284 Karl R. Popper,The Logic of Scientific Discovery, Hutchinson & Co (1959)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"विज्ञान के व्यक्ति के लिए इसके इतिहास और खोज के तर्क से अधिक कुछ आवश्यक नहीं है.... जिस तरह से त्रुटि का पता लगाया जाता है, परिकल्पना, कल्पना का उपयोग, परीक्षण का तरीके का प्रयोग।"

विज्ञान के पूर्ण सत्य होने और पुरातत्व के बीच में जिस विभेद का निरूपण किया गया है, वह एक हद तक सार्वभौमिकता का नहीं है। फिर भी, अपनी शैली के अन्य विषयों के रूप में, पुरातत्व की प्रक्रिया उतना ही है जितना कि यह निगमन का है। पुरातत्वविद को प्राप्तियों से संबद्ध होना चाहिए जितना उसे मिलें। व्याख्या इसका हृदय है, हालांकि इसकी आत्मा नहीं। व्याख्याएँ भिन्न होती हैं और विशेषज्ञ असहमत होते हैं। जब कानून व्याख्या के एक कार्य को देखता है तो उसे त्रुटि और राय के भेदों को पहचानना चाहिए। पुरातत्व संबंधी निष्कर्ष अनेक व्याख्याओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। यह कुछ अंशों में पुरातत्ववेत्ता के अतीत के बोध का कार्य हो सकता है और अतीत के बारे में पुरातत्ववेत्ता क्या समझने का प्रयास करता है। परंपरा आधारित पुरातत्व से अतीत के बारे में तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। दूसरी ओर एक पुरातत्ववेत्ता अतीत के बारे में विश्वास को मान्य करने के लिए स्थापित हो सकता है। पुरातत्वविद अज्ञात लक्षणों को उजागर करने के लिए खुले दिमाग के साथ कार्य कर सकते हैं। अनुशासन के लिए अंतर्निहित दृष्टिकोण से निर्देशित, पुरातत्वविज्ञानी अपने स्वयं के मूल के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस कार्य को वहन करेगा। जब तक हम अनुशासन की सीमाओं को समझते हैं, हम चरम स्थितियों से बच सकते हैं और अक्सर आभासी माध्य की खोज कर सकते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

493. सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा ने इस न्यायालय के निर्णयों पर अवलंब लिया, जो हस्तलेख विशेषज्ञों की रिपोर्टों को 'आमतौर पर एक कमजोर चरित्र' का मानते हैं, जिससे उन्हें बहुत अधिक वजन देने के लिए सावधान रहना पड़ता है। इस प्रकार के साक्ष्य को "अनिर्णायक" अभिनिर्धारित किया गया है और इसलिए ऐसी कोई बात जिससे सकारात्मक साक्ष्य प्राप्त होना चाहिए । इसका कारण **श्री श्री श्री किशोर चंद्र सिंह देव बनाम बाबू गणेश प्रसाद भगत**[285] के मामले में बताया गया था कि हस्तलिपि विशेषज्ञों के निष्कर्ष केवल लिखावट की तुलना में निकाले जाते हैं। सिद्धांत को **श्रीमती भगवान कौर बनाम श्री महाराज कृष्ण शर्मा**[286] में दोहराया गया था। **मुरारी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य**[287] में, इस न्यायालय ने यह माना कि केवल लिखावट विशेषज्ञ की राय पर दोष सिद्ध करना असुरक्षित होगा। सिद्धांत तैयार करते समय, इस न्यायालय ने हालांकि उल्लेख किया कि विशेषज्ञ साक्ष्य के लिए निर्धारित किया जाने वाला वजन विज्ञान की प्रकृति पर आधारित है जिस पर यह आधारित होता है। जहां प्रश्न में विज्ञान में सत्यता और उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण के आवश्यक तत्व हैं, विशेषज्ञ साक्ष्य को उस सीमा तक कुछ सम्मान की आवश्यकता होगी। न्यायालय ने धारित किया:

> "4... विज्ञान जितना अधिक विकसित और अधिक पूर्ण होता है, गलत राय की संभावना कम होती है और यदि विज्ञान कम विकसित और अपूर्ण है तो उसका विलोम होता है। उंगली के निशान की पहचान का विज्ञान पूर्णता के पास पहुंच गया है और एक गलत राय का जोखिम व्यावहारिक रूप से अस्तित्वहीन है। दूसरी ओर, हस्तलेखन की पहचान का विज्ञान लगभग इतना सही नहीं है और इसलिए जोखिम अधिक है...."

---

285 AIR 1954 SC 316
286 (1973) 4 SCC 46
287 (1980) 1 SCC 704

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस प्रकार, उपरोक्त उद्धरण में, अदालत ने उंगलियों के निशान और लिखावट विशेषज्ञों की राय की पहचान के बीच अंतर किया। इसलिए, विशेषज्ञ साक्ष्य को जो वजन दिया जाना चाहिए, वह अंतर्निहित विज्ञान की प्रकृति पर आधारित है जिसके आधार पर विशेषज्ञ अपनी राय बनाता करता है। **महाराष्ट्र राज्य बनाम सुखदेव सिंह**[288] में लिखावट की पहचान के विज्ञान की अपूर्ण प्रकृति पर इस न्यायालय की टिप्पणी:

> "29..... लेकिन चूंकि तुलना द्वारा लिखावट की पहचान का विज्ञान अचूक नहीं है, इसलिए विवेक की मांग है कि इस तरह की राय पर कार्रवाई करने से पहले अदालत को दिये गये लेखन के लेखक के बारे में पूरी तरह से संतुष्ट होना चाहिए जिसे तुलना के लिए एकमात्र आधार बनाया गया है और अदालत को लिखावट विशेषज्ञ की क्षमता और विश्वसनीयता के बारे में भी पूरी तरह से संतुष्ट होना चाहिए...
> यह सच है कि, कानून का कोई नियम नहीं है कि हस्तलेख विशेषज्ञ के साक्ष्य पर तब तक कार्रवाई नहीं की जा सकती है जब तक कि पर्याप्त रूप से पुष्टि नहीं की जाती है, लेकिन अदालतें इस तरह के राय सबूतों पर निहित निर्भरता रखने में धीमी रही हैं, विज्ञान की अपूर्ण प्रकृति के कारण लिखावट की पहचान और इसकी स्वीकृत आशंकाओं के कारण...।"

[इस संदर्भ में देखें: **शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी**[289] , **एस. पी.एस. राठौर बनाम सीबीआई**[290] और **चेन्नाडी जलपति रेड्डी बनाम बादाम प्रताप रेड्डी**[291]]

---

288 (1992) 3 SCC 700
289 AIR 1964 SC 529
290 (2017) 5 SCC 817
291 (2019) SCC Online SC 1098

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अरोड़ा द्वारा पुरातात्विक साक्ष्यों का लिखावट विश्लेषण के साथ तुलना करने का प्रयास अपने तर्क में त्रुटिपूर्ण है। इस तर्क को रेखांकित करना एक पुरातत्वविज्ञानी के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और विशेषज्ञता की एक गलत समझ है। खुदाई के संचालन में एएसआई द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

प्रक्रिया

494. उच्च न्यायालय ने खुदाई के रिकॉर्ड के संरक्षण के लिए विस्तृत निर्देश जारी किए। 5 मार्च, 2003 को उच्च न्यायालय के आदेश के बाद महानिदेशक द्वारा चौदह सदस्यीय एएसआई टीम का गठन किया गया। 11 मार्च 2003 को, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि विरोधी पक्षकारों या उनके अधिवक्ता की उपस्थिति में साइट और खाइयों के लेआउट का एक सामान्य सर्वेक्षण किया जाएगा। वीडियोग्राफी का आदेश दिया गया था और परिणाम एक सीलबंद कवर में रखा जाना था। बरामद की गई सामग्रियों को साइट के समीप स्थित एक इमारत में 'लॉक और सील' के तहत संरक्षित करने के लिए भी निर्देशित किया गया था। खुदाई के कार्य की आवधिक प्रगति रिपोर्ट उच्च न्यायालय को प्रस्तुत की गई थी। उच्च न्यायालय को समय–समय पर उन खाई,जो खोदी गई थीं, खुदाई की प्रकृति और मिली सामग्री के बारे में सूचित किया गया था। 26 मार्च 2003 को, उच्च न्यायालय ने प्राप्त वस्तुओं को दर्ज करने वाले एक रजिस्टर को बनाए रखने के लिए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एएसआई टीम को विशिष्ट निर्देश जारी किए, जिसे पक्षकारों की उपस्थिति में सील किया जाना था। निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए थे:

"(i) एएसआई टीम अपने स्वयं के रजिस्टर में (प्राप्तियों के संबंध में) खाई के मीटर/फीट में गहराई, जहां यह पाया जाता है, नोट करेगा। यह अपनी व्याख्या के अनुसार स्तर की परत को भी नोट कर सकता है।
(ii) विरोधी पक्षकारों या उनके अधिवक्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त किए जा सकते हैं।
(iii) रजिस्टर में आगे प्राप्तियों की प्रकृति अर्थात् अस्थियां और चमकीला बर्तन आदि विनिर्दिष्ट होना चाहिए
(iv) यह प्राप्ति पक्षकारों/अधिवक्ता की उपस्थिति में सील किया जाएगा और विरोधी पक्षकार या उसके अधिवक्ता के हस्ताक्षर भी अभिप्राप्त किए जाएंगे जो उस स्थान पर उपस्थित हों।
(v) यदि प्राप्तियों की प्रकृति निश्चित नहीं है तो तदनुसार एक नोट बनाया जा सकता है और जब इसे खोला जाएगा,यदि न्यायालय चाहे तो इसकी प्रकृति सत्यापित की जा सकती है।

रंगीन और काला सफेद दोनो चित्र लेने का निर्देश था। एएसआई की टीम द्वारा दिन–प्रतिदिन किए गए काम का एक रजिस्टर तैयार करने का निर्देश दिया गया था। पार्टियों को उत्खनन खाइयों के काम का निरीक्षण करने की भी अनुमति थी। उच्च न्यायालय ने धारित किया:

"228. यह श्री जिलानी द्वारा सुझाया गया है, जो सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक़्फ़्स के विद्वत अधिवक्ता हैं, कि एक समय में दो से अधिक खाइयों का उत्खनन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि खाई में काम पूरा होने के बाद पहले से ही इस कारण से खुदाई की जा रही है कि पक्ष या उनके अधिवक्ता एक समय में खाइयों की खुदाई का निरीक्षण करने में सक्षम नहीं हो सके। श्री बीआर मणि, अधीक्षण पुरातत्व विशेषज्ञ और टीम लीडर ने दिनांक 22. 3. 2003 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें कहा गया है कि इसने क्षेत्र 4 x 4 मीटर के विभिन्न खाइयों को तराश कर 0. 5 मीटर बल्क छोड़ दिया है। यदि खाई एक दूसरे से संलग्न हैं, तो यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विरोधी पक्षकारों या उनके अधिवक्ता और उनके नामितों द्वारा देखा जा सकता है। हमने प्रत्येक विरोधी पक्षकार को अपने अधिवक्ता के साथ–साथ अपने नाम निर्देशितियों (एक बार एक नाम निर्देशिती) के साथ देखने की अनुज्ञा दी है परिणाम यह है कि प्रत्येक विरोधी पक्षकार के लिए तीन पर्यवेक्षक होते हैं। यदि दूरी बहुत अधिक है और उनमें से किसी के द्वारा एक और खाई का निरीक्षण करना मुश्किल है, तो वे वैध रूप से इस संबंध में शिकायत उठा सकते हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि एएसआई टीम को खुदाई के मामले में पक्षकारो और उनके अधिवक्ता का विश्वास सुनिश्चित करना चाहिए। हालांकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि हमने तेजी से खुदाई के लिए निर्देशित किया है और इस उद्देश्य के लिए यदि आवश्यक हो और बिना पक्षकारों के विश्वास को खोए हुए एएसआई टीम द्वारा दो से अधिक खाइयों को भी रखा जा सकता है।"

एक अन्य सुझाव यह था कि एएसआई की टीम में और श्रमिकों को रखने में मुस्लिम समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उच्च न्यायालय द्वारा यह भी निर्देश दिया गया था कि दोनों समुदायों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व एएसआई टीम के गठन और साइट पर प्रतिनियुक्त श्रम में दिया जाना चाहिए। पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए, कार्य की देखरेख के लिए अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पद के उत्तर प्रदेश उच्च न्यायिक सेवा के दो न्यायिक अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति की गई थी। खुदाई की प्रक्रिया पक्षकारों की उपस्थिति में की गई थी और निष्पक्षता और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों द्वारा शासित थी। इसे अभिलेखों के संरक्षण, उत्खनन प्रक्रिया की वीडियोग्राफी, तस्वीरों के संरक्षण और कार्य की देखरेख के उद्देश्य से दो न्यायिक अधिकारियों की उपस्थिति के निर्देशन में किया गया था। खुदाई के काम के पूरा होने के बाद लेकिन अंतिम रिपोर्ट तैयार करने से पहले, उच्च न्यायालय द्वारा 8 अगस्त 2003 को आगे के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्देश जारी किए गए थे ताकि सभी खाइयों को बरकरार रखा जा सके ताकि अध्ययन को पूरा करने और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने में एएसआई टीम को सुविधा हो।

495. एएसआई की रिपोर्ट में दस अध्याय हैं जिनमें शामिल हैं:

अध्याय I परिचय

अध्याय II कटिंग

अध्याय III स्ट्रेटिग्राफी और कालानुक्रम

अध्याय IV संरचना

अध्याय V मिट्टी के बर्तन

अध्याय VI वास्तुशास्त्रीय हिस्से

अध्याय मृदभांड आकृतियां

अध्याय VIII उत्कीर्णन, सील, सीलिंग्स और सिक्के।

अध्याय IX विविध वस्तुएं

अध्याय X परिणामों का सारांश

रिपोर्ट के परिशिष्ट I से IV में निम्नलिखित जानकारी शामिल है:

परिशिष्ट I अयोध्या उत्खनन से प्राप्त चारकोल के नमूने की कार्बन 14 तिथि निर्धारण

परिशिष्ट IIA अयोध्या में विभिन्न खाइयों से एकत्र की गई प्लास्टर नमूनों का रासायनिक विश्लेषण

परिशिष्ट IIB अयोध्या में विभिन्न खाइयों से एकत्र की गई सतह का रासायनिक विश्लेषण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिशिष्ट III उत्खनित कलाकृतियों का स्व–स्थानिक रासायनिक उपचार एवं संरक्षण

परिशिष्ट IV माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के विशेष पूर्ण पीठ, लखनऊ के निर्देशानुसार डेटा–फॉर्म पर सूचना।

496. एएसआई ने 22 अगस्त 2003 को अपनी अंतिम रिपोर्ट फील्ड नोटबुक, श्रृंखला, रजिस्टर, साइट नोटबुक और एक लैपटॉप हार्ड डिस्क के साथ और कॉम्पैक्ट डिस्क के साथ प्रस्तुत की। एएसआई द्वारा अपनी रिपोर्ट के साथ जो रिकॉर्ड प्रस्तुत किया गया था, उसे न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले के पैरा 241 में सारणीबद्ध किया गया है। एएसआई की रिपोर्ट का आकलन करने में, इसलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि खुदाई के दौरान एक संरचित प्रक्रिया का पालन किया गया था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उत्खनन की प्रक्रिया को इलेक्ट्रॉनिक और पारंपरिक दोनों रूपों में प्रलेखित किया गया था। खुदाई और जो प्राप्त हुआ है वह तथ्य की बात है। निस्संदेह, पुरातत्ववेत्ता को उन आंकड़ों से संबंधित होना चाहिए जो उत्खनन से एक संदर्भ में उभरते हैं। डेटा से निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया एक अनुशासन के रूप में पुरातत्व का एक अनिवार्य तत्व है, लेकिन इस कार्य को अनुमानात्मक और काल्पनिक के रूप में अस्वीकार करना विषय और अंतर्निहित प्रक्रिया दोनों के प्रति कृतघ्नता होगी। सुश्री अरोड़ा द्वारा एएसआई टीम की स्वतंत्रता पर सवाल उठाने का कोई निवेदन नहीं किया गया है। इस पृष्ठभूमि में, ऑर्डर XXVI नियम 10 (2) के प्रावधानों के तहत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एएसआई टीम से किसी को भी पक्षकारों द्वारा न बुलाने का तथ्य नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

ईदगाह का प्रतिवाद

497. वाद 5 में वादियों का मामला यह है कि विवादित स्थल के नीचे विक्रमादित्य के युग में एक प्राचीन मंदिर था, जिसे बाबर की सेना के कमांडर मीर बाकी के द्वारा नष्ट कर दिया गया था और जिस पर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था। आरोप है कि मस्जिद का निर्माण करने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री को नष्ट किए गए मंदिर से लिया गया था, जिसमें काले कासोटी पत्थर के स्तंभ भी शामिल थे।

अपने लिखित बयान में, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने इस बात से इनकार किया कि बाबरी मस्जिद स्थल पर विक्रमादित्य के युग से संबंधित कोई भी मंदिर अस्तित्व में था। इसने इस बात से भी इनकार किया कि अंतर्निहित मंदिर में उपयोग की जाने वाली सामग्री का उपयोग करके एक मंदिर के स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया था। लिखित बयान में, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने पैरा 24 (बी) में भी कहा है कि:

> "बादशाह बाबर एक सुन्नी मुसलमान था और खाली जमीन, जिस पर बाबरी मस्जिद बनी थी, उसके राज्य क्षेत्र में थी और किसी और से सम्बन्धित थी. "

इसलिए इसने इस बात से इनकार किया कि विवादित स्थल के नीचे कोई भी अंतर्निहित मंदिर मौजूद था या मस्जिद के निर्माण के लिए अंतर्निहित मंदिर को नष्ट कर दिया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

498. प्रारंभ में, सूट 5 में वादी के जवाब में आग्रह किया गया था कि कोई अंतर्निहित संरचना नहीं थी जिसे मस्जिद के निर्माण के लिए ध्वस्त कर दिया गया था। एएसआई की रिपोर्ट में निष्कर्षों को देखकर , सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने रुख बदल दिया और यह दावा करने की मांग की कि खुदाई के दौरान जो संरचना सामने आई थी, वह एक ईदगाह या कान्ती मस्जिद थी। यह वास्तव में, ऐसा मामला नहीं था जो दलीलों में बनाया गया था और सीधे सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के मामले के विपरीत था कि मस्जिद का निर्माण एक मौजूदा मंदिर की साइट पर नहीं किया गया था, लेकिन खाली जमीन पर बनाया गया था। अंतर्निहित उत्खनन में एक ईदगाह के अस्तित्व का संदर्भ पुरातत्वविदों के गवाहों–डॉ. जया मेनन (PW 29), डॉ. सुप्रिया वर्मा (PW 32) और आर सी ठकन (PW 30) के माध्यम से स्थापित करने की मांग की गई थी।

वाद 5 में वादी की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सी एस वैद्यनाथन, ने आग्रह किया कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा निर्मित गवाहों में से कोई भी एक ईदगाह के अस्तित्व में नहीं था। उच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया:

> ''3809. प्रारंभ में वादी (वाद–4) द्वारा स्थापित मामला यह था कि विवाद में भवन का निर्माण उस स्थान पर किया गया था जहाँ (वहाँ) न तो कोई हिंदू धार्मिक संरचना मौजूद थी और न ही (क) विवाद की जगह (क) और पूजा की जगह मौजूद थी... हालांकि, जब उत्खनन की कार्यवाही आगे बढ़ी, तो वादी (वाद–4) के दृष्टिकोण में एक चिह्नित परिवर्तन स्पष्ट हो गया। कुछ पुरातत्वविदों, जिन्होंने बाद में वादी (सूट–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

4) के पक्ष में भी बयान किया... के द्वारा एक नया मामला स्थापित करने की कोशिश की गई थी कि विवादित इमारत के नीचे एक इस्लामी धार्मिक संरचना मौजूद है या एक इस्लामी धार्मिक संरचना मौजूद है जब विवादित इमारत का निर्माण किया गया था। सुझाव यह था कि यह या तो एक ईदगाह या कान्ती मस्जिद हो सकती है, जिसमें पश्चिमी तरफ केवल एक लंबी दीवार का निर्माण एक निकेत के साथ किया गया था। यह सर्वसम्मति मुस्लिम पक्षकारों के आठ विशेषज्ञों के बीच प्रतीत होती है, विवादित स्थल के नीचे एक संरचना के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए। उपरोक्त दृष्टिकोण कि पहले की संरचना एक इस्लामिक धार्मिक संरचना थी, विवादित संरचना के नीचे विवादित स्थल पर एक गैर–धार्मिक संरचना की संभावना को बाहर करता है। यह हमारी जांच को इस प्रश्न तक सीमित कर देता है कि क्या ऐसी संरचना इस्लामी धार्मिक संरचना हो सकती है या गैर–इस्लामी संरचना अर्थात हिन्दू धार्मिक संरचना हो सकती है "

बचाव जिसे लिया गया था वह यह थी कि पूर्व–विद्यमान संरचना का इस्लामी उद्भव था। एक बार जब इस बचाव को इस मुद्दे को संकुचित कर दिया गया था कि क्या पूर्व स्थापित संरचना एक इस्लामी या गैर–इस्लामी मूल की संरचना था। एएसआई की रिपोर्ट में निष्कर्ष शामिल किया गया था कि विवादित संरचना के नीचें एक हिंदू मंदिर था और इस मत की शुद्धता का परीक्षण किया जा रहा था।

499. उत्खनन के दौरान, 28 दीवारों का पता लगाया गया जैसा कि रिपोर्ट के आकृति 3क में दर्शाया गया है इसमें से, 1 से 15 तक की दीवारें विवादित संरचना थीं या समकालीन थीं। दिवाल सं. 16 से 28 विवादित संरचना से पहले की है और नीचे पाई गई थी। एएसआई की रिपोर्ट में पाया गया कि 50 मीटर की लंबाई के साथ दीवार 16 की चौड़ाई 1. 77 मीटर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थी। इसके निचले ईंट के क्रम में से दस मूल स्वरूप में थे, जबकि ऊपरी छह क्रम बाद में निर्माण के अनुवर्ती चरण में जोड़े गए थे:

> "दीवार 16 की मौजूदा लंबाई लगभग 50 मीटर है, जिसमें इसका अस्पष्ट मध्य भाग 1. 77 मीटर चौड़ा है। इसके दस निचले ईंट क्रम मौलिक हैं और इसके निर्माण के प्रथम चरण से संबंधित हैं, लेकिन ऊपरी छह क्रम जैसा कि गड्ढो E6 में दिखाई देता है, E7 और E8 बाद की तारीख में जोड़े जाते हैं–निर्माण के दूसरे चरण के दौरान चार पाठ्यक्रम और शीर्ष दो क्रम जब विवादित संरचना के बाहर इसकी दक्षिणी लंबाई का उपयोग बाद के निर्माणों में संरचना के साथ नई संरचना के लिए दीवार की चौड़ाई को कम करके निर्माण किया गया था। यह भी देखा गया है कि दीवार 16 के प्रथम चरण को भीतरी ओर चूना प्लास्टर से प्लास्टर किया गया है, जबकि बाहरी ओर के प्लास्टर को उसके उत्थान के दूसरे चरण में प्रदान किया गया था। दूसरे चरण में दीवार के दोनों मुखों पर अंतरालों पर कुछ वर्गाकार गुहाएं हैं, जिनका उपयोग दीवार पर सुदृढीकरण प्रदान करने के लिए किया जा सकता है. ...

वाल 16 और 17 एक समान उत्तर–दक्षिण संरेखण में पाए गए:

> "..... 16 और 17 की दीवारें ZE1 और ZF1 के गड्ढो के उत्तर–दक्षिण अभिविन्यास में लगभग समान संरेखण पर पाई गईं।

दीवार 17 एक ईंट की दीवार है जो उत्तरी क्षेत्र में चार क्रमों और दक्षिणी क्षेत्र में छह क्रमों के साथ 1. 86 मीटर चौड़ी थी। दीवार 17 की लंबाई दीवार 16 के समान थी। दीवाल 17 निचले स्तर तक जाती हैः

> ''दीवार 17 एक ईंट की दीवार है जो उत्तरी क्षेत्र (पी एल 50) में चार क्रमों और दक्षिणी क्षेत्र में छह क्रमों के साथ 1. 86 मीटर चौड़ी थी। यह दीवार 16 के समान लंबाई का पाया गया था, हालांकि प्रमुख दिशा में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> इसके अभिविन्यास में थोड़ा विचलन था। इस प्रकार, यह उत्तरी क्षेत्र में लगभग समानांतर दीवार 16 की तुलना में निचले स्तर पर जाती है और दक्षिणी क्षेत्र में दीवार 16 से नीचे आता है जैसा कि गड्ढे डी 7 में देखा गया है जहां उत्तरी भाग में 16 से नीचे 0.74 मीटर का अनुमान लगाया गया है, और दक्षिणी भाग में यह 16 से नीचे 1.07 मीटर की अनुमानित है, जिसके शीर्ष पर पत्थर के ब्लॉक प्रदान किए गए हैं और इसके पतली परत (पीएल 51) में भी पुर्न नियोजित है।, संभवतः दीवार 16 के निर्माण के समय इसकी नींव के रूप कार्य करने के लिए। ईंट के चूरे की एक मोटी मंजिल (समतल) 52) उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों के एक बड़े क्षेत्र में अलग–अलग मोटाई के साथ विस्तार दीवार 17 से संबंधित पाया गया।"

एएसआई की रिपोर्ट में भीतरी दीवारों के अस्तित्व को अंकित किया गया है जो उत्तरी और दक्षिणी दोनों क्षेत्रों में दीवार 16 से जुड़ी हुई हैं। उत्तरी क्षेत्र में भीतरी दीवार (18 ए) पूर्व–पश्चिम दिशा में 15 मीटर की लंबाई तक फैली हुई है। इसी प्रकार उत्खनन में दो समानांतर दीवारें (दीवारें 18 सी और डी) पाई गई थीं। तदनुसार, इन निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि यह मामला कि दीवार 16 एक एकल ईदगाह की दीवार थी, पर विश्वास किया गया है और सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड का दावा है कि विवादित स्थल के नीचे एक इस्लामिक संरचना मौजूद थी, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, मस्जिद के नीचे एक ईदगाह के अस्तित्व के संबंध में उपधारित करेगा कि मस्जिद को एक ध्वस्त ईदगाह की नींव पर बनाया गया था। एक पूर्व की परिकल्पना के अलावा, प्राप्त हुई वस्तुओं की प्रकृति ने दावे को खारिज कर दिया। इदगाह रक्षा इसलिए सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की दलीलों के विपरीत थी। बचाव पक्ष का प्रारंभिक मामले में मस्जिद खाली जमीन पर बनाई गई थी, को नजरअदांज करने का प्रयास किया गया था। अंतर्निहित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संरचना एक इस्लामी मूल की नहीं थी। संवितरित संरचना तथा पिल्लार बस्तियां

500. एएसआई की रिपोर्ट से पता चलता है कि विवादित संरचना या संरचना 3, संरचना 4 पर सीधे टिकी हुई थी जो पहले का निर्माण है। संरचना 4 में पश्चिम में 50 मीटर लंबी दीवार(दीवार 16) और पूर्व में पचास स्तंभ मिले हैं, जो सतह 2 या संरचना के अंतिम चरण के सतह से जुड़ा हुआ है। रिपोर्ट में उल्लेख हैः

> "शीर्ष पर रखा गया एक वर्गाकार बालुकाश्म खंड और उसके चारों दिशाओं में ऑर्थोस्टॉट प्रदान की गई, समकालीन सतह 2, स्तंभ आधार की प्रथमदृष्टया प्रकृति थी, जो मुख्य रूप से उस पर खड़े स्तंभ के लिए आधार के रूप में कार्य करती थी। उनकी नींव गोलाकार या वर्गाकार थी या मिट्टी के मोर्टार में रखे गए ईंट–पत्थर के क्रमों के आकार में अनियमित थी, उनमें से अधिकांश सतह 4 पर टिके हुए थे, जिसके शीर्ष पर चूने के मोर्टार में सैंडस्टोन या कंकरीट ब्लॉक प्रदान किए गए थे, इन ब्लॉकों को भी ईंट से घेर लिया गया था, और कहीं सैंडस्टोन चिप्स का उपयोग वांछित ऊंचाई और स्तर प्राप्त करने के लिए किया गया था।"

स्तंभ आधारों की सत्रह पंक्तियों का उत्तर से दक्षिण तक विस्तार पता चला, प्रत्येक पंक्ति में पांच स्तंभ आधारों है। उठाए गए मंच पर अस्थायी संरचना के नीचे केंद्रीय भाग में स्तंभ के आधार उच्च न्यायालय द्वारा लगाए गए क्षेत्र प्रतिबंधों के कारण स्थित नहीं हो सकते थे। पचास उत्खनन स्तंभ आधारों में से बारह पूरी तरह से उजागर हुए थे, पैंतीस आंशिक रूप से उजागर हुए थे, जबकि तीन का खंडों में पता लगाया जा सकता था। रिपोर्ट में अंकित है कि विभिन्न परतों के साथ स्तंभ के ठिकानों के संघ के बारे में विवाद और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उनके लोड सहन क्षमता के संबंध के आधार के मूल रूप के उजागर होने के बाद आराम से टिकाया गया था:

> "..... वर्तमान खुदाई ने विवादित संरचना से पूर्व विद्यमान संरचना के शीर्ष फर्श के साथ उनके संबंध सहित ईंटों के आधार पर व्यवस्थित और उचित रीति से स्थापित किए गए कंकरीट और पत्थर के खंडों के मूल रूप को उजागर करके विवाद को अपास्त किया गया है।"

छियालिस स्तंभ आधार सतह की सं. तीन से संबंधित हैं और बारहवीं शताब्दी ए. डी. से पीछे की अवधि से संबंधित हैं, जबकि चार स्तंभ आधार सतह नंबर चार से संबंधित हैं जो ग्यारहवीं शताब्दी ए. डी. में युग के स्तंभ आधारों की सत्रह पंक्तियों का निर्माण उत्तर–दक्षिण ईंट दीवार (दीवार 16) के साथ किया गया था। एएसआई की रिपोर्ट में स्तंभ के आधारों की व्यवस्था से यह निष्कर्ष निकाला गया कि स्तंभित संरचना का केंद्रीय भाग महत्वपूर्ण था और वास्तुकला योजना में इसका विशेष उपचार किया गया था। दक्षिण क्षेत्र में गड्ढे एफ 7 में चार कोनों पर फूलों के अकंन वाले स्तंभ आधार सं.32 पर सुशोभित अष्टभुजाकार पाषाण खंड को 20 वीं शताब्दी ए. डी. से संबंधित साइट पर एक अनूठा उदाहरण बताया गया है क्योंकि यह सारनाथ में पाए गए लोगों के तुलनीय है। एएसआई की रिपोर्ट में इन टिप्पणियों की पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय द्वारा पाये गये निष्कर्ष इस प्रकार थे:

> "3904. विशेष रूप से पृष्ठ 54 पर रिपोर्ट के परिशीलन से पता चलता है कि सभी 50 दर्शित स्तंभ आधार, सतह 2 से 1200 ए.डी. तक जुड़े हुए हैं और उनमें से अधिकांश सतह सं. 4 में टिकें है जो सबसे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> शुरुआती मंजिल है। रिपोर्ट के पृष्ठ 69 पर संदर्भित कार्बन डेटिंग रिपोर्ट यह भी साबित करती है कि एक गड्ढे जेडएच–1 में सतह 2 और 3 के बीच अंकित की गई तारीख 900–1300 AD के बीच है, जो प्रथम दृष्टया यह स्पष्ट करता है कि, 1300 AD के बाद सतह 2 नहीं बनाई गई थी और 900 AD से पहले नहीं बनाई गई थी, जबकि सतह 3 को 900 AD से पहले बनाया गया था। रिपोर्ट से यह भी स्पष्ट है कि खोजे गए सभी स्तंभ आधार विवादित संरचना के सतह से पहले मौजूदा सतह के साथ जुड़े हुए हैं। स्तम्भ आधार को उसी खाई से सम्बन्धित बताया जाता है, अर्थात ज़ेडएच–1 सतह के साथ–साथ जो सतह 2/3 के संगठन और सी 14 के साथ स्तंभ आधार के साथ तारीख के साथ सतह 2 और 3 (पृष्ठ सं. 47 के स्तंभ आधार के पृष्ठ सं.28) के बीच की पुष्टि करता है। जीआरपी सर्वेक्षण में विसंगति के रूप में जेडएच –1 के समान स्तंभ आधार की भविष्यवाणी की गई थी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि स्तंभ ठिकानों की नींव का समर्थन करने वाली मंजिल 4 सातवीं ए (रिपोर्ट के पृष्ठ 42 और प्रकृति 23 और प्लेट 35) की अवधि से संबंधित सबसे व्यापक मंजिल थी। VIIA का समय 12 वीं शताब्दी की शुरुआत है।"

एएसआई की रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला गया है कि विवादित संरचना के नीचे एक विशाल अंतर्निहित संरचना है।

वृत्ताकार वेदिका

501. एएसआई की रिपोर्ट में संरचना 5 के रूप में निर्मित ईंट की वेदिका के सामने एक पूर्व की उपस्थिति का उल्लेख है (तस्वीरों के प्लेट 59 और 60 के अनुरूप)। पूर्व में परिपत्र संरचना का एक आयताकार प्रक्षेपण होता है और इसमें एक कटाक्ष या छिद्र होता है जो एएसआई के अनुसार पानी निकालने के लिए एक प्रणाल है। यह ईंट के मंदिर मध्य प्रदेश में रीवा के निकट चन्द्रहे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और मैसोन के शिव मंदिरों के समान है, जो 950 ए. डी. से संबंधित है और एक विष्णु मंदिर और एक अन्य बिना मूर्ती का मंदिर कुरारी में है और सूर्य मंदिर में जो फतेहपुर जिले के तुरौली स्थित है। एएसआई ने एक निष्कर्ष निकाला है कि शैली के आधार पर, वृत्ताकार वेदिका की पूर्व युगीन दसवीं शताब्दी ए.डी. की है।

उपरोक्त निष्कर्षों के संदर्भ में, श्री सी वैद्यनाथन ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की अधीनता को विस्थापित करने के लिए विशेषज्ञ गवाहों की गवाही पर अवलंम्ब लिया है कि उनके द्वारा उत्पादित ये गवाह एएसआई रिपोर्ट का समर्थन नहीं करते हैं। विशेषज्ञ गवाहों के बयान से निम्नलिखित उद्धरण को ध्यान में रखना होगा:

(i) सूरजभान (PW 16) –

> मंदिर के अवशेषों के बारे में मैं एएसआई की रिपोर्ट से सहमत हूं कि ये अवशेष शायद किसी मंदिर के हों।

(ii) डी मंडल (PW 24) –

> "…. दीवार सं. 17 में एक सजावटी पत्थर जमा दिया गया है। यह सजावटी पत्थर फूलों की मॉटिफ है जिसका उपयोग हिंदू मंदिरों में किया जाता है।
>
> यह कहना सही है कि निर्माण कार्य मुगलकाल से पहले ही विवादित स्थल पर किए गए थे. पुरातत्त्वविद् के रूप में मैं उत्खनन के दौरान विवादित संरचना के नीचे की संरचनाओं की खोज को स्वीकार करता हूं। "

(iii) सुप्रिया वर्मा (PW 32) –

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"…. मैं संरचना के अस्तित्व के बारे में एएसआई की खोज से सहमत हूं, लेकिन मैं एएसआई द्वारा प्राप्त व्याख्या से असहमत हूं। इसके अलावा, यह कहना सही है कि विवादित संरचना का निर्माण खाली भूमि पर नहीं किया गया था। "

(iv) डॉ अशोक दत्ता (PW 31) –

"... मैं एएसआई की राय से सहमत हूं कि विवादित संरचना के नीचे दीवारों और सतह के रूप में कई संरचनाएं हैं। वॉल सं. 1 से 15 विवादित संरचना से संबंधित हो सकता है। वॉल सं. 16 के बाद विवादित संरचना के निर्माण से पहले एक अवधि से संबंधित दीवारें हैं. "

वृत्ताकार वेदिका से संबंधित, उच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया:

"3937. चित्र में दिखाया गया उत्थान (एएसआई रिपोर्ट के चित्र 17) यह सुझाव देते हैं कि यह ढांचा एक उठे हुए मंच अर्थात् अधिष्ठान पर बनाया गया था. ब्यालमुख या नाली, उत्तरी दिशा की तरफ प्रदान की गई थी। संरचना 9 वीं–10 वीं ईस्वी के शताब्दी तक का हो सकता है (एएसआई ने इस स्तर से सी–14 निर्धारण किया और अकंन तिथि 900 ए.डी. और 1030 ए.डी. के बीच है)।

3938. यह एक स्वतंत्र लघु वेदिका था। वास्तुकला की विशेषताओं से पता चलता है कि यह एक शिव वेदिका है।

3939. यह अकल्पनीय है कि शिव मंदिर की इन स्पष्ट विशेषताओं के बावजूद, आपत्तिकर्ता इसे मुस्लिम कब्र के समान ही पहचान रहे हैं।

3940. दूसरे, यह मकबरे के लिए बहुत छोटी संरचना है, यह अंदर से केवल 4. 4 वर्ग फीट है। न तो यह अपने आंतरिक भाग में एक कब्र को समायोजित कर सकता था, न ही इसकी पश्चिमी दीवार पर एक क़िब्लाह–मिहराब; क़िब्लाह मिहराब सल्तनत काल (1192–1526 ई.) के दौरान मकबरे–संरचना का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा था, जैसा कि पूरे उत्तरी भारत में कई उदाहरणों द्वारा चित्रित किया गया है।

3941. तीसरा, मकबरे पर गुंबद बनाने के लिए आवश्यक मेहराब का कोई निशान नहीं है। इसमें कोई हुक–शाफ्ट नहीं है और मेहराब के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रैखिक दबाव का कोई संरचनात्मक निशान नहीं है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि मेहराब की उप–संरचना को चार कोनों के किनारों पर बड़े पैमाने पर बनाया गया है, रैखिक दबाव को रोकने के लिए। आश्चर्य है कि यदि यह बिना किसी गुम्बद के, और बिना किसी कब्र के भी हो?

3942. इस प्रकार एक ओर इस संरचना का आयाम मकबरे के लिए बहुत छोटा है और दूसरी ओर व्यालमुख कभी कब्रों में नहीं होता , जबकि शिवलिंग पर डाले गए पानी को बाहर निकालने के लिए यह शिव मंदिर का एक अभिन्न अंग होता था।

3943. वेदिका एक पवित्र स्थान है जहां पूजा की जाती है। यह एक ऐसी संरचना है जिसमें पवित्रता होती है। इनकार के लिए मना करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। "इस संरचना को एक वेदिका मानने का कोई साक्ष्य नहीं" और " एक कोरी कल्पना,बिना किसी स्पष्ट आधार के अनुमान", इस तरह की टिप्पणियों में तकनीकी कौशल की कमी है और स्पष्ट रूप से तार्किक सोच की कमी है। ये स्वयं केवल "स्पष्ट आधार" की कमी के तर्क हैं। ये और कई तरह के तर्क वादी के 'शुतुरमुर्गी रवैये' को दर्शाते हैं।

3944. एक संरचना को उसके आकार और/या उसके उपयोग द्वारा पहचाना जाता है जिसके इसे प्रस्तुत किया जाता या जिस कार्य के लिए इसे प्रदर्शन करने के लिए कहा जाता था। यह वृत्ताकार संरचना एक अच्छी तरह से परिभाषित 'परनाला' (अपक्षारण तरल पदार्थ को बाहर निकालने के लिए पानी का निकास) के साथ पाया गया था. परनाला को अच्छी तरह से नाली के रूप में निरूपित किया जा सकता था, लेकिन वह क्षेत्र जहां से यह जारी कर रहा था वह केवल 40 x 60 मीटर था (जिसमें पूजा की जाने वाली मूर्ती को स्थाईत्व प्रदान करने के लिए एक चतुर्भुजाकार खोखला चैम्बर और पूर्व मे एक् छोटा सो प्रवेश द्वार सहित) था, जिसका उपयोग स्नान कक्ष के लिए या रसोई के लिए नहीं किया जा सकता था, कुछ विकल्प जहां पानी को बाहर निकालने की आवश्यकता होती है, इस प्रकार, एकमात्र वैध स्पष्टीकरण यह था कि यह एक मंदिर का 'परनाला' है, केवल एक सहायक है और एक मुख्य वेदिका के केंद्रीय/मुख्य देवता को पकड़ने वाला नहीं है।

3945. वृत्ताकार वेदिका को दीवार 19 ए और अन्य पर टिका हुआ पाया गया है, यह एकल तथ्य 'वृत्ताकार वेदिका' को उक्त दीवारों के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> समकालीन नहीं बनाता है, क्योंकि ' मौजूदा दीवारें' के लिए कार्य स्तर बहुत उच्च है, और केवल नींव में है और बाकी मौजूदा दीवारें के हिस्सों में है, जिन्हें वृत्ताकार वेदिका की नींव के रूप में शामिल किया गया है, ये दीवारें निश्चित रूप से वृत्ताकार वेदिका को नींव प्रदान करने के लिए नहीं बनाई गई हैं। जाहिर है, जब परिपत्र श्राइन का निर्माण किया गया, तो 19 ए और अन्य सभी को जमीन के नीचे दफनाया गया और उसी स्तर तक वृत्ताकार वेदिका की नींव पड़ी।"

वृत्ताकार वेदिका के संबंध में एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसे ध्यान में रखना चाहिए। यह वृत्ताकार वेदिका के ऊपर स्तंभ आधार की उपस्थिति है। एएसआई की रिपोर्ट के लिए महत्व को अभिनिर्धारित करते समय इस पहलू को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

जैसा कि चूने सुरखी के उपयोग के संबंध में, विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा द्वारा आग्रह किया जाता है कि यह इस्लामिक संरचनाओं में प्रयुक्त एक विशिष्ट सामग्री है। इस बात को स्वीकार करते हुए, श्री सी वैद्यनाथन ने सूरजभान (PW 16) के बयान पर अवलंम्ब लिया, जिन्होंने कहा:

> यह कहना सही है कि ईसा की तीसरी शताब्दी में तक्षशिला और पाकिस्तान में कुषाण काल में चूने के पानी का उपयोग किया गया था...

इसी तरह, डॉ. जया मेनन (PW 29) ने भी कहा कि:

"..... चूने के मोर्टार का उपयोग निश्चित रूप से नवपाषाण काल के समय से उपयोग में है।"

इसलिए चूने सुरखी के उपयोग पर और विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तुकला का भाग

502. अयोध्या में विवादित स्थल की पुरातात्विक खुदाई के फलस्वरूप स्तंभ, भित्तिस्तंभ[292], टूटे हुए दरवाजे, चौखट, लिंटल, कोष्ठक आदि वास्तुशिल्पी अंशों की बरामदगी हुई। ये स्तंभ की सतह से लेकर गड्ढो में काफी गहराई तक के क्षेत्रों से टूटे हुए टुकड़ों के रूप में पुनः प्राप्त किए गए थे।

एएसआई की रिपोर्ट का अध्याय VI जो वास्तुशिल्प अंशों से संबंधित है, बताता है कि प्राप्तियों में, उल्लेखनीय हैं:

> " कुछ अक्षुण्ण वास्तुकला हिस्से जैसे अमलका (प्लेट 81, चित्र 59) स्तंभ, जिसमें घट्टा–पल्लव आधार है, जिसमें भार वाहक के रूप में बौने और कीर्तिमुख (प्लेट 82–83, चित्र 59) हैं, भी प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा बहुत से वास्तुकला हिस्से भी हैं जिन्हें गहरी नक्काशीदार पर्ण–अंकनों से सजाया गया है। यह पैटर्न अलग है और स्टेंसिल के काम (प्लेट 86–87) जैसा दिखता है। यह कहा जा सकता है कि समान सजावटी डिजाइनों वाले विभिन्न वास्तुशिल्प हिस्से प्रमुख ईंट संरचनाओं (दीवार 16) (अध्याय IV–संरचना) में नींव के रूप में प्रयुक्त पाये गये हैं ।
>
> इस स्थल के पूर्वोक्त स्तंभ और अन्य सजावटी वास्तु अंश जैसे कि टूटी हुई चौखट का टुकड़ा, अर्ध भित्तिस्तंभ (प्लेट 85) के साथ एक अष्टभुजाकार शाफ्ट का टुकड़ा (प्लेट 84), श्रीवत्स अंकन (प्लेट 88) के साथ एक वर्गाकार स्लैब, कमल के मध्यमूर्ति अंकन का टुकड़ा (प्लेट 89–90) सशक्त रूप से मंदिर वास्तुशिल्प के साथ अपने संबंध को बताते हैं। शैली के अनुसार, सामान्य रूप से इन वास्तुकला अंशों को सामान्यतः और स्तंभों को विशेष रूप से दसवीं –बारहवीं शताब्दी ई. के समय में रखा जा सकता है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कुछ वास्तुकला अंश (प्लेट 92–94) हैं, जो शैली के आधार

---

292 भित्तिस्तम्भ शास्त्रीय वास्तुकला में दीवार की और दर्शित एक उथले घाट या आयताकार रूप का है ,जो एक क्रम मे होता है और जिस पर छज्जा होता है। - माइकल क्लार्क, द कंसीज़ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ़ आर्ट टर्म्स, आक्सफोर्ड पेपरबुक रिफरेंस, ओयूपी आक्सफोर्ड,210, पृष्ठ 191,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर स्पष्ट रूप से इस्लामिक वास्तुकला से जोड़ा जा सकता है जो सोलहवीं शताब्दी ईस्वी के बाद से संबंधित हो सकता है।

वास्तुकला अंशों के अतिरिक्त आलिंगन मुद्रा में बैठे दैवीय युगल की एक अत्यधिक क्षतिग्रस्कत मूर्ति भी मिली है। वर्तमान अवशेष में कमर, जांघ और पैर (प्लेट 235) है।"

503. सुनवाई के दौरान, हमें उन प्लेटों को देखने का भी लाभ मिला जिसमें वास्तुकला के चित्र वर्णित हैं। सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्लेट 235 में दर्शित प्रापित का वर्णन करने वाली 'दैवीय युगल' के प्रयोग किये जाने की आलोचना की है। अधिवक्ता की आलोचना निराधार नहीं है। प्लेट में दर्शित मूर्ति (ए.एस.आई. की रिपोर्ट के अनुसार) बहुत ही विकृत हैं। ए.एस.आई. की टीम के अनुसार, मूर्तिकला के जो अवशेष मिलें हैं उसमें कपल के कमर, जांघ और पैर दर्शित हैं। यह पुरातात्विक अनुभव की कल्पनाशील अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन इसे "दैवीय जोड़ा" कहना कल्पना की सीमा से परे है। इसे विचारित न कर, ए.एस.आई. टीम ने अन्य सभी निष्कर्षों के संचयी विश्लेषण कर यह अनुमान लगाया कि शैलीगत रूप से ये वास्तुकला संबंधी निष्कर्ष और स्तंभ विशेष रूप से दसवीं से बारहवीं शताब्दी के समय के हैं और मंदिर वास्तुकला के समान हैं। यह अनुमान, जैसा कि उपरोक्त निष्कर्षों से प्रकट होता है, आलिंगन मुद्रा में प्राप्त युगल की मूर्ति से अलग है। अतः उपरोक्त मूर्तिकला को छोड़ दिया जाए तब भी किसी विशेषज्ञ के लिए उपरोक्त निष्कर्ष निकालने का उचित आधार मौजूद है।

खुदाई के दौरान ए.एस.आई. को एक अमलका मिला, जो आम तौर पर एक खंडित या गोलाकार पत्थर की डिस्क है, जिसमें किनारे पर दरारें हैं और हिंदू मंदिरों के'शिखर' या मुख्य स्तम्भ[293] पर है। आमलक कमल भी हो सकता है और नीचे बैठे देवता का प्रतीक है। ए.एस.आई. को एक घाटपल्व मोतिफ भी मिला जिसका संबंध देवता को समारोहों पर दिये जाने वाले भेंट से है और इसका प्रयोग गर्भगृह को सजाने के प्रतीक के रूप में किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

504. सुश्री अरोड़ा ने अपने कथनों करने के समर्थन में जयंती प्रसाद (डी.डब्ल्यू. 20/5) और डॉ. सुप्रिया वर्मा (पी.डब्ल्यू 32) की गवाही का अवलम्ब लिये जाने की मांग कर कथन किया कि वास्तुशिल्प के यह टुकड़े हिंदू धार्मिक संरचनाओं के अलावा बौद्ध या जैन संरचनाओं से भी संबंधित हो सकती हैं। डॉ. सुप्रिया वर्मा कथन करती हैं कि हो सकता है यह महलों का हिस्सा या इस्लामी ढांचे हो। दो गवाहों की गवाही के निष्कर्ष नीचे दिए गए हैं:

'(अ) श्री जयंती प्रसाद श्रीवास्तव (डी.डब्ल्यू. 20/5), एक विशेषज्ञ साक्षी जिन्होंने ए.एस.आई. रिपोर्ट का समर्थन किया है:

"....जैन धर्म में बड़े मंदिर पाए जाते हैं, लेकिन वास्तुकला संबंधी प्रणाली वही है ....।"

(ख) डॉ. सुप्रिया वर्मा (PW 32) ने जो गवाही दी वह इस प्रकार है:

"मुझे लगता है, स्पष्ट रूप से यह कहना बहुत मुश्किल है कि ए.एस.आई. के कतिपय निष्कर्ष का संबंध हिंदू धार्मिक संरचनाओं से संबंधित हैं क्योंकि हो सकता है यह अवशेष महलों, बौद्ध संरचनाओं, जैन संरचनाओं या इस्लामी ढांचे का हिस्सा हो....।

बौद्ध या जैन परंपराओं के साथ इसका संभावित संबंध नकारा नहीं जा सकता है। वास्तव में, पुरातत्वीय या ऐतिहासिक सामग्री का आँकलन करने के लिए किसी व्यक्ति को अनैतिक दृष्टिकोण से बचना चाहिए। वर्तमान मामले में खुदाई वास्तव में सभ्यता, संस्कृतियों और परंपराओं के संगम को सुझाती हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इन गवाहियों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, यह मुद्दा इसी संबंध में है कि क्या यह ए.एस.आई. रिपोर्ट में निहित समग्र निष्कर्ष श्रेय नहीं प्रदान करेगा। यह कथन कि कुछ टुकड़े इस्लामी संरचना के हैं, वास्तव में ए.एस.आई. की रिपोर्ट में दर्शित किया गया है। यह रिपोर्ट मुख्यतः उन टुकड़ों की बात करती हैं, जिन्हें प्लेट 92–94 द्वारा दर्शाया गया है, जो स्पष्ट रूप से शैलीगत आधार पर इस्लामिक वास्तुकला से जुड़े हो सकते हैं। अतः ए.एस.आई. की रिपोर्ट ने खुदाई से प्राप्त उन वास्तुशिल्प को चित्रित किया जो सोलहवीं शताब्दी के इस्लामिक वास्तुकला से संबंधित हैं। डी.डब्ल्यू. 20/5 और पी.डब्ल्यू 32 की राय से यह विदित होता है कि खुदायी से प्राप्त सामाग्री किसी महल, बौद्ध अथवा जैन संरचनाओं के अनुरूप भी हो सकती है, महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि वह टुकड़े गैर –इस्लामी मूल के हैं। (उन विशिष्ट कलाकृतियों को छोड़कर जिनकी पहचान उपरोक्त उल्लिखित ए.एस.आई. द्वारा इस्लामी मूल के रूप में की गयी है।)

जब यह स्थिति उत्पन्न होती है तब ए.एस.आई. रिपोर्ट को उसकी संपूर्णता में पढ़कर उसका निर्वचन करना होता है। विशेषज्ञ टीम द्वारा निकाले गये निष्कर्षों को अस्वीकार करना अनुचित होगा, जिसने उच्च न्यायालय के आदेशों के तहत उत्खनन किया है और खुदाई से प्राप्त सामाग्रियों अलग – अलग दृष्टिकोणों से सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है। फिर भी रिपोर्ट को संदर्भ से बिना भटके निर्वचन के मामलों पर उत्पन्न होने वाले वास्तविक विसंगतियों को अस्वीकार कर पढ़ा जाना चाहिए।

ए.एस.आई. ने निष्कर्षों के नियमन से पूर्व खुदाई की गई सामग्रियों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया गया था। खुदाई से प्राप्त अलग अलग

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सामाग्रियों के संबंध में वैयक्तिक दृष्टिकोण अलग हो सकता है। हालांकि, न्यायालय को जिस परीक्षण का प्रयोग किया वह यह है कि क्या संभावनाओं की प्रबलता पर, ए.एस.आई. द्वारा निकाले गए निष्कर्ष उचित हैं।

505. हालांकि उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के दौरान ए.एस.आई. पर पूर्वाग्रह और दुराशय का आरोप लगाकर विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री अरोड़ा ने विशेष रूप से कथन किया है कि वर्तमान अपीलों में इस आशय का कोई मामला नहीं उठाया जा रहा है। वास्तव में, जब श्री वैद्यनाथन ने ए.एस.आई. द्वारा किए गए कार्य के संबंध में सुश्री अरोड़ा पर पूर्वाग्रह से ग्रसित या दुर्भावनापूर्ण कथन करने का आरोप लगाया तो सुश्री अरोड़ा ने हस्तक्षेप कर यह कहा कि उन्होंने उस आशय से कोई कथन नहीं किया है।

ए.एस.आई. की रिपोर्ट की एक आलोचना यह की जा सकती है कि न तो हड्डियों की बरामदगी का कोई विश्लेषण और न ही मिट्टी के बर्तनों का थर्मोल्यूमिनिसीन कराया गया था। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह कहा कि यदि उसको नियमित परत से प्राप्त किया गया होता तो हड्डियों के विश्लेषण से कुछ जानकारी प्राप्त होती। हालांकि, इस मामले में, उसे गड्ढे से प्राप्त किया गया है और इसलिए इसे "अर्थहीन और महत्वहीन" ठहरा दिया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि लखनऊ स्थित संस्थान में मिट्टी के बर्तनों के थर्मोल्यूमिसीन डेटिंग की सुविधा उपलब्ध नहीं थी और चूंकि कार्बन ^{14} डेटिंग के लिए चारकोल नमूने उपलब्ध थे, इसलिए मिट्टी के बर्तन का आगे विश्लेषण नहीं किया गया था। इन कारणों से परे, जो कमी है वह इनती पर्याप्त नहीं जिससे पूर्णरूपेण रिपोर्ट को खारिज किया जा सके।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्ष्य के मानक

506. न्यायालय जब दीवानी मामलों का विचारण करता है तो वह सम्भावनाओं की प्रबलता से शासित साक्ष्यों के मानक को लागू करता है। इस मानक को कभी–कभी सम्भावनाओं का संतुलन या साक्ष्यों की प्रबलता भी कहा जाता है। पिपसन ऑन इविडेंस संक्षेप में मानक सूत्रित करता हैं: यदि, साक्ष्य ऐसा है कि न्यायालय यह कह सकती है कि हमें यह नहीं लगता है कि यह अधिक संभावित है, तो साक्ष्य दिया जाना चाहिए, लेकिन यदि संभावनाएं समान हैं, तो तब साक्ष्य देने की कोई आवश्यकता नहीं है। **मिलर बनाम पेंशन मामलों के मंत्री**[295] के मामले में न्यायमूर्ति लॉर्ड डेनिंग (मास्टर ऑफ रोल्स के रूप में) ने संतुलन या संभावनाओं के प्रबलताओं के सिद्धांतों की निम्नवत व्याख्या की है:

> "(1).... इसमें निश्चितता तक पहुंचने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इसे एक उच्च स्तर की संभावना ले जाना चाहिए। संदेह से परे साक्ष्य का मतलब संदेह की छाया से परे साक्ष्य नहीं है। यदि न्यायालय न्याय के पथ से हटकर काल्पनिक संभावनाओं को स्वीकार करता तो यह समुदाय की रक्षा करने में असफल हो जाता। यदि किसी व्यक्ति के विरूद्ध साक्ष्य इतना मजबूत है जिसका संबंध उसके पक्ष में केवल एक दूरस्थ संभावना को छोड़ना हो जिसे इस वाक्य के साथ खारिज किया जा सकता है, "निःसंदेह यह हो सकता है लेकिन इसकी संभावना बहुत कम नहीं ।" यह मामला युक्तियुक्त संदेह से परे साबित हो जाता है, लेकिन उस तरीके का कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा।
>
> **(प्रभाव वर्धित)**

विधि मानती है कि प्रबल संभावनाओं के मानक के भीतर, अलग तरह की संभावना हो सकती है। इसको डेनिंग महोदन **बेटर बनाम बेटर** [296]

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एल. जे. के मामले में संक्षेप में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जो इस प्रकार था जो इस प्रकार हैः

"इसलिए दीवानी मामलों में भी, मामले को प्रबल संभावनाओं के साथ साबित किया जाना चाहिए, लेकिन वहां भी उन मानकों के तहत उसकी उच्च श्रेणी होनी चाहिए। वह उच्च श्रेणी उस विषय वस्तु पर निर्भर करती है। "

(प्रभाव वर्धित)

साक्ष्य अधिनियम की की धारा 3 में पद 'साबित हुआ' की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है:

'साबित'–कोई तथ्य साबित हुआ कहा जा सकता जब न्यायालय अपने समक्ष मामलों पर विचार करने के बाद उसके अस्तित्व को माने या उसका विचार हो कि उसका अस्तित्व इतना अतिसंभाव्य हो सामान्य प्रज्ञा वाला व्यक्ति मामले की तथ्यों और परिस्थितियों में उसका अस्तित्व में होना स्वीकार करे।'

किसी तथ्य का प्रमाण इसके अस्तित्व की संभावना पर निर्भर करता है। न्यायालय का निष्कर्ष निम्नलिखित पर आधारित होना चाहिए:

क. एक प्रज्ञावान व्यक्ति जो इसे तथ्य के अस्तित्व पर विश्वास कर कार्य करता है; और

ख. किसी विशेष मामले के संदर्भ और परिस्थितियों में।

इसका विश्लेषण कर न्यायमूर्ति वाई. वी. चंद्रचूड़ (तब के विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति) **डॉ. एन. जी. दास्ताने बनाम एस. दास्ताने**[297] के मामले में धारित किया:

"किसी तथ्य के अस्तित्व के बारे में विश्वास इस प्रकार संभावनाओं के संतुलन पर स्थापित किया जा सकता है। तथ्य अथवा परिस्थिति से

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संबंधित परस्पर विरोधी संभावनाओं का सामना कर रहा प्रज्ञावान व्यक्ति इस अनुमान पर कार्य करेगा कि उसका अस्तित्व है, एक विवेकपूर्ण व्यक्ति के रूप में, इसलिए अदालत इस परीक्षण को यह पता लगाने के लिए करता है कि क्या विवाद्य तथ्य साबित हुआ कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया में पहला चरण में संभावनाओं को तय करना होता है, दूसरा चरण में उसे तौलना होता है, भले ही दोनों परस्पर जुड़े हों। पहले चरण में असंभवता का तथा दूसरे चरण में अनुचितता निराकरण किया जाता है। संभावनाओं की विस्तृत श्रृंखला के भीतर न्यायालय के पास अक्सर एक कठिन विकल्प होता है, लेकिन यह वह विकल्प है जो अंततः निर्धारित करता है कि संभावनाओं का पूर्वसर्ग कहाँ निहित है। पक्षकारों की स्थिति को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण विषयों की उतनी बारीकी से जांच की जानी चाहिए जितनी बारीकी से जांच कर वचन पर कोई किसी को ऋण देता है।:

"किसी विषय की प्रकृति और गंभीरता आवश्यक रूप से विषय की सत्यता की उचित संतुष्टि प्राप्त करने के तरीके का निर्धारिण करती है (राइट बनाम राइट, (1948) 77 सी.एल.आर. 191, 210 न्यायमूर्ति डिक्सन के अनुसार); अथवा जैसा कि लॉर्ड डेनिंग द्वारा कहा गया है, '**संभावना का स्तर विषय–वस्तु पर निर्भर करता है।**' अपराध गंभीर होता है, सबूत उतना स्पष्ट होना चाहिए (ब्लिथ बनाम ब्लिथ (1966) 1 ए.ई.आर. 524, 536) किन्तु चाहे यह विषय क्रूरता या प्रोनोट पर ऋण देने से संबंधित हो, परीक्षण यह लागू करता है कि क्या संभावनाओं के पूर्वसर्ग पर प्रासंगिक तथ्य साबित हुआ है। आम तौर पर दीवानी मामलों में यह मानक साक्ष्य होता है जिससे यह पता लगाया जाता है कि क्या सबूत का भार उन्मोचित हो गया है।'

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायालय ने माना कि संभावनाओं की प्रबल मानक के तहत, संभावना का स्तर अन्तर्निहित विषय वस्तु पर आधारित होता है। **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण गोपाल** [298] के मामले में न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया:

"26. संभाव्यता की अवधारणा और इसके स्तर को, स्पष्ट रूप से गणितीय इकाइयों के रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता है जैसे कि इस तरह की कितनी इकाइयाँ मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करती हैं। संभाव्यता का स्तर और साक्ष्य के वजन के मूल्यांकन में एक अचूक विषयपरक तत्व शामिल होता है। मामले के अन्तिम विश्लेषण के समय फोरेंसिक प्रायिकता सामान्य प्रज्ञा पर निर्भर होना चाहिए, और अंततः न्यायाधीश के सहज बोध पर निर्भर होना चाहिए।
'

(प्रभाव वर्धित)

507. ए.एस.आई. की रिपोर्ट के आधार पर मा. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने तथ्य के निम्नलिखित निष्कर्षों का विचार किया:

"4055. अंतिम निष्कर्ष, जिसे इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त पूरी चर्चा और सामग्री से यथोचित रूप से निकाला जा सकता है, यह है:
(i) विवादित संरचना एक अक्षत, खाली, निर्वासित, खुली भूमि पर नहीं उठाई गई थी;
(ii) वहां पर ऐसी संरचना विद्यमान थी जो विवादित स्थल पर बनी संरचना से बहुत बड़ी नहीं थी तब भी उसके समान या बड़ी रही होगी;
(iii) विवादित संरचना के निर्माता को पूर्ववर्ती संरचना, उसकी शक्ति, क्षमता, दीवारों के आकार आदि का विवरण पता था और इसलिए बिना किसी सुधार या संशोधन के दीवारों आदि का उपयोग करने में संकोच नहीं किया.
(iv) पूर्ववर्ती ढांचा की प्रकृति धार्मिक और गैर–इस्लामी भी थी....

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) पूर्ववर्ती ढ़ाचें में विवादित संरचना को खड़ा करने के लिए पत्थर, स्तंभ, ईंटें, जैसी सामाग्री का प्रयोग किया गया था; और
(vi) उत्खनन के दौरान निकली चीजें काफी हद तक गैर–इस्लामिक प्रकृति की हैं, जैसे कि वह हिंदू धार्मिक स्थलों से संबंधित है, भले ही हम उन चीजों को अन्य धर्म से जुड़ी हुई वस्तु मानें। इसके साथ कोई ऐसी भी कलाकृति इत्यादि वहां नहीं जिसका प्रयोग इस्लामिक धार्मिक स्थलों पर होता है।"

मा. न्यायमूर्ति ने एस. यू. खान ने ए.एस.आई. की रिपोर्ट पर कोई भरोसा नहीं जताया। जिन आधारों पर न्यायाधीश उस निष्कर्ष पर पहुंचें वह विशिष्ट हैं। प्रथम, विद्वान न्यायाधीश ने पाया कि दसवीं शताब्दी से विवादित संरचना के निर्माण तक संरचनात्मक चरणों में निरंतरता के साक्ष्य मौजूद थे जो सीधे तौर पर दलीलों, गजटों, और इतिहास की पुस्तकों के विरोध में है। इस सर्वव्यापी निष्कर्ष का कोई तथ्यात्मक आधार नहीं है। खुदाई का उद्देश्य यह निर्धारित करने के लिए न्यायालय को यह मूल्यांकन करने के लिए सक्षम बनाना था कि क्या पूर्व–मौजूदा मंदिर स्थल पर विवादित संरचना का निर्माण किया गया था। क्या वह ऐसा मामला था कि विक्रमादित्य द्वारा मंदिर के निर्माण के उपरान्त और मस्जिद के निर्माण तक किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य विवादित स्थल के भीतर किया गया था जिसके संबंध में कोई निष्कर्ण उस स्थल में खुदाई के उपरान्त ही लगाया जा सकता है।

दूसरा कारण यह था कि यदि मस्जिद के निर्माण के लिए मंदिर को ध्वस्त कर दिया जाता तो मंदिर का मूल ढांचा " धरती के भीतर न जाता।" पुनः यह अनुमान शुद्ध है। तब विद्वान न्यायाधीश ने इस आधार पर वास्तुशिल्प टुकड़ों को नकार दिया कि और कहा ऐसा केवल प्राकृतिक आपदा में होता है जहां ऐसी सामग्री 'जमीन के अंदर नीचे चली जाती है' या किसी ऐसी स्थिति में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होता है जहां नष्ट इमारत सदियों के बाद जमीन के नीचे दफन हो जाती है। न्यायाधीश ने यह अवलोकन किया कि यह जरूरी नहीं है कि मंदिर के नींव में कोई अपेक्षित चीज मिले या ऐसी चीज मिले जिससे किसी प्रथा का होना दर्शित हो, अपितु वहां पर कुछ ऐसी चीजें मिलनी चाहिए जिनसे मंदिर की मूल प्रकृति का पता चले।

तृतीय विद्वान न्यायाधीश, न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने ए.एस.आई. रिपोर्ट के निष्कर्षों पर भरोसा किया है।

508. एएसआई की रिपोर्ट पर न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे उपरोक्त स्वीकृति योग्य हैं। एएसआई रिपोर्ट में निहित सामग्री में पर्याप्त आधार निम्नलिखित निष्कर्षों के लिए है:

(i) खाली जमीन पर बाबरी मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था;

(ii) उत्खनन विवादित ढाँचे के नीचे अंतर्निहित ढाँचे की उपस्थिति का संकेत करता है;

(iii) अंतर्निहित ढाँचा कम से कम बराबर था, यदि विवादित ढाँचे की तुलना में बड़े आयाम नहीं थे;

(iv) स्तंभ के आधारों की उपस्थिति के साथ जुड़े अंतर्निहित ढाँचे की दीवारों की खुदाई, विवादित ढाँचे के अंतर्निहित ढाँचे की उपस्थिति का एएसआई के निष्कर्षों का समर्थन करती है;

(v) अंतर्निहित ढाँचा इस्लामिक मूल की नहीं थी;

(vi) विवादित ढाँचे की नींव अंतर्निहित ढाँचे की दीवारों पर टिकी हुई है; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) वास्तुकला के टुकड़े सहित कलाकृतियाँ, जो खुदाई के दौरान प्राप्त हुए हैं वह अलग गैर–इस्लामिक मूल का है। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से, कुछ कलाकृतियों का प्रयोग बौद्ध या जैन मूल की संरचना में भी किया जा सकता था, लेकिन अंतर्निहित ढाँचे के इस्लामिक धार्मिक प्रकृति होने का कोई प्रमाण नहीं है। एएसआई ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह यह है कि अंतर्निहित ढाँचे की प्रकृति और प्राप्तियाँ जो शैलीगत आधार पर की गई हैं वह मंदिर संरचना के अस्तित्व को बारहवीं शताब्दी में वापस लाने का सुझाव देती है। यह निष्कर्ष साक्ष्य द्वारा अनुसमर्थित न कहकर और संभावनाओं के मानक से परे कहकर रद्द नहीं किया जा सकता जो कि सिविल विचारण को शासित करता है।

509. यह कहते हुए हमें निम्नलिखित कैविएट के साथ एएसआई की रिपोर्ट भी पढ़नी चाहिए:

(i) यद्यपि उत्खनन से एक वृत्ताकार मंदिर के अस्तित्व का पता चला है, किंतु कल्पित रूप से सातवीं से नवीं शताब्दी ए. डी. तक एक शिव मंदिर कक्ष है, किंतु अंतर्निहित संरचना बारहवीं शताब्दी ए. डी. से संबंधित है स्तंभों वाले वृत्ताकार मंदिर और स्तंभ के आधार वाली आधारभूत संरचना तीन से पांच शताब्दियों के बीच की दो भिन्न समयावधि के हैं.

(ii) कोई विशिष्ट निष्कर्ष नहीं है कि अंतर्निहित संरचना भगवान राम को समर्पित एक मंदिर था; और

(iii) यह महत्वपूर्ण है कि एएसाऐ ने इस बात पर विशेष रूप से विचार नहीं किया है कि विवादित संरचना के निर्माण के लिए एक मंदिर को ध्वस्त किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गया था, हालांकि यह रिपोर्ट से उभरा है कि विवादित संरचना का निर्माण अंतर्निहित संरचना की नींव और सामग्री के साइट पर और उपयोग किया गया था.

विध्वंस का अनुत्तरित प्रश्न

510. एएसआई की रिपोर्ट की इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह इस प्रश्न का उत्तर देने में विफल रहता है कि क्या किसी मस्जिद के विवादित ढांचे का निर्माण स्थल पर पूर्व से मौजूद मंदिर के विध्वंस पर किया गया था।

उच्च न्यायालय ने न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल की निम्नलिखित टिप्पणियों में इन आपत्ति पर विचार किया:

> "3990. हमारे विचार में, एएसआई ने यह स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज न करके ठीक किया है कि क्या कोई विध्वंस हुआ था या नहीं जबकि किसी इमारत का निर्माण किया गया और वह भी सैकड़ों साल पहले। यह पता लगाना कभी–कभी मुश्किल हो सकता है कि किन परिस्थितियों में भवन का निर्माण किया गया और क्या पहले की इमारत अपने दम पर या प्राकृतिक शक्तियों के कारण ढह गई थी या इसके नुकसान के लिए इच्छुक कुछ व्यक्तियों के कारण । एएसआई द्वारा इस बात का पर्याप्त संकेत दिया गया है कि विवादित इमारत की अपनी आधारशिला नहीं थी, बल्कि यह मौजूद दीवारों पर बनायी गयी थी। यदि बाद की इमारत के निर्माण से पहले कोई इमारत मौजूद नहीं होती, तो बनाने वाली इसकी ताकत और नई संरचना के लोड को वहन करने की इसकी क्षमता को जाने बिना पूर्ववर्ती इमारत की नींव का उपयोग न कर पाता । विवादित इमारत की सतह पहले की इमारत की सतह पर थी। कई स्तंभ आधारों का अस्तित्व सभी एक पर्याप्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बड़ी संरचना के पूर्व अस्तित्व को दर्शाता है, अगर विवादित संरचना से बड़ी नहीं तो उससे कम भी नहीं। ”

उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि विवादित ढाँचे की सतह पूर्व के भवन की सतह से ठीक ऊपर स्थित था। एएसआई की रिपोर्ट ने कहा है कि विवादित ढाँचे की स्वयं की कोई नींव नहीं थी और इसे मौजूदा दीवारों पर उठाया गया था। इसके अलावा, स्तंभ आधारों के अस्तित्व का उपयोग एक बड़े विवादित ढाँचे को बनाए रखने के लिए किया गया है, जिस पर विवादित ढाँचे का निर्माण किया गया था।

उच्च न्यायालय ने एएसआई की अक्षमता को एक विशिष्ट निष्कर्ष में आने के लिए उचित ठहराया कि क्या मस्जिद निर्माण के लिए हिंदू धार्मिक मूल की एक पूर्ववर्ती ढाँचे को ध्वस्त कर दिया गया था। उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि जब कई सौ साल पहले एक संरचना का निर्माण किया गया हो तो यह किसी भी निश्चितता के साथ निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि यह अंतर्निहित ढाँचा जिसकी नींव पर टिकी हुई है वह प्राकृतिक कारणों से ध्वस्त हो गई है अथवा क्या मस्जिद के ढाँचे को रास्ता देने के लिए ढाँचे को ध्वस्त किया गया था। यह संकेत करेगा कि एक अंतर्निहित ढाँचे के खंडहरों का अस्तित्व अपने आप में यह अनुमान लगाने का कारण नहीं है कि एक नवीन ढाँचे के निर्माण के लिए ढाँचे को ध्वस्त कर दिया गया था जो इसकी नींव पर टिकी हुई है। एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में एएसआई एक विशिष्ट निष्कर्ष को अभिलिखित करने से परहेज करता है कि क्या मस्जिद के निर्माण के उद्देश्य से अंतर्निहित ढाँचे को ध्वस्त कर दिया गया था। यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मानते हुए कि कई सौ वर्ष बाद विध्वंस के संबंध में एक अनुमान लगाया जा सकता था कि एएसआई को स्पष्ट रूप से यह बताने के लिए कोई साक्ष्य नहीं मिला कि मस्जिद निर्माण के उद्देश्य से ढांचा गिराया गया था। एएसआई द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट इस पहलू पर चुप है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने संकेत दिया कि दो परिकल्पनाओं में से एक हो सकता है: या तो यह कि प्राकृतिक शक्तियों के कारण अंतर्निहित ढाँचे का विध्वंस हो गया था या इसके विध्वंस का कारण इसकी नींव पर एक मस्जिद बनाने की प्रक्रिया के हिस्से के रूप में मनुष्यों का हस्तक्षेप था। यद्यपि, एएसआई ने विशिष्ट निष्कर्ष देने का उपक्रम नहीं किया और उच्च न्यायालय को यह लगता है कि चूंकि मस्जिद के निर्माण के लिए तत्कालीन ढांचे की नींव का उपयोग किया गया था इसलिए मस्जिद का निर्माण करने वाले को मस्जिद का निर्माण करते समय तत्कालीन ढाँचे की प्रकृति और उसकी नींव के विषय में पता होता। यद्यपि यह एक **अनुमान** है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा यह विचार प्राप्त है कि यह एक विशिष्ट निष्कर्ष नहीं है जिसे एएसआई अपनी रिपोर्ट के दौरान वापस कर चुका है।

511. परिणामस्वरूप, जब एएसआई रिपोर्ट को इस निर्णय में इसके स्पष्ट मूल्य के संदर्भ के संतुलन में रखा जाएगा तो न्यायालय के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह रिपोर्ट में यह छानबीन करे कि क्या पाया गया है और क्या अनुत्तरित छोड़ा गया है।

एएसआई की रिपोर्ट में पूर्व से मौजूद ढाँचे का अस्तित्व पाया गया है। रिपोर्ट में स्तंभों की 17 पंक्तियों (कुल 85 में से 50 पंक्तियों को भागों या पूरे हिस्सों में बताया गया था) का अनुमान किया गया है। यह रिपोर्ट स्थल पर पाए गए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वास्तुकला के टुकड़े और ढाँचे की प्रकृति के आधार पर निष्कर्ष निकालती है कि यह एक हिंदू धार्मिक मूल का था। रिपोर्ट में इस्लामिक मूल के अंतर्निहित ढांचे की संभावना (सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के तर्कों द्वारा) को खारिज किया गया है। लेकिन एएसआई की रिपोर्ट ने निर्देश के एक महत्वपूर्ण हिस्से को अनुत्तरित कर दिया है जिससे इसे बनाया गया था, अर्थात् इस बात का निर्धारण करते हुए कि क्या मस्जिद के निर्माण के लिए किसी हिंदू मंदिर को ध्वस्त किया गया था। एएसआई के इस बिन्दु पर विशिष्ट निष्कर्ष को प्रस्तुत करने में असमर्थता होना निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण स्पष्ट परिस्थिति है जिसे अंतिम विश्लेषण में संपूर्ण साक्ष्यों के संचयी प्रभाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

512. एक अन्य पहलू है जिसे इस स्तर पर चिह्नित करने की आवश्यकता है और जिस पर विचार किया जाएगा जब प्रश्नगत हक का मूल्यांकन किया जाता है।

यह मुद्दा है कि क्या हक का निर्धारण एएसआई के निष्कर्षों के आधार पर टिका हो सकता है क्योंकि ये उसी पर आधारित हैं। चाहे 1528 ईसवी (450 वर्ष पूर्व) में एक मस्जिद का निर्माण एक पूर्ववर्ती धार्मिक संरचना की नींव पर (बारहवीं शताब्दी के) हक के प्रश्न पर एक निष्कर्ष में परिणाम हो सकता है यह अलग बात है। इस स्तर पर, यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि एएसआई के निर्देश के भीतर हक का निर्धारण स्पष्ट रूप से नहीं था। यह एक ऐसा मामला है जिस पर न्यायालय को इस निर्णय में बाद में हक के मुद्दे के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साथ इससे संबंधित विचार उद्देश्य औक निष्कर्ष निकालन की आवश्यकता होगी।

N. 10 विवादित ढाँचे की प्रकृति और अनुप्रयोग: मौखिक साक्ष्य।

513. वाद 5 में वादकारियों ने उन्नीस साक्षियों को प्रस्तुत किया। इन साक्षियों का एक व्यापक वर्गीकरण निम्नलिखित है:

I. तथ्यों पर साक्षी:

i. ओपीडब्ल्यू 1 महंत परमहंस राम चंद्र दास

ii ओपीडब्ल्यू 2 श्री देवकी नंदन अग्रवाल

iii ओपीडब्ल्यू 4 हरिहर प्रसाद तिवारी

iv ओपीडब्ल्यू 5 श्री राम नाथ मिश्रा उर्फ बनारसी पंडा

v ओपीडब्ल्यू 6 श्री हौसिला प्रसाद त्रिपाठी

vi. ओपीडब्ल्यू 7 राम सूरत तिवारी

vii ओपीडब्ल्यू 12 श्री कौशल किशोर मिश्रा

ix ओपीडब्ल्यू 13 नारद सरन

II. विष्णु हरि उत्कीर्णनों के संबंध में साक्षी:

i. ओपीडब्ल्यू 8 अशोक चंद्र चटर्जी

ii ओपीडब्ल्यू 10 डॉ. के. वी. रमेश

iii ओपीडब्ल्यू 15 डॉ. एम. एन. कट्टी

III. विशेषज्ञ साक्षी–इतिहासकार।

i. ओपीडब्ल्यू 9 डॉ. टी. पी. वर्मा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ii ओपीडब्ल्यू 11 डॉ. सतीश चंद्र मित्तल

IV. विशेषज्ञ साक्षी–धार्मिक मामले

i. ओपीडब्ल्यू 16 जगद्गुरु रामानन्दचार्य–स्वामी राम भद्राचार्य जी

V. विशेषज्ञ साक्षी–पुरातत्ववेत्ता

i. ओपीडब्ल्यू 3 डॉ. एस. पी. गुप्ता

ii ओपीडब्ल्यू 14 डॉ. राकेश तिवारी

iii ओपीडब्ल्यू 17 डॉ. आर. नागास्वामी

iv ओपीडब्ल्यू 18 श्री अरुण कुमार शर्मा

v ओपीडब्ल्यू 19 श्री राकेश दत्ता त्रिवेदी।

विवादित भवन की प्रकृति और उपयोग को निर्धारित करने के लिए तथ्य पर साक्षियों के कथनों का विश्लेषण करने की आवश्यकता है। साक्षियों ने भगवान राम के जन्म स्थान के विषय में अपनी आस्था के आधार पर भी बात कही है।

हिन्दू साक्षी

514. महंत परमहंस राम चंद्र दास (ओपीडब्ल्यू–1): महंत परमहंस राम चंद्र दास नब्बे वर्ष के थे और अखिल भारतीय श्री पंच रामानंदी दिगंबर अनी अखाड़ा और दिगंबर अयोध्या अखाड़ा, बैठक के महंत थे। साक्षी ने बयान दिया कि वाल्मीकि रामायण के अनुसार, भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था। उनके अनुसार:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि राम का जन्म अयोध्या में हुआ था। अयोध्या का वर्णन वेदों, उपनिषदों, संहिताओं और अठारह पुराणों, स्मृतियों में; और भरत के संस्कृत साहित्य की मान्यता प्राप्त कृतियों में किया गया है। इन सब में अयोध्या को जो आज भी विद्यमान है, भगवान राम का जन्मस्थान माना गया है। भगवान राम का जन्म यहीं हुआ था। "

साक्षी ने कहा कि *स्कंद पुराण* में, अयोध्या के महत्व से संबंधित एक अध्याय में भगवान राम के जन्म–स्थान का संदर्भ निहित है। उन्होंने कहा कि 'गर्भ गृह' विवादित स्थल पर है जहां उनके कथन के समय राम लला की मूर्ति अस्तित्व में थी।

साक्षी के अनुसार चौदह से पंद्रह वर्ष की आयु में घर छोड़ने के बाद वे अयोध्या आए और तब से उन्होंने राम जन्मभूमि सहित कई स्थानों पर दर्शन करने वाले लोगों को देखा। साक्षी के अनुसार वर्ष 1934–1947 के बीच, राम जन्मभूमि में भगवान राम की पूजा के रास्ते में कोई बाधा नहीं उत्पन्न की गई थी और जब से वह अयोध्या आए तब से उन्होंने विवादित परिसर में नमाज अदा होते नहीं देखा था। उन्होंने राम जन्मभूमि के अहाते में लोहे की छड़ से बने दरवाजे और वर्ष 1934 के दंगों की बात कही। साक्षी ने कहा कि गुंबद के नीचे स्तंभों पर देवी–देवताओं के चित्र थे, जिनकी पूजा की गई थी। उसने कहा कि 'मध्य गुंबद' के नीचे का स्थान वह स्थान है जहां भगवान राम का जन्म हुआ था और यह 'गर्भगृह' का प्रतिनिधित्व करता था। साक्षी ने धार्मिक ग्रंथों में अयोध्या का महत्व दर्शित किया। उनकी ओर से बयान देते हुए, साक्षी ने कहा:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> “इस संबंध में, रामचरित मानस में यह निर्देश है कि "उत्तर दिसि बहि सरयू पाविनी (अर्थात उत्तर दिशा में सरयू नदी बहती है)"। सरयू नदी के स्थान का यह प्रामाणिक विवरण है। रामायण अर्थात रामचरित मानस में अयोध्या के महत्व के विषय में कथन है कि "अवध पुरी मम पुरी सुहावनि (अवध का शहर मेरा प्रिय शहर है)" जो स्पष्ट करता है कि अयोध्या राम का जन्मस्थान है। यहां यह भी उल्लेख किया गया है कि यहां रहने वाले लोग मुझे बहुत प्रिय हैं। जिस स्थान पर कोई व्यक्ति जन्म लेता है उसे उसका जन्मस्थान कहते हैं। वाल्मीकि रामायण में यह भी उल्लेख किया गया है कि मेरा जन्मभूमि लंका से भी अधिक प्रिय है जो कि स्वर्ण से बना है, क्योंकि जन्म का स्थान स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होता है।"

पुनः साक्षी के अनुसार:

> "राम जन्मभूमि स्थल के प्रति संपूर्ण विश्व के हिंदुओं का विश्वास काबा के प्रति मुस्लिमों के विश्वास के समान है। संपूर्ण विश्व में केवल एक राम जन्मभूमि मंदिर है जबकि भगवान राम के हजारों मंदिर हैं।"

अपने परीक्षा के अनुक्रम के दौरान साक्षी को विवादित स्थल से संबंधित काले और सफेद और रंगीन तस्वीरों वाला एक एल्बम दिखाया गया था। उन्होंने सिंह और मोर और भगवान गणेश, भगवान शंकर और नंदी के चित्रों की पहचान की।

> "विवादित स्थल के बारे में ओओएस 4/1989 में दर्ज और उत्तर प्रदेश के पुरातत्व विभाग द्वारा तैयार किए गए काले और सफेद चित्रों के एलबम का चित्र संख्या 20 साक्षी को दिखाया गया। साक्षी ने चित्र देखने के बाद कहा कि द्वार के ऊपरी हिस्से के दोनों तरफ एक शेर का चितर है। तब रंगीन एल्बम संख्या 37 से 42 के चित्र को पुनः साक्षी को दिखाया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> इसे देखने के बाद, साक्षी ने कहा कि उत्तरी द्वार पर मोर का चित्र बनाया गया है। साक्षी को रंगीन एल्बम का चित्र संख्या 58 दिखाया गया था। इसे देखने के बाद, साक्षी ने कहा कि यह गुफा मंदिर के विषय में है। इन चित्रों में दर्शित है कि गणेश और शंकर की मूर्तियों को चबूतरे के पूर्वी – दक्षिणी कोने में स्थापित की गई हैं। उपरोक्त चित्रों में नंदी और भगवान शंकर की तस्वीर भी शामिल है। चित्र सं. 61 रंगीन एल्बम को देखने के बाद साक्षी ने कहा कि यह ऊपर उल्लिखित देवताओं के चित्र है।"

साक्षी ने धारा 145 के तहत कुर्की के बाद आयुक्त द्वारा की गई सूची और रामचबूतरा (बाह्य अहाते में) सहित पदचिह्नों और पूजा के अन्य स्रोतों की मौजूदगी को दर्शाया। साक्षी के अनुसार वर्ष 1934 के बाद किसी भी मुस्लिम ने मस्जिद में नमाज अदा नहीं की थी। उनके आस्था और विश्वास के विषय में बोलते हुए साक्षी ने कहा:

> "भगवान राम का जन्मस्थान होने के नाते इसमें मेरी आस्था और विश्वास है।"

एक मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा से जुड़े समारोह के विषय में बोलते हुए साक्षी ने कहा कि कम से कम 24 घंटे और अधिकतम 3 दिन समारोह के लिए समर्पित हैं। श्री साक्षी ने दिनांक 17 जनवरी 2000 को अपनी जिरह के दौरान सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के लिए प्रस्तुत विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी द्वारा कहा:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"मैं पहली बार वर्ष 1934 में अयोध्या आया था, मैं हर दिन राम जन्मभूमि (विवादित स्थल) जाता रहा था। उस समय मैं विवादित स्थान (भवन) के उस हिस्से में जाता था जहाँ स्तंभ स्थापित किए गए थे। पूर्वी द्वार पर दो स्तंभ स्थापित किये गए थे। मैं उनका 'दर्शन' भी करता था। देवताओं की मूर्तियों को उन स्तंभों पर प्रतिस्थापित किया गया था। मुख्य भवन में काले पत्थर के दो स्तंभ स्थापित किये गए थे। स्वयंसेवक: देवताओं की तस्वीरें उस पर उत्कीर्ण थीं। पूर्वी द्वार के दो स्तंभों में से एक में हनुमानजी की मूर्ति थी और दूसरी मूर्ति खंडित थी जो किसी देवता या देवी की भी थी। मुख्य द्वार के बाद लोहे की छड़ की एक दीवार थी और उसके बाद मुख्य भवन में तीन द्वार थे और तीनों द्वारों में काले पत्थरों के स्तम्भ स्थापित किये गए थे।"

साक्षी ने काले कसौटी पत्थरों के स्तंभों के स्थान और उन पर हिंदू देवी–देवताओं के चित्र की ओर इशारा किया:

"प्रश्नः–अंदर स्थापित काले पत्थरों के स्तंभ का स्थान क्या था?
उत्तर:–प्रत्येक द्वार में चार स्तंभ थे।
दक्षिणी द्वार में चार स्तंभों पर देवी–देवताओं की मूर्तियां स्थापित थीं। उनमें से कुछ स्पष्ट थे और कुछ नहीं थे। मैं यह नहीं कह सकता कि दक्षिणी द्वार या किसी अन्य द्वार पर देवी या देवता की मूर्ति उत्कीर्णित की गई थी। वर्ष 1934 से पूर्व मैं रामचबूतरा के बाद मध्य 'शिखर' के अंतर्गत गर्भ गृह का 'दर्शन' करता था। इसके अलावा, मैं स्तंभों पर उत्कीर्ण की गई मूर्तियों के दर्शन करता था और 'तुलसी' के पत्ते चढ़ाता था।"

साक्षी ने 'गर्भ गृह' और बाह्य मंच के बीच अंतर किया:

"प्रश्न:–विवादित भवन और उसके बाह्य मंच के अतिरिक्त क्या आप इससे सटी हुई भूमि को 'गर्भ गृह' मानते हैं। अन्य मंच से मेरा मतलब विवादित भवन के बाह्य मंच से है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उत्तर:–'गर्भ गृह' वह स्थान है जहां वर्तमान में राम लला विराजमान है। बाह्य मंच विवादित स्थल के बाहर है।"

साक्षी के अनुसार, 'गर्भ गृह' भगवान राम के जन्म–स्थान का प्रतिनिधित्व करता था और यह वह स्थान था जहाँ दिनांक 23 दिसंबर 1949 को मूर्ति को चबूतरे से हटाने के बाद स्थापित किया गया था:

"मेरे विश्वास और सभी हिंदुओं के विश्वास के अनुसार, रामचन्द्र जी के जन्म स्थान का वह स्थान जिसे मैं 'गर्भ गृह' कहता हूं। मैं उस स्थान को जन्म स्थान के रूप में विचार करता हूं जहां दिनांक 23 दिसंबर 1949 को मूर्ति को चबूतरे से हटाने के बाद स्थापित किया गया था और मैं उस स्थान पर मूर्ति की स्थापना से पूर्व जन्म स्थान के रूप में विचार करता था।

प्रश्न:–क्या वह स्थान, जिसे आप अपने विश्वास के अनुसार जन्म स्थान के रूप में वर्णित करते हैं, मध्य गुंबद के स्थान के दोनों ओर 10–15 हाथ दूर हो सकते हैं?

उत्तर:–नहीं। जिस स्थान पर मूर्ति स्थापित है वह प्रामाणिक स्थान है और संपूर्ण हिंदू समुदाय उसी स्थान पर विश्वास करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। इस स्थान में दो–चार फीट की दूरी भी नहीं हो सकती है। इस विश्वास का आधार यह है कि सदियों से हिंदुओं को इस स्थान का 'दर्शन' होता रहा है।"

यद्यपि साक्षी से यह उत्तर प्राप्त करने का प्रयास किया गया कि क्या जन्म–स्थान मध्य गुंबद से थोड़ी दूरी पर स्थित हो सकता है, उन्होंने विशेष रूप

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से नकारात्मक में उस प्रश्न का उत्तर दिया। ओपीडब्ल्यू–1 के साक्ष्य से जो विशेषताएं सामने आती हैं, वे इस प्रकार हैं:

(i) साक्षी अयोध्या में 14 या 15 वर्ष की आयु से एक शताब्दी के तीन चौथाई से अधिक रहा था।

(ii) साक्षी ने अपनी आस्था और विश्वास के विषय में कहा है कि मध्य गुंबद के अधीन "गर्भ गृह" उस स्थान का प्रतिनिधित्व करता है जहां भगवान राम का जन्म हुआ था

(iii) साक्षी ने भक्तों द्वारा पूजा की बात कही;

(iv) लोहे की रेलिंग की मौजूदगी को स्वीकार किया गया; और

(v) साक्षी ने दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 को मूर्तियों के स्थानांतरण की ओर संकेत किया था।

515. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने इस न्यायालय का ध्यान कुछ विरोधाभासों की ओर आकर्षित करने की मांग की है जिन्हें प्रति परीक्षा के दौरान स्पष्ट किया गया था और जिन्हें नीचे सूचीबद्ध किया गया है:

> "क) दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 को भगवान राम की एक मूर्ति सुबह के प्रारम्भिक घंटों में दिखाई दी। इस आश्चर्यजनक विकास के बाद, रामचबूतरे पर स्थापित मूर्ति को हटा दिया गया और 'गर्भ गृह' में स्थानांतरित कर दिया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ख) रामजन्मभूमि में केवल रामलला की मूर्ति स्थापित की गई थी...यह कथन कई अन्य साक्षियों द्वारा दिए गए बयान में विरोधाभासी है जिन्होंने कहा है कि कोई अन्य मूर्ति भी स्थापित की गई थी।
(ग) जब वह गिरा था, तो शीर्ष के नीचे रामलला की मूर्ति नहीं थी। इससे पता चलता है कि विवादित ढाँचे का विध्वंस जो माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पूर्ण उल्लंघन था, वह दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को अपवित्र कार्य की तरह पूर्व नियोजित भी था।
(घ) प्रथम कथन के अनुसार सम्पूर्ण परिक्रमा 'गर्भ गृह' के अधीन थी और बाद के कथन में परिक्रमा बाहरी तरफ थी।"

ये विरोधाभास उन पहलुओं पर साक्ष्य के मूल को प्रस्तुत नहीं करते हैं जिन्हें अविश्वसनीयता पर चिन्हांकित किया गया है। साक्षी नब्बे वर्ष की आयु का था जब वह पदच्युत हो गया था और सात दशकों से विवादित स्थल के साथ जुड़ा हुआ था। उनके साक्ष्य, भगवान राम के जन्म–स्थान के संबंध में हिंदुओं की आस्था और विश्वास के संबंध में, मध्य गुंबद के नीचे उस स्थान से जुड़ी पवित्रता और भक्तों द्वारा पूजा के चढ़ावे, उसकी गवाही के महत्वपूर्ण पहलू हैं।

516. श्री देवकी नंदन अग्रवाल (ओपीडब्ल्यू–2): श्री देवकी नंदन अग्रवाल की आयु अस्सी वर्ष थी जब उनकी मुख्य परीक्षा दिनांक 16 से 18 जून 2001 के बीच अभिलिखित किया गया था। साक्षी वाद 5 में तीसरी वादी थी जिसने देवताओं के वाद मित्र के रूप में वाद किया था। साक्षी की मृत्यु पर साक्ष की जिरह पूर्ण नहीं हो सकी, परन्तु फिर भी डॉ. धवन ने कहा कि वह साक्षी के साक्ष्य पर अवलम्ब रखने का हकदार है। डॉ. धवन ने विशेष रूप से विश्व हिंदू परिषद और राम जन्मभूमि न्यास के बीच के संबंध में ओपीडब्ल्यू

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

2 के कथन का उल्लेख किया है। इसके अलावा, मूर्तियों के स्थानांतरण के संबंध में, डॉ. धवन ने अपने तर्कों में साक्षी के साक्ष्य से संबंधित निम्नलिखित पहलुओं पर प्रकाश डाला:

> "i. रामलला का विग्रह एक झूले में बैठा हुआ था और रामचबूतरे पर स्थापित था। यह विग्रह चलायमान था और इसलिए भक्तों की इच्छाओं के अनुसार यह राम चबूतरे से स्थानांतरित कर दिया गया और केंद्रीय गुम्बद के नीचे स्थापित किया गया।
> ii. दिनांक 22 दिसंबर, 1949 तक मूर्तियाँ विवादित भवन के अंदर नहीं थीं।
> ii. चबूतरे पर रामलला की एक मूर्ति थी जिसे बाद में विवादित स्थल पर गुंबद के नीचे रखा गया था।"

उपरोक्त पहलुओं के अलावा, डॉ. धवन ने निम्न पर अवलम्बन लिया:

(i) साक्षी की यह स्वीकृति कि उसने मूर्तियों की पूजा नहीं की और उसके भवन में पूजा का स्थान नहीं था।
(ii) साक्षी की मूर्ति का नाम बताने में असमर्थता अथवा वर्ष 1984–85 में उसने कितनी बार दर्शन प्राप्त किया था;
(iii) साक्षी के कथन के संबंध में उसका विश्वास है कि 'गर्भ गृह' उस स्थान पर स्थित था जहां मंदिर को ध्वस्त कर दिया गया था, अनुश्रुति थी; और
(iv) उत्तरी दिशा में जन्मभूमि मंदिर अथवा उस विवादित स्थल के साक्षी का संदर्भ जो ब्रिटिश प्रशासन द्वारा एक सड़क के निर्माण पर बँटवारा किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्षी के प्रत्यय पत्र को चुनौती

517. ओपीडब्ल्यू 2 जो वाद 5 में तीसरा वादी है ने वादपत्र में कहा है कि वह एक वैष्णव है। अपने मुख्य परीक्षा के क्रम में उन्होंने दोहराया कि वह एक वैष्णव और एक हिंदू है और वह वाद 5 में पहले और दूसरे वादी के वाद मित्र के रूप में मुकदमा कर रहे थे, जिसमें कोई व्यक्तिगत या निहित स्वार्थ नहीं था, लेकिन देवता की सेवा का आशय था। उसने कहा कि वर्ष 1932–1934 के दौरान जब भी वह अपनी माता के साथ विवादित स्थान पर गया उन्होंने रामचबूतरे में भगवान राम के मूर्ति की पूजा देखी थी। उसके अनुसार, विवादित ढाँचे के अंदर भगवान राम की एक तस्वीर थी और पुजारी ने उपासकों से फूल और मालाएं लीं और उन्हें दूर से चढ़ाया। उसने द्वार पर और विवादित ढाँचे के अंदर पत्थर के स्तम्भ का उल्लेख किया। हालाँकि, उनके अनुसार विवादित ढाँचे के आंतरिक परिसर में द्वार पर लगाये गए ताले के परिणामस्वरूप, पुलिस ने उपासक को प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी और पूजा द्वार के बाहर से की गई:

> "विवादित ढाँचे के द्वार पर कसौटी के दो स्तंभ थे जिनका उपयोग मंदिर को ध्वस्त करने के बाद इसके निर्माण के लिए किया गया था जो पहले वहां मौजूद थी। ढाँचे के अन्दर भी दो समान स्तंभ थे जिन्हें दूर से देखा जा सकता था। लेकिन विवादित ढाँचे के आंतरिक परिसर के द्वार पर दो ताले लगाये गए थे जिसकी वजह से पुलिस किसी को अंदर जाने की अनुमति नहीं देते थे और अंदर विराजमान भगवान श्री रामलला की पूजा इत्यादि नहीं करने देते थे यह दरवाजे के बाहर से की जाती थी और लगातार सस्वर पाठ और भगवान के नाम का जाप बाहरी परिसर में किया जा रहा था।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि आंतरिक परिसर के द्वार पर ताले लगाए जाने के बाद, हिंदू भक्तों ने बाहर से पूजा की क्योंकि पुलिस ने आंतरिक अहाते में जाने की अनुमति नहीं दी थी।

518. डा. धवन साक्षी को ऐसे व्यक्ति के रूप में महत्व न देने का प्रयास कर रहे हैं जो उपासक नहीं था और ओपीडब्ल्यू 2 की प्रति–परीक्षा से उत्पन्न नहीं हुआ है। उसकी प्रति–परीक्षा के दौरान उन्होंने कहा कि वर्ष 1940 से 1952 के बीच उसने ईंट भट्ठे का व्यवसाय किया और अपनी पढ़ाई करते हुए एक ठेकेदार के रूप में काम किया था। साक्षी पर्याप्त रूप से यह बताने के लिए स्पष्ट था कि जिस समय वह व्यवसाय कर रहा था उसके पास धर्म में रुचि लेने का समय नहीं था और उसने किसी मूर्ति की पूजा नहीं की। हालांकि, उसने धार्मिक त्योहारों के अवसर पर हिंदू धार्मिक देवताओं की पूजा की बात कही। प्रति–परीक्षा के इस भाग को विधिक व्यवसाय में प्रवेश करने से पूर्व साक्षी के जीवन के एक विशेष चरण के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। प्रति–परीक्षा के दौरान स्पष्ट किये गए उत्तरों से यह अनुमान लगाना अनुचित होगा कि साक्षी भगवान राम का भक्त अथवा उपासक नहीं था। वाद में अभिकथन और उसके साक्ष्य, देवता भगवान राम में वास्तविक हितबद्ध व्यक्ति के रूप में साक्षी की व्यक्तिगत विश्वसनीयता को स्थापित करते हैं।

519. हरिहर प्रसाद तिवारी (ओपीडब्ल्यू–4): हरिहर प्रसाद तिवारी दिनांक 1 अगस्त, 2002 को अपनी मुख्य–परीक्षा की तिथि पर पचासी वर्ष के थे। उनका जन्म वर्ष 1917 में हुआ था और वे वर्ष 1938 में अयोध्या आए जहां

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उन्होंने चार वर्ष तक आयुर्वेद का अध्ययन किया। साक्षी ने कहा कि वह राम जन्मभूमि मंदिर जाया करता था। साक्षी को वादकारियों द्वारा मुख्य रूप से वाद 5 में इस विश्वास के समर्थन पर अवलम्ब लिया गया है कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्म स्थान था। अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान उन्होंने कहा:

> "अयोध्या हिंदुओं की एक प्राचीन और पवित्र तीर्थस्थल है जहां परब्रह्म परमेश्वर भगवान विष्णु ने राजा दशरथ के पुत्र श्री राम के रूप में अवतार लिया था। हिन्दू धर्म के अनुयायियों की आस्था अनादि काल से है कि भगवान विष्णु ने अयोध्या में भगवान श्री राम के रूप में अवतार लिया था। यह स्थान पूजा योग्य है। इसी आस्था और विश्वास के कारण लोग श्री राम जन्मभूमि के दर्शन और परिक्रमा के लिए आते थे। मेरे अध्ययन के दौरान वर्ष 1934 से 1938 तक मेरे परिवार के सदस्यों, मेरे दादा और बुजुर्ग लोग, अयोध्या के संत और संन्यासी यह कहते थे कि भगवान विष्णु ने इस स्थान पर भगवान श्री राम का अवतार लिया था और यही श्री राम जन्मभूमि है। इसी आस्था और विश्वास के आधार पर मैं दर्शन के लिए श्री रामजन्म भूमि जा रहा हूं। अपना अध्ययन पूर्ण करने के बाद जब भी मैं अयोध्या आता था तो वहाँ दर्शन के लिए अवश्य जाता। मैं ज्यादातर पिछले 8–9 वर्षों से सुग्रीव किला, राम कोट, अयोध्या में रहता था और आमतौर पर दर्शन के लिए राम जन्मभूमि जाता था।"

साक्षी ने दो द्वारों–हनुमत द्वार और सिंह द्वार के माध्यम से बाह्य अहाते में प्रवेश करने की बात कही है जिसके अंदर सीता रसोई, रामचबूतरा और भंडार उपस्थित थे। उन्होंने विशेष रूप से चैत्र रामनवमी और अन्य धार्मिक त्योहारों के अवसर पर बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं के आने और सैकड़ों भक्तों द्वारा रोजाना परिक्रमा किए जाने का उल्लेख किया है। साक्षी ने कहा कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उसने विवादित स्थल के अंदर किसी भी मुस्लिम द्वारा नमाज अदा करते कभी नहीं देखा था। साक्षी ने कहा:

> "वर्ष 1934–38 के दौरान मैं अक्सर भगवान राम के दर्शन के लिए विवादित स्थल गया। विवादित स्थल पर भवन के अंदर भगवान राम की कोई मूर्ति नहीं थी परन्तु उनका चित्र एक दीवार पर टाँग दी गई थी जो द्वार के बाहर से दिखाई दे रही थी। द्वार पर ताला लगा था इसलिए मैंने उस चित्र को बाहर से देखा था।"

इस प्रकार साक्षी ने स्वीकार किया है कि हिंदू भक्तों के द्वारा आंतरिक अहाते के बंद द्वार के बाहर से पूजा की गई थी।

साक्षी ने वर्ष 1934 से 1938 के बीच बाह्य अहाते में पूजा की बात कही:

> "परिसर के उत्तरी दिशा की ओर एक दरवाजा था। इस दरवाजे को सिंह द्वार कहा जाता था। सिंह द्वार के अंदर जाते हुए बाईं ओर एक मंच पर चौका, बेलन, चूल्हा और पदचिन्ह (पैर के निशान) आदि थे और पदचिन्ह चार जोड़े में थे। विश्वास के अनुसार ये पदचिन्ह राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के थे। उपरोक्त सभी चीजें वर्ष 1934 से 38 के दौरान चबूतरे पर मौजूद थीं। चबूतरे में भी पुजारी पूजा किया करते थे। पहले तो पुजारियों ने राम मंदिर चबूतरे पर पूजा की और फिर पूजा के लिए उपरोक्त चबूतरे पर गए।"

गर्भगृह के रूप में वर्णित दरवाजों को वर्ष 1934–1938 में बंद होना बताया गया था। साक्षी के अनुसार गर्भगृह के बाहर पूजा की गई थी। अपनी धार्मिक आस्था के आधार पर साक्षी ने कहा कि यह किसी धार्मिक ग्रंथ पर आधारित नहीं है अपितु उसने भगवान राम के जन्मभूमि के विषय में "किसी वृद्ध व्यक्ति से" सुना है। यह ओपीडब्ल्यू 4 की आस्था और विश्वास की वास्तविकता को

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

महत्व न देने का कोई कारण नहीं है। उन्होंने विशेष रूप जन्मभूमि जाकर पूजा करने की नियमितता के विषय में बताया और उनके साक्ष्य के इस पहलू को छुआ नहीं गया है। साक्षी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह विवादित भवन के अंदर नहीं गया था क्योंकि यह बंद था और वर्ष 1938 के बाद प्रवेश निषिद्ध था इसलिए दर्शन की व्यवस्था चबूतरे में की गई थी।

520. श्री राम नाथ मिश्र उर्फ बनारसी पंडा (ओपीडब्ल्यू–5): दिनां 6 अगस्त 2002 को, जब साक्षी की मुख्य परीक्षा अभिलिखित की गई थी तब वह नब्बे वर्ष का था। उसने कहा कि उसकी शादी पंडित रामकृष्ण उपाध्याय की पुत्री से हुई थी जो एक प्रतिष्ठित "तीर्थ–पुरोहित" थे।
उन्होंने अपने विवाह के बाद से *परिक्रमा* करने और राम जन्मभूमि पर पूजा करने के विषय में बताया। वर्ष 1932 से वह अपनी पत्नी के साथ अयोध्या आए और अपने ससुर द्वारा किए गए कार्य का प्रबंधन और देखभाल करना प्रारम्भ कर दिया, जिसमें लगभग सौ घाट उनके स्वामित्व में शामिल थे। साक्षी ने कहा कि चैत्र राम नवमी पर भगवान राम के लगभग 10 से 15 लाख भक्त अयोध्या आए और सरयू नदी में स्नान करने के बाद राम जन्मभूमि, कनक भवन और हनुमान गढ़ी का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। उन्होंने कहा कि हजारों भक्त जन्मभूमि में दर्शन पाने के लिए गांवों से आए थे। साक्षी ने कहा कि ब्रह्मपुराण, *स्कंद पुराण* और वराहपुराण में अयोध्या का महत्व बताया गया है।

ओपीडब्ल्यू–5 की परीक्षा के कुछ मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) साक्षी ने जिसे राम जन्मभूमि परिसर का वर्णन किया है उसमें प्रवेश करने के लिए दो द्वारों को संदर्भित किया। पहला पूर्वी दिशा में हनुमतद्वार था और दूसरा उत्तरी दिशा में सिंह द्वार।

(ii) हनुमतद्वार के द्वार के दोनों किनारों पर फूलों, पत्तों और देवताओं के चित्र सहित काले पत्थर के स्तंभ थे। इसी प्रकार, सिंह द्वार के ऊपर दोनों ओर सिंहों के बगल में एक 'गरूण' का चित्र था।

(iii) हनुमत द्वार नामक मुख्य द्वार से प्रवेश करने पर दक्षिणी दिशा में एक चबूतरा था, जिसे रामचबूतरा कहा जाता था जिस पर भगवान राम और उनसे संबंधित मूर्तियाँ थीं। रामचबूतरे के दक्षिण–पूर्वी कोने पर भगवान गणेश, भगवान शंकर और अन्य देवताओं सहित एक पीपल के पेड़ के नीचे मूर्तियाँ थीं। उत्तरी दिशा में मुख्य द्वार के अंदर एक फूस का बाड़ा था जिसे भंडार या स्टोर के रूप में जाना जाता था जिसमें संग्रह करने की व्यवस्था थी।

(iv) रामचबूतरे के पश्चिम की ओर ग्रिल–ईंट की दीवार के अंदर जिसे उन्होंने "गर्भ गृह" मंदिर के रूप में वर्णित किया था जिसमें तीन गुंबद थे और यह विश्वास का विषय है कि केंद्रीय गुंबद के नीचे का स्थान भगवान राम का जन्म स्थान था। साक्षी और अन्य हिंदू भक्तों ने उस स्थल पर राम जन्मभूमि के दर्शन की माँग की जिसे अतिपवित्र माना जाता था।

(v) उसी परिसर के भीतर सीता रासोई स्थित थी जिसमें *चौका–बेलन*, चूल्हा और पदचिन्ह थे;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) गुम्बदाकार ढाँचे के अन्दर काले पत्थर के स्तंभ थे जिनमें फूलों, पत्तों और देवताओं के चित्र थे। वर्ष 1928–1949 के बीच, उसने 'गर्भ गृह' के अंदर भगवान राम का चित्र लगी हुई देखी और दावा किया कि उसने वर्ष 1949 तक भगवान राम की मूर्ति को देखा था;

(vii) ग्रिल–ईंट की दीवार में दो दरवाजे थे जो बंद किए गये थे और जिसे निर्मोही अखाड़े के पुजारियों द्वारा खोले गए थे। श्रद्धालुओं के लिए 'गर्भ गृह' के दर्शन की व्यवस्था रेलिंग से की गई थी जहां दान पेटी रखी गई थी;

(viii) साक्षी की प्रतिपरीक्षा के दौरान 'गर्भ गृह' में पूजा के लिए बोलते हुए निम्नलिखित उत्तर दिए गए थे:

> " 'गर्भ गृह' में प्रवेश के लिए दीवार में दो दरवाजे थे। तीन शिखरों के नीचे कसौटी के स्तम्भ थे। ये स्तंभ हनुमत द्वार के पार्श्व वाले स्तंभों के समान थे। 'गर्भ गृह' में अनुमानित 7"–8" ऊंचाई पर काले पत्थर से बनी मूर्ति थी। मूर्ति काले पत्थर से निर्मित थी। यह कहना मुश्किल है कि क्या यह कसौटी से बनाया गया था अथवा नहीं, क्योंकि हम इसे बाहर से देखते थे। यह एक पत्थर में भगवान राम और सीता की मूर्ति थी। इसके अलावा मुझे स्मरण नहीं है कि क्या वहाँ भगवान सालिग्राम थे अथवा नहीं क्योंकि मैं इसे बाहर से देखता था और यह बंद रहता था। मैंने रामभक्त हनुमान जी को या मूर्ति को अंदर नहीं देखा था। ताले की चाबी निर्मोही अखाड़े के व्यक्तियों के कब्जे में होती थी और जिसे पुजारियों द्वारा खोला और बंद किया जाता था और आरती पूजा करने के लिए बिगुल और घंटी की ध्वनि की जाती थी। जब भी मैं वहां जाता था तो भक्त केवल बाहर से ही चढ़ावा चढ़ाते थे और 'प्रसाद' स्वीकार करते थे। वे अंदर नहीं जाते थे। वर्ष 1932 से 1949 तक मैंने चीजों को इसी तरह देखा।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जैसा कि पहले नोटिस किया गया था, ओपीडब्ल्यू–5 ने आंतरिक परिसर के द्वार पर ताले का उल्लेख किया। ओपीडब्ल्यू–5 ने बाहर से की जा रही पूजा का भी उल्लेख किया, लेकिन उसके अनुसार चाबियां निर्मोही अखाड़ा के पास थी।

(ix) श्री जफरयाब जिलानी द्वारा उसकी प्रति परीक्षा के दौरान, साक्षी ने तीन प्रकार के *परिक्रमा* के विषय में बताया:

(क) चौदह कोसी;

(ख) पांच कोसी; और

(ग) अन्तर्ग्राही

(x) पुनः श्री जिलानी द्वारा प्रति–परीक्षा के दौरान साक्षी ने कहा:

> "विवादित परिसर में मैं तीन स्थानों पर दर्शन किया करता था –पहले बाईं ओर चबूतरे में, फिर बाहर की रेलिंग से गुंबदाकार (शिखर वाले) 'गर्भ गृह' में और फिर उत्तरी दिशा में सीता रसोई का दर्शन।"

(xi) साक्षी ने कहा कि वर्ष 1928 और 1949 के बीच रेलिंग की दीवार में दो द्वार बंद थे, जिसके परिणामस्वरूप दर्शन केवल उस रेलिंग से प्राप्त किया गया था जहां से फूलों को चढ़ाया जाता था।

521. डॉ. राजीव धवन ने इस बात की पहचान करने में असमर्थता के आधार पर साक्षी के साक्ष्य को महत्व न देने की पुरजोर कोशिश की है कि जो तस्वीरें उन्हें दिखाई गईं हैं वे विवादित स्थल से संबंधित हैं। साक्षी ने कहा कि 1990 में, एक बंदर विवादित इमारत के पतन का कारण बना। यह उत्तर स्पष्ट रूप से उनकी कल्पना का सूचक है और उन्होंने विध्वंस का सही

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवरण प्रस्तुत नहीं किया। प्रति परीक्षक द्वारा दर्शाए गए चित्रों का उत्तर देने में साक्षी की अक्षमता निश्चित रूप से एक पहलू है जिसे ध्यान में रखना होगा परन्तु यह साक्षी को महत्व न देने का आधार नहीं हो सकता। उसकी प्रति परीक्षा की तिथि में साक्षी की आयु 90 वर्ष से अधिक थी और विरोधाभासों को साक्ष्यों की संपूर्णता को ध्यान में रखते हुए देखा जाना चाहिए। ढाँचे के गिरने के संबंध में साक्षी का कथन वास्तव में अतिरंजित है। हालांकि, साक्ष्यों के समग्र अध्ययन से यह संकेत प्राप्त होगा कि श्री जिलानी द्वारा साक्षी की प्रतिपरीक्षा के दौरान जो उत्तर दिये गए थे उससे यह निष्कर्ष निकाला गया था कि वे उस स्थल पर हिंदू भक्तों द्वारा पूजा की प्रकृति पर साक्षी की मुख्य परीक्षा के आधार पर छोड़ देते हैं। साक्षी पूजा की प्रकृति और तरीके का जानकार था और विवादित स्थल पर पूजा करने के लिए श्रद्धालुओं द्वारा स्वयं को शामिल करने के बाद पूजा के तौर–तरीकों या जागरूकता के बारे में उनकी उपस्थिति के बारे में संदेह का कोई तरीका नहीं हो सकता है।

522. हौसिला प्रसाद त्रिपाठी (ओपीडब्ल्यू–6): साक्षी अपनी मुख्य परीक्षा की तिथि अर्थात दिनांक 13 अगस्त, 2002 को अस्सी वर्ष की आयु का था। उसका गाँव अयोध्या से 30 से 35 किलोमीटर की दूरी पर था और प्रथम बार वह दिसंबर 1935 में गया था जब उसकी आयु बारह–तेरह वर्ष के बीच थी। साक्षी ने कहा कि वर्ष 1932 से 1945 के बीच उसके चाचा अयोध्या में संस्कृत विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। इस अवधि के दौरान साक्षी वर्ष में तीन से चार बार अयोध्या आया था। इसके बाद साक्षी ने कहा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि वह राम जन्मभूमि का दर्शन करने के लिए अयोध्या आया था। अपने मुख्य परीक्षा के दौरान साक्षी ने राम जन्मभूमि में दर्शन के विषय में बताया:

> "रामनवमी के समय देश के हर कोने से लाखों लोग अयोध्या आए थे। अयोध्या के अधिकांश श्रद्धालु और आगंतुक राम जन्म भूमि के दर्शन के लिए आते हैं और वहां प्रार्थना करते हैं। श्री राम जन्म भूमि का दर्शन करने के बाद मैंने हजारों लोगों को बाहर से संपूर्ण श्री राम जन्मभूमि परिसर की परिक्रमा करते देखा है। मैंने स्वयं अपने पिताजी और दादीजी के साथ भी दर्शन के पश्चात संपूर्ण श्री राम जन्मभूमि परिसर की परिक्रमा की थी। वृद्धावस्था के कारण मेरी दादीजी केवल एक बार परिक्रमा कर सकती थीं जबकि मैंने और मेरे पिताजी ने श्री राम जन्म भूमि की परिक्रमा पाँच बार पूर्ण की।"

उसके साक्ष्य के मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

(i) साक्षी ने रामचबूतरे की रेलिंग की निकटता को बताया जिसके पीछे तीन गुंबदाकार ढांचा था जो उसके अनुसार राम जन्मभूमि के गर्भगृह का प्रतिनिधित्व करता था:

> "राम चबूतरा और भंडार के ठीक सामने पश्चिमी दिशा में एक दीवार थी जिसमें दो दरवाजे और कई बंद खिड़कियां थीं। दरवाजे बंद रहते थे। हिन्दू परंपरा, आस्था और विश्वास के अनुसार, लोहे के खंभों के साथ दीवार के पश्चिम में तीन शिखरों का एक भवन था जिसमें केंद्रीय शिखर भाग का स्थान श्री राम जन्म भूमि है जिसे गर्भगृह कहा जाता है। इस आस्था और विश्वास के आधार पर मैं श्री राम जन्मभूमि के दर्शन और परिक्रमा के लिए भी जाता था।"

ग्रिल–ईंट की दीवार के साथ रामचबूतरे की निकटता ऐसा मामला है जो महत्व देगा। साक्षी ने कहा कि दीवार "रामचबूतरे के ठीक सामने" थी।

(ii) साक्षी ने उस तरीके की बात कही जिसमें से भक्त अहाते में प्रवेश करते हैं और दर्शन के लिए आगे बढ़ते हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "सभी श्रद्धालु – दर्शनार्थी प्रवेश द्वार से पूर्व की ओर श्री राम जन्म भूमि परिसर में प्रवेश करते थे और उनके दक्षिण–पूर्व कोने में स्थित नीम और पीपल के पेड़ के नीचे रखी मूर्तियों में से राम चबूतरा में रखी मूर्तियों और सीता रसोई और पदचिन्ह इत्यादि के दर्शन करते थे और वर्जित दीवार के अंदर स्थित परमपावन श्री राम जन्म भूमि जिसे गर्भगृह कहा जाता है, का दर्शन करते थे। "

(iii) साक्षी ने तीन गुंबददार ढांचे के अंदर काले पत्थर के स्तम्भों की उपस्थिति और उन पर देवताओं की उत्कीर्णन के विषय में बताया है। साक्षी के अनुसार गर्भगृह का स्थान भगवान राम के जन्म के स्थान का प्रतिनिधित्व करता है:

> "श्री राम जन्म भूमि में स्थित गर्भगृह में कसौटी के स्तम्भ थे जिन पर फूल–पत्तियों और देवी–देवताओं के चित्र बने थे। शिखरों का मंदिर पवित्र गर्भगृह है जबकि प्राचीन मान्यता के अनुसार भगवान राम का जन्म हुआ था ...
> कसौटी (काले पत्थर) स्तम्भों को गर्भगृह के दरवाजों पर लगाया गया था। हिंदू श्रद्धालु उन स्तंभों पर बनाई गई मूर्तियों का दर्शन भी किया करते थे।"

(iv) उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी से कुछ तात्विक कथन निकाले गए जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

(i) वर्ष 1935 से 1949 के मध्य जब वह राम जन्मभूमि गया तब उसने रामचबूतरा, सीता रासोई और मुख्य गर्भ गृह जैसे समस्त धार्मिक स्थलों पर भगवान राम का दर्शन प्राप्त हुआ।

(ii) गर्भगृह में लोहे की छड़ के बाहर दर्शन प्राप्त हुआ और प्रसाद को लोहे की छड़ों के निकट रखा गया था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) पूर्वी द्वार के सामने एक दीवार थी जिसमें लोहे की छड़ों के दो दरवाजे थे।दरवाजे के अंदर और गुंबद के नीचे गर्भगृह था। गर्भगृह के अंदर भगवान राम का चित्र था।

हालांकि, साक्षी ने गर्भगृह के अंदर की जाने वाली कोई भी आरती स्वयं नहीं देखी थी; और

(iv) कोई भी मुस्लिम साधुओं और बैरागियों के भय से परिसर नहीं आता था।

साक्षी द्वारा कुछ चित्रों की पहचान में विरोधाभास होने के आधार पर डॉ. राजीव धवन द्वारा अपने लिखित कथन में साक्षी के बयान की आलोचना की गई। उन्होंने साक्षी के कथन का भी उल्लेख किया है कि वर्ष 1949 में राम लला मध्य गुंबद के अंदर थे। साक्षी ने वर्ष 1934 में भवन को हुई क्षति की स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। ये विरोधाभास स्थल पर हिंदू भक्तों द्वारा पूजा की प्रकृति पर साक्षी अथवा उसके संपूर्ण कथन को महत्व न देने का कारण नहीं बन सकता। साक्षी के कथन पर संदेह करने की कोई वजह नहीं है कि वह स्थल पर एक नियमित आगंतुक और उपासक था। मुख्य परीक्षा में उसकी गवाही को पूजा के स्थल और प्रकृति पर प्रतिपरीक्षा के दौरान छुआ नहीं गया है। डॉ. राजीव धवन द्वारा जिन विसंगतियों पर ध्यान दिया गया है वे निश्चित रूप से ऐसी प्रकृति की नहीं हैं जो उपरोक्त पहलुओं पर कथन के आधार पर संदेह को जन्म देती हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

523. राम सूरत तिवारी (ओपीडब्ल्यू–7): साक्षी अपनी मुख्य परीक्षा की तिथी अर्थात् 19 सितंबर, 2002 को पचहत्तर वर्ष का था। उनका गांव अयोध्या से 8 किलोमीटर दूर स्थित था। साक्षी ने कहा कि वह 1942 में गर्मी के दौरान पहली बार अयोध्या आए थे जब वह अपने भाई के साथ रहते थे जो वहां सेवा में था। इसके बाद वे प्रतिवर्ष चार से पांच बार अयोध्या आए। साक्षी ने विशेष रूप से हनुमत द्वार के दोनों ओर काले पत्थर के स्तंभों और पत्थर की नक्काशी को संदर्भित किया है:

> "हनुमंत द्वार के दोनों ओर काले कसौटी पत्थर से स्तंभ बनाए गए, जिन पर फूल, पंखुड़ियाँ और मानव मूर्तियां उकेरी गई थीं। मानव छवियाँ द्वारपाल की तरह लग रही थीं और उनके चेहरे खुरचे हुए प्रतीत हो रहे थे। मेरे भाई ने बताया था कि मूर्तियाँ जय और विजय की थीं।"

उपरोक्त उद्धरण में, गवाह ने छवियों को संदर्भित किया है जो द्वारपाल (द्वाररक्षक) के समान थी और जय और विजय की थी। अन्य गवाहों की तरह, ओपीडब्ल्यू–7 ने इस तथ्य के बारे में बताया कि भक्त रामचबूतरा का दर्शन करते थे और फिर 'गर्भ ग्रह' का दर्शन प्राप्त करने के लिए जालीनुमा दीवार से गुजरना होता था। साक्षी ने बताया कि सिंह द्वार के ऊपर, सिंह की दो प्रतिमाएँ थीं, और उनके बीच गरुड़ की थी। उन्होंने यह भी कहा कि मुख्य प्रवेश द्वार की दक्षिणी दीवार पर वराह की एक प्रतिमा स्थापित की गई थी। साक्षी ने मध्य गुंबद के मुख्य द्वार के अंदर और बाहर कसौटी पत्थर के बारह स्तंभों के बारे में बताया:

> "कसौटी के बारह स्तंभ, जालीनुमा दीवार के अंदर तीन गुम्बदाकार भवन के मुख्य गुम्बद के अंदर और बाहर लगाए गए थे और उन स्तंभों पर एक घाटपल्लव, फूल और पंखुरियां और हिंदू देवी–देवताओं की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मूर्तियों को उत्कीर्ण किया गया था और उनमें से मूर्तियों के चेहरे, हाथों और उनके पैरों को खरोंच दिया गया था।"

524. कौशल किशोर मिश्रा (ओपीडब्ल्यू–12): साक्षी की आयु मुख्य परीक्षा की तिथी पर अर्थात् 19 सितंबर, 2002 को पचहत्तर वर्ष थी। अयोध्या का निवासी, साक्षी आचार्य है और पुजारी के परिवार का है। साक्षी ने कहा कि चौदह या पंद्रह वर्ष की आयु से, वह राम जन्मभूमि में पूजा कर रहा था। मुख्य–परीक्षा के दौरान, गवाह ने कहा कि लाखों लोग त्योहारों के अवसर पर पूजा के लिए वहां इकट्ठा होते थे, जब वे रामचबूतरा, सीता रसोई और उस पवित्रतम स्थान पर जाते थे, जहां भगवान राम का जन्म तीन प्रमुख ढांचे के मध्य गुंबद के नीचे हुआ था।। भक्त लोग परिक्रमा भी करते थे। साक्षी ने यह भी कहा कि अयोध्या का कोई भी मुस्लिम प्रार्थना के उद्देश्य से राम जन्मभूमि के पास नहीं आया और नमाज़ अदा नहीं हुई।

साक्षी के अनुसार, चबूतरा पर राम लला और शालिग्राम की मूर्तियाँ थीं जहाँ प्रसाद चढ़ाया जाता था। बैरागी और साधु भी वहां रहते थे और वे निर्मोही अखाड़ा से संबंधित थे। देवताओं के लिए प्रसाद निर्मोही अखाड़े के भण्ड़ार में तैयार किया जाता था और राम मंदिर तथा सीता रसोई की देखभाल के लिए एक पुजारी भी नियुक्त किया गया था। गवाह ने बाहरी अहाते में दो दरवाजों और विवादित इमारत तथा बाहरी अहाते को अलग करने वाली ग्रिल–ईंट की दीवार के बारे में बताया। छड़ की दीवार के दोनों दरवाजे खुले होते थे और गवाह ने कहा कि वह भगवान राम की मूर्ति की पूजा करने के लिए दरवाजे से जाता था। हालांकि, गवाह ने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा कि वह अपने पिता और दादा–दादी के साथ राम जन्मभूमि गया था और श्रद्धालुओं को गर्भगृह में विवादित संरचना के मध्य गुंबद के नीचे प्रार्थना करते हुए देखा था। अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान उन्होंने कहा कि 1934 में वह विवादित भवन के अंदर नहीं गए थे, लेकिन केवल रामचबूतरे तक गए थे। हालांकि उन्होंने 1934 से तीन गुम्बदाकार इमारत के अंदर जाते रहने का दावा किया। उन्होंने दावा किया कि इमारत में प्रवेश करने के लिए दो लोहे के दरवाजे थे; जिनमें से एक उत्तर में हमेशा खुला रखा गया था। उनके अनुसार, 1949 में गुम्बदाकार इमारत के अंदर कोई मूर्ति नहीं थी, लेकिन केवल एक कैलेंडर, मध्य गुंबद के नीचे निर्मित मंच पर रखा गया था। साक्षी के अनुसार, उन्होंने इमारत के अंदर पूजा की, जब कोई भीड़ नहीं थी, लेकिन जब लोगों की भीड़ होती थी, तो रामचबूतरा के पास बाहर पूजा की जाती थी। हालांकि वह 1949 के बाद विवादित इमारत के अंदर भक्तों को पूजा करने के लिए ले गए और इससे पहले नहीं ले गए। 1949 और 1986 के बीच, उन्होंने रिसीवर से इमारत के अंदर जाने के लिए मौखिक अनुमति ली। 1934–1949 के दौरान, कुछ लोग बाहर रामचबूतरा पर अपना चढ़ावा चढ़ाते थे; अन्य लोग इसे लोगों की भीड़ के कारण लोहे की दीवार के दरवाजे के पास एक पुजारी को देते थे, जबकि कुछ लोग अपना चढ़ावा चढ़ाने मन्दिर के अन्दर जाते थे। मध्य गुम्बद के नीचे मंच पर बैठे पुजारी ने चढ़ावा स्वीकार किया। इस सवाल के जबाव में कि 1934 से 1949 के बीच जब कोई मूर्ति नहीं थी, तो आरती और भोग कैसे किया गया, साक्षी ने कहा:

> "प्रश्न:–1934 से 1949 तक गुंबद के नीचे कोई मूर्ति नहीं थी, तो किसे आरती, भोग आदि किया गया?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उत्तर:–विवादित भवन की महत्ता, कैलेंडर पर तस्वीरें, मानसिक पूजा और ध्यान ऐसी चीजें थीं जिनके लिए पूजा, भोग, पाठ, आरती की जाती थी।"

हालांकि गवाह ने स्वीकार किया कि गर्भ ग्रह बिना मूर्ति वाला कोई अन्य सार्वजनिक मंदिर नहीं है। उनके अनुसार, राम लला की मूर्ति को 22/23 दिसंबर 1949 की रात के दौरान विवादित इमारत के मध्य गुंबद के समक्ष रखा गया था। गवाह के अनुसार, 1949 से पहले, विवादित ढाँचे के उत्तर की ओर का दरवाजा खोला गया था, जबकि दक्षिणी दरवाजा बंद रहा, चाबी पुलिस की अभिरक्षा में थी। इसलिए 1934 से 1949 के बीच, उन्होनें केवल उत्तर दरवाजे के माध्यम से गुंबद के नीचे विवादित ढ़ाँचे में प्रवेश किया। 1934 और 1949 के बीच, पुलिस को वहां तैनात किया गया था क्योंकि भीड़ बढ़ने लगी थी और दक्षिणी दरवाजे को बंद रखा गया। उनके अनुसार, 1934–49 के दौरान, वह मध्य गुंबद के नीचे विवादित ढ़ाँचे पर गए और कैलेंडर में एक मूर्ति की तस्वीर पर चढ़ावा चढ़ाया।

525. नारद सरन (ओपीडब्ल्यू–13): साक्षी अपनी मुख्य परीक्षा की तिथी को, जो 27 जनवरी 2003 को थी, पचहत्तर वर्ष का था वह 1946 में अयोध्या आए और अपने गुरु की मृत्यु के बाद, 1979 में वह सरजू कुंड में महंत के रूप में उनके उत्तराधिकारी बने। साक्षी ने स्वीकार किया है कि मूर्तियों को 22/23 दिसंबर 1949 के बीच की रात को रामचबूतरा से केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थानांतरित कर दिया गया था। उन्हें 'अल्लाह' शब्द वाले उत्कीर्णन की तस्वीरें मिलीं। साक्षी के अनुसार, केवल पत्तियों और फूलों का उत्कीर्णन था। उसने स्वीकार किया कि जहाँ अल्लाह लिखा है, वह दीवार

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मंदिर की दीवार नहीं हो सकती। गवाह इस बात की पुष्टि नहीं कर सका कि क्या मुसलमानों ने उन तारीखों पर विवादित इमारत में नमाज अदा की थी, जिन पर वह नहीं गया था। साक्षी ने गर्भ ग्रह के मध्य गुम्बद के नीचे होने के विश्वास के बारे में बताया। साक्षी ने बताया कि हनुमत द्वार के दरवाजे के दोनों ओर कसौटी स्तंभ थे जिन पर जय और विजय की मूर्तियाँ उकेरी गयी थी।

सुन्नी साक्षीगण

526. वाद 5 में वादीगणों ने अपने मामले को मजबूत करने के लिए सुन्नी गवाहों के ब्यौरों पर अवलम्बन लिया है। निम्नलिखित सुन्नी गवाहों पर अवलम्बन लिया गया था:

मोहम्मद हाशिम (PW–1): साक्षी पचहत्तर साल का था जब उसका बयान जुलाई 1996 में दर्ज किया गया था। उन्होंने पेशे से एक दर्जी का काम किया और अयोध्या में मोहल्ला कोठिया के निवासी थे। साक्षी ने कहा कि उसका निवास विवादित स्थल से तीन फर्लांग दूर था और वह 1938 में पहली बार बाबरी मस्जिद में नमाज अदा करने गया था। गवाह ने कहा कि उस समय, दो मस्जिदों में शुक्रवार की नमाज अदा की जाती थी, लेकिन तरवी नमाज़ (रमजान के पवित्र महीने के दौरान ईशा नमाज़ के बाद की गई विशेष नमाज) केवल बाबरी मस्जिद में की जाती थी। गवाह ने 22 दिसंबर 1949 को विवादित स्थल पर अंतिम नमाज पढ़ने का दावा किया है और उसके बाद सरकारी अधिकारियों द्वारा स्थल पर जाने और प्रार्थना अदा करने से रोका गया था। गवाह ने कहा कि कुर्की के आदेश के अनुसरण में, उसने और बहुत

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से अन्य लोगों ने नमाज अदा करने का प्रयास किया, किंतु उन पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 का उल्लंघन करने के लिए अभियोग चलाया गया और उनको 50/– रुपए जुर्माने के साथ दो मास के कारावास का दंड दिया गया। अपने बयान के दौरान, गवाह ने बताया कि गंज–ए–शाहिदन विवादित स्थल के पूर्व में था। उत्तरी दिशा में एक सड़क थी और उसके आगे जन्मस्थान को अंकित करते हुए एक साइनबोर्ड के साथ एक जनमस्थान मंदिर था। विवादित स्थल के दक्षिणी तरफ एक कब्रिस्तान था। विवादित स्थल के उत्तरी और पूर्वी तरफ एक दरवाजा था और प्रवेश ज्यादातर पूर्वी द्वार से था। पूर्वी द्वार से प्रवेश करने पर एक चबूतरा होता था, जहां कभी–कभी पुजारी बैठते थे। मस्जिद के उत्तरी द्वार के पास एक 'चूल्हा' था जिसे सीता रसोई कहते थे। साक्षी के अनुसार, सीता रसोई के सामने एक दीवार थी और जब भीड़ बढ़ती जाती थी, तो उत्तरी द्वार मार्ग के लिए खोला जाता था। उत्तरी और पूर्वी द्वार एक चारदीवारी से घिरे थे। मस्जिद की एक और दीवार थी जहाँ एक मुख्य द्वार था जिस पर ताला लगा हुआ था। यह ताला उस तारीख को लगाया गया था जब मस्जिद कुर्क की गयी थी। साक्षी ने कहा कि 22 दिसंबर 1949 तक विवादित स्थल के अंदर कोई मूर्ति नहीं रखी गई थी और तीन गुम्बदाकार संरचना के अंदर कभी कोई पूजा नहीं की गई थी।

प्रारंभ में 24 जून 1996 को साक्षी की प्रति–परीक्षा की गई। अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान, गवाह ने कहा कि जिस विवादित स्थल को 22/23 दिसंबर 1949 को कुर्क किया गया था, उसे हिंदूओं द्वारा राम जन्मभूमि और मुस्लिमों द्वारा बाबरी मस्जिद कहा गया था। उन्होंने कहा कि जन्मस्थान मंदिर, राम जन्मभूमि मंदिर था और यहां तक कि 1885 के वाद में,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवादित स्थल को राम जन्मभूमि के रूप में संदर्भित किया गया था। अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान साक्षी ने आगे कहा कि चूंकि अयोध्या को भगवान राम का जन्म–स्थान माना जाता है, इसलिए हिंदुओं के लिए यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि मुसलमानों के लिए मक्का है। उन्होंने आगे कहा कि भारत के बाहर के श्रद्धालु त्योहारों के अवसर पर दर्शन के लिए जन्मस्थान मंदिर आते थे और श्रद्धालुओं के लिए फूल, मालाएं और बताशा आदि अर्पित करने के लिए अस्थायी दुकानें स्थापित की गईं। साक्षी ने कहा कि उन्होंने हिंदुओं को अपने बचपन से विवादित संपत्ति के चारो ओर पंचकोसी और चौदहकोसी *परिक्रमा* करते देखा था और सैकड़ों वर्षों से इस प्रथा का पालन किया जा रहा था। कसौटी स्तंभ की तस्वीर सं. 45, 46 और 54 और A 2/41 को देखने के बाद साक्षी ने कहा कि स्तंभों पर चित्रांकन या उत्कीर्णन हिंदू देवताओं के थे और पूर्वी मुख्य द्वार पर दिखाई देने वाले स्तंभ गुम्बद में प्रयुक्त स्तंभ के समान थे। गवाह ने पुष्टि की कि 1992 में विवादित परिसर के विध्वंस तक पत्थर के स्तंभ यथावत बने रहे। एक सवाल के जवाब में कि क्या कोई मुसलमान उस स्थान पर नमाज अदा करने जायेगा जहां देवताओं, देवियों या फूलों के चित्र हैं, गवाह ने जवाब दिया कि भगवान की तस्वीर के सामने नमाज अदा करना निषिद्ध था।

527. हाजी महबूब अहमद (पीडब्ल्यू–2): अट्ठावन वर्ष के थे, जब उनका बयान सितंबर, 1996 में दर्ज किया गया था। वह टेढ़ी बाजार, अयोध्या के निवासी थे और उनका घर विवादित स्थल से लगभग तीन फर्लांग दूर स्थित था। उन्होंने कहा कि उन्होंने विवादित स्थल पर सैकड़ों बार नमाज़ अदा की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थी और शुक्रवार की नमाज के अलावा वह 22 दिसंबर 1949 तक पांच बार नमाज अदा करते थे। गवाह ने कहा कि उसने कभी भी विवादित स्थल के अंदर हिंदुओं द्वारा कोई उपासना या पूजा होते हुए नहीं देखी। प्रारम्भ में 17 सितंबर 1996 को गवाह की जिरह की गई। अपनी जिरह के दौरान, गवाह ने ग्रिल की दीवार का उल्लेख किया जो तीन गुम्बदाकार संरचना की चारदीवारी से जुड़ती है और कहा कि ढाँचे को मुसलमानों द्वारा मस्जिद और हिंदुओं द्वारा मंदिर माना जाता था। साक्षी ने कहा कि जिस प्रकार अयोध्या हिन्दूओं के लिए तीर्थ–स्थल है उसी प्रकार मुसलमानों के लिए था और वे इसे 'खुर्द मक्का' के रूप में संदर्भित करते थे। उन्होंने कहा कि परिक्रमा सर्दियों में होती थी और वे लोग जो परिक्रमा करते थे वे दर्शन के लिए मंदिर भी आते थे। साक्षी यह निर्धारित करने में असमर्थ था कि क्या स्तंभ पत्थर या कसौटी पत्थर से बने थे। गवाह ने फोटो सं. 29 और 30 में दिखाए गए मंदिर की मूर्तियों और अन्य प्रतीकों के अस्तित्व से इनकार किया और कहा कि वे उस समय वहाँ नहीं थे जब वह विवादित स्थल पर नमाज अदा करने गया था।

528. मो. यासीन (पीडब्ल्यू–4): वह छियासठ वर्ष के थे जब उनका बयान नवम्बर, 1996 में अभिलिखित किया गया था। वह मोहल्ला रानीगंज, अयोध्या के निवासी थे और एक मोची था। गवाह ने कहा कि विवादित ढाँचे का उपयोग नमाज़ अदा करने के लिए किया गया था और वह विवादित स्थल पर शुक्रवार की नमाज लगातार पढ़ रहा था। उसने कहा कि विवादित ढाँचे में काले पत्थर के खंभे मौजूद थे, लेकिन उन पर देवी–देवताओं का कोई चित्र उत्कीर्णीत नहीं थी। साक्षी के अनुसार, गमले के आकार में फूलों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और पत्तियों की मूर्तियां उन पर उकेरी गयी थीं। 29 नवंबर 1996 को गवाह की पहली जिरह की गई। अपनी जिरह के दौरान, गवाह ने कहा कि हिंदुओं का मानना था कि विवादित संरचना भगवान राम का जन्म–स्थान था और उन्होंने इसे पूजा का पवित्र स्थान माना। गवाह ने आगे कहा कि यह मान लेना गलत था कि किसी मंदिर या मूर्ति को ध्वस्त करना कुरान के अनुसार अपराध नहीं था। साक्षी ने बताया कि किसी भी मुस्लिम को किसी विशेष स्थान पर निर्मित मंदिर को ध्वस्त करने और उस पर एक मस्जिद का निर्माण करने की अनुमति नहीं थी और यदि कोई व्यक्ति मंदिर के विध्वंस पर मस्जिद का निर्माण सिद्ध कर दे, तो यह एक वैध मस्जिद नहीं होगी।

529. हसमत–उल्ला–अंसारी (पीडब्ल्यू–7): जब उनका बयान दिसंबर 1996 में अभिलिखित किया गया था तो वह पैंसठ वर्ष के थे। वे मोहल्ला काज़ियाना, अयोध्या के निवासी थे और एक टाइपिस्ट थे। गवाह ने कहा कि विवादित ढाँचा एक मस्जिद थी और उसने 1943 में वहां पहली नमाज अदा की थी और उसके बाद 1949 तक की थी। उन्होंने यह भी दावा किया कि विवादित ढाँचा कभी भी मंदिर नहीं था और 22 दिसंबर 1949 तक किसी भी हिंदू ने वहां पूजा नहीं की। 5 दिसंबर 1996 को गवाह की पहली प्रति–परीक्षा की गई। अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान, उन्होंने इस प्रकार कहा:

> "यहां सावन में एक मेला लगता है। मणि पर्बत में मेला और वशिष्ठ कुंड में एक अन्य मेला भी आयोजित किया जाता है। चैत्र मास में राम नवमी मेला होता है। कहा जाता है कि राम नवमी मेला भगवान राम के जन्मदिन के अवसर पर आयोजित किया जाता है। इस अवसर पर बाहर के लोग भी अयोध्या आते हैं। हमारे बचपन के दिनों में बाहर के हजारों लोग आया करते थे। आजकल लाखों लोग आते हैं। वहां परिक्रमा का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भी आयोजन किया जाता है। इन दो परिक्रमाओं में से एक पंचकोशी है और दूसरी चौदहकोसी है। हिन्दू भिन्न–भिन्न स्थानों से आते हैं और इस अवसर पर वे परिक्रमा भी करते हैं।"

530. मोहम्मद कासिम अंसारी (पीडब्ल्यू–23): जब उन्होनें जनवरी 2002 में एक हलफनामा दायर किया था तब वह चौहत्तर वर्ष के थे। वह मोहल्ला कुटिया, अयोध्या के निवासी थे और पेशे से मोटर मैकेनिक थे। साक्षी ने कहा कि उनका निवास विवादित स्थल से लगभग तीन फर्लांग दूर स्थित था। साक्षी ने कहा कि उसने विवादित स्थल पर फज्र, ज़ोहर, अस्र, मग़रिब, एशां, तरावी और यहां तक कि जुमा नमाज़ भी कई बार पढ़े थे। साक्षी के अनुसार, उन्होंने 22 दिसंबर 1949 को अंतिम नमाज़ पढ़ी और जब तक उन्होंने नमाज पढ़ी, तब तक तीन गुम्बदाकार ढाँचे के अंदर कोई मूर्ति नहीं रखी गई और किसी भी हिंदू ने कभी भी विवादित स्थल पर प्रार्थना नहीं की। 16 जनवरी 2002 को गवाह की पहली जिरह की गई। जिरह के दौरान, गवाह ने कहा कि हिंदुओं ने भगवान राम को अपना भगवान माना और उनका विश्वास था कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था। गवाह ने कहा कि बाबरी मस्जिद को हिंदुओं द्वारा जन्मभूमि के रूप में संदर्भित किया गया था और उन्हें पंचकोसी मार्ग और *पंचकोसी परिक्रमा* के बारे में पता था। उन्होंने कहा कि विवादित स्थल पंचकोसी मार्ग से 300 मीटर की दूरी पर था और विवादित स्थल सहित अयोध्या के सभी प्रसिद्ध मंदिर पंचकोसी मार्ग के भीतर स्थित थे। साक्षी के अनुसार कार्तिक मास के दौरान अयोध्या में एक भव्य उत्सव आयोजित किया गया था, दुकानें स्थापित की गईं और लाखों श्रद्धालु राम जन्मभूमि, कनक भवन और हनुमान गढ़ी में दर्शन करने आये

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थे। साक्षी ने यह भी कहा कि प्रत्येक वर्ष कार्तिक के महीने में चौदहकोसी परिक्रमा भी की जाती थी और लाखों श्रद्धालु इसमें भाग लेते थे। साक्षी ने चैत्र मास में आयोजित राम नवमी उत्सव और सावन उत्सव का भी उल्लेख किया, जिसने लाखों लोगों को अयोध्या शहर की ओर आकर्षित किया। श्रद्धालु सरयू नदी में नहाया करते थे और कनक भवन, जन्मस्थान मंदिर और जन्मभूमि में दर्शन करते थे। साक्षी के अनुसार, त्योहार के दिनों में हिंदू और मुस्लिम प्रेम और शांति से साथ–साथ रहते थे।

531. उपरोक्त साक्षियों के बयानों का विश्लेषण करते हुए निम्नलिखित पहलुओं को प्राप्त किया जा सकता है:

(i) हिन्दू अयोध्या को भगवान राम का जन्मस्थान मानते हैं। हिन्दू शास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों में इसे धार्मिक महत्व का स्थान बताया गया है;

(ii) हिन्दुओं की आस्था और विश्वास यह है कि भगवान राम का जन्म तीन गुम्बदाकार संरचना के केंद्रीय गुंबद के ठीक नीचे 'गर्भगृह' के भीतर हुआ था;

(iii) जिसे मुस्लिम बाबरी मस्जिद कहते हैं, उसे हिन्दू राम जन्मभूमि या भगवान राम का जन्मस्थान मानते हैं;

(iv) हिन्दुओं की यह आस्था और विश्वास निर्विवाद है, कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था। मुस्लिम गवाहों ने यह भी कहा कि जन्मस्थान के अस्तित्व में हिंदुओं की आस्था और विश्वास है;

(v) हिन्दू और सुन्नी साक्षी दोनों की गवाही यह संकेत देती है कि विवादित स्थल का उपयोग दोनों धर्मों के भक्तों द्वारा पूजा करने के लिए किया जा रहा था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) दोनों हिन्दू और सुन्नी साक्षियों ने विवादित ढांचे के भौतिक अभिविन्यास का निम्नलिखित रीति से वर्णन किया है:

(क) विवादित परिसर में दो प्रवेश द्वार थे–एक पूर्व की ओर हनुमत द्वार से और दूसरा उत्तर की ओर सिंह द्वार से। हनुमत द्वार के दोनों तरफ काले कसौटी पत्थर के स्तंभ थे जिन पर फूल, पत्तियों और हिन्दू देवी–देवता उत्कीर्णित थे। हिंदू प्रार्थना करते थे और स्तम्भों पर उत्कीर्णनों की पूजा करते थे। दो हिंदू गवाहों ने 'जय और विजय' उत्कीर्णन के बारे में बताया;

(ख) मुख्य द्वार के बाहर एक स्थापित किया हुआ पत्थर था, जिस पर 'जन्म भूमि नित्य यात्रा' लिखा था। इस द्वार से प्रवेश करने पर रामचबूतरा बाईं ओर था जिस पर भगवान राम की मूर्तियों को रखा गया था। भक्त और संत रामचबूतरा के निकट कीर्तन करते थे।

(ग) बाहरी अहाते के एक कोने में गणेश, नंदी, शिवलिंग, पार्वती और अन्य की मूर्तियाँ एक अंजीर और नीम के पेड़ के नीचे रखी गयीं थी।

(घ) फूस की छत *(छप्पर)* की एक संरचना थी, जिसमें भोजन के भंडारण और भोजन तैयार करने की व्यवस्था थी;

(ड़) विवादित परिसर के बाहर, दक्षिण–पूर्वी कोने में, 200–250 कदम की दूरी पर सीता कूप स्थित था;

(च) विवादित स्थल का उत्तरी प्रवेश द्वार सिंह द्वार था, जिसके ऊपर दोनों ओर दो सिंहों के साथ केंद्र में गरुड़ का चित्रांकन किया गया था। सिंह द्वार से प्रवेश करने पर सीता रसोई तक पहुंचते थे,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिसमें *चौका–बेलन–चूल्हा, चरण चिन्ह* और धार्मिक महत्व के अन्य प्रतीक शामिल थे; और

(छ) रामचबूतरा के पश्चिम मे लोहे की छड़ की एक दीवार थी। रेलिंग के अंदर तीन गुम्बदाकार संरचना थी जिसे हिंदू भगवान राम का जन्म–स्थान मानते थे। हिन्दू इसे 'गर्भ ग्रह' मानते थे जिसे पवित्र और श्रद्धेय स्थल माना जाता था। तीन गुम्बद वाली संरचना में काले कसौटी पत्थर के स्तंभ मौजूद थे। गवाहों ने कहा कि स्तंभों पर फूलों, पत्तियों, देवी– देवताओं के उत्कीर्णन थे;

(vii) साक्षियों की गवाही से पूजा और प्रार्थना का पैटर्न पता चलता है। हनुमत द्वार से प्रवेश करने पर, हिन्दू बाहरी अहाते में चबूतरे पर रखी हुई भगवान राम की मूर्तियों की पूजा करते थे और उसके बाद अंजीर और नीम के नीचे रखी प्रतिमाओं को पूजते थे। सीता–रसोई में प्रार्थनाएँ की जाती थीं और तब आंतरिक तथा बाहरी अहाते को विभाजित करने वाली लोहे की रेलिंग पर अपना चढ़ावा चढ़ाते हुए तीन गुम्बद वाली संरचना के अंदर स्थित 'गर्भ ग्रह' को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते थे। हिन्दू राम जन्मभूमि की *परिक्रमा* करते थे;

(viii) हिन्दू और मुस्लिम दोनों साक्षियों ने कहा कि धार्मिक अवसर पर तथा राम नवमी, सावन झूला, कार्तिक पूर्णिमा, परिक्रमा मेला और राम विवाह जैसे पर्वों पर देश भर के बहुत से हिन्दू श्रद्धालु दर्शन के विवादित परिसर आते थे। उपासक सरयू नदी में स्नान करते थे और राम जन्मभूमि, कनक भवन और हनुमानगढ़ी में दर्शन करते थे। श्रद्धालु विवादित परिसर के चारों ओर एक प्रथागत परिक्रमा करते थे; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ix) हिन्दू और मुस्लिम दोनो साक्षियों ने कार्तिक मास में प्रति वर्ष की गयी पंचकोसी और चौदहकोसी परिक्रमा का संदर्भ दिया है, जिसने लाखों श्रद्धालुओं को अयोध्या के लिए आकर्षित किया है।

विवाद के क्षेत्र

532. हिन्दू और सुन्नी मुसलमानों की गवाही से विवाद के तीन महत्वपूर्ण क्षेत्र सामने आए हैं:

(i) पहला तीन गुम्बद वाली संरचना के केन्द्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियों की उपस्थिति के संबंध में है, जो मुस्लिमों के लिए बाबरी मस्जिद का एक भाग था और हिन्दूओं के लिए 'गर्भ ग्रह' है। मौखिक विवरण में मूर्ति की तस्वीर वाले एक कैलेंडर होने का और इस चित्रांकन निरूपण की पूजा करने का इक्का–दुक्का संदर्भ है। हालांकि हिन्दू गवाहों ने स्वीकार किया है कि भगवान राम की मूर्ति को 22–23 दिसंबर 1949 की रात को केंद्रीय गुंबद के नीचे आंतरिक अहाते में स्थानांतरित किया गया था। 22–23 दिसंबर 1949 से पूर्व केंद्रीय गुंबद के नीचे किसी मूर्ति की संभावना को संभाव्यता की प्रबलता पर छोड़ दिया गया है;

(ii) दूसरा, हिन्दू साक्षियों के बयानों में इस बिन्दु पर भिन्नता है कि क्या प्रार्थनाएँ की गईं थी और यदि ऐसा है तो उन प्रार्थनाओं की प्रकृति जो 22–23 दिसंबर 1949 से पूर्व आंतरिक गर्भगृह के भीतर की गईं थी। कुछ गवाहों ने कहा है कि उन्होंने केंद्रीय गुंबद के नीचे प्रार्थना करने के लिए विवादित ढाँचे में प्रवेश किया था, जबकि अन्य गवाहों ने कहा है कि प्रार्थना केवल आंतरिक और बाहरी अहाते को अलग करने वाली रेलिंग पर की जा रही थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह मामला कि रेलिंग पर प्रार्थना की गयी, इस दावे से असंगत है कि 1934 से 1949 के बीच हिंदुओं द्वारा तीन गुम्बद वाली संरचना के अंदर प्रार्थना की जा रही थी। मुस्लिम गवाहों के अनुसार, हिंदुओं द्वारा तीन गुम्बद वाली संरचना के अंदर कोई प्रार्थना नहीं की जा रही थी; और

(iii) तीसरा, हिन्दू और मुस्लिम साक्षियों के कथनों के बीच इस बारे में भिन्नता है कि क्या 1934 और 1949 के बीच मस्जिद की तीन गुम्बदाकार संरचना के भीतर नमाज़ अदा की गई थी। मुस्लिम गवाहों ने लगातार यह बयान दिया कि नमाज अदा की जा रही थी और यह कि अंतिम शुक्रवार की नमाज 22 दिसंबर 1949 को अदा की गई थी। दूसरी ओर, हिंदू गवाहों के अनुसार, किसी भी मुसलमान ने तीन गुम्बद वाली संरचना पर नमाज अदा नहीं की और अगर कोई परिसर के पास घूमता था, तो उन्हें पड़ोस के साधुओं और बैरागियों के डर से उसे छोड़ना पड़ता था।

एन.11 विवादित ढाँचे की तस्वीरें

आयुक्त की दिनांक 3 अगस्त 1950 की रिपोर्ट

533. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले में कहा गया है कि 10 जनवरी 1990 के एक आदेश के अनुसार राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा ली गई तस्वीरों वाले एल्बम के तीन सेट हैं। डॉ. राकेश तिवारी (ओपीडब्ल्यू–14) जो राज्य पुरातत्व विभाग के निदेशक थे, उन्होनें तस्वीरों को सत्यापित किया। उनमें से एक, 204 तस्वीरों वाले रंगीन तस्वीरों के एक एल्बम को कागज संख्या

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

200 सी1/1–204 के रूप में अंकित किया गया था। काले और सफेद तस्वीरों के दूसरे एल्बम में 111 तस्वीरें हैं और उन्हें कागज संख्या 201 सी(1)/1–111 के रूप में अंकित किया गया था। एल्बम में कसौटी पत्थर के स्तंभ और विवादित ढाँचे की अन्य विशेषताओं की तस्वीरें थीं।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, डॉ राजीव धवन ने वाद 1 में प्लीडर आयुक्त श्री बशीर अहमद खान द्वारा प्रस्तुत 3 अगस्त 1950 की रिपोर्ट पर अवलम्ब लिया है। रिपोर्ट में तेरह तस्वीरें हैं। रिपोर्ट के प्रस्तर 1 और 8 से 10 में तस्वीर 1, 8, 9 और 10 के बारे में एक स्पष्टीकरण है। तस्वीर 1 में विवादित ढाँचे के बाहर मुख्य द्वार के मेहराब के ऊपर अरबी में लिखे गए 'अल्लाह' शब्द को दर्शाया गया है। आयुक्त की रिपोर्ट में कहा गया है:

> "1. तस्वीर संख्या 1 मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर से विवादित भवन की तस्वीर है। **मुख्य द्वार के मेहराब के कुछ ऊपर दाहिने और बाएँ छोटे–छोटे वृत्त हैं जिनमें "अल्लाह" शब्द अरबी में लिखा (खुदा हुआ) है।** इससे कुछ ऊपर अब हनुमानजी की तस्वीर लगी है। (चित्र के फ्रेम के नीचे 'अल्लाहू अकबर' अरबी अक्षर में दीवार में उत्कीर्णित है)। यह उत्कीर्णन उक्त चित्र द्वारा कवर किया गया है और इसलिए यह फोटो में दिखाई नहीं देता है और चूंकि हनुमानजी के चित्र को हटाये बिना इस हिस्से की तस्वीर नहीं ली जा सकती है, इसलिए मैं इसे अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट कर रहा हूं। मैंने चित्र को हटाने पर जोर नहीं दिया, ताकि किसी भी मुसीबत या बुरी स्थिति से बचा जा सके जो उत्पन्न हो सकती थी।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

534. तस्वीर 8 में अरबी अक्षरों में "अल्लाह" के तीन उत्कीर्णन हैं। इसे पूर्वी दीवार में मध्य मेहराब के भवन के अहाते से लिया गया है। आयुक्त की रिपोर्ट में कहा गया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"8. तस्वीर संख्या 8 पूर्वी दीवार में मध्य मेहराब के वादग्रस्त भवन के अहाते से ली गयी तस्वीर है। **मेहराब के शीर्ष से थोड़ा नीचे तीन स्थान पर अरबी अक्षरों में 'अल्लाह' खुदा हुआ है।** अल्लाह के नीचे मध्य में तोगरा उत्कीर्णन (...) तस्वीर में धुँधली है (लेकिन स्थल से इसे पढ़ा जा सकता है)।"

(प्रभाव वर्धित)

तस्वीर संख्या 9, पश्चिमी दीवार में आंतरिक मध्य मिहराब की थी। इसके बारे में आयुक्त ने कहा:

"9. तस्वीर संख्या 9 वादग्रस्त भवन के पूर्वी दीवार में आंतरिक मध मेहराब की तस्वीर है। **मेहराब के शीर्ष पर सुलिखित अल्लाह दीवार में खुदा हुआ है और इसके नीचे "बिस्मिल्लाह–हिर्रहमान–निर्रहिम" और उसके भी नीचे "लाइलाहा–इल्लल्लाह मुहम्मदुर रसूलल्लाह" खुदा हुआ है।**"

(प्रभाव वर्धित)

तस्वीर संख्या 10, मिम्बर या मंच का था जिसके संबंध में आयुक्त की रिपोर्ट में कहा गया है:

"10. तस्वीर संख्या 10 में वह मंच (मिम्बर) का है जिस पर मूर्तियों को रखा जाता है। **मिम्बर के बाईं ओर एक फ़ारसी उत्कीर्णन है जो फोटो में धुंधला है।**"

(प्रभाव वर्धित)

अंत में, तस्वीर संख्या 11 और 12 के संबंध में, आयुक्त की रिपोर्ट में निम्नलिखित संप्रेक्षण हैं:

"11. तस्वीर संख्या 11, तस्वीर संख्या 10 के उत्तर की ओर पश्चिम की दीवार में आंतरिक उत्तरी मेहराब की तस्वीर है। अरबी अक्षरों में सुलिखित अल्लाह दीवार में खुदा हुआ है।

12. तस्वीर संख्या 12, भवन के अन्दर से पश्चिमी दीवार में दक्षिणी मेहराब की तस्वीर है, जिसमें तस्वीर संख्या 11 की तरह ही अल्लाह का अरबी में उत्कीर्णन है।"

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तस्वीर संख्या 13 में वजू का चित्र था। आयुक्त की दिनांक 3 अगस्त 1950 की रिपोर्ट में संलग्न की गयी तस्वीरों में अल्लाह का उत्कीर्णन कई जगहों दिखाई देता है जैसा कि ऊपर कहा गया है। उनमें से तस्वीर संख्या 10 में उत्कीर्णन मंच पर रखे होने से मूर्तियों पर दिखाई नहीं देता है। आयुक्त ने यह भी उल्लेख किया है कि एक फारसी उत्कीर्णन है जो तस्वीर में धुँधला है। इसी तरह आयुक्त ने यह भी उल्लेख किया है कि तस्वीर संख्या 1 में उत्कीर्णन दिखाई नहीं देता क्योंकि यह हिन्दू मूर्ति के तस्वीर द्वारा ढँका हुआ था। आयुक्त ने पाया कि तस्वीर संख्या 8 में उत्कीर्णन धुँधला था लेकिन स्थल पर पढ़ा जा सकता था। जो भी हो, सुनवाई के दौरान हमने विद्वान अधिवक्ता की सहायता से 'अल्लाह' के उत्कीर्णन को तस्वीर संख्या 9 में और तस्वीर संख्या 11 और 12 में नोटिस किया है।

535. रंगीन तथा काले और सफेद तस्वीरों के एल्बम की बात करें तो, रंगीन एल्बम की तस्वीर 40 में, प्रवेश द्वार के ऊपर गरूड़ के दोनों तरफ दो शेरों का एक स्तंभ है। रंगीन तस्वीरों के एल्बम में अन्य बातों के साथ काले कसौटी पत्थर के पाषाण स्तंभों का चित्रण है। निम्नलिखित उद्धरण में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उनका और काले सफेद तस्वीरों के एल्बम का संदर्भ अभिलिखित किया है:

> "3435. इस न्यायालय के 10.01.1990 दिनांकित आदेश के अनुसरण में राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा ली गई तस्वीरों के एल्बम के तीन सेट हैं। डॉ. राकेश तिवारी, ओपीडब्ल्यू–14 राज्य पुरातत्व विभाग के निदेशक थे जिन्होंने ओपीडब्ल्यू 14 के रूप में बयान दिया और इन सभी तस्वीरों को सत्यापित किया। एक एल्बम जिसे पक्षकारों के विद्वत

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिवक्ता ने "रंगीन तस्वीरों का एल्बम" कहा है, में 204 तस्वीरें हैं और इसे पेपर सं. 200 C1/1–204 के रूप में अंकित किया गया है. दूसरे में 111 तस्वीरें हैं जो काली और सफेद हैं और पक्षकारों के अधिवक्ताओं ने आमतौर पर इसे "काले सफेद तस्वीरों का एल्बम" कहा है और यह पेपर सं. 201 C1/1–111 है। रंगीन एल्बम में इन स्तंभों की प्रासंगिक तस्वीरें हैं पेपर सं. 200 C1/48, 200 C1/50, 200 C1/51, 200 C1/52, 200 C1/54, 200 C1/87, 200 C1/104, 200 C1/105, 200 C1/109, 200 C1/114, 200 C1/115, 200 C1/141, 200 C1/146, 200 C1/147, 200 C1/166, 200 C1/167, 200 C1/181, 200 C1/186, 200 C1/187, 200 C1/195, 200 C1/199 और 200 C1/200. इसी तरह, काले और सफेद तस्वीरों के एल्बम में, संबंधित स्तंभों के प्रासंगिक तस्वीरें हैं 201 C1/55, 201 C1/57, 201 C1/76, 201 C1/88, 201 C1/91, 201 C1/103, 201 C1/104 और 201 C1/106। इन सभी तस्वीरों को इस निर्णय के परिशिष्ट 5 (ए) से 5 (डीडी) में सामूहिक रूप से संलग्न किया जा रहा है। ”

536. सुनवाई के दौरान, इस न्यायालय ने उन एल्बमों की तस्वीरों का परिशीलन किया जो विद्वत न्यायाधीश की उपरोक्त मताभिव्यक्तियों से मेल खाता है। काले कसौटी पत्थर के स्तंभों पर उत्कीर्णन हैं, जिनमें से अनेक गेरुआ रंग से से सज्जित हैं। काले कसौटी पाषाण स्तंभों पर बने कुछ आकृतियों को क्षतिग्रस्त कर दिया गया है। तस्वीरों के संबंध में जिन गवाहों ने बयान दिया, उनमें थे डॉ. टी पी वर्मा (ओपीडब्ल्यू 3/5) थे, जो श्री देवकी नंदन अग्रवाल की मृत्यु के बाद वाद 5 में पहले और दूसरी वादी के वाद मित्र बन गये थे। डॉ. टी. पी. वर्मा ने बयान दिया है कि वे स्थान जहां सिंदूर लगा हुआ है, मूर्तियों की आकृतियां हो सकती हैं, किंतु वे विनिर्दिष्ट रूप से यह नहीं बता सके कि यह यक्ष–यक्षिनी या जय–विजय की तस्वीर है

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

या नहीं। चूंकि डॉ. टी पी वर्मा की गवाही पर डॉ. धवन ने अपने तर्कों के दौरान जोर दिया है, इसलिए हम प्रासंगिक हिस्से को उद्धृत करते हैं :

> "उन स्थानों पर मूर्तियां हो सकती हैं जहां तस्वीर सं. 104, 105, 109, 110, 114 और 115 में सिंदूरी या लाल रंग लगा है लेकिन तस्वीरों में यह स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा है कि उसमें कौन से देवी–देवता या यक्ष–यक्षिणी या जय–विजय हैं। पूर्वोक्त तस्वीरों में से बाकी तस्वीरों में दिख रहे स्तंभों में उन स्थानों पर यक्ष – यक्षिणी या जय–विजय की दृष्यमान नहीं है जहां रंग लगा है। (पृष्ठ 130–131), इन स्तंभों की काली–सफेद तस्वीरों में मैं देवी–देवता, यक्ष–यक्षिणी या जय–विजय को पहचानने में असमर्थ हूं। चित्र सं. 55 में 'घट कलश' के ऊपर एक धुंधली आकृति है, जो किसी देवी–देवता या यक्ष–यक्षिणी की हो सकती है।"

आगे बढ़ते हुए, डॉ. वर्मा ने कहा:

> "फोटो सं. 141, 146 और 147 के रंगीन भाग में कुछ मूर्तियाँ हैं, जो देवी–देवताओं की हो सकती हैं लेकिन मैं उन्हें पहचान नहीं सकता। शेष तस्वीरों में मुझे कोई मूर्ति दिखाई नहीं देती। इन सभी तस्वीरों में जहां लाल रंग मौजूद नहीं है, मैं किसी भी देवी–देवता, यक्ष–यक्षिणी या जय–विजय की तस्वीरें नहीं देख पा रहा हूं।
>
> मैं इन तस्वीरों में दिखाई देने वाले स्तंभों पर किसी भी देवी –देवता, यक्ष–यक्षिणी या जय–विजय की मूर्ति को नहीं पहचान पा रहा हूं।"

दूसरी ओर, अन्य गवाहों ने तस्वीरों में विनिर्दिष्ट रूप से हिंदू मूर्तियों की मौजूदगी की बात की है। उनमें रघुनाथ प्रसाद पांडे (डीडब्ल्यू 3/5), महंत धरम दास (डीडब्ल्यू 13/1–1), रमेश चंद्र त्रिपाठी (डीडब्ल्यू 17/1)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और शशि कांत रूंगटा (डीडब्ल्यू 20/1) हैं। उच्च न्यायालय ने साक्ष्यों के बयानों में, विशेष रूप से तस्वीरों की स्पष्टता और चित्रों की पहचान के संबंध में, कुछ विरोधाभासों को नोट किया। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने धारित किया कि ये विभिन्नताएं सामान्य हैं क्योंकि गवाह मूर्ति विज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञ नहीं थे। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने डॉ. टीपी वर्मा की गवाही पर भी ध्यान दिया, जिसमें तस्वीर 188, 193–195, 189 और 200 के रंगीन हिस्सों में देवी–देवताओं के चित्रों की जानकारी थी। हालांकि, उन्होंने यह भी कहा कि आकृतियों के धुंधला होने के कारण वह साफ–साफ यह पहचानने में अक्षम थे कि किन देवी–देवताओं का चित्रण किया गया है। साक्ष्यों की समीक्षा के बाद न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे :

> "3443. उपरोक्त के मद्देनजर, हमें यह धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि विवादित इमारत के अंदर और बाहर लगे स्तंभों में कुछ मानव चित्र हैं और कुछ स्थानों पर हिंदू देवी–देवताओं की कुछ छवियां प्रतीत होती हैं।"

अभिलेख में मिली तस्वीरों में इस्लामी मूल के और ऐसे चित्रों के उत्कीर्णन हैं जो हिन्दू पूजा विधि से संबंधित हैं। विवादित ढ़ाचे में दोनों का अस्तित्व साथ–साथ था।

537. न्यायमूर्ति शर्मा ने यह मानते हुए कि मस्जिद के भीतर स्तंभों पर हिन्दू देवी–देवताओं के चित्र थे, यह धारित किया कि विवादित ढांचे का चरित्र, इस्लाम के सिद्धांतों के तहत, मस्जिद का नहीं था। इसके विपरीत न्यायमूर्ति एस यू खान न्यायमूर्ति अग्रवाल के विचार से सहमति थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद 4 में विषय सं. 19 (एफ) था:

> "क्या प्रश्नगत इमारत के भीतर और बाहर के स्तंभों में हिन्दू देवी – देवताओं के चित्र हैं? यदि निष्कर्ष सकारात्मक है, तो क्या उस हिसाब से प्रश्नगत इमारत का चरित्र,इस्लाम के सिद्धांतों के तहत, मस्जिद का नहीं हो सकता? "

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रश्नगत इमारत के अंदर और बाहर कुछ स्तंभों पर हिंदू देवी–देवताओं के कुछ चित्रों के अस्तित्व के बावजूद, संरचना का मस्जिद के रूप में चरित्र अप्रभावित है। उनका विचार यह था कि यद्यपि इस्लामी सिद्धांतों के तहत किसी ऐसे स्थान पर जहां नमाज अदा की जानी है, मानव या पशु आकृतियों की अनुमति नहीं है, उन आकृतियों वाले स्तंभों के अस्तित्व के बावजूद, मुसलमानों ने विवादित इमारत को मस्जिद माना और कम से कम अस्सी साल तक, नमाज अदा की जब तक कि 29 दिसंबर 1949 को कुर्की का आदेश जारी नहीं किया गया। उनके विचार में, जहां एक विशेष पूजा पद्धति में विश्वास करने वाले लोग इमारत को इस्लामी इबादत की जगह मानते थे, किसी तीसरे पक्ष के लिए, विशेष रूप से लंबे समय के बाद, यह कहने की गुंजाइश नहीं थी कि इमारत उस मजहब के सिद्धांतों के अनुसार बनी मस्जिद नहीं थी। मामले के इस पहलू को श्री पी एन मिश्रा द्वारा इस्लाम के सिद्धांतों पर निवेदित कथन पर विचार करते समय पहले ही जाँचा जा चुका है। इस पर ध्यान देना पर्याप्त होगा कि 3 अगस्त 1950 दिनांकित आयुक्त की रिपोर्ट के साथ–साथ रंगीन और काले और सफेद तस्वीरों के एल्बम वाले अभिलेख में मिले साक्ष्य, प्रथमतः विवादित संरचना पर अल्लाह उत्कीर्णित होना दर्शित करते हैं,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

द्वितीयतः हिन्दू देवी–देवताओं की आकृतियों वाले काले कसौटी पत्थर स्तंभों की उपस्थिति और तृतीयतः दोनों ओर शेरों वाले गरुण का चित्रण जो गैर इस्लामिक मूल का प्रतीत होगा। इस्लामी मजहबी मूल के उत्कीर्णन और हिन्दू धार्मिक प्रकृति के उत्कीर्णन विवादित संरचना पर साथ–साथ मौजूद रहे हैं। वे इस बात का संकेत देते हैं कि इस उपमहाद्वीप में बहुल संस्कृतियों की विविधता में मानव जाति की मूलभूत एकता पर आधारित सार्वभौमिक सत्य अंतर्निहित है।

538. डॉ. धवन ने तर्क दिया कि कसौटी स्तंभों पर हिन्दू देवी–देवताओं की कोई आकृति नहीं है। उन्होंने कहा कि फूलदार डिजाइन जो उन पर पायी गयी थी इस्लामी वास्तुकला में मिलती है। तर्क यह है कि सजावटी उत्कीर्णन और ऩक्काशी मस्जिद के चरित्र को कमतर नहीं करते और इसलिए हिन्दुओं द्वारा इस प्रभाव का एक धार्मिक प्रश्न का तर्क दिया गया था कि उत्कीर्णन अपने आप में गैर–इस्लामी था। डॉ. धवन का यह कहना सही नहीं है कि कसौटी पत्थर स्तंभों पर हिन्दू देवी–देवताओं का चित्रण नहीं है। साक्ष्य इसके विपरीत स्थिति का संकेत देते हैं। डॉ. धवन ने रंगीन तस्वीरों वाले एल्बम की दो विशिष्ट तस्वीरों, तस्वीर सं. 128 और 129 का अवलंब लिया है। इन तस्वीरों को भीतरी गुंबद के नीचे रखा गया है। डॉ. धवन ने कहा कि तस्वीरों में से एक गुरु दत्त सिंह की है , जो सिटी मजिस्ट्रेट थे, जबकि एक और तस्वीर के के नैय्यर की है, जो तत्समय जिला मजिस्ट्रेट थे जब दिसंबर 1949 में यह घटना हुई थी। डॉ. धवन के अनुसार, ये 1990 में संरचना के भीतर रखी गई तस्वीरें हैं, जो कि यथास्थिति के आदेश के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उल्लंघन में रखी गयी थीं। डॉ. धवन ने महंत भास्कर दास (डीडब्ल्यू 13/1) के साक्ष्य की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिन्हें प्रति परीक्षण के दौरान फोटो सं. 128 और 129 दिखाए गए थे। के के नैय्यर के कैरियर का अवलोकन करने वाले व्यक्ति की गवाही के अंशों का अवलंब लिया गया है। इन तस्वीरों के आधार पर, यह कहा गया कि के के नैय्यर और गुरु दत्त सिंह ने उस समय पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया जब दिसंबर 1949 में मस्जिद को अपवित्र किया गया।

हमने अभिलेखों की पूर्णता के लिए डॉ. धवन के कथन को उद्धृत किया है और जहाँ तक इसका उस कारण से संबंध था जिसके कारण विवादित संरचना के दक्षिणी गुंबद में राज्य सरकार के दो सार्वजनिक अधिकारियों की तस्वीरों को लगाया गया।

एन. 12 विष्णु हरि उत्कीर्णन

539. 7 फरवरी, 2002 को वाद 5 के वादियों के अधिवक्ता ने "अयोध्या विष्णु हरि मंदिर उत्कीर्णन" से संबंधित 3 फरवरी, 2002 दिनांकित डॉ. के. वी. रमेश की रिपोर्ट को उच्च न्यायालय के समक्ष रखा। दस्तावेजों को साक्ष्य अधिनियम, 1872 के उपबंधों द्वारा यथा अपेक्षित " आपत्ति और साक्ष्य के अध्यधीन" अभिलेख पर लिया गया। विचारण के दौरान, वाद 5 की वादीगण ने दावा किया कि उपरोक्त उत्कीर्णन 6/7 दिसंबर 1992 को विवादित संरचना के मलबे से मिला था, जिसे ध्वस्त कर दिया गया था। उत्कीर्णन पत्थर पर है जिसकी विमा 115 सेमी X 55 सेमी है। न्यायालय के आदेश के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तहत, एक ई–स्टॉप (पेपर सं. 203 C–1/1) तैयार किया गया और डॉ. के. वी रमेश (ओपीडब्ल्यू–10) द्वारा कूटवाचन किया गया जो एक पुरालेखशास्त्री हैं। पाठ के अनुवाद को वाद 5 में प्रदर्श 2 के रूप में चिह्नित किया गया। वादीगण का कथन यह है कि विवादित स्थल पर विष्णु हरि मंदिर था और मंदिर का विध्वंस कर के ही इसके स्थान पर मस्जिद बनाई गयी थी। इस खंड में, उत्कीर्णन ही कथन का आधार हैं।

540. कार्यवाहियों के दौरान अनुवाद के सारवान अंशों को संदर्भित किया गया है जो निम्नवत उद्धृत है:

> "पंक्ति 13–14, श्लोक 19–उनके भतीजे (वस्तुतः भाई के बेटे), बहुचर्चित मेघदूत, जो कि प्रख्यात है, जिसने अनयचंद्र को पराभूत किया गया था, ने अपने पूर्वज पृथ्वी के देवता गोविंदचंद्र की कृपा से साकेतमंडल का आधिपत्य अर्जित किया।
> पंक्ति 14, श्लोक 20– न केवल उसने, जो कि शक्तिशाली था, ने उन अभिमानी योद्धाओं को समाप्त कर दिया, जो उसके द्वारा लगातार लड़ी गई लड़ाइयों में असीम मद में झूम रहे थे, बल्कि उन्होंने (अपने लोगों को) एक उत्कृष्ट सेना भी दी जो (ऐसे सैनिकों से भरी थी जो) कल्पतरु के समान थे।
> पंक्ति 14–15, श्लोक 21–उनके द्वारा, जो सांसारिक बंधनों के महासागर शीघ्र पार जाने के आसान साधनों पर विचार कर रहे थे, (भगवान) विष्णु–हरि के इस सुंदर मंदिर को एक ऐसे पैमाने पर बनवाया गया था जो कि पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा पहले कभी नहीं किया गया था, जो कि काटे गये विशाल और उदात्त पत्थरों की पंक्तियों से सुगठित रूप से बनाया गया था।
> पंक्ति 15–16, श्लोक 22–अल्हन का स्थान, जिसके अथक कंधे राजा गोविंदचंद्र के साम्राज्य की स्थिरता के लिए सुरक्षा कुंडी की तरह थे, बाद में उनके छोटे (पुत्र?) अयुषचन्द्र द्वारा ले लिया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पंक्ति 16, श्लोक 23–महान् कवियों ने उनकी तुलना सहसंक और सुद्रक से करने का साहस नहीं किया, भय के कारण प्रेम के देवता को छोड़कर किसी ने भी, उनकी उपस्थिति में प्रत्यंचा चढ़ाने का साहस नहीं किया।
पंक्ति 17, श्लोक 24–उनके द्वारा जो अच्छे आचरण के थे और कलह से घृणा करते थे, अयोध्या में निवास करते, जिसमें अट्टालिकाएं, बौद्धिक और मंदिर थे, साकेत मंडल में हजारों कुएं, तालाब, जलाशय, धर्मशाला आदि बनवाए गये।"

डॉ. रमेश ने उत्कीर्णन के बारे में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में कहा गया है कि :

"संलग्न पाषाण उत्कीर्णन एक आयताकार पाषाण स्लैब पर उकेरा गया है जिसका लिखित क्षेत्र मोटे तौर पर 115 से. मी. X 55 से. मी. का था। वर्तमान समय में यह स्लैब दो खंड में टूटा हुआ है जिससे लगभग प्रत्येक पंक्ति में दो अक्षरों का नुकसान हो गया है। इसके अलावा, पहली और अंतिम दो पंक्ति को भारी नुकसान हुआ है जिसके परिणामस्वरूप कई अक्षर मिट गये हैं। कुल मिलाकर, अक्षरों को नुकसान से पाठ्य सामग्री की पूर्ण व्याख्या करने में लेखनविदों और संस्कृतविदों को बाधा आई है। फिर भी, समग्र उद्देश्य और इसके भाव का सार संदेह से परे स्पष्ट है। पहली बार में एक जल्दबाजी में तैयार की गई स्टांपेज और हाल के दिनों में, एक उच्च गुणवत्ता की स्टांपेज के साथ–साथ कुछ तस्वीरें डॉ. एसपी गुप्ता अध्यक्ष, भारतीय पुरातत्व समिति, नई दिल्ली द्वारा प्रदान की गई थीं, जिसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूं।

शिलालेख का पाठ काफी शुद्ध संस्कृत में लिखा गया है, जो कि उस अवधि की सामान्य विशेषता है जिससे शिलालेख संबंधित हैं, अर्थात् 12 वीं शताब्दी ई. के मध्य की। यह शिलालेख किसी भी तरह से कालानुक्रमित नहीं है, लेकिन इसे पुरालेखीय आधार पर और प्रश्नगत शिलालेखीय पाठ के आधार पर विश्वास के साथ, 12 वीं शताब्दी के मध्य का कहा जा सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किंतु आरंभ में ही भगवान शिव को प्रणाम करनेपुरालेखीय एवं लेखन विधीय विशेषताएं के लिए शिलालेख का पूरा पाठ काफी उच्च साहित्यिक उत्कृष्टता वाले संस्कृत पद्य में है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पुरालेखीय एवं लेखन विधीय विशेषताएं उस अवधि के सामान्य लक्षण है जिससे शिलालेख संबंधित हैं, अर्थात 12 वीं शताब्दी ई. के मध्य का। यह शास्त्रीय संस्कृत से उत्तर भारतीय स्थानीय भाषाओं में संक्रमण का यह एक महत्वपूर्ण काल था। इसे वर्तमान सहित समकालीन शिलालेखों में अनुनासिक और अनुस्वार के प्रयोग और दन्ती एवं तालव्य के उपयोग में भ्रम से आसानी से पहचाना जा सकता है।

जहां तक मूल पाठ की विषय–वस्तु का संबंध है, यह मध्ययुगीन अभिमान का पूर्ण रूप से प्रतिबिंब है जहां तक कि शिलालेख में वर्णित नायकों के गीतों का संबंध है। इस पुरालेख से हमें जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी मिलती है, वह है गहड़वाल वंश के गोविंदचंद्र का उल्लेख, जिसने 1114 से 1155 ई. तक एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया था। श्लोक 1 पूर्णतः खो चुका है। श्लोक 2, जो बुरी तरह से कटे हुए हैं, त्रिविक्रम को संदर्भित करता है और इसलिए, भगवान विष्णु की प्रशंसा में लिखा हुआ हो सकता है। श्लोक 3, भी जो बुरी तरह से क्षतिग्रस्त है, भार्गव–परसुराम द्वारा क्षत्रिय वंश के लगभग संम्पूर्ण संहार से संबंधित प्रतीत होता है। श्लोक 4 क्षत्रिय वंश के उदय का, जिसमें जन्में वीरों ने ह्रासमान योद्धा कुल को पुनर्जीवित कर दिया। श्लोक 5 के अनुसार उस महान परिवार में जनता के प्रिय का जन्म हुआ। श्लोक 7 सांसारिक चीजों से विरक्ति की बात करता है, जबकि श्लोक 8 हमें बताता है कि उन्होंने अपना राज्य और संपदा अपने पुत्र सलक्सना (Sallaksana) को दिया। श्लोक 9 से 14 में इस सलक्सना (Sallaksana) की प्रशंसा की गयी है जिसमें कवि ने उच्च स्तर की काव्य कल्पना प्रदर्शित की है। श्लोक 15 उनके पुत्र के जन्म को संदर्भित करता है, जिसका अपने पिता के जैसा दिखना लोगों की चर्चा का विषय था। श्लोक 16 इस पुत्र को अल्हन के रूप में संदर्भित करता है और उसे अपने परिवार की पिछली शक्ति और महिमा को पुनः प्राप्त करने का श्रेय देता है। जहां अगले दो श्लोक (17 और 18) में उनकी पारम्परिक प्रशंसा है, वहीं श्लोक 19 में यह बताया गया है कि उनके मेघसुत नाम के भतीजे ने किसी अनयचन्द्र को पराजित कर पृथ्वी के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वरिष्ठ प्रभु, गोविंदचंद्र की कृपा से साकेत –मंडल का आधिपत्य प्राप्त किया। जबकि श्लोक 20 में इस नायक की सैन्य शक्ति की सराहना की गयी है। श्लोक 21 में यह महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है कि स्वर्ग में स्थान सुनिश्चित करने के लिए, मेघसुत ने भगवान विष्णु–हरि के लिंए एक भव्य पत्थर का मदिर बनाया। श्लोक 22 से हमें पता चलता है कि जो गोविन्दचन्द्र के साम्राज्य की स्थिरता के लिए जो उत्तरदायी था, उसका स्थान अयुषचन्द्र द्वारा साकेत –मंडल के महाराज के रूप में लिया गया। श्लोक 23 में उनकी पारंपरिक प्रशंसा है।श्लोक 24 के अनुसार उन्होंने अयोध्या नगर में अपना निवास बनाया जो कि विशाल भवनों बौद्धिकों और मंदिरों से सुसज्जित था और पूरे साकेत मंडल में हजारों छोटे बड़े जलाशय थे।श्लोक 25 और 26 में आयुषचन्द्र की और पारंपरिक प्रशंसा है। श्लोक 27 जो कि अंशतः क्षतिग्रस्त है भगवान विष्णु के नरसिंह कृष्ण वामन और राम अवतार का निरूपण है। अत्यधिक क्षतिग्रस्त श्लोक 28 राजा को संदर्भित करता है संभवतः अयुषचंद्र को पश्चिम से (मुस्लिम आक्रांताओं से) खतरे को हटाते हुए। श्लोक 29 जो अपूर्ण है राजा अयुषचंद्र को उद्धृत करता है।

साकेत –मंदला का संदर्भ दिलचस्प है। यह सर्वविदित है कि उत्तर भारत दक्षिण की भांति, प्रशासक खंडो में विभाजित किया गया था, जिन्हें मंडल कहा जाता था (एच.सी. रे की कृति में मंडला शब्द देखें 'उत्तर भारत का वंशीय इतिहास', ॥ संस्करण,1973, दिल्ली)।

541. गवाह के साक्ष्य पर चर्चा करते हुए, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया है कि एक एपीग्राफिस्ट के रूप में ओपीडब्ल्यू –10 की विशेषज्ञता किसी भी पक्ष द्वारा विवादित नहीं हो सकती है। ओपीडब्ल्यू–10 एक गवाह के रूप में प्रस्तुत हुए और अपने द्वारा पत्थर के शिलालेख की सामग्री का अनुवाद सत्यापित किया। साक्षी के अनुसार, शिलालेख बारहवीं शताब्दी ई. के हैं और उससे बारहवीं शताब्दी ई. में अयोध्या में निर्मित विष्णु हरि मंदिर के अस्तित्व को नोट किया गया है। ओपीडब्ल्यू–10 ने कहा कि अभिव्यक्ति इंगित करती है कि अयोध्या साकेत मंडल का मुख्यालय है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसके अलावा, हालांकि मंदिर का निर्माण मेघसुत द्वारा किया गया था, शिलालेख उनके उत्तराधिकारियों द्वारा लिखवाया गया था। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने फैसले के दौरान धारित किया है कि शिलालेख की वास्तविकता और प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता, हालांकि यह मुस्लिम पक्षों की ओर से तर्क दिया गया था कि जिस तरह से यह दावा किया गया था कि यह मिला है वह भरोसेमंद नहीं था। यह दर्शाने के लिए कि इसे विध्वंस से पहले विवादित स्थल पर इमारत में लगा दिया गया था। इसलिए, उनके द्वारा यह कहा गया कि शिलालेख अपने आप में इस बात का साक्ष्य नहीं कि एक विष्णु हरि मंदिर मौजूद था या विवादित स्थल पर बनाया गया था।

542. डॉ. के. वी. रमेश (ओ. पी.डब्ल्यू.–10) ने अपने मुख्य परीक्षण के स्थान पर शपथ–पत्र में कहा है कि वह मद्रास विश्वविद्यालय से संस्कृत भाषा और साहित्य में एम. ए. हैं और कर्नाटक विश्वविद्यालय से 1965 में इतिहास में पीएचडी हैं। वह सरकारी शिलालेख विद के रूप में एएसआई में भर्ती हुए और 1966 में संस्कृत शिलालेखों के लिए यूपीएससी द्वारा उप–अधीक्षण शिलालेख के रूप में चयनित हुए। उन्हें पदोन्नत किया गया और अंततः 30 जून 1993 को सेवानिवृत्ति से पहले 1992 में एएसआई के संयुक्त निदेशक बने। डॉ. रमेश ने कहा कि उनसे डीएन अग्रवाल और उनके अधिवक्ता द्वारा, उपलब्ध कराए गए ई–स्टैंपेज के आधार पर बीस–पंक्ति के शिलालेख पढ़ने के लिए, संपर्क किया गया , जो वाद 5 में अभिलेख पर पेपर सं. 203 सी–1/1 था। उन्होंने तदनुसार ई–स्टांपेज का का अनुवाद किया और डीएन अग्रवाल को रिपोर्ट सौंप दी। अपनी जिरह के दौरान, डॉ. रमेश ने कहा कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उन्होंने दिसंबर 1992 में शिलालेख की एक अतिरिक्त सुपाठ्य तस्वीर भेजी गयी, जब इसे दिल्ली में डॉ. एसपी गुप्ता द्वारा दिया गया। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने दिल्ली में एएसआई में अपने कार्यालय में स्वंय शिलालेख को आंशिक रूप से पढ़ा था। उन्होंने कहा कि वह एक बार भारतीय पुरातत्व समिति के कार्यालय में कई अन्य व्यक्तियों के साथ इकट्ठे हुए थे, जिसका नेतृत्व डॉ. एसपी गुप्ता कर रहे थे। गवाह ने कहा कि वह गहडवाली नागरी लिपि के शिलालेखों से अवगत था और उसने एपिग्राफिया इंडिका में प्रकाशित राजवंश के लगभग दस से बीस शिलालेख देखे थे। साक्षी ने उत्तर और दक्षिण भारत में पाए गए संस्कृत शिलालेखों पर पचास से अधिक लेख लिखे थे। उनमें से, दस शिलालेख उत्तर भारत के थे, जो सभी बारहवीं शताब्दी ईस्वी के अंत तक या उससे पहले की अवधि से संबंधित थे। अपनी जिरह के दौरान, गवाह ने उस आधार को समझाया, जिस पर यह कहा गया था कि शिलालेख बारहवीं शताब्दी के थे:

> "मेरे अनुसार, विचाराधीन शिलालेख की अवधि 12 वीं शताब्दी कही जा सकती है, और जहां भी मैंने विशेष रूप से 12 वीं शताब्दी के मध्य की अवधि का उपयोग किया है, मेरा मतलब है कि यह लगभग 1130 से 1170 ईस्वी तक था। यदि एक बार मैंने 12 वीं शताब्दी के मध्य के आसपास की अवधि का उपयोग किया है, तो यह वही रहेगा, भले ही मैं बाद में इसे 12 वीं शताब्दी के रूप में संदर्भित करता हूं। मेरी रिपोर्ट के पृष्ठ 1 पर पैरा 2 में मेरे द्वारा बताए गए पुरालेखीय और आंतरिक साक्ष्य के आधार पर ही (प्रदर्श ओओएस 5–2) मैं विचाराधीन शिलालेख पाठ की अनुमानित अवधि पर पहुँचा।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

543. एएसआई में उनकी योग्यता और अनुभव के आधार पर डॉ. के वी रमेश की विशेषज्ञता रिकॉर्ड की बात है। सुन्नी वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने हालांकि डॉ. रमेश की गवाही के संबंध में निम्नलिखित पहलुओं पर जोर देने का प्रयास किया:

(i) श्लोक 27 के अनुवाद में, भगवान विष्णु के अवतारों में –नरसिंह, कृष्ण, वामन और राम वर्णित है। इसलिए, कथन के अनुसार, शिलालेख में भगवान राम पर कोई विशेष महत्व या ध्यान नहीं दिया गया है।

(ii) डॉ. रमेश उत्तर भारत के इतिहासकार नहीं हैं और उनके अनुसार शिलालेखों की तब तक व्याख्या करना संभव नहीं है जब तक कि पुरालेखशास्त्री समकालीन इतिहास को न जान ले।

(iii) डॉ. रमेश को भारतीय पुरातत्व सोसाइटी (जो एएसआई, जो सरकारी निकाय है, से भिन्न है) के कार्यालय में डॉ. एस. पी. गुप्ता के साथ बैठने का अवसर मिला;

(iv) डॉ. एस. पी. गुप्ता, जो ओ. पी. डब्ल्यू.–3 हैं, ने 1975 से पूर्व आर.एस.एस. का सदस्य होना स्वीकार किया है और इसलिए, पूर्वाग्रह से इंकार नहीं किया जा सकता है;

(v) डॉ. रमेश ने अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ 9 पर स्पष्ट किया कि श्लोक 5–पंक्ति 4 और 5 में, कुलीन परिवार का संदर्भ देते हुए, उन्होंने राम जन्मभूमि को वीरता के जन्म–स्थान के रूप में अनुवाद किया है, जिसका अर्थ है कि राजवंश के क्षत्रिय परिवार का जन्म–स्थान। वह स्पष्ट करते हैं कि इस परिवार के सदस्य बाद में मेघसुत के समय साकेत मंडल के प्रधान बन गए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह, कथन में दर्शित करता है कि राम जन्मभूमि का संदर्भ भगवान राम के जन्म–स्थान के लिए नहीं था, बल्कि उस समय के राजवंश के जन्म–स्थान के लिए था; और

(vi) रिपोर्ट के पैरा 13 में श्लोक 27 में भगवान विष्णु की प्रशंसा की गई है और भगवान राम का कोई विशेष उल्लेख नहीं है।

544. इस कथन का मूल्यांकन करते समय, हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि डॉ. के. वी. रमेश की योग्यता और अनुभव पर संदेह करने के लिए कोई ठोस आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। डॉ. रमेश कई वर्षों से एएसआई में नियुक्त थे और अंततः संयुक्त महानिदेशक बने। उन्होंने मूल शिलालेख का अनुवाद प्रस्तुत किया है और उस आधार का भी उल्लेख किया है जिस पर उन्होंने यह कहा है कि यह बारहवीं शताब्दी से संबंधित है। उनका कहना है कि पुरालेखशास्त्रियों ने गोविंदचंद्र का उल्लेख किया है जो गहड़वाल राजवंश से संबंधित थे और 1114 से 1155 ई. के बीच शासन किया। इसके अतिरिक्त, शुद्ध संस्कृत, लेखनविधि और पुरालेखीय विशेषताएं (डॉ. रमेश के अनुसार) अभिपुष्टि करती हैं कि शिलालेख बारहवीं शताब्दी ई . से संबंधित हैं। डॉ. रमेश ने भगवान विष्णु हरि को समर्पित मेघसुत द्वारा एक श्रेष्ठ पत्थर मंदिर के निर्माण का उल्लेख करने वाले श्लोक 21 से 24 के बारे में भी बताया। उनके बाद अयुषचन्द्र आये जिन्होंने अयोध्या पर शासन करते हुए साकेत मंडल में जलाशय बनवाए। श्लोक 27 जो अंशतः क्षतिग्रस्त हो गया है, उसकी व्याख्या डॉ रमेश ने अपने मुख्य परीक्षण में निम्नवत की है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"13. श्लोक 27 (आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त) विष्णु के अवतारों नरसिंह (जिन्होंने हिरण्यकश्यप को मारा था) कृष्ण (जिन्होंने बाणासुर को मारा था) वामन (जिन्होंने बाली को मारा था) और राम (जिन्होंने दस शीश वाले रावण को मारा था) का वर्णन है।"

इसलिए उन्होंने कहा कि मेघसुत द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर अयोध्या की मंदिर नगरी में बारहवीं शताब्दी ईस्वी से अस्तित्व में रहा होगा। हमें इस स्तर पर ध्यान देना चाहिए कि शिलालेख की प्रामाणिकता को चुनौती नहीं दी गई है। पाषाण स्लैब की भाषा बारहवीं शताब्दी ई. की संस्कृत है। चुनौती उस स्थान और तरीके से संबंधित है जिसमें शिलालेख मिला, जिस पर अब विचार किया जाएगा।

545. शिलालेख मिलने के संबंध में, वाद 5 के वादी गण ने अशोक चंद्र चटर्जी (ओपीडब्ल्यू–8) के साक्ष्य का अवलंब लिया। गवाह जो कि फैजाबाद का निवासी है, ने कहा कि वह मैजेस्टिक ऑटोमोबाइल के नाम से एक फर्म में एक भागीदार है और साथ ही मैजेस्टिक टॉकीज का मालिक है। उसने "पंचजन्य" नामक साप्ताहिक पत्र का फैजाबाद क्षेत्र का रिपोर्टर होने का दावा किया। शिलालेख मिलने के संबंध में ओपीडब्ल्यू–8 ने कहा कि 6 दिसंबर 1992 को जब विवादित संरचना को ध्वस्त कर दिया गया था, तो वह तीन गुंबद वाली संरचना के पश्चिमी तरफ समाचार संग्रह के लिए स्थल पर मौजूद था। जब उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा राम जन्मभूमि परिसर के पूर्वी हिस्से में समतल करने का काम किया जा रहा था, तो कुछ पत्थर पाए गए जो मंदिर के खंडहर प्रतीत हुए। यह जानकारी मिलने पर वे उस स्थल पर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पहुंचे और समतल करने की प्रक्रिया के दौरान मिले मंदिर के खंडहरों सहित सभी मूर्तियों को उत्तर प्रदेश के पुरातत्व विभाग के राम कथा संग्रहालय, राज सदन अयोध्या की अभिरक्षा में दे दिया गया।

546. ओपीडब्ल्यू–8 ने कहा कि 6 दिसंबर 1992 को जब वह विवादित संरचना के पीछे खड़ा था, उसने पश्चिमी दीवार के एक हिस्से का प्लास्टर टूटा हुआ देखा और असमान आकार के ईंट पत्थर दीवार में लगा देखा। संरचना के विध्वंस के दौरान एक स्लैब (साढ़े तीन फीट लंबा, दो फीट चौड़ा और छह इंच मोटा) नीचे गिरा। वह कहते हैं कि गिरे हुए कई स्लैब किसी मंदिर के खंडहर प्रतीत हुए और स्थल पर मौजूद एक संत ने उन्हें सूचित किया कि स्लैब एक पुराने मंदिर का शिलालेख प्रतीत होता है। शिलालेख कार सेवकों द्वारा उठा लिया गया जो इस शिलालेख को उठाकर राम कथा कुंज के भवन के पास ले आए। गवाह ने कहा कि बाद में पुलिस ने स्लैब को हिरासत में ले लिया। गवाह ने कहा कि 6 दिसंबर 1992 को मस्जिद के विध्वंस के दिन उनका परिचय डॉ. सुधा मलय्या से हुआ। 13 दिसंबर 1992 को, डॉ. सुधा मलय्या ने विध्वंस के दौरान मिले स्लैब का निरीक्षण करने में उनकी मदद के लिए उनसे संपर्क किया। डा. एस. पी. गुप्ता और डा. सुधा मलय्या तदनुसार राम कथा कुंज के भवन में आए। गवाह ने कहा कि 15 दिसंबर, 1992 को शिलालेख की एक फोटो दैनिक ' आज' के लखनऊ संस्करण में प्रकाशित हुई थी। अपनी जिरह के दौरान, गवाह ने कहा कि उसे वह जगह नहीं पता थी जहां गिरने से पहले स्लैब दीवार में लगा था। उन्होंने दावा किया कि शिलालेख/स्लैब की तस्वीर उन्हें रात में किसी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ऐसे व्यक्ति द्वारा सौंपी गई थी जिसे वह पहचान नहीं सके। उन्होंने यह भी कहा कि स्लैब की तस्वीर 13/20 दिसंबर 1992 के पंचजन्य में प्रकाशित हुई थी।

547. ओपीडब्ल्यू–8 की गवाही को डॉ. धवन ने निम्नलिखित आधारों पर चुनौती दी है:

(i) साक्षी ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा कि वह विध्वंस के समय विवादित भवन के पश्चिमी तरफ खड़ा था;

(ii) अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी ने कहा कि वह विध्वंस के समय विवादित भवन के दक्षिणी तरफ खड़ा था और धूल के कारण कुछ भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था;

(iii) इसके बावजूद उसने उत्कीर्णन वाले स्लैब को देखने का दावा किया है

(iv) फिर वह कहता है कि विध्वंस के अगले दिन वह डॉ. सुधा मलय्या और डॉ. एस. पी. गुप्ता के साथ इस शिलालेख की तस्वीर लेने गया;

(v) डा. एस. पी. गुप्ता 1975 के पूर्व आर.एस.एस. के सदस्य थे और डॉ. रमेश ने भी डा. एस. पी. गुप्ता परिचित होने का उल्लेख किया है;

(vi) साक्षी विवादित स्थल की तस्वीर यह कहते हुए पहचान नहीं पाया कि उन तस्वीरों से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या यह पश्चिमी सीमा थी क्योंकि वह अपने जीवनकाल में केवल एक बार उस स्थान पर गया था; और

(vii) प्रारंभ में साक्षी ने कहा कि दर्शित शिलालेख दक्षिणी गुंबद की पश्चिमी दीवार से गिरा था किंतु चित्र देखने के पश्चात् उसने कहा कि वह शिलालेख

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जो संरचना के विध्वंस के पश्चात् उपलब्ध था, वह दीवार पर लगा प्रतीत नहीं हुआ।

साक्ष्य की गवाही में विसंगतियां, जिसका डॉ. धवन द्वारा प्रचुर विश्लेषण किया गया है, से गवाह की विश्वसनीयता, स्थल पर उसकी उपस्थिति और 6 दिसंबर 1992 को विवादित संरचना के विध्वंस के दौरान स्लैब के मिलने पर गंभीर संदेह उत्पन्न हो जाता है। 6 दिसंबर 1992 को हुए विध्वंस के बाद विवादित स्थल से पत्थर के शिलालेख की प्राप्ति को स्थापित नहीं किया गया है। अभिरक्षा की कड़ी को स्थापित नहीं किया गया है। पत्थर के शिलालेख की बरामदगी के बारे में ओपीडब्ल्यू–8 के साक्ष्य पर विश्वास नहीं होता। एक ओर, उसकी गवाही को पढ़ते हुए, यह स्पष्ट है कि उठने वाली धूल के ढेर के कारण साक्षी को कुछ भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था। उन्होंने किस प्रकार एक शिलालेख को देखा या जिस स्लैब पर वह लगा था उसे देखा, यह तर्कसंगत स्पष्टीकरण से परे है। वास्तव में, अपनी जिरह के दौरान, गवाह ने कहा कि:

> "चट्टान का शिलालेख/स्लैब जो संरचना के विध्वंस के बाद उपलब्ध था, दीवार में लगा प्रतीत नहीं होता।"

इस प्रकार ओपीडब्ल्यू–8 के साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता कि शिलालेख/स्लैब विवादित स्थल से प्राप्त हुआ था।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

548. चूंकि शिलालेख का विवादित संरचना से मिलना साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं है, वाद 5 के वादी द्वारा मामले में शिलालेख के आधार पर जोड़ी गयी कड़ी अनुपस्थित पायी गयी। शिलालेख से अयोध्या में बारहवीं शताब्दी ई. के विष्णु हरि मंदिर के अस्तित्व का पता चलेगा लेकिन एक बार शिलालेख का प्रश्नगत स्थल से मिलना अविश्वसनीय हो जाए तो शिलालेख इस निष्कर्ष का आधार नहीं हो सकता कि शिलालेख में सन्दर्भित विष्णु हरि मंदिर वही मंदिर था जो ध्वस्त संरचना के स्थान पर अस्तित्वमान था।

एन.13 आस्था और विश्वास का ध्रुवतारा

549. इतिहास के कालक्रम में, विष्णु के अवतार के रूप में भगवान राम के जन्म स्थान में हिन्दुओं का विश्वास उनकी आस्था एवं विश्वास है। उनकी आस्था मुख्यतः निम्न के मामले में अयोध्या को दिये गये महत्व पर आधारित है:

(i) धर्म शास्त्र, वाल्मिकी रामायण, स्कन्द पुराण और रामचरितमानस में पीठासीन भगवान राम, मुख्य रूप अयोध्या से जुडे हुए है। श्री पी.एन. मिश्रा (वाद सं. 5 में प्रतिवादी सं.20 अखिल भारतीय श्री राम जन्म भूमी पुनरूद्धार समिति की ओर से उपस्थित विद्वत अधिवक्ता) द्वारा इस न्यायलय में उनकी प्रस्तुतियों को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया है, जिन्होने धर्म और पौराणिक कथा को

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इतिहास के ताने बाने के रूप में अलंकृत करके प्रस्तुत किया है, और

(ii) यात्रा–वृत्तांत, राजपत्र और पुस्तकें।

इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सम्पत्ति के दस्तोवेजों से उत्पन्न, विश्वास एवं आस्था और यात्रा, गजट एवं पुस्तकों पर अवलंम्ब के साक्ष्यिक मूल्य, दोनों की न्यायिक समीक्षा की सीमा का उत्तर देना आवश्यक है।

550. स्कन्द पुराण के प्रथम विस्तार जिस पर अवलंम्ब प्रस्तुत किया हैः वह इस प्रकार हैः–

> " मैं निर्विकार भगवान राम के सामने शीश नवाता हूं, जो परम ब्रह्म है जिनके नेत्र कमल के समान हैं और वे इतना गाढ़ा नीला है जितना अलसी (रंग के रूप) का पुष्प हैं और जिन्होंने रावण का वध किया है।
> महान और पवित्र अयोध्या शहर है जो बुराई करने वालों के लिए दुर्गम है। अयोध्या में कौन नहीं आना चाहेगा, जहां भगवान हरि निवास करते है?
> यह दिव्य और भव्य नगर सारायु नदी के तट पर है। यह अमरावती (इंद्र की राजधानी) के बराबर है और कई तपस्वियों द्वारा इस नगर में शरण लिया जाता रहा है।
> (श्रीमद स्कंदपुरम. II. VIII... 29–31)"

स्कंद पुराण में, भक्तों के लिए भगवान राम की पूजा को मुक्ति के साधन के रूप में पूजा करने का एक विधान है,एक अन्य निष्कर्ष में भगवान राम के जन्म स्थान का उल्लेख हैः

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भक्त सरयू नदी के जल में स्नान करते है और तब पिंडारका की पूजा करते हैं।जो पापियों का उद्धार करते हैं और हमेशा अच्छे कर्मों के पुरुषों को सदबुद्धि प्रदान करते हैं। वार्षिक उत्सव नवरात्रोत्सव के दौरान भव्य सौन्दर्य के साथ मनाया जाना चाहिए। भक्तों को इसके पश्चिम में स्थित विघ्नेश्वर की पूजा करनी चाहिए। जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में कम से कम बाधाओं की माँग करते है। इसलिए विघ्नेश्वर, सभी वांछित लाभों की पूर्ति करते है...
(श्रीमद स्कंदापुरम II. VIII. 10.15–17)

"उस स्थान के उत्तर–पूर्व में भगवान श्री राम का जन्म का स्थान है। जन्म का यह पवित्र स्थान मोक्ष प्राप्ति का साधन है। यह कहा जाता है कि जन्म का स्थान, विध्नेश्वर के पूर्व में, वसिष्ठ के उत्तर में और लौमासा के पश्चिम में स्थित है केवल यहां जाकर एक आदमी गर्भ में आने से (यानी पुनर्जन्म) से छुटकारा पा सकता है। दान करने, तपस्या करने या बलिदान करने या पवित्र स्थलों की तीर्थ यात्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नवमी कि तिथी के दिन मनुष्य को पवित्र शपथ लेनी चाहिए। पवित्र स्नान और दान की शक्ति से वह जन्मों के बंधनों से मुक्त हो जाता है। जन्म स्थान पर जाकर कोई व्यक्ति उस लाभ को प्राप्त करता है जो प्रत्येक दिन हजारों कपिला गाय दान करके प्राप्त करता है। जन्म स्थान देखकर तपस्वियों द्वारा प्रति वर्ष राजसूय बलिदान और अग्निहोत्र बलिदान की तपस्या करने के हजार गुना ज्यादा के गुण प्राप्त होते है। पवित्र रथ को विशेष रूप से जन्म के स्थान पर देखकर, वह माता और पिता के साथ–साथ उपदेशकों के प्रति निष्ठा से संपन्न पवित्र पुरुषों की योग्यता प्राप्त करता है।
(श्रीमद् स्कंदापुरम II. VIII. 10. 18–25)

551. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी द्वारा श्री पी एन मिश्रा द्वारा भरोसा किए गए धार्मिक शास्त्रों में स्थापित प्रस्तुतियाँ पर बारीक प्रतिक्रिया दी है। विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) राम जन्मभूमि स्थल का वाल्मीकि रामायण में या रामचरितमानस में कोई उल्लेख नहीं है, जो 1574 ए.डी. में है; और

(ii) धार्मिक ग्रंथों में राम जन्मभूमि मंदिर या जन्मस्थान मंदिर का कोई उल्लेख नहीं है।

प्रस्तुति जिस के द्वारा आग्रह किया गया है कि हिन्दुओं कि आस्था में ऐसा कोई विवाद नहीं है कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था, लेकिन जन्मस्थान मंदिर, जिसकी पूजा की जाती है, विवादित स्थल के उत्तर में है। इसके अलावा, यह कि 1855 के बाद कहा गया है, बाहरी अहाते में चबूतरा को जन्म स्थान के रूप में पूजा गया था। इसलिए, श्री जिलानी के अनुसार, 1949 में उत्पन्न हुए स्थल पर विवाद से पहले भगवान राम के जन्म के स्थान के रूप में केंद्रीय गुंबद के नीचे के क्षेत्र का कोई सबूत नहीं है।

552. ऊपर उल्लिखित धार्मिक ग्रंथों में हिंदुओं के दावे का आधार निर्धारित करने के बाद, जगद्गुरु रामानंदाचार्य की गवाही पर ध्यान आर्कषित करना आवश्यक हो जाता है, एक गवाह जिसे श्री जिलानी ने खुद बड़े पैमाने पर अवलंम्ब लिया था। उनके मौखिक तर्कों के दौरान,श्री जिलानी ने गवाह को सबसे अधिक विद्वान व्यक्ति के रूप में वर्णित किया जो धर्म जानता है। उन्हें रामानंद की उपाधि से विभूषित किया गया है। गवाह शैशव काल से ही एक दृश्य विकलांगता से पीड़ित थे। इन चुनौतियों का सामना करते हुए, उन्होंने वाराणसी के सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्व विद्यालय में प्रथम विद्यार्थि और वाचस्पति का अनुशरण करते हुए आचार्य की डिग्री प्राप्त की। गवाह के पास एक पीएच. डी. और एक डी. लिट की उपाधि है और मुख्य परीक्षा के एवज

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में उनके साक्ष्य की तारीख पर छियत्तर प्रकाशन थे। उर्दू को छोड़कर, साक्षी ने कहा कि उन्हे लगभग सभी भारतीय भाषाओं का ज्ञान था। अपनी मुख्य परीक्षा में, गवाह ने कहा:

> "मेरे अध्ययन और जानकारी के अनुसार, अयोध्या में विवादित स्थल श्री राम का जन्मस्थान है, अनंतकाल से, परंपराओं और आस्था के अनुसार विवादित स्थल को भगवान राम का जन्मस्थान माना जाता है और उस स्थान की निरंतर पूजा की जाती है।"

गवाह ने गोस्वामी तुलसी दास द्वारा श्री तुलसी दोहाशतक और वाल्मीकि रामायण के खंड 18 (बाल खंड) और स्कंन्द पुराण के वैष्णव खंड पर भगवान राम के जन्म–स्थान पर विश्वास और आस्था को बनाए रखने के लिए अवलम्ब लिया। अपनी जिरह के दौरान, गवाह की श्री रामचरित मानस के ज्ञान पर परीक्षा की गई, जब उन्होने कहा:

> "...पुस्तक के समापन भाग का शीर्षक 'उत्तरकाण्ड' है। उत्तरकाण्ड में चौथे दोहे की पांचवी पंक्ति, जो इस राम जन्म भूमि से सम्बन्धित है इस प्रकार है– जन्म भूमि मम पुरी सुहावन उत्तर दिसि बह सरजू पावनि (मानस 7/4/5)। उपरोक्त दोहा का अर्थ है –मेरे प्रिय नगर में उत्तर की ओर जन्म भूमि स्थल है जहां से सरयू नदी बहती है। यह सुझाव देना गलत है कि इस जोड़े में जन्मभूमि का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में यह कहा गया है कि यह सुखद शहर मेरा जन्म स्थान है जिसका अर्थ है कि मेरे सुखद शहर में जन्मभूमि स्थल है।"

साक्षी ने अपनी जिरह के दौरान पांचवें और सातवें दोहे के महत्व को समझाया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"पांचवें दोहे में, जो 'जन्मभूमि' शब्द से शुरू होता है, शहर शब्द पूरे शहर के लिए है न कि किसी भी विशेष स्थल के लिए और एक ही बात का उल्लेख 7 वें दोहें में 'इहान' शब्द द्वारा किया गया है, और वही चीज दोहे सं. 4 में उसी बात को 'अवधपुरी' के रूप में वर्णित किया गया है। यह सुझाव देना गलत है कि इन सभी तीन दोहों में, शब्द 'पुरि' का उपयोग जन्म भूमि के अर्थ में किया जाता था। यह सही है कि रामचरित मानस में, इस दोहें को छोड़कर, कहीं और राम जन्मभूमि का कोई उल्लेख नहीं है। यह सच है कि रामचरितमानस में विभिन्न स्थानों पर अयोध्या और अवधपुरी का उल्लेख है। श्री रामचरित मानस में अयोध्या के निवास का कोई उल्लेख नहीं है। तथापि, वाल्मीकि रामायण– "बालकाण्ड" के पाँचवें भाग में इस आशय का उल्लेख मिलता है.

553. स्वामी अविमुक्तेश्वरानंद सरस्वती (डीडब्ल्यू 20/2) ने कहा कि उनके 'अध्ययन और ज्ञान' के अनुसार अयोध्या में विवादित स्थल भगवान श्री राम का जन्म–स्थान है और भक्तों द्वारा नियमित रूप से उनकी पूजा की जाती है। उन्होंने धर्मग्रन्थों पर अपना विश्वास स्थापित किया, विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण में, जिसके संदर्भ में वे एक संदर्भ प्रस्तुत करते हैं:

"श्रीमद् बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के पन्द्रहवें सर्ग के तीसरे श्लोक (दोहे) में भगवान नारायण में स्वयं, जन्म लेने से पूर्व उनके जन्म स्थान के बारे में विचार करना, उनके जन्म स्थान के महत्व को सिद्ध करते थे।"

अयोध्या महात्म्य के दशम अध्याय का उल्लेख करते हुए, साक्षी जन्मस्थान के महत्व पर अवलम्ब लिया:

"यह कि अयोध्या की यात्रा विधि का वर्णन स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड के अयोध्या महात्म्य में श्री राम का जन्मस्थान स्पष्ट रूप से संदर्भित है और इसका महत्व दिया गया है। पुराणों में उपर्युक्त संदर्भ में वर्णित वर्णन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभी भी अयोध्या में स्थित हैं। इसीलिए सनातन धर्म के सभी अनुयायी इन स्थानों पर जाते हैं, विशेष रूप से अयोध्या के श्री राम जन्मभूमि में दर्शन करते हैं और परिक्रमा करते है और वहां की धूल अपने सिर पर लगाते हैं और धन्य की अनुभूति प्राप्त करते हैं।"

उन्होंने पूर्वी मुख्य द्वार की दक्षिणी दीवार पर वराह (ईश्वर) की प्रतिमा का उल्लेख किया। साक्षी ने राम जन्मभूमि के अलावा अयोध्या में जिन अन्य मंदिरों की पूजा की थी, उनके बारें में बताया। उन्होंने कहा कि वर्ष 1990 में एक पूर्ण संरचना थी। उन्होंने पूर्वी द्वार से प्रवेश किया था और मुख्य द्वार पर ग्रिल के साथ एक दीवार थी। उन्होंने रामचबूतरे का दर्शन किया। अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान, साक्षी ने कहा कि रामचरित मानस में राम जन्मभूमि मंदिर का संदर्भ नहीं है और न ही इसमें मंदिर के विध्वंस पर किसी मस्जिद के निर्माण का विशिष्ट संदर्भ है। अपने साक्ष्य के दौरान, साक्षी ने विवादित भवन पर उत्कीर्णन के विषय में बताया, जिसमें वर्ष 1960 में जिला गजेटियर, फैजाबाद उत्तर प्रदेश का संदर्भ था और यह संदर्भ कि ऐसे किसी स्थान पर एक भवन का निर्माण होगा जहां देवता उतरेंगे। साक्षी ने कहा कि वह स्थल भगवान राम के अवतार के स्थल का प्रतिनिधित्व करता है।

अपने प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी ने इस बात पर विचार किया कि क्या शास्त्रों में भगवान राम के जन्म स्थान का संदर्भ है। साक्षी ने कहा कि पुराणों में भगवान राम के किसी विशेष जन्म–स्थान का कोई संदर्भ नहीं है सिवाय अयोध्या महात्म्य और स्कन्द पुराण के वैभव खंड के। हालांकि, उन्होंने कहा कि उन्हें विवादित स्थल से किसी भी स्थान की दूरी का स्मरण नहीं है। अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान साक्षी ने रामचबूतरे में की गई पूजा के लिए एक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया था कि वर्ष 1858 में मस्जिद के पास एक बाहरी बाड़े का निर्माण होने के बाद हिंदुओं को अंदर प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने बाहरी चबूतरे पर पूजा किया। साक्षी के अनुसार इस स्थिति को मस्जिद के अंदर मूर्तियों को स्थापित करने के पश्चात वर्ष 1949 में परिवर्तित कर दिया गया था।

554. सत्य नारायण त्रिपाठी (डीडब्ल्यू 3/3) ने कहा कि रामचरित मानस में रामचंद्रजी के जन्म के संबंध में किसी विशेष स्थान का कोई उल्लेख नहीं है , लेकिन केवल अयोध्या के बारे में उल्लेख है। महंत रामजी दास (डीडब्ल्यू 3/7) से प्रतिपरीक्षा के दौरान पूछा गया था कि क्या श्री रामचरित मानस में भगवान राम के जन्म स्थान का संदर्भ है। साक्षी के प्रश्न और उत्तर नीचे वर्णित हैं:

> **प्रश्न**:– क्या श्री 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड के उपरोक्त दोहे सं. 71 (बी) के बाद तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें चौपाई में रामचन्द्र जी की प्रशंसा के बारे में उल्लेख है और उसमें रामचन्द्र जी के जन्म स्थान के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है।
>
> **उत्तरः– उपरोक्त चौपाइयों में रामचन्द्र जी के जन्म–स्थान के विषय में कोई उल्लेख नही है, यह केवल रामचंद्रजी के जन्म लेने के बारे में है**।

अयोध्या महात्म्य पर अवलंम्ब लेते हुए, साक्षी ने सीताकूप में जन्म–स्थान के संदर्भ में – विवादित स्थल के पास की दीवार का उल्लेख किया। साक्षी के अनुसार:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"सीताकूप अग्निकोण में स्थित है और जन्मस्थान सीताकूप के पश्चिम में है।"

उन्होंने वर्णन किया कि सीताकूप से जन्म स्थान तक की दूरी लगभग दो सौ कदम होगी।

डॉ. राजीव धवन और श्री जफरयाब जिलानी ने हिंदुओं के दावे को चुनौती देते हुए कहा कि विवादित ढाँचे के केंद्रीय गुंबद के अंदर का स्थल भगवान राम के जन्म–स्थान का प्रदर्शित करता है। उपरोक्त साक्षियों के साक्ष्यों पर श्री जिलानी द्वारा अवलम्ब लिया और उन्होंने यह तर्क दिया कि: (i) शास्त्रों में राम जन्मभूमि नामक स्थल का कोई संदर्भ नहीं है; (ii) धर्मग्रंथों में राम जन्मभूमि मंदिर या जन्मस्थान मंदिर का कोई संदर्भ नहीं है; और (iii) इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि केंद्रीय गुम्बद के नीचे के स्थान की पूजा भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में वर्ष 1950 से पूर्व की गई थी। श्री जिलानी ने प्रस्तुत किया कि वर्ष 1855 के बाद भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में चबूतरे की पूजा की जा रही थी, जो इस धारणा को पुष्ट करता है कि केंद्रीय गुम्बद के नीचे का स्थान भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप में माना गया था।

555. हिन्दू साक्षी जिन्हें पूर्व में भी संदर्भित किया गया है , उसके द्वारा केंद्रीय गुंबद के नीचे भगवान राम का जन्म स्थान होने पर अपनी आस्था और विश्वास के आधार पर कथन किए हैं। साक्षियों ने धर्मग्रंथों 'अयोध्या महात्म्य, वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस' की अन्तर्वस्तु की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्याख्या करके उनके विश्वास के आधार को समझाया। साक्षियों की प्रतिपरीक्षा ने न्यायालय के इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी भी आधार को स्थापित नहीं किया है कि इन साक्षियों के माध्यम से हिंदुओं के विश्वास वास्तविक नहीं है अथवा यह केवल दिखावा है। आस्था और विश्वास के मामले विश्वास करने वालो लोगों के व्यक्तिगत क्षेत्र में हैं। जो आत्मसंतुष्टि प्रदान करता है वह रहस्यपूर्ण है। क्या विश्वास न्यायिक जांच के दायरे से परे है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां साक्षी के कथन से संकेत मिलता है कि आस्था या विश्वास एक आवरण है या यह केवल मुकदमेबाजी में एक रणनीति के रूप में रखा जा रहा है। एक बार जब साक्षियों ने विश्वास के आधार पर बयान दिया और इसकी वास्तविकता पर संदेह करने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यह विश्वास के आधार पर प्रश्न करने के लिए न्यायालय के लिए उपलब्ध नहीं है। धार्मिक विवेचना विभिन्न अनुमानों के प्रति संवेदनशील होती है। न्यायालय के द्वारा यह अभिनिर्णीत न किया जाना उचित होगा कि यदि कोई व्याख्या हो तो स्वीकृत की जानी चाहिए। विश्वास किसी व्यक्तिगत विश्वास करने वाले का अन्तर्वस्तु है। प्रथमतः जब न्यायालय के पास यह स्वीकार करने के लिए कोई अंतर्वस्तु होती है कि आस्था अथवा विश्वास दोनों वास्तविक हैं और ढोंग नहीं हैं, तो उसे उपासक के विश्वास को स्वीकार करना चाहिए। हमें यह भली–भांति पहचानना चाहिए कि सभी धर्म तथा उनके ग्रंथों का हिंदू धर्म तथा इस्लाम में उनका समावेश हो। एक धर्मनिरपेक्ष संविधान का मूल्य समान सम्मान की परंपरा में निहित है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

556. तथ्य यह है कि विश्वास और आस्था को माना जाता है, हालांकि मामला जो वास्तविक स्थान से भिन्न है जहाँ पूजा की जाती थी। उत्तरार्द्ध को तय करने में, साक्ष्यिक अभिलेखों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा। वर्तमान मामले की साक्ष्य सामग्री में अन्य बातों के अलावा शामिल है

(i) यात्रा–वृत्तांत

(ii) राजपत्र;

(iii) प्रश्न में स्थल पर विवादों का ऐसा क्रम जो संबंधित दस्तावेजी अभिलेख की उत्पत्ति से; और

(iv) तीन गुम्बदाकार ढाँचे के उपयोग से संबंधित दस्तावेजी सामग्री।

557. मामले के इस पहलू से निपटने के लिए, हमें एक दोहरी कठिनाई का सामना करना होगा जिसे उच्च न्यायालय ने माना था। उस कठिनाई का पहला पहलू इतिहास के पांच सौ वर्षों से संबंधित दस्तावेजी साक्ष्य की जांच करने से संबंधित है। उच्च न्यायालय ने इतिहास को सुलझाने में अपनी कठिनाई को व्यक्त किया:

> "3672. नीचे क्या है? यह प्रश्न इतिहास के 500 वर्ष से अधिक की अवधि में अति जटिलता का बना हुआ है, इतिहास की विभिन्न पुस्तकों से कोई स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त हुई ..... वास्तव में, समकालीन अभिलेखों में विवाद्यकों का उत्तर, एक या दूसरे तरीके से, निश्चितता के साथ नहीं दिया गया, किंतु कुछ अभिलेख के साथ, जो लगभग 200 वर्षों के पश्चात् लिखा गया था अर्थात् 18 वीं शताब्दी में, यह कथन है कि मंदिर के अस्तित्व, उसका विध्वंस और विवादित भवन के निर्माण के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बारे में है, जबकि कुछ प्रसिद्ध इतिहासकारों में इसका मतभेद हैं और कुछ इतिहास की पुस्तकें मौन हैं।"

अपने निर्णय के एक अन्य खंड में, उच्च न्यायालय ने रेखांकित किया: (i) अयोध्या का धार्मिक महत्व; और (ii) वैष्णवों के लिए इसका महत्व। इस निर्विवाद विश्वास के साथ कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था, उच्च न्यायालय को एक और कठिनाई का सामना करना पड़ा। यह भगवान राम के जन्म–स्थान को जोड़ने के प्रयास से संबंधित है, जैसा कि शास्त्रों में साक्ष्यिक अभिलेखों में से उत्पन्न पहचान से परिलक्षित होता है।

उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की ओर संकेत किया कि शास्त्र अयोध्या में जन्म स्थान के रूप में किसी विशेष स्थान की पहचान नहीं करते। हिंदू गवाहों द्वारा विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण और अयोध्या महात्मा पर रखी गई व्याख्या का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। उच्च न्यायालय का विचार यह था कि अयोध्या में भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप में विशिष्ट नाम से अभिहित की अनुपस्थिति में, इतिहास की खोज करके तथा धार्मिक आस्था को धरातल पर रखकर निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन था। यह न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निर्णय से निम्नलिखित निष्कर्ष प्रकट होते है:

"हमारे मन को इतने साहित्य आदि में उलझा देने के बजाय, कुछ पहलुओं को, जो हमने ऊपर बताए हैं जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है, संक्षेप में उल्लेख किया जा सकता है जिससे संभवतः यह विचार किया जा सकेगा कि प्रश्नों का उत्तर कैसे दिया जाए। अयोध्या की प्राचीनता विवादित नहीं है. यह भी विवादित नहीं है कि अयोध्या को धर्म और मुख्य रूप से भगवान राम के अनुयायी वैष्णव का प्रमुख

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थान माना जाता है। भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ और उन्होनें वहाँ राज किया।**वाल्मीकि रामायण और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस और अन्य जैसे स्कन्द पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों में यह उल्लेख है कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था और यह उनका जन्मस्थान है लेकिन अयोध्या में कोई विशेष स्थान नहीं है जिसे उनका जन्म का स्थान कहा जा सके।** एक ओर हमें सटीक स्थान या स्थल के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है, लेकिन साथ ही साथ हम यह भी मान सकते हैं कि एक बार जब यह विवादित नहीं हो जाता है कि अयोध्या में भगवान राम का जन्म हुआ था, तो एक ऐसा स्थान होना चाहिए जो उनके जन्म स्थान पर संकुचित हो सकता है। यह सच है कि आज भी लंबे समय के बाद जन्म स्थान की खोज बहुत आसान नहीं हो सकती है यदि कोई इस संबंध में केवल तीन या चार पीढ़ियों पहले से पता लगाने का प्रयास करे। इसलिए,...इस तरह की प्राचीनता के मामले में जांच की तरह लगभग असंभव है। किंतु जब इस प्रकार से विवाद उठाया जाता है तब हम साक्ष्य के विधि में, विशेष रूप से दीवानी मामलों में यथा लागू, अर्थात् प्रायिकता की प्रबलता से, अच्छी तरह से स्वीकृत सिद्धांत पर जाते हैं।

(प्रभाव वर्धित)

558. वर्तमान जैसी स्थितियों में संभावनाओं के प्रायिकता या संतुलन के परीक्षण को लागू करने में गंभीर सीमाएं हैं, जहां लिखित पाठ में जितना भी धार्मिक परंपराओं में विश्वास की स्थापना की जाती है, जहां धर्म द्वारा विश्वास को बढ़ावा दिया जाता है, जैसा कि महाकाव्यों में पैदा हुई पौराणिक और सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा किया जाता है।, संगीत और त्योहारों का त्योहार भक्तों की आत्मा को सुख प्रदान करता है। उच्च न्यायालय ने जिन कठिनाइयों पर ध्यान दिया है, उन्हें देखते हुए, अब दस्तावेजी सामग्री के विभिन्न पहलुओं का और विस्तार से विश्लेषण करना आवश्यक है।

559. एक ओर अबुल फजल के **'आइन–ए–अकबरी'** है। कर्नल एच एस. जेरेट का अंग्रेजी अनुवाद पहली बार 1893–96 में प्रकाशित हुआ था। सर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जदुनाथ सरकार ने द्वितीय संस्करण को संशोधित कर उसकी व्याख्या की जिसमें आइना–ए–अकबरी को इस प्रकार संदर्भित किया गया है:

> ".....मुसलमानों के कालानुक्रम और भूविवरण के पहले हिंदुओं के धर्म, दर्शन और विज्ञान का विश्वकोश जैसा कि उन्हीं विषयों पर हिंदुओं के विचारों के साथ तुलना करने के लिए साहित्यिक अभिसमय द्वारा अपेक्षित है।"

17 मई, 1894 को लिखे गये अपने संपादकीय लेख में जेरेट ने इस विषय में शामिल विषयों की विविधता और श्रेणी का उल्लेख किया था:

> "इसके विषयों की श्रेणी और विविधता (अर्थात आइने–ए–अकबरी) और अथक परिश्रम जिसे सजाया और संवारा गया एक अपरिचित भाषा के माध्यम से एकत्र और प्रचारित अथक मेहनत, सूक्ष्म विवरणों सहित सूचनाओं के कई विषय, गूढ़ विज्ञान के विषयों, सूक्ष्म दार्शनिक समस्याओं और विभिन्न जाति और पंथ के रीति–रिवाजों, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक, उनके विवेकपूर्ण और धैर्यपूर्ण परिश्रम एक स्थायी स्मारक मदद करेगें.... हालांकि यहां बहुत कुछ वांछित होना है, उनका व्यापक और प्रशंसनीय सर्वेक्षण अभी तक सर्वोच्च प्रशंसा का गुण है.... "

यहां पर रामावतार या राम का अवतार का एक भाग है जिसमें जिसमें आइन–ए–अकबरी बताती है :

> "तदनुसार उनका जन्म अयोध्या शहर में त्रेतायुग में चैत्र माह (मार्च–अप्रैल) की नवमी को राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या के गर्भ से हुआ था।"

"अवध की सुबह" खण्ड़ में अवध का संदर्भ दिया गया है जो इस प्रकार है:

> "अवध भारत के सबसे बड़े शहरों में से एक है। यह 118°, 6 अक्षांश और 27°, 22 देशान्तर में अवस्थित है। प्राचीन काल में यह घनी आबादी वाला क्षेत्र था जो 148 कोस लम्बा और 36 कोस चौड़ा था, और इसको पुरानत शहरों में सबसे पावन स्थलों के रूप में मान्यता प्राप्त

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> थी। शहर के आस–पास वे जमीन को खोदकर सोना निकालते थे। यह रामचन्द्र का निवास था, जो त्रेता युग में स्वयं में आध्यात्मिक राजनैतिक रूप से सर्वोच्च थे।"

पाद लेख भगवान राम को संदर्भित करता है:

> "यह 7 वां अवतार ब्रह्मा के रथ पर स्थापित सूर्यवंश की इस राजधानी में सूर्यवंश की साठ पीढियों के गौरव का गुणगान किया और रामावतार के रूप में प्रसिद्ध महाकाव्य का नायक हैं जिसमें उनका नाम लिखा है।"

श्री जिलानी ने जोर देकर कहा है कि उपरोक्त निष्कर्ष में मंदिर के अस्तित्व का कोई विशेष संदर्भ नहीं है जो राम जन्मभूमि का प्रतिनिधित्व करती है। हालांकि, अयोध्या भगवान राम का जन्म–स्थान निर्दिष्ट है। जो किसी पुस्तक में नहीं है उस पर आधारित बहुत अधिक नकारात्मक अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। मंदिर के संदर्भ का न होना किसी मंदिर के न होने का सबूत नहीं हो सकता है। इसी प्रकार उपरोक्त निष्कर्ष में मस्जिद का संदर्भ नहीं है।

यात्रावृत्तांत, गजट और पुस्तकें

560. वादी के ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने वाद 5 में अयोध्या से जुड़े धार्मिक महत्व और उस स्थल, जिसे हिंदू जिसे विवादित मानते हैं, पर प्रकाश डालने के लिए कई यात्रियों और गजटों का अवलम्ब लिया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रदर्श 19–वाद 5: विलियम फोस्टर[299] ने "**अर्ली ट्रेवल्स इन इण्ड़िया (1583–1619)**" नामक पुस्तक का संपादन किया जिसमें अकबर और जहांगीर के शासनकाल में उत्तर और पश्चिम भारत में यात्रा करने वाले सात अंग्रेज यात्रियों के कथन हैं। ये यात्री निम्नलिखित हैं:

> "राल्फ फ्रिच (1583–91); जॉन मिल्डेनहॉल (1599–1606); विलियम हॉकिन्स (1608–13); विलियम फिंच (1608–11); निकोलस विशिंगटन (1612–16); थॉमस कोकियॉट (1612–17) और एडवर्ड टेरी (1616–19)।"

उनमें से विलियम फिंच कैप्टन हॉकिन्स के साथ अगस्त, 1608 में सूरत, भारत आये। हिंदू पक्षकारों के अनुसार, विलियम फिंच, जो 1608–1611 के मध्य अयोध्या की यात्रा पर आया, का महत्व यह है कि उन्हें इस्लामिक मूल के महत्व का कोई भवन नहीं मिला। उसमें विलियम फिंच की अयोध्या की यात्राओं का संदर्भ दिया गया है जो इस प्रकार है:

> "तब से अवध (अयोध्या) तक 50 सी है, प्राचीन कालीन एक शहर, और पोटान राजा का एक आसन, वर्तमान में खण्ड़हर, इस दुर्ग का निर्माण चार सौ वर्ष पूर्व किया गया। यहां रानीचंद के महल और मकानों के भी अवशेष हैं, जिन्हें भारतीयों ने महान ईश्वर स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि दुनिया का तमाशा देखने के लिए उनसे मांस काट लिया। इन खंडहरों में रामायणकालीन कुछ ब्राहमण रहते हैं उन्होंने ऐसे सभी भारतीयों के नाम दर्ज किये जो पास में बह रही नदी में नहाया करते थे। वे बताते हैं कि यह प्रथा चार लाख वर्षों **(सृष्टि के सृजन से तीन सौ चौरानबे लाख और पांच सौ वर्षों पूर्व)** से चल रही थी। इस नदी के किनारे से दो मील दूर एक गुफा है जिसमें एक छोटा सा रास्ता है, लेकिन इस गुफा में काफी जगह और कई मोड़ है जिसमें छोटे सिर वाला कोई व्यक्ति आसानी से प्रवेश कर सकता है। ऐसा माना जाता है कि वहां पर उनकी अस्थियां दफनाईं गयीं हैं। वहां पर एक हिथर रिसोर्ट है जहां पर पूरे भारत से

---

299 फ़िलियम फोस्टर, भारत में प्रारंभिक यात्राएँ (1583–1619), लंदन (1921) पृष्ठ 299 पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लोग उस समय बारूद के समान काले रंग के चावल लाते थे। जिसके बारे में ऐसा कहा जाता है कि उनको तब से संरक्षित किया गया है। इस महल के अवशेष के अलावा यहां बहुत कुछ जानना शेष है। महल के अवशेषों से काफी सोना मिला है यहां पर अच्छा व्यवसाय है और भारतीय पशुसीगों का इतनी प्रचुरता है कि वे गोताखोरों जैसा पेय पात्र बनाते हैं। इन सींगों के बारे में सभी भारतीय मानते हैं कि वे बहुत मूल्यवान हैं और किसी भी रत्न से तुलनीय नही है कुछ उन्हें एकसिंगी घोड़े की सींग जैसा मूल्यवान मानते हैं।

भारत के सभी भागों से अब तक कई लोग ऐसे हैं जो चावल के कुछ विशेष अनाज को गोलाबारी के रूप में याद करते हैं, जैसा कि वे कहते हैं कि वे अब तक आरक्षित हैं। इस महल के ध्वंसों में से अभी बहुत सोना आजमाया गया है। यहां बहुत व्यापार है, और इतनी बहुतायत में भारतीय खिलड़ी है कि वे यहां बाल्फिली और कई तरह के पीने के कप बनाते हैं। इस प्रकार के सींग हैं, सारे भारतीय विजयी होते हैं, बहुत कम कीमत पर, जौहरी की तुलना नहीं की जा सकती, उन्हें अधिकार से सम्मान मिलता है।

सींग वाला

"रूइन्स ऑफ रानीचंद (एस) कास्टल एण्ड़ हाउसेज" पद से एक पाद लेख जुड़ा हुआ है जिसमें "रामचंद्र रामायण के नायक" के रूप में वर्णित हैं। यह संदर्भ टीले के विषय में है जिसे रामकोट या राम का किला के नाम से जाना जाता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

561. **प्रदर्श 133–वाद 5:** जोसेफ तिफेंथालर ने लैटिन यात्रावृत्तांत को लैटिन भाषा में लिखा जिसका शीर्षक है –डेसक्रिप्सन हिस्टोरीक्वीट जियोग्राफिक डेलइंडी। टाइफेंटर एक जेसुइट मिशनरी था, कहा जाता है कि वह अरबी, परशियन और संस्कृत भाषा में प्रवीण था और 1740 में भारत की यात्रा पर आया था। वह 1743–1785[300] के मध्य भारत की यात्रा पर रहा। उसकी अयोध्या यात्रा का वर्णन लेख के रूप में किया गया है जिसको विचारण के दौरान फ्रेंच भाषा में उपलब्ध कराया गया था। उच्च न्यायालय के एक आदेश के अनुसरण में भारत सरकार द्वारा एक अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। तिफेंथालर का विवरण इस प्रकार है:

> "अवध जो कि एक पुरातन शहर है शिक्षित हिन्दुओं द्वारा इस शहर को अयोध्या कहा जाता है। इस शहर के ज्यादातर घर केवल मिट्टी से बने हैं; जो फूंस या खपरैल से ढके हुए होते हैं। हालांकि कई घर ईंटों से बने हैं। मुख्य सड़क दक्षिण से उत्तर की ओर जाती है और इसकी लंबाई लगभग एक मील होती है। शहर की चौड़ाई बहुत कम है। इसका पश्चिमी हिस्सा और उत्तर के साथ–साथ, एक मिट्टी की पहाड़ी पर अवस्थित है। इसका उत्तर–पूर्वी का हिस्सा टीले पर अवस्थित है। बांग्ला की तरफ यह जुड़ जाता है।
>
> आज, यह शहर बहुत घनी आबादी वाला बन चुका है, बंगला या फ़ेसाबाद के गठन से (1)–एक नया शहर जहां पर गवर्नर ने अपना आवास बनाया – जहां अवध़ के निवासी बड़ी संख्या में आकर बस गये। *देव* के दक्षिण तट पर राम की स्मृति में संभ्रान्त लोगों द्वारा निर्मित अनेक भवन पाये जाते हैं जो पूर्व से पश्चिम की ओर फैलें हैं।
>
> सबसे उल्लेखनीय स्थान वह है जिसे (2) सोरगादौरी कहते हैं जिसका अर्थ है: दिव्य मंदिर। क्योंकि वे बताते हैं कि राम नगर के सभी निवासियों को

---

300 जेस के. जॉन, दि मैपिंग ऑफ हिन्दुस्तान: भारत का एक फोटोंटीन जिओजर, जोसेफ टेअफेंथालर (1710–1785), भारतीय इतिहास कांग्रेस की कार्यवाही, खंड 58 (1997) पृष्ठ 400–410 पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्वर्ग ले गये थे। इसमें भगवान के आरोहण से कुछ सादृश्यता है। इस प्रकार परित्यक्त नगर को अवध़ (अवध़) (अवध़जेन) (3) के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य ने पुनः बसाकर इसकी पूर्व प्रास्थिति को वापस दिलाया।

इस स्थान पर नदी के उच्च तट पर एक मंदिर बनी थी। लेकिन औरंगजेब जो हमेशा इस्लाम प्रचार–प्रसार के लिए उत्सुक रहते थे और जनता की भावनाओं को किनारे कर मंदिर को तुड़वा दिया और उसके जगह एक मस्जिद और दो मीनारें बनवा दिया ताकि हिंदू अंधविश्वास की स्मृतियां समाप्त कर दी जाएं। मोरों द्वारा निर्मित अन्य मस्जिद इसके निकट पूर्व की ओर है।

सोरगदौरी के समीप, नबीराय _ जो कि एक हिंदू है, इस क्षेत्र के पूर्व लेफ्टिनेंट गवर्नर (ए) द्वारा लंबाई में एक भवन का निर्माण कराया गया है। लेकिन वह जगह जो विशेष रूप से सीता रसोंई के नाम से प्रसिद्ध है, अर्थात सीता चौखट, जो राम की पत्नी हैं, दक्षिण में नगर से जुड़ा हुआ मिट्टी की पहाड़ी पर अवस्थित है।

सम्राट औरंगजेब ने रामकोट नामक किले को ध्वस्त करवाकर उसी जगह पर तीन गुंबदों का एक मस्जिद बनवा दिया। अन्य लोगों का कहना है कि इसका निर्माण 'बाबर' द्वारा किया गया था। चौदह काले पत्थर के स्तंभ 5 (/) स्पैन (4) ऊँचाई, जो किले के स्थल पर मौजूद थे, वहां दिखता हैं। इनमें से बारह स्तंभ मस्जिद के आंतरिक मेहराब को सहारा देते हैं। इन 12 में से दो को विहार के प्रवेश द्वार पर रखा गया है। अन्य दो 'मूर' गुम्बद का हिस्सा है। यह बताया जाता है कि इस स्तंभ को वानरराज हनुमान द्वारा लंका द्वीप अथवा सेलेन द्वीप से लाया गया था। इस द्वीप को यूरोपीय लोग सियान द्वीप कहते हैं।

इसके बाईं ओर जमीन के ऊपर 5 इंच ऊपर उठाया गया एक वर्गाकार बॉक्स, जिसके किनारे चूना से बने हैं, जिसकी लंबाई 5 एल (5) से अधिक है और जिसकी अधिकतम चौड़ाई 4 एल है। हिंदू इसे बेदी अर्थात क्रैड्ल कहते हैं। इसका कारण यह है कि कभी यहां पर राम के रूप *बेस्चान* पैदा हुए थे। कहा जाता है कि उनके तीन भाई भी यहां पैदा हुए थे। इसके बाद, जैसा कि दूसरे लोगों द्वारा बताया जाता है, औरंगजेब और बाबर ने यहां पर लोगों की भावना को ठेंस पहुँचाने की उद्देश्य से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मंदिर तुड़वाकर मस्जिद बनवा दिया। हालांकि तब भी कुछ एक जगह पर अंधविश्वासी संप्रदाय विद्यमान हैं। उदाहरण के रूप में स्थान राम जी मूल घर है। वे लोग उसकी तीन 3 बार परिक्रमा करते हैं और दण्ड़वत प्रणाम करते हैं। यहां पर दो स्थान है जो छोटी युद्ध दीवारों से घिरी हुई है। एक अर्धचंद्राकार दरवाजे से होकर बड़े कमरे को जाती है।

यहां से थोड़ी दूर पर एक जगह है किसी ने काले चावल खोदकर निकाला और इसको जलाकर छोटे पत्थर बना लिया जिसे राम के समय से जमीन के अन्दर छिपा दिया गया है। चैत्र माह की 24 वीं तारीख को यहां के बड़ी संख्या में लोग राम का जन्म दिवस मनाने के लिए यहां एकत्रित होते हैं जो पूरे भारत में प्रसिद्ध हैं। यह विशाल शहर पूर्व में बंगाल से ई. एन. ई की ओर एक मील की दूरी पर है, जिससे इसकी अक्षांश भी बंगाल की अपेक्षा लगभग एक मिनट अधिक होगा।

नदी के उच्च तट पर स्थित वर्गाकार आधार पर निर्मित किला गोल और निम्न बुर्जियों से सुसज्जित है। दीवार की मरम्मत की जरूरत है। यह निर्जन है और संरक्षित नहीं किया गया है। पूर्व में इस प्रान्त के गवर्नरों का यहां निवास था। सदत खाँ को एक बुरा सपना आया उसने इसे बंगाल स्थानान्तरित करवा दिया। आज यह ऊपर से नीचे तक नष्ट हो चुका है।
2 मील की दूरी पर, कैनन से लेकर अवध़ तक गंगा दो धारा बनाकर पूर्व दिशा में बहती है। जिसमें से एक शहर से दक्षिणी भाग की ओर और दूसरी यहां से कुछ दूरी पर दक्षिण दिशा की ओर बहती है। और यहां से मुड़कर उत्तर पूर्वी दिशा और 1/4 पूर्व की ओर चली जाती है जहां पर शहर के पश्चमी भाग को धोती है। इसके बाद पूर्व की ओर लौट आती है जो उत्तरी भाग के समीप है। लेकिन प्रत्येक वर्ष यह यह अपनी दिशा बदलती रही है। इस नदी की चौड़ाई डेन्यूब नदी के समान है जो बावरिया में स्थित इंगोलस्टड़ दुर्ग के समीप है, लेकिन इसमें जल की मात्रा कम है। वर्षा काल में यह अपनी चौड़ाई इस तरह से बढ़ा लेती है कि कुछ जगहों पर इसकी चौड़ाई एक मील से अधिक हो जाती है।

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

टाइफेंथ्लर के विवरण का विभिन्न हिंदू पक्षकारों द्वारा अवलम्ब लिया गया है क्योंकि कि यह निम्नलिखित विशेषताओं पर जोर देता है:

(i) इसमें हिन्दुओं के इस विश्वास का उल्लेख है कि भगवान राम विष्णु (इस विवरण में बेस्चान के रूप में उल्लिखित) के मानव अवतार हैं । यह विवरण हिंदुओं के विश्वास को दिखाता करता है कि भगवान राम इस जगह पर पैदा हुए थे जिसका प्रतीक "बेदी" अथवा "क्रैडल" है।

(ii) यह विवरण जब भगवान राम में हिन्दुओं की आस्था को बता रहा होता है तो यह पूजा से जुड़े अन्य स्थलों –सोरगदोरी (स्वर्ण द्वार) और–सिथा रसोई (सीता रसोई) का भी संदर्भ देता है;

(iii) यह विवरण औरंगजेब द्वारा "राम कोट दुर्ग" के कथित विध्वंस और उसकी स्थान पर तीन गुम्बदों वाले मस्जिद के निर्माण का संदर्भ देता है। हालांकि, टाइफेंन्थलर यह भी अंकित करता है कि कुछ लोगों के अनुसार मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था;

(iv) टाइफेंन्थर के विवरण में चौदह काले पाषाण स्तंभों के प्रयोग का संदर्भ दिया गयै है जो पूर्ववर्ती किले के पर विद्यमान थे। ऐसा कहा जाता है कि उनमें से बारह मस्जिद के अंदरूनी को सहारा दे रहे है। दो बैठक स्थल के प्रवेश द्वार पर स्थित बताये जाते हैं;

(v) वह एक वर्गाकार बॉक्स का वर्णन करता है जो जमीन से 5 इंच ऊपर उठा है। हिंदुओं के अनुसार यह एक पालना है। (भगवान राम के जन्म को दर्शित करता है)।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) इस विवरण में यह भी उल्लेख है कि औरंगजेब या बाबर द्वारा कथित विध्वंस के बावजूद, अभी भी वहां कुछ एक स्थान पर अंधविश्वासी पंथ मौजूद है जो उस स्थल पर पूजा करते हैं। उसका एक उदाहरण यह है कि वो जगह भगवान रान का घर है ऐसा माना जाता है कि भगवान वहां विराजमान हैं जिसकी हिंदू तीन बार परिक्रमा करते हैं और दण्ड़वत प्रणाम करते हैं; और

(vii) यह विवरण यह बताता है कि यहां पर बड़ी संख्या में लोग यहाँ इकठ्ठा होकर भगवान राम का जन्म दिवस मनाते हैं।

टिफेंथलर 1740 के बाद अयोध्या की यात्रा पर आया था, जो औरंगजेब की मृत्यु के तीन दशक बाद का समय है। उसका विवरण हिंदू भक्तों की आस्था के बारे में बताता है, इस विवरण में कथित विध्वंश के बारें में उल्लेख किया गया है। उसकी राय में इस बात की संभावना अधिक है कि औरंगज़ेब ने भगवान राम का जन्म स्थान पर मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनायी थी। इस विवरण में यह भी बताया गया है कि मस्जिद में में अनेक काले पत्थर के स्तंभों के प्रयोग किया गया था। यह पुस्तक का उल्लेख करती है।

562. प्रदर्श 20 – वाद 5: रॉबर्ट मॉन्टगोमरी मार्टिन ने **"हिस्ट्री, एंटिक्यूटिज, टोपोग्राफी एण्ड़ स्टेटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया"** तीन खंडों में लिखी। 1801 में डबलिन में पैदा हुए मार्टिन एक एंग्लो–आइरिस लेखक और सिविल सेवक थे।[301] उन्होंने कलकत्ता में एक पत्रकार के रूप में काम करने के अलावा, जहाँ उन्होनें बंगाल हेराल्ड की स्थापना की, शिलॉन्ग,

---

301 रॉबर्ट मॉन्टगोमरी मार्टिन (जीवनी संबंधी विवरण)– ब्रिटिश संग्रहालय

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पूर्वी अफ्रीका और न्यू साउथ वेल्स में दस वर्ष चिकित्सकीय व्यवसाय में दस साल बिताए।[302]

अयोध्या पर **मार्टिन** के विवरण इस प्रकार है:

> "अयोध्या के लोग कल्पना करते हैं, कि वृहदबाला की मृत्यु के बाद उनका शहर सुनसान हो गया था और उज्जैन के विक्रम के समय तक ऐसा ही रहा, जो पवित्र शहर की खोज में आए थे, उन्होनें रामगढ़ का एक किला बनाया, उन जंगलों को काट दिया गया जिससे खंडहरों ढँके थे और राम, उनकी पत्नी सीता, उनके भाई लक्ष्मण और उनके सेनापति महावीर के असाधारण कार्यों से पवित्र हुए स्थलों पर 360 मंदिरों को बनाया। इस तरह की परंपरा के लिए एकमात्र आधार शायद यह है कि विक्रम ने कुछ मंदिरों को बनवाया हो और महाभारत में परिवार की वंशानुक्रम वृहदबला के समय तक ही है, जो कि पुस्तक के विषय से अलग है; लेकिन श्री भागवत में वृहदवाला के बाद 29 राजकुमार हुए और बंगसलाता में इनके बाद 24 हुए। इसे यदि वाल्मीकि और श्री भागवत में वर्णित राम के पूर्वजों से मिलाय जाय तो 18 उत्तराधिकारी होगें और हमें 279 या 558 वर्ष मिलेगें, इन उत्तराधिकारों, राज्यों या समयों, जैसा हम कहें, के अनुसार से इस परिवार का अस्तित्व सिकंदर के समय के आसपास आ जाता है लेकिन इनमें से कोई भी उत्तरवर्ती राजकुमार बहुत शक्तिशाली नहीं हुआ और वे मगध के राजाओं के जागीरदार ही थे। हालाँकि, उनका अस्तित्व विक्रम से संबंधित पूरी कहानी पर एक बड़ा संदेह पैदा करता है।
>
> इस विक्रम को आमतौर पर वह व्यक्ति माना जाता है, जिनसे संवत नामक युग की उत्पत्ति हुई थी और कोसल में इस्तेमाल की गई गणना के अनुसार, यह युग ईसा मसीह के जन्म से 57 साल पहले शुरू होता है, ताकि यह शहर लगभग 280 वर्षों तक सुनसान रहा हो। इतने लंबे अंतराल के बाद भगवान के कार्यों के लिए उल्लेखनीय स्थान का पता कैसे लगाया जा सकता है और जंगल के बीच तो संदिग्धात्मक ही लगता है और संदेह तब और बढ़ जाएगा, अगर हम यह मान लें कि बाद वाले विक्रम जो सम्राट भोज के दामाद थे, वह व्यक्ति थे, जिन्होंने अयोध्या में मंदिरों का निर्माण किया था। मुझे लगता है कि शायद यही

---

302 एफ.एच.एच. किंग, सर्वे अवर एम्पायर! रॉबर्ट मॉन्टगोमरी मार्टिन (1801-1868), संदर्भग्रन्थसूची (1979)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामला था, हालांकि राम की पूजा शायद बड़े विक्रम के समय से पहले की जाती थी, फिर भी उनकी पूजा जो भक्तों के एक संप्रदाय को अलग करती है पहली बार दूसरे विक्रम के समय स्थापित की गयी थी जिन्हे तब से अपने संप्रदाय के देवता के चिन्हों को खोजने का उत्सुक माना जा सकता है। दुर्भाग्य से यदि ये मन्दिर कभी अस्तित्वमान थे तो उनके अवशेषों का सूक्ष्मतम चिन्ह भी हमें उस अवधि का निर्णय करने में सक्षम नहीं बनाता जब वे बनाए गए थे और हिन्दूओं द्वारा उनका विध्वंश कारक औरंगजेब के भयावह उत्साह को माना जाता है जिसे कि बनारस और मथुरा के मन्दिरो का विध्वंश का भी कारण माना जाता है।"

मार्टिन के विवरण में सही शासक के संबंध में कुछ असंगतता है जिसके द्वारा अयोध्या की दुबारा खोज किया गया होना कहा गया है और जिसने कई मन्दिरों का निर्माण किया। उसके विचार में क्षेत्र में भगवान राम की पूजा संभवतः विक्रम के समय से पूर्व भी की जाती थी। **मार्टिन** बाद में मन्दिरों के विध्वंश और "अधिकांश उल्लेखनीय मन्दिरों की स्थिति पर" मस्जिदों के निर्माण को उल्लिखित करते हैं जिसके बारे में वह कहते हैं कि अयोध्या में मस्जिद "सर्वाधिक आधुनिक लक्षणों से युक्त है"। उनका विवरण (पृष्ठ 335 और 336 पर) इस प्रकार है:

"**धर्मांध जिसके द्वारा मंदिरों को नष्ट किया गया , उसके द्वारा ही अधिकांश उल्लिखित मन्दिरों की स्थितियों पर मस्जिद का निर्माण किया गया होना कहा गया है, लेकिन अयोध्या की मस्जिद जो अब तक की सबसे व्यापक और जिसमें अत्याधुनिक होने की सारी प्रतीतियाँ विद्यमान हैं, का निर्धारण इसकी दिवार पर लगे शिलालेख द्वारा बाबर के द्वारा औरंगजेब से पांच पीढियाँ पूर्व होना किया गया है (जिसकी एक नकल दी गयी है)**। इससे विक्रम वाला पूरा कथानक अत्यधिक संदेहास्पद हो जाता है विशेषकर जिसे कि उसके किले का अवशेष कहा गया है, किसी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भी आवश्यक मात्रा में उससे भिन्न नहीं है जिसे कि प्राचीन नगर से संबंधित कहा गया है अर्थात् पूरा का पूरा टूटे ईटों के अनियमित ढूहों से बना कीचड से ढका और तंबाकू का उत्कृष्ट उत्पादक और इसके नाम से रामगर, मैं यह मानने को आवृत हूँ कि यह वास्तव में राम के द्वारा बनवायी गयी इमारत का हिस्सा था।

हालांकि मैं उस स्थान पर जाने से नहीं चूकता और उन चीजों को जिसे हिन्दू विशिष्ट मानते हैं, मैं वहाँ पर कोई मापक नहीं ले गया ताकि अवशेषों द्वारा ढ़के स्थान की माप ले सकूँ क्योंकि इससे नबाव वजीर की सरकार रूष्ट हो सकती थी जिनके क्षेत्र में सरयू नदी के द्वारा जिले से विभक्त वे स्थित हैं।

मैं सामान्यतः यह कह सकता हूँ कि ईंटों के ढूह हालांकि काफी सारे नदी द्वारा बहा लिए गए थे, काफी दूर तक फैले थे अर्थात् लम्बाई में एक मील से ज्यादा और चौडाई में आधा मील से ज्यादा और हालांकि विशाल मात्रा में सामग्री को मोहम्मडन अयोध्या या फैजाबाद बनाने के लिए हटा दिया गया है, फिर भी अवशेषों का कई हिस्सों में काफी उन्नयन बरकरार है, न ही यह संदेह करने का कोई कारण है कि वे संरचनाएँ जिससे वे संबंधित थे, बहुत ही विशाल रही होंगी जब हम यह विचार करते हैं कि इसे लगभग 2000 वर्ष पूर्व नष्ट कर दिया गया है। वर्तमान में विद्यमान कोई भी हिन्दू इमारत आकार और वास्तुकला की दृष्टि से उतनी उत्कृष्ट है और वे न केवल प्रत्यक्षतः बल्कि घोषित रूप से काफी आधुनिक है अर्थात् उन्हे ओरंगजेब के शासन के समय से बनाया गया उनमें से कई को उस व्यक्ति की स्मृति के साथ हालांकि उन्हे उन स्थानों पर बनाया गया है जिन्हें **सूर्यवंश के राजकुमारों के महलों का अवशेष मानने में मुझे कोई संदेह नहीं है, उनका उन्हीं स्थानों पर बना होना जहाँ पर उनसे संबंधित घटनाएँ वास्तव में घटित हुई, अत्यधिक संदेहास्पद होगा, यदि वरिष्ठ विक्रम ने उन स्थानों पर मंदिर बनवाया**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होता जिन्हे ओरंगजेब द्वारा नष्ट कर दिया गया तो विक्रम के द्वारा चयनित स्थान परंपरागत रूप से जाने जाते, लेकिन वह पूरा कथानक अत्यधिक संदेहास्पद होने के कारण हम विभिन्न स्थानों के नाम के वर्तमान विनियोग को चमत्कार से कम नहीं मानते जिन पर इनमें से कई विश्वास करते हैं।

यह कहा गया है कि ईटों की खुदाई के क्रम में बहुत सारी आकृतियां पाई गयी लेकिन कुछेक जो मुझे मिली वे इतनी खण्ड़ित थी कि गुप्तार अखाड़ा, जहाँ लक्ष्मण का अन्तर्ध्यान होना कहा जाता है, वाली को छोड़कर उनसे यह विनिश्चित नहीं किया जा सकता कि वे क्या हैं। यह पत्थर पर उकेरे गए एक स्त्री और पुरूष को चित्रित करता है। दूसरी के सिर पर कुछ है और उन दोनों जैसा मैंने पहले कुछ नहीं देखा है। **इन दो आकृतियों और ईंटों के अलावा एकमात्र चीज जिसे प्राचीन नगर कहा जा सकता था, वे बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद के कुछ स्तम्भ हैं ये काले पत्थरों के हैं और ऐसे क्रम में हैं जिसे मैने और कही नहीं देखा है और जिसे उससे जुडी कलाकृतियों से समझा जा सकता है। यह कि उन्हें एक हिन्दू भवन से लिया गया है, उनके आधार पर देखी जा सकने वाली आकृतियों से प्रत्यक्ष है, हालांकि आकृतियाँ धर्मांध के मन को तुष्ट करने के लिए काट दी गयी हैं। यह संभव है कि ये स्तंभ विक्रम द्वारा निर्मित मंदिर से संबंधित रहे हैं लेकिन मैं ऐसे मंदिर के अस्तित्व को संदेहपूर्ण मानता हूँ और यदि वे नहीं हुए तो यह संभव है कि स्तंभ महल के अवशेषों से लिए गए हों। वे मात्र 6 फीट ऊँचे हैं।"**

(प्रभाव वर्धित)

मार्टिन का विवरण मस्जिद के दीवार पर उत्कीर्णन को उन्ही दी गयी एक प्रति के आधार पर संदर्भित करता है और यह निष्कर्ष निकालता है कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद को बाबर के द्वारा बनवाया गया था। वह अयोध्या के मस्जिद का "सर्वाधिक आधुनिक लक्षणों से युक्त होना वर्णित करता है"। इसमें ओरंगजेब द्वारा हिन्दुओं के पूजा स्थलों का कथित विध्वंश का भी संदर्भ है। **मार्टिन** मस्जिद में काले पत्थरों के बने स्तंभ होने को भी उल्लेख करता है। विवरण में कहा गया है कि इन्हें एक हिन्दू इमारत से लिया गया है जिनका वह कुछ स्तंभों पर दिखने वाली आकृतियों से अनुमान करता है हालांकि "आकृतियों को धर्मांध के मन को तुष्ट करने के लिए काट दिया गया है"। मार्टिन के अनुसार अवशेषों का उन्हीं स्थानों पर होने की संभावना जहाँ उनसे संबंधित घटनाएँ घटित हुईं, कम है। उसके विचार से पूरा कथानक ऐतिहासिक से ज्यादा धार्मिक और पौराणिक महत्व का है। इन स्थानों पर पूजा उन घटनाओं का उत्सव होता है जिन्हें यहाँ पर घटित होने का विश्वास हिन्दुओं द्वारा किया जाता है।

563. **प्रदर्श 5– वाद 5: एडवर्ड थॉर्नटनस्** का गजेटियर जिसका शीर्षक है– **ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार के अधीन राज्यक्षेत्रों का गजेटियर और भारत के महाद्वीप पर देशी राज्य (गजेटियर आफ दा टेरिटिरीज अन्डर दा गवर्नमेन्ट आफ इस्ट इंण्डिया कम्पनी एण्ड दा नेटिव स्टेट्स आन दा कान्टिनेन्ट आफ इण्डिया) ,**[303] जिसका पहला प्रकाशन 1858 में हुआ।

थोरटन के गजेटियर में "सूजा–उद–दौलाह "भूतपूर्व नवाब के वजीर" के द्वारा स्थापित 50,000 के वार्षिक राजस्व के साथ ''हनुमानगढ' या 'हनुमान का

---

303 ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार के अधीन राज्यक्षेत्रों का राजपत्र और भारत के महाद्वीप पर देशी राज्य (गजेटियर आफ दा टेरिटिरीज अन्डर दा गवर्नमेन्ट आफ इस्ट इंण्डिया कम्पनी एण्ड दा नेटिव स्टेट्स आन दा कान्टिनेन्ट आफ इण्डिया), लंदनः डब्लू. एच. एलेन (1854)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किला' नामक एक व्यापक प्रतिष्ठान" का सन्दर्भ है। राजस्व को लगभग 500 बैरागियों या धार्मिक तपस्वियों और विभिन्न प्रकार के अन्य हिंदू भिक्षुको को वितरित कर दिया जाता था, मुशलमानों को दीवारों को छूने की अनुमति नहीं थी।**थोरेंटन के गजेटियर** का अर्थ भी है– "विस्तृत खंडहर" जिसे राम के किले के नाम से जाना जाता है:"

> पूर्व में शहर के समीप और घाघरा के दाहिने तट पर विस्तृत खंडहर हैं, जो अवध के राजा, रामायण के नायक राम के किले हैं और अन्य भारत की पौराणिक और रोमानी कथाओं में विख्यात हैं। बुचनैन ने पाया कि "यह कि नदि के किनारे ईटों का ढेर पड़ा हुआ था जो एक बड़े रास्ते की ओर जाता है।" यह लंबाई में एक मील से भी अधिक है, और चौड़ाई में आधे मील से भी अधिक मील है; और, यद्यपि मुस्लिम अयोध्या या फैजाबाद के निर्माण की भारी मात्रा में सामग्री हटा दी गई है, फिर भी खंडहर के कई हिस्से काफी ऊंचाई तक बने हुए हैं और न ही इस बात पर संदेह करने का कोई कारण है कि जिस संरचना से वे संबंधित थे, वह बहुत महान है, जब हम विचार करते हैं कि यह 2,000 वर्षों से अधिक समय के पहले से खंडहर हो गयी है। " खंडहर अभी भी रामगढ़ या राम के किले का नाम से जाना जाता है; "उनमें से सबसे उल्लेखनीय स्थल यह है कि इस कथा के अनुसार, राम ने अपने नगर के लोगों को अपने साथ लेकर स्वर्ग की ओर उड़ान ली, जिसके परिणामस्वरूप वह आधी शताब्दी तक ईसाई युग से पहले से वीरान रहा और इसके द्वारा 360 मंदिरों से शुसोभित रहा। **इन मंदिरों के सबसे छोटे अवशेष ही नहीं हैं, बल्कि वे भी उपस्थितिक है और स्थानीय अनुश्रुतियों के अनुसार, उन्हें औरंगजेब के द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था, जिसने इस स्थल के एक भाग पर एक मस्जिद का निर्माण किया। फिर भी, इस अनुश्रुति के मिथ्या को मस्जिद की दीवार पर एक शिलालेख द्वारा सिद्ध किया गया है, बादशाह बाबर इन कार्यों का श्रेय जाता है, जिससे औरंगजेब वंश में पांचवें स्थान पर था**। मस्जिद केवल पाँच से छः फीट की ऊँचाई के चौदह स्तंभों के साथ सुसज्जित है, लेकिन बहुत विस्तृत और अच्छी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> कारीगरी के बारे में कहा जाता है कि वह हिंदूँ देवालयों के खंडहरों से ली गयी है...
> पाषाण का एक चतुर्भुजाकार पालना, सफेद पोताई, पाँच इंच लम्बी और चार इंच चौड़ी और जमीन से पांच या छह इंच ऊपर की ओर उभरी हुई आकृति को, पालना के रूप में बताया गया है जिसमें राम थे... विष्णु के सातवें अवतार के अनुसार; और तदनुसार हिन्दू श्रद्धालु और भक्तों से बहुतायत से सम्मानित किया गया है। अयोध्या या अवध को हिन्दुस्तान का सबसे पुराना शहर माना जाता है.
>
> (प्रभाव वर्धित)

इस विवरण से पता चलता है कि प्राचीन मंदिरों का कोई अवशेष नहीं उपलब्ध है। राजपत्र के "मस्जिद की दीवार पर एक शिलालेख" पर अवलम्ब लिया गया था, जिसके निर्माण में बाबर का योगदान माना जाता था, जबकि यह भी ध्यान दिया गया था कि "स्थानीय अनुश्रुतियों" के द्वारा मंदिरों के विनाश और औरंगजेब के निर्माण को अंकित किया था। गजेटियर में बुचनैन की राय पर अवलम्ब लिया गया है।

564. **प्रदर्श 123–वाद 5: सर्जन जनरल एडवर्ड बालफोर** ने **"साइक्लोपीडिया आफ इंडिया एंड आफ ईस्टर्न और साउथर्न एशिया ,कामर्सियल, इण्डस्ट्रियल और साईन्टफिकः प्रोडक्ट आफ दा मिनरल, वेजिटेबल, और एनिमल किंगडम, यूजफुल आर्टस और मैन्यूफैक्चर्स"**[304] की रचना की है बालफोर की पुस्तक में अयोध्या को सन्दर्भित किया गया है:

> **अयोध्या,** अवध में फैजाबाद के समीप, गंगा नदी के दाहिनें किनारे पर, उत्तरि अक्षांश 26^0 48' 20" और 80^0 24' 40" पूर्वी देशान्तर पर है।

---

304 सर्जन जनरल इडवार्ड बालफोर, साईक्लोपीडिया आफ ईडिंया एण्ड आफ ईस्टर्न् एण्ड साउथर्न एशिया, कामर्शियल, इण्डस्ट्रियल एण्ड साईन्टिफिकः प्रोडक्ट आफ दा मिनरल, वेजिटेबल, एण्ड ऐनिमल किंगडम, यूजफुल आर्टस और मैन्यूफैक्चर्स, थर्ड एडिशन, लन्दनः बीमर्ड क्यूरटिक, 15 पिक्कडिली 1885.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अब यहाँ पर हिन्दुओं और मुश्लिमों की जनसंख्या 7518 है लेकिन प्राचीन समय में, यह कौसल राज्य की राजधानी थी, वर्तमान अवध में सूर्य वंश के महान दशरथ के द्वारा शासन किया गया था और वे भगवान राम के पिता थे। उस समय उनका क्षेत्र 12 योजन का क्षेत्र था जो 96 मील के बराबर था। बौद्ध के प्रभुत्व के दौरान अयोध्या ने इसे अस्वीकार कर दिया, लेकिन ब्राह्मणवाद के विद्रोह पर यह सम्राट विक्रमादित्य द्वारा बहाल कर दिया गया था (ए–डी 57)। तीन हिन्दू पूजा स्थलों पर बहुत से जैन मंदिर थे और तीन मस्जिदे थी– जन्म स्थान का वह स्थान जहाँ पर भगवान राम का जन्म हुआ था, स्वर्ग द्वार(मंदिर) जहाँ उनके अवशेषों को जलाया गया, और त्रेता के ठाकुर, उनके महान बलिदानों में से एक के दृश्य के रूप में बनाया गया। अवध में यहाँ बाबू बेगम का एक उत्कृष्ट मकबरा है।"

(प्रभाव वर्धित)

565. **प्रर्दश 6–सूट 5**:– **एलेक्जेंडर कनिंघम**, जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक थे, ने **1862–63–64–65** [305] **के दौरान भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग–चार रिपोर्टों** के शीर्षक से कार्य संकलित किया। कनिंघम का तात्पर्य अयोध्या से है।

"अयोध्या में अनेक अत्यंत पवित्र ब्राह्मणवादि मंदिर हैं, लेकिन वे सभी प्राचीन हैं, और बिना किसी वास्तुकलात्मक के दिखावे के है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि उनमें से अधिकांश उन प्राचीन मंदिरों के स्थलों पर कब्जा कर लेते हैं जो मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिए गए थे। इस प्रकार शहर के पूर्वी छोर पर रामकोट या हनुमान गढ़ी एक छोटा–सा दीवारवाला किला है जो एक प्राचीन मूर्ति के ऊपर एक आधुनिक मंदिर के चारों ओर है। रामकोट नाम निश्चित रूप से पुराना है, क्योंकि यह मणि पर्वत की परंपराओं से जुड़ा हुआ है, जिसका बाद में उल्लेख किया जाएगा; लेकिन भगवान हनुमान का मंदिर औरंगज़ेब के समय से प्राचीन नहीं है। नगर के उत्तर–पूर्वी कोने में स्थित राम घाट को वह

---

305 1862–63–64–65 के दौरान भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग–चार रिपोर्टों के भाग 1 शिमलाः केन्द्रिय शासकीय प्रेस,1871

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> स्थान बताया गया है जहाँ राम ने स्नान किया था, को सरगद्वारी या स्वर्गद्वारी, अर्थात "स्वर्ग का द्वारा" के नाम से जाना जाता था। उत्तर–पश्चिम में ऐसा स्थान माना जाता है जहाँ उनका पार्थिव शरीर जलाया गया था। कुछ ही वर्ष पहले अशोक बट, या 'जटारहित बरगद' " ऐसा नाम जो सम्भवतः स्वर्गद्वारी से सम्बन्धित है" नामक एक बहुत ही पवित्र बरगद का पेड़ खड़ा था, इस विश्वास में कि जो लोग इस स्थान पर मर गए या जलाए गए, वे तुरंत पुर्नजन्म से मुक्त हो जाएगें। लक्ष्मण घाट के पास है, जहां उनके भाई लक्ष्मण स्नान करते थे और एक मील के एक चौथाई दूरी पर शहर के मध्य में भगवान राम का जन्म स्थान "जन्म स्थान मंदिर" स्थित है। लगभग पश्चिम में, और उपर की ओर पांच मील दूर, गुप्त घाट है, जिसमें आधुनिक श्वेत मंदिरों का समूह है। यह वही स्थान है जहाँ लक्ष्मण के अदृश्य होने के बारे में कहा जाता है, इसलिए इसका नाम गुप्तर से गुप्त है, जिसका अर्थ है–छिपाना या छुपाया गया। कुछ लोग कहते हैं कि यह भगवान राम थे जो इस स्थान पर अदृश्य हुए थे, लेकिन स्वर्गद्वारी में उनके दाह संस्कार की कहानी में मतभेद है।

566. प्रदर्श 49–वाद 5: **पी कार्नेजी**, जिन्हें स्थानापन्न आयुक्त और बन्दोबस्त अधिकारी, फैजाबाद के पद पर नियुक्त किया गया था, ने **" (हिस्टोरिकल स्केच आफ फैजाबाद विथ ओल्ड कैपिटल अयोध्या एण्ड फैजाबाद)"**[306] (1870) के द्वारा लिखा गया। कार्नेजी ने हिंदुओं की आस्था के लिए अयोध्या के महत्व को रेखांकित किया है:

> "अयोध्या–अयोध्या, हिन्दुओं के लिए वही है जो मुश्लिमों के लिए मक्का है, यहूदियों के लिए जेरूशलम है, यह उनकी उच्च पौराणिक मूल की रूढ़िवादी परम्परा है, क्योंकि यह क्षणिक है इसलिये पृथ्वी कि अतिरिक्त सुरक्षा के लिए स्थापित किया गया है, लेकिन स्वयं विधाता के रथ के पहियों पर है जो हमेशा कायम रहेगा।

---

306 पी कार्नेजी,स्थानापन्न आयुक्त और बन्दोबस्ता अधिकारी, फैजाबाद द्वारा "हिस्टोरिकल स्केच आफ फैजाबाद विथ ओल्ड कैपिटल अयोध्या एण्ड फैजाबाद" (1870) अवध शासकीय प्रेस, 1870।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्नेजी के द्वारा जन्मस्थान का सन्दर्भ, स्वर्ग द्वार मंदिर और त्रेता के ठाकुर के बारे में देतें है । वे बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण 1528 में मानते है, उनके नाम के अलावा और कोई नाम नहीं हुआ। **कार्नेजी** की राय में, एक पूर्व मंदिर के कई स्तंभों का उपयोग बाबरी मस्जिद के निर्माण में किया गया है। वे कहते हैं कि ये स्तंभ कसौटी पत्थर से बने हैं और उत्कीर्णित हैं। **कार्नेजी** जो एक बन्दोबस्त अधिकारी थे, ने 1855 में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए विद्रोह का उल्लेख किया है। उनके अनुसार, संघर्ष के दौरान, हिंदुओं ने हनुमान गढ़ी पर कब्जा कर लिया, जबकि मुसलमानों ने जन्मस्थान पर कब्जा कर लिया। पुनः हुनुमन गढ़ी पर कब्जा करने के मुसलमानों के प्रयत्न पर हिन्दुओं ने प्रत्यूत्तर दिया, जिसके फलस्वरूप 75 मुसलमान मारे गये, जिन्हें कब्रिस्तान में दफनाया गया है। कहा जाता है कि हिंदुओं ने तब से जन्मस्थान पर कब्जा कर लिया गया था। **कार्नेजी** के अनुसार तब तक हिंदू और मुस्लिम दोनों एक ही तरह की पूजा करते हैं, जिसे उन्होंने "मस्जिद–मन्दिर" के रूप में वर्णित किया है। हालाकिं, औपनिवेशिक शासन के बाद से एक रेलिंग स्थापित की गई जिसके अंतर्गत यह कहा गया है कि उसमें मुसलमान प्रार्थना करते हैं जबकि बाड़ा के बाहर हिंदुओं ने एक चबूतरा स्थापित किया है जिस पर वे पूजा करते हैं। **कार्नेजी** के विवरण नीचे उद्धृत हैं:

> "जन्मस्थान और अन्य मंदिर – यह स्थानीय रूप से माना जाता है कि मुस्लिम विजय के समय अयोध्या में तीन महत्वपूर्ण हिंदू पूजास्थल थे जो कि लगभग निर्जन था, और बहुत कम भक्त जुड़े थे। ये स्थान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

थे "जन्मस्थान", "सर्गद्वार मंदिर", जिसे "राम दरबार" के नाम से भी जाना जाता है और "तरेता–के–ठाकुर"। इनमें से पहले पर, बादशाह बाबर ने 1528 ईस्वी में मस्जिद बनवाया, जो आज भी उसके नाम पर है; दूसरे पर भी, औरंगजेब ने 1658–1707 ईस्वी में वैसा ही किया; और तीसरे पर, उसी शासक या उसके पूर्ववर्ती ने विजित लोगों पर अपना मजहब थोपने के विख्यात मोहम्मडन सिद्धांत के अनुसार एक मस्जिद बनवाया।

जन्मस्थान वह स्थान है जहाँ रामचंद्र का जन्म हुआ था। स्वर्गद्वार वह द्वार है जिसके माध्यम से वह स्वर्ग गये, संभवतः वह स्थान जहां उनका पार्थिव शरीर जलाया गया। त्रेता के ठाकुर उस स्थान के रूप में प्रसिद्ध था जहां राम ने एक महान बलिदान दिया और जिसकी स्मृति में उन्होंने अपनी और सीता की प्रतिमा लगवाई। "667। बाबर की मस्जिद– लेडेन द्वारा लिखित बाबर के संस्मरण के अनुसार उस शासक ने 28 मार्च, 1528 को सरयू और घाघरा नदियों के संगम पर,अयोध्या से दो या तीन कोस पूर्व में घेरा डाला और वहां वह सात या आठ दिन रहकर आसपास के स्थानों को सुव्यवस्थित किया। उस रचना में सरजू के किनारे अवध से सात या आठ कोस आगे एक प्रसिद्ध आखेट स्थल की चर्चा है। **यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान में बाबर के जीवन से जुड़ी सभी पुस्तकों में वे पृष्ठ नहीं हैं जो अयोध्या में उसके कार्यों से संबंधित हैं। बाबरी मस्जिद में दो स्थानों पर उस वर्ष, 935 हि. जो 1528 ई. के समतुल्य है, का उल्लेख है, जिस वर्ष इसे बनाया गया था जो कि बादशाह की प्रशस्ति में समर्पित उत्कीर्णन के साथ पत्थर में उकेरा गया है।**

यदि अयोध्या उस समय निर्जन नहीं था, तो इसमें कम से जन्मस्थान पर एक उत्कृष्ट मंदिर होता क्योंकि इसके कई कालम अभी भी अस्तित्वमान हैं और मुसलमानों द्वारा मस्जिद बनाने में प्रयोग कर लिये जाने के कारण अच्छे संरक्षित हैं।

ये ठोस, गहरे स्लेटी या काले रंग मजबूत के हैं, जिन्हें स्थानीय लोगों द्वारा कसौटी (शब्दशः टच स्टोन) कहा जाता है और विभिन्न उपकरणों द्वारा उत्कीर्णित है। मेरे विचार से यह बौद्ध मीनारें हैं जो मैंने बनारस और अन्यत्र देखे हैं। वे सात से आठ फीट लंबे, आधार, केन्द्र और शीर्ष पर वर्गाकार और बीच में गोल या अष्टभुजाकार हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिंदू और मुसलमान मतभेद – जन्मस्थान हनुमान गढ़ी के कुछ सौ कदम की दूरी के भीतर है। 1855 में जब हिंदुओं और मोहम्मडन के बीच अनबन हुई तो पहले ने बल पूर्वक हनुमान गढ़ी पर कब्जा कर लिया, जबकि मुसलमानों ने जन्मस्थान पर कब्जा कर लिया। उस अवसर पर मोहम्मडनों ने वास्तव में हनुमान गढ़ी की सीढ़ियों तक कोशिश की लेकिन उन्हें काफी नुकसान के साथ खदेड़ दिया गया। इसके बाद हिंदुओं ने इस सफलता का अनुसरण किया और तीसरे प्रयास में, जन्मस्थान ले लिया, जिसके द्वार पर 75 मोहम्मडन " शहीद कब्र" (गंज–शहीद) में दफन हैं। राजा के कई रेजीमेंट हर समय देखते थे, लेकिन उनको हस्तक्षेप का आदेश नहीं था। **ऐसा कहा जाता है कि उस समय तक हिंदू और मोहम्मडन दोनों उस मस्जिद–मंदिर में पूजा करते थे। ब्रिटिश शासन से विवादों को रोकने के लिए एक रेलिंग लगाई गयी है, जिसके भीतर मस्जिद में मोहम्मडन प्रार्थना करते हैं, जबकि दीवार के बाहर हिंदुओं ने एक मंच बना लिया है जिस पर वे अपना चढ़ावा चढ़ाते हैं।"**

(प्रभाव वर्धित)

विभिन्न हिंदू पक्षकारों ने हिंदुओं के इस विश्वास को स्थापित करने के लिए **कार्नेजी** के विवरण का अवलंब लिया है कि जन्मस्थान भगवान राम के जन्म का स्थान था, और मस्जिद के निर्माण में कसौटी कॉलम का उपयोग किया गया था। कसौसी स्तंभों पर उत्कीर्णन का संदर्भ है। 1870 में प्रकाशित **कार्नेजी** के विवरण में उस घटना का उल्लेख किया गया है जो 1855 में हुई थी जिसमें हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष हुआ था। वह इस घटना के पूर्व हिन्दू और मुस्लिम दोनों द्वारा " मस्जिद–मंदिर में" पूजा करने का संदर्भ देते हैं और उस रेलिंग का भी जो उसके बाद विवादों को रोकने के लिए बनाई गयी थी। **कार्नेजी** ने लिखा है कि रेलिंग को इसलिए बनाया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

था ताकि दो समुदायों को अलग किया जा सके जिससे मुस्लिम को मस्जिद के अहाते में पूजा करने की अनुमति मिल गयी, जबकि हिंदुओं ने इसके बाहर अपना चढ़ाना चढ़ाने के लिए मंच बना लिया था।

567. **प्रदर्श 7– वाद 5: अवध के गजेटियर (1877)** : गजेटियर में उसी शब्दों में वर्णन है जैसा **कार्नेजी** के विवरण में है और इसलिए आगे विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

568. **प्रदर्श 8 वाद – 5 : ए. एफ. मिलेट का " द् रिपोर्ट आफ सेटलमेंट आफ लैंड रेवेन्यू, फैजाबाद डिस्ट्रिक्ट –(1880) "** में मोटे तौर पर **कार्नेजी** के विवरण का सार है।

569. **प्रदर्श 52–वाद 5: एच. आर. नेविल, आई. सी. एस.** ने **"बाराबंकी: ए गजेटियर,** जो **डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ द् यूनाइटेड प्रोविंस आफ आगरा एंड अवध" (1902) का XLVIII वां खण्ड है** को संकलित और सम्पादित किया। इसमें 1850 के दशक में हुए हिंदुओं और मुसलमानों के संघर्ष का विवरण है।

570. **प्रदर्श 10–वाद 5: " द् इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, प्रोविंसियल सीरीज, यूनाइटेड प्रोविंस आफ आगरा एंड अवध – खं. II (इलाहाबाद, बनारस, गोरखपुर, कुमाऊं, लखनऊ एंड फैजाबाद डिवीजंस एंड द् नेटिव स्टेट्स)"।** इम्पीरियल गजेटियर में अयोध्या का विवरण निम्नवत है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"अयोध्या कोशल राज्य की राजधानी थी और उसमें सूर्य वंश के राजा मनु के बाद छप्पनवें राजा दशरथ का दरबार था। रामायण के आरंभिक अध्याय में नगर की भव्यता, राजा की महिमा, और उसकी प्रजा के गुण, संपदा और निष्ठा का वर्णन है। दशरथ महाकाव्य के नायक रामचन्द्र के पिता थे जिनके प्रति आकर्षण आधुनिक युग में बहुत अधिक बढ़ा है। सूर्य वंश के अंतिम राजा सुमिन्त्र, एक सौ तेरहवें शासक, के पतन के बाद अयोध्या वीरान हो गयी और राज परिवार बिखर गया। उदयपुर, जयपुर और अन्य के राजा इस बिखरे वंश के सदस्यों के वंशज होने का दावा करते हैं। कहते हैं कि अयोध्या की पुनर्स्थापना उज्जैन के राजा विक्रमादित्य ने की थी, जिनकी पहचान विवाद का विषय है। बौद्ध काल में अयोध्या का महत्व कम था जब साकेत कोशल का प्रमुख नगर बन गया। यह अभी भी अनिश्चित है कि साकेत कहाँ पर स्थित था और यह कहा गया है कि यह प्राचीन अयोध्या नगर पर विस्तृत था। सिक्काशास्त्रीय साक्ष्य ईसाई युग के प्रारंभ के समय अयोध्या में या उसके आसपास स्वतंत्र राजाओं की श्रृंखला के शासन की ओर संकेत करते हैं।"

"वर्तमान नगर" को संदर्भित करते हुए, गजेटियर ने उल्लेख किया है:

"वर्तमान नगर घाघरा के किनारे उठे चट्टान से आन्तरिक भूमि तक विस्तृत है। **रामकोट या राम के किले के रूप में ख्यात एक विशाल ढूह के एक कोने में वह स्थान है जहाँ नायक का जन्म हुआ था। अधिकांश बाड़े को एक पुराने मंदिर के अवशेषों से बाबर द्वारा बनाई गई मस्जिद ने घेरा है और बाहरी हिस्से में जन्मस्थान का एक छोटा सा मंच और पूजास्थान है। पास में एक बड़ा मंदिर है, जिसे सीता, राम की निष्ठावान पत्नी, की रसोई के रूप में दर्शाया गया है।** घाघरा के तट पर जिस स्थान पर लक्ष्मण स्नान करते हैं उस स्थान पर एक भव्य मंदिर स्थित है और वानरों के राजा हनुमान की उपासना नगर के एक बड़े मंदिर में की जाती है और जिसमें अनेक सीढ़ियां हैं जिनका नाम हनुमान गढ़ी है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान बने अन्य उल्लेखनीय मंदिर हैं कनकभवन, टिकमगढ़ की रानी द्वारा बनवाई गयी एक बढ़िया इमारत,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नागेश्वरनाथ मंदिर, दर्शन सिंह का मंदिर और वर्तमान महाराजा द्वारा निर्मित संगमरमर का एक छोटा मंदिर। अयोध्या में कई जैन मंदिर भी हैं जिनमें से पांच का निर्माण अठारहवीं शताब्दी में अयोध्या में पैदा हुए पाँच तीर्थकरों के जन्मस्थान पर कराया गया है। बाबर की मस्जिद के अलावा प्रख्यात हिंदू मंदिर–स्वर्गद्वार के स्थान पर, जहाँ राम की देह का अंतिम संस्कार किया गया था और त्रेता के ठाकुर जहाँ उन्होंने बलिदान दिया था, औरंगजेब द्वारा निर्मित दो भग्न मस्जिद हैं। दूसरे वाले में कन्नौज के अंतिम राजा जयचंद का शिलालेख मिला है। मुसलमानों द्वारा तीन कब्रों का नोआ, सेठ और जॉब के मकबरों के रूप में सम्मान किया जाता है, और अन्तिम दो का उन्हीं नामों के तहत आइन–ए–अकबरी में उल्लेख किया गया है। मणिपर्वत के रूप में विख्यात पास के एक विशाल ढूह को हनुमान द्वारा हिमालय के एक हिस्से को ले जाते समय गिरा हुआ माना जाता है जबकि दूसरी परम्परा के अनुसार यह रामकोट बनाने वाले कामगारों द्वारा अपनी टोकरी खाली करने के परिणामस्वरूप बना जब उन्होंने अपना काम छोड़ा; यह संभवतः एक भग्न स्तूप को ढके हुए है।"

(प्रभाव वर्धित)

571. **प्रदर्श 23– वाद 5: हैंस बेकर** ने अपनी पुस्तक **"अयोध्या"**[307] की रचना तीन भागों में की है। भूमिका में कहा गया है कि पहला भाग अयोध्या के इतिहास, इसके विकास का शासित करने वाले धार्मिक आंदोलनों, स्थानीय सन्दर्भ जिसमें इसने ठोस आकार ग्रहड़ किया और जिस तरह से यह धार्मिक रचना अयोध्या महात्म्य में दिखाया गया है, से संबंधित है। अपनी पुस्तक की भूमिका में लेखक ने लिखा है:

"..... गहरे प्रभाव वाले दो मामले प्रत्यक्ष हुए। पहला यह कि अयोध्या का तीर्थस्थान के रूप में धार्मिक विकास दूसरी सहस्राब्दि ई. में हुआ और फलस्वरूप अयोध्यामहात्म्य के सभी संस्करण इसी अवधि के हैं; दूसरी

---

307 Hans Bakker, Ayodhya, Egbert Forsten Publishers (1986)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> यह कि नगर के धार्मिक महत्व का विकास विष्णु के प्रमुख प्राकट्य के रूप में राम की पूजा के उदय से जुड़ा हुआ था।"

लेखक ने 600 ईसा पूर्व से 1000 ई. तक के साकेत/अयोध्या का इतिहास अध्याय। में दिया है, यह उल्लेख करते हुए कि यह स्थान सरयू (घाघरा) नदी के वक्र पर स्थित है जो आधुनिक नगर को तीन तरफ से घेरे हुए है। वह कहते हैं:

> "इस स्थान के मध्य में रामकोट या कोट रामचंदर नामक टूटी हुई भूमि का एक क्षेत्र है, जिसके अधिकांश भाग पर आज मंदिर और मठ हैं। विशेष रूप से इसके दक्षिणी ओर, हालांकि, कई कृत्रिम टीले पाए गये हैं जिन पर शायद ही कुछ निर्मित है और जो टूटी ईंटों और शिलाखण्डों से पटे पड़े हैं, विशेष रूप से दक्षिण–पश्चिमी कोने पर तथाकथित कुबेर टीला।
>
> ऊपर वर्णित स्थान, जिसके तीन ओर नदी है और मध्य में उन्नयित भूमि है जो नदी पार करने पर दूर नहीं है,में एक प्राचीन बस्ती की सभी आवश्यक भौतिक विशेषताएं प्रतीत होती हैं। अयोध्या में अभी तक दो उत्खनन हुए हैं।"

बेकर का कहना है कि पहली शताब्दी ई. के मध्य से, कोशल के दत्तों का पश्चिम में कुषाण शक्ति से अत्यधिक सामना हुआ,जिसके परिणामस्वरूप कनिष्क ने राजधानी पर कब्जा कर लिया। **बेकर** के अनुसार, 320 ई. में चंद्रगुप्त–। के शासन और उसके उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त के शासन के बाद, साकेत सीधे पाटलिपुत्र के शासन के तहत आ गया। चौथी शताब्दी ई. के उत्तरार्ध में ब्राह्मणवादी संस्थानों और ज्ञान का पुनरोद्भव हुआ, जिसके संदर्भ में यह कहा गया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"आरंभिक गुप्तकाल के दौरान, ब्राह्मणवादी धर्म का हिंदू धर्म के रूप में विकास हो गया। राजा के दैवीकरण के साथ, ईश्वर का पृथ्वी पर अवतारों का सिद्धान्त – चाहे वह किसी मूर्ति के रूप में हो या 'ऐतिहासिक' मानव के रूप में– , को ठोस आधार मिला। इस विकास से, जैसा कि हम देख चुके हैं, अयोध्या के भव्य नगर की साकेत नगर के रूप में मान्यता का मार्ग प्रशस्त हुआ। यह पुनरोद्भव इतना शक्तिशाली था कि बौद्ध तीर्थयात्री फह्यान, जो समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी चंद्रगुप्त द्वितीय के समय में आया, को 'शाची के महान देश' और इसकी राजधानी में अपनी रूचि की कोई चीज मुश्किल से मिली। उनके विवरण से अनैच्छिक रूप से जो हमें जान पड़ता है वह यह है कि साकेत एक दीवार वाला नगर था।"

पांचवीं शताब्दी में नगर के इतिहास का उल्लेख **बेकर** ने निम्नवत किया है:

"नगर के इतिहास में पांचवी शताब्दी एक निर्णायक चरण प्रतीत होती है। इसमें साकेत/अयोध्या अपनी समृद्धि के शिखर पर दिखा और प्रतिष्ठित इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी के रूप में 'पूर्व' गौरव को 'पुनः स्थापित' किया। यह सत्य है कि गुप्त साम्राज्य के पतन और उसके परिणामस्वरूप सामान्य मंदी के कारण इस प्रतिष्ठा को आगामी शताब्दियों में गंभीर क्षति पहुंची, फिर भी इसने उस नियति से नगर की रक्षा की जो गुप्त साम्राज्य के अधिकांश नगरों की हुई अर्थात् गुप्त युग के बाद एक क्षीण अस्तित्व के परिणामस्वरूप इतिहास के मंच से अंततः गायब हो जाना। इक्ष्वाकुओं के प्रसिद्ध नगर के रूप में इसकी मान्यता और सबसे अधिक स्वंय भगवान विष्णु की रामावतार में राजधानी के रूप में मान्यता के कारण, नगर कभी भी हिंदुओं की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ, और परिणामस्वरूप, जब परिस्थितियां ऐसे विकास के लिए तैयार हुई तो यह उत्तर भारत के सबसे पवित्र स्थानों में से एक के रूप पुनर्स्थापित हो सका। अन्य तीर्थ स्थानों की तरह जैसे मथुरा और वाराणसी, "जिन्हें गुप्त काल के बाद प्रायः छोड़ दिया गया", यह नगर दूसरी सहस्त्राब्दि के आरंभ में पुनर्जीवित हो गया।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बेकर ने नोट किया है कि अयोध्या की उत्तरजीविता उत्तर भारत में इसकी केन्द्रीय स्थिति होने और गंगा के मैदान में इसके सामरिक महत्व को भी माना जा सकता है।तेरहवीं शताब्दी के दिल्ली सल्तनत के अधीन अयोध्या को एक बार फिर प्रांतीय राजधानी बनना था। बाद के वर्षों में इसका वाणिज्यिक और सामरिक महत्व प्रतिस्पर्धी नगरों द्वारा ले लिया गया – जौनपुर द्वारा पन्द्रहवीं शताब्दी में, फैजाबाद द्वारा अठारहवीं शताब्दी में और लखनऊ द्वारा अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में। अयोध्या का पतन नहीं हुआ और नगर ने धार्मिक जीवन का उत्कर्ष देखा। चीनी स्रोतों का उल्लेख करते हुए **बेकर** ने कहा है:

> "चीनी स्रोतों से, जैसा कि हम जानते हैं कि, राजा विक्रमादित्य अर्थात स्कन्दगुप्त ने अयोध्या में (परमार्थ के अनुसार) या 'श्रावस्ती' में (ह्वेनसांग के अनुसार) अपना दरबार स्थापित किया था। यह संदेह से परे है कि 'श्रावस्ती' से 'कोसल' को संदर्भित किया गया है जिसकी राजधानी उस समय साकेत/अयोध्या थी, न कि श्रावस्ती। इसकी संभावना है कि राज दरबार कुमारगुप्त के शासनकाल में पहले ही पाटलिपुत्र से साकेत/अयोध्या में स्थानान्तरित हो गया हो। हमने देखा है कि अयोध्या के नाम का उत्कीर्णन वाला पहला शिलालेख इसी राजा के शासनकाल का है। संरक्षित अभिलेखों में पाटलिपुत्र का उल्लेख करने वाला अन्तिम शासक कुमारगुप्त के पिता चंद्रगुप्त द्वितीय है।"

बेकर ने अयोध्या में स्थानीय जनश्रुति प्रचलित होने का उल्लेख किया है जो नगर की पुर्नखोज का श्रेय विक्रमादित्य को देती है इस मौखिक जनश्रुति का उल्लेख **मार्टिन** द्वारा 1838 में किया गया और उसके बाद **कनिंघम** और **कार्नेजी** (1870) द्वारा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यात्रियों और गजेटियरों के वृत्तांतों का विश्लेषण

572. **विलियम फिंच** (1608–11) ने अवध (अयोध्या) का उल्लेख 'एक प्राचीन नगर और पोटान राजा की पीठ जो कि ध्वस्त हो गया है", के रूप में किया है। **फिंच** ने 400 वर्ष पूर्व निर्मित महल का उल्लेख किया है और "रामचन्द्र का महल और घरों के अवशेषों" का भी उल्लेख किया है। **फिंच** ने भगवान राम से जुड़े धार्मिक विश्वासों का, उनके अवतार के हेतु बताते हुए वर्णन किया है। **टिफेन्थेलर** ने भगवान राम का अयोध्या से जुड़ाव का उल्लेख किया है और "इस स्थान पर नदी के उन्नयित तट पर निर्मित एक मन्दिर का उल्लेख है"। **टिफेन्थेलर** का कहना है कि मन्दिर को औरंगजेब द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था और इसके स्थान पर एक मस्जिद बना दी गयी थी। **टिफेन्थेलर** ने एक औरंगजेब द्वारा रामकोट कहे जाने वाले महल के विध्वंश का और उसी स्थान पर "तीन गुम्बद वाले एक मुस्लिम मंदिर के निर्माण" का विशेष उल्लेख किया है। **टिफेन्थेलर** के विवरण में उल्लेख है कि कुछ लोगों के अनुसार मस्जिद बाबर द्वारा बनवायी गयी थी। उस विवरण में चौदह काले पाषाण स्तंभों का संदर्भ है जिसमें से बारह मस्जिद के आंतरिक हिस्से को सहारा देते हैं और दो प्रवेश द्वारा पर लगे हुए हैं। उसके विवरण में एक वर्गाकार बॉक्स का उल्लेख मिलता है जो कि जमीन से पाँच इंच उठा हुआ है और "जिसकी लंबाई 5 एल्स और अधिकतम चौड़ाई 4 एल्स है"। **टिफेन्थेलर** के अनुसार हिन्दू इसे पालना या बेदी कहते थे जो इस विश्वास पर आधारित था एक समय यहाँ पर एक भवन था जिसमें विष्णु का भगवान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

राम के रूप में जन्म हुआ था। हालांकि बाद में, औरंगजेब या बावर ने "इसका विध्वंश करा दिया", पुस्तक में कहा गया है कि उस स्थान पर जहाँ भगवान राम का गृह था, हिन्दू "तीन बार परिक्रमा करते है और तल पर शीश नवाते हैं"। चैत्र माह में भक्तों का जमावड़े का भी संदर्भ है।

573. **टिफेन्थेलर** के विवरण का (और साथ ही अन्य का भी) मूल्यांकन करने के लिए 'जो उसने दूसरों से सुना था' उसे 'जो उसने वास्तव में देखा और पाया था', से अलग करना आवश्यक है। पहली एक अनुश्रुति है। **टिफेन्थेलर** का मस्जिद, एक तीन गुम्बद वाले काले पाषाण स्तंभ युक्त संरचना, के अस्तित्व का वर्णन उसके व्यक्तिगत अवलोकन पर आधारित है। उसकी यह राय कि मस्जिद को संभवतः औरंगजेब ने बनवाया था, प्रत्यक्षतः उस पर आधारित है जो उसने सुना था और यह उसकी व्यक्तिगत जानकारी की बात नहीं है। इसी तरह, इस तथ्य के निष्कर्ष को, कि मस्जिद मंदिर को तोड़कर बनायी गयी थी, स्वतंत्र रूप से सत्यापित किए जाने की आवश्यकता है और पूर्णतः **टिफेन्थेलर** के वृत्तांत पर आधारित नहीं हो सकता। विवरण निश्चित ही विशेष महत्व का है जब यह भगवान राम में हिन्दुओं की आस्था और विश्वास के अस्तित्व का और जन्मस्थान का पास की तीन गुम्बद वाली संरचना से जुड़े होने का, जहाँ एक "वर्गाकार बॉक्स" को जन्म वेदी मानकर पूजा जाता था, का उल्लेख किया है। विवरण में परिक्रमा द्वारा और उस स्थान पर भक्तों के जमा होने की प्रक्रिया से पूजा पद्धति का उल्लेख है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

574. "ईस्ट इंडियन गजेटियर ऑफ हिन्दुस्तान" (1828) में **हैमिल्टन** के विवरण में "घाघरा नदी के दाहिने किनारे पर स्थित, अवध को संदर्भित किया है। नगर को संदर्भित करते हुए **हैमिल्टन** उल्लेख करते हैं कि "यह शहर प्राचीनता के सबसे पवित्र स्थानों में से एक है। " वे उन तीर्थ स्थानों का उल्लेख करते हैं, "जहाँ महान राम की राजधानी, अवध के प्राचीन शहर के अवशेष अभी भी देखे जा सकते है; लेकिन जो कुछ भी इसकी पूर्व भव्यता रही होगी, वह अब भग्नावशेषों के आकारहीन पुंज के अलावा कुछ भी प्रदर्शित नहीं करती।" उन्हें "एक मलबे का ढेर और जंगल मिला, जिसमें से कुछ राम, उनकी पत्नी सीता, उनके सेनापति लक्ष्मण और उनके प्रधानमंत्री हनुमान को समर्पित मंदिरों के प्रतिष्ठित स्थल हैं।" हैमिल्टन ने "रामता संप्रदाय से निकले हुए धार्मिक भिक्षुओं को तीर्थयात्रा करते हुए देखा, जो मंदिर और मूर्तियों के चारो ओर पद–यात्रा करते थे, पवित्र कुण्ड़ में स्नान करते थे और धार्मिक अनुष्ठान करते थे।" जबकि हैमिल्टन स्पष्ट रूप से अयोध्या में मंदिरों को और पूजा के प्रथागत रूपों को भगवान राम में आस्था और विश्वास के प्रति संदर्भित करते हैं, राम जन्मभूमि मंदिर या मस्जिद के बारे में कोई विशेष अवलोकन नहीं है।

575. **मार्टिन** के विवरण (1838) में यह संदर्भ है कि अयोध्या में मन्दिरों के विनाश को "सामान्यतः हिन्दुओं द्वारा औरंगजेब के उग्रता को जिम्मेदार ठहराया जाता है, और यह उल्लिखित किया गया है कि उसके छोटे से अवशेष भी नही बचे हैं। अयोध्या में मस्जिद के बारें में मार्टिन कहते हैं कि "इसमें अत्याधुनिक होने के प्रत्येक लक्षण हैं", यह इसकी दीवारों पर लगे

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शिलालेख से पता चलता है कि औरंगजेब से पांच पीढ़ी पहले बाबर ने बनवाया था। **मार्टिन** अयोध्यावासियों की इस आस्था को संदर्भित करते हैं कि वृहदबाला की मृत्यु के बाद उनका नगर तब तक वीरान था, जब तक कि "उज्जैन के विक्रम" आये जो पवित्र नगर की खोज में आये थे और उन्होनें भगवान राम की आस्था वाले पवित्र स्थलों पर 360 मन्दिर बनवाये। मार्टिन ने विक्रम का उल्लेख करते हुए, दोनों को संवत युग के प्रवर्तक और बाद के दिन विक्रम को संदर्भित किया। मार्टिन ने विक्रम का उल्लेख करते हुए, दोनों को संवत युग का प्रवर्तक और बाद वाला विक्रम संदर्भित किया। मार्टिन के अनुसार यह संभावना थी कि भगवान राम की पूजा बड़े विक्रम के समय से होती हो, एक संप्रदाय के भाग के रूप में उनकी पूजा सबसे पहले रामानुज द्वारा स्थापित की गई होगी। शहर और उसके मंदिरों के उद्गम पर ये मार्टिन की परिकल्पना के एक भाग हैं। यह साक्ष्य का गठन नहीं करता है। मार्टिन, बाबर द्वारा बनाई गई मस्जिद के स्तम्भों का जिक्र करते हुए उल्लिखित करते हैं कि ये काले पत्थर के हैं और इन्हें हिन्दू इमारत से लिया गया है, जिसका प्रमाण उनके कुछ आधारों पर आकृतियों का होना है जिन्हे खण्ड़ित कर दिया गया है। **मार्टिन** के अनुसार, ये स्तंभ महल के खंडहरों से लिए गए होंगे। जैसा कि उपर्युक्त विश्लेषण से संकेत मिलता है, मार्टिन के विवरण अनुमान पर हैं। जबकि उन्होंने मस्जिद के संबंध में, भगवान राम से जुड़ी आस्था और विश्वास के संबंध में अपने स्वयं के विचारों का उल्लेख किया है और काले पत्थर के स्तंभों की उपस्थिति के बारे में विवरण , व्यापक रूप से अतीत के इतिहास के उनके स्वयं के आकलन पर है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

576. "गजेटियर ऑफ द टेरिट्रीज अण्ड़र द गर्वमेन्ट ऑफ ईस्ट इण्ड़िया कंपनी" (1858) में **एडवर्ड थॉर्न्टन** का विवरण "विशाल खंडहर" को संदर्भित करता है, "जिसे राम के किले का होना कहा जाता है।" थॉर्न्टन एक ग्रन्थ से उद्धरण को संदर्भित करते हैं जिसे बुचनेन का माना जाता है। वह 360 मंदिरों के निर्माण और औरंगजेब द्वारा उनके विध्वंस के विश्वास की जनश्रुति का संदर्भ देते हैं। उनका मंदिर के स्थान पर मस्जिद के निर्माण को मानना ऐतिहासिक तथ्य का प्रमाण नहीं है। **थॉर्न्टन** ने जो सुना उसे अभिलिखित किया: न तो वो जिन्होंने उसे उनकी आस्था के बारे में बताया और न ही दस्तावेज़ के लेखक, प्रति–परीक्षा के दौरान मूल्यांकित किया जाने के लिए उपलब्ध हैं। ऐसा विवरण उन स्वीकार्य साक्ष्य के कठोर मानकों के साथ–साथ संभावनाओं की प्रबलता के अधिक शिथिल मानक को पूरा नहीं कर सकता है जो दीवानी परीक्षणों को नियंत्रित करते हैं।

577. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी ने जोर दिया है कि उपरोक्त उद्धरण में गजेटियर ने इस सिद्धांत का समर्थन करने के लिए "मस्जिद की दीवार पर एक शिलालेख" पर अवलम्बन लिया है कि स्थानीय परंपराएँ जो मस्जिद का निर्माण औरंगजेब द्वारा बताती हैं, इसके विपरीत मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था। उनके अनुसार हिंदुओं द्वारा मस्जिद के मध्य गुंबद के नीचे पूजा का कोई विशेष संदर्भ नहीं है। हालांकि, यह नोट करना प्रासंगिक है कि **थॉर्न्टन** की टिप्पणीयाँ व्यक्तिगत नहीं हैं और उन्होंने बुचनेन के ग्रन्थ से एक निष्कर्ष निकाला है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

औपनिवेशिक सरकार का उद्देश्य एक गजेटियर के रूप में भारत के बारे में प्रामाणिक जानकारी को "एक सस्ते और सुविधाजनक रूप में" ब्रिटिश जनता को देना था। इस चेतावनी को ध्यान में रखते हुए यह नोट करना प्रासंगिक है कि उपरोक्त उद्धरण निम्नलिखित को संदर्भित करता हैं:

(i) "रामगढ़ या राम के किले" के खंडहर;

(ii) मस्जिद में 14 कसौटी पत्थर के स्तंभों की उपस्थिति जिसमें परिष्कृत और रोचक कारीगरी है और;

(iii) पत्थर का एक चतुष्कोणीय पालना जिसे वह पालना माना जाता है जिसमें भगवान राम का जन्म भगवान विष्णु के अवतार के रूप में हुआ था।

578. **कनिंघम** का "आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्ड़िया" (1862–5), "अयोध्या के बारे में अनेक पवित्र ब्राह्मणवादी मंदिरों" के अस्तित्व का उल्लेख करता है और यह कि "प्राचीन मंदिरों को मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिया गया था।" रिपोर्ट में कहा गया है कि शहर के केंद्र में, "जन्म स्थान" या "राम का जन्म–स्थान मंदिर" है। पुस्तक में रामकोट को स्वर्गदारी संदर्भित किया गया है और उल्लेख किया है कि "शहर के केन्द्र में ही एक मील दूरी का चौथाई हिस्सा जन्म स्थान या राम का 'जन्म–स्थान मन्दिर' है।" श्री जिलानी ने तर्क दिया कि राम के जन्म–स्थान मंदिर का संदर्भ विवादित ढाँचे के समान नहीं है और यह कहीं और स्थित है। **कनिंघम** के विवरण में हनुमान गढ़ी, स्वर्ण द्वार, लक्ष्मण घाट और जन्मस्थान सहित धार्मिक स्थलों के समूह की जानकारी है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

579. स्थानापन्न आयुक्त और बन्दोबस्त अधिकारी के रूप में **पी कार्नेगी** ने "हिस्टोरिकल स्केच ऑफ फैजाबाद" (1870) में जन्मस्थान, स्वर्ग द्वार मंदिर और त्रेता–के–ठाकुर के संदर्भ में हिंदुओं की आस्था के लिए अयोध्या के महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने 1528 ई. में मस्जिद के निर्माण का श्रेय बाबर को दिया है और लिखा है कि एक पूर्ववर्ती मंदिर के कई कसौटी पत्थर के स्तंभों का इस्तेमाल मस्जिद में किया गया है। उनके विवरण में "रामकोट को रामचन्द्र का गढ़" संदर्भित किया गया है और यह कि यह किला "20 दुर्गों से घिरा हुआ था", जिनमें से प्रत्येक को भगवान राम के एक प्रसिद्ध सेनापति द्वारा शासित होना माना जाता था। कार्नेगी ने 1855 में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए विद्रोह को संदर्भित किया है और जिसके परिणामस्वरूप 75 मुसलमानों की मृत्यु हो गयी जिन्हें विवादित ढाँचे के बगल में कब्रिस्तान में दफन किया गया था। **कार्नेगी** के अनुसार इसके पहले तक हिंदू और मुसलमान "मस्जिद– मंदिर" के रूप में वर्णित इस स्थान में समान रूप से उपासना किया करते थे। हालांकि ब्रिटिश शासन के बाद से भावी संघर्षों से बचने के लिए एक रेलिंग तैयार की गयी थी। यह कहा गया है कि इसके भीतर मुस्लिम प्रार्थना करते थे, जबकि बाड़े के बाहर हिन्दुओं ने एक चबूतरा बनाया जिस पर वे चढ़ावा चढ़ाते थे। **कार्नेगी** के विवरण में जन्मस्थान सहित तीन धार्मिक स्थल उल्लिखित हैं। उनके विवरण में उस जन्मस्थान स्थल पर बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण करना माना गया है जिसे वह उस "स्थान के रूप में चिन्हित करते हैं जहाँ राम चंद्र का जन्म हुआ था।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

580. **कार्नेगी** ने इस तथ्य के मद्देनजर कि "यह उल्लेखनीय है बाबर के जीवन से संबंधित सभी ज्ञात पुस्तकों में अयोध्या में उसके कार्यों से संबंधित पृष्ठ नामौजूद हैं", सरयू और घाघरा नदी के तट पर घेरा डालने वाला बाबर के अभियानों पर लेडन के संस्मरण का सहारा लिया है। उसने 1528 ईस्वी में इसका निर्माण मानते हुए मस्जिद पर दो शिलालेखों का उल्लेख किया है। मस्जिद में इस्तेमाल हुए कसौटी पत्थर के स्तंभों का एक संदर्भ है जो उन्हे बौद्ध स्तंभों से मिलता जुलता है। उनके आधार पर, वह परिकल्पना करते हैं कि "यदि अयोध्या वीरान नहीं था, तो इसमें कम से कम जन्मस्थान में एक अच्छा मंदिर होना चाहिए; इसके कई स्तंभ अभी भी अस्तित्व में हैं और अत्यंत सुरक्षित हैं, जिनका उपयोग मुसलामानों द्वारा बाबरी मस्जिद के निर्माण में किया गया था।"

कार्नेगी 1855 के संघर्ष का विवरण देता हैः

> "हिंदू और मुसलमान मतभेद – जन्मस्थान हनुमान गढ़ी के कुछ सौ कदम की दूरी के भीतर है। 1855 में जब हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच झड़प हुई तो पहले ने बल पूर्वक हनुमान गढ़ी पर कब्जा कर लिया, जबकि मुसलमानों ने जन्मस्थान पर कब्जा कर लिया। उस अवसर पर मुस्लिमों ने वास्तव में हनुमान गढ़ी की सीढ़ियों तक कोशिश की लेकिन उन्हें काफी नुकसान के साथ खदेड़ दिया गया। इसके बाद हिंदुओं ने इस सफलता का अनुसरण किया और तीसरे प्रयास में, जन्मस्थान ले लिया, जिसके द्वार पर 75 मुस्लिम "शहीद कब्र" (गंज–ए–शहीद) में दफन हैं। राजा के कई रेजीमेंट हर समय देखते थे, लेकिन उनको हस्तक्षेप का आदेश नहीं था। ऐसा कहा जाता है कि उस समय तक हिंदू और मुस्लिम दोनों उस मस्जिद–मंदिर में समान रूप से पूजा करते थे। ब्रिटिश शासन से विवादों को रोकने के लिए एक रेलिंग लगाई गयी है, जिसके भीतर मस्जिद में मुस्लिम प्रार्थना करते हैं, जबकि दीवार के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बाहर हिंदुओं ने एक चबूतरा बना लिया है जिस पर वे अपना चढ़ावा चढ़ाते हैं।"

कार्नेजी का विवरण हिंसा की घटना के लगभग पंद्रह साल बाद का है, इस घटना के परिणामस्वरूप ब्रिटिश द्वारा पूजा के उनके क्षेत्रों में दो समुदायों को अलग करने के लिए रेलिंग लगाई गई थी। श्री जिलानी ने **कार्नेगी** के विवरण में इस संदर्भ को चुनौती दी कि घटना से पहले "मस्जिद– मंदिर" के भीतर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों द्वारा पूजा की जाती थी। **कार्नेगी** जब अवलोकन करते हैं कि "यह कहा जाता है" कि उस समय तक मुसलमानों और हिंदुओं द्वारा मस्जिद के अंदर समान रूप से प्रार्थना की जाती थी, उपरोक्त उद्धरण में वास्तव में सचेत हैं। लेकिन विवरण कुछ ऐसी चीजों को बताता है जिस पर विवाद नही है अर्थात् यह कि घटना के बाद रेलिंग एक अवरोध के रूप में लगायी गयी जो मुस्लिमों को आंतरिक अहाते और हिंदुओं को बाहरी अहाते में– धार्मिक पूजा करने में दो समुदायों को अलग करती थी। गौरतलब है कि **कार्नेगी** का विवरण हिन्दुओं द्वारा चबूतरे के निर्माण को मस्जिद के बाहर रेलिंग के निर्माण से जोड़ता है। उनके विवरण के अनुसार, रेलिंग के निर्माण के परिणामस्वरूप पूजा के पूर्ववर्ती तरीके से उत्पन्न अपवर्जन का सामना करने से हिंदुओं ने रेलिंग के बाहर चबूतरे की स्थापना की होगी। जिसका बाद में पता लगाया जाएगा, चबूतरे का निर्माण रेलिंग के समीप किया गया था, जहां से पूजा की जाती थी और उस पर चढ़ावा चढ़ाया जाता था, जिसे हिंदु भगवान राम का जन्म–स्थान मानते थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

581. **द इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया (1908)** एक विशाल टीले को संदर्भित करता है जिसे "रामकोट या राम के किले" के रूप में जाना जाता है और इसके एक कोने में वह पवित्र स्थान मौजूद है जहाँ भगवान राम का जन्म हुआ था। गजेटियर में अभिलिखित है कि अधिकांश बाड़े पर एक पुराने मंदिर के अवशेषों से बाबर द्वारा निर्मित एक मस्जिद का कब्जा है। यह बाहरी हिस्से में राम चबूतरा के अस्तित्व को संदर्भित करता है जो भगवान राम के "जन्मस्थान को चिह्नित करता" है। गजेटियर ने सीता रसोई की मौजूदगी को करीब से देखा।

582. **द डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ फैजाबाद, (1960)**[309] चंद्रगुप्त प्रथम को राज्य का वास्तविक संस्थापक मानता है "जिसका विस्तार साकेत (अवध) और प्रयाग (इलाहाबाद) तक था।" अयोध्या की पुनर्स्थापना का श्रेय उज्जैन के विक्रमादित्य को है जिसकी चंद्रगुप्त द्वितीय के नाम से पहचान की गयी है। गजेटियर में उल्लेख किया गया है कि चीनी यात्री ह्वेनत्सांग (630–644 ईस्वी) अवध से गुजरा और "100 बौद्ध मठों, 3000 से अधिक महायान तथा हीनयान के साधु और केवल दस देव (गैर–बौद्ध देवता) मन्दिर, गैर बौद्ध हैं लेकिन कम संख्या में हैं" , की मौजूदगी का उल्लेख किया है। गजेटियर के अनुसार, भगवान राम का जन्म–स्थान होने के हिन्दुओं के विश्वास को दर्शाने वाले ज्यादात्तर क्षेत्रों पर मस्जिद का कब्जा है। गजेटियर का दावा यह है कि पुराने मन्दिर के अवशेषों पर मस्जिद का निर्माण किया गया। यह उल्लिखित करता है कि बाहरी भाग में एक छोटा चबूतरा और वेदिका ही जन्मस्थान है।

---

309 श्रीमती इशा बसंत जोशी द्वारा यू.पी. गजेटियर फैजाबाद (1960 संस्करण)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

583. तर्कों के दौरान गजेटियर्स और यात्रा वृत्तांतों के अपने विश्लेषण पर श्री जिलानी ने निम्नलिखित प्रस्ताव निरूपित किया:

(i) वर्ष 1528 में मस्जिद के निर्माण से लेकर वर्ष 1949 तक की अवधि तक हिंदुओं की यह मान्यता सिद्ध करने का कोई प्रमाण नहीं है कि भगवान राम का जन्म स्थान मस्जिद के मध्य गुंबद के नीचे था;

(ii) वर्ष 1828 से मस्जिद के अंदर हिंदू पूजा की निरंतरता को दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं हैं;

(iii) रामचबूतरा भगवान राम का जन्म स्थान है;

(iv) जन्म–स्थान के रूप में रामचबूतरा को इस तथ्य के द्वारा संपुष्ट किया गया है कि 1885 के वाद में वादी ने आंतरिक अहाते के संबंध में किसी प्रार्थना की माँग नहीं की थी;

(v) यह केवल वाद 5 वर्ष 1989 में था कि पूर्व में एक जन्मस्थान की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया था जिसके बारे में यह धारणा थी कि केंद्रीय गुंबद भगवान राम की जन्मभूमि नहीं थी; तथा

(vi) भगवान राम के जन्म स्थान को चिह्नित करने वाले मध्य गुंबद की परिकल्पना केवल वाद 5 में साक्षियों के कथन से आता है।

श्री जिलानी का निरूपण है कि रामचबूतरा जन्म स्थान के दो दृष्टिकोणों से महत्व को अपनाएगा: पहला यह है कि आंतरिक और बाह्य अहातों से युक्त संपूर्ण स्थल एक संयुक्त संपत्ति है और रेलिंग को औपनिवेशिक सरकार द्वारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

केवल शांति, कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए एक उपचार के रूप में रखा जा रहा है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि श्री जिलानी के तर्क यह मान्यता देते हैं: (i) उस स्थिति की स्वीकृति जो जन्म –स्थान विवादित स्थल (उसके अनुसार रामचबूतरा) के भीतर एक क्षेत्र में है; और (ii) रामचबूतरा की भौतिक निकटता से इनकार नहीं किया गया है, जिसे रेलिंग के ठीक बाहर बनाया गया था।

यात्रा विववरण, गजेटियर एवं पुस्तकें

584. वाद 4 में वादी की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने तर्क दिया कि ऐतिहासिक सामग्री का कोई भी उपयोग यात्रा–वृत्तांतों और गजेटियर से मिलकर सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। डॉ. धवन ने तर्क दिया:

(i) स्वत्व के मुद्दे को ऐतिहासिक कार्य, ग्रंथ और यात्रा वृत्तांत के आधार पर तय नहीं किए जा सकते हैं;

(ii) न्यायालय को वाद 5 में वादी के अधिवक्ता द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को नहीं मानना चाहिए, जिसने अप्रमाणित ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है; तथा

(iii) इतिहासलेखन की पुनरावृत्ति के बिना इतिहास को पढ़ा या व्याख्या नहीं किया जा सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

डॉ. धवन ने न्यायमूर्ति एस यू खान और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल की कार्यप्रणाली को इस आधार पर गलत ठहराया कि उनका विश्लेषण अनुमान कार्य के आधार पर आगे बढ़ता है। इस मुद्दे को उठाते हुए कि कैसे संभावनाओं की अधिकता गजेटियर में भरा जा सकता है, उन्होंने कहा कि ऐतिहासिक तथ्य पर अवलम्ब लेते हुए उच्च न्यायालय से मूल रूप से यह पूछा जा रहा था (जैसा कि उन्होंने इसे वर्णित किया है) "अनुमानित कार्य के शीर्ष में खड़ा होना"।

585. जो तर्क दिए गए हैं उनका विश्लेषण करते हुए हमें **फ़रजंद अली** बनाम **ज़फ़र अली**[310] में पंजाब मुख्य न्यायालय के निर्णय के लिए प्रारम्भ से ही संदर्भित होना चाहिए। उस मामले में, एक मस्जिद के मुतवल्ली और प्रतिवादियों के बीच एक विवाद था, जो कुछ संपत्तियो से अधिक दिवंगत इमाम के वंशज थे। मुतवल्ली ने इसे एक धार्मिक बंदोबस्ती का भाग कहा। न्यायालय ने यह अवधारित किया:

> "हमें लगता है कि संपत्ति के लिए स्वत्व स्थापित करने के लिए ऐतिहासिक कार्यों का उपयोग भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 57 के बल पर उचित नहीं ठहराया जा सकता है। यद्यपि हमारी राय में पुरानी और ऐतिहासिक संस्था मस्जिद के न्यासी और एक निजी व्यक्ति के बीच प्रश्नगत स्वत्व उक्त धारा के अर्थ के अंदर "सार्वजनिक इतिहास का मामला" नहीं माना जा सकता है।
>
> इसलिए, हमें साक्ष्य के इस भाग को विचार से बाहर करना चाहिए और हमें नहीं लगता कि इसके अपवर्जन से परिणाम में कोई फर्क पड़ेगा। दो पुस्तकों में शामिल विवरण वादी के लिए किसी भी उच्च परिमाण तक

---

310 (1918) 46 IC 119

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामले को आगे नहीं बढ़ाता है, और वास्तव में इस विवरण को अभिलेख पर अन्य स्वीकार्य साक्ष्य से संग्रह किया जा सकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

इसी प्रकार का दृष्टिकोण **कर्नाटक बोर्ड ऑफ वक्फ** बनाम **गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया**[311] में इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ ने अपनाया, जहाँ न्यायमूर्ति राजेन्द्र बाबू ने अभिनिर्धारित किया:

"8... जहां तक दीवानी प्रकृति के स्वत्व वाद का संबंध है, ऐतिहासिक तथ्यों और दावों के लिए कोई स्थान नहीं है। सीमावर्ती ऐतिहासिक तथ्यों पर अवलंब लेना गलत निष्कर्षों को प्राप्त करेगी। इस प्रस्ताव के लिए यह प्रश्न स्वामित्व, कब्जे और वाद की संपत्ति पर स्वत्व का *तथ्य* है। इसे साबित करने के लिए केवल स्वीकार्य साक्ष्य और अभिलेख ही सहायक हो सकते हैं।"

---

311 (2004) 10 SCC 779

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

586. साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 57[312] उन तथ्यों को स्पष्ट करती है, जिन्हें न्यायालय द्वारा न्यायिक अवेक्षा लिया जाना चाहिए। तथ्य की 13 श्रेणियों, जिनमें से न्यायिक अवेक्षा लिया जा सकता है, को निरूपित करने के बाद यह निर्धारित करता है कि "इन सभी मामलों में और लोक इतिहास, साहित्य, विज्ञान और कला के सभी मामलों पर भी न्यायालय संदर्भ के लिए उपयुक्त पुस्तकों या दस्तावेजों का सहारा ले सकती है"। उपरोक्त प्रावधान न्यायालय को लोक इतिहास के मामलों पर पुस्तकों और संदर्भ दस्तावेजों के साथ–साथ "इसके साधन के लिए" सहारा लेने में सक्षम बनाता है।

587. जबकि वाद 5 में वादकारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता और हिंदू पक्षकारों के लिए पेश होने वाले अन्य अधिवक्ता द्वारा गजेटियर पर

---

312 **57. वे तथ्य, जिनकी न्यायिक अवेक्षा न्यायालय को करनी होगी**–– न्यायालय निम्नलिखित तथ्यों की न्यायिक अवेक्षा करेगा––

[(i) भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त समस्त विधियाँ;]

(ii) यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेण्ट द्वारा पारित किए जाने वाले समस्त पब्लिक ऐक्ट तथा वे समस्त स्थानीय और पर्सनल ऐक्ट जिनके बारे में यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेण्ट ने निर्दिष्ट किया है कि उनकी न्यायिक अवेक्षा की जाए;

(iii) भारतीय सेना, नौसेना या वायुसेना के लिए युद्ध की नियमावली;

[(iv) यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेण्ट की, भारत की संविधान सभा की,संसद की, संसद की तथा किसी प्रान्त या राज्यों में तत्समय प्रवृत्त विधियों के अधीन स्थापित विधान मण्डलों की कार्यवाही का अननुक्रम;]

(v) ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड की यूनाइटेड किंगडम के तत्समय प्रभुका राज्यारोहण और राजहस्ताक्षर;

(vi) वे सब मुद्राएं, जिनकी अंग्रेजी न्यायलय न्यायिक अवेक्षा करते हैं, भारत के सब न्यायालयों की और केन्द्रीय सरकार या क्राउन रिप्रेजेण्टेटिव के प्राधिकार द्वारा भारत के बाहर स्थापित सब न्यायालयों की मुद्राएं, नावधिकरण और समुद्रीय अधिकारिता वाले न्यायालयों की और नोटरीज़ पब्लिक की मुद्राएँ और वे सब मुद्राएँ, जिनका कोई व्यक्ति संविधान या यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेण्ट के किसी ऐक्ट या भारत में विधि का बल रखने वाले अधिनियम या विनिमय द्वारा उपयोग करने के लिए प्राधिकृत है;

(vii) किसी राज्य में किसी लोकपद पर तत्समय आरूढ़ व्यक्तियों के कोई पदारोहण, नाम, उपाधियां, कृत्य और हस्ताक्षर, यदि ऐसे पद पर उनकी नियुक्ति का तथ्य किसी शासकीय राजपत्र में अधिसूचित किया गया हो;

(viii) भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हर राज्य या प्रभु का अस्तित्व, उपाधि और राष्ट्रीय ध्वज;

(ix) समय के प्रभाग, पृथ्वी के भौगोलिक प्रभाग तथा शासकीय राजपत्र में अधिसूचित लोक उत्सव, उपवास और अवकाश–दिन;

(x) भारत सरकार के आधिपत्य के अधीन राज्य–क्षेत्र;

(xi) भारत सरकार और अन्य किसी राज्य या व्यक्तियों के निकाय के बीच संघर्ष का प्रारंभ, चालू रहना और पर्यावसान;

(xii) न्यायालय के सदस्यों और ऑफिसरों के तथा उनके उप–पदियों और अधीनस्थ ऑफिसरों और सहायकों के और उसकी आदेशिकाओं के निष्पादन में कार्य करने वाले सब ऑफिसरों के भी, तथा सब अधिवक्ताओं, अटर्नियों, प्रोक्टरों, वकीलों, प्लीडरों और उसके समक्ष उपसंजात होने या कार्य करने के लिए किसी विधि द्वारा प्राधिकृत अन्य व्यक्तियों के नाम;

(xiii) भूमि या समुद्र पर मार्ग का नियम।

इन सभी मामलों में, तथा लोक–इतिहास, साहित्य, विज्ञान या कला के सब विषयों में भी नयायालय समुपयुक्त निर्देश पुस्तकों या दस्तावेजों की सहायता ले सकेगा।

यदि न्यायालय से किसी तथ्य की न्यायिक अवेक्षा करने की किसी व्यक्ति द्वारा प्रार्थना की जाती है, तो यदि और जब तक वह व्यक्ति कोई ऐसी पुस्तक या दस्तावेज पेश न कर दे, जिसे ऐसा न्यायालय अपने को ऐसा करने को समर्थ बनाने के लिए आवश्यक समझता है, न्यायालय ऐसा करने से इंकार कर सकेगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यापक अवलंब लिया गया है, उन्हें विधि के सिद्धांतों के संदर्भ में पढ़ना आवश्यक है जो गजेटियर पर अवलंब को शासित करते हैं।

588. साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 81 में न्यायालय को "ब्रिटिश क्राउन के किसी भी उपनिवेश के आधिपत्य या कब्जे" के लिए "किसी भी आधिकारिक राजपत्र या सरकारी राजपत्र के रूप में होने वाले प्रत्येक दस्तावेज की वास्तविकता" को मानने की आवश्यकता है।[313] धारा 81 दस्तावेज की वास्तविकता का अनुमान लगाती है और इसके अन्तर्वस्तु की नहीं। जब न्यायालय को एक सार्वजनिक प्रकृति के तथ्य के अस्तित्व पर एक राय बनानी होती है, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 37[314] संकेत करती है कि सरकारी गजट में इसका कोई भी कथन एक प्रासंगिक तथ्य है। जबकि इस न्यायालय के कई निर्णयों में गजेटियर पर ध्यान दिया गया है और यह ध्यान रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि इन पर लिया गया अवलंब संपोषी तथ्य की प्रकृति में अधिक है।

---

313 साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 81 यह उपबंध करती है:

राजपत्रों, समाचारपत्रों, पार्लियामेन्ट के प्राइवेट एक्टों और अन्य दस्तावेजों के बारे में उपधारणाएं––न्यायालय हर ऐसी दस्तावेज का असली होना उपधारित करेगा जिसका लंदन गजट, या कोई शासकीय राजपत्र या ब्रिटिश क्राउन के किसी उपनिवेश, आश्रित देश या कब्जाधीन क्षेत्र का सरकारी राजपत्र होना या कोई समाचार पत्र या जर्नल होना, या यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेन्ट के प्राइवेट ऐक्ट की क्वीन्स प्रिन्टर द्वारा मुद्रित प्रति होना, तात्पर्यित है तथा हर ऐसी दस्तावेज का, जिसका ऐसी दस्तावेज होना, तात्पर्यित है जिसका किसी व्यक्ति द्वारा रखा जाना किसी विधि द्वारा निर्दिष्ट है, यदि ऐसी दस्तावेज सारतः उस प्ररूप में रखी गई हो, जो विधि द्वारा अपेक्षित है, और उचित अभिरक्षा में से पेश किया गया हो, असली होना उपधारित करेगा।

314 साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 37 यह उपबंध करती है:

किन्हीं अधिनियमों या अधिसूचनाओं में अंतर्विष्ट लोक प्रकृति के तथ्य के बारे में कथन की सुसंगति––जबकि न्यायालय को किसी लोक प्रकृति के तत्य के अस्तित्व के बारे में राय बनानी है तब यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के ऐक्ट में या किसी केन्द्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम या राज्य अधिनियम में या शासकीय राजपत्र में प्रकाशित किसी सरकारी अधिसूचना या क्राउन रिप्रेजेंटेटिव द्वारा की गई अधिसूचना में या लंदन गजट या हिज मजेस्टी के किसी डोमिनियन, उपनिवेश या कब्जाधीन क्षेत्र का सरकारी राजपत्र तात्पर्यित होने वाले किसी मुद्रित पत्र में अंतर्विष्ट परिवर्णन में किया गया उसका कोई कथन सुसंगत तथ्य है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

589. **राजा मुत्तू रामालिंगा सेतुपति** बनाम **पेरियानायागम पिल्लई**[315] में प्रिवी काउंसिल ने इस आधार पर उच्च न्यायालय के निर्णय पर आपत्ति जताई कि कलेक्टरों की रिपोर्ट में अत्यधिक जोर दिया गया था। उस संदर्भ में प्रिवी काउंसिल ने अवधारित किया:

> "लॉर्डशिप का मानना है कि इसे स्वीकार किया जाना चाहिए कि **जब ये रिपोर्ट पक्षकारों के निजी अधिकारों पर राय व्यक्त करते हैं, तो ऐसी राय को विधिक अधिकार या बल के रूप में नहीं माना जाना चाहिए**। लेकिन ड्यूटी के दौरान, लोक अधिकारियों और वैधानिक प्राधिकरण की रिपोर्ट के होते हुए **वे उच्च विचार के हकदार हैं क्योंकि वे आधिकारिक कार्यवाही और ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्रदान करते हैं** और यह भी कि जहाँ तक वे पक्षकारों के आचरण और कृत्यों की व्याख्या करने के लिए प्रासंगिक हैं उस संबंध में सरकार की कार्यवाहियों को उन पर संस्थापित की गई।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

प्रिवी काउंसिल ने निजी अधिकारों से संबंधित मामलों पर कलेक्टर की रिपोर्ट का उपयोग करने के विरूद्ध चेतावनी दी थी। परन्तु शासकीय कार्यवाही या ऐतिहासिक तथ्यों के अभिलेख के रूप में, और उनके संबंध में पक्षकारों के आचरण की व्याख्या करने के लिए, वे उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं।

गुलाम रसूल खान बनाम सेक्रेट्री ऑफ स्टेट फॉर इण्ड़िया इन कॉउन्सिल[316] के मामले में प्रिवी काउंसिल ने धारित किया:

---

315 (1873–74) 1 IA 209

316 1925 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी.सी. 12

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"…. सार्वजनिक दस्तावेजों में दिए गए कथन सामान्य आधारों पर कथित तथ्यों को साबित करने के लिए प्राप्य हैं कि वे जनता के प्राधिकृत अभिकर्ताओं द्वारा शासकीय कर्तव्य के अनुक्रम में किए गए थे और संबंधित तथ्य लोकहित में थे और समुदाय के लाभ के लिए उनका अभिलिखित किया जाना अपेक्षित था: *टेलर्स लॉ ऑफ इविडेंस, 10 वां संस्करण, एस. 1591)* वास्तव में लगभग सभी मामलों, इस बात का साक्ष्य देना असम्भव हो जाता है कि कई वर्ष बीत जाने के बाद ऐसे प्रपत्र में किये गये कथन वास्तव में सच ही हों और इसका कारण यह कि ऐसा अपवाद अनुश्रुत साक्ष्य के लिए बनाया गया है।

(प्रभाव वर्धित)

सुखदेव सिंह बनाम महाराजा बहादुर[317] के मामले में, इस न्यायालय जमींदारी की प्रकृति का पता लगाया और उस संदर्भ में जिला गजट की जांच की। अदालत ने अवलोकन किया:

"यह आवश्यक नहीं है कि गजट के कथन निश्चायक हों, किंतु गजट एक मूल्यवान सरकारी दस्तावेज होता है, क्योंकि यह अनुभवी अधिकारियों द्वारा शासकीय अभिलेखों से तथ्यों को लेकर बड़ी ही सावधानी से संकलित किया गया है। जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति डाउसन मिलर ने फुलबती के मामले(ए.आई.आर. 1923 पटना 453) में उल्लेख किया है जहां पर ऊपर उद्धृत विवरण के बाद वाले भाग में कुछ असंगतता है, लेकिन जहां तक इसके पहले भाग का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन दस्तावेजों से काफी संपुष्ट होता है जिनका संदर्भ दिया गया है।"

उपरोक्त निष्कर्ष में, न्यायालय ने गजेटियर पर स्वयं द्वारा किये गये भरोसे की जांच कर उल्लेख किया कि यह "अनिवार्यतः निश्चायक" नहीं था फिर भी

---

317 (1951)एस.सी.आर. 534

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसका "कुछ मूल्य" था। वह जिस भाग पर न्यायालय ने भरोसा जताया और जैसा कि उल्लेख किया है वह भाग उन दस्तावेजों से समर्थित हैं और इसलिए उसमें स्थापित किये गये हैं। शेष भाग पर न्यायालय ने भरोसा नहीं जताया। अदालत ने अपने पुष्टिकारक गुणों का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन किया। इसने एक भाग को अस्वीकार कर दिया और जो हिस्सा इसे स्वीकार किया वह अन्य दस्तावेजी सामाग्रियों से लिया गया था। दूसरे शब्दों में, गजटियर द्वारा प्रस्तुत सामाग्री जहां तक स्वीकार्य थी वहां तक सम्पोषक थी।

590. **महंत श्री श्रीनिवास रामानुज दास बनाम सूरजनारायण दास** [318]318, न्यायमूर्ति रघुबर दयाल ने ओ. मैले की पुरी गजेटियर ऑफ 1908 जिसमें मठ के इतिहास का उल्लेख किया था पर विचार कर अवलोकन किया:

> "यह अपीलकर्ता के लिए आग्रह किया जाता है कि गजेटर में जो कहा गया है उसे साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। गजेटियर के ये कथन स्वत्व के साक्ष्य के रूप में अवलम्बित नहीं हैं बल्कि ऐतिहासिक सामग्री उपल्बध कराते हैं और मठ और उसके प्रमुख कार्यों को बताते हैं। लोक इतिहास के मामलों पर गजेटियर से परामर्श किया जा सकता है।"

उपरोक्त अवलोकन इंगित करता है कि गजेटियर में मौजूद कथन स्वत्व को नहीं साबित करते हैं लेकिन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में जानकारी प्रदान करते है जिसमें मठ द्वारा किये जाने कार्य संबंधी मामले सम्मिलित हैं। हक के दावे (जो अनुज्ञेय न हो) को करने के लिए गजटियर पर अवलम्ब लेना और लोक इतिहास (जिसकी अदालत उचित सीमा तक सावधानीपूर्वक परामर्श

---

318 1966 सप्लीमेंट्री 436

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कर सकती है) के तथ्य पर संदर्भ सामाग्री के बीच एक स्पष्ट अन्तर किया जाना चाहिए।

विमला बाई बनाम हीरालाल गुप्ता [319] मामले में, मुद्दा यह था कि क्या एक महिला बंधु पुरुष धारक की संपत्ति के लिए अपनी माता की तरफ से पुरुष धारक की पांच पीढ़ी के भीतर संपत्ति में उत्तराधिकार पाने का हक रखती है। इनाम रजिस्टर के मुद्दे पर, इस न्यायालय ने अवलोकन किया कि इसका महान साक्ष्यिक मूल्य था और इसकी प्रविष्टियां को अभिलेख पर मौजूद अन्य साक्ष्य के संदर्भ में विचारित किया गया। आधिकारिक गजट के साक्ष्यिक मूल्य पर, इस न्यायालय की दो न्यायमूर्तियों वाली पीठ ने प्रव्रजन के संदर्भ में साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 37 और धारा 57 (13) पर विचार कर अवलोकन किया:

> "4. ... इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रव्रजन की उपधारणा नहीं की जा सकती है, लेकिन इसे साक्ष्य का हवाला देकर (अपठनीय) स्थापित किया जाना चाहिए। तब यह सवाल उठता है कि क्या अपील स्तर पर अवलम्बित इंदौर राज्य गजट में बताया गया इसको स्थापित करने के लिए एकमात्र आधार बना सकता है कि वादी का परिवार उत्तर प्रदेश के मथुरा से प्रवासी थे। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 37 में कहा गया है कि सार्वजनिक प्रकृति के राजकीय गजट में किया गया कोई भी कथन एक प्रासंगिक तथ्य है। धारा 57 (13) में घोषणा की गई है कि लोक इतिहास के सभी मामलों में, अदालत संबंधित पुस्तकों अथवा

---

319 (1990) 2 एस.सी.सी. 22

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संदर्भ दस्तावेजों का सहायता ले सकेगी, और धारा 81 उचित हिरासत से आने वाले गजट की वास्तविकता के बारे में उपधारणा करती है। साक्ष्य पर पिजसन ऑन कॉमन लॉ, कॉमन लॉ लाइब्रेरी (तेरहवां संस्करण) ने पृष्ठ 510 पैरा 25. 07 में कहा कि सरकारी गजट...स्वीकार्य हैं (और कभी–कभी निश्चायक) सबूत हैं, लेकिन इसमें निहित निजी मामले नहीं...

5. निजी मामलों पर या कुछ मामलों में ऐतिहासिक तथ्यों पर आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान किए गए कथन जो आधिकारिक गजट में अन्तर्निहित हैं, उन वर्णित तथ्यों का सबसे अच्छा साक्ष्य है और सम्यक रूप से विचारित किये जाने योग्य है, लेकिन इसे उन मामलों में निश्चायक नहीं माना जाना चाहिए जिसमें न्याय निर्णयन की अपेक्षा की जाती है। किसी उपयुक्त मामले में जहां विवाद्य तथ्य को साबित करने के लिए अभिलेख पर कुछ साक्ष्य मौजूद हैं, लेकिन उसके निष्कर्ष को अभिलिखित करने के लिए पर्याप्त नहीं है, आधिकारिक गजट में मौजूद निजी मंदिरों के प्रबंधन से संबंधित तथ्यों के कथन अथवा निजी व्यक्तियों इत्यादि की प्रास्थिति से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों को बिना आगे साक्ष्य के मांग कर सम्पोषक साक्ष्य के रूप में अवलम्बित किया जा सकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

निजी मामलों पर या **"कुछ मामलों"** में ऐतिहासिक तथ्यों पर आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान किए गए कथन जो आधिकारिक गजट में अन्तर्निहित हैं, उन वर्णित तथ्यों का सबसे अच्छा साक्ष्य है और **"सम्यक रूप से विचारित"** किये जाने योग्य है। हालांकि, इसे उन मामलों में निश्चायक नहीं माना जाना चाहिये जिन मामलों में न्यायिक न्यायनिर्णयन की अपेक्षा होती है। स्वत्व से संबंधित प्रश्न न्यायनिर्णयन के लिए विवाद्यों को उठाते हैं। स्वत्व से जुड़े हुए विरोधी दावों में न्यायिक न्यायनिर्णयन की आवश्यकता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होती है। इतिहास अथवा गजट में अन्तर्निहित कथन स्वत्व को नहीं बतलाता है।

591. **बाला शंकर महा शंकर भट्टजी बनाम चैरिटी कमिश्नर, गुजरात राज्य** [320] के मामले में, यह मुद्दा था कि क्या पवागढ़ स्थित कालिका मंदिर बंबई लोक न्यास अधिनियम, 1950 के अर्थ में एक सार्वजनिक ट्रस्ट था। इस संदर्भ में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ ने अवधारित किया:

> "22.... यह प्रतीत होता है कि गजट, बम्बई प्रेसीडेंसी, तृतीय संस्करण 1879 में प्रकाशित खंड साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 81 सपठित धारा 35 के अधीन अनुज्ञेय है। गजट अनुज्ञेय है चूंकि यह आधिकारिक अभिलेख है और लोक घटनाओं से संबंधित साक्ष्य देता है और इसकी अन्तर्वस्तु को न्यायालय सत्य मान सकती है। उसमें निहित कथन को उसमें निहित ऐतिहासिक सामग्री को पता लगाने के लिए विचारित किये जा सकते हैं और उसमें जो कथन किये गये हैं वह धारा 45 के तहत साक्ष्य हैं और न्यायालय अन्य साक्ष्य और परिस्थितियों में विवादित प्रश्न के न्यायनिर्णयन में विचारित कर सकता है भले ही वे इसे निश्चायक साक्ष्य न मानें। "
>
> **(प्रभाव वर्धित)**

दूसरे शब्दों में, गजट को निश्चायक प्रकृति का स्वतंत्र साक्ष्य नहीं माना गया। उपरोक्त निष्कर्ष में न्यायालय सावधान है। गजेटियर की अन्तर्वस्तु को अन्य साक्ष्य और परिस्थितियों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उनको विचारित किया जा सकता है किन्तु वह निश्चायक साक्ष्य नहीं होगा।

---

320 1995 सप्लीनमेंट्री (1) एस.सी.सी. 485

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

[देखें: **अलीयाथम्मुडा बेथैतियापुरा पुकोया बनाम पट्टाकल चेरियकोया** [321] में पारित निर्णय]

592. उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के दौरान जिस ऐतिहासिक सामग्री का अवलम्ब लिया गया है उन्हें शुभकर सिद्धांतों के संदर्भ में महत्व दिया जाना चाहिए जो उपरोक्त निर्णयों प्रकट होते हैं। न्यायालय ने उस मामले में लोक इतिहास की संबंधित पुस्तकों और संदर्भ सामाग्रियों का संज्ञान किया होगा। फिर भी, जब ऐसा होता है, तो न्यायालय को इस तथ्य के बारे में सचेत होना चाहिए कि यात्रावृत्तां में किये गये कथन वास्तव में गजटर्स के विवरण उन मामलों पर राय दर्शाते हैं जो इतना समय बीत जाने पर पर इस स्तर पर प्रतिपरीक्षा द्वारा संशोधित नहीं किये जा सकते हैं। परिणामस्वरूप, विवाद के दौरान जहां पक्षकारों के मध्य कब्जे और स्वत्व से संबंधित विवाद है तो वहां पर ऐतिहासिक विवरण को निश्चायक नहीं माना जा सकता है। तब न्यायलय को विवाद का निपटारा विश्वसनीय साक्ष्यिक सामाग्री के आधार पर करना चाहिए।

593. इतिहास की व्याख्या नुकसानी भरा कार्य है। जैसा कि हमने बाबरनामा से देखा है ऐतिहासिक अभिलेख में स्पष्ट अंतराल हैं। अनुवाद भिन्न होते हैं और उनकी सीमाएं होती हैं। न्यायालय को उन चीजों से जो इतिहास में दर्ज नहीं है नकारात्मक निष्कर्ष निकालने में परिवृत्त होना चाहिए। हम किसी संविधि अथवा अभिवचन का अर्थान्वयन नहीं कर रहे हैं। हम स्वयं किवदंतियों, कहानियों, प्रथाओं और सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में

---

321 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन 953

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिखे गये विवरणों की जांच कर रहें हैं। इतिहास विद्या की मदद लिये बिना इतिहास की व्याख्या करना जोखिमों से भरा है। ऐतिहासिक संदर्भ से परे जाकर निष्कर्ष निकालने और अनुमान लगाने के लिए विधिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग करना जोखिम भरा कार्य होता है। इतिहास जिन मामलों पर मौन है उन विषयों पर विधिवेत्ता को नकारात्मक अनुमान लगाने में सावधानी बरतनी चाहिए। मौन को, कभी–कभी वहां छोड़ देना बेहतर होता है, जहां से मूलतः उसका संबंध होता है, अर्थात मौन का ब्रह्माण्ड।

594. टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट में "**विक्टोरियन हिस्ट्री**" शीर्षक से 19 जून 1953 को लिखे अपने लेख में ई.एच. कार ने निम्नलिखित चेतावनी दी :

> " वर्तमान और अतीत के बीच दो तरफा संबंध होता है, वर्तमान अतीत से प्रभावित होता है फिर भी वह सतत रूप से अतीत का निर्माण करता रहता है। यदि इतिहासकार इतिहास बनाते हैं तो यह भी उतना ही सत्य है कि इतिहास ने इतिहासकारों को बनाया है... आज का इतिहास दार्शनिक, वस्तुनिष्ठ नियतिवाद के खतरों और व्यक्तिनिष्ठ सापेक्षिकता के अंतहीन खड्ड के बीच पतली धार पर असहज रूप से संतुलन बनाते हुए इस बात से सजग कि कार्य और विचार अविच्छेद्य रूप से अंतर्सम्बन्धित हैं और कार्यकारण की प्रकृति विज्ञान की तरह इतिहास में भी उतनी ही तेजी से छूटता है जितनी तेजी से वह पकड़ने की कोशिश करता है, उत्तर देने के बजाय प्रश्न पूछने में व्यस्त होता है।"[322]

वर्तमान जैसे मामलों में, इतिहास एक और कठिनाई उत्पन्न करता है: प्राच्य दर्शन में, धार्मिक परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे तरीकों से परिवर्तित हो जाती है

---

322 Introduction by Richard J Evans in E.H. Carr, What is History?, Penguin (2018 reprint) at page 12

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जो केवल लिखित अभिलेखों तक सीमित नहीं हैं। मार्क ब्लूच ने अपनी पुस्तक " **द् हिस्टोरियन क्राफ्ट**"[323] में इस बारे में ऐसे बताया है:

> " क्योंकि दूसरों की तुलना में हमारी सभ्यता अपने अतीत के प्रति सजग रही है। प्रत्येक वस्तु ने इसे इस दिशा में प्रवृत्त किया है : इसाई और क्लासिकल विरासत दोनों ने। हमारे पहले स्वामी, ग्रीक और रोमन इतिहास लिखने वाले लोग थे। इसाईयत इतिहासकारों का मजहब है। **अन्य मजहबी व्यवस्थाओं ने अपने विश्वास और कर्मकांड ऐसे पौराणिकी के आधार पर प्राप्त किया है जो मानवीय समय से लगभग बाहर है**। (प्रभाव वर्धित)

हालांकि हमने यात्रियों और गजेटियरों के विवरणों को संदर्भित किया है , लेकिन हमने उनका वाचन सावधानी से किया है। इन विवरणों की अन्तर्वस्तु स्वत्व के विषय में निश्चायक नहीं मानी जा सकती जिसकी वजह से वर्तमान कार्यवाहियों में न्यायनिर्णयन की आवश्यकता उत्पन्न हुई है। भले ही गजेटियर न्यायालय को सार्वजनिक इतिहास के विषय पर झलक दे दें, इतिहास अपने आप में विभाजक दावों का विषय है। हालांकि न्यायालय को उन विषयवस्तुओं पर प्रासंगिक सामग्री की भांति अवलंब लेने की छूट है लेकिन वर्तमान न्यायनिर्णयन के क्रम में न्यायालय को अपने निष्कर्षों तक पहुंचने में सक्षम बनाने में उन्हें अभिलेख के साक्ष्यों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। विशेषकर,न्यायालय को विरोधी दावों की भूल भुलैया में छिपे सत्य के अंकुर को निकालने के प्रयास में ऐसे मामलों को अलग कर लेना चाहिए जो अनुश्रुति मूल के हैं। यात्रा वृत्तांत और गजेटियरों में विस्मृत इतिहास के

---

323 Marc Bloch, The Historian's Craft, Penguin (2019 reprint), at page 4

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बिखरे हिस्से होते हैं। इनको दिया जाने वाला साक्ष्यात्मक महत्व निश्चित रूप से संदर्भ पर निर्भर होता है और उनकी विषयवस्तु के सचेत मूल्यांकन का विषय होता है। हमारे विश्लेषण में,यात्रियों और गजेटियरों के विवरणों में विवादित स्थल पर दावों के बारे में औपनिवेशिक दृष्टिकोण का अध्ययन करते समय सभी पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता को संतुलित रूप से समाहित किया गया है।

N.14 इतिहासकारों की रिपोर्ट

595. 13 मई 1991 को चार इतिहासकारों ने एक दस्तावेज तैयार किया जिसका शीर्षक था : **"बाबरी मस्जिद या राम जन्मस्थान? भारतीय राष्ट्र के लिए इतिहासकारों की रिपोर्ट"** । रिपोर्ट (i) दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर एवं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष प्रोफेसर आरएस शर्मा (ii) अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में इतिहास के पूर्व प्रोफेसर और भारतीय इतिहास कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर एम अतहर अली (iii) दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर डीएन झा; और (iv) पुरातत्व के प्रोफेसर एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाना में सामाजिक विज्ञान संकाय के डीन प्रोफेसर सूरज भान द्वारा तैयार की गयी। रिपोर्ट 13 मई 1991 दिनांकित एक आवरण पत्र के भीतर प्रोफेसर आर एस शर्मा, प्रोफेसर एम अतहर अली, प्रोफेसर डी एन झा और प्रोफेसर सूरज भान द्वारा प्रस्तुत की गयी थी।

रिपोर्ट की महत्वपूर्ण टिप्पणियां हैं :

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) स्कंदपुराण (अयोध्या महात्म्य) में बाबरी मस्जिद वाले स्थान को भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में दिखाने का कोई आधार नहीं है।

(ii) मस्जिद के स्तंभों पर उत्कीर्णन उसका वैष्णव मत से जुड़ा होना दर्शित नहीं करते।

(iii) प्रोफेसर बी बी लाल द्वारा 1979 में किये गये उत्खनन में जो ईंटों के आधार पाये गये थे, उनका उल्लेख उनके द्वारा 1990 में किया गया जबकि उनके द्वारा कई पत्र प्रकाशित किये जा चुके थे।

(iv) प्रोफेसर बी बी लाल ने एएसआई को 1979–80 में प्रस्तुत रिपोर्ट में स्तंभ आधारों का उल्लेख नहीं किया।

(v) स्तंभ आधार वाले गड्ढों के मलबों में कोई पाषाण स्तंभ या मंदिर की छत की सामग्री का वास्तु नहीं पाया गया था; और

(vi) 1675–76 में रचित रामचरित मानस में बाबरी मस्जिद का कोई उल्लेख नही है।

अध्ययन के निष्कर्ष थे :

(i) पुस्तकों में यह दर्शित करने वाला कोई साक्ष्य नहीं है कि अठारहवीं शताब्दी के पहले अयोध्या में उस स्थान को भगवान राम का जन्म स्थान मानने का कोई भाव जुड़ा था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) यह मानने का कोई आधार नहीं है कि भगवान राम का मंदिर या कोई मंदिर उस स्थान पर अस्तित्वमान थी जहां 1528–29 में बाबरी मस्जिद बनायी गयी थी।

(iii) यह किंवदन्ती कि बाबरी मस्जिद भगवान राम के जन्म स्थान पर बनायी गयी थी, अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक पैदा नहीं हुई ; और यह कि मस्जिद बनाने के लिए मंदिर को ध्वस्त किया गया था, जैसा दावा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक नहीं किया गया था ; और

(iv) भगवान राम के जन्मस्थान और सीता की रसोई मंदिर के विध्वंस की "चली चलाई" किंवदन्ती 1850 की है जिसके बाद "आस्था पर आधारित काल्पनिक इतिहास का क्रमिक पुनर्निमाण हुआ है"।

596. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया है कि रिपोर्ट प्रोफेसर डी एन झा द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है,यह एक ऐसा तथ्य है जो प्रोफेसर सूरज भान (पी डब्ल्यू 16) द्वारा स्वीकार किया गया है जिन्होंने साक्ष्य में बयान दिया। रिपोर्ट में संकेत किया गया है कि प्रोफेसर बी बी लाल द्वारा उत्खनन से प्राप्त सामग्री चारों इतिहासकारों के निरीक्षण के लिए उपलब्ध नहीं है।

पी डब्ल्यू 16 के बयान से उद्धृत करते हुए, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने उनकी विशेषज्ञता को इस आधार पर खारिज कर दिया कि वह एक पुरातत्ववेत्ता थे और मध्यकालीन इतिहास पर उनकी विशेषज्ञता नहीं थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

597. आगे न्यायमूर्ति अग्रवाल ने सुवीरा जयसवाल (पी डब्ल्यू 18) के साक्ष्य का विश्लेषण किया है जो कि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में भूतपूर्व प्रोफेसर थे। पी डब्ल्यू 18 ने बयान दिया है कि ध्वस्त स्थल के बारे में उनकी जानकारी समाचार पत्रों या अन्य इतिहासकारों के पुस्तकों के आधार पर थी। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने पी डब्ल्यू 18 के अनुभव को यह उल्लेख करते हुए प्रश्नांकित किया है कि वह प्रोफेसर आर एस शर्मा के मार्गदर्शन में एक शोध छात्रा थी जो रिपोर्ट की सह लेखिका थी। अन्ततः उन्होंने कहा कि रिपोर्ट को चारों इतिहासकारों (प्रोफेसर डी एन झा ने हस्ताक्षर नहीं किया था) द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया गया है और कथित विशेषज्ञ (पी डब्ल्यू 18) का मत उसके अनुभव और अनुसंधान पर नहीं बल्कि दूसरों के लेखन से बनी राय पर आधारित था। तद्नुसार,विद्वान न्यायधीश ने धारित किया कि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के अन्तर्गत विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है।

डॉ धवन का कथन है कि केवल रिपोर्ट के प्रोफेसर डी एन झा द्वारा हस्ताक्षरित नहीं

होने के आधार पर, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने त्रुटिपूर्वक चारों इतिहासकारों के प्रति संकुचित हो गये। उन्होंने कहा कि इतिहासकारों की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करते समय विद्वान न्यायाधीश ने पी डब्ल्यू 18 के मूल्यांकन को रिपोर्ट के लेखकों के मूल्यांकन के साथ मिला दिया। यह कहा गया है कि ये

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

टिप्पणियां इतिहासकारों से संबंधित नहीं थीं बल्कि पी डब्ल्यू 18 से संबंधित थीं।

598. हमारा यह मत है कि न्यायमूर्ति अग्रवाल चारों इतिहासकारों के प्रति अनुचित रूप से कठोर हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान न्यायाधीश ने पी डब्ल्यू 18 (जिसने बिना स्वतंत्र मूल्यांकन के अन्य लोगों की रचनाओं का अवलंब लिया था) की आलोचना को इतिहासकारों की रिपोर्ट के साथ मिला दिया है। पी डब्ल्यू 18 इतिहासकारों के दल का हिस्सा नहीं थी। यह तथ्य कि चार इतिहासकारों में से एक ने आवरण दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं किया था,पूरे कार्य को खारिज करने का पर्याप्त कारण नहीं था। इतिहासकारों की रिपोर्ट को दिया जा सकने वाला महत्व एक अलग विषय है लेकिन इस पहलू का विश्लेषण करते समय उच्च न्यायालय के लिए इतिहासकारों की व्यक्तिगत निष्ठा और योग्यता के विषय में टिप्पणी करना आवश्यक नहीं था। इसलिए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वे टिप्पणियां उस कार्य के लिए अनावश्यक थीं जो उच्च न्यायालय कर रहा था।

इसके बावजूद,चारों इतिहासकारों की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि उन्हें उस सामग्री का निरीक्षण करने का लाभ नहीं मिला जिसके आधार पर डॉ बी बी लाल ने 1979 में अपना रिसर्च किया था। लेकिन वह भाग और विशेषकर इतिहासकारों की रिपोर्ट उस सामग्री से पहले का है जो एएसआई की रिपोर्ट के रूप में सामने आयी है और जिसे वाद के विलंबन की स्थिति में उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में तैयार किया गया था। चूंकि, चारों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इतिहासकारों को उस सामग्री के मूल्यांकन का लाभ नहीं मिला जिसका इस न्यायालय ने अपने निर्णय के पूर्ववर्ती हिस्से में मूल्यांकन किया है, विषय को और खींचने की कोई आवश्यकता नहीं है सिवाय और मात्र यह स्पष्ट करने के लिए कि इतिहासकारों की रिपोर्ट जो एएसआई की रिपोर्ट से पहले आयी है, का कोई विशेष महत्व नहीं हो सकता क्योंकि उन्हें उस सामग्री के विश्लेषण का लाभ नहीं मिल पाया जो एएसआई की रिपोर्ट से सामने आयी थी। इतिहासकारों द्वारा भगवान राम के जन्म स्थान में हिन्दुओं की आस्था और विश्वास के संबंध में निकाला गया निष्कर्ष उनका अभिमत है। वादों में प्रस्तुत साक्ष्य के बाद,यह न्यायालय तथ्यगत निष्कर्ष इतिहासकारों की रिपोर्ट के आधार पर नहीं निकाल सकता और साक्ष्यों का समग्रता में मूल्यांकन करना चाहिए। जहां तक वाद 5 का संबंध है, स्वत्व के विषय का निर्णय साक्ष्य के समग्र मूल्यांकन के आधार पर वाद 4 के साथ किया जाना चाहिए। इसलिए वर्तमान स्थिति में,निर्णय का अगला हिस्से में वाद 4 का विश्लेषण किया जाएगा। साक्ष्यों के समग्र मूल्यांकन के बाद, स्वत्व का प्रश्न अन्ततः अभिनर्णीत किया जाएगा

0. वाद 4 : सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड

0.1 वाद का विश्लेषण

599. वाद 4 सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा 18 दिसम्बर 1961 को संस्थित किया गया था। वाद में यथा संशोधित निम्नलिखित अनुतोष मागी गयी है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"(a) इस आशय की एक उद्घोषणा कि स्केच मानचित्र में A B C D अक्षरों से दर्शित वाद से जुड़ी संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है जिससे आम तौर पर 'बाबरी मस्जिद' के नाम से जाना जाता है। और मस्जिद से संलग्न भूमि जिसे स्केच मानचित्र में E F G H अक्षरों से दर्शाया गया है एक सार्वजनिक कब्रगाह है और वाद के पैरा 2 में यथा विनिर्दिष्ट जिसकी आज्ञप्ति की जा सकती है।

(b) यह कि यदि न्यायालय के विचार से कब्जा दिया जाना उचित उपचार लगे तो, मूर्तियों और उन वस्तुओं को हटाकर जो हिन्दुओं ने पूजा के लिए मस्जिद के अंदर रख दी हों, वाद की मस्जिद और कब्रगाह का कब्जा देने के लिए प्रतिवादी गण के विरुद्ध वादीगण के पक्ष में डिक्री पारित की जाय।

(bb) यह कि विधिक प्रापक को वाद की अनुसूची 'A' में वर्णित विवादित संपत्ति को उस पर बने अनधिकृत संरचनाएं हटाकर देने का आदेश दिया जाय।

[नोट: प्रेयर (bb) को उच्च न्यायालय के 25 मई 1995 दिनांकित आदेश के अनुसरण में वाद में संशोधन करके जोड़ा गया था।]

वाद इस प्रकथन पर आधारित है कि अयोध्या में एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद है जिसे आम तौर पर बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है जो बाबर द्वारा 433 वर्ष से अधिक समय पहले हिन्दुस्तान पर विजय और इसके क्षेत्र पर कब्जा करने के बाद बनवाई गयी थी। यह कहा गया है कि मस्जिद आम मुस्लिम के लिए इबादत गाह और मजहबी रस्मों को संपन्न करने के लिए बनवाई गयी थी। वाद में संलग्न आयोजना में मस्जिद का मुख्य निर्माण A B C D अक्षरों से दर्शाया गया है। भूमि से लगी हुई कब्रगाह है। वादीगण के अनुसार , मस्जिद और कब्रगाह दोनों खुदा की है, और मस्जिद के निर्माण के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समय से ही मुस्लिमों द्वारा इसका प्रयोग इबादत के लिए और कब्रगाह का प्रयोग दफनाने के लिए किया जाता रहा है। यह कहा गया है कि मस्जिद के रखरखाव के लिए राजकोष से नगद अनुदान दिया जाता था जो अवध के नवाब वजीर तक जारी रहा। अवध के अधिग्रहण के बाद ब्रिटिश सरकार ने अयोध्या क्षेत्र के शोलापुर और बहोरापुर गांव में राजस्व मुक्त अनुदान के द्वारा सन 1864 तक 'नगद ननकार' जारी रखा।

600. वाद में आरोपति है कि मस्जिद की मुख्य इमारत के बाहर 17x21 फीट के आकार के चबूतरे पर हिन्दू पूजा की जाती थी जिस पर टेन्ट के आकार की एक लकड़ी की संरचना थी। वाद में महन्त रघुबर दास द्वारा चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए अनुज्ञा तथा साथ ही वाद को खारिज करने के सन्दर्भ हेतु वर्ष 1985 के वाद का पुनर्वचन है। वादीगण के अनुसार महन्त रघुबर दास ने स्वंय की ओर से,जन्मस्थान की ओर से और सभी हितबद्ध लोगों की ओर से मुकदमा किया था। बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली को प्रतिवादी बनाया गया।

वादीगण के अनुसार,उस वाद का निर्णय इस आधार पर प्राङ्न्याय की भाँति कार्य करता है कि विषयगत प्रश्न प्रत्यक्षतः और सारवान रूप से था :

(i) बाबरी मस्जिद का अस्तित्व; और
(ii) मस्जिद से संलग्न भूमि पर निर्माण करने का हिन्दुओं का अधिकार।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद में सन 1934 के दंगों का सन्दर्भ है और मस्जिद के उस भाग को सरकारी खर्च से फिर से बहाल करने का सन्दर्भ था जिसे क्षतिग्रस्त कर दिया गया था। वादीगण के अनुसार, उ.प्र. मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1936 के अधिनियमन के बाद वक्फ आयुक्त द्वारा एक जांच की गयी और आयुक्त की रिपोर्ट आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गई। वादीगण ने दावा किया कि मुस्लिमों का मस्जिद पर शान्तिपूर्ण कब्जा है जिसका 23 दिसम्बर 1994 तक इबादत के लिए प्रयोग किया जाता रहा जब हिन्दुओं की भीड़ कथित रूप से मस्जिद के भीतर घुस गई और इसके भीतर मूर्तियां रखकर इसे अपवित्र कर दिया। वादीगण के अनुसार, यह स्वीकार किये बिना कि प्रतिवादीगण द्वारा यथा अभिकथित वहां पर हिन्दू मंदिर विद्यमान था जिसके स्थान पर शासक बाबर द्वारा 433 वर्ष पहले मस्जिद बनायी गयी, यह मान लेना कि मस्जिद के बनने से लेकर इसके अपवित्रीकरण तक अपने लंबे, एकांतिक और सतत कब्जे द्वारा मुस्लिमों ने अपने स्वत्व को प्रतिकूल कब्जे द्वारा पुख्ता किया है । वाद में तत्पश्चात धारा 145 के तहत कार्यवाही और सिविल जज फैजाबाद के समक्ष वाद को संस्थित किया जाना सन्दर्भित किया गया है। वर्ष 1950 के वाद 2 में व्यादेश के परिणामस्वरूप, हिन्दुओं को मस्जिद में रखी मूर्तियों की पूजा करने की अनुमति दी गयी है लेकिन मुस्लिमों को प्रवेश करने से रोक दिया गया है। यह कहा गया है कि वाद आदेश । नियम 8 सि.प्र.सं. के साथ– साथ पूरे मुस्लिम समुदाय की ओर से संस्थित किया गया है।

601. यह अभिकथित है कि प्रापक,जिसके पास कब्जा है,उसी के पास संपत्ति है क्योंकि वास्तविक स्वामी और वादीगण को तभी कब्जे का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकार मिलेगा जब वाद सफल होगा। वैकल्पिक रूप से, कब्जे के लिए भी आवेदन किया गया है। बाबरी मस्जिद के विध्वंश के बाद की घटनाओं और तथ्यों को अभिलेख पर रखवानो के लिए वाद को संशोधित किया गया। वादीगण के अनुसार, मस्जिद को किसी विशिष्ट ढ़ाचे की आवश्यकता नहीं होती और मस्जिद के विध्वंश के बाद भी जिस जमीन पर यह बनी थी मस्जिद ही रहती है जिसमें मुस्लिमों को इबादत करने का अधिकार होता है। वाद में भूमि के *अयोध्या के कतिपय क्षेत्रों का अधिग्रहण अधिनियम 1993* के तहत अधिग्रहण का भी उल्लेख है।

वादीगण के अनुसार, वाद के लिए वादहेतुक 23 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ जब हिन्दुओं ने कथित रूप से मस्जिद में सदोष प्रवेश किया और मस्जिद के अंदर मूर्तियां रखकर इसे अपवित्र कर दिया। अपकृत्य का सतत प्रकृति का होना कहा गया है। राज्य के विपरीत, वाद हेतुक कथित रूप से 29 दिसंबर 1949 को उतपन्न हुआ जब संपत्ति को नगर मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क किया गया जिसने कब्जा प्रापक को सौंप दिया। प्रतिवादी ने 5 जनवरी 1950 को प्रभार ग्रहण किया।

वाद में मांगे गये अनुतोष उपरोक्त प्रकथनों पर आधारित हैं। निश्चित ही , वादीगण का मामला इस दलील पर आधारित है कि :

(।) मस्जिद बाबर द्वारा वाद से 433 वर्ष पूर्व इबादत के लिए बनायी गयी थी और मुस्लिमों द्वारा निरन्तर इसे इबादत करने के लिए प्रयोग किया जाता रहा है ;और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) यह मान लेने पर भी कि उसके नीचे मूल रूप से एक मंदिर था जिसे मस्जिद बनाने के लिए ध्वस्त कर दिया गया था, मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपने स्वत्व को पुख्ता कर लिया है। इस आधार पर, वादीगणों ने स्वत्व के उद्घोषणा का दावा किया है और ऐसी प्रार्थना की आवश्यकता की स्थिति में कब्जे के लिए डिक्री।

602. वाद 4 सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अयोध्या के नौ मुस्लिम निवासियों द्वारा 18 दिसंबर 1961 को संस्थित किया गया था। वाद 4 में प्रतिवादी सं. 1 गोपाल सिंह विशारद हैं ; प्रतिवादी सं. 2 रामचंद्र दास परम हंस हैं। प्रतिवादी सं. 3 निर्मोही अखाड़ा है ;प्रतिवादी सं. 4 महंत रघुनाथ दास हैं ; प्रतिवादी सं. 5 उ.प्र. राज्य है ; प्रतिवादी सं. 6 कलेक्टर, फैजाबाद हैं ;प्रतिवादी सं. 7 नगर मजिस्ट्रेट, फैजाबाद हैं ;प्रतिवादी सं. 8 फैजाबाद पुलिस अधीक्षक हैं ; प्रतिवादी सं. 9 प्रियदत्त राम हैं ; प्रतिवादी सं. 10 अखिल भारत हिन्दू महासभा के अध्यक्ष हैं ; प्रतिवादी सं. 13 धरम दास हैं ; प्रतिवादी सं. 17 रमेश चन्द्र त्रिपाठी हैं ; और प्रतिवादी सं.20 मदन मोहन गुप्ता हैं।

603. अब इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए कब्जे के दावे के संबंध में वाद 4 में आने वाली दलीलों को सावधानीपूर्वक जांचना आवश्यक है। वादपत्र के प्रस्तर 2 में यह तर्क दिया गया है कि जब से इसका निर्माण बाबर द्वारा किया गया है तब से इसका मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने के लिए इस्तेमाल किया गया है और यह कि मस्जिद का कब्जा के शांतिपूर्ण रूप से मुस्लिमों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कब्जे में रहा है जिसमें दिनांक 23 दिसंबर 1949 तक नमाज अदा की गई थी। अतिरिक्त तर्क यह है कि यह मानते हुए (बिना स्वीकार किए) कि जिस स्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया था, उस स्थान पर हिंदुओं द्वारा कथित रूप से एक हिंदू मंदिर मौजूद था और मुस्लिमों ने अपना दीर्घ, विशिष्ट और निरंतर कब्जा उस समय से प्रारम्भ किया जबसे मस्जिद का निर्माण किया गया था और तब तक रखा गया जब तक कि इसे अपवित्र (मूर्तियों को रखने से) उनके कब्जे को प्रतिकूल कब्जा और "सही स्वत्व या मंदिर और हिंदू लोगों के हित में, यदि कोई हो तो समाप्त कर दिया गया हो"। इसलिए कब्जे का दावा इस दलील पर आधारित है कि मस्जिद निर्माण के आरंभ से ही नमाज अदा करने के लिए इसका निरंतर उपयोग किया गया है और यह उपयोग काफी समय तक निरंतर और अनन्य रहा है।

0.2 लिखित कथन

गोपाल सिंह विशारद

604. गोपाल सिंह विशारद द्वारा दायर लिखित कथन में पहले प्रतिवादी (जो वाद 1 में वादी भी हैं) द्वारा यह कहा गया है कि यदि मस्जिद मुस्लिमों के कब्जे में था तो यह वर्ष 1934 में समाप्त हो गया। हिंदुओं ने वर्ष 1934 के बाद कब्जे में होने का दावा किया है और उनके कब्जे को प्रतिकूल कब्जे में ले लिया गया है। लिखित कथन के अनुसार वर्ष 1934 से मस्जिद में कोई इबादत नहीं की गई थी। इसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को संपूर्ण हिंदू

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। हिंदू पूजा को ढाँचे के अंदर होना कहा गया है जिसे वर्ष 1934 से मंदिर के रूप में वर्णित किया गया है और सिटी मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसार जनवरी 1950 से माना जाता है। एक अतिरिक्त लिखित कथन में दलील दी गई है कि उ.प्र. मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1936 अधिकारातीत है। यह प्रकथित है कि अधिनियम के तहत कोई भी निर्धारण गैर–मुस्लिमों के विरूद्ध प्रश्नगत स्वत्व तय करने के लिए काम नहीं कर सकता है। पश्चातवर्ती लिखित कथन में यह कहा गया है कि हिंदुओं ने प्राचीन काल से ही जन्मभूमि स्थल की पूजा की है और जन्मभूमि मंदिर कभी भी मुस्लिमों के कब्जे में नहीं था और यदि वह उनके कब्जे में था तो वर्ष 1934 में समाप्त हो गया। वाद को परिसीमन द्वारा बाधित कर दिया गया है।

1885 के वाद के संबंध में यह तर्क दिया गया है कि वादी प्रतिनिधि क्षमता में वाद नहीं कर रहा था और केवल अपने व्यक्तिगत हित के लिए कर रहा था।

निर्मोही अखाड़ा

605. निर्मोही अखाड़ा का लिखित कथन किसी मस्जिद के अस्तित्व से इनकार करता है। निर्मोही अखाड़ा यह कहता है कि महंत रघुबर दास द्वारा दायर किसी भी वाद से अनभिज्ञ था। इसके अनुसार, इस स्थल पर कभी मस्जिद नहीं थी और इसलिए दिनांक 23 दिसंबर 1949 तक मुस्लिम समुदाय के पास नमाज़ अदा करने का कोई अवसर नहीं था। यह तर्क दिया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गया है कि बाबरी मस्जिद के रूप में वर्णित संपत्ति के अंदर स्थापित हिंदू देवताओं की मूर्तियों के साथ हमेशा ही जन्मभूमि मंदिर रहा है। लिखित कथन के अनुसार, रामचबूतरा पर मंदिर को वर्ष 1885 के वाद में विधिक रूप से मान्यता दी गई थी। यह तर्क दिया गया था कि जन्मभूमि मंदिर हमेशा निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था और हिंदुओं के अतिरिक्त किसी और को प्रवेश करने और पूजा करने करने की अनुमति नहीं दी गई थी। कहा जाता है कि चढ़ावे को निर्मोही अखाड़ा के प्रतिनिधि द्वारा प्राप्त किया गया था। कुर्की के बाद केवल निर्मोही अखाड़े के पुजारियों को मंदिर में मूर्तियों को पूजा करने का दावा किया जाता है। लिखित कथन में कहा गया है कि कम से कम वर्ष 1934 से ढाँचे में मुस्लिमों द्वारा इबादत करने से इनकार किया गया है और यह तर्क दिया गया है कि वाद 4 को परिसीमन द्वारा बाधित कर दिया गया है। अतिरिक्त लिखित कथन में निर्मोही अखाड़ा ने इस बात से इनकार किया है कि 1885 के वाद में निष्कर्ष प्राङ्न्याय के रूप में कार्य करते हैं। इस आरोप से इनकार किया जाता है कि मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे से अपना स्वत्व पूर्ण किया है।

उत्तर प्रदेश राज्य

606. उत्तर प्रदेश राज्य ने अपना लिखित कथन इस आशय के लिए दायर किया कि सरकार विवादित संपत्ति में हितबद्ध नहीं है और वाद चलाने का प्रस्ताव नहीं करती है।

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

607. दसवें प्रतिवादी अखिल भारतीय हिंदू महासभा की ओर से दायर लिखित कथन में यह प्रकथित है कि भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने पर मूल हिंदू विधि का पुनरुद्धार किया है जिसके परिणामस्वरूप वादी किसी भी विधिक या संवैधानिक अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं। एक अतिरिक्त लिखित कथन में दसवें प्रतिवादी ने दिनांक 22 दिसंबर 1949 की घटना से इनकार किया और दावा किया कि मूर्तियों को अनादिकाल से प्रश्नगत स्थल पर अस्तित्व में था। लिखित कथन के अनुसार स्थल भगवान राम का जन्म–स्थान है और जन्म–स्थान पर कोई मस्जिद का निर्माण नहीं किया जा सकता था।

अभिराम दास और धरम दास

608. अभिराम दास और धरम दास द्वारा लिखित कथन जो उनके चेला होने का दावा करते हैं, राम जन्मभूमि स्थल पर एक मस्जिद के निर्माण की वैधता पर सवाल उठाते हैं। लिखित कथन के अनुसार स्थल को हिंदू उपासना स्थलों से भूमिबद्ध है और इसलिए इस तरह का भवन मुस्लिम विधि में एक वैध मस्जिद नहीं हो सकती है। लिखित कथन में शामिल एक वैध वक्फ का खंडन इस आधार पर है कि वक्फ प्रतिकूल कब्जे पर आधारित नहीं हो सकता है। लिखित कथन के अनुसार राम जन्मभूमि में विक्रमादित्य के शासन के समय का एक प्राचीन मंदिर था जिसे मीर बाकी ने ध्वस्त कर दिया था। यह प्रकथित है कि राम जन्मभूमि अविनाशी है क्योंकि

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देवता अजर–अमर हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि मस्जिद के निर्माण के बावजूद यह क्षेत्र देवताओं के कब्जे में है और हिंदू पूजा के स्थानों से गुजरने के अलावा कोई भी व्यक्ति तीन गुंबदाकार ढाँचे में प्रवेश नहीं कर सकता है। अन्य हिंदू प्रतिवादियों द्वारा दायर लिखित कथन में अधिकतर समानता है। हिंदू पक्षकारों के लिखित कथनों के प्रत्युत्तर दायर किया गया।

0.3 उच्च न्यायालय के विषय और निष्कर्ष

609. (1) क्या वादपत्र से संलग्न रेखा मानचित्र में मस्जिद के रूप में वर्णित प्रश्नगत भवन मस्जिद थी। यदि उत्तर सकारात्मक है–

(क) यह कब और किसके द्वारा निर्मित किया गया था, जैसा कि प्रतिवादी सं. 13 द्वारा कथित रूप से मीर बाकी द्वारा अथवा वादकारियों द्वारा कथित रूप से बाबर द्वारा;
(ख) क्या प्रतिवादी संख्या 13 द्वारा कथित रूप से ध्वस्तीकरण के बाद एक कथित हिंदू मंदिर स्थल पर भवन का निर्माण किया गया था; यदि ऐसा है तो उसका प्रभाव–

न्यायमूर्ति एस यू खान – मस्जिद का निर्माण बाबर के आदेश से या उसके अधीन हुआ। क्या इसे वास्तव में मीर बाकी अथवा किसी अन्य द्वारा निर्मित किया गया था यह तात्विक नहीं है। मुस्लिमों ने वर्ष 1934 तक नियमित रूप से नमाज अदा की, जिसके बाद दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक शुक्रवार की

उद्घोषणा
"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नमाज अदा की गई। यह निरंतर कब्जे और उपयोग के लिए पर्याप्त है। मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया था। बाबर के शासनकाल की अवधि के दौरान जब तक मस्जिद का निर्माण किया गया तब तक परिसर को भगवान राम का जन्म–स्थान नहीं माना जाता था।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल–वादकारियों के पक्ष में उत्तर दिया।

1 (क): नकारात्मक उत्तर – वादीगण बाबर द्वारा ढाँचे के निर्माण को साबित करने में असफल रहे हैं। तर्कों और साक्ष्यों के अभाव में ढाँचे का निर्माण करने वाले पर कोई निश्चित निष्कर्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता, परन्तु एक समझदारी भरा अनुमान है कि इसका निर्माण औरंगजेब (1659–1707 ईस्वी) के शासन के दौरान किया गया था।

1 (ख)–सकारात्मक उत्तर दिया

- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–विवाद्यक संख्या 1 और 1(क) ने वादकारियों के विरूद्ध उत्तर दिया।

  विवाद्यक 1(ख) ने एएसआई रिपोर्ट के आधार पर प्रतिवादियों के पक्ष में उत्तर दिया।

1(ख)(क) क्या भवन वर्ष 1931 के खसरा के नजूल प्लॉट संख्या 583 के मोहल्ला कोट राम चंद्र, जिसे राम कोट सिटी अयोध्या (नजूल संपत्ति?)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अयोध्या के रूप में जाना जाता है, में मौजूद था। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति एस यू खान –** दिनांक 6 दिसंबर, 1992 को ढाँचा विध्वंस के बाद संपत्ति की पहचान का प्रश्न तय करना अब आवश्यक नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – यद्यपि भवन को मोहल्ला कोट राम चंद्र के 1931 के खसरा के नजूल प्लॉट संख्या 583 पर स्थित दर्शाया गया है, यह दो समुदायों के दावे पर प्रभाव नहीं डालेगा क्योंकि उत्तर प्रदेश राज्य ने कोई दावा नहीं किया है, बिना किसी प्रतिवाद के लिखित कथन दायर किया गया है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – संपत्ति सरकार से संबंधित 1931 के खसरा के नाज़ुल प्लॉट नंबर 583 पर मौजूद थी।

1–ख(ख) क्या भवन वादी द्वारा यथा अभिकथित सर्वशक्तिमान ईश्वर को समर्पित था.

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मस्जिद एक वैध मस्जिद थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– उत्तर नहीं दिया क्योंकि असुसंगत है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध उत्तर दिया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1–ख(ग) क्या भवन का उपयोग मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा अनादिकाल से इबादत करने के लिए किया गया था। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– वर्ष 1934 तक बाबर द्वारा अथवा उसके आदेश के तहत निर्मित मस्जिद का उपयोग मुस्लिमों द्वारा नियमित इबादत के लिए किया जा रहा था। वर्ष 1934 से दिनांक 22 दिसंबर 1949 तक केवल शुक्रवार की नमाज अदा की गई थी, परन्तु यह कब्जे और उपयोग की निरंतरता का संकेत देने के लिए पर्याप्त है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– चूंकि दोनों पक्षकार पहले वाद के संस्थन से पूर्व 80 वर्ष तक अपने संबंधित स्वरूपों के अनुसार पूजा, आस्था और विश्वास से ढाँचे का उपयोग कर रहे थे वहाँ आंतरिक अहाते और भवन को किसी एक समुदाय द्वारा उपयोग के लिए प्रतिबंधित नहीं किया गया था।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरुद्ध उत्तर दिया।

2 जैसा कि वादपत्र में अभिकथित किया गया था कि क्या वर्ष 1949 तक वाद में संपत्ति वादीगणों के कब्जे में थी और वर्ष 1949 में ही उसी से बेदखल किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – स्वत्व कब्जे का अनुसरण करता है। इसलिए, दोनों पक्षकारों ने विवादित परिसर के कब्जे में संयुक्त स्वत्व धारक होने के लिए अवधारित किया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा** – वादीगणों के विरूद्ध उत्तर दिया।

3 क्या वाद समय के भीतर है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**–वाद परिसीमा द्वारा बाधित है।

4 क्या सामान्य रूप से हिंदुओं और विशेष रूप से भगवान श्री राम के भक्तों ने प्रतिवादियों द्वारा कथित रूप से निर्देश के माध्यम से वैधानिक अवधि से अधिक समय के लिए प्रतिकूल और निरंतर कब्जे से स्थल पर प्रार्थनाओं का अधिकार दिया है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान** – दोनों पक्षकारों ने वर्ष 1885 से पूर्व संयुक्त स्वत्व धारक होना अभिनिर्धारित किया और इसलिए प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न का फैसला करना आवश्यक नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– 1856–57 तक बाह्य अहाते का उपयोग या कब्जा मुस्लिमों द्वारा नहीं किया गया परन्तु दोनों पक्षकारों द्वारा आंतरिक अहाते का उपयोग किया गया है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

5(क) क्या प्रतिवादी 1936 के यू.पी. के अधिनियम 13 की धारा 5(3) के प्रावधान के तहत वादी संख्या 1 के प्रशासन के तहत एक वक्फ के रूप में संपत्ति के प्रकृति को चुनौती देने से रोक दिए गए हैं। (यह विवाद्यक विद्वत दीवानी न्यायाधीश द्वारा आदेश 21.4.1966 दिनांकित के माध्यम से पहले ही नकारात्मक तय किया गया है)

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा**– दीवानी न्यायाधीश के 21 अप्रैल, 1966 दिनांकित के आदेश द्वारा वादीगणों के विरूद्ध इस विवाद्यक का उत्तर दिया गया है।

5(ख) क्या उक्त अधिनियम की सामान्य तौर पर हिंदुओं के अधिकार और विशेषतः प्रतिवादियों के पूजा के अधिकार पर कोई प्रयोज्यता नहीं है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध प्रतिवादियों और हिंदू पक्षकारों के पक्ष में फैसला किया।

5(ग) **क्या उक्त अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां निर्णायक हैं (यह विवाद्यक विद्वत दीवानी न्यायाधीश द्वारा आदेश 21 अप्रैल, 1996 दिनांकित के माध्यम से पहले ही नकारात्मक तय किया गया है)।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– दीवानी न्यायाधीश के आदेश 21 अप्रैल 1966 दिनांकित द्वारा यह निर्णय लिया गया कि 1936 के यू.पी. अधिनियम XIII की धारा 5(3) की बाधा के तहत प्रमुख मामले के प्रतिवादियों की संरक्षा को प्रभावित नहीं करती है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– 21 अप्रैल 1966 दिनांकित के आदेश द्वारा नकारात्मक फैसला किया गया।

5(घ) **क्या लिखित कथन में कथित रूप से 1936 के अधिनियम XIII के उक्त उपबंध अधिकारातीत हैं। (इस विवाद्यक को प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा उठाया नहीं गया था, इसलिए विद्वत दीवानी न्यायाधीश द्वारा उनके आदेश 21 अप्रैल, 1966 दिनांकित के माध्यम से उत्तर नहीं दिया गया था)।**

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– विवाद्यक 5(घ) को उठाया नहीं गया है।

5(ङ) क्या विवाद्यक सं. 17 पर विद्वान सिविल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 21 अप्रैल, 1996 को दर्ज किए गये इस आशय के निष्कर्ष के मद्देनजर कि "विवादित संपत्ति के सम्बन्ध में मुस्लिम वक्फ अधिनियम (सं. XIII वर्ष 1936) की धारा 5(1) के तहत कोई वैध अधिसूचना कभी नहीं दी गई, वादी वक्फ सुन्नी सेंट्रल बोर्ड को वर्तमान मुकदमे को जारी रखने का कोई अधिकार नहीं है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– वादीगणों के पक्ष में निर्णीत किया गया वाद 3 में विवाद्यक 6 के अधीन है जो प्रतिवादियों के पक्ष में भी निर्णीत किया गया है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

5(च) क्या पूर्वोक्त निष्कर्ष के दृष्टिगत , वाद अधिकारक्षेत्र और परिसीमा के अभाव के कारण वर्जित है जैसा कि यह उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1960 के प्रारंभ के पश्चात् दायर किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगणों के पक्ष में और प्रतिवादियों के विरूद्ध नकारात्मक उत्तर दिया।

6 क्या वर्तमान वाद एक प्रतिनिधि वाद है, वादीगण मुस्लिमों के हित का और प्रतिवादीगण हिंदुओं के हित का प्रतिनिधित्व करते हैं।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के पक्ष में फैसला किया।

7 (क) क्या वाद संख्या 61/280 वर्ष 1885 के वादी महंत रघुबर दास ने जन्मस्थान और उसमें हितबद्ध सभी व्यक्तियों की ओर से वाद दायर किया था।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– 1885 के वाद में निर्णय सीपीसी की धारा 11 के सिद्धांतों को आकर्षित नहीं करता है, क्योंकि वास्तव में वाद में कुछ भी निर्णीत नहीं हुआ था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– नकारात्मक उत्तर दिया। 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा जन्मस्थान और इसमें हितबद्ध सभी व्यक्तियों की ओर से दायर नहीं किया गया था।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

7(ख) क्या मोहम्मद असगर कथित बाबरी मस्जिद का मुतवल्ली था और उसने ऐसी किसी मस्जिद के लिए और उसकी ओर से वाद चलाया।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगणों के पक्ष में फैसला किया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

7(ग) क्या उक्त वाद में निर्णय के दृष्टिगत, प्रतिवादियों सहित हिन्दू समुदाय के सदस्यों को वर्तमान वाद के वादीगणों सहित, विवादित संपत्ति को मुस्लिम समुदाय के स्वत्व से वंचित करने से रोका जाता है। यदि हां, तो इसका प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक फैसला किया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

7(घ) क्या पूर्वोक्त वाद में विवादित संपत्ति के लिए मुस्लिमों का स्वत्व या उसके किसी भाग को उस वाद के वादी द्वारा स्वीकार किया गया था। यदि हां, तो इसका प्रभाव–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– नकारात्मक उत्तर दिया। विवादित संपत्ति के लिए मुस्लिमों के स्वत्व के बारे में 1885 के वाद में वादी द्वारा कोई स्वीकारोक्ति नहीं की गई थी।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

8 क्या वाद संख्या 61/280 वर्ष 1885 में निर्णय महंत रघुबर दास बनाम राज्य सचिव एवं अन्य के वाद में प्रतिवादीगणों के विरूद्ध पूर्वन्याय के रूप में कार्य करते हैं।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–नकारात्मक उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला; निर्णय पूर्वन्याय के रूप में कार्य नहीं करेगा।

10 क्या वादी ने वादपत्र में कथित रूप से प्रतिकूल कब्जे से अपने अधिकारों को पूरा किया है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– दोनों पक्षकार वर्ष 1885 के पूर्व से संयुक्त कब्जे में हैं। इसलिए प्रतिकूल कब्जे के विवाद्यक को निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादकारियों और मुस्लिमों के विरूद्ध नकारात्मक उत्तर दिया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

11 क्या वाद में संपत्ति श्री राम चंद्रजी की जन्मभूमि स्थल है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। जब तक बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था, तब तक विवादित परिसर को भगवान राम का जन्म–स्थान नहीं माना जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– हिंदुओं द्वारा जन्म स्थान को माना जाता है और उनकी पूजा की जाती है जो आंतरिक अहाते में विवादित ढांचे के केंद्रीय गुंबद के अंतर्गत आता है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

12 क्या मूर्तियों और पूजा की वस्तुओं को भवन के अंदर दिनांक 22 और 23 दिसंबर, 1949 के बीच रखा गया था या वे पहले से वहां अस्तित्व में हैं, जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 11 में अभिकथित है। दोनों मामलों में प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की रात्रि के बीच पहली बार मस्जिद के निर्माण वाले हिस्से के अंदर चबूतरे पर मूर्तियों को रखा गया था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगण यह साबित करने में विफल रहे हैं कि मूर्तियों और वस्तुओं को दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की रात्रि के दौरान भवन के अंदर रखी गई थी। बाह्य अहाते में 22 दिसंबर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1949 से पूर्व भी मूर्तियाँ और वस्तुएं मौजूद थीं। विवाद्यक का उत्तर नकारात्मक दिया गया।

- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगण यह साबित करने में विफल रहे हैं कि भवन में मूर्तियों और वस्तुओं को दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की रात्रि में स्थापित किया गया था।

13 क्या सामान्य रूप से हिंदुओं और विशिष्टतः प्रतिवादियों को 'चरणों' और 'सीता रसोई' की पूजा करने और मूर्तियों और पूजा की वस्तुओं का अधिकार था, यदि कोई हो तो संपत्ति में या वाद में मौजूद हैं।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– हक कब्जे का अनुसरण करता है और दोनों पक्षकार विवादित परिसर के कब्जे में संयुक्त हकधारी थे।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सामान्य रूप से हिंदू कई शताब्दियों से अधिकार स्वरूप आंतरिक अहाते के अंदर परिसर में प्रवेश कर रहे थे, इसलिए इस विवाद्यक का उत्तर सकारात्मक दिया गया है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

14 क्या हिन्दू विवादित स्थल श्री राम जन्म भूमि या जन्म स्थान के रूप में पूजा कर रहे हैं और अनंत काल से इसे पवित्र तीर्थ स्थल के रूप में देखते हैं। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद के निर्माण तक परिसर का न तो विश्वास किया गया और न ही यह माना गया कि वह भगवान राम का जन्म–स्थान है।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सकारात्मक उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

15 क्या मुस्लिमों का 1528 ईस्वी से सतत, स्पष्ट रूप से और सामान्यतः प्रतिवादियों और हिन्दुओं की जानकारी में संपत्ति का कब्जा है। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– यहां प्रतिकूल कब्जे के प्रश्न को निर्णीत करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों पक्ष संयुक्त हकधारी हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों और मुस्लिमों के विरुद्ध उत्तर दिया।

16 अन्य कोई अनुतोष जिसके वादी या उनमें से कोई हकदार हों।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– वाद परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज होने के लिए उत्तरदायी है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादी किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं और वाद खारिज किया जाता है।

17 क्या वाद में संपत्ति से संबंधित 1936 के यू. पी. मुस्लिम वक्फ अधिनियम संख्या XII की धारा 5(1) के तहत विधिमान्य अधिसूचना कभी की गई थी। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव। (यह विवाद्यक विद्वत सिविल न्यायाधीश के आदेश 21.04.1966 दिनांकित द्वारा पहले ही निर्णीत किया जा चुका है)।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** और **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–सिविल न्यायाधीश के आदेश 21 अप्रैल 1966 दिनांकित द्वारा निर्णय किया गया।

18 विवाद्यक संख्या 17 पर दिनांक 21 अप्रैल, 1966 को अभिलिखित सिविल न्यायाधीश के निष्कर्ष पर गुलाम अब्बास एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (ए.आई.आर. 1981 सर्वोच्च न्यायालय 2198) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का क्या प्रभाव है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय विवाद्यक 17 के निष्कर्षों को प्रभावित नहीं करता है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

19(क) **जैसा कि प्रतिवादी सं. 13 की ओर से कथित है कि क्या वाद में भवन के निर्माण के बाद भी भगवान श्री राम विराजमान और स्थान श्री राम जन्म भूमि के देवता वाद में संपत्ति पर मौजूद थे और उक्त स्थानों की पूजा के उद्देश्य से भक्त वहाँ गए। यदि ऐसा है तो क्या विवादित संपत्ति उक्त देवताओं में निहित है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। जब तक बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था, तब तक परिसर का न तो विश्वास किया जाता था और न ही भगवान राम का जन्म–स्थान माना जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– भगवान राम के जन्म स्थान पर जो परिसर माना जाता है वे देवता में निहित थे। बाह्य अहाते में हिंदू धार्मिक ढाँचे को वादी की संपत्ति नहीं माना जा सकता है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

19(ख) क्या भवन भूबद्ध था और हिन्दू उपासना के स्थानों से गुजरने के सिवाय नहीं पहुंचा जा सकता था। यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव–

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– इस सीमा तक इसका उत्तर सकारात्मक दिया कि भवन भूबद्ध था और हिंदू पूजा के स्थानों से गुजरने के अलावा नहीं पहुंचा जा सकता था। हालाँकि यह अपने आप में कोई परिणाम नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

19(ग) क्या वाद में संपत्ति के किसी भी भाग को प्रश्नगत भवन के निर्माण से तुरंत पहले हिंदुओं द्वारा एक स्थल या पूजा के रूप में उपयोग किया गया था। यदि निष्कर्ष सकारात्मक हैतो क्या विवादित स्थल पर इस्लामी सिद्धांतों के मद्देनजर कोई मस्जिद अस्तित्व में नहीं आ सकती है।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। जब तक बाबर के शासनकाल के दौरान मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था, तब तक परिसर का न तो विश्वास किया जाता था और न ही भगवान राम का जन्म–स्थान माना जाता था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– हिन्दू विवादित ढांचे के निर्माण से पूर्व विवादित स्थल पर पूजा कर रहे थे। हालांकि, जहाँ तक दूसरे भाग का संबंध है काल्पनिक होने के नाते इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वाद में संपत्ति भगवान राम की जन्मभूमि स्थल है और प्रतिवादियों को पूजा करने का अधिकार था। हिन्दू अनादि काल से ही ऐसा कर रहे हैं।

19(घ) **क्या प्रश्नगत भवन इस्लामी कानून के तहत एक मस्जिद नहीं हो सकती है। जिसमें यह स्वीकार नहीं किया गया है कि इसमें मीनारें नहीं थीं।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद एक वैध मस्जिद नहीं थी।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगणों के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

19(ङ) **क्या प्रश्नगत भवन विधिक रूप से मस्जिद नहीं हो सकती है क्योंकि स्वयं वादियों द्वारा यह दर्शित करते हुए कि यह तीनों ओर से कब्रिस्तान से घिरा हुआ है?**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद एक वैध मस्जिद नहीं थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– वादीगणों के पक्ष में उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

(च) क्या प्रश्नगत भवन के अंदर और बाहर के स्तंभों में हिन्दू देवी – देवताओं की मूर्तियां हैं। यदि निष्कर्ष सकारात्मक है तो क्या उस विवरण पर प्रश्नगत भवन में इस्लाम के सिद्धांतों के तहत मस्जिद की प्रकृति नहीं हो सकती।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– मस्जिद के निर्माण के लिए किसी भी मंदिर को ध्वस्त नहीं किया गया। जब तक मस्जिद का निर्माण नहीं किया गया था, तब तक परिसर का न तो विश्वास किया जाता था और न ही भगवान राम का जन्म–स्थान माना जाता था।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– पहले भाग का उत्तर सकारात्मक दिया गया है। दूसरा भाग निरर्थक है और अनुत्तरित रह गया है। अंतिम परिणाम में इस विवाद्यक को वादीगणों के पक्ष में उत्तर दिया गया है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

20(ए) **क्या प्रश्नगत वक्फ सुन्नी वक्फ नहीं हो सकता है क्योंकि भवन का निर्माण कथित रूप से सुन्नी मुस्लिमों द्वारा नहीं किया गया था लेकिन कथित रूप से मीर बाकी द्वारा किया गया था जो कथित रूप से शिया मुस्लिम था और कथित मुतवल्ली कथित रूप से शिया मुस्लिम थे। यदि ऐसा हो तो इसका प्रभाव–**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– यह नहीं कहा जा सकता कि मस्जिद एक वैध मस्जिद नहीं थी।
- **जस्टिस सुधीर अग्रवाल**– अप्रासंगिक और उत्तर नहीं दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

20(ख) **क्या कथित वक्फ का मुतवल्ली था और क्या कथित मुतवल्ली के वाद में शामिल नहीं होने के कारण अभी तक पोषणीय नहीं है क्योंकि यह कब्जे के लिए राहत से संबंधित है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– भवन की कुर्की के समय एक मुतवल्ली था और उसकी अनुपस्थिति में उपासकों के रूप में वादी को कब्जे के अनुतोष की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वाद की पोषणीयता अवधारित नहीं किया गया है।

21 **क्या वाद कथित देवताओं के असंयोजन के कारण गलत है।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–हालांकि, देवता प्रतिवादी नहीं है, इस आधार पर मुकदमा खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि देवता पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादी के पक्ष में जवाब दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादी के खिलाफ फैसला किया।

22 **क्या वाद विशेष खर्चे के साथ खारिज किए जाने के लिए दायी है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– कोई विशेष खर्च अधिनिर्णीत किए जाने की आवश्यकता नहीं है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगण किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं: वाद को आसान खर्चे के साथ खारिज किया जाता है।

23 **क्या वक्फ बोर्ड राज्य का अभिकरण *(अंग)* है। यदि ऐसा है, तो क्या बोर्ड राज्य के विरूद्ध ही वाद दायर कर सकता है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– न तो वक्फ बोर्ड राज्य का एक अभिकरण है और न ही राज्य के विरूद्ध वक्फ बोर्ड को वाद दायर करने पर कोई वर्जन है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– मुकदमा पोषणीय नहीं है।

24 **क्या वक्फ बोर्ड संविधान के अनुच्छेद 24 के अधीन "राज्य" है? यदि ऐसा है तो क्या उक्त वक्फ बोर्ड किसी विशेष समुदाय के मामले को प्रायोजित करने और किसी अन्य समुदाय के हित के विरूद्ध प्रतिनिधि क्षमता में कोई वाद दायर कर सकता है।**

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– न तो वक्फ बोर्ड राज्य का एक अभिकरण है और न ही राज्य के विरूद्ध वक्फ बोर्ड को वाद दायर करने पर कोई वर्जन है।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– मुकदमा पोषणीय नहीं है।

25 **क्या वादी द्वारा किए दावे के अनुसार विवादित ढांचे के विध्वंस पर इसे अभी भी एक मस्जिद कहा जा सकता है और यदि नहीं तो क्या वादी के दावे को अधिक समय तक पोषणीय न होने के रूप में खारिज करने के लिए दायी है।**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–किसी विशिष्ट निष्कर्ष के अभाव में उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** –विवादित ढाँचे के विध्वंस के परिणामस्वरूप वाद 4 को पोषणीय नहीं माना जा सकता।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

26 क्या मुस्लिमों द्वारा खुले स्थल को मस्जिद के रूप में उपयोग करके इबादत किया जा सकता है जब वहाँ पर बने हुए ढांचे को ध्वस्त कर दिया गया हो।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**– किसी विशिष्ट खोज के अभाव में, उन्होंने कहा कि वह न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल से सहमत हैं।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल** – विवादित ढाँचे के विध्वंस के परिणामस्वरूप वाद 4 को पोषणीय नहीं माना जा सकता।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

27 क्या बाह्य अहाते में रामचबूतरा, भंडार और सीता रसोई शामिल हैं। यदि ऐसा है तो क्या उन्हें दिनांक 6 दिसंबर, 1992 को मुख्य मंदिर के साथ ध्वस्त कर दिया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

- **न्यायमूर्ति एस यू खान**–वरामचबूतरा टाइफेंथलर (1766–1771 ईस्वी) की यात्रा से पूर्व परन्तु मस्जिद के निर्माण (1528 ईस्वी) के पश्चात अस्तित्व में आया।
- **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**– सभी पक्षकारों ने स्वीकार किया कि विवादित ढाँचे को ध्वस्त करने पर दिनांक 6 दिसंबर, 1992 को तीनों ढाँचे को ध्वस्त कर दिया गया था। इसलिए सकारात्मक उत्तर दिया।
- **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**–सकारात्मक फैसला किया।

28 क्या प्रतिवादी सं. 3 का कभी विवादित स्थल पर कब्जा रहा है और वादीगणों का इस पर कभी कब्जा नहीं था।

II. **न्यायमूर्ति एस यू खान**–दोनों पक्षकार विवादित परिसर के कब्जे में संयुक्त हकधारी हैं।

III. **न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल**–वादीगण विवादित भवन सहित बाह्य और आंतरिक परिसरों के कब्जे को साबित करने में विफल रहे हैं।

IV. **न्यायमूर्ति डी वी शर्मा**– वादीगणों के विरूद्ध फैसला किया।

उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों में से दो (न्यायमूर्ति एस यू खान तथा न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल) ने विवादित परिसर का तीन–तरीका से विभाजन का निर्देश दिया:

> "मुस्लिम पक्षकारों, वाद 5 के वादियों और निर्मोही अखाड़ा प्रत्येक को 1/3 वाँ भाग।"

उच्च न्यायालय ने जिस आधार पर यह तीन–तरीके के विभाजन का निर्देश दिया वह संयुक्त कब्जे के अपने निष्कर्ष के आधार पर था। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने वाद 5 में वादियों को पूरी संपत्ति की आज्ञप्ति दे दी।

न्यायमूर्ति एस यू खान के फैसले से पता चलने वाला सामान्य सूत्र यह है कि मुस्लिमों और हिंदूओं का संयुक्त कब्जा था और चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 110 के तहत स्वत्व, कब्जे का अनुसरण करता है, दोनों विवादित परिसर के संयुक्त स्वत्वधारी थे।

610. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निर्णय का आधार इस प्रकार दिया जा सकता हैः

(i) मुसलमानों का 1856–57 से बाहरी अहाते पर कब्जा नहीं था जब ब्रिटिश सरकार ने विभाजन रेलिंग को लगाया। मुसलमानों के पास अधिक से अधिक केवल बाहरी अहाते से गुजरने का ही अधिकार था।

(ii) बाहरी अहाते पर हिंदुओं का कब्जा स्पष्ट था और मुसलमानों के ज्ञान में था। यह 1858 के दस्तावेजों द्वारा स्पष्ट है जो यह दर्शित करता है कि मस्जिद के मुतवल्ली ने कई शिकायतें की थीं, इसके बावजूद परिसर में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संरचनाएं रहीं, जैसे कि बाहरी अहाते में हिंदुओं का प्रवेश करना और पूजा करना जारी रहा।

(iii) विवादित सम्पत्ति पर मुसलमानों का कब्जा होने का कोई साक्ष्य नहीं है। हालांकि यह नहीं माना जा सकता है कि मुस्लिम आंतरिक अहाते में नहीं गए थे या 1949 तक कोई नमाज अदा नहीं की गई थी, यह स्वंय से विधि में कब्जा के समान नहीं होगा। मुस्लिम हिंदूओं के साथ हितप्रद प्रयोग करते थे और इस प्रकार मुस्लिम अपने ढंग से पूजा करने के लिए भीतरी आंगन में आते थे।

(iv) यद्यपि वादियों का यह दावा है कि चूंकि भीतरी अहाते में नियमित नमाज अदा की गई थी, अतः रिसीवर ने इसके उपयोग से संबंधित अपेक्षित सामग्री प्राप्त की होगी, ऐसी कोई सामग्री नहीं मिली, यह इस अनुमान की ओर ले जाता है कि कोई अस्तित्व में नहीं था। इससे मुसलमानों का यह दावा कमजोर हो जाता है कि वे निरंतर पूजा के रूप में अनन्य अधिकार प्राप्त कर लें।

(v) मुस्लिमों ने विवादित संपत्ति को नहीं छोड़ा था। उन्होनें इसके रखरखाव के लिए अनुदान के रूप में ब्रिटिश सरकार द्वारा इसकी मान्यता प्राप्त करके, इस पर अपना दावा जारी रखा। विवादित संरचना के रूप में इमारत का बने रहना और विभाजक दीवार उसी प्रकार प्रत्यक्ष है जैसे कि नमाज़ के लिए आंतरिक अहाते में मुसलमानों का प्रवेश है। जबकि हिंदू और मुसलमान दोनों विवादित संपत्ति में उपासक के रूप में जाते थे, एकमात्र अन्तर यह था कि हिंदू पूरी संपत्ति पर जाते थे, जबकि मुसलमान नमाज अदा करने के लिए भीतरी प्रांगण तक ही सीमित थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) जबकि मुसलमान यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वाद 4 की संपत्ति उनके अनन्य कब्जे में 1949 तक थी, किंतु दोनों समुदायों का आंतरिक आंगन में कब्जा था;

(vii) बाहरी अहाता 1949 तक मुस्लिमों के कब्जे में नहीं था और यहाँ तक कि इससे पूर्व भी नहीं था। जहाँ तक आंतरिक अहाते का संबंध है , मुसलमानों ने 23 दिसंबर 1949 से अपना कब्जा छोड़ दिया है। इससे पहले हिंदूओं और मुस्लिमों दोनों का भीतरी अहाते पर कब्जा था; और

(viii) हिन्दू धार्मिक संरचनाएं बाहरी अहाते में 1856 के बाद से मौजूद थीं और निर्मोही अखाड़े के पुजारियों द्वारा प्रबंधित और प्रशासित किया जा रहा था। इसलिए बाहरी अहाते की सीमा तक, विवादित स्थल को निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में होना कहा जा सकता है, जबकि मुसलमानों का उस पर कब्जा अवरूद्ध था। आंतरिक अहाते पर दोनों पक्षों का अनन्य कब्जा नहीं था और बिना बाधा के दोनों समुदायों के सदस्य आते थे।

वाद 5 में वादी के दावे की संपूर्णता की अनुमति देने में, न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने अभिनिर्धारित किया:

(i) गैर मुस्लिम द्वारा प्रतिकूल कब्जा रखने से मस्जिद अपने पवित्र प्रकृति को खो देती है। मुस्लिमों का वाद संपत्ति पर कब्जा नहीं था और यह बताने के लिए कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है कि अनादि काल से उनके द्वारा नमाज अदा की जाती थी; और

(ii) मुस्लिमों ने 1528 ई. से वाद संपत्ति पर अनन्य और निरंतर कब्जा स्थापित नहीं किया है या यह कि उन्होंने अनादिकाल से विवादित ढांचे में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नमाज अदा की है। दूसरी ओर, हिंदुओं ने आंतरिक अहाते पर अनन्य कब्जा स्थापित कर लिया है और यह कि वे प्रार्थना करने के लिए वहाँ जा रहे थे।

वाद 4 की पोषणीयता

611. सुनवाई के दौरान, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री परासरन ने इस आधार पर वाद 4 की पोषणीयता पर आपत्ति जताई कि यह मुकदमा केवल मुतवल्ली की ओर से संस्थित किया जा सकता था। यह आग्रह किया गया था कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के पास कार्यवाही करने के लिए कोई आधार नहीं था। इस दलील में कोई मेरिट नहीं है। यूपी मुस्लिम वक्फ अधिनियम 1960 की धारा 19(2) विशेष रूप से बोर्ड को संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए उपाय अपनाने और वक्फ से संबंधित मुकदमों को संस्थित करने और बचाव करने का अधिकार देती है। धारा 3(2) के तहत, बोर्ड का अर्थ सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड या अधिनियम के तहत गठित शिया सेंट्रल वक्फ बोर्ड है। इसलिए वैधानिक शक्ति के संदर्भ में, स्पष्ट रूप से सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के पास कानूनी कार्यवाही संस्थित करने का अधिकार है।

O.4 वाद 4 में परिसीमा

अभिवचन

612. वाद 4 में वाद पत्र में, कार्यवाही के संस्थन के लिए वाद हेतुक 23 दिसंबर 1949 को हुई घटनाओं पर आधारित है, जिसके दौरान हिंदुओं की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भीड़ द्वारा मस्जिद के अंदर मूर्तियों को रखा गया था। ऐसा करने का आशय मस्जिद को नष्ट करना, क्षति पहुंचाना और अपवित्र करना था। इसके अलावा, वादी के अनुसार मस्जिद में प्रवेश करने का यह कार्य और मूर्तियों को रखना मस्जिद का अपवित्रीकरण है। यह स्पष्ट रूप से वाद पत्र के प्रस्तर 11 में प्रकथन से निकलता है:

> "11. यह कि मुस्लिमों का पूर्वोक्त मस्जिद में शांतिपूर्ण कब्जा रहा है और 23.12.1949 तक इसमें नमाज पढ़ा करते थे, जब हिंदुओं की एक बड़ी भीड़ ने उक्त मस्जिद को नष्ट करने, क्षतिग्रस्त करने या अपवित्र करने के शरारती इरादे से और जिससे मुस्लिम धर्म और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं का अपमान होता था, मस्जिद में प्रवेश किया और मस्जिद के अंदर मूर्ति रखकर मस्जिद को अपवित्र किया। हिन्दूओं का आचरण भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 295 और 448 के तहत दंडनीय अपराध था।"

उपरोक्त प्रकथन से जुड़ा प्रस्तर 23 में कथन है जो इस प्रकार है:

> "23. यह कि हिन्दुओं के विरूद्ध मुकदमे के लिए वाद हेतुक इस माननीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर अयोध्या जिला फैजाबाद में 23.12.1949 को तब उत्पन्न हुआ जब हिन्दूओं ने अवैध रूप से मस्जिद में प्रवेश किया और मस्जिद में मूर्ति रखकर मस्जिद को अपवित्र किया जिससे आम तौर पर मस्जिद में नमाज अदा करने और अन्य धार्मिक अनुष्ठान करने के मुस्लिमों के अधिकारों में बाधा और हस्तक्षेप कारित हुआ। हिंदू (गंज–शाहिदन) कब्रिस्तान में मुस्लिमों के लिए अवरोध भी पैदा कर रहे हैं और इसमें दफन मृत व्यक्तियों के लिए फतिहा पढ़ने में अवरोध डाल रहे हैं। इस प्रकार कारित क्षति सतत क्षति हैं, इससे उत्पन्न होने वाला वाद हेतुक निरंतर नवीकृत होता है और प्रतिवादी 5 से 9 के विरूद्ध वाद हेतुक, दिनांक 29. 12. 1949 को वादी के लिए उत्पन्न हुआ, जिस तारीख को प्रतिवादी संख्या 7 सिटी मजिस्ट्रेट फैजाबाद–सह–अयोध्या ने मुकदमे में मस्जिद को कुर्क किया और श्री प्रिया दत्त राम प्रतिवादी संख्या 9 को रिसीवर के रूप में इसका

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कब्जा सौंप दिया, जिन्होंने 5 जनवरी, 1950 को इसका पदभार ग्रहण किया।
प्रतिवादी 6 से 8, राज्य सरकार और इसके अधिकारी आरोपियों को अभियोजित करने और मुस्लिमों के हितों की सुरक्षा करने के अपने कर्तव्य में असफल रहे।"

मूल रूप से दायर किए गए मुकदमे में इस आशय की घोषणा माँगी गयी थी कि वाद पत्र में संलग्न नक्शे में अक्षर ए बी सी डी से दर्शायी गयी संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है जिसे बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है और अक्षर ई एफ जी एच द्वारा चित्रित इससे संलग्न भूमि एक सार्वजनिक मुस्लिम कब्रिस्तान है। प्रार्थना (ख) में हिन्दूओं द्वारा रखी गयी मूर्तियों और पूजा की अन्य चीजों को हटाकर मस्जिद और कब्रिस्तान के कब्जे के परिदान के लिए एक डिक्री की माँग की गयी है, "यदि न्यायालय कब्जे के परिदान को उचित अनुतोष समझती है"। प्रार्थना (खख) अनधिकृत संरचनाओं को हटाकर अनुसूची ए में वर्णित संपत्ति को वैधानिक रिसीवर को सौंपने के आदेश के लिए है। प्रार्थना (खख) को 25 मई 1995 के संशोधन द्वारा लाया गया था।

लिखित कथन

613. परिसीमा की दलील विशेष रूप से कई लिखित कथनों में उठाई गई थी, ये पहले और दूसरे प्रतिवादियों के लिखित कथनों के प्रस्तर 27 और 28 में और अतिरिक्त लिखित कथन के प्रस्तर 23 में थे। प्रतिवादी सं. 3 और 4, निर्मोही अखाड़ा और महंत रघुनाथ दास द्वारा दायर लिखित कथन के प्रस्तर 35 में; प्रतिवादी सं.10, अखिल भारत हिंदू महासभा के लिखित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कथन के प्रस्तर 29 में और कई अन्य हिंदू पक्षकारों के लिखित कथनों में भी परिसीमा की दलील उठाई गयी थी।

दसवें प्रतिवादी ने 15 फरवरी 1990 को एक लिखित कथन दाखिल किया और वाद पत्र के प्रस्तर 23 का खंडन किया। प्रस्तर 29 और 79 में दी गयी अतिरिक्त दलीलों में, एक विशिष्ट दलील उठायी गयी थी कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित है। लिखित कथन का प्रस्तर 79 इस प्रकार है:

> "...79. यह कि विरचित वाद केवल उद्घोषणा के लिए एक वाद है और कब्जे के परिदान के लिए अनुतोष इन शब्दों में है कि "यदि न्यायालय की राय में..." जिसका अर्थ है कि पक्षकार कब्जे का अनुतोष नहीं मांग रहे हैं और इसे न्यायालय पर छोड़ दिया है कि वह स्वतः कब्जे की अनुमति दे। कारण स्पष्ट है कि मुकदमा परिसीमा द्वारा बाधित था और इसलिए विशिष्ट प्रार्थना नहीं की गई है।"

लिखित कथन के प्रस्तर 39 को 23 नवंबर 1992 के न्यायालय के आदेश के अनुसरण में जोड़ा गया था। दसवें प्रतिवादी के संशोधित लिखित कथन के लिए एक प्रत्युत्तर दाखिल किया गया था, लेकिन लिखित कथन के प्रस्तर 79 का कोई विशिष्ट खण्ड़न नहीं किया गया था।

614. मुकदमा 18 दिसंबर 1961 को प्रस्तुत और दायर किया गया।

615. वाद 4 के पहले वादी को 23 अगस्त 1989 के न्यायालय के आदेश के अनुसरण में निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित वाद 3 के नौवें प्रतिवादी के रूप में पक्षकार बनाया गया था। अधिवक्ता के माध्यम से पहले वादी की ओर से एक कथन किया गया था कि वाद 5 में प्रतिवादी सं. 1 से 5 और वाद 3

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में प्रतिवादी सं. 6 से 8 की ओर से पहले ही दायर किए गए लिखित कथनों को स्वीकार कर लिया गया था। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को भी दिनांक 7 जनवरी 1987 के अदालत के आदेश के अनुसरण में वाद 1 में प्रतिवादी संख्या 10 के रूप में पक्षकार बनाया गया था। वाद 1 में प्रतिवादी सं. 1 से 5 द्वारा दायर लिखित कथन के प्रस्तर 22 में, यह विशेष रूप से कहा गया था कि 16 दिसंबर 1949 तक नमाज अदा की गई थी। इसी तरह, वाद 3 में प्रतिवादी सं. 6 से 8 की ओर से दायर लिखित कथन के प्रस्तर 26 में यह भी कहा गया था कि 16 दिसंबर 1949 तक नमाज लगातार अदा की गई थी। इस प्रकार, परिसीमा के मुद्दे के उद्देश्य से इस आधार पर आगे बढ़ना आवश्यक है कि अंतिम नमाज 16 दिसंबर 1949 को अदा की गई थी।

उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 20 की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया था कि:

(i) उद्घोषणा के वाद में, परिसीमा अधिनियम 1908 का अनुच्छेद 120 लागू है और यदि अनुच्छेद 23 में यथा वर्णित वाद हेतुक को सही माना जाता है तो भी वह वाद, जो छः वर्ष की समाप्ति के पश्चात् संस्थित किया गया था, परिसीमा द्वारा वर्जित है; और

(ii) भले ही अनुच्छेद 120 को अनुप्रयोज्य माना जाता है और अनुच्छेद 142 और अनुच्छेद 144 को लागू होना माना जाता है तो भी वाद हेतुक दिनांक 16 दिसंबर, 1949 को उत्पन्न हुआ और यह सतत अपकृत्य नहीं था। इसलिए बारह साल की समाप्ति के बाद 18 दिसंबर 1961 को दायर किया गया मुकदमा परिसीमा द्वारा वर्जित है, हालांकि केवल 2 दिनों से।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उच्च न्यायालय का निष्कर्ष

616. धारा 145 के प्रावधानों पर विचार करते हुए न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि कार्यवाही न्यायिक प्रकृति की नहीं है और न ही मजिस्ट्रेट इस पर ऐसे विचार करता है जैसे कि यह अचल संपत्ति के लिए एक मुकदमा हो। धारा 145 के तहत कार्यवाही न तो परिसीमा के विस्तार का परिणाम होगा और न ही परिसीमा की गणना करने के उद्देश्य से प्रावधानित कोई अपवर्जन है। मजिस्ट्रेट द्वारा रिसीवर की नियुक्ति से संपत्ति मात्र *विधि की अभिरक्षा* में हुई और यह परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 के अर्थ के अन्तर्गत बेदखल करना नहीं है। संपत्ति की कुर्की न तो मालिक को बेदखल करती है न ही कब्जे को अवरूद्ध करती है। **देवकुअर बनाम शिवप्रसाद सिंह**[324] में इस न्यायालय के निर्णय को संदर्भित करते हुए उच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त का उल्लेख किया कि धारा 145 के अधीन कुर्की के आदेश के अनुसरण में सम्पत्ति *विधि की अभिरक्षा में* है; चूंकि यह किसी निजी व्यक्ति के कब्जे में नहीं है, इसलिए कब्जे की बहाली के लिए अनुतोष माँगने की कोई आवश्यकता नहीं है और हक की उद्घोषणा पर्याप्त होगी। कब्जे के अनुतोष की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कोई भी निजी प्रतिवादी वादी को कब्जा देने की स्थिति में नहीं होगा और मजिस्ट्रेट उस पक्षकार के लिए कुर्की की अवधि के दौरान कब्जा धारण करता है जो न्यायनिर्णयन पर अंततः इसका हकदार पाया जाता है।

617. विधि में स्थिति को उपवर्णित करने के पश्चात् न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाद 4 के वादपत्र में कोई प्रकथन

---

324 एआईआर 1966 एससी 359

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं है कि वादियों को संपत्ति से वंचित किया गया, जो उनके पास पहले से थी। इसके विपरीत, दलील यह थी कि मस्जिद के अंदर मूर्तियों रखना, अपवित्र करने का एक कार्य था जिसने वादियों के पूजा करने के अधिकार में हस्तक्षेप किया। इसके अलावा वादियों द्वारा माँगा गया अनुतोष पूजा के अधिकार को जारी रखने के लिए नहीं थी, बल्कि संरचना के मस्जिद होने की उद्घोषणा के लिए था। विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभिवचन वाद को अनुच्छेद 142 के अधीन नहीं लाते क्योंकि वादपत्र के प्रस्तर 23 में अभिवचन, विवादित संपत्ति पर वादी के कब्जे को हटाने या अवरूद्ध करने के मामले को गठित करने के लिए पर्याप्त नहीं था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मस्जिद के अंदर की मूर्तियों को रखने से कब्जा हटना या अवरूद्ध होना गठित नहीं होता क्योंकि ये अवधारणा पहले से कब्जे में रहे व्यक्ति के पूरी तरह से वंचित करने पर विचार करती है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि बाधा या हस्तक्षेप, कब्जे से हटाने या अवरूद्ध करने को गठित नहीं करती है। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उल्लेख किया कि यदि वादी ने यह दलील नहीं दी थी कि उन्हें हटा दिया गया था या यह कि उनके कब्जे को स्पष्ट रूप से और स्पष्ट शब्दों में अवरूद्ध कर दिया गया था, तो न्यायालय कुछ ऐसा पढ़कर वंचित होने को प्रदान नहीं कर सकती थी जो अभिवचनों में मौजूद नहीं था।

618. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त कारणों से न तो अनुच्छेद 47 और न अनुच्छेद 142 की कोई प्रयोज्यता है। अनुच्छेद 120 के अन्तर्गत मामले पर विचार करते हुए विद्वान न्यायाधीश ने

यह उल्लेख किया कि वाद हेतुक 23 दिसंबर 1949 और 29 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ था। यह वाद छः साल की परिसीमा की अवधि से परे संस्थित किया गया था। इसलिए अन्तिम नमाज 16 या 23 दिसंबर 1949 को अदा की गई थी या नहीं, इसका कोई परिणाम नहीं होगा। जिस तारीख को अंतिम नमाज अदा की गई थी, वह कुछ महत्व का होता, यदि अनुच्छेद 120 लागू नहीं होता। अनुच्छेद 142 और अनुच्छेद 144 के लागू न होने की स्थिति में, अनुच्छेद 120 ही लागू होगा और वाद को परिसीमा द्वारा बाधित होना माना गया था।

इस बिन्दु पर कि क्या सतत अपकृत्य था, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि यदि पूजा के अधिकार में बाधा के विरूद्ध अनुतोष पाने के लिए मुकदमा संस्थित किया गया था, तो यह संभवत: परिसीमा अधिनियम 1908 की धारा 23 में सतत अपकृत्य के सिद्धांत को आकर्षित होती, विशेष रूप से **सर सेठ हुकुम चंद बनाम महाराज बहादुर सिंह**[325] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय के मद्देनजर। हालांकि वाद को पूजा के अधिकार के प्रवर्तन के लिए नहीं बल्कि मस्जिद के रूप में विवादित भवन की प्रकृति के बारे में स्थिति की उद्घोषणा प्राप्त करने और कब्जा हकधारी की क्षमता में कब्जे के परिदान के लिए संस्थित किया गया था। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि सतत अपकृत्य और अपकृत्य के सतत प्रभाव के बीच अंतर करना होगा। वादियों द्वारा दिए गए तथ्यों ने संकेत दिया कि उन्हें 22/23 दिसंबर 1949 को विवादित परिसर से बाहर कर दिया गया था और संपत्ति से बेदखल होते ही अपकृत्य पूरा हो गया था। इस आधार पर, विद्वान न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि सतत अपकृत्य का सिद्धांत

---

325 (1933) 38 एलडब्ल्यू 306 (पीसी)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आकर्षित नहीं हुआ था। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि वादी का निष्कासन 23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद के अपवित्रीकरण से पूरा हो गया था और इसलिए परिसीमा के प्रयोजन के लिए वाद अनुच्छेद 120 द्वारा शासित था। मुकदमे को परिसीमा द्वारा बाधित माना गया था।

न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि वाद को धारा 145 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्की के बाद उद्घोषणा करने के लिए संस्थित किया गया था। उद्घोषणा की मांग करने वाला वाद सतत अपकृत्य के सिद्धांत द्वारा शासित नहीं था और **राजा राजगन महाराजा जगतजीत सिंह बनाम राजा परतब बहादुर सिंह**[326] में प्रिवी काउंसिल के निर्णय के मद्देनजर अनुच्छेद 120 लागू होगा। इसलिए विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि न तो अनुच्छेद 142 और न ही अनुच्छेद 144 की कोई प्रयोज्यता है। विद्वान न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि यह वाद 1961 में संस्थित किया गया था, इसे 33 साल बाद (1995 में) कब्जे की माँग के लिए और इसे अनुच्छेद 142 तथा 144 के दायरे में लाने के लिए संशोधित किया गया था। इन आधारों पर वाद परिसीमा द्वारा बाधित माना गया था।

न्यायमूर्ति एस यू खान ने इसके विपरीत अवधारित किया और इस विचार पर थे कि वाद 4 परिसीमा के अधीन था। विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने के पांच कारण दर्शित किए कि वाद 3, 4, और 5 परिसीमा द्वारा बाधित नहीं थे जिन्हें पहले ही संदर्भित किया जा चुका है।

---

326 एआईआर 1942 पीसी 47

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस प्रकार, बहुमत से (न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी शर्मा) द्वारा वाद को परिसीमा द्वारा बाधित माना गया था; न्यायमूर्ति एस यू खान ने इस मुद्दे पर विपरीत विचार अवधारित किया।

अधिवक्ता के तर्क

619. इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान, वाद 5 में वादियों की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरन ने कहा कि वाद 4 केवल परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 120 द्वारा शासित होगा और यह कि न तो अनुच्छेद 142 और न ही अनुच्छेद 144 लागू होंगे। इस तर्क को निम्नलिखित प्रस्थापनाओं के आधार पर समर्थित करने की मांग की गई है:
(i) वाद 4 में मांगा गया प्राथमिक अनुतोष (प्रार्थना (क)) इस उद्घोषणा के लिए है कि विवादित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है और अतः वाद में पूजा के अधिकार के प्रवर्तन के लिए उद्घोषणा नहीं माँगी गयी है;
(ii) जब धारा 145 के अधीन कुर्क की गई संपत्ति के हक की उद्घोषणा के लिए वाद दायर किया जाता है तो कब्जे के परिदान के लिए आगे अनुतोष की मांग करना आवश्यक नहीं है चूंकि प्रतिवादी का कब्जा नहीं है और वह कब्जा देने की स्थिति में नहीं है। *विधि की अभिरक्षा में* होने से कुर्क की गयी संपत्ति का कब्जा रिसीवर उस व्यक्ति को देने के लिए बाध्य है जिसका दीवानी न्यायनिर्णयन के परिणामस्वरूप हकदार होना अभिनिर्धारित किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) कब्जे की मांग करने की प्रार्थना आवश्यक नहीं थी चूंकि संपत्ति दिसंबर 1949 से *विधि की अभिरक्षा में* थी और प्रार्थना केवल अनुच्छेद 120 द्वारा लगाए गए छह वर्षों की परिसीमा की अवधि को रोकने के लिए की गई थी;

(iv) परिसीमा का कानून विश्राम *(रोकने)* का कानून हैं;

(v) अनुच्छेद 120 के अन्तर्गत छह वर्ष की अवधि की संगणना उस तारीख से की जानी चाहिए जब वाद संस्थित करने का अधिकार प्रोद्भूत होता है और वाद में प्राख्यापित किए गए अधिकार के प्रोद्भूत होने और अधिकार का उल्लंघन करने का स्पष्ट व असंदिग्ध आशय होने पर, वाद संस्थित करने का कोई अधिकार नहीं है;

(vi) वादपत्र के प्रस्तर 23 में यथा अभिवचित किए गए वाद हेतुक 23 दिसंबर 1949 को तब उत्पन्न हुए कहे गए हैं जब हिन्दूओं ने अविधिपूर्ण रूप से मस्जिद में प्रवेश किया और मूर्तियों को अंदर रखकर उसे अपवित्र किया और इस प्रकार मुस्लिमों को नमाज करने में बाधा डाली;

(vii) वादियों का मामला यह है कि पहुँचायी गयी क्षति सतत प्रकृति की थी न कि अपकृत्य थी, जो अपवित्रीकरण की तारीख को पूर्ण हुई थी। परिसीमा के वर्जन को यह अभिकथित करके दूर करने की मांग की गयी है कि वाद हेतुक सतत अपकृत्य होने के कारण नवीकृत हो जाता है।

(viii) वर्तमान मामले में, सतत अपकृत्य का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता चूंकि संपत्ति *विधि की अभिरक्षा में* थी। इसलिए यहां तक कि यह मानना (बिना स्वीकार किए) कि केंद्रीय गुम्बद के नीचे मूर्तियों को रखना एक सतत अपकृत्य था, यह संपत्ति की कुर्की पर ही खत्म हो गया; और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ix) मूर्तियों को आंतरिक अहाते में रखे जाने पर वाद हेतुक उत्पन्न हुआ। यह धारा 145 के तहत कार्यवाहियों के पूर्व भी उद्भूत हुआ था और इसलिए यह तथ्य कि मजिस्ट्रेट ने कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया है, परिसीमा के चलने को नहीं रोकेगा।

विश्लेषण

620. परिसीमा अधिनियम 1908 और इसके बाद का परिसीमा अधिनियम 1963, दोनों विश्राम *(रोक)* के क़ानून हैं। परिसीमा के विस्तार या अपवाद विधि में निर्धारित हैं। इन प्रावधानों के अन्तर्गत निम्न हैं:

(i) धारा 4–11 (भाग II)

(ii) धारा 12–25 (भाग III) परिसीमा अवधि की संगणना से संबंधित हैं;

(iii) धारा 26 (20 वर्ष में सुखाचार के अधिकार का अर्जन); और

(iv) धारा 27 (अनुसेवी संपत्ति के उत्तरभोगी के लिए 20 वर्ष का उपांतरण)।

अनुच्छेद 47

621. परिसीमा अधिनियम 1908 का अनुच्छेद 47, दंड प्रक्रिया संहिता 1898 या मामलतदार न्यायालय अधिनियम 1906 के तहत "अचल संपत्ति के कब्जे का सम्मान करते हुए" दिए गए आदेश से बाध्य किसी व्यक्ति द्वारा या ऐसे व्यक्ति के अधीन आदेश में संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए दावा करने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाले किसी व्यक्ति द्वारा दायर किए गए वाद पर लागू होता है। परिसीमा की अवधि तीन साल है और वाद में अंतिम आदेश की तारीख से समय चलना शुरू होता है। अनुच्छेद 47 को लागू करने के लिए, वाद को पहले कॉलम में निर्दिष्ट विवरण को पूरा करना होगा। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 47 केवल उस स्थिति में लागू होता है जहां मजिस्ट्रेट ने अचल संपत्ति के कब्जे का सम्मान करते हुए एक आदेश पारित किया है। जब अचल संपत्ति के कब्जे के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, जो धारा 145 के तहत कार्यवाही का विषय है, तो वाद पहले कॉलम में निर्दिष्ट विवरण का नहीं होगा। यह केवल तभी होगा यदि मजिस्ट्रेट ने ऐसा आदेश पारित कर दिया है कि वाद निर्दिष्ट विवरण को पूरा करेगा और ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 47 शासित होगा। हालांकि कुर्की के आदेश से व्यथित व्यक्ति अपने अधिकार की उद्घोषणा के लिए वाद दायर कर सकता है, यद्यपि अनुच्छेद 47 आकर्षित नहीं होता है। दीवानी न्यायालय द्वारा अधिकार के निर्धारण पर, वह कब्जे का हकदार बन जाएगा और मजिस्ट्रेट बाध्य है कि वह दीवानी न्यायालय के आदेश के अनुसार कब्जा सौंप दे। वर्तमान मामले में धारा 145 के तहत कब्जे का सम्मान करने वाले किसी भी आदेश की अनुपस्थिति में, अनुच्छेद 47 की इसके सरल शब्दों में कोई प्रयोज्यता नहीं है।

अनुच्छेद 120, 142, 144

622. तर्क का अगला भाग जिसके आधार पर परिसीमा वर्जन का आग्रह किया गया है, वह यह है कि वाद 4, अनुच्छेद 120 द्वारा शासित है। अब

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुच्छेद 120 उन वादों पर विचार करता है जिनके लिए अनुसूची में अन्यत्र परिसीमा की कोई अवधि नहीं दी गई है। अनुच्छेद 120 अवशिष्ट उपबंध की प्रकृति का है। इसलिए जहां अनुसूची में एक विशिष्ट अनुच्छेद लागू होता है, तो अवशिष्ट अनुच्छेद की संभवतः कोई प्रयोज्यता नहीं हो सकती है और यह केवल तब होता है जब वाद किसी अन्य अनुच्छेद में निर्दिष्ट विवरण के भीतर नहीं आता है तो अवशिष्ट प्रावधान लागू होगा।

623. वादियों की ओर से जिन दो विरोधी अनुच्छेदो पर बल दिया गया है, वे अनुच्छेद 142 और वैकल्पिक रूप से अनुच्छेद 144 हैं। अनुच्छेद 142 अचल संपत्ति के कब्जे के लिए वाद को कवर करता है जब वादी को संपत्ति के कब्जे से बेदखल कर दिया गया हो या कब्जे को अवरूद्ध कर दिया गया हो। बेदखली अस्वैच्छिक प्रकृति के एक कार्य को उपधारित करता है जबकि अवरूद्धि अधिकांशतः कब्जे की स्वैच्छिक अभित्यजन की प्रकृति है। वर्तमान मामले में, वाद 4 में वादी ने एक उद्घोषणा की माँग की है कि अक्षर ए बी सी डी द्वारा इंगित संपत्ति एक सार्वजनिक मस्जिद है और ई एफ जी एच द्वारा दर्शायी गयी भूमि एक मुस्लिम कब्रिस्तान है। इसके अलावा वादियों ने कब्जे के परिदान के लिए प्रार्थना की है, यदि अदालत इस तरह के अनुतोष को उचित समझता हो।

624. जिस आधार पर यह कहा गया है कि वाद 4 कब्जे का वाद नहीं है, वह यह है कि इस अदालत ने **देवकुअर बनाम शिवप्रसाद सिंह**[327] में अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ संपत्ति *विधि की अभिरक्षा में* है, तो कब्जे के परिदान के लिए एक स्वतंत्र प्रार्थना करना आवश्यक नहीं है।

---

327 एआईआर 1966 एससी 359

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसलिए यह आग्रह किया गया है कि चूंकि कब्जे की मांग के लिए एक विशिष्ट प्रार्थना आवश्यक नहीं थी, प्रार्थना (ख) निरर्थक है और वाद की प्रकृति को केवल प्रार्थना (क) के संदर्भ में न्यायनिर्णीत किया जाना चाहिए।

तर्कों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। **देवकुअर के वाद** में इस न्यायालय का निर्णय यह प्रतिपादित करता है कि जहाँ संपत्ति *विधि की अभिरक्षा में* है, हक की उद्घोषणा की माँग करना पर्याप्त है। ऐसा इसलिए है क्योंकि रिसीवर जो न्यायालय का एक अधिकारी है, उस पक्षकार के लिए संपत्ति धारित करेगा, जो न्यायनिर्णयन के बाद कब्जे का हकदार पाया जाता है। चूंकि रिसीवर उस व्यक्ति को कब्जा सौपनें के लिए कर्तव्यबद्ध होगा जिसे न्यायालय द्वारा संपत्ति का हकदार होना अभिनिर्धारित किया गया है, कब्जे की मांग के लिए एक औपचारिक प्रार्थना आवश्यक नहीं है। लेकिन यह दलील इसकी चूक करता है कि कब्जा का अनुतोष माँगते हुए किया गया वाद में पोषणीयता का अभाव होना अभिनिर्धारित नहीं किया गया है। हक की उद्घोषणा ही पर्याप्त है क्योंकि एक बार संपत्ति विधि की अभिरक्षा में हो जाती है तो कब्जा आवश्यक रूप से न्यायालय द्वारा दिए गए न्यायनिर्णयन पर उद्घोषणा की मंजूरी का अनुसरण करेगा। इसलिए कब्जे का अनुतोष विवक्षित है। यह धारित करना कि जहाँ संपत्ति *विधि की अभिरक्षा में* है, इस प्रकृति का वाद संभवतः कब्जे के लिए वाद होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता, इसलिए यह ऐसा तर्क है जिसका कोई वैध आधार नहीं है।

625. यह तर्क कि वाद 4 परिसीमा द्वारा वर्जित है, निम्नलिखित परिकल्पनाओं पर आधारित है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) संपूर्ण संपत्ति जो वाद की विषय –वस्तु है, वह धारा 145 के तहत कार्यवाही के परिणामस्वरूप *विधि की अभिरक्षा में* थी;

(ii) एक बार संपत्ति *विधि की अभिरक्षा में* हो जाती है, तो उद्घोषणा के लिए वाद पर्याप्त होगा और कब्जे के अनुतोष की माँग करने की कोई आवश्यकता नहीं है;

(iii) कब्जे के परिदान के लिए एक डिक्री की मांग करते हुए यह प्रार्थना (ख) कि "यदि इसे आवश्यक मानती हो," यह निरर्थक है; और

(iv) परिणामतः कब्जे के लिए प्रार्थना के अभाव में, वाद केवल मस्जिद की प्रकृति की घोषणा करने के लिए है और इसलिए परिसीमा अधिनियम 1908 के अनुच्छेद 120 द्वारा शासित है।

उपरोक्त तर्क का मूल आधार यह है कि आंतरिक और बाहरी अहाते सहित संपत्ति संपूर्णतः *विधि की अभिरक्षा में* थी और रिसीवर के सुरक्षात्मक कुर्की के अधीन थी। हालाँकि तथ्य के मामले के रूप में, 18 दिसंबर 1961 को जब मुकदमा संस्थित किया गया था, तो धारा 145 के तहत पारित आदेशों के अनुसरण में केवल आंतरिक अहाते को कुर्क किया गया था। बाहरी अहाते को केवल 1982 में रिसीवर के अधीन रखा गया था। वाद 4 में विवाद की बिषयवस्तुवाद निम्न थी:

(क) आंतरिक अहाता, जो धारा 145 के अधीन कुर्क किया गया था;

(ख) बाहरी अहाता, जो कुर्क नहीं किया गया था; और

(ग) आसन्न कब्रिस्तान जो कुर्क नहीं किया गया था।

626. वाद 4 दोनों ही क्षेत्रों से संबंधित था, वे जो धारा 145 के तहत कुर्क किए गए थे और वे क्षेत्र जो स्पष्ट रूप से कुर्की की विषय –वस्तु नहीं थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिणामस्वरूप वाद में माँगी गयी घोषणा केवल उस भूमि के संबंध में नहीं थी जो कुर्की के आदेश के दायरे में आती थी। अनुतोष निम्न के संबंध में माँगा गया था:

(क) सार्वजनिक मस्जिद के रूप में अक्षर ए बी सी डी द्वारा वर्णित संपत्ति (आंतरिक और बाहरी अहाते सहित) और अक्षर ई एफ जी एच द्वारा चिह्नित कब्रिस्तान की उद्घोषणा; और

(ख) ए बी सी डी के रूप में चित्रित मस्जिद के क्षेत्र का कब्जा।

इसके अलावा, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रार्थना (खख) को पूरी मस्जिद के विध्वंस के परिणामस्वरूप एक संशोधन के माध्यम से लाया गया था और दावा किया गया अनुतोष वैधानिक रिसीवर के विरूद्ध था जिसे **इस्माइल फारूखी** में निर्णय के परिणामस्वरूप नियुक्त किया गया था। उपरोक्त स्थिति के मद्देनजर, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रार्थना (ख) में माँगा गया कब्जे का अनुतोष केवल कुर्की के अधीन आने वाली संपत्ति के क्षेत्र के लिए ही नही था, बल्कि उस क्षेत्र के लिए भी है जो कुर्की की विषय –वस्तु नहीं थी। इस स्थिति के कारण परिसीमा के वर्जन का आह्वाहन करने वाले तर्क का संपूर्ण आधार त्रुटि से ग्रस्त है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

627. वादपत्र में वादी की शिकायत यह थी कि उनका विवादित भूमि पर कब्जा था और उनके द्वारा 23 दिसंबर 1949 तक वहां पर प्रार्थना किया गया। 23 दिसंबर 1949 को यह आरोप लगाया गया कि हिंदुओं ने मस्जिद के अंदर ही प्रतिमाएं स्थापित की, जिसके परिणामस्वरूप मस्जिद को

अपवित्र हो गया। विशेष रूप से यह दलील देकर कि वादी कब्जे में थे और एक विशेष तारीख तक प्रार्थनाओं किये थे, अनुक्रमकर्ता यह है कि उस तारीख के बाद, वादी कब्जे में नहीं रहे। यह स्थिति होने के नाते, यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 145 के तहत कुर्की के बाद संपत्ति विधि के अधीन जाने से पहले ही वादी को कब्जे से बाहर कर दिया गया था। इसके पीछे की यह इस पृष्ठभूमि में थी, कि प्रार्थना (अ) में, वादी ने मस्जिद की प्रकृति के संबंध में एक सार्वजनिक मस्जिद के रूप में घोषित किये जाने की मांग की और प्रार्थना (ब) आवश्यकता पर कब्जे की मांग की गयी। इस तरह की शर्तों में अनुतोष के लिए प्रार्थना करना अभिवचनों की विधि के लिए अज्ञात नहीं है। उदाहरण के तौर पर **सी. नटराजन बनाम आशिम बाई**[328]328 ऐसा मामला था, जहां निम्नलिखित शर्तों में अनुतोष को सूत्रबद्ध किया गया था:

"2. अपीलकर्ता ने निम्नलिखित अनुतोष प्रदान किये जाने
के लिए अन्य बातों के साथ प्रत्यर्थियों के विरूद्ध मुकदमा
दायर किया है:
"(क) वाद संपत्ति में वादी के स्वत्व को घोषित करने के लिए;
(ख)परिणामी निषेधाज्ञा के लिए, प्रतिवादियों पर रोक लगाकर, उनके लोगों, एजेंटों, नौकरों आदि को किसी भी तरह से वादी के शांतिपूर्ण कब्जे और वाद की संपत्ति की सम्पत्ति के भोग करने से रोकना हस्तक्षेप करने से रोकना।

---

328 . (2007) 14 एस.सी.सी. 183

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ग) वैकल्पिक रूप से, यदि किसी कारण से यह माननीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वादी के कब्जे से बाहर है, तो सूट की संपत्ति के खाली कब्जे की वसूली के लिए।

(घ) इस वाद व्यय के भुगतान के लिए प्रतिवादी को निर्देशित करना.

सि.प्र.सं. के आदेश VII नियम 11 के तहत वादपत्र को अस्वीकृति किये जाने के आवेदन से उत्पन्न कार्यवाही में न्यायालय ने धारित किया कि इस रूप में दायर कोई याचिका अतिरिक्त अनुतोष को अमान्य नहीं बना देगी। न्यायालय ने अवलोकन किया:

> "14. यदि वादी को कब्जा वापस दिलाया जाना हो तो मुकदमा 12 साल की अवधि के भीतर दायर किया जा सकता है। पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के देखना के बाद यह कहना एक बात है कि इस तरह की राहत दी जा सकती है या नहीं, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि वादपत्र इस आधार पर खारिज कर दिया जाएगा कि यह किसी भी कानून द्वारा बाधित है। वादी के शीर्षक की घोषणा के परिणामस्वरूप जो मुकदमा दायर किया गया है, उसमें अनुच्छेद 58 किसी भी प्रकार से लागू नहीं होगा।"

इस परिस्थितियों में वाद अचल संपत्ति के कब्जे का वाद है जो अनुच्छेद 142 के पहले स्तंभ में दिए गए विवरण के तहत आता है। यह मुकदमा 23 दिसंबर 1949 को कथित बेदखली की तारीख के बारह साल की अवधि के भीतर संस्थित किया गया है और इसलिए परिसीमा के भीतर है। उक्त के दृष्टिगत यह मुद्दा कि क्या निरंतर का मामला स्थापित किया गया उसका कोई महत्व नहीं है। इस आधार पर कि वादहेतुक 23 दिसंबर 1949 को पूरा किया गया था, यह स्पष्ट है कि वादपत्र को बेदखली की तारीख से बारह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साल की अवधि के भीतर संस्थित किया गया था। क्या निरंतर अपकृत्य के विपरीत निरंतर क्षति थी इसलिए मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण में उत्पन्न नहीं होता है।

628. श्री परासरन ने कथन किया है कि यह वाद विशिष्ट अनुतोष अधिनियम 1877 की धारा 42 के तहत संपत्ति के प्रकृति की घोषणा किये जाने के लिए था न कि सम्पत्ति के स्वत्व के लिए। विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि प्रार्थना (अ) इस घोषणा से संबंधित है कि वादपत्र से संलग्न नक्शा जिसमें सम्पत्ति ए, बी, सी, डी, के रूप में वर्णित है वह सार्वजनिक मस्जिद है। इस आधार पर, यह आग्रह किया गया है कि प्रार्थना (अ) स्वत्व की घोषणा नहीं है। कथन में गुणागुण का आभाव है। प्रार्थना (अ) न केवल मस्जिद की विवादित संरचना की घोषणा के मांग के संबंध में है, बल्कि उस भूमि के संबंध में भी है जो इसके लिए उपयुक्त थी। यह यथा संशोधित वादपत्र के पैरा 21 बी से भी स्पष्ट है जो 6 दिसंबर 1992 को मस्जिद के विध्वंस के परिणाम से संबंधित है। वादपत्र के अनुच्छेद 21 बी में जो दलील दी गयी वह यह है कि ढ़ांचे को गिराये जाने के बावजूद, उस भूमि की प्रकृति मस्जिद के रूप में बनी रही।

629. वादी द्वारा स्थापित वादहेतुक यह था कि मुसलमानों का मस्जिद में शांतिपूर्ण कब्जा था और 23 दिसंबर 1949 तक इसमें नमाज पढ़ते थे, जब हिंदुओं की भीड़ ने मस्जिद को नष्ट करने, क्षति पहुंचाने अथवा इसे दूषित करने के इरादे से इसमें प्रवेश किया और इसके अंदर मूर्ति स्थापित कर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद को अपवित्र कर दिया। इस प्रकार वादपत्र का प्रस्तर 11 में यह दर्शित है कि वादी का मामला यह है कि 23 दिसंबर 1949 मस्जिद में प्रवेश कर उसमें मूर्ति स्थापित करने का आशय मस्जिद को दूषित करना, तोड़ना, और उसकी प्रकृति को नष्ट करना था और इस कार्य से मस्जिद अपवित्र हो गयी। इसके अलावा, यह उस संदर्भ में है कि प्रस्तर 23 में दलील यह है कि वाद हेतुक 23 दिसंबर 1949 को उत्पन्न हुआ जब मस्जिद को दूषित किया गया था और मुसलमानों द्वारा पूजा में व्यवधान पहुंचाया गया था। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य बताते हैं कि 23 दिसंबर 1949 को मूर्तियों को मस्जिद में रखने के बाद, मस्जिद के परिसर के भीतर पुजारी द्वारा मूर्तियों की पूजा की गई थी। इसलिए, अनुच्छेद 11 में याचिका केवल 23 दिसंबर 1949 के बाद मस्जिद में नमाज अदा करने में मुसलमानों की बाधा में से एक नहीं है , बल्कि उस तारीख से प्रभावी एक फैलाव है।

630. 29 दिसंबर 1949 को धारा 145 के तहत जारी प्रारंभिक आदेश द्वारा आंतरिक संरचना को कुर्क कर 5 जनवरी 1950 को रिसीवर को सौंप दिया गया। वादी के वादपत्र से यह स्पष्ट है कि प्रस्तर 11 और 23 में जो कुछ भी कहा गया है, वह मस्जिद परिसर में मूर्तियां रख मुस्लिमों द्वारा की जा रही इबादत में बाधा मात्र है। मुसलमानों का मामला यह था कि मूर्तियों की रखे जाने से मस्जिद दूषित और अपवित्र हो गयी। इसके अलावा, यह तथ्य कि मूर्तियों के रखे जाने के बाद मस्जिद के परिसर के भीतर केवल हिंदुओं द्वारा की जा रही पूजा मुस्लिम के बेकब्जा को दर्शित करती है। इस मामले का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह घटना 22 या23 दिसंबर 1949 को घटित हुई

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिससे वादीगण मस्जिद से बेदखल हो गये। इसलिए, वादपत्र को वादपत्र के रूप में पढ़ने से केवल इबादत में बाधा का पता चलता है और मुसलमानों के निष्कासन के विरूद्ध परिवाद कहना गलत होगा। वास्तव में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने विचारण के दौरान उल्लिखित किया कि 23 दिसंबर 1949 को मुसलमानों को निष्कासित कर दिया था। प्रस्तर 2439 में, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस प्रकार अवलोकन किया:

> "...मामले में, वादी ने जिन तथ्यों का अभिवचन किया उनसे यह दर्शित होता है कि वे 23 दिसंबर, 1949 को विवादित परिसर से बेदखल हो गये थे और उस पर अपकृत्य हुआ इसके बाद से उन्हें विवादित संपत्ति से पूरी तरह से इस आधार पर बेदखल कर दिया गया कि उनके पास स्वत्व का आभाव है।"

इसी तरह का अवलोकन प्रस्तर 2443 में निहित है जहां यह उल्लिखित किया गया है:

> "... डी.22/23 दिसंबर, 1949 की रात को जब मूर्तियां केंद्रीय गुंबद के अन्दर रखी गई थीं और मुसलमानों को विवादित संपत्ति से बाहर कर हिंदुओं द्वारा नियमित रूप से शास्त्रीय विधियों से पूजा प्रारम्भ हो गयी।"

विद्वान न्यायाधीश के यह निष्कर्ष उनके पूर्व अवलोकन के साथ असंगत हैं कि कब्जे से बेदखल नहीं किया गया था, बल्कि पूजा में बाधा अथवा हस्तक्षेप मात्र था। 22/23 दिसंबर, 1949 को मध्य गुंबद के नीचे प्रतिमाओं को रखने के कृत्य से मस्जिद दूषित हो गयी। सबूत बताते हैं कि मूर्तियों की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थापना के बाद मस्जिद के भीतर हिंदू प्रार्थना और पूजा शुरू हो गयी। यह कब्जे से बेदखली थी।

631. इस स्थिति में उच्च न्यायालय अनुच्छेद 120 के उपबंधों को लागू करने में गलती पारित किया। वाद समग्र रूप से और सारतः अनुच्छेद 142 द्वारा शासित था। यद्यपि अंतिम नमाज 16 दिसंबर 1949 को अदा की गई थी फिर भी उस दिन बेदखली की कार्यवाही नहीं की गयी थी। अगले शुक्रवार 23 दिसंबर 1949 को नमाज अदा की गयी होगी और उस तारीख को बेदखली की कार्रवाही की की गयी और तब मस्जिद अपवित्र हो गयी। 18 दिसंबर 1961 को जो मुकदमा दायर किया गया था, वह 23 दिसंबर 1949 से 12 साल की अवधि के भीतर था और इसलिए परिसीमा अवधि के भीतर था। अनेक उच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण कि वाद 4 परिसीमा अवधि द्वारा बाधित है वह गलत है। वाद 4 परिसीमा अवधि के भीतर था। वैकल्पिक रूप से, भले ही यह माना जाता है कि वादी का आंतरिक आंगन में पूर्ण रूप से कब्जा नहीं था फिर भी वाद अवशिष्ट अनुच्छेद 144 के तहत आएगा और वाद परिसीमा काल के भीतर है।

0.5 अनुप्रयोज्य विधिक व्यवस्था और न्याय, साम्या एवं सद्विवेक

632. वर्तमान मामले के तथ्य तीन शताब्दियों से चले आ रहें हैं। मौखिक तर्कों के दौरान, इस न्यायालय का ध्यान सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में सम्राट बाबर के जीवन को अभिलिखित करने वाले लिखित विवरणों में समय

पर वापस लाया गया था। इतिहास के पन्नों से परे ले जाकर न्यायालय के समक्ष पुरातात्विक साक्ष्य का अवलम्ब लिया गया है। विवादित भूमि पर अपने अधिकारों को स्थापित करने की मांग कर पक्षकारों ने उत्पत्ति के बिन्दु को स्थापित करने के लिए मानव इतिहास की की ओर रुख किये जहां पर विवादित संपत्ति पर एक पक्ष का दावा निर्विरोध थाः प्रथम अधिकार और प्रथम अपकृत्य को स्थापित करने के लिए। विवादित स्थल पर एक हजार वर्षों से चल रहे प्रार्थना, प्रतिवाद, निर्माण और विध्वंश से उत्पन्न कानूनी परिणामों को निर्धारित करने के लिए इस अदालत से मांग की गयी।

633. इस अवधि के दौरान, विवादित संपत्ति विभिन्न शासकों और विधि व्यवस्था के अधीन रही है। यह प्रश्न ऐतिसिक महत्व का है कि जिस पक्षकार, राजा अथवा धर्म का उस विवादित स्थल पर प्रथम दावा था। लेकिन इस न्यायालय को यह निर्धारित करना चाहिए कि इस तरह की जांच से उत्पन्न विधिक परिणाम क्या हैं? मानव इतिहास शासकों और शासनतंत्रों के उत्थान और पतन का प्रमाण है। विधि का उपयोग पीछे जाकर उन व्यक्तियों को उपचार प्रदान करने की युक्ति के तौर पर नहीं होना चाहिए जो इतिहास की घटना से असहमत हैं। वर्तमान में अदालतें ऐतिहासिक अधिकारों और अपकृत्यों का संज्ञान तब नहीं ले सकती हैं जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि वर्तमान में उनके विधिक परिणाम प्रवर्तनीय हैं। इस प्रकार, इससे पहले कि यह न्यायालय एक लंबी ऐतिहासिक जांच शुरू करे, यह विचार करना महत्वपूर्ण है कि विधिक व्यवस्था के तहत किस सीमा तक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्य किया गये हैं और अधिकारों को प्राप्त किया गया है जिनका वर्तमान विधि के तहत विधिक परिणाम निकलता है।

634. वर्तमान मामले से संबंधित तथ्य चार अलग–अलग विधिक व्यवस्था के तहत आते हैं: (i) 1525 से पूर्व के राजतंत्र द्वारा बारहवीं शताब्दी के पहले प्राचीन आधारभूत ढ़ांचा का निर्माण किया किया जाना अभिकथित है। (ii)1525 से 1856 के मुगल शासन बीच, जिसके दौरान विवादित स्थल पर मस्जिद का निर्माण किया गया था; (iii) 1856 से 1947 के मध्य विवादित संपत्ति औपनिवेशिक शासन के अधीन आयी; और (iv)1947 की अवधि के बाद स्वतंत्र भारत में वर्तमान तिथि तक।

635. वाद 5 में जो वादीगण है उनकी ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वैद्यनाथन ने विवादित संपत्ति के नीचे एक प्राचीन हिंदू संरचना की मौजूदगी पर बल दिया। अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मस्जिद के निर्माण में इस ढांचे के ध्वंशावशेष का उपयोग किया गया था। हिन्दू महाभा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एच. एस. जैन ने कहा किया कि जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो अयोध्या में अयोध्या में विक्रमादित्य द्वारा निर्मित मंदिर सहित कई मंदिर नष्ट कर दिये गये। उन्होंने कथन किया कि मुगल काल के दौरान, जो अब 'भारत'के रूप में जाना जाना जाता है 'विदेशी'अधिभोग के अधीन था–हिंदुओं को अपने धार्मिक अधिकारों का प्रयोग करने की अनुमति नहीं थी और अब चूंकि भारत का संविधान अंगीकृत हो चुका है इसलिए मुगलों द्वारा जो गलत कार्य किये गये हैं उसको सुधारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जा सकता है। इन तर्कों को महत्व देने के लिए यह समझना आवश्यक है कि हमारी विधि किस हद तक पूर्व विधिक व्यवस्था तहत प्राप्त अधिकारों और किये गये कार्यों से उपजे विधिक परिणामों को मान्यता प्रदान करता है।

राज्य के अधिनियमों और संप्रभुता में परिवर्तन

636. पूर्व विधिक व्यवस्था से अधिकारों और कार्यों के विधिक परिणामों को लागू करने की सीमा को निर्धारित करने वाले सिद्धांत प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित किए गए हैं और स्वतंत्रता के बाद इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया है। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट काउंसिल ऑफ इण्ड़िया बनाम कमाची बोये सभा,[329]तंजौर के राजा बिना अपना उत्तराधिकारी छोड़े 29 अक्तूबर, 1855 को मर गये परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस राज्य को औपनिवेशिक सरकार के अधीन घोषित कर लिया। औपनिवेशिक सरकार ने 'तंजौर की नई सरकार'को एक पत्र प्रेषित कर पूर्व शासक के अधीन निजी और सार्वजनिक सम्पत्तियों की सूची मांगी ताकि इस संपत्ति के विरुद्ध किए गए दावों का विनिश्चय किया जा सके। जब इस पत्र का कोई जवाब नहीं मिला तो कंपनी के अधिकारी ने पैदल सेना की 25 वीं रेजिमेंट की की मौजूदगी का लाभ उठाकर राजा की संपत्ति पर कब्जा कर उसे सील कर दिया तथा संपत्ति की सुरक्षा के लिए संतरी तैनात कर दिया। तत्कालीन राजा की सबसे बड़ी विधवा द्वारा पूर्व शासक की निजी संपत्ति के संबंध में मद्रास के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक मुकदमा लाया गया था। यह तर्क दिया गया था कि राजअन्तराल के बाद नये शासक द्वारा अधिग्रहित सम्पत्ति एक सार्वजनिक

329 (1857-60) 7 एम.ओ.ओ. आई.ए. (476)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संपत्ति थी जबकि राजा की निजी संपत्ति को हिंदू उत्तराधिकार विधि के अनुरूप वितरित की जानी थी। प्रत्यर्तियों ने तर्क दिया कि राजा की संपत्ति को जब्त करना औपनिवेशिक सरकार की ओर से नए संप्रभु के रूप में राज्य का कृत्य था। राज अन्तराल और उसके बाद की जब्ती में केवल राजा और औपनिवेशिक सरकार शामिल थी– दो संप्रभु शक्तियां, और परिणामस्वरूप, इस मामले पर सुनवाई करने का न्यायालय के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इस तर्क को स्वीकार कर प्रिवी काउंसिल की ओर से बोलते हुए लॉर्ड किंग्सडाउन धारित किया:

> "किन्तु, इस पत्र का अर्थ कुछ भी हो.... इससे यह दर्शित होता है कि औपनिवेशिक सरकार का आशय उस सभी संपत्ति को, जो वस्तुतः अभिगृहीत की गई थी, अभिगृहीत करना था, चाहे वह सम्पत्ति सार्वजनिक हो या निजी, तथा यह आश्वासन दिया गया कि अन्वेषण के उपरान्त अनुचित रूप से अभिगृहीत सारी सम्पत्ति को प्रत्यावर्तित कर दिया जाएगा। लेकिन, राजा से संबंधित संपत्ति के संबंध में भी, यह मानना मुश्किल है कि सरकार का उद्देश्य उन लोगों को निवारण का कानूनी अधिकार देना है जो किसी विधिक न्यायाधिकरण के फैसले के लिए राजनैतिक उपाय के निष्पादन में अपने अधिकारियों के आचरण को बताने में खुद को गलत गलत मानते हों।
>
> ...
>
> न्यायमूर्ति का मानना है कि परिणास्वरूप प्रत्यर्थी, सबसे बड़ी विधवा, ने जिस सम्पत्ति पर दावा किया है उसको ब्रिटिस सरकार ने अपने संप्रभु शक्ति का प्रयोग कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से जब्त कर दिया इस प्रकार अपने परिणामों सहित कृत कार्य एक प्रकार से राज्य का कार्य है जिस पर मद्रास उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता नहीं है।
>
> अगर उन्होंने कोई राय बनाई थी तो भी उस कार्य की औचित्य या न्याय से संबंधित न तो निचली अदालत और न ही न्यायिक समिति के पास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कोई राय बनाने या व्यक्त करने का अधिकार है। यह उन लोगों के लिए न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण, राजनीतिक या अपवित्र, लाभकारी या हानिकारक हो सकता है, जिनके हित प्रभावित होते हैं। इनको न्यायलय विचारित नहीं कर सकता है। यह कहना पर्याप्त है कि यदि कोई अपकृत्य किया गया है, तो भी यह अपकृत्य है, जिसमें नगरपालिका न्यायालय कोई उपचार नहीं प्रदान कर सकता है।

(प्रभाव वर्धित)

637. राजा की संपत्ति को जब्त करने में औपनिवेशिक सरकार का कार्य दो संम्प्रभु कर्ताओं के मध्य का कार्य था –औपनिवेशिक सरकार और तंजौर राज्य के राजा। यह वाद मद्रास के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष स्थापित किया गया था जो सरकार द्वारा गठित एक न्यायालय था और उसकी संप्रभुता में कार्य कर रहा था। प्रिवी काउंसिल ने धारित किया कि उपनिवेश सरकार के कार्य किसी अन्य संप्रभु इकाई (तंजौर के राजा) के मुकाबले राज्य के कार्य थे और नगरपालिका की अदालतें उन मामलों की सुनवाई नहीं कर सकती हैं जो उन कार्यों की वैधता पर आक्षेप करती हैं जब तक कि औपनिवेशिक सरकार ने खुद यह नहीं माना कि मामला न्यायसंगत था। प्रिवी काउन्सिल ने यह धारित किया कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जो इस दावे का समर्थन करे कि औपनिवेशिक सरकार ने यह मान्यता प्रदान की कि राजा की संपत्ति के दावेदारों को विधिक क्षतिपूर्ति दिया जाना है। यह कि राज्य के द्वारा कृत कार्य के परिणाम विधिक रूप से नगरपालिका विधि में प्रवर्तनीय थे औपनिवेशिक सरकार ने इसको मान्यता प्रदान नहीं की, नगरपालिका की अदालतें राज्य के कार्य से संबंधित वादों पर सुनवाई नहीं कर सकती थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

638. 1899 में प्रिवी काउंसिल ने **थॉमस और जेम्स कुक बनाम सर जेम्स स्प्रिंग**[330] के स्वयं द्वारा पारित निर्णय में इस सिद्धांत का पालन किया। अपील में प्रत्यर्थियों ने पोन्डोलैण्ड़ के मुख्य निवासी द्वारा किए गए कुछ करारों को चुनौती दी थी जिसमें अपीलकर्ताओं को ब्रिटिश संप्रभु के प्रतिनिधि के रूप में भूमि और जंगलों पर रियायती अधिकार प्रदान किया था। प्रत्यर्तियों ने तर्क दिया कि करार तत्कालीन पोन्डोलैण्ड़ की विधियों के विपरीत था। प्रिवी काउंसिल ने धारित किया कि ब्रिटिश सरकार को भूमि और अधिकारों का अनुदान राज्य का कार्य होगा और और जो पोंडोस प्रमुख और ब्रिटिस सरकार के मध्य है और इसको नगरपालिका की अदालत में इस आधार पर चुनैती नहीं दी जा सकती थी कि यह पोंडोंस विधि का उल्लंघन करती है। प्रिवी काउंसिल की ओर से के लिए बोलते हुए लॉर्ड हल्सबरी ने धारित किया:

> "महारानी के द्वारा अभ्यर्पण या किसी अन्य माध्यम से कब्जा लिया जाना जिससे सम्प्रभुता प्राप्त की जा सके, राज्य का एक कार्य था और सिंकाऊ (पोंड़ो प्रमुख) को एक स्वतंत्र संप्रभु मानना –जो अपीलार्थी उनसे स्वत्व प्राप्त करने के लिए बाध्य हैं – यह कानून का एक सुस्थापित सिद्धांत है कि स्वतंत्र राज्यों के पारस्परिक संव्यवहार उन कानूनों से इतर कानूनों द्वारा संचालित होते हैं जो नगरपालिका अदालतें स्थापित करती हैं। यह कहना कोई उत्तर नहीं है कि अन्तर्राष्टीय विधि के सामान्य सिद्धान्तों के तहत उस संप्रभु द्वारा निजी सम्पत्ति का सम्मान किया जाता है जो अभ्यर्पण स्वीकार करता है और अभ्यर्पित क्षेत्र के भीतर ऐसे निजी सम्पत्ति के संबंध में पूर्व संप्रभु के कर्तव्यों और विधिक दायित्वों को को ग्रहण करता है। ...यदि अभ्यर्पण करने वाले शासक और उस सरकार के बीच, जिसे अभ्यर्पण किया जाना है, प्रकट या सुस्पष्ट मोलतोल हुई हो, कि निजी सम्पत्ति का सम्मान किया जाएगा अर्थात

---

330 (1899) ए.सी. 572

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

केवल मोलतोल ही जिसे कि एक संप्रभु द्वारा दूसरे संप्रभु पर सामान्य कूटनीतिक दबाव से लागू किया जा सके।"

(प्रभाव वर्धित)

639. प्रिवी काउंसिल ने जिस सामान्य विधि के सिद्धान्त को अपनाया वह यह था कि कि नगरपालकीय अदालतें दो संप्रभु राज्यों के बीच प्रयोज्य विधि को प्रवर्तित नहीं कर सकती हैं। प्रिवी काउंसिल ने स्पष्ट किया कि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि को इस पर यह कहना पड़ा कि क्या बाद के विधिक दायित्वों के संबंध में नए संप्रभु को पुराने संप्रभु के अधीन कर दिया गया, कोई नगरपालकीय अदालत ऐसे विधिक दायित्वों को लागू नहीं कर सकती है जब तक नव संप्रभु ऐसे विधिक दायित्वों की स्पष्ट से मान्यता प्रदान न कर दे। जहां कोई पूर्व संप्रभु नए संप्रभु में परिवर्तित हो जाती है वहां पर नए संप्रभु की नगरपालिकीय अदालतें पूर्व संप्रभु के अधीन रहने वाले पक्षकारों के विधिक अधिकारों को नए संप्रभु द्वारा ऐसे कानूनी अधिकारों के व्यक्त मान्यता अनुपस्थित में लागू नहीं करेंगी।

640. मालिकाना अधिकारों के प्रश्न से संबंधी उपरोक्त सिद्धान्तों की प्रायोज्यता जो पूर्व सरकार में विद्यमान थे उनकी चर्चा प्रिवी कौंसिल द्वारा सन् 1915 में निर्णीत **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ऑफ इण्ड़िया बनाम बाई राजबाई**[331] के मामले में की गयी। कस्बातिस वर्ग के सदस्य जो कि अपील में

---

331 आई.एल.आर. (1915) 39 बाम्बे 625

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रत्यर्ती हैं उसे गायकवाड़ शासकों द्वारा कुछ गांवों से किराया वसूलने के लिए भूमि अनुदान में दिया गया था। सन् 1817 में अहमदाबाद जनपद को गायकवाड़ों द्वारा ब्रिटिश सरकार को सौंप दिया गया। हालांकि, जिन क्षेत्रों को सौंपा गया था, उनका बंदोबस्त 1822–23 तक व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया गया था। जब इस क्षेत्र को सौंपा गया, तो उस समय प्रत्यर्थियों के कब्जे में सत्रह गांव थे, लेकिन उन्होंने इस आधार पर औपनिवेशिक बॉम्बे सरकार को अपेक्षित कर देने से इनकार कर दिया कि वह भूमि पूर्व शासक द्वारा उन्हें अनुदान पर प्रदान की गयी थी। श्री विलियमसन द्वारा प्रस्तावित समझौते को भी प्रत्यर्थी द्वारा खारिज कर दिया गया और बॉम्बे सरकार ने अंततः अनेक पट्टे किये जिसमें सरकार के प्रसाद पर्यन्त कसाबाती को कई गांव प्रदान किये गये। प्रत्यर्थी ने एक वाद दायर किया जिसमें उसने दावा किया कि पट्टे के अवसान पर नया पट्टा प्राप्त करने का अधिकारी है। लॉर्ड एटकिन्सन ने प्रिवी काउंसिल की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित अवलोकन किया:

> "ऐसी कार्रवाई के संबंध में कार्रवाई करने से पूर्व, जिसके संबंध में बम्बई सरकार ने इन रिपोर्टों की प्राप्ति पर चारोडी के इस गांव के प्रति निर्देश किया था, यह विचार करना आवश्यक है कि वे कौन से संबंध थे जिसमें कबातिस बाम्बे सरकार के साथ खड़े थे जब उनके राज्यक्षेत्र में कटौती की जा रही थी, और उनके नए संप्रभु के अधिकरणों में प्रवर्तनीय विधिक अधिकार क्या थे, जिसको वह इसके उपरान्त धारण कर रहे थे। इस कटौती से पूर्व वे संबंध जिसमें वह और उनके अधीन जिन कानूनी अधिकारों का वे उपभोग कर रहे थे, वे एक दृष्टि से बिल्कुल अप्रासंगिक हैं। वे नए शासन के तहत कानूनी अधिकारों, यदि कोई हो,को नहीं ले सकते थे जिनका लाभ उन्होंने पुरानी विधि के तहत उठाया था। नई सरकार के प्रति केवल वही कानूनी अधिकार उनको प्राप्त हो सकते थे जिन्हें नई सरकार अभिव्यक्त या विवक्षित करार अथवा विधायन के द्वारा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उनको प्रदान करना चाहती थी। बेशक, इस विवक्षित करार को परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है, जैसे कि नई सरकार का उनके साथ व्यवहार करने का तरीका, जिसे नए संप्रभु ने अपनाया, उनके पुराने अधिकारों की मान्यता, और उनका सम्मान करने के लिए अभिव्यक्त और विवक्षित चुनाव और उसके द्वारा बाध्य होना, और यह है केवल यह निर्धारित करने के उद्देश्य से कि क्या और नए संप्रभु ने कबातिस के इन छूट विरोधी अधिकारों को मान्यता प्रदान किया है, और उनके द्वारा बाध्य होने का चुनाव किया अथवा सहमत हुए, यह कि इन अधिकारों के अस्तित्व, प्रकृति, और सीमा का विचार इस मामले में जांच के लिए प्रासंगिक विषय बन जाते हैं। यह सिद्धांत सुस्थापित है...."

न्यायमूर्ति के विचार में, यदि एक पल के लिए विधायन को भूल जाएं तो यह साबित करने का भार कि बॉम्बे सरकार ने किसी को इतनी सहमति ऐसी सहमति प्रदान की, और यदि ऐसा है, तो इस मामले में प्रत्यर्थी पर किस सीमा तक निर्भर करता है। 1822 में कबातिस श्री विलियम्सन के इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने की स्थिति में नहीं थे, भले ही उन्होंने इसका चुनाव न किया हो। वे अधिकार मुकदमेबाजी के सभी उद्देश्यों के लिए समाप्त हो गये थे, और विधि के बिंदु पर उनके पास एकमात्र विकल्प यह था कि उनकी शर्तों को स्वीकार करें अथवा वहां से हट जाएं।

(प्रभाव वर्धित)

641. गायकवाड़ो द्वारा अहमदाबाद राज्यक्षेत्र का औपनिवेशिक सरकार को अभ्यपर्ण दो संप्रभुओं के बीच राज्य का एक कार्य था। राज्यक्षेत्र के अभ्यर्पण हो जाने पर, उनके नए संप्रभु के राज्यक्षेत्र के भीतर नागरिकों के अधिकार, और परिणामस्वरूप नए संप्रभु के नगरपालकीय न्यायालयों में, केवल वही अधिकार थे जिन्हें नए संप्रभु द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता प्रदान की गयी थी। जब तक नव सम्प्रभु नागरिकों के उन अधिकारों को मान्यता न प्रदान करे जो पुरानी शासन प्रणाली में मौजद थे तब तक नगरपालकीय न्यायालय उन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्राचीन अधिकारों का प्रवर्तन नहीं कर सकती थी। इन अधिकारों राज्यक्षेत्र के तहत नागरिकों के संपत्ति संबंधी अधिकार शामिल हैं। नए संप्रभु को नागरिकों के संपत्ति अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए या नहीं, यह एक ऐसा विवाद है जो दो संप्रभु के बीच एक राज्य स्तर पर सुलझाया जाए और नगरपालकीय अदालत ऐसे तर्कों पर सुनवाई नहीं कर सकती है। नए संप्रभु द्वारा पुराने शासन में पहले से मान्यता प्राप्त संपत्ति अधिकारों की मान्यता स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और नए संप्रभु के आचरण से इंगित किया जा सकता है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य से स्थापित हो सकता है। हालांकि, पूर्व शासन में अधिकार के अस्तित्व को साबित करने का भार और नए संप्रभु द्वारा उसकी मान्यता उन पक्षकार पर निर्भर है जो ऐसे अधिकार की मांग करते हैं।

642. लॉर्ड एटकिन्सन जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है उसे इस न्यायालय ने स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त अपना लिया गया है। पूर्व राजशाही शासकों द्वारा उनके राज्यक्षेत्रों का भारत गणराज्य में अभ्यर्पण से पूर्व व्यक्तियों को दिये गये अधिकारों से अनेक विवादों का जन्म हुआ। इस न्यायालय से मांग की गयी कि वह यह निर्धारित करे कि क्या संप्रभुता का राजतंत्र से भारतीय गणतंत्र में परिवर्तन के पश्चात ऐसे अधिकार प्रवर्तनीय थे।

643. **प्रमोद चंद्र देब बनाम उड़ीसा राज्य**[332] में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने बंच रिट याचिकाओं के की सुनवाई की। उन रिट याचिकाओं के तथ्य काफी हद तक एक दूसरे से सादृश्य थे: याचिकाकर्ताओं

---

332 1962 अनुपूरक (1) एस.सी.आर. 405

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ने इन शासकों से पूर्व के शाही शासकों जिन्होंने अपने राज्यक्षेत्र को भारत गणराज्य को सौंप दिया था उनसे कुछ नकद अनुदान अथवा खोरपोश अनुदान प्राप्त किया था। यह प्रश्न उठा कि क्या उड़ीसा राज्य को , केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में, खोर कोष अनुदान प्रदान करने सहित शाही राज्यों के पुराने कानूनों को लागू करने की आवश्यकता थी। मुख्य न्यायाधीश बी पी सिन्हा ने उपरोक्त उल्लिखित प्रिवी काउंसिल के निर्णयों का हवाला देकर संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए कुछ सिद्धांतों को प्रतिपादित किया, यह सिद्धान्त तब लागू होते होंगे जब नए संप्रभु की नगरपालिका अदालतें पूर्व संप्रभु के विधिक शासन वयवस्था से पक्षकारों को प्रोद्भभूत अधिकारों का प्रवर्तन करेंगी:

> "17. जिन प्राधिकारियों ने उपरोक्त की चर्चा की या संदर्भ दिया उनका परीक्षण करने पर निम्नलिखित प्रतिपदाएं प्रकट होती हैं।(1) "राज्य का अधिनियम"किसी राज्य द्वारा उस राज्यक्षेत्र के संबंध में विजय, संधि, अभ्यर्पण या अन्यथा द्वारा सम्प्रभु शक्ति का अधिग्रहण करना है, जो तब तक इस राज्यक्षेत्र के भाग नहीं थे, और यह कहा जा सकता है कि वह किसी विशिष्ट तारीख को घटित हुई है, यदि उस पर ऐसे अधिग्रहण की उद्घोषणा या अन्य लोक घोषणा की गयी होती।
>
> (2) किंतु एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, पूर्ण प्रभुसत्ता प्राप्त करने में कई वर्ष लग सकतें हैं।
>
> ...
>
> (5) चूंकि राज्य का कार्य अपने प्राधिकार को नगरपालिका की विधि से नहीं प्राप्त करती है बल्कि विधि से इतर या सुप्रा–कानूनी साधनों से प्राप्त करती है, नगरपालिका के न्यायालयों के पास किसी अधिनियम की औचित्य या वैधता की जांच करने की कोई शक्ति नहीं है जो राज्य के कार्यके दायरे में आते हैं।"(6) क्या राज्य के कार्य में सार्वजनिक या निजी अधिकारों का संदर्भ दिया गया है, परिणाम समान है, अर्थात्, वह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह है कि यह संव्यवहार के सही और गलत की जांच करने की अधिकारिता रखने और उस पर निर्णय देने, यदि कोई हो, से परे है।यह अवधारणा किया जा सकत है कि नव अधिग्रहित क्षेत्र के पूर्वविधियां प्रवर्तित रहें, और यह कि अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार नागरिकों के निजी संपत्ति का नव संप्रभु द्वारा सम्मान किया जाना चाहिए,लेकिन नगरपालकीय न्यायालयों के पास इस तरह के अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को प्रवर्तित करने की अधिकारिता नहीं है।

(8). नए संप्रभु द्वारा मान्यता प्राप्त नगरपालिका न्यायालयों के पास केवल ऐसे अधिकारों की जांच करने और अभिनिश्चित करने की शक्ति और अधिकारिता है, जैसा कि नव संप्रभु ने विधायन, करार या अन्यथा द्वारा अभिस्वीकृत अथवा मान्यता प्रदान किया है।

(9) ऐसा करार या मान्यता या तो अभिव्यक्त हो सकती है या उन परिस्थितियों और साक्ष्य से, जो नए प्रभुत्व संपन्न द्वारा उन अधिकारों के बारे में कार्यवाही करने के ढंग से प्रकट होते हैं, विवक्षित हो सकती है। इसलिए, नगर न्यायालयों के पास यह पता लगाने का अधिकारिता है कि क्या नव संप्रभु ने प्रशनगत अधिकारों को यथापूर्वोक्त अभिवयक्त या विवक्षित रूप में मान्यता प्रदान किया है अथवा नहीं दिया है अथवा अभिस्वीकृत किया है। (1) नए संप्रभु के विरुद्ध दावा किए गए अधिकारों के अस्तित्व के बारे में विवाद की स्थिति में, सबूत का भार दावेदार पर होता है कि वह यह स्थापित करे कि नव संप्रभु ने प्रश्नगत अधिकार को मान्यता प्रदान किया है अथवा अभिस्वीकृत किया है।

(प्रभाव वर्धित)

644. संविधान पीठ ने प्रिवी काउंसिल द्वारा प्रतिपादित पूर्व कानूनी सिद्धांतों को स्वीकार किया जिसमें राज्य के कार्य के विधिक परिणाम को पूर्व शासन व्यवस्था ने मान्यता प्रदान की है। यह मायने नहीं रखता है कि कार्य सार्वजनिक या निजी अधिकारों से संबंधित हैं। नगरपालिका अदालतें केवल उन अधिकारों और दायित्वों को मान्यता प्रदान करेंगी जिन्हें नए संप्रभु द्वारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से साक्ष्य द्वारा स्थापित किया गया है। नए संप्रभु की नगरपालिका अदालतें इस बात की जांच कर सकती हैं कि क्या नए संप्रभु ने पूर्व शासन के तहत मौजूद अधिकारों और दायित्वों को अभिव्यक्त या विवक्षित रूप रूप में मान्यता प्रदान की है। हालांकि, ऐसे अधिकारों और दायित्वों के अस्तित्व और मान्यता को स्थापित करने का भार उन पर है जो इसका दावा करते हैं।

645. यह सिद्धान्त **प्रोमोद चंद्र देब** के मामले में प्रतिपादित किया गया है और सात न्यायाधीशों की पीठ ने **गुजरात राज्य बनाम वोरा फिडाली बदरुद्दीन मिट्ठरवाला**[333] के मामले इसकी पुष्ट की। सात–न्यायाधीश पीठ ने इस तर्क को भी स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया कि एक पूर्व संप्रभु द्वारा दिया गया अनुदान केवल शून्यकरणीय है जब तक कि नए संप्रभु द्वारा स्पष्ट रूप से निरस्त नहीं किया जाता है। अदालत ने कहा कि इस तरह के अनुदान नए संप्रभु की नगरपालिका अदालत द्वारा लागू नहीं किए जाते हैं जब तक कि नए संप्रभु द्वारा अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से मान्यता नहीं प्रदान की जाती है। **पीमा चिबर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**[334] **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम सुधांशु मजूमदार** [335]ने भी इन सिद्धान्तों की पुष्टि की है।

646. इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य और तर्कों ने चार अलग–अलग विधिक व्यवस्था को रद्द कर दिया है। कार्रवाई के कानूनी परिणाम, मालिकाना अधिकार, या पूर्व विधिक व्यस्था में जो क्षति हुई जो विधिक

---

333 (1964) 6 एस.सी.आर. 461
334 (1966) 1 एस.सी.आर. 357
335 (1971) 3 एस.सी.आर. 265

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिणाम निकलें हैं उनको यह न्यायालय प्रवर्तित कर सकती है यदि उन्हें बाद के संप्रभुों द्वारा अभिवयक्त या विवक्षित रूप से मान्यता प्रदान की जाती है। इस तरह की मान्यता के अभाव में, संप्रभुता का परिवर्तन करना राज्य का एक कार्य है और यह न्यायालय उत्तरवर्ती संप्रभु को ऐतिहासिक गलतियों को पहचानकर और उपचारित करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है।

पक्षकारों के दावाकृत प्राचीन अधिकार

647. 12 वीं शताब्दी के पूर्व विवादित संपत्ति के नीचे प्राचीन अंतर्निहित संरचना की प्रकृति पर वर्तमान कार्यवाही में बहुत विवाद रहा है। श्री वैद्यनाथन ने कहा कि संरचना एक हिंदू मंदिर का प्रतिनिधित्व करती है। यह आग्रह किया गया था कि विवादित संपत्ति के नीचे एक प्राचीन हिंदू मंदिर का अस्तित्व इस बात का सबूत है कि भूमि के का स्वत्व वाद 5 में वादी देवताओं में निहित है, 12 वीं शताब्दी से जो स्वत्व है वह विधिक रूप से प्रवर्तनीय है। इस कथन को स्वीकार करने के लिए, यह प्रदर्शित करने की आवश्यकता होगी कि उस क्षेत्र के लिए प्रत्येक उत्तरवर्ती संप्रभु , जिसके भीतर विवादित भूमि आती है उसको उन्होंने वाद 5 में वादी देवताओं के स्वत्व को अभिवयक्त या विवक्षित रूप से मान्यता प्रदान की गई है। इसे स्थापित करने का भार वाद 5 में वादी पर ही होगा।

648. ए.एस.आई. की रिपोर्ट के अवलम्बन के अलावा किसी भी तर्क को नहीं प्रस्तुत किया गया। वाद 5 के वादी द्वारा इस तर्क का समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था भले ही अंतर्निहित संरचना को मंदिर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

माना गया, फिर भी इससे उत्पन्न अधिकारों को उत्तरवर्ती संप्रभु द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। विवादित संपत्ति के नीचे संरचना का मात्र अस्तित्व आज स्वत्व का विधिक रूप से प्रवर्तनीय दावे को जन्म नहीं दे सकता है। बारहवीं शताब्दी में प्राचीन संरचना के निर्माण के बाद, मस्जिद के निर्माण से चार सौ साल पहले हस्तक्षेप की अवधि मौजूद है। विधिक वयवस्था की सतत अस्तित्व या विधिक वयवस्था में परिवर्तन संबंधी किसी भी प्रकार का साक्ष्य नहीं दिया गया है। सभी पक्षकारों ने यह स्वीकार किया है कि किसी समय मुग़ल साम्राज्य के शासन काल में विवादित स्थल पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया था। यहां तक कि इस न्यायालय ने भी यह माना कि अंतर्निहित संरचना वास्तव में एक हिंदू मंदिर थी, जिसका स्वत्व विवादित स्थल के वादी देवताओं में था। वाद 5 में वादी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से यह स्थापित नहीं होता है कि जब विधिक व्यवस्था मुगल सम्प्रभु में परिवर्तित हुयी तो ऐसे अधिकारों को मान्यता प्रदान की गयी थी।

649. उन राज्यक्षेत्रों पर मुगल विजय दो संप्रभुओं के बीच एक बहुदेशीय कार्य था जिसके बाद, चूंकि पूर्व अधिकारों को नए संप्रभु द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की गयी इसलिए विवादित संपत्ति का कोई भी दावा संप्रभु में परिवर्तन के आधार पर प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है। यह न्यायालय केवल बारहवीं शताब्दी में एक अंतर्निहित मंदिर के अस्तित्व के आधार पर विवादित संपत्ति के अधिकारों का लागू या प्रवर्तन नहीं कर सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

650. विधिक व्यवस्था में अगला परिवर्तन 13 फरवरी, 1856 को ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अवध के विलय के साथ हुआ जो बाद में ब्रिटिश प्रभुत्व की औपनिवेशिक सरकार बन गई। 1856 और भारतीय स्वतंत्रता के बीच और उससे बाद की घटनाओं को इस निर्णय के विभिन्न हिस्सों में सविस्तार विचारित किया जाएगा और हमें इस समय इसको बताने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, ब्रिटिश संप्रभु द्वारा अधिकारों की मान्यता के संबंध में कुछ तथ्यात्मक पहलुओं को उल्लिखित किया जा सकता है। ब्रिटिश संप्रभु द्वारा अवध के विलय पर, संप्रभु द्वारा न तो हिंदू रामभक्तों को पूजा करने से रोकने की और न ही मुस्लिम अधिवासियों को विवादित संपत्ति पर नमाज अदा करने से रोकने की कार्यवाही की गयी। 15 मार्च 1858 को, लॉर्ड कैनिंग की उद्घोषणा द्वारा, कुछ संपत्ति को छोड़कर, सभी संपत्ति को ब्रिटिश संप्रभु द्वारा जब्त कर लिया गया था और विवादित संपत्ति को नजूल भूमि (अर्थात भूमि जो जब्त कर सरकार में निहित कर ली गयी)। हालांकि, ब्रिटिश सरकार का कार्य विवादित स्थल पर दोनों धार्मिक समुदायों की प्रथाओं और प्रार्थना का सम्मान करना था। 1858 में रेलिंग का निर्माण इसलिए किया कि दोनों समुदायों को विभाजित कर कानून और व्यवस्था बनाया जा सके जो दोनों समुदायों की पूजा पर आधारित है। यदि विवादित स्थल पर कोई समुदाय मौजूद नहीं था, तो दोनों समुदायों को अलग करने की आवश्यकता का कोई प्रश्न कभी उत्पन्न नहीं हो सकता था। हालांकि हिन्दुओं ने आंतरिक आंगन से हटाने जाने के विरूद्ध निरंतर संघर्ष किया। सन् 1877 में ब्रिटिश सरकार ने बाहरी आंगन के उत्तरी भाग में एक और द्वार खोला जिसे हिंदुओं को नियंत्रण और प्रबंध के लिए दिया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

651. ब्रिटिश संप्रभु और भारत गणराज्य के बीच विधिक वयवस्था के परिवर्तन के संबंध में एक सतत रेखा विद्यमान है। संविधान का अनुच्छेद 372 ब्रिटिश संप्रभु और स्वतंत्र भारत के बीच विधिक निरंतरता को वयक्त करता है। अनुच्छेद 372 (1) में कहा गया है:

> (1) अनुच्छेद 395 में निर्दिष्ट अधिनियमितियों के इस संविधान द्वारा निरसन पर भी, किंतु इस संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधि वहां तक प्रवृत्त बनी रहेंगी जब तक सक्षम विधान–मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरसित या संशोधित नहीं कर दी जाती हैं।
>
> (प्रभाव वर्धित)

संविधान के अनुच्छेद 296 में कहा गया है:

> "इसके पश्चात् यथा उपबंधित के अधीन रहते हुए, भारत के राज्यक्षेत्र में ऐसी कोई संपत्ति जो यदि यह संविधान संविधान में नहीं आया होता तो राजगामी या व्यपगत होने से या अधिकारवान स्वामी के आभाव में स्वामीविहीन होने से, यथास्थिति, उसकी उनकी को या किसी दिशी राजा के शासक को प्रोद्भूत हुई होती,यदि वह सम्पत्ति किसी राज्य में स्थित है तो ऐसे राज्य में और किसी अन्य दशा में संघ में निहित होगी।"

संविधान में यह अनुच्छेद ब्रिटिश संप्रभु और भारत गणराज्य के बीच एक विधिक निरंतरता का साक्ष्य देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत गणराज्य का कार्य सार्वजनिक सम्पत्ति के उन दावों को बनाये रखना था जो ब्रिटिशा संप्रभु के दौरान मौजूद थे। यह नहीं कहा जा सकता था कि

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्वतंत्रता प्राप्ति पर नागरिकों के बीच पूर्व विद्यमान सभी निजी परस्पर समाप्त हो गये थे। उनको मान्यता तब तक नहीं प्रदान नहीं किया गया जब राज्य के कृत्यों द्वारा संशोधित, खण्ड़ित नहीं कर दिया जाता है। इसलिए वर्तमान उद्देश्यों के लिए अभिव्यक्त और विवक्षित मान्यता प्रदान किया जाना चाहिए जिसको स्वतंत्र भारत संप्रभु ने निजी संपत्ति पर उन अधिकारों को मान्यता प्रदान किया क्योंकि वे ब्रिटिश संप्रभु में विद्यमान थे। इसलिए वर्तमान विवाद में औपनिवेशिक शासन के दौरान पक्षकारों के अधिकार को आज इस न्यायालय द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है।

652. आज न्यायालय उन दावों को ग्रहण नहीं कर सकती है जो हिन्दू पूजा स्थलों के विरूद्ध मुगल शासकों के कार्यों से उत्पन्न हुए थे। प्राचीन शासकों के कार्यों के विरूद्ध कोई भी व्यक्ति विधि का आश्रय नहीं ले सकता है। ऐतिहास में जो कुछ हुआ उसको तय करना नैतिक रूप से गलत है और आज भी इस पर जोरदार बहस हो सकती है। हालांकि संविधान का अँगीकरण एक ऐसा ऐतिहासिक क्षण है जहां पर हम भारत के लोग विचार, धर्म, रंग अथवा हमारे पूर्वज कब इस जमीन पर आये उन सब के आधार पर अधिकारों और दायित्वों के निर्धारण से परे चले गये और विधि के शासन को अपना लिया। विधि के शासन के तहत उन निजी दावों को न्यायनिर्णीत कर सकती है जिनकों ब्रिटिश संप्रभु ने अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से मान्यता प्रदान किया था और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद छेड़ा नहीं गया। विवादित संपत्ति के संबंध में यह स्पष्ट है कि 1856 में जब अवध का विलय हुआ तब ब्रिटिश संप्रभु ने विवादित संपत्ति पर हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों को मान्यता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

एवं अनुज्ञा प्रदान की। जिसकी परिणति यह हुई कि दोनों समुदायों के बीच कानून व्यवस्था बनाये रखने के लिए रेलिंग का निर्माण किया गया। अवध के विलय के बाद पक्षकारों के कार्य वर्तमान वाद में पक्षकारों के सतत् विधिक अधिकारों का गठन करते हैं और यह वह कार्य है जिन्हें इस न्यायालय को प्रस्तुत विवाद के निपटारे के लिए मूल्यांकन करना चाहिए।

न्याय, साम्या और सद्विवेक

653. वाद 4 में वादियों की ओर से उपस्थित विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने यह तर्क दिया कि वर्तमान मामले में लागू विधि की मूल विषयवस्तु न्याय, साम्य और सद्विवेक पर आधारित है डॉ. धवन ने तर्क दिया कि वर्तमान विवाद के कुछ तथ्य एक वैधानिक ढांचे के अंतर्गत आते हैं, सकारात्मक कानून में कुछ महत्वपूर्ण रिक्तियाँ हैं जिन्हें न्याय, साम्य और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू करके भरा जाना चाहिए।

654. इस प्राक्कथन का अर्थ यह है कि न्यायालय को वर्तमान विवाद की उत्पत्ति पर ध्यान देना चाहिए जो चार अलग–अलग विधिक शासकों– विक्रमादित्य, मुगल, ब्रिटिश और अब, स्वतंत्र भारत तक विस्तृत है। पक्षों के प्रस्तुतिकरण का आकलन करने और अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए और न्याय की आवश्यकताओं के लिए मामले की विशेषताओं पर विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है। यह वाद विभिन्न विरोधी हितों के अलावा विधि, धर्म और विधि और विजय के नियमों पर आधारित है। इन्हें हमेशा वर्तमान तथ्यों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर लागू उपलब्ध वैधानिक ढांचे के अन्तर्गत नहीं समझा जा सकता है। इससे न्यायालय की भूमिका और भी अधिक संवेदनशील हो जाती है क्योंकि उसे न्याय, साम्या और सद्विवेक के अनुतोष प्रदान करना होता है।

655. न्याय, साम्य और सद्विवेक की अवधारणा पर चर्चा से 'कुछ प्रश्न उत्पन्न होते है: जैसे (i) कैसे इस अवधारणा का उद्भव हुआ? (ii) इसके लिए क्या अपरिहार्य है? और (iii) इस अवधारणा पर भारतीयों का अनुभव क्या था? **'न्याय, साम्य और सद्विवेक'** शीर्षक वाले एक निबंध में, डंकन डेरेट के द्वारा उन कठिनाइयों के बारें में उल्लेख किया गया है जो एक अवधारणा पर चर्चा करती हैं जिसकी आकृति अस्पष्ट हैं:

> " इसके प्रारंभ में ही तर्क दिया जा सकता है कि "न्याय, साम्या और सद्विवेक" एक अच्छा, सहज सूत्र है जिसका अर्थ उतना ही अधिक या उतना ही कम है जितना कि उस समय के न्यायाधीशों द्वारा सावधानी बरतने से इसका तात्पर्य है। एक व्यक्ति किसी के विचार करने की गतिविधि को सीमित कर सकता है कि कैसे न्यायाधीशों ने वास्तव में इस पर विचार करने की दिशानिर्देश निर्धारित किए। परिणाम स्थायी मूल्य का नहीं होगा, क्योंकि सार्वजनिक नीति की अवधारणा समय और स्थानों के साथ परिवर्तित होती रहती है, इसलिए पूर्ववर्ती अवधारणायें बहुत कम उपयोगी होती है जब इन वाक्यांशों का उपयोग किया जाता है। आइए हम एक बार इस बात पर सहमत हो जाएं कि 'अवशिष्टता' या 'असंगतता' के संदर्भों के न्यायिक अनुप्रयोगों की परिसीमन है। बहुत कम मामले एक वास्तविक जिज्ञासा दिखाते हैं कि वाक्यांश का क्या अर्थ है, कई अभिव्यक्तियाँ असतर्कता के कारण उत्पन्न हैं, और परिणामस्वरूप कोई प्राधिकरण नहीं हैं। लेकिन सूत्र के कुछ प्रतिनिधिक अनुप्रयोगों के सर्वेक्षण, और इसके असाधारण इतिहास की समीक्षा पर, मामले पर विचार करते हुए उस परिप्रेक्ष्य में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रखने में मदद कर सकती है, कि विकासशील देशों की विधिक प्रणालियों के विकास में अभी भी इसकी जीवंत भूमिका है।[336]

रोमन विधि की उत्पत्ति और साम्या

656. यह एक गलत अवधारणा है कि 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' शब्द की उत्पत्ति आग्ल विधि से हुई है। सर जॉर्ज रेंकिन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि न्याय, साम्या और सद्विवेक आग्ल विधि में कहीं नहीं लिखा गया है। [337] रोमन विधि शास्त्र के अध्ययन के अलावा, "जो यूरोपीय महाद्वीप के लिए सामान्य था'' और सोलहवीं शताब्दी के बाद में अंग्रेजों के दिमाग में इस अवधारणा की उत्पत्ति हुई। अरस्तु ने अपनी सेमिनल वर्क ''इथिक्स''[338] में साम्या और न्याय के मध्य के सम्बन्ध के बारें में विचार करता है। यद्यपि साम्या सख्त न्याय के समान नहीं है, फिर भी यह एक प्रकार का न्याय है। उसके लिए, जहां लिखित विधि में मामले की विशेष परिस्थितियों को संबोधित करने के लिए कुछ भी नहीं है और वास्तव में उचित परिणाम, एक असमानता के (अर्थात साम्य या निष्पक्षता) चरणों को इंगित करता है। लिखित कानून का पालन करने से अन्यायपूर्ण परिणाम हो सकते है। इस दृष्टिकोण में, जहां कुछ कारक एक मामले के तथ्यों को सार्वजनिक नीति जैसे विशेष मंच पर रखते हैं, कि आमतौर पर व्यक्त कानूनों के सख्त कानूनी परिणाम को लागू करना अन्यायपूर्ण होगा। परिणामतः, लिखित विधि से प्रस्थान (अरस्तु के अनुसार) अनुज्ञेय है इस प्रस्थान ने कुछ विचारों को

---

336 Dr J Duncan M Derrett, Justice Equity and Good Conscience in Changing Law in Developing Countries (JND Anderson ed.) at page 120

337 Sir George Rankin, The Personal Law in British India, Sir George Birdwood Memorial Lecture on 21 February, 1941.

338 Aristotle, Ethics, JAK Thomson (trans) (London, Penguin, 1976) at pages 198–200.

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उठाने के विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति की, जो एक न्यायसंगत और न्यायसंगत निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए एक तथ्यात्मक ढ़ाचें को सूचित करते हैं। यह धारणा साम्या की पश्चिमी विधिक परंपरा के लिए प्रेरणा और आधार थी।[339]

657. डेरेट के दस्तावेज यह है कि उपरोक्त धारणा रोमन के दो प्रकार के प्रस्तावों से प्रभावित हैः (।) साम्या विधि की व्याख्या में एक सहयोगी के रूप पस्तुत किया गया जो उसे सही, संशोधित करने और यदि आवश्यक हो, तो इसे संशोधित करना चाहिए और (।।) लिखित या अन्यथा अभिनिश्चायक विधि की कमी को सही करने के लिए। अन्त में, साम्या की भूमिका निम्नलिखित अवधारित की गई है।

> "यदि हम न्याय को साम्या के सहसंबंधी के रूप में देखते हैं, तो न्याय में सकारात्मक कानून होते हैं, जो लिखित और अलिखित स्रोतों, विधियों और रीति–रिवाजों से बने होते हैं, इनकी प्रयोज्यता या तो स्वयं सकारात्मक कानून या प्राकृतिक साम्या द्वारा निर्धारित की जाती है, यह कहना है, मामले का प्राकृतिक कारण है। लेकिन दूसरे अर्थ में साम्या न्याय की तस्वीर के रूप में सामने आती है। इसके जोड़े के बिना इसका उपयोग नही किया जा सकता है, साम्या का तात्पर्य (।) जो वाद की परिस्थिती को संसोधित करता है। कठोर कानून या यथार्थ विधि, विधि के शब्द, यह सब अचानक हो सकता है, यदि कभी, साम्या की सहायता के बिना आगे जाने पर। इस प्रकार, इसके अर्थ में (।) साम्या न्याय से बधां हुआ है, और बाह्य स्रोतो के द्वारा इसकी परीभाषा का पता चलता है। इसके दूशरे अर्थ में, स्पष्ट विधि के द्वारा छोड़े अन्तरालों को साम्या के द्वारा भरा जाता है। विधि द्वारा आच्छादित वादों के लिए यह लिखित विधि या अलिखित विधि के परिपूरक है, उदाहरण के लिए, इसे विधि के द्वारा कई शब्दों व्याख्या की गई है। अर्थात (ii) साम्या विधि का एक

---

339 Max Hamburger, Morals and Law: The Growth of Aristotle's Legal Theory (1965).

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

महत्वपूर्ण स्रोत है, विशेष रूप से विकसित दशों में है। साम्या लिखित या अलिखित दोनों के अर्थ में है।"[340]

658. कानून और न्याय के बीच सहसंबंध परिभाषित कारक था–एक अर्थ में, साम्या लागू विधि को संशोधित करती है या अदालत के समक्ष न्याय को प्रदान करने के लिए विशेष परिस्थितियों को संबोधित करने के लिए इसकी उपयुक्तता सुनिश्चित करती है। मामले की परिस्थितियों के लिए सामान्य नियमों का संशोधन साम्या द्वारा निर्देशित है जबकि इसके अलावा सकारात्मक कानून के अपमान या निषेध में नहीं है। यह सकारात्मक कानून का समर्थन करता है लेकिन इसे दबाता नहीं है। एक दूसरे अर्थ में, जहां लागू विधिक सिद्धांतों के रूप में सकारात्मक कानून मौन है, साम्या कानून के स्रोत के रूप में एक प्राथमिक भूमिका निभाती है। साम्या सकारात्मक कानून में मौजूद अंतरालों को भरने के लिए एक कदम है। इस प्रकार, जहां कोई सकारात्मक कानून समझ में नहीं आता है वहां अदालतें साम्या को एक स्रोत के रूप में देखती हैं। इसके अतिरिक्त, डेरेट ने यह भी उल्लेख किया है कि यहां एक तीसरा अर्थ है जिसमें साम्या को महत्व दिया जाता है –जहां स्थापित राजनीतिक प्राधिकरण को हटा दिया जाता है या संदेह में है और विधि के औपचारिक स्रोत संदेह में हैं, न्यायिक पद की प्रकृति के अनुसार साम्या के अनुसरण में निर्णय की आवश्यकता होती है. यह विधवाओं और अनाथों से संबंधित निर्णयों और व्यापारिक कानून का दायरे में स्पष्ट किया गया था।

---

340 Dr J Duncan M Derrett, Justice Equity and Good Conscience in Changing Law in Developing Countries (JND Anderson ed.) at page 120

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

659. उपरोक्त उल्लेखित तीनों अर्थों में, साम्या ने न्यायाधीशों को कानून के सामान्य सिद्धांतों और उनके समक्ष विशेष परिस्थितियों को जोड़ने का विवेक प्रदान किया। हालांकि,उनके विवेक की सीमा कोई सीमा नही थी। ड़ेरेट ने उसका उचित उल्लेख किया:

> "इस क्षेत्राधिकार के लिए सीमा क्या थी? क्या इसका मतलब यह था कि न्यायाधीश ने उनका अनुसरण किया और उसकी कल्पना के अनुसार निर्णय दिया? नहीं.... यह बार–बार जोर दिया जाता है कि न्यायाधीश कानून के अनुरूप प्रावधानों से परामर्श करता है; न्यायिक सूक्ति, विशेष रूप से विधि के ढ़ाचे में निहित है, यद्यपि ये वास्तव में कानून या साम्या के लिखित स्रोतों में इस तरह के मामले में लागू नहीं किए गए हैं; और न्यायविदों का लेखन विधिक सोच के अन्तर्गत है।
>
> पहला कदम यह देखने के लिए होगा कि क्या संहिता के अन्य प्रावधान समस्या पर कोई सामान्य प्रकाश डालते हैं। इसका तात्पर्य लिखित विधि की व्याख्या से है... इस प्रकार बहुत सारे मामलों में साम्या के कानून का परामर्श शामिल है... [341]।"

इस अर्थ में, सकारात्मक विधि और समान्य सिद्धांत, सकारात्मक विधि के लिए उपयोगी मार्गदर्शक के रूप में यह सुनिश्चित करने का कार्य करते हैं कि साम्या न्यायाधीशों के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रभावी बनाने की पद्धति नहीं है। जहां कानून के एक स्रोत को प्रस्तुत करने के लिए सकारात्मक कानून मौन है और साम्या विधि के स्रोत्र के रूप में प्रस्तुत करता है , इसकी विषयवस्तु विधि के विभिन्न प्रावधानों के अनुरूप है जिसे एक उपयोगी मार्गदर्शिका के रूप प्रस्तुत किया जाता हैं और यह सुनिश्चित करता है कि

---

341 Dr J Duncan M Derrett, Justice Equity and Good Conscience in Changing Law in Developing Countries (JND Anderson ed.) at page 123

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साम्या उन मूल्यों द्वारा रचित एक विस्तृत कानूनी ढांचे के तहत काम करती है जो समग्र रूप से विधिक प्रणाली की वैधता को रेखांकित करता हैं।

660. भारत में 'न्याय, साम्या और सद्विवेक का प्रयोग बॉम्बे में औपनिवेशिक शासन के साथ प्रारम्भ हुआ। चूंकि बंबई ने एक वाणिज्यिक केंद्र के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की थी, इसलिए भारत में और अंग्रेजी एडमिरलिटी न्यायालयों में सामान्य विधि की अपर्याप्तता से बचने के लिए व्यापारिक कानून की एक प्रणाली की आवश्यकता पैदा हुई। अतः, 1669 में नियुक्त कंपनी के न्यायाधीशों को सद्विवेक के अनुसार न्यायनिर्णय करना अपेक्षित था।[342] अंततः (i) 9 अगस्त, 1683 के रॉयल चार्टरों ने बम्बई में वाणिज्यिक और एडमिरलिटी न्यायालयों की स्थापना की; और (ii)1683 के रॉयल चार्टरों के द्वारा 30 दिसंबर, 1687 में मद्रास नगर पालिका और मेयर न्यायालय स्थापित किया। बंबई न्यायालय क्षेत्र को साम्यता और सद्विवेक के नियमों के अनुसार, और व्यापारियों की विधियों और रीति–रिवाजों के अनुसार, न्याय निर्णय करने की अपेक्षा थी! मद्रास के मेयर का न्यायालय साम्या और सद्विवेक के अनुसार निदेशित किया जाना था

661. 5 जुलाई, 1781 को गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा प्रांतों के दीवानी न्यायालय में न्याय प्रशासन के लिए विनियमन पारित किए। उक्त विनियमों के विनियमन 60 में अवधारित किया गया है:

---

342 B Lindsay, British Justice in India, the University of Toronto Law Journal, Vol. 1, No. 2 (1936), at page 344

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "सभी मामलों में, मोफस्सिल दीवानी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर, जिसके लिए कोई विनिर्दिष्ट निदेश नहीं दिए गए हैं और उसके संबद्ध न्यायाधीश न्याय, ईक्विटी और अच्छे विवेक के अनुसार कार्य करते हैं।"

सदर न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए इसी प्रकार का उपबंध विनियम 93 में किया गया था। हालांकि ये प्रावधान प्रकृति में प्रक्रियात्मक थे , लेकिन उन्हें भारतीय प्रशासनिक और विधिक ढांचे की अवधारणा के परिपेक्ष्य में अकिंत किया गया था।

1832 के विनियमन VII के विनियमन 9 निम्नानुसार हैः

> "जहां पक्षकारों की विभिन्न अवधारणायें होती हैं वहाँ धर्मों की विधियां उस संपत्ति के किसी पक्षकार को वंचित नहीं करेगी जो ऐसी विधियों के प्रवर्तन के लिए वह हकदार होगा। ऐसे सभी मामलों में निर्णय न्याय, साम्या और सद्विवेक के सिद्धांतों द्वारा शासित होंगे, यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, हालांकि, ये प्रावधान जैसे विदेशी विधि या अग्रेजी विधि के परिचय को न्यायसंगत नही माने जोयेगें या इन सिद्धान्तों के ऐसे वादो के आवेदनो को स्वीकृत नहीं किया जा सकता।"

इसके साथ–साथ यह वह विधि थी जो पक्षकारों के व्यक्तिगत विधि के प्रयोग के लिए बनाई गयी थी। उदाहरण के लिए, 1781 में ही, संसद में अधिनियम, 1781 पारित किया और धारा 17 जिसमें यह निर्धारित किया गया था कि उच्चतम न्यायालय को कलकत्ता के निवासियों के विरूद्ध सभी मुकदमों को सुनने की शक्ति होनी चाहिए:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "बशर्ते यह कि भूमि, किराया और वस्तुओं का उत्तराधिकार और इस तरह के सभी मामलों का पक्षकारों के मध्य संविदा और निपटारा की विधि और मुश्लिमों के द्वारा उसका प्रयोग मुश्लिमों के मामलें में निर्धारित किया जायेगा और गैन्टूस के मामलें में, गैन्टूस की विधि का प्रयोग किया जायेगा और जहां केवल एक पक्षकार विधि और प्रतिवादी के उपयोग के मामलें मुश्लिम या गेंटू विधि का प्रयोग होगा''[343]

वारेन हेस्टिंग्स द्वारा तैयार किए गए न्याय के प्रशासन की योजना में दो मुख्य लक्षण थे: जिसमें दीवानी और अपराधी दोनों प्रकार के अधीनस्थ न्यायालयों के पुरःस्थापन द्वारा विकेन्द्रीकरण करने के लिए था। दूसरा यह था कि अपने निजी कानूनों और अपने घरेलू संबंधों के क्षेत्र में हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए आरक्षण था।

662. 1850 के दशक तक न्यायाधीशों ने हिन्दू व्यक्तिगत विधि और मुस्लिम व्यक्तिगत विधि का सहारा लेकर आस्था और धर्म के मामलों का विनिश्चय किया, जहां यथार्थ उपबंध निश्चित नहीं थे वहाँ न्यायाधीशों से यह आश्वासन अपेक्षित था कि उनके विनिश्चय प्रत्येक मामले में न्याय की आवश्यकताओं के अनुरूप हों और इसके लिए, वे 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' के तरीके को अपनाते थे।

अवधारणा और अंग्रेजी कानून के बीच संयोजन

---

343 See also Article 27 of the Plan of 1772 which reads: —That in all suits regarding inheritance, marriage and caste and other religious usages and institutions, the laws of the Koran with respect to Mahomedans and those of the Shaster with respect to Gentoos shall be invariably adhered to. On all such occasions the Molavies shall respectively attend to expound the law and they shall sign the report and assist in passing the decree.॥ See also Section 15 of Regulation IV of the Cornwalliis Code of 1793.

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

663. भारतीय विधिक प्रणाली में न्याय, साम्या और सद्विवेक की शुरुआत के साथ ही धीरे–धीरे एक अन्य समानान्तर विकास हुआ–उस शब्द के व्यापक आधारों के बावजूद, जिसने समय–समय पर विभिन्न विधि प्रणालियों के सादृश्य निर्देश अनुज्ञात किया जिससे यह उपधारणा उत्पन्न हुई कि "न्याय, साम्या और सद्विवेक" पद अंग्रेजी विधि का पर्याय था। ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्तियों का विस्तार के साथ न्याय प्रशासन की शक्ति की कंपनी में निहित थी। एमसी स्टेलवाड लिखते है:

> "चूंकि प्रीवी काउंसिल के राज्य परिनिर्धारण और विजय के द्वारा कंपनी का राज्यक्षेत्र धीरे–धीरे बड़ा होता चला गया। भारतीय न्यायालयों के निर्णयों से उच्चतम अपीलीय न्यायालय के अनुसार, सभी देशों में निर्णय के नियमों के रूप में अग्रेंजी न्यायशास्त्र के आधारभूत सिद्धांत का प्रभुत्व बढ़ता चला गया। यह स्वाभाविक था, शायद अपरिहार्य था, कि इस न्यायाधिकरण की अध्यक्षता करने वाले प्रख्यात अंग्रेज न्यायाधीशों को उन समस्याओं को हल करने का प्रयास करना चाहिए जो उनके सामने आए जहां भारतीय नियमों या विधियों में उनके स्वविवेक या रचना के द्वारा उन पर कोई प्रावधान लागू नहीं था जो नियम उन पर लागू किए गये और नियम और उक्ति जिसे जीवन पर्यतं के लिए अभ्यस्त करा दिया गया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत से अपीलों में इस अधिकरण के निर्णयों के परिणामस्वरूप भारतीय विधिशास्त्र के निकाय में सामान्य विधि और साम्या के सिद्धांतों का निरन्तर और निरंतर प्रतिपादन किया गया है।"[344]

664. ईस्ट इंडिया कंपनी के गतिविधियों में वृद्धि के साथ, अंग्रेजी विधि में प्रशिक्षित न्यायाधीशों और बैरिस्टरों ने भारतीय न्यायिक प्रणाली को ढाला है। इससे न्यायालयों के समक्ष तथा ब्रिटिश भारत में न्यायालयों के निर्णयों में तर्क–वितर्क दोनों में अंग्रेजी विधि का अधिकाधिक संदर्भ प्राप्त हुआ। प्रख्यात

---

344 MC Setalvad, The Common Law in India (1960) at pages 31-32.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अमेरिकी विद्वान मार्क गैलेन्टर ने अंग्रेजी कानून के साथ इस शब्द के संप्रेषण का दस्तावेज दिया है:

> "विधि के प्राधिकृत निकायों की खोज में, अंग्रेजों ने प्राचीन ग्रंथों और हाल ही की टीकाओं के संग्रह और अनुवाद किए. तथापि, भारतीय विधि आश्चर्यजनक रूप से समावेशी साबित हुई... यह शीघ्र ही माना गया कि *शास्त्र* विधि का केवल एक भाग है और बहुत से मामलों में भारतीयों को रूढ़िगत विधि से कम औपचारिक निकायों द्वारा विनियमित किया जाता है लेकिन यहां तक कि प्रथागत कानून भी पर्याप्त नहीं थे... महसूस किए गए अंतराल को भरने की आवश्यकता अंततः अंग्रेजी कानून के आधार पर वैधानिक संहिताकरण की ओर ले जाने के लिए थी। **लेकिन इस बीच, अदालतों को, 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' के अनुसार मामलों को तय करने का अधिकार प्राप्त हुआ।, ' विदेशी कानून विलग समूहों' के द्वारा शास्त्र और रीति के अंतर को भर दिया गया**। हालांकि अन्य स्रोतों से उपयुक्त नियम बनाने का प्रयास किया गया था, ज्यादातर मामलों में [अंग्रेजी] न्यायाधीश यह मानने के लिए इच्छुक थे कि अंग्रेजी कानून सबसे उपयुक्त था।" [345]
>
> (प्रभाव वर्धित)

665. पक्षकारों के व्यक्तिगत कानूनों के लिए प्रवृत्त विधि और औपनिवेशिक सरकार के द्वारा प्रारम्भ में धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद करने के लिए पंडितों और मौलवियों की गवाहीओं पर अवलम्बं लिया गया था , जिन्हें न्याय निर्णयन के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। अंततः इस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया और संबंधित धार्मिक ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद पर अधिक अवलंम्ब लिया गया। अंततः, औपनिवेशिक सरकार ने अंग्रेजी विधि के साथ किसी

---

345 Marc Galanter, Law and Society in Modern India (1997), at pages 221,222

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शेष कमी को पूरा करने का प्रयास किया।[346] भारत में अपील की अंतिम अदालत के रूप में प्रिवी काउंसिल की स्थापना 1833 में एक और प्रेरणा थी। इन दोनों के परिणामस्वरूप 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' अंग्रेजी विधि में सम्मिलित हुआ। हाँलाकि, वास्तव में, 'न्याय, साम्या और सद्विवेक' शब्द को कानूनी सिद्धांतों के स्रोत के रूप में विधिक प्रणालियों के लिए एक व्यापक परिवर्तन के संदर्भ को अधिकृत करता है जिसे अदालत के समक्ष विशिष्ट मामले पर लागू किया जा सकता है और यह एक उचित परिणाम सुनिश्चित करता है।

666. मुख्य न्यायाधीश बार्नेस पीकाक के द्वारा उपयुक्त कानूनी स्थिती को **ड़ेगूबरी डब्बी बनाम इशन चुन्दर सेन[347] में** अंकित किया गया। जिसमें निम्न अवधारित कया गयाः

> "अब, साम्य, न्याय और सद्विवेक को प्रभाव में लाने के लिए, जहाँ हम उन सिद्धांतों की तलाश में हैं जो हमें मार्गदर्शन करने के लिए हैं? हमें अन्य देशों की विधियों को देखना चाहिए जहां साम्या और न्याय उन सिद्धांतों पर प्रशासित होता है जो सदियों से विकसित हो रहा है, और यह देखना है कि अदालतें समान परिस्थितियों में कैसे कार्य करती हैं; और यदि हम पाते हैं कि जिन नियमों को उन्होंने निर्धारित किया है, वे साम्या के सही सिद्धांतों के अनुसार हैं, तो हम उनका पालन करने में त्रुटि नहीं कर सकते।"

---

346 Sir George Rankin, the Personal Law in British India, Sir George Birdwood Memorial Lecture on 21 February, 1941– —Under the scheme of 1772 the English judges in the civil courts were to get their law form the pandits and moulavies. These —law officers‖ lasted as an institution from 1772 till 1864, then they were abolished, not before their usefulness had come to an end. There was no system of training them, as Sir Thomas Strange was to point out (1825); their qualifications were not always great, nor temptation always absent. It was imperative that the texts should be made available to the judges themselves, and the labours of Jones, Henry Colebrooke, theMacnaghtens, and Strange were directed to the translation of the original authorities and the exposition of their contents

347 (1868) 9 W.R. 230, 232.

भारत में न्यायिक निर्णयों में अवधारणा के विकास की एक वास्तविक समझ पाई गई। **गाथा राम मिस्री बनाम मोहिता कोजिन एटाह डोमूनई**,[348] 348 में वादी ने संवैधानिक अधिकारों की बहाली के लिए मुकदमा दायर किया। उपायुक्त ने अवधारित किया कि यद्यपि एक समारोह हुआ था, लेकिन इसने औपचारिक विवाह नहीं किया गया और ना ही कोई कारण बताया गया था और इसलिए, मामले को रिमांड पर लिया गया था। इस निर्देश के अतिरिक्त्, न्यायमूर्ति डब्ल्यू मार्बीबी ने संवैधानिक संबंधों की बहाली के एक डिक्री की प्रवर्तनीयता के संबंध में एक अतिरिक्त अवलोकन किया:

> "परंतु निश्चित रूप से, जब हम इंग्लैंड की विधि को एक मार्गदर्शक के रूप में देखते हैं, **तो यह वह विधि है जहां यह विधि समता और न्यायशास्त्र के सामान्य सिद्धांतों के साथ सामंजस्य रखती है कि जँहा वह असाधरण न हो वहाँ हमें उसे अंगीकार करना चाहिए। यह कि अंग्रेजी कानून, दाम्पत्य अधिकारों को लागू करने के विषय पर, अपवाद है**, मेरे पास संदेह का कोई कारण नहीं है... इसलिए, यह मुझे प्रतीत होता है, कि यदि हम इसे रोक सकते है कि एक अदालत असीमित जुर्माना और कारावास द्वारा दाम्पतय कर्तव्यों के निरंतर प्रदर्शन को लागू कर सकती है, तो **हमें इंग्लैंड के चर्च के कानून को छोड़कर, इस देश कि विधि को पूरे सभ्य दुनिया कि विधि के विरोध में रखना चाहिए।** (प्रभाव वर्धित)

न्यायालय ने यह स्पष्टिकरण दिया कि यद्यपि जहाँ अग्रेंजी विधि के मार्गदर्शक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है पहला स्तर यह है कि क्या इसे सामान्य

---

348 (1875) 23 W.R. 179

<u>*उद्घोषणा*</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साम्या और न्याय के सिद्धान्तों के द्वारा पुष्टि किया जाये। न्यायालय ने यह माना है कि दाम्पत्य अधिकारों की माँग अथवा जुर्मानों का दर्द और कारावास इंग्लैण्ड की विधि के अनुरूप है, न्यायालय इसे स्वीकार्य करने के लिए बाध्य नहीं है जहाँ सभ्य विधिक व्यवस्था के शाषित सिद्धान्तों के रूप इंगित करते है कि इसे लागू करना न्याय, साम्या और सद्विवेक के सिद्धान्तों के विरोध में होगा।

667. **राधा किशन बनाम राज कौर**[349] में एक पुरुष जो अर्न्तजातीय विवाह से एक बच्चें को जन्म दिया तो उसे अछूत माना जाता था। उनकी मृत्यु पर, महिला ने उसकी संपत्ति प्राप्त की, जिसका कब्जा उसने अपनी मृत्यु पर अपने बच्चों को सौंप दिया। पुरूष के भाइयों ने अपनी संपत्ति की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया, जिसमें कहा गया कि महिला और उनके नाजायज बच्चों को संपत्ति का कोई अधिकार नहीं था। अदालत ने अंग्रेजी कानून के किसी भी संदर्भ के बिना, यह अवधारित किया कि संपत्ति स्वअर्जित थी और न्याय, साम्या और सद्विवेक की आवश्यकता थी कि मुकदमा खारिज कर दिया जाए। मुख्य न्यायाधीश एडगर और न्यायमूर्ति नक्स ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लिए समग्र रूप से अवधारित किया:

> ''हम इस मामले में हमारा मार्गदर्शन करने के लिए किसी निश्चित सिद्धांत का हवाला देते हुए अधिकारियों और ग्रंथों के बीच नहीं प्राप्त कर सकते हैं इन परिस्थितियों में हमें साम्या और सद्विवेक के सिद्धांतों पर कार्रवाई करनी चाहिए, और खुमान ने अपने बेटों और उनकी मां और मृतक बेटे की विधवा के भाइयों के लाभ के लिए अर्जित संपत्ति के कब्जे से बाहर करने के लिए अस्वीकार कर दिया।''

---

349 (1891) 13 All 573

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अंग्रेजी विधि में कोई स्पष्ट संदर्भ नहीं दिया गया था, लेकिन सामान्य सिद्धांतों के लिए जो 'न्याय, साम्या और सद्विवेक की अवधारणा की विषयवस्तु प्रदान करेगा।

668. **राजाह किशनदत्त राम बनाम राजाह मुमताज़ अली खान**[350] में, प्रिवी काउंसिल ने एक बंधक को छुड़ाने के लिए अधिकारों में कुछ परिवर्तन किया, जिसकी संपत्ति को बंधक द्वारा कुछ विलय के माध्यम से कब्जे में ले लिया था।न्यायमूर्ति जेडब्ल्यू कोलविले ने इस प्रकार अवधारित किया था।

> 27.... यदि लागू किया गया सिद्धांत अंग्रेजी विधि के किसी तकनीकी नियम पर निर्भर करता है, तो यह निश्चित रूप से साम्या और सद्विवेक के व्यापक सिद्धांतों पर, इस तरह निर्धारित मामले के लिए अनुपयुक्त होगा। यह केवल इसलिए लागू होता है क्योंकि यह सामान्य साम्या और सद्विवेक के लिए सहमत है। और पुनः यदि यह उस व्यक्ति के पास है, तो इसकी प्रयोज्यता की सीमा को अग्रेजी निर्णयों के क्रम में कड़ाई से परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए, यद्यपि वे निर्णय निस्संन्देह मूल्यवान है, अब वे सामान्य साम्या के सिद्धान्तों के रूप पहचाने जाते है, और यह बताते है कि इस देश के न्यायालयों के द्वारा कैसे इसे प्रयोज्य किया जाता है।

669. स्थिती यह कि शब्द न्याय, साम्या और सद्विवेक अग्रेजी विधि को इंगित करते है और इस प्रकार असमर्थित है। यह सिद्धान्त अग्रेजी विधि से बचने का एक तरीका था[351], यह सत्य है कि भारत में इसके आवेदन अग्रेजी विधि के प्रसार की शुरूआत इसके भूमंडलीकरण, अभिवृद्धि और महामारी

---

350 (1878-79) 6 IA 145

351 Dr J Duncan M Derrett, Justice Equity and Good Conscience In Changing Law in Developing Countries (JND Anderson ed.)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भारतीय विधिक प्रणाली में अग्रजी विधि के प्रसार की शुरूआत सामुदायिक महामारी के द्वारा लागू किया गया। राष्ट्रीय सीमाओं का विधि प्रणालियों के अनुरुप निर्देश देने वाला सिद्धान्त है। यद्यपि यह शब्द रोमन के मूल शब्द के व्यापक अनुप्रयोग के लिए उपलब्ध है, यहां तक कि जहां एक व्यक्त प्रावधान है कि जो मामले मे लागू होता है और भारत में विकसित शब्दों के विकास को इंगित करता है कि यह केवल वही है जहां सकारात्मक कानून और प्रथागत कानून मौन या विकृत या बेतुके परिणामों का नेतृत्व करते थे और न्याय, साम्या और सद्विवेक के सिद्धांतों को लागू किया गया था।

वर्तमान में न्याय, साम्या और सद्विवेक का स्वरूप

670. वैधानिक कानून और पूर्व निर्णय के विकास के साथ, हिंदू संहिता और शरीअ़त अधिनियम 1937 में रीति–रिवाजों के प्रगतिशील संहिताकरण सहित, न्याय, साम्या और सद्विवेक पर निर्भरता को धीरे–धीरे कम करने की आवश्यकता है। न्याय, साम्या और सद्विवेक के प्रयोग के लिए एक निम्नतर क्षेत्र है जब एक क़ानून के तहत स्थापित सिद्धांत तथ्यात्मक स्थितियों को कवर करते हैं या जहां प्रश्न में व्यक्तिगत कानून की प्रणाली को अंतर्निहित सिद्धांतों को निश्चित रूप से निर्धारित किया जा सकता है। लेकिन फिर भी, इस सिद्धांत को अपनाने से न्यायिक शिल्प में क्षति होगी, जो विधि द्वारा शासित कानून के क्षेत्रों के लिए न्याय, साम्या और सद्विवेक के प्रयोग से बाहर करता है। क्योंकि विधि का विकास धीरे –धीरे होता है, क्योंकि न्यायाधीश उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए विधि के साथ स्वयं कार्य करते हैं। जहां पक्षकारों के अधिकारों को किसी विशेष व्यक्तिगत कानून द्वारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शासित नहीं किया जाता हैं, या जहां व्यक्तिगत कानून एक अदालत द्वारा पता लगाने के लिए मौन या अक्षम होता है, जहां किसी संहित में अंतर होता है, या जहां कानून का स्रोत विफल रहता है या परिपूरित किये जाने की आवश्यकता होती है, न्याय, साम्या और सद्विवेक को ठीक से संदर्भित किया जा सकता है।

671. स्वतंत्रता के पश्चात्, भारतीय न्यायालयों ने अवधारणा का कम ही उपयोग किया है किंतु न्याय, साम्या और सद्विवेक शब्द का व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। इस न्यायालय के दो मामले शिक्षाप्रद हैं। **नामदेव लोकमन लोधी बनाम नर्मदबाई**[352] **352** में, यह तर्क दिया गया था कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 111 (जी) में 1929 में किए गए संशोधन में पट्टेदार द्वारा पट्टे के निर्धारण के लिए लिखित नोटिस की आवश्यकता होती है, जो न्याय, साम्या और सद्विवेक का एक सिद्धांत के अनुसार है। न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन (जैसा कि वह तब थे), इस न्यायालय की दो न्यायाधीश पीठ के द्वारा निम्न अवधारित किया :

> ''7. इस प्रकार विचार के लिए मुख्य बिंदु यह है कि क्या संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1929 की धारा 111 की उप–धारा (जी) में प्रारम्भ किया गया विशेष प्रावधान है, लेकिन न्याय, साम्या और सद्विवेक के सिद्धांत की एक वैधानिक मान्यता है, या यह है विधायिका द्वारा अनुभाग में पेश किया गया एक प्रक्रियात्मक और तकनीकी नियम और साम्या के किसी भी अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों पर आधारित नहीं है। उच्च न्यायालय ने अवधारित किया, और हम सोचते हैं, कि

---

352 1953 SCR 1009

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नोटिस के संबंध में धारा 111 की उपधारा (जी) के प्रावधान न्याय, साम्या और सद्विवेक के किसी भी सिद्धांत पर आधारित नहीं था।''

18. .... इंग्लैंड में मकान मालिक के लिए किराए का भुगतान न करने के मामले में यह आवश्यक नहीं है कि वह एक ज़ब्ती परिणाम से पहले नोटिस दे। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 111 की उपधारा (छ) में जो अधिनियमित किया गया है वह एक ऐसा मामला है जिसे आज भी अंग्रेजी कानून में न्याय, साम्या और सद्विवेक का मामला माना जाता है।

इस न्यायालय ने यह अवधारित किया कि बकाया राशि का भुगतान न करने पर पट्टेदार द्वारा जारी किए जा रहे नोटिस की आवश्यकता प्रक्रिया का एक हिस्सा थी, और एक वैधानिक जनादेश अनुपस्थित में, इसे 'न्याय, साम्या और सद्विवेक के रूप में प्रस्तुत किया नहीं किया जा सकता था।' यह पहली नज़र में दिखाई दिया कि पीठ के द्वारा अंग्रेजी कानून में स्थिति को न्याय, साम्या और सद्विवेक को सम्मिश्रित किया। यह सही स्थिति नहीं है। इस मामले में व्यक्त किए गए विचार को **मुरलीलाल बनाम देव करण**[353] में इस न्यायालय द्वारा पुनर्व्याख्या किया गया था, जो अपीलकर्ता के खिलाफ प्रतिवादी द्वारा दायर एक मोचन मुकदमे से उत्पन्न हुआ था। प्रतिवादी ने तर्क दिया था कि हालांकि कुछ संपत्तियों के बंधक के खिलाफ उसके द्वारा लिए गए ऋण को चुकाने की अवधि समाप्त हो गई थी, फिर भी उसे पुनः धन देकर मोचन करेन का अधिकार उसके बचा रहेगा। यह अपीलकर्ता द्वारा विरोध किया गया था जिसने दावा किया था कि निर्धारित अवधि की समाप्ति पर, अपीलकर्ता गिरवी रखी गई संपत्ति का पूर्ण मालिक बन गया। हालांकि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 60 ने मोचन के इक्विटी सिद्धांत को

353 (1964) 8 SCR 239

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मूर्त रूप प्रदान किया, यह अलवर में लागू नहीं था जहां विवाद उत्पन्न हुआ था। इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अवधारितकिया कि बंधक विलेख में एक प्रावधान था जो मोचन की साम्या पर रोक लगाने के लिए था। मुख्य न्यायाधीश पीबी गजेन्द्रगढ़कर, पीठ के लिए अपना पक्ष रखते हुए अवधारित किया ।

> ''5. इसलिए, वर्तमान अपील में जो मुख्य प्रश्न उठता है वह है: क्या बंधक विलेख में मोचन द्वारा इस तरह की साम्या पर बनाए गए एक रोक के बावजूद बंधक मोचन की साम्या का पालन करने वाला न्यायसंगत सिद्धांत वर्तमान मामले पर लागू होता है। यह प्रश्न इस रूप में उठता है, क्योंकि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम उस समय अलवर पर लागू नहीं हुआ था जब बंधक को निष्पादित किया गया था और न ही उस समय जब 15 वर्ष की निर्धारित अवधि समाप्त हो गई थी। ''

> 16... .इस तर्क देखते हुए, यह देखना प्रासंगिक होगा कि पारंपरिक रूप से, भारत में अदालतें लगातार इक्विटी के सिद्धांतों को लागू करती रही हैं जो बंधक कार्यों में वजीफा के प्रवर्तन को रोकते हैं जो अनुचित रूप से बंधक के अधिकार को प्रतिबंधित करते हैं या प्रतिबंधित करते हैं... **वास्तव में, नामदेव लोकमन लोधी बनाम नर्मदबाई (1953) एससीआर 1009 में इस न्यायालय ने सशक्त रूप से देखा है कि यह स्वयंसिद्ध है कि अदालतों को न्याय, इक्विटी और अच्छी विवेक के सिद्धांतों को लागू करना चाहिए जो उनके समक्ष निर्धारण के लिए आते हैं, भले ही संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम के वैधानिक प्रावधान इन लेनदेन पर लागू नहीं किए जाते हैं। ये अवलोकन, विषयवस्तु में, उसी पारंपरिक न्यायिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं जो बन्धककर्ता द्वारा लगाये गये दमनकारी अन्यायपूर्ण और अनुचित प्रतिबंधों के साथ होता है, जब बंधक दस्तावेजों को निष्पादित किया जाता है।**

> 16. ..... इसलिए, हमें लगता है कि यह मान लेना उचित होगा कि **अलवर राज्य में स्थापित दीवानी अदालतें पूरे देश में दीवानी अदालतों**

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की तरह थीं, न्याय और साम्या का प्रशासन करने के लिए आवश्यक थीं, जहां उनके सामने उठाए गए प्रश्न से निपटने के लिए कोई विशिष्ट वैधानिक प्रावधान नहीं था।

.... इस बिन्दू पर अभिलेख में रखी विषयवस्तु की अनुपस्थिति में, हम श्री सरजू प्रसाद के तर्क से सहमत नहीं हैं कि साम्या और न्याय के सिद्धांत को वर्तमान विवाद से निपटने में अप्रासंगिक माना जाना चाहिए।

20. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्याय, साम्या और सद्विवेक के न्यायसंगत सिद्धांत को लगातार राजस्थान के एक बड़े हिस्से में बंधको के साथ चर्चा करते हुए दीवानी अदालतों द्वारा लागू किया गया है और यह प्रतिवादी के तर्क् को समर्थन देता है कि इसे अलवर में भी मान्यता दी गई थी। यदि एक बंधक विलेख में एक शर्त शामिल है जो अनुचित रूप से संयम रखता है या बंधक की मोचन अदालतों की इक्विटी को प्रतिबंधित करता है, तो उस वजीफा को अनदेखा करने और बंधक के अधिकार को लागू करने का अधिकार दिया गया था, निश्चित रूप से, उस सीमा में निर्धारित सीमा के सामान्य कानून के लिए। इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि अपीलकर्ता द्वारा राजस्थान उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के साथ हमारे हस्तक्षेप को सही ठहराने के लिए कोई वाद नहीं दायर किया गया है कि अपीलकर्ता जिस प्रासंगिक स्थिति पर अवलंम्ब लिया है, उसे लागू किया जाना चाहिए, भले ही यह साम्या के मोचन पर रोक लगाता।

672. न्यायालय ने उच्च न्यायालयों के फैसलों के उदाहरणों का भी हवाला दिया, जिसे अवधारित किया जा चुका था कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 60 ने न्यायसंगत और न्यायसंगत सिद्धांत को मूर्त रूप दिया। इस दृष्टिकोण में, बेंच ने न्याय, साम्या और सद्विवेक द्वारा सन्निहित सिद्धांतों का एक व्यापक दृष्टिकोण लिया। न्यायालय ने यह अवधारित किया कि नामदेव के वाद में इस न्यायालय का दृष्टिकोण अनुचित और दमनकारी संविदात्मक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शर्तों की अनुरूप स्थिति के अनुरूप और समान है और इस अर्थ में, न्याय, साम्या और सद्विवेक केवल अंग्रेजी कानून के अनुरूप थी, जहां अंग्रेजी कानून स्वयं न्याय, साम्या और सद्विवेक द्वारा समर्थित सिद्धांत अनुरूप था।

673. सामान्य अंतर्निहित सूत्र यह है कि न्याय, साम्या और सद्विवेक न्यायालय के समक्ष वर्तमान परिस्थितियों में वाद को राहत प्रदान करने के लिए न्यायालय को सक्षम बनाने के लिए एक पूरक भूमिका निभाता है जहाँ न्यायालय के समक्ष आये विवादों पर निर्णय देने के लिए न्यायालयों के पास मौजूदा वैधानिक ढाँचा अपर्याप्त है अथवा किसी पूर्व निर्धारित न्यायिक सिद्धान्त या प्रथायों से सहारा नही लिया जा सकता है, न्यायालय किसी मामलें को निष्पक्ष रूप से निस्तारण करने के लिए न्याय, साम्या, सद्विवेक के सिद्धान्तों से विधिक रूप सहारा लेते है न्यायालय विधिक अधिकारों से उत्पन्न विवाद को निर्णीत करने के दायित्व को त्याग नहीं सकता, क्योंकि किसी वाद के तथ्य मौजूदा विधि के शब्दों के प्रयोग के लिए स्वतः सहज रूप से नहीं माना जा सकता है। भारतीय न्यायालयों ने पक्षकारों के मध्य न्याय करने के लिए विधिक विवादों के वास्तविक आधारों के साथ विधि के शब्दों की अपूर्णता या अनुपयुक्तता की कमि को पूरा करने के लिये न्याय, सद्विवेक और साम्या के सिद्धान्तों का लम्बे समय से लाभ उठाया है साम्या, न्याय के एक अनिवार्य घटक के रूप में, विवादों के न्यायनिर्णयन में अंतिम कदम था। विभिन्न विधिक प्रणालियों से कानूनी सिद्धांतों का सहारा लेने के बाद, इस विषय पर विद्वानों नें कार् किया, और बार और पीठ का अनुभव से यदि कोई निर्णायक या न्यायसंगत परिणाम नहीं प्राप्त किया जा सकता है, तो

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायाधीश पक्षकारों के मध्य साम्या के सिद्धांतों को यह सुनिश्चित करने के लिए लागू किया जा सकता है न्याय किया जा चुका है। यह अक्सर न्यायालय की शक्तियों में पाया गया है कि वह विधिक रूप से दोनों सवहंनीय और न्यायपूर्ण राहतों को प्रदान करने में प्रयोग किया गया है।

इक्विटी और अनुच्छेद 142

674. न्याय, साम्या और सद्विवेक की अवधारणा का न्यायोचित परिणाम सुनिश्चित करने के लिए एक उपकरण के रूप में भी संविधान के अनुच्छेद 142 में अभिव्यक्ति मिलती है जो इस प्रकार है: –

> – 142 (1) सर्वोच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र में इस तरह की डिक्री पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जो किसी भी **वाद या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो**, और इस तरह से पारित किया गया कोई भी डिक्री या आदेश भारत के पूरे क्षेत्र में इस तरह से लागू किया जाएगा जैसे संसद द्वारा बनाई गई किसी भी कानून द्वारा या और जब तक कि उस संबंध में प्रावधान नहीं बनाया जाता है, या इस तरीके से कि जब तकराष्ट्रति ऐसा कोइ आदेश न जारी करे। (प्रभाव वर्धित)

'पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक है' वाक्याशं का एक व्यापक आयाम है और इसमें साम्या की एक शक्ति शामिल है जो तभी कार्यरत होता है जब विधि के कड़ाइ से पालन के द्वारा भी उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए अपर्याप्त है। न्याय की माँगों को न केवल सकारात्मक कानून के न्यायनिर्णयन पर करीबी से ध्यान देने की आवश्यकता है बल्कि सकारात्मक विधि के मौन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को इसके अन्तराल के अन्दर खोजना एक समानता और साम्या का परिणाम है। न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत वाद की बारीकियों के लिए विधिक उपक्रम सामान्यतः शब्दबद्ध विधि के प्रयोग पर आधारित है मानविक इतिहास की जटिलताओं और गतिविधियाँ अनिवार्य रूप से एक अद्वितीय संघर्ष की ओर ले जाते है जैसा इस वाद में धर्म, इतिहास और विधि के सम्मिलन है जिससे कि विधि अपने सामान्य प्रकृति से निपटने में अक्षम है जहाँ सकारात्मक विधि स्पष्ट है तो वहां भी अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का व्यापक विस्तार न्यायालय को न्याय के अनुरूप आदेश पारित करने की शक्ति प्रदान करता है न्याय के लिए वह आधार जो उसके विधिक उपक्रम के उददेश्य को मूल रूप में लाता है और जिसपर विधि की वैधता के नियम निर्भर है विधि के अनुच्छेद 142 के तहत न्यायसंगत शक्ति सामान्य और विशिष्ट के बीच के अन्तर को सामने लाती है। न्यायालय स्वयं को उन परिस्थितियों में पा सकती हैं जहां वाँछनीय विधि के मौन को उसके अर्थों के साथ प्रभावित किया जाना है या या इसकी छोटी–छोटी त्रुटियों की कठोरता को अपने मानवीय और दयालू स्वरूप को बनाए रखने के लिए कानून के लिए नरम करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इस वाद में यह सुनिश्चित करने के लिए कि कानून का निर्धारण, व्याख्या और उपयोग किया जाना चाहिए कि भारत में इसके शब्दों को मूल रूप में बनाये रखता है और विभिन्न धर्मों और बहुल्य मूल्यों को इंकार करता है और यह अपनी बहुभाषी और बहु–सांस्कृतिक रूपों में है, जो एक मेडली या क्षेत्रों और धर्मों पर आधारित है, कि एक व्यक्ति के रूप में भारतीय नागरिक और एक राष्ट्र के रूप में भारत को शांती की भावना का एहसास होना चाहिए। यह एक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायपूर्ण समाज के लिए इस अंतिम संतुलन की मांग है जिसे हमें न्याय, साम्या और सद्विवेक को लागू करना चाहिए। यह इन स्थितियों में है, कि न्यायालय पक्षकारो के मध्य पूर्ण न्याय सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक आदेश पारित करके उचित परिणाम सुनिश्चित करने का अधिकार है।

675. **यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**[354]**,** 354 में इस न्यायालय ने मुख्य न्यायाधीश रंगनाथ मिश्रा के माध्यम से बोलते हुए अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति को निम्नलिखित तरीके से परिचालित करते हुए कहा:

> "83. साधारण विधियों में प्रतिषेध या परिसीमाएं या उपबंध स्वयं में निहित नहीं हो सकते है वास्तव में अनुच्छेद 142 के अधीन संवैधानिक शक्तियों पर प्रतिषेध या परिसीमा के रूप में कार्य कर सकते है लेकिन हम समझते है एसे प्रतिषेध लोक नीति के कुछ अंतर्निहित मूल और साधारण विषयों पर और किसी विशिष्ट विधिक योजना या प्रतिरूप के आनुषंगिक विषय पर आधारित होने के लिए भी इस प्रकार के प्रतिषेध या सीमाएं दर्शित की जानी चाहिए। यह कहना भी पूर्णतः गलत होगा कि अनुच्छेद 142 के अधीन शक्तियां ऐसे कानूनीप्रतिषेध को अभिव्यक्त करते हैं। यह इस विचार को व्यक्त करेगा कि वैधानिक प्रावधान एक संवैधानिक प्रावधान की अवहेलना करते हैं। शायद, इस विचार को व्यक्त करने का उचित तरीका यह है कि अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने और किसी कारण या मामले के पूर्ण न्याय की जरूरतों का आकलन करने में, शीर्ष अदालत किसी भी महत्वपूर्ण वैधानिक प्रावधान के आधार पर सार्वजनिक नीति के कुछ मौलिक सिद्धांतों और तदनुसार अपनी शक्ति और विवेक के अभ्यास को विनियमित करना व्यक्त निषेध पर ध्यान देगा। यह प्रस्ताव अनुच्छेद 142 के अधीन न्यायालय की शक्तियों से संबंधित नहीं है, बल्कि केवल वही है जो किसी कारण या

---

354 (1991) 4 SCC 584

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विषय का पूर्ण न्याय है या नहीं प्रयोग की औचित्य का अंतिम विश्लेषण है। न्याय–क्षेत्र या शून्यता की कमी का कोई सवाल ही नहीं उठता।

जहां किसी स्थिति को संबोधित करने के लिए कठोरता को अपर्याप्त माना जाता है, पूर्ण न्याय करने के लिए इस न्यायालय की पूर्ण शक्ति साम्या की अंतर्निहित गुणवत्ता के अंतिम उपाय की अपील है जिसे विधि की रक्षा के लिए बनाया गया है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्यायालय को राहत देने का अधिकार है जो कारण और न्याय दोनों के साथ उपयोगी है। इसी तरह, **सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया**[355] 355 में, न्यायमूर्ति ए एस आनंद ने न्यायालय की तरफ से यह अवधारित किया है कि:

47.... हालांकि, यह याद रखने की आवश्यकता है कि अनुच्छेद 142 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का प्रकृति में उपचारात्मक होने के कारण यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि वे ऐसी शक्तियां हैं जो न्यायालय को उसके समक्ष लंबित किसी मामले के संबंध में कार्यवाही करते समय उसके मूल अधिकारों की उपेक्षा करने के लिए प्राधिकृत करती है अनुच्छेद 142 के तहत, यहां तक कि इसके आयाम की विस्तार के साथ, एक नए स्वरूप का निर्माण करने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है, जहां पहले कोई भी मौजूद नहीं था, एक विषय से संबंधित वैधानिक प्रावधानों को व्यक्त करके और इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से कुछ हासिल करने के लिए जिसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

676. सम्पूर्ण न्याय करने के लिए न्यायालय की राय में आवश्यक डिक्री या आदेश पारित करने की संवैधानिक शक्ति में ही यह विचार निहित है कि न्यायालय को आवश्यकतानुसार न्यायपूर्ण परिणाम सुनिश्चित करने हेतु इसे

---

355 (1998) 4 SCC 409

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तद्नुरूप बनाने की शक्ति होनी चाहिए। जब किसी न्यायालय के समक्ष कठोर मामले[356] होते हैं उसमें विधि का ऐसा निर्वचन किया जाता है जो सबसे उपयुक्त हो और जो विद्यमान न्यायिक फलक को – संविधान, कानून, नियम, विनियम, रीति–रिवाजों और सामान्य विधि को न्यायोचित ठहराता हो। जहां विधि और न्यायनिर्णय के अनन्य नियम आधारित सिद्धांत या तो व्यवस्था के क्रियाकलाप की व्याख्या करने या ऐसा अनुतोष सृजित करने के लिए अपर्याप्त हों जो पूर्ण न्याय सुनिश्चित करता हो, ऐसे माडल को साम्यापूर्ण मानकों पर आधारित सिद्धांतों से संपूरित करना आवश्यक होता है। हालांकि अनुच्छेद 142 के अन्तर्गत शक्ति असीम नहीं है। यह न्यायालय को इसके समक्ष आये मामले में पूर्ण न्याय देने के लिए आदेश देने के लिए प्राधिकृत करता है। अनुच्छेद 142 में न्याय, साम्या और सद्विवेक तथा पूर्ण न्याय देने के लिए न्यायालय की अनुपूरक शक्ति दोनों निहित है।

0.6 अनुदान और मान्यता

677. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने यह कहा है कि 1528 में बाबरी मस्जिद बाबर द्वारा या बाबर के इशारे पर बनाई गई थी जो कि मुसलमानों के लिए प्रार्थना स्थल थी। दावा यह है कि निर्माण की तिथि से दिसंबर 1949 में मस्जिद के कुर्क किये जाने तक मुस्लिम लगातार इसमें नमाज पढ़ते आये थे। जब तक मस्जिद संलग्न नहीं की जाती, तब तक इसके निर्माण की तारीख के बाद से, मुसलमानों ने मस्जिद में लगातार नमाज अदा की। कहा

---

356 Ronald Dworkin, Hard Cases, Harvard Law Review, Vol. 88., No. 6 (Apr. 1975), pp. 1057-1109.

जाता है कि मस्जिद के रख–रखाव और मरम्मत का खर्च नकद अनुदान के रूप में प्राप्त होता था जो बाबर के शासन में शाही खजाने से दिया जाता था जिसे औपनिवेशिक शासन के दौरान अंग्रेजों द्वारा जारी रखा गया।

678. इस वाद का महत्वपूर्ण पहलू जिसकी वाद 4 में दलील दी गयी है, वह 1528 ई. में मस्जिद का निर्माण और उसके बाद इबादत के लिए मुसलमानों द्वारा इसका उपयोग है। लेकिन, साक्षिक अभिलेख का एक महत्वपूर्ण पहलू ऐसे किसी अभिलेख का न होना है जो यह दर्शित करे कि निर्माण के बाद मस्जिद को 1856–7 तक नमाज पढ़ने के लिए प्रयोग की जाता रहा। वाद में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने 1856–7 के दंगों तक नमाज के उद्देश्य से मस्जिद का प्रयोग किये जाने संबंधी साक्ष्य की कमी वाली विशेषता पर ध्यान दिया। विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित उद्धरण में सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत श्री जिलानी के तर्क का उल्लेख किया है :

> "2314... भले ही प्रश्नगत विषयों के उद्देश्य से हम यह मान लें कि विवादित इमारत 1528 ई. में बनवायी गयी थी, किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि बनवाने के बाद से मुस्लिमों द्वारा इसका कम से कम 1856–57 तक मस्जिद के रूप में प्रयोग किया गया। श्री जिलानी ने बहस के दौरान ठीक ही स्वीकार किया है कि कम से कम 1855 तक...कब्जे या नमाज पढ़े जाने की स्थिति दर्शाने वाला कोई ऐतिहासिक या अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।"

इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के दौरान, 1856–7 से पहले मुसलमानों द्वारा यहां इबादत किये जाने संबंधी साक्ष्य की नामौजूदगी वाली टिप्पणी को सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से प्रस्तुत विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ राजीव

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धवन के समक्ष विशेष रूप से रखा गया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इससे इनकार नहीं किया कि वे साक्षिक अभिलेख जिनका सुन्नी वक्फ बोर्ड द्वारा अवलंब लिया गया है निश्चित रूप से उन अनुदानों से प्रारम्भ होते हैं जिनका ब्रिटिश सरकार द्वारा मस्जिद के रखरखाव के लिए जारी रखा जाना अभिकथित है। इसे ध्यान में रखते हुए, अब साक्ष्यों की जांच करना आवश्यक हो जाता है।

I. ब्रिटिश सरकार द्वारा रखरखाव के लिए अनुदान

679. सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के अनुसार, औपनिवेशिक सरकार ने मूल रूप से बाबर के समय दी जाने वाले अनुदान को जारी रखा। इस संबंध में, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने अपने लिखित कथन में दस्तावेजी रिकॉर्ड पर अवलंब लिया है कि:

> "(ए) 13 मार्च, 1860 और 29 जून, 1860 के सरकारी आदेशों को वाले रजिस्टर माफियत में बाबर का नाम दाता/अनुदानकर्ता के रूप में दर्शित किया गया है।
>
> - आगे कॉलम 13, जो मुख्य आयुक्त के आदेश को संदर्भित करता है, में कहा गया है कि जब तक मस्जिद को ठीक ठाक रखा जाता है और मोहम्मडन ठीक से आचरण करते हैं, मैं अनुदान जारी रखने का अनुमोदन करता हूं"
> - इसके अलावा, कॉलम 14 में, सरकार का 'अंतिम आदेश' शीर्षक से 29 जनवरी, 1860 के सरकारी आदेश सं. 2321 में यह उल्लेख किया गया है कि जब तक वह उद्देश्य पूरा होता है जिसके लिए अनुदान दिया गया है, तब तक के लिए दिया जाता है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने फैसले में कहा कि यह किसी रजिस्टर की एक प्रति प्रतीत होती है–लेकिन यह एक अत्यंत फटा हुआ दस्तावेज है और पृष्ठ 163 की सामग्री लगभग अपठनीय है। उन्होंने निम्नवत धारित किया:

"(बी) किराए से मुक्त भूमि अभिलेख का विवेचन रजिस्टर (14.3.1860) यह कि सम्राट ने ग्राम शहनावा में बाबरी मस्जिद नाम की मस्जिद के निर्माण और रखरखाव के प्रयोजनों के लिए 302/3/6 रुपये का राजस्व अनुदान दिया था। रजिस्टर में निम्नलिखित बिंदु दर्ज किए गए थे:

- सम्राट बाबर का नाम 'अनुदेयी' के रूप में नोट किया गया था।
- किराया–मुक्त भूमि गांव शहनावा में स्थित है और इससे 302 रू. 3 आना और 6 पाई का वार्षिक राजस्व आता है।
- यह किराया–मुक्त भूमि अनुदान मुएज़िन और खातिब के वेतन खर्चों को पूरा करने के लिए बाबर द्वारा बाबरी मस्जिद के निर्माण के समय एक वक्फ के रूप में दिया गया था।
- यह किराया मुक्त अनुदान सैय्यद बकी को उनके जीवनकाल तक और उसके बाद उनके बेटे को जीवन भर और उसके बाद सैय्यद हुसैन अली को दिया गया।
- बोर्ड का निर्णय (दिनांक 29 जून, 1880) यह था कि अनुदान उस समय तक जारी रहेगा जब तक वह उद्देश्य पूरा होता रहेगा जिसके लिए इसे भूमि राजस्व से छूट दी गई थी।

दस्तावेज़ में कहा गया है कि अनुदान की तारीख की कोई जानकारी नहीं है और दाता/अनुदानकर्ता का नाम गवाही के आधार पर है।" इसी तरह, गवाही के आधार पर यह कहा गया है कि, यह भूमि मुक्त अनुदान, सम्राट बाबर द्वारा अयोध्या में बाबरी मस्जिद के निर्माण की तैयारी के समय वक्फ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के रूप में दिया गया था, जो मुएज़्ज़िन और खतीब के वेतन खर्चों को पूरा करने के लिए था।" आदेश और तिथि ज्ञात नहीं हैं:

> "(सी) रजिस्टर सं. 6 (ई) के अंशों की प्रति, 29 जून, 1860 दिनांकित तहसील फैजाबाद की सशर्त भू–राजस्व छूट। इस रजिस्टर में मो. असगर और मो रज़ाब अली को उस व्यक्ति के नाम के रूप में अभिलिखित किया गया है जो किराया मुक्त भूमि धारण कर रहा है (कॉलम 6 और 7 में परिलक्षित)।"

II नकद ननकार अनुदान का राजस्व मुक्त भूमि के अनुदान में परिवर्तन

680. वर्ष 1864 में ब्रिटिश सरकार ने नकद ननकार को अयोध्या के आसपास शोलापुर और बहोरपुर के गांवों में स्थित राजस्व मुक्त भूमि के अनुदान में बदल दिया। मुख्य आयुक्त की मुहर लगा अनुदान का एक प्रमाण पत्र रज़ाब अली और मोहम्मद असगर के पक्ष में विलेखित किया गया था। यह इस प्रकार है:

> "सम्यक जांच से यह सुस्थापित है कि रज़ाब अली और मोहम्मद असगर को पूर्व सरकार के अधीन किराया मुक्त कार्यकाल में मौजा शाहनवां जिला फैजाबाद से (रू. 302–3–6) तीन सौ दो रुपये तीन आना छः पाई का नकद नानकर प्राप्त हुआ। गवर्नर जनरल इन कौंसिल के प्राधिकार से मुख्य आयुक्त निम्न शर्तों पर तब तक अनुदान जारी रखेंगे जब तक वह उद्देश्य जिसके लिए अनुदान दिया गया है, पूरा होता रहेगा। यह कि वे प्रश्नगत अनुदान से संबंधित सभी सुन्ड, स्वत्व विलेख और अन्य दस्तावेजों को सरेंडर कर देंगें। यह कि वे और उनके उत्तराधिकारी पुलिस, सैन्य या राजनीतिक मामलों में उनसे अपेक्षित भू धारक के दायित्वों का कड़ाई से पालन करेंगे, और वे ब्रिटिश सरकार के शत्रु के षडयंत्र का पक्ष लेने के संदेह में नहीं आयेगें। यदि रज़ाब अली और मोहम्मद असगर या उनके उत्तराधिकारी द्वारा कोई भी शर्त तोड़ी जाती है तो अनुदान तुरंत बंद हो जाएगा।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपरोक्त दस्तावेजों पर विचार करते हुए, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने धारित किया:

> "2336. हालांकि उपरोक्त दस्तावेजों से पता चलता है कि मीर रज्जाब अली और मोहम्मद असगर को कुछ अनुदान दिया गया था, लेकिन ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि संबंधित अधिकारियों द्वारा किसी भी प्रकार की जाँच की गई थी और यदि ऐसा है तो इसका आधार क्या था. मुसलमानों के दावे के अनुसार, बाबर का सेनापति, जो विवादित इमारत के निर्माण के लिए जिम्मेदार था, मीर बकी था। जबकि मीर रज्जाब अली ने खुद को सैयद बकी के पौत्र की बेटी का दामाद होने का दावा किया। मोहम्मद असगर मीर रज्जाब अली का पुत्र था , इसलिए, पुत्र और पिता ने कथित मूल मुतवल्ली की चौथी पीढ़ी से संबंध का दावा किया और अनुदान के लिए अपना दावा किया। इसे दर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि ऐसा कोई अनुदान, यद्यपि उपरोक्त दोनों व्यक्तियों द्वारा अभिकथित, किसी के द्वारा दिया गया था। यदि हम इस वाद के प्रकथनों के हिसाब से चले तो कि वक्फ को 1528 में बनाया गया था, तो यह मानना पूर्णतः अविश्वसनीय होगा कि पिछले 325 वर्ष से अधिक समय में केवल चार पीढ़ियां हीं हुई और इसके संबंधी अधिक से अधिक पांचवी पीढ़ी के हैं। 1860–61 में प्राधिकारी किसी न्यायिक दायित्व से बंधे नहीं थे और हो सकता है कि इसलिए कोई विवरण न दिया हो कि जांच किस आधार पर की गयी थी। हमारे लिए प्रत्यक्षतः सैयद बकी, जो 1528 में हुआ रहा होगा, से प्रारम्भ होने वाली मीर रज्जाब अली की वंशावली अविश्वसनीय है। यह संदर्भ रहित नहीं कि अनुदान की कहानी पिता पुत्र द्वारा अंग्रेजों से अपने लिए मूल्यवान उपहार लेने के लिए गढ़ी गयी हो। किसी भी स्थिति में, इन दस्तावेजों से केवल यह पता चलता है कि अंग्रेजों द्वारा प्रश्नगत मस्जिद के लिए वित्तीय सहायता दी जाती थी लेकिन यह अपने आप में इस बात का साक्ष्य नही है कि मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं या अन्यथा को छोड़कर, विवादित इमारत का प्रयोग इबादत या इस्लामिक मजहबी उद्देश्यों के लिए किया जाता था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उपरोक्त उद्धरण से, ऐसा प्रतीत होता है कि रज़ाब अली और मोहम्मद असगर को अनुदान प्रदान किया जाता था। हालांकि, अभिलेख से कुछ महत्वपूर्ण पहलू सामने आते हैं:

(i) अनुदान के आधार को उपदर्शित करने वाली सम्यक जांच का अभाव;

(ii) मीर रज़ाब अली द्वारा यह दावा कि वह मीर बकी के पौत्र की बेटी के दामाद हैं जबकि मोहम्मद असगर मीर रज़ाब अली के पुत्र थे; और

(iii) 325 वर्ष के पिछले इतिहास में ऐसे अनुदान के आधार को दर्शित करने वाली सामग्री का अभाव; और

(iv) मीर बकी की चौथी पीढ़ी के व्यक्ति द्वारा दावा किया जाना और अभिलेख पर अन्तर्वर्ती तीन शताब्दियों का अभिलेख न होना।

चाहे जो भी हो, उच्च न्यायालय ने नोट किया है कि दस्तावेजों से पता चलता है कि मस्जिद के रखरखाव के प्रयोजनों के लिए ब्रिटिश द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की गई थी, लेकिन इससे यह साबित नहीं होगा कि इमारत का उपयोग नमाज के लिए किया गया। राजस्व मुक्त भूमि के उपरोक्त अनुदान के संबंध में, निम्नलिखित दस्तावेजों का अवलंब लिया गया है:

> "(i) 25 अगस्त, 1863 को अवध के मुख्य आयुक्त के सचिव ने फैजाबाद संभाग के आयुक्त यह उल्लेख करते हुए पत्र लिखा कि गर्वनर जनरल ने अयोध्या के निकट जन्मस्थान मस्जिद के लिए सतत रूप से दिये जा रहे 302-3-6 रुपये के नकद अनुदान को किराया मुक्त भूमि के अनुदान में बदलने के मुख्य आयुक्त के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया है। यह भी अनुरोध किया गया कि अयोध्या के निकट कुछ नजूल भूमि के अनुदान द्वारा प्रावधान में परिवर्तन किया जाए (प्रदर्श ए 14 वाद 1)

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) 31 अगस्त, 1863 को उपायुक्त द्वारा किराया मुक्त भूमि (302/3/6 रुपए का वार्षिक किराया) के संबंध में एक आदेश पारित किया गया था जिसे सरकार द्वारा मस्जिद जन्मस्थान के लिए स्वीकृत किया गया था। यह आदेश दिया गया था कि इस उद्देश्य के लिए चिह्नित प्रस्तावित भूमि का नक्शा स्पष्ट रूप से सीमाओं को इंगित करना चाहिए और उपायुक्त द्वारा आयुक्त को भेजा जाना चाहिए।

(iii) 13 सितंबर, 1860 को, उपायुक्त, फैजाबाद द्वारा आदेश पारित किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि उन जमीनों का नक्शा, जिन्हें मस्जिद की भूमि के बदले में दिये जाने के अनुमोदन के लिए चुना गया है, भेजा गया था। अतः यह आदेश दिया गया कि तत्काल कार्यवाही करने के लिए अपर सहायक आयुक्त के समक्ष रखा जाय।

(iv) तत्पश्चात् इस पर विचार करने के लिए कई आदेश पारित किए गए कि मस्जिद के प्रयोजन के लिए कौन सी भूमि आबंटित की जानी थी।

(v) 10 अक्तूबर, 1865 को यह आदेश दिया गया कि भूमि पर कब्जा तत्काल दिया जाए और अभिस्वीकृति ली की जाए।

(vi) 19 अक्तूबर, 1865 को यह रिपोर्ट दी गई कि भूमि को सौंपने के संबंध में कार्यवाहियां पूरी हो चुकी हैं और अभिस्वीकृति की भी पुष्टि की गई है।

(vii) बाद में, 30 अक्टूबर, 1865 को, फ़ाइल को रिकॉर्ड में भेज दिया गया।

III. 1870 का अनुदान

681. ब्रिटिश सरकार ने मोहम्मद असगर और रज्जाब अली के प्रतिवेदन पर वार्षिक नकद अनुदान बंद कर देने के पश्चात, मुआफी में वर्ष 1870 में भुरईपुर और शोलापुर के गांवों में नई जमीन दी। बाद में, मुख्य आयुक्त द्वारा एक सनद जारी किया गया था कि पुरानी सरकार (नवाब के शासन) में गाँव शहनावां में किराया मुक्त खातेदारी के रूप में रज्जाब अली और मोहम्मद

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

असगर द्वारा प्राप्त 302 रू./3 आना/6 पाई का नकद ननकार को गवर्नर जनरल के प्राधिकार से (भुरईपुर और शोलापुर गांव में मुआफी के रूप में) बनाए रखा, जब तक कि वह उद्देश्य पूरा हो जिसके लिए अनुदान दी गयी है।

3 जनवरी/फरवरी 1870 को, **मोहम्मद अफजल अली और मोहम्मद असगर** बनाम **सरकार**[357] के मामले में बंदोबस्त अधिकारी द्वारा एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें निम्नानुसार व्यादेश किया गया था:

> "बहरानपुर मौजा में श्रेष्ठतर मालिकाना हक मोहम्मद असगर और मोहम्मद अफजल अली को राजस्व मुक्त डिक्री किया जाता है।"

IV. नकल खसरा आबादी

682. वर्ष 1931 में, नाजुल रजिस्टर में उल्लिखित नकल खसरा आबादी में दर्ज प्रविष्टि में प्लॉट नंबर 583 में बाबरी मस्जिद की उपस्थिति दर्ज की गयी है और कहा गया है कि वह एक मस्जिद वक्फ अहदे शाहिल थी। यह दस्तावेज यह भी नोट करता है कि रामचबूतरा जन्म–स्थान के रूप में प्रसिद्ध था।

यह दस्तावेज अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित प्रविष्टियाँ उद्धृत करता है:

"दस्तन्दाजी (11)	इंद्राज रघुनाथ दास के बजाय महंत राम शरण दास जन्मभूमि के महंत मुकर्रर

357 Case No.5

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

	किए गए।
कैफियत (विवरण) (16)	मस्जिद पोख़्ता वक्फ अहदे शाही अन्दर साहान मस्जिद एक चबूतरा जो जन्मभूमि के नाम से मशहूर है, दरख़्ताँ एक गूलर, एक इमली, एक मुलसिरी, एक पीपल, एक बेल....मस्जिद मौसमा शाह बाबर शर मरहूम।"

0.7 विवाद और कब्जे को पुष्ट करने वाले वाद

683. 1856–7 के दंगों के बाद अंग्रेजों ने तीन गुंबदाकार ढाँचे के बाहर एक रेलिंग लगाई। यह निःसंदेह शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए किया गया प्रतीत होता है। मुस्लिम रेलिंग के अंदर इबादत करेंगे जबकि हिंदू बाहर पूजा करेंगे। जिस मंच को रामचबूतरा के रूप में वर्णित किया गया है उसका निर्माण हिंदुओं ने रेलिंग के बाहर और उसके पास में किया था। 1885 के वाद में मोहम्मद असगर के लिखित कथन में रामचबूतरा के निर्माण को संदर्भित किया गया था। यद्यपि मुस्लिमों के अनुसार, उनके द्वारा दिये गए एक आवेदन पर रामचबूतरा को खोदने के लिए एक आदेश पारित किया गया था जिसका कोई भी आदेश अभिलेख पर नहीं रखा गया है। 1856–7 की घटना के बाद कई मामले संस्थित किये गए थे। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं

वाद संख्या 884– मस्जिद परिसर से निंहग सिंह फकीर का निष्कासन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) दिनांक 28 नवंबर 1858 को थानेदार शीतल दुबे ने एक आवेदन दाखिल किया जिसमें यह कहा गया था कि पंजाब के निवासी निंहग सिंह फकीर ने गुरू गोबिन्द सिंह की पूजा और हवन को आयोजित किया और मस्जिद परिसर के भीतर 'श्री भगवान' का प्रतीक लगा दिया। थानेदार ने उचित कार्यवाही करने की प्रार्थना की;

(ii) 30 नवंबर 1858 को सैय्यद मोहम्मद खातिब (बाबरी मस्जिद के मुअज़्ज़िन) ने थानाध्यक्ष के समक्ष निहंग द्वारा एक निशान लगाने के बारे में एक परिवाद दर्ज कराया, जो प्रकरण संख्या 884 थी और इसको हटाने की प्रार्थना की। आवेदन में उन्होनें कहा किः

क) निहंग सिंह मस्जिद में उपद्रव कर रहे हैं;

ख) उसने मस्जिद के अन्दर बलपूर्वक एक चबूतरा बना लिया था, मस्जिद के अन्दर मूर्ति का एक चित्र रख दिया, आग लगायी और पूजा कर रहा था। उसने मस्जिद की दीवार पर कोयले से "राम राम" शब्द लिख दिए थे;

ग) मस्जिद मुस्लिमों का एक इबादतखाना है और यदि कोई इसके अन्दर कुछ बनाता है , तो उसे दण्ड़ित किया जाना चाहिए;

घ) पहले भी बैरागियों ने रातभर में 1 बालिश्त ऊँचाई (लगभग 22.83 सेमी.) का एक चबूतरा बना लिया था, जब तक व्यादेश जारी किए गए;

ङ) आवेदन में कहा गया था:

> "पहले वहाँ जन्म स्थान का प्रतीक रहा था तथा हिन्दूओं ने पूजा की"

च) इसलिए यह प्रार्थना की गयी कि:

i. स्थल का निरीक्षण किया जाए और नये निर्माण को ध्वस्त कर दिया जाए; तथा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ii. हिन्दूओं को मस्जिद से बाहर निकाला जाए और प्रतीक तथा मूर्तियों को हटाया जाए तथा दीवारों पर लिख गए लेखन को साफ किया जाए।

(iii) वाद 4 में वादियों की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता, श्री पाशा द्वारा उपरोक्त दस्तावेज के अनुवाद के बारे में एक विवाद उठाया गया है। दस्तावेज का अनुवाद इस प्रकार किया गयाः

> "आप शाही समय (sic) से दोनों पक्षकारों के मालिक हैं यदि कोई व्यक्ति बलपूर्वक निर्माण करता है तो उसे आपके द्वारा दण्ड़ित किया जायेगा। कृपया इस तथ्य पर विचार करें कि मस्जिद मुस्लिमों का एक इबादतखाना है और हिन्दूओं का नहीं है। पहले वहाँ कई सदियों से जन्मस्थान का प्रतीक रहा था और हिन्दूओं की पूजा की।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

श्री पाशा के अनुसार सही अनुवाद इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए:

> "यह स्पष्ट शाह शब्द से स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति बलपूर्वक निर्माण करता है वह शासन द्वारा दण्ड़ित किया जायेगा और माननीय आप इस तथ्य पर विचार करें कि मस्जिद मुस्लिमों का एक इबादतखाना है और न कि विरोधी स्थिति कि पहले जन्मस्थान सदियों से वहाँ रहा था और हिन्दू पूजा किया करते थे।"

श्री पाशा की दलीलों में शब्द "और न कि विरोधी स्थिति" ईजाद किए गए हैं। वे मुअज़िन के पत्र की प्रतिलिपी के विरूद्ध पढ़ते हैं। परिवाद मस्जिद के भीतर रामचबूतरा के निर्माण के विरूद्ध था और इस संबंध में यह कहा गया था कि यद्यपि पहले जन्मस्थान का प्रतीक सदियों से वहाँ रहा था और हिन्दू पूजा करते थे, पहली बार मस्जिद के भीतर एक निर्माण किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) 30 नवंबर 1858 को एक आदेश पारित किया गया था जिसके अनुसरण में थानेदार शीतल दुबे विवादित परिसर गए और निहंग सिंह को आदेश के बारे में सूचित किया, लेकिन उन्होंने जवाब दिया कि पूरा स्थान निरंकार का है और देश की सरकार को न्याय प्रदान करना चाहिए।

(v) 1 दिसंबर 1958 को थानेदार शीतल दुबे ने प्रकरण संख्या 884 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें यह वर्णन किया गया कि जब उन्होंने 30 नवंबर 1858 को निहंग सिंह फकीर को संबोधित स्थान छोड़ने के लिए समन आदेश को दिया, तो उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने जो वास्तव में घटित हुआ था, उसे बताया और उच्च अधिकारियों से निर्देश मांगे थे।

(vi) प्रकरण संख्या 884 में 5 दिसंबर 1858 को एक आदेश जारी किया गया था जिसमें 30 नवंबर, 1858 के आदेश के अग्रसरण में पुलिस उप–निरीक्षक अवध को निर्देश देते हुए न्यायालय द्वारा एक निर्देश जारी किया गया था (जिसमें यह निर्देश दिया गया था कि बाबरी मस्जिद में बैठे फकीर को निकाल दिया जाए) कि यदि फकीर को मौके से नहीं हटाया जाता है तो उसे गिरफ्तार कर अदालत में पेश किया जाना चाहिए;

(vii) 6 दिसंबर 1858 को शीतल दुबे, थानेदार अवध द्वारा न्यायालय में फकीर की उपस्थिति दर्ज करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी; और

(viii) 10 दिसंबर, 1858 को यह अभिलिखित करते हुए एक आदेश पारित किया गया कि झंडा मस्जिद से उखाड़ दिया गया था और उसमें रहने वाले फकीर को निकाल दिया गया था।

684. **मीर रज्जब अली द्वारा 5 नवंबर 1860 को वाद संख्या 223 दायर की गयीः** 5 नवंबर 1860 को मीर रज्जब अली ने वाद सं. 223 में असकली सिंह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के खिलाफ एक अर्जी दाखिल की, जिसमें कब्रिस्तान में एक नया "चबूतरा" निर्मित किए जाने के बारे में शिकायत की गई थी। इस आवेदन में यह कहा गया था कि:

ए) एक निहंग द्वारा बाबरी मस्जिद से सटे कब्रिस्तान में एक छोटा "चबूतरा" बनाया गया था। उन्हें ऐसा न करने के लिए कहा गया था, लेकिन वह नहीं रूके और हिंसक हो गए।

ख) पहले, लगभग डेढ़ साल पहले, हरि दास (हनुमान गढ़ी के महंत) ने जबरन एक घर बनाने की कोशिश की और हस्तक्षेप नहीं करने के लिए एक बन्धपत्र/हलफनामा निष्पादित करवाया गया। उक्त हलफनामा अभी भी फाइलों में उपलब्ध है;

ग) आयुक्त को एक ऐसा झंडा भी मिला जो बाबरी मस्जिद की जगह पर लगाया गया था और इसे देखते ही, झंडे को हटवा दिया गया।

घ) आजकल, जब मुअज्ज़िन अजान पढ़ता है, तो विरोधी पक्षकार शंख बजाने लगते हैं; और

ई) नवनिर्मित "चबूतरा" को ध्वस्त करने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए और विरोधी पक्षकार से एक हलफनामा/बंधपत्र लिया जाना चाहिए कि वे मस्जिद की संपत्ति में गैरकानूनी और अवैध रूप से हस्तक्षेप नहीं करेंगे और अज़ान के समय शंख नहीं बजायेंगे।

685. 12 मार्च 1861 को मोहम्मद असगर, रज्जब अली और मोहम्मद अफजल द्वारा पिछले आवेदन के अग्रसरण में एक आवेदन दाखिल किया गया जिसमें कहा गया था कि इमकानी सिख ने वादी की भूमि पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया था और बाबरी मस्जिद के पास अनुमति के बिना एक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"चबूतरा" बना लिया था। यद्यपि पिछले आवेदन पर, इमकानी सिख को "चबूतरा" से निकालने का आदेश जारी किया गया था, लेकिन वह झोपड़ी जहां वह रह रहा था, अभी भी है। यह प्रस्तुत किया गया था कि जब भी कोई महंत वहां जाएगा या झोपड़ी में रहेगा, तो वाद हेतुक उत्पन्न होगा। इसलिए यह प्रार्थना की गई कि उप–निरीक्षक को एक आदेश जारी किया जाए कि इमानी सिख के निष्कासन के बाद, झोपड़ी/कुटीर को भी ध्वस्त कर दिया जाए और सावधानी बरती जाए ताकि एक नए घर की नींव न रखी जाए।

(i) 18 मार्च 1861 को सूबेदार ने 16 मार्च 1861 के आदेश के निष्पादन के संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह कहा गया था कि न केवल इमानी सिख को कुटीर (झोपड़ी) से निकाल दिया गया है, बल्कि झोपड़ी को भी ध्वस्त कर दिया गया है; और

(ii) इसके पश्चात् 18 मार्च 1862 को मो असगर, मीर रज़ब अली और मो. अफजल द्वारा किए गए 12 मार्च 1861 दिनांकित आवेदन को अभिलेख के सुपुर्द किया जाना निर्देशित किया गया।

686. **तुलसीदास और अन्य बैरागियों के खिलाफ आवेदन (18 अप्रैल 1861 को पूर्वतः निर्णीत वाद संख्या 223 में शामिल):** 25 सितंबर 1866 को मोहम्मद अफजल (मुतवल्ली मस्जिद बाबरी) द्वारा तुलसीदास और अन्य बैरागियों के विरूद्ध एक आवेदन दाखिल किया गया, जिसमें एक कोठरी को ध्वस्त करने की प्रार्थना की गयी थी जो मस्जिद के दरवाजे के अंदर "मूर्ति आदि रखने के लिए" नवनिर्मित किया गया था जहाँ बैरागियों ने "चबूतरा" का निर्माण किया था। इस आवेदन में यह कहा गया था कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

क) अवध खास में जन्मस्थान के पास स्थित बाबरी मस्जिद का निर्माण शाह बाबर ने किया था;

ख) पिछले कुछ दिनों से बैरागी मस्जिद के पास शिवालय बनाने का प्रयास कर रहे थे, लेकिन मुसलमानों की सतर्कता और मामले की समय पर रिपोर्टिंग के कारण अधिकारियों ने प्रतिबंध लगा दिया और विवाद को रोका।

ग) अब लगभग एक महीने पहले मूर्तियों को रखने के इरादे से प्रतिवादीगण तुलसीदास/बैरागियों ने मस्जिद के परिसर में एक कोठी का निर्माण किया था। निर्माण कुछ घंटों के भीतर अवैध रूप से किया गया था;

घ) पुलिस को पहले ही सूचित कर दिया गया था, लेकिन सरकार द्वारा कोठरी के विध्वंस के संबंध में कोई आदेश जारी नहीं किए गए हैं। इस कोठरी के कारण प्रतिदिन संघर्ष की आशंका रहती है।

ड़) पहले उन्होंने रात भर में रामचबूतरे का निर्माण किया था और इस निर्माण के कारण दंगे हुए थे। अब थोड़े समय के भीतर एक छोटी कोठरी का निर्माण किया गया था। यह संभावना थी कि वे इस तरह के निर्माणों को धीरे–धीरे बढ़ा सकते हैं; और

च) तदनुसार यह प्रार्थना की गई थी कि मस्जिद को बैरागियों से बचाया जाए और कोठरी को गिराने के आदेश पारित किए जाएँ।

छ) 12 अक्टूबर 1866 को उपायुक्त, फैजाबाद ने तुलसीदास के खिलाफ मोहम्मद अफजल (केस नंबर 223 में शामिल) के आवेदन पर अभिलेख के सुपुर्द किया जाना निर्देशित करते हुए एक आदेश पारित किया,

687. **नियामत अली और मोहम्मद शाह बनाम गंगाधर शास्त्री: नियामत अली और मोहम्मद शाह बनाम गंगाधर शास्त्री** के वाद में स्थानापन्न उपायुक्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

फैजाबाद द्वरा 25 जून 1868 को पारित एक आदेश के विरूद्ध अपील में 26 अगस्त, 1868 को मेजर जे रीड आयुक्त फैजाबाद द्वारा एक आदेश पारित कर दिया। यह वाद मुस्लिमों द्वारा गंगा धर के विरूद्ध दायर किया गया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह मस्जिद के उत्तर–पश्चिमी कोने पर अतिक्रमण कर रहा था। आदेश से अपील खारिज हो गई क्योंकि कोई अतिक्रमण साबित नहीं हुआ था। हालाँकि निम्नलिखित अवलोकन किए गए थे:

(i) नक्शे से पता चलता है कि गंगा धर का घर मस्जिद की दीवार को छूता था और कोई अतिक्रमण नहीं हुआ था।

(ii) उस समय तक कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता जब तक कि उस मस्जिद की दीवार ही खोद न दी गयी होती, हालांकि इस प्रकार अभिकथित नहीं किया गया था; और

(iii) 27 फरवरी 1864 के आयुक्त के पूर्व आदेश में यह निदेश दिया गया था कि हिंदुओं को मस्जिद और रामचबूतरा की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। हालांकि चूंकि अतिक्रमण साबित हुआ था, इसलिए हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं था।

688. **मोहम्मद असगर बनाम सरकार**: 22 फरवरी 1870 को मोहम्मद असगर (बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली) द्वारा प्रतिवादी को बेदखल करने की मांग करते हुए एक मुकदमा दायर किया गया था, जो एक फकीर था और उसने इमली (इमली के बाग), खंडहल और कब्रिस्तान के पेड़ों पर कब्जा कर लिया था।

यह कहा गया था कि:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(21) प्राचीन काल से ही आवेदकों और उनके पूर्वजों का 21 इमली के पेड़ों पर कब्जा रहा था;

(ii) फकीर, जो उनका नौकर था, वादियों के पूर्वजों की अनुमति से वहां पहले निवास कर रहा था;

(iii) 'शाही' अवधि के दौरान फकीर वादियों के पूर्वजों के विरुद्ध हो गया और इसलिए उसे परिसर से निकाल दिया गया; और

(iv) इसलिए पेड़ों और कब्रिस्तान से फकीर के विरूद्ध निष्कासन की एक डिक्री पारित की जानी चाहिए।

(v) 22 अगस्त, 1871 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें मस्जिद बाबर शाह मौजा कोट राम चंदर के आसपास के क्षेत्र में काबिस्तान के स्वामित्व के संबंध में मोहम्मद असगर के दावे को खारिज कर दिया गया था जबकि पेड़ों के दावे पर डिक्री दी गयी थी। आदेश में निम्नलिखित टिप्पणीयाँ थीं:

> "इमली के पेड़ों पर वादी का कब्ज़ा स्थापित किया गया, लेकिन स्वामित्व का अधिकार वादी का नहीं हो सकता क्योंकि यह मस्जिद जनस्थान के दरवाजे के सामने सामान्य कब्रिस्तान और अहाता है। इसलिए ऐसा अराज़ी (जमीन का टुकड़ा) निजी संपत्ति नहीं हो सकता है।"

689. **1873 में मूर्ति को रखना**: नवम्बर 1873 में 'जन्मस्थान के चबूतरे' पर एक मूर्ति रखी गई थी (जिसे उपायुक्त की 14 अगस्त 1877 की रिपोर्ट और आयुक्त के 18 दिसम्बर, 1877 के आदेश में निर्दिष्ट किया गया था)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) 7 नवंबर 1873 को *चरण पादुका* को हटाने का निर्देश देते हुए **मोहम्मद असगर बनाम महंत बलदेव दास** के वाद में एक आदेश पारित किया गया था जिसका अनुपालन नहीं किया गया; और

(iii) 10 नवंबर 1873 को बालदेव दास को उपायुक्त द्वारा जन्मस्थान चबूतरा पर रखी गई प्रतिमा को हटाने का निर्देश दिया गया। यह कहते हुए एक आख्या प्रस्तुत की गई कि एक अधिकारी बालदेव दास के घर गया था जो नहीं मिला था। आदेश को अन्य पुजारियों को समझाया गया, जिन्होंने कहा कि वे आदेश को पूरा नहीं कर सकते। **इन आदेशों का अनुपालन नहीं किया गया और प्रतिमा को हटाया नहीं गया।**

690. **उत्तरी द्वार (1877 में सिंह द्वार) का खुलना– मोहम्मद असगर बनाम खेम दास:** 3 अप्रैल 1877 को उपायुक्त, फैजाबाद ने हिंदुओं को विवादित भवन की उत्तरी बाह्य दीवार में नया दरवाजा (सिंह द्वार) खोलने की अनुमति दी। इस अनुमति को मोहम्मद असगर ने अपील[358] दायर करके चुनौती दी, जिसमें उन्होंने दावा किया कि:

क) मस्जिद की चारदीवारी के अन्दर प्रत्येक जगह मस्जिद है;

ख) सामान्य सिद्धांत यह है कि मस्जिद से संबंधित मामलों को मुसलमानों को 'सौंप दिया' जाना चाहिए जबकि मंदिर से संबंधित मामले हिंदुओं को सौंप दिए जाने चाहिए। इस प्रकार गेट खोलने के लिए प्रतिवादियों को दी गई अनुमति इस मूल सिद्धांत के उल्लंघन में थी;

ग) पहले 7 नवंबर 1873 को हिंदुओं को मूर्तियों को हटाने का निर्देश देते हुए एक आदेश पारित किया गया था। इसलिए जब मूर्तियों को स्थापित करने

---

358 प्रकीर्ण अपील संख्या 58

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की कोई अनुमति नहीं है , तो मस्जिद की दीवार पर एक अधिकार प्रतिवादियों को नहीं दिया जा सकता है।

घ) मस्जिद की बाहरी दीवार के दरवाजे पर अल्लाह शब्द खुदा हुआ है;

ई) जब अपीलकर्ता ने स्वयं अनुरोध किया था कि उसे अपने खर्च पर उक्त दरवाजा खोलने की अनुमति दी जाए और वह इसे खोलने के लिए तैयार और इच्छुक था, तो प्रतिवादी जो दूसरे धर्म से संबंधित थे, उन्हें अतिरिक्त दरवाजा खोलने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी; और

च) क्षेत्र पर कब्जा करने के इरादे से प्रतिवादी कई गतिविधियों में लिप्त रहा और किसी के द्वारा रोके जाने पर, आक्रामक हो जाता और उसके साथ लड़ने के लिए आमादा रहता।

14 मई 1877 को उपायुक्त द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिसमें कहा गया कि यदि दूसरा दरवाजा नहीं खोला गया, तो मानव जीवन खतरे में पड़ जाएगा क्योंकि वहां बहुत भीड़ होती थी। अंतत: 13 दिसंबर 1877 को अपील को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि बाहरी दरवाजा सार्वजनिक सुरक्षा के हितों में था। आदेश में कहा गया है कि याचिका मात्र दूसरे दरवाजे को खोलने या बंद करने के लिए 'मस्जिद के लोगों' की मर्जी पर निर्भर बनाकर हिंदुओं को क्रूद्ध करने का एक प्रयास था।

691. 1873 में एक मूर्ति की स्थापना से उत्पन्न होने वाली घटनाओं का क्रम, हिंदुओं को उत्तरी तरफ एक अतिरिक्त रास्ता खोलने की विशिष्ट अनुमति और अपील में यह टिप्पणी कि खोलने के लिए आपत्तियां निराधार थीं, महत्वपूर्ण हैं। इस स्थल पर हिंदुओं की उपस्थिति और पूजा को मान्यता दी गई और अपीलीय आदेश में मुसलमानों के प्रवेश द्वार पर नियंत्रण प्राप्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करने के प्रयास को खारिज कर दिया गया क्योंकि इससे हिंदू समुदाय उन पर निर्भर हो जाएगा। दूसरे शब्दों में, प्रशासन ने मूर्तियों के उनके उपासना करने के एक भाग के रूप में क्षेत्र पर हिंदू उपासकों के स्वतंत्र अधिकार को मान्यता दी और स्वीकार किया।

692. **मोहम्मद असगर बनाम मुसम्मात हुमैरा बीबी और सुंदर तिवारी** (1878): 3 जून 1878 को **मोहम्मद असगर बनाम मुसम्मात हुमैरा बीबी** तथा सुन्दर तिवारी और भोला तिवारी और कांशी राम के मामले में दावा याचिका सं. 2775 वर्ष 1877 में मोहम्मद असगर के पक्ष में एक डिक्री पारित की गई जिसमें मौजा बहोरपुर परगना हवेली अवध के जमींदारी अधिकारों के 3/8 वें हिस्से का दावा किया गया था। याचिकाकर्ता मोहम्मद असगर के पक्ष में अनुमति दी गई, जिसने मौजा जमींदारी बहोरपुर के भाग को खाली कराने के लिए और 10 अगस्त 1876 के एक बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए प्रार्थना की थी।

693. **मोहम्मद असगर बनाम रघुबीर दास महंत और निर्मोही अखाड़ा:** 8 नवंबर 1882 को मोहम्मद असगर (जो बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली थे) द्वारा चबूतरा और तख्त के उपयोग के लिए किराए का दावा करते हुए रघुबर दास के खिलाफ वाद संख्या 374/943 वर्ष 1882 दायर की गयी। इस वादपत्र में चबूतरा को बाबरी मस्जिद के दरवाजे के पास या मस्जिद से पहले स्थित बताया गया है। 18 जून 1883 के एक आदेश द्वारा, उप–न्यायाधीश फैजाबाद ने इस मुकदमे को खारिज कर दिया। इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि रघुबर दास को कब्जे के लिए मुतवल्ली को मुआवज़ा देने की आवश्यकता नहीं थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

694. **मोहम्मद असगर बनाम महंत रघुबर दास**[359]: 2 नवंबर 1883 को सैय्यद मोहम्मद असगर ने सहायक आयुक्त के समक्ष वाद संख्या 19435 दायर की, जिसमें कहा गया कि वह मस्जिद की दीवार की पुताई कराने का हकदार है, लेकिन रघुबर दास द्वारा बाधित किया जा रहा है। आवेदन में निम्नलिखित बिंदु महत्वपूर्ण हैं:

क) वादी प्रतिवादी की इन शिकायतों की व्याख्या करने में असमर्थ है कि मस्जिद के अहाते के भीतर जन्म स्थान चबूतरा प्रतिवादी का है। इस प्रकार प्रतिवादी का अहाते की बाहरी दीवार, कथेरा और फाटक से कोई संबंध नहीं है और ये सभी मस्जिद से संबंधित हैं;

ख) बाहरी दीवार पर अल्लाह लिखा है;

ग) जब भी मस्जिद की मरम्मत/नवीकरण/पुताई की कोई आवश्यकता उत्पन्न हुई, तो केवल आवेदक ने इसे पूरा कराया है;

घ) आवेदक/वादी ने सामग्री खरीदी है, लेकिन प्रतिवादी वहां काम करने के लिए आया है और इसलिए विवाद उत्पन्न हुआ है; और

ड़) चबूतरा और सीता रसोई को छोड़कर प्रतिवादी को कोई अधिकार नहीं है।

च) 12 जनवरी 1884 को यथास्थिति बनाए रखने और बाहरी दरवाजे को खुले रखने के लिए एक आदेश पारित किया गया.

छ) 22 जनवरी 1884 को सहायक आयुक्त, फैजाबाद ने एक आदेश पारित किया।

क) रघुबर दास को परिसर के भीतरी और बाहरी भाग में मरम्मत करने से प्रतिबंधित करना; और

---

359 वाद संख्या 19435

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ख) मोहम्मद असगर को मस्जिद के बाह्य दरवाजे को बंद नहीं करने की सलाह दी गई थी क्योंकि यह आवश्यक था कि पुराने मौजूदा आदेशों को देखा जाए और उनका अनुपालन किया जाए और उसमें कोई हस्तक्षेप न हो।

ज) बाद में 27 जून 1884 को रघुबर दास ने सहायक आयुक्त, फैजाबाद से स्थल निरीक्षण करने का अनुरोध करते हुए एक आवेदन दाखिल किया जिसमें शिकायत की गयी थी कि मुस्लिम रोक के आदेश का उल्लंघन कर रहे हैं।

1885 के वाद का प्रभाव

695. महंत रघुबर दास ने 17 x 21 फीट माप के चबूतरे पर जहाँ *चरण पादुका* थी और पूजा की जाती थी, पर एक मन्दिर के निर्माण की अनुमति माँगते हुए भारत के राज्य सचिव के विरूद्ध 1885 का वाद संस्थित किया। *पूर्व न्याय* की धारा पर, वाद की प्रकृति का विश्लेषण किया गया है और यह पाया गया है कि निर्णय सीपीसी 1908 की धारा 11 के प्रावधानों को आकर्षित नहीं करता है।

696. हालाँकि कार्यवाहियों के कुछ मुख्य पहलुओं पर ध्यान दिया जा सकता है:

(i) वाद शीर्षक में महंत रघुबर दास के नाम को "महंत जन्मस्थान अयोध्या" के रूप में उल्लेख किया गया है। वादपत्र में निर्मोही अखाड़ा के संदर्भ का न होना स्पष्ट था।

(ii) वाद स्वत्व के दावे पर आधारित नहीं था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iii) केवल चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए साधारणतया स्वीकृति प्रदान करने का अनुतोष माँगा गया था।

(iv) स्वत्व की किसी दलील के अभाव में, वाद में न्यायनिर्णयन का यह अर्थ लगाया जाना चाहिए कि वह उस बात तक सीमित है जो प्रार्थना की गई थी, अर्थात् चबूतरे पर मंदिर बनाने की अनुज्ञा तक;

(v) वाद में संलग्न नक्शा मस्जिद के अस्तित्व को उपदर्शित करता है लेकिन यह हिंदुओं द्वारा बाह्य अहाते में पूजा को भी उपदर्शित करता है। वाद में नियुक्त न्यायालय आयुक्त, गोपाल सहाय द्वारा प्रस्तुत किया गया नक्शा साथ ही 6 दिसंबर 1885 की उनकी रिपोर्ट, चबूतरे के पश्चिमी तरफ मस्जिद के अस्तित्व को दर्शाती है।

(vi) यह मुकदमा बाबरी मस्जिद के मुतवल्ली के रूप में मोहम्मद असगर ने लड़ा था, जिसने अन्य बातों के साथ दावा किया था कि:

(क) बाबर ने मस्जिद बनवायी थी जिस पर 'अल्लाह' शब्द खुदा था;

(ख) चबूतरा 1857 में बनाया गया था और इसका मुस्लिमों द्वारा विरोध किया गया था; और

(ग) पहले, निर्माण कार्यों पर रोक लगायी गयी थी।

(vii) वाद को खारिज करते हुए उप–न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया कि:

(क) रेलिंग की दीवार के निर्माण के बाद, मुस्लिम मस्जिद के अंदर और हिंदु बाहर चबूतरे पर प्रार्थना कर रहे थे।

(ख) इससे पहले, हिन्दू और मुसलमान दोनों उस स्थान पर पूजा कर रहे थे किंतु किसी विवाद से बचने के लिए दीवार खड़ी कर दी गई थी; और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ग) चबूतरा हिन्दुओं के कब्जे में था और उनसे संबंधित था।

697. अनुज्ञा को अस्वीकार करते हुए उप–न्यायाधीश ने उपदर्शित किया कि मंदिर के निर्माण की अनुमति देने से अनिवार्य रूप से यथा स्थिति बदल जाएगी जिससे शांति भंग होगी। मुकदमे को खारिज करने वाले उप–न्यायाधीश के आदेश की पहली अपील में मुख्य रूप से इस आधार पर पुष्टि की गई थी कि यथा स्थिति के किसी भी उल्लंघन से शांति बनाए रखने में गंभीर रूप से बाधा पड़ेगी। इसलिए चबूतरा के कब्जे और स्वामित्व के संबंध में निष्कर्ष निरर्थक थे और हटा दिए गए थे। दूसरी अपील में, प्रथम अपीलीय न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई थी। जबकि न्यायिक आयुक्त ने इसे दुर्भाग्यपूर्ण माना कि एक मस्जिद का निर्माण एक ऐसे स्थल पर किया गया था जिसे हिंदू भगवान राम के जन्म–स्थान मानते था, उनका विचार था कि उस स्तर पर यथा स्थिति का उल्लंघन अवांछनीय था।

698. 1885 के वाद के सभी निष्कर्षों को कार्यवाही की प्रकृति, पक्षकार जिसने अनुतोष के लिए न्यायालय का रूख किया था और इसके परिणाम के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। वाद प्रतिनिधित्व की प्रकृति का नहीं था। प्रतिनिधित्व क्षमता में मुकदमा करने की कोई अनुमति नहीं मांगी गई या प्राप्त की गई। जन्मस्थान के महंत ने अपने व्यक्तिगत अनुतोष का दावा किया। न तो स्वत्व की उद्घोषणा की माँग की गयी थी और न ही फकीरों तथा उपासकों की असुविधा को दूर करने के लिए चबूतरा पर मंदिर बनाने की अनुमति के सिवाय वाद का कोई उद्देश्य था। इसलिए वाद के परिणाम का वर्तमान कार्यवाही या स्वत्व के मुद्दे पर पक्षकारों पर कोई प्रभाव या असर नहीं पड़ेगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1934 और 1950 के मध्य घटनाएँ

1934 के सांप्रदायिक दंगे

699. 1934 में सांप्रदायिक दंगों के परिणामस्वरूप, विवादित इमारत के गुम्बदों को काफी नुकसान हुआ। मुस्लिम ठेकेदार द्वारा ब्रिटिश खर्चे पर इस इमारत का पुनरुद्धार कराया गया। इस संदर्भ में, निम्नलिखित दस्तावेजों पर अवलम्ब लिया गया है:

(क) 27 मार्च 1934 को दंगों में हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए मो. जकी और अन्य द्वारा एक आवेदन दिया गया। इस आवेदन में यह उल्लेख किया गया था कि: –

- अयोध्या के बैरागियों और हिंदुओं ने बाबरी मस्जिद पर जान–बूझकर आक्रमण किया और बहुत नुकसान पहुंचाया।
- मस्जिद की मरम्मत के लिए एक बड़ी राशि की आवश्यकता होगी।
- इसलिए यह प्रार्थना की गई कि मरम्मत की अनुमानित लागत, अर्थात् 15000 रुपये, पुलिस अधिनियम 1861 की धारा 15 के अनुसार बैरागियों और अयोध्या के अन्य हिंदुओं से वसूल किए जाएं।

(ख) दिनांक 6.10.1934 को कमिश्नर फैजाबाद ने किन्ही अन्य आपत्तियों के अधीन बाबरी मस्जिद के नुकसान के लिए मुआवजे की पूर्वोक्त राशि का भुगतान करने की अनुमति दी।

(ग) तत्पश्चात् दिनांक 22.12.1934 को जिला मजिस्ट्रेट, फैजाबाद द्वारा पुलिस अधिनियम की धारा 15क(2) के अधीन अधिरोपित जुर्माने और अयोध्या के हिन्दू निवासियों से उसकी वसूली के संबंध में सूचना प्रकाशित की गई।

(घ) इस दौरान 12 मई 1934 के एक आदेश द्वारा मुसलमानों को 14 मई 1934 से बाबरी मस्जिद की सफाई का कार्य आरंभ करने की अनुमति दी गई ताकि इसका धार्मिक प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जा सके।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

700. 1934 में हुए सांप्रदायिक दंगों के दौरान विवादित ढांचे के गुम्बद क्षतिग्रस्त हो गए। एक मुसलमान ठेकेदार द्वारा ब्रिटिश सरकार के खर्चे पर पुनरूद्धार कराया गया और मरम्मत की लागत वसूलने के लिए अयोध्या के बैरागियों और हिंदुओं पर जुर्माना लगाया गया। 12 मई 1934 को मुसलमानों को मस्जिद की सफाई शुरू करने की अनुमति दी गई ताकि इसका उपयोग धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जा सके।

मस्जिद की मरम्मत

701. मरम्मत कराने की अनुमति देने के निर्णय के चलते, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य में निम्न शामिल हैं:

(i) अपने बकाया बिलों के भुगतान के लिए उस ठेकेदार द्वारा किया गया दावा जिसने बाबरी मस्जिद की मरम्मत की थी और 1935 तथा अप्रैल 1936 के बीच भुगतान को प्रभावी करने वाले कार्यों को सत्यापित करने के आदेश; और

(ii) जुलाई 1936 और अगस्त 1938 के बीच बाबरी मस्जिद के पेश इमाम के वेतन के बकाया के लिए दावे का निस्तारण।

निर्मोहियों के बीच मुकदमा

702. 1934 के दंगों के बाद हुए घटनाक्रम के अगले चरण में वाद 95/1941 शामिल है, जिसे महंत रामचरण दास ने रघुनाथ दास और अन्य के विरूद्ध संस्थित किया था। यह मुकदमा निर्मोही अखाड़ा द्वारा दावा की गई संपत्तियों से संबंधित है, जिसमें रामचबूतरा को "जन्मभूमि मंदिर" के रूप

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में वर्णित किया गया है। मुकदमे में दी गई संपत्तियों की सूची में बाबरी मस्जिद को संदर्भित किया गया है। आयुक्त द्वारा 18 अप्रैल 1942 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। यह मुकदमा 4 जून 1942 को एक समझौता द्वारा निपटाया गया था, जिसके संदर्भ में एक डिक्री तैयार की गई थी। मुकदमा निर्मोहियों के मध्य *परस्पर* विवाद से संबंधित है। मुस्लिम पक्षकारों ने समझौते पर अवलम्बन लिया है जो बाबरी मस्जिद और कब्रिस्तान के अस्तित्व को दर्शाता है।

शिया और सुन्नी के बीच विवाद

703. 1945 में वाद 29/1945 में शिया और सुन्नी के बीच एक मुकदमेबाजी हुई जो 30 मार्च 1946 को निर्णीत हुई। शियाओं की शिकायत, जैसा कि 11 अप्रैल 1945 को उनके नोटिस में कहा गया था कि वक्फ के आयुक्त ने सुन्नी मस्जिदों की सूची में बाबरी मस्जिद को शामिल किया था। वाद पत्र में उल्लिखित है कि मस्जिद , जन्मस्थान अयोध्या में स्थित थी। मुकदमा यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया कि मस्जिद एक सुन्नी मस्जिद थी। सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने 25 नवंबर 1948 के एक पत्र द्वारा यह स्पष्टीकरण मांगा कि पिछले मुतवल्ली की मृत्यु पर अन्य व्यक्ति मस्जिद में कैसे काम कर रहा था।

ओ.8 नमाज़ का प्रमाण

704. वाद 4 में वादियों की ओर से कई गवाहों ने कहा कि वे नमाज अदा करने के लिए बाबरी मस्जिद गए थे। उनके साक्ष्य यह निर्धारित करने के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए सुसंगत हैं कि क्या विवादित संपत्ति में नमाज अदा की जा रही थी और साथ ही नमाज कितनी बार अदा की जा रही थी।

705. **मोहम्मद हाशिम (पीडब्ल्यू–1)**: गवाह की उम्र लगभग 75 वर्ष बताई गई थी। मुख्य–परीक्षा की जगह दाखिल हलफनामे में, गवाह ने कहा कि तबरी को केवल बाबरी मस्जिद में अदा किया गया था। उसने कभी–कभी पांच बार नमाज और जुम्मे तथा तबरी की नमाज अदा की थी। वह 22 दिसंबर 1949 को अंतिम नमाज़ अदा करने का दावा करता है। अपनी प्रति–परीक्षा में गवाह ने कहा कि 1938 में वह पहली बार नमाज अदा करने गया था। उसने अपनी प्रति–परीक्षा में आगे कहा कि विवादित स्थल पर प्रतिदिन पांच बार नमाज अदा की जाती थी।

अपनी प्रति–परीक्षा के दौरान, गवाह ने मस्जिद की संरचना का विवरण दिया। साक्षी बताता है कि पूर्व दिशा में कोई दरवाजा नहीं था, लेकिन उसने बाद में कहा कि पूर्वी दरवाजा उससे तीन फीट अधिक ऊँचा था। अपनी प्रति–परीक्षा में गवाह ने कहा कि उसने 22 दिसंबर 1949 को बाबरी मस्जिद में शाम 8 बजे इशा की नमाज़ अदा की थी। उसने कहा कि उसे याद है कि जब गोपाल सिंह विशारद ने 15 जनवरी 1950 को मुकदमा दायर किया था तो पूर्वी दरवाजा बंद था , लेकिन दूसरे गेट के बारे में जानकारी नहीं थी। अपनी प्रति–परीक्षा में पीडब्ल्यू–1 ने कहा कि विवादित भवन को 2 फरवरी 1986 को खोला गया था और फरवरी 1986 में ताला खोलने के अनुसरण में एक रिट याचिका दायर की गई थी। पीडब्ल्यू–1 सही जानकारी को याद करने में असमर्थ था। अपनी प्रति–परीक्षा में, उसने कहा:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"मुझे याद नहीं है कि मैंने 1986 में रिट याचिका (रिट याचिका के शपथ पत्र को गवाह को दिखाया गया था) के साथ प्रस्तुत हलफनामे में अपनी आयु 55 वर्ष उल्लिखित की थी।"

जब ताला खोलने के अनुसरण में दायर रिट याचिका के बारे में पूछा गया, तो गवाह ने प्रति–परीक्षा में निम्नलिखित कहा:

"यह सही है कि मेरी स्मृति वृद्धावस्था के कारण कमजोर है, लेकिन हमारे अधिवक्ता को इसकी जानकारी हो सकती है।"

साक्षी यह याद कर पाने में असमर्थ था कि उसकी दो शादियाँ कब हुईं थी। वह अपनी बेटी की उम्र याद कर पाने में असमर्थ था। प्रति–परीक्षा में गवाह की स्मृति में चूक से मुख्य–परीक्षा की जगह हलफनामे में निहित बयानों पर संदेह उत्पन्न होता है।

706. **हाजी महमूद अहमद (पीडब्ल्यू–2)**: गवाह की मुख्य परीक्षा की तिथि 17 सितंबर 1976 है। साक्षी लगभग 58 साल का था। गवाह ने कहा कि उसने विवादित संपत्ति में सौ से अधिक बार नमाज अदा की थी। गवाह ने कहा कि वह बाबरी मस्जिद में शुक्रवार की नमाज को छोड़कर पांच बार की नमाज अदा कर रहा था। उसके द्वारा अंतिम नमाज 22 दिसंबर 1949 को अदा की गई थी। उसके विवरण के आधार पर, जब तक वह नमाज अदा करता था तब तक नमाज अदा करने पर कोई प्रतिबंध नहीं था, उसने कभी मस्जिद के अंदर पूजा होते हुए नहीं देखा था।

अपनी प्रति–परीक्षा में गवाह ने कहा कि जब वह समझदार हुआ (10–11 वर्ष की आयु में) उसने देखा कि लोग अक्सर विवादित संपत्ति आते थे। हालांकि उसने कहा कि उसने इस रास्ते का प्रयोग नहीं किया था, इसलिए वह यह नहीं कह सकता कि लोगों के आने–जाने पर वहाँ कोई प्रतिबंध था

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

या नहीं। अपनी प्रति–परीक्षा में गवाह ने कहा कि उसने 1961 में हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की जब वह 21 वर्ष का था, और प्रमाण पत्र उसकी जन्म तिथि 1944 दर्शाती है। अपनी प्रति–परीक्षा में उसने स्वीकार किया कि हाई स्कूल पूरा होने पर उसकी आयु 21 साल होने का उसका बयान कुछ गलतफहमी के कारण था।

पीडब्ल्यू–2 के बयान में उसकी उम्र के संबंध में एक स्पष्ट विसंगति है, जो उसकी गवाही पर संदेह पैदा करती है। यदि उसका जन्म का वर्ष 1944 है जैसा कि उसके हाई स्कूल प्रमाण पत्र में कहा गया है, तो यह विश्वास करना मुश्किल है कि 1949 में जब मस्जिद कुर्क हुई थी, एक व्यक्ति जो पांच वर्ष की बाल्य आयु में मस्जिद गया था, उसके पास 47 साल पहले देखे गए मस्जिद की सटीक यादें होंगी।

707. **फारूक अहमद (पीडब्ल्यू–3)**: साक्षी की आयु लगभग नब्बे वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि वह बाबरी मस्जिद में नमाज अदा किया करता था। साक्षी ने कहा कि जब भी उसने अजान सुनी, फैजाबाद जाते समय या वापस आते हुए, वह नमाज के लिए गया, चाहे जो भी समय हो। उन्होंने दिसंबर 1949 में अंतिम बार नमाज़ अदा की थी। सूचित किए जाने के बाद कि कुछ दिक्कत हो सकती है, दरवाजा बंद करने के लिए कहा गया। उसने दरवाजा बंद कर दिया और चाबी अपने पास रखी।

साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि उसने अपने पिता के साथ 28 साल की उम्र में नमाज़ अदा करना शुरू किया। साक्षी ने आगे कहा कि वह 22 दिसंबर 1949 की घटना से 10 साल पहले से विवादित संपत्ति में नमाज

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अदा करने के लिए आने वाले लोगों को देख रहा है। साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि उसके पिता मस्जिद का प्रबंधन करते थे।

अपनी प्रति–परीक्षा में, गवाह ने कहा कि 22 दिसंबर 1949 को जुमे–रात थी, जब वह नमाज अदा करने गया था क्योंकि यह एक 'मगरिब नमाज' थी जो इसे अदा करने पर 27 गुना शवाब (आशीर्वाद) देती है। साक्षी ने कहा कि वह प्रातः काल, समूह में नमाज अदा करने भी गया था। उसने प्रतिदिन मगरिब और ईसा नमाज़ में भाग लिया। वह प्रातःकाल बाबरी मस्जिद में सामूहिक नमाज़ अदा करने जाता था। प्रति–परीक्षा में, उसने कहा कि उसने अंतिम नमाज़ ईशा नमाज अदा की थी, जो लगभग 20/22 दिसंबर 1949 को हुई थी। उसने आगे कहा कि जब वह दरवाजे पर ताला लगाने गया तो मोअज़्ज़िन फर्श पर सो रहे थे। साक्षी ने स्पष्ट किया कि अपने पहले के बयान में, उसने गलती से कहा था कि उसने मध्य दरवाजे को बंद कर दिया था। उसने कहा कि उसने दोनों दरवाजों पर अलग–अलग ताले लगाये थे।

साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि उसने 1990 में वाद में एक पक्षकार बनने के लिए याचिका दायर की थी। उसने आगे कहा कि उसने हलफनामे को देखा था जिसमें उसके अंगूठे का निशान है, लेकिन हस्ताक्षर उनसे संबंधित नहीं है। महत्वपूर्ण रूप से, साक्षी ने कहा कि उम्र 65 वर्ष लिखी गई थी, लेकिन उसने अनुमानित उम्र का उल्लेख किया था।

प्रति–परीक्षा में गवाह ने स्वीकार किया कि 18 मार्च 1986 के एक आवेदन में, उसकी उम्र 60 साल, हलफनामे में अभिलिखित हो सकती है:

> "अपने हलफनामे में मैंने अपनी उम्र लगभग 60 वर्ष दर्ज करायी। वर्तमान में मेरी उम्र लगभग 90 वर्ष है। मेरी उम्र के बारे में बयान सही है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिवक्ता ने मेरी उम्र हलफनामे में लगभग दर्ज की होगी। 1896 में प्रस्तुत मेरे आवेदन, केवल वहां खारिज कर दिए गए थे।"

गवाह का बयान यह था कि वह बीस साल की उम्र में मस्जिद जाने लगा था। यदि दूसरे हलफनामे में यथा निर्दिष्ट गवाह की अनुमानित आयु (अर्थात् 1986 में साठ वर्ष) को स्वीकार कर लिया जाए, तो गवाह 1954 में 28 वर्ष का होगा। उसने स्पष्ट रूप से कहा कि उसने अट्ठाइस वर्ष की आयु में नमाज अदा करने के लिए मस्जिद जाना शुरु किया था। उस स्थिति में, जब 1949 में मस्जिद को स्वीकार्यतः कुर्क कर लिया गया तो गवाह 1954 में मस्जिद में नमाज अदा करने में असमर्थ होगा।

708. **मोहम्मद यासीन (पीडब्ल्यू–4)**: गवाह की मुख्य–परीक्षा की तिथि 17 अक्टूबर 1996 थी। गवाह की उम्र 66 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने बताया कि उसने बाबरी मस्जिद में जुमे की नमाज अदा की। महत्वपूर्ण रूप से, गवाह ने कहा कि वह स्थल पर निरंतर शुक्रवार की नमाज अदा कर रहा है और विवादित संपत्ति पर जुमे की नमाज़ को छोड़कर कोई अन्य नमाज नहीं अदा कर रहा है। अपनी प्रति–परीक्षा में, गवाह ने कहा कि उसने स्वतंत्रता से पांच साल पहले मस्जिद जाना शुरू कर दिया था। साक्षी की गवाही के अनुसार, उसके पिता शुक्रवार की नमाज अदा करने के लिए बाबरी मस्जिद जाते थे। गवाह के अनुसार, शहर के बड़े मस्जिदों में शुक्रवार की नमाज अदा की जाती है। सन् 1949 से पहले शुक्रवार की नमाज या तो बाबरी मस्जिद में या केवारे वाली मस्जिद में अदा की गयी। उन्होनें कहा कि 400–500 लोग बाबरी मस्जिद में जुमे की नमाज अदा किया करते थे। यदि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संख्या अधिक हो गई है, तो लगभग 1000 लोग एक साथ नमाज अदा कर सकते हैं।

गवाह ने विवादित संपत्ति के साथ–साथ वहां किए गए धार्मिक कृत्यों का विवरण दिया है। प्रति–परीक्षा के दौरान, जब गवाह का ध्यान 1989 के वाद में नक्शे की ओर आकर्षित किया गया था, तो उन्होंने कहा कि उन्होंने मानचित्र को देखा था, लेकिन मानचित्र के बारे में कुछ भी नहीं पता था और इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता था। गवाह ने कहा कि जब भारत को स्वतंत्रता मिली, तो वह 11–12 साल का था (फिर कहा कि वह उस समय 17 साल का था)। उन्होंने कहा कि हालांकि उनकी स्मृति कमजोर हो गई है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह पुरानी घटनाओं को याद करने में असमर्थ हैं।

709. न्यायमूर्ति अग्रवाल ने पीडब्ल्यू–4 के कथनों और अन्य साक्षियों के कथनों में कई विरोधाभास इंगित किए हैंः

> "2484. जब उनका बयान पीडब्ल्यू 1, जो वाद 4 में वादी संख्या 7 है, के बयान के विरोधाभासी पाया गया तो उन्होनें यह कहते हुए स्वयं को उचित ठहराया कि पीडब्ल्यू 1 ने गलत बयान दिया होगा जैसा कि निम्नलिखित से स्पष्ट है:
> "यदि श्री हासिम ने ऐसा कोई बयान दिया है कि पुजारीगण उक्त छप्पर के नीचे बैठा करते थे, तो उनका बयान गलत है।"
> यदि हाजी महबूब ने कहा है कि वैरागियों ने पिछले 15–20 दिन से इस स्थल को एक तरफ से घेर लिया था, तो यह बयान गलत है।"
> "श्री ज़की 1949 की घटना तक मुतवल्ली थे। उनके बाद श्री जव्वाद मुतवल्ली बने... यदि श्री फारूख ने ऐसा कोई बयान दिया है कि श्री जहूर घटना के समय मस्जिद का प्रबन्ध करते थे, तो इसके सही या गलत होने का दायित्व उन पर है। मैं केवल इतना जानता हूँ कि मस्जिद का प्रबन्ध श्री जक़ी द्वारा किया जाता था।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "यदि श्री हासिम ने बयान दिया है कि उन्होनें केवल 1966 से 1976 के बीच सिलाई का काम किया था, तो यह गलत बयान है।"

उनकी कमजोर याददाश्त के बारे में उनकी स्वयं स्वीकृति और साथ ही साथ अन्य विरोधाभासों के आलोक में, मुख्य–परीक्षा द्वारा दाखिल हलफनामें की अन्तर्वस्तु को सावधानी के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

710. **अब्दुल रहमान (PW 5):** साक्षी की आयु 71 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि उसने वर्ष 1945 और 1946 में बाबरी मस्जिद में पवित्र कुरान पढ़ी थी। PW–5 अयोध्या का निवासी नहीं है और उसका गांव 18–19 किलोमीटर दूर है। साक्षी ने कहा कि उसने दो वर्ष तक अयोध्या में पवित्र कुरान पढ़ा है। जब वह पवित्र कुरान पढ़ने जाता था तो बाबरी मस्जिद में शुक्रवार की नमाज पढ़ता था। अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसे पहली बार अयोध्या जाना याद नहीं है। बाद में प्रति–परीक्षा के दौरान साक्षी ने कहा:

> "जब मैं पहली बार कुरान शरीफ पढ़ने गया तो वह रमजान के महीने का पहला दिन था (फिर कहा कि वह 29 शाबान को वहाँ पहुँचा था और यदि उस रात चाँद दिखाई देता तो मैं कुरान शरीफ पढ़ता।) मुझे ठीक से याद नहीं कि किस दिन वह विशेष दिन कौन सा था (फिर कहा कि वह 29 शाबान को अयोध्या पहुंचा था)।"

साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि जब वह कुरान शरीफ पढ़ने के लिए अयोध्या गया तो वह अपने संबंधी हाजी फेकू (पीडब्ल्यू–2 के पिता) के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साथ बारह दिनों तक रूका था। साक्षी ने कहा कि दोनों ही मौकों पर जब वह अयोध्या आता था तो गर्मी होती थी और वह तेज गर्मी के कारण पवित्र कुरान पढ़ने के लिए भवन में प्रवेश नहीं कर सकता था। बाह्य अहाते का उपयोग पवित्र कुरान पढ़ने के लिए किया जाता था। साक्षी ने यह भी कहा कि मस्जिद के अंदर उसने दूसरे आंतरिक अहाते में कुरान शरीफ पढ़ी थी। साक्षी ने कहा कि उसने एक बार बाबरी मस्जिद में नमाज अदा की थी।

साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि ब्रिटिश शासन के दौरान वह पहली बार पवित्र कुरान पढ़ने के लिए अयोध्या गया। उसने अपनी प्रति–परीक्षा में आगे कहा कि जब बारह दिनों के लिए उसने पवित्र कुरान पढ़ी और इन दो अवसरों के अलावा वह कभी बाबरी मस्जिद नहीं गया। वर्ष 1946 में जब वह कुरान शरीफ पढ़ने गया तो उसने रात 9 बजे प्रारम्भ किया और उसे सुनने लगभग 80–100 लोग आते थे। साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि वह मस्जिद जाने का वर्ष नहीं बता सकता जहां उसने पवित्र कुरान पढ़ी है और यह केवल अनुमान ही होगा। साक्षी का कथन नमाज पढ़ने के समय को नहीं बताता है जब नमाज पढ़ी जा रही थी। जब वह मस्जिद में इबादत कर रहा था उस वर्ष या वर्षों के सन्दर्भ में इस साक्ष्य को इस कैविएट के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

711. **मो. यूनिस सिद्दीकी (पीडब्ल्यू–6):** साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 28 नवंबर 1996 है। साक्षी की आयु 63 वर्ष बताई गई थी। साक्षी दिनांक 9 जुलाई 1955 को एक अधिवक्ता के रूप में लखनऊ में नामांकित था। साक्षी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ने कहा कि जब वह 12–13 साल का था तब वह अपने बड़े भाई के साथ पहली बार शब–ए–रात की रात में बाबरी मस्जिद के अंदर गया था। वह कहता है:

> "इसके बाद मैं प्रत्येक शब–ए–रात की रात में मस्जिद जाता था। मैं दिन में भी मस्जिद जाता था। मैंने दिन के समय में केवल एक बार नमाज पढ़ी है परन्तु शब–ए–रात के अवसर पर नफले पढ़ी है। मैंने उसी दिन, दिन में नमाज़ अदा की थी जब मूर्तियाँ वहां रखी गई थीं। इससे पहले कि जुम्मा (शुक्रवार) नमाज़ अदा की जाती थी।"

प्रति–परीक्षा में उसने स्वीकार किया कि वह वर्तमान वाद में शामिल था परन्तु यह कहा कि वह वाद में वादीगणों द्वारा केवल मूकदर्शक के रूप में था। उसे वर्ष 1961 से पूर्व मामले से संबंधित कागजात देखने का अवसर नहीं मिला। साक्षी ने कहा कि उसने वर्ष 1949 से पूर्व कभी हिंदू पूजा नहीं देखी थी। उसकी स्मृति के संबंध में साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में निम्नलिखित स्वीकारोक्ति की:

> "... मेरी स्मृति कमजोर है। यह कमजोरी वर्ष 1986 से प्रारम्भ हुई थी। यह सत्य है कि अब मैं कभी–कभी अपने बेटों के नाम भी भूल जाता हूं। मेरे 5 बेटे हैं, मैं उन्हें पहचानता हूँ। उस समय यानी 1987 से मेरी दृष्टि कमजोर हो गई है। उस समय मेरे सिर में चोट लगी थी।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

712. **हसमत उल्लाह अंसारी (पीडब्ल्यू–7):** साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि दिनांक 5 दिसंबर, 1996 थी। साक्षी की आयु लगभग 65 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि उसका जन्म वर्ष 1932 में अयोध्या में हुआ था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उसने कहा कि उसकी जन्म तिथि 8 जनवरी 1934 बताई गई है लेकिन यह गलत है। अपनी जन्मतिथि के संबंध में साक्षी ने अपनी प्रति –परीक्षा में निम्नलिखित कथन किया:

> "जब मेरी शिक्षा पूर्ण होने पर फोफस कॉलेज से प्रमाण पत्र मिला तो मुझे पता चला कि मेरी जन्म तिथि गलत उल्लिखित हुई है। मैंने इस गलती को सुधारने के लिए कोई कदम नहीं उठाया।"

साक्षी ने वर्ष 1996 में अपनी आयु 65 बताई है और उसके अनुसार उसके जन्म का वर्ष 1931 होना चाहिए। उसने कहा कि वह सैकड़ों बार बाबरी मस्जिद में नमाज अदा की है और सबसे पहले वर्ष 1943 में नमाज पढ़ी थी। साक्षी ने कहा कि मूर्तियों की स्थापना से एक सप्ताह पहले तक वह नियमित रूप से वहां नमाज पढ़ रहा था। अपनी प्रति–परीक्षा में उसने कहा:

> "मैंने 22 दिसंबर 1949 को इस मस्जिद में नमाज नहीं पढ़ी थी। मैंने 21 दिसंबर, 1949 को भी वहां नमाज नहीं पढ़ी थी। मैंने अपने कथन को सही किया है कि मैं मूर्ति के रखने से एक सप्ताह पहले तक शायद ही कभी वहां नमाज पढ़ी थी। वहां मैंने पांचों वक्त की नमाज नहीं पढ़ी लेकिन निश्चित रूप से अस्र की नमाज पढ़ी।"

साक्षी ने कहा कि 22 दिसंबर, 1949 से पहले विवादित संपत्ति पर नमाज अदा की गई थी। साक्षी ने कहा कि इस मस्जिद में पांच बार जुमे की नमाज़ के साथ–साथ नमाज भी अदा की गई थी। रमजान के दौरान, बाबरी मस्जिद में तराबी नमाज़ अदा की गई। साक्षी ने कहा कि दिनांक 22 दिसंबर तक उसने मस्जिद में कोई मूर्ति नहीं देखी थी और न ही किसी को वहां पूजा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करते देखा था। उसने कहा कि उसने पूजा करने के लिए किसी हिंदू को जाते हुए नहीं देखा था। अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि वह मस्जिद में नियमित रूप से नमाज अदा कर रहा था। जब उसने वर्ष 1943 में पहली बार नमाज़ अदा की तो वह 11–12 वर्ष का था।

साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि मूर्तियों को रखने से दो दिन पूर्व उसने अस्र की नमाज पढ़ी थी और वहाँ पर 8–10 लोग मौजूद थे। अस्र की नमाज पढ़ने से पूर्व जुमे की नमाज पढ़ी थी जिसमें 400–500 लोग मौजूद थे। साक्षी ने अपनी प्रति–परीक्षा में विवादित संपत्ति का विस्तृत विवरण दिया।

713. **श्री अब्दुल अजीज (पीडब्ल्यू–8):** मुख्य परीक्षा की तिथि 20 जनवरी, 1997 थी। साक्षी की आयु 70 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा है कि उसका जन्म वर्ष 1926 में हुआ था और वह लगभग 10 वर्ष का था जब उसने पहली बार मस्जिद में नमाज पढ़ी थी। उसने कहा कि उसने सैकड़ों बार नमाज़ पढ़ी है। साक्षी ने कहा है कि उसने मस्जिद में 'शुक्रवार नमाज', 'जोहर नमाज', ' अस्र नमाज' और 'शबे–ए–रात की नमाज' पढ़ी है। साक्षी ने कहा कि वर्ष 1949 में एक मूर्ति रखने के बाद नमाज पढ़ना बंद हो गया था।

अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसने दिनांक 22 दिसंबर से ठीक पहले शुक्रवार को अंतिम नमाज पढ़ी थी। मस्जिद में पहली नमाज पढ़ने के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दो–तीन वर्ष बाद इस मस्जिद में शबे–रात की नमाज भी पढ़ी गई थी। साक्षी के अनुसार स्वतंत्रता तक वह पिछले 13–14 वर्षों से नमाज पढ़ रहा था।

714. **श्री सैय्यद अखलाक अहमद (पीडब्ल्यू–9):** साक्षी की आयु लगभग 60 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि उसने मस्जिद में जुमे की नमाज और पांचवक्ती नमाज पढ़ी थी। मौलाना अब्दुल गफ्फार बाबरी मस्जिद के इमाम थे और मियां इस्माइल मोअज़्ज़िन थे। उन्होंने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि जहां तक उसे याद है मस्जिद में पढ़ी गई पहली नमाज स्वतंत्रता के बाद थी और यह नमाज़–ए–मगरीब थी। उन्होंने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि वह दिनांक 22–23 दिसंबर, 1949 से पांच या छह दिन पहले मस्जिद में नमाज पढ़ने गए थे। उपस्थित व्यक्तियों की सं. 200 से 400 या यहां तक कि 500 भी हो सकती है। अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी के कथन के अनुसार वह 13–14 वर्ष का रहा होगा जब उसने पहली बार नमाज–ए– मगरीब पढ़ने गया था। उसने आगे कहा कि जब उसने मस्जिद में अपने अंतिम नमाज़–ए–जुम्मा पढ़ी तो वह 14 वर्ष का था। हालांकि साक्षी ने कहा कि उसने वर्ष 1947 के बाद नमाज पढ़ी थी, वह अनुमानित अवधि भी नहीं बता सकता था जब उसने नमाज पढ़ी थी। न्यायमूर्ति अग्रवाल ने नोट किया कि साक्षी अपनी स्मृति से उन घटनाओं को स्मरण करने में असमर्थ था।

715. **जलील अहमद (पीडब्ल्यू–14):** साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 16 फरवरी, 1999 थी। साक्षी की आयु 78 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि उसने बाबरी मस्जिद में नमाज पढ़ी है। उसकी प्रति–परीक्षा में यह सामने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आया कि अयोध्या उसके घर से 2 किलोमीटर की दूरी पर है। साक्षी ने कहा कि उसने मस्जिद में इशा और जुम्मा दोनों नमाज़ पढ़ी है।

उसके कथन के अनुसार साक्षी फैजाबाद में मोहल्ला निवावा में स्थित जिन्नाती मस्जिद की देखभाल करता है। साक्षी ने अपने प्रति–परीक्षा में कहा कि उसने आखिरी बार 24–25 वर्ष की आयु में बाबरी मस्जिद में नमाज पढ़ी थी। उसने कहा कि उसने कई अवसरों पर विवादित स्थल में जुमे की नमाज़ पढ़ी थी। उसने कहा कि उसने विवादित स्थल पर तराबी की नमाज नहीं पढ़ी थी। अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने विवादित संपत्ति का विवरण दिया।

अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि वह लगभग 78 वर्ष का है और यह नहीं बता सकता है कि मूर्ति रखे जाने और जुमे की नमाज़ पढ़ने से पहले उसने कितनी लम्बी अवधि तक नमाज पढ़ी है। उसने कहा कि वह यह नहीं बता सकता है कि वह दो माह से या पिछले पांच से छह वर्ष से विवादित संपत्ति में नमाज पढ़ रहा था।उसने आगे कहा कि उसने एक बार विवादित स्थल पर इशा नमाज़ पढ़ी थी।

716. **डा. हाशिम क़िदवई (पीडब्ल्यू–21):** साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 22.11.01 बताई गई थी। साक्षी की आयु लगभग 80 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि वह दिसंबर 1939 में पहली बार फैजाबाद गया जब उसके पिता फैजाबाद में तैनात थे। उस माह वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ बाबरी मस्जिद को देखने गया और स्थल पर मगरीब नमाज पढ़ी। साक्षी ने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कहा कि वर्ष 1941 तक वह हर छुट्टी पर फैजाबाद जाता था। अक्टूबर 1941 में साक्षी के पिता को अपर सिटी मजिस्ट्रेट के रूप में लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया था। साक्षी ने कहा कि इस अवधि के दौरान उसने मस्जिद में 15–20 बार आसिर की नमाज़ 4 से 5 बार और शुक्रवार की नमाज 2–3 बार पढ़ी थी। मगरीब–की–नमाज़ में लगभग 100 व्यक्तियों ने, आसिर नमाज में 40–50 व्यक्तियों ने भाग लिया और लगभग 250–300 व्यक्तियों ने जुम्मा नमाज़ पढ़ी थी। साक्षी ने कहा कि वर्ष 1984 में उसे राज्य सभा का सदस्य चुना गया और वह छह वर्ष तक संसद सदस्य बना रहा।

उसने अपनी प्रति–परीक्षा में कहा कि जब वह 1939 में पहली बार नमाज अदा करने गया था तो उसने मस्जिद के क्षतिग्रस्त हिस्सों के संबंध में कोई विशेष जांच नहीं की। उसने कहा कि 27 दिसंबर, 1939 में वह पहली बार विवादित ढाँचे में गया था। साक्षी ने बाद में कहा कि जब वह पहली और दूसरी बार विवादित संपत्ति में गया तो उसने भवन के हर हिस्से को अंदर और बाहर से देखा था। उसने वर्तमान गुम्बद एवं स्तंभों का विस्तृत वर्णन किया है। उसने कहा कि नमाजी गुंबदाकार ढाँचे के साथ–साथ अहाते में भी मौजूद थे।

अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि वह मई 1941 से फैजाबाद या अयोध्या नहीं जा सका है। दिसंबर 1939 और मई 1941 के बीच वह स्थायी रूप से फैजाबाद में नहीं रह रहा था और छुट्टियों के दौरान कभी कभी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वहां जाता था। प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसने विवादित संपत्ति को बाहर और अंदर से देखा है लेकिन चारदीवारी के बारे में विस्तार से नहीं बता सकता है, क्योंकि 60–62 साल की लंबी अवधि बीत चुकी थी।

717. **मो. कासिम अंसारी (पीडब्ल्यू–23) (पीडब्ल्यू–1 का भाई):** मुख्य परीक्षा की तिथि 16 जनवरी 2002 थी। साक्षी की आयु 74 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने कहा कि उसे विवादित संपत्ति के बारे में पता था जो उसके घर से 3 फर्लांग की दूरी पर स्थित था। साक्षी ने कहा कि उसने लगभग 8–9 वर्षों से मस्जिद में नमाज पढ़ी थी। उसने फ़ाज़िर ज़ोहर, अस्र, मगरीब, इशा और तराबी की नमाज पढ़ी थी। उसने कहा कि उसने आखिरी बार दिनांक 22 दिसंबर, 1949 को नमाज पढ़ी थी जब उसने इशा की नमाज़ पढ़ी थी। उसने कहा कि मूर्तियों को रखने के चार वर्ष बाद, मुस्लिमों ने सरकार को नोटिस दी कि वे वहां अलविदा नमाज पढ़ेंगे। जब वे अलविदा नमाज पढ़ने गए तो पुलिस ने उन्हें रोका और गिरफ्तार कर लिया। प्रति–परीक्षा में कहा कि जब वह पहली बार नमाज पढ़ने गया था तब वह पहली कक्षा में था।

अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि विवादित स्थल एक वक्फ है, परन्तु उसे इस विषय में कोई ज्ञान नहीं है कि मस्जिद का वक्फ कौन है। अपनी प्रति–परीक्षा में साक्षी ने कहा कि उसने विवादित मस्जिद में दिनांक 22 दिसंबर, 1949 को शाम के लगभग 7:30 बजे इशा की नमाज़ पढ़ी थी। बाद में उसने कहा कि विवादित ढाँचे में अंतिम बार नमाज पढ़ने के विषय में वह नहीं बता सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पीडब्ल्यू–23 के कथनों के संबंध में न्यायमूर्ति अग्रवाल की अवलोकनों का उल्लेख करना प्रासंगिक है। उन्होंने पीडब्ल्यू–23 द्वारा दिए गए निम्नलिखित कथन को नोट किया:

> "जब मैं पिछली बार विवादित ढाँचे पर इशा की नमाज पढ़ने गया था तो फारूक मेरे साथ था.....दिनांक 22 दिसंबर, 1949 को 'इशा' की नमाज़ पढ़ने में हशमत उल्लाह के साथ भी मैं था।"

न्यायमूर्ति अग्रवाल ने नोट किया कि फारूक (पीडब्ल्यू–3) और हशमत उल्लाह (पीडब्ल्यू–7) द्वारा कथन की संपुष्टि नहीं की गई थी।
पीडब्ल्यू–3 ने कहा था:

> "दिनांक 22 दिसंबर 1949 को इशा नमाज़ में रहमान साहब और यूनुस साहब मेरे साथ थे।"
> इसलिए, पीडब्ल्यू–3 पीडब्ल्यू–23 के कथन की पुष्टि नहीं करता है।
> इस प्रकार PW–7 ने कहा था:
>
> "मैंने आखिरी बार मस्जिद में उस घटना से दो दिन पहले ही नमाज पढ़ी थी जब मूर्ति वहां रखी गई थी।"
>
> "मैंने दिनांक 22 दिसंबर 1949 को इस मस्जिद में नमाज नहीं पढ़ी।"
>
> "मैंने दिनांक 22 दिसंबर, 1949 को वहां भी नमाज नहीं पढ़ी।"

718. **सिब्ते मोहम्मद नकवी (पीडब्ल्यू–25):** साक्षी की मुख्य परीक्षा की तिथि 5 मार्च, 2002 थी। साक्षी की आयु 76 वर्ष बताई गई थी। साक्षी ने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ढाँचे को दूर से देखा था। उसने कहा कि वह वर्ष 1948 में अयोध्या आया था और उसने बाबरी मस्जिद में जाने वाले नमाजियों को देखा था। साक्षी ने कहा कि उसने किसी को भी विवादित संपत्ति पर नमाज पढ़ते नहीं देखा था। चूंकि साक्षी स्वयं विवादित संपत्ति में नहीं गया है या वास्तव में किसी को स्थल पर नमाज पढ़ते देखा है, पीडब्ल्यू–25 द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अनुश्रुत हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि वाद 4 में वादीगणों के लिए दिये जाने वाले बयान कुछ साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभास और विसंगतियां हैं। हालांकि, सामान्य स्मृति विफलता को छोड़कर न्यायालय को सशक्त तरीके से कथनों का आकलन करना चाहिए। साक्षियों द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में दायर शपथपत्रों में से कई कथनों में व्यापक दावे और सामान्यीकरण हैं जो प्रति–परीक्षा के दौरान मान्य नहीं हैं। कथनों का आकलन करते हुए यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि विवादित संपत्ति पर नमाज नहीं पढ़ी जा रही थी। साक्ष्य में मौखिक कथनों का दस्तावेजी साक्ष्य के साथ मूल्यांकन किया जाना है। वक्फ निरीक्षक मोहम्मद इब्राहिम की 10 दिसंबर 1949 दिनांकित की रिपोर्ट यह नोट करती है कि:

> **"मुझे ज्ञात हुआ कि हिंदुओं और सिखों के भय से कोई भी व्यक्ति मस्जिद में नमाज़ नहीं पढ़ता।** यदि कोई व्यक्ति रात के समय मस्जिद में रहता है तो उसे हिन्दुओं द्वारा बहुत सताया जाता है। अहाते के बाहर हिंदुओं का एक मंदिर है जहां कई हिंदू रहते हैं। वे किसी भी मुस्लिम को अपशब्द कहते हैं जो मस्जिद जाते हैं। मैं स्थल गया और जाँच में पाया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> कि जो कुछ भी ऊपर कहा गया है वह सही है। लोगों ने यह भी कहा कि इसकी दीवारों को कमजोर करने के रूप में हिंदुओं से मस्जिद को खतरा है। फैजाबाद के उपायुक्त को लिखित रूप में प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है कि **मस्जिद में नमाज़ पढ़ने वाले मुस्लिमों को परेशान नहीं किया जाना चाहिए**...."
>
> (प्रभाव वर्धित)

रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि मस्जिद में मुस्लिमों द्वारा इबादत करने को हिंदुओं और सिखों द्वारा बाधित की जा रही थी और कोई भी नमाज नहीं पढ़ी जा रही थी।

वक्फ निरीक्षक की 23 दिसंबर 1949 दिनांकित की एक और रिपोर्ट है जिसमें कहा गया कि वह दिनांक 22 दिसंबर 1949 को बाबरी मस्जिद और कब्रिस्तान की स्थिति की जांच करने गया था। उन्होंने नोट किया कि बाबा रघुनाथ के जन्मस्थान जाने के तीन माह और उनके निकलने के एक माह बाद से ही हजारों हिंदुओं, पुजारियों और पंडितों को रामायण पाठ करने के लिए वहां इकट्ठा किया गया। रिपोर्ट में कहा गया था:

> "... अब मस्जिद बन्द है। **जुमे के दिन और वक्त को छोड़कर कोई भी अजान को करने की और न ही नमाज़ पढ़ने की अनुमति है। ताले और चाबियां मुस्लिमों के पास रहती हैं।** लेकिन पुलिस उन्हें ताला खोलने की अनुमति नहीं देती है। यह ताला जुमा के दिन यानी शुक्रवार को दो या तीन घंटे के लिए खोला जाता है। इस दौरान मस्जिद को साफ किया जाता है और जुमे की नमाज पढ़ी जाती है। इसके बाद हमेशा की तरह इसे बंद कर दिया जाता है... आज यही जुमे का शुक्रवार है...।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वक्फ इंस्पेक्टर की रिपोर्ट कई गवाहों के दावे पर विश्वास करती है कि उन्होंने दिनांक 22 दिसंबर 1949 को नमाज पढ़ी थी। उपरोक्त रिपोर्ट में कहा गया है कि दिनांक 23 दिसंबर 1949 जुमे का दिन था। यह यथोचित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अंतिम जुमे की नमाज शुक्रवार 16 दिसंबर 1949 को पढ़ी जानी चाहिए थी। यह मानने के लिए अभिलेख पर साक्ष्य हैं कि मुस्लिमों ने मस्जिद में शुक्रवार की नमाज अदा की थी और विवादित संपत्ति को पूरी तरह से खोया अथवा छोड़ा नहीं था।

0.9 1949 में मूर्तियों को रखना

719. दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की मध्यरात्रि के दौरान हिन्दू समुदाय के लगभग पचास से साठ व्यक्तियों ने बाबरी मस्जिद के केन्द्रीय गुंबद के नीचे मूर्तियाँ रखीं। इस घटना के पहले और बाद की घटनाएँ नीचे दी गई हैं:

(i) 12 नवंबर, 1949 को पुलिस दल की तैनाती;

(ii) फैजाबाद के पुलिस अधीक्षक ने उपायुक्त के के नायर और जिलाधिकारी को 29 नवंबर, 1949 दिनांकित को यह आशंका व्यक्त करते हुए पत्र जारी किया था कि हिन्दुओं द्वारा मस्जिद में मूर्तियों को स्थापित करने के उद्देश्य से प्रवेश किए जाने की संभावना है;

(iii) वक्फ निरीक्षक की 12 दिसंबर, 1949 दिनांकित की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि जब वे मस्जिद में इबादत करना चाहते थे तब हिंदुओं द्वारा मुस्लिमों को परेशान किया जा रहा था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) उत्तर प्रदेश सरकार के गृह सचिव को उपायुक्त और जिलाधिकारी के 6 दिसंबर, 1949 दिनांकित के एक पत्र में राज्य सरकार से अनुरोध किया गया है कि वह मस्जिद की सुरक्षा के संबंध में मुस्लिमों की आशंकाओं को विश्वसनीयता न दें;

(v) दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की घटना के पश्चात् प्राथमिकी दर्ज की गई;

(vi) मुख्य सचिव को के के नायर का 26 दिसंबर, 1949 दिनांकित का एक पत्र जिसमें उस घटना पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था जो घटित हुई थी। जिलाधिकारी ने मस्जिद से मूर्ति हटाने के राज्य सरकार के आदेशों का पालन करने से इनकार कर दिया।

(vii) के के नायर के पत्र 27 दिसंबर, 1949 दिनांकित में कहा गया है कि वे ऐसा कोई हिन्दू नहीं पाएंगे जो मूर्तियों को हटाने का कार्य करेगा और यह प्रस्ताव करेगा कि मस्जिद को पुजारियों की न्यूनतम संख्या के अपवाद स्वरूप हिन्दू और मुस्लिम दोनों को संलग्न करना चाहिए और पक्षकारों को सिविल न्यायाधीश के पास अधिकारों के न्यायनिर्णयन के विचारार्थ भेजा जाना चाहिए;

और

(viii) दिनांक 29 दिसंबर, 1949 को धारा 145 के तहत प्रारंभिक आदेश पारित करना जिसके अनुसरण में प्रापक ने दिनांक 5 जनवरी, 1950 को कार्यभार ग्रहण किया और कुर्क संपत्ति की सूची तैयार की।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने वाद 4 में अपने वादपत्र के प्रस्तर 11 में तर्क दिया कि दिनांक 23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के अंदर भगवान राम की मूर्तियों की स्थापना द्वारा मस्जिद को अपवित्र किया गया था। वाद 4 और 5 में वादीगणों ने यह विवाद नहीं किया कि दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि के दौरान देवता की मूर्तियों को केंद्रीय गुम्बद के अंदर रखा गया था। हालांकि निर्मोही अखाड़े ने इस घटना के होने से इनकार कर दिया कि मूर्तियाँ हमेशा मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे होती थी।

वाद 1, 4 और 5 में उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मुद्दों को विरचित किया गया था:

वाद 1 में विवाद्यक 2 निम्न है:

> "क्या भगवान राम चंद्र जी की कोई मूर्ति उनके चरण पादुका वादग्रस्त स्थल पर स्थित है? "

वाद 4 में विवाद्यक 12 निम्न है:

> "जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 11 में अभिकथित है कि क्या पूजा की मूर्तियों और वस्तुओं को दिनांक 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि को भवन के अंदर रखा गया था या वे पहले से ही वहां अस्तित्व में हैं? दोनों ही स्थितियों में इसका प्रभाव?

वाद 5 में विवाद्यक 3 ए निम्न है:

> "3(ए) जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 27 में वादी द्वारा अभिकथित सीपीसी नियम 2 के आदेश 10 के तहत उनके कथन में स्पष्ट किया गया था कि क्या प्रश्नगत मूर्ति को दिनांक 23 दिसंबर, 1949 के प्रारम्भिक घंटों में विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद के अंदर स्थापित किया गया था।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायमूर्ति एस यू खान और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया कि मूर्तियों को 22/23 दिसंबर, 1949 के मध्यरात्रि में आंतरिक अहाते के अंदर विवादित ढाँचे के केंद्रीय गुंबद के अंदर रखा गया था। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने भी यह अवधारित किया कि निर्मोही अखाड़ा यह स्थापित करने में विफल रहा है कि मूर्तियों को 22/23 दिसंबर 1949 के मध्यरात्रि में गुंबद के अंदर स्थापित करने के पूर्व से ही अस्तित्व में थीं।

वाद 1 में प्रतिवादी संख्या 1 से 5 तक एक लिखित कथन दायर किया गया था, जहां प्रस्तर 22 में यह दलील दी गई थी कि दिनांक 16 दिसंबर, 1949 को जब नमाज पढ़ी गई थी तो केंद्रीय गुंबद के अन्दर कोई भी मूर्ति मौजूद नहीं थी। प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा दायर लिखित कथन में यह कहा गया था कि भगवान राम की मूर्तियों को दिनांक 22 दिसंबर 1949 की रात को गुप्त और गलत रूप से मस्जिद में स्थापित किया गया था। वाद 4 में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने अपने लिखित कथन दायर किए जिसमें कहा कि विवादित स्थल, वाद 4 में वादीगणों के कब्जे में था। यह कहा गया था कि यह मानते हुए कि वादीगणों के पास कब्जा था और यह वर्ष 1934 में बंद हो गया था जिसके बाद से प्रतिवादियों का स्थापित कब्जा हो गया है। प्रतिवादी सं. 3 और 4 (क्रमशः निर्मोही अखाड़ा और महंत रघुनाथ दास) द्वारा दायर लिखित कथन में वाद 4 में वादपत्र के प्रस्तर 11 के प्रकथन से इनकार किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि वाद 4 में वादीगणों ने भवन को बाबरी मस्जिद के रूप में गलत तरीके से संदर्भित किया है जबकि यह हमेशा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से जन्मभूमि का मंदिर रहा है जहां हिंदू देवताओं की मूर्तियों को स्थापित किया गया था। प्रासंगिक सन्दर्भ निम्नलिखित है:

> "11. यह कि वादपत्र के प्रस्तर 11 की अन्तर्वस्तु पूर्णतः असत्य और मनगढ़ंत है। कथित मस्जिद कभी अस्तित्व में ही नहीं थी और न ही अब भी मौजूद है और किसी भी मुस्लिम या मुस्लिम समुदाय का उस पर शांतिपूर्ण कब्जे का और दिनांक 23.12.1949 तक नमाज पढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिस भवन को वादीगणों ने गलत तरीके से बाबरी मस्जिद के रूप में संदर्भित किया है वह हमेशा से ही हिंदू देवताओं की स्थापित मूर्तियों के साथ जन्म भूमि का मंदिर रहा है। किसी भी मस्जिद के अंदर मूर्तियों को रखने के संबंधित वादपत्र का आरोप पूर्णतः असत्य है।"

वाद 5 में वादपत्र का प्रस्तर 27 कहता है:

> "अंततः दिनांक 22 23 दिसंबर, 1949 की रात को भगवान श्री राम की मूर्ति को उचित समारोह के साथ भवन के केंद्रीय गुंबद के अंदर भी स्थापित किया गया।"

वादी संख्या 3 ने वाद 5 में दिनांक 30 अप्रैल, 1992 को अभिलिखित सीपीसी के आदेश 10 नियम 2 के तहत अपने कथन में कहा:

> "दिनांक 23 दिसंबर, 1949 के प्रारम्भिक घंटों में भगवान श्री राम लला की मूर्ति जो पहले से ही राम चबूतरे पर थी, को उस स्थान पर यानी विवादित भवन के केंद्रीय गुंबद के अन्दर स्थानांतरित कर दिया गया था जहां वे वर्तमान में स्थापित हैं। मैं उस समय व्यक्तिगत रूप से मौजूद नहीं था। यह जानकारी मुझे दिगंबर अखाड़े के परमहंस राम चंद्र दास ने दी थी। मूर्ति का यह स्थानांतरण परमहंस चन्द्र दास और बाबा अभिराम

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> दास और कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा किया गया जिनके नाम मुझे इस क्षण स्मरण नहीं है..."

वाद 4 के वादीगणों की ओर से परीक्षित किए गए साक्षियों के संबंध में उच्च न्यायालय ने अभिलिखित किया कि प्रासंगिक समय में कोई भी साक्षी मौके पर मौजूद नहीं था। इसलिए, इस विवाद्यक पर निर्धारण के लिए उनके कथनों पर अवलम्ब नहीं लिया जाएगा। ओपीडब्ल्यू–1 और ओपीडब्ल्यू–2 जो वाद 5 में वादीगणों की ओर से पेश हुए थे, ने अपने कथन में कहा कि मूर्तियों को 22/23 दिसंबर 1949 को रामचबूतरा से स्थानांतरित कर दिया गया था। ओपीडब्ल्यू–1 (महंत परमहंस रामचंद्र दास) ने अपने कथन में कहा कि मूर्तियों को 23 दिसंबर 1949 को मंच से हटाने के बाद रखा गया था:

> "मेरे द्वारा 'गर्भ–गृह' कहा जाने वाला स्थान मेरे और सभी हिंदुओं के विश्वास के अनुसार रामचंद्र का जन्मस्थान है। जिस स्थान पर प्रतिमाओं को 23 दिसंबर, 1949 को मंच से हटाने के बाद रखा गया था, उसे मैं जन्मस्थान मानता था और मूर्तियों की स्थापना से पहले भी उस स्थान को मैं जन्मभूमि मानता था।"

ओपीडब्ल्यू–2 का कथन इसी तरह का प्रभाव था।

जो साक्षी निर्मोही अखाड़े की ओर से परीक्षित किये गए हैं उन्होंने इस मामले का समर्थन किया कि मूर्तियाँ केंद्रीय गुम्बद के अन्दर 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि से पूर्व मौजूद थीं। वाद 3 में वादीगणों ने 20 साक्षियों (डीडब्ल्यू–3/1–डीडब्ल्यू 3/20) को परीक्षित किया। डीडब्ल्यू–3/1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(महंत भास्कर दास) ने कहा कि 22/23 दिसंबर 1949 की मध्यरात्रि में कोई घटना नहीं घटी। उन्होंने आगे कहा कि वह उस तिथि को परिसर में सो रहे थे।

डीडब्ल्यू 3/1 द्वारा किये गए कथनों की जांच की गई है और इस निर्णय के एक अन्य भाग में खारिज कर दिया गया है। साक्षी का स्पष्टीकरण कि वह दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 को विवादित परिसर में सो रहा था और कोई घटना नहीं घटी थी यह उसकी मनगढंत कल्पना है।

दिनांक 22 दिसंबर 1949 की रात को भगवान राम की मूर्तियों को मस्जिद के भीतर रख दिया गया। प्राथमिकी पर कार्रवाई करते हुए फैजाबाद–सह–अयोध्या के अपर सिटी मजिस्ट्रेट ने स्थिति को एक आपातित प्रकृति मानते हुए दिनांक 29 दिसंबर 1949 को धारा 145 के तहत एक प्रारंभिक आदेश जारी किया। इसके साथ ही एक कुर्की आदेश जारी किया गया था और फैजाबाद नगर निगम बोर्ड के अध्यक्ष प्रिया दत्त राम को आंतरिक अहाते के प्रापक के रूप में नियुक्त किया गया था। दिनांक 5 जनवरी 1950 को प्रापक ने आंतरिक अहाते का कार्यभार संभाला और कुर्क संपत्तियों की एक सूची तैयार की।

वाद 4 और 5 में वादीगणों की अवस्थिति और अभिलेख पर साक्षियों के कथन, निर्मोही अखाड़े के दावे को झूठा साबित करते हैं कि दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की घटना से पूर्व केंद्रीय गुंबद के अंदर मूर्तियाँ मौजूद थीं। यह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस घटना के अनुसरम में थी कि संपत्ति कुर्क की गई। सिविल विचारण को संचालित करने वाली प्रायिकताओं की एक अधिकता पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि देवताओं की मूर्तियाँ दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 की मध्यरात्रि में स्थापित की गई थीं अपनी स्वीकृति के लिए स्वयं की सराहना करते हैं।

720. विवादित स्थल पर डा. धवन का सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड के दावे का अभिकथन हिंदुओं के अहाते के बाहर होने और मस्जिद में मुसलमानों द्वारा नमाज अदा करने पर आधारित है। हिंदुओं का मंदिर "अहाते के बाहर था", यह तर्क अस्पष्ट और साक्ष्य के विपरीत है। यदि "आँगन" उक्ति का प्रयोग आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के शिष्टमंडलों को निरूपित करने के लिए किया जाता है, तो यह तर्क इस तथ्य द्वारा झूठा साबित होता है कि वर्ष 1856–7 में रेलिंग लगाने के बाद बाह्य अहाते में हिंदुओं द्वारा कब्जे और पूजा करने का संकेत देने वाला एक सुसंगत तरीका था। 1856–7 के सांप्रदायिक दंगों के बाद रेलिंग से सटे हुए रामचबूतरे में पूजा करने के लिए औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा शांति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए रेलिंग की व्यवस्था एक उपाय थी। हिंदुओं द्वारा पूजा की व्यापक प्रकृति को पूजा करने के विशिष्ट स्थानों की मौजूदगी और वर्ष 1877 में भक्तों की अत्यधिक भीड़ के कारण प्रवेश करने के एक अन्य स्थान के खुलने के लिए प्रशासन द्वारा अनुमति का संकेत मिलता है। 1856–7 के बाद बाह्य अहाते में हिंदुओं द्वारा पूजा के एक सुसंगत तरीके के समक्ष दस्तावेजी सामग्री मुस्लिमों द्वारा या तो बाह्य अहाते के स्थाई कब्जे का या उपयोग (मस्जिद तक पहुंच पाने के उद्देश्य को छोड़कर) का संकेत नहीं देती है। बाह्य अहाते में हिंदुओं का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

होना और उनका कब्जा केवल पूजा के लिए प्रवेश करने का एक नियामक अधिकार की प्रकृति में नहीं था। इसके विपरीत, हिंदुओं के अधिकार और कब्जे से स्पष्ट है: (i) विवादित संपत्ति में पूजा के स्थानों पर हिंदुओं की अनन्य उपस्थिति जो रेलिंग से परे है; (ii) पूजा के इन स्थानों पर हिंदुओं द्वारा पूजा के साक्ष्य; (iii) भक्तों की बड़ी संख्या में आने से उत्तरी तरफ एक अतिरिक्त प्रवेश द्वार खोलने की आवश्यकता प्रशासन द्वारा महसूस की गई; (iv) यह संकेत करने के लिए किसी भी साक्ष्य का अभाव है कि मुस्लिमों ने रेलिंग से परे विवादित संपत्ति के क्षेत्र पर अधिकार या कब्जे का कोई दावा किया था; (v) उन घटनाओं जिसके दौरान रेलिंग के अंदर मस्जिद का उपयोग विवादास्पद हो गया था; (vi) मस्जिद में मुस्लिमों के नमाज पढ़ने में बाधा आने की शिकायत करने की वक्फ इंस्पेक्टर की रिपोर्ट; (vii) हिंदुओं का अनन्य रूप से रेलिंग से परे विवादित संपत्ति के बाहरी क्षेत्र तक पहुंच; और (viii) रेलिंग के आंतरिक क्षेत्र की भूमिबद्ध प्रकृति।

721. जहां तक आंतरिक अहाते का संबंध है, ऐसा प्रतीत होता है कि रेलिंग का लगाया जाना यह सुनिश्चित करने का एक उपाय था कि मस्जिद में मुस्लिमों को इबादत और हिंदुओं के रेलिंग के बाहर पूजा करने अनुमति देना ताकि शांति बनी रहे। जहां तक मुस्लिमों का आंतरिक अहाते में इबादत करने का संबंध है, दस्तावेजी सामग्री यह दर्शाती है कि यद्यपि समय–समय पर अवरोध पैदा होते थे, परन्तु मस्जिद की ढाँचे का कोई परित्याग या उसके अन्दर नमाज पढ़ना बंद नहीं किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

722. स्वत्व के प्रश्न को निर्धारित करने के लिए मुस्लिम और हिंदू दोनों के द्वारा विवादित परिसर के उपयोग की प्रकृति का विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

0.10 नज़ुल भूमि

723. उच्च न्यायालय के समक्ष वादकारी पक्षकारों द्वारा यह विवादित नहीं था कि विवादित ढाँचा जिस भूमि पर था वह नजुल भूमि के रूप में अभिलिखित की गई थी (अर्थात् वह भूमि जो सरकार के स्वामित्व में है) जो प्लॉट सं. 583, मोहल्ला कोट रामचन्द्र, जिसे राम कोट, सिटी अयोध्या, नजुल एस्टेट अयोध्या के नाम से जाना जाता था, के 1931 के खसरा के रूप में था। जिस भूखंड में विवादित ढाँचा स्थित था, उसकी संख्या विवादित नहीं थी और यह स्वीकार किया गया था कि भूखंड को 1861 के प्रथम बन्दोबस्ती में नजुल भूमि के रूप में अभिलिखित किया गया था और वाद के संस्थन की तथि पर इस तरह जारी रहा।

724. वास्तव में, वाद 5 में यू पी सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ के लिखित कथन के प्रस्तर 24(बी) में यह कहा गया है:

> "प्रश्नगत भूमि निःसंदेह राज्य की थी जब राज्य की ओर से प्रश्नगत मस्जिद का निर्माण किया गया था और इस तरह यह नहीं कहा जा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> सकता है कि यह मस्जिद के उद्देश्यों के लिए समर्पित नहीं हो सकती है।"

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अक्टूबर 1846 और अक्टूबर 1848 में उत्तर–पश्चिमी प्रांतों के उप–राज्यपाल के अधिकार के तहत जारी दो आदेशों का हवाला देते हुए ऐतिहासिक संदर्भ का पता लगाया, जिसमें 'नजुल संपत्ति' के शब्दों के बाद इसके अंग्रेजी अर्थ को "सरकार के संपहरण" के रूप में बताया गया था। दिनांक 20 मई 1845 को सदर बोर्ड ऑफ रेवेन्यू ने नजुल भूमि के संदर्भ में एक परिपत्र आदेश जारी किया:

> "सरकार उन भूमि का मालिक है और उनके लिए कोई वैध हक सरकार से प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

725. उत्तर–पश्चिमी प्रांतों की सरकार द्वारा जारी किए गए 13 जुलाई 1859 दिनांकित के परिपत्र के तहत, प्रत्येक आयुक्त को सभी जनपदों के अंतिम जब्ती कथन को बनाए रखने और आदेश के लिए सरकार के समक्ष पेश करने की आवश्यकता थी। अवध राज्य को वर्ष 1856 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने संलग्न किया था। मई 1857 में विद्रोह हो जाने के बाद उत्तर पश्चिमी प्रांतों का काफी बड़ा क्षेत्र सरकार में निहित हो गया। विद्रोह की विफलता के परिणामस्वरूप, गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने औपनिवेशिक सरकार का समर्थन करने वाले 5 या 6 व्यक्तियों के अपवाद के साथ भूमि में मालिकाना हक को जब्त करते हुए दिनांक 15 मई 1858 को एक उद्घोषणा जारी की। प्रारंभ में इस भूमि को तीन वर्ष के लिए फिर से बसाया गया था और फिर क्राउन ग्रांट एक्ट के तहत सनद द्वारा अनुदान द्वारा तालुकदारों और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जमींदारों को स्थायी मालिकाना हक दिया गया। 1 नवंबर, 1858 से ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में सारा क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन कर दिया गया।1861 के प्रथम बन्दोबस्ती में विवादित भूमि को नजुल के रूप में बताया गया था और एक स्थिति जिसे लगातार बनाए रखा गया था।

726. श्री राम शरण श्रीवास्तव (डीडब्ल्यू 2/1–2), जुलाई 1987 और 1990 के बीच फैजाबाद में कलेक्टर थे, इन्होंने निम्नलिखित शब्दों में कथन किया है:

> "वर्ष 1861, 1893–94 और 1936–37 की तीन राजस्व बन्दोबस्तियों के अभिलेख मेरे अधीन राजस्व अभिलेखागार में उपलब्ध थे। इन अभिलेखों में खसरा, खतौनी, खेवट और तीन बन्दोबस्तियों की रिपोर्ट अलग से उपलब्ध थीं। नजुल भूमि के संबंध में वर्ष 1931 की सर्वेक्षण रिपोर्ट को तीन बन्दोबस्तियों और रिपोर्टों के अलावा शामिल किया गया था। वर्ष 1931 के सर्वेक्षण के आधार पर तैयार खसरा, खतौनी और खेवट भी उपलब्ध थे। तीनों बन्दोबस्तियों और नजुल सर्वेक्षण के अभिलेख में, विवादित स्थल को जन्मस्थान के रूप में वर्णित किया गया है और स्थानों पर रामजन्मभूमि का भी उल्लेख किया गया है।"

साक्षी ने आगे कहा:

> "मुझे याद नहीं है कि अंतिम बन्दोबस्ती की संख्याएं 159, 160 और 160ए थी। इन सभी संख्याओं के सापेक्ष जन्मस्थान लिखा गया था। प्रत्येक बन्दोबस्ती में प्लॉट संख्या में परिवर्तन था। मेरे द्वारा बताये गए प्लॉट नंबर 159 और 160 अंतिम बन्दोबस्ती के संख्या थे। नजुल सर्वेक्षण में इससे संबंधित संख्याएँ 583, 586 थी जो मेरी स्मृति में है।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसके बाद उन्होंने अभिलेख में कुछ अंतर्वेशनों का संदर्भ दिया जो इस प्रकार है:

> "प्रथम और द्वितीय बन्दोबस्ती के किसी भी अभिलेख में मस्जिद, शाही मस्जिद या जन्मस्थान मस्जिद का कोई उल्लेख नहीं था। तीसरे बन्दोबस्ती के खसरा, खतौनी और खेवट के कुछ अभिलेखों में अंतर्वेशन थे और विवादित स्थल की कुछ संख्याओं में जन्मस्थान मस्जिद या जामा मस्जिद को अंतर्वेशित किया गया था।मैंने अपनी रिपोर्ट भेजी थी। मैंने यह रिपोर्ट वर्ष 1989 में राजस्व बोर्ड की ओर से भेजी थी। मेरी रिपोर्ट पर जांच गठित की गई थी। राजस्व बोर्ड के कुछ अधिकारी आए थे। जांचकर्ता राजस्व बोर्ड के सचिव के अधीनस्थ एक अधिकारी था और सदस्य नहीं था। जिन अभिलेखों में अंतर्वेशन किया गया था और जिनकी रिपोर्ट मैंने प्रस्तुत की थी, उन्हें कभी भी सही नहीं किया गया क्योंकि मामला न्यायालय में लंबित था।"

727. नजुल भूमि के रूप में भूमि की स्थिति के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है। हालाँकि, इसे अभिलिखित करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय के समक्ष मुकदमे के दौरान संकेत दिया कि यह विवाद के विषय में किसी भी हित का दावा नहीं कर रही थी और वाद नहीं चला रही थी। यह इन परिस्थितियों में था कि उच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि यद्यपि भूमि को मोहल्ला कोट रामचंद्र के वर्ष 1931 के खसरा के नजुल भूखंड संख्या 583 के रूप में रखा जाना है, यह प्रभावी रूप से दो समुदायों के दावों पर प्रभाव नहीं डालेगा कि किसने भूमि का स्वत्व दिया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

0.11 उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ

728. वाद 4 में वादीगण द्वारा, यह दर्शित करने के लिए कि मस्जिद अर्पित भूमि पर बनी थी, जिन दस्तावेजी साक्ष्यों पर अवलंब लिया गया है, उनका उद्गम अवध के औपनिवेशिक अधिहरण और वर्ष 1856 के बाद होता है। इसे ठीक ही वाद 4 में वादीगण की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ धवन द्वारा स्वीकार किया गया है। वाद 4 के वादीगण किसी विशेष भू अनुदान को अवध के अधिहरण से पूर्व या वर्ष 1857 के पश्चात औपनिवेशिक प्रशासन को सत्ता हस्तांतरण के समय विधिक स्वत्व के आधार के रूप में स्थापित करने में विफल रहे।

729. सुनवाई के उन्नत चरण में यह तर्क देने का प्रयास किया गया कि A B C D अक्षरों से चिन्हित विवादित स्थल वक्फ सम्पत्ति है, किसी विशिष्ट समर्पण के कारण नहीं बल्कि मुस्लिम समुदाय द्वारा सम्पत्ति का धार्मिक पूजास्थल के रूप में प्रयोग के कारण। वाद 4 में वादीगण की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ धवन ने तर्क दिया कि इस्लामिक विधि में वक्फ की संकल्पना का एक व्यापक अर्थ होता है। अतः यह तर्क दिया गया कि किसी प्रगट समर्पण के अभाव में भी विवादित स्थल का मस्जिद के रूप में सार्वजनिक इबादत के लिए प्रयोग प्रश्नगत सम्पत्ति का दर्जा 'उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ ' के रूप में बना देता है।

इस सुझाव के समर्थन में, डॉ धवन ने तर्क दिया है कि 1528 में बाबर द्वारा मस्जिद के निर्माण से 22/23 दिसंबर 1949 को इसके अपवित्रीकरण तक,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद में नमाज अदा की गयी। इसलिए विवादित सम्पत्ति धार्मिक पूजास्थल रहा है। आगे, उन्होंने कहा है कि मुस्लिमों के पास विवादित सम्पत्ति का स्थायी कब्जा रहा है और उन्होंने मस्जिद का सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए उपयोग किया है। इस प्रकार, समर्पण विलेख की अनुपस्थिति के बावजूद, विवादित स्थल का सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए चार शताब्दियों से ज्यादा समय तक प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरुप लंबे प्रयोग द्वारा इसका चरित्र वक्फ सम्पत्ति का बनता है।

730. इस तर्क से विनिश्चय के लिए दो बिन्दु उठते हैं : पहला, क्या उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ की धारणा हमारे न्यायालय द्वारा एक विधिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत की जाती है; और दूसरा, एक तथ्य के रूप में, क्या वर्तमान मामले में यह प्रयोज्य होगा।

वाद 4 की दलील

731. वाद के पहले पैराग्राफ में, वादीगण ने यह बात कही है कि बाबर द्वारा या उसके कहने पर 1528 ई. में मस्जिद के निर्माण हो जाने पर, इसे मजहबी इबादत गाह के रूप में मुस्लिमों को नमाज अदा करने के लिए समर्पित कर दिया गया:

> "1. अजोध्या नगर, परगना हवेली अवध में, एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद है, जिसे आमतौर पर बाबरी मस्जिद के नाम से जाना जाता है, जिसे बाबर द्वारा 443 वर्ष पूर्व भारत पर जीत हासिल करने और अयोध्या नगर सहित पूरे क्षेत्र पर कब्जा करने के बाद आम तौर पर मुस्लिमों के लिए इबादतगाह और मजहबी कार्यों को करने के स्थान के रूप में बनवाया गया था।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समर्पित किये जाने की बात को स्थापित करने वाले किसी विशेष दस्तावेज के न होने के कारण वादीगण अपने कथन के दौरान मस्जिद को धार्मिक स्थल के रूप में लंबे समय तक प्रयोग किये जाने की दलील पर आ गये। वाद के पैराग्राफ 2 में निम्नवत दलील है :

> "2. यह कि संलग्न रेखा मानचित्र में, कथित मस्जिद का मुख्य निर्माण A B C D अक्षरों द्वारा दर्शाया गया और पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में मस्जिद से लगी भूमि संलग्न रेखा मानचित्र में दर्शायी गयी है। बाबर और अयोध्या के पुराने शासक के बीच हुई लड़ाई में मारे गये मुस्लिमों की कब्रों से ढ़के प्राचीन कब्रगाह जो संलग्न रेखा मानचित्र में दर्शाया गया है। मस्जिद और कब्रगाह खुदा की है। **उक्त मस्जिद निर्माण के समय से ही मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करने के लिए प्रयोग की जाती रही है** और कब्रगाह मोहल्ला राम कोट चन्दर में है जिसे राम कोट नगर, अयोध्या के नाम से भी जाना जाता है। वाद के मस्जिद और कब्रगाह का खसरा नंबर संलग्न सूची में है जो कि वाद का हिस्सा है।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

732. वक्फ चल या अचल सम्पत्ति का मुस्लिम विधि द्वारा मान्य धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्य के लिए समर्पण होता है। सामान्यतः वक्फ उद्घोषणा के रूप में समर्पण के प्रकट कृत्य द्वारा अस्तित्व में आता है। उद्घोषणा होने पर समर्पित की जाने वाली सम्पत्ति समर्पण करने वाले वाकिफ से निकलकर सर्वशक्तिमान अल्लाह की हो जाती है। वक्फ सम्पत्ति का एक स्थायी और अविच्छेद्य समर्पण होता है और एक बार वक्फ बन जाने पर समर्पण को बाद में वापस नहीं लिया जा सकता। विधिक रूप से सृजित वक्फ की सम्पत्ति अहस्तान्तरणीय होती है और निजी लाभ के लिए बिक्री या पट्टे पर नहीं दी जा सकती।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

733. मुस्लिम विधि में प्रत्येक मामले में किसी वक्फ की प्रकट उद्घोषणा की आवश्यकता नहीं होती। किसी मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों या वाकिफ के आचरण से भी वक्फ में परिणत होने वाले समर्पण का युक्तियुक्त अनुमान किया जा सकता है। किसी प्रकट समर्पण के अभाव में, वक्फ का अस्तित्व ऐसी परिस्थितियों में विधिक रूप से मान्य होता है जहां सम्पत्ति अतिप्राचीन काल से सार्वजनिक धार्मिक प्रयोग की विषयवस्तु रही हो। उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ की अवधारणा को वक्फ अधिनियम[360] 1995 की धारा 3(r) में विधिक मान्यता प्राप्त है जिसमें वक्फ को निम्न के रूप में परिभाषित किया गया है :

> "(r) "वक्फ" का तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा किसी चल या अचल सम्पत्ति का मुस्लिम विधि द्वारा पवित्र, धार्मिक या धर्मार्थ माने गये किसी उद्देश्य के लिए स्थायी समर्पण होता है, इसमें शामिल है–
>
> (i) **उपयोगकर्ता द्वारा कोई वक्फ किन्तु ऐसे वक्फ का केवल इस कारण वक्फ होना समाप्त नहीं हो जाएगा कि उसका उपयोग करने वाला समाप्त हो गया है** चाहे ऐसी समाप्ति की अवधि कुछ भी हो ;
>
> (ii) कोई शामलात पट्टी, शामलात देह, जुमला मलक्कन या राजस्व अभिलेख में दर्ज कोई अन्य नाम;
>
> (iii) अनुदान" जिसके अंतर्गत किसी प्रयोजन के लिए मशरत–उल–खिदमत भी है, जिन्हें मुस्लिम विधि द्वारा पवित्र, धार्मिक या पूर्त माना गया है ; और
>
> (iv) वक्फ–अलल–औलाद वहां तक जहां तक कि संपत्ति का समर्पण किसी ऐसे प्रयोजन के लिए किया गया है जो मुस्लिम विधि द्वारा पवित्र, धार्मिक या पूर्त माना गया है, परंतु जब कोई उत्तराधिकारी नहीं रह जाता है तो वक्फ की आय शिक्षा, विकास, कल्याण और मुस्लिम विधि द्वारा यथा मान्यताप्राप्त ऐसे अन्य प्रयोजनों के लिए खर्च की जाएगी,

---

360 Title changed from _Waqf Act' to the _Auqaf Act' by virtue of the Waqf (Amendment) Act 2013

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और वाक़िफ़" से ऐसा समर्पण करने वाला कोई व्यक्ति अभिप्रेत है।"

(प्रभाव वर्धित)

वक्फ की वैधानिक परिभाषा में उपयोग द्वारा स्थापित वक्फ को मान्यता दी गयी है न कि समर्पण द्वारा वक्फ को। इसी प्रकार, "**मोहम्डन विधि**" पर अपनी पुस्तक में मुल्ला ने कहा है कि :

> "...यदि भूमि का प्रयोग किसी धार्मिक उद्देश्य जैसे मस्जिद या कब्रगाह या मस्जिद के मरम्मत के लिए अति प्राचीन काल से किया जा रहा है तो भूमि उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ होती है यद्यपि कि प्रकट समर्पण का कोई साक्ष्य नहीं है।"[361]

उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के बारे में अपने कथन में डॉ धवन ने ऐसे कई प्राधिकारियों का उल्लेख किया है जो उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के सिद्धान्त को रेखांकित करते हैं।

734. उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के सिद्धान्त को न्यायिक मान्यता **द् कोर्ट ऑफ वॉर्ड्स फॉर द् प्रापर्टी ऑफ मकदूम हसन बक्श बनाम इलाही बक्श**[363] के मामले में प्रिवी कौंसिल के निर्णय में दी गयी। मामला मुल्तान के एक सार्वजनिक कब्रगाह से संबंधित था जहां एक प्रसिद्ध मुस्लिम संत दफ्न थे। मकदूम बक्श की सम्पत्ति के लिए कार्य करते हुए कोर्ट ऑफ वॉर्ड्स ने कब्रगाह के क्षेत्र के भीतर उन कतिपय सम्पत्ति को बेचने का प्रस्ताव किया जिन पर कोई कब्र नहीं थी। मुल्तान के मुस्लिम निवासियों ने प्रस्तावित बिक्री को रोकने के लिए एक व्यादेश की इस आधार पर याचना किया कि

---

361 . Mulla's Mahomedan Law, 14th Edition at page 173

363 AIR 1930 Oudh 245

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सम्पूर्ण वक्फ मुस्लिम समुदाय के सार्वजनिक कब्रगाह के रूप में लंबे प्रयोग के कारण एक असंक्रमणीय वक्फ सम्पत्ति है।

लार्ड मैकनाथन ने धारित किया :

> " न्यायाधीश महोदय चीफ कोर्ट से इस बात में सहमत थे कि वाद की भूमि मुस्लिम समुदाय के लिए बने कब्रगाह का एक हिस्सा है और यह कि समर्पण के द्वारा न सही लेकिन उपयोगकर्ता द्वारा भूमि वक्फ है।"

प्रिवी कौंसिल ने इस बात को मान्यता प्रदान किया कि किसी प्रकट विलेख या समर्पण के कृत्य के बिना किसी वक्फ को लंबे प्रयोग के द्वारा मान्यता प्रदान की जा सकती है।

735. उपर्युक्त आदेश का अवध चीफ कोर्ट द्वारा **अब्दुल गफूर बनाम रहमत अली**[363] के मामले में अनुसरण किया गया। वादीगणों ने इस उद्घोषणा की मांग किया कि वाद की सम्पत्ति एक सार्वजनिक कब्रगाह थी और प्रतिवादी को इस पर किसी संरचना के निर्माण का हक नहीं था। इस प्रश्नगत कब्रगाह को सर्वसाधारण के लिए नगरपालिका बोर्ड द्वारा चालीस वर्षों से बंद कर दिया गया था। प्रतिवादी ने तर्क दिया कि वादीगण ने प्रश्नगत वाद तक कब्रगाह के उपयोग को स्थापित नहीं किया है और यह कि चालीस वर्षों से प्रयोग में न होने के कारण, इसने वक्फ के रूप में अपने चरित्र को खो दिया है। यह धारित करते हुए कि कब्रगाह एक सार्वजनिक वक्फ बना रहा, न्यायमूर्ति श्रीवास्तव ने अवध चीफ कोर्ट की ओर से यह धारित किया:

---

363 AIR 1935 All 891

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"4. ...**यह सुस्थापित है कि कोई वक्फ, उद्घोषणा के प्रकट साक्ष्य के अभाव में,उपयोगकर्ता के साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जा सकता है।** वाद की सम्पत्ति कब्रिस्तान के रूप में पहले नियमित बंदोबस्त के समय अंकित की गयी थी लेकिन समर्पण को स्थापित करने के लिए कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है .... वादीगण की ओर से परीक्षित किये गये बहुत से साक्षियों के साक्ष्य के आलोक में, जिनके साक्ष्य पर उन्होंने [अधीनस्थ न्यायाधीश] ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विश्वास किया है कि मोहम्डन लोगों ने भूमि का तब तक दफनाने की जगह के रूप में उपयोग किया जब तक नगरपालिका बोर्ड ने चालीस वर्ष पहले उस भूमि पर अग्रिम प्रवेश प्रतिबंधित नहीं कर दिया। **इस प्रकार, वर्तमान मामले में , वाद की भूमि के सार्वजनिक कब्रगाह होने संबंधी निष्कर्ष लंबे समय के उपयोगकर्ता के साक्ष्य पर आधारित है... ऐसा नियम, जो उपयोगकर्ता के साक्ष्य को समर्पण का स्थान लेने की अनुमति प्रदान करता है, वह आवश्यकता का नियम है। पुराने वक्फ के मामले में,समर्पण के प्रत्यक्ष साक्ष्य मिलना संभव नहीं है और यह भी कहा गया है कि ऐसे प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में, कोई न्यायालय किसी वक्फ को लंबे उपयोगकर्ता के साक्ष्य पर स्थापित मान सकता है...।** "

(प्रभाव वर्धित)

736. कुछ मामलों में, न्यायालयों के सामने ऐसी स्थिति थी जहां सम्पत्ति का अतिप्राचीन काल से वक्फ के रूप में प्रयोग किया गया और उद्घोषणा विलेख के रूप में औपचारिक साक्ष्य मांगना व्यावहारिक नहीं था। लंबा समय बीत जाने के बाद समर्पण का कोई विशेष दस्तावेज अनुपलब्ध हो सकता है लेकिन सम्पत्ति का सार्वजनिक धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्य से प्रयोग अतिप्राचीन काल से जारी रह सकता है। अतः किसी प्रकट समर्पण विलेख के बिना भी, न्यायालय उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के अस्तित्व को मान्यता दे सकता है जहां सम्पत्ति का सार्वजनिक धर्मार्थ उद्देश्य से लंबे समय से प्रयोग

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थापित हो। लंबे समय से उपयोग का साक्ष्य पर्याप्त माना जाता है यद्यपि कि प्रकट समर्पण विलेख का कोई साक्ष्य न हो।

737. **मिरू बनाम राम गोपाल**[364] के मामले में वादी सम्पत्ति का जमीनदार था। किसी रहीम बक्श ने सम्पत्ति पर कब्जा कर रखा था और पूजा के लिए एक अस्थायी 'कच्चा' चबूतरा बना लिया था। 1904 तक स्थानीय मुस्लिमों द्वारा इस 'कच्ची' मस्जिद में इबादत की जाती थी। स्थानीय प्रतिवादी मुस्लिमों ने उस स्थान पर एक स्थायी ढ़ांचा बनाना चाहा। वादी द्वारा इसका विरोध किया गया जिसने नयी मस्जिद के निर्माण को रोकने के लिए व्यादेश की मांग की। न्यायालय का कहना था कि उस प्लाट के खसरा में उसे "मस्जिद" कहा गया था। कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ की ओर से न्यायमूर्ति बेनेट ने कहा:

> • "...वर्तमान मामले में, यह निष्कर्ष है कि **प्लाट को लंबे समय से मस्जिद के लिए उपयोग किया गया है और उपयोग स्थानीय मोहम्डन निवासियों द्वारा किया गया है** न कि किसी किरायेदार विशेष द्वारा जिसने अन्य लोगों को वहां इबादत के उद्देश्य से आने की अनुमति दी...
>
> कोर्ट ऑफ वार्ड्स बनाम इलाही बक्श(2) के मामले में प्रिवी कौंसिल के माननीय न्यायाधीश द्वारा यह भी कहा गया है कि उपयोगकर्ता द्वारा कब्र वक्फ बनी। हमें नहीं लगता कि लाइसेंस के संबंध में सुखाधिकार अधिनियम के प्रावधान या अध्याय IV का कोई भाग उस जगह लागू होता है जहां जमीनदार ने मोहम्मडन जनता को किसी भवन को मस्जिद के रूप में प्रयोग करने की अनुमति दिया। .... **ऐसे मामले में हमारा मानना है कि जहां ऐसा निष्कर्ष हो कि मस्जिद विद्यमान थी, वहां आवश्यक रूप से यह यह लागू होता है कि सुखाधिकार या लाइसेंस के प्रयोग का कोई प्रश्न नहीं रह जाता। मोहम्डन विधि के अनुसार, मस्जिद अल्लाह की सम्पत्ति है**

---

364 AIR 1935 All 891

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न कि जमीनदार की। वादी के विद्वान अधिवक्ता ने आपत्ति की है कि अन्तरण का कोई मामला नहीं था जैसा कि सम्पत्ति के अन्तरण के मामले में आवश्यक होता है, बल्कि हमारा मानना है कि भवन के मस्जिद के रूप में प्रयोग करने की जमीनदार की अनुमति पर्याप्त है।"

(प्रभाव वर्धित)

'कच्ची' मस्जिद के लंबे समय से प्रयोग के चलते न्यायालय ने सार्वजनिक वक्फ के अस्तित्व को मान्यता दी। यह कभी कभार पूजा का मामला नहीं था, बल्कि 1904 से पूर्व स्थानीय मुस्लिम समुदाय द्वारा मस्जिद के निरंतर प्रयोग का था।यह दस्तावेजी साक्ष्यों से दर्शित होता था जिससे प्लाट पर मस्जिद का अस्तित्व दिखता था। महत्वपूर्ण रूप से, स्वंय जमीनदार के द्वारा मस्जिद पर सार्वजनिक इबादत की अनुमति थी। इन परिस्थितियों में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने धारित किया कि भूमि जमीनदार की निजी सम्पत्ति नहीं थी बल्कि उपयोगकर्ता द्वारा एक सार्वजनिक वक्फ थी। न्यायमूर्ति सुलेमान के सहमति सूचक सटीक शब्दों में :

" लेकिन जहां भवन किसी भूखण्ड पर लंबे समय से स्थित हो और उस भवन में इबादत की जाती रही हो, तो यह न्यायालय के लिए,जो कि तथ्यों का निर्णायक है, अनुमान का विषय होगा कि क्या उस भवन में अधिकार का इतने पर्याप्त समय के लिए प्रयोग किया गया है कि इस उपधारणा को न्यायोचित ठहरा सके कि ऐसे अधिकार के संपादन के उद्देश्य से भवन को ही प्राण प्रतिष्ठित करने की अनुमति दे दी गयी है।..."

यह प्रश्न कि– क्या भवन या सम्पत्ति के सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए प्रयोग से उन विधिक शर्तों की पूर्ति होती है कि इसे एक सार्वजनिक वक्फ माना जाय– साक्ष्य का विषय है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का परीक्षण कर इस बात का निर्धारण करना कि क्या सम्पत्ति का प्रयोग इतने पर्याप्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लंबे समय और लक्षित उद्देश्य के लिए हुआ है कि प्रकट समर्पण के बिना सार्वजनिक वक्फ की मान्यता देना न्यायोचित हो, न्यायालय के लिए "अनुमान का विषय" है। वक्फ के अटल, स्थायी और अहस्तान्तरणीय स्वरूप के चलते उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ को स्थापित करने की साक्षिक सीमा उच्च है, क्योंकि इससे सम्पत्ति पर स्वामित्व के चरित्र में आमूल परिवर्तन हो जाता है।

738. उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के सिद्धान्त को न्यायालय के न्यायशास्त्र में मान्यता मिली है। **फकीर मोहम्मद शाह बनाम काजी फासिहुद्दीन अंसारी**[365] के मामले में दिया गया निर्णय दो अलग अलग समयावधियों से संबंधित था : लगभग 1681 से 1880 तक की अवधि और 1880 से 1956 तक की अवधि से। वर्ष 1880 में, एक 'पुरानी मस्जिद' विद्यमान थी जिसे विवाद के पक्षकारों ने वक्फ सम्पत्ति माना। 1880 के बाद, प्रतिवादी 'पुरानी मस्जिद' का मुतवल्ली होने के कारण इसके आकार को बढ़ा दिया और संबद्ध सम्पत्तियों पर विभिन्न संरचनाएं बनवा दिया। कुछ का उपयोग वह स्वंय करता था और कुछ का प्रयोग आमजन इबादत के लिए करते थे। एक साथ इन्हें 'नई मस्जिद' कहा जाता था। निवासी सुन्नी समुदाय ने वादीगण के रूप में ऐसी उद्घोषणा की मांग की कि 'पुरानी मस्जिद' और 'नई मस्जिद' दोनों वक्फ सम्पत्ति हैं। प्रतिवादी ने इन दावों का विरोध किया और तर्क दिया कि 'नई मस्जिद' उसकी स्वंय की निजी सम्पत्ति थी। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीश खंडपीठ की ओर से न्यायमूर्ति विवियन बोस ने धारित किया :

---

365 AIR 1956 SC 713

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"20. ... **यह प्रत्यक्ष है कि वर्ष 1880 तक प्रकट समर्पण का कोई साक्ष्य नहीं था न ही तब से कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, इसलिए एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या उपयोगकर्ता का कोई प्रमाण है यदि ऐसा है तो किस चीज का उपयोगकर्ता।**

70. साक्ष्यों का सावधानी से सर्वेक्षण करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे है :

(1) **यह कि पुरानी मस्जिद जैसी यह 1880 में थी, का वक्फ सम्पत्ति होना सिद्ध है** लेकिन उस स्थान और भवन जहां पर यह थी से इतर किसी भी चीज का उस तिथि पर वक्फ होना दर्शित नहीं किया गया है।

(2) यह कि इस सम्पत्ति में समय समय पर परिवर्धन होता रहा और पूरा भवन अब अलग से रेखांकित है और यह कि परिवर्धन और संवर्धन से एक अलग संश्लिष्ट और अलग इकाई बन गयी है जैसा कि वादी गण के मानचित्र में दर्शाया गया है। यह मानचित्र में ABCD से अंकित क्षेत्र है।

(3) यह कि **पुरानी मस्जिद के साथ साथ इस क्षेत्र को आम जन द्वारा धार्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है और चूंकि इस क्षेत्र को मस्जिद में सामूहिक एवं वैक्तिक इबादत के एकमात्र उद्देश्य के लिए अलग से अंकित व्यवस्थित इकाई बना दिया गया है इसे एक इकाई माना जाना चाहिए और उसी भांति व्यवहृत होना चाहिए।**

.....

(7) य**ह कि वाद की शेष सम्पत्ति को वक्फ होना या वक्फ सम्पत्ति का परिवर्धन होना नहीं दर्शाया गया था। यह अलग से रेखांकित है और वक्फ हिस्सा** ABCD से और मस्जिद के पश्चिम में दुकान **से पृथक्करणीय है।**

....

73. यह अब स्वीकृत है और ऐसा वर्ष 1880 के वाद में पाया गया कि पुरानी मस्जिद वक्फ सम्पत्ति थी। यह माना जा सकता

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है कि उस तिथि पर शेष वक्फ नहीं था और साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर यही भी निष्कर्ष है। **लेकिन वर्ष 1880 के वाद के पश्चात काफी कुछ हो चुका है और बाद में मूल सम्पत्ति में परिवर्धन और संवर्धन हो चुका है कि अब वे परिवर्धन और संवर्धन मूल वक्फ के अभिन्न हिस्से हैं।**

(प्रभाव वर्धित)

739. हमारे न्यायशास्त्र में, प्रकट समर्पण या उद्घोषणा विलेख की अनुपस्थिति में भी उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। कोई सम्पत्ति वक्फ सम्पत्ति है या नहीं यह साक्ष्य का विषय है। मानक यह है कि क्या सम्पत्ति को इस्लाम मजहब मानने वालों द्वारा सार्वजनिक धार्मिक उद्देश्य के लिए उपयोग किया गया है या नहीं। प्रत्यक्ष कसौटी ऊंची है, अधिकांश मामलों में अतिप्राचीन काल से प्रश्नगत सम्पत्ति पर सार्वजनिक इबादत का साक्ष्य। फकीर मोहम्मद शाह के मामले में, यह स्वीकार किया गया कि पुरानी मस्जिद वक्फ सम्पत्ति थी। बाद में न्यायालय ने अभिलेख में उपस्थित साक्ष्यों का यह निर्धारित करने के लिए परीक्षण किया कि क्या 'पुरानी मस्जिद' से संलग्न सम्पत्ति पर बने 'नई मस्जिद' वाली संरचना का भी सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए प्रयोग किया गया। इसी आधार पर इस न्यायालय ने 'पुरानी मस्जिद' से संलग्न बने 'नई मस्जिद' के हिस्से को भी समग्र वक्फ सम्पत्ति माना।

वर्तमान मामले में प्रयोज्यता

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

740. हमारे न्यायालयों द्वारा मान्य उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के सिद्धान्तों को तय कर देने के पश्चात, अगला प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान मामले में सिद्धान्त लागू होता है। वाद 4 में वादी की ओर से दिये गये तर्क को वाद 4 में मांगे गये अनुतोष के साथ मिलाकर पढ़ा जाना चाहिए। मांगा गया अनुतोष है :

> "(a) इस प्रभाव की उद्घोषणा कि वाद में संलग्न रेखाचित्र में ABCD अक्षरों से दर्शित की गयी सम्पत्ति सार्वजनिक मस्जिद है जिसे आम तौर पर 'बाबरी मस्जिद' के नाम से जाना जाता है और वाद के पैरा 2 में यथा विनिर्दिष्ट EFGH अक्षरों से दर्शायी गयी मस्जिद से संलग्न भूमि एक सार्वजनिक मुस्लिम कब्रगाह है जिनकी डिक्री की जा सकती है।
>
> (b) यह कि यदि न्यायालय की राय में कब्जा दिया जाना उचित उपचार माना जाता है तो मूर्तियों और अन्य वस्तुओं, जिन्हें अपने पूजा पाठ के लिए हिन्दुओं ने मस्जिद के अन्दर रखा है, को हटाकर मस्जिद और कब्रगाह का कब्जा देने के लिए प्रतिवादीगण के विरुद्ध वादी के पक्ष में डिक्री पारित की जाय।
>
> संशोधन/
>
> 25.5.95 दिनांकित न्यायालय आदेश द्वारा परिवर्धित हस्ताक्षरित/–
>
> (bb) यह कि विधिक प्रापक को वाद की अनुसूची 'A' में वर्णित वाद की सम्पत्ति को उस पर बने अनधिकृत संरचनाएं हटाकर सौंपने का आदेश दिया जाय।"

वाद 4 में किये गये उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ का दावा बाहरी और भीतरी दोनों अहातों से संबंधित है। वादीगण के अनुसार मस्जिद अल्लाह की है। यह तर्क दिया गया है कि ABCD अक्षरों से अंकित विवादित सम्पत्ति के निवासी मुस्लिम समुदाय द्वारा लंबे और अनवरत प्रयोग के कारण विवादित स्थल को उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के रूप में मान्यता दी जाय।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

741. वाद 4 में वादीगण की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ धवन ने स्वीकार किया कि 1856–7 के पहले कब्जा, उपयोग या मस्जिद में इबादत का कोई साक्ष्य नहीं है। ABCD अक्षरों से अंकित विवादित सम्पत्ति पर वर्ष 1528 में उसके निर्माण की तिथि से वर्ष 1857 में औपनिवेशिक सरकार द्वारा रेलिंग बनवाये जाने तक की 325 वर्षों की अवधि में इबादत या कब्जा नियंत्रण का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसलिए अभिलेख पर साक्ष्यों की अनुपस्थिति में,ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि 1857 से पहले विवादित स्थल का निवासी मुस्लिम समुदाय द्वारा इबादत के लिए उपयोग किया जाता था। वर्ष 1856–57 की घटना के बाद, पूजा क्षेत्र को आंतरिक और बाहरी अहाते में बांटने के लिए औपनिवेशिक सरकार ने रेलिंग बनवाई। जिसके कुछ समय बाद, बाहरी अहाते में रामचबूतरा बनवाया गया। रामचबूतरा और पहले से विद्यमान सीता रसोई पर पर पूजा की वजह से ABCD अक्षरों से अंकित सम्पत्ति के भीतर हिन्दुओं की पूजा संस्थागत हो गयी।

742. रेलिंग का निर्माण स्वामित्व अधिकारों को सुलझाने का प्रयास नहीं था। यह कानून व्यवस्था सुनिश्चित करने का एक सुविधाजनक उपाय था। वर्ष 1858 से 1883 के बीच विवाद से यह दिखता है कि रेलिंग बनाकर हिन्दुओं को आन्तरिक अहाते से बाहर करने का प्रयास स्थायी विवाद का विषय था। विशिष्ट रूप से, बाहरी अहाते में हिन्दु भक्तों की गतिविधियां जारी रही। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण संसूचक औपनिवेशिक सरकार का 1877

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में हिन्दू भक्तों की सुविधा के लिए बाहरी अहाते में एक अतिरिक्त द्वार खोलने देने का निर्णय था जिसके विरुद्ध आपत्तियां की गयीं और उन्हें निरस्त कर दिया गया। हिन्दू भक्तों के लिए एक अतिरिक्त प्रवेश द्वार की आवश्यकता पूजा करने के लिए इसके प्रयोग के व्यापक प्रकृति का संकेतक है। प्रवेश मिलने पर, हिन्दू भक्त राम चबूतरा और सीतारसोई जैसी कई संरचनाओं पर पूजा करते थे। बाहरी अहाते में भण्डार भी उनके नियंत्रण में था। इससे पता चलता था कि जहां तक बाहरी अहाते का संबंध था, हिन्दू भक्तों का सुस्थापित कब्जा था और सक्रिय रूप से अपनी आस्था का पालन कर रहे थे। हिन्दू भक्तों का बाहरी अहाते पर यह कब्जा खुले तौर पर था और मुस्लिमों की जानकारी में था। वर्ष 1857 और 1949 के बीच की कई घटनाओं को निर्णय के अन्य भाग में सन्दर्भित किया गया है जिससे पता चलता है कि आन्तरिक अहाते पर कब्जा गंभीर विवाद का विषय था। बाहरी अहाते पर मुस्लिमों का कब्जा नहीं था। यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य का अभाव है कि 1858 के बाद आन्तरिक अहाते का अनन्य या निर्विघ्न प्रयोग होता था।

743. वाद 4 में वादीगण का तर्क यह है कि आन्तरिक और बाहरी दोनों अहाते सहित मस्जिद की पूरी सम्पत्ति वक्फ सम्पत्ति है। एक बार वक्फ के रूप में मान्य हो जाने पर सम्पत्ति उस दिन से स्थायी और अहस्तान्तरणीय रूप से अल्लाह की हो जाती है जिस दिन से वक्फ को अस्तित्व में माना जाता है। भूमि अविच्छेद्य हो जाती है और वक्फ विधान और इस्लामिक विधि के नियामक दायरे में आ जाती है। उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सिद्धान्त हमारे विधि में सुस्थापित है। हालांकि यथा उपरोक्त वर्णित पूर्व निर्णयों द्वारा उल्लेख किया गया है कि ऐसे मामलों पर विचार करना जहां कोई सम्पत्ति इस्लाम धर्म के मानने वालों द्वारा लंबे और अनवरत धार्मिक प्रयोग का स्थल रहा हो लेकिन मूल समर्पण समय की गर्त में खो गया हो, आवश्यकता का सिद्धान्त है। उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के रूप में मान्य होने के पश्चात संपत्ति के चरित्र में होने वाले बुनियादी बदलाव के कारण , उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ को सिद्ध करने का साक्षिक भार अधिक होता है। वाद 4 के वादपत्र में दलीलें अदक्ष हैं। प्रयोग की प्रकृति या दायरे का विवरण नहीं दिया गया है। वादपत्र के पैरा 2 में एक वाक्य उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के दावे को संवहनित नहीं कर सकता। इसके अलावा इस तर्क का, कि पूरी संपत्ति एक समेकित वक्फ था , संदर्भहीन मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। न्यायालय विवादित स्थल के परिसर में हिन्दू भक्तों की स्थापित धार्मिक पूजा के साक्ष्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता। यदि वादीगण द्वारा वाद 4 में दिये गये तर्क, कि पूरी विवादित संपत्ति उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ है, को स्वीकार किया जाता है तो यह हिन्दुओं द्वारा धार्मिक पूजा स्थल के रूप में विवादित संपत्ति पर किये गये सभी दावों को खत्म करने के बराबर होगा।

744. उपरोक्त संदर्भित निर्णय में, जिसमें उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ के दावों को मान्यता दी गयी है, दूसरे धार्मिक समुदाय द्वारा संपत्ति को धार्मिक पूजा करने के लिए प्रयोग करने के संदर्भ में दावे नहीं किये गये हैं। यह प्रतीत होता है कि इन मामलों के तथ्यों में उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ की मान्यता से दूसरे धार्मिक समुदाय के विरोधी और विधिक रूप से मान्य अधिकार खत्म

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं हो गये। **मीरू बनाम राम गोपाल**[366] के मामले में, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने धारित किया कि जमींदार की संपत्ति के सार्वजनिक धार्मिक प्रयोग से संपत्ति पर जमींदार का पंथनिरपेक्ष स्वत्व खत्म हो गया। हालांकि यह निर्णय ऐसे संदर्भ में था जहाँ पर भूमि पर एक कच्ची मस्जिद थी और जमींदार ने अपनी भूमि को मुस्लिम प्रार्थना के लिए प्रयोग किए जाने की अनुमति दी थी। उच्च न्यायालय ने निम्नवत धारित कियाः

> "दस्तावेजी साक्ष्य में तीन दस्तावेज हैं, पहला, वर्ष 1311 फसली (1903–04)एक खसरा प्रदर्श. ए था। इस खसरा में कहा गया है कि प्लाट सं. 119 "मस्जिद" के रूप में दर्ज है... यदि जमीनदार को उस प्रविष्टि से आपत्ति थी तो वह भू राजस्व अधिनियम की धारा 111 के अन्तर्गत न्यायालय में आवेदन कर सकता था। यह तथ्य कि उसने प्रविष्ट पर आपत्ति नहीं की, दर्शाता है कि वह प्रविष्ट से सहमत था।"

.....

> यह नहीं कहा गया है कि जमीनदार ने मस्जिद को अपनी सम्पत्ति समर्पित कर दी थी। यह कहा गया है कि **जमीनदार ने प्रतिवादीगण को मस्जिद के उद्देश्य के लिए भवन के प्रयोग द्वारा जमीनदार की मौन या मुखर सहमति से भवन को मस्जिद के रूप में समर्पित करने की स्वीकृति दी।**
>
> (प्रभाव वर्धित)

उस मामले में जमींदार ने इस संपत्ति पर मुस्लिमों द्वारा सतत पूजा की स्वीकृति दी थी और अनवरत और लम्बे समय से धार्मिक पूजा का उच्च साक्ष्यिक मानक पूरा हो रहा था। जमींदार की स्वीकृति चाहे प्रत्यक्ष या परोक्ष एक विशिष्ट कारक था। वर्तमान मामला भौतिक रूप से भिन्न है इसमें किसी भी संबंधित पक्ष की स्वीकृति नहीं है इसके विपरीत हिन्दुओं के देवता भगवान राम ने विवादित संपत्ति पर अपने अधिकारों का प्रयोग किया है।

---

366 1935 AIR All 891

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

745. प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों से यह दर्शित नहीं होता है कि पूरी विवादित संपत्ति का प्रयोग निवासी मुस्लिम समुदाय द्वारा सार्वजनिक धार्मिक पूजा के लिए किया जाता था। यह स्पष्ट है कि बाहरी अहाता वास्तव में भगवान राम के भक्तों द्वारा उपयोग किया जाता था और उनके कब्जे में था। संपत्ति के यह हिस्से स्पष्टतः निवासी मुस्लिम समुदाय के सदस्यों द्वारा धार्मिक उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किए जाते थे और लम्बे प्रयोग के आधार पर वक्फ संपत्ति नहीं हो सकते। आगे वर्तमान मामले में ABCD अक्षरों से अंकित पूरी विवादित सम्पत्ति को वक्फ संपत्ति मानने का जो परिणाम होगा वह वाद 5 में भूमि को ही न्यायिक व्यक्तित्व की मान्यता देने का वादीगण के दावे का यह दर्पण प्रतिबिम्ब होगा। इसका परिणाम किसी विशेष धर्म के आंतरिक तत्वों के कारण जिन्हें विशेष उद्देश्य के लिए मान्यता दी गई हो, दूसरे समुदाय के पूजा करने के अधिकार का विनाश होगा। विधि यह मान्यता देती है कि जहाँ अति प्राचीन समय से किसी मस्जिद वाली भूमि पर इबादत की जाती रही हो, तो भूमि को धार्मिक उद्देश्य के लिए समर्पित माना जाता है, और समर्पण के अभाव में भी उपयोगकर्ता द्वारा वक्फ माना जाता है। हालांकि इससे उस संपत्ति में दूसरे समुदाय के विरोधी और स्थापित धार्मिक अधिकार, विशेषकर उपरोक्त उल्लिखित साक्ष्यों के आलोक में, खत्म नहीं हो सकते। वाद 4 में वादीगण द्वारा दिए गए तर्क को मानने का यही परिणाम होगा और जो विधि द्वारा समर्थित नहीं हो सकता।

0.12 कब्जा और प्रतिकूल कब्जा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

746. वाद 4 में वादीगण ने विकल्प में प्रतिकूल कब्जे का तर्क दिया है। प्रतिकूल कब्जे का दावा करने का अधिकार वाद पत्र (यथा संशोधित) के प्रस्तर 11(a) में दिया गया है जो निम्नवत् हैः

> "11(a). वैसा मान लेने पर, यद्यपि स्वीकार नहीं किया गया है,जैसा हिन्दू प्रतिवादी प्रतिनिधियों द्वारा यथा कथित,कि एक समय हिन्दू मंदिर विद्यमान था जिसके स्थान पर बादशाह बाबर ने लगभग 433 वर्ष पहले मस्जिद बनवाई, तो भी मुस्लिमों का, मस्जिद के बनने से लेकर मस्जिद में कुछ शरारती तत्वों के घुसने और इसे अपवित्र करने तक , जैसा वादपत्र के पूर्ववर्ती प्रस्तर में कथित है, लंबे, अनन्य और अनवरत कब्जे द्वारा मुस्लिमों ने प्रतिकूल कब्जे द्वारा अपना स्वत्व पूर्ण कर लिया और मंदिर और हिन्दू जनता का, यदि कोई, अधिकार, स्वत्व या हित खत्म हो गया।"

प्रस्तर 11(a) की दलीलें उपधारणा पर आधारित हैं किः हिन्दू मन्दिर के अस्तित्वमान होने की स्थिति में, जैसा कि प्रतिवादीगण द्वारा कथित है जिसके स्थान पर मस्जिद बनायी गयी थी; लम्बे, अनन्य और सतत कब्जे द्वारा मुस्लिम अपने स्वत्व को पूर्ण करने का दावा करते हैं और यह कि मन्दिर और हिन्दू समुदाय का अधिकार, स्वत्व और हित, यदि कोई हो, खत्म हो जाता है। प्रतिकूल कब्जे की दलील मस्जिद की निर्मित होने पर बाबर द्वारा मुस्लिमों के सार्वजनिक पूजा के लिए समर्पित होने के मुख्य दलील की सहायक है।

747. प्रतिकूल कब्जे की दलील इस स्वीकृति पर आधारित होती है कि संपत्ति का स्वामित्व अन्य में निहित है जिसके विरूद्ध दावा करने वाला अन्य के स्वत्व के प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है। कब्जा इस अर्थ में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रतिकूल है कि यह अन्य व्यक्ति के स्वीकृति स्वत्व के विपरीत है जिसके विरूद्ध इसका दावा किया गया है। प्रत्यक्षतः इसलिए वाद 4 के वादीगण को इस तथ्य से अवगत होना चाहिए कि हिन्दूओं या मन्दिर के विरूद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा दूसरे में स्वत्व की स्वीकृति के समान होगा। डॉ धवन ने माना है कि यह दलील एक सहायक या वैकल्पिक दलील है जिस पर मुख्य दलील के साक्ष्यों के आधार पर स्थापित होने की स्थिति में आरूढ़ रहना वादीगण के लिए आवश्यक नहीं है। तब इस बात का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है कि क्या प्रतिकूल कब्जे का दावा स्थापित किया गया है।

748. ऐसा व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे की दलील देता है, को ऐसा कब्जा जो शान्तिपूर्ण, खुला और अनवरत हो – और ऐसा कब्जा जो nec ve nec claim and nec precario होने की शर्त पूरा करता हो, दोनों स्थापित करना होगा। प्रतिकूल कब्जे की दलील को सारवान बनाने के लिए कब्जे का चरित्र अनवरतता और सार्वजनिक होने के मामले में पर्याप्त होना चाहिए क्योंकि प्रतिकूल होने के लिए कब्जे को वास्तविक स्वामी की जानकारी में होना चाहिए। इन शर्तों को पहले पर्याप्त दलील और दूसरे पर्याप्त साक्ष्य के द्वारा भलीभाँति स्थापित होना चाहिए। यह सुस्थापित है कि साक्ष्य केवल उन्हीं मामले के संदर्भ में प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनकी किसी सिविल वाद में दलील दी गयी हो और उपयुक्त दलील के न होने पर किसी मामले में साक्ष्य इसकी कमी को पूरा नहीं कर सकते। प्रस्तर 11(a) को पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कहने के अलावा – कि मस्जिद के बनने के समय से इसके अपवित्र होने तक मुस्लिमों का लम्बा, अनन्य और अनवरत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कब्जा रहा– कोई तथ्यात्मक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह मात्र विवरण या साक्ष्य का मामला नहीं है। प्रतिकूल कब्जे की दलील से वास्तविक स्वामी के अधिकार को निरस्त करने का प्रयास होता है और विधि इसे आसानी से स्वीकार नहीं करता जब तक कि दलील में स्पष्ट और संज्ञेय आधार न दिया गया हो और साक्ष्यों द्वारा स्थापित न हो।

749. हालांकि प्रस्तर 11(a) में कब्जे की शुरूआत मस्जिद के निर्माण के समय की बतायी गयी है यह बात सामने आई है कि 1528 से 1860 की अवधि में कब्जे के संदर्भ में कोई भी अभिलेख उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा विकल्प में प्रतिकूल कब्जे की दलील देना या एक सहायक दलील के रूप में रखना प्रतिकूल कब्जे की दलील के विकास में एक विशिष्ट सुधार है। वाद 2 में (जिसे बाद में वापस ले लिया गया पहले प्रतिवादी द्वारा जो कि वाद 4 में वादी संख्या 10 है, एक लिखित कथन दायर किया गया था। लिखित कथन में पहले प्रतिवादी ने दावा किया कि यदि किसी भी समय वाद का कोई वादी या कोई अन्य हिन्दू यह सिद्ध कर दे कि मस्जिद के निर्माण से पूर्व उस स्थान पर एक मन्दिर था, उस स्थिति में भी मुस्लिमों के पास 400 वर्षों तक कब्जा रहा और उनका कब्जा हिन्दुओं की जानकारी में था। परिणामस्वरूप हिन्दुओं के पास कोई स्वामित्व नहीं है।

750. बाद में वाद 4 के संस्थित होने के समय तक प्रतिकूल कब्जे की दलील को एक सहायक तर्क रहने दिया गया है मुख्य तर्क यह था कि बाबर द्वारा मस्जिद के बनवाने पर इसे सार्वजनिक इबादत के लिए समर्पित किया गया था। वास्तव में इन कार्यवाहियों के क्रम में भी उस तरीके के संबंध में अस्पष्टता विद्यमान है जिससे प्रतिकूल कब्जे के दावे पर विचार किया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। प्रतिकूल कब्जे के संबंध में अपने लिखित तर्क में डॉ राजीव धवन ने निम्नलिखित कथन प्रस्तुत किया हैः

> "7.1 वाद 4 में, प्रतिकूल कब्जे का मुख्य दावा हिन्दू पक्षकारों विशेषकर निर्मोही अखाड़ा (वाद 3 में वादी और वाद 4 और 5 में प्रतिवादीगण) और वाद 5 में वादीगण द्वारा यह जोर देने के लिए किया गया है कि जन्म भूमि (वादी सं.2) के विरुद्ध कोई प्रतिकूल कब्जे का दावा नहीं किया जा सकता।
>
> 7.2 यथा उपरोक्त वर्णित, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जिलानी ने दस्तावेजों के संबंध में साक्षी बयान के समर्थन के बिना भी यह स्थापित किया है कि वर्ष 1939 – 49 से प्रतिकूल कब्जे का दावा आधारहीन है।

कथन से उपरोक्त उद्धरण वास्तव में इस पर बल देता है कि वाद 4 में प्रतिकूल कब्जे का मुख्य दावा हिन्दू पक्षकारों द्वारा किया गया है, निर्मोही अखाड़ा और वाद 5 के देवताओं के विशेष बल देने पर। जो बात उपरोक्त कथन में छूट गयी है वह यह है कि वाद 4 में प्रतिकूल कब्जे का तर्क स्वयं सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड नीत वादीगण द्वारा दिया गया है। बल्कि वाद 4 के तर्कों का प्रत्युत्तर देते समय कथन से यह प्रतीत होता है कि यह एक ऐसा कथन है जो केवल निर्मोही अखाड़ा और देवताओं द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तर 11(a) जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, सुन्नी सैन्ट्रल वक्फ बोर्ड और अन्य समर्थनकारी वादीगण की दलील है। जिसमें प्रतिकूल कब्जे की दलील देने का प्रयास है।

751. कब्जे का परिभाषित करने का कोई भी प्रयास संदर्भ आधारित होना चाहिए। सार्वत्रिक प्रयोज्यता वाले सिद्धांत को समझना दुर्बोध होता है। कठिनाई उलझनों से भरी हुई तथ्यात्मक स्थितियों को विधिक मानबिन्दुओं में परिवर्तित करने की होती है। सिद्धान्त में यह तथ्य निहित होता है– कब्जे में होने का – और आशय, कब्जे में होने की इच्छा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

752. **सुपरिन्टेंडेंट एण्ड रेमेमब्रेंस ऑफ लीगल अफेयर वेस्ट बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा**[367] के मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीश न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति आर एस सरकारिया ने उल्लेख किया कि कब्जे की अवधारणा बहुपक्षीय होती है जिसमें अधिकार (सुखाधिकार) और एक तथ्य (वास्तविक आशय) दोनो निहित होता है। विद्वान न्यायाधीश ने धारित किया किः

> "13. "कब्जे" की पूर्ण तार्किक और सटीक व्याख्या करना जो सभी विधायनों के संदर्भ में एक समान रूप से लागू हो , असंभव है। अपनी पुस्तक *जुरिस्प्रूडेंस* में डियाज और ह्यूजेस कहते हैं कि यदि किसी विषय का बहुत अधिक सैद्धान्तीकरण हुआ है तो वह "कब्जा" का विषय ही है। ऐसी बहुत सी कठिनाई और विभ्रम (जैसा *सालमाण्ड के जुरिस्प्रूडेंस* के 12 वें संस्करण 1966 में उल्लेख है) इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि कब्जा पूर्णतः विधिक अवधारणा नहीं है। "कब्जा" में एक अधिकार और एक तथ्य निहित होता है, संपत्ति के अधिकार से संलग्न सुखाधिकार और वास्तविक आशय का तथ्य। *इसमें नियंत्रण की शक्ति और नियंत्रण का आशय निहित होता है।* (देखें डियाज और ह्यूजेस उपरोक्त)

यह अवलोकन शस्त्र अधिनियम 1959 की धारा 29 (बी) के तहत कब्जे के संदर्भ में किया गया था।

पी. लक्ष्मी रेड्डी बनाम एल लक्ष्मी रेड्डी[368] के मामले में न्यायमूर्ति जगन्नाथदास इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए प्रतिकूल कब्जे की मान्य आवश्यकता पर विचार किया गया:

---

367 (1979) 4 SCC 274

368 1957 एस.सी.आर. 195

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"4. अब, प्रतिकूल कब्जे की साधारण मान्य आवश्यकता यह है कि इसको बिना बल, बिना गोपनीयता, बिना अनुज्ञा के होनी चाहिए। (देखें: सेक्रेट्री ऑफ स्टेट बनाम देवेंद्र लाल खान (1933) एल.आर. 61 ए 78,82)। आवश्यक कब्जा पर्याप्त रूप से सतत, सार्वजनिक, और उसे इस सीमा तक हो जिससे यह पता चले कि वह विपक्षी के प्रतिकूल कब्जे में है।"

न्यायालय ने यू. एन. द्वारा विरचित पुस्तत टैगोर लॉ लेक्टर ऑन लिमिटेशन ऑफ प्रेसक्रिप्सन संस्करण 2 के निम्नलिखित निष्कर्ष का प्रोद्धरण दिया।

"7.... एक प्रतिकूल कब्जा भूमि का एक वास्तविक और अनन्य विनियोजन है जो उनके विरूद्ध (sic) भूमि को धारण करने के लिए जिनका उस भूमि पर कब्जा है अधिकार के दावे के तहत शुरू होता और बना रहता है, वह दावा या तो स्पष्ट हो या प्रलक्षित हो (विनियोग के कार्यों एवं परिस्थितियों से उत्पन्न)। (एंजेल, धारा 390 और 398)। यह विपरीत पक्ष के अधिकारों के इस तरह के आक्रमण के साथ प्रतिकूल रूप से दावा करने का इरादा है क्योंकि उसे कार्रवाई का कारण बनता है जो प्रतिकूल कब्जे का गठन करता है।[369]"

यह न्यायालय आयोजित:

"7.... इस सिद्धांत के साथ सहमति, प्रतिकूल कब्जे की शुरुआत, किसी व्यक्ति के पक्ष में तात्पर्य है कि व्यक्ति उस समय वास्तविक कब्जे में है, उस समय, अनन्य शीर्षक के कुख्यात शत्रुतापूर्ण दावे के साथ, जिसे निरस्त करने के लिए, असली मालिक तब एक कार्रवाई बनाए रखने की स्थिति में होगा। यह पालन करेगा कि जो भी व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे से शीर्षक हासिल करने के इच्छुक व्यक्ति के इरादे या इरादे हो सकते हैं, उसका प्रतिकूल कब्जा तब तक शुरू नहीं हो सकता जब तक कि वह पुन: कथित दुश्मनी के साथ वास्तविक कब्जा प्राप्त नहीं कर लेता।"

---

369 6 वां संस्करण, भाग 1, लेक्चर 6, पृष्ठ संख्या 159

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कर्नाटक बोर्ड ऑफ वक्फ बनाम भारत सरकार[370], न्यायमूर्ति एस राजेंद्र दो न्यायधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए धारित किया कि:

> "11... अनन्य कब्जे के भौतिक तथ्य और वास्तविक मालिक को बहिष्कृत कर मालिक के रूप में कब्जे में रहने का आशय सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें इस प्रकृति के मामलों में विचारित किया जाना चाहिए। प्रतिकूल कब्जा विशुद्ध विधि का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक तथ्य और विधि से संबंधित है। तथ्य एवं विधि। इसलिए, प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति को दिखाना चाहिए: (क) वह किस तारीख को कब्जे में आया, (ख) उसके कब्जे की प्रकृति क्या थी, (ग) क्या कब्जे का तथ्य दूसरे पक्षकार को ज्ञात था, (घ) उसका कब्जा कब तक जारी रहा, और (ड़) उसका कब्जा खुला और बाधित नहीं था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

मामले की सामग्री को अभिवचनों में स्थापित कर साक्ष्य में साबित किया जाना चाहिए। आधारहीन साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है और विधि में साक्ष्य रहित अभिवचन मामले को गठन नहीं करेगा।

अकाली बनाम ए. वेदनायगम[371] के मामले में इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि भूमि पर कब्जा मात्र स्वत्व में परिणित नहीं हो जाएगा। स्वामी के पास कब्जा होना चाहिए और उसे वास्तविक स्वामी के प्रतिकूल भूमि धारण करना चाहिए। इसके अलावा, उसे परिसीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि के लिए उस क्षमता में बने रहना चाहिए।

---

370 (2004) 10 एस.सी.सी. 779

371 (2007) 14 एस.सी.सी. 308

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

753. **प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्णीत मस्जिद शाहिदगंज बनाम शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर**[372] के मामले में लाहौर में एक मस्जिद थी जिसे सन 1722 में बनाया गया था। 1762 या उसके बाद से वह भवन और उसके आस–पास की जमीन सिक्खों के अधिभोग और कब्जे में थी। सन् 1849 में अंग्रेजों द्वारा विलय के समय मस्जिद और संपत्ति मस्जिद और इसकी सम्पत्ति सिख गुरुद्वारा के महंत के कब्जे में थी और मस्जिद का जो भवन था उसका प्रयोग सिख समुदाय कर रहा था। सिख गुरूद्वारा अधिनियम 1925 के तहत पुरानी मस्जिद की इमारत और उससे संलग्न भूमि को गुरुद्वारा की सम्पत्ति में शामिल थी। मुसलमानों ने 1928 में सिखों के गुरुद्वारों न्यायाधिकरण के समक्ष एक मुकदमा दायर किया , जिसके परिणामस्वरूप यह पाया गया कि उनका दावा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर खारिज कर दिया गया।

वाद स्वयं मस्जिद सहित 18 वादी द्वारा वादमित्र के माध्यम से दायर किया गया था, जबकि अन्य ने पूजा के अधिकार का दावा किया था। यह मुकदमा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के खिलाफ यह घोषणा किये जाने के लिए था कि इमारत एक मस्जिद है जिसमें इस्लाम के अनुयायियों को पूजा करने का अधिकार है। यह मुकदमा जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था और उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा एक अलग निर्णय सुनाकर एक विभाजित फैसले में उसकी पुष्टि की गई थी। प्रिवी काउंसिल की ओर से सर जार्ज रस्किन ने धारित किया:

---

372 ए.आई.आर. 1940 पी.सी. 116

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"यह वादी गण की जिम्मेदारी थी कि वे विलय की तिथि पर सही स्थिति को स्थापित करें। चूंकि सिख महंतों ने सिख राज्य के तहत लंबे समय तक कब्जा धारण किये इसलिए वादीगणों पर ही यह सिद्ध करने का भार है कि वह इस उपधारणा का खण्ड़न करें कि महंतगणों का कब्जा उस समय और उस जगह पर विधिसम्मत था।"

इस तर्क की सुनवाई करते हुए कि मस्जिद के मामले में, जो कि एक कब्रिस्तान है, वक्फ संपत्ति का उपयोग पैसों में किया जाना आशायित है और न इसे किरायेदारी अथवा कृषि प्रायोजनों हेतु, प्रिवी काउंसिल ने निम्नुसार धारित किया:

"... लेकिन परिसीमा अधिनियम मुस्लिम विधि में अन्य संक्रमणकी क्षमता से संबंधित नहीं है। यह प्रक्रिया संबंधी नियम को बताता है जिसके तहत आंग्ल भारतीय न्यायालय एक निश्चित समय के बाद अधिकारों को लागू नहीं करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे निश्चित अधिकार समाप्त हो जातेहैं।मस्जिद के प्रयोजनों के लिए वक्फ की गई संपत्ति के लिए आधुनिक परिसीमा अधिनियमों के किसी भी अपवाद को पढ़ पाना असंभव है, चाहे उसका उद्देश्य केवल मस्जिद के रखरखाव और प्रबंध के लिए धन प्रदान करना हो या उद्देश्य के लिए एक स्थान और भवन उपलब्ध कराना हो। जबकि लॉर्डशिप में धार्मिक भावना के साथ हर प्रकार की सहानुभूति है जो पूजा स्थल के पवित्रता और अनुलंघनीयता का वर्णन करती है, वे परिसीमा अधिनियम के तहत नहीं आएँगे सिवाय इस तर्क के कि ऐसे भवन को वक्फ के प्रतिकूल नहीं प्राप्त किया जा सकता है, अथवा इसको तब तक नहीं प्राप्त जा सकता है जब तक इस मस्जिद के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया जाता अथवा जब तक उस भूमि पर कोई भवन न खड़ा किया जाता अथवा इसके मूल उद्देश्य को दिखाने वाला रूप समाप्त न हो जाए।"

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

754. वर्ष 2015 में पारित इस निर्णय में कर्नाटक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश, न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर ने बारीकियों की पहचान की और प्रतिकूल कब्जे संबंधी दावे के पूर्व आपेक्षाओं का निम्नलिखित शर्तों में प्रतिपादित किया[373]:

> "27. प्रतिकूल कब्जे की अवधारणा एक पक्षद्रोही कब्जे को इंगित करता है, अर्थात, एक ऐसा कब्जा जो अभिवयक्त या विवक्षित रूप से वास्तविक स्वामी मालिक के स्वत्व को खारिज करता है। प्रतिकूल कब्जा होने के लिए ऐसे व्यक्ति द्वारा कब्जा होना चाहिए, जो दूसरों के अधिकारों को अभिस्वीकृत नहीं करता है बल्कि अस्वीकार कर देता है। कब्ज़ा का अर्थ है अधिपत्य और नियंत्रण, और उस व्यक्ति के मन में यह भाव हो कि उसका उस वस्तु पर अधिपत्य है और वह अपने इस अधिपत्य का प्रयोग कर सकता है यह। भूमि पर कब्जा मात्र से स्वत्व नहीं मिल जाएगा। कब्जाधारी के पास कब्जे का आशय होना चाहिए और वह वास्तविक स्वामी के स्वत्व के प्रतिकूल भूमि को धारित करे। अधिपत्य से बिना किसी अधिकार के मात्र भूमि का उपयोग पता चलता है। प्रतिकूल कब्जा होने के लिए, ऐसे व्यक्ति का वास्तविक कब्जा होना चाहिए जो स्वयं या उससे स्वत्व प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा अधिकार स्वरूप दावा करते हैं। भूमि का स्वत्व सिद्ध करने के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि कब्जे से संबंधी कुछ कार्य किये गये हैं। आपेक्षित कब्जा को निरंतरता, लोक ज्ञान में तथा इस सीमा तक होना चाहिए जिससे यह दर्शित हो कि वह स्वामी के प्रति प्रतिकूल है। दूसरे शब्दों में, कब्जे को उस दौरान वास्तविक, दृश्यमान, अनन्य, प्रतिकूल और चलत होना चाहिए जब परिसीमी विधि के तहत बाधा सृजित करना आवश्यक हो।"
>
> "30. परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के अंतर्गत आने वाले वाद में वादी को संपत्ति पर अपना स्वत्व अवश्य स्थापित करना चाहिए। उन्हें यह साबित करने की आवश्यकता नहीं है कि वह 12 वर्षों तक कब्जें में थे। यदि वह अपने स्वत्व को साबित करने में विफल रहता है, वाद

---

373 श्रीमती पिल्ला अक्कायम्मा बनाम चनप्पा आई.एल.आर. कर्नाटक 3841

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विफल हो जाता है, और ऐसे मामले में प्रतिकूल कब्जे का प्रश्न जब वादी ने किसी भूमि पर अपना स्वत्व स्थापित कर दिया है, तो यह साबित करने का भार कि उसने प्रतिवादी के प्रतिकूल कब्जे के कारण उस स्वत्व को खो दिया है, प्रतिवादी पर निहित है। यदि प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहता है कि वह 12 से अधिक वर्षों तक प्रतिकूल कब्जे में रहा है, तब वादी अपने स्वत्व के बल पर मुकदमा जीत सकता है। कोई व्यक्ति यह कहता कि वह प्रतिकूल कब्जे से अचल संपत्ति का स्वामी बन गया है तो उसे यह स्थापित करना होगा कि वह उस संपत्ति पर शान्तिपूर्ण तरीके से काबिज है, और वास्तविक स्वामी ने उस कब्जे पर खुले तौर पर अपनी सहमति दे रखी है। वैधानिक अवधि के लिए प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व के अधिग्रहण को स्थापित करने के लिए कठोर प्रमाण की आवश्यकता होती है।"

(प्रभाव वर्धित)

रविन्द्र कौर ग्रेवाल बनाम मंजीत कौर[374] के मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ में न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर ने यह धारित करने के लिए प्रतिकूल कब्जे पर आगे नयी विधि का सृजन कर कहा कि प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से किसी व्यक्ति ने अपना स्वत्व स्थापित किया है तो वह बेदखली की दशा में पुनर्स्थापन के लिए वाद दायर कर सकता है। इसके दृष्टिगत, प्रतिकूल कब्जा एक तलवार और एक ढाल दोनों है।

755. यह साफ है कि वादी स्पष्ट रुख अपनाने में विफल रहा है क्योंकि वे इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि प्रतिकूल कब्जे की दलील देने में , उन्हें आवश्यक रूप से उस व्यक्ति या किसी सत्ता के स्वत्व को अभिस्वीकृत करने का भार उठाना चाहिए जिसके विरूद्ध प्रतिकूल कब्जे की याचिका स्थापित से नहीं की गयी है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और

---

374 (2019) 8 एस.सी.सी. 729

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जब न्यायालय में तर्क दिये जा रहे थे तो उस समय उसे प्रमाणिकता के साथ नहीं रखा गया है। इन सबसे ऊपर, वादी के लिए पूरी संपत्ति के शांतिपूर्ण, खुले और निरंतर कब्जे में होने का मामला स्थापित करना असंभव है। डॉ. धवन ने बार–बार कहते रहे कि हिंदुओं के इस अवैधानिक कृत्य के परिणामस्वरूप मुसलमानों द्वारा मस्जिद में इबादत करने में व्यवधान उतबाधा उत्पन्न हो गया। इसके लिए, डॉ. धवन 1856–7,1934 में हुई घटनाओं को संदर्भित करते हैं और 1949– उनमें से अंतिम घटना की परिणति यह हुई कि धारा 145 के तहत प्रारंभिक आदेश करना पड़ा।145. उपरोक्त घटनाओं में से प्रत्येक के साथ जो घटनाएं जुड़ी हुई हैं उनसे अन्तिम निष्कर्ष निकलता है कि मस्जिद की संरचना के अस्तित्व के बावजूद, मुसलमानों द्वारा बताए गए कब्जे को प्रतिकूल कब्जे से जुड़े मामले के निस्तारण के लिए आवश्यक दहलीज को पूरा करने के रूप में नहीं माना जा सकता है । अभिलेखों में मौजूद साक्ष्य से यह संकेत मिलता है कि रेलिंग के निर्माण के बाद किसी भी अवसर पर बाहरी अहाते में हिंदुओं का कब्जा था। अकेले इसी आधार पर, क्षेत्र की संपूर्णता के संबंध में वादी द्वारा स्थापित प्रतिकूल कब्जे की दलील, जो ए, बी, सी, डी, अक्षरों द्वारा प्रदर्शित है, विफल हो जाएगी।

ऊपरोक्त दर्शित कारणों के चलते वाद 4 का वादी प्रतिकूल कब्जे की आपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहा है।

0.13 विनष्ट अनुदान का सिद्धांत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

756. बहस के दौरान, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने कथन किया कि अनुदान के लोप के सिद्धांत के आधार पर, वाद 4 के वादी ने मुस्लिम समुदाय को इबादत करने के लिए 1528 में बाबर द्वारा इसके निर्माण पर, मस्जिद के समर्पण के आधार पर उद्घोषणा की मांग की।

इस सिद्धांत पर आधारित निर्णय

757. अनुदान के लोप सिद्धांत के तहत, लंबे समय तक उपयोग अथवा कब्जा एक विधिक उपधारणा को जन्म देता है कानूनी अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रयुक्त अधिकार उपयोगकर्ता अथवा कब्जेधारी में चले गये और यह कि पारेषण की लिखत खो गयी है।[375]

हाल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड के अनुसार–

> "सर्वप्रथम न्यायालयों ने यह नियम अभिनिर्णीत किया कि जीवन भर के उपयोगकर्ता से यह उपधारणा उद्भूत हुई कि दूरस्थ पुरावशेष से पता चलता है कि उसी के जैसा कार्य किया जा रहा था। चूंकि यह होना ही था कि कई मामलों में यह हुआ है, ऐसी उपधारणा असंभव है, कब्जे और भोग के लिए ऐसी उपधारणा असंभाव्य थी जिसे विधि को अधिकारों के प्रकृति के साथ प्रदान करना था, ऐसा कार्य विनष्ट आधुनिक अनुदानों के सिद्धान्त के लिए उचित नहीं था।..."[376]

---

375 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा रचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी, प्रोबेट एंड ट्रस्ट जर्नल 23, संख्या 3 (1988) पृष्ठ 535-60 ।

376 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण प्रस्तर 90

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह सिद्धांत केवल वहीं लागू होता है जहां भूमि का भोग या उपयोग अन्यथा यथोचित रूप से नहीं किया जा सकता है। [377]पारेषण लिखत के आभाव में, कानूनी स्मृति के समय से किये गये भोग को संकेत के रूप में देखा जाना चाहिए कि दावाकृत अधिकार अनुदान के माध्यम से दावेदार (या उसके पूर्ववर्तियों) को प्रदान कर दिया गया था।[378] अनुदान को अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकता है।[379] लंबे समय तक उपयोग के माध्यम से संपत्ति का निरंतर और निर्बाध भोग को साबित करने का भार वादी पर है। अदालत उन मामलों में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं करेगी, जहां किसी भी व्यक्ति को ऐसा अनुदान नहीं दे सकता था, अथवा जहां कोई व्यक्ति या व्यक्ति विशेष अनुदान प्राप्त करने के लिए सक्षम नहीं था।[380] चूंकि वहां पर विधिक उपधारणा की गयी है इसलिए यह सिद्धान्त तब तक नहीं लागू होता है जब तब कि उसी अवधि के दौरान विनष्ट अनुदान द्वारा हस्तांतरित किए गए दावाकृत हित को पारेषित करने में सक्षम कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अकेले या एक साथ मौजूद हों। इस सिद्धांत के वैध अनुप्रयोग के लिए, एकमात्र संपोषक साक्ष्य यह है कि पर्याप्त समय सीमा के लिए निर्बाध होना चाहिए। विनष्ट अनुदान का सिद्धांत लंबे समय से उपयोग करने के साक्ष्य पर आधारित नहीं है, बल्कि सबूतों के व्यतिक्रम पर आधारित है। इस सिद्धांत के तहत सुखाधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति को विनष्ट अनुदान का अभिवचन करना चाहिए, लेकिन अभिकथित आधुनिक अनुदान के लिए

---

377 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड , भाग 14, चौथा संस्करण, प्रस्तर 91

378 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा विरचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी प्रोबेट एण्ड़ ट्रस्ट जर्नल 23 संख्या 3 (1988) पृष्ठ संख्या 535-60

379 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा विरचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी प्रोबेट एण्ड़ ट्रस्ट जर्नल 23 संख्या 3 (1988) पृष्ठ संख्या 535-60

380 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण प्रस्तर 94

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पक्षकारों को तारीख और नामों को अपने अभिवचनों में बताने की आवश्यकता नहीं है।

758. प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्णीत **चोकलिंगम पिल्लई बनाम मायांदी चेट्टियार**[384] के मामले में, लॉर्ड बकमास्टर ने मालिकाना अधिकारों के समर्थन में एक वैध उत्पत्ति की उपधारणा को सविस्तार निम्नलिखित शर्तों में व्याख्या किया:

> "जब मूल संव्यवहार के प्रत्येक पक्षकार का निधन हो जाए और यह अभिनिश्चित करना पूरी तरह से असंभव हो जाता है कि वे कौन–सी परिस्थितियां हैं जिनके कारण मूल अनुदान किया जाना था, तो केवल निम्नलिखित नीति जिनको न्यायालय जहां तक संभव हो, पूर्ण कब्जा बनाये रखने वाले लोगों के प्रति जिनका किसी सम्पदा में कब्जा स्पष्ट है, यह उपधारित करने के लिए अनुदान विधिपूर्ण था और अविधिपूर्ण तरीके से किया गया था, अपनाता है।"

हैरिस एण्ड़ चेस्टरफील्ड[385] के मामले में हाउस ऑफ लॉर्ड्स के न्यायालय, लॉर्ड लॉरबर्न एल.जे. ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "..... लेकिन यह सिद्धांत निश्चित रूप से अच्छी भावना पर आधारित है। समय बीतने के साथ पुराने संव्यवहारों के अभिलेख नष्ट हो जाते हैं, यदि उन लोगों में से किसी को भी बेकब्जा कर दिया जाए जिस पर उनके पूर्वजों का कब्जा स्मार्णातीत समय से है और केवल इस आधार पर वे यह दर्शित नहीं कर सकते है कि उन्होंने इस भूमि को कैसे प्राप्त किया गया था, बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। इस कारण से विधि का यह निष्कर्ष है कि मूल अधिग्रहण तब तक वैध था, जब तक कि दावाकृत संपत्ति ऐसी न हो कि उनमें से कोई भी व्यक्ति कानूनन इसे

---

384 आई.एल.आर. 19 मद्रास 185

385 (1911) ए.सी. 623

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> हासिल न कर सके, अथवा तथ्य यह दर्शित करें कि इसे केवल उन तरीकों से हासिल नहीं किया जा सकता था जिनको विधि अनुज्ञा देता है।"

उपरोक्त निर्णय में, न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या किसी नदी पर कई शताब्दियों तक सम्मिलित रूप से मत्स्य पालन अधिकारों का प्रयोग करते हुए विनष्ट अनुदान का उपधारणा की जा सकती है। हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने बहुमत से माना कि विनष्ट अनुदान की कोई उपधारणा इस मामले में उपलब्ध नहीं थी, यद्यपि कई इलाकों के फ्री होल्डर्स, अनिश्चित और अस्थिर व्यक्तियों का संघ, विधि में उचित अनुदानग्रहीता नहीं हो सकते थे।

759. उपरोक्त निर्णय कलकत्ता उच्च द्वारा निर्णीत **असरबुल्ला बनाम कियामट्टुला हाजी चौधरी**[386] के मामले में संदर्भित किया गया था, जहाँ वादी ने दावा किया कि स्मरणातीत काल से उस गाँव के निवासी अपने मवेशियों को स्वतंत्रतापूर्व और बिना किसी रोकटोक के एक विवादित भूमि पर चराया करते और तब से वे विनष्ट अनुदान की उपधारणा के आधार पर चरागाह के अधिकार को प्राप्त कर लिया था। डिवीजन बेंच के न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी इस प्रकार धारित किया:

> "....यह कि यहां विधिपूर्ण उत्पत्ति की उपधारणा की जा सकती है, प्रारम्भ में यह स्थापित करने की आवश्यक है कि वैध अनुदान के पथ में किसी भी प्रकार की विधिक वर्जना नहीं है, और यह कि न केवल एक सक्षम अनुदानकर्ता था बल्कि एक सक्षम अनुदानग्रहीता भी था जिसके पक्ष में अनुदान दिया जा सकता था। यदि किसी भी कारण से

386 ए.आई.आर. 1937 कलकत्ता 245

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> कोई वैध अनुदान नहीं दिया जा सकता था तो ऐसे अनुदान की उपधारणा नहीं की जाएगी।"

760. **एन. शंकरनारायण पिल्लै बनाम बोर्ड ऑफ कमिश्नर फॉर द हिंदू रिलीजियस एनडोमेंट, मद्रास**[387] के मामले में प्रवी कौंसिल एक ऐसे मामले पर विचार कर रही थी जहां पर वाद के पक्षकारों ने दावा किया कि वे वाद सम्पत्ति के स्वामी हैं,जिसमें इनाम (किराया मुक्त) और रैयतवारी अथवा अयान (निर्धारित) दोनों तरह की भूमि शामिल थीं और उसके एक हिस्से से प्राप्त आय से हिस्सा मध्यरात्रि कट्टलाई में खर्च किया जाता था जिसका निर्धारण मद्रास स्थित श्री पापानासम मंदिर करता था। न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या वाद सम्पत्ति पूरी तरह से धर्मदाय के लिए थी अथवा क्या दान के पक्ष में संपत्तियों की आय पर केवल एक भार था। न्यायालय ने पाया कि यह धर्मदाय कर्नाटक के राजाओं ने किया था न कि अपीलकर्ताओं के पूर्वजों ने, जो इस धर्मदाय के प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक मात्र थे। ये संपत्तियां और इससे होने वाली आय पूरी तरह से मंदिर को समर्पित थी, और मुख्य रूप से मध्यरात्रि सेवाओं के लिए, और अधिशेष आय में अपीलकर्ताओं के पास कोई लाभकारी हित नहीं था। धर्मदाय की वास्तविक प्रकृति का निर्धारण करने के उद्देश्य के लिए दस्तावेजी साक्ष्य पर चर्चा कर न्यायमूर्ति एम.आर. जयकर ने इस प्रकार धारित किया:

> "चूंकि धर्मदाय की प्रकृति या शर्तों पर प्रकाश फेंकने वाला कोई दस्तावेज अथवा विलेख अथवा या अनुदान नहीं था इसलिए धर्मदाय की वास्तविक प्रकृति क्या है, इसको निर्धारित करने के लिए अन्य दस्तावेजी साक्ष्यों को अवलम्ब लेने में उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति की

387 ए.आई.आर. 1948 पी.सी. 25

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

राय ठीक थी । इस तरह के दस्तावेजी साक्ष्य में, अन्य बातों के साथ, इनाम–रजिस्टर, स्वत्व विलेख, सर्वेक्षण और बंदोबस्त रजिस्टर में दर्ज बयान, पत्रा एवं प्रशगत धर्मदाय के संबंध में विभिन्न राजस्व अधिकारियों का अपने अधीनस्थों के दिया गया आदेश शामिल था।

.....

वर्तमान मामले में ऐसी कोई व्यवस्था साक्ष्य में नहीं है जिसके साथ अपीलकर्ताओं के परिवार के कब्जे या भोग को शुरू किया जा सकता है। एकमात्र उल्लिखित करार परिवार के मध्य एक समझौता है जिसका धर्मदाय से कोई संबंध नहीं है।"

प्रिवी काउंसिल ने **चोकलिंगम पिल्लई** के मामले में पारित निर्णय का संदर्भित कर वास्तविक साक्ष्य के अस्तित्व की अनुपस्थिति से जुड़े मामलों में विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता पर चर्चा की। न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया:

"....जिन अन्य मामलों का अवलम्ब लिया गया वह मोहम्मद मजफल अल मुसावी बनान जबीदा खातून (ए.आई.आर. पी.सी. 103) का मामला था जहां पर लम्बे समय से और शान्तिपूर्ण सम्पत्ति के भोग के समर्थन में विधिपूर्ण उद्गम की उपधारणा संबंधी विधि की पुष्टि हो गयी चूंकि इसकी व्यख्या लार्ड बकमास्टर द्वारा पूर्व मामले , चोकलिंगम पिल्लई बनाम मयांडी चेट्टियार आई.एल.आर. 19 मद्रास 485 के मामले में की गयी थी।..... लेकिन इसकी व्याख्या उसी मामले में की गयी थी कि यह नियम वहां लागू होता है जहा पर वास्तविक साक्ष्य न उपलब्ध न हो या पक्षाकार उसको प्रस्तुत करने में असफल रहे। अनुमान, यह कहा गया था, कुछ वैध शीर्षक में एक मूल की, जो अदालतों ने अक्सर आसानी से लंबे समय तक और चुपचाप आनंद लेने वाले अधिकार का समर्थन करने के लिए बनाया है, जहां शीर्षक का कोई वास्तविक प्रमाण आगामी नहीं है, और नियम का सहारा लेना होगा वास्तविक साक्ष्य की विफलता के कारण। वर्तमान मामले में, जहां अनुदान की प्रकृति, धर्मदाय का उद्देश्य और उपयोगकर्ता और भोग का दावा करने वाले व्यक्तियों की क्षमता से जुड़े हुए संतोषजनक और पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हों वहां इस नियम की उपयोगिता नहीं हो सकती है।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

761. **लक्ष्मीधर मिश्रा बनाम रंगलाल**[388] के मामले में प्रिवी काउंसिल के उत्तरवर्ती निर्णय में, ग्रामीणों की ओर से प्रतिनिधि क्षमता में अपीलकर्ताओं ने स्मरणातीत काल से कब्रस्तान के रूप में भूमि के एक टुकड़े कादावा किया। दूसरी ओर प्रतिवादी ने निजी उद्योग के प्रायोजन के लिए भूमि का दावा किया। प्रथम अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश ने कहा कि भूमि का आरक्षण एक समर्पण अथवा मकान मालिक द्वारा अनुदान है। उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निर्णय को इस आधार पर अपास्त किया कि कोई विधिमान्य अनुदान विद्यमान नहीं है और अपीलार्थी के वाद को खारिज कर दिया है। अपील में प्रिवी काउंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्या भूमि का उपयोग अंतिम संस्कार के लिए किया जा रहा था, यह तथ्य और विधि का मिश्रित प्रश्न था और अपीलार्थी का यह दावा है कि विवादित संपत्ति गाँव की श्मशान भूमि थी जो प्रथागत थी। अतः धारित किया गया कि विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की कोई प्रयोज्यता नहीं है। विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता के बारे में बताते हुए, लॉर्ड रेडक्लिफ ने इस प्रकार धारित किया:

> ".... यह अनिवार्य रूप से विवादित क्षेत्र में ग्रामीणों के अधिकारों को स्थापित करने वाला एक वाद है। किसी ने भी आम जनता के अधिकारों के अधीन भूमि का दावा किया अथवा इसके बारे में बोला और न ही वास्तव में किसी विशेष गांव में श्मशान घाट पर लागू ऐसी धारणा को अर्थ देना आसान होगा। लेकिन समर्पण केवल अंग्रेजी विधि में दिया गया है, जो कि मिट्टी के मालिक द्वारा जनता के उपयोग के लिए दिए गए अप्रतिसंहृत लाइसेंस के बराबर है। जनता के सीमित वर्ग जैसे कि किसी गांव के निवासी को भूमि के किसी भाग का समर्पण एक

---

388 ए.आई.आर. 1950 पी.सी. 56

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ऐसा दावा है जो विधि में अज्ञात है, और ऐसे विशेष उपयोगकर्ता तक सीमित साक्ष्य समर्पण समर्पण के निष्कर्ष उचित नहीं ठहराएंगे। (देखें: पूले बनाम हसकिंसन, हिल्ड्रेथ बनाम एडमसन और बेरमंड आई बनाम ब्राउन।) भूमि को बांधने वाले एक धर्मार्थ ट्रस्ट के निर्माण से काफी हद तक समान परिणाम प्राप्त हो सकता है, लेकिन यह समर्पण नहीं है, और न ही यह यहां प्रश्नगत है। सुनवाई के किसी भी स्तर पर इस दावे का कोई रिकॉर्ड नहीं है कि ग्राम समाज ने अपने निवासियों में से कुछ वर्गों के लिए एक ट्रस्ट का प्रशासन करने वाले निगम का गठन किया हो, और न ही इस तरह का कोई तर्क माननीय लॉर्डशिप के समक्ष उठाया गया।"

यह सिद्धांत स्वत्व को शक्य बनाने के लिए उत्पन्न हुआ है जो चिरभोगाधिकार द्वारा प्रदान किया जाएगा बजाय स्मर्णातीत काल से प्रयोग करने की असंभाव्यता के। इंग्लिश कॉमल लॉ के अनुसार चिरभोगाधिकार स्मर्णातीत काल, अभिसमय द्वारा, वर्ष 1189 में शुरू हुआ, माना जाता है। यदि यह प्रदर्शित करना संभव होता कि प्रनगत उपयोगकर्ता, भले ही प्राचीन है, जो 1189 से उद्भूत हुआ फिर भी स्मर्णातीत उपयोगकर्ता का चिरभोगाधिकार द्वारा स्वत्व का साक्ष्य असफल हुआ। इस कठिनाई को दूर करने के लिए न्यायाधीशों ने जूरी को यह पता लगाने के लिए अनुमति प्रदान की और प्रोत्साहित भी किया,प्रश्नगत अधिकार भले ही 1189 से पहले के हों, उस तारीख से विनष्ट अनुदान में उत्पन्न हुए। इस प्रकार इस अधिकार ने आवश्यक विधिक सूत्र प्राप्त कर लिया। लेकिन ऐसा अधिकार बस जितना सुखाधिकार के रुप में, एक संपत्ति के साथ संलग्न किया जाना था: इसके अतिरिक्त क्योंकि यह अनुदान में उत्पन्न हुआ , इसलिए इसके मालिक, चाहे वहीं हो अथवां चाहे न्यायगमन के द्वारा मालिक बने होंऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अंग्रेजी विधि के तहत अनुदानग्रहीता के रूप में सक्षम थे। समय–समय पर एक गाँव के निवासियों द्वारा प्रयोग किया जाने वाला कोई अधिकार न तो भूमि में किसी भी संपत्ति से जुड़ा होता है और न ही यह ऐसा अधिकार है जो अनुदान का विषयवस्तु बनाया जा सकता है। कोई ग्राह्य अनुदानग्रीता नहीं हैं। वास्तव में, विनष्ट अनुदान का यह सिद्धांत में इस तरह के अधिकारों के लिए प्रयोग नहीं होता है जैसा जो किसी विशेष परिक्षेत्र के निवासियों भूमि का।

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

762. **राजा ब्रजा सुंदर देब बनाम मोनी बेहरा**[389] के मामले में इस अदालत के तीन जजों की बेंच के फैसले में, यह दावा किया गया था कि प्रमुख प्रतिवादी और उनके पूर्वज लंबे समय से एक निश्चित वार्षिक किराये पर निर्बाध रूप से मत्स्य पालन का कार्य कर रहे थे और वह भूमि उनके वास्तविक कब्जे में थी और उन्होंने यह अधिकार सभी संभव तरीकों जैसे कि अनुदान, प्रथा, प्रतिकूल कब्जे और सुखाधिकार द्वारा अर्जित कर लिया था। वादी की तरफ से नौ गांवों के अन्य मछुआरों की ओर से इस आधार पर व्यादेश जारी करने हेतु एक वाद लाया कि चूंकि वे मत्स्य पालन का मालिकाना हक रखते हैं अतः वे मत्स्य पालक के अनन्य मालिक हैं और प्रतिवादी वादी के भोग के अधिकार में हस्तक्षेप कर नुकसान पहुंचा रहे थे। विचारण न्यायालय ने वादी के पक्ष में एक डिक्री पारित की जिसे बाद में उच्च न्यायालय द्वारा अपील में संशोधित किया गया था, जहां यह अभिनिर्णीत किया गया कि विनष्ट अनुदान के आधार पर प्रतिवादियों के पास किरायेदार के तौर पर केवल हिल्सा मौसम मे तालाब में मछली पकड़ने के विशेष अधिकार थे। उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटकर तत्कालीन न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन खंडपीठ के लिए बोलते हुए निम्नानुसार धारित किया :

> "12 ..... हमें उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण को बनाए रखना मुश्किल पाते है कि विनष्ट अनुदान के तहत विवादित मत्स्य पालन भूमि प्रतिवादियों के कब्जे में थी। विनष्ट अनुदान के तहत। विशेष स्थानीय क्षेत्र के निवासियों के मामले में यह सिद्धांत नहीं लागू होता है जिसमें तहत वे जो भूमि या पानी के खण्ड़ पर उपयोगकर्ता के

---

389 ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 247

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकार को स्थापित करना चाहते हैं। जैसा कि लक्ष्मीधर मिश्रा बनाम रंगलाल AIR 1950 PC 56 के मामले में लॉर्ड रेडक्लिफ ने उल्लेख किया है कि विनष्ट अनुदान के सिद्धांत को एक तकनीकी उपकरण के रूप में उत्पन्न किया गया है ताकि स्मर्णातीत उपयोगकर्ता को साबित करने की असंभवता के बावजूद चिरभोगाधिकार द्वारास्वत्व प्रदान किया जा सके और चूंकि यह अनुदान में उत्पन्न हुआ था इसलिए इसके मालिक, चाहे मूल या भूमि हस्तांतरण से बने हों ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अनुदान प्राप्त कर सकते थे, और यह कि किसी गाँव के निवासियों द्वारा समय–समय पर जो अधिकार प्रयोग किया जा रहा था वह न तो किसी भूमि में किसी भी संपत्ति से जुड़ा हुआ है और न ही यह ऐसा अधिकार है जो अनुदान का विषयक हो सकता है, इसलिए वहां पर को स्वीकार्य अनुदानग्रहीता नहीं है।"

कोई स्वीकार्य अनुदानग्रीता नहीं है। इस संबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय के खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय आश्रबुल्ला बनाम कलकत्ता उच्च न्यायालय AIR 1937 Cal 245 का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें इस विषय पर विधि की विस्तार से जांच की गई है। उस मामले में यह सवाल उठा कि ग्रामीणों ने जिस चारागाह संबंधी अधिकार का दावा किया था वह अभियक्ति या विवक्षित अनुदान से मिल सकता था। कई अंग्रेजी और भारतीय प्रकरणों की जांच के उपरान्त यह माना गया कि कोई कोई विनष्ट अनुदान को अस्थिर और अनिश्चित गांव के निवासियों के पक्ष में नहीं माना जा सकता है और इस तरह के अधिकार को केवल प्रथा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस मामले में प्रतिवादीगण अनिश्चित व्यक्तियों का एक निकाय है और उनकी संख्या प्रत्येक जन्म अथवा मृत्यु द्वारा अथवा मछुआरों के इन गांवों से आने और जाने से बढ़ अथवा घट जाती है।

(प्रभाव वर्धित)

763. **हॉल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड** के अनुसार:

"यह उपधारणा का केवल साक्ष्य द्वारा खंडित किया जा सकता हैकि ऐसे अनुदान का अस्तित्व असंभव है; ऐसे साक्ष्य से कम कुछ भी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर्याप्त नहीं होगा और न्यायाधीश केवल इसलिए अनुदान की उपधारणा करने का अधिकारी नहीं है क्योंकि उनको आश्वस्त किया गया है कि वह वास्तव में कभी मंजूर नहीं किया गया था।"[390]

बुधू सत्यनारायण बनाम कोंडुरु वेंकटपय्या[391] के प्रकरण में इस न्यायालय की दो जजों की बेंच ने कतिपय अचल संपत्तियों के कब्जे का प्रतिउद्धरण के वाद से उत्पन्न अपील पर सुनवाई की। प्रतिवादियों के निष्कासन के लिए सरकार द्वारा नियुक्त कार्यकारी अधिकारी द्वारा इस आरोप पर एक वाद संस्थित किया गया था कि संपत्ति मंदिर की थी जिसे 1770 ई. में एक जमींदार द्वारा दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि प्रतिवादी अर्चक होने के नाते कब्जे में थे और गलत तरीके से संपत्तियों को अपने होने का दावा कर रहे थे। मंदिर के कार्यकारी अधिकारी के रूप में वादी की वाद संपत्तियों पर कब्जा करने के लिए प्रतिवादियों को नोटिस देकर वाद संस्थित किया गया था। उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायाधीश के आदेश को बरकरार रखा। प्रतिवादियों की ओर से, इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि, प्रतिवादीगण और उनके पूर्ववर्तियों प्राचीन समय से संपत्तियों पर कब्जा में है इसलिए विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त के आधार पर वैध स्वत्व की वैध उपधारणा की जानी चाहिए। खंडपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति एस.आर. दास ने इस तर्क को खारिज कर निम्नानुसार धारित किया किया:

"2. प्रधिकारियों को कोई संदेह नहीं है, कि वैध स्वत्व कीउत्पत्ति की उपधारणा कुछ निश्चित परिस्थितियों में लंबे समय तक और

---

390 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण, प्रस्तर 90

391 ए.आई.आर. 1953 एस.सी.195

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शान्तिपूर्वक कब्जे से संवंधित अधिकारों को समर्थन करने के लिए किया जा सकता है जहां पर स्वत्व का कोई वास्तविक प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। लेकिन यह समान रूप सुस्थापित है कि वहां पर उपधारणा नहीं किया जा सकता जहां पर अनुदान की प्रकृति और जिनको अनुदान दिया गया था उससे संबंधित साक्ष्य पर्याप्त सबूत और संतोषजनक हो। यह सच है कि मूल अनुदान सुलभ नहीं है, लेकिन जैसे हम साक्ष्यों पर नजर ड़ालते हैं हमें दो दस्तावेज मिलते हैं जो स्वत्व के प्रश्न पर निर्णायक प्रतीत होते हैं। यह प्रतीत होगा कि न तो इनाम रजिस्टर प्रदर्श पी–3 और न ही बयान प्रदर्श डी–3 में अनुदानग्रहीता के रूप में अर्चाक का अथवा कोई भी कम से कम हित, व्यक्तिगत या अन्यथा, इनाम अनुदान के विषय–वस्तु में कोई उल्लेख है। दोनों प्रदर्श पूर्णरूपेण इंगित करते हैं कि इनाम का अनुदान अनुदानकर्ता द्वारा मंदिरके पक्ष में किया गया था और अनुदान की प्रकृति के संबंध में इस निश्चित साक्ष्य के मौजूदगी के कारण अर्चक के पक्ष में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं की जा सकती है। अर्चक इसलिए, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं और धारित करते हैं कि देवता अनुदानग्रहीता थे और हमारे सामने उठाए गए पहले प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ताओं के विरूद्ध दिया जाना चाहिए।"

[देखेंः सी. पेरीस्वामी गौंडर बनाम सुंदरेश्या अय्यर [392]]

764. मनोहर दास मोहंता बनाम चारू चंद्र पाल के मामले में इस अदालतकी एक संविधान पीठ को अपीलकर्ताओं जो कि एक धार्मिक संस्था के महंत था उसके द्वारा दायर प्रतिवादियों के विरूद्ध भूमि के विभिन्न भूखंडों के कब्जे की प्रत्युद्धरण के वाद पर विचार करना था। दूसरा, अपीलकर्ता ने उचित और न्यायसंगत किराए के मूल्यांकन की मांग की। प्रतिवादियों ने प्रतिवाद कर अभिवचन किया कि विवादित भूमि जमींदारी का हिस्सा नहीं थी, लेकिन स्थायी बंदोबस्त से बहुत पहले उनके पूर्ववर्ती स्वत्वधारियों के पक्ष में

392 ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 516

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुदान किया गया था और जमींदारी के तहत मांग करने वाले न ही बर्दमान के महाराजा और न ही वादी का स्वत्व था। जिला न्यायालय ने मुंसिफ के फैसले को बरकरार रखा और धारित कि प्रतिवादीगण और पूर्ववर्ती बहुत लंबे समय से किराए का भुगतान के बिना कब्जे में थे और विनष्ट अनुदान की उपधारणा उनके पक्ष में की जा सकती थी। उच्च न्यायालय ने जिला न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील खारिज कर दी। इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर निचली अदालतों ने प्रतिवादियों के पक्ष में विनष्ट अनुदान की सही उपधारणा की थी। इस न्यायालय ने धारित किया कि प्रतिवादियों के पक्ष में विनष्ट अनुदान का कोई उपधारणा नहीं की जा सकती है, और जो जिस भूमि पर वादी का कब्जा है वह उसका उचित और न्यायसंगत किराए के आंकलन करने का अधिकारी था। खंडपीठ की ओर बोलते हुए, न्यायमूर्ति टी. एल. वेंकटरामा अय्यर ने निम्नलिखित शर्तों में विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता की व्याख्या की:

> "7. जिन परिस्थितियों और शर्तों के तहत विनष्ट अनुदान की उपधारणा की जा सकती थी वह सुस्थापित है। जब ऐसा पाया गया कि कोई व्यक्ति बिना किसी विरोध के लम्बे समय से किसी भूमि पर कब्जे में था और उसका शान्तिपूर्ण उपभोग कर रहा था , तो इंग्लैंड में अदालतें इस तरह के कब्जे को विधिक उत्पत्ति का श्रेय दीं, और जब तथ्यों से यह पता चलता हो कि चिरभोगाधिकार द्वारा स्वत्व पोषणीय नहीं हो सकता था तब यह धारित किया कि ऐसी उपधारणा की जा सकती थी कि भूमि के हकदार मालिक द्वारा किये गये अनुदान के संबंध में कब्जे का उल्लेख किया गया, लेकिन यह कि इस तरह के अनुदान को विनष्ट हो चुका था। यह उपधारणा प्राचीन और सतत कब्जे को प्राप्त करने के लिए की गयी थी, जो अन्यथा युक्तियुक्त रूप

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से नहीं की जा सकती थी। लेकिन यह विधि की एक निश्चायक उपधारणा नहीं थी, और यदि तथ्य और साक्ष्य इसके विरूद्ध होते तो अदालतें ऐसी उपधारणा करने के लिए बाध्य न होतीं। किसी न्यायाधीश का यह कर्तव्य नहीं हो सकता कि वह ऐसे अनुदान की उपधारणा करे जिसका अस्तित्व नहीं है भले ही उसके बारे में वह आश्वस्त है। यह अवलोकन अटर्नी जनरल बनाम सिम्पसन (1901)2 सी.एच.डीय 671,698 के मामले में न्यायमूर्ति फार्वेल ने किया। यदि ऐसा करने में कोई विधिक बाधा होती तो भी यह उपधारणा नहीं की जाती। इस प्रकार, यह धारित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति इस तरह के अनुदान को ग्रहण करने में सक्षम न होता तो इसे न दिया जाता क्योंकि वहां पर अनिश्चित व्यक्तियों के समूह द्वारा ऐसे अधिकार की मांग की गयी है।यह राजा ब्रज सुंदर देब बनाम मोनी बेहरा 1951 एस.सी.आर. 431,446 में अभिनिर्णीत किया गया था। यदि कोई व्यक्ति अनुदान देने में सक्षम न होता तो हीं है इस तरह इस अनुमान के लिए कोई गुंजाइश न होती:(वाइड हैल्सबरीज लॉ ऑफ इंग्लैंड, खंड. IV, पृष्ठ 574, प्रस्तर 1074); अथवा यदि अनुदान अवैध और अनुदानकर्ता की शक्तियों से परे होता। (वाइड बार्कर बनाम रिचर्डसन 4 बी एंड एल्ड 579: 106 ई.आर. 1048 1049 और रोचडेल कैनाल कंपनी बनाम रेडक्लिफ 18 क्यू.बी. 287: 118 ई.आर. 108 एट 118)।"

765. **कुंडा लक्ष्मण बापूजी बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार**[394]के मामले में, प्रतिवादी ने दावा कि विवादित भूमि को पहले मक्ता भूमि के रूप में और बाद में इनाम भूमि के रूप में दिखाया गया था। अपीलकर्ता ने उक्त मक्ता के उत्तराधिकारियों में से निर्धारिती होने का दावा किया और 1958 में वह जमीन पर दाखिल हो गया था और उस पर एक इमारत बना ली। यह तर्क दिया गया था कि विनष्ट अनुदान का सिद्धांत लागू होगा क्योंकि अपीलकर्ता स्वत्व के तहत लंबे समय तक विवादित भूमि पर काबिज रहा है। प्रतिवादी

---

394 (2002) 3 एस.सी.सी. 258

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ने यह आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता का दावा वैध नहीं था क्योंकि भूमि कभी भी उक्त मक्ता से संबंधित नहीं थी; हालांकि यह उक्त तिथि से सरकार में निहित हो गयी और कलेक्टर के आदेश जिसमें उन्होने अधिकारों के रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को सही किया था, वह अंतिम हो चुका था। इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों वाली पीठ ने विनष्ट अनुदान के सिद्धांत के दावे को खारिज कर मनोहर दास मोहंता के निर्णय का उल्लेख किया और धारित किया कि विनष्ट अनुदान का उपधारणा का लाभ अपीलकर्ता को नहीं मिलेगा, जिसने 1954 से उस समय के ईनामदार (मक्तदार) द्वारा एक अपंजीकृत स्थायी पट्टा के तहत अपने कब्जे का पता लगाया था।

766. **ब्रज किशोर जगदेव बनाम लिंगराज सामंत**[395] के मामले में मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने लोक धार्मिक संस्था के वंशानुगत न्यासी होने के प्रत्यर्थी के दावे पर विचार किया जो इस तर्क पर आधारित किया कि उसके पूर्वजों को उस धार्मिक संस्था के कार्यों का प्रबंध सौंपा गया था जिसे बहुत पहले किसी अज्ञात संस्थापक द्वारा स्थापित किया गया था। प्रतिवादी ने यह तर्क दिया कि उनका परिवार बिना किसी रुकावट के सेवा और पूजा कर रहा था, जैसा कि मारफतदार र मारफदर का कार्यालय वंशानुगत रूप से कर रहे थे और यह प्रथा विनियमित था। अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी के दावे का प्रतिवाद किया और सहायक आयुक्त ने प्रतिवादी के दावे को खारिज कर दिया। तथापि, उच्च न्यायालय ने अपील में प्रत्यर्थी के दावे को मंजूर किया और विनष्ट अनुदान के सिद्धांत के आधार

---

395 (2002) 6 एस.सी.सी. 540

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पर उन्हें वंशानुगत न्यासी अभिनिर्णीत किया। न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त कर इस प्रकार अभिनिर्णीत किया:

> "6. उच्च न्यायलय ने जिस अन्य आधार अपना निर्णय दिया वह यह है कि वंशानुगत न्यासी की परिभाषा के हिसाब से निर्माणकर्ता के समय से उनके वंशानुगत न्यासी होने की विधिक आवश्यकता समय के गर्त में खो गयी है न्यायालय के लिए इसके अतिप्राचीन प्रयोग से अनुदान का अर्थ लगाने का विकल्प खुला है लेकिन इसका अर्थ अनुमान नहीं लगाया जाएगा यदि उपयोगकर्ता को इससे अन्यथा समझाया जा सके। विनष्ट अनुदान की कल्पना लंबे कब्जे और स्वामी की सहमति से उपयोगकर्ता के सुखाधिकार के प्रयोग की उपधारणा मात्र है. यह कि दावा करने वाले को मूल रूप से एक अनुदान हुआ होना चाहिए था जो कि विनष्ट हो चुका है। ऐसे व्यक्ति के पक्ष में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं हो सकती है जो उत्तराधिकार के अन्तर्गत न्यासी हो। हमें नहीं लगता कि अभिलेख में उपलब्ध सामाग्री के आधार पर ऐसा कोई हस्तक्षेप (अनुमान) संभव है। प्रथमतः न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया है कि देवता एक निजी न्यास है और अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता, उस संबंध में असफल होने पर अब वे इस तथ्य पर आना चाहते हैं कि वे वंशानुगत न्यासी है। इसे स्थापित करने में किसी प्रकार का साक्ष्य न दे पाकर वे दयनीय रूप से असफल रहे।

767. इस विषय पर पूर्ववर्ती के विश्लेषण से निम्नलिखित सिद्धांत समाप्त किए जा सकते हैं:

- विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त से साक्ष्य का नियम निकलता है। समय बीत जाने के कारण साक्ष्य के आभाव में प्राचीन काल में किये गये वैध अनुदान के अस्तित्व को साबित करने के लिए यह सिद्धान्त लागू होता है। तथापि जहां पर कब्जे को साबित करने के लिए पर्याप्त और संतोषजनक साक्ष्य मौजूद हों अथवा भूमि के दावा जिस मामले में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता न होगी वहां पर न्यायलय यह उपधारणा करने के लिए बाध्य नहीं है।

- जहां पर न्यायालय के लिए उन परिस्थितियों को निश्चित करना असंभव हो जिन परिस्थितियों के तहत अनुदान दिया गया था वहां पर अनुसेवी स्वामी द्वारा कब्जेधारी अथवा प्रयोगकर्ता को दिये गये वैध और सकारात्मक अनुदान के अस्तित्व के विषय में उपधारणा की जाती है। अनुदान अभिव्यक्त अथवा विवक्षित हो सकता है। एक बार उपधारणा कर लेने के उपरान्त, न्यायालय यथासंभव, उन लोगों के कब्जे को सुरक्षित करेगा जो शान्तिपूर्णक कब्जे को धारण किये हैं।
- विधिपूर्ण उपधारणा करने के लिए कोई विधिक रुकावटें नहीं हैं। इस सिद्धान्त की प्रायोज्यता के लिए यह स्थापित करने की आवश्यकता है कि शुरुआत में जिस समय अनुदान किया गया था उस समय वह न केवल वैध अनुदान था अपितु अनुदानग्रहीता जिसके पक्ष में अनुदान किया गया था वह भी सक्षम था। परिभाषित अनुदानग्रीहता के आभाव में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं की जाएगी।
- विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता के लिए लम्बे समय से, निर्बाध और शान्तिपूर्ण अकाय अधिकार का भोग होना चाहिए। निर्बाध भोग के अन्तर्गत सतत उपभोग अथवा कब्जा आता है।
- उपभोग और कब्जे की आपेक्षित समयावधि परिवर्तनशील है और मामला दर मामला निर्धारित की जानी चाहिए; और
- लम्बे से चली आ रही रूढ़ि एवं प्रथा के चलते अधिकारों का दावा एवं विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त के मध्य अन्तर किया जाना चाहिए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विश्लेषण

768. प्रस्तुत मामले में, वाद 4 के वादीगण 1528 में मुस्लिमों के इबादत के लिए बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद के समर्पण के आधार पर और इसके विकल्प में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर यदि यह स्थापित किया जाता है कि हिंदू मंदिर की जगह पर मस्जिद का निर्माण किया गया था, घोषणा का दावा स्थापित किया है। विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता को समर्थन करने के लिए वादीगणों ने कोई अभिवचन नहीं किया है। वादीगण का विशिष्ट मामला मुस्लिमों द्वारा सार्वजनिक इबादत के लिए मस्जिद के समर्पण का है। इसका मूल्यांकन उन साक्ष्यों के आधार पर किया जाना चाहिए जिन्हें जोड़ा गया है। वास्तव में प्रतिकूल कब्जे की वैकल्पिक दलील साक्ष्य के नियम के रूप में विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त को लागू करने के लिए एक विनाशकारी विधिक आधार है। प्रतिकूल कब्जे एक व्यक्ति में शीर्षक के निहितार्थ और दूसरे के लंबे समय तक जारी और निर्बाध कब्जे के अस्तित्व को दर्शाता है, जो कि वास्तविक शीर्षक धारक के लिए शत्रुतापूर्ण और शत्रुतापूर्ण तरीके से है। प्रतिकूल कब्जे की दलील से प्रतिकूल कब्जे की दलील के रूप में विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता के विरूद्ध जो अनुमान निकेलगा वह कथित अनुदानग्रहीता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति में निहित स्वत्व पर आधारित है। निहित स्वत्व पर आधारित है। इस न्यायालय और इस सिद्धान्त को साक्ष्य की मान्यता देने वाले प्रिवी कौंसिल के निर्णय यह दर्शित करते हैं कि इस सिद्धान्त को सावधानी से लागू किया जाना चाहिए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह सिद्धान्त स्वत्व की मान्यता के लिए एक स्वतन्त्र, सारवान शीर्षक का गठन नहीं करता है बल्कि साक्ष्य का एक नियम है। साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 110 स्वामित्व के दायित्व के प्रमाण के बारे में बताती है: जब एक सवाल यह उठता है कि क्या कोई वस्तु जो किसी व्यक्ति के कब्जे में है ऐसी वस्तु का वह मालिक है, तो यह साबित करने का भार कि वह मालिक नहीं है, उस व्यक्ति पर डाला जाता है जो विरोध करता है कि वह मालिक नहीं है।

किसी भी दलील और साक्ष्यों की अनुपस्थित में साक्ष्य के एक वर्तमान मामले में, जिसके आधार पर सिद्धांत के प्रयोग के लिए एक अनुमान को उठाया जा सकता है, और इसका आवश्यक रूप से पालन किया जाना चाहिए कि लुप्त अनुदान के सिद्धांत का कोई प्रयोग नहीं है।

0. 14 विवादित परिसर का धूमपट–1858 की दीवार

769. विवादित स्थल विश्वासों का मिलाजुला स्वरूप है और हिन्दू और मुस्लिम के आचरणों, आस्था और प्रथाओं का सह–अस्तित्व है। हिंदू और मुस्लिमो का कार्यों का मिलाजुला स्वरूप तत्कालीन ढांचे से जुड़ी धार्मिक और वास्तुशिल्प परंपरा से बना है जिसमें मंदिर और मस्जिद दोनों की विशेषताओं का समावेश होता है। जबकि विशिष्ट वास्तुशिल्पीय तत्व आच्छादित हैं वे आसानी से पहचाने जाने योग्य थे। वे मिश्रित संस्कृति के प्रतीक थे। विशिष्ट मूर्तिकला में काला कसौटी पत्थर के स्तम्भों में वराह , गरुड़, जय और विजय के चित्रांकन मिले हैं, जिससे पता चलता है कि वे

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुख्य रूप से हिंदू मंदिर के अग्रभाग की सजावट के लिए थे और पूजा के लिए देवताओं के प्रतीक के रूप में कार्य करते थे। इसी के साथ, मस्जिद के विशिष्ट रूप के प्रतीक तीन गुम्बद, वजू, अल्लाह उत्कीर्णित पत्थर, मिम्बर और मेहराब प्राप्त हुए हैं। इन विशेषताओ से संकेत मिलता है कि विवादित परिसर का निर्माण एक मस्जिद के रूप में भी किया गया था। इसी परिसर के भीतर दो धार्मिक मत विद्यमान थे। उनका सह–अस्तित्व समय समय पर था और विशेष रूप से 1856 से पहले, जो दूसरों के साथ विरोधी और रक्तपात के कारण से स्वीकार्य किया गया था। फिर भी इस स्थल की विशिष्ट विशेषताओं ने, हिंदू और इस्लामी दोनों ही परंपराओं को मूर्त रूप देते हुए, अपनी पहचान के साथ एक अलग स्थल का निर्माण किया। समग्र संरचना से जुड़ा वास्तविक प्रकृति के साक्ष्य और दोनों पक्षों द्वारा लम्बे समय से उपयोग से स्पष्ट है।

770. हिंदू और मुस्लिम दोनों गवाहों द्वारा पुष्टि किए गए यात्रियों (मुख्य रूप से **टीफेन्थेलर** और **मोंटगोमरी** मार्टिन) के लेख में पहचान योग्य पूजा स्थलों और विवादित स्थल पर हिंदू श्रद्धालुओं द्वारा पूजा की व्यापकता का संकेत मिलता है। सन् 1858 में अंग्रेजों द्वारा मस्जिद की विवादित इमारत के चारों ओर रेलिंग स्थापित करने के बाद हिंदुओं द्वारा मस्जिद के अहाते के भीतर पूजा करने के दावे पर प्रतिवाद किया गया। विवादित स्थ्ल पर नवाज किए जाने की प्रारम्भिक निशानदेही दिनांकित 5 नवंबर 1860 को एक आवेदन के तहत दस्तावेजित की गइ जिसे हिन्दू चबूतरा के निर्माण को हटाने के लिए दायर किया गया था। आवेदन यह इंगित करता है कि मुअज़िन के अजान,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिन्दूओ के शंख बजाने से मेल खाती है ईंट और लोहे कि ग्रिल से युक्त रेलिंग विवादित स्थल का उप–विभाजन नहीं था, जो एक सयुक्त संपत्ति थी, या औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा स्वत्व का निर्धारण था। यह स्पष्ट है–(i) तीन गुम्बदीय ढ़ाचें के बाहर रेलिंग के बनने के तुरतं बाद हिन्दुओं के द्वारा रामचबूतरे की स्थापना ; (ii) हिंदुओं द्वारा आंतरिक आहाते में अधिकारों के निरंतर दावे; और (iii) रेलिंग के बाहर खड़े होने के लिए श्रद्धालुओं द्वारा गर्भ ग्रह की ओर खड़े होकर पूजा की पेशकश। रामचबूतरा का निर्माण और की गइ पूजा एक ऐसी धटना थी जो संयोगवश रेलिंग की स्थापना के बाद धटित हुइ। रेलिगं विवादित स्थल पर शांति बनाए रखने का प्रयास था। हालांकि, शातिं भ्रामक रही।

771. हिन्दुओं के मौखिक गवाहों का विवरण उनकी विश्वास और आस्था को दिखाता है कि गर्भ ग्रह भगवान राम का जन्म स्थान था और विवादित स्थल पर हिन्दुओं के द्वारा लंम्बे समय से की गइ पूजा का अस्तित्व है। जैसा कि विवादित स्थल के भीतर नमाज का संबंध है, मुश्लिम गवाहों के अभिलेखित सबूत यह इंगित करते है कि 1934 के बाद नमाज 16 दिसम्बर 1949 तक अदा की जाती रही। हालाँकि, नमाज केवल शुक्रवार के नमाज तक ही सीमित थी और यह विशेष रूप से दिसंम्बर 1949 के समय से पहले तक की जाती थी हिन्दू और मुश्लिम दोनों गवाहों ने कहा कि मुश्लिमों को विवादित परिसर में प्रवेश करने और नवाज करने से रोकने के लिए साधूओं और बैरागियों के द्वारा सक्रिय भूमिका निभाई गई और यह मुख्य रूप से दर्शाता है कि विवादित स्थल का उपयोग दोनों धर्मों के उपासकों द्वारा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया जाता है। मुसलमानों को मस्जिद तक पहुँचने से रोकने का मतलब यह नहीं था कि उनका कोई दावा नहीं था या उन्होंने विवादित स्थल को छोड़ दिया था। हालांकि, यह याद रखने की आवश्यकता है कि वर्तमान मामला पूजा के इस समग्र स्थान के स्वत्व या स्वामित्व से संबंधित है। ऐतिहासिक अभिलेखों की अनुपस्थिति में, स्वामित्व या शीर्षक के संबंध में न्यायालय को दोनों पक्षों में से एक के द्वारा विवादित परिसर की प्रकृति और उपयोग को निर्धारित करना होगा। उपयोग की प्रकृति का निर्धारण करने में, न्यायालय को उपयोग और विस्तार का दायरा देखना होगा।

772. मुस्लिमों के स्वत्व का निर्धारण करने के लिए, मस्जिद की भौतिक संरचना को ध्यान में रखा जाना एक तथ्य हैं लेकिन संपत्ति के स्वत्व का दावा विशिष्ट और अप्रभावित कब्जे पर आधारित होना चाहिए जिसे साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना है। जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है, विवादित परिसर में हिंदू और इस्लामी संस्कृति की विशिष्ट वास्तुकला संबंधी विशेषताएं हैं। स्वत्व के दावे को इसके लम्बे समय से उपयोग और निरंतर कब्जे के परिप्रेक्ष्य से आंका जाएगा। यह अंकित करना प्रासंगिक हो जाता है कि मुसलमानों ने संपत्ति की संपूर्णता के लिए अपने दावे पर जोर दिया है, जो उसको पूर्ण बनाता है, जो हिंदुओं के दावों की तुलना में अपने दावे में आंतरिक और बाहरी अहाते को शामिल बताया हैं। बाहरी अहाते के संबंध में, हिंदू और मुस्लिम दोनों गवाहों के द्वारा रामबूतरे और धार्मिक महत्व के अन्य स्थानों की उपस्थिति को स्वीकार किया है, जिनकी हिंदू लगातार पूजा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कर रहे थे। हिंदुओं का उस स्थल तक पहुंचने और उनके बाहरी अहाते पर कब्जे के लिए कोई बाधा नहीं थी।

773. 1857 में ईट से निर्मित ग्रिल की दीवार स्थापित करने के बावजूद, हिंदुओं ने भीतरी और बाहरी अहाते के विभाजन को कभी स्वीकार नहीं किया। हिंदुओं के लिए यह संपूर्ण परिसर धार्मिक महत्व का था। विधि और व्यवस्था को बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजों द्वारा किया सीमांकन भगवान राम का जन्म स्थान होने के नाते गर्भ ग्रह की प्रासंगिकता में उनके विश्वास को समाप्त नहीं करता है। साक्षियों के गवाहों से स्पष्ट ह जो यह दर्शित करता है कि गर्भ ग्रह की ओर मुह करके रेलिंग में खड़े होकर प्रार्थना करते थे। साक्ष्य का एक और प्रासंगिक भाग निहंग सिंह के विरूद्ध 30 नवंबर 1858 को अपनी शिकायत में बाबरी मस्जिद के मोज़िन के द्वारा कहा गया है। मुअज़िन ने स्वीकार किया कि जन्मस्थान का प्रतीक पूर्वकालीन सैकड़ों वर्षों से रहा था और हिंदुओं ने तीन प्रमुख ढांचे के अंदर पूजा करते थे। स्थल के किसी भी विभाजन के आभाव में, हिन्दुओं के पास विवादित परिसर के अन्दर पूजा के विभिन्न बिन्दु और स्वरूप उपस्थित थे जिसमें रामचबूतरा और सीता रसोइ और विवादित परिसर की परिक्रमा शामिल थी। रेलिंग स्थापित होने के बाद भी, रामचबूतरा, सीता रासोई और अंजीर और नीम के पेड़ के नीचे रखी मूर्तियों की पूजा हिंदूओ के द्वारा की जाती थी जिससे स्पष्ट रूप से बाहरी अहाते पर उनके अनन्य और अप्रभावित कब्जे का संकेत मिलता है। सभी साक्ष्य इंगित करते हैं कि संभावनाओं के आधार पर एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदुओं के विश्वास और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आस्था विवादित परिसर में सतत समय से थी, दिवार के निर्माण के बाद और पहले से ही 'गर्भ ग्रह' को भगवान राम के जन्म का स्थान के रूप माना जाता था। मुस्लिमों द्वारा रेलिंग के भीतर के क्षेत्र का उपयोग विवादास्पद था और आंतरिक अहाते तक उनकी पहुंच भू–आवेष्ठित थी; केवल दो द्वारों से बाहरी भाग में पहुँचा जा सकता था और वह क्षेत्र हिंदुओं के नियंत्रण में था।

0.15 वाद 4 में साक्ष्यों का विश्लेषण

774. वाद 4 में वादी का मामला यह है कि 1528 में बाबर के इशारे पर इसके निर्माण पर, मुसलमानों द्वारा इबादत के उद्देश्य से मस्जिद को बनाया गया था। स्वत्व के संबंध में, कोई दस्तावेजी साक्ष्य मौजूद नहीं है या 1860 से पहले की अवधि में प्रस्तुत किया गया है। उच्च न्यायालय के समक्ष, जैसा कि पहले देखा गया था कि 1856–7 के पहले के मूल्याकंन पर या 1860 के पहले नमाज अदा करने पर या कब्जे के सम्बन्ध में कोई सबूत नहीं था। जिन साक्ष्यो को जोड़ा गया है, उनका विश्लेषण विधि के मूल सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए कि राजस्व अभिलेख स्वत्व नहीं प्रदान नहीं करते है **जट्टू राम बनाम हकम सिंह के वाद**[396] में, दो न्यायाधीश की पीठ के द्वारा यह अवधारित किया गया:

> एकमात्र प्रविष्टि जिस पर अपीलीय अदालत का अवलम्ब निहित था वह अवलम्ब पटवारी की जमाबंदी में है यह पूर्व स्थापित विधि है कि जमाबंदी प्रविष्टियां केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए हैं और वे कोई स्वत्व नहीं प्रदान करती हैं

---

396 . (1993) 4 SCC 403

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सूरजभान बनाम वित्तीय आयुक्त[397] के वाद में इस निर्णय का अनुसरण किया गया था, जहां न्यायमूर्ति सी के ठक्कर ने दो जजों की बेंच के लिए अवधारित किया कि:

> 9. यह पूर्ण स्थापित है कि राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टि ऐसे व्यक्ति को स्वत्व प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के अभिलेख में प्रकट होता है। यह स्थापित विधि है कि राजस्व अभिलेखों या जमाबन्दी में प्रविष्टियां केवल राजकोषीय उद्देश्य यानी भू–राजस्व का भुगतान के लिए हैं, और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व नहीं दिया जाता है। जहां तक संपत्ति के स्वत्व का प्रश्न है, यह केवल एक सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा तय किया जा सकता है(जट्टू राम बनाम हकम सिंह (1993)4 एससीसी 403 : ए.आई.आर 1994 एससी 1653)।

775. मस्जिद में अंतर्निहित भूमि के अनुदान के रूप में स्वत्व को इंगित करने वाले अभिलेखों पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं लाया गया है। जिन दस्तावेजी साक्ष्यों पर अवलंम्ब लिया गया है, उनमें अनिवार्य रूप से अनुदान शामिल हैं जो ब्रिटिश सरकार द्वारा मस्जिद के रखरखाव और संचालन के लिए किए गए थे। ये अनुदान उन लोगों की निरंतरता में हैं जो पहले औपनिवेशिक सरकार द्वारा अवध के विलय से पहले किए गए थे। 13 मार्च 1860 और 29 जून 1860 को सरकार के आदेशों को पंजीकृत करने वाले रजिस्टर माफियत को न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के फैसले में एक दस्तावेज के रूप में माना गया है जो फटा हुआ है और जिसकी विषयवस्तु सुपाठय नहीं थी। मस्जिद के रखरखाव और संचालन के लिए अनुदान बहुत लम्बे समय तक चला था जिससे मस्जिद का रखरखाव किया जाता रहा और मुसलमान स्वयं अच्छे तरीके से संचालन करते रहें हैं और यह दस्तावेज,

---

397 . (2007) 6 SCC 186

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यद्यपि विशिष्ट उद्देश्यों के लिए प्रमाणिक संकेत देता है लेकिन विवादित भूमि का स्वत्व नहीं प्रदान करता है। 14 मार्च 1860 की पंजीयक की जाँच में किराया–मुक्त अनुदान का कुछ विवरण शामिल है और इसे गवाहों के आधार पर कहा गया है। हालांकि, यह दर्शाता है कि वर्ष और तारीख ज्ञात नहीं हैं। जैसा कि अनुदान के दिनांक के सम्बन्ध में, यह बताया गया है कोई ज्ञान नहीं। किराया–मुक्त भूमि (जिसकी) की जांच के लिए रजिस्टर में एक संदर्भ है जो1264 के फसली वर्ष में प्रारम्भ किया गया था जब दंगे हुए थे। 1264 फसली वर्ष का संदर्भ 1856–7 ईशवी से मेल खाता है, जबकि दाता का नाम बाबर बताया जाता है, यह विलेख गवाही पर आधारित है। पंजीयक सं. 6 (ई)–29 जून 1860 की सशर्त छूट, उन व्यक्तियों के नाम इंगित करती है जो किराया मुक्त भूमि धारण कर रहे थे।

776. दस्तावेजी साक्ष्यों में अगला चरण राजस्व मुक्त भूमि के अनुदान में नकद अनुदान के रूपांतरण से संबंधित है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यहाँ पर वंशावली के सम्बन्ध में एक गंम्भीर समस्या है और यह न्यायालय चौथी पीढ़ी में किए गए दावे के आधार पर लगभग 325 वर्षों के हस्तक्षेप की अवधि में अस्पष्टीकृत विराम के साथ आगे नहीं बढ़ सकता है। यह इंगित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि क्या दावे की यथार्थता पता करने के लिए कोई जांच हुई थी। अन्ततः 302 रूपया 3 पैसा 6 आना का नकद भुगतान के बदले दो गाँवों की भूमि को अनुदान द्वारा स्थानान्तरित किया गया था। आयुक्त, फैजाबाद खण्ड के मुख्य आयुक्त अवध के 25 अगस्त 1863 के दिनांकित पत्र और उपायुक्त के आदेश दिनांकित 31

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अगस्त 1863 सबूत है। 1870 के अनुदान में कहा गया है कि नकद ननकार तब तक बनाए रखा जा रहा था जब तक कि हस्तान्तरिती पिछले सभी सनद, स्वत्व विलेख और अनुदान से संबंधित अन्य दस्तावेजों को जमा नहीं करता है।

1931 का नकल खसरा अबादी इंगित करता है कि अराज़ी नंबर 583 नजूल भूमि है। जबकि इसका उल्लेख मस्जिद पोख्ता वक्फ अहमदीशाही से होता है, यह उस चबूतरा का भी उल्लेख करता है जिसे जनभूमि कहा जाता है।

777. दस्तावेजी साक्ष्य इंगित करते हैं कि 1856–7 के दंगों के कारण औपनिवेशिक सरकार ने पूजा के क्षेत्रों को विभाजित करने के लिए रेलिंग के साथ एक दीवार खड़ी की: जिसमें भीतरी अहाते में मुसलमान और बाहरी अहाते में हिंदुओं के द्वारा पूजा की जाती है। रेलिंग की स्थापना से पहले, ऐसा कोई स्पष्ट सीमांकन नहीं था और हिंदुओं और मुसलमानों ने संरचना के भीतर पूजा की थी। रेलिग से सटे बाहर की ओर चबूतरा पर बैठना और पूजा करना इस बात का सूचक है कि हिंदुओं ने इस स्थल को भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप विश्वास किया था उस पर पूजा करने के अपने अधिकार का दावा किया था और चबूतरा दूरी और समय के सन्दर्भ में समीप है। समय के अनुसार, चबूतरा की स्थापना एक घटना है, जो आंतरिक अहाते और बाहरी अहाते को सन्निहित और समेकित क्षेत्र में द्विभाजित करने के लिए रेलिंग की स्थापना का एक तात्कालिक परिणाम था। रेलिंग स्थापित यह

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवलोकन शस्त्र अधिनियम 1959 की धारा 29 (बी) के तहत कब्जे के संदर्भ में किया गया था।

पी. लक्ष्मी रेड्डी बनाम एल लक्ष्मी रेड्डी[368] के मामले में न्यायमूर्ति जगन्नाथदास इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए प्रतिकूल कब्जे की मान्य आवश्यकता पर विचार किया गया:

> "4. अब, प्रतिकूल कब्जे की साधारण मान्य आवश्यकता यह है कि इसको बिना बल, बिना गोपनीयता, बिना अनुज्ञा के होनी चाहिए। (देखेंः सेक्रेट्री ऑफ स्टेट बनाम देवेंद्र लाल खान (1933) एल.आर. 61 ए 78,82)। आवश्यक कब्जा पर्याप्त रूप से सतत, सार्वजनिक, और उसे इस सीमा तक हो जिससे यह पता चले कि वह विपक्षी के प्रतिकूल कब्जे में है।"

न्यायालय ने यू. एन. द्वारा विरचित पुस्तत टैगोर लॉ लेक्टर ऑन लिमिटेशन ऑफ प्रेसक्रिप्सन संस्करण 2 के निम्नलिखित निष्कर्ष का प्रोद्धरण दिया।

> "7.... एक प्रतिकूल कब्जा भूमि का एक वास्तविक और अनन्य विनियोजन है जो उनके विरूद्ध (sic) भूमि को धारण करने के लिए जिनका उस भूमि पर कब्जा है अधिकार के दावे के तहत शुरू होता और बना रहता है, वह दावा या तो स्पष्ट हो या प्रलक्षित हो (विनियोग के कार्यों एवं परिस्थितियों से उत्पन्न)। (एंजेल, धारा 390 और 398)। यह विपरीत पक्ष के अधिकारों के इस तरह के आक्रमण के साथ प्रतिकूल रूप से दावा करने का इरादा है क्योंकि उसे कार्रवाई का कारण बनता है जो प्रतिकूल कब्जे का गठन करता है।[369]"

---

368 1957 एस.सी.आर. 195

369 6 वां संस्करण, भाग 1, लेक्चर 6, पृष्ठ संख्या 159

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह न्यायालय आयोजित:

> "7.... इस सिद्धांत के साथ सहमति, प्रतिकूल कब्जे की शुरुआत, किसी व्यक्ति के पक्ष में तात्पर्य है कि व्यक्ति उस समय वास्तविक कब्जे में है, उस समय, अनन्य शीर्षक के कुख्यात शत्रुतापूर्ण दावे के साथ, जिसे निरस्त करने के लिए, असली मालिक तब एक कार्रवाई बनाए रखने की स्थिति में होगा। यह पालन करेगा कि जो भी व्यक्ति प्रतिकूल कब्जे से शीर्षक हासिल करने के इच्छुक व्यक्ति के इरादे या इरादे हो सकते हैं, उसका प्रतिकूल कब्जा तब तक शुरू नहीं हो सकता जब तक कि वह पुन: कथित दुश्मनी के साथ वास्तविक कब्जा प्राप्त नहीं कर लेता।"

कर्नाटक बोर्ड ऑफ वक्फ बनाम भारत सरकार[370], न्यायमूर्ति एस राजेंद्र दो न्यायधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए धारित किया कि:

> "11... अनन्य कब्जे के भौतिक तथ्य और वास्तविक मालिक को बहिष्कृत कर मालिक के रूप में कब्जे में रहने का आशय सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं जिन्हें इस प्रकृति के मामलों में विचारित किया जाना चाहिए। प्रतिकूल कब्जा विशुद्ध विधि का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक तथ्य और विधि से संबंधित है। तथ्य एवं विधि। इसलिए, प्रतिकूल कब्जे का दावा करने वाले व्यक्ति को दिखाना चाहिए: (क) वह किस तारीख को कब्जे में आया, (ख) उसके कब्जे की प्रकृति क्या थी, (ग) क्या कब्जे का तथ्य दूसरे पक्षकार को ज्ञात था, (घ) उसका कब्जा कब तक जारी रहा, और (ड़) उसका कब्जा खुला और बाधित नहीं था।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

---

370 (2004) 10 एस.सी.सी. 779

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामले की सामग्री को अभिवचनों में स्थापित कर साक्ष्य में साबित किया जाना चाहिए। आधारहीन साक्ष्य नहीं दिया जा सकता है और विधि में साक्ष्य रहित अभिवचन मामले को गठन नहीं करेगा।

अकाली बनाम ए. वेदनायगम[371] के मामले में इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि भूमि पर कब्जा मात्र स्वत्व में परिणित नहीं हो जाएगा। स्वामी के पास कब्जा होना चाहिए और उसे वास्तविक स्वामी के प्रतिकूल भूमि धारण करना चाहिए। इसके अलावा, उसे परिसीमा अधिनियम के तहत निर्धारित अवधि के लिए उस क्षमता में बने रहना चाहिए।

753. **प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्णीत मस्जिद शाहिदगंज बनाम शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर**[372] के मामले में लाहौर में एक मस्जिद थी जिसे सन 1722 में बनाया गया था। 1762 या उसके बाद से वह भवन और उसके आस–पास की जमीन सिक्खों के अधिभोग और कब्जे में थी। सन् 1849 में अंग्रेजों द्वारा विलय के समय मस्जिद और संपत्ति मस्जिद और इसकी सम्पत्ति सिख गुरुद्वारा के महंत के कब्जे में थी और मस्जिद का जो भवन था उसका प्रयोग सिख समुदाय कर रहा था। सिख गुरूद्वारा अधिनियम 1925 के तहत पुरानी मस्जिद की इमारत और उससे संलग्न भूमि को गुरुद्वारा की सम्पत्ति में शामिल थी। मुसलमानों ने 1928 में सिखों के गुरुद्वारों न्यायाधिकरण के समक्ष एक मुकदमा दायर किया , जिसके

---

371 (2007) 14 एस.सी.सी. 308

372 ए.आई.आर. 1940 पी.सी. 116

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिणामस्वरूप यह पाया गया कि उनका दावा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर खारिज कर दिया गया।

वाद स्वयं मस्जिद सहित 18 वादी द्वारा वादमित्र के माध्यम से दायर किया गया था, जबकि अन्य ने पूजा के अधिकार का दावा किया था। यह मुकदमा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के खिलाफ यह घोषणा किये जाने के लिए था कि इमारत एक मस्जिद है जिसमें इस्लाम के अनुयायियों को पूजा करने का अधिकार है। यह मुकदमा जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया था और उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा एक अलग निर्णय सुनाकर एक विभाजित फैसले में उसकी पुष्टि की गई थी। प्रिवी काउंसिल की ओर से सर जार्ज रस्किन ने धारित किया:

> "यह वादी गण की जिम्मेदारी थी कि वे विलय की तिथि पर सही स्थिति को स्थापित करें। चूंकि सिख महंतों ने सिख राज्य के तहत लंबे समय तक कब्जा धारण किये इसलिए वादीगणों पर ही यह सिद्ध करने का भार है कि वह इस उपधारणा का खण्ड़न करें कि महंतगणों का कब्जा उस समय और उस जगह पर विधिसम्मत था।"

इस तर्क की सुनवाई करते हुए कि मस्जिद के मामले में, जो कि एक कब्रिस्तान है, वक्फ संपत्ति का उपयोग पैसों में किया जाना आशायित है और न इसे किरायेदारी अथवा कृषि प्रायोजनों हेतु, प्रिवी काउंसिल ने निम्नुसार धारित किया:

> "... लेकिन परिसीमा अधिनियम मुस्लिम विधि में अन्य संक्रमणकी क्षमता से संबंधित नहीं है। यह प्रक्रिया संबंधी नियम को बताता है जिसके तहत आंग्ल भारतीय न्यायालय एक निश्चित समय के बाद अधिकारों को लागू नहीं करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे निश्चित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकार समाप्त हो जातेहैं।मस्जिद के प्रयोजनों के लिए वक्फ की गई संपत्ति के लिए आधुनिक परिसीमा अधिनियमों के किसी भी अपवाद को पढ़ पाना असंभव है, चाहे उसका उद्देश्य केवल मस्जिद के रखरखाव और प्रबंध के लिए धन प्रदान करना हो या उद्देश्य के लिए एक स्थान और भवन उपलब्ध कराना हो। जबकि लॉर्डशिप में धार्मिक भावना के साथ हर प्रकार की सहानुभूति है जो पूजा स्थल के पवित्रता और अनुलंघनीयता का वर्णन करती है, वे परिसीमा अधिनियम के तहत नहीं आएँगे सिवाय इस तर्क के कि ऐसे भवन को वक्फ के प्रतिकूल नहीं प्राप्त किया जा सकता है, अथवा इसको तब तक नहीं प्राप्त जा सकता है जब तक इस मस्जिद के रूप में निर्दिष्ट नहीं किया जाता अथवा जब तक उस भूमि पर कोई भवन न खड़ा किया जाता अथवा इसके मूल उद्देश्य को दिखाने वाला रूप समाप्त न हो जाए।"

(प्रभाव वर्धित)

754. वर्ष 2015 में पारित इस निर्णय में कर्नाटक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश, न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर ने बारीकियों की पहचान की और प्रतिकूल कब्जे संबंधी दावे के पूर्व आपेक्षाओं का निम्नलिखित शर्तों में प्रतिपादित किया[373]:

"27. प्रतिकूल कब्जे की अवधारणा एक पक्षद्रोही कब्जे को इंगित करता है, अर्थात, एक ऐसा कब्जा जो अभिवयक्त या विवक्षित रूप से वास्तविक स्वामी मालिक के स्वत्व को खारिज करता है। प्रतिकूल कब्जा होने के लिए ऐसे व्यक्ति द्वारा कब्जा होना चाहिए, जो दूसरों के अधिकारों को अभिस्वीकृत नहीं करता है बल्कि अस्वीकार कर देता है। कब्ज़ा का अर्थ है अधिपत्य और नियंत्रण, और उस व्यक्ति के मन में यह भाव हो कि उसका उस वस्तु पर अधिपत्य है और वह अपने इस अधिपत्य का प्रयोग कर सकता है यह। भूमि पर कब्जा मात्र से स्वत्व नहीं मिल जाएगा। कब्जाधारी के पास कब्जे का आशय होना चाहिए और वह वास्तविक स्वामी के स्वत्व के प्रतिकूल भूमि को धारित

373 श्रीमती पिल्ला अक्कायम्मा बनाम चनप्पा आई.एल.आर. कर्नाटक 3841

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करे। अधिपत्य से बिना किसी अधिकार के मात्र भूमि का उपयोग पता चलता है। प्रतिकूल कब्जा होने के लिए, ऐसे व्यक्ति का वास्तविक कब्जा होना चाहिए जो स्वयं या उससे स्वत्व प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा अधिकार स्वरूप दावा करते हैं। भूमि का स्वत्व सिद्ध करने के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि कब्जे से संबंधी कुछ कार्य किये गये हैं। आपेक्षित कब्जा को निरंतरता, लोक ज्ञान में तथा इस सीमा तक होना चाहिए जिससे यह दर्शित हो कि वह स्वामी के प्रति प्रतिकूल है। दूसरे शब्दों में, कब्जे को उस दौरान वास्तविक, दृश्यमान, अनन्य, प्रतिकूल और चलत होना चाहिए जब परिसीमी विधि के तहत बाधा सृजित करना आवश्यक हो।"

"30. परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के अंतर्गत आने वाले वाद में वादी को संपत्ति पर अपना स्वत्व अवश्य स्थापित करना चाहिए। उन्हें यह साबित करने की आवश्यकता नहीं है कि वह 12 वर्षों तक कब्जें में थे। यदि वह अपने स्वत्व को साबित करने में विफल रहता है, वाद विफल हो जाता है, और ऐसे मामले में प्रतिकूल कब्जे का प्रश्न जब वादी ने किसी भूमि पर अपना स्वत्व स्थापित कर दिया है, तो यह साबित करने का भार कि उसने प्रतिवादी के प्रतिकूल कब्जे के कारण उस स्वत्व को खो दिया है, प्रतिवादी पर निहित है। यदि प्रतिवादी यह साबित करने में विफल रहता है कि वह 12 से अधिक वर्षों तक प्रतिकूल कब्जे में रहा है, तब वादी अपने स्वत्व के बल पर मुकदमा जीत सकता है। कोई व्यक्ति यह कहता कि वह प्रतिकूल कब्जे से अचल संपत्ति का स्वामी बन गया है तो उसे यह स्थापित करना होगा कि वह उस संपत्ति पर शान्तिपूर्ण तरीके से काबिज है, और वास्तविक स्वामी ने उस कब्जे पर खुले तौर पर अपनी सहमति दे रखी है। वैधानिक अवधि के लिए प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व के अधिग्रहण को स्थापित करने के लिए कठोर प्रमाण की आवश्यकता होती है।"

(प्रभाव वर्धित)

रविन्द्र कौर ग्रेवाल बनाम मंजीत कौर[374] के मामले में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ में न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर ने यह धारित

---

374 (2019) 8 एस.सी.सी. 729

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करने के लिए प्रतिकूल कब्जे पर आगे नयी विधि का सृजन कर कहा कि प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से किसी व्यक्ति ने अपना स्वत्व स्थापित किया है तो वह बेदखली की दशा में पुनर्स्थापन के लिए वाद दायर कर सकता है। इसके दृष्टिगत, प्रतिकूल कब्जा एक तलवार और एक ढाल दोनों है।

755. यह साफ है कि वादी स्पष्ट रुख अपनाने में विफल रहा है क्योंकि वे इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि प्रतिकूल कब्जे की दलील देने में , उन्हें आवश्यक रूप से उस व्यक्ति या किसी सत्ता के स्वत्व को अभिस्वीकृत करने का भार उठाना चाहिए जिसके विरूद्ध प्रतिकूल कब्जे की याचिका स्थापित से नहीं की गयी है और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और जब न्यायालय में तर्क दिये जा रहे थे तो उस समय उसे प्रमाणिकता के साथ नहीं रखा गया है। इन सबसे ऊपर, वादी के लिए पूरी संपत्ति के शांतिपूर्ण, खुले और निरंतर कब्जे में होने का मामला स्थापित करना असंभव है। डॉ. धवन ने बार–बार कहते रहे कि हिंदुओं के इस अवैधानिक कृत्य के परिणामस्वरूप मुसलमानों द्वारा मस्जिद में इबादत करने में व्यवधान उतबाधा उत्पन्न हो गया। इसके लिए, डॉ. धवन 1856–7,1934 में हुई घटनाओं को संदर्भित करते हैं और 1949– उनमें से अंतिम घटना की परिणति यह हुई कि धारा 145 के तहत प्रारंभिक आदेश करना पड़ा।145. उपरोक्त घटनाओं में से प्रत्येक के साथ जो घटनाएं जुड़ी हुई हैं उनसे अन्तिम निष्कर्ष निकलता है कि मस्जिद की संरचना के अस्तित्व के बावजूद, मुसलमानों द्वारा बताए गए कब्जे को प्रतिकूल कब्जे से जुड़े मामले के निस्तारण के लिए आवश्यक दहलीज को पूरा करने के रूप में नहीं माना

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जा सकता है । अभिलेखों में मौजूद साक्ष्य से यह संकेत मिलता है कि रेलिंग के निर्माण के बाद किसी भी अवसर पर बाहरी अहाते में हिंदुओं का कब्जा था। अकेले इसी आधार पर, क्षेत्र की संपूर्णता के संबंध में वादी द्वारा स्थापित प्रतिकूल कब्जे की दलील, जो ए, बी, सी, डी, अक्षरों द्वारा प्रदर्शित है, विफल हो जाएगी।

ऊपरोक्त दर्शित कारणों के चलते वाद 4 का वादी प्रतिकूल कब्जे की आपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहा है।

0.13 विनष्ट अनुदान का सिद्धांत

756. बहस के दौरान, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन ने कथन किया कि अनुदान के लोप के सिद्धांत के आधार पर, वाद 4 के वादी ने मुस्लिम समुदाय को इबादत करने के लिए 1528 में बाबर द्वारा इसके निर्माण पर, मस्जिद के समर्पण के आधार पर उद्घोषणा की मांग की।

इस सिद्धांत पर आधारित निर्णय

757. अनुदान के लोप सिद्धांत के तहत, लंबे समय तक उपयोग अथवा कब्जा एक विधिक उपधारणा को जन्म देता है कानूनी अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रयुक्त अधिकार उपयोगकर्ता अथवा कब्जेधारी में चले गये और यह कि पारेषण की लिखत खो गयी है।[375]

---

375 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा रचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी, प्रोबेट एंड ट्रस्ट जर्नल 23, संख्या 3 (1988) पृष्ठ 535-60 ।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हाल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड के अनुसार–

> "सर्वप्रथम न्यायालयों ने यह नियम अभिनिर्णीत किया कि जीवन भर के उपयोगकर्ता से यह उपधारणा उद्भूत हुई कि दूरस्थ पुरावशेष से पता चलता है कि उसी के जैसा कार्य किया जा रहा था। चूंकि यह होना ही था कि कई मामलों में यह हुआ है, ऐसी उपधारणा असंभव है, कब्जे और भोग के लिए ऐसी उपधारणा असंभाव्य थी जिसे विधि को अधिकारों के प्रकृति के साथ प्रदान करना था, ऐसा कार्य विनष्ट आधुनिक अनुदानों के सिद्धान्त के लिए उचित नहीं था।..."[376]

यह सिद्धांत केवल वहीं लागू होता है जहां भूमि का भोग या उपयोग अन्यथा यथोचित रूप से नहीं किया जा सकता है। [377]पारेषण लिखत के आभाव में, कानूनी स्मृति के समय से किये गये भोग को संकेत के रूप में देखा जाना चाहिए कि दावाकृत अधिकार अनुदान के माध्यम से दावेदार (या उसके पूर्ववर्तियों) को प्रदान कर दिया गया था।[378] अनुदान को अभिव्यक्त या विवक्षित हो सकता है।[379] लंबे समय तक उपयोग के माध्यम से संपत्ति का निरंतर और निर्बाध भोग को साबित करने का भार वादी पर है। अदालत उन मामलों में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं करेगी, जहां किसी भी व्यक्ति को ऐसा अनुदान नहीं दे सकता था, अथवा जहां कोई व्यक्ति या व्यक्ति विशेष अनुदान प्राप्त करने के लिए सक्षम नहीं था।[380] चूंकि वहां पर विधिक उपधारणा की गयी है इसलिए यह सिद्धान्त तब तक नहीं लागू होता है जब

---

376 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण प्रस्तर 90

377 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड , भाग 14, चौथा संस्करण, प्रस्तर 91

378 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा विरचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी प्रोबेट एण्ड ट्रस्ट जर्नल 23 संख्या 3 (1988) पृष्ठ संख्या 535-60

379 जेरोम जे. कुर्टिस द्वारा विरचित "रेविंग द लॉस्ट ग्रांट" रियल प्रॉपर्टी प्रोबेट एण्ड ट्रस्ट जर्नल 23 संख्या 3 (1988) पृष्ठ संख्या 535-60

380 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण प्रस्तर 94

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तब कि उसी अवधि के दौरान विनष्ट अनुदान द्वारा हस्तांतरित किए गए दावाकृत हित को पारेषित करने में सक्षम कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अकेले या एक साथ मौजूद हों। इस सिद्धांत के वैध अनुप्रयोग के लिए, एकमात्र संपोषक साक्ष्य यह है कि पर्याप्त समय सीमा के लिए निर्बाध होना चाहिए। विनष्ट अनुदान का सिद्धांत लंबे समय से उपयोग करने के साक्ष्य पर आधारित नहीं है, बल्कि सबूतों के व्यतिक्रम पर आधारित है। इस सिद्धांत के तहत सुखाधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति को विनष्ट अनुदान का अभिवचन करना चाहिए, लेकिन अभिकथित आधुनिक अनुदान के लिए पक्षकारों को तारीख और नामों को अपने अभिवचनों में बताने की आवश्यकता नहीं है।

758. प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्णीत **चोकलिंगम पिल्लई बनाम मायांदी चेट्टियार**[384] के मामले में, लॉर्ड बकमास्टर ने मालिकाना अधिकारों के समर्थन में एक वैध उत्पत्ति की उपधारणा को सविस्तार निम्नलिखित शर्तों में व्याख्या किया:

> "जब मूल संव्यवहार के प्रत्येक पक्षकार का निधन हो जाए और यह अभिनिश्चित करना पूरी तरह से असंभव हो जाता है कि वे कौन–सी परिस्थितियां हैं जिनके कारण मूल अनुदान किया जाना था, तो केवल निम्नलिखित नीति जिनको न्यायालय जहां तक संभव हो, पूर्ण कब्जा बनाये रखने वाले लोगों के प्रति जिनका किसी सम्पदा में कब्जा स्पष्ट है, यह उपधारित करने के लिए अनुदान विधिपूर्ण था और अविधिपूर्ण तरीके से किया गया था, अपनाता है।"

---

384 आई.एल.आर. 19 मद्रास 185

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हैरिस एण्ड़ चेस्टरफील्ड[385] के मामले में हाउस ऑफ लॉड्र्स के न्यायालय, लॉर्ड लॉरबर्न एल.जे. ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "..... लेकिन यह सिद्धांत निश्चित रूप से अच्छी भावना पर आधारित है। समय बीतने के साथ पुराने संव्यवहारों के अभिलेख नष्ट हो जाते हैं, यदि उन लोगों में से किसी को भी बेकब्जा कर दिया जाए जिस पर उनके पूर्वजों का कब्जा स्मार्णातीत समय से है और केवल इस आधार पर वे यह दर्शित नहीं कर सकते है कि उन्होंने इस भूमि को कैसे प्राप्त किया गया था, बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। इस कारण से विधि का यह निष्कर्ष है कि मूल अधिग्रहण तब तक वैध था, जब तक कि दावाकृत संपत्ति ऐसी न हो कि उनमें से कोई भी व्यक्ति कानूनन इसे हासिल न कर सके, अथवा तथ्य यह दर्शित करें कि इसे केवल उन तरीकों से हासिल नहीं किया जा सकता था जिनको विधि अनुज्ञा देता है।"

उपरोक्त निर्णय में, न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या किसी नदी पर कई शताब्दियों तक सम्मिलित रूप से मत्स्य पालन अधिकारों का प्रयोग करते हुए विनष्ट अनुदान का उपधारणा की जा सकती है। हाउस ऑफ लॉड्र्स ने बहुमत से माना कि विनष्ट अनुदान की कोई उपधारणा इस मामले में उपलब्ध नहीं थी, यद्यपि कई इलाकों के फ्री होल्डर्स, अनिश्चित और अस्थिर व्यक्तियों का संघ, विधि में उचित अनुदानग्रहीता नहीं हो सकते थे।

759. उपरोक्त निर्णय कलकत्ता उच्च द्वारा निर्णीत **असरबुल्ला बनाम कियामट्टुला हाजी चौधरी**[386] के मामले में संदर्भित किया गया था, जहाँ वादी ने दावा किया कि स्मरणातीत काल से उस गाँव के निवासी अपने मवेशियों को स्वतंत्रतापूर्व और बिना किसी रोकटोक के एक विवादित भूमि पर चराया

---

385 (1911) ए.सी. 623

386 ए.आई.आर. 1937 कलकत्ता 245

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करते और तब से वे विनष्ट अनुदान की उपधारणा के आधार पर चरागाह के अधिकार को प्राप्त कर लिया था। डिवीजन बेंच के न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी इस प्रकार धारित किया:

> "....यह कि यहां विधिपूर्ण उत्पत्ति की उपधारणा की जा सकती है, प्रारम्भ में यह स्थापित करने की आवश्यक है कि वैध अनुदान के पथ में किसी भी प्रकार की विधिक वर्जना नहीं है, और यह कि न केवल एक सक्षम अनुदानकर्ता था बल्कि एक सक्षम अनुदानग्रहीता भी था जिसके पक्ष में अनुदान दिया जा सकता था। यदि किसी भी कारण से कोई वैध अनुदान नहीं दिया जा सकता था तो ऐसे अनुदान की उपधारणा नहीं की जाएगी।"

760. **एन. शंकरनारायण पिल्लै बनाम बोर्ड ऑफ कमिश्नर फॉर द हिंदू रिलीजियस एनडोमेंट, मद्रास**[387] के मामले में प्रवी कौंसिल एक ऐसे मामले पर विचार कर रही थी जहां पर वाद के पक्षकारों ने दावा किया कि वे वाद सम्पत्ति के स्वामी हैं,जिसमें इनाम (किराया मुक्त) और रैयतवारी अथवा अयान (निर्धारित) दोनों तरह की भूमि शामिल थीं और उसके एक हिस्से से प्राप्त आय से हिस्सा मध्यरात्रि कट्टलाई में खर्च किया जाता था जिसका निर्धारण मद्रास स्थित श्री पापानासम मंदिर करता था। न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या वाद सम्पत्ति पूरी तरह से धर्मदाय के लिए थी अथवा क्या दान के पक्ष में संपत्तियों की आय पर केवल एक भार था। न्यायालय ने पाया कि यह धर्मदाय कर्नाटक के राजाओं ने किया था न कि अपीलकर्ताओं के पूर्वजों ने, जो इस धर्मदाय के प्रबंधक अथवा पर्यवेक्षक मात्र थे। ये संपत्तियां और इससे होने वाली आय पूरी तरह से मंदिर को समर्पित थी,

---

387 ए.आई.आर. 1948 पी.सी. 25

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और मुख्य रूप से मध्यरात्रि सेवाओं के लिए, और अधिशेष आय में अपीलकर्ताओं के पास कोई लाभकारी हित नहीं था। धर्मदाय की वास्तविक प्रकृति का निर्धारण करने के उद्देश्य के लिए दस्तावेजी साक्ष्य पर चर्चा कर न्यायमूर्ति एम.आर. जयकर ने इस प्रकार धारित किया:

> "चूंकि धर्मदाय की प्रकृति या शर्तों पर प्रकाश फेंकने वाला कोई दस्तावेज अथवा विलेख अथवा या अनुदान नहीं था इसलिए धर्मदाय की वास्तविक प्रकृति क्या है, इसको निर्धारित करने के लिए अन्य दस्तावेजी साक्ष्यों को अवलम्ब लेने में उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति की राय ठीक थी । इस तरह के दस्तावेजी साक्ष्य में, अन्य बातों के साथ, इनाम–रजिस्टर, स्वत्व विलेख, सर्वेक्षण और बंदोबस्त रजिस्टर में दर्ज बयान, पत्रा एवं प्रशगत धर्मदाय के संबंध में विभिन्न राजस्व अधिकारियों का अपने अधीनस्थों के दिया गया आदेश शामिल था।
>
> .....
>
> वर्तमान मामले में ऐसी कोई व्यवस्था साक्ष्य में नहीं है जिसके साथ अपीलकर्ताओं के परिवार के कब्जे या भोग को शुरू किया जा सकता है। एकमात्र उल्लिखित करार परिवार के मध्य एक समझौता है जिसका धर्मदाय से कोई संबंध नहीं है।"

प्रिवी काउंसिल ने **चोकलिंगम पिल्लई** के मामले में पारित निर्णय का संदर्भित कर वास्तविक साक्ष्य के अस्तित्व की अनुपस्थिति से जुड़े मामलों में विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता पर चर्चा की। न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया:

> "....जिन अन्य मामलों का अवलम्ब लिया गया वह मोहम्मद मजफल अल मुसावी बनान जबीदा खातून (ए.आई.आर. पी.सी. 103) का मामला था जहां पर लम्बे समय से और शान्तिपूर्ण सम्पत्ति के भोग के समर्थन में विधिपूर्ण उद्गम की उपधारणा संबंधी विधि की पुष्टि हो गयी चूंकि इसकी व्यख्या लार्ड बकमास्टर द्वारा पूर्व मामले , चोकलिंगम

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> पिल्लई बनाम मयांडी चेट्टियार आई.एल.आर. 19 मद्रास 485 के मामले में की गयी थी।..... लेकिन इसकी व्याख्या उसी मामले में की गयी थी कि यह नियम वहां लागू होता है जहा पर वास्तविक साक्ष्य न उपलब्ध न हो या पक्षाकार उसको प्रस्तुत करने में असफल रहे। अनुमान, यह कहा गया था, कुछ वैध शीर्षक में एक मूल की, जो अदालतों ने अक्सर आसानी से लंबे समय तक और चुपचाप आनंद लेने वाले अधिकार का समर्थन करने के लिए बनाया है, जहां शीर्षक का कोई वास्तविक प्रमाण आगामी नहीं है, और नियम का सहारा लेना होगा वास्तविक साक्ष्य की विफलता के कारण। वर्तमान मामले में, जहां अनुदान की प्रकृति, धर्मदाय का उद्देश्य और उपयोगकर्ता और भोग का दावा करने वाले व्यक्तियों की क्षमता से जुड़े हुए संतोषजनक और पर्याप्त साक्ष्य मौजूद हों वहां इस नियम की उपयोगिता नहीं हो सकती है।"

761. **लक्ष्मीधर मिश्रा बनाम रंगलाल**[388] के मामले में प्रिवी काउंसिल के उत्तरवर्ती निर्णय में, ग्रामीणों की ओर से प्रतिनिधि क्षमता में अपीलकर्ताओं ने स्मरणातीत काल से कब्रस्तान के रूप में भूमि के एक टुकड़े कादावा किया। दूसरी ओर प्रतिवादी ने निजी उद्योग के प्रायोजन के लिए भूमि का दावा किया। प्रथम अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश ने कहा कि भूमि का आरक्षण एक समर्पण अथवा मकान मालिक द्वारा अनुदान है। उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निर्णय को इस आधार पर अपास्त किया कि कोई विधिमान्य अनुदान विद्यमान नहीं है और अपीलार्थी के वाद को खारिज कर दिया है। अपील में प्रिवी काउंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि क्या भूमि का उपयोग अंतिम संस्कार के लिए किया जा रहा था, यह तथ्य और विधि का मिश्रित प्रश्न था और अपीलार्थी का यह दावा है कि विवादित संपत्ति गाँव की श्मशान भूमि थी जो प्रथागत थी। अतः धारित किया गया कि विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की कोई प्रयोज्यता नहीं है। विनष्ट

---

388 ए.आई.आर. 1950 पी.सी. 56

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता के बारे में बताते हुए, लॉर्ड रेडक्लिफ ने इस प्रकार धारित किया:

> "…. यह अनिवार्य रूप से विवादित क्षेत्र में ग्रामीणों के अधिकारों को स्थापित करने वाला एक वाद है। किसी ने भी आम जनता के अधिकारों के अधीन भूमि का दावा किया अथवा इसके बारे में बोला और न ही वास्तव में किसी विशेष गांव में श्मशान घाट पर लागू ऐसी धारणा को अर्थ देना आसान होगा। लेकिन समर्पण केवल अंग्रेजी विधि में दिया गया है, जो कि मिट्टी के मालिक द्वारा जनता के उपयोग के लिए दिए गए अप्रतिसंहृत लाइसेंस के बराबर है। जनता के सीमित वर्ग जैसे कि किसी गांव के निवासी को भूमि के किसी भाग का समर्पण एक ऐसा दावा है जो विधि में अज्ञात है, और ऐसे विशेष उपयोगकर्ता तक सीमित साक्ष्य समर्पण समर्पण के निष्कर्ष उचित नहीं ठहराएंगे। (देखें: पूले बनाम हसकिंसन, हिल्ड्रेथ बनाम एडमसन और बेरमंड आई बनाम ब्राउन।) भूमि को बांधने वाले एक धर्मार्थ ट्रस्ट के निर्माण से काफी हद तक समान परिणाम प्राप्त हो सकता है, लेकिन यह समर्पण नहीं है, और न ही यह यहां प्रश्नगत है। सुनवाई के किसी भी स्तर पर इस दावे का कोई रिकॉर्ड नहीं है कि ग्राम समाज ने अपने निवासियों में से कुछ वर्गों के लिए एक ट्रस्ट का प्रशासन करने वाले निगम का गठन किया हो, और न ही इस तरह का कोई तर्क माननीय लॉर्डशिप के समक्ष उठाया गया।"
>
> यह सिद्धांत स्वत्व को शक्य बनाने के लिए उत्पन्न हुआ है जो चिरभोगाधिकार द्वारा प्रदान किया जाएगा बजाय स्मर्णातीत काल से प्रयोग करने की असंभाव्यता के। इंग्लिश कॉमल लॉ के अनुसार चिरभोगाधिकार स्मर्णातीत काल, अभिसमय द्वारा, वर्ष 1189 में शुरू हुआ, माना जाता है। यदि यह प्रदर्शित करना संभव होता कि प्रनगत उपयोगकर्ता, भले ही प्राचीन है, जो 1189 से उद्भूत हुआ फिर भी स्मर्णातीत उपयोगकर्ता का चिरभोगाधिकार द्वारा स्वत्व का साक्ष्य असफल हुआ। इस कठिनाई को दूर करने के लिए न्यायाधीशों ने जूरी को यह पता लगाने के लिए अनुमति प्रदान की और प्रोत्साहित भी किया, प्रश्नगत अधिकार भले ही 1189 से पहले के हों, उस तारीख से विनष्ट अनुदान में उत्पन्न हुए। इस प्रकार इस अधिकार ने आवश्यक विधिक सूत्र प्राप्त कर लिया। लेकिन ऐसा अधिकार बस जितना

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुखाधिकार के रुप में, एक संपत्ति के साथ संलग्न किया जाना था: इसके अतिरिक्त क्योंकि यह अनुदान में उत्पन्न हुआ, इसलिए इसके मालिक, चाहे वहीं हो अथवां चाहे न्यायगमन के द्वारा मालिक बने होंऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अंग्रेजी विधि के तहत अनुदानग्रहीता के रूप में सक्षम थे। समय–समय पर एक गाँव के निवासियों द्वारा प्रयोग किया जाने वाला कोई अधिकार न तो भूमि में किसी भी संपत्ति से जुड़ा होता है और न ही यह ऐसा अधिकार है जो अनुदान का विषयवस्तु बनाया जा सकता है। कोई ग्राह्य अनुदानग्रीता नहीं हैं। वास्तव में, विनष्ट अनुदान का यह सिद्धांत में इस तरह के अधिकारों के लिए प्रयोग नहीं होता है जैसा जो किसी विशेष परिक्षेत्र के निवासियों भूमि का।

(प्रभाव वर्धित)

762. **राजा ब्रजा सुंदर देब बनाम मोनी बेहरा**[389] के मामले में इस अदालत के तीन जजों की बेंच के फैसले में, यह दावा किया गया था कि प्रमुख प्रतिवादी और उनके पूर्वज लंबे समय से एक निश्चित वार्षिक किराये पर निर्बाध रूप से मत्स्य पालन का कार्य कर रहे थे और वह भूमि उनके वास्तविक कब्जे में थी और उन्होंने यह अधिकार सभी संभव तरीकों जैसे कि अनुदान, प्रथा, प्रतिकूल कब्जे और सुखाधिकार द्वारा अर्जित कर लिया था। वादी की तरफ से नौ गांवों के अन्य मछुआरों की ओर से इस आधार पर व्यादेश जारी करने हेतु एक वाद लाया कि चूंकि वे मत्स्य पालन का मालिकाना हक रखते हैं अतः वे मत्स्य पालक के अनन्य मालिक हैं और प्रतिवादी वादी के भोग के अधिकार में हस्तक्षेप कर नुकसान पहुंचा रहे थे। विचारण न्यायालय ने वादी के पक्ष में एक डिक्री पारित की जिसे बाद में उच्च न्यायालय द्वारा अपील में संशोधित किया गया था, जहां यह अभिनिर्णीत किया गया कि विनष्ट अनुदान के आधार पर प्रतिवादियों के पास किरायेदार के तौर पर केवल हिल्सा

---

389 ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 247

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मौसम मे तालाब में मछली पकड़ने के विशेष अधिकार थे। उच्च न्यायालय के निर्णय को पलटकर तत्कालीन न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन खंडपीठ के लिए बोलते हुए निम्नानुसार धारित किया :

> "12 ..... हमें उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण को बनाए रखना मुश्किल पाते है कि विनष्ट अनुदान के तहत विवादित मत्स्य पालन भूमि प्रतिवादियों के कब्जे में थी। विनष्ट अनुदान के तहत। विशेष स्थानीय क्षेत्र के निवासियों के मामले में यह सिद्धांत नहीं लागू होता है जिसमें तहत वे जो भूमि या पानी के खण्ड़ पर उपयोगकर्ता के अधिकार को स्थापित करना चाहते हैं। जैसा कि लक्ष्मीधर मिश्रा बनाम रंगलाल AIR 1950 PC 56 के मामले में लॉर्ड रेडक्लिफ ने उल्लेख किया है कि विनष्ट अनुदान के सिद्धांत को एक तकनीकी उपकरण के रूप में उत्पन्न किया गया है ताकि स्मर्णातीत उपयोगकर्ता को साबित करने की असंभवता के बावजूद चिरभोगाधिकार द्वारास्वत्व प्रदान किया जा सके और चूंकि यह अनुदान में उत्पन्न हुआ था इसलिए इसके मालिक, चाहे मूल या भूमि हस्तांतरण से बने हों ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अनुदान प्राप्त कर सकते थे, और यह कि किसी गाँव के निवासियों द्वारा समय–समय पर जो अधिकार प्रयोग किया जा रहा था वह न तो किसी भूमि में किसी भी संपत्ति से जुड़ा हुआ है और न ही यह ऐसा अधिकार है जो अनुदान का विषयक हो सकता है, इसलिए वहां पर को स्वीकार्य अनुदानग्रहीता नहीं है।"
>
> कोई स्वीकार्य अनुदानग्रीता नहीं है। इस संबंध में कलकत्ता उच्च न्यायालय के खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय आश्रबुल्ला बनाम कलकत्ता उच्च न्यायालय AIR 1937 Cal 245 का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें इस विषय पर विधि की विस्तार से जांच की गई है। उस मामले में यह सवाल उठा कि ग्रामीणों ने जिस चारागाह संबंधी अधिकार का दावा किया था वह अभियक्ति या विवक्षित अनुदान से मिल सकता था। कई अंग्रेजी और भारतीय प्रकरणों की जांच के उपरान्त यह माना गया कि कोई कोई विनष्ट अनुदान को अस्थिर और अनिश्चित गांव के निवासियों के पक्ष में नहीं माना जा सकता है और इस तरह के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकार को केवल प्रथा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस मामले में प्रतिवादीगण अनिश्चित व्यक्तियों का एक निकाय है और उनकी संख्या प्रत्येक जन्म अथवा मृत्यु द्वारा अथवा मछुआरों के इन गांवों से आने और जाने से बढ़ अथवा घट जाती है।

(प्रभाव वर्धित)

763. **हॉल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड** के अनुसार:

"यह उपधारणा का केवल साक्ष्य द्वारा खंडित किया जा सकता हैकि ऐसे अनुदान का अस्तित्व असंभव है; ऐसे साक्ष्य से कम कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा और न्यायाधीश केवल इसलिए अनुदान की उपधारणा करने का अधिकारी नहीं है क्योंकि उनको आश्वस्त किया गया है कि वह वास्तव में कभी मंजूर नहीं किया गया था।"[390]

बुधू सत्यनारायण बनाम कोंडुरु वेंकटपय्या[391] के प्रकरण में इस न्यायालय की दो जजों की बेंच ने कतिपय अचल संपत्तियों के कब्जे का प्रतिउद्धरण के वाद से उत्पन्न अपील पर सुनवाई की। प्रतिवादियों के निष्कासन के लिए सरकार द्वारा नियुक्त कार्यकारी अधिकारी द्वारा इस आरोप पर एक वाद संस्थित किया गया था कि संपत्ति मंदिर की थी जिसे 1770 ई. में एक जमींदार द्वारा दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि प्रतिवादी अर्चक होने के नाते कब्जे में थे और गलत तरीके से संपत्तियों को अपने होने का दावा कर रहे थे। मंदिर के कार्यकारी अधिकारी के रूप में वादी की वाद संपत्तियों पर कब्जा करने के लिए प्रतिवादियों को नोटिस देकर वाद संस्थित किया गया था। उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायाधीश के आदेश को बरकरार

---

390 हल्सबरी लॉ ऑफ इंग्लैंड, भाग 14, चौथा संस्करण, प्रस्तर 90

391 ए.आई.आर. 1953 एस.सी.195

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रखा। प्रतिवादियों की ओर से, इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि, प्रतिवादीगण और उनके पूर्ववर्तियों प्राचीन समय से संपत्तियों पर कब्जा में है इसलिए विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त के आधार पर वैध स्वत्व की वैध उपधारणा की जानी चाहिए। खंडपीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति एस.आर. दास ने इस तर्क को खारिज कर निम्नानुसार धारित किया किया:

> "2. प्रधिकारियों को कोई संदेह नहीं है, कि वैध स्वत्व कीउत्पत्ति की उपधारणा कुछ निश्चित परिस्थितियों में लंबे समय तक और शान्तिपूर्वक कब्जे से संवंधित अधिकारों को समर्थन करने के लिए किया जा सकता है जहां पर स्वत्व का कोई वास्तविक प्रमाण नहीं दिया जा सकता है। लेकिन यह समान रूप सुस्थापित है कि वहां पर उपधारणा नहीं किया जा सकता जहां पर अनुदान की प्रकृति और जिनको अनुदान दिया गया था उससे संबंधित साक्ष्य पर्याप्त सबूत और संतोषजनक हो। यह सच है कि मूल अनुदान सुलभ नहीं है, लेकिन जैसे हम साक्ष्यों पर नजर ड़ालते हैं हमें दो दस्तावेज मिलते हैं जो स्वत्व के प्रश्न पर निर्णायक प्रतीत होते हैं। यह प्रतीत होगा कि न तो इनाम रजिस्टर प्रदर्श पी–3 और न ही बयान प्रदर्श डी–3 में अनुदानग्रहीता के रूप में अर्चाक का अथवा कोई भी कम से कम हित, व्यक्तिगत या अन्यथा, इनाम अनुदान के विषय–वस्तु में कोई उल्लेख है। दोनों प्रदर्श पूर्णरूपेण इंगित करते हैं कि इनाम का अनुदान अनुदानकर्ता द्वारा मंदिरके पक्ष में किया गया था और अनुदान की प्रकृति के संबंध में इस निश्चित साक्ष्य के मौजूदगी के कारण अर्चक के पक्ष में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं की जा सकती है। अर्चक इसलिए, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं और धारित करते हैं कि देवता अनुदानग्रहीता थे और हमारे सामने उठाए गए पहले प्रश्न का उत्तर अपीलकर्ताओं के विरूद्ध दिया जाना चाहिए।"

[देखें: सी. पेरीस्वामी गौंडर बनाम सुंदरेश्या अय्यर [392]]

---

392 ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 516

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

764. मनोहर दास मोहंता बनाम चारू चंद्र पाल के मामले में इस अदालतकी एक संविधान पीठ को अपीलकर्ताओं जो कि एक धार्मिक संस्था के महंत था उसके द्वारा दायर प्रतिवादियों के विरूद्ध भूमि के विभिन्न भूखंडों के कब्जे की प्रत्युद्धरण के वाद पर विचार करना था। दूसरा, अपीलकर्ता ने उचित और न्यायसंगत किराए के मूल्यांकन की मांग की। प्रतिवादियों ने प्रतिवाद कर अभिवचन किया कि विवादित भूमि जमींदारी का हिस्सा नहीं थी, लेकिन स्थायी बंदोबस्त से बहुत पहले उनके पूर्ववर्ती स्वत्वधारियों के पक्ष में अनुदान किया गया था और जमींदारी के तहत मांग करने वाले न ही बर्दमान के महाराजा और न ही वादी का स्वत्व था। जिला न्यायालय ने मुंसिफ के फैसले को बरकरार रखा और धारित कि प्रतिवादीगण और पूर्ववर्ती बहुत लंबे समय से किराए का भुगतान के बिना कब्जे में थे और विनष्ट अनुदान की उपधारणा उनके पक्ष में की जा सकती थी। उच्च न्यायालय ने जिला न्यायालय के फैसले के खिलाफ अपील खारिज कर दी। इस न्यायालय के समक्ष मुद्दा यह था कि क्या रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर निचली अदालतों ने प्रतिवादियों के पक्ष में विनष्ट अनुदान की सही उपधारणा की थी। इस न्यायालय ने धारित किया कि प्रतिवादियों के पक्ष में विनष्ट अनुदान का कोई उपधारणा नहीं की जा सकती है, और जो जिस भूमि पर वादी का कब्जा है वह उसका उचित और न्यायसंगत किराए के आंकलन करने का अधिकारी था। खंडपीठ की ओर बोलते हुए, न्यायमूर्ति टी. एल. वेंकटरामा अय्यर ने निम्नलिखित शर्तों में विनष्ट अनुदान के सिद्धांत की प्रयोज्यता की व्याख्या की:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"7. जिन परिस्थितियों और शर्तों के तहत विनष्ट अनुदान की उपधारणा की जा सकती थी वह सुस्थापित है। जब ऐसा पाया गया कि कोई व्यक्ति बिना किसी विरोध के लम्बे समय से किसी भूमि पर कब्जे में था और उसका शान्तिपूर्ण उपभोग कर रहा था , तो इंग्लैंड में अदालतें इस तरह के कब्जे को विधिक उत्पत्ति का श्रेय दीं, और जब तथ्यों से यह पता चलता हो कि चिरभोगाधिकार द्वारा स्वत्व पोषणीय नहीं हो सकता था तब यह धारित किया कि ऐसी उपधारणा की जा सकती थी कि भूमि के हकदार मालिक द्वारा किये गये अनुदान के संबंध में कब्जे का उल्लेख किया गया, लेकिन यह कि इस तरह के अनुदान को विनष्ट हो चुका था। यह उपधारणा प्राचीन और सतत कब्जे को प्राप्त करने के लिए की गयी थी, जो अन्यथा युक्तियुक्त रूप से नहीं की जा सकती थी। लेकिन यह विधि की एक निश्चायक उपधारणा नहीं थी, और यदि तथ्य और साक्ष्य इसके विरूद्ध होते तो अदालतें ऐसी उपधारणा करने के लिए बाध्य न होतीं। किसी न्यायाधीश का यह कर्तव्य नहीं हो सकता कि वह ऐसे अनुदान की उपधारणा करे जिसका अस्तित्व नहीं है भले ही उसके बारे में वह आश्वस्त है। यह अवलोकन अटर्नी जनरल बनाम सिम्पसन (1901)2 सी.एच.डीय 671,698 के मामले में न्यायमूर्ति फार्वेल ने किया। यदि ऐसा करने में कोई विधिक बाधा होती तो भी यह उपधारणा नहीं की जाती। इस प्रकार, यह धारित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति इस तरह के अनुदान को ग्रहण करने में सक्षम न होता तो इसे न दिया जाता क्योंकि वहां पर अनिश्चित व्यक्तियों के समूह द्वारा ऐसे अधिकार की मांग की गयी है।यह राजा ब्रज सुंदर देब बनाम मोनी बेहरा 1951 एस.सी.आर. 431,446 में अभिनिर्णीत किया गया था। यदि कोई व्यक्ति अनुदान देने में सक्षम न होता तो हीं है इस तरह इस अनुमान के लिए कोई गुंजाइश न होती:(वाइड हैल्सबरीज लॉ ऑफ इंग्लैंड, खंड. IV, पृष्ठ 574, प्रस्तर 1074); अथवा यदि अनुदान अवैध और अनुदानकर्ता की शक्तियों से परे होता। (वाइड बार्कर बनाम रिचर्डसन 4 बी एंड एल्ड 579: 106 ई.आर. 1048 1049 और रोचडेल कैनाल कंपनी बनाम रेडक्लिफ 18 क्यू.बी. 287: 118 ई.आर. 108 एट 118)।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

765. **कुंडा लक्ष्मण बापूजी बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार**[394]के मामले में, प्रतिवादी ने दावा कि विवादित भूमि को पहले मक्ता भूमि के रूप में और बाद में इनाम भूमि के रूप में दिखाया गया था। अपीलकर्ता ने उक्त मक्ता के उत्तराधिकारियों में से निर्धारिती होने का दावा किया और 1958 में वह जमीन पर दाखिल हो गया था और उस पर एक इमारत बना ली। यह तर्क दिया गया था कि विनष्ट अनुदान का सिद्धांत लागू होगा क्योंकि अपीलकर्ता स्वत्व के तहत लंबे समय तक विवादित भूमि पर काबिज रहा है। प्रतिवादी ने यह आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता का दावा वैध नहीं था क्योंकि भूमि कभी भी उक्त मक्ता से संबंधित नहीं थी; हालांकि यह उक्त तिथि से सरकार में निहित हो गयी और कलेक्टर के आदेश जिसमें उन्होने अधिकारों के रिकॉर्ड में प्रविष्टियों को सही किया था, वह अंतिम हो चुका था। इस न्यायालय की एक दो न्यायाधीशों वाली पीठ ने विनष्ट अनुदान के सिद्धांत के दावे को खारिज कर मनोहर दास मोहंता के निर्णय का उल्लेख किया और धारित किया कि विनष्ट अनुदान का उपधारणा का लाभ अपीलकर्ता को नहीं मिलेगा, जिसने 1954 से उस समय के ईनामदार (मक्तदार) द्वारा एक अपंजीकृत स्थायी पट्टा के तहत अपने कब्जे का पता लगाया था।

766. **ब्रज किशोर जगदेव बनाम लिंगराज सामंत**[395] के मामले में मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने लोक धार्मिक संस्था के वंशानुगत न्यासी होने के प्रत्यर्थी के दावे पर विचार किया जो इस तर्क पर आधारित किया कि उसके पूर्वजों को उस धार्मिक संस्था के कार्यों का प्रबंध

---

394 (2002) 3 एस.सी.सी. 258

395 (2002) 6 एस.सी.सी. 540

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सौंपा गया था जिसे बहुत पहले किसी अज्ञात संस्थापक द्वारा स्थापित किया गया था। प्रतिवादी ने यह तर्क दिया कि उनका परिवार बिना किसी रुकावट के सेवा और पूजा कर रहा था, जैसा कि मारफतदार र मारफदर का कार्यालय वंशानुगत रूप से कर रहे थे और यह प्रथा विनियमित था। अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी के दावे का प्रतिवाद किया और सहायक आयुक्त ने प्रतिवादी के दावे को खारिज कर दिया। तथापि, उच्च न्यायालय ने अपील में प्रत्यर्थी के दावे को मंजूर किया और विनष्ट अनुदान के सिद्धांत के आधार पर उन्हें वंशानुगत न्यासी अभिनिर्णीत किया। न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त कर इस प्रकार अभिनिर्णीत किया:

> "6. उच्च न्यायलय ने जिस अन्य आधार अपना निर्णय दिया वह यह है कि वंशानुगत न्यासी की परिभाषा के हिसाब से निर्माणकर्ता के समय से उनके वंशानुगत न्यासी होने की विधिक आवश्यकता समय के गर्त में खो गयी है न्यायालय के लिए इसके अतिप्राचीन प्रयोग से अनुदान का अर्थ लगाने का विकल्प खुला है लेकिन इसका अर्थ अनुमान नहीं लगाया जाएगा यदि उपयोगकर्ता को इससे अन्यथा समझाया जा सके। विनष्ट अनुदान की कल्पना लंबे कब्जे और स्वामी की सहमति से उपयोगकर्ता के सुखाधिकार के प्रयोग की उपधारणा मात्र है. यह कि दावा करने वाले को मूल रूप से एक अनुदान हुआ होना चाहिए था जो कि विनष्ट हो चुका है। ऐसे व्यक्ति के पक्ष में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं हो सकती है जो उत्तराधिकार के अन्तर्गत न्यासी हो। हमें नहीं लगता कि अभिलेख में उपलब्ध सामाग्री के आधार पर ऐसा कोई हस्तक्षेप (अनुमान) संभव है। प्रथमतः न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया है कि देवता एक निजी न्यास है और अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता, उस संबंध में असफल होने पर अब वे इस तथ्य पर आना चाहते हैं कि वे वंशानुगत न्यासी है। इसे स्थापित करने में किसी प्रकार का साक्ष्य न दे पाकर वे दयनीय रूप से असफल रहे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

767. इस विषय पर पूर्ववर्ती के विश्लेषण से निम्नलिखित सिद्धांत समाप्त किए जा सकते हैंः

- विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त से साक्ष्य का नियम निकलता है। समय बीत जाने के कारण साक्ष्य के आभाव में प्राचीन काल में किये गये वैध अनुदान के अस्तित्व को साबित करने के लिए यह सिद्धान्त लागू होता है। तथापि जहां पर कब्जे को साबित करने के लिए पर्याप्त और संतोषजनक साक्ष्य मौजूद हों अथवा भूमि के दावा जिस मामले में विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता न होगी वहां पर न्यायलय यह उपधारणा करने के लिए बाध्य नहीं है।
- जहां पर न्यायालय के लिए उन परिस्थितियों को निश्चित करना असंभव हो जिन परिस्थितियों के तहत अनुदान दिया गया था वहां पर अनुसेवी स्वामी द्वारा कब्जेधारी अथवा प्रयोगकर्ता को दिये गये वैध और सकारात्मक अनुदान के अस्तित्व के विषय में उपधारणा की जाती है। अनुदान अभिव्यक्त अथवा विवक्षित हो सकता है। एक बार उपधारणा कर लेने के उपरान्त, न्यायालय यथासंभव, उन लोगों के कब्जे को सुरक्षित करेगा जो शान्तिपूर्णक कब्जे को धारण किये हैं।
- विधिपूर्ण उपधारणा करने के लिए कोई विधिक रुकावटें नहीं हैं। इस सिद्धान्त की प्रायोज्यता के लिए यह स्थापित करने की आवश्यकता है कि शुरुआत में जिस समय अनुदान किया गया था उस समय वह न केवल वैध अनुदान था अपितु अनुदानग्रहीता जिसके पक्ष में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुदान किया गया था वह भी सक्षम था। परिभाषित अनुदानग्रीहता के आभाव में विनष्ट अनुदान की उपधारणा नहीं की जाएगी।

- विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता के लिए लम्बे समय से, निर्बाध और शान्तिपूर्ण अकाय अधिकार का भोग होना चाहिए। निर्बाध भोग के अन्तर्गत सतत उपभोग अथवा कब्जा आता है।
- उपभोग और कब्जे की आपेक्षित समयावधि परिवर्तनशील है और मामला दर मामला निर्धारित की जानी चाहिए; और
- लम्बे से चली आ रही रूढ़ि एवं प्रथा के चलते अधिकारों का दावा एवं विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त के मध्य अन्तर किया जाना चाहिए।

विश्लेषण

768. प्रस्तुत मामले में, वाद 4 के वादीगण 1528 में मुस्लिमों के इबादत के लिए बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद के समर्पण के आधार पर और इसके विकल्प में प्रतिकूल कब्जे के आधार पर यदि यह स्थापित किया जाता है कि हिंदू मंदिर की जगह पर मस्जिद का निर्माण किया गया था, घोषणा का दावा स्थापित किया है। विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता को समर्थन करने के लिए वादीगणों ने कोई अभिवचन नहीं किया है। वादीगण का विशिष्ट मामला मुस्लिमों द्वारा सार्वजनिक इबादत के लिए मस्जिद के समर्पण का है। इसका मूल्यांकन उन साक्ष्यों के आधार पर किया जाना चाहिए जिन्हें जोड़ा गया है। वास्तव में प्रतिकूल कब्जे की वैकल्पिक दलील साक्ष्य के नियम के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रूप में विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त को लागू करने के लिए एक विनाशकारी विधिक आधार है। प्रतिकूल कब्जे एक व्यक्ति में शीर्षक के निहितार्थ और दूसरे के लंबे समय तक जारी और निर्बाध कब्जे के अस्तित्व को दर्शाता है, जो कि वास्तविक शीर्षक धारक के लिए शत्रुतापूर्ण और शत्रुतापूर्ण तरीके से है। प्रतिकूल कब्जे की दलील से प्रतिकूल कब्जे की दलील के रूप में विनष्ट अनुदान के सिद्धान्त की प्रायोज्यता के विरूद्ध जो अनुमान निकेलगा वह कथित अनुदानग्रहीता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति में निहित स्वत्व पर आधारित है। निहित स्वत्व पर आधारित है। इस न्यायालय और इस सिद्धान्त को साक्ष्य की मान्यता देने वाले प्रिवी कौंसिल के निर्णय यह दर्शित करते हैं कि इस सिद्धान्त को सावधानी से लागू किया जाना चाहिए। करने से पहले हिंदुओं के तीन गुम्बदीय ढांचे के भीतर पूजा करने की अनुमति देने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। दस्तावेजी साक्ष्यों से यह भी पता चलता है कि रेलिंग की स्थापना वास्तव में एक तथ्य के रूप में नहीं की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप दोनों समुदायों के लिए अलग–अलग स्थानों की पूजा के स्थान के रूप में पहचान की गई और आंतरिक और बाहरी आंगन का पूर्ण विभाजन हुआ। नवंबर 1858 की घटना के तुरंत बाद, जिसमें निहंग सिंह पर आरोप है कि उन्होंने एक हवन पूजा का आयोजन किया था और मस्जिद के परिसर में "श्री भगवान" का एक प्रतीक स्थापित किया था, जिससे घटनाओं की एक श्रृंखला शुरू होती है, जो यह दर्शाता है कि हिंदुओं का बहिष्कार आंतरिक अहाते से न तो स्वीकार किया गया था और न ही इसे वास्तविकत रूप में लागू किया गया था। निहंग सिंह को हटाने का विरोध हुआ। आखिरकार दिसंबर 1858 में यह दर्ज किया गया कि मस्जिद से झंडा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उखाड़ दिया गया था और निहांग सिंह को बाहर कर दिया गया था। नवंबर 1860 में कुछ ही समय बाद मीर रज्जब अली ने शिकायत किया कि कब्रिस्तान में एक नए चबूतरे का निर्माण हो रहा है। शिकायत में दर्ज किया गया है कि जब मोअज्जिन के द्वारा आजान की जाती है, तो हिंदू शंख बजाने लगते हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र धार्मिक पूजा के दावों से भरा था। उन दावों के अनुरूप, समकालीन तिथि के अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि रेलिंग के निर्माण के बावजूद आंतरिक अहाते से हिंदु पूरी तरह से बाहर नही गये। मार्च 1861 में मोहम्मद असगर और रज्जब अली बाबरी मस्जिद के पास अनुमति के बिना एक चबूतरा के निर्माण के खिलाफ शिकायत करने पहुचें। इसने सूबेदार को उस व्यक्ति के बेदखली की रिपोर्ट देने के लिए प्रेरित किया जिसने ऐसा किया है। 1866 में फिर से, मुतावल्ली द्वारा एक नई कोठरी को ध्वस्त करने की शिकायत की गई, जिसका निर्माण मस्जिद के दरवाजे के अंदर मूर्तियों को रखने के लिए किया गया था, जहां बैरागियों ने एक चबूतरा का निर्माण किया था। इस आवेदन पर, उपायुक्त ने अक्टूबर 1866 में इसके सुपुर्दगी को अभिलेख में दर्ज किये जाने का एक आदेश पारित किया।

778. 1868 में, मुसलमानों ने मस्जिद के उत्तर पश्चिमी कोने पर अतिक्रमण का आरोप लगाया जो साबित नहीं हुआ था। 1870 में, मुतवल्ली ने कब्रिस्तान से एक फकीर के खिलाफ बेदखली का आदेश मांगा और पेड़ों के चारों ओर कुछ अतिक्रमणों की शिकायत की। अगस्त 1871 में एक आदेश पारित किया गया था, जिसमें कहा गया था कि वादी को मस्जिद के दरवाजे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के सामने अहाते में कब्रिस्तान पर स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं था। 1873 में, चबूतरा पर एक मूर्ति रखने के संबंध में एक विवाद सामने आया।

779. अप्रैल 1877 में, उत्तर दिशा की ओर एक नए गेट के निर्माण के लिए उपायुक्त द्वारा अनुमति देना (पूर्व दिशा की ओर पहले से मौजूद गेट के अलावा) फिर से विवाद का कारण बना। उपायुक्त द्वारा लोगो सुरक्षा की रक्षा के लिए एक अतिरिक्त प्रविष्टि का निर्माण उचित ठहराया था क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तों की काफी भीड़ थी। मुसलमानों की शिकायत खारिज कर दी गई और सार्वजनिक सुरक्षा के हित में उत्तर की दिशा की ओर एक अतिरिक्त दरवाजा खोलने के निर्णय को उचित ठहराया गया।

780. जब नवंबर 1883 में, मुतावल्ली ने मस्जिद की दीवार को पेंट करने के अधिकार का दावा किया, तो सहायक आयुक्त ने रघुबर दास को परिसर के आंतरिक और बाहरी हिस्से में मरम्मत करने से प्रतिबंधित करते हुए मुतावल्ली को बाहरी दरवाजे को बंद नहीं करने का निर्देश इस आधार पर दिया कि मस्जिद के पुराने मौजूदा आदेशों का अनुपालन किया जाना चाहिए। 1858 और 1883 के बीच विवादों का क्रम इस प्रकार इंगित करता है कि रेलिंग की स्थापना होने पर मुस्लिमों का रेलिंग के अन्दर पूजा करने की अनुमति और आंतरिक अहाते से हिन्दुओं को पूजा करने से बेदखल करना निरंतर विवाद का विषय था। मुसलमानों ने अपनी ओर से चबूतरे की स्थापना की शिकायत की थी। हालाँकि, बाहरी अहाते में हिन्दुओं की गतिविधियां जारी रहीं और हिंदू भक्तों की उपस्थिति का महत्वपूर्ण सूचक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1877 में एक अतिरिक्त द्वार खोलने का था। जहां तक आंतरिक अहाते का संबंध है, यह स्पष्ट है कि यह हिंदुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष का विषय था, मुसलमान इसे इबादत का स्थल मानते थे और हिंदू समय–समय पर इसे प्रवेश की मांग करते थे क्योंकि उन्होनें उस स्थान को रेलिंग बनने के पहले प्राप्त किया था। 1934 के दंगों के परिणामस्वरूप मस्जिद की गुम्बद को काफी नुकसान पहुंचा और उनके द्वारा हिंदुओं और बैरागीयों पर जुर्माना लगाया। एक मुसलमान ठेकेदार द्वारा ब्रिटिश सरकार के पैसों पर मरम्मत का काम किया गया। पेश इमाम के बकाया वेतन से सम्बन्धित दस्तावेजी साक्ष्य का युग्म यह इंगित करता है कि मुसलमानों द्वारा नमाज अदा करने के लिए एक स्थान के रूप में कोई परित्याग नहीं किया गया था। यह 1949 तक जारी रहा, हालांकि, वक्फ निरिक्षक ने अपनी 12 दिसंबर 1949 के दिनांकित रिपोर्ट में अंकित किया गया था, जो मुसलमान मस्जिद में प्रार्थना करने गए थे, उन्हें बाहरी आहाते में हिंदुओं द्वारा परेशान किया जा रहा था, जहां उनमें से कई रूके रहते थे। अंततः 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्य रात्रि से ठीक पहले की घटनाओं के कारण मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे मंच पर मूर्तियों की स्थापना हुई।

781. दस्तावेजी साक्ष्य से, यह प्रकट होता है कि:

(i) 1856–7 से पहले आंतरिक अहाते के आस–पास में पूजा करने से हिंदुओं का कोई बेदखली नहीं की गइ थी;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) 1856–7 के सम्मिलन से दोनों समुदायों के बीच पूजा स्थलों के द्विभाजन की व्यवस्था करने के लिए रेलिंग की स्थापना हुई।

(iii) रेलिंग स्थापित करने का तात्कालिक परिणाम यह उन हिंदुओं द्वारा पूजा करने के अधिकार का लगातार दावा, जिन्होंने रेलिंग के सन्निकट समाने चबूतरा की स्थापना की थी;

(iv) रेलिंग की उपस्थिती के बावजूद, आंतरिक अहाते से हिंदुओं की बेदखली के विवाद का विषय था और कम से कम निरपेक्ष नही था;

(v) जहां तक बाहरी अहाते का संबंध है, वह रामचबूतरे तथा सीता रासोई सहित बाहरी आहाते मे और अन्य धार्मिक संरचनाओं दोनों स्थलों पर हिंदू पूजा का केन्द्र बिन्दु बन गया। हालांकि, हिंदुओं ने बाहरी आहाते में स्थित रामचबूतरा में रेलिंग की ओर खडे होकर सुंसगंत विधि से गर्भ ग्रह को प्रसाद अर्पित करते हुए पूजा करना जारी रखा, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि यह उनका विश्वास था कि भगवान राम का जन्म –स्थान मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे और उसके भीतर था;

(vi) 1934 के दंगे और 22/23 दिसंबर, 1949 तक की घटनाओं से संकेत मिलता है कि आंतरिक अहाते पर कब्जा गंभीर संघर्ष का मामला था जिसके तहत दोनों पक्षों द्वारा हिंसा की गई और मुसलमानों का आंतरिक अहाते पर अनन्य कब्जा नहीं था। उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि मुस्लिम पूर्ण रूप से विवादित स्थल में अपने अधिकार का स्वत्व स्थापित करने में सक्षम हैं।

0. 16 मुस्लिमों का कब्जा हक का दावा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

782. वाद 4 में, वादी की ओर से पेश विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन, सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा स्वत्व पर एक मंदिर के अस्तित्व और विनाश के प्रभाव पर प्रस्तुतियाँ देने का आग्रह किया। डॉ. धवन ने निम्न प्रकार की प्रविष्टियाँ पस्तुत की हैं:

(i) आरंभिक समयावधि से संबंधित मस्जिद के नीचे मंदिर का अस्तित्व स्वत्व के प्रश्न से असंगत है;
(ii) एएसआई की रिपोर्ट के अनुसार, किसी भी घटना में क्या यह प्रश्न अनिर्णायक हैः–

(क) विवादित स्थल पर एक पूर्व सरंचना विद्यमान थी जिसे मस्जिद के निर्माण के लिए ध्वस्त कर दिया गया था; और
(ख) वह ढांचा मंदिर है या नहीं।

(iii) उच्च न्यायालय ने यह भी स्वीकार किया है कि एएसआई रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट निष्कर्ष नहीं दिया गया था कि क्या मस्जिद का निर्माण पूर्व – विद्यमान ढांचे के विध्वंस द्वारा किया गया था;
(iv) मुस्लिमों पक्षकारों के विरूद्ध यह दलील देने में विफल रहने से कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि क्या मंस्जिद की सरंचना के नीचे इदगाह या कनाटी मस्जिद स्थित थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(क) मस्जिद का निर्माण करने से पहले बाबर द्वारा ऐसी जांच नहीं की जा सकती थी; और

(ख) उच्च न्यायालय ने एएसआइ को केवल इसलिए अन्वेषण करने का निर्देश दिया कि वह सामग्री जो गजटों और ऐतिहासिक इतिहासकारों से प्राप्त हुई थी, वह अनिर्णायक थी।

स्वत्व से संबंधित कानून पर अपनी प्रविष्टिया प्रस्तुत करने पर, डॉ. धवन ने न्यायालय द्वारा स्वीकृति के लिए निम्नलिखित प्रस्तावों की सराहना की:

(i) कब्जे के द्वारा स्वत्व का अनुमान लगाया जा सकता है, विशेषतया अगर कोई बेहतर हक नहीं है या कोई अन्य दावा सीमा द्वारा वर्जित है;

(ii) जहां किसी व्यक्ति के पास हक है वहां यह उपयोग जारी रहेगा या उपयोग करने में असमर्थता बनी रहेगी;

(iii) कुछ परिस्थितियों में, कब्जा स्वत्व विनिश्चय करने के लिए पर्याप्त हो सकता है

(iv) सबूत का भार ऐसे व्यक्ति पर है जो स्वत्वाधिकार के बिना विशेषकर साक्ष्य अधिनियम की खंड 110 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए कब्जा करने का दावा करता है;

(v). यदि कोई व्यक्ति ऐसी रीति से कार्य करता है जो किसी कब्जे की कमी को दर्शित करता है और किसी कार्य का निष्पादन करता है या उसका लोप करता है तो यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 115 के अधीन विवन्धन का सिद्धान्त के अनुसार होगा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vi) कब्जे के आशय द्वारा कायम रखा जाता है; और

(vii) प्रार्थना या कम प्रार्थना के अभाव के परिणामस्वरूप हक की हानि नहीं होगी और हक केवल परिसीमा से परे प्रतिकूल कब्जे पर खोया जा सकता है;

संक्षेप में, डॉ. धवन द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कथित रूप से शीर्षक के दावे का आधार इस प्रकार तैयार किया जा सकता है:

(i) बाबरी मस्जिद का निर्माण 1528 में बाबर के इशारे में किया गया था। बाबर के शासन में मस्जिद के रखरखाव और संचालन का खर्च शाही खजाने से दिया जाता था और यह अग्रेजी शासन के दौरान भी इसको जारी रखा गया था:

(ii) सिक्खों और हिन्दुओं द्वारा किए गए अत्याचार और अतिक्रमण के अनेक प्रयासों का मुस्लिमों द्वारा खण्डन किया गया और यहां तक कि राज्य के प्राधिकारियों ने निदेश देकर उनके अधिकारों की रक्षा की

(क) मस्जिद से हिन्दू/सिख अतिक्रमणकारियों से बेदखली: और

(ख) अमान्य निर्माणों को हटाना;

(iii) कम से कम 1885 में, हिंदुओं का सामान्य विश्वास यह था कि भगवान राम का जन्मस्थान रामचबूतरा में स्थित था। 1885 के वाद में यह उल्लेखित किया गया था जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया था कि हिन्दुओं के पास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

चबूतरा पर कोइ हक नहीं था और उच्चतम स्तर पर उनके अधिकार प्रकृति में पूर्व निर्धारित थे.

(iv) हिन्दुओं ने सदैव विवादित ढांचे को मस्जिद के रूप में निर्दिष्ट किया है और उसे इस प्रकार मान्यता दी है;

(v) मुस्लिमों ने लगातार विवादित ढांचे में नवाज अदा की, जो इस प्रकार है:

(क) पेश इमाम के बकाया और वेतन के संदाय के लिए 25 जुलाई, 1936 का करार;

(ख) 1941 के शिया/सुन्नी वाद में अभिलिखित साक्षियों की गवाहियाँ; और

(ग) स्वीकृति, वाद 5 के वादियों द्वारा बहस के दौरान, नमाज 16 दिसंबर, 1949 तक मस्जिद में पेश की गई थी;

(vi) हिन्दुओं द्वारा दावा किए गए अधिकार पूर्णतः अवैध कृत्यों पर आधारित हैं:

(क) नवाज अदा करने के पश्चात जब मुस्लिम मस्जिद की ओर आगे बढ़ने पर उन्हें रोकना या तंग करना

(ख) 1934 में मस्जिद के एक भाग को नष्ट करना जिसके कारण हिन्दूओं पर मरम्मत के लिए जुर्माना लगाया जा सके;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ग) 22/23 दिसंबर, 1949 को मस्जिद का अपवित्रिकरण; और

(घ) इस न्यायालय के यथास्थिति आदेशों का उल्लंघन करते हुए 6 दिसंबर, 1992 को मस्जिद का विध्वंस;

(vii) परिणामस्वरूप विवादित संरचना सदैव एक मस्जिद ही रही है जो 1528 से 22/23 दिसंबर, 1949 को उसके विध्वंश तक मुस्लिमों के कब्जे में रही।

783. डॉ. धवन के प्रस्तुत तर्क के इस भाग में अनिवार्य रूप से अधिकार सम्बन्धि स्वत्व पाया गया है एक स्वतंत्र शीर्षक के दावे पर पूर्व विश्लेषण में यह पाया गया है कि मुसलमान मुस्लिम शासकों के दौरान या 1857 के पश्चात औपनिवेशिक शासक क दौरान मस्जिद की आधारभूत भूमि के विधिक स्वत्व के हस्तांतरण के सम्बन्ध में विशिष्ट अनुमति लेने में असमर्थ रहें है। दस्तोजी साक्ष्य जिस पर अवलंम्ब लिया गया है वे मस्जिद के रखरखाव और संचालन के लिए अनुदान से संबन्धित राजस्व अभिलेख शामिल है। यद्यपि डॉ. धवन ने मुसलमानों के इस दावे को स्वीकार करने का आग्रह किया कि उनके पास आंतरिक और बाह्य अहाते में कब्जा था और उस कब्जे की सतत प्रकृति के आधार पर स्वत्व का अनुमान लगाया जा सकता है जिसे हिन्दुओं के द्वारा विस्थापित नही किया जा सकता है।

784. साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 110 निम्न प्रकार हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> धारा 110 – स्वामित्व के बारे में सबूत का भार– जबकि प्रश्न यह है कि क्या कोई व्यक्ति ऐसी किसी चीज का स्वामी है जिस पर उसका कब्जा होना दर्शित किया गया है, तब यह साबित करने का भार कि वह स्वामी नहीं है, उस व्यक्ति पर है, जो प्रतिज्ञात करता है कि वह स्वामी नहीं है।

धारा 110 सबूत के भार से सम्बन्धित है। जहां प्रावधान लागू होता है, यह साबित करने का भार कि एक अन्य व्यक्ति जिसके कब्जे में सम्पत्ति है, वह मालिक नहीं है, तो वह उस व्यक्ति पर होगा जो उस अन्य व्यक्ति के स्वामित्व के खिलाफ पुष्टि करता है। लेकिन, जहाँ पर धारा 110 लागू होती है वहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होना चाहिए कि क्या कोई व्यक्ति किसी चीज का स्वामी है और स्वामित्व का दावा किया गया है कि जिसे उसके द्वारा कब्जे में दिखाया गया है। धारा 110 इस सिद्धांत पर आधारित है कि स्वत्व कब्जे का अनुसरण करता है। इसी कारण से प्रावधान यह अवधारणा करता है कि जहाँ किसी वस्तु को कब्जे में दिखाया गया है, और एक सवाल उठता है कि क्या वह व्यक्ति मालिक है, कानून उस व्यक्ति पर स्वामित्व को सिद्ध न करने का बोझ उस व्यक्ति पर डालता है जो इस बात की पुष्टि करता है कि जिस व्यक्ति के कब्जे में सम्पत्ति है वह मालिक नहीं है।

785. इस न्यायालय के कई फैसलों ने धारा 110 के प्रावधानों की व्याख्या की है. धारा 110 इस सिद्धांत पर आधारित है कि कब्जे मे होनें पर स्वयं स्वत्व का अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु यह तब लागू होता है जिस वाद में जब विवादको में से किसी एक के द्वारा कोई स्वत्व नहीं प्रदान करते है जैसा कि कहा जाता है, तब कब्जा स्वयं ही निर्धारित करता है। इसलिए,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दूसरी ओर, यह भी पूर्व स्थापित है कि जब तथ्यों के ज्ञात होने पर अनुमान नहीं लगाया जा सकता हैं।

नायर सर्विस सोसाइटी लिमिटेड बनाम के सी अलेक्जेंडर[398]**,** के वाद में न्यायमूर्ति एम. हिदायतुल्लाह (उस समय के मुख्य न्यायाधीश) तीन न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए यह अवधारित कियाः–

> "इस कब्जे से प्रथम दृष्टया स्वत्व का अनुमान लगाया जा सकता है, इससे कोई भी इंकार नही कर सकता है, लेकिन जब तथ्य ज्ञान हो तब यह अनुमान मुश्किल से ही लगाया जा सकता है। जब तथ्य किसी भी पक्षकार का कोई स्वत्व नहीं बताते हैं, तो कब्जा स्वयं ही निर्धारित करता है।"

एम एस जगदंबल बनाम दक्षिणी भारतीय शिक्षा ट्रस्ट[399] के वाद में, न्यायमूर्ति के जगन्नाथ शेट्टी ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ की तरफ से बोलते हुए अवधारित किया कि स्वत्व धारक के साथ कब्जा तब तक जारी रहता है जब तक कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे से स्वत्व प्राप्त नहीं करता है:

> "18. कब्जा धारक के पास तब तक जारी रहता है जब तक कि प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जे से स्वत्व प्राप्त नहीं कर लेता है। जब भूमि निहित रहती है और जब इसे उपयोग से बाहर रखा जाता है, तो प्रतिकूल कब्जे की कोई निरंतरता नहीं होगी। ऐसे मामले में जो पक्षकार स्वत्व रखता है तो वह प्रलक्षित कब्जा प्रदान करने का दावा कर सकती है को पूर्व के संविलय के द्वारा प्रतिकूल कब्जे को समाप्त नहीं किया जा

398 AIR 1968 SC 1165
399 1988 (Supp) SCC 144

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकता सामायिक संविलय और लम्बे समय से चलने वाले सिद्धांत के मध्य में कोई अंतर नहीं है।"

ए.पी. सरकार के मुख्य वन संरक्षक बनाम कलेक्टर[400] के वाद में, न्यायमूर्ति सैयद शाह मोहम्मद कादरी ने दो न्यायाधीश की पीठ की ओर से सम्बोधित करते हुए अवधारित किया किः–

"20... उपधारणा, जो प्रतिक्षेपनीय है, तब आकर्षित होती है जब कब्जा प्रथमदृष्टया विधिपूर्ण है और जब विरोधी पक्षकार का कोई हक नहीं है।"

ए.पी. राज्य बनाम स्टार बोन मिल और फर्टिलाइजर कम्पनी[401], में माननीय न्यायालय ने यह अवधारित किया कि धारा 110 का उद्देश्य सार्वजनिक नीति पर आधारित है। उद्देश्य यह है कि व्यक्तियों को कानून को अपने हाथों में लेकर शांति भंग करने से रोकना है, हालांकि उनका स्वत्व विचाराधीन भूमि पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है। यह उद्देश्य विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 की धारा 6, दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 145 और भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 154 और 158 जैसे प्रावधानों को स्थापित करता है। न्यायमूर्ति बीएस चौहान ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए उपरोक्त निर्णय में बताया कि:

"21..... उक्त उपधारणा साक्ष्य अधिनियम की खंड 114 के तहत केवल ऐसे मामले में लागू होती है जहां दोनों तरफ कोई सबूत नहीं है या स्वामित्व का बहुत कम सबूत है। सूक्ति –– कब्जा स्वत्व का अनुसरण

400 (2003) 3 SSC 472
401 (2013) 9 SCC 319

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करता है, उन मामलों में लागू होता है, जहाँ वास्तविक कब्जे के प्रमाण की यथोचित रूप से उम्मीद नहीं की जा सकती है, उदाहरण के लिए, वेस्टलैण्ड के मामले में, या जहाँ एक या दूसरे तरीके से कब्जे के बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। कब्जे के परिणामस्वरूप स्वत्व की अवधारणा, केवल तभी उत्पन्न हो सकती है जहां तथ्य यह प्रदर्शित करते हैं कि किसी भी पक्षकार के लिए कोई स्वत्व निहित नहीं है। वादी का कब्ज़ा प्रथम दृष्टया गलत नहीं है, और वादी का स्वत्व साबित नहीं किया गया है। यह निश्चित रूप से इसका मतलब यह नहीं है कि क्योंकि किसी व्यक्ति के पास कुछ जमीन के स्वत्व है, तो यह जरूरी है कि जमीन उसके कब्जे में हो। वास्तव में इसका तात्पर्य है कि यदि किसी भी समय स्वत्व रखने वाल व्यक्ति के कब्जे में सम्पत्ति थी, तो विधि यह उपधारण करने की अनुमति देती है ऐसा स्वत्व उसमें निहित स्वत्व के कब्जे की निरंतरता में थी (400 (2003)3 एसएससी 472 401 (2013)9 एससीसी 319) एक व्यक्ति को यह स्थापित करना होगा कि उन्होनें वाद सम्पत्ति पर कब्जा जारी रखा है, जबकि दूसरी तरफ स्वत्व का दावा करते हुए, अतिचार/ अतिक्रमण आदि का मामला बनाना चाहिए। जहां स्पष्ट स्वत्व वादी के साथ है, यह प्रतिवादी पर अवलंबित है, कि स्पष्ट स्वत्व के इस दावे को विस्थापित करने के आदेश और अपने आप में लाभकारी स्वत्व स्थापित आदेश के स्थापित करने के लिए, उसे संतोषजनक साक्ष्य, परिस्थितियां, जो उनके अभिकथन का पक्ष रखती है, के माध्यम से स्थापित करना होगा। यहां तक कि, एक राजस्व अभिलेख स्वत्व का दस्तावेज नहीं है। यह केवल कब्जे के संबंध में अवधारणा उत्पन्न होती है। कब्जे और /या निरंतरता का अनुमान, आगे और पीछे दोनों, साक्ष्य अधिनियम की धारा 110 के तहत भी उठाया जा सकता है।"

(प्रभाव वर्धित)

धारा 110 की प्रयोज्यता पर प्रस्तुत करने के इस भाग का आकलन करने में महत्वपूर्ण परीक्षण यह है कि क्या विवादित स्थल से तात्पर्य है, जिसमें से कुछ, मुस्लिम दलों को कब्जे में, भी दिखाया गया है। जब तक दिखाए गए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कब्जे की आवश्यकता पूरी नहीं हो जाती, तब तक अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा और यह स्थापित करने का बोझ रखने का कोई सवाल ही नहीं होगा कि वाद 4 में वादी विपक्षी हिंदू दलों के नेता नहीं हैं।

मुस्लिमों का कब्जे के दावों पर विश्लेषण

786. वाद 4 में वादीगणों के मामले का मूल्यांकन अभिलेखित सबूतों की संपूर्णता के आधार पर किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या संभावनाओं की अधिकता पर कब्जा स्थापित किया गया है। सबूत कई महत्वपूर्ण विशेषताओं का खुलासा करते हैं जिन्हें ध्यान दिया जाना चाहिए:

(i) यद्यपि, वाद 4 में वादियों का मामला यह है कि मस्जिद का निर्माण 1528 में बाबर के इशारे पर या बाबर के द्वारा किया गया था, फिर भी उनके द्वारा निर्माण की तारीख और 1856–7 के बीच मस्जिद में नमाज के अदा करने या उपयोग करने पर भी उनके द्वारा कब्जे का विलेख उपस्थित नहीं है। मस्जिद निर्माण की तरीख से 325 साल से अधिक की अवधि जो अंग्रेजों द्वारा पत्थर निर्मित ग्रिल की दीवार स्थापित करने तक, मुस्लिमों द्वारा विवादित स्थल पर अधिकार स्थापित करने के लिए कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है। न ही इस समयावधि के दौरान मस्जिद में नमाज अदा करने के कोई साक्ष्य हैः

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) इसके विपरीत, प्रमुख यात्रियों (मुख्य रूप से टिफेन्थेलर और मोंटगोमरी मार्टिन) ने हिन्दुओं की उस पवित्रता पर आधारित विश्वास और आस्था का विस्तृत विवरण दिया है जिसमे उन्होंने भगवान राम के जन्म के स्थान और हिन्दुओं द्वारा जन्मस्थान की वास्तविक पूजा के बारे में बताया था;

(iii). 1743–1785 के बीच भारत की यात्रा करने वाले विलियम फिंच (1608–11) और टिफेन्थेलर ने अयोध्या का विवरण दिया। दोनों लेखों में हिन्दू भगवान राम की पूजा के संदर्भ हैं। भगवान राम के प्रति हिंदू पूजा का सकारात्मक विवरण संभावित है। टिफेन्थेलर ने विशेष रूप से हिंदू पूजा स्थलों को संदर्भित करता है जिसमें सीता रसोई, स्वर्गद्वार और बेदी या पालना भी शामिल हैं जो भगवान राम के जन्म का प्रतीक हैं। उनके लेख धार्मिक पर्वों को दर्शाता है जिसके अन्तर्गत हिंदू भक्त पूजा के लिए भारी भीड़ में जाते थे। अट्ठारहवीं शताब्दी में टीफेन्थेलर के लेख मस्जिद के सामने ईंट से निर्मित ग्रिल की दीवार के बनने से पूर्व की है। टिफेन्थेलर ने सन्दर्भ दिया है – 5 इंच जमीन से उठा हुआ वर्गाकार स्थल जिसकी सीमायें चूना पत्थर से बनी है और जिसकी लंबाई 5 इला से ज्यादा और अधिकतम चौड़ाई 4 इला है, जिसे हिन्दू बेदी या पालने के नाम से बुलाते है जैसा कि उन्होनें उल्लेख किया है उस इमारत का वह स्थल जहाँ भगवान विष्णू जी, भगवान राम के रूप में जन्म लिए थे। जैसा कि उन्होनें उल्लेख किया है यह माना जाता था कि या तो औरंगजेब (दूसरों के अनुसार) या बाबर के द्वारा उस स्थान को नष्ट कर दिया गया था। हालांकि, टिफेन्टलर ने उल्लेख किया है कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वह स्थान जहां पर भगवान राम का पैतृक आवास स्थित था हिन्दू उस स्थान की तीन बार परिक्रमा और दण्डवत प्रणाम करते थे। टिफेन्थेलर के इस लेख में भगवान राम के जन्म स्थान के नाम का एक केन्द्र बिन्दू था जिसकी पूजा की जाती थी और हिन्दू उसकी परिक्रमा और दण्डवत प्रणाम करते थे।

(iv) 1856–7 में हुए साम्प्रदायिक दंगों के परिणामस्वरूप औपनिवेशिक प्रशासन ने दोनों समुदायों के परस्पर विरोधी दावों के मध्य शांति के उपाय के रूप में ईंट की जालीनुमा दीवार को स्थापित किया। रेलिंग के तात्कालिक परिणामस्वरूप रामचबूतरे पर विवाद उत्पन्न हुआ, जो रेलिंग के ठीक बाहर खड़ा किया गया था और जहाँ से हिन्दूओं ने भगवान राम की पूजा करने की माँग की। चबूतरा की स्थापना का समय, इसकी अवस्थिति और चबूतरा पर भगवान राम की पूजा, ये आन्तरिक अहाते से संभाव्य निष्कासन पर रेलिंग से ठीक बाहर पूजा जारी रखने के हिन्दू की दिशा में संकेतक हैं;

(v) औपनिवेशिक प्रशासन के दौरान ईंट की जालीनुमा दीवार के निर्माण से हिन्दूओं और मुस्लिमों के मध्य स्वत्व का कोई निर्धारण नहीं होता, बल्कि 1856–7 में हुई जनहानि की घटनाओं को ध्यान में रखकर लोक शांति और सुरक्षा को बनाये रखने का एक आशयित उपाय था;

(vi) यह कि ईंट की जालीनुमा दीवार के रूप में प्रतिरोध की स्थापना से पूर्ण निष्कासन नहीं हो गया, यह बात इन छिट–पुट घटनाओं से प्रतीत होती है जिसमें मस्जिद परिसर के भीतर झंडा लगाया जाना और निहंग सिंह द्वारा हवन तथा पूजा करना शामिल हैं। निहंग सिंह को राज्य के प्राधिकारियों के हस्तक्षेप के बाद निकाला गया;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(vii) 1877 तक केवल एक प्रवेश द्वारा था जिसके माध्यम से आन्तरिक अहाते में जाया जा सकता था, जो पूर्वी ओर का दरवाजा, हनुमत द्वार था। प्रवेश करने पर हिन्दूओं के कई उपासना स्थल थे जैसे रामचबूतरा तथा सीता रसोंई साथ ही साथ भंडार, जिससे प्रतीत होता था कि जहाँ तक बाहरी अहाते का संबंध है, हिन्दूओं का स्थापित कब्जा था;

(viii) बड़ी संख्या में पूजा करने परिसर में आने वाले श्रद्धालुओं के लिए सुरक्षित रास्ते को सुनिश्चित करने के एक उपाय के रूप में उत्तरी तरफ, सिंह द्वार के रूप में ज्ञात एक अतिरिक्त दरवाजे को खोलने की आवश्यकता हुई। सिंह द्वार खोलने पर की गयी आपत्तियों पर विचार किया गया और उनको अस्वीकृत कर दिया गया जिसके परिणामस्वरूप रास्ता प्रदान करने के लिए एक अतिरिक्त दरवाजे को खोलना एक स्थापित तथ्य बन गया;

(ix) हिन्दूओं और मुस्लिमों के बीच विवाद जारी रहे, जो आंतरिक अहाते के संबंध में संबंधित दावों की विवादित प्रकृति का संकेत करते हैं;

(x) 1934 में एक अन्य साम्प्रदायिक दंगा हुआ जिसके दौरान मस्जिद की गुम्बदाकार ढाँचे को क्षति हुई। जिसके कारण अयोध्या के निवासी हिन्दूओं पर जुर्माना लगाया गया और एक मुस्लिम ठेकेदार के माध्यम से औपनिवेशिक प्रशासन के खर्चे पर पुनरूद्धार कार्य कराया गया। इससे पता चलता है कि हिन्दूओं ने बाहरी अहाते में निरन्तर पूजा करना जारी रखा था, मस्जिद के रूप में आंतरिक अहाते के भीतर ढाँचे की प्रास्थिति के मुस्लिमों के दावे का परित्याग नहीं किया गया था। 1934 के बाद यह दर्शित करने के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए दस्तावेजी सामग्री है कि मस्जिद के लिए पेश इमाम तथा मुतवल्ली की नियुक्ति के लिए व्यवस्थाएँ की गयी जो इस धारणा को गलत साबित करेगी कि मस्जिद का परित्याग किया गया;

(xi) साक्ष्य से दर्शित होता है कि आंतरिक अहाते में उनकी पहुँच में बाधा के परिणामस्वरूप 1934 के बाद मुस्लिम का नमाज अदा करना कम हो गया था। 16 दिसम्बर 1949 (अन्तिम शुक्रवार की नमाज) तक मस्जिद का प्रयोग शुक्रवार की नमाज अदा करने के उद्देश्य के लिए किया जा रहा था। 1934 में मस्जिद को हुई क्षति की मरम्मत पर प्रभाव डालने वाली परिस्थितियाँ, पेश इमाम की सेवाओं का लाभ उठाना और कुछ हद तक नमाज अदा करना, वे परिस्थितियाँ हैं जो इस तर्कपूर्ण अनुमान को इंगित करती हैं कि 22/23 दिसम्बर 1949 से पहले आंतरिक अहाते से मुस्लिम पूरी तरह बाहर नहीं थे हालांकि उनकी पहुँच अनियमित तथा बाधित थी; और

(xii) 22/23 दिसम्बर 1949 को आंतरिक ढाँचें के केन्द्रीय गुम्बद के नीचें मूर्तियों को स्थापित किया गया, मुस्लिमों के अनुसार जिससे मस्जिद अपवित्र हो गयी। इससे पहले अन्तिम जुमे की नमाज 16 दिसम्बर 1949 को अदा की गयी। 23 दिसम्बर 1949 को होने वाली जुमे की नमाज, मस्जिद के अपवित्रीकरण के कारण अदा नहीं की जा सकी।

इसलिए संविदा अधिनियम की धारा 110 की प्रयोज्यता को आकर्षित करने के लिए सुन्नी वक्फ बोर्ड के कब्जे के वाद को दो परिप्रेक्ष्यों से निर्धारित किया जाना चाहिए: पहला, जहाँ तक बाहरी अहाते का संबंध है, संभावनाओं की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रबलता के आधार पर यह स्वीकार करना असंभव है कि मुस्लिमों का कब्जा था। इसके विपरीत, बाहरी अहाते में हिन्दू उपासना स्थल की स्थापना, इस तरह के दावों को मिथ्या साबित कर देती है। दूसरा, जहाँ तक आंतरिक अहाते का संबंध है, मुस्लिमों के दावे को विभिन्न समयावधि के संदर्भ में निर्धारित किया जाना चाहिए अर्थात् (i) 1856 से पहले (ii) 1856 और 1934 के बीच (iii) 1934 के बाद।

787. 1856 से पहले मुस्लिमों के उपासना के विवरण, हिन्दूओं द्वारा पूजा करने के विवरण के विपरीत प्रत्यक्षतः मूक है। दीवार और रेलिंग की स्थापना के बाद, यह स्पष्ट है कि आंतरिक अहाते में मुस्लिमों की जारी उपासना में बाधाएँ उत्पन्न हुईं जो कई कार्यवाहियों के साथ–साथ 1934 के दंगों द्वारा स्पष्ट है। फिर भी, जिस तरीके से दंगो के बाद मस्जिद का जीर्णोद्धार हुआ और विशेष रूप से पेश इमाम की सेवाओं के लिए व्यवस्थाओं से पता चलता है कि बाधा के होते हुए भी नमाज कुछ रूप में 16 दिसम्बर 1949 तक मस्जिद में अदा की जाती रहीं। जैसा कि वक्फ निरीक्षक ने दर्शित किया कि नमाज की क्रिया को बाधित किया जा रहा था और उपासकों को परेशान किया गया, जबकि मुस्लिमों द्वारा दावे के परित्याग को दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है। वास्तव में दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य से पता चलता है कि जुमे की नमाज 16 दिसम्बर 1949 तक अनियमित रूप से अदा की जा रही थी। हालांकि आंतरिक अहाते पर मुस्लिमों के दावे का परित्याग नहीं किया गया था, फिर भी जैसा साक्ष्य से दर्शित होता है, यह प्रतिवाद और विवाद का एक तथ्य था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पी. स्वत्व का विश्लेषण

पी.1 वाद 4 और वाद 5 में साक्ष्य का क्रमबंधन

788. अब वह स्थिति आ गयी है कि वाद 4 और वाद 5 में स्वत्व के दावे पर साक्ष्य को एक साथ क्रम से रखा जाए ताकि दिए जाने वाले अनुतोष के अंतिम निर्धारण के लिए मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

I एएसआई की रिपोर्ट से निम्नलिखित स्थिति का पता चलता है:

(i) उत्खनन क्षेत्र में पुरातात्विक खोज से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मिलने वाले उत्तरी काले पॉलिश्ड बर्तनों के समय की क्रमिक सभ्यताओं के महत्वपूर्ण अवशेषो का पता चलता है।

(ii) एएसआई द्वारा उत्खनन से पूर्व विद्यमान अन्तनिर्हित संरचना के अस्तित्व का पता चला है जो बारहवीं शताब्दी से संबंधित है। संरचना का एक लंबा विस्तार है, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि पाँच स्तम्भ आधारों की 17 पंक्तियों में बने 85 स्तंभ आधार थे;

(iii) संभावनाओं की प्रबलता पर, अन्तर्निहित संरचना की प्रकृति पर पुरातात्विक निष्कर्ष यह इंगित करते हैं कि यह बारहवीं शताब्दी ईसवी से संबंधित हिन्दू धार्मिक मूल का है।

(iv) विवादित मस्जिद, पूर्व विद्यमान संरचना की नींव पर बनाया गया था। मस्जिद का निर्माण इस तरीके से हुआ है ताकि पूर्व विद्यमान संरचना की दीवार का उपयोग करते हुए अलग से नींव बनाने की आवश्यकता से बचा जा सके; और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(v) उत्खनन स्थल पर किए गए उत्खनन से एक गोलाकार पवित्र स्थल के अस्तित्व का भी पता चलता है, जिसमें मकरा प्रनाला हिंदू पूजा का सूचक है जो आठवीं से दसवीं शताब्दी तक है।

सबूत के मानक के आधार पर एक तर्कपूर्ण अनुमान निकाला जा सकता है जो सिविल विचारण को नियंत्रित करता है कि:

(i) मस्जिद की नींव, एक बड़ी पूर्व–विद्यमान संरचना की दीवारों पर आधारित है।

(ii) पूर्व–विद्यमान संरचना बारहवीं सदी की है; तथा

(iii) मस्जिद की नींव वाली अन्तर्निहित संरचना, अपनी स्थापत्य विशेषताओं और प्राप्तियों से हिन्दू धार्मिक मूल का संकेत देते हैं जो उस क्षेत्र में मन्दिर उत्खननों से तुलनीय है और उस युग से संबंधित है।

II. हालांकि बारहवीं शताब्दी ईस्वी के मंदिर वास्तुशिल्प के प्रतीकात्मक हिंदू धार्मिक मूल के एक अंतर्निहित संरचना के अवशेषों के बारे में एएसआई रिपोर्ट में निष्कर्ष को निम्नलिखित सचेतकों के साथ प्रासंगिक रूप से पढ़ा जाना चाहिए:

(i) जहां एएसआई रिपोर्ट में पूर्व-विद्यमान संरचना के खंडहरों का अस्तित्व पाया गया है, रिपोर्ट में यह प्रावधान नहीं है:

(क) पूर्व-विद्यमान संरचना के विनाश का कारण; और

(ख) क्या मस्जिद निर्माण के प्रयोजन के लिए पूर्ववर्ती संरचना को ध्वस्त किया गया था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) चूंकि एएसआई रिपोर्ट में अंतर्निहित संरचना को बारहवीं शताब्दी का बताया गया हैं, अन्तर्निहित संरचना की तिथि और मस्जिद के निर्माण की तिथि के बीच लगभग चार शताब्दियों का समय अंतराल है। यह बताने के लिए कोई सबूत उपलब्ध नहीं है कि लगभग चार शताब्दियों के अंतराल के दौरान क्या हुआ।

(iii) एएसआई रिपोर्ट (सिवाय इसके, अर्थात्, कि पूर्व की संरचना की नींव पर मस्जिद के निर्माण के) इसका निष्कर्ष नहीं देती है कि मस्जिद के निर्माण के प्रयोजन के लिए पूर्व-विद्यमान संरचना के अवशेषों का उपयोग किया गया था; और

(iv) मस्जिद के निर्माण में प्रयुक्त स्तम्भ, काले कसौटी पत्थर के स्तंभ थे। एएसआई को यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं मिला है कि ये कसौटी स्तंभ, मस्जिद के नीचे की संरचना में खुदाई के दौरान पाए गए अंतर्निहित स्तंभ आधारों से संबंधित हैं।

III. विधि में स्वत्व का निष्कर्ष, एएसआई द्वारा प्राप्त पुरातात्विक निष्कर्षों पर आधारित नहीं हो सकता है। बारहवीं शताब्दी की अन्तर्निहित संरचना तथा सोलहवीं शताब्दी में मस्जिद के निर्माण के मध्य चार शताब्दियों का अंतराल है। बारहवीं और सोलह सदियों के बीच मानव इतिहास के संबंध में अभिलेख पर कोई सबूत नहीं रखा गया है। इस प्राचीनता के मामले में कोई सबूत उपलब्ध नहीं है कि (i) अंतर्निहित संरचना के विनाश का कारण; और (ii) क्या मस्जिद के निर्माण के लिए पूर्व-विद्यमान संरचना को ध्वस्त किया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

था। जमीन का स्वत्व स्थापित विधिक सिद्धांतों और दीवानी विचारण को नियंत्रित करने वाले स्पष्ट मानकों को लागू करके निर्णीत किया जाना चाहिए।

IV. यात्रियों के ऐतिहासिक अभिलेख (मुख्यतः टिफेन्थलर और अट्ठारहवीं शताब्दी में मॉन्टगोमरी मार्टिन के विवरण) दर्शित करते हैं किः

(i) हिन्दुओं की यह आस्था और विश्वास कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्मस्थान था;

(ii) विवादित स्थल में और उसके आसपास भगवान राम के जन्म के प्रतीक सीता रसोई, स्वर्गदार और पालना सहित हिन्दुओं द्वारा पूजा करने के मान्य स्थल;

(iii) विवादित स्थल पर परिक्रमा सहित श्रद्धालुओं द्वारा पूजा करने का प्रचलन और धार्मिक उत्सवों के अवसर पर बड़ी संख्या में भक्तों की उपस्थिति; और

(iv) अंग्रेजों द्वारा अवध के विलय और 1857 में ईंट की ग्रिल के निर्माण से पहले से विवादित स्थल पर उपासकों की ऐतिहासिक उपस्थिति और पूजा का अस्तित्व।

उपरोक्त टिप्पणियों के अलावा, यात्रियों के विवरण को सावधानी के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उनकी व्यक्तिगत टिप्पणियों को दंतकथा और जनश्रुति के मामलों से- अनुश्रुत से ध्यानपूर्वक अलग रखा जाना चाहिए। सार्वजनिक इतिहास के मामलों पर उनके विवरण पर विचार करना, स्वत्व के मामले में साक्ष्य से अलग है। स्वत्व के एक निर्णय को, विधि के न्यायालय में संपोषणीय साक्ष्य के आधार पर काटा जाना चाहिए, जो प्रति-परीक्षा की जाँच

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पड़ताल में खरा उतरा है। इसी तरह, अधिक से अधिक गजेटियरों की अन्तर्वस्तु साक्ष्य की संपोषणीय सामग्री प्रदान कर सकती है जो अभिलेख से उभरती है। अदालत को नकारात्मक निष्कर्ष निकालने में सावधानी बरतनी चाहिए जो एक यात्री ने नहीं देखा या अवलोकन किया। स्वत्व उपरोक्त आस्था और विश्वास के आधार पर स्थापित नहीं किया जा सकता है। आस्था और विश्वास स्थल पर पूजा के तरीके की ओर संकेत करते हैं जिसके आधार पर कब्जे के दावों का अभिकथन किया जाता है। न्यायालय ने विरोधी दावों का मूल्यांकन ऐसी स्थिति में किया है जिसमें राज्य ने अपने लिखित कथन में स्पष्ट रूप से कहा है कि उसका भूमि में कोई हित नहीं है।

V. साक्ष्य इंगित करता है कि स्थल पर एक मस्जिद के अस्तित्व के बावजूद, उस स्थान को भगवान राम का जन्म-स्थान मानकर हिन्दू पूजा प्रतिबंधित नहीं थी। हिंदुओं द्वारा पवित्र माने जाने वाले स्थान पर एक इस्लामी ढाँचे का अस्तित्व, उन्हें विवादित स्थल पर और 1856-7 की घटनाओं से पहले संरचना के परिसर के भीतर अपनी पूजा जारी रखने से नहीं रोकता था। इस्लामी मस्जिद की भौतिक संरचना ने हिंदुओं की इस आस्था और विश्वास को दुर्बल नहीं किया कि विवादित स्थल पर भगवान राम का जन्म हुआ था। दूसरी ओर, विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से कहा कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा मुस्लिम निवासियों द्वारा नमाज अदा करने को स्थापित करने के लिए अवलम्ब लिए गए साक्ष्य लगभग 1856-7 से शुरू होते हैं;

VI. 1857 में अंग्रेजों द्वारा मस्जिद की विवादित संरचना के चारों ओर रेलिंग की स्थापना, एक प्रतिवाद की पृष्ठभूमि में हुई और हिंदुओं के मस्जिद के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अहाते के भीतर पूजा करने के दावे पर विवाद पर हुई। इससे 1856-7 में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हुए दंगों का संदर्भ मिला। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा ईंट की जालीनुमा दीवार के निर्माण का उद्देश्य दोनों समुदायों के बीच एक विवादित उपासना स्थल के संबंध में शांति सुनिश्चित करना था। ईंट की जालीनुमा दीवार न तो समग्र संपत्ति के विवादित स्थल का एक उप-विभाजन गठित करती थी और न ही यह औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा स्वत्व का निर्धारण करती थी;

VII. रेलिंग की स्थापना के बाद निकटवर्ती समय में, 1857 में या उसके आसपास रामचबूतरा की स्थापना की गई। रामचबूतरा की स्थापना रेलिंग के निकट ही हुई थी। अनिवार्य रूप से, आंतरिक गुंबद के सौ फीट या उसके आस-पास के भीतर रामचबूतरा की स्थापना को ऐतिहासिक संदर्भ में भगवान राम के जन्म-स्थान पर पूजा करने के हिंदू अधिकार की अभिव्यक्ति या दावे के रूप में देखा जाना चाहिए। अंग्रेजों द्वारा विभाजक दीवार के निर्माण के बाद भी हिंदुओं ने केंद्रीय गुम्बद के नीचे अपनी प्रार्थना करने का दावा जारी रखा। यह स्पष्ट अभिलेख से निकलता है जो मूर्तियों को स्थापित करने की कोशिश और आंतरिक अहाते के परिसर के भीतर और बाहर दोनों जगह पूजा करने के व्यक्तियों के कृत्यों को दर्शाता है। रामचबूतरा की स्थापना के बाद भी श्रद्धालु आन्तरिक तथा बाहरी अहाते को विभाजित करने वाली लोहे की रेलिंग पर खड़े होकर तीन गुम्बद वाली संरचना के भीतर स्थित जिसे वे 'गर्भ ग्रह' मानते थे, पर श्रद्धा सुमन अर्पित करते थे और प्रार्थना करते थे। मुसलमानों द्वारा इसके विपरीत कोई सबूत नहीं दिया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है जो इंगित करता हो कि मस्जिद की विवादित संरचना पर उनका कब्जा अनन्य था और यह कि नमाज़ होने से हिन्दू बहिष्कृत हो गये;

VIII. रामचबूतरा, सीता रसोई तथा अन्य धार्मिक स्थानों पर, जिनमें भंडार की स्थापना भी शामिल है, हिन्दू उपासना से स्पष्ट रूप से बाहरी अहाते के खुले, अनन्य और अबाधित कब्जे का संकेत मिलता है। मुस्लिमों का बाहरी अहाते में कब्जा नहीं था। अंग्रेजों द्वारा 1858 में दीवार के निर्माण और आंतरिक गुंबद की समीप में रामचबूतरे की स्थापना के बावजूद, हिंदुओं ने तीन गुम्बद वाली संरचना के अंदर प्रार्थना करने के अपने अधिकार का दावा करना जारी रखा;

IX. 1877 में या उसके करीब, हिंदुओं के इशारे पर, बाहरी अहाते का एक अन्य दरवाजा प्रशासन द्वारा उत्तरी दिशा में (सिंह द्वार) खोलने की अनुमति दी गई, जो पूर्व दिशा में (हनुमंत द्वार) पर मौजूदा दरवाजे के अलावा था। उप-आयुक्त ने दीवार में बने निकास के विरूद्ध शिकायत दर्ज करने से इनकार कर दिया। आयुक्त ने अपील को खारिज करते हुए कहा कि दरवाजा खोलना सार्वजनिक हित में था। ब्रिटिश प्रशासन की अनुमति से एक अतिरिक्त द्वार खोलने से हिंदू भक्तों के एक बड़े समूह की उपस्थिति की मान्यता का संकेत मिलता है जिससे सार्वजनिक शांति और सुरक्षा के हित में इस स्थल पर अतिरिक्त रास्ते की आवश्यकता हुई;

X. हिंदू और मुस्लिम दोनों गवाहों की गवाही से संकेत मिलता है कि धार्मिक अवसरों और त्योहारों जैसे राम नवमी , सावन झूला, कार्तिक पूर्णिमा,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परिक्रमा मेला और राम विवाह पर हिंदू भक्तों का बड़ा समूह दर्शन के लिए विवादित परिसर आता था। हिंदू भक्तों की मौखिक गवाही ईंट की दीवार की संरचना की रेलिंग पर खड़े होकर सीता रसोई, रामचबूतरा और 'गर्भ ग्रह' की ओर पूजा और प्रार्थना के तरीके को स्थापित करती है;

XI. हिंदू गवाहों ने इंगित किया है कि हिंदू मस्जिद के अंदर रखे कसौटी पत्थर के खंभे की प्रार्थना करते थे। मुस्लिम गवाहों ने मस्जिद के अंदर और बाहर हिंदू धार्मिक महत्व के प्रतीकों की उपस्थिति को स्वीकार किया है। तीन गुम्बदाकार संरचना के बाहर, उनमें वराह, जय-विजय और गरूड़ का चित्रण है। वे न केवल आस्था और विश्वास के अस्तित्व का बल्कि सदियों से वास्तविक पूजा का संकेत देते हैं;

XII. संरचना पर 'अल्लाह' के शिलालेख के साथ सोलहवीं शताब्दी में इसके निर्माण के बाद से मस्जिद की संरचना के अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता है। 1856-7 की सांप्रदायिक घटना की उत्पत्ति, पूजा पर दोनों समुदायों के बीच लड़ाई में निहित है। 1856-7 में रेलिंग की स्थापना प्रशासन द्वारा धार्मिक पूजा - मस्जिद की गुम्बदाकार संरचना के भीतर मुस्लिमों द्वारा नमाज और रेलिंग के बाहर हिन्दूओं द्वारा पूजा करने के लिए द्विविभाजन का उपाय प्रदान करने का एक प्रयास था। सिखों या फकीरों द्वारा मस्जिद में प्रवेश करने और पूजा के लिए धार्मिक प्रतीक स्थापित करने के प्रयासों का मुसलमानों द्वारा विरोध किया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रशासन ने अधिभोगी को बाहर निकाला;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

XIII. 1857 में ईंट की जालीनुमा दीवार के निर्माण के बाद, हिंदुओं के अनन्य और निर्बाधित कब्जे और बाहरी अहाते में पूजा करने को, दिखाने के लिए अभिलेख पर सबूत हैं। तीन गुम्बदाकार संरचना में प्रवेश केवल बाहरी अहाते के पूर्वी और उत्तरी तरफ के दो दरवाजों से होकर ही संभव था जो हिंदू भक्तों के नियंत्रण में थे;

XIV. संभावनाओं की प्रबलता पर, यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि मुस्लिमों ने 1858 के बाद आंतरिक अहाते के उनके कब्जे पर विवाद के बावजूद मस्जिद को छोड़ दिया या नमाज अदा करना बंद कर दिया। मौखिक साक्ष्य नमाज़ की निरंतरता का संकेत देता है।

XV. आंतरिक अहाते पर कब्जे की लड़ाई 1934 के सांप्रदायिक संघर्ष का केंद्र बन गई, जिसके दौरान मस्जिद के गुंबद की संरचना को क्षति हुई। एक मुस्लिम ठेकेदार के अभिकरण के माध्यम से ब्रिटिश प्रशासन के खर्चे पर 1934 के दंगों के बाद मस्जिद की मरम्मत और नवीनीकरण इस तथ्य का संकेत है कि दो समुदायों के बीच विवादों के बावजूद, मस्जिद की संरचना मौजूद रही; उसी तरह मुस्लिमों का उनका इबादत करने के अधिकार का दावा बना रहा। 1934 के बाद मस्जिद के भीतर नमाज अदा किया गया होना प्रतीत होता है, हालांकि 22/23 दिसंबर 1949 की घटना के समय तक, केवल जुमे के नमाज अदा की जा रही थी। दिसंबर 1949 की वक्फ निरीक्षक की रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि साधुओं और बैरागियों, जिन्होंने बाहरी अहाते में पूजा और निवास किया, ने मुसलमानों को मस्जिद के भीतर नमाज के लिए अहाते से गुजरने से रोक दिया, जो उनके नियंत्रण में था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसलिए वक्फ निरीक्षक ने उल्लेख किया कि पुलिस की सहायता से शुक्रवार को मस्जिद के भीतर इबादत संभव थी;

XVI. 22/23 दिसंबर 1949 से पहले की घटनाओं से बाहरी अहाते में बैरागियों का बड़ी संख्या में जमावड़ा और पुलिस अधीक्षक द्वारा उनकी आशंका की इस अभिव्यक्ति का पता चलता है कि हिंदू मूर्तियों को स्थापित करने के लिए मस्जिद के परिसर में जबरन प्रवेश करना चाहते थे। उन्हें लिखित सूचना के बावजूद, उपायुक्त और जिला मजिस्ट्रेट (के के नैय्यर) ने कोई ध्यान नहीं दिया और मस्जिद की सुरक्षा के लिए पुलिस अधीक्षक की आशंका को निराधार करार दिया। यह आशंका उस घटना से पैदा हुई जो 22/23 दिसंबर 1949 की रात को हुई थी, जब केंद्रीय गुंबद के नीचे मस्जिद के मिम्बर पर पचास से साठ व्यक्तियों के एक समूह ने मूर्तियाँ स्थापित कर दी। इससे मस्जिद का अपवित्रीकरण और मुसलमानों का निष्कासन कानून की उचित प्रक्रिया से अन्यथा हुआ। इसके पश्चात् 29 दिसंबर, 1949 को दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 145 के अधीन कार्यवाहियों में आंतरिक अहाते को कुर्क किया गया और रिसीवर ने कब्जा ले लिया;

XVII. 6 दिसंबर 1992 को मस्जिद के ढांचे को गिरा दिया गया और मस्जिद को नष्ट कर दिया गया। मस्जिद का विध्वंश यथा स्थिति के आदेश और इस न्यायालय को दिए गए आश्वासन के उल्लंघन में किया गया। मस्जिद का विध्वंश और इस्लामी ढांचे का उन्मूलन विधि के शासन का घोर उल्लंघन था;

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

XVIII. साक्ष्यिक अभिलेख से कुल मिलाकर जो निष्कर्ष निकलता है वह इस प्रकार है:

(i) विवादित स्थल एक समग्र संपूर्ण है। 1856-7 में रेलिंग की स्थापना ने ना तो भूमि का उप-विभाजन किया ना ही हक का कोई निर्धारण किया।

(ii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड ने अपने मामले को उपयोगकर्ता द्वारा समर्पण का मामला स्थापित नहीं किया है;

(iii) प्रतिकूल कब्जे की वैकल्पिक दलील सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा स्थापित नहीं की गई है क्योंकि यह प्रतिकूल कब्जे की आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहा है;

(iv) हिन्दू उस बाहरी अहाते में, जहां वे पूजा करते रहे हैं, अनन्य और निर्बाध कब्जे में रहे हैं;

(v) आंतरिक अहाता, हिंदुओं और मुसलमानों के परस्पर विरोधी दावों के लिए प्रतिवाद का स्थल रहा है;

(vi) 6 दिसंबर, 1992 तक मस्जिद के ढांचे के अस्तित्व पर कोई विवाद नहीं है। यह तर्क कि मस्जिद इस्लामी सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है, खारिज हो गया। सबूत बताते हैं कि मुस्लिमों द्वारा मस्जिद का कोई परित्याग नहीं किया गया था। दिसंबर 1949 तक शुक्रवार को नमाज होती थी और 16 दिसंबर 1949 को अंतिम नमाज हुई;

(vii) 1934 में मस्जिद को हुए नुकसान , 1949 में इसके अपवित्रीकरण से मुसलमानों का निष्कासन हुआ और 6 दिसंबर,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

1992 को हुए अंतिम विध्वंश ने विधि के शासन का गंभीर उल्लंघन किया; और

(viii) न्याय, साम्या और सद्विवेक के सिद्धांतों के अनुरूप, वाद 4 और 5 दोनों की डिक्री की जानी होगी और अनुतोष को ऐसी रीति से ढाला जाना होगा जो न्याय, बंधुता, मानव गरिमा और धार्मिक विश्वास की समानता के संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखता हो।

XVIII. हिन्दुओं ने रामचबूतरा तथा धार्मिक महत्व की अन्य वस्तुओं पर लम्बे, सतत और निर्बाध उपासना के आधार पर बाहरी अहाते में अपना स्पष्ट कब्जे का हक स्थापित कर लिया है। हिंदुओं और मुस्लिमों ने आंतरिक अहाते में तीन गुम्बदाकार संरचना के भीतर पूजा करने का दावा किया है। हिंदुओं द्वारा अंदर पूजा करने के उनके अधिकार के दावे को मुस्लिमों द्वारा प्रतिवाद किया गया है।

उच्च न्यायालय द्वारा विभाजन के लिए डिक्री की वैधानिकता

789. उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर कि हिंदू और मुस्लिम का संयुक्त कब्जा था, विवादित स्थल का त्रि- विभाजन का निर्देश दिया, एक तिहाई मुस्लिमों, हिंदुओं और निर्मोही अखाड़ा प्रत्येक को सौंपा गया। न्यायमूर्ति एस यू खान ने अवधारित किया कि स्वत्व कब्जे का अनुसरण करता है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 110 के प्रावधानों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विवादित स्थल को तीन पक्षों के बीच समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अवधारित किया कि विवादित ढाँचे के केंद्रीय गुंबद के नीचे के क्षेत्र को हिंदुओं द्वारा भगवान राम के जन्म

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थान के रूप में माना जाता है और पूजा की जाती है। उन्होनें अभिनिर्धारित किया कि भूमि का यह भाग 'श्री रामजन्मस्थान' नाम से ज्ञात देवता का गठन करता है जिसका हिंदुओं के लिए विशेष महत्व है। जहाँ तक आंतरिक अहाते के भीतर की अन्य भूमि का संबंध है, न्यायमूर्ति अग्रवाल ने अवधारित किया कि यह प्रार्थना और पूजा के लिए दोनों समुदायों के सदस्यों द्वारा लगातार उपयोग किया गया है, यह देखते हुए कि वाद 5 में अनुतोष के लिए प्रार्थना को "इस तरीके से शब्दबद्ध किया गया था, जो यह दर्शाता है कि न्यायालय से इसे माँगा नहीं गया है बल्कि यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया है, यदि वह इसे समुचित पाता है।" न्यायमूर्ति अग्रवाल ने कहा कि पूर्ण न्याय करने और मुकदमेबाजी की बाहुल्यता से बचने के लिए, सीपीसी के आदेश VII नियम 7 के तहत अनुतोष को ढालना अदालत के लिए खुला था। इसलिए न्यायमूर्ति अग्रवाल भी प्रारंभिक डिक्री के संदर्भ में त्रि-विभाजन के निर्देश में शामिल हुए। न्यायमूर्ति डी वी शर्मा ने वाद 5 को पूर्णतः डिक्री दी।

790. वाद 5 में वादियों की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. परासरन ने तर्क दिया कि "पूर्ण न्याय करने के लिए" अनुतोष गढ़ने के प्रयास में, उच्च न्यायालय ने एक क्षेत्राधिकार प्रकल्पित किया जो उसमें निहित नहीं था; यह कहा गया कि ऐसी शक्ति संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन इस न्यायालय की अनन्य अधिकारिता में निहित है।

791. उच्च न्यायालय की डिक्री की शुद्धता का आकलन करने में, यह शुरू में उल्लेख किया जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय को विभाजन के लिए मुकदमे से रोका नहीं गया था। विभाजन के लिए एक मुकदमे में, यह अतिसामान्य कानून है कि हर पक्ष वादी और प्रतिवादी दोनों हैं। उच्च न्यायालय निम्न की

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुनवाई कर रहा था: (i) पूजा करने के अधिकार को लागू करने की मांग करते हुए एक उपासक द्वारा किया गया मुकदमा (वाद 1); (ii) मंदिर के प्रबंधन और प्रभार के लिए सेवायती अधिकारों का दावा करते हुए निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर मुकदमा (वाद 3); (iii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और मुस्लिमों द्वारा स्वत्व पर घोषणा के लिए मुकदमा (वाद 4); और (iv) हिंदू देवताओं की ओर से एक घोषणा के लिए एक मुकदमा जिसमें मंदिर के निर्माण में किसी भी बाधा को रोकने के लिए निषेधाज्ञा भी मांगी गई है (वाद 5)। उच्च न्यायालय को विशेष रूप से घोषणात्मक वादों, वाद 4 और 5 में स्वत्व के प्रश्न को निर्णीत करने के लिए आहूत किया गया था।

792. **श्रीनिवास राम कुमार बनाम महाबीर प्रसाद**[402] में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने अवधारित किया कि यह न्यायालय के लिए खुला नहीं है कि वह उस मामले पर वादी को अनुतोष प्रदान करे जिसके लिए अभिवचनों में कोई आधार नहीं है। न्यायमूर्ति बी के मुखर्जी ने अवधारित किया:

> "9... हालांकि, सवाल उठता है कि क्या, वादपत्र में ऐसे किसी वैकल्पिक मामले की अनुपस्थिति में उसे उस आधार पर अनुतोष देने के लिए यह अदालत के लिए खुला है। निस्संदेह नियम यह है कि अदालत उस मामले पर वादी को अनुतोष नहीं दे सकती है जिसके लिए अभिवचनों में कोई आधार नहीं था और जिसके लिए दूसरे पक्षकार को नहीं बुलाया गया था या उसे पूरा करने का अवसर नहीं मिला था।"

---

402 1951 एससीआर 277

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस सिद्धांत को **श्री वेंकटरमण देवरु बनाम मैसूर राज्य**[403] में संविधान पीठ के फैसले में दोहराया गया था, इस न्यायालय के लिए बोलते हुए न्यायमूर्ति वेंकटरामा अय्यर ने अवधारित किया:

> "एक पक्ष द्वारा अपनी दलीलों को आगे रखने की आवश्यकता का उद्देश्य, विरोधी पक्ष को उन्हें पलटने और अपने मामले के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए सक्षम बनाना है। और यह न तो विधिक होगा और न ही उचित होगा कि वास्तविक विवाद्यक मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों को संदर्भित किया जाए और उस साक्ष्य के आधार पर एक ऐसे मामले में निष्कर्ष पर पहुँचा जाए जो विवाद्यक नहीं था और उस निष्कर्ष के आधार पर पक्षकारों के अधिकारों का विनिश्चय किया जाए।"

उच्च न्यायालय ने एक ऐसा रास्ता अपनाया है जो ऊपर दिए गए सिद्धांतों के संदर्भ में उसके लिए खुला नहीं था। उसने वे अनुतोष दिए जो मुकदमों में प्रार्थनाओं की विषय-वस्तु नहीं थी। ऐसा करने की प्रक्रिया में, इसने बँटवारे के लिए वाद में दीवानी न्यायालय वाली अधिकारिता को ग्रहण कर लिया, जबकि इसके समक्ष वाद ऐसा नहीं था। सीपीसी का आदेश VII नियम 7 इस प्रकार उपबन्धित करता है:

> "7. अनुतोष का विनिर्दिष्ट रूप से कथन- हर वादपत्र में उस अनुतोष का विनिर्दिष्ट रूप से कथन होगा जिसके लिए वादी सामान्यतः या अनुकल्पतः दावा करता है और यह आवश्यक नहीं होगा कि ऐसा कोई साधारण या अन्य अनुतोष मांगा जाए, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे जो सर्वदा ही उसी विस्तार तक ऐसे दिया जा सकेगा मानो वह मांगा गया हो, और यही नियम प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में दावा किए गए किसी अनुतोष को भी लागू होगा।"

उपरोक्त प्रावधान के लिए वादी को विर्निदिष्ट रूप से सामान्यतः या अनुकल्पतः अनुतोष का दावा करने की आवश्यकता होती है। हालांकि, यह स्पष्ट करता है कि उस सामान्य और अन्य अनुतोष के लिए कहना आवश्यक

---

403 1958 एससीआर 895

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं है जो हमेशा अदालत के विवेकानुसार दिया जा सकता है। यह उपबन्ध दीवानी विचारण में किसी न्यायालय को वाद के ढाँचे को लगभग बदल देने के कार्य को करने का अधिकार नहीं देता जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष अभिवचनों में कोई आधार नहीं था और निश्चित रूप से उन अनुतोषों की कोई आवश्यकता नहीं थी जिन्हें भूमि के विभाजन को निर्देशित करने के लिए, उस तरीके से जैसा कि कोई न्यायालय बँटवारे के वाद में करता है, माँगा गया था ।

793. **शिव कुमार शर्मा बनाम संतोष कुमारी**[404] में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के लिए बोलते हुए न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने अवधारित किया:

> "27. विधि का न्यायालय वैधानिक कानूनों से परे अपनी विवेकाधीन अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता है। इसके विवेकाधिकार का प्रयोग मौजूदा क़ानून के संदर्भ में किया जाना चाहिए।"

[इस संदर्भ में **शमसु सुहारा बीवी बनाम जी एलेक्स**[405] में न्यायमूर्ति अशोक भान का निर्णय को भी देखें]।

ओम प्रकाश बनाम राम कुमार[406] में, तीन न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए न्यायमूर्ति एम फातिमा बीवी ने अवधारित किया:

> "4... एक पक्षकार को वह अनुतोष नहीं दिया जा सकता है जिसका दावा नहीं किया गया है, यदि मामले की परिस्थिति ऐसी है कि इस तरह का अनुतोष देने से हितबद्ध पक्षकार को गंभीर क्षति होगी और वह संविधि के अधीन मूल्यवान अधिकारों से वंचित हो जाएगा।"

---

404 (2007) 8 एससीसी 600

405 (2004) 8 एससीसी 569 प्रस्तर 11 पर

406 (1991) 1 एससीसी 441

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उच्च न्यायालय ने उस अनुतोष को देने में पूरी तरह से गलती की है जो अभिवचनों के दायरे से परे है और वाद 3, 4 और 5 में वादकारियों द्वारा स्थापित मामलों से परे है।

794. विवादित स्थल के त्रि-विभाजन का अनुतोष देने में उच्च न्यायालय के पूरे दृष्टिकोण में एक और गंभीर दोष है। इस निष्कर्ष पर आने के बाद कि वाद 3 (निर्मोही अखाड़ा द्वारा दायर) और वाद 4 (सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा दायर) परिसीमा द्वारा बाधित थे, उच्च न्यायालय ने वाद 3 और 4 में वादकारियों को वाद 5 में अनुतोष प्रदान किया। यह तर्क की अवहेलना करता है और विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के विपरीत है। इसके अलावा, निर्मोही अखाड़ा द्वारा दावा एक सेवायत के रूप में था जिसने प्रबंधन और प्रभार के लिए एक डिक्री का दावा किया था। अपने स्वयं के मामले में, निर्मोही अखाड़ा को जमीन का एक स्वतंत्र हिस्सा नहीं दिया जा सकता था। इस निर्णय से, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि निर्मोही अखाड़ा का वाद परिसीमा द्वारा बाधित था, बरकरार रखा गया है लेकिन वाद 4 में परिसीमा की बाध्यता आकर्षित होने के संबंध में निष्कर्ष को उलट दिया गया है। अंतिम अनुतोष का विश्लेषण करते समय, जो प्रदान की जाएगी, इस पहलू पर विचार किया जाएगा।

पी. 2 स्वत्व पर निष्कर्ष

795. वर्तमान मामले के तथ्यों, साक्ष्य और मौखिक तर्कों ने इतिहास, पुरातत्व, धर्म और कानून के क्षेत्रों का पता लगाया है। कानून को इतिहास, विचारधारा और धर्म पर राजनीतिक संघर्षों से अलग होना चाहिए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पुरातत्विक आधारों के संदर्भ से परिपूर्ण एक मामले के लिए , हमें यह याद रखना चाहिए कि यह कानून ही है जो वह संरचना प्रदान करता है जिस पर हमारा बहुसंस्कृति समाज टिका हुआ है। कानून वह आधार बनाता है जिस पर इतिहास, विचारधारा और धर्म के कई ताने प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। अपनी सीमाओं का निर्धारण करके, अंतिम मध्यस्थ के रूप में इस न्यायालय को इस संतुलन की भावना को संरक्षित करना चाहिए कि एक नागरिक की मान्यताएँ दूसरे की स्वतंत्रताओं और मान्यताओं में हस्तक्षेप या वर्चस्व नहीं करती हों। 15 अगस्त 1947 को, एक राष्ट्र के रूप में भारत ने आत्म-निर्णय के सपने को साकार किया। 26 जनवरी, 1950 को हमने स्वयं को भारत का संविधान प्रदान किया जो उन मूल्यों के प्रति अविचल प्रतिबद्धता के रूप में है जो हमारे समाज को परिभाषित करते हैं। संविधान के मूल में विधि के शासन द्वारा समर्थित और प्रवर्तित समानता के सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्धता है। हमारे संविधान के तहत, दैवीय संबद्धता रखने वाले सभी धर्मों, विश्वासों और मतों के नागरिक, विधि के अधीन हैं और कानून के समक्ष समान हैं। इस न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को संविधान और उसके मूल्यों को बनाए रखने के लिए न केवल कार्य सौंपा गया है बल्कि शपथ भी दिलाई गयी है। संविधान एक धर्म की आस्था और विश्वास को अन्य धर्म से अंतर नहीं करता है। विश्वास, उपासना और प्रार्थना के सभी रूप समान हैं। जिन लोगों का यह कर्तव्य है कि वे संविधान की व्याख्या करें, इसे लागू करें और इसके साथ जुड़ें, वे केवल इसकी अनदेखी तभी कर सकते हैं जब हमारे समाज और राष्ट्र को जोखिम हो। संविधान, उन न्यायाधीशों से जो इसकी व्याख्या करते हैं, वे लोग जो इसे शासित करते हैं, जो इसे लागू करते हैं, लेकिन इन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सबसे ऊपर, उन नागरिकों से जो अपने जीवन की एक अविभाज्य विशेषता के रूप में इसके साथ संलग्न रहते हैं, से वार्तालाप करता है।

796. वर्तमान मामले में, इस न्यायालय को अनोखे आयाम के न्यायनिर्णयन के साथ कार्य करना है। यह विवाद अचल संपत्ति का है। न्यायालय आस्था या विश्वास के आधार पर नहीं परन्तु साक्ष्यों के आधार पर स्वत्व तय करती है।विधि हमें स्वामित्व और कब्जे का मूलभूत मापदंड प्रदान करती है। विवादित संपत्ति पर स्वत्व निर्धारित करने में न्यायालय साक्ष्य के सुलझे हुए सिद्धांतों को लागू करती है, जिस पर पक्षकार ने अचल संपत्ति पर दावा किया है।

797. प्रायिकताओं के संतुलन पर यह संकेत करने के लिए स्पष्ट साक्ष्य है कि बाह्य अहाते में हिंदुओं द्वारा वर्ष 1857 में एक ग्रिल–ईंट दीवार बनाने के बावजूद पूजा नहीं की गई थी। बाह्य अहाते में उनका कब्जा उनके नियंत्रण से जुड़ी घटनाओं के साथ स्थापित है।

798. आंतरिक अहाते के संबंध में 1857 में अंग्रेजों द्वारा अवध के विलय से पूर्व हिंदुओं द्वारा पूजा करने की प्रायिकताओं की प्रबलता पर साक्ष्य है। मुस्लिमों ने यह साबित करने का कोई साक्ष्य नहीं दिया कि सोलहवीं शताब्दी में निर्माण की तिथि से 1857 से पूर्व आंतरिक संरचना उनके अनन्य कब्जे में था। ग्रिल–ईंट की दीवार के बनने के बाद मस्जिद का ढाँचा मौजूद रहा और साक्ष्य यह संकेत देते हैं कि इसके परिसर में नमाज अदा की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गई थी। दिसंबर 1949 के वक्फ निरीक्षक की रिपोर्ट बताती है कि मुसलमानों को नमाज अदा करने के लिए स्वतंत्र और निर्विघ्न रूप से मस्जिद तक पहुंचने में बाधा डाली जा रही थी। हालांकि, यह दर्शाने के साक्ष्य हैं कि मस्जिद के ढाँचे में नमाज अदा की गई थी और दिनांक 16 दिसंबर 1949 को पिछले शुक्रवार की नमाज अदा की गई थी। दिनांक 22/23 दिसंबर 1949 के मध्यरात्रि को जब हिंदू मूर्तियों की स्थापना से मस्जिद को अपवित्र किया गया था तब मुस्लिमों को पूजा और कब्जे से बाहर कर दिया गया। उस अवसर पर मुस्लिमों का बाहर किया जाना किसी भी विधिक अधिकार के माध्यम से नहीं बल्कि एक अधिनियम के माध्यम से था, जिसकी गणना उन्हें उनकी पूजा के स्थान से वंचित करने के लिए की गई थी। सीआरपीसी 1898 की धारा 145 के तहत कार्यवाही प्रारम्भ करने के बाद और आंतरिक अहाते की कुर्की के बाद एक प्रापक नियुक्त किया गया और हिंदू मूर्तियों की पूजा करने की अनुमति दी गई। वादों के लंबन के दौरान मस्जिद के संपूर्ण ढाँचे को एक सार्वजनिक पूजा स्थल को नष्ट करने के लिए एक निर्धारित कार्य में लाया गया था। मुस्लिमों को गलत तरीके से मस्जिद से वंचित किया गया है जिसका निर्माण 450 साल पूर्व किया गया था।

799. हम पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा तीन प्रकार का द्विभाजन विधिक रूप से अपोषणीय था। यहां तक कि लोक शांति और प्रशांति रखने के मामले में भी उच्च न्यायालय का स्वयं का समाधान व्यवहार्य नहीं है। विवादित स्थल की सभी माप 1500 वर्ग गज की है। भूमि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का विभाजन या तो पक्षकारों का या शांति और प्रशांति की भावना को सुरक्षित करने का लोक साधन नहीं बनेगा।

800. वाद 5 को, प्रथम वादी (देवता भगवान राम) जो एक न्यायिक व्यक्ति है, के आदेश पर अनुरक्षण योग्य अवधारित किया गया है। तीसरे वादी (वाद मित्र) को पहले वादी का प्रतिनिधित्व करने का हकदार अवधारित किया गया है। हमारा दृष्टिकोण यह है कि एक तरफ वाद 5 में एक डिक्री होनी चाहिए और वाद 4 में भी मुस्लिमों को एक मस्जिद और उससे सहायक गतिविधियों के निर्माण के लिए वैकल्पिक भूमि के आवंटन का निर्देश देते हुए आंशिक रूप से डिक्री होनी चाहिए। मुस्लिमों का भूमि का आवंटन इसलिए आवश्यक है क्योंकि यद्यपि सम्भावनाओं के संतुलन पर मुस्लिमों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की तुलना में समग्र विवादित संपत्ति पर कब्जे के संबंध में हिन्दुओं का दावा बेहतर आधार पर है, मुस्लिम 22 दिसम्बर 1949 को मस्जिद के अपवित्रीकरण से बेदखल हो गए जिसे अंततः 6 दिसम्बर 1992 को ध्वस्त कर दिया गया। मुसलमानों द्वारा मस्जिद का कोई परित्याग नहीं किया गया था। इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किए गये अपकृत्य को उपचारित किया जाना चाहिए। न्याय नहीं होगा, यदि न्यायालय उन मुस्लिमों के अधिकारों की अनदेखी करता है और जो मस्जिद के ढाँचे से वंचित रह गए हैं जिनके माध्यम से विधि के शासन के लिए प्रतिबद्ध धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में नियोजित नहीं किया जाना चाहिए था। संविधान सभी धर्मों की समानता को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभिधारित करता है। सहिष्णुता और परस्पर सहयोग से हमारे राष्ट्र और इसकी जनता की धर्मनिरपेक्ष प्रतिबद्धता रक्षित होती है।

801. समग्र स्थल का क्षेत्रफल लगभग 1500 वर्ग गज का है। आवंटित भूमि के क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय मुस्लिम समुदाय को उनके उपासना स्थल के अवैध विनाश के लिए पुनर्स्थापन प्रदान करना आवश्यक है। मुस्लिमों को दी जाने वाली राहत की प्रकृति की तुलना करने के बाद, हम यह निर्देश देते हैं कि सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को अधिगृहीत भूमि में से अयोध्या शहर के भीतर या तो केंद्र सरकार द्वारा या उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 5 एकड़ भूमि आवंटित की जाए। यह कार्य, और सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को भूमि सौंपने के परिणामस्वरूप वाद 5 में डिक्री के परिणामस्वरूप आंतरिक और बाह्य अहातों से युक्त विवादित स्थल को सौंपने के साथ – साथ किया जाएगा। वाद 4 उपरोक्त शर्तों में डिक्री की जाएगी।

802. अयोध्या में कुछ क्षेत्रों का अर्जन अधिनियम, 1993 की धारा 6 केंद्रीय सरकार को यह निदेश देने की शक्ति प्रदान करती है कि उस क्षेत्र या उसके किसी भाग के संबंध में अधिकार, हक और हित केन्द्र सरकार में निहित रहने के बजाय प्राधिकारी या निकाय या किसी न्यास के न्यासी में निहित हो जाएंगे, जो सरकार द्वारा अधिरोपित नियमों और शर्तों का अनुपालन करने के लिए तैयार हैं।[407]

---

407 **6. किसी अन्य प्राधिकारी या निकाय या न्यास में क्षेत्र को निहित करने का निदेश देने की केंद्रीय सरकार की शक्ति**– (1) धारा 3, धारा 4, धारा 5 और धारा 7 में किसी बात के होते हुए भी, यदि केंद्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम के प्रारंभ को या उसके पश्चात् गठित कोई प्राधिकारी या अन्य निकाय या किसी न्यास के न्यासी ऐसे निबंधनों और शर्तों का, जो वह सरकार अधिरोपित करना ठीक समझे, अनुपालन करने के लिए रजामंद है तो वह, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह निदेश दे सकेगी कि उस क्षेत्र या उसके किसी भाग के संबंध में अधिकार, हक और हित या उनमें से कोई, केन्द्रीय सरकार में इस प्रकार निहित बने रहने के बजाय, उस प्राधिकारी या निकाय या उस न्यास के न्यासियों में अधिसूचना की तारीख को या ऐसी पश्चात्वर्ती तारीख को, जो अधिसूचना में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धारा 7 (1) में यह प्रावधान है कि धारा 3 के तहत केंद्र सरकार में निहित संपत्ति, सरकार या किसी भी व्यक्ति या किसी न्यास के न्यासियों और अधिकारियों द्वारा इस संबंध में पोषणीय रखी जाएगी।[408]

803. हमारा विचार है कि केन्द्र सरकार को धारा 6 और धारा 7 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी न्यास या अन्य समुचित तंत्र स्थापित करने के लिए, जिसको वाद 5 की डिक्री के शर्तों में भूमि सौंपी जाएगी, उसे स्कीम विरचित करने का निदेश देना आवश्यक होगा। इस योजना में न्यास के प्रबंधन या भूमि के निहितार्थ चुने गए निकाय के संबंध में निहित शक्ति और अधिकार के लिए आवश्यक सभी प्रावधान शामिल होंगे।

804. निर्मोही अखाड़े द्वारा दायर वाद 3 को परिसीमा द्वारा बाधित अवधारित किया गया है। हमने वाद 5 की पोषणीयता के लिए निर्मोही अखाड़ा और सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड की आपत्ति को भी खारिज कर दिया है, जो उनकी दलील पर आधारित था कि निर्मोही अखाड़ा एक सेवायत है। निर्मोही अखाड़े के एक सेवायत होने का दावा खारिज हो चुका है। हालाँकि,

---

विनिर्दिष्ट की जाए, निहित हो जाएगा ।

(2) जब उस क्षेत्र या उसके भाग के संबंध में कोई अधिकार, हक और हित उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्राधिकारी या निकाय या न्यासियों में निहित हो जाता है तब उस क्षेत्र या उसके भाग के संबंध में केन्द्रीय सरकार के ऐसे अधिकार ऐसे निहित होने की तारीख से ही, उस प्राधिकारी या निकाय या उस न्यास के न्यासियों के अधिकार समझे जाएंगे।

(3) धारा 4, धारा 5, धारा 7 और धारा 11 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे प्राधिकारी या निकाय या न्यासियों के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे केन्द्रीय सरकार के संबंध में लागू होते हैं और इस प्रयोजन के लिए उसमें केन्द्रीय सरकार के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह ऐसे प्राधिकारी या निकाय या न्यासियों के प्रति निर्देश हैं।

408 **7. सरकार द्वारा संपत्ति का प्रबंध**–(1) किसी संविदा या लिखत अथवा किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के आदेश में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ से ही, धारा 3 के अधीन केंद्रीय सरकार में निहित संपत्ति का प्रबंध, केंद्रीय सरकार द्वारा अथवा उस सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या व्यक्ति–निकाय या किसी न्यास के न्यसियों द्वारा किया जाएगा ।

(2) धारा 3 के अधीन केन्द्रीय सरकार में निहित संपत्ति का प्रबंध करने में, केन्द्रीय सरकार या प्राधिकृत व्यक्ति यह सुनिश्चित करेगा कि उस क्षेत्र में, जिस पर उत्तर प्रदेश राज्य के जिला फैजाबाद की तहसील फैजाबाद सदर तहसील के परगना हवेली अवध के अंतर्गत अयोध्या में ग्राम कोट रामचन्द्र में ऐसी संरचना की (जिसके अंतर्गत उस संरचना के भीतरी और बाहरी आंगनों के परिसर हैं) स्थित थी जो सामान्यतया राम जन्म–भूमि बाबरी मस्जिद, के नाम से ज्ञात है । इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व विद्यमान स्थिति को बनाए रखा जाए ।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा की ऐतिहासिक उपस्थिति और उसकी भूमिका के संबंध में, पूर्ण न्याय करने के लिए अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय के लिए अपनी शक्तियों का सहारा लेना आवश्यक है। इसलिए, हम निर्देश देते हैं कि योजना विरचित करने के लिए निर्मोही अखाड़ा को प्रबंधन में एक उपयुक्त भूमिका सौंपी जाएगी।

Q. अनुतोष और दिशानिर्देश

805. तदनुसार हम आदेश और निर्देश इस प्रकार देते हैं:

1 (i) निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित वाद 3 को परिसीमा द्वारा वर्जित अवधारित और तदनुसार खारिज किया जाएगा;

(ii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड और अन्य वादियों द्वारा संस्थित वाद 4 को परिसीमा के अन्दर होना अवधारित किया गया है। वाद 4 को परिसीमा द्वारा वर्जन करने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित कर दिया गया है; और

(iii) वाद 5 को परिसीमा के तहत अवधारित किया गया है।

2 वाद 5 को प्रथम वादी, जिसका प्रतिनिधित्व तीसरे वादी द्वारा किया गया है, के इशारे पर अनुरक्षणीय बनाए रखने के लिए अवधारित किया गया है। वाद के प्रार्थना खंड (क) और (ख) के संदर्भ में एक डिक्री जो निम्नलिखित निर्देशों के अधीन होगी:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(i) केन्द्र सरकार, इस निर्णय की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर अयोध्या अधिनियम, 1993 में कतिपय क्षेत्र के अर्जन की धारा 6 और 7 के तहत उसमें निहित शक्तियों के अनुसरण में एक योजना बनाएगी। यह योजना धारा 6 के तहत न्यासी बोर्ड या किसी अन्य उपयुक्त निकाय के साथ एक न्यास की स्थापना की परिकल्पना करेगी। केन्द्र सरकार द्वारा विरचित योजना न्यास या निकाय की कार्यविधि के संबंध में आवश्यक प्रावधान बनाएगी, जिसमें न्यास के प्रबंधन से संबंधित मामले, न्यासियों की शक्तियां जिसमें मंदिर के निर्माण और सभी आवश्यक, आनुषंगिक और अनुपूरक मामले शामिल हैं;

(ii) आंतरिक और बाह्य अहाते का कब्ज़ा न्यास के न्यासी बोर्ड या इस प्रकार के गठित निकाय को सौंप दिया जाएगा। केंद्र सरकार उपरोक्त निर्देशों के अनुसार विरचित योजना के संदर्भ में प्रबंधन और विकास के लिए न्यास या निकाय को शेष अधिगृहीत भूमि को सौंपने के संबंध में उपयुक्त प्रावधान बनाने के लिए स्वतंत्र होगी; और

(iii) विवादित संपत्ति के कब्जे को केंद्र सरकार के तहत वैधानिक प्रापक में निहित करना जारी रहेगा, जब तक कि 1993 के अयोध्या अधिनियम की धारा 6 के तहत अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में न्यास या किसी अन्य निकाय में संपत्ति निहित करते हुए एक अधिसूचना जारी की गई हो।

3(i). उपरोक्त खंड 2 के तहत न्यास या निकाय को विवादित संपत्ति सौंपने के साथ, 5 एकड़ भूमि के उपयुक्त भूखंड को वाद 4 में वादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को सौंप दिया जाएगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) भूमि या तो द्वारा आवंटित की जाएगी:

(क) अयोध्या अधिनियम, 1993 के तहत अर्जित भूमि में से केन्द्र सरकार द्वारा; या

(ख) अयोध्या में किसी उपयुक्त स्थान पर राज्य सरकार द्वारा;

केंद्र सरकार और राज्य सरकार निर्धारित अवधि में उपरोक्त आवंटन को कार्यान्वित करने के लिए एक–दूसरे के परामर्श से कार्य करेंगे।

(iii) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, भूमि के आवंटन पर मस्जिद के निर्माण के लिए, साथ ही अन्य संबद्ध सुविधाओं के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने के लिए स्वतंत्र होगा;

(iv) वाद 4 उपरोक्त निर्देशों की शर्तों में इस सीमा की डिक्री की जाएगी ; और

(v) सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड को वाद 4 में भूमि के आबंटन के लिए निर्देश इस न्यायालय में संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत निहित शक्तियों के अनुसरण में जारी किए गए हैं।

4. संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, हम निर्देशित करते हैं कि केन्द्र सरकार द्वारा विरचित की जाने वाली योजना में न्यास अथवा निकाय में ऐसी रीति से जिसे केन्द्र सरकार ठीक समझे, समुचित प्रतिनिधित्व किया जा सकता है।

5. विवादित संपत्ति पर पूजा करने के लिए वाद 1 में वादी के अधिकार को शांति और व्यवस्था बनाए रखने और व्यवस्थित पूजा करने के संबंध में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सुसंगत प्राधिकारियों द्वारा अधिरोपित किसी निर्बंधनों के अधीन रहते हुए अभिपुष्टि किया गया है।

806. सभी अपीलों का निस्तारण उपरोक्त शर्तों में किया जाएगा। पक्षकारों को अपने खर्चे स्वयं वहन करना होगा।

अभिस्वीकृति

इस निर्णय को देने में इस न्यायालय के समक्ष–न्याय संबंधी प्रतिवाद ने मामले की जटिलता की पर्तों के माध्यम से विवेचन करने में एक मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की है। अधिवक्ता की विद्वत्ता, उनके कार्य, उनके दृष्टिकोण और उपरोक्त सभी न्यायालय के अधिकारियों के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करने में तटस्थ निष्पक्षता की सराहना की जानी चाहिए। हम विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के परासरन और डॉ. राजीव धवन द्वारा प्रदान की गई सहायता को स्वीकार करते हैं जिन्होंने तर्क रखे। वास्तव में, सुनवाई के दौरान वे जिस कारण से न्यायालय में जाते हैं, उनके प्रतिवादियों के प्रति उनकी निष्पक्षता की भावना के साथ सुनवाई पूरी करने की सुसाध्य किया है कि दोनों पक्ष मूलतः सत्य और न्याय के लिए आशान्वित हैं। अन्य वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री सी एस वैद्यनाथन, श्री एस के जैन, श्री रंजीत कुमार, श्री जफरयाब जिलानी, सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा, श्री शेखर नेफड़े और श्री पी एस नरसिम्हा, जिनके प्रयासों को स्वीकार करने की आवश्यकता है। हम श्री पी एन मिश्रा, श्री मोहम्मद निजामुद्दीन पाशा, श्री वी एन सिन्हा, श्री हरि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शंकर जैन, श्री जयदीप गुप्ता (वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता), श्री विकास सिंह (वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता), श्री एम सी ढींगरा, और श्री अनूप बोस द्वारा न्यायालय में प्रदान की गई सहायता को भी स्वीकार करते हैं। अपने मौखिक और लिखित दोनों तर्कों में बहस करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए योगदान को स्वीकार करते हुए, हमें विद्वान सहायक अधिवक्ता की ईमानदारी और समर्पण और उनमें से कनिष्ठ अधिवक्ता के कार्य को भी ध्यान में रखना चाहिए।

उपरोक्त कारणों और निर्देशों के सहमत होते हुए, हम में से एक ने इस प्रश्न पर कि "क्या विवादित ढांचा हिन्दू भक्तों की आस्था और विश्वास के अनुसार भगवान राम का जन्म–स्थान है" अलग कारण अभिलिखित किया है। विद्वान न्यायाधीश के कारणों को परिशिष्ट में दिया गया है।

.....

[भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, रंजन गोगोई]

.....

[न्यायमूर्ति, एस ए बोबडे]

.....

[न्यायमूर्ति, डॉ. धनंजय वाई चन्द्रचूड़]

.....

[न्यायमूर्ति, अशोक भूषण]

.....

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

[न्यायमूर्ति, एस अब्दुल नज़ीर]

नई दिल्ली;

09 नवंबर, 2019

<u>परिशिष्ट</u>

क्या विवादित ढाँचा हिंदुओं की आस्था, विश्वास और निष्ठा के अनुसार भगवान राम का पवित्र जन्म स्थान है?

1. उपरोक्त से संबंधित सभी वाद और उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में विरचित विवाद्यकों पर ध्यान देना आवश्यक है।

<u>वाद संख्या 1</u> में निम्नलिखित प्रासंगिक विवाद्यक था:

विवाद्यक संख्या 1 यह थी कि "क्या श्री राम चंद्र जी की जन्म भूमि स्थल वादग्रस्त संपत्ति है"?

<u>वाद संख्या 3</u> में निम्नलिखित प्रासंगिक विवाद्यक थे:

विवाद्यक संख्या 1 : क्या वादपत्र के प्रस्तर 3 में कथित रूप से जन्म भूमि का एक मंदिर है जिसमें मूर्तियाँ स्थापित हैं ?

विवाद्यक संख्या 5 : क्या वादग्रस्त संपत्ति सम्राट बाबर द्वारा बनाई गई मस्जिद है जिसे बाबरी मस्जिद कहा जाता है?

<u>वाद संख्या 4</u> में प्रासंगिक विवाद्यक थे:

विवाद्यक संख्या 1 (क) : यह कब और किसके द्वारा बनाया गया था–वादीगणों द्वारा अभिकथित बाबर द्वारा या प्रतिवादी सं. 13 द्वारा अभिकथित मीर बाकी द्वारा ?

विवाद्यक संख्या 1 (ख) : जैसा कि प्रतिवादी संख्या 13 द्वारा अभिकथित है कि क्या भवन का निर्माण एक कथित हिंदू मंदिर स्थल को ध्वस्त करके किया गया था? यदि हां, तो इसका प्रभाव?

विवाद्यक संख्या 11 : क्या श्री राम चंद्र जी की जन्म भूमि स्थल वादग्रस्त संपत्ति है"?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवाद्यक संख्या 14 : क्या हिंदू विवादित स्थल की पूजा श्री राम जन्म भूमि या जन्म स्थान के रूप में कर रहे हैं और अनंत काल से ही श्रद्धालु इस पवित्र स्थल में जा रहे हैं। यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव?

<u>वाद संख्या 5</u> में प्रासंगिक विवाद्यक था:

विवाद्यक संख्या 22 : क्या प्रश्नगत परिसर या उसका कोई भाग परंपरा, आस्था और विश्वास द्वारा भगवान राम का जन्म स्थान है, जैसा कि वादपत्र के प्रस्तर 19 और 20 में अभिकथित है। यदि ऐसा है, तो इसका प्रभाव?

2. विचाराधीन बिंदुओं के लिए प्रासंगिक विवाद्यकों पर ध्यान देने के बाद, उपरोक्त संबंध में संक्षेप में पक्षकारों के तर्कों पर ध्यान देना आवश्यक है।

3. वाद संख्या 1 में, वादी सनातन धर्म को मानने वाला अयोध्या का निवासी है और अपने धर्म के अनुसार, वह देवताओं और मूर्तियों का दर्शन और पूजा करता था। प्रस्तर 1 और 2 में यह दलील दी गई थी।:

"1. यह कि मूल वादी, सनातन धर्म का अनुयायी और अयोध्या का निवासी है और अपने धर्म के अनुसार, वह देवताओं और मूर्तियों का दर्शन करता था और वर्तमान वादी अपने मृतक पिता (मूल वादी) की तरह ही सनातन धर्म का अनुयायी है और पवित्र स्थानों आदि का दर्शन और देवताओं की पूजा करता है।

2. यह कि वादी उस जन्म भूमि स्थल में भगवान श्री राम चंद्र जी की मूर्ति और चरण पादुका का दर्शन और पूजा कर रहा है, जिसका विवरण यहां नीचे दिया गया है और वह उस स्थान में बिना किसी बाधा या हस्तक्षेप के और हमेशा भविष्य में भी पूजा करने और दर्शन करने का हकदार है।

4. प्रतिवादी संख्या 1, ज़हूर अहमद द्वारा दायर लिखित कथन में, वादपत्र के प्रस्तर 2 को निम्नलिखित तरीके से प्रत्युत्तर दिया गया था:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"2. संबंधित पैराग्राफ को इनकार किया जाता है। जिस संपत्ति का मामला दायर किया गया है वह जन्म भूमि नहीं है बल्कि भारत के सम्राट बाबर शाह द्वारा निर्मित एक मस्जिद है।"

5. प्रस्तर 9 में, यह दलील दी गई थी कि मस्जिद का निर्माण बादशाह बाबर शाह ने अपने मंत्री मोहम्मद मीर बाकी के माध्यम से वर्ष 1528 में किया था।

6. प्रस्तर 27 में यह दलील दी गई थी कि अयोध्या में राम जन्मभूमि के जनमस्थान के स्थान पर काफी समय से एक मंदिर है और आज भी विद्यमान है जिसमें रामचन्द्रजी की मूर्तियाँ आदि हैं। यह कहा गया था कि प्रतिवादियों और अन्य व्यक्तियों के विरूद्ध बाबरी मस्जिद के जन्मस्थान होने सम्बन्धी दावा करने वाला वर्तमान वाद आपत्तिजनक है और अनुचित लक्ष्यों को पाने और आगामी चुनावों में लाभ उठाने के लिए लाया गया है।

7. वादी ने लिखित कथन के प्रस्तर 9 से इनकार करते हुए प्रतिउत्तर दायर किया। इस बात से इनकार किया गया था कि मस्जिद बाबरी मस्जिद है। लिखित कथन के प्रस्तर 27 को भी इनकार किया गया था। यह कहा गया था कि प्रतिवादी द्वारा उल्लिखित जन्म स्थान मंदिर कोई अन्य मंदिर है जिसकी सीमाओं को भी प्रतिउत्तर में उल्लिखित किया गया था।

8. प्रतिवादी संख्या 6, 8 और 9, जो राज्य के पक्षकार थे, ने भी अपना लिखित कथन दर्ज कराया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

9. उ. प्र. सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ (एतस्मिन्पश्चात "सुन्नी बोर्ड" के रूप में संदर्भित) के प्रतिवादी संख्या 10, ने यह तर्क करते हुए लिखित कथन दायर किया जिसमें कहा गया था कि वादपत्र के प्रस्तर 2 में संदर्भित भवन राम चंद्र की जन्म भूमि स्थल नहीं है और वादी और वादी का उक्त भवन में राम चंद्र की कोई भी मूर्ति कभी भी स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं है। वादी का पूजा और दर्शन करने का दावा और अधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं है।

यह दलील दी गई कि वादग्रस्त संपत्ति को बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है और उसका निर्माण सम्राट बाबर के शासनकाल में हुआ था। प्रस्तर 10 के अतिरिक्त दलीलों में निम्नलिखित रूप से कहा गया था:

> "यह कि वादग्रस्त संपत्ति मीर बाकी की देखरेख में सम्राट बाबर के शासन काल में 1528 ईस्वी के आसपास बनी एक पुरानी मस्जिद है और इसका उपयोग हमेशा मस्जिद के रूप में किया जाता रहा है और कभी भी मंदिर के रूप में या मुस्लिमों को छोड़कर किसी अन्य समुदाय के लिए पूजा स्थल के रूप में नहीं किया गया था।"

10. वाद संख्या 3 के वादी ने तर्क दिया कि अब जन्म स्थान, जिसे आमतौर पर जन्म भूमि के रूप में जाना जाता है, को अयोध्या में राम का जन्म स्थान वादी संख्या 1 से संबंधित है। उक्त स्थान, जन्म भूमि प्राचीनतम काल से है और यह मनुष्य की जीवित स्मृति के पूर्व से ही मौजूद है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मुस्लिमों, प्रतिवादी संख्या 6 से 8 ने लिखित कथन दर्ज किया, जहां यह तर्क दिया गया था कि जिस संपत्ति के विरूद्ध वादी ने वाद दायर किया है, वह बाबर शाह द्वारा बनाई गई बाबरी मस्जिद है, जिसका निर्माण वर्ष 1528 ईस्वी यू.पी. में किया गया था। सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ऑफ वक्फ ने भी यह दावा करते हुए लिखित कथन दर्ज किया था कि वर्ष 1528 में सम्राट बाबर द्वारा निर्मित मस्जिद थी और वादग्रस्त संपत्ति को किसी भी मंदिर के अस्तित्व से इनकार किया गया था।

11. प्रतिवादी संख्या 10 उमेश चंद्र पांडे द्वारा एक लिखित कथन भी दर्ज किया गया था। अपने लिखित कथन में उन्होंने कहा है कि जन्म स्थान देवता रामलला विराजमान की पूजा के लिए पवित्र स्थान है।

12. वाद संख्या 4 में, वादी ने तर्क दिया कि भारत पर विजय प्राप्त करने और अयोध्या शहर सहित क्षेत्रों पर कब्जा करने के बाद अयोध्या शहर में 433 वर्ष से अधिक समय पूर्व सम्राट बाबर द्वारा बनाई गई एक प्राचीन ऐतिहासिक मस्जिद मौजूद है जिसे आमतौर पर बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है। वाद संख्या 4 में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा लिखित कथन दर्ज किया गया था। प्रस्तर 25 में यह तर्क किया गया था कि हिंदू समुदाय के सदस्य अनंत काल से ही जन्म भूमि के रूप में स्थल की पूजा कर रहे हैं। प्रतिवादी संख्या 3, निर्मोही अखाड़ा और प्रतिवादी संख्या 4, महंत रघुनाथ दास द्वारा एक लिखित कथन भी दायर किया गया था। वादी द्वारा किये गए मस्जिद के अस्तित्व के दावे से इनकार कर दिया गया था।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आगे यह तरक दिया गया कि कथित मस्जिद कभी अस्तित्व में नहीं थी, न ही यह अब मौजूद है। जिस भवन को वादीगणों ने गलत तरीके से बाबरी मस्जिद के रूप में संदर्भित कर रहे हैं वह हमेशा से ही जन्म भूमि का मंदिर जिसमें हिंदू देवता की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। अतिरिक्त तर्कों में यह दलील दी गई कि प्रश्नगत मंदिर जिसे जन्म भूमि के रूप में जाना जाता है, अयोध्या में स्थित भगवान राम चंद्र का जन्म स्थान, जो हमेशा से ही प्रतिवादी संख्या 3 से संबंधित है।

13. वाद संख्या 4 में राज्य, प्रतिवादी सं. 5 से 8 द्वारा लिखित कथन भी दायर किया गया था, जिसमें यह तर्क दिया गया था कि सरकार का उस संपत्ति में रूचि नहीं रखती है जो विवादित है और इस तरह से वाद का प्रतिवाद करने का प्रस्ताव नहीं है। प्रतिवादी संख्या 10 ने एक लिखित कथन और अतिरिक्त लिखित कथन दर्ज किया। कुछ अन्य प्रतिवादियों ने भी लिखित कथन दर्ज किया। प्रतिवादी संख्या 13, धरम दास द्वारा दायर लिखित कथन में यह कहा गया था कि मीर बाकी, जो एक शिया था और बाबर का मंत्री था, ने श्री राम जन्म भूमि में राजा विक्रमादित्य के समय प्राचीन हिंदू मंदिर को ध्वस्त कर दिया। इसके अलावा, यह कहा गया कि मूल रूप से एक मंदिर बना था। अन्य प्रतिवादियों में से कुछ ने लिखित कथन दर्ज किए। प्रतिवादी संख्या20, अखिल भारतीय श्री राम जन्म भूमि पुनरुद्धार समिति के संयोजक ने एक विस्तृत लिखित कथन और अतिरिक्त कथन दर्ज किया। वादी ने भी एक प्रतिउत्तर दायर किया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

14. वाद संख्या 5 में यह कहा गया था कि विवादित परिसर वह स्थल है जहां मर्यादा पुरुषोत्तम राम चंद्र जी महाराज का जन्म हुआ था। हिन्दू उस दिव्य की उपासना करते हैं जिसका कोई गुण या आकार या रूप नहीं होता। प्रस्तर 19 और 20 में निम्नलिखित तर्क किया गया था:

> "19. यह कि प्राधिकारी के लोक अभिलेख द्वारा यह स्थापित है कि विवादित परिसर वह स्थल है जहां मर्यादा पुरुषोत्तम जी महाराज का जन्म सूर्यवंशी महाराजा दशरथ के पुत्र के रूप में हुआ था, जो भगवान श्री राम के भक्तों की परंपरा और विश्वास के अनुसार यह वह स्थान है जहाँ उन्होंने मानव रूप में भगवान विष्णु का अवतार लिया। तब से इस स्थल को युगों–युगों से श्री राम जन्म भूमि कहा जाता रहा है।
> 20. जैसा कि यह ज्ञात है कि वह स्थल या स्थान श्री राम जन्म भूमि अपने आप मे ही भगवान श्री राम के भक्तों द्वारा एक देवता के रूप में पूजा की एक वस्तु रही है, क्योंकि श्री राम लला अथवा बालक भगवान राम का यह दैवीय रूप में पूज्य दिव्य की भावना को दर्शाता है। इस प्रकार स्थल को देवता माना गया और मंदिर का भवन निर्माण या वहां भगवान श्री राम की मूर्ति स्थापित करने से पहले ही उसका अपना एक विधिक व्यक्तित्व हो गया।"

15. वादपत्र के प्रस्तर 23 में, वादी ने गवर्नमेंट प्रेस, उ.प्र. द्वारा प्रकाशित फ़ैज़ाबाद गजेटियर के 1928 संस्करण पर भी अवलम्ब लिया।

16. आगे कहा गया कि मंदिर को नष्ट करने के बाद वादी–देवता से संबंधित भूमि पर विवादित ढाँचे को खड़ा किया गया था। प्रस्तर 24 (सी) में यह कहा गया था कि मीर बाकी ने मंदिरों के साथ जो कुछ करने का प्रयास किया, उसके बावजूद भूमि हमेशा वादी देवताओं के पास ही रही। प्रस्तर 24 (सी) इस प्रकार है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"24(सी) मीर बाकी ने मंदिरों के साथ जो कुछ करने का प्रयास किया, उसके बावजूद भूमि हमेशा वादी देवताओं के पास ही रहीऔर उन्होंने इस पर अपना कब्जा कभी नहीं छोड़ा। तथ्यतः और विधितः उनका कब्जा जारी रहा। स्थान देवता और उसके उपासकों के कब्जे से बाहर कभी नहीं गया। वे भवन से संलग्न अहाते के भीतर इसके दक्षिणी गुंबद के मेहराबदार के सामने का चबूतरा, जिसे राम चबूतरा कहा जाता है, में भगवान श्री राम लला विराजमान की मूर्ति, चरण और सीता रसोई जैसे प्रतीकों के माध्यम से उनकी पूजा करते रहे। कोई भी इमारत में प्रवेश नहीं कर सकता, सिवाय इसके कि मस्जिद के अहाते के भीतर किसी मूर्ति की पूजा नहीं हो सकती है, और मस्जिद का मार्ग अबाधित और स्वतंत्र होना चाहिए और हर समय 'आस्था' रखने वालों के लिए खुला होना चाहिए। यह कभी भी हिंदू पूजा स्थल के द्वारा नहीं हो सकता। मस्जिद के सम्बन्ध में अल्लाह के साथ हक या कब्जे का कोई सहभाग नहीं हो सकता। उसका अधिकार अनन्य होना चाहिए।"

17. प्रस्तर 25 में यह तर्क दिया गया था कि श्री राम जन्म भूमि पर वादी–देवताओं की पूजा अनंत काल से हो रही है। यह देवताओं का स्थान है। वादी–देवताओं के हक और कब्जे के दृष्टिगत कोई वैध वक्फ कभी नहीं बनाया गया था या उसके किसी भी हिस्से पर बनाया जा सकता था।

18. प्रतिवादी संख्या 3, निर्मोही अखाड़ा ने एक लिखित कथन दायर किया जिसमें प्रस्तर 19 और 20 को अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें कहा गया था:

"19. यह कि प्रस्तर–19 की अन्तर्वस्तु को कोई प्रतिउत्तर देने की आवश्यकता नहीं है, सिवाय इसके कि भगवान राम का जन्म स्थान वह स्थान है जहाँ राम जन्म भूमि ज्ञात होने वाले मंदिर का निर्माण किया गया है लेकिन विवाद भगवान राम के जन्म स्थान के बारे में नहीं परन्तु वह मंदिर जो श्री राम जन्म भूमि मंदिर के रूप में ज्ञात होने वाले मंदिर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के बारे में संबंधित है। यह विश्वास है कि भगवान राम सूर्यवंश के राजा दशरथ के पुत्र हैं, विवादित नहीं है।

20. यह कि वादपत्र के प्रस्तर–20 के अन्तर्वस्तु से इनकार किया गया है। वे वादीगणों 1 और 2 के तथाकथित वाद मित्र की कल्पना की उपज हैं। वादी विवाद के विषय में राम जन्म भूमि मंदिर के रूप में उल्लेख करने से बचते हैं, जिसके लिए निर्मोही अखाड़ा ने राम जन्मभूमि मंदिर के प्रभार और प्रबंधन के लिए वाद संख्या 2 वर्ष 1959 दायर किया है और दुर्भावनापूर्ण रूप से स्थान श्री राम जन्म भूमि वाक्यांश का उपयोग करता है जो निरर्थक है। उक्त स्थान न्यायिक व्यक्ति नहीं है।"

19. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा अतिरिक्त लिखित कथन भी दायर किए गए थे। अतिरिक्त लिखित कथन के प्रस्तर–42 में यह कहा गया था कि बाहरी सहान ने अन्य मूर्तियों के साथ भगवान राम ललाजी का एक छोटा सा मंदिर बनवाया था, जिसे रामानंदी बैरागियों के बीच प्रचलित रीति–रिवाजों के अनुसार नियमित रूप से पूजा जाता था। रामलला जी और अन्य देवताओं के मंदिर का बाहरी हिस्सा सेवायत के रूप में कभी निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन और प्रभार में रहा है। आगे यह कहा गया कि वर्ष 1949 में की गई कुर्की केवल गर्भगृह के मुख्य भवन के संबंध में थी जिसमें तीन "शिखर" थे, जिसमें भगवान श्री रामचंद्र जी को निर्मोही अखाड़ा द्वारा मानव स्मृति से परे की अवधि में स्थापित किया गया था।

20. प्रतिवादी संख्या 4, सुन्नी बोर्ड द्वारा लिखित कथन दर्ज किया गया था। प्रस्तर–13 में यह निवेदन किया गया था कि विवादित भवन श्री राम चंद्रजी की जन्म भूमि नहीं है और उक्त भवन में राम चंद्रजी की कोई भी मूर्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कभी स्थापित नहीं की गई थी। प्रस्तर–13 के दूसरे भाग में यह दलील दी गई थी:

> "13 ... ... यह आगे तर्क दिया गया है कि विवादित भवन श्री राम चंद्रजी की जन्मभूमि नहीं है और उक्त भवन में श्री राम चंद्रजी की कोई भी मूर्ति कभी भी स्थापित नहीं की गई थी और इस तरह से वहां पर पूजा और दर्शन करने के लिए प्रतिवादी संख्या 20 या किसी और का किसी भी अधिकार या दावे का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तथ्य यह है कि वादग्रस्त संपत्ति एक पुरानी मस्जिद है जिसे बाबरी मस्जिद के रूप में जाना जाता है और इसका निर्माण सम्राट बाबर के शासनकाल में किया गया था।"

21. प्रस्तर–19 में यह दलील दी गई थी कि यह न तो कोई सार्वजनिक अभिलेख है और सक्षम प्राधिकारी के अभिलेख विवादित परिसर में श्री राम चंद्रजी के जन्म का स्थान है के बारे में उल्लेख करने के लिए पर्याप्त नहीं है और न ही परीक्षण करने के लिए कोई ऐतिहासिक या न्यायिक अभिलेख है। प्रस्तर–19 में आगे यह दलील दी गई है कि हिंदू पुस्तकों के साथ –साथ हिन्दू विद्वानों के लेखन से यह बहुत संदिग्ध हो जाता है कि क्या श्री राम चन्द्र जी का व्यक्तित्व एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। प्रस्तर–24 में यह दलील दी गई थी कि किसी भी समय बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई भी मंदिर नहीं था और यह कहना बिल्कुल गलत है कि उक्त मस्जिद का निर्माण किसी भी प्राचीन मंदिर को नष्ट करने के बाद कथित मंदिर की सामग्री से किया गया था। सम्राट बाबर के शासन के दौरान इसके निर्माण के बाद से प्रश्नगत मस्जिद को हमेशा मस्जिद के रूप में जाना गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

22. प्रतिवादी संख्या–5 ने भी अपना लिखित बयान प्रस्तुत किया। प्रस्तर–19 में यह दलील दी गई थी कि रामचन्द्र जी का जन्म वहाँ हुआ इस तथ्य को इंगित करने के लिए वहाँ कोई ऐतिहासिक या अन्य साक्ष्य उपलब्ध नही है, प्रतिवादी सं. 4 और 5 ने भी एक अतिरिक्त लिखित बयान प्रस्तुत किया।

23. एक और लिखित बयान का संदर्भ आवश्यक है अर्थात प्रतिवादी संख्या 24 द्वारा प्रस्तुत लिखित बयान किया। प्रतिवादी सं. 24 प्रिंस अंजुम है, जो अखिल भारतीय शिया सम्मेलन, लखनऊ के अध्यक्ष है। भगवान राम के संदर्भ में, प्रतिवादी सं. 24 ने दलील दिया है कि भारत के मुसलमानों का भगवान राम के लिए सर्वोच्च आदर है। इस संबंध में लिखित बयान के प्रस्तर–10 में की गई याचिका इस प्रकार हैं:

> "10. प्रस्तर 18 में दिए गए कथनों का संन्दर्भ देते हुए, यह प्रतिवादी आरंभ में इस तथ्य को अभिलिखित करना चाहता है कि उसे और भारत के मुसलमानों का भगवान राम के प्रति उच्चतम आदर है। मुसलमानों की ये भावनाएं आज की शताब्दी के महानतम मुस्लिम विचारक अल्लामा डा. शिर मुहम्मद इक़बाल द्वारा रचित 'राम' शीर्षक कविता में सर्वोत्तम रूप से परिलक्षित होती हैं, जिन्होंने भारत के मुसलमानों द्वारा श्री रामचन्द्रजी के बारे में विचार करने वाली दीर्घ कविता के केवल एक श्लोक में अभिव्यक्त किया है:
>
> "है राम के वजूद पर हिन्दुस्तान को नाज,
> अहल–ए–नजर समझती है उसको इमाम–ए–
> हिन्द "
>
> अर्थ – भारत को भगवान राम के अस्तित्व पर गर्व है। बुद्धिजीवी उन्हें भारत का सम्राट मानते हैं। ''

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

24. हालांकि, इस बात से इनकार किया गया कि विवादित परिसर वह स्थान है जहां राम चंद्रजी का जन्म हुआ था। लिखित बयान के पैराग्राफ 15 में उन्होंने मौलाना सय्यद सबमुद्दीन अब्दुर रहमान को संदर्भित किया है, जिन्होंने अपने ग्रंथ 'BABRI MASJID' में कहा था कि अगर यह साबित हो जाता है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण राम जन्म भूमि मंदिर को ध्वस्त करने के बाद किया गया है, तो ऐसी मस्जिद अगर ऐसी छीनी हुई भूमि पर बनाई गई है तो नष्ट होने की हकदार है। प्रस्तर 15 में निम्नलिखित निवेदन किया गया था:

> "15... ...इस संबंध में प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार और विद्वान मौलाना सय्यद सहाबुद्दीन अब्दुर रहमान ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'BABRI MASJID' के पृष्ठ 5 इस प्रकार लिखा। (उर्दू से अनुवाद)
>
> मुसलमानों की ओर से मुझे यह कहने का भी अधिकार है कि अगर यह साबित हो जाता है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण राम जानमभूमि मंदिर को गिराने के बाद किया गया है, तो ऐसी मस्जिद अगर ऐसी छीनी हुई भूमि पर बनाई गई है तो वह नष्ट होने की हकदार है। कोई भी धार्मिक व्यक्ति या विद्वान नमाज रोकने के लिए फतवा नहीं दे सकता है।"

25. उसी हेतु के लिए प्रस्तर–26 में दलील दी गई थी जो इस प्रकार हैं:

> "26. यह कि वाद के प्रस्तर 34 और 35 की विषयवस्तु के सम्बन्ध में, उत्तर देने वाला प्रतिवादी भारत के शिया मुसलमानों का प्रतिनिधि है और किसी भी प्रकार के अपवित्रीकरण कार्यों के विरुद्ध घातक है। उनका यह दृढ़ मत है कि किसी भी धर्म की पूजा का कोई स्थान नष्ट

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं किया जाना चाहिए और नष्ट हुए खंडहर के स्थान पर पूजा का कोई स्थान नहीं बनाया जाना चाहिए। प्रत्यूत्तर करने वाले प्रतिवादी का दृढ़ विश्वास है कि विक्रमादित्य मंदिर या किसी भी मंदिर को नष्ट करने के बाद बाबरी मस्जिद निश्चित रूप से नहीं बनाई गई थी। फिर भी, एक ही समय में अगर यह ऐतिहासिक, पुरातात्विक और विशेषज्ञों के वैज्ञानिक साक्ष्यों के प्रकाश में इस माननीय न्यायालय में स्पष्ट रूप से साबित होता है कि मंदिर भूमि पर किसी भी मंदिर को ध्वस्त करने के बाद बाबरी मस्जिद वास्तव में बनाई गई थी, तभी यह प्रतिवादी अपना विरोध वापस ले लेगा।

वादी संख्या–3 और भारतीय हिन्दू समुदाय को एक और रियायत के रूप में, जिससे उक्त वादी और उसके पक्षकारों के द्वारा धार्मिक भावनाओं को पिछले तीन वर्षो से गलत तरीके से भड़काने का प्रयास कर रहें है, यह प्रतिवादी अपना विरोध वापस लेने को तैयार है, यदि यह इस माननीय न्यायालय में स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि भगवान राम का जन्मस्थान वर्तमान बाबरी मंस्जिद के अन्दर होने का दावा किया गया था और बाबरी मस्जिद के बनने से पूर्व के समय से अस्तित्व में था, और बाबरी मस्जिद बनने के पूर्व के समय से अस्तित्व में था और यह कि बाबरी मस्जिद जानबूझकर राम जन्म स्थान स्थ्ल पर बनाई गई थी।"

26. प्रतिवादी सं. 25 ने भी लिखित बयान प्रस्तुत किये। जिसमें दलील दी गई थी कि वादी के सलंग्नक सं 1,2 और 3 में इंगित किए गए क्षेत्र और स्थान न तो राम जन्म भूमि में है और न ही राम जन्म स्थान में है आगे यह कहा गया कि यह स्पष्ट है कि बाबरी मस्जिद नाम से जानी जाने वाली मस्जिद मौजूद है, इस मस्जिद का अस्तित्व ऐतिहासिक राजस्व और न्यायिक अभिलेखों द्वारा स्थापित किया गया है।

27. उपरोक्त विचाराधीन बिंदुओं पर पक्षकारों की प्रासंगिक दलीलें है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

28. विश्वास और आस्था आत्मा के आध्यात्मिक जीवन को बढ़ावा देता है।

29. माननीय न्यायलय ने **शास्त्री यज्ञपुरूषजी और अन्य बनाम मूलदास भूधरदास वैश्य और एक अन्य एआईआर 1966 एससी 29** के वाद में प्रस्तर 29,30 और 31 में हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित अवलोकन प्रस्तुत किये हैः–

> **"29**. जब हम हिन्दू धर्म के बारे में विचार करते है, तब हमें हिन्दू धर्म की व्याख्या करना अथवा पर्याप्त वर्णन करना यदि असंभव नहीं है तो कठिन प्रतीत होता है। दुनिया के अन्य धर्मों के विपरीत, हिंदू धर्म किसी एक पैगम्बर का दावा नहीं करता है; यह किसी एक भगवान की पूजा नहीं करता है; यह किसी एक सिद्धांत की अनुपालन नहीं करता है; यह किसी एक दार्शनिक अवधारणा में विश्वास नहीं करता है; यह किसी भी धार्मिक संस्कार या प्रदर्शन के एक प्रारूप का पालन नहीं करता है; वास्तव में, यह किसी भी धर्म या पंथ की संकीर्ण पारंपरिक विशेषताओं को संतुष्ट करने के लिए प्रकट नहीं होता है। इसे मोटे तौर पर जीवन का तरीका कहा जा सकता है और इससे अधिक कुछ नहीं।
>
> 30. इस कठिनाई पर विचार करते हुए, डा. राधाकृष्णन जी ने पाया कि " बहुत से लोगों को हिन्दू धर्म बिना किसी सार का नाम प्रतीत होता है। क्या यह आस्थाओं का संग्रहालय है, या कर्मकांडों का मंत्र है, या मात्र एक नक्शा है, या एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है? " इन प्रश्नों को प्रस्तुत करने के बाद, जो विदेशी हिंदू धर्म के बारे में सोचने पर परेशान करते हैं, डॉ. राधाकृष्णन ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार हिंदू धर्म ने उन लोगों के रीति–रिवाजों और विचारों को, जिनके साथ वह संपर्क में आया है, निरंतर समाहित कर लिया है और इस प्रकार अपने प्रभुत्व और यौवन को कायम रख पाया है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार 'हिन्दू' शब्द का मूल रूप से एक क्षेत्रीय महत्व था, न कि सैद्धांतिक महत्व था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह एक अच्छी तरह से परिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में अर्न्तनिहित है। आदिवासी, जंगली और अर्ध–सभ्य लोग, सुसंस्कृत द्रविड़ और वैदिक आर्य सभी हिंदू थे क्योंकि वे एक ही मां के पुत्र थे। हिंदू विचारकों ने इस आश्चर्यजनक तथ्य की सराहना की कि भारत में रहने वाले पुरुष और महिलाएं विभिन्न समुदायों के थे, विभिन्न देवताओं की पूजा करते थे और विभिन्न संस्कारों (कूर्म पुराण) ("डा. राधाकृष्णन जी के द्वारा लिखी गई पुस्तक हिन्दू जीवन का विचार का पृष्ठ संख्या–12") का पालन करते थे।

31. मोनियर विलियम्स ने कहा है कि "यह ध्यान में रखना चाहिए कि हिंदू धर्म ब्रह्मणवाद पर टिकी हुई आस्था से कहीं अधिक है। इसमें हमारे समझने के लिए पथों और सिद्धान्तों का एक जटिल समूह है जिसके क्रमिक सर्वधन की तुलना गंगा की विशाल धाराओं से की जा सकती है जिसमें देश के विशाल भू–भाग पर विस्तृत नदिकाएं आकर मिलती है और अन्ततः उफनाती धाराओं और बीहड़ कच्छ भूमि में मिल जाती है... हिन्दू धर्म हिन्दुओं के संश्लिष्ट चरित्र को दर्शाता है जो कि एक नहीं बल्कि अनेक हैं। यह सार्वभौमिक ग्राह्यता के विचार पर आधारित है। इसने स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार समायोजित करने का लक्ष्य रखा है, और तीन हजार से अधिक वर्षों के माध्यम से अनुकूलन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है। यह प्रारम्भ से ही बोलने, निगलने, पचाने और सभी पंथों से कुछ ग्रहण करके ही उत्पन्न हुआ है। (मोनियर विलियम्स, द्वारा लिखी पुस्तक 'भारत में धार्मिक विचार और जीवन' के पृष्ठ 57 से उद्धृत)"

30. हिंदू धर्म की अवधारणा को महान विद्वानों और न्यायविदों द्वारा परिभाषित किया गया है, लेकिन इस मामले में, हिंदू धर्म की अवधारणा पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। सभी धर्मों और आस्थाओं का मूल एक है अर्थात सत्य की खोज, आत्मा के बारे अधिक जानने की खोज और सर्वोच्च के बारे में अधिक जानने की खोज, जिसे एक या अनेक रूपों में सभी धर्मों में पूजा किया जाता है। प्रत्येक धर्म और प्रत्येक आस्था ईश्वर की महिमा का

गुणगान और सम्मान करती है, जिसके साथ हम जुड़ना चाहते है। वर्डसवर्थ ने अपनी इस सुन्दर कविता में इसी विचार को प्रतिध्वनित किया हैः–

हमारा जीवन केवल एक निद्रा एवं विस्मृति के अलावा कुछ भी नहीं है!
आत्मा हमारे साथ उपर की आरोहण करती है!
एवं हमारे जीवन के (भाग्य के) सितारों का उद्भूत कहीं और होता है,
और ये बहुत दूर से अवतरित होते हैं!
पूर्ण रूप से विस्मृत नहीः एवं न ही पूर्ण रूप से दर्शित!
महिमा एवं प्रभामण्डल के ये अग्रगामी मेघ हमारी ओर उसी परमेश्वर की ओर
से
आते हैं, जहाँ हमारा घर (अन्तिम गन्तव्य) है।

31. जो हमारे समक्ष विचार के लिए आया इस बिन्दू पर वापस लौटने पर अर्थात हिंदुओं के आस्था और विश्वास के अनुसार विवादित संरचना भगवान राम का पवित्र जन्म स्थान है या नहीं?

32. भगवाना राम से सम्बन्धित अयोध्या एक पवित्र नगरी मानी जाती है। ब्रृहद–धरर्मोतरा पुराण में अयोध्या को निम्नलिखित दोहों में सात प्रमुख शहरों में से एक कहा हैः–

अयोध्या मथुरा माया काशी का ची ह्मवन्तिका ।।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।
अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका (उज्जैन)
और द्वारावती (द्वारका) सात सबसे पवित्र शहर है

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

33. बहुत समय से, जो कई शताब्दियों तक विचार के लिए विस्तृत थी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि वाद संख्या 4 में वादी का मामला यह है कि वर्ष 1528 में मीर बकी द्वारा सम्राट बाबर के आदेश पर मस्जिद का निर्माण किया गया था। मुस्लिम पक्षकारों के लिए वाद संख्या 4 में वादी की ओर से उपस्थित वरिष्ठ विद्वत अधिवक्ता डा. राजीव धवन और साथ ही साथ वरिष्ठ विद्वत अधिवक्ता श्री जाफराबाद जिलानी ने दावा किया है कि जब वाद सख्या–5 को दाखिल किया गया था, तब 1989 से पहले के समय में विवादित स्थल पर भगवान राम के जन्म स्थान के रूप में कोई विश्वास और आस्था नहीं थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि विवादित स्थल को जिसे भगवान राम का जन्मस्थान कहा जाता है, हाल ही में उत्पन्न हुआ है और इस बात का प्राचीन काल में कोई सबूत नहीं है कि हिंदुओं का आस्था और विश्वास है कि जंहाँ मस्जिद का निर्माण किया गया था, वह भगवान राम का जन्म स्थान था। डॉ. धवन ने यह तर्क दिया कि स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य में राम जन्मभूमि के स्थान का उल्लेख मिलता है, जो बाबरी मस्जिद की स्थल से मेल खाता है, को सही नहीं पाया गया है। अपने कथन के समर्थन में, उन्होनें "हिस्टोरियन रिपोर्ट टू नेशन" में अवलंम्ब लिया गया है, जिसे वादी के द्वारा वाद संख्या 5 (प्रदर्श. संख्या 44) में और साथ ही साथ वादी ने वाद संख्या 4 (प्रदर्श संख्या 62) में प्रदर्शित किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त रिपोर्ट में कहा गया है कि स्कंद पुराण में अयोध्या महात्मा में वर्णित स्थान बाबरी मस्जिद के वर्तमान स्थान से मेल नहीं खाता है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि अयोध्या में कोई स्थान ग्यारहवीं शताब्दी में या फिर छठी शताब्दी के बाद भी भगवान राम के जन्म

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

से सम्बन्धित नहीं है। जब कोई स्थान भगवान राम के जन्म–स्थान से जुड़ा होता है जो संभवतः अठारहवीं शताब्दी के बाद विभिन्न महात्म्यों में वर्णित स्थान बाबरी मस्जिद के स्थल से मेल नहीं खाता है। डॉ. धवन के द्वारा हंस बाकर की पुस्त्क अयोध्या के तर्कों का खंडन किया है। वह मानते है कि हंस बाकर की पुस्तक पर कोई अवलंम्ब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि (i) हंस बाकर इस अनुमान पर आगे बढ़ते हैं कि अयोध्या वास्तविक शहर नहीं है बल्कि कवि की कल्पना का चित्रांकन है; (ii) हंस बाकर अयोध्या को साकेत शहर की समतुल्य मानते हुए आगे बढ़ते है; (iii) बाकर आगे कहते है कि यहां तक कि अयोध्या महात्मा से जन्म स्थान का चित्राकंन करने पर भी पता चलता है और अंततः वह बताते है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण जन्म स्थान की भूमी पर किया गया है जिसकी पुष्टि स्थानीय अनुश्रुतियों से की जाती है; (iv) यहां तक कि आक्षेपित निर्णय भी यह अभिलेखित है कि हंस बाकर बिना किसी कारण बताए अनुमानों के आधार पर आगे बढ़ते हैं।

34. विभिन्न यात्रा वृतांतों के द्वारा दर्ज किये गये कथनों के सम्बन्ध में, डा. धवन कहते है विभिन्न यात्रा वृतांतों द्वारा दिये कथन सब अनुश्रुतियाँ हैं और वे यात्री केवल कथाकार थे जिन पर कोई अवलंम्ब नहीं लिया जा सकता। जहाँ तक गजेटियर्स का सम्बन्ध है, डॉ. धवन कहते है कि गजेटियरर्स जिन्हें इस्ट इंडियाँ कम्पनी के समय काल के दौरान तैयार किया गया थी वे अग्रेजों के द्वारा पहले तैयार किये गये थे और वे सरकारी प्राधिकारण के अधीन नहीं थे इसलिए इनका अवलम्ब नहीं लिया जा सकता है वे कहते है कि 1858 के बाद तैयार किए गए गजेट्स, जब अग्रेज ने उस क्षेत्र में सम्प्रभुत्वता का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुमान पर प्रश्न चिन्ह लगा है, लेकिन उन गजेट्स को एक सबूत के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है और उसको किसी अन्य वास्तविक सबूत के द्वारा पुष्टि की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि 1528 में बाबरी मस्जिद स्थल का निर्माण भगवान राम का जन्म स्थान नहीं होने के कारण किया गया था, भगवान राम के जन्म स्थान पर बाबरी मस्जिद के निर्माण का कोई सवाल ही नहीं है।

35. विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. पराशरण, श्री सी.एस. विद्यानाथन, श्री पी.एन. मिश्रा और पी.एस. नरसिम्हा के द्वारा उपरोक्त तर्कों का खंडन किया है। डॉ. धवन के तर्कों का खंडन करते हुए श्री सी.एस. वैद्यनाथन ने कहा कि विवादित परिसर को मुगल काल के दौरान बनाया गया उस पर हिन्दुओं की आस्था और विश्वास है कि वह भगवान राम का जन्म स्थान है और उस दिब्य स्थान का पवित्र चरित्र के रूप में युगों से पूजा की जाती रही थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि शास्त्र और पवित्र ग्रंथ्, जो 1528 से बहुत पहले के हैं, जिनमें अयोध्या में भगवान राम के जन्म का उचित रूप में वर्णन मिलता हैं। मुख्यतया स्कंद पुराण, वैष्णव खण्ड, अयोध्या महात्म्य का अवलम्ब लिया गया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि वाल्मीकि रामायण, जिसकी रचना ईसा पूर्व में की गई गयी है, उसमें भी भगवान राम के जन्म–स्थान के रूप में भी वर्णन है, जिसके अनुसार भगवान राम का जन्म अयोध्या के राजा दशरथ के महल में हुआ था। तुलसीदास जी द्वारा रामचरित मानस का भी उल्लेख किया गया है; जिसमें अयोध्या में भगवान राम के जन्म का उल्लेख है जो कि हर वर्ष शुक्ल पक्ष की चैत्र नवमी को मनाया जाता है। हिन्दू पक्षकारों

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के लिए विद्वत अधिवक्ता यह भी प्रस्तुत करते हैं कि यात्रियों के लेखों से पता चलता है जो 1858 से पहले की समयावधि और साथ ही साथ 1858 के बाद के लेखों से सम्बद्ध है जो प्रकशित पुस्तकों के रूप में है वे प्रासंगिक है और उनका भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 57 के तहत भी अवलंब लिया जा सकता है। गजेटियर्स में ध्यान आकर्षित करते हुए विद्वान अधिवक्ता यह कहते है कि सरकारी अधिकारियों द्वारा गजट प्रकाशित किए जाते हैं, जिसका पर्याप्त साक्ष्यिक महत्व है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि गजेटर्स को इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में अवलंब लिया गया है और गजेटर्स में दर्ज कथनों को पर्याप्त साक्ष्य माना गया और इन पर विचार किया है। श्री पी.एस. नरसिम्हा अपने तर्को पर विस्तार से चर्चा करते हुए कहते है कि परिक्षण जिसे साक्ष्य के क्रमबन्धन के रूप में लागू किया जाना है वह संभाव्यता की प्रबलता का मानक है। साक्ष्य अधिनियम के खण्ड 3 का सन्दर्भ देते हुए, उन्होनें कहा कि तथ्य का प्रमाण विशेष मामले की परिस्थितियों को देखने वाले तथ्य की धारणा या संभावना पर निर्भर करता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि हिंदू पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य हिंदुओं की आस्था और विश्वास को प्रमाणित करते हैं कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्म स्थान है। उन्होंने कहा कि वाल्मीकि रामायण अयोध्या में श्री राम के जन्म का उल्लेख करता है, जो प्राचीन काल का महाकाव्य है और हमारे देश की संस्कृति और परंपरा का आधार माना जाता है। स्कंद पुराण आठारह सौ ईस्वी के है, जो हिन्दुओं के हृदय में उत्पन्न विश्वास का पर्याप्त प्रमाण प्रदान करता है, अर्थात, भगवान राम के जन्म स्थान पर जाना, जो अत्यधिक पवित्र कर्म माना जाता है, जो

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिन्दुओं के लिए मोक्ष के अलावा और कुछ नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विवादित परिसर में हिंदुओं द्वारा बार–बार किए गए दावे और पूजा करने का अधिकार और हिंदुओं द्वारा की गई विभिन्न लड़ाई और उनके अमिट विश्वास का पर्याप्त प्रमाण है कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्म स्थान है। श्री पीएन मिश्रा ने अपने तर्कों को विस्तृत करते हुए पवित्र धर्म ग्रंथों श्रीमद वाल्मीकि रामायण, श्रीमद् स्कंदपुराणम्, रुद्रायमाला, श्री राम चरितमानस और श्रीमद नरसिंह पुराणम् जैसे अन्य धर्मग्रंथ पर अवलंम्ब लिया है। स्कन्द पुराण के अयोध्या महात्म्य के विशेष पृष्ठों और श्लोक 15 से18 और 18 से 25 का अवलंब लिया गया है, उन्होनें कहा कि उपरोक्त श्लोक भगवान राम के जन्म की भौगोलिक स्थिति के बारे में बताते है, जो अभी भी सत्यापित है। श्री मिश्रा ने हमें गवाहों के मौखिक साक्ष्य के बारे में बताया कि जहां उनके अनुसार गवाहों ने भगवान राम के जन्म स्थान के सम्बन्ध मे स्कन्द पुराण के उल्लिखित स्थानों को साबित किया गया है। वाद संख्या 2/1950 में हंस बाकर के द्वारा तैयार किए नक्शों को सन्दर्भित करते हुए और शिव शंकर लाल के द्वारा तैयार किए नक्शा नजरी का सन्दर्भ देते हुए उन्होनें कहा कि स्कन्द पुराण में उल्लिखित कई निशान अभी भी मौजूद हैं, जो जन्म स्थान के स्थान को विवादित स्थल के रूप में प्रमाणित करता है।

36. आस्था और विश्वास यह है कि विवादित स्थल भगवान राम का जन्म स्थान 1528 से पहले स्थापित किया गया है जबकि कहा जाता है कि विवादित संरचना का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था। मौखिक साक्ष्य,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिसे पक्षकारों के द्वारा अपने वादों के समर्थन में प्रस्तुत किया है वह मौखिक साक्ष्य के रूप में सबसे उत्तम है जिसे गवाहों के द्वारा देखा गया है, जिन्होनें न्यायालय के समक्ष विस्तार पूर्वक बताया है, जो केवल बीसवीं शताब्दी तक वे वस्तुएँ अच्छी तरह से स्थापित थी। पक्षकारों के द्वारा कुछ तथ्यों को प्रर्दशित किया है, जो उन्नीसवीं शताब्दी से संम्बधित है। हिन्दू पक्षकारों के द्वारा अवलंब लिए प्राचीन अवधि के पवित्र धर्मग्रथों और यात्रा वृत्तांत और गजेटियरर्स के लेख अलग–अलग अवधि के है उनमें से कुछ उन्नीसवीं शताब्दी से पहले के है, विचार की अवधि को तीन भागों में विभाजित किया जाना है। पहली अवधि 1528 से पहले की है और दूसरी अवधि 1528 से 1858 तक और तीसरी अवधि 1858 से 1949 के बाद की है। यद्यपि मुस्लिम पक्षकारों के द्वारा प्रस्तुत लिखित बयान में, वाद संख्या 5 के तहत सुन्नी सेंट्रल बोर्ड ने दलील दिया है कि तथ्य के रूप में, धार्मिक पुस्तकों के साथ–साथ हिन्दू विद्वानों के लेखन से यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि श्री राम चंन्द्र जी का व्यक्तित्व, एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है लेकिन दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश नियम 2 के तहत दिए गये बयान, जिसे उच्च न्यायालय ने अभिलेखित किया है और उच्च न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों में भी सन्दर्भित भी किया है, मुस्लिम दलों के रुख को स्पष्ट किया गया है। सी.पी.सी आदेश X नियम II के तहत दिए गए उपरोक्त कथनों का उल्लेख करना आवश्यक है, वाद संख्या 04 के वादी के लिए अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी का बयान 22.04.2009 को उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अभिलेखित किया गया था, जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए है:–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"सी.पी.सी के आदेश X नियम 2 के तहत मूल वाद संख्या 4/1989 के वाद में वादी के अधिवक्ता श्री ज़फ़रयाब जिलानी का 22.04.2009 दिनांकित बयानः–

इस मामलें के उद्देश्य के लिए बाल्मीकि रामायण में वर्णित अयोध्या मे भगवान राम के जन्म के सम्बन्ध में भगवान के भक्तों की आस्था पर कोई विवाद नहीं है। हालांकि, यह विवादित है और इससे इनकार किया जाता है कि बाबरी मस्जिद का स्थान भगवान राम के जन्म का स्थान था। इस बात से भी इनकार किया जाता है कि किसी भी समय बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई राम जन्मभूमि मंदिर था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से निर्मोही अखाड़ा का अस्तित्व भी विवादित नहीं है। हालाँकि, यह विवादित है और इस बात से इंकार किया जाता है कि निर्मोही अखाड़ा 16 वीं शताब्दी में या 1528 ईस्वी में अयोध्या में अस्तित्व में था और इस बात से भी इनकार किया जाता है कि कोई भी मूर्ति 22 दिसंबर, 1949 तक बाबरी मस्जिद में थी।

हस्ताक्षर/–
जे. जिलानी, अधिवक्ता
22.04.2009"

उसी हेतुक के लिए एक अन्य विद्वान अधिवक्ता श्री मुस्ताक अहमद सिद्दिकी के द्वारा बयान दिए गये, जो वाद संख्या 4 के वादी के अधिवक्ता के रूप में उपस्थित हुए थे और प्रत्यर्थी संख्या 6/1 और 6/2 के लिए अधिवक्ता श्री सय्यद इरफान अहमद के बयान लिए गये थे। तीनों बयान समान शब्दों में नीचें दिए गए हैः–

"सीपीसी के आदेश X नियम 2 के तहत मूल वाद 4/1989 के वादी के लिए अधिवक्ता श्री मुसक अहमद सिद्दीकी का 22.04.2009 दिनांकित बयानः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस मामले के उद्देश्य के लिए बाल्मीकि रामायण में वर्णित अयोध्या में भगवान राम के जन्म के संबंध में भगवान राम के भक्तों की आस्था पर कोई विवाद नहीं है, जैसा कि आज भी अस्तित्व में है। हालांकि, यह विवादित है और इस बात से इनकार किया गया है कि बाबरी मस्जिद का स्थान भगवान राम के जन्म का स्थान था। इस बात से भी इनकार किया जाता है कि किसी भी समय बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई राम जन्मभूमि मंदिर था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से निर्मोही अखाड़ा का अस्तित्व भी विवादित नहीं है। हालाँकि, यह विवादित है और इस बात से इंकार किया गया है कि विशेष रूप से अयोध्या में 1600 ईस्वी या 1528 ईस्वी में निर्मोही अखाड़ा अस्तित्व में था और इस बात से भी इनकार किया जाता है कि कोई भी मूर्ति 22 दिसंबर, 1949 तक बाबरी मस्जिद में थी।।

हस्ताक्षर/–
एम.ए. सिद्दीकी, अधिवक्ता
22.04.2009"

"सीपीसी आदेश X नियम 2 के तहत मूल वाद 34/1989 के प्रत्यर्थी संख्या 6/1 और 6/2 के लिए अधिवक्ता श्री सय्यद इरफान अरमद का 22.04.2009 दिनांकित बयानः–

इस मामले के उद्देश्य के लिए बाल्मिकि रामायाण मे वर्णित अयोध्या में भगवान राम के जन्म के संबंध में भगवान राम के भक्तों की आस्था पर कोई विवाद नहीं है जैसा कि आज भी अस्तित्व में है। हालांकि, यह विवादित है और इस बात से इंकार किया गया है कि बाबरी मस्जिद का स्थल भगवान राम के जन्म का स्थान था। इस बात से भी इनकार किया जाता है कि किसी भी समय बाबरी मस्जिद स्थल पर कोई राम जन्मभूमि मंदिर था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से निर्मोही अखाड़ा का अस्तित्व भी विवादित नहीं है। हालाँकि, यह विवादित है और इस बात से इंकार किया गया है कि विशेष रूप से अयोध्या में 1600 ईस्वी या 1528 ईस्वी में निर्मोही अखाड़ा अस्तित्व में था और इस बात से भी इनकार किया जाता है कि कोई भी मूर्ति 22 दिसंबर, 1949 तक बाबरी मस्जिद में थी।।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हस्ताक्षर/–
एस. इरफान अहमद, अधिवक्ता
22.04.2009"

37.वाद संख्या 4 के वादी अयोध्या में भगवान राम के जन्म के सम्बन्ध में हिन्दुओं के विश्वास और आस्था के संम्बन्ध में रूख स्पष्ट किया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि हिन्दू भक्तों की आस्था में कोई विवाद नहीं है और भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था, हमारा विचार केवल एक सीमित प्रस्तुतियों तक ही सीमित है कि क्या विवादित संरचना का स्थान जहाँ बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था, वह भगवान राम का जन्म स्थान है या नही। केवल उपरोक्त पहलू के संबंध में पक्षकारो के द्वारा प्रस्तुत सबूतों पर विचार करना आवश्यक होगा।

<u>1528 से पहले की अवधिः–</u>

38. धार्मिक आस्था परंपराओं, धार्मिक शास्त्रों और प्रथाओं द्वारा निर्मित होती है। इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ की ओर से न्यायमूर्ति बी.के. मुखर्जी ने **कमिश्नर, हिन्दू रिलीजियश इन्डोमेन्ट, मद्रास वर्सेस श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीअर आफ श्री शिरूर मठ, ए.आई.आर. 1954 एससी 282** के वाद में यह अवधारित किया कि प्रस्तर 17 के तहत धर्म निश्चित या व्यक्तिगत या समूदायिक रूप से विश्वास का विषय है, जिसेके तहत निम्नलिखित अवलोकित किया गया है

'17. Xxxxxxxxxxxxx

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धर्म निश्चित रूप से व्यक्तियों या समुदायों के साथ विश्वास का विषय है और यह जरूरी नहीं कि ईश्वरवादी हो। भारत में बौद्ध और जैन धर्म जैसे प्रसिद्ध धर्म हैं जो ईश्वर में या कोई बौद्धिक विश्वास का प्रथम कारण पर विश्वास नहीं करते है। एक धर्म निस्संदेह विश्वास या सिद्धांतों की एक प्रणाली में अपना आधार रखता है जो उन लोगों द्वारा माना जाता है जो उस धर्म को अपनी आध्यात्मिक कल्याण के लिए अनुकूल मानते हैं, लेकिन यह कहना सही नहीं होगा कि धर्म एक सिद्धांत या विश्वास के अलावा और कुछ नहीं है। एक धर्म अपने अनुयायियों को स्वीकार करने के नैतिक नियमों की न केवल एक संहिता निर्धारित कर सकता है बल्कि यह रीती–रिवाज, अनुपालन और अनुष्ठान और पूजा के तरीकों को निर्धारित कर सकता है जिन्हें धर्म का अभिन्न अंग माना जाता है, और ये भोजन और पोशाक के मामलों तक भी विस्तारित हो सकते हैं।

39. धार्मिक ग्रंथ, जो हिन्दुत्व के मुख्य स्रोत हैं, वे आधार हैं जिस पर हिन्दुओं की आस्था ने साकार रूप लिया है। वाल्मीकि कृत रामायण महाकाव्य भगवान राम और उनके कार्यों के बारे में जानकारी का मुख्य स्रोत है। वाल्मीकि रामायण की रचना ईसा पूर्व की है। वाल्मीकि रामायण महाभारत और श्रीमद्भगवतगीता के पहले की अवधि का है। जिस अवधि में वाल्मीकि रामायण की रचना हुई वह इसाई युग के काफी पहले की है। इस वाद के उद्देश्य के लिए, इतिहासकार के रूप में वाद–4 के वादी द्वारा प्रस्तुत की गयी साक्षी सुवीरा जायसवाल (पीडब्ल्यू–8) के बयानों पर ध्यान देना पर्याप्त है। अपने बयान में वह कहती हैं " वाल्मीकि रामायण की अवधि 300 ई.पू.–200 ई.पू. की अभिलिखित है।" बहुत से विद्वानों और अन्य लोगों ने वाल्मीकि रामायण को बहुत पहले की अवधि का बताया है लेकिन उक्त प्रश्न पर रूकना हमारे लिए आवश्यक नहीं क्योंकि हमारे उद्देश्य के लिए इतना पर्याप्त है कि वाल्मीकि रामायण की रचना ईसा के पूर्व युग में हुई।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

40. वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के 28 वें सर्ग का 8 से 12 वां श्लोक ग्रहीय स्थितियों के साथ भगवान राम के जन्म से संबंधित है। उपरोक्त श्लोक में इस बात का चित्रण है कि ब्रह्मंड नायक "विष्णु" कौसल्या के पुत्र के रूप में जन्में थे। वाल्मीकि रामायण में विष्णु के अवतार के रूप में दशरथ और कौसल्या के पुत्र के रूप में भगवान राम के अयोध्या में जन्म का समुचित उल्लेख है। श्लोक 10 कौसल्या के पुत्र के रूप में भगवान राम के जन्म के बारे में बताता है जो निम्नवत उद्धृत है:

प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम ।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥

(बालकाण्ड 18.10)

"कौसल्या ने एक ऐसे पुत्र को जन्म दिया जो समस्त जगत का ईश्वर है।सभी लोग उनका आदर करते थे। वह दैवीय लक्षणों से युक्त थे।

यह किसी समान्य मनुष्य का जन्म नहीं था। अयोध्या में समस्त जगत के स्वामी का आगमन हुआ था फिर भी अलीगढ़ इतिहासकार कहते हैं कि राम के जन्म की वजह से अयोध्या को कभी पवित्र नहीं माना जाता था।"

41. इस प्रकार, महाकाव्य में भगवान राम के जन्म को अयोध्या से जोड़ा गया है। हालांकि यह सत्य है कि वाल्मीकि रामायण में जन्मस्थान का कोई उल्लेख नहीं है सिवाय इसके कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में दशरथ के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

महल में कौसल्या के पुत्र के रूप में हुआ था। अगला धार्मिक ग्रंथ जिसे वाद सं. 5 के वादी और अन्य हिन्दू पक्षकारों ने संदर्भित किया है व अवलंब लिया है वह है स्कंद पुराण। स्कंद पुराण में वैष्णवखंड के अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया गया है। पुराण को प्रदर्श 93 के रूप में दाखिल किया गया है। स्कंद पुराण का अंग्रेजी अनुवाद जी.वी. तागड़े ने किया है जो मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली से प्रकाशित है जिसे भी स्कंद पुराण के प्रासंगिक श्लोकों पर विचार करते समय संदर्भित किया जाएगा। स्कंद पुराण की पुस्तक II वैष्णवखंड है। वैष्णवखंड के विभिन्न भागों में विभिन्न विषयों के महात्म्य पर विचार किया गया है। भाग VI। वैशाख मास के महात्म्य से संबंधित है, भाग VII। अयोध्या महात्म्य से संबंधित है और भाग IX वासुदेव महात्म्य से संबंधित है। स्कंदमहापुराणम् खेमराज श्रीकृष्णदास (प्रदर्श 93) द्वारा श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई से प्रकाशित है। डॉ जी.वी. तागड़े का अनुवाद श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई से प्रकाशित स्कंद पुराण में से एक है। अयोध्या महात्म्य के अध्याय X में 87 श्लोक हैं। मेसर्स खेमराज श्रीकृष्णदास, प्रोपराइटर, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस मुंबई , नाग प्रकाशक नई दिल्ली से पुनर्प्रकाशित। प्रासंगिक श्लोक 18 से 25 निम्नवत हैं:

तस्मात् स्थानत ऐशाने रामजन्म प्रवर्तते।
जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलसाधनम् ।।18।।
विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा।
लौमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम।।19।।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उस स्थान के पूर्वोत्तर में राम का जन्मस्थान है। इस पवित्र जन्मस्थान को मोक्ष आदि का साधन कहा गया है। कहा गया है कि जन्मस्थान विघ्नेश्वर के पूर्व में, वशिष्ठ के उत्तर में और लौमस के पश्चिम में स्थित है।

यद् दृष्टवा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत्।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः।।20।।
नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः
स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्।।21।।

इसके दर्शन मात्र से व्यक्ति को बार बार गर्भ में जाने से (अर्थात पुनर्जन्म) से छुटकारा मिल जाता है। बिना दान, तप या तीर्थयात्रा के नवमी तिथि के व्रत से पवित्र स्नान दान के प्रभाव से मनुष्य जन्मबंधन से मुक्त हो जाता है।

कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्।।22।।
आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत् फलम्।
राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः।।23।।

जन्मस्थान के दर्शन से मनुष्य को वही फल प्राप्त होता है जो कपिला गाय को प्रतिदिन दान करने से प्राप्त होता है। आश्रम में रहकर तप करने वाले को, प्रतिवर्ष हजारों राजसूय और अग्निहोत्र यज्ञ करने वाले को जो फल प्राप्त होता है वही फल जन्मस्थान के दर्शन से प्राप्त होता है।

नियमस्थं नरं दृष्टवा जन्मस्थाने विशेषतः।
मातापित्रोर्गुरूणाञ्च भक्तिमुद्वहतां सताम्।।24।।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्।।25।।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विशेषकर जन्मस्थान पर पवित्र नियमों के पालन से मनुष्य को माता, पिता, गुरुजनों के प्रति भक्ति का लाभ होता है।

42. उक्त श्लोक में रामजन्म स्थान की जगह का उल्लेख मिलता है। राम जन्मस्थान की पहचान कराने वाली श्रुतियों का श्लोक में उल्लेख है जो कि विघ्नेश्वर के पूर्व में, वशिष्ठ के उत्तर में और लौमस के पश्चिम में स्थित है। बहस के दौरान विद्वान अधिवक्ता श्री पी.एन. मिश्र ने श्रीमद् स्कंदपुराणम् को सन्दर्भित किया है। यह बात कि– क्या अयोध्या महात्म्य में वर्णित उपरोक्त श्रुतियों से राम जन्म भूमि का सत्यापन हो सकता है– इस पर पक्षकारों के मध्य मतभेद है जहां दोनों पक्षों ने अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाया है। हिन्दू पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वह वर्तमान स्थान जहां पर राम जन्म भूमि होने का दावा किया जाता है, वही है जैसा कि अयोध्या महात्म्य में वर्णित है जो कि प्राचीन समय से अब तक लाखों हिन्दुओं की आस्था और विश्वास है। दोनों पक्षकारों द्वारा दिये गये मौखिक साक्ष्यों में साक्षीगण ने अयोध्या महात्म्य में वर्णित श्रुति को सिद्ध करने वाली गवाही दी है। उन्होंने बयान दिया है कि हिन्दुओं द्वारा राम जन्मस्थान के रूप में दावा किया जाने वाला स्थान अयोध्या महात्म्य में दिये गये वर्णन के अनुसार राम जन्मस्थान है। हिन्दुओं की यह आस्था और विश्वास कि राम जन्म भूमि स्थान जिसे आज भी पूजा जाता है,वही पूजास्थल है जिसकी चर्चा प्राचीन ग्रन्थों में है और लाखों हिन्दुओं का प्राचीन काल से ऐसा विश्वास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। ओ.पी.डब्ल्यू.1 महन्त राम चन्द्र दास दिगम्बर वाद सं.5 में वादी के साक्षी के रूप में प्रस्तुत हुए उन्होंने बयान दिया कि अयोध्या में भगवान राम का जन्म हमारे वेदों,उपनिषदों, संहिता, स्मृतियों आदि के वर्णनों से सिद्ध है। साक्षीगण ने विनिर्दिष्ट रूप से स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य को संदर्भित किया और कहा कि भगवान राम का जन्म स्थान गर्भ गृह अर्थात वह विवादित स्थान है जहां रामलला वर्तमान में विराजमान हैं। ओ.पी.डब्ल्यू.1 के बयान को संदर्भित किया गया है और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय में इसका व्यापक अवलंब लिया है। उनका कथन निम्नवत है जहाँ पर उन्होंने स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया है :–

> "यह वही अयोध्या है जो वर्तमान स्थल है। भगवान राम इसी स्थान पर पैदा हुए थे। इसे सीमांकित करते हुए,उपरोक्त वर्णित सभी हिन्दू ग्रन्थों में स्पष्ट संदर्भ है। कागज सं. 107C/75 मेरे समक्ष है। स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य में इसका स्पष्ट उल्लेख है। भगवान राम का जन्मस्थान और गर्भ गृह वही विवादित स्थान हैं जहां रामलला वर्तमान में विराजमान हैं।" (ई.टी.सी.)

43. ओ.पी.डब्ल्यू.16 जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य कहते है कि उनके इस बयान में कि विवादित स्थल राम जन्म भूमि है, जैसा अनादि काल से हिन्दुओं की आस्था और परम्परा से विश्वास है। अपने बयान में उन्होंने कहा है कि :–

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "अपने अध्ययनों और जानकारी से मुझे ज्ञात है कि अयोध्या स्थित विवादित स्थल श्री रामजन्मभूमि है जिसे आस्था, परम्परा और विश्वास के आधार पर अनादिकाल से हिन्दू धर्म के अनुयायियों द्वारा भगवान राम की जन्म भूमि माना गया है और निरन्तर पूजा की गया है।" (ई.टी.सी.)

44. इस मुख्य परीक्षण में जगद्गुरु रामानंदाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य ने यह भी बयान दिया है कि अयोध्या महात्म्य में भगवान राम के जन्मस्थान का स्पष्ट उल्लेख है। मुख्य परीक्षण का पैरा 25 निम्नवत है :–

> "25. मुझे श्री कृष्णदासात्मज क्षेमराज शास्त्री द्वारा स्थापित प्रेस से 1966 में प्रकाशित स्कंद पुराण के वैष्णव खंड के अयोध्या महात्म्य की जानकारी है, जिसमें भगवान श्री राम के जन्मस्थान का स्पष्ट वर्णन है। आवरण पृष्ट और पृष्ट संख्या 292 अध्याय 10 में श्लोक संख्या 1–25 की छाया प्रति संलग्नक 1 के रूप में इस शपथपत्र के साथ संलग्न है जोकि मूल पुस्तक की सत्य प्रतिलिपि है।"

45. रामजन्म भूमि को पहचानने के लिए अनुश्रुतियों की नामौजूदगी के संबंध में साक्षी का कोई प्रतिपरीक्षण नहीं किया गया। महंत रामविलास दास वेदान्ती DW–2/3 ने प्रस्तर 24 में स्कंद पुराण के वैष्णव खंड के अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया है, उन्होंने निम्नवत बयान दिया है :–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"24. यह कि, हिन्दुओं की प्रसिद्ध पुस्तक स्कंद पुराण के वैष्णव खंड में अयोध्या महात्म्य का वर्णन है,इसमें विवादित स्थल का भगवान राम का जन्मस्थान के रूप में प्रकट वर्णन है। वैष्णव खंड के अयोध्या महात्म्य की प्रासंगिक पंक्तियां निम्नवत हैं:–

"स्कंद पुराण वैष्णव खंड में अयोध्या के महत्व का वर्णन करते हुए वेदव्यास ने लिखा है कि समस्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति को श्रद्धा भक्ति के साथ अयोध्या का दर्शन करना चाहिए। चैत्र के महीने में तीसरे नवरात्र में भजन गाते हुए अयोध्या जाना चाहिए। अयोध्या में श्री राम नवमी यात्रा चैत्र माह के तीसरे नवरात्र से प्रारम्भ होती है। ऐसी मान्यता है कि इस यात्रा से दैवीय फल प्राप्त होता है, विभिन्न प्रकार के नृत्य एवं संगीत चित्ताकर्षक होते हैं और व्यक्ति इससे बंध जाता है,इसमें कोई संदेह नहीं है। उच्च योगी भक्त रामजन्म भूमि के पश्चिमी तरफ रहते हैं। जिस भूमि को पिण्डारक के रूप में जाना जाता है। इस भूमि की फूल इत्यादि से पूजा होती है। व्यक्ति को इस पूजा से सद्गुण प्राप्त होता है। लोग पूरे विधान से यह पूजा करते हैं। पिण्डारक की पूजा सरयू नदी में स्नान करने के पश्चात की जानी चाहिए। पापी व्यक्ति को नवरात्रि के पवित्र नक्षत्र के समय सांसारिक विकारों को दूर रखने के लिए इसकी पूजा करनी चाहिए। विघ्न दूर करने के लिए पश्चिमी तरफ भगवान गणेश की पूजा की जाती है। रामजन्म भूमि इशान कोण में स्थित है। यह भूमि जो मोक्ष देती है, जन्मभूमि या जन्मस्थान कहलाती है। वशिष्ठ कुण्ड विघ्नेश्वरी के पूर्व में है, रामजन्मभूमि वशिष्ठ कुण्ड के उत्तर तरफ है और शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामजन्मभूमि वशिष्ठ कुण्ड से उत्तर दिशा में है। व्यक्ति को लोमस आश्रम के पश्चिमी हिस्से में जन्मस्थान का ध्यान करना चाहिए।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

46. स्वामी अविमुक्तस्वरानंद सरस्वती DW–20/2 ने अपने मुख्य परीक्षण के बयान के प्रस्तर 35 में स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया है व संदर्भित किया है। उन्होंने बयान दिया है कि "**अयोध्या एक पवित्र स्थान है जैसा कि अयोध्या महात्म्य पुस्तक में वर्णित है"।** इस पुस्तक में " रामजन्मभूमि का विवरण है लेकिन किसी मस्जिद का उल्लेख नहीं है। प्रस्तर 35 में दिये गये बयान को संदर्भित साक्षी का प्रतिपरीक्षण किया गया। अपने प्रतिपरीक्षण में उन्होंने कहा है कि बड़ा स्थान, नागेश्वर नाथ मंदिर, लोमस ऋषि, विघ्नेश पिण्डारक और वशिष्ठ कुण्ड देखे हैं। अपने प्रतिपरीक्षण में वह कहते हैं :–

> " साक्षी का प्रतिपरीक्षण करने वाले विद्वत अधिवक्ता ने उसके मुख्य परीक्षण शपथपत्र के प्रस्तर 35 की ओर साक्षी का ध्यान आकर्षित किया है। एक प्रश्न के उत्तर में साक्षी ने कहा कि श्रीरामजन्म भूमि मंदिर के दर्शन का उसमें संदर्भ है। इस प्रस्तर में संदर्भित "अन्य मंदिरों" से मेरा आशय हनुमानगढ़ी और कनक भवन से है। इसके अलावा मैंने बड़ा स्थान, नागेश्वर नाथ मंदिर, लोमस ऋषि आश्रम, विघ्नेश पिण्डारक और वशिष्ठ कुण्ड देखे हैं। विघ्नेश और पिण्डारक मंदिर नहीं हैं ये स्थानों के नाम हैं। वहां मात्र एक बड़ा शिलाखंड है। मैंने अपने मुख्य परीक्षण शपथ पत्र के प्रस्तर 35 में कहा है कि मैं अयोध्या कई बार गया हूं। इन यात्राओं के दौरान मैंने बहुत बार दर्शन किया है। लेकिन प्रत्येक बार नहीं किया है।"

47. अपने मुख्य परीक्षण में उसने स्कंद पुराण में दिए गए विधान के अनुरूप अयोध्या जाने का और तदनुसार दर्शन करने का बयान दिया है। उसने अपने मुख्य परीक्षण में यह भी संदर्भित किया है कि उसे ब्रिटिश शासन के समय श्री एडवर्ड द्वारा लगवाए गए पत्थर के बोर्डों से बहुत सहायता मिलती थी। मुख्य परीक्षण के प्रस्तर 36 में उसने कहा है :–

> "36. यह कि स्कंद पुराण में दिए गए विधान के अनुसार एक बार मैं अयोध्या गया और श्री राम जन्मभूमि का दर्शन किया। इस यात्रा के दौरान मुझे एक उच्चाधिकारी श्री एडवर्ड द्वारा ब्रिटिश शासन के समय

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लगवाए गए पत्थर के बोर्डों से बहुत सहायता मिली जो कि स्कंद पुराण में वर्णित क्रम से लगाए गए थे, और तत्कालीन भौगोलिक स्थिति को सिद्ध करते हैं।"

मुख्य परीक्षण के प्रस्तर 36 के संदर्भ में साक्षी का प्रति परीक्षण किया गया, जिस प्रति परीक्षण में उसने कहा कि उसने अयोध्या महात्म्य में वर्णित अनुश्रुति के अनुसार राम जन्मभूमि का दर्शन किया था। ब्रिटिश शासन(1901–1902) में श्री एडवर्ड द्वारा लगवाए गए पत्थरों को संदर्भित करते हुए उन्होंने कहा कि उन्होंने बड़ा स्थान, राम जन्मभूमि, पिण्डारक, लोमस,विघ्नेश और वशिष्ठ कुण्ड पर पर लगे पत्थरों को देखा है। उन्होंने आगे कहा कि लोमस आश्रम में लगा पत्थर राम जन्मभूमि मंदिर के पूर्व में लगा था। अपने प्रति परीक्षण में उन्होंने निम्नवत बयान दिया है :–

" मैंने पांच पत्थर बोर्ड देखे हैं। ये पत्थर के बोर्ड क्रमशः "बड़ा स्थान" राम जन्मभूमि, पिंण्डारक, लोमस, विघ्नेश और वशिष्ट कुण्ड और विघ्नेश्वरा पर लगे हुए थे। मैंने इन पत्थर के बोर्डों को 2001 या 2002 में देखा था। मैंने इन पत्थरों को 2001 या 2002 में साथ देखा। जब भी मैं वहां गया मैंने इन पत्थरों को लगातार देखा। लोमस आश्रम पर लगा पत्थर मंदिर के ईशान कोण के पूर्व में लगा था। यह पत्थर राम जन्मभूमि के रास्ते के पूर्वी तरफ लगा था। पिंण्डारक में लगा पत्थर जन्मभूमि के उत्तर तरफ है।

इस पत्थर के पास एक शर्मा का मंदिर स्थित है। विघ्नेश पर लगा पत्थर पिंण्डारक से संलग्न था। यह पत्थर भूमि तल से 4 से 5 फीट की ऊंचाई पर था और भूमि में दो से ढाई फीट की गहराई में गड़ा था। ये पत्थर दो से चार फीट मोटे थे, मुझे यह याद नहीं है कि किस पत्थर पर कौन सा अंक लिखा था। विघ्नेश्वरा पर लगा पत्थर जन्मभूमि के पश्चिम की तरफ था और वशिष्ट कुण्ड से कुछ दूरी पर था। मैं वशिष्ट कुण्ड गया हूं। यह शायद जन्मभूमि के दक्षिण पश्चिमी कोने पर है। यह लगभग दो से ढाई सौ यार्ड की दूरी पर है। यह पत्थर मैंने पहली यात्रा में भी देखा था और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आखिरी यात्रा में भी देखा था। इस पर उकेरी गई सामग्री दोनों भाषाओं अर्थात अंग्रेजी एवं हिंदी में थी।"

49. इस प्रकार साथियों ने स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य में दी गयी अनुश्रुति के अनुसार राम जन्मभूमि की अवस्थिति को स्पष्टतः सिद्ध किया है। अन्य साक्षी DW3/7 महंत राम जी दास ने अपने प्रति परीक्षण में अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया है जिसमें जन्म स्थान का उल्लेख है। उन्होंने अयोध्या महात्म्य के अनुसार राम जन्म स्थान की स्थिति को सत्यापित किया है। DW3/14 जगतगुरु स्वामी रामानंदाचार्य हर्याचार्य अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य का अवलंब लिया है। अपने मुख्य परीक्षण में उन्होंने कहा कि लोमस ऋषि आश्रम वर्तमान श्री राम जन्म भूमि के पूर्व में है। उन्होंने आगे कहा है कि लोमस ऋषि आश्रम के स्थान पर अब एक राम गुलेला मंदिर है और श्री लोमस जी के नाम पर एक पत्थर है। मुख्य परीक्षण के प्रस्तर 31 में वह कहते हैं:–

"31. लोमस ऋषि आश्रम वर्तमान राम भूमि मंदिर के पूर्व में है, जिसके विषय में एक वाद विचाराधीन है। जहां पर रामगुलेला मंदिर है वहां श्री लोमस जी के नाम पर एक पत्थर है। विघ्नेश्वर भगवान राम जन्म भूमि के पश्चिम तरफ हैं जो कि वशिष्ठ भवन मंदिर के पश्चिम तरफ है। साक्ष्य शपथ पत्र की सूची 'A' में संलग्न है।"

50. आगे इस पर ध्यान देना प्रासंगिक है कि वह साक्षी जो वाद संख्या 4 के वादी की ओर से प्रस्तुत हुआ, स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य के संदर्भ में उनका भी प्रति परीक्षण किया गया। पीडब्ल्यू 13 सुरेश चंद्र मिश्रा जो कि वाद संख्या 4 के वादी की ओर से प्रस्तुत हुए एक इतिहासकार हैं। पीडब्ल्यू 15 सुशील श्रीवास्तव, मुस्लिम पक्षों, वाद संख्या 4 के वादी गण की ओर से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इतिहासकार के रूप में उपस्थित हुए। अपने प्रति परीक्षण में अयोध्या महात्म्य में भगवान राम के जन्म स्थान के उल्लेख के बारे में उन्होंने अपनी सहमति दी। अपने प्रति परीक्षण में उन्होंने निम्नवत बयान दिया है:–

> "अयोध्या महात्म्य में राम के जन्म के बारे में यह लिखा हुआ है। राम के जन्म स्थान के बारे में अयोध्या महात्म्य में जो उल्लेख है उससे मैं सहमत हूं। इस पुस्तक में लोमस ऋषि के आश्रम का भी उल्लेख है। अर्थात उसमें इसका वर्णन किया गया है। उसमें विघ्नेश्वर स्थान का भी वर्णन है। अयोध्या महात्म्य में वशिष्ठ ऋषि के आश्रम का वर्णन है।" (ETC)
>
> अयोध्या महात्म्य में लोमस ऋषि और वशिष्ठ ऋषि के आश्रम के बारे में संदर्भों से राम के जन्म स्थान का भू अंकन हुआ है। अयोध्या महात्म्य के अनुसार रामजन्म स्थान लोमस ऋषि आश्रम के पश्चिम में,विघ्नेश्वर मंदिर के पूर्व में और वशिष्ठ मुनि आश्रम के उत्तर में स्थित है। मुझे विघ्नेश्वर मंदिर नहीं मिला बल्कि मैंने "विघ्नेश्वर" शब्द अंकित एक पत्थर देखा। मुझे लोमस ऋषि का आश्रम नहीं मिला, मुझे वशिष्ठ मुनि का आश्रम भी नहीं मिला लेकिन लोगों ने मुझे उनके बारे में बताया।" (ETC)

51. कोई डॉ. सीताराम राय पीडब्ल्यू 28 भी वाद संख्या 4 के वादी गण की ओर से प्रस्तुत हुआ। जिसका स्कंद पुराण के संदर्भ में प्रति परीक्षण किया गया। अपने बयान में उसने कहा है कि यह कहना सही नहीं होगा कि अयोध्या महात्म्य में राम जन्म भूमि की परिसीमा और उसकी स्थिति दी गई है। उस ने हालांकि कहा है कि यह सत्य है कि पिण्डारक, विघ्नेश्वर, वशिष्ठ और लोमस जैसे पौराणिक व्यक्तित्व मौजूद हैं। उसने अपने बयान में कहा कि अयोध्या महात्म्य में श्लोक से जन्म स्थान की ओर यात्रा का पता चलता है न कि इसकी परिसीमा की स्पष्टता का। अपने प्रति परीक्षण में उसने निम्नवत बयान दिया है:–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

" मेरे दृष्टिकोण से यह कहना सही नहीं होगा कि अयोध्या महात्म्य अध्याय में राम जन्म भूमि की परिसीमा और उसकी अवस्थिति दी गई है। इस बिंदु पर विद्वत अधिवक्ता ने साक्षी का ध्यान पेपर संख्या 107–C1/75 के श्लोक 14 से 25 की ओर आकर्षित किया । इस पर वादी के अधिवक्ता श्री जफरयाब जिलानी ने आपत्ति उठाई कि कागज को सिद्ध नहीं किया गया है और उस पर प्रश्न पूछने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। उसका प्रत्युत्तर बाद में दिया जाएगा। उपरोक्त श्लोक को पढ़ने के पश्चात साक्षी ने कहा कि मैंने उसकी अन्तर्वस्तु को समझा है और कहा कि इसलिए इसमें राम जन्मभूमि की परिसीमा का स्पष्ट अंकन नहीं किया गया है और बाद में कहा कि इसमें परिसीमा नहीं दी गई है। विद्वत अधिवक्ता ने साक्षी को श्लोक की पंक्ति संख्या 18–19 पढ़वाया और इसे पढ़ने के पश्चात साक्षी ने कहा कि परिसीमा का स्पष्ट अंकन नहीं किया गया है। चारों दिशाओं का कोई उल्लेख नहीं है जो कि परिसीमा के लिए आवश्यक होती हैं। यह सत्य है कि इस श्लोक में पिण्डारक,विघ्नेश्वर, वशिष्ठ और लोमस का उल्लेख किया गया है। प्रति परीक्षण करने वाले विद्वान अधिवक्ता से अट्ठारहवें श्लोक की पहली पंक्ति सुनने के पश्चात साक्षी ने प्रत्युत्तर दिया कि इस स्थान से आगे जन्मभूमि के लिए ईशान दिशा में जाना होगा। "प्रवर्तते" का अर्थ वह होता है जो जाता है। "विघ्नेश्वर पूर्वभागे" का अर्थ है विघ्नेश्वर के पूर्वी ओर। "वशिष्ठ उत्तरे" का अर्थ है वशिष्ठ के उत्तर की ओर। "लोमस्थ पश्चिमे" का अर्थ है लोमस के पश्चिम की ओर। "जन्मस्थानम तथाति" का अर्थ है वहां से जन्मस्थान। ऊपर मैंने जो कहा है उससे जन्म स्थान की ओर यात्रा का संकेत मिलता है न कि इसकी परिसीमा की स्पष्टता का।"

52. उपरोक्त साक्षी के अनुसार रामजन्मभूमि की स्पष्ट परिसीमा नहीं दी गयी है। लेकिन पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर स्थित विभूतियों के बारे में संकेत दिया गया है और यह संकेत दिया गया है कि रामजन्मभूमि तक कैसे पहुंचे। तद्नुसार उक्त संकेत रामजन्मभूमि की अवस्थिति का पता लगाने के लिए पर्याप्त है। स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिक्री या पट्टा दस्तावेज में संदर्भित की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जाने वाली परिसीमा के जैसी किसी परिसीमा का दिया जाना अभिकल्पित नहीं था। यथा उपरोक्त ध्यातव्य, डॉ राजीव धवन ने स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य में दिये गये चिन्हों की पहचान को नकारते हुए 13.05.1991 दिनांकित राष्ट्र के नाम इतिहासकारों की रिपोर्ट पर भारी अवलंब लिया है। स्कंद पुराण के अयोध्या महात्म्य में दी गयी रामजन्म भूमि की अवस्थिति के आधार पर दिये जाने वाले तर्क को नकारते हुए डॉ राजीव धवन ने राष्ट्र के नाम इतिहासकारों की रिपोर्ट का सहारा लिया है। हैंस बेकर द्वारा लिखित पुस्तक "अयोध्या" के आधार पर श्री पी.एन. मिश्र द्वारा दिये गये तर्कों को निम्नलिखित कथन करते हुए नकारा गया है :–

> "(a) हैंस बेकर की पुस्तक इस अवधारणा पर आधारित है कि अयोध्या एक वास्तविक नगर नहीं बल्कि कवि की एक कल्पना है।
> (b) उन्होंने अयोध्या की समानता साकेत नगर से की है।
> (c) अयोध्या महात्म्य से जन्मस्थान का अंकन करते हुए वे भारी कठिनाई का हवाला देते हैं, और अंततः कहते हैं कि बाबरी मस्जिद जन्मस्थान पर बनाई गयी है। जैसा कि स्थानीय विश्वास से अभिपुष्ट है।
> (d) यहां तक कि आक्षेपित निर्णय में भी यह उल्लिखित है कि हैंस बेकर का लेखन बिना कोई तर्क दिये कल्पना पर आधारित है।"

53. राष्ट्र के नाम इतिहासकारों की रिपोर्ट जो कि वाद सं. 4 में प्रदर्श सं. 62 है, पर पहले विचार किया जाय। राष्ट्र के नाम इतिहासकारों की रिपोर्ट से संदर्भित रिपोर्ट अयोध्या विवाद में विश्व हिन्दू परिषद के पक्ष पर उनकी टिप्पणी थी। भारत सरकार को लिखे गये पत्र में चारों इतिहासकारों की राय थी, "हमारा अध्ययन बताता है कि बाबरी

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मस्जिद के स्थान पर न तो किसी मंदिर का साक्ष्य है न ही वहां मस्जिद के निर्माण के पहले किसी ढ़ाचे के विध्वंश का"।

54. रिपोर्ट में उपरोक्त टिप्पणी कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का कोई संदर्भ न होना इस बात को बेहद संदेहास्पद बना देता है कि राम जन्मस्थान में विश्वास ऐसे सम्माननीय प्राचीनता का विषय है जैसा कि दावा किया जा रहा है। यथा उपरोक्त ध्यातव्य,वाल्मीकि रामायण महाकाव्य जिसकी रचना इसाई युग के प्रारम्भ के पूर्व की है, में अयोध्या में राजा दशरथ के महल में भगवान राम का जन्म अयोध्या में बताया गया है। रिपोर्ट इस निष्कर्ष पर भी पहुंच गयी कि ऐसे विश्वास का 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पहले का होना और भी संदेहास्पद है। आगे रिपोर्ट में स्कंद पुराण की रचना की अवधि के संबंध में टिप्पणी की गयी थी। रिपोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अयोध्या महात्म्य को 18 वीं शताब्दी के अन्त का या 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ का होना चाहिए। इस पर विचार करना आवश्यक है कि क्या रिपोर्ट में की गयी टिप्पणी कि स्कंद पुराण का अयोध्या महात्म्य 18 वीं शताब्दी के अन्त का या 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ की रचना है या इससे पहले की अवधि से संबंधित है।

55. भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित पी.वी. काने द्वारा लिखित धर्मशास्त्र का इतिहास खण्ड 5 भाग II में पुराणों और उनकी तिथि या अवधि के संबंध में विस्तार से विचार किया गया है। पी.वी. काने ने उपरोक्त संदर्भित वेंकटेश्वर प्रेस से यथा प्रकाशित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

VII वें भाग में स्कंद पुराण को भी संदर्भित किया गया है। विस्तृत विमर्श के पश्चात पी.वी. काने इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्कंद पुराण 7 वीं शताब्दी ई. के बाद का नहीं माना जा सकता। "धर्मशास्त्र का इतिहास" में स्कंद पुराण और इसकी तिथि निर्धारण के संबंध में पी.वी. काने का विमर्श निम्नवत है :–

> " "स्कंद"– यह पुराणों में सबसे विस्तृत है। इसमें जटिलतर समस्याएं सामने आयीं हैं। यह दो रूपों में पाया जाता है। पहला – सात खण्डों– महेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, अवन्तिनगर और प्रभास में विभाजित है और दूसरा छः संहिताओं–सनतकुमार, सूत, शंकरी, वैष्णवी, ब्रह्मी और सौर में विभाजित है। सात खण्डों वाला स्कंद वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित है और माधवाचार्य की व्याख्या वाला सूत संहिता एन.एन. प्रेस पूना से प्रकाशित है। स्कंद पुराण का विस्तार भिन्न भिन्न 81000 श्लोक, 100000 श्लोक (PRHR p.158) 86000 श्लोक (PRHR p.159) दिया गया है। स्कंद भगवान के नाम से लिखे इस पुराण में स्कंद भगवान का बहुत उल्लेख नहीं है। पद्म V.59.2 स्कंद I.2.6.79 में स्कंद लगभग उन्हीं शब्दों में है जैसे किरातार्जुनीय (II.30 'सहसा विदाधिता ना क्रियम') में। स्कंद काशीखंड 24 (8ff) बाण की शैली में श्लेष और परिसंख्य से भरा है। नाट्यवेद और अर्थ शास्त्र का काशी खंड (पूर्वार्ध 7. 4–5)में उल्लेख है। धनवंतरि और चरक का काशीखंड में उल्लेख है (पूर्वार्ध 1.71)। काशीखंड 72.74 में जोतिंगा शब्द आता है। आरंभिक भाष्यों में धर्मशास्त्र के विषय पर स्कंद का उद्धरण दिया जाता है। Mit. On Yaj. ii.290 में इसका उल्लेख वेश्याओं की स्थिति के संबंध में है।व्रत के संबंध में कल्पतरु इससे केवल 15 श्लोकों का उद्धरण देते हैं। तीर्थ के बारे में कल्पतरु(pp. 36–39,32,46,130–135) 92 श्लोकों का, धन पर केवल 44 का, नियतकाल पर 63 श्लोकों का,राजधर्म पर 18 श्लोक,श्राद्धकाण्ड में केवल 4, गृहस्थकाण्ड पर 3 है। अपार्क इससे केवल 19 श्लोकों का उद्धरण देते हैं। एक अन्य उद्धरण तांत्रिक प्रभाव (नोट द्वारा) दर्शित करता है। दानसागर दान के विषय पर 48 श्लोकों का उल्लेख करती है और Sm. C. कुलमिलाकर 23। स्कंद के विशाल श्लोकों को देखकर यह कहा जाना चाहिए कि धर्मशास्त्र ग्रंथों में इसे कम ही उद्धृत किया गया है।इसका एक श्लोक कालिदास के शब्दों को ध्वनित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करता प्रतीत होता है और देवल के दृष्टिकोण को उद्धृत करता है। ऐसे विशाल ग्रंथ में आसानी से प्रक्षेप किया जा सकता है। अतः इसे एक निश्चित तिथि देना कठिन है। नेपाल दरबार के पुस्तकालय की एक प्रति में यह ऐसे अक्षरों में लिखा गया है जो 7 वीं शताब्दी ए.डी. से संबंधित है। हरप्रसाद शास्त्री (नेपाल Palm–leaf mss. p. LII.) द्वारा।

यह कहना सत्य से दूर नहीं होगा कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर स्कंद को 7 वीं शताब्दी ए.डी. से पहले और 9 वीं शताब्दी ए.डी. से बाद की अवधि में नहीं रखा जा सकता।"

56. साक्ष्य के दृष्टिगत स्कंद पुराण की रचना की कालावधि के संबंध में आगे किसी भी प्रकार की चर्चा किये जाने की आवश्यकता नहीं है जिसको वाद 4 के वादी ने स्वयं रखा है। पी. डब्ल्यू. 20 श्रीरीन मुसावी ने अपने बयान में कहा है कि रामकोट के भौगोलिक परिषद ने स्कंद पुराण में इसका विवरण पाया। उक्त के संबंध में उन्होंने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा कि स्कन्द पुराण उन्नीसवीं शताब्दी से संबंधित है जो निम्नवत हैः–

"मैंने अयोध्या में स्थित रामकोट के बारे में पढ़ा है। रामकोट के भौगोलिक परिक्षेत्र का विवरण स्कन्द पुराण में मिलता है। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है। यह सच है कि सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक अयोध्या में एक खास जगह को रामकोट के नाम से जाना जाता है। स्कन्द पुराण को नवीं शताब्दी का माना जा सकता है।"
(ई.टी.सी.)

57. उक्त के दृष्टिगत, चारों इतिहासकारों ने अपने रिपोर्ट में कहा कि स्कन्द पुराण का अयोध्या महात्मय की रचना अठ्ठारवीं शताब्दी के अन्त में अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की गयी है ऐसा स्वीकार की जा सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आगे यह ध्यान देना तर्कसंगत होगा कि स्कन्द पुराण के महात्मय के संबंध में हिन्दू पक्षकारों की तरफ से वाद 5 के साक्षियों एवं अन्य साक्षियों का परीक्षण किया गया साथ ही साथ इनका स्कन्द पुराण के महात्मय के श्लोकों के आधार पर प्रतिपरीक्षा की गयी लेकिन किसी भी साक्षी के बयान के आधार यह नहीं कहा जा सकता कि स्कन्द पुराण का अयोध्या महात्मय की रचना अट्ठारवीं शताब्दी के अन्त में अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में की गयी थी। इस प्रकार इतिहासकारों ने जो रिपोर्ट दी है उसमें उनका मानना है कि स्कन्द पुराण लम्बे समय से चले आ रहे राम जन्म स्थान में किसी भी विश्वास का समर्थन नहीं करता है जो कि अस्वीकार्य है।

58. इतिहासकारों ने अपनी रिपोर्ट में जो अन्य त्रुटि की है वह यह है कि अयोध्या महात्म्य में उल्लिखित कथा को जब दर्ज किया जा रहा था तो रिपोर्ट में "लॉमासा" को वर्तमान रिन मोचान घाट के साथ संदर्भित किया गया। उक्त के संदर्भ में यह रिपोर्ट निम्नलिखित कथन करती हैः–

> "स्थानीय हिन्दू की मान्यता के अनुसार लॉमासा अथवा लॉमासा का स्थान रिन मोसान घाट जैसा है।"

59. उक्त निष्कर्ष स्थानीय हिन्दू मान्यता को संदर्भित कर निकाला गया है जबकि लॉमासा का अस्तित्व और इसकी परिस्थिति और पहचान तब से सुस्थापित है जब से पत्थर का स्तम्भ वर्ष 1901–02 में यहां रखा गया है जिसको वाद 5 में वादी की ओर से उपस्थित साक्षियों ने साबित कर दिया है। स्वामी अविमुक्तस्वरानंद के कथन का पहले ही संदर्भ दिया जा चुका है। उक्त त्रुटि के चलते चारों इतिहासकारों द्वारा राम जन्मभूमि का स्थापन त्रुटिपूर्ण रहा है। चारों इतिहासकारों द्वारा रिन मोचान घाट के रूप में लोमास

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की पहचान संभवतः गलत है। वाद संख्या 2 वर्ष 1950, नक्शा नजरी को दिनांक 01.04.1950 को शिवशंकर लाल, न्यायालय आयुक्त, ने तैयार किया था जिसका उत्तर माननीय उच्च न्यायालय ने दे दिया है और इस पर किसी ने प्रश्न नहीं उठाया है। उक्त नक्सा नजरी में, जो न्यायमूर्ति एस. यू. खान द्वारा पारित निर्णय में संस्करण 1 पृष्ठ संख्या 30 पर और न्यायमूर्ति सुधीर अग्रावाल द्वारा पारित निर्णय के परिशिष्ट 2 सी में प्रकाशित है जिसमें लोमास को जन्म भूमि के दक्षिण पूर्वी किनारे के रूप में उल्लिखित किया है जो सरयू नदी के किनारे मोचान घाट के रूप में चारों इतिहासकारों द्वारा लोमास के स्थानन को साफ–साफ नकार देता है। रिपोर्ट में कुछ अन्य अवलोकन किया गया है जिसको अभिस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। रिपोर्ट में यह लिखा है कि स्कन्द पुराण स्वर्गद्वार तीर्थ का संदर्भ देती है जिस पर 100 छन्द स्वर्गद्वार के विवरण को समर्पित किया गया है जबकि केवल 8 छन्द जन्म स्थान को समर्पित है जिसका अर्थ है कि स्वर्गद्वार तीर्थ जन्म स्थान से अधिक महत्वपूर्ण है। क्या 8 छन्दों में जन्मस्थान की व्याख्या इसके विवरण और परिक्षेत्र का महत्व को कम करेगा? जिसका उत्तर स्पष्ट रूप से 'नहीं' है। यह आगे देखा जा सकता है कि पूरी रिपोर्ट कुछ भी नहीं है बल्कि विश्व हिन्दू परिषद के मामले का विरोध है जैसा कि रिपोर्ट के शुरुआत में ही उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह रिपोर्ट विश्व हिन्दू परिषद के विरोध में बनायी गयी है, जो स्वयं यह बताती है कि चारों इतिहासकारों ने पूरे विषय को निष्पक्ष और वस्तुपरक नहीं माना था।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

60. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने आक्षेपित निर्णय में चारों इतिहासकारों द्वारा दी गयी रिपोर्ट पर सविस्तार विचार कर पाया कि इसका अवलम्ब लेना लाभकारी नहीं है। इतिहासकारों की रिपोर्ट और कुछ साक्षियों संबंध में निम्नलिखित शब्दों में बहुत ही मजबूत विश्लेषण किया गया है:–

> "3622. हम यहां उल्लेख करना चाहेंगें कि हालांकि यह दावा किया गया है कि उक्त रिपोर्ट को चार लोगों द्वारा बनाया गया है लेकिन इसमें श्री डी.एन. झा के हस्ताक्षर नहीं हैं। कथित विशेषज्ञ की राय जो उनके अध्ययन और शोध कार्य पर आधारित नहीं है बल्कि अन्य की रायों पर आधारित है, हमारे विचार में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 तथा हिमाचल प्रदेश बनाम जयलाला(उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्याायलय द्वारा सुस्थापित विधि के तहत विचारित किया जाना सुसंगत नहीं है।"
>
> "3623. आम तौर पर न्यायालय साक्षियों की गवाही पर प्रतिकूल टिप्पणी नहीं करते हैं और इसके लिए इतना पर्याप्त है कि साक्षी विश्वनीय है अथवा नहीं, लेकिन विवाद की प्रकृति और संवेदशीलता और लापरवाहीभरा और गैरजिम्मेदाराना बयानों को भी विचार कर हम इस विशेष मामले में स्वयं का प्रतिरोध कठिन मानते हैं और उन तथ्यों को इतिहास और पुरात्तव इत्यादि के विशेषज्ञ का दावा करने वाले लोगों द्वारा बिना उस विषय में उचित जांच, शोध अथवा अध्ययन के प्रकाशित करवा दिया गया।"
>
> "3624. यह सच में चौंकानेवाला है। इसने न केलव हमको आश्चर्यचकित किया बल्कि हम स्तब्ध रह गये। सार्वजनिक रूप से किया गया ऐसा बयान बड़े पैमाने पर चीजों को स्पष्ट करने के बजाय अधिक भ्रम पैदा करता है। समन्जस्यपूर्ण माहौल बनाने में मदद करने की अपेक्षा यह अधिक जटिलता, विवाद और विरोध पैदा करता है। उन्हें सार्वजनिक रूप से ऐसा बयान देने से पहले बहुत ही सावधानी और सचेतता बरतनी चाहिए।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"3625. उन लोगों का मानना है कि जो कुछ भी विद्वान और शोधार्थी द्वारा कहा गया है वह बिना किसी आधार के नहीं होगा। आमतौर पर वे इसे तथ्य और मामले के सही कथन के रूप में स्वीकार करते हैं। आमतौर पर इन व्यक्तियों को कोई ऐसा मंच नहीं मिलता है जहां पर इनके बयान का अन्य विशेषज्ञों द्वारा परीक्षण किया जा सके जैसा कि न्यायालय में प्रतिपरीक्षा होती है। विधिक शब्दावली में हम कह सकते हैं ये कथन आमतौर पर एकपक्षीय और एकतरफा है। लेकिन यह ऐसे व्यक्ति को यह अनुज्ञप्ति प्रदान नहीं करता है कि वह बिना जिम्मेदारी व जवाबदेही के इसकी प्रमाणिकता के बारे में कोई भी बयान करे। कोई नहीं कह सकता है कि यद्यपि मैने बयान दिया था लेकिन मैं इसकी प्रमाणिकता की जिम्मेदारी नहीं लेता हूँ क्योंकि यह मेरे अध्ययन और शोध पर आधारित नहीं है बल्कि जो कुछ मैने दूसरों से जाना वहीं मैने कहा है। कोई भी व्यक्ति विशेषतौर से वह किसी विषय का विशेषज्ञ होने का दावा करता हो, इतिहास इत्यादि विषय का स्वघोषित विद्वान हो;या तथ्य या घटना कोई मत व्यक्त कर सकती है जब तक कि वह अपने अनुसंधान या अध्ययन से इस बात से संतुष्ट न हो कि उसका/उसकी दृष्टिकोण वहीं है और तर्कों के साथ वैसा ही कथन करना चाहता/चाहती है।"

61. इस रिपोर्ट के एक अन्य पहलू पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस रिपोर्ट में प्रो. बी.बी. लाला (भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग) द्वारा करायी गयी खुदायी का संदर्भ रामायण के स्थलों को पहचान के लिए दिया गया है। उक्त खुदायी श्री बी.बी. लाला द्वारा सन् 1975–76 में कराया गया। विवादित ढ़ाँचे की दक्षिण की तरफ कुछ खाईं खोदी गयीं और श्री बी.बी. लाला ने मत व्यक्त किया कि कुछ आधार स्तम्भ मिले दक्षिण दिशा में बाबरी मस्जिद को दर्शित करते हैं। इस रिपोर्ट में, श्री बी.बी. लाल द्वारा खुदायी का संदर्भ देने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलता है–

"अन्त में, ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे दर्शित हो कि बाबरी मस्जिद से 60 मी. की दूरी पर स्थित आधार स्तम्भ बाबरी मस्जिद में प्रयुक्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्तम्भों के सीध में हैं। वास्तव में आधार स्तम्भों पर स्थापित ढ़ाँचा से कोई महत्व नहीं जोड़ा जा सकता है। यह एक छोटा बरामदा हो सकता है जिसका प्रयोग पशु छावनी अथवा रहने के लिए किया जाता हो। ऐसे ढ़ाँचे आज भी उस जगह पर पाये जाते हैं।"

62. उस स्थल को छोड़कर जहां पर अस्थाई ढांचा स्थित था विवादित स्थल की खुदाई उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 05–03–2003 के तहत भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग (ए. एस. आई.) द्वारा करायी गयी। ए. एस. आई ने विस्तृत रिपोर्ट जमा कर दी है जिस पर अलग से विचा किया जाएगा। वर्ष 1975–76 में श्री बी.बी. लाल द्वारा की गयी खुदाई के जिन निश्चित आधार पर चारों इतिहासकारों ने जो राय बनायी है वह उच्च न्यायालय के आदेशों के तहत ए.एस.आई. द्वारा की गयी विस्तृत कार्यवाहियों के दृष्टिगत बहुत अधिक सुसंगत नहीं हो पायी है। अतः ए.एस.आई. द्वारा उक्त उत्तरवर्ती विस्तृत खुदाई के चलते इतिहासकारों की रिपोर्ट पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

63. डा. धवन ने पर हंस बक्कर द्वारा रचित पुस्तक अयोध्या के संदर्भ में बयान दिया है। पुस्तक अयोध्या डच विद्वान हंस बक्कर का शोध प्रबंध है जिसको उसने वर्ष 1984 में ग्रोनिन्जन विश्वविद्यालय में जमा किया। इस पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 1986 में किया गया है जिसमें विस्तृत विवरण मौजूद है और जो तीन भागों में है। अयोध्या के तीन नक्शे भी बनाये गये जिसमें रामजन्मभूमि, बाबरी मस्जिद एवं अन्य ऐतिहासिक महत्व के स्थान सम्मिलित हैं। हंस बक्कर ने अपनी पुस्तक में अयोध्या महात्म्य का सविस्तार वर्णन किया है जिसमें वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई प्रकाशित अयोध्या महात्म्य का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वर्णन एवं कई अन्य स्त्रोतों से प्राप्त अयोध्या महात्मय की कुछ हस्तलिपियां सम्मिलित है। उन्होंने उन हस्तलिपियों की तुलना की जिसमें एक बोल्डियन लाइब्रेरी, ऑक्सफोर्ड, लण्दन, व्रिंदावन रिसर्च इंस्ट्यूट, ओरिएण्टल इंस्ट्यूट बरोदा एण्ड़ रिसर्च इंस्ट्यूट जोधपुर से प्राप्त किया। इन तुलनाओं की व्याख्या कर एवं सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार कर हंस बक्कर ने अध्याय–21 में मत व्यक्त किया है कि जन्म स्थान का मूल स्थान तुलनात्मक रूप से निश्चित है क्योंकि यह उस जगह से प्रमाणित प्रतीत होता है। बक्कर ने निम्नलिखित बयान किया हैः–

> "उपरोक्त उल्लिखित सभी कठिनाइयों के होते हुए भी, रामजन्म स्थान की मूल स्थिति तुलनात्मक रूप से निश्चित है क्योंकि यह बाबर द्वारा बनायी गयी मस्जिद से सत्यापित प्रतीत होता है उस भवन में पूर्व में बनाये गये मंदिर के भवन सामाग्रियां अब भी देखीं जा सकती है। सामान्यतः यह माना जाता है कि जन्मस्थान की जगह पर काबिज होने के लिए मस्जिद बनायी गयी है।
>
> मूल मंदिर के तोड़े जाने के बाद मस्जिद के उत्तर दिशा में नया जन्मस्थान मंदिर को बनाया गया जो एक रास्ते से इससे अलग होता है।"

64. अयोध्या महात्म्य में दिये गये स्थानों की चर्चा करने के उपरान्त जहां तक नक्शा बनाये जाने का प्रश्न है, अयोध्या महात्म्य के अलग–अलग संस्करण जिसमें से एक वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित शामिल है, अन्त में हंस बेकर निष्कर्ष निकालते हैं कि पांचों नक्शों में अयोध्या और उसके क्षेत्र की विचित्र स्थलाकृति सम्मिलित है ऐसा अयोध्या महात्म्य की प्रथा बताती है जो कि 1980 के बसंत और 1983 के ग्रीष्मकालीन समय के बीच किये गये सर्वे पर आधारित है। अन्त में, वह निम्नलिखित बयान करते हैंः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"इसमें संलग्न पांचो नक्शे अयोध्या और इसके क्षेत्र के विचित्र स्थालाकृति को प्रस्तुत करते हैं ऐसा अयोध्या महात्म्य की प्रथा बताती है जो जो 1980 के बसंत और 1983 के ग्रीष्मकालीन समय के बीच किये गये सर्वे पर आधारित है। अयोध्या नगर की स्थलाकृति के संबंध में सीरीज 1:50000 के पत्र संख्या 63 जे/1 का सम्यक रूप से पुनरीक्षण किया जाना आवश्यक था। (नक्सा–3, स्केल 1:10000)"

65. अपने तर्क के समर्थन में कि अयोध्या वास्तविक शहर नहीं है बल्कि कवि की कल्पना की उपज है जैसा कि हंस बक्कर ने उल्लेख किया है, डॉ. धवन ने उस किताब की निम्नलिखित गद्यांश का संदर्भ दिया हैः–

"यह स्पष्ट हो चुका है कि अयोध्या नगर केवल साहित्य का भाग है जो प्रसिद्ध है, इस शहर की ऐतिहासिकता का प्रश्न अच्छे से उठाया जा सकता है। इस प्रश्न के निस्तारण के लिए हमें शुरु के ऐतिहासिक काल पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, कहने का आशय यह कि ईस्वी के दूसरी शताब्दी तक। 'अयोध्या' नाम उस समय के किसी पुरातात्विक अथवा उत्कीर्ण लेख साक्ष्य द्वारा साबित नहीं है।"

66. उक्त अवलोकन '600 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी के म्ध्य साकेत/अयोध्या का इतिहास' विषय के अध्याय में प्रकट होता है। उक्त टिप्पणी करने के उपरान्त, हंस बक्कर ने जो निष्कर्ष निकाला है वह इस प्रकार हैः–

"अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्राचीन महाकाव्य में अयोध्या के बारे में जो सूचनाएं हैं वह उस नाम के प्राचीन शहर से संबंधित ऐतिहासिक आँकड़ा नहीं उपलब्ध कराती है बल्कि केवल उस जगह ए. वाई.को प्रदर्शित करती हैं।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

67. हंस बक्कर ने जब इतिहास का परीक्षण किये तब उन्होंने जैन एवं बुद्द की मूर्तियों पर भी विचार किया। इसके बाद बक्कर ने धारित किया कि अयोध्या की पहचान का प्रारम्भ एवं अन्त गुप्त काल में हुआ। इस पुस्तक में आगे जो अवलोकन किया गया वह इस प्रकार हैः–

> "कथा क्षेत्र का रूप धारण अन्त में अयोध्या और साकेत के पहचान के सामान्य अभिस्वीकृति में परिणत हुया, जो स्थान ए.वाई. है यह प्रक्रिया गुप्त काल में सम्पन्न हुयी। वह पहचान अब भी सार्वभौमिक रूप से प्रारम्भिक गुप्त शासन के दौरान नहीं अभिस्वीकृत की गयी जो कुछ पुराणों में अनुसरण की गयी प्रतीत होती है, जिसमें गुप्त शासकों को बजाय अद्भुत अयोध्या के वास्तविक के साकेत पर संप्रभुता का श्रेय दिया गया।
>
> इस अवधि के दौरान साकेत के साथ अयोध्या की पहचान न केवल जैन स्त्रोत से पुष्ट होते हैं बल्कि संस्कृत कथा बह्मापुराण 3.54.54 (सी.पी. ओ.पी. सी.आई.टी. 3.54.5) और सबसे ज्यादा संगततता कालिदास के रघुवंश से है। यह केवल उस अवधि से जब से अयोध्या का नाम मौजूदा नगर को दर्शाने के लिए प्रयोग किया जाता था जिसका हम सम्पोषक पुरातात्विक साक्ष्य पता लगाने के लिए आशायित हैं। ऐसी गवाही आवश्यक होती है जो उत्तरवर्ती गुप्तों के अभिलेखों में मिलते हैं। (5 वीं शताब्दी)– यह अभिलेख 436 ईस्वी का है जिसमें अयोध्या का ब्राह्मणों के रूप में दानदाताओं का वर्णन है। 533/3 ईस्वी के गुप्त अभिलेख में अयोध्या के कुलीन जनों का वर्णन है। समुद्रगुप्त का नकली गया ताम्रपत्र अभिलेख संभवतः 8 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में गढ़ा गया था जिसमें अयोध्या का एक दुर्ग नगर के रूप में वर्णन है।"

68. इस प्रकार अयोध्या की पहचान संस्कृत धर्मशास्त्र और उत्तरवर्ती गुप्तकाल से सत्यापित एवं साबित हो चुका है। इस प्रकार जो पहले अवलोकन किया गया था उसका यह प्रभाव था कि अयोध्या किसी भी महाकाव्य से सत्यापित नहीं है लेकिन जब लेखक ने इसकी पहचान कर ली तब पूर्व में किया गया अवलोकन अपने महत्व को खो देता है। जहां तक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बक्कर द्वारा किये गये अवलोकन जिसमें उन्होंने अयोध्या की तुलना साकेत से की, का प्रश्न है कोई भी अपवाद नहीं गठित हो सकता है। साकेत और अयोध्या साहित्य और इतिहास में समानर्थी रूप में प्रयोग किये गये हैं। सम्पूर्ण सामाग्री पर विचार करने के पश्चात जन्मस्थान के नक्शे के संबंध में हंस बक्कर जन्मस्थान क्षेत्र को प्रमाणित करते हैं। हंस बक्कर जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं ऐसा कहा जा सकता है कि वह शंकाओं और अनुमानों पर आधारित है।

69. एक अन्य पहलू जो प्रश्नगत कालावधि के लिए प्रसांगिक है उस पर विचार किया जा सकता है। डी. डब्ल्यू 2/1–1, राजिन्दर सिंह वाद संख्या –4 बचावपक्ष संख्या 2 के लिए गवाह के तौर पर प्रस्तुत हुआ जो सिख समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पुस्तकों के अध्ययन करने में रूचि रखता है। उसने मुख्य परीक्षा में सिख समुदाय और इतिहास की पुस्तकों का संदर्भ दिया। उसने मुख्य परीक्षा में भी कहा कि गुरु नानक देव जी ने अयोध्या स्थित रामजन्मस्थान मन्दिर के दर्शन की मांग की थी। जिस समय गुरू नानक देव जी अयोध्या गये और दर्शन किये ऐसा कहा जाता है कि वह 1510–1511 ईस्वी का काल था। मुख्य परीक्षा के प्रस्तर 11 में वह कहता हैः–

> "11. भाद्रपद पूर्णिमा 1564 विक्रमी यानी 1507 ईस्वी के शुभ दिन जब गुरू नानक देव जी को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ तब उन्होंने तीर्थ यात्राओं पर जाने का निश्चय किया। तब वे दिल्ली, हरिद्वार, सुल्तानपुर इत्यादि होते हुए अयोध्या गये। इसी प्रकार 1567–1568 विक्रमी यानी 1510–1511 ईस्वी में गुरूनाननक देव जी रामजन्म भूमि देखने तीर्थ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यात्रा पर गये। यहां यह उल्लेख है कि उस समय तक बाबर ने भारत पर आक्रमण नहीं किया है।"

70. अपने बयान के साथ उन्होंने कई जन्म साखी संलग्न की जिसमें गुरू नानक देव जी का अयोध्या दौरा और राम जन्म भूमि का दर्शन मौजूद है। न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने भी कई जन्म साखी का संदर्भ दिया है जिसको साक्षियों द्वारा संदर्भित कर भरोसा जताया गया। साक्षियों द्वारा संदर्भित कर भरोसा जताये गये जन्म साखी का विस्तृत संदर्भ का उल्लेख शपथपत्र के प्रस्तर 5 में किया गया है। मुख्य परीक्षा के प्रस्तर 5 में वह कहते हैः–

"5. मैने सिख समुदाय और इतिहास के बारे में संपादित और प्रकाशित कई प्राचीन पुस्तकों का अध्ययन किया था जिसमें "आधी सखी (1758 विक्रमी 1701 ईस्वी), गुरू नानक देव जी की पुरातन जन्म सखी (1791 विक्रमी 1743 ईस्वी), भाई मान सिंह की रचना (जीवन काल 1701–1791 विक्रमी 1644–1743 ईस्वी), पोथी जन्म साखीः ज्ञान रत्नावली", भाई बलेवाली" (श्री गुरू नानक देव जन्म सखी" (1940– विक्रमी 1883 ईस्वी) सोढ़ी मनोहरदास मेहरबान की रचना(जीवनकाल 1637–1697 विक्रमी 1580–1610 ईस्वी) "सखण्ड़ पोथीः जन्मसखी श्री गुरू नानक देव जी, बाबू सुखबासी राम वेदी की रचना(गुरू नानक देव जी के छोटे पुत्र श्री लक्ष्मी चंद्र के आठवें वंशज) "गुरू नानक वंश प्रकाश (1986 विक्रमी 1829 ईस्वी), तारा हरि नरोत्तम की रचना (जीवन काल 1879–1948 विक्रमी 1822–1891 ईस्वी) "श्री गुरू तीरथ संग्रही" और ज्ञान सिंह की प्रसिद्ध रचना "तवारिख गुरू खैराः भाग–1 (1948 विक्रमी 1891 ईस्वी) इत्यादि। इस पुस्तक से प्राप्त सूचना से यह स्पष्ट है कि विवादित स्थल श्रीरामचन्द्र जी की जन्म भूमि है और श्री गुरू नानक देव जी अयोध्या स्थित राम जन्म स्थान का दशन करना चाहते थे। इन पुस्तकों से यह भी साबित होता है कि समय बीतने के साथ गुरू तेगबहादुर सिंह अपने पुत्र गुरू गोविंद सिंह के साथ अयोध्या स्थित राम जन्म भूमि मन्दिर का दर्शन की इच्छा जताये हैं।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

71. अभिलेख पर मौजूद जन्म सखी के अंश में गुरू नानक देव जी के अयोध्या दौरे का विवरण मिलता है जहां पर उन्होंने भगवान राम के जन्म स्थान का दर्शन किया था। अभिलेख पर मौजूद जन्म सखी के अंश में राम जन्म स्थान के वास्तविक स्थान की पहचान करने के लिए कोई भी ऐसी सामाग्री नहीं है बल्कि गुरू नानक का रामजन्म भूमि के दर्शन करने का अयोध्या दौरा एक घटना है, जो उल्लेख करता है कि श्रद्धालु अयोध्या आते थे और 1528 ईस्वी से पहले भी जन्म भूमि का दर्शन करने आते थे। 1510–11 ईस्वी में गुरू नानक का अयोध्या आना और जन्म भूमि का दर्शन करना हिन्दुओं की आस्था और विश्वास का समर्थन करता है।

72. अतः यह धारित किया जा सकता है कि भगवान राम के जन्मस्थान के संबंध में हिन्दुओं की आस्था एवं विश्वास साहित्य एवं पवित्र पुस्तकों से आता है जिसमें बाल्मीकि रामायण और स्कंद पुराण शामिल है। यह आस्था और विश्वास आधारहीन नहीं हो सकता है। इस प्रकार यह पता चलता है कि 1528 ईस्वी से पहले की अवधि में पर्याप्त मात्रा में धार्मिक पुस्तकें मौजूद थी, जिसके कारण हिन्दू वर्तमान राम जन्मभूमि को भगवान राम की जन्मस्थली मानते थे।

1528 ईस्वी से 31.10.1858 के दौरान राम जन्मस्थान से संबंधित आस्था और विश्वास

73. इस दौरान तुलसीदास ने संवत् 1631 (1574–75 ईस्वी) में रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस ने श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया जैसे

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि हिन्दू बाल्मीकि रामायण पढ़ते व सम्मान देते हैं। रामचरितमानस ने हिन्दू आस्था के महाकाव्य की प्रास्थिति को प्राप्त कर लिया है। गोस्वामी तुलसी दास ने भगवान विष्णु द्वारा बोले गये छन्दों बालकाण्ड़ की रचना की। जब बह्मा ने भगवान विष्णु से देवता, ऋषियों, और गन्धर्वों और राक्षस रावण के आतंक से मुक्त कराने की प्रार्थना की तो भगवान विष्णु ने कहा कि मै कोशलापुरी में दशरथ और कौशल्या के यहां मानव अवतार में जन्म लूंगा। 186 दोहा के बाद बालकाण्ड़ में निम्नलिखित तीन चौपाईयां भगवान विष्णु ने कहीं है:–

जनि डपरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।१।।

"हे मुनि, सिद्ध और इन्द्र (देवताओं के राजा) आप मत डरें, आप के कल्याणार्थ मैं मानव रूप में अवतार लूंगा। गौरवमयी सूर्यवंश में अपने भागों सहित मानव रूप में जन्म लूंगा।"

कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूर्ब बर दीन्हा।।

ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा।।

"ऋषि कश्यप और और उनकी पत्नी अदिति ने घोर प्रयाश्चित किया। उनको मैंने पहले ही वरदान दे दिया है। वे अयोध्या में दशरथ और कौशल्या के रूप में मानवीय शासक के रूप में प्रकट हो चुकें हैं।"

तिन के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।

नारद बचन सत्य सब करिहुउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।।

"मैं रघुकुल में चार भाईयों के रूप में दशरथ और कौशल्या के घर में जन्म लूंगा। जैसा कि नारद ने कहा है मैं पूर्णावतार रूप में धरती में प्रकट होऊँगा।"

74. उक्त चौपाईयां न केवल भगवान विष्णु के अवधपुरी अर्थात अयोध्या में अवतार को बताता है बल्कि दोहा विशेषतौर से यह बताता है कि वह

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कौशल्या और दशरथ के यहां मानवातार लेगें। उक्त दोहा न केवल भगवान का अयोध्या में जन्म को बताता है बल्कि उस जगह को भी बताता है जहां पर वह मानवातार लेगे, जिसका वर्णन स्पष्ट तौर पर शब्दों में 'टीन का गृह' (दशरथ और कौशल्या का घर) नाम से है।

75. विरोधी पक्षकारों ने इस काल से संबंधित अनेक प्रकार के गजटों, यात्रावृत्तांतों का संदर्भ देकर भरोसा जताया है। हिन्दू पक्षकारों के अनुसार उस काल के गजट और महत्वपूर्ण पुस्तकें पर्याप्त रूप से भगवान राम के जन्म स्थान पर हिन्दुओं के आस्था और विश्वास को साबित करते हैं, जिसकी उस दौरान हिन्दुओं द्वारा पूजा की गयी। दूसरी तरफ राजीव धवन ने तर्क दिया कि 1958 के पहले गजेटियर जांच नहीं कर सकते हैं और ब्रिटिस सरकार के तहत 1958 के पहले तैयार किया गया गजट कुछ मदद दे सकता है। वह कथन करते है कि ईस्ट इण्ड़िया कम्पनी के शासन के दौरान किये गजट पर न तो विश्वास किया जा सकता है और न ही उसे गजट कहा जा सकता है। सभी यात्रावृत्तांतों से संबंधित विवरण अलग–अलग पुस्तकों में प्रकाशित किये गये, डॉ. धवन कथन करते हैं कि यात्रियों द्वारा दिये गये उक्त विवरण पर भरोसा नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे सभी सुनी सुनाई बातें हैं और यह विवरण केवल कहानियों पर आधारित हैं। सबसे पहले यह विचार करना जरूरी है कि क्या गजेटियर और यात्रावृत्तांत पुस्तकों को इस विषय को विचारित करने के लिए न्यायालय द्वारा साक्ष्य माना जा सकता है जो इस वाद में इस न्यायालय के समक्ष उत्पन्न हुये है जिसके चलते इसे आक्षेपित अपीलों में उठाया गया। साक्ष्य अधिनियम, 1872 साक्ष्य संबंधी विधियों को

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

समेकित, परिभाषित एवं परिभाषित करता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में परिभाषित है। साक्ष्य की परिभाषा अधिनियम संख्यांक 21 वर्ष 2000 द्वारा यथासंशोधित रूप में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार हैः–

> **"साक्ष्य"**.–"साक्ष्य" से अभिप्रेत एवं उसके अन्तर्गत–
> (1) वे सभी कथन जिनके जाँचाधीन न्यायालय साक्षियो द्वारा अपने समक्ष किये जाने की अनुज्ञा देता है,
>
> ऐसे कथन मौखिक कथन कहे जाते हैं;
>
> (2) सभी दस्तावेज जिसमें इलेक्ट्रानिक अभिलेख शामिल है जिसको न्याायलय के जांच के लिए पेश किया जाता है,
>
> ऐसे दस्तावेज दस्तावेजी साक्ष्य कहे जाते हैं।"

76. साक्ष्य अधिनियम की धारा 57 में वे तथ्य प्रगणित है न्यायालय को जिनकी न्यायिक अवेक्षा करनी चाहिए। जहां तक धारा 57 का प्रश्न है वर्तमान मामले में यह सुसंगत जो इस प्रकार हैः–

> "**57. तथ्य जिनकी न्यायालय द्वारा न्यायिक अवेक्षा की जानी चाहिए**.–
> न्यायालय निम्नलिखित तथ्यों की न्यायिक अवेक्षा करेगा;
> (1) भारत गणराज्य में प्रचलित सभी विधियां;
>
> xxxxxxxxxxxx
>
> इन सभी मामले में, लोक इतिहास साहित्य और विज्ञान अथवा कला के मामलों में भी यह अदालत समुचित संदर्भ पुस्तकों दस्तावेजों की मदद ले सकती है।
>
> यदि कोई व्यक्ति न्यायालय से किसी तथ्य की न्यायिक अवेक्षा किये जाने की मांग करता है तो न्यायालय ऐसा करने से मना कर सकती है जब तक ऐसा व्यक्ति ऐसी कोई पुस्तक अथवा ऐसा कोई दस्तावेज नहीं प्रस्तुत करता है जैसा कि न्यायालय ऐसा करने के लिए आवश्यक समझें।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

77. तथ्य की परिभाषा जिस पर न्याायलय न्यायिक अवेक्षा करेगा वह पूर्ण परिभाषा नहीं है। कथन "लोक इतिहास, साहित्य, विज्ञान अथवा कला के सभी मामलों पर" न्यायालय को गजेटियरों, यात्रावृत्तांतों और पुस्तकों पर विचार किये जाने के लिए समर्थ बनाने के लिए पर्याप्त हैं। उक्त प्रावधान आरोहिका के साथ है कि यदि कोई व्यक्ति न्यायालय से किसी तथ्य की न्यायिक अवेक्षा किये जाने की मांग करता है तो न्यायालय ऐसा करने से मना कर सकती है जब तक ऐसा व्यक्ति ऐसी कोई पुस्तक अथवा ऐसा कोई दस्तावेज नहीं प्रस्तुत करता है। दोनों पक्षकारों ने इस न्यायालय के कई निर्णयों का उल्लेख किया है जहां पर न्याायलय के पास साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत गजेटियर और अन्य पुस्तकों की ग्राह्यता और गजेटियरों, यात्रावृत्तांतों और पुस्तकों में किये गये कथनों के महत्व पर विचार किये जाने का अवसर था। **सुखदेव सिंह बनाम गिदौर के महाराजा बहादुर ए.आई.आर. 1951 एस.सी. 288** के मामलें में इन न्यायालय ने अभिनिर्णीत किया कि गजेटियर एक शासकीय दस्तावेज होता है जिसका कुछ महत्व होता है क्योंकि कुशल अधिकारियों द्वारा बड़ी ही सावधानी से तैयार किया जाता है। प्रस्तर 10 में निम्नलिखित अवलोकन किया गयाः–

> **"10.** xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx
>
> जिला गजेटियर में किया गया कथन जरूरी नहीं कि वह सम्पोषक हो, लेकिन गजेटियर एक शासकीय दस्तावेज होता जिसका कुछ महत्व होता है, क्योंकि इसको शासकीय कर्मचारियों द्वारा शासकीय दस्तावेजों को प्राप्त कर बड़ी सावधानी से तैयार किया जाता है। क्योंकि मुख्य न्यायमूर्ति डाउसन मिलर ने **फूलबती मामला, ए.आई.आर. 1923 पटना 423** का उल्लेख किया, जहां पर उपरोक्त उल्लिखित बाद वाले भाग में कुछ अशुद्धियां हैं लेकन जहां तक पहले वाले भाग का प्रश्न है ऐसा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रतीत होता है यह उन दस्तावेजों से जिनका संदर्भ दिया गया है समुचित समर्थन प्राप्त करता है।"

78. **गोपाल केतकर बनाम मोहम्मद जफर मोहम्मद हुसैन ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 5** के मामले में इस अदालत ने बाम्बे गजेटियर का संदर्भ देकर भरोसा जताया है। प्रस्तर 4 में अदालत 18 वीं शताब्दी में बने गुम्बद की प्रकृति की जांच कर रहा था। प्रस्तर 4 में अदालत ने कहाः–

> "4. उस पवित्र स्थल का एक उत्कृष्ट और कुछ मामलों में पौराणिक इतिहास है। इसकी उत्पत्ति इसकी प्राचीनता में खो गयी लेकिन बॉम्बे प्रेसीडेंसी के गजेटियर हमें बताते हैं कि यह मकबरा एक मुस्लिम संत का है जो तेरहवीं शताब्दी में एक अरब मिशनरी के रूप में भारत आया था। वर्ष 1780 में उनकी प्रसिद्धि तब भी अपने चरम पर थी जब अंग्रेजों ने उसकी उपस्थिति कल्याण के पास बना दी थी, जहां मकबरा स्थित है। जैसा कि वे केवल दो वर्ष तक रहे और वर्ष 1782 में उनका जाना मृत संत की शक्ति को बताया गया था।"

79. **महन्त श्री श्रीनिवास रामानुज दास बनाम सूरजनारायण दास बनाम अन्य एआईआर 1967 एससी 256** में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने 1908 की ओ'मैले की पुरी गजेटियर पर विचार किया था। गजेटियर में ईमार मठ का इतिहास बताया गया था। अपीलकर्ता द्वारा न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि गजेटियर को एक साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। न्यायालय ने अवधारित किया कि सार्वजनिक इतिहास के मामलों में गजेटियर पर विचार नहीं किया जा सकता है। प्रस्तर 26 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया गयाः–

> "26. अपीलकर्ता की ओर से यह कहा गया है कि गजेटियर में जो कुछ कहा गया है, उसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। गजेटियर में दिए गए इन कथनों पर साक्ष्य के रूप में अवलम्ब नहीं

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिया जाता है बल्कि ऐतिहासिक सामग्री और मठ तथा इसके प्रमुख द्वारा अनुसरणीय प्रथा के बारे में बताती है। सार्वजनिक इतिहास के मामलों में गजेटियर पर विचार नहीं किया जा सकता है।"

80. **बाला शंकर महा शंकर भट्टजी और अन्य बनाम चैरिटी कमिश्नर, गुजरात राज्य, 1995 सप्प. (1) एससीसी 485** में इस न्यायालय ने 1879 में प्रकाशित गजेटियर ऑफ बॉम्बे प्रेसिडेन्सी, खण्ड़ III पर विचार किया था। इस न्यायालय ने अवधारित किया कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 35 सपठित धारा 81 के अन्तर्गत गजट स्वीकार्य है। यह अवधारित किया गया कि न्यायालय अन्य साक्ष्यों के संयोजन में वादग्रस्त प्रश्न को अधिनिर्णीत करने में विचार में ले सकती है हालांकि इसे निश्चायक साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। पहाड़ी की चोटी पर स्थित कालिका माताजी के मंदिर के स्थान के संबंध में गजट में विवरणों का अवलम्ब लिया गया। प्रस्तर 22 में, निम्नलिखित प्रतिपादित किया गयाः–

> "**22.** .....यह देखा गया है कि 1879 में प्रकाशित गजट ऑफ बॉम्बे प्रेसिडेन्सी खण्ड़ III, साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 35 सपठित धारा 81 के तहत स्वीकार्य है। गजट सार्वजनिक मामलों के आधिकारिक अभिलेख होने से स्वीकार्य है और न्यायालय उसकी अन्तर्वस्तु के असली होने की उपधारणा कर सकते हैं। इसमें निहित कथन को इसमें निहित ऐतिहासिक सामग्री का पता लगाने के लिए विचार में लिया जा सकता है और इसमें निहित तथ्य धारा 45 के अधीन साक्ष्य हैं और न्यायालय अन्य साक्ष्य और परिस्थिति के संयोजन में वादग्रस्त प्रश्न को अधिनिर्णीत करने में विचार में ले सकती है, यद्यपि इसे निश्चायक साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता है। गजट में दिए गए विवरण यह स्थापित करते हैं कि कालिका माताजी पहाड़ी की चोटी पर है, महाकाली मन्दिर और बचरा माताजी कालिका माताजी के दाहिने और बाये है। मुगल शासन के दौरान अन्य सैयद सादर पीर भी वहाँ स्थापित की गयी, लेकिन कालिका माताजी मुख्य मन्दिर था। होलिज और बिल्स मुख्य उपासक हैं। चैत्र (अप्रैल) की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पूर्णिमा पर और दशहरा (अक्टूबर के माह में) पर सभी वर्गों के हिन्दू बड़ी संख्या में वहाँ एकत्रित होते हैं और कालिका माताजी, महाकाली आदि की पूजा करते हैं.....।"

81. उपरोक्त परिचर्चा के मद्देनजर, उपरोक्त उल्लिखित विधि से स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि साक्ष्य अधिनियम 1872 के तहत न्यायालय गजेटियरों को विचार में ले सकती है, यद्यपि गजेटियरों में दिए गए कथन को निश्चायक साक्ष्य के रूप में नहीं माना जाएगा लेकिन उस कथन के सही होने की उपाधारणा इससे जुड़ी होती है। धारा 57 के दृष्टिगत किताबों और यात्रा वृत्तांतों की स्वीकार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 81, शासकीय गजट या आधिकारिक गजट होने की आशयित प्रत्येक दस्तावेज के सही होने की उपाधारणा पर विचार करती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 81 निम्नानुसार हैः–

> **"81. गजट, समाचारपत्रों, संसद के निजी अधिनियमों और अन्य दस्तावेजों के बारे में उपधारणाएं** – न्यायालय हर ऐसी दस्तावेज का असली होना उपधारित करेगा जिसका लन्दन गजट, या कोई अधिकारिक गजट या किसी उपनिवेश का शासकीय गजट, ब्रिटिश क्राउन के कब्जाधीन क्षेत्र होना या कोई समाचार या जर्नल होना, या यूनाइटेड किंगडम की संसद के निजी अधिनियम की क्वीन्स प्रिन्टर द्वारा मुद्रित प्रति होना, तात्पर्यित है तथा हर ऐसी दस्तावेज का, जिसका ऐसी दस्तावेज होना तात्पर्यित है जिसका किसी व्यक्ति द्वारा रखा जाना किसी विधि द्वारा निर्दिष्ट है, यदि ऐसी दस्तावेज सारतः उस प्ररूप में रखी गई हो, जो विधि द्वारा अपेक्षित है, और उचित अभिरक्षा में से पेश की गई हो, असली होना उपधारित करेगा।"

82. अब डॉ धवन का यह अगला तर्क बचता है कि 1858 से पहले के गजेटियर, जब ईस्ट इण्ड़िया कंपनी के शासन के दौरान क्षेत्र की संप्रभुता ब्रिटिश के सीधे नियंत्रण में नहीं थी, पर अवलम्बन नहीं लिया जा सकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वर्तमान मामले में, जिन गजेटियरों पर अवलम्बन लिया गया है, वे उन्नसवीं शताब्दी के हैं। 31.12.1600 को क्वीन एलिजावेथ से प्राप्त चार्टर द्वारा ईस्वीं इण्ड़िया कंपनी को पूर्वी देशों से व्यापार करने की अनुमति मिली। प्रारंभ में 1619 में कंपनी ने सूरत (गुजरात राज्य) में एक फैक्ट्री का निर्माण किया। ईस्ट इण्ड़िया कंपनी की अधिकारिता और शक्ति को क्वीन द्वारा जारी विभिन्न चार्टरों द्वारा और बाद में ब्रिटिश संसद द्वारा बनाये गये अधिनियमों द्वारा बढ़ाया गया। 1805 तक, अवध क्षेत्र में कुछ कार्यों को भी ईस्ट इण्ड़िया कंपनी को सौंपा गया जिसमें अवध क्षेत्र में सदर न्यायालय की स्थापना करना भी शामिल है। उन्नसवीं शताब्दी के शुरूआत तक ईस्ट इण्ड़िया कंपनी न केवल एक व्यापारिक कंपनी थी बल्कि वैधानिक और शासकीय सत्ता थी जिसे 1801 में अवध के नवाब के समझौते के साथ ब्रिटिश संसद के चार्टरों और अधिनियमों द्वारा सौंपा गया था। किसी भी मामले में, उन्नसवीं शताब्दी में ईस्ट इण्ड़िया कंपनी के शासन के दौरान तैयार किए गए गजेटियर में लोक इतिहास के अभिलेख शामिल हैं और वे स्पष्टतः साक्ष्य अधिनियम की धारा 57 के तहत ग्राह्य हैं। इसलिए डॉ धवन के इस तर्क में कि 1858 के पहले के गजेटियरों को देखा नहीं जाना चाहिए, कोई सार नहीं है।

83. प्रासंगिक अवधि के दौरान, प्रथम महत्वपूर्ण ऐतिहासिक किताब जिसमें अकबर के शासनकाल में प्रशासन का विस्तृत विवरण है, आइन–ए–अकबरी है जो सोलहवीं शताब्दी में पूरी हुई। आइन –ए–अकबरी अबुल–फज़ल अलामी की कृति है, जो अकबर के दरबार में एक मंत्री थे। आइन –ए–अकबरी का एच. ब्लूचमैन द्वारा फारसी से हिन्दी में अनुवाद किया गया। कर्नल एच. एस. जेरेट ने खण्ड़ संख्या II का अनुवाद किया। कर्नल एच. एस.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जेरैट द्वारा अग्रेंजी में अनुवादित खण्ड ।। को प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार ने संशोधित किया और आगे टिप्पणियाँ जोड़ी। श्री जदुनाथ सरकार ने अपने सम्पादक की प्रस्तावना में संप्रेक्षित किया है कि दूसरा खण्ड़ अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य के गजेटियर के रूप में प्रयुक्त हुआ। जदुनाथ सरकार कहते हैं कि आइन–ए–अकबरी का तीसरा खण्ड़ हिन्दूओं के धर्म, दर्शन और शास्त्रों का विश्वकोष था। श्री जदुनाथ सरकार द्वारा उपरोक्त को निम्नलिखित शब्दों में कहा गयाः–

> "आइन–ए–अकबरी का तीसरा खण्ड़ हिन्दूओं के धर्म, दर्शन और शास्त्रों का एक विश्वकोष है जिसमें उसी विषय पर हिन्दू विचारों से तुलना के लिए, साहित्यिक पंरपरा में जैसी अपेक्षा होती है, इसके पहले मुस्लिमों का कालानुक्रम और विश्व दृष्टि दी गयी है। दूसरा खण्ड़ अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य के गजेटियर के रूप में प्रयुक्त हुआ। इसकी महत्ता इसके सूक्ष्म भूस्थानिक विवरणों और असंख्य छोटे स्थानों की सांख्यिकी और साम्राज्य के वित्त, व्यापार, उद्योग, जातियों और जनजातियों के सर्वेक्षण में है।"

84. आइन–ए–अकबरी के दूसरे खण्ड़ में "अवध की सुबह" के संबंध में विवरण दिए गए हैं, अवध (अयोध्या) का एक विवरण था कि अवध (अयोध्या) भारत के बड़े शहरों में से एक है। विवरण अवध को रामचन्द्र के निवास स्थान के रूप में संदर्भित करता है, खण्ड़ 2 के पृष्ठ 182 पर निम्नलिखित विवरण दिया गया हैः–

> "अवध (अयोध्या) भारत के सबसे बड़े शहरों में से एक है। यह 118° 6′ अक्षांश तथा 27° 22′ देशांतर पर स्थित है। प्राचीन समय में इस प्रसिद्ध स्थल का विस्तार लंबाई में 148 कोस और चौड़ाई में 36 कोस था और यह पवित्रतम प्राचीन स्थलों में से एक है। शहर की परिधि में वे मिट्टी खोदते हैं और सोना प्राप्त होता है। यह रामचन्द्र का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निवास स्थान था जो त्रेता युग में अपने स्वयं के व्यक्तित्व में आध्यात्मिक सर्वोच्चता तथा राजसी पद दोनो से संयुक्त थे।"

85. आगे खण्ड III, अध्याय VI में एक शीर्षक "अट्ठारह शास्त्र" है। यह विवरण वेद तथा 18 पुराण और अन्य धार्मिक ग्रन्थों को संदर्भित करता हैं। किताब में निम्नलिखित शब्दों में देवता के अवतारों का संदर्भ भी हैः–

"अवतार
या
देवता के अवतार

वे विश्वास करते हैं कि परमेश्वर अपनी स्वेच्छा से सृष्टि की भलाई के लिए एक विशेष चरित्र का आदि रूप ग्रहण करते हैं और कई प्रबुद्ध हिन्दू इस सिद्धांत को स्वीकार करते है। ऐसा एक संपूर्ण अवतार पूर्णावतार कहलाता है और वह सिद्धांत जिसमें कुछ सृजित रूप दैवीय लक्षण से परिपूर्ण होती हैं और उन्हें असाधारण शक्तियाँ प्रदान की जाती है, अंशावतार कहलाती है। इस पश्चातकथित पर यहाँ विचार नहीं किया जायेगा।

पहले प्रकार के बारे में वे कहते हैं कि संपूर्ण चार युगों में, दस अवतार होगें और वर्तमान समय तक नौं हो चुके हैं।"

86. परमेश्वर (भगवान विष्णु) के 9 अवतारों का विवरण किताब में है, राम अवतार को भी निम्नलिखित शब्दों में बताया गया हैः–

"रामावतार
या
राम–अवतार

वे कहते हैं कि राक्षसों में से एक रावण, ब्रह्मा की दूसरी पीढ़ी का वंशज था, उसके दस सिर और बीस हाथ थे। उसने कैलास पर्वत में दस हजार वर्षों तक तपस्या की और तीनों लोकों की सम्प्रभुता प्राप्त करने की आशा में इस देह दण्ड़ में एक के बाद एक अपने सिरों को अर्पित किया। देवता उनके सामने प्रकट हुए और उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया। उसके शासन से देवतागण त्रस्त हुए और पूर्व के उदाहरणों की तरह, उसे गद्दी से उतारने की प्रार्थना की गयी जो प्रदान की गयी और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसका अन्त करने के लिए राम को चुना गया था। **तद्नुसार उनका जन्म अयोध्या में राजा दशरथ की पत्नी कौशल्या से त्रैता युग में चैत्र मास (मार्च–अप्रैल) के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को हुआ।** बुद्धिमत्ता के पहले दौर में, उन्होंने बहुत कुछ सीखा और सभी सांसारिक कार्यों को छोड़ते हुए, वनों से होकर यात्रा करना शुरू किया और पवित्र स्थलों में जाकर अपने जीवन को एक नया सौंदर्य दिया। वह इस धरा के स्वामी बन गए और रावण को मार दिया। उन्होंने ग्यारह हजार वर्षों तक शासन किया और प्रशासन की न्यायपूर्ण विधियों का सृजन किया।"

(हमारे द्वारा प्रकीर्णीत)

87. आईन–ए–अकबरी सम्राट अकबर के काल में हिन्दूओं द्वारा धारित आस्था और मान्यताओं का प्रमाण है। अयोध्या को रामचन्द्र के निवास स्थान के रूप में उल्लिखित किया गया, जिसे आगे विष्णु का अवतार बताया गया। विशिष्ट कथन किए गए हैं कि त्रैता युग के दौरान अयोध्या में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को राजा दशरथ की पत्नी कौशला से भगवान राम का जन्म हुआ। आईन–ए–अकबरी सुस्पष्ट रूप से अयोध्या को प्राचीन पवित्रतम स्थलों में एक के रूप में संदर्भित करती है। आईन –ए–अकबरी में उपरोक्त कथन से स्पष्टतः दर्शित होता है कि हिन्दूओं की आस्था और विश्वास यह थी कि अयोध्या एक पवित्रतम स्थल और विष्णु के अवतार भगवान राम का जन्मस्थल है, यह विश्वास अकबर के काल से पहले तक बना रहा और आज भी बना हुआ है।

88. विलियम फिंच ने 1607 से 1611 ईस्वी. तक भारत का दौरा किया, उसके यात्रा विवरण को विलियम फोस्टर द्वारा अपनी किताब "अर्ली टैवल्स इन इण्ड़िया" में प्रकाशित किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

89. विलियम फिंच ने रामचन्द्र के किले तथा भवनों के ध्वंसावशेष के बारे में उल्लेख किया। यात्रा विवरण में भारतीयों के इस विश्वास का भी उल्लेख किया गया कि रामचन्द्र का जन्म हुआ और उन्होने शरीर धारण किया।

90. फादर जोसेफ टिफेंथेलर ने 1766–1771 ई. के बीच भारत का दौरा किया। उन्होंने लैटिन में भारत की ऐतिहासिक और भौगोलिक वर्णन लिखा। सभी लैटिन कार्य का अनुवाद फ्रेंच में किया गया था। कार्य का अंग्रेजी अनुवाद उच्च न्यायालय के समक्ष प्रदर्श 133 (वाद–5) के रूप में दायर किया गया था और बड़े पैमाने पर अवलम्ब लिया गया है। अवध प्रांत के विवरण में यह कहा गया है:–

> "लेकिन एक जगह विशेष रूप से प्रसिद्ध है जिसे सीता रसोई कहा जाता है अर्थात राम की पत्नी सीता की मेज, जो शहर के दक्षिण में स्थित है, और एक मिट्टी के टीले पर स्थित है। सम्राट औरंगजेब ने रामकोट नामक किले को ध्वस्त करवा दिया और उसी स्थान पर तीन गुंबदाकार मस्जिद का निर्माण करा दिया। अन्य का कहना है कि इसका निर्माण 'बाबर' द्वारा किया गया था। 5 स्पैन के चौदह काले पत्थर के खंभे, जो किले के स्थल पर मौजूद थे, वहां देखे जाते हैं। इन स्तंभों में से बारह स्तंभ अब मस्जिद के आंतरिक मेहराबों पर आधारित हैं। 12 में से दो को मठ के प्रवेश द्वार पर अवलम्बित है। दो अन्य कुछ 'मूर' के मकबरे का हिस्सा हैं। यह वर्णन किया गया है कि इन स्तंभों को या बल्कि इनकी ईंटों को अत्यधिक कुशलता से बनाया गया था जो लैंस या सेलेंडिप (यूरोपियों द्वारा सीलन कहा गया है) के द्वीपों से वानर राज हनुमान द्वारा लाया गया था। बाईं ओर जमीन से 5 इंच ऊपर एक चौकोर बॉक्स देखा गया है, जिसमें चूने से बना हुआ बॉर्डर है, जिसकी लंबाई 5 एल से अधिक और लगभग 4 एल की अधिकतम चौड़ाई होती है। हिंदुओं द्वारा इसे बेदी यानी 'पालना' कहा जाता है। इसका कारण यह है कि किसी समय पर यहां एक मकान था जहां राम के रूप में *बेस्चन ?* का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उनके तीन भाईयों का भी जन्म यहीं हुआ था। अन्य लोगों के अनुसार, बाद में औरंगजेब या बाबर ने श्रेष्ठ लोगों को , उनके अंधविश्वासों के कार्य करने के अवसर से वंचित कर दिया। हालांकि, अभी भी कुछ स्थानों पर या दूसरों में कुछ अंध विश्वास है। उदाहरण के लिए, जिस स्थान पर राम का पैतृक निवास था, वे लगभग 3 बार घूमते हैं और फर्श पर बैठ जाते हैं। दो धब्बे एक कम दीवार से घिरे हैं, जो कि चहारदीवारी के साथ निर्मित है। एक कम अर्ध–वृत्ताकार द्वार के माध्यम से सामने वाले हॉल में प्रवेश करता है।"

91. विवरण में निहित तीन महत्वपूर्ण कथनों पर ध्यान देने की आवश्यकता है:–

सबसे पहले, सम्राट औरंगजेब ने रामकोट नामक किले को ध्वस्त कर दिया और एक मस्जिद उसी स्थान पर बनवाया जिसमें तीन गुंबद थे। यह आगे कहा गया है कि 5 स्पैन ऊँचे चौदह काले पत्थर के स्तंभ, जो कि किले के स्थल पर मौजूद थे, वहां देखे जाते हैं। इन स्तंभों में से अब बारह स्तंभ मस्जिद के आंतरिक मेहराबों पर आधारित हैं। इन 12 स्तंभों में से दो को मठ के प्रवेश द्वार पर अवलंबित किया गया है।

दूसरा, बाईं तरफ जमीन से 5 इंच ऊपर एक वर्गाकार बॉक्स देखा जाता है, जिसमें चूने से बना हुआ बॉर्डर है, जिसकी लंबाई 5 एल्स से अधिक और लगभग 4 एल्स की अधिकतम चौड़ाई है, जिसे हिंदुओं द्वारा बेदी (अर्थात "पालना") कहा जाता है। आस्था और विश्वास का कारण यह भी था कि वहाँ एक मकान भी था जहां राम के रूप में बेस्चन (विष्णु) का जन्म हुआ था।

तीसरा, औरंगजेब या बाबर को यह स्थान मिला कि वे श्रेष्ठ लोगों को, उनके अंधविश्वासों के कार्य करने के अवसर से वंचित कर दें। हालांकि,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हालांकि, अभी भी कुछ स्थानों पर या दूसरों में कुछ अंध विश्वास है। चूँकि जिस स्थान पर राम का पैतृक निवास था, वहाँ हिंदू लगभग 3 बार जाते हैं और फर्श पर बैठते हैं।

92. प्रथम गजेटियर का विमोचन 1828 में प्रकाशित वाल्टर हैमिल्टन के ईस्ट इंडिया गजेटियर से हुआ। गजेटियर में हिंदुस्तान के साम्राज्यों, राज्यों, रियासतों, प्रांतों, शहरों, कस्बों, जिलों, किले, बंदरगाह, नदियों और झीलों का विशेष वर्णन था।

93. गजेटियर ने राम, सीता, लक्ष्मण और हनुमान को समर्पित मंदिरों का उल्लेख किया है। गजेटियर ने आगे ध्यान दिया कि अवध की तीर्थयात्रा मुख्य रूप से रामता संप्रदाय के हैं, जो मंदिरों और मूर्तियों के चक्कर लगाते हैं, पवित्र कुंडों में स्नान करते हैं और प्रथागत समारोह करते हैं।

94. अगले राजपत्र में इतिहास, प्राचीन वस्तुएँ, पूर्वी भारत (1838) की स्थलाकृति और सांख्यिकी पर अवलम्ब लिया गया है। गोरखपुर के इतिहास और स्थलाकृति का उल्लेख करते हुए, मॉन्टगोमरी मार्टिन ने अयोध्या और इसकी महिमा के बारे में उल्लेख किया।

95. एक गजेटियर एडवर्ड थॉर्नटन "भारत के गजेटियर" (1854) द्वारा प्रकाशित किया गया था। 1858 में एडवर्ड थॉर्नटन ने "भारतीय महाद्वीप पर देशी राज्यों की ईस्ट इंडीज कंपनी की सरकार के तहत क्षेत्रों का गजेटियर"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नाम से एक और गजेटियर प्रकाशित किया, जिसमें अवध का काफी बड़ा वर्णन निहित है।

96. एक और पुस्तक का संदर्भ जो एक प्रदर्श के रूप में दायर किया गया था, उसको एक संदर्भ की आवश्यकता है। हदीस–ए–सेबा की किताब मिर्जा जान ने वर्ष 1856 में लिखी थी। किताब में इस बात का उल्लेख किया गया था कि भगवान राम की जन्मस्थली के रूप में पूजा स्थल जो 'सीता–की–रसोई' से सटा हुआ था जिसे हिजरी वर्ष 923 में बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण किया गया था। पुस्तक की अनुवादित प्रति प्रदर्श 17 के रूप में है। पुस्तक से निम्नलिखित निष्कर्ष पर ध्यान दिया जाना प्रासंगिक है: –

> *"उपर्युक्त स्थल भगवान राम के पिता की गद्दी कही जाती है। यहां स्थित मूर्ति पूजा के स्थानों को ध्वस्त कर दिया गया था और यहां तक कि हिंदू धर्म के किसी भी मूर्ति के एक भी टुकड़े को वहां पर नहीं गिराया गया था। जिस जगह पर हिंदुओं का बड़ा मंदिर था वहां बड़ी मस्जिद का निर्माण किया गया था और जिस जगह पर हिंदुओं का छोटा मंदिर था, वहां छोटी मस्जिद का निर्माण किया गया था। उपासना स्थल को भगवान राम की जन्मस्थली कहा जाता है और जो स्थान इसके निकट है, उसे "सीता की रसोई" कहा जाता है और सीता को भगवान राम की पत्नी कहा जाता है। उस स्थान पर बाबर शाह ने हिजरी वर्ष 923 में सय्यद मूसा आशिकां की देखरेख में एक बहुत बड़ी मस्जिद का निर्माण करवाया और इसका इतिहास आज भी कायम है। आज उपर्युक्त "सीता की रसोई" को मस्जिद कहा जाता है।"*

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

97. पुस्तक प्रासंगिक है क्योंकि यह 1856 में लिखी गई थी जो अयोध्या में मूर्ति पूजा के मुद्दे के संबंध में हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच असंतोष की अवधि थी। पुस्तक स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है कि भगवान राम के जन्मस्थान पर, बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण किया गया था।

1858 से 1949 की अवधि के दौरान भगवान राम के जन्म स्थान के संबंध में हिंदुओं की आस्था और विश्वास।

98. इस अवधि के दौरान, कई गजेटियर, एएसआई की रिपोर्ट, किताबें और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य हैं, जो वाद में प्रदर्श किए गए हैं। दस्तावेजी साक्ष्यों के अलावा, कई मौखिक साक्ष्यों का नेतृत्व पक्षकारों द्वारा किया गया है।

99. सबसे पहले, सरकार द्वारा सम्बन्धित अवधि के दौरान प्रकाशित गजेटियर में नोटिस हो सकता है। सभी गजट, जो प्रासंगिक अवधि के दौरान प्रकाशित किए गए थे, पूर्ण सरकारी अधिकार के तहत थे क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार के अधिनियम, 1858 द्वारा अवध के क्षेत्र पर 01.11.1958 से प्रत्यक्ष नियंत्रण कर लिया था।

100. इस समय नोटिस को एक और प्रासंगिक पहलू के रूप में लिया जा सकता है, जो यह है कि ब्रिटिश सरकार के आधिकारिक क्षेत्र में 01.11.1858 के बाद से, ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों द्वारा जारी किए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गए शासकीय रिपोर्ट, पत्रों, और आदेशों में “मस्जिद” हमेशा "जन्म स्थान मस्जिद" के रूप में संदर्भित किया जाता था, जो स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि उस समय के सरकारी अधिकारियों ने हमेशा मस्जिद को जन्म स्थान के रूप में माना। अभिलेख पर लाई गई पर्याप्त सामग्री उपरोक्त पहलू को स्पष्ट करती है; जिसे संदर्भित किया जा सकता है। अवध के थानेदार शीतल दुबे ने दिनांक 01.12.1858 को एक रिपोर्ट सौंपी, जो वाद संख्या 1 का प्रदर्श 21 है, जो "मस्जिद" को "मस्जिद जन्म स्थान" के रूप में भी संदर्भित करती है। दिनांक 01.12.1858 की रिपोर्ट पहले ही निकाली जा चुकी है।

101. इसी तरह दिनांक 06.12.1858 की अपनी रिपोर्ट में अवध के थानेदार, शीतल दुबे ने फिर से “मस्जिद” को “मस्जिद जनम स्थान” के रूप में संदर्भित किया है। 10.12.1858 को थानेदार शीतल दुबे के आवेदन पर एक आदेश पारित किया गया था, इस आदेश में, "मस्जिद" को "मस्जिद जन्म स्थान" के रूप में संदर्भित किया गया था। उक्त आदेश को प्रदर्श ए–69 (सूट नंबर 1) अभिलेख पर लाया गया है जो पहले से ही निकाला गया है।

102. एक और महत्वपूर्ण दस्तावेज, जिसमें डॉ. राजीव धवन द्वारा उनके तर्क बहुत अधिक अवलम्बित हैं वह A–14 (वाद–1) है, जो सचिव द्वारा भेजे गए पत्र की 25.08.1863 दिनांकित की एक प्रति है, जो अवध के मुख्य आयुक्त, फैजाबाद मंडल के मुख्य आयुक्त को भेजा गया है, जहां "मस्जिद" को "जन्म स्थान मस्जिद" के रूप में संदर्भित किया गया था। यह पत्र पहले ही निकाला जा चुका है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

103. उपरोक्त भी स्पष्ट रूप से साबित करता है कि भले ही सरकारी अधिकारियों ने मस्जिद को जन्म स्थान मस्जिद के रूप में संदर्भित किया, जो कि गजेटियर में दिए गए कथनों को पूरी तरह से पुष्टि करता है और ऊपर उल्लिखित है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण भगवान राम के जन्म स्थल पर किया गया था।

104. देखा जाने वाला अगला कार्य तहसील फैजाबाद, ज़िला फ़ैज़ाबाद का ऐतिहासिक स्केच है, जो वर्ष 1870 में सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया। ऐतिहासिक स्केच को अयोध्या और फ़ैज़ाबाद के कार्यवाहक आयुक्त और बन्दोबस्त अधिकारी पी. कार्नेगी द्वारा तैयार किया गया था। पी. कार्नेगी ने अपने स्केच में कहा है कि अयोध्या हिन्दू का है जबकि मक्का मोहम्मडन का और जेरूसलम यहूदियों का। पी. कार्नेगी का विवरण उद्धृत किया गया है।

105. पी. कार्नेगी ने जन्मस्थान और अन्य मंदिरों का उल्लेख किया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि जन्मस्थान के स्थान पर 1528 ईस्वी में सम्राट बाबर द्वारा एक मस्जिद का निर्माण किया गया था, जो आज भी उनके नाम पर है।

106. पी. कार्नेगी ने हिंदू और मुसलमान के मतभेदों के बारे में भी ध्यान दिया है, जो हिंदुओं और मोहम्मडनों के बीच हुए मतभेदों के बारे में है, जहां हिंदुओं के बीच अत्यधिक लड़ाइयों के बाद जन्मस्थान पर नियंत्रण रखने

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की बात कही गई थी। इसने आगे देखा कि उस समय तक हिंदू और मोहम्मडन समान रूप से मस्जिद–मंदिर में पूजा/उपासना करते थे और ब्रिटिश शासन के बाद से विवाद को रोकने के लिए रेलिंग लगाई गई थी।

107. 1877 में प्रकाशित एक और गजेटियर अवध प्रांत का गजेटियर है। अयोध्या को राजपत्र में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है। उपरोक्त गजेटियर में, जन्मस्थान और अन्य मंदिरों के संबंध में एक विवरण निकाला गया है।

108. "बाबर की मस्जिद" और "हिन्दू और मुसलमान मतभेद" शीर्षक से वही अन्तर्वस्तु गजेटियर में दोहरायी गयी हैं जिसे मैंने पी. कार्नेजी के तहसील फैजाबाद, जिला फैजाबाद का ऐतिहासिक चित्रण को देखते समय पहले ही उद्धृत किया है, जिसे विषय को संक्षिप्त रखने के लिए दोहराया नहीं जा रहा है।

109. वर्ष 1880 में, ए.एफ मिलिट ने "फैजाबाद के भू राजस्व बन्दोबस्त पर अपनी रिपोर्ट" तैयार की जो ऊपर उद्धृत है।

110. ध्यान देने योग्य अगली सामग्री है वर्ष 1889 में प्रकाशित अवध एवं उत्तर पश्चिम प्रान्त की ए.एस.आई. रिपोर्ट जिसमें कहा गया है कि जन्मस्थान वाला रामचन्द्र का पुराना मंदिर बहुत उत्कृष्ट रहा होगा क्योंकि पूर्वतः उद्धृत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसके कई कॉलम बाबर की मस्जिद बनाने के लिए मुसलमानों द्वारा प्रयोग किये गये थे।

111. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा 1889 में प्रकाशित ए. फहरर की "जौनपुर का शर्की वास्तु ; जाफराबाद, साहेत–माहेत और अवध एवं उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के अन्य स्थानों पर टिप्पणी सहित" शीर्षक वाली रिपोर्ट (पूर्वतः उद्धृत) पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

112. इस प्रकार ए.एस.आई. का स्पष्ट मानना है कि **अयोध्या में बाबर की मस्जिद उसी स्थान पर बनाई गयी थी जहां रामचन्द्र का पुराना जन्मस्थान मंदिर था**।

113. ए. एस.आई. द्वारा अवध और उत्तर पश्चिमी प्रान्त के स्मारकीय पुरावशेष और शिलालेखों पर ए. फहरर की एक अन्य रिपोर्ट प्रकाशित की गयी थी। रामचंद्र को संदर्भित करते हुए इसमें उल्लेख किया गया था कि भगवान राम वहां जन्मे थे। रिपोर्ट में इस बात का सन्दर्भ है कि जन्मस्थान मंदिर को ध्वस्त कर दिया गया था और 930 हिजरी में एक मस्जिद बनाया गया।

114. अगला गजेटियर जिसे संदर्भित किया गया है और जिसका अवलंब लिया गया है, वह है फैजाबाद का गजेटियर खण्ड XLII। जिसका प्रकाशन

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत की सरकार द्वारा 1905 में किया गया था। (पूर्वतः उद्धृत)

115. पूर्वतः उद्धृत 1908 में फैजाबाद खंड के संदर्भ में प्रकाशित "इंपीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया में।

116. वर्ष 1928 में फैजाबाद गजेटियर का प्रकाशन एच.आर. नेविल द्वारा किया गया। (पूर्वतः उद्धृत)

117. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने "अवध और उत्तर पश्चिमी प्रान्त के स्मारकीय पुरावशेष और शिलालेख" खण्ड में 1891 में फैजाबाद जिले का वर्णन करते हुए, अयोध्या नगर के विषय में नोट किया कि 'जन्मस्थान' नाम के महत्वपूर्ण हिन्दू मंदिर के स्थान पर बाबर के शासन में एक 'मस्जिद' बना दी गयी जो आज भी उसी के नाम पर है। आगे यह उल्लेख किया गया कि पुराना मंदिर बहुत उत्कृष्ट रहा होगा क्योंकि इसके कई कॉलम मुसलमानों द्वारा बाबरी मस्जिद के निर्माण में प्रयोग कर लिये गये।

118. आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत के जिला गजेटियर के "बारा बंकी" गजेटियर खंड 48 (1921) में हिन्दू पुजारियों और मुसलमानों के बीच 1853 में उस भूमि के लिए जिस पर पहले जन्मस्थान मंदिर था जिसे बाबर द्वारा ध्वस्त करवाकर मस्जिद बनवा दी गयी थी,हुए विवाद का उल्लेक किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गया था। गजेट के अध्याय 5 में 'इतिहास' शीर्षक से पृष्ट सं. 169 पर निम्न कथन किया गया है:–

> "...यह प्रतीत होगा कि घटना 1853 में हुई। घटना का कारण उन बहुतेरे विवादों में से एक था जो उस भूमि के संबंध में, जिस पर पहले जन्मस्थान मंदिर था, जिसे बाबर द्वारा ध्वस्त कर वहां मस्जिद बनवा दी गयी थी, के संबंध में समय समय पर हिन्दू पुजारियों और मुसलमानों के बीच पैदा होते थे। वहां अन्य मस्जिदें औरंगजेब और अन्य द्वारा बनवाई गयी थी और उनमें से कुछ नष्ट हो गयी थी। हिन्दूओं के लिए विशेष रूप से पवित्र होने के कारण वह स्थान तुरंत बैरागियों और अन्य द्वारा कब्जा कर लिया गया जिससे टकराव का उर्वर स्रोत तैयार हो गया।...."

119. गजेटियर ने आगे अमीर अली द्वारा एक मार्च (कूच) के विवरण का उल्लेख किया है जिसके नेतृत्व में बड़ी संख्या में मुस्लिमों ने अयोध्या की ओर कूच किया लेकिन अवध की पहली रेजीमेंट के कर्नल बार्लो द्वारा रोके गये जिसमें बड़ी संख्या में लोग मारे गये और फर्स्ट इंफैंट्री लगभग विनष्ट हो गयी। गजेटियर ने बताया है कि अमीर अली भी मारा गया। फरवरी 1856 में, अवध का राज्य ब्रिटिश सरकार द्वारा हड़प लिया गया।

120. यथा सन्दर्भित गजेटियरों और पुस्तकों के अलावा, प्रश्नगत वाद के पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाये गये अन्य दस्तावेजी साक्ष्य हैं। कतिपय प्रदर्शों, सार्वजनिक रिकार्ड से प्राप्त प्रमाणित नकल का सन्दर्भ दिया जा सकता है जो वाद में दाखिल की गयी हैं। पूर्वतः उद्धृत वाद सं.1 में 28.11.1858 दिनांकित शीतल दूबे द्वारा दिया गया आवेदन प्रदर्श–19 के रूप में दाखिल किया गया।

121. अभिलेख पर लाया गया अगला दस्तावेजी साक्ष्य है अवध में बाबरी मस्जिद स्थल के मोअज़्ज़िम सैयद मोहम्मद खातिब द्वारा दाखिल किया गया 30.11.1858 दिनांकित आवेदन। बाबरी मस्जिद के मोअज़्ज़िम सैयद मोहम्मद खातिब द्वारा दाखिल परिवाद में इस बात का उल्लेख था कि अवध

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में स्थित जन्मस्थान मंदिर पर कोई निहंग सिंह नाम का व्यक्ति बलवा कर रहा है। परिवाद में उल्लेख था कि मस्जिद के भीतर मेहराब के निकट उसने मिट्टी का एक चबूतरा बना दिया था, वहां 'पूजा' और 'होम' होती है और पूरे मस्जिद में राम राम लिखा हुआ है। परिवाद में हिन्दुओं को मस्जिद से बाहर करने की प्रार्थना की गयी थी। (पूर्वतः उद्धृत)

122. प्रदर्श 21 के रूप में दाखिल अन्य दस्तावेज 31.12.1828 दिनांकित रिपोर्ट है जो अवध के थानेदार शीतल दूबे द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। रिपोर्ट में शीतल दूबे ने 'मस्जिद' को 'जन्मस्थान मस्जिद' के रूप में सन्दर्भित किया है।

123. अवलंबित अगला प्रदर्श वाद सं.1 का प्रदर्श 31 है जो कि मीर रज्जाबअली खातिब मस्जिद द्वारा मस्जिद के भीतर बनाए गये चबूतरे को हटाने का प्रार्थना पत्र है। (पूर्वतः उद्धृत)

124. उपर्युक्त प्रार्थना पत्र ही मस्जिद परिसर के भीतर हिन्दुओं के चबूतरे का और शंख बजा कर पूजा किये जाने का साक्ष्य है।

125. एक अन्य प्रार्थना पत्र किसी मोहम्मद असगर नामक व्यक्ति 12 फरवरी 1861 को किया गया था जिसमें मस्जिद परिसर से चबूतरा और हिन्दूओं की झोपड़ी हटाने की मांग की गयी थी। यह प्रार्थना पत्र वाद 4 में प्रदर्श 54 के रूप में दाखिल किया गया था।

126. यह प्रार्थना पत्र मोहम्मद असगर, मीर रज्जाब अली और मोहम्मद अफजल, अयोध्या, जन्मस्थान पर बनी बाबरी मस्जिद के खातीब और मुएज़्ज़िन की ओर से दी गयी थी। 12 मार्च 1861 दिनांकित प्रार्थना पत्र पूर्वतः उद्धृत है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

127.उपरोक्त प्रार्थना पत्र और पहले के कुछ प्रार्थना पत्र जिन्हें बाबरी मस्जिद के खातीब और मुएज़्ज़िन की ओर से दिया गया था,से जिस एक महत्वपूर्ण तथ्य को नोट किया जा सकता है वह यह है कि **बाबरी मस्जिद को हमेशा "जन्मस्थान अयोध्या में स्थित बाबरी मस्जिद" के रूप में किया गया है।**

128. वाद सं.4 में दाखिल प्रदर्श ए–55 इनाकी सिंह की कुटिया ढहाए जाने के संबंध में खेम सिंह सूबेदार की 16.03.1861 दिनांकित रिपोर्ट है।

129. वाद सं.4 में दाखिल प्रदर्श ए–30 मोहम्मद अफजल द्वारा दाखिल 25.09.1866 दिनांकित प्रार्थना पत्र है जिसमें यह उल्लेख है कि तुलसीदास इत्यादि बैरागियों ने 3 घंटे में परिसर के भीतर मूर्ति रख दी है। सार्वजनिक परिवाद किया गया। (पूर्वतः उद्धृत)।

130. इस आशय का साक्ष्य अभिलेख पर लाया गया है कि अयोध्या के उपायुक्त ने 03.04.1877 दिनांकित आदेश द्वारा जन्मस्थान के महंत खेमदास को मस्जिद के परिसर में उत्तरी दीवार में दरवाजा खोलने की अनुज्ञा दी थी। सैयद मोहम्मद असगर द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध अपील दायर की गयी थी। अपील के आधारों को वाद सं. 1 में प्रदर्श 30 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है।अपील में यह भी पाया गया कि परिसर की मूर्तियों को अभी नहीं हटाया गया है। अपील में परिसर में छोटा चूल्हा होने की बात भी कही गयी है। अपील(प्रदर्श 30) का आधार 6 निम्नवत है:–

> "धारा6. यह कि प्रत्यर्थी और अपीलार्थी के बीच एक पुराना विवाद है और माननीय न्यायालय ने यह आदेश दिया है कि प्रत्यर्थी को उस स्थान पर कोई भी नया कार्य नहीं करना चाहिए। लेकिन बलदेवदास बैरागी के भूमिगत होने के कारण 7 नवम्बर 1873 दिनांकित आदेश उस पर तामील नहीं किया जाएगा। कहने का आशय है कि आदेश के अनुसार मूर्ति को हटाया नहीं गया है। कब्जा करने के अभिप्राय से प्रत्यर्थी दीवार के पास कई गतिविधियों में संलग्न है और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किसी के द्वारा रोके जाने पर वह आक्रामक हो जाता है और मारपीट करने को तैयार हो जाता है। अतः उसने उक्त अहाते के अन्दर एक चूल्हा बना लिया है जो पहले कभी नहीं किया गया था। पहले पूजा के लिए कोई चूल्हा नहीं था जिसे बना दिया गया है।"

131. उपरोक्त अपील में, फैजाबाद के उपायुक्त की रिपोर्ट जमा की गयी थी। रिपोर्ट में, उपायुक्त ने उल्लेख किया है कि विशेष दिनों में जन्मस्थान जाने वालों को अलग मार्ग देने के लिए दरवाजे का खोला जाना आवश्यक था।

132. उपायुक्त की उपरोक्त रिपोर्ट स्पष्टतः यह सिद्ध करती है कि हिन्दू जन्मस्थान पर जाते थे जो कि मस्जिद परिसर के अंदर था। आयुक्त ने अन्ततः मोहम्मद असगर की अपील को 13.04.1877 को खारिज कर दिया।

133. ध्यान देने योग्य अन्य महत्वपूर्ण तथ्य महंत रघुबर दास द्वारा उप न्यायाधीश फैजाबाद के समक्ष वाद दायर किया जाना था जिसका वाद सं. 61 ऑफ 280 ऑफ 1885 है। जिसमें वादी ने मस्जिद परिसर के भीतर मौजूद चबूतरे पर मन्दिर बनाने की अनुमति मांगी थी। 24.12.1885 को वाद को खारिज करते हुए मंदिर बनाने की अनुमति को नकार दिया गया। महंत रघुबर दास द्वारा जिला न्यायाधीश फैजाबाद के समक्ष अपील दायर की गयी थी। जिला न्यायाधीश ने अपील को 18.12.1886 को खारिज कर दिया।

134. उक्त आदेश के विरुद्ध दूसरी अपील न्यायिक आयुक्त अवध द्वारा खारिज कर दी गयी।

135. कुछ और साक्ष्य है जिन्हे यह साबित करने के लिए अभिलेखित किया गया है कि वर्ष 1934 में अयोध्या में हिन्दू मुस्लिम दगें हुए उन दंगों के दौरान बाबरी मस्जिद के गुम्बद को हिन्दुओं के द्वारा क्षतिग्रस्त कर दिया गया था,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिसे एक मुस्लिम ठेकेदार के माध्यम से प्रशासन के द्वारा निर्मित किया गया था। एक मुस्लिम ठेकेदार द्वारा मस्जिद की मरम्मत से संबंधित दस्तावेजों को वाद संख्या–4 के वादी के द्वारा उसके भुगतान के लिए आवेदन को अभिलेख के रूप में प्रस्तुत किया है, जो 1934 में हुई मस्जिद को नुकसान पहुंचाने की घटना के फलस्वरूप पक्षकारों के बीच मतभेदों और विवादो के गवाह हैं जिसे कुछ महीनों के बाद मरम्मद किया जा सका। ऊपर उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्य यह साबित करने के लिए पर्याप्त है मस्जिद परिसर के अन्दर, जो एक चहारदिवारी से घिरा हुआ है और प्रश्नगत अवधि में हिन्दू वहाँ जाते थे और पूजा करते थे। बाबरी मस्जिद के खतीब और मुअज़्ज़िन के द्वारा प्रस्तुत आवदेन, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया है में स्पष्ट रूप से हिन्दुओं के द्वारा पूजा और हिन्दुओ के द्वारा चबूतरा का निर्माण और हिन्दुओं के द्वारा मस्जिद परिसर में मूर्ति की स्थापना करने की घटना को स्वीकार करता है। बाबरी मस्जिद का सन्दर्भ जन्मस्थान के रूप में, मस्जिद के कई आवेदनों में इंगित किया गया है कि मस्जिद भगवान राम के जन्म स्थान पर स्थापित है। उपरोक्त साक्ष्यिक दस्तावेज हिन्दुओं की आस्था और विश्वास की गवाही देते है कि मस्जिद भगवान राम के जन्म स्थान पर स्थापित है। मस्जिद के भीतर पूजा करने के लिए उनका विरोध, दृढ़ता और कार्रवाई उनके विश्वास और आस्था की गवाही है कि मस्जिद का परिसर भगवान राम का जनमस्थान है।

<u>मौखिक साक्ष्य: –</u>

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

136. पक्षकारों ने वाद के मौखिक साक्ष्य की पर्याप्त मात्रा को प्रस्तुत किया। वाद संख्या 4 के वादी नें 32 गवाहों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया, जिन्हें पीडब्लू के रूप में बताया गया है। वाद संख्या 5 के वादी नें 19 गवाहों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जिन्हें ओपीडब्लू के रूप में बताया गया है। वाद संख्या 3 के वादी ने 20 गवाहों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है जिन्हें डीडब्लू के रूप में बताया गया है। वाद संख्या 3 में प्रतिवादी संख्या 1/2 ने 3 गवाह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किये। वाद संख्या 4 के अन्य प्रतिवादियों के द्वारा भी कुछ गवाहों को प्रस्तुत किया गया है।

137.राम जन्म भूमि के जन्म स्थान और साथ ही साथ पूजा और जहाँ पूजा की जाती थी वहाँ के साक्ष्य के बारे में हिन्दुओं की आस्था और विश्वास के पहलु के सम्बन्ध में गवाहों के मौखिक साक्ष्य की जाँच करने की आवश्यकता है।

327. महंत परमहंस रामचंद्र दास ओपीडब्ल्यू–1, उम्र लगभग 90 वर्ष (23.12.1999 को), वाद, मुकदमा नंबर 5 के वादी के द्वारा उनकी परीक्षा कराई गई थी। महंत राम चंदर दास पंच रामानंदी अखिल भारती अन्नी और दिगंबर अखाड़ा, अयोध्या के निवासी हैं। वह 14–15 साल की उम्र में अयोध्या आए। महंत परमहंस राम चंद्र दास अपनी मुख्य परीक्षा में कहते हैं:–

> "..... जब से मैं अयोध्या आया, तब से मैंने हमेशा राम जन्मभूमि, हनुमान गढ़ी, नागेश्वरनाथ, सरयू, छोटी देवकली, बडी देवकली, लक्ष्मण घाट, छोटे देवकली के पास स्थित सप्त सागर और

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कनक भवन मंदिर जैसे सात स्थानों पर लोगों को दर्शन (झलक) के लिए जाते देखा है। सात स्थान अपरिवर्तनीय हैं और उनके स्थान को परीवर्तित नहीं जा सकता है, जिसका अर्थ है कि एक स्थान को दूसरे के स्थान पर नहीं बनाया जा सकता है। मणी पर्वत एक प्रसिद्ध स्थान है जो सात स्थानों से भिन्न है। राम जन्मभूमि में भगवान राम की मूर्ति थी। वहाँ पर सीता रसोई भी थी। रीति–रिवाजों के अनुसार, राम जन्मभूमि के नाम से एक विशेष हॉल था और यहां अनेक देवताओं और देवियों की सभी प्रतिमाओं और मूर्ति स्वयं उत्कीर्णित थी। मूर्तियों के अलावा. उस स्थान की भी पूजा की जाती थी, जिसे भगवान राम का जन्मस्थान कहा जाता था और जहाँ भगवान राम प्रकट हुए हैं। राम लाला के मंच (चबूतरा) के रूप में एक मंच और पुआल की एक झोपड़ी भी थी, जिसमें निर्मोही अखाड़ा के पुजारी भगवान राम की पूजा करते थे और चढ़ावा इत्यादि चढ़ाते थे।

138. अपनी प्रति परीक्षा में वह कहते है:–

" .....वह स्थान जिसको मैने गर्भ ग्रह के रूप में वर्णित किया है, वह मेरे विश्वास के आधार पर है और सभी हिन्दुओं के विश्वास के आधार पर है कि वह स्थान राम चन्द्र जी का जन्म स्थान है। मैं उस स्थान के बारें में मेरा यह विचार हूं, जहां 23 दिसंबर 1949 को चबूतरा से हटाने के बाद इस मूर्ति की स्थापना की गई थी जिसे जन्म स्थान के रूप में माना जाता है और मैं उस स्थान को मूर्ति स्थापना से पहले से ही जन्म स्थान के रूप में मानता था।

प्रश्न:–क्या वह स्थान, जिसे आपने अपने विश्वास के अनुसार जन्मस्थान के रूप में वर्णित किया है, मध्य गुंबद स्थान के दोनों तरफ से 10–15 हाथ दूर है?

उत्तर :– नहीं, वह स्थान जहां आदेश(sic {मूर्ति}) स्थापित की गई थी, प्रामाणिक स्थान और संपूर्ण हिंदू समुदाय उस स्थान पर आस्था रखते है। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है और इस स्थान से उस स्थान की दूरी दो–चार फीट से ज्यादा नहीं हो सकती है। इस विश्वास का आधार यह है कि हिंदुओं के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

द्वारा सदियों से इस स्थान का दर्शन जन्भूमि के रूप में किया जाता रहा है"

139. अगला बयान जिसमें ध्यान दिया जाना है वह ओपीडब्लू श्री हरिहर प्रसाद तिवारी का है। जिनकी उम्र 85 वर्ष थी (01.08.2002 को)। वह राम निवास मंदिर में 1934 से 1938 तक अयोध्या में रहने का दावा करते हैं, जो राम जन्मभूमि से केवल 250–300 कदम की दूरी पर था। उन्होंने लोगों के विश्वास और आस्था का सन्दर्भ दिया है कि भगवान विष्णु ने उसी स्थान पर भगवान श्री राम के रूप में अवतार लिया है। उन्होनें अपने मुख्य परीक्षा के पैरा 3 में कहा हैः–

> 3. अयोध्या हिन्दुओं के लिए एक प्राचीन और पवित्र तीर्थ स्थल है जहां परम ब्रह्म परमेश्वर भगवान विष्णु राजा दशरथ के पुत्र श्री राम के रूप में अवतार लिया गया। हिन्दू धर्म के अनुयायियों को अनंत काल से ही यह विश्वास है कि भगवान विष्णू ने भगवान श्री राम के रूप में अयोध्या में अवतार लिया था। इस आस्था और विश्वास के कारण लोग श्री राम जन्मभूमि के दर्शन और परिक्रमा (चक्कर लगाने) के लिए जाते थे। 1934 से 1938 तक मेरे अध्ययन के दौरान, मेरे परिवार के सदस्य, मेरे दादा–दादी, बुजुर्ग, संत और अयोध्या के आश्रम के आश्रम के लोग कहते थे कि भगवान विष्णु ने इसी स्थान पर भगवान श्री राम के रूप में अवतार लिया था और यही श्री राम जन्मभूमि है। इसी विश्वास के आधार पर मैं दर्शन के लिए श्रीराम जन्मभूमि जाता रहा हूं। मेरा अध्ययन पूरा करने के बाद जब मैं अयोध्या आया तो मैं दर्शन के लिए वहां जाता था। मैं ज्यादातर पिछले 8–9 वर्षों से सुग्रीव किला, रामकोट, अयोध्या में रहां हूं और दर्शन करने के लिए आमतौर पर राम जन्मभूमि जाता रहा हूं। ”

140. अपनी प्रति परीक्षा में वह आगे कहते हैः– –

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"6..... भवन जिसमें गुम्बद है वह पवित्र गर्भ ग्रह है, जहाँ यह विश्वास किया जाता है कि यहाँ भगवान राम ने जन्म लिया है। हिन्दू तीर्थ यात्री और दर्शनार्थी (दर्शक) फल, फूल और धन अपनी–अपनी आस्था पर चढ़ाते थे।... ... ..."

141. प्रति परीक्षा में राम जन्म भूमि पर अपने विश्वास को दोहराते हुए उन्होंने आगे कहा: –

"..... यह सही है कि मेरे उपरोक्त कथन में 1(sic मैने) ने कहा था कि विवादित स्थल राम की जनभूमि है। मेरा यह विश्वास किसी भी धार्मिक पुस्तक को पढ़कर नहीं है, बल्कि यह उस पर आधारित है जो मैंने वृद्ध और बुजुर्ग व्यक्तियों से सुना है। अयोध्या आने से पहले से ही मेरा यह विश्वास है। यह कहना है कि जबसे मै सचेत हुआ तब से मेरा ऐसा विश्वास है और यह जनता से सुन कर था। 1934 से 38 के मध्यकाल में जब मैं अयोध्या में था, संभवतः मैं जन्नभूमि यानी विवादित स्थल हजारों बार गया हूँ। मेरी पढ़ाई के दौरान मैं जन्मभूमि में जाया करता था... ... ..."

142. उन्होंने अपने बयान में यह भी कहा कि विवादित इमारत की पश्चिम की दीवार के बाहर परिक्रमा मार्ग था और उसका उपयोग परिक्रमा करने में किया जाता था।

"विवादित भवन की पश्चिम की दीवार के बाहर और दीवार से लगा हुआ एक परिक्रमा मार्ग (मार्ग) था और इस मार्ग पर चलते हुए मैं परिक्रमा (धार्मिक चक्कर लगाना) करता था। इस मार्ग को पैदल चलने योग्य बनाया गया था और उस पर कुछ पुरानी ईंटें पड़ी थी।....."

143. अपने बयान में उन्होंने यह भी कहा कि वह परिक्रमा मार्ग के माध्यम से परिक्रमा किया करते थे।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

144. अगला बयान ओपीडब्लू–5 राम नाथ मिश्रा के बयान पर ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिए जिनकी उम्र 91 वर्ष थी (06.08.2006 को)। उन्होंने 1932 के बैसाख माह में अयोध्या आने का दावा किया। वे तीर्थ पुरोहित के रूप में काम करते थे। अपनी प्रति परीक्षा में वह कहते हैः–

> "..... बुजुर्गों के अनुसार, यह मध्य गुंबद के नीचे भगवान राम का जन्म राजा दशरथ के पुत्र के रूप में हुआ था। इसी आस्था और विश्वास के आधार पर मैं और भगवान राम के सभी हिंदू भक्त श्री राम जन्मभूमि के दर्शन करते थे। यह पुण्यमय स्थान और पूजा योग्य स्थान के रूप में माना गया था।....."

145. वह आगे कहते है:–

> "..... सभी हिंदुओं का यह प्राचीन पारंपरिक विश्वास है कि भगवान विष्णु का जन्म राजा दशरथ के पुत्र के रूप में इस स्थान पर हुआ था और इसीलिए यह स्थान इतना पवित्र और पूजा योग्य है। इसी विश्वास और आस्था के आधार पर है कि लाखों श्रद्धालु भगवान राम के जन्म स्थान के दर्शन और परिक्रमा के लिए अयोध्या आते रहे हैं। मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर अंग्रेजों के समय का एक पत्थर है, जिस पर 'जन्मभूमि नित्य यात्रा' लिखा गया है और हिन्दी के अंकों में से ('ek').....”

146. ओपीडब्लू–6, हौसिला प्रसाद त्रिपाठी की उम्र 80 वर्ष है (13.08.2002 को) जिन्होनें दिसंबर 1935 में अयोध्या आने का दावा है। अपने मुख्य परीक्षा में वह कहते हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"7. हमें यह विश्वास है कि भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ था और वह स्थान राम जन्म भूमी के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ पर लाखों लोग देश के कोने–कोने से आते हैं और दर्शन के बाद श्री राम जन्म भूमी की परिक्रमा करते हैं। यह इस विश्वास और आस्था के आधार पर है कि हम भी एक वर्ष में तीन से चार बार श्री राम जन्म भूमी में जाते है और श्री राम जन्म भूमी के दर्शन करने और उसके बाद परिक्रमा करने का महत्व है।

8. मेरा यह भी दृढ़ विश्वास और आस्था है कि भगवान श्री राम का जन्म अयोध्या में उसी स्थान पर हुआ था जहाँ हजारों हिन्दू श्रद्धालु दर्शन और परिक्रमा के लिए आते हैं। यह इसी आस्था के आधार पर था कि 1935 से मैं प्रत्येक वर्ष तीन से चार बार अयोध्या गया और सरयू नदी में स्नान करने के बाद कनक भवन, हनुमानगढ़ी और श्री राम जन्मभूमि के दर्शन प्राप्त करते थे और श्री राम जन्मभूमि की परिक्रमा करते थे।"

147. वह आगे कहते है:–

"10. हिन्दू रीती रिवाज, आस्था और विश्वास के अनुसार लोहे की सलाखों वाली दीवार के पश्चिम की तरफ एक तीन शिखर वाला भवन है, जिसमें मध्य शिखर वाला भाग श्री राम जन्म भूमी का स्थान है, जिसे गर्भ ग्रह कहा जाता है, इस विश्वास और आस्था के आधार पर, मै श्री राम जन्म भूमी के दर्शन और परिक्रमा के लिए जाता था।"

148. वह आगे कहते हैः–

12. सभी तीर्थ यात्री–दर्शनार्थी पूर्व में स्थित प्रवेश द्वार से श्री राम जन्मभूमि परिसर में प्रवेश किया करते थे और रामचबूतरा पर स्थित मूर्ती और दक्षिण–पूर्व कोने पर स्थित पीपल और नीम के पेड़ के नीचे स्थित मूर्तियों और सीता रसोइ और पदचिन्हों इत्यादि के दर्शन करते थे, और वर्जित दीवार के अन्दर स्थित पुण्यमय स्थल राम जन्म भूमी के दर्शन भी करते थे जिसे गर्भ ग्रह की मान्यता दी गई है। श्रद्धालु और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

दर्शन के लिए आने वाले लोग और हम अपनी श्रद्धा के अनुसार फल, फूल और नकदी का चढ़ावा चढ़ाते थे। गर्भ गृह में भी, श्रद्धालु और हम इसके दर्शन के बाद हमारे विश्वास के अनुसार वर्जित दीवार के माध्यम से प्रसाद चढ़ाते थे। ”

149. अपनी जिरह में, उन्होंने सार्वजनिक राय के इस तथ्य से इनकार किया है कि राम जन्मभूमि की बीसवीं सदी की है। वह कहते है यह परंपरा के अनुसार बहुत लम्बे समय से है।

“....हालांकि, लोकमत यह है कि रामजी का जन्म स्थान वही है, अर्थात राम जन्म भमी जिसके बारे में विवाद चल रहा है यह कहना गलत है कि यह जनमत बीसवीं शताब्दी का है। वास्तव में, यह परंपरा के अनुसार लंबे समय से चली आ रही है.....”

149. अपने प्रतिपरीक्षा में उन्होंने इस तथ्य से इंकार किया कि राम जन्म भूमि से संबंधित लोक राय बीसवीं शताब्दी की है। वह कथन करते हैं कि यह उतनी पुरानी है जितनी कि प्रथा।

“... हालांकि लोगों का मानना है भगवान राम जहां पैदा हुए है वह वही स्थान है जो राम जन्म भूमि है और जिस पर विवाद चल रहा है। यह कहना गलत होगा कि लोगों की जो राय है वह बीसवीं शताब्दी की है. तथ्यों से जाहिर है कि यह राय प्रथागत रूप से तब से रही है।"

150. ओ.पी.डब्ल्यू.–7, सूरज तिवारी, 73 वर्ष (19.19.2002), ने दावा किया है कि वह वर्ष 1932 में अयोध्या गये थे और उसके बाद लगातार जाते रहे. अपने मुख्य परीक्षा में वह कथन करते हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"...मेरे बड़े भाई ने बताया कि यह भगवान राम का जन्म स्थान (रामजन्म भूमि) है और बहुत प्राचीन काल से हिन्दुओं में आस्था विश्वास एवं अड़िग मान्यता है कि भगवान विष्णु राजा दशरथ के पुत्र के श्री राम रूप में गुम्बद के मध्य में अवतार लिया था और यही कारण है कि इसे 'गर्भ गृह कहा गया है। राम चबूतरा के दर्शन करने के बाद तीर्थयात्री और आगन्तुक जालीदार दरवाजे से होकर त्रिगुम्बदीय भवन में जाया करते हैं और वहां से गर्भ गृह का दर्शन करते हैं और वे गर्भ गृह में पुष्प, प्रसाद और सिक्के चढ़ाते हैं।"

151. वह आगे अपनी प्रतिपरीक्षा में राम जन्म भूमि के बारे में अपनी आस्था और विश्वास को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त करते हैः–

"जहां तक त्रि–गुम्बदीय भवन का प्रश्न है मुझे विश्वास था जो आज भी है कि यह राम जन्म भूमि है।"

152. आगे अपनी प्रतिपरीक्षा में उन्होंने कहा कि प्रसाद और पुष्प को चढ़ाने के उपरान्त वे बाहर से गुम्बद के नीचे वाली भूमि पर सर झुकाकर प्रणाम किये।

"...पूर्वी दरवाजे पर पहुंचने से पहले मेरे भाई ने दीवार के बाहर से जिसमें तीन लोहे के छड़ लगे थे वहां से त्रि–गुम्बदीय भवन पर पुष्प चढ़ाया और मुझे भी दिया जिसको मैने भी चढ़ा दिया। मैंने केवल बाहर से लोहे की छड़ों से पुष्प को चढ़ाया। जिस समय मैं पुष्प, प्रसाद, और पैसा चढ़ा रहा था उस समय अन्य लोग भी वहां यहीं सामाग्री चढ़ा रहे थे। मैंने केवल बाहर से जमीन पर लेटकर दण्ड़वत प्रणाम किया। मैने अपने भाई से पूँछा कि वह उस जगह पर पुष्प क्यों चढ़ा रहे थे, जिस पर उन्होंने मुझे बताया कि इस भवन के बीच वाले गुम्बद की जगह पर भगवान राम का जन्म हुआ था। जिस जगह पर मैं गया वह मध्य वाले गुम्बद के नीचे वाली जगह है।...."

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

153. ओ.पी.डब्ल्यू.–12 श्री कौशल किशोर, उम्र 75 (16.12.2002) ने कथन किया कि जब वह 14–15 वर्ष के थे तो वे राम जन्म भूमि की पूजा किये थे। अपने प्रतिपरीक्षा में वे कथन करते हैः–

> "6. जब मैं अपने दादा और पिता के साथ राम जन्म भूमि जाना प्रारम्भ किया तो मैंने देखा कि तीर्थयात्री, भक्त इत्यादि जो अयोध्या आते थे वे बिना चूके राम जन्म भूमि जाया करते थे। त्यौहारों के समय भीड़ बहुत ज्यादा थी, कहने का अर्थ यह है कि यह एक लाख से ज्यादा थी. वे राम चबूतरा, सीता रसोईं, शिव चबूतरा, त्रि–गुम्बदीय भवन मध्य गुम्बद के नीचे मंदिर के निजी कमरे और उसके गर्भ गृह (जहां भगवान राम का जन्म हुआ था) पूजा किया करते थे और उस परिसर की दीवार के बाहर से परिक्रमा किया करते थे।"

154. वह आगे कथन करते हैः–

> "12. मेरे दादा और पिता द्वारा मुझे बताया गया कि स्मर्णातीत काल से हिन्दू विश्वास और मान्यता के अनुसार त्रेता युग में इस त्रि–गुम्बदीय भवन में स्थित मंदिर के गर्भ गृह में राजा दशरथ के पुत्र के रूप भगवान राम का जन्म हुआ था। यह लोगों का पारम्परिक विश्वास और आस्था है जिसके चलते इस देश के लोग और बाहर से अनेक तीर्थयात्री जगह की पूजा और परिक्रमा करने भगवान के जन्मस्थान पर आते हैं। "

155. अपने प्रतिपरीक्षा में वह इस बात पर कायम रहें कि राम का जो जन्म है वह उस जगह पर है जहां पर बाबरी मस्जिद बनायी गयी है, यह आस्था के कारण है।

156. अगले गवाह ओ.पी.डब्ल्यू.–13 नारद सरण, उम्र 26 (27–01–2003) ने दाया किया कि वह साधु बनने अयोध्या आये थे। मुख्य परीक्षा में वह कथन करते हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"पूर्वी दरवाजे पर अन्दर प्रवेश करने पर पश्चिम की तरफ वहां पर त्रि–गुम्बदीय भवन था, जहां पर मंदिर का गर्भगृह था जिसकी पूजा की जाती थी। मेरे पूर्वजों ने मुझे इस जगह के बारे में बताया था कि इस जगह की पूजा भगवान राम के जन्म के रूप में स्मर्णातीत काल से की जाती थी। मैंने भी इस स्थान की पूजा की है और पाया कि यहां पर लाखों तीर्थयात्री आते थे और इस पवित्र स्थान पर मत्था टेकते थे। वे भी इस स्थान पर आये और सीता रसोई, राम चबूतरा इत्यादि की पूजा किये और हनुमान द्वार से बाहर आने के बाद इस पूरे परिसर की परिक्रमा किया।"

157. अपने प्रतिपरीक्षा में वह कथन करते हैः–

"... अयोध्या भगवान राम की जन्मस्थान है और हमें विवादित ढ़ांचे के मध्य गुम्बद के नीचे वाले स्थान को उनका जन्मस्थान बताया गया। जन्मस्थान और जन्मभूमि का एक ही मतलब है।...."

158. डी.डब्ल्यू. – 3/14 जगतगुरू रामानन्द आचार्य स्वामी हर्याचार्य, उम्र 69 वर्ष (23.07.2004) अपने प्रतिपरीक्षा में निम्नलिखित कथन करते हैः–

"मैं पूर्व में त्रि–गुम्बदीय भवन का दर्शन करने जाया करता था। मैंने राम लला का दर्शन भी किया है। मैंने दर्शन इसलिए किया क्योंकि मुझे विश्वास है कि कोई भी राम लला का दर्शन कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।..."

159. डी.डब्ल्यू. – 3/1 महंत भास्कर दास, उम्र 75 वर्ष (29.08.2003) अपने मुख्य परीक्षा में निम्नलिखित कथन करते हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"...मेरे कार्यकाल में 1946–1949 की अवधि में कुर्की की तिथि तक कोई भी मुसलमान विवादित स्थान पर नमाज पढ़ने नहीं आया और ही नमाज वहां बोली गयी। हिन्दू भक्त पैसा, फल, मिष्ठान और अन्य पदार्थ विवादित स्थान के अन्दर और बाहर स्थापित देवताओं को अर्पित करने आते थे और जिसे निर्मोही अखाड़ा के साधुओं द्वारा प्राप्त कर लिया जाता था।...."

160. जिन गवाहों की वाद–4 के वादियों द्वारा परीक्षा की गयी उन्होंने भी अपने बयान यह स्वीकार किया कि जिस स्थान को वह बाबरी मस्जिद कहते हैं हिन्दू उस स्थान को जन्मस्थान कहते हैं।

161. मोहम्मद हासिम, उम्र 75 वर्ष (24.07.1996) पी. डब्ल्यू.– 1 के रूप में उपस्थित हुए। अपने प्रतिपरीक्षा उन्होंने स्वीकार किया कि वह स्थान जिसे हिन्दू राम जन्मभूमि मानते हैं और मुस्लिम बाबरी मस्जिद मानते हैं उसकी कुर्की 22/23 दिसम्बर 1949 को की गयी थी।

"... जिस स्थान की कुर्की 22/23 दिसम्बर 1949 को की गयी थी हिन्दू उसे राम जन्मभूमि तथा मुस्लिम उसे बाबरी मस्जिद मानते हैं। गोपाल सिंह विसारद के वाद में भी हिन्दुओं द्वारा इसे राम जन्मभूमि और मुस्लिमों द्वारा इसे बाबरी मस्जिद कहा गया है।"

162. वह आगे कथन करते हैं कि जितना महत्व मक्का का मुस्लिमों के लिए है उतना महत्व भगवान राम के कारण अयोध्या का हिन्दुओं के लिए है।

163. पी.डब्ल्यू.–2 हाजी महमूद अहमद उम्र 58 वर्ष निवासी– टेढ़ी बाजार, अयोध्या अपनी प्रतिपरीक्षा में निम्नलिखित कथन करते हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"...ग्रिल वाली दीवार दक्षिण दिशा में मस्जिद की दीवार के बगल में थी। हम इसे मस्जिद कहते हैं और अन्य पक्षकार इसे मंदिर कहते हैं। पूरे चाहारदीवारी की ऊँचाई समान है। यह आँगन के दक्षिणी हिस्से तक पूर्ण निर्मित भवन है। यह एक मस्जिद थी जिसे अन्य लोग मंदिर कहते हैं।..."

164. पी.डब्ल्यू.–4 मोहम्मद यासीन उम्र 66 वर्ष (07.10.1996) भी निम्नलिखित कथन करते हैः–

"...मैं अयोध्या में रहता हूँ इसलिए अक्सर मेरी कुछ हिन्दुओं और साधुओं से भी मुलाकात होती है। हम उनसे वैवाहिक समारोहों में भी मिलते हैं। उनका मानना है कि यह भगवान राम का जन्मस्थान है। (तब कहा, यह उनका खुद का मानना है।) हिन्दू इसे पवित्र स्थान मानते और यहां पूजा करते हैं।..."

165. पी.डब्ल्यू.–23 मोहम्द कासिम, उम्र 74 वर्ष अपने प्रतिपरीक्षा में स्वीकार किया कि जिसको वह बाबरी मस्जिद कहते है उसे हिन्दू राम जन्मस्थान कहते हैं। वह कथन करते हैः उसके बाद एक कोने पर वहां बाबरी मस्जिद है। यह सच है कि जिस स्थान को मैं बाबरी मस्जिद कहता हूँ उस स्थान को हिन्दू राम जन्मस्थान कहते हैं।

166. उपरोक्त उल्लिखित वाद–5 के वादियों, वाद–3 के वादियों और वाद –4 के वादियों द्वारा भी परीक्षा किये गये गवाहों के मौखिक साक्ष्य हिन्दुओँ की आस्था और विश्वास को स्पष्ट रूप से साबित करते हैं कि भगवान राम का जन्मस्थान वह स्थान है जहां पर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है। त्रि–गुम्बदीय ढ़ांचा को भगवान राम का जन्मस्थान माना गया। लोग त्रि–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

गुम्बदीय ढांचे की पूजा करते हैं, भक्तों द्वारा सम्पूर्ण परिसर की परिक्रमा वाद में उद्धृत मौखित साक्ष्यों से पूर्णरूपेण साबित हो चुकी है।

167. उपरोक्त उल्लिखित यह कथन सभी गजटों में दर्ज है जो विस्तृत और एकमत से सरकार के प्राधिकार के अधीन प्रकाशित उनसे यह पता चलता है कि भगवान राम के जन्म स्थान पर वर्ष 1528 में बाबर द्वारा मस्जिद का निर्माण किया गया था। यह सच है कि गजट में दर्ज कथन निश्चायक साक्ष्य नहीं हैं लेकिन उपयुक्त साक्ष्यों द्वारा खारिज किये जाने के सापेक्ष अभिलिखित कथनों की सत्यता की उपधारणा की जानी चाहिए। सरकार द्वारा प्रकाशित सभी गजट इसी कथन को दोहराते हैं कि बाबरी मस्जिद का निर्माण भगवान राम के जन्म स्थान पर किया गया था। यहां पर कोई महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं है कि वाद–4 के वादी उपरोक्त कथन से असहमत हों और आगे, उपरोक्त उल्लिखित साक्ष्य स्पष्ट रूप से हिन्दुओं की आस्था और विश्वास का समर्थन करते हैं कि भगवान राम का जन्म वहीं पर हुआ था जहां पर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है। इसलिए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि त्रि–गुम्बदीय ढ़ांचा भगवान राम का जन्म स्थान है।

168. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. राजीव धवन कथन करते हैं कि यद्यपि मौखिक साक्ष्य में साक्षियों द्वारा यह कहा गया कि भगवान राम का जन्मस्थान मध्य गुम्बद के नीचे है फिर भी वास्तव में बाहरी आँगन के दांयी तरफ त्रि–गुम्बदीय भवन के बाहर जो रामचबूतरा है वहीं भगवान राम का जन्मस्थान है। वह मानते हैं कि 1885 में रघुवर दास द्वारा दायर वाद में जो निर्णय पारित किया गया उसमें भी रामचबूतरे को राम जन्मस्थान माना गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

169. उपरोक्त उल्लिखित घटनाओं का यह क्रम से दर्शित होता है कि हिन्दुओं की आस्था एवं विश्वास यह थी कि त्रि–गुम्बदीय ढ़ांचा भगवान राम का जन्मस्थान था जहां पर मस्जिद का निर्माण किया गया था। ब्रिटिश काल में ग्रिल वाली दीवार का निर्माण कराया गया जो मस्जिद के दीवार वाले परिसर को आन्तरिक और वाह्य आँगन में बांटती थी। लोहे की ग्रिल वाली दीवार का निर्माण हिन्दुओं को बाहरी आँगन में ग्रिल वाली लोहे की दीवार के बाहर रखने के लिए किया गया था। लोहे के दीवार के निर्माण के दृष्टिगत बाहरी आँगन में स्थित राम चबूतरे पर पूजा–अर्चना प्रारम्भ हो गयी। उक्त चबूतरे पर मंदिर बनाने की अनुमति मांगते हुए 1885 में वाद दायर किया गया जहां पर ब्रिटिश प्राधिकारियों ने पूजा की अनुमति प्रदान की थी। अभिलेख में मौजूद साक्ष्य में यथा उल्लिखित हिन्दुओं की आस्था और विश्वास स्पष्ट रूप से स्थापित करती है कि हिन्दू विश्वास करते हैं कि भगवान राम के जन्मस्थान पर मस्जिद का निर्माण किया गया और त्रि–गुम्बदीय ढ़ांचा भगवान राम का जन्मस्थान है। यह तथ्य कि लोहे की दीवार बनाकर, मस्जिद परिसर को बाँटकर हिन्दुओं को त्रि–गुम्बदीय ढांचे से बाहर रखने से यह नहीं कहा जा सकता है कि जन्म स्थान के संबंध में हिन्दुओं की आस्था एवं विश्वास में परिवर्तन हो जाएगा। बाहरी आँगन स्थित राम चबूतरे पर जो पूजा होती है वह भगवान राम की प्रतीकात्मक है तथा ऐसा माना जाता है कि वह कि उनका जन्म परिसर के अन्दर हुआ था।

170. इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि मस्जिद के निर्माण से पहले और उसके बाद में हिन्दुओं की आस्था और विश्वास हमेशा से यह रहा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और कियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है कि भगवान राम के जन्म स्थान पर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया है और यह आस्था और विश्वास उपरोक्त उल्लिखित मौखित और दस्तावेजी साक्ष्यों से सिद्ध हो जाती है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

<u>प्रतिवेद्य</u>

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में

सिविल अपीलीय अधिकारिता

<u>सिविल अपील संख्या 10866-10867 वर्ष 2010</u>

मौहम्मद सिद्दकी (मृतक) द्वारा

विधिक प्रतिनिधि .....अपीलकर्ता (गण)

बनाम

महन्त सुरेश दास और अन्य आदि ....प्रत्यर्थी (गण)

<u>सह</u>

सिविल अपील संख्या 4768-4771/2011, सिविल अपील सं. 2636/2011, सिविल अपील सं. 821/2011, सिविल अपील सं. 4739/2011, सिविल अपील सं. 4905-4908/2011, सिविल अपील सं. 2215/2011, सिविल अपील सं. 4740/2011, सिविल अपील सं. 2894/2011, सिविल अपील सं. 6965/2011, सिविल अपील सं. 4192/2011, सिविल अपील सं. 5498/2011, सिविल अपील सं. 7226/2011, सिविल अपील सं. 8096/2011, सिविल अपील सं. _____ वर्ष 2018 (@ डायरी सं. 22744/2017)

<u>निर्णय</u>

<u>न्यायमूर्ति अशोक भूषण</u> (स्वयं के लिए और माननीय मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा)

<u>*उद्घोषणा*</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ये अपीलें दिनांक 05.12.2017 को अन्तिम बहस के लिए नियत थीं जब अपीलकर्तागण (सिविल अपील संख्या 10866-10867 वर्ष 2010 और सिविल अपील सं. 2215 वर्ष 2011) के लिए पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ राजीव धवन ने कहा कि **डॉ एम. इस्माइल फारूखी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1994) 6 एससीसी 360** (इसके पश्चात् **इस्माइल फारूखी** के वाद के रूप में उल्लिखित) में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय को पुनः विचारित किए जाने की आवश्यकता है, इसलिए बड़ी पीठ को संदर्भित किया जाए। डॉ धवन के उपरोक्त तर्क का प्रत्यर्थियों के लिए पेश विद्वान अधिवक्ता द्वारा विरोध किया गया। अभिवचनों की समाप्ति के बाद जब मामले को पुनः दिनांक 14.03.2018 को रखा गया, हमने इसे उचित माना कि हमें डॉ धवन को इस प्रश्न पर सुनना चाहिए कि क्या **इस्माइल फारूखी** के वाद को पुनः विचारित किए जाने की आवश्यकता है।

2. हमने सिविल अपील संख्या 4768-4771/2011 में अपीलार्थियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ राजीव धवन तथा प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. पारासरन तथा श्री सी. एस. वैद्यनाथन को सुना। श्री तुषार मेहता विद्वान अपर सालिसिटर जनरल उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से पेश हुए। हमने श्री पी. एन. मिश्रा, श्री एस. के. जैन और कई अन्य विद्वान अधिवक्ताओं को भी सुना। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजू रामचन्द्रन ने भी बड़ी पीठ को संदर्भ किए जाने के समर्थन में तर्कों को रखा। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं ने अपने तर्कों के नोट दिए है।

3. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर ध्यान देने से पहले, हमें ऐसे कुछ तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए जिनके आधार पर **इस्माइल फारूखी** के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वाद में संवैधानिक पीठ ने अपना निर्णय दिया। इन अपीलो के दाखिले को अग्रसरित करने वाली घटनाओं के क्रम को भी **ध्यान दिया जाना चाहिए।** इस्माइल फारूखी के वाद में संवैधानिक पीठ ने केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित श्वेत पत्र से कुछ तथ्यों को उद्धृत किया है। निर्णय के प्रस्तर 5 और 6 में, संवैधानिक पीठ ने नोटिस किया:-

"5. अध्याय I में श्वेत पत्र के प्रारम्भ में 'सिंहावलोकन' इस प्रकार है:

> "1.1 भारत के उत्तर में स्थित अयोध्या उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में एक नगर-क्षेत्र है। महाकाव्य रामायण में श्री राम जन्म स्थल के रूप में इसका उल्लेख होने के कारण यह लम्बे समय से पवित्र तीर्थस्थल रहा है। राम जन्म भूमि- बाबरी मस्जिद के रूप में सामान्य रूप से ज्ञात यह ढाँचा 1528 ईस्वी में अयोध्या में मीर बकी द्वारा मस्जिद के रूप में स्थापित किया गया। कुछ धाराओं (संप्रदायों) द्वारा यह दावा किया जाता है कि यह श्री राम की जन्म स्थल माने जाने वाले स्थल पर बनाया गया जहाँ पहले से मन्दिर था। जिसके परिणामस्वरूप दीर्घकालिक विवाद उत्पन्न हुआ।
>
> 1.2 दिसंबर 1949 में विवादित ढ़ाँचे में मूर्तियों को रखने से विवाद एक नये चरण में पहुँच गया। परिसर को आपराधिक प्रक्रिया संहिता

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

की धारा 145 के अधीन कुर्क किया गया। इसके तुरंत बाद दीवानी वाद दायर किए गये। इन दीवानों वादों में अन्तरिम आदेशों द्वारा पक्षकारों को मूर्तियाँ हटाने या उनकी उपासना में हस्तक्षेप करने से अवरूद्ध किया गया। अतः इसके परिणास्वरूप दिसम्बर 1949 से 6-12-1992 तक ढाँचे को मस्जिद के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया था।"

6. हालिया वर्षों में विवादित ढाँचा स्थल पर राम मंदिर निर्माण के आंदोलन ने गति पकड़ी जो एक बड़े विवाद का मामला और तनाव का स्त्रोत बना। इस पर कई संधिवार्ताएँ हुई, जिनका विवरण वर्तमान उद्देश्य के लिए बहुत तात्विक नहीं है। हालांकि विवाद के समाधान के लिए विश्व हिन्दू परिषद (वीएचपी) और ऑल इण्ड़िया बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी (एआईबीएमएसी) सहित ये संधिवार्ताएँ असफल रहीं। जून 1991 में भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) की उत्तर प्रदेश में सरकार बनने से मंदिर निर्माण की मुहिम में एक नया आयाम जुड़ गया जिसने मंदिर के निर्माण के लिए अपनी प्रतिबद्धता घोषित की और कुछ कदम उठाये जैसे कि विवादित संरचना से संलग्न भूमि का अधिग्रहण हालांकि विवादित संरचना को अधिग्रहण से बाहर रखा गया। अक्टूबर 1991 से मंदिर निर्माण के आंदोलन का केन्द्र बिन्दु, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि पर *कार*

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सेवा के माध्यम से मन्दिर निर्माण को शुरू करना था हालांकि विवादित संरचना को अक्षुण्ण (वैसा ही) बनाए रखना था। यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ और इस न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय में भी मुकदमेबाजी हुई। 6-12-1992 से *कार सेवा* को फिर से शुरू के लिए कहा गया और आयोजकों द्वारा की गयी घोषणा इस न्यायालय में लंबित कार्यवाहियों में दिए गए आदेशों सहित न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन किए बिना प्रतीकात्मक *कार सेवा* के लिए थी। अयोध्या में सामान्य स्थिति होना दर्शित करने वाली आरंभिक रिपोर्टों के बावजूद, 6-12-1992 को लगभग दोपहर के समय बीजेपी, वीएचपी आदि के नेताओं द्वारा संबोधित भीड़, राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद ढाँचें पर चढ़ गयी और गुम्बदों को क्षत करना शुरू कर दिया। थोड़े ही समय में संपूर्ण ढाँचें को ढहा दिया गया और जमींदोज कर दिया गया। वास्तव में यह "राष्ट्रीय शर्मिंदगी" का एक कार्य था। जो ढहाया गया, वह मात्र एक प्राचीन इमारत नहीं थी, बल्कि न्याय के अर्थ में और बहुसंख्यकों के न्यायपूर्ण व्यवहार में अल्पसंख्यकों की आस्था थी। इसने विधि के शासन में और संवैधानिक व्यवस्था में उनकी आस्था को चोट पहुँचायी। एक पाँच-हजार-वर्ष पुराना ढाँचा जो अरक्षित था और जिसकी सुरक्षा करना राज्य सरकार के हाथों में एक पवित्र विश्वास था, उसे ढहा दिया गया।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

4. संवैधानिक पीठ ने वर्ष 1950 में दायर किए गए वादों और उसके बाद जो वाद वर्ष 1989 में सुने जाने के लिए पूर्ण रूप से इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अन्तरित कर दिए गए थे, ऐसे वादों के विवरण का अवलोकन किया है। निर्णय के प्रस्तर 9 में, निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया हैः-

> "9. अब इस संबंध में कुछ वादों का संक्षिप्त संदर्भ किया जाना चाहिए। 1950 में कुछ हिन्दूओं द्वारा दो वाद दायर किए गए थे, जनवरी 1950 में इन वादों में से एक में विचारण न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित किए जिसके तहत मूर्तियों को उसी स्थान पर रहने दिया गया जहाँ वे दिसंबर 1949 में रखी गयी थी और हिन्दूओं द्वारा उनकी पूजा को जारी रखा गया। अप्रैल 1955 में उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश को संपुष्ट कर दिया गया। दिनांक 1-2-1986 को जिला न्यायाधीश ने विवादित संरचना में पवित्र स्थल के गर्भ-ग्रह की ओर जाने वाले ग्रिल पर लगे ताले को खोलने का आदेश दिया और हिन्दू भक्तों द्वारा पूजा करने की अनुमति दी। 1959 में निर्मोही अखाड़ा द्वारा विवादित संरचना के हक का दावा करते हुए एक अन्य वाद दायर किया गया। 1981 में सुन्नी सेन्ट्रल वक्फ बोर्ड द्वारा विवादित सरंचना के हक का दावा करते हुए एक अन्य वाद दायर किया गया। 1989 में देवकी नन्दन अग्रवाल द्वारा देवता के वाद मित्र के रूप में, विवादित संरचना के संबंध में एक स्वत्व वाद दायर किया गया। 1989 में पूर्वोक्त उल्लिखित वादों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अन्तरित कर दिया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और सभी को एक साथ सुने जाने का आदेश दिया गया। दिनांक 14-8-1989 को उच्च न्यायालय ने विवादित संरचना के संबंध में यथा-स्थिति रखने का आदेश दिया (श्वेत पत्र का परिशिष्ट-I)। जैसा कि पहले उल्लिखित है, श्वेत पत्र के प्रस्तर 1.2 में यहा कहा गया है किः

> "... इन सिविल वादों के अन्तरिम आदेशों में पक्षकारों को मूर्तियों को हटाने या उनके उपासना में हस्तक्षेप करने से अवरूद्ध किया गया। इस प्रकार, फलस्वरूप दिसंबर 1949 से दिनांक 6-12-1992 तक इमारत को मस्जिद के रूप में प्रयुक्त नहीं किया गया था।"

5. अयोध्या में इन घटनाओं के परिणामस्वरूप, दिनांक 06.12.1992 को भारत के राष्ट्रपति ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत एक उद्घोषणा जारी की जिसमें उत्तर प्रदेश विधान सभा को भंग करते हुए उत्तर प्रदेश सरकार के सभी कार्यों को स्वंय ग्रहण किया। अयोध्या में इन घटनाओं के परिणामस्वरूप, दिनांक 06.02.1992 को केन्द्र सरकार ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लंबित वादों में विवादग्रस्त सभी क्षेत्रों को अधिगृहीत करने का फैसला किया। उपयुक्त आसन्न क्षेत्र का अधिगृहण करने का भी फैसला किया गया, जिसे क्रमशः राम मंदिर और मस्जिद के निर्माण के लिए दो न्यासों को उपलब्ध कराया जाएगा। भारत सरकार ने राष्ट्रपति से यह अनुरोध करने का भी फैसला किया है कि वह इस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय माँगे कि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

क्या जहाँ विवादित ढाँचा है उस स्थल पर हिन्दू मन्दिर था। राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद परिसर में 67.703 एकड़ भूमि के अधिगृहण के लिए "अयोध्या में कुछ क्षेत्रों का अधिगृहण अध्यादेश " नामक एक अध्यादेश दिनांक 07.01.1993 को जारी किया गया। उसी दिन अर्थात् 07.01.1993 को संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत सुप्रीम कोर्ट को एक संदर्भ भी किया गया। अध्यादेश संख्या 8 वर्ष 1993 को अयोध्या में कुछ क्षेत्रों का अधिगृहण अधिनियम 1993 (1993 का संख्यांक 33) (इसके पश्चात् "अधिनियम 1993" के रूप में संदर्भित) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1993 के अधिनियम संख्यांक 33 की वैधता को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका दायर की गयी। अधिनियम 1993 के कुछ पहलुओं को चुनौती देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय में भी कई रिट याचिकाएँ दायर की गयी। इस न्यायालय ने अनुच्छेद 139A के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए रिट याचिकाओं को अन्तरित कर दिया था जो उच्च न्यायालय में लंबित थीं। अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाएँ, इलाहाबाद उच्च न्यायालय से अन्तरित मामले साथ ही अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति द्वारा किया गया संदर्भ संख्या 1 वर्ष 1993, सभी को एक साथ सुना गया और दिनांक 24.10.1994 के एक सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत किया गया जिसमें संवैधानिक पीठ ने 1993 के अधिनियम की धारा 4(3) को अभिखण्ड़ित करने के सिवाय संपूर्ण अधिनियम की वैधता को बरकरार रखा था।

6. उपरोक्त संवैधानिक पीठ में इस न्यायालय के निर्णय के बाद, सभी वादों को, जो उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा सुने जाने के लिए उच्च न्यायालय

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

द्वारा अंतरित किए गए थे, उन्हें पुनर्जीवित माना गया। मौहम्मद असलम जो **इस्माइल फारूकी** के वाद में संवैधानिक पीठ के निर्णय में भी याचिकाकर्ताओं में से एक था, उसने 1993 के अधिनियम के तहत अधिगृहीत 67.703 एकड़ भूमि के संबंध में कुछ अनुतोष मांगते हुए एक रिट याचिका दायर की। दिनांक 13.03.2002 को इस न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश पारित किया। अंतरिम आदेश के प्रस्तर 4 और 5 इस प्रकार हैं:-

> "4. इसी बीच, हम निर्देश देते हैं कि अयोध्या में कुछ क्षेत्रों का अधिगृहण अधिनियम, 1993 की अनुसूची में उल्लिखित विभिन्न भूमिखण्ड़ों में स्थित अधिगृहीत भूमि के 67.703 एकड़ पर, जो केन्द्र सरकार में निहित है, उस पर किसी के भी द्वारा किसी प्रकार की या तो प्रतीकात्मक या वास्तविक जिसमें भूमि पूजा या शिला पूजा भी शामिल है, कोई धार्मिक क्रियाकलाप करने की अनुमति नहीं दी जायेगी और न हीं होने दी जायेगी।
>
> 5. इसके अलावा, पूर्वोक्त भूमि का कोई भाग केन्द्र सरकार द्वारा किसी को भी सौंपा नहीं जाएगा और इस रिट याचिका के निस्तारित होने तक सरकार द्वारा इसे रखा जाएगा और न तो इस भूमि का कोई भाग किसी धार्मिक उद्देश्य के लिए या इस संबंध में आधिपत्य में रखने की अनुमति दी जायेगी या प्रयुक्त की जायेगी।"

7. दिनांक 31.03.2003 को उपरोक्त रिट याचिकाएँ, संवैधानिक पीठ द्वारा अन्ततः निर्णीत कर दी गयी, जिसका निर्णय **(2003) 4 एससीसी 1, मौहम्मद असलम उर्फ भूरे बनाम भारत संघ और अन्य** में प्रतिवेदित है। संवैधानिक

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

पीठ के समक्ष दोनों पक्षकारों द्वारा **इस्माइल फारूकी** के वाद पर अवलम्ब लिया गया था। इस न्यायालय ने रिट याचिका को यह निर्देश देते हुए निस्तारित किया कि इस न्यायालय का आदेश दिनांकित 13.03.2002 जैसा कि दिनांक 14.03.2002 को संसोधित है, तब तक कार्यशील रहेगा जब तक उच्च न्यायालय, इलाहाबाद वादों को निस्तारित नहीं कर देता है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सभी वादों को गुणावगुण पर सुनकर अपने निर्णय दिनांकित 30.08.2010 द्वारा सभी वादों को निर्णीत किया। मूल वादों में वादीगण और प्रतिवादीगण दोनों व्यथित पक्षकारों ने इस न्यायालय में ये अपील दायर की हैं।

8. डॉ राजीव धवन ने कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में टिप्पणियाँ की गयीं थी कि मस्जिद इस्लाम धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य भाग नहीं है और मुस्लिमों द्वारा कहीं भी नमाज अदा की जा सकती है, यहाँ तक कि खुले में भी नमाज अदा की जा सकती है। संवैधानिक पीठ द्वारा की गयी टिप्पणियों ने अपील में निर्णयों को प्रभावित किया है, मस्जिद में नमाज अदा करना एक अनिवार्य प्रथा न होने के संबंध में **इस्माइल फारूखी** में प्रतिपादित विधि, अनिवार्य प्रथा से संबंधित विधि और जिस प्रक्रिया द्वारा अनिवार्य प्रथा पर विचार किया जाना है, दोनो के विपरीत है। क्या अनिवार्य प्रथा को न्यायालय के मात्र *नासाबित दावे* पर तय किया जा सकता है या क्या न्यायालय आस्था, मान्यताओं और प्रथाओं का परीक्षण करने के लिए विवश है, यह विशुद्ध रूप से विधि का प्रश्न है। **इस्माइल फारूखी** वाद के निर्णय में उपरोक्त मुद्दों का परीक्षण न होने के कारण, मामला बड़ी पीठ को भेजा जाना चाहिए।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

9. डॉ धवन ने **इस्माइल फारूखी** वाद के निर्णय के प्रस्तर 78 और 82 को विनिर्दिष्ट रूप से संदर्भित किया। उन्होनें प्रस्तर 78 में निम्नलिखित टिप्पणियों पर विशिष्ट रूप से आक्षेप किया:-

> "78. यद्यपि प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक प्रथा है, उस प्रत्येक स्थान पर प्रार्थना करना, जहाँ ऐसी प्रार्थनाएँ की जा सकती है, ऐसी धार्मिक प्रथा का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग तब तक नहीं होगा जब तक कि वह स्थान उस धर्म के लिए एक विशेष महत्व न रखता हो ताकि वह उस धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग का बन जाये। किसी भी धर्म के उपासना स्थल, जो उस धर्म के लिए विशेष महत्व के हों, को धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए एक भिन्न आधार पर स्थित होते हैं और इसके साथ भिन्न तरीके से और अधिक श्रद्धापूर्ण तरीके से व्यवहार किया जाना चाहिए।"

10. प्रस्तर 82 में निम्नलिखित टिप्पणी पर विशिष्ट रूप से आक्षेप किया गया है:-

> "मस्जिद इस्लाम धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य अंग नहीं है और मुस्लिमों द्वारा नमाज कहीं पर भी अदा की जा सकती है यहाँ तक कि खुले में भी नमाज अदा की जा सकती है।"

11. उन्होंने कहा कि धर्म की अनिवार्य प्रथा का एक विस्तृत परीक्षण करने की आवश्यकता होती है। उन्होनें अपने इस तर्क का समर्थन करने के लिए इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का संदर्भ दिया है , कि जहाँ भी इस न्यायालय को धर्म की अनिवार्य प्रथा का निर्धारण करना था, वहाँ विस्तृत

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

परीक्षण किया गया। उन्होनें कहा कि **इस्माइल फारूखी** का वाद न तो किसी सामग्री को संदर्भित करता है और न ही प्रस्तर 78 और 82 में टिप्पणी करने से पहले कोई विस्तृत परीक्षण करता है जैसा कि उपरोक्त उल्लिखित है। डॉ धवन ने आगे कहा कि **कमिश्नर, हिन्दू रिलिजियस इंडाउमेन्ट, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामिअर ऑफ श्री शिरूर मठ, 1954 एससीआर 1005** में सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा प्रतिपादित अनिवार्यता के एक व्यापक मानक को कम संख्या बल वाले बाद के एक निर्णय द्वारा अभिखण्ड़ित नहीं किया जा सकता, जिसके द्वारा निर्णयों से अखण्ड़ता का परीक्षण लाया गया है। उन्होनें कहा कि अखण्ड़ता का परीक्षण आवश्यक परीक्षण के साथ अंतःपरिवर्तनीय है। अपने तर्कों के दौरान, डॉ धवन ने उच्च न्यायालय के समक्ष विभिन्न पक्षकारों द्वारा किए गए तर्कों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है, जहाँ पर **इस्माइल फारूखी** के वाद का अवलम्ब लिया गया था। उन्होनें इन अपीलों में लिए गए विभिन्न आधारों को भी संदर्भित किया है , ये आधार **इस्माइल फारूखी** के वाद के निर्णय पर अवलंबित है। उन्होनें कहा कि उपरोक्त दिए गए तर्क **इस्माइल फारूखी** के वाद के पुनर्विचारण के लिए अपीलार्थियों की प्रार्थना के लिए पर्याप्त आधार देते हैं। डॉ धवन ने 'बड़ी पीठ को संदर्भ के लिए' अपने नोट में स्पष्ट किया है कि प्रश्नगत पहलू, जैसा कि उपरोक्त उल्लिखित है, **इस्माइल फारूखी** के वाद के निर्णयाधार नहीं हैं। डॉ धवन ने कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में निर्णयाधार को निम्नलिखित प्रभाव के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता हैः-

(i) वाद अपनी संपूर्णता में पुनर्जीवित होते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(ii) अर्जन विधितः सक्षम था, जो संविधान की सातवीं अनुसूची के सूची III और प्रविष्टि 42 से उद्भूत है।

(iii) शब्द 'निहित' के कई अर्थ हैं और विवक्षित है कि केन्द्रीय सरकार की प्रास्थिति वैधानिक रिसीवर की थी जो अस्वीकार किए गए संदर्भ के बजाय, वादों में निर्णय के अनुसरण में भूमि को (अन्य अधिग्रहीत क्षेत्र सहित) वितरित करेगा।

(iv) अधिनियम की धारा 7(2) के अनुसार यथास्थिति को बनाए रखा जाएगा, जो 1949 से तुलनात्मक उपयोगकर्ता के आधार पर उचित हो।

(v) पंथनिरपेक्षता समानता का एक पहलू है और सभी धर्मों को उनके अनुसार समान व्यवहार करने और समान आदर देने और सभी के साथ समानता रखने को प्रदर्शित करता है।

12. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के परासरन ने डॉ धवन के तर्कों का खण्ड़न करते हुए कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में निर्णय के पुनर्विचारण के लिए प्रार्थना, अपीलार्थीगण की ओर से पोषणीय नहीं है। उन्होनें कहा कि वे जो **इस्माइल फारूखी** के वाद में कार्यवाहियों के ईओ नॉमिनी (किसी के अधीन) पक्षकार थे, जिन्होनें सार्वजनिक अधिकार के संबंध में अर्थात् मुस्लिम समुदाय के अधिकार के संबंध में सद्भावनापूर्वक वाद चलाया, ऐसे अधिकार में हितबद्ध सभी व्यक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के उद्देश्य के लिए ऐसे मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के अधीन दावा करने वाले माने जाएँगें और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण के दृष्टिगत पूर्व न्याय द्वारा वर्जित हैं। उन्होनें कहा कि मुस्लिम समुदाय के हित

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

का **इस्माइल फारूखी** के वाद में इस न्यायालय के समक्ष पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व किया गया था। उन्होनें आगे कहा कि इस्माइल फारूखी के वाद में दिया गया निर्णय ईओ नॉमिनी (किसी के नाम से/अधीन करने वाले) पर बाध्यकारी है। यहाँ तक कि पूर्व न्याय के प्रश्न के अलावा, प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त उन पर बाध्यकारी है जिनके हित ईओ-नॉमिनी की तरह ही राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद की बिषय वस्तु में समान हैं। उन्होनें कहा कि अपीलार्थीगण प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के आधार पर उक्त निर्णय के पुनर्विचारण की प्रार्थना करने के लिए हकदार नहीं हैं। श्री परासरन ने कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में दिए गए निर्णय का पुनर्विचारण करना निरर्थकता का अभ्यास करना होगा क्योंकि उसमें दिया गया निर्णय वर्तमान अपीलार्थियों पर बाध्यकारी है। स्वीकार किए बिना यह मानना कि बड़ी पीठ को आगे संदर्भ करने से **इस्माइल फारूखी** का वाद अभिखण्ड़ित हो जाता है, फिर भी, जहाँ तक "अयोध्या जन्मस्थान बाबरी मस्जिद" का संबंध हैं, **इस्माइल फारूखी** के वाद में दिया गया निर्णय अन्तिमतता के सिद्धांत के आधार पर अपीलार्थियों पर अभी भी बाध्यकारी होगा। उन्होनें कहा कि वर्तमान वाद में दिए गए तर्क **इस्माइल फारूखी** के वाद में दिए गए तर्कों की पुनःदलील थी जैसे कि यह उक्त निर्णय की शुद्धता को जाँच कर उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील थी। उन्होनें आगे कहा कि निर्णय पक्षकारों पर बाध्यकारी होने के अलावा, संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत विधि की घोषणा के रूप में कार्यशील है।

13. श्री परासरन ने आगे कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में यह अवलोकन कि मस्जिद इस्लाम की प्रथा का अनिवार्य अंग नहीं है, इसे 1993

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के अधिनियम के तहत वादग्रस्त संपत्ति के अर्जन की वैधता के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। उन्होनें कहा कि इस न्यायालय ने यह अवधारित नहीं किया है कि मुस्लिमों द्वारा नमाज अदा करना एक अनिवार्य धार्मिक प्रथा नहीं है। उसने केवल यह अवधारित किया कि प्रत्येक विद्यमान मस्जिद में नमाज अदा करने का अधिकार एक अनिवार्य धार्मिक प्रथा नहीं है। लेकिन यदि किसी धर्म का कोई उपासना स्थल उस धर्म में एक विशेष महत्व रखता है, तो यह धर्म का अनिवार्य या अभिन्न अंग होने के लिए पर्याप्त है, और यह एक अलग अवस्थिति (पायदान) पर होगा तथा इसके साथ अलग और अधिक श्रद्धापूर्ण ढ़ंग से व्यवहार करना होगा। श्री परासरन ने सादर कहा कि इस न्यायालय के तर्क का जोर संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत धर्म की स्वतंत्रता के रूप में समझा जाना चाहिए ताकि एक धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र में राज्य की अंतर्निहित संप्रभुता शक्ति के संदर्भ में विशिष्ट अधिकार क्षेत्र में संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण हो सके।

14. श्री परासरन ने आगे कहा कि अनुच्छेद 25 के तहत मुस्लिम समुदाय का नमाज अदा करने का मूल अधिकार प्रभावित नहीं होता है क्योंकि बाबरी मस्जिद उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखने वाला मस्जिद नहीं था। नमाज अदा करने की प्रथा मुस्लिम धर्म का एक अनिवार्य भाग है और इसलिए यह अयोध्या के किसी भी मस्जिद में अदा की जा सकती है। एक तीर्थस्थल के रूप में अयोध्या का हिन्दूओं के लिए एक विशेष महत्व है क्योंकि यह प्राचीन मान्यता है कि वहाँ भगवान राम का जन्म हुआ था। उन्होनें आगे कहा कि अधिग्रहण का दोनो समुदायों के अधिकारों और हितों पर समान रूप से प्रभाव है। अपने तर्कों के दौरान, श्री परासरन ने संदर्भ किए जाने के पक्ष में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अपने तर्कों का समर्थन करने के लिए अपीलार्थियों द्वारा अवलम्ब लिए गए वादों में अंतर समझाने का प्रयास किया है।

15. श्री सी. एस. वैद्यनाथन ने तर्क दिया है कि वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं है जहाँ **इस्माइल फारूखी** के वाद के निर्णय को बड़ी पीठ को संदर्भित किए जाने की आवश्यकता हो। उन्होनें श्री परासरन द्वारा दिए गए तर्कों का ही अनुसरण किया है।

16. विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल, श्री तुषार मेहता ने कहा कि **इस्माइल फारूखी** के वाद में इस न्यायालय का संवैधानिक पीठ का निर्णय एक सही विधि है, जिसको बड़ी पीठ को संदर्भित करके छेड़ा नहीं जाना चाहिए। श्री मेहता ने आगे कहा कि बड़ी पीठ को संदर्भित करने के लिए अपीलार्थियों की प्रार्थना को अत्यधिक विलम्ब के आधार पर अस्वीकार किया जाना चाहिए। उन्होनें कहा कि निर्णय 1994 में दिया गया था। मौहम्मद असलम के वाद, (2003) 4 एससीसी 1 में निर्णय विचारण के लिए आया जहाँ दोनों पक्षकारों नें निर्णयों पर अवलम्ब लिया है। अगर कोई वास्तविक आधार था, तो उसी समय संदर्भ के लिए अनुरोध किया जाना चाहिए था। उन्होनें आगे कहा कि अनुरोध सद्भावनापूर्वक नहीं है और कार्यवाहियों को विलम्ब करने के आशय से किया गया है। विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता ने उनके तर्कों को दोहराया है कि जहाँ तक दोनों तरफ के पक्षकारों के गुणावगुणों का संबंध है, उत्तर प्रदेश राज्य निष्पक्ष है।

17. प्रत्यर्थियों में से एक की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता, श्री परमेश्वर नाथ मिश्रा ने कहा कि इस्लाम की प्रथा के लिए विश्व के सभी मस्जिद अनिवार्य नहीं हैं। अपने तर्कों के दौरान उन्होनें इस्लाम धर्म के विभिन्न ग्रन्थों ,

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कलाकृतियों को संदर्भित किया। उन्होनें आगे कहा कि अल-मस्जिद, अल-हराम अर्थात् मक्का में स्थित काबा इस कारण से एक विशेष महत्व का मस्जिद है कि कुरान में काबा की ओर मुँह करके नमाज अदा करने के लिए और काबा में हज के साथ-साथ उमरा करने के लिए आदेशित किया गया है जिसके बिना इस्लाम धर्म को पालन करने का अधिकार बोधगम्य नहीं है। दो अन्य मस्जिदों अर्थात्, अल-मस्जिद अल-अक्सा यानि यरुशलम में बैतुल मुक़द्दस और मदीना में नबी के अल-मस्जिद का भी विशेष महत्व है क्योंकि काबा के अलावा, इन दोनों मस्जिद की यात्रा को भी पवित्र हदीस द्वारा आदेशित किया गया है। श्री मिश्रा ने अपने तर्कों में विभिन्न ग्रन्थों और कलाकृतियों को संदर्भित किया है और अवलम्बन लिया है। उन्होनें पवित्र कुरान और हदीस की आयतों को संदर्भित किया है, जो इस्लाम धर्म, इसकी मान्यताओं, सिद्धांतों, रीतियों और प्रथाओं का मुख्य स्त्रोत हैं।

18. निर्मोही अखाड़ा की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री एस. के. जैन ने भी डॉ धवन के इस तर्क का खण्ड़न किया है कि **इस्माइल फारूखी** के वाद को बड़ी पीठ को संदर्भित किए जाने की आवश्यकता है।

19. डॉ राजीव धवन ने जवाब दावे में अपनी दलीलों में श्री परासरन के इस तर्क का खण्ड़न किया कि पूर्व न्याय का सिद्धांत वर्तमान मामलें में लागू होता है। उन्होनें कहा कि **इस्माइल फारूखी** का वाद अधिनियम, 1993 और राष्ट्रपति संदर्भ को चुनौती देने के बारे में था तथा इस प्रश्न पर था कि क्या अधिनियम, 1993 के आलोक में अधिनियम, 1993 की धारा 4(3) के कारण मुकदमें उपशमित हो गये। इन अपीलों के तहत वाद, उन मुकदमों से आये हैं,

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जहाँ वाद बिन्दु पूरी तरह भिन्न थे। उन्होनें कहा कि किसी मामले को पूर्व न्याय होने के लिए निम्न शर्तें को पूरा करना होगा, अर्थात्:-

1. मामला प्रत्यक्षतः और सारतः उत्तरवर्ती वाद में विवाद्यक हो या विवाद्यक समान मामले होने चाहिए जो पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्यक थे;
2. पूर्ववर्ती वाद समान पक्षकारों के बीच या जिनके अधीन वे या उनमें से कोई दावा करता है, उनके बीच रहा होना चाहिए;
3. पूर्ववर्ती वाद में समान हक के अधीन पक्षकारों ने मुकदमेबाजी की हो।
4. जिस न्यायालय ने पूर्ववर्ती वाद निर्णीत किया हो, उसे पश्चात्वर्ती वाद के विचारण के लिए या उस वाद में जिसमें ऐसा विवाद्यक पश्चातवर्ती उठाया गया हो, के विचारण के लिए सक्षम होना चाहिए;
5. पश्चात्वर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य विषय , पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा सुना गया हो और अन्तिम रूप से विनिश्चत कर दिया गया हो। आगे स्पष्टीकरण I दर्शित करता है कि यह उस तिथि को नहीं होता जिस तिथि पर वाद दायर किया जाता है बल्कि उस तिथि पर होता है जब वाद निर्णीत कर दिया जाता है भले ही वह मुकदमा बाद में दायर था, यह पूर्ववर्ती वाद होगा यदि यह पहले ही निर्णीत कर दिया गया है। इसलिए इस क्रम में उच्च न्यायालय द्वारा खारिज की गयी पूर्वतर दो अपीलों में दिया गया निर्णय पूर्व न्याय के रूप में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्य करेगा, यह देखना होगा कि क्या उपरोक्त उल्लिखित सभी पाँच शर्तें पूरी हो रही हैं।

20. उन्होनें कहा कि वह मामला जो वादों में प्रत्यक्षतः व सारतः विवाद्यक था, वह उन विवाद्यकों से पूरी तरह अलग है , जिन पर **इस्माइल फारूखी** के वाद में विचार किया गया था। उनका तर्क है कि **इस्माइल फारूखी** का वाद अधिनियम, 1993 और राष्ट्रपति संदर्भ से संबंधित था। उन्होनें आगे कहा कि मस्जिद की अनिवार्यता का मुद्दा सामान्यतः न्यायालय के समक्ष नहीं था और यह केवल निर्णय में उभर कर आया। उन्होनें आगे कहा कि विधि के विशुद्ध प्रश्न पूर्व न्याय नहीं हैं। न्यायालय का नासाबित कथन कि कोई चीज अनिवार्य प्रथा है या नहीं, यह विधि के विपरीत है। उन्होनें आगे कहा संवैधानिक पीठ में वादों को अन्तरित नहीं किया गया था बल्कि उस रिट याचिका को अन्तरित किया गया था जो उच्च न्यायालय में अधिनियम, 1993 को चुनौती देने हुए दायर की गयी थी। उच्चतम न्यायालय में **इस्माइल फारूखी** वाद के साथ सुनवाई के लिए इन वादों को अन्तरित नहीं किया गया था, **इस्माइल फारूखी** के वाद में दिया गया निर्णय इन वादों में निर्णय होना नहीं कहा जा सकता। अनिवार्य प्रथा का गठन किससे होता है और इसे कैसे स्थापित किया जाना है, यह विधि का एक विशुद्ध प्रश्न है और पूर्व न्याय के लिए उत्तरदायी नहीं है। अनिवार्य प्रथाओं के परीक्षण का निर्धारण और प्रयोज्यता से संबंधित विधि की जाँच करना इस न्यायालय के लिए खुला है। मस्जिद में नमाज अदा करने की अनिवार्य नहीं होने का अवलोकन या विशेष महत्व या तुलनात्मक महत्व की अवधारणा बिना किसी आधार की हैं। श्री तुषार मेहता की दलीलों का उत्तर देते हुए डॉ धवन ने कहा कि राज्य ने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वर्तमान कार्यवाही में गैर-तटस्थ रुख नहीं अपनाया है। उन्होनें कहा कि **इस्माइल फारूखी** के निर्णय को पुनर्विचारित किए जाने की प्रार्थना में अपीलार्थियों की ओर कोई से कोई विलम्ब नहीं है। उन्होनें कहा कि उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय **इस्माइल फारूखी** में दिए गए अवलोकनों से प्रभावित है। उन्होनें कहा कि श्री तुषार मेहता की ये दलीलें कि प्रार्थना सद्भावनापूर्वक नहीं की गयी है और केवल कार्यवाहियों को विलम्बित करने के लिए की गयी है, गलत हैं और इसे अस्वीकार किया जाना चाहिए। डॉ धवन ने अपने इस तर्क का समर्थन करने के लिए उच्च न्यायालय के निर्णय में दिए गए विभिन्न अवलोकनों को भी संदर्भित किया है कि **इस्माइल फारूखी** वाद के निर्णय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावित किया है। उन्होनें आगे पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए विभिन्न तर्कों को भी संदर्भित किया है जिसमें उच्च न्यायालय के समक्ष **इस्माइल फारूखी** के वाद के निर्णय पर अवलम्ब लिया गया है। उन्होनें आगे कहा कि इन अपीलों में भी विभिन्न विद्वान अधिवक्तों द्वारा **इस्माइल फारूखी** वाद पर अवलम्ब लेते हुए कई आधार लिए गए हैं।

21. पक्षकारों के विद्वान अधिक्ता ने इस न्यायालय के कई निर्णयों को उल्लिखित किया है और उन पर अवलम्ब लिया है, जिन्हें विस्तृत में दलीलों पर विचार करते समय संदर्भित किया जाएगा।

22. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर आने से पहले न्यायालय के निर्णय में स्थापित किए गए कुछ सिद्धांतों का उल्लेख करना सुसंगत है। वर्तमान मामले में केन्द्र बिन्दु, **डॉ एम. इस्माइल फारूखी व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य (1994) 6 एससीसी 360** में संवैधानिक पीठ का

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

निर्णय है। हमें निर्णय में दिए गए अवलोकनों के संदर्भ का पता लगाना होगा जो कि अपीलकर्ता के अनुसार प्रश्नगत हैं और यह विनिश्चित करना होगा कि क्या उक्त अवलोकन संवैधानिक पीठ के निर्णय को पुनःविचारित किए जाने का कोई आधार देते हैं। विधि के न्यायालय के निर्णय को पढ़ने पर सबसे प्रचलित सिद्धांत जिसे इस न्यायालय द्वारा बार-बार अनुमोदित किया गया है, यह **क्विन बनाम लिथेम, 1901 एसी 495** में लॉर्ड हल्सबरी का कथन है, जहाँ निम्नलिखित प्रतिपादित किया गयाः

> "एलेन बनाम फ्लड के वाद पर चर्चा करने से पहले और इसमें जो निर्णीत किया गया था, इससे पहले, सामान्य प्रकृति के दो अवलोकन हैं जिन्हें मैं कहना चाहूंगा, और एक यह है जो मैंने बहुत बार पहले कहा है, उसे दोहराता है कि प्रत्येक निर्णय को साबित विशेष तथ्यों पर लागू होने की सीमा तक पढ़ा जाना चाहिए, या साबित हुआ माना जाना चाहिए, क्योंकि उन अभिव्यक्तियों की सामान्य बातें जो वहां पाई जा सकती हैं, पूरे कानून की व्याख्या करने के लिए आशयित नहीं है, लेकिन मामले के विशेष तथ्यों पर शासित और अर्ह हैं जिसमें ऐसी अभिव्यक्तियां पाई जानी हैं। दूसरा यह है कि एक मामला केवल वहीं तक प्राधिकृत होता है जितना वह वास्तव में निर्णीत करता है। मैं इस बात को पूरी तरह से अस्वीकार करता हूं कि इसे एक ऐसे कथन के लिए उद्धृत किया जा सकता है जो इससे तार्किक रूप से निकलता है। इस तरह के तर्क की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रणाली यह मानती है कि कानून अनिवार्य रूप से एक तार्किक संहिता है, जबकि प्रत्येक वकील को यह स्वीकार करना चाहिए कि कानून हमेशा तार्किक नहीं होता है।"

23. पूर्व निर्णयों को लागू करने के मामलें में लॉर्ड ड़ेनिंग के निम्नलिखित शब्द सर्वाधिक प्राधिकारवान (लोकस क्लासिकस) बन गए हैंः

"प्रत्येक मामला इसके अपने तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले की अन्य मामले से काफी हद तक समानता ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि ऐसे मामलों को निर्णीत करने में , एक अकेला महत्वपूर्ण विवरण पूरे स्वरूप को बदल सकता है, (जैसा कि न्यायमूर्ति कारडोजो द्वारा कहा गया है) एक वाद के स्वरूप को अन्य वाद के स्वरूप से सुमेलित करके वादों को निर्णीत करने के प्रलोभन से बचना चाहिए। अतः यह तय करना कि कोई मामला रेखा के किस ओर पड़ता है, दूसरे मामले से व्यापक समानता बिल्कुल भी निर्णायक नहीं है।

***

पूर्व निर्णय का अनुसरण तभी तक करना चाहिए जब तक कि वह न्याय का मार्ग प्रशस्त करे , लेकिन तुम्हें मृत लकड़ी को काट देना चाहिए और बगल की शाखाओं को छाँट देना चाहिए, अन्यथा तुम अपने आप को झाड़ियों और शाखाओं में खोया हुआ पाओगे। मेरी दलील है कि न्याय के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मार्ग को उन बाधाओं से मुक्त रखा जाए जो इसे बाधित कर सकती हैं।"

उपरोक्त अवतरण को **सर्व श्रमिक संगठन (केवी), मुम्बई बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य, (2008) 1 एससीसी 494** में इस न्यायालय के अनुमोदन द्वारा उद्धृत किया गया है।

24. **इस्लामिक एकेडमी ऑफ एजुकेशन व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, (2003) 6 एससीसी 697** में संवैधानिक पीठ के निर्णय में, बहुमत की ओर से बोलते हुए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति वी. एन. खरे ने अवधारित किया:

"किसी निर्णय के निर्णय–आधार को केवल पूरे निर्णय को पढ़कर ही पता लगाना चाहिए। वास्तव में निर्णय का आधार वह है जो स्वयं निर्णय में ही वर्णित (निर्धारित) है। प्रश्न के उत्तर को अनिवार्यतः निर्णय में वर्णित (निर्धारित) के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए और उससे अलग नहीं। किन्हीं अवलोकनों, कारणों और सिद्धांतों के संबंध में कोई संदेह उत्पन्न होने की स्थिति में, निर्णय के अन्य भाग को देखा जाना चाहिए। निर्णय में यहाँ वहाँ कोई पंक्ति पढ़ने से निर्णय का संपूर्ण निर्णय – आधार पता नहीं लगाया जा सकता। इसलिए, हम अपना स्पष्टीकरण देते समय, उन हिस्सों के अलावा जिन पर अवलम्ब लिया जा सकता है, निर्णय के अन्य भागों को देखने के लिए बाध्य हैं।"

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

25. प्रस्तर 139 से 146 में न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा नें अपनी सहमत राय में निर्णय के अर्थान्वयन के सिद्धांतों को दोहराया है। प्रस्तर 139–146 में निम्नलिखित अवधारित किया गया हैः–

"किसी निर्णय का अर्थान्वयन

139. यह स्पष्ट है, कि निर्णय को कानून के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए। किसी निर्णय का निर्णय–आधार उसका तर्क होता है जिसे निर्णय को संपूर्णता में पढ़ने पर ही समझा जा सकता है। किसी मामले का निर्णय–आधार या सिद्धांत और कारण जिस पर यह आधारित है, अंतिम रूप से दिए गए अनुतोष या उसके निस्तारण के लिए अपनाए गए तरीके से अलग होता है।

[एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, धेंकनल माइनर इरिगेशन डिवीजन बनाम एन. सी. बुद्धराज (2001) 2 एससीसी 721 देखें।]

140. पद्म सुन्दर राव बनाम तमिलनाडू राज्य (2002) 3 एससीसी 533 में यह कहा गया हैः (एससीसी पेज 540 प्रस्तर 9)

"लॉर्ड मॉरिस नें हेरिंगटन बनाम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड (1972) 2 डब्ल्यूएलआर 537 [सब नॉम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बनाम हेरिंगटन, (1972) 1 ऑल ईआर 749] में कहा कि व्याख्यान या निर्णय के शब्दों को विधायी अधिनियम के शब्द मानने में हमेशा जोखिम होता है और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कथन किसी विशेष मामले के तथ्यों की परिस्थिति में किए जाते हैं। परिस्थितिजन्य लचीलापन, एक अतिरिक्त या अलग तथ्य, दो मामलों के निष्कर्षों के बीच बहुत अंतर ला सकती है।"
[हरियाणा फाइनेंशियल कॉरपोरेशन बनाम जगदम्बा ऑयल मिल्स (2002 3 एससीसी 496 भी देखें]

141. जनरल इलेक्ट्रिक कॉरपोरेशन बनाम रेनुसागर पॉवर कॉरपोरेशन, (1987) 4 एससीसी 137, में यह अभिधारित किया गयाः (एससीसी पेज 157, प्रस्तर 20)

"जैसा कि हमारे द्वारा कई बार दर्शाया गया है, कि किसी निर्णय में प्रयुक्त शब्दों और पदों का अर्थ संविधियों की तरह समान रूप से नहीं लगाया जाना चाहिए या संविधियों में परिभाषित शब्दों और पदों के रूप में नहीं लगाया जाना चाहिए। हमें कोई संदेह नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जानकी सरन कैलाश चंद्र [1974] 1 एससीआर 31, में जब इस न्यायालय द्वारा "वाद में विवादग्रस्त के गुण–दोष का न्यायनिर्णयन" शब्दों का प्रयोग किया गया था, तो शब्दों का

प्रयोग हर उस न्यायनिर्णयन में करने के लिए नहीं किया गया था, जो किसी भी तरीके से अदालत के समक्ष कार्यवाही को समाप्त कर देता था, बल्कि केवल ऐसे न्यायनिर्णयन को कवर करने के लिए थे जो पक्षकारों के बीच वास्तविक विवाद को स्पर्श करते थे जिसने कार्रवाई को जन्म दिया। पक्षकारों के बीच विवादों के न्यायनिर्णयन पर आपत्तियां, चाहे वे किसी भी आधार पर हों, यथार्थ में वाद की प्रगति में सहायक नहीं होतीं बल्कि ऐसी प्रगति में बाधक होतीं हैं। ऐसी आपत्तियों के न्यायनिर्णयन को वाद में विवादग्रस्त के गुण –दोषों का न्यायनिर्णयन नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि हमने पहले कहा, इसमें शामिल सिद्धांतों के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण लिया जाना चाहिए और संकीर्ण तथा तकनीकी व्याख्या से बचना चाहिए जो विधायन के उद्देश्य को विफल करती हो।"

142. राजेश्वर प्रसाद मिश्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एआईआर 1965 एससी 1887, में यह अवधारित किया गयाः

"अनुच्छेद 141 उच्चतम न्यायालय को विधि घोषित करने और इसे अधिनियमित करने के लिए सशक्त करती है। इसलिए उच्चतम न्यायालय के अवलोकन को वैधानिक अधिनियमितियों (कानूनों) के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए। यह भी सर्वविदित है कि किसी निर्णय का आधार उसमें निर्दिष्ट कारण होते हैं।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(अमर नाथ ओम प्रकाश व अन्य बनाम पंजाब राज्य [1985] 1 एससीसी 345 और हमीद जोहरान बनाम अब्दुल सलाम, 2001 (7) एससीसी 573)।

143. इसलिए, यह तर्क देना सही नहीं होगा, जैसा कि श्री नरीमन ने तर्क दिया है कि प्रश्नों के उत्तर निर्णय के आधार होंगे। प्रश्नों के उत्तर मात्र निष्कर्ष हैं। निर्णय की काया में उसके समर्थन में निर्दिष्ट कारणों पर संशय या विवाद होने की स्थिति में उसका अर्थान्वयन किया जाना चाहिए, इसके लिए निर्णय के अन्य पैराग्राफ को भी पढ़ना आवश्यक होगा। इस उद्देश्य के लिए पक्षकारों के अभिवचनों को देखना भी अनुमत है। (यद्यपि केवल कुछ ही मामलों में और यदि कोई मजबूत व ठोस कारण मौजूद हों)।

144. डायरेक्ट रिक्रूट्स क्लास II इंजीनियरिंग ऑफीसर्स एशोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य (1990) 2 एससीसी 715 में वरिष्ठता के निर्धारण के लिए प्रतिपादित किए गए विशिष्ट दिशानिर्देशों की कठिनाईयों से जब इस न्यायालय का सामना हुआ, तो केशव चन्द्र जोशी बनाम भारत संघ 1992 सप्लीमेंटरी (1) एससीसी 272 में इस न्यायालय ने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अवधारित किया कि निष्कर्षों को निर्णय की काया में दी गयी परिचर्चा और कारणों के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

145. आगे यह स्पष्ट है कि कोई निर्णय केवल वहाँ तक प्राधिकृत होता है जिसे वह निर्णीत करता है और उसके लिए प्राधिकृत नहीं होता है जिसे इससे तर्कसंगत रूप से निकाला जा सकता है। [भारत संघ बनाम छज्जु राम, (2003) 5 एससीसी 568 को देखें]

146. इसलिए, टी.एम.ए. पाई फाउण्ड़ेशन (2002) 8 एससीसी 481, में इस न्यायालय के निर्णय का अर्थ लगाना होगा या उपरोक्त सिद्धांतों का अर्थान्वयन करना होगा , न्यायालय न केवल उसमें जो कहा गया है, बल्कि पाठ्य और संदर्भ जिसमें यह कहा गया था, पर विचार करके निर्णय के आशय और उद्देश्य का पता लगाने के लिए यहां–वहां से कुछ वाक्य नहीं पढ़ सकती है। उक्त उद्देश्य के लिए न्यायालय संविधानिक या सुसंगत वैधानिक प्रावधानों के संदर्भ में इसके हालियों निर्णयों पर भी विचार कर सकती है , जिस पर अवलम्ब लिया गया है।"

26. **कमिश्नर ऑफ सेन्ट्रल एक्साइज, दिल्ली बनाम एलाइड एयरकंडिशनिंग कॉरपोरेशन (रजिस्टर्ड) (2006) 7 एससीसी 735** में इस न्यायालय के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए बोलते हुए न्यायमूर्ति अरिजित पसायत ने अवधारित किया कि निर्णय को वाद के तथ्यों के आलोक में समझा जाना चाहिए और इसमें वास्तव में जो कहा गया है, उससे अधिक नहीं पढ़ा जाना चाहिए। प्रस्तर 8 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया हैः

> "8. ....किसी निर्णय को वाद के तथ्यों के आलोक में समझा जाना चाहिए और इसमें वास्तव में जो कहा गया है, उससे अधिक नहीं पढ़ा जाना चाहिए। विचाराधीन प्रश्न के संदर्भ से अलग किए गए निर्णय से किसी शब्द या वाक्य को लेना और इसे इस न्यायालय द्वारा तय किया गया पूर्ण कानून मानना, न तो वांछनीय है और न ही अनुज्ञेय है। निर्णय को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और निर्णय के अवलोकनों को उन प्रश्नों के आलोक में विचार किया जाना चाहिए जो इस न्यायालय के समक्ष थे। (महबूब दाऊद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य (2004) 2 एससीसी 362...."

27. उपरोक्त सिद्धांतों के आलोक में, अब हम **इस्माइल फारूखी** में संवैधानिक पीठ के निर्णय पर वापस आते हैं। हमें संवैधानिक पीठ के समक्ष विचारण के लिए आए हुए मुद्दों, निर्णय के आधार और अवलोकनों के संदर्भ को देखना होगा। हमने ऊपर देखा है कि **इस्माइल फारूखी वाद** में संवैधानिक पीठ ने पाँच हस्तांतरित वादों, अनुच्छेद 32 के तहत दायर दो रिट याचिकाओं और विशेष संदर्भ संख्या 1/1993 को निर्णीत किया। अनुच्छेद 143 के तहत भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया गया विशेष संदर्भ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संख्या 1 वर्ष 1993 को संवैधानिक पीठ द्वारा उत्तर देने के लिए सम्मानपूर्वक अस्वीकार कर दिया गया। अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाओं और अंतरित वादों में 1993 के अधिनियम को चुनौती दी गयी थी। अधिनियम, 1993 को अयोध्या में कुछ क्षेत्रों के अर्जन के लिए और उससे संबंधित या उससे आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 2(a) क्षेत्र को इस रूप में परिभाषित करता हैः

> "2(a) "क्षेत्र" से तात्पर्य अनुसूची में विनिर्दिष्ट क्षेत्र (संपूर्ण इमारतों, संरचनाओं या इसमें शामिल अन्य संपत्तियों सहित) से है;

28. अधिनियम की अनुसूची में अधिग्रहित क्षेत्र का विवरण था। अन्य भूखण्ड़ों के अलावा कोट रामचन्द्र गाँव में स्थित राजस्व प्लाट संख्या 159 और 160, जिसमें आमतौर पर राम जन्म भूमि–बाबरी मस्जिद के नाम से ज्ञात संरचना स्थित थी, को भी शामिल किया गया था। इसमें शामिल अन्य संपत्तियों पर स्थित सभी भवन संरचना सहित कई अन्य भूखंडों का अधिग्रहण किया गया था।

29. अधिनियम, 1993 की वैधता को कई आधारों पर चुनौती दी गयी थी। चुनौती के आधार को निर्णय के प्रस्तर 17 में उल्लिखित किया गया है जो निम्नलिखित प्रभाव का हैः

> "17. व्यापक रूप से कहा गया, कि संविधि को चुनौती देने का केन्द्र बिन्दु समग्र रूप से धर्मनिरपेक्षता, समानता का अधिकार और धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार के आधारों पर है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

विवादित क्षेत्र से अधिक क्षेत्र के अधिग्रहण को चुनौती इस आधार पर अतिरिक्त है कि अधिग्रहण ही अनावश्यक था क्योंकि यह इसके भीतर स्थित छोटे विवादित क्षेत्र के विवाद से संबंधित नहीं था। इस अधिनियम को जोरदार तरीके से चुनौती देते हुए कुछ पक्षकारों की ओर से रखा गया एक बड़ा तर्क यह था कि यह प्रश्न कि क्या अधिग्रहण से धार्मिक आचरण करने का अधिकार प्रभावित हुआ, इस प्रश्न से स्वतंत्र रूप से अलग, मस्जिद मुस्लिमों का एक धार्मिक उपासना स्थल होने से राज्य की अधिग्रहण की शक्ति से बिल्कुल बाहर (उन्मुक्त) है और इसलिए संविधि इस अकेले कारण से ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के उल्लंघन के रूप में असंवैधानिक है। हालांकि अन्य पक्षकारों ने अधिग्रहण से उन्मुक्ति के इस तर्क को उन विशेष महत्व के स्थानों तक ही सीमित रखा है जो कि धर्म के आचरण के अधिकार के अनिवार्य और अभिन्न अंग हैं, ऐसे स्थानों के अधिग्रहण का परिणाम धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार का अंत होगा। यह भी तर्क दिया गया था कि वर्तमान मामले में अधिग्रहण का उद्देश्य, संविधि को प्रविष्टि 42, सूची III के दायरे में नहीं लाता है बल्कि प्रविष्टि 1, सूची II के संदर्भ में है और इसलिए संसद इसे अधिनियमित करने में सक्षम नहीं है। आगे मुस्लिम हित को दर्शित करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया था कि कानून हिंदू हितों के पक्ष में बहुत अधिक झुका हुआ है और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इसलिए गैर–धर्मनिरपेक्षता के दोष से ग्रस्त है, और मुस्लिम समुदाय के धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन के अलावा भेदभावपूर्ण भी है।....."

30. जिस क्षेत्र में विवादित क्षेत्र अधिक है उस क्षेत्र के अधिग्रहण की चुनौती इस आधार पर थी कि यह अनावश्यक था, इसलिए इसे अवैध घोषित किया जाना चाहिए। अतिरिक्त क्षेत्र की चुनौती हिंदू समुदाय के सदस्यों द्वारा की गई थी, जो उक्त भूखंड से संबंधित थे। हमले का एक आधार धर्मनिरपेक्षता पर आधारित था। यह तर्क दिया गया कि अधिनियम को पूरी तरह से पढ़ा जाना धर्मनिरपेक्ष और मुस्लिम समुदाय के विरूद्ध है। एक मस्जिद में राज्य की अधिग्रहण की शक्ति से प्रतिरक्षा होती है। मुस्लिम समुदाय की ओर से यह तर्क दिया गया था कि 1528 ईस्वी के बाद से जब मस्जिद का निर्माण किया गया था तब अधिग्रहण से 400 से अधिक वर्षों तक दूसरे पक्ष द्वारा दायर प्रतिकूल कब्जे सहित अन्य वादों में अल्पसंख्यक समुदाय के लिए था जिसे अधिग्रहण द्वारा समाप्त कर दिया गया। एक वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र के प्रतिस्थापन के बिना ही वाद को समाप्त कर दिया गया है, जिसके लिए वे संवैधानिक योजना में हकदार हैं।

31. संविधान पीठ ने अवधारित किया कि अधिनियम के तहत संपत्तियों का अधिग्रहण दोनों समुदायों के अधिकारों को प्रभावित करता है , न केवल मुस्लिम समुदाय के लोगों को। प्रस्तर 49 में निम्नलिखित पर ध्यान दिया गया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"49. तथ्यों का वर्णन संकेत करता है कि अधिनियम के तहत संपत्तियों का अधिग्रहण दोनों समुदायों के अधिकारों को प्रभावित करता है न कि केवल मुस्लिम समुदाय के लोगों को। मुस्लिमों द्वारा दावा किया गया हित केवल उस विवादित स्थल पर है जहां मस्जिद विध्वंस से पहले बनी हुई थी। इस दावे पर हिंदुओं की आपत्ति को न्यायनिर्णयन किया जाना चाहिए। अधिनियम के तहत प्राप्त शेष संपूर्ण संपत्ति ऐसी है, जिस पर मुस्लिमों द्वारा कोई दावा नहीं किया गया है। इसके एक बड़े हिस्से में हिंदुओं की संपत्ति शामिल है, जिसका स्वत्व विवाद में भी नहीं है ...।"

32. इस न्यायालय ने यह भी ध्यान दिया कि अयोध्या को हिंदुओं के लिए विशेष महत्व के स्थान के रूप में कहा जाता है क्योंकि प्राचीन मान्यता है कि भगवान राम का जन्म वहां हुआ था। न्यायालय ने यह भी ध्यान दिया कि 1528 ईसवी में मीर बाकी द्वारा निर्मित एक प्राचीन मस्जिद के रूप में मुस्लिम समुदाय का समान रूप से मस्जिद का महत्व था। निम्नलिखित निर्णय के प्रस्तर 51 में उल्लेख किया गया है:

"51. यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि अयोध्या को हिंदुओं के तीर्थस्थल के रूप में भी विशेष महत्व के रूप में कहा जाता है क्योंकि भगवान राम का जन्म हुआ था, इस विश्वास के कारण कि मुस्लिम समुदाय के लिए मस्जिद का महत्व था, यह 1528 ईसवी में मीर बाक़ी द्वारा निर्मित प्राचीन मस्जिद, एक मस्जिद के रूप में मुस्लिमों द्वारा धार्मिक उपासन स्थल था। यह दो समुदायों के लिए विवादित स्थल के तुलनात्मक महत्व की ओर संकेत करता है और यह भी कि अधिग्रहण का प्रभाव हिंदू समुदाय के अधिकार और हित पर समान रूप से पड़ता

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। इस पहलू का उल्लेख केवल इस तर्क के संदर्भ में किया जाता है कि कानून के रूप में पूर्णतः धारा 7 ही नहीं बल्कि हिंदुओं के पक्ष में और मुस्लिमों के विरूद्ध धर्मनिरपेक्षता का विरोध किया जा रहा है।"

33. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि संविधान पीठ के समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए प्रमुख तर्कों में से एक यह था कि मस्जिद को मुस्लिम विधि में विशेष दर्जे के कारण अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है। संविधान पीठ ने प्रस्तर 65 से 82 के एक अलग शीर्षक "मस्जिद– अर्जन से प्रतिरक्षा" द्वारा इस्माइल फारुकी मामले में उपरोक्त आधार पर विचार किया।

34. शीर्षक के अनुसार प्रस्तर 65 से 82 की परिचर्चा संकेत करती है कि परिचर्चा और समस्त अवलोकन एक मस्जिद के अधिग्रहण से प्रतिरक्षा के संदर्भ में थे। निर्णय के प्रस्तर 65 में सुनवाई में एक बड़ा प्रश्न उठाया गया था कि इस्लाम धर्म के कार्य के महत्व के बावजूद , किसी भी मस्जिद का अधिग्रहण करने की राज्य को कोई शक्ति नहीं है। उपर्युक्त अवलोकन को अधिसूचित करने के बाद न्यायालय ने देखा कि प्रस्ताव उन्नत स्वीकृति के लिए बहुत व्यापक है। हम प्रस्तर 65 को पुन: प्रस्तुत करते हैं जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए है:

"65. सुनवाई में एक बड़ा प्रश्न यह था कि किसी भी मस्जिद का अधिग्रहण करने की राज्य को कोई शक्ति नहीं है, चाहे वह इस्लाम धर्म के कार्य के महत्व के बावजूद हो। तर्क यह है कि एक मस्जिद, भले ही इसका इस्लाम धर्म के कार्य के लिए कोई विशेष महत्व न हो, मुस्लिम विधि में एक मस्जिद की विशेष स्थिति के कारण अधिग्रहण नहीं किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जा सकता है। यह तर्क विशेष महत्व वाली एक मस्जिद तक सीमित नहीं था, जिसके बिना धर्म का कार्य करना उचित नहीं है क्योंकि यह इस्लाम के कार्य का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग हो सकता है। इसके दृष्टिगत इसे पक्षकार जो इसके हकदार थे, को सौंपने के उद्देश्य से और तब तक इसे बनाए रखने की आवश्यकता थी, हमने केंद्र सरकार में विवादित क्षेत्र के एक वैधानिक प्रापक के रूप में केंद्र सरकार में सीमित निहित कर लिया है जिसमें मस्जिद बनी हुई थी, यह प्रश्न किसी भी व्यावहारिक महत्व का नहीं हो सकता है क्योंकि उस संपत्ति के वास्तविक स्वामी का कोई पूर्ण विभाजन नहीं है। हम अवलोकन कर सकते हैं कि उन्नतिशील प्रस्ताव हमें अस्मिता की स्वीकृति के लिए बहुत व्यापक प्रतीत होता है क्योंकि यह अधिग्रहण की संप्रभु शक्ति को प्रतिबंधित करेगा, जहां निस्संदेह राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए ऐसा अर्जन आवश्यक है, यदि मस्जिद संपत्ति में धर्म के रूप में इस्लाम के कार्य के लिए बिना किसी विशेष महत्व के उपासना के एक सामान्य स्थान के रूप में स्थित है। इससे यह भी असामान्य परिणाम होगा कि धर्मनिरपेक्ष भारत में इस्लाम के अलावा अन्य धर्मों के विरूद्ध भेदभाव होगा। हमारे लिए इस प्रश्न को तय करना आवश्यक है कि जिस तीव्रता के साथ यह तर्क डॉ. राजीव धवन और श्री अब्दुल मन्नन द्वारा किया गया था, उस दृष्टि में अर्जन केवल इस कारण से अमान्य है।"

35. यद्यपि प्रस्तर 65 में न्यायालय ने अवलोकन किया कि प्रस्ताव स्वीकृति के लिए बहुत अच्छा है, परन्तु उस तीव्रता की दृष्टि में जिसमें याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क किया गया था, इस मुद्दे को तय करने के लिए न्यायालय ने कार्यवाही की।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

36. संविधान पीठ के समक्ष तर्क यह भी था कि मस्जिद का अर्जन भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत दिए गए अधिकार का उल्लंघन करता है। 1950 से पूर्व ब्रिटिश भारतीय कानून को ध्यान में रखते हुए और संविधान के लागू होने के बाद, संविधान पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि राज्य के अर्जन की संप्रभु शक्ति के तहत धार्मिक पूजा स्थल जैसे मस्जिद, चर्च, मंदिर आदि का अर्जन किया जा सकता है। इस तरह का अर्जन संविधान के अनुच्छेद 25 या अनुच्छेद 26 का स्वयमेव उल्लंघन नहीं करता है। विभिन्न निर्णयों पर ध्यान देने के बाद पैराग्राफ 74 में इस प्रकार प्रतिपादित किया गया था:

> "74. यह इस न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों से प्रकट होता है, जिसे बाद में संदर्भित किया गया है, जो संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण के अधीन है और धार्मिक स्थलों जैसे मस्जिदों, चर्चों, मंदिरों आदि को राज्य के संप्रभु शक्ति के तहत अर्जन किया जा सकता है। इस तरह का अर्जन संविधान के अनुच्छेद 25 या अनुच्छेद 26 का स्वयमेव उल्लंघन नहीं करता है। संपत्ति के अर्जन के लिए राज्य की संप्रभु शक्ति पर प्रबंधन का अधिकार लेने से संबंधित फैसलों का कोई असर नहीं है।"

37. संविधान पीठ ने आगे अवधारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत धर्म का कार्य करने, प्रचार और प्रसार करने का अधिकार आवश्यक रूप से संपत्ति के अर्जन या स्वयं के अधिकार को शामिल नहीं करता है। इसी प्रकार, यह अधिकार पूजा करने और हर स्थान पर पूजा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करने के किसी भी अधिकार का विस्तार नहीं करता है। आगे, यह अवधारित किया गया था कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण धार्मिक कार्य है जो धर्म का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग है। प्रस्तर 77 और 78 में निम्नलिखित अवधारित किया गया है:

> "77. यह अवधारित किया जा सकता है कि अनुच्छेद 25 में संविधान के अनुच्छेद 26 के विपरीत संपत्ति का कोई संदर्भ नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत धर्म का कार्य, प्रचार और प्रसार करने का अधिकार आवश्यक रूप से संपत्ति के अर्जन या स्वयं के अधिकार को शामिल नहीं करता है। इसी प्रकार यह अधिकार पूजा करने के किसी भी स्थान और प्रत्येक स्थान पर पूजा करने के अधिकार तक विस्तृत नहीं है, जिसके वजह से स्वयमेव किसी विशेष स्थान पर पूजा करने के लिए कोई बाधा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत गारंटीकृत धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन कर सके। संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण धार्मिक कार्य के लिए है जो धर्म का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग बनता है। कोई कार्य एक धार्मिक कार्य हो सकता है लेकिन उस धर्म के कार्य का अनिवार्य और अभिन्न अंग नहीं है।
>
> 78. प्रार्थना या उपासना करना एक धार्मिक कार्य है, इसे हर उस स्थान पर किया जाता है जहाँ यह किया जा सकता है और यह ऐसे धार्मिक कार्य का एक अनिवार्य या अभिन्न हिस्सा नहीं होगा जब तक कि उस धर्म के लिए स्थान का कोई विशेष महत्व या एक आवश्यक या अभिन्न अंग न हो। किसी भी धर्म की पूजा का स्थान उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखता है, इसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए, एक अलग पायदान पर खड़ा होना चाहिए और अलग–अलग और अधिक आदर के साथ व्यवहार करना होगा।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

38. उपर्युक्त अवलोकन के साथ संविधान पीठ ने अवधारित किया कि प्रार्थना या पूजा का प्रस्ताव एक धार्मिक कार्य है, हर स्थान पर इसको करना ऐसे धार्मिक कार्य का अनिवार्य या अभिन्न हिस्सा नहीं होगा जब तक कि उस धर्म के लिए इस स्थान का एक आवश्यक या अभिन्न अंग बनाने के लिए कोई विशेष महत्व न हो। किसी भी धर्म की पूजा का स्थान उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखता है, इसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए, एक अलग पायदान पर खड़े होकर अलग–अलग और अधिक आदरपूर्वक व्यवहार करना होगा।

39. हमने ऊपर जो ध्यान दिया है, उससे निम्नलिखित तर्क निकलता है:

(i) मस्जिदों, चर्चों, मंदिरों आदि जैसे धार्मिक पूजा स्थलों को अर्जन की संप्रभु शक्ति के तहत अर्जित किया जा सकता है, जो संविधान के अनुच्छेद 25 या 26 का उल्लंघन नहीं करता है।

(ii) अनुच्छेद 25 के तहत प्रत्याभूत धर्म का प्रचार और प्रसार के अधिकार का कार्य किसी भी स्थान और प्रत्येक पूजा स्थल पर पूजा के अधिकार का विस्तार नहीं करता है ताकि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत किसी विशेष स्थान पर स्वयमेव पूजा करने के लिए कोई बाधा धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन कर सके।

(iii) संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण धार्मिक व्यवहार के लिए है जो धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(iv) एक अभ्यास एक धार्मिक अभ्यास हो सकता है लेकिन उस धर्म के अभ्यास का अनिवार्य और अभिन्न अंग नहीं है।

(v) प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक कार्य है, प्रत्येक स्थान पर इसको करना जहां इसे किया जा सकता है, ऐसे धार्मिक कार्य का अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि एक आवश्यक या अभिन्न अंग तैयार करने में उस धर्म के लिए इस स्थान का कोई विशेष महत्व न हो। न्यायालय ने स्वयं उस धर्म के एक विशेष महत्व के स्थान के संबंध में एक अंतर निकाला है जहां प्रार्थना या पूजा करना धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग हो सकता है।

40. न्यायालय ने अवधारित किया कि मस्जिदों को परिसीमित करना कानून के प्रावधानों के अधीन थे, जिससे मुस्लिमों को विशेष मस्जिद में नमाज अदा करने का अधिकार समाप्त हो गया। प्रस्तर 80 में निम्नलिखित अवधारित किया गया था:

> "80. यह तर्क दिया गया है कि एक मस्जिद का मुस्लिम कानून में एक विशेष स्थिति होती है और एक बार एक मस्जिद स्थापित होती है और ऐसी मस्जिद में नमाज अदा किया जाता है, वही हमेशा के लिए अल्लाह की संपत्ति हो जाती है और वही मस्जिद के दाता या संस्थापक को वापस कभी नहीं लौटता है और इस्लाम में विश्वास रखने वाले कोई भी व्यक्ति इस तरह की मस्जिद में नमाज अदा कर सकता है और यहां तक कि यदि ढाँचे को ध्वस्त भी कर दिया जाता है, तो उस स्थान पर नमाज अदा किया जा सकता है। जैसा कि यहां बताया गया है कि ब्रिटिश भारत में किसी मस्जिद को ऐसी कोई सुरक्षा नहीं दी गई थी और मस्जिद को मुस्लिमों की उस संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा विशेष मस्जिद में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नमाज अदा करने के लिए मुस्लिमों के अधिकार को समाप्त करने के लिए परिसीमा के कानून के प्रावधानों के अधीन किया गया था।"

41. संविधान पीठ ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया कि प्रत्येक अचल संपत्ति मंदिर, चर्च या मस्जिद हो सकती है और अर्जन के लिए उत्तरदायी है और एक मस्जिद में कोई भी अतिरिक्त सुरक्षा नहीं होती है जो अन्य धर्मों के धार्मिक स्थलों के लिए उपलब्ध नहीं है।

42. अब, हम निर्णय के प्रस्तर 82 पर आते हैं, जो डॉ. राजीव धवन द्वारा उठाये गए तर्क का मुख्य आधार है। डॉ. राजीव धवन द्वारा प्रस्तर 82 में किए गये कुछ अवलोकनों पर गंभीर आपत्तियाँ जताई गई हैं। सम्पूर्ण प्रस्तर 82 नीचे सन्दर्भित किया गया है:

"82. सही स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत में लागू मुस्लिम विधि के तहत, एक मस्जिद का स्वत्व प्रतिकूल कब्जे में खो सकता है (मुल्ला के मुस्लिम कानून के सिद्धांतों को एम. हिदायतुल्ला–धारा 217; और एआईआर 1940 पीसी 116 19 वें संस्करण में देखें)। यदि कानून में यही स्थिति है, तो यह मानने का कोई कारण नहीं हो सकता है कि मस्जिद की एक विशिष्ट या विशेष स्थिति है, जो धर्मनिरपेक्ष भारत में अन्य धर्मों के पूजा स्थलों की तुलना में अधिक है, ताकि इसे संप्रभुता या राज्य की प्राथमिक शक्ति के कार्य द्वारा अर्जन से प्रतिरक्षित किया जा सके। एक मस्जिद इस्लाम धर्म के कार्य का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुस्लिमों द्वारा नमाज़ (प्रार्थना) को कहीं भी, खुले स्थान में भी अदा किया जा सकता है। तदनुसार, इसका अर्जन भारत के संविधान में प्रावधानों द्वारा निषिद्ध नहीं है। संविधान के तहत भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकाचार में अर्जन से संप्रभुता शक्ति का कार्य और इसकी स्थिति और अधिग्रहण से राज्य

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

द्वारा अधिग्रहण से प्रतिरक्षा के उद्देश्य के लिए एक इस्लामी देश में किसी मस्जिद की स्थिति के बावजूद चर्च, मंदिर आदि समान और उसके बराबर है। यह अन्य धर्मों के पूजा स्थलों की तुलना में न तो अधिक है और न ही कम है। जाहिर है, किसी भी धार्मिक स्थान का अर्जन केवल एक बड़े राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए असामान्य और असाधारण स्थितियों में किया जाना है, यह ध्यान में रखते हुए कि ऐसे अर्जन से धर्म का कार्य करने के अधिकार के लोप होने का परिणाम नहीं होना चाहिए, यदि उस स्थान का महत्व ऐसा हो। इस शर्त के अधीन, अर्जन की शक्ति मस्जिद के लिए किसी भी धर्म के किसी भी अन्य पूजा स्थल की तरह है। पूजा करने का अधिकार कहीं भी और प्रत्येक स्थान पर नहीं है, इसलिए जब तक कि इसे प्रभावी ढंग से कार्य नहीं किया जा सकता, जब तक कि किसी विशेष स्थान पर पूजा करने का अधिकार स्वयं उस अधिकार का अभिन्न अंग न हो।"

"एक मस्जिद इस्लाम धर्म के कार्य का अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुस्लिमों द्वारा नमाज़ (प्रार्थना) कहीं भी, खुले में भी अदा की जा सकती है।"

43. डॉ. धवन ने तर्क दिया कि ***इस्माईल फारुकी*** के मामले में संविधान पीठ के प्रस्तर 82 में दिया गया निर्णय पुनर्विचार का कारण है। उन्होंने कहा कि प्रस्तर 82 में उपर्युक्त कथन गलत हैं क्योंकि यह कहना गलत है कि

(vi) इस्लाम के लिए एक मस्जिद आवश्यक नहीं है।

(vii) आवश्यक कार्य का सिद्धांत विशेष महत्व रखने वाले लोगों के अलावा अन्य पूजा स्थलों की रक्षा नहीं करते हैं।

44. अपने तर्क को प्रस्तुत करते हुए डॉ. धवन इस न्यायालय के कई निर्णयों पर अवलंब लेते हैं, जहां किसी धर्म की आवश्यक प्रथा को विस्तार दिया गया है और यह देखा गया है कि न्यायालय को किसी धर्म का आवश्यक

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कार्य किस प्रकार निर्धारित करना चाहिए। तर्क यह है कि संविधान पीठ द्वारा उपरोक्त अवलोकनों को किसी भी सामग्री पर विचार किए बिना उसके वस्तुस्थिति द्वारा किया गया था, जिस कारण से यह कथन अपरिहार्य है।

45. इससे पहले कि हम उपरोक्त कथन की प्रकृति और सामग्री की जांच करने के लिए आगे बढ़ें, इस न्यायालय द्वारा धर्म के आवश्यक प्रथाओं के संबंध में निर्धारित कानून का अवलोकन करना प्रासंगिक है। इसका महत्वपूर्ण विषय कमिश्नर, हिंदू धार्मिक बंदोबस्त, मद्रास बनाम श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामीयर ऑफ श्री शिरूर मठ, एआई आर 1954 एससी 282 में इस न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय है। शिरुर मठ के मठाधिपति ने मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 के विभिन्न प्रावधानों को चुनौती देते हुए मद्रास उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की। अधिनियम की चुनौती विभिन्न आधारों में शामिल इस आधार पर थी कि अधिनियम के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत मौलिक अधिकार की गारंटी देते हैं। उच्च न्यायालय ने अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को अभिखंडित कर दिया था, जिसके विरूद्ध आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्त मद्रास द्वारा अपील दायर की गई थी। न्यायमूर्ति बी.के. मुखर्जी ने संविधान पीठ के लिए कहा कि यह कहना सही नहीं होगा कि धर्म एक सिद्धांत या विश्वास के अलावा और कुछ नहीं है। यह माना जाता था कि एक धर्म अपने अनुयायियों के लिए नैतिक नियमों की एक संहिता भी प्रतिपादित कर सकता है और यह आचार और रीति रिवाज, अनुष्ठान और पूजा के तौर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

तरीके निर्धारित कर सकता है जिन्हें धर्म के अभिन्न अंग के रूप में माना जाता है। प्रस्तर 17 में निम्नलिखित अवधारित किया गया था:–

> "17 ..... धर्म निश्चित रूप से व्यक्तियों या समुदायों के साथ विश्वास का विषय है और यह आवश्यक रूप से आस्तिकता नहीं है। भारत में बौद्ध और जैन धर्म जैसे प्रसिद्ध धर्म हैं जो ईश्वर या किसी बुद्धिमान प्रथम कारण में विश्वास नहीं करते हैं। एक धर्म निस्संदेह विश्वासों या सिद्धांतों की एक प्रणाली में अपना आधार रखता है जो उन लोगों से संबंधित होता है जो उस धर्म को अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए अनुकूल मानते हैं, लेकिन यह कहना सही नहीं होगा कि धर्म कुछ और नहीं बल्कि एक सिद्धांत या विश्वास है। एक धर्म अपने अनुयायियों को स्वीकार करने के लिए न केवल नैतिक नियमों की एक संहिता प्रतिपादित कर सकता है बल्कि यह आचार और रीति रिवाज, अनुष्ठान और पूजा के तरीके विहित कर सकता है, जिन्हें धर्म के अभिन्न अंग के रूप में माना जाता है, और ये रूप और अनुसरण भोजन और पोशाक के मामलों तक भी विस्तारित हो सकते हैं।"

46. आगे, प्रस्तर 18 में, निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया था:

> "18. हमारे संविधान के तहत गारंटी न केवल धार्मिक मत की स्वतंत्रता की रक्षा करती है, बल्कि यह धर्म के अनुसरण में किए गए कृत्यों की भी रक्षा करती है और इसे अनुच्छेद 25 में "धर्म के अभ्यास" की अभिव्यक्ति के उपयोग से स्पष्ट किया गया है ...."

47. न्यायालय ने आगे अवधारित किया; किसी धर्म के आवश्यक भाग का गठन मुख्य रूप से उस धर्म के सिद्धांतों के संदर्भ में निर्धारित किया जाना है। प्रस्तर 19 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया गया है:–

> "19. हमें लगता है इस तरह के व्यापक शर्तों में तैयार किया गया तर्क, समर्थित नहीं होगा। पहली स्थिति में, किसी धर्म के आवश्यक हिस्से का गठन मुख्य रूप से उस धर्म के सिद्धांतों के संदर्भ में किया जाना है। यदि हिंदुओं के किसी भी धार्मिक संप्रदाय के सिद्धांत यह कहते हैं कि भोजन का प्रसाद दिन के विशेष घंटों में मूर्ति को चढ़ाया जाना चाहिए, तो वर्ष

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के निश्चित समयावधि पर उचित तरीके से पवित्र अग्नि के यज्ञ या पवित्र ग्रंथों के उच्चारण से पूजा–अर्चना की जानी चाहिए, इन सभी को धर्म के भाग के रूप में माना जाएगा और केवल इस तथ्य के लिए कि वे पुजारियों और नौकरों को धन अथवा रोजगार का खर्च शामिल करते हैं या बिक्री योग्य वस्तुओं के उपयोग से उन्हें धर्मनिरपेक्ष गतिविधियों को एक वाणिज्यिक या आर्थिक चरित्र का हिस्सा नहीं बनाया जाएगा; ये सभी धार्मिक प्रथाएं हैं और इन्हें अनुच्छेद 26 (बी) के अर्थ के भीतर धर्म के मामलों के रूप में माना जाना चाहिए। जो अनुच्छेद 25(2)(क) के अनुसार धार्मिक प्रथाओं की स्थिति के अनुसार विचार–विमर्श नियमन नहीं है, जिसकी स्वतंत्रता की गारंटी संविधान द्वारा दी जाती है, सिवाय इसके कि जब वे लोक आदेश, स्वास्थ्य और नैतिकता की गणना करते हैं लेकिन उनके चरित्र में आर्थिक वाणिज्यिक या राजनीतिक गतिविधियों का विनियमन करते हैं, हालांकि वे धार्मिक प्रथाओं से जुड़े हैं ....."

48. एक ही वर्ष में दो अन्य निर्णय दिए गए थे, जिन्होंने मद्रास के निर्णय पर अवलम्ब लिया था। ***रतिलाल पानाचंद गांधी एवं अन्य बनाम बॉम्बे राज्य एवं अन्य, एआईआर 1954 एससी 388,*** प्रस्तर संख्या 10 और 13 में निम्नलिखित अवधारित किया गया था:–

"10. संविधान का अनुच्छेद 25 न केवल भारतीय नागरिकों को बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अंत:करण की स्वतंत्रता, स्वतंत्र रूप से धर्म को अपनाने का कार्य और प्रचार करने का अधिकार की गारंटी देता है। यह लोक आदेश, स्वास्थ्य और नैतिकता के प्रत्येक मामले का विषय है। अनुच्छेद के खण्ड(2) द्वारा इस अधिकार पर कुछ अपवाद दिए गए हैं। खंड (2) का उप–खण्ड (a) किसी भी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य धर्मनिरपेक्ष गतिविधि को विनियमित करने या प्रतिबंधित करने के लिए राज्य की शक्ति को बचाता है जो धार्मिक कार्य से जुड़ा हो

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सकता है; और उपखंड (b) सामाजिक सुधार और सामाजिक कल्याण के लिए कानून प्रदान करने की राज्य की शक्ति को सुरक्षित रखता है, भले ही वे धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप करते हों।

इस प्रकार, यह अनुच्छेद जो प्रतिबंधों के अधीन है, हमारे संविधान के तहत प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है कि न केवल ऐसे धार्मिक विश्वास पर विचार करने के लिए जिसे उसके निर्णय या विवेक द्वारा अनुमोदित किया जा सकता है, बल्कि उसके विश्वास और विचारों को इस तरह के प्रत्यक्ष कार्यों में प्रदर्शित करना है, जो उनके धर्म द्वारा स्थगित या स्वीकृत किए गए हैं और दूसरों की नैतिक उन्नति के लिए उनके धार्मिक विचारों को प्रसारित करते हैं.....

13. धार्मिक विश्वास के अनुसरण में धार्मिक प्रथाओं या कार्यों के प्रदर्शन में धर्म का उतना ही हिस्सा है जितना कि विशेष सिद्धांतों में आस्था या विश्वास का। इस प्रकार यदि जैन या पारसी धर्म के सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जाता है कि कुछ संस्कार और समारोह निश्चित समय पर और विशेष तरीके से किए जाते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि ये वाणिज्यिक या आर्थिक स्वरूप की धर्मनिरपेक्ष गतिविधियाँ हैं, क्योंकि इनमें धन का व्यय या पुजारियों का नियोजन या विपणन योग्य वस्तुओं का उपयोग शामिल है। किसी भी अन्य प्राधिकारी को यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि ये धर्म के आवश्यक अंग नहीं हैं औ रयह राज्य के धर्मनिरपेक्ष प्राधिकरण के लिए उपलब्ध नहीं है कि वे न्यास सम्पत्ति के प्रशासन की आड़ में उन्हें किसी भी तरह से प्रतिबंधित या निषिद्ध करें ..."

49. ***शिरूर मठ*** मामले के बाद एक अन्य निर्णय ***श्री जगन्नाथ रामानुज दास एवं अन्य बनाम उड़ीसा और अन्य, एआईआर 1954 एससी 400*** का मामला था। ***श्री वेंकटरमण देवरू एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य, एआईआर 1958 एससी 255*** में संविधान पीठ ने मद्रास मंदिर प्रवेश प्राधिकरण अधिनियम, 1947 के संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

25 और 26 पर विचार करने का अवसर दिया था। ***शिरूर मठ*** मामले को सन्दर्भित करते हुए, प्रस्तर 16(3) में यह कहा गया था कि:–

> "16(3) ....आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्त मद्रास बनाम श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामी ऑफ श्री शिरूर मठ (एआईआर 1954 एससी 282) में अब इस न्यायालय द्वारा विचार के लिए "धर्म के मामलों" की अभिव्यक्ति का नियत संकेतार्थ सामने आया, और उसमें यह अवधारित किया गया था कि यह केवल धर्म से संबंधित सिद्धांत और विश्वास के मामलों को ही नहीं बल्कि इसके करने का भी है या इसे हिंदू धर्मशास्त्रों के संदर्भ में न केवल इसके ज्ञान की बल्कि भक्ति और कर्मकाण्ड पर भी है...."

50. एक अन्य निर्णय जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वह ***मोहम्मद हनीफ कुरैशी एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1958 एससी 731*** है। अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका क्रमशः बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्यों द्वारा पारित कुछ जानवरों की हत्या पर प्रतिबंध लगाने वाले तीन विधायी अधिनियमों की वैधता पर प्रश्न करते हुए दायर की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गये एक तर्क में कहा गया था कि गायों की हत्या पर प्रतिबंध लगाने से याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है, जो बकरीद पर गाय की बलि देते हैं। न्यायालय ने उपरोक्त संदर्भ में इस्लाम धर्म के आवश्यक कार्य पर विचार करने के लिए कहा। न्यायालय ने धर्म के आवश्यक कार्य के निर्धारण करने के लिए इससे पहले रखी गई सामग्री की जांच की और प्रस्तर 13 में निम्नलिखित अवलोकनों को उद्धृत किया:–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"तब क्या, हम पूछते हैं कि क्या हमारे सामने इस दावे को पुष्ट करने के लिए तथ्य रखे गए हैं कि गाय की हत्या को इस्लाम द्वारा स्वीकार या मंजूरी दी जाती है? हमारे सामने यह तथ्य बहुत छोटा है और इसके सन्दर्भ के तथ्य पर चकित करने की बात है अतः याचिका में आरोप इतने अस्पष्ट होने चाहिए। बिहार याचिका संख्या 58 वर्ष 1956 में निम्नलिखित इकलौता आरोप लगाया गया है:

Xxxxxxxxxxxxxxxx

हालाँकि, हमारे समक्ष अभिलेख पर कोई भी सामग्री नहीं है, जो हमें पूर्वगामी तथ्यों के सामने यह कहने में सक्षम बनाए कि उस दिन एक गाय का बलिदान एक मुसलमान के लिए अनिवार्य प्रकट कर्म है जो उसकी धार्मिक मान्यता और विचार को प्रदर्शित करता है। इस परिसर में, याचिकाकर्ताओं के इस दावे को मानना हमारे लिए संभव नहीं है।"

51. विचार करने वाला अगला मामला ***सरदार सैयदना ताहिर सैफुद्दीन साहब बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1962 एससी 853*** है। उपरोक्त मामले में इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया मुद्दा अपने सदस्यों को बहिष्कृत करने के लिए धार्मिक संप्रदाय के अधिकार के साथ हस्तक्षेप करने वाले कानून की वैधता के बारे में था। उपरोक्त संदर्भ में अनुच्छेद 25 और 26 पर विचार किया गया। इस न्यायालय के पूर्व के निर्णयों का जिक्र करते हुए, निर्णय के प्रस्तर 34 में मुख्य सिद्धांतों पर ध्यान दिया गया है, जो निम्नलिखित प्रभाव रखता है:–

"34. संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 की अन्तर्वस्तु इस न्यायालय के समक्ष 1954 एससीआर 1005 : (एआईआर 1954 एस.सी. 282) ; रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य, 1954 एससीआर 1046 : (एआईआर 1954 एस.सी. 400); 1958 एससीआर 895 :

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

(एआईआर 1958 एस.सी. 255); सिविल अपील संख्या 272 वर्ष 1969 डी/–17–3–1961 : (एआईआर 1961 एस.सी. 1402) पर विचार के लिए आई थी और कई अन्य मामलों और इन प्रावधानों द्वारा अंतर्निहित मुख्य सिद्धांतों को विवादों से परे रखा गया है। पहला यह है कि इन अनुच्छेदों की सुरक्षा सिद्धांत या विश्वास के मामलों में सीमित नहीं है, वे धर्म के अनुसरण में किए गए कार्यों का भी विस्तार करते हैं और इसलिए अनुष्ठानों और रीति रिवाजों, समारोहों और पूजा के तरीकों की गारंटी होती है जो धर्म के अभिन्न अंग हैं। दूसरा यह है कि किसी धर्म या धार्मिक प्रथा के एक अनिवार्य हिस्से का गठन न्यायालयों द्वारा किसी विशेष धर्म के सिद्धांत के संदर्भ में किया जाना है और इसमें उन प्रथाओं को शामिल किया जाता है जिन्हें समुदाय द्वारा अपने धर्म के हिस्से के रूप में माना जाता है।"

52. विचार किया जाने वाला अगला निर्णय टिकैत श्री गोविंदलालजी महाराज आदि बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, एआईआर 1963 एससी 1638 का संविधान पीठ का निर्णय है। नाथद्वारा मंदिर अधिनियम, 1959 की वैधता को राजस्थान उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। तिलकायत द्वारा यह तर्क दिया गया था कि नाथद्वारा मंदिर में श्री श्रीनाथजी की मूर्ति और उससे संबंधित सभी संपत्तियाँ उनकी निजी संपत्ति थी और इसलिए, राज्य विधानमंडल अधिनियम पारित करने के लिए सक्षम नहीं था। यह भी तर्क दिया गया था कि यदि मंदिर को सार्वजनिक मंदिर माना जाता है, तो अधिनियम अमान्य होगा क्योंकि इसने संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संप्रदाय की गारंटी के मौलिक अधिकारों की अवहेलना की थी। न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर, ने न्यायालय के लिए बोलते हुए प्रस्तर 58 एवं 59 में निम्नलिखित प्रतिपादित किया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"58. इस प्रश्न को तय करने में कि क्या कोई दी गई धार्मिक परिपाटी धर्म का अभिन्न अंग है या नहीं, परीक्षण हमेशा यह होगा कि क्या इसे धर्म के बाद समुदाय द्वारा माना जाता है या नहीं। यह सिद्धान्त कुछ मामलों में इसके कार्यान्वयन में कठिनाइयाँ ला सकता है। भोजन या पोशाक के संबंध में किसी प्रथा का मामला लेते हैं। यदि दी गई कार्यवाही में, समुदाय का एक वर्ग दावा करता है कि कुछ संस्कारों में श्वेत पोशाक का उपयोग करना ही धर्म का एक अभिन्न अंग है, जबकि एक अन्य वर्ग यह मानता है कि श्वेत रंग की पोशाक नहीं बल्कि पीला पोशाक धर्म का अनिवार्य हिस्सा है, तो न्यायालय यह प्रश्न कैसे तय करने जा रही है? भोजन के संबंध में इसी तरह के विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसे मामलों में, जहां विरोधी तर्कों के संबंध में परस्पर–विरोधी साक्ष्य उत्पन्न होते हैं, जैसे कि धार्मिक प्रथाओं की प्रतिस्पर्धा के लिए न्यायालय उस सिद्धान्त को विवेकशून्य अनुप्रयोग द्वारा विवाद को हल करने में सक्षम नहीं हो सकता है और समुदाय यह तय करता है कि कौन सा रीति रिवाज उसके धर्म का अभिन्न अंग है, क्योंकि समुदाय में लोगों की राय भिन्न भिन्न हो सकती है, इसलिए सिद्धान्त टूट जाएगा। यह प्रश्न हमेशा न्यायालय द्वारा तय किया जाना चाहिए और ऐसा करने पर, न्यायालय को यह जाँच करनी पड़ सकती है कि क्या प्रश्नगत रीति रिवाज की प्रकृति धार्मिक है और यदि है, तो क्या इसे धर्म का अभिन्न या आवश्यक अंग माना जा सकता है, इस तरह के मुद्दे पर न्यायालय का निष्कर्ष हमेशा समुदाय के विवेक और उसके धर्म के सिद्धांतों के रूप में इससे पहले जुड़े साक्ष्यों पर निर्भर करेगी। यह इस संभावित जटिलता के प्रकाश में है जो कुछ मामलों में उत्पन्न हो सकती है कि इस न्यायालय ने डूंगा कमेटी अजमेर बनाम सैयद हुसैन अली एवं अन्य 18 के मामले में सावधानी बरती और अवलोकन करके आदेश दिया कि प्रश्नगत प्रथाओं को धर्म के एक ऐसे भाग के रूप में माना जाना चाहिए जिसे वे उक्त धर्म द्वारा अपना आवश्यक और अभिन्न अंग मानते हैं; अन्यथा यहां तक कि विशुद्ध रूप से धर्मनिरपेक्ष प्रथाओं जो कि धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं हैं वे धार्मिक रूप धारण करने के लिए उपयुक्त हैं और अनुच्छेद 26 के अर्थ के भीतर धार्मिक प्रथाओं के रूप में व्यवहार किए जाने का दावा कर सकते हैं।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

59. इस संबंध में, यह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि क्रमशः अनुच्छेद 25(1) और 26(बी) के तहत जो संरक्षित है, वे धार्मिक रीति रिवाजों और धर्म के मामलों में कार्यों के प्रबंधन का अधिकार है। यदि विचाराधीन रीति रिवाज विशुद्ध रूप से पंथनिरपेक्ष है या वैधानिक रूप से नियंत्रित होने वाला संबंध अनिवार्य रूप से और व्यवहार में बिल्कुल पंथनिरपेक्ष है, तो यह तर्क नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 25(1) या अनुच्छेद 26(बी) का उल्लंघन किया गया है। धर्म के रीति रिवाज को और धर्म के मामलों में अपने स्वयं के मामलों को प्रबंधित करने के संप्रदाय के अधिकार को संरक्षण दिया जाता है। इसलिए, जब भी एक व्यक्तिगत नागरिक की ओर से यह दावा किया जाता है कि जब भी किसी व्यक्ति की ओर से एक दावा किया जाता है कि आक्षेपित क़ानून धर्म के रीति रिवाजों को उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है या इस संप्रदाय की ओर से दावा किया जाता है कि धर्म के मामलों में अपने स्वयं के कार्यों का प्रबंधन करने के लिए इसे मौलिक अधिकार की गारंटी दी गई है, इस पर विचार करना आवश्यक है कि क्या प्रश्नगत रीति रिवाज धार्मिक है या जिन मामलों में प्रबंधन के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, उनके संबंध में धर्म के मामलों में मामलों का उल्लेख है। यदि प्रथा एक धार्मिक प्रथा है या मामले धर्म के मामले हैं तो निश्चित रूप से अनुच्छेद 25(1) और अनुच्छेद 26(बी) द्वारा गारंटीकृत अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।"

53. इस न्यायालय का उपरोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से यह कहता है कि क्या विशेष रूप से धार्मिक रीति रिवाज का आवश्यक या अभिन्न अंग है यह एक प्रश्न है, जो कि धर्म के नीतियों, सिद्धांतों और विश्वासों पर ध्यान रखते हुए माना गया है। जब कि डॉ. धवन का तर्क है कि ***इस्माईल फारुकी*** के मामले में संविधान पीठ ने बिना किसी धर्म की अनिवार्यता के विचार किया है, जैसा कि ऊपर दिए गए प्रस्तर 82 में विचारणीय अवलोकन किया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

54. हमने संविधान पीठ का निर्णय प्रस्तर 82 में दिए गए अवलोकनों की जांच ऊपर की गई विधि, कानून और पूर्व में ध्यान दिए गये तर्कों के आलोक में की है। कथन "एक मस्जिद धर्म की प्रथा का अनिवार्य हिस्सा नहीं है....." एक कथन है जिसे संविधान पीठ द्वारा विशिष्ट परिप्रेक्ष्य और संदर्भ में बनाया गया है। उपरोक्त अवलोकन का संदर्भ अर्जन से एक मस्जिद की प्रतिरक्षा करने का दावा था। क्या प्रत्येक मस्जिद इस्लाम के धर्म की प्रथा का मूलभूत अंग है, जिसके अर्जन के कारण अनुच्छेद 25 और 26 के तहत अधिकारों का स्वयमेव उल्लंघन हो सकता है, यह प्रश्न था जिसे संविधान पीठ के समक्ष विचार के लिए रखा गया था। यह कथन कि मस्जिद इस्लाम के धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है, इस मुद्दे के संदर्भ में है कि क्या मस्जिद, जिसे अधिनियम, 1993 द्वारा अर्जित की गई थी, में अर्जन से प्रतिरक्षा थी।

55. संविधान पीठ द्वारा उपरोक्त अवलोकन इस बात पर जोर देने के लिए किया गया है कि अर्जन होने से मस्जिद की कोई प्रतिरक्षा नहीं है। हमने ध्यान दिया है कि संविधान पीठ ने यह अवधारित किया था कि प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक प्रथा है और प्रत्येक स्थान पर प्रार्थना की जा सकती है और जहाँ इस तरह की प्रार्थनाएँ की जा सकती हैं, वह इस तरह की धार्मिक प्रथा का अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि उस स्थान का उस धर्म के लिए कोई विशेष महत्व न हो, ताकि उसके लिए एक आवश्यक या अभिन्न अंग बन सके। प्रस्तर 78 में किए गए उपरोक्त अवलोकन को प्रस्तर 82 में दिए गए अवलोकन के साथ पढ़ा जाना चाहिए। न्यायालय का आशय यह था कि जब तक पूजा करने की जगह का कोई

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

खास महत्व न हो, ताकि पूजा के लिए कोई बाधा अनुच्छेद 25 और 26 के तहत उल्लंघन करे, किसी भी स्थान पर पूजा करने में कोई बाधा अनुच्छेद 25 और 26 के तहत सही प्रभाव नहीं डालेगी। प्रस्तर 82 में जैसा अवलोकन ऊपर उद्धृत किया गया है, उसी प्रस्तर में किए गए आगे के अवलोकन के साथ समझा जाना चाहिए जहां न्यायालय ने यह अवधारित किया किया था:

> "82 ....जाहिर है, किसी भी धार्मिक स्थान का अर्जन केवल एक बड़े राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए असामान्य और असाधारण स्थितियों में किया जाना है, यह ध्यान में रखते हुए कि इस तरह के अर्जन से धर्म के रीति रिवाज करने के अधिकार के लोप होने का परिणाम नहीं होना चाहिए, यदि उस स्थान का महत्व इस प्रकार है। इस शर्त के अधीन, अधिग्रहण की शक्ति मस्जिद के लिए किसी भी धर्म के किसी भी पूजा स्थल की तरह प्राप्त है। किसी भी और प्रत्येक स्थल पर पूजा करने का अधिकार नहीं है, इसलिए यह प्रभावी ढंग से रीति रिवाज किया जा सकता है, जब तक कि किसी विशेष स्थल पर पूजा करने का अधिकार स्वयं उस अधिकार का अभिन्न अंग नहीं है।"

56. न्यायालय ने यह अवधारित किया कि यदि नमाज़ पढ़ने का स्थान विशेष महत्व का है, तो इसका अर्जन करने से धर्म के रीति रिवाज के अधिकार का लोप हो सकता है, केवल उस स्थिति में अर्जन स्वीकार्य नहीं है और यह स्थिति इसके अधीन है, अधिग्रहण की शक्ति मस्जिद के लिए किसी भी धर्म के किसी भी पूजा स्थल की तरह प्राप्त है। इस प्रकार, प्रस्तर 82 में किए गए अवलोकन कि मस्जिद इस्लाम धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

हिस्सा नहीं है और यहां तक कि खुले में नमाज भी अदा की जा सकती है और यह तर्क याचिकाकर्ताओं द्वारा मस्जिद के अधिग्रहण की प्रतिरक्षा के विषय में किया गया था

57. जिस तर्क पर संविधान पीठ के समक्ष बल दिया गया था वह यह था कि इस्लाम धर्म के रीति रिवाज के महत्व के बावजूद राज्य में किसी भी मस्जिद को अधिगृहीत करने की कोई शक्ति नहीं है। उक्त तर्क को निर्णय के प्रस्तर 65 में ध्यान दिया गया है जो कि ऊपर उद्धृत किया गया है।

58. यह वाक्य "एक मस्जिद इस्लाम धर्म के रीति रिवाज का अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुस्लिमों द्वारा नमाज़ (इबादत) को किसी भी स्थल, यहां तक कि खुले में भी अदा की जा सकती है" अगले वाक्य के तुरंत बाद है कि "तदनुसार, इसका अर्जन भारत के संविधान में प्रावधानों को निषिद्ध नहीं किया गया है" जो यह स्पष्ट करता है कि उपरोक्त वाक्य एक मस्जिद के अर्जन से प्रतिरक्षा के प्रश्न तक सीमित थी, जिसे न्यायालय के समक्ष चित्रित किया गया था। पहले वाक्य को दूसरे वाक्य से अलग नहीं पढ़ा जा सकता है जो पहले वाक्य का तत्काल पालन करता है।

59. संविधान पीठ के समक्ष कोई तर्क नहीं उठाया जा रहा है कि राम जन्म भूमि–बाबरी मस्जिद एक विशेष महत्व की मस्जिद है, जिसके अधिग्रहण से धर्म के रीति रिवाज का अधिकार विलुप्त हो जाएगा, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि मस्जिद के अधिकारों का अधिग्रहण करके अनुच्छेद 25 और 26 के तहत उल्लंघन नहीं किया जाता है। हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि संविधान पीठ द्वारा प्रस्तर 78 और 82 में किए गये अवलोकनों जिन पर

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

याचिकाकर्ताओं ने सवाल उठाए थे, के अनुसार वे पूजा स्थल के अधिग्रहण के संदर्भ में किए गए अवलोकन थे और उन्हें केवल पूजा स्थल के अधिग्रहण के मुद्दे पर सीमित करना था। इस अवलोकन को मोटे तौर पर पढ़ने की आवश्यकता नहीं है कि इस्लाम धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य हिस्सा कभी भी मस्जिद नहीं हो सकता है।

"तुलनात्मक महत्व" और "विशेष महत्व"

60. डॉ राजीव धवन ने तर्क दिया कि संविधान पीठ ने उन दोनों स्थानों का तुलनात्मक महत्व किया है जो हिंदुओं के लिए राम का जन्म स्थान और मुसलमानों के लिए राम जन्म भूमि–बाबरी मस्जिद है। उन्होंने कहा कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और सभी धर्मों को समान माना जाता है और तुलनात्मक महत्व की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए न्यायालय ने पंथनिरपेक्ष सिद्धांतों की दृष्टि को खो दिया है जो भारत के संविधान में अंतर्निहित है। यह सच है कि संविधान पीठ ने "तुलनात्मक महत्व" वाक्यांश का उपयोग किया है, लेकिन दोनों समुदायों के तुलनात्मक महत्व को केवल उस स्थान के महत्व को चिन्हांकित करने के लिए ध्यान दिया है जो दोनों पक्षकारों द्वारा दावा किया गया है और इस बात पर जोर देने के लिए कि अधिग्रहण का प्रभाव हिंदू समुदाय के साथ–साथ मुस्लिम समुदाय के अधिकार और हित पर समान रूप से पड़ता है।

निर्णय के प्रस्तर 51 में निम्नलिखित अवलोकन किया गया है:

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"51. यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि भले ही अयोध्या को हिंदुओं के लिए तीर्थ स्थान के रूप में विशेष महत्व के रूप में कहा जाता है क्योंकि वहाँ पर भगवान राम का जन्म हुआ था और 1528 ई. में मीर बाकी द्वारा निर्मित एक प्राचीन मस्जिद के रूप में मुस्लिम समुदाय के लिए मस्जिद का महत्व था। एक मस्जिद के रूप में, यह मुस्लिमों का धार्मिक उपासना स्थल था। यह दो समुदायों के लिए विवादित स्थल के तुलनात्मक महत्व को दर्शित करता है और यह भी कि अर्जन का प्रभाव हिंदू समुदाय के अधिकार और हित पर समान रूप से पड़ता है। इस पहलू का उल्लेख केवल इस तर्क के संदर्भ में किया जाता है कि संपूर्ण क़ानून, न कि केवल उसकी धारा 7, हिंदुओं के पक्ष में और मुसलमानों के विरुद्ध एक पंथनिरपेक्ष विरोधी है।"

61. डॉ. धवन ने 'विशेष महत्व' वाक्यांश के अपवाद को भी लिया है, जैसा कि संविधान पीठ के फैसले में हो रहा है। वह तर्क देते हैं कि सभी धर्म समान हैं और राज्य सहित सभी को समान रूप से सम्मान देना होगा। सभी मस्जिदें, सभी चर्च और सभी मंदिर समान रूप से ऐसे धर्मों के रीतियों को करने वाले और उन्हें स्वीकार करने वाले समुदायों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। यह अवधारणा कि कुछ स्थान विशेष महत्व के हैं, स्वयं दोषपूर्ण है। हमने मामले के उपरोक्त पहलू पर अपना विचार रखा है। हम पहले ही देख चुके हैं कि संविधान पीठ ने यह अवधारित किया है कि संपत्ति अर्जित करने के लिए अधिग्रहण की गई संपत्ति प्राप्त करने के लिए राज्य की एक संप्रभु या विशेषाधिकार शक्ति है और सभी धार्मिक स्थान, जैसे चर्च, मस्जिद, मंदिर आदि राज्य के प्रतिष्ठित क्षेत्रों के अधिकार का प्रयोग करने के लिए उत्तरदायी हैं। संविधान पीठ ने यह भी अवलोकन किया कि चर्च,

मस्जिद आदि के प्रति धार्मिक उपासना स्थल का अधिग्रहण अनुच्छेद 25 और 26 के तहत अधिकारों का स्वयंमेव उल्लंघन नहीं करता है। हालांकि, न्यायालय ने इस तरह के अधिग्रहण पर एक श्रंखला को देखा है। संविधान पीठ ने अवधारित किया कि यदि किसी विशेष स्थान का उस धर्म के लिए इतना महत्व है कि ऐसे स्थान पर पूजा एक आवश्यक धार्मिक प्रथा है और ऐसे स्थान का लोप अनुच्छेद 25 के उसके अधिकार को भंग कर सकता है, तो ऐसे स्थान का अधिग्रहण स्वीकार्य नहीं है। उपरोक्त संदर्भ में संविधान पीठ द्वारा विशेष महत्व के स्थान को देखा गया है। जब इस तरह के स्थान के अधिग्रहण से धर्म का पालन करने के अधिकार का लोप होता है, तो अनुच्छेद 25 का उल्लंघन होता है, जो कि संविधान पीठ द्वारा प्रतिपादित एक अपवाद था, जो संविधान पीठ द्वारा सामान्य प्रस्ताव रखते हुए एक अपवाद था कि सभी पूजा स्थलों का अधिग्रहण अनुमन्य है। इस प्रकार, राज्य के धार्मिक स्थलों जैसे चर्च, मस्जिद और मंदिर या गुरुद्वारा के अधिग्रहण की सामान्य शक्ति के अपवाद को बाहर निकालने के लिए संविधान में 'विशेष महत्व के स्थान' का इस्तेमाल करने वाली संविधान पीठ के लिए कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है। संविधान पीठ द्वारा उकेरा गया उपरोक्त अपवाद अनुच्छेद 25 के तहत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकार की रक्षा करना है।

<u>भगवान राम के जन्म स्थान का 'विशेष महत्व'</u>

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

62. डॉ. धवन ने संविधान पीठ के अवलोकन को अपवाद लिया है, जहां भगवान राम के जन्म स्थान का विशेष महत्व माना गया है। उन्होंने तर्क किया कि उपरोक्त अवलोकन अनावश्यक था क्योंकि दो धर्मों के बीच कोई तुलना नहीं की जा सकती है। हमने ऊपर देखा है कि "विशेष महत्व" वाक्यांश का प्रयोग संविधान पीठ द्वारा केवल अधिग्रहण से प्रतिरक्षा के संदर्भ में किया गया था। न्यायालय ने यह अवधारित किया था कि यदि किसी धार्मिक स्थान का विशेष महत्व है, तो उसका अधिग्रहण वास्तव में अनुच्छेद 25 और 26 के तहत धर्म के अधिकार का उल्लंघन करता है, इसलिए उक्त पूजा स्थल अधिग्रहण से प्रतिरक्षित है। यह और बात है कि भगवान राम के जन्म स्थान को हिंदू समुदाय के लिए पवित्र स्थान के रूप में जाना जाता है, जिस तर्क को हमेशा ही प्रस्तुत किया जाता रहा है। अधिनियम, 1993 के तहत मामले का अधिग्रहण बरकरार रखने के किसी भी दृष्टिकोण में, "विशेष महत्व" अभिव्यक्ति के प्रयोग ने वादों और अपीलों के निर्णय के लिए अपना सारा महत्व खो दिया है।

<u>पूर्व – न्याय</u>

63. श्री परासरन ने तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं को **इस्माइल फारुकी** के निर्णय पर सवाल उठाने से रोका जाता है। **इस्माइल फारुकी** के मामले में याचिकाकर्ता ने मुस्लिम जनता के अधिकार का प्रतिनिधित्व किया, इसलिए धारा 11 के प्रयोजनों के लिए ऐसे अधिकारों में रुचि रखने वाले सभी

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

व्यक्तियों को ऐसे मुकदमेबाजी के तहत दावा करने के लिए समझा जाता है और स्पष्टीकरण VI के धारा 11, सीपीसी के मद्देनजर पूर्व–न्याय द्वारा रोक दिया जाता है। उन्होंने आगे कहा कि **इस्माइल फारुकी** के मामले में निर्णय वाद में ही निर्णय का हिस्सा है, इस तथ्य के मद्देनजर कि वादों में आईए को स्थानांतरित कर दिया गया था और अनुच्छेद 32 के तहत याचिकाओं के साथ निर्णय लिया गया था। अपीलकर्ता इस प्रकार **इस्माइल फारुकी** के मामले में निर्णय से स्पष्ट रूप से बाध्य हैं।

64. अधिनियम, 1993 को चुनौती, राष्ट्रपति का संदर्भ और आगे क्या अधिनियम, 1993 के आलोक में अधिनियम की धारा 4 (3) के कारण अभियोग समाप्त कर दिया गया। अपील के तहत मामले उन मुकदमों से हैं जहां विवाद्यक पूरी तरह से अलग हैं। वादों को इस्माइल फारुकी के वाद के साथ निर्णय के लिए कभी स्थानांतरित नहीं किया गया। इस्माइल फारुकी के मामले में दिए गए निर्णय को वाद में दिए गये निर्णय का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने कहा कि इस्माइल फारुकी के मामले में जो मुद्दे उठाए गए थे, वे विवाद्यक में नहीं थे जो वाद में प्रत्यक्ष और मूल रूप से विवाद्यक में हैं। वह आगे कहते है कि वर्तमान कार्यवाही में पूर्व न्याय लागू नही होता है।

65. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के साथ-साथ सामान्य सिद्धांतों में निहित पूर्व न्याय का सिद्धांत इस न्यायालय के कई निर्णयों द्वारा सुस्थापित किया गया है। पूर्व न्याय के सिद्धांत की प्रयोज्यता के लिए कई आवश्यक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

शर्तें हैं जिन्हें पूरा करने की आवश्यकता है। अपने तथ्यों के समर्थन में श्री परासरण जी ने कहा कि इस्माइल फारूकी के मामलें में पक्षकारों ने मुस्लिम समुदाय के हित का प्रतिनिधितत्व किया था और उन याचिकाकर्ताओं के द्वारा सार्वजनिक अधिकारों के सम्बन्ध में सदभाव पूर्वक मुकदमेंबाजी की गई, इसलिए ऐसे अधिकारों में रुचि रखने वाले सभी व्यक्तियों को सीपीसी की धारा 11 के स्पष्टीकरण की प्रयोज्यता के तहत उन व्यक्तियों के अधीन दावा करने के लिए समझा जाएगा। उन्होंने **अहमद अदम सैत और अन्य बनाम इनायतउल्लाह मेखरी और अन्य, 1964 (2) एससीआर 647** में न्यायालय के फैसले पर अवलंम्ब लिया। उपरोक्त मामले में, सीपीसी के धारा 92 के तहत वाद में, एक योजना सक्षम न्यायक्षेत्र के न्यायालय द्वारा पहले ही तैयार की जा चुकी थी। एक और मुकदमा सीपीसी की धारा 92 के तहत जुम्मा मस्जिद के उचित प्रशासन के लिए एक योजना को तैयार करने की प्रार्थना करते हुए स्थापित किया गया था। जिसमें पूर्व न्याय की दलील का आग्रह किया गया था। पूर्व न्याय की दलील को कायम रखते हुए, निम्नलिखित अवधारित किया गयाः-

> "..... इस तर्क की विधिमान्यता का मूल्यांकन करने में, उन विनिश्चयों के आधार पर विचार करना आवश्यक है जो धारा 92 के अधीन वाद में पारित डिक्री सभी पक्षकारों को आबद्ध करती है इस मत का आधार यह है कि धारा 92 के अधीन वाद, प्रतिनिधि वाद है और न्यास में हितबद्ध सभी हिताधिकारियों की ओर से उसके द्वारा अपेक्षित आवश्यक अनुमोदन के साथ लाया जाता है उक्त धारा न्यास में रुचि

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

रखने वाले दो या दो से अधिक व्यक्तियों को निर्धारित लिखित सहमति के बाद उप धारा (1) के धारा (ए) से (एच) में निर्दिष्ट राहत का दावा करने के लिए मुकदमा दायर करने के लिए अधिकृत करता है। इस प्रकार, जब कोई मुकदमा धारा 92 के तहत लाया जाता है, तो वह न्यास में रुचि रखने वाले दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा लाया जाता है जिन्होंने न्यास के सभी लाभार्थियों का प्रतिनिधित्व करने की जिम्मेदारी अपने उपर ली है। इस प्रकार के मुकदमे में, हालांकि सभी लाभार्थियों को स्पष्ट रूप से निहित नहीं किया जा सकता है और कार्रवाई उनकी ओर से की जाती है और एक प्रतिनिधि के रूप में राहत का दावा किया जाता है। ये स्थिति संहिता की अनुच्छेद 11 के स्पष्टीकरण VI के प्रावधानों को आकर्षित करता है। स्पष्टीकरण VI यह प्रावधान करता है कि जहाँ सार्वजनिक अधिकार या किसी व्यक्तिगत अधिकार वाला व्यक्ति अपने या दूसरों के लिए सदभावना पूर्वक वाद का दावा करते है, इस तरह के अधिकारों में रूचि रखने वाले सभी व्यक्तियों को इस धारा के उद्देश्य के लिए वादकारी व्यक्ति मानने का दावा किया जा सकता है यह स्पष्ट है कि धारा 11 को स्पष्टिकरण VI के साथ पढ़ने पर यह इस परिणाम की ओर ले जाता है कि किसी व्यक्ति द्वारा संस्थित वाद में यह डिक्रि जारी की गई हे जिसमें स्पष्टिकरण VI लागू होता है तो यह समान अधिकार जिसके सम्बन्ध में पूर्व वाद संस्थित किया गया था, में रूचि लेने वाले व्यक्ति के लिए वर्जित होगा। स्पष्टीकरण VI इस प्रकार रचनात्मक पूर्व न्याय के एक पहलू को दर्शाता है। जहाँ एक प्रतिनिधि वाद धारा 92 के तहत लाया जाता है और इस प्रकार के वाद में ड्रिकी पारित की जाती है, विधि यह अनुमान लगाती है कि वादी के जैसे समान हित रखने वाले व्यक्ति उस प्रतिनिधि वाद में उक्त वादी के द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है और इसलिए वे पूर्व न्याय के द्वारा रचानात्मक रूप से उक्त पूर्व वाद के म विवाद्यक को मूल रूप से सीधे मामलें को पुनः सयोजित किया जाना वर्जित किया जाता है।"

66. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तों ने **गुलाबचंद छोटेलाल पारिख बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1965 एससी 1153** में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का संन्दर्भ दिया है और उस पर अवलंम्ब् लिया है। क्या

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका पर प्रतिवाद करते हुए कुछ मामलें के गुणों के आधार पर उच्च् न्यायालय के निर्णय उसी मामलें को उन्ही पक्षकारों के मध्य नियमित वाद को पूर्व न्याय के रूप में संचालित किया जाता है, उपरोक्त विषय पर न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। इस न्यायालय ने पैराग्राफ 60 और 61 में निम्नलिखित विषयों पर लगभग सभी प्रासंगिक निर्णयों का उल्लेख किया है जो निम्न है:-

> "60. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, हमारा विचार यह है कि सीपीसी की धारा 11 के प्रावधान अग्रवर्ती नियमित वाद के विवाद के समान मामलें के उन्ही पक्षकारों के मध्य पूर्व न्याय के रूप पूर्व निर्णयों के सम्बन्ध सम्पूर्ण नहीं है और पूर्व न्याय के सामान्य सिद्धान्त पर किसी पूर्व मामलें के निर्णय विवादित है और उनको पूर्ण विचारण के बाद निर्णीत किया गया है या पक्षकारों को न्यायालय द्वारा अपने वाद को सिद्ध करने के सम्बन्ध में उचित अवसर प्रदान करने के पश्चात निर्णय करने में सक्षम है, जिसे अग्रवर्ती नियमित वाद को पूर्व न्याय के रूप में संचालित किया जायेगा। यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ववर्ती मामलें को तय करने वाला न्यायालय अग्रवर्ती वाद को निर्णीत करने में सक्षम हो या यह कि पूर्वोक्त कार्यवाही और अग्रवर्ती वाद एक विषय के मामलें हों। पूर्वोक्त कार्यवाही की प्रकृति सारहीन है।
>
> 61.समान पक्षकारों के मध्य विवादित उसी मामलें पर अग्रवर्ती नियमित वाद को पूर्व न्याय के तहत संचालित करने में और इस प्रकार पूर्णतः प्रतिवाद करने के पश्चात निर्णयों की अंतिमता के सिद्धान्त को सिमित प्रभाव देने के लिए संविधान के अनुच्छेदों 226 और 32 के तहत रिट कार्यवाही के विवादित मामलें में इस तरह के निर्णय को रोकने के लिए कोई पर्याप्त कारण नही दिखता है इसलिए हम पूर्व न्याय के सामान्य सिद्धान्त पर, उसी मामलें के सम्बन्ध में उन्ही पक्षकारो के मध्य अग्रवर्ती नियमित वाद अनुच्छेद 226 के रिट याचिका उच्च न्यायायल के निर्णय

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को मामलें के गुणावगुण के आधार पर रोकना पूर्व न्याय के रूप संचालित होगा। "

67. **ड्रायो और अन्य बनाम स्टेट ऑफ यूपी और अन्य, एआईआर 1961 एससी 1457** में, इस न्यायालय ने अवधारित किया कि सार्वजनिक नीति के सामान्य विचार पर ऐसा कोई कारण नहीं प्रतीत होता है जिसके द्वारा पूर्व न्याय के नियम को अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिका को तय करने में स्वीकार्य या अप्रासंगिक नहीं माना जाना चाहिए।

68. **श्योदान सिंह बनाम दरियाओ कुंवर, एआईआर 1966 एससी 1332** में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने सीपीसी की धारा 11 के तहत रेखांकित सिद्धांतों पर विस्तृत रूप से विचार करने के बाद कहा कि पांच आवश्यक शर्तें हैं जिन्हें पूर्व न्याय की दलील से पहले संतुष्ट किया जाना चाहिए। निर्णय के अनुच्छेद 9 में, शर्तों की गणना की गई है जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैं:

"9. अनुच्छेद 11 को पढ़ने से यह पता चलता है कि पूर्व न्याय के तहत मामलें को संस्थित करने के लिए निम्निलिखित शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है, अर्थात (I) अग्रवर्ती वाद में मामला को सीधे तौर से या पूर्ण रूप से विवाद्यक में होना चाहिए या विवाद्यक मामले के विवाद्यक के समान होना चाहिए जिसे पूर्वोक्त मामलें में सीधे तौर पर या पूर्ण रूप से विवाद्यक में था (II) पूर्वोक्त वाद एक ऐसा वाद होना चाहिए जो समान पक्षकारों के मध्य होना चाहिए या ऐसे पक्षकारो के मध्य

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जिन्होने या उनमें से किसी एक के द्वारा दावा किया गया हो (III) पूर्वोक्त वाद में पक्षकारों के द्वारा समान शीर्षक के तहत वाद प्रतिवाद किया जाना चाहिए (IV) न्यायलय जिसने पूर्व वाद का फैसला किया था, उसको अग्रवर्ती वाद में या उस वाद के लिए सक्षम होना चाहिए जिसमें ऐसा विवाद्यक अग्रवर्ती वाद में उठाया गया हो (V) अग्रवर्ती वाद में सीधे और पूर्णतः इस मामले को सुना गया और अंतत: पहले वाद में न्यायालय ने फैसला किया। अतः स्पष्टिकरण I से यह पता चलता है कि यह वह तारीख नहीं है जिस पर वाद तय किया जाता है, ताकि यद्यपि एक वाद बाद मे दायर किया गया था, यह पूर्व वाद होगा यदि इसको पहले तय किया गया है। इसलिए यह कि उच्च न्यायालय द्वारा खारिज की गई पहले की दो अपीलों में निर्णय पूर्व न्याय के रूप में संचालित होता है, यह देखना होगा कि ऊपर उल्लिखित सभी पांच शर्तो से संतुष्ट होना चाहिए।"

69. डॉ. धवन द्वारा प्रस्तुत कथनों में से एक यह है कि इस्माइल फारुकी के मामले में शामिल विवाद्यक ऐसे विवाद्यक नहीं हैं जो इन अपीलों को उत्पन्न् करने वाले वादों में सीधे और पूर्ण रूप से शामिल हैं, इसलिए, पूर्ण न्याय की याचिका अकेले इस आधार पर विफल होनी चाहिए। श्योदान सिंह के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा प्रगणित शर्तों में से एक यह है कि 'मामले को सीधे और पूर्ण रूप से विवाद्यक में होना चाहिए और न्यायालय द्वारा अग्रवर्ती वाद को सुना और अंतिम रूप से निर्णीत किया जाना चाहिए।' डॉ. धवन ने मामले में सीधे और पूर्ण रूप से विवाद्यक के सिद्धांत को विस्तृत करते हुए **सज्जादानशीन सईद बनाम मुसा दादाभाई उममेर, (2000)3 एससीसी 350** में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलंब लिया है। इस न्यायालय ने "सीधे और पूर्ण रूप से मुद्दे मे" की स्थिति पर विचार करते हुए

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

धारा 11 का सन्दर्भ देते प्रस्तर 12,13 और 14 में निम्नलिखित सिद्धान्तों को निर्धारित किया है-

> “12. इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि सीपीसी की धारा 11 के तहत शब्द "प्रत्यक्ष और पूर्ण रूप से विवाद्यक में" का उपयोग किया जाता है। यदि मामला पूर्व मुकदमेबाजी में प्रत्यक्ष रूप से और पूर्ण रूप से विवाद्यक में था और किसी पक्षकार के विरूद्ध निर्णीत किया था, तब अग्रवर्ती कार्यवाही में पूर्व न्याय को निर्णय के रूप मे माना जायेगा। न्यायिक निर्णयों के द्वारा हालांकि यह अवधारित किया है कि यदि एक मामला केवल "समवर्ती या संयोगवश" विवाद्यक में था और पूर्व की कार्यवाही में निर्णीत किया गया था, उसके निष्कर्ष बाद की कार्यवाही में साधारण रूप से पूर्व न्याय में नहीं होगा जहाँ मामला प्रत्यक्ष रूप से और पूर्ण रूप से विवाद्यक में है।
>
> 13. जैसा कि इंग्लैंड के हल्सबरी की विधि (Vol. 16, पैरा 1538, के 4 वें संस्करण) में बताया गया है, मौलिक नियम यह है कि कोई निर्णय निर्णायक नहीं है यदि कोई मामला प्रश्न में समवर्ती रूप से आया[आर.वी.कन्टाफ्ट इनहैबिटेन्टस; हेप्टुल्ला ब्रदर्स बनाम ठाकोर डब्ल्यू एल आर पी. 297 (पीसी)]; या यदि कोई मामला संयोग से संज्ञेय था सैंडर्स (अन्यथा सौंडर्स) बनाम सैंडर्स (अन्यथा सौंडर्स) एएलएल ईआर के पेज संख्या. 771 पर]।
>
> 14. एक समवर्ती या संयोगवश विवाद्यक एक ही है जो एक प्रत्यक्ष और मूल विवाद्यक के लिए सहायक है; पहले वाला एक सहायक विवाद्यक है और बाद वाला कए प्रमुख विवाद्यक है। विवाद्यक में "समवर्ती या संयोगवश" पद का तात्पर्य यह है कि एक और मामला है जो विवाद्यक (मुल्ला की सिविल प्रक्रिया संहिता, 15 वें संस्करण, पृष्ठ 104) में “प्रत्यक्ष और सारतः” है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कठिनाईयों में विभेद करना कि क्या एक मामला प्रत्यक्ष रूप से विवाद्यक में था या समवर्ती रूप से या सयोंगवश विवाद्यक का परीक्षण विभिन्न न्यायालयों के द्वारा निर्धारित किया गया था।

70. **महिला बजरंगी (मृत) अपने विधिक प्रतिनिधी के द्वारा बनाम बद्रीबाई पत्नी जगन्नाथ और एक अन्य, (2003)2 एससीसी 464**, में उपरोक्त सिद्धांत पैरा 6 में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया था जो निम्नलिखित प्रभाव के लिए हैः-

”6 ..... इसके अलावा, यह हमेशा एक मुद्दे पर निर्णय होता है जो प्रत्यक्ष और सारतः एक ही पक्ष के बीच पूर्व वाद के विवाद्यक में है जिसे सुना गया है और अंततः इसका निर्णय दिया गया जिसे पूर्व न्याय के रूप में संचालित किया जाय और प्रत्येक सयोग और समवर्ती विवरक के पश्न में न केवल किसी निष्कर्ष के द्वारा इस प्रकार के निर्णय तक पहुचने के लिये पूर्व न्याय का निर्माण करना होगा।"

71. आक्षेपित निर्णय में भी स्पष्ट रूप से अवधारित किया गया है कि जिन वादो मे उसे उठाया गया है वे विवाद्यक में नही है जिस पर ध्यान देने के लिए कहा जा सकता है और न्यायालय के द्वारा **स्माइल फारूकी** वाद में निर्णीत किया गया है उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवधारित किया है कि उच्चतर न्यायालय के प्राधिकारियों ने एक नियम बनाया जो निचली अदालतों के लिए बाध्यकारी है, बशर्ते कि अदालत द्वारा मामला निर्णीत किया गया हो। पैरा 4054 में, निम्नलिखित अवधरित किया गया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"4054. एकमात्र तथ्य यह है कि श्वेत पत्र पर कुछ तब्यों को भारत सरकार के द्वारा उल्लेख किया जाना चाहिए और उन तथ्यों पर साधारणतया शीर्ष न्यायालयों के द्वारा ध्यान दिया जाना चाहिए जबकि श्वेत पत्र के तथ्यों का सन्दर्भ देते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि उन तथ्यों को बनाया जा सकता है जैसे ही शीर्ष न्यायालय ने उनको सही माना है और उसका न्यायनिर्णयन किया है। पूर्ववर्ती विधि सर्वविदित है उच्चतर न्यायालय के प्राधिकारियों ने एक नियम बनाया जो निचली अदालतों के लिए बाध्यकारी है, बशर्ते कि अदालत द्वारा मामला निर्णीत किया गया हो। एक विवाद्यक को एक श्रेष्ठ न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जा सकता है जब इसे उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया हो ओर उस पर तर्क दिया गया हो और निर्णय लिया गया हो और केवल तभी यह अन्य अदालतों के लिए एक बाध्यकारी है। '

72. हमने ऊपर देखा है कि इस्माइल फारुकी के मामले में जो विवाद्यक शामिल थे, वे अधिनियम, 1993 की वैधता के प्रमाण थे। इस्माइल फारुकी के मामले में उठाया गया एक विवाद्यक यह था कि क्या इलाहाबाद उच्च न्यायालय में लंबित अधिनियम, 1993 की खंड 4 उप खंड (3) के आधार पर निरस्त है। राष्ट्रपति संदर्भ संख्या 1/1993 को भी रिट याचिकाओं और स्थानांतरित मामलों के साथ सुना गया था। इन अपीलों को उत्पन्न होने वाले मुकदमों में जिन विवाद्यक को उठाया गया है, वे अलग-अलग मुद्दे हैं जिन्हें इस्माइल फारुकी के वाद में प्रत्यक्ष और सारतः रूप से है नहीं कहा जा सकता है। इस शर्त की पूर्ति स्वयं श्री परासरन द्वारा उठाए गए पूर्व न्याय की याचिका को खारिज करने के लिए पर्याप्त है।

73. हम श्री परासरण द्वारा प्रस्तुत तथ्यों पर पुनः ध्यान दे सकते है क्योकि आइ ए जिसे वाद में भरा गया है को भी इस्माइल फारूखी वाद के साथ

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

जोड़ा जा सकता है, इसलिए इस्माइल फारूकी के वाद में दिये गये निर्णय को उन वादों के निर्णयों का हिस्सा माना जायेगा जिसे अपीलकर्ता द्वारा उसी विवादद्यक को पुनः प्रस्तुत करने से रोकता है। उपरोक्त प्रस्तुतियों का अवलोकन करने के लिए हमें इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि इस्माइल फारुकी के मामले में इस न्यायालय के समक्ष क्या मामला था।

74. अध्यादेश को अधिनियम, 1993 के द्वारा हटाया गया जिसे 07.01.1993 को जारी किया गया। अध्यादेश की धारा 4 (3) में विचार किया गया था कि धारा 3 के तहत केंद्र सरकार में निहित किसी भी संपत्ति के अधिकार, स्वत्व या हित के संबंध में वाद, अपील या अन्य कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। अध्यादेश के बाद वादी ने अध्यादेश की वैधता और मान्यता को चुनौती देते हुए वाद-पत्र के संशोधन के लिए आवेदन किया था। उच्च न्यायालय ने इस वाद यह विवाद्यक विरचित किया है कि "क्या वाद समाप्त हो गये या जीवित है" अध्यादेश को चुनौती देने वाली उच्च न्यायालय में कई रिट याचिकाएं भी दायर की गई थीं। **रिट याचिका संख्या 208/1993, मो. असलम बनाम भारत के संघ और अन्य** को इस न्यायालय में अनुच्छेद 32 के तहत दायर किया गया था। भारत संघ ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिकाओं को स्थानांतरित करने के लिए अनुच्छेद 139 ए के तहत स्थानांतरण याचिकाएं दायर की थीं। 24.09.1993 के दिनांकित आदेश को **भारत संघ और अन्य बनाम डॉ. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य (1994)1 एससीसी 265** में पारित किया गया, इस अदालत ने अनुच्छेद 32 के तहत दायर

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

स्थानांतरण आवेदन को राष्ट्रपति के संदर्भ और रिट याचिकाओं के साथ सुनवाई के लिए पांच रिट याचिकाओं को स्थानांतरित करने की अनुमति दी। दोनों वादों में उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया प्रारंभिक मुद्दा को स्थगित कर दिया गया था। आदेश के अनुच्छेद 4 और 7 को निकालना उपयोगी है:-

> 4. अध्यादेश जारी करने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि लंबित मुकदमों, ओ ओ एस संख्या 3 और 4/1989 को फिर से नामांकित किया गया था, वादी ने अध्यादेश की वैधता और मान्यता को चुनौती देते हुए वाद-पत्र के संशोधन के लिए आवेदन किया था, जिसके द्वारा वाद को समाप्त कर दिया गया था। उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने उक्त आवेदनों को सुना और 15 मार्च, 1993 को एक आदेश पारित किया। उक्त आदेश से उच्च न्यायालय ने यह प्रश्न विरचित किया कि "क्या वाद समाप्त हो गया है या जीवित है" और चूंकि उक्त विवाद्यक को अध्यादेश की विधिमान्यता को स्पर्श किया गया है, न्यायालय ने महान्यायवादी को नोटिस का आदेश दिया और इस मुद्दे की सुनवाई के लिए मामले को 26 अप्रैल, 1993 के दिनांक को सूचीबद्ध किया यद्यपि वाद ओ ओ एस संख्या 4/1989 में आदेश पारित किया गया था, सह वाद ओ ओ एस संख्या 4/1989 के संशोधन आवेदन को नियंत्रित करने के लिए भी आदेश किया गया था। यह भी प्रतीत होता है कि इस बीच, 1993 की पांच रिट याचिका सं. 552,925,1351,1532 और 1809 उच्च न्यायालय ने वर्तमान में अधिनियम के अध्यादेश की वैधता को चुनौती देते हुए दायर किया गया था। उच्च न्यायालय में इन कार्यवाहियों के अलावा संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका संख्या 208/1993 भी इस न्यायालय में दायर की गई थी, जो उसी विधि की वैधता और मान्यता को चुनौती देती है।
>
> 7. परिणाम में, हम इस आवेदन को 1993 की पांच रिट याचिका संख्या 552,925,1351,1532 और 1809 को वापस लेने का आदेश देकर इस न्यायालय को राष्ट्रपति के संदर्भ के साथ सुनवाई करने की अनुमति देते हैं, और रिट याचिका संख्या 208/1993 इस न्यायालय में लंबित है। उच्च न्यायालय द्वारा विरचित प्रारंभिक विवाद्यक की सुनवाई दोनों वादों में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"क्या वाद समाप्त हो गया है या जीवित है" अगले आदेश तक रुकी रहेगी। सुनवाई में तेजी लाने के लिए हम निम्नानुसार निर्देशित करते हैं:
"

75. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय में लंबित मुकदमों को राष्ट्रपति के संदर्भ और अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिका के साथ कभी भी सुनवाई के लिए स्थानांतरित नहीं किया गया था। इस न्यायालय ने केवल उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित प्रारंभिक विवाद्यक की सुनवाई पर रोक लगा दी थी कि क्या वाद समाप्त हो गए हैं या जीवित हैं। इस पर ध्यान देना भी प्रासंगिक है विशेष संदर्भ संख्या 1/1993 में, पक्षकारों को कार्यवाही के लिए व्यक्तिगत नोटिस जारी किए गए थे जो अध्यादेश की धारा 4 (3) के आधार पर निरस्त हो गए थे, लेकिन केवल नोटिस जारी करना जब वादों को इस न्यायालय द्वारा राष्ट्रपति के संदर्भ के साथ सुनवाई के लिए स्थानांतरित किया जाना यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि इस्माइल फारुकी के फैसले को मुकदमों में निर्णय के हिस्से के रूप में माना जाना चाहिए। इस प्रकार, हम श्री परासरन की प्रस्तुतियाँ भी स्वीकार नहीं करते हैं कि इस्माइल फारुकी का निर्णय वाद के निर्णय का हिस्सा है। इस प्रकार, हम श्री परासरन द्वारा उठाए गए उपरोक्त प्रस्तुतिकरण में कोई तथ्य नहीं पाते हैं।

इस्माइल फारुकी के निर्णय पर अवलंब

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

76. डॉ. धवन ने कहा कि इस्माइल फारुकी का निर्णय इन अपीलों में मुद्दों के मूल के बारे में है और यह मुकदमों के आक्षेपित आदेशों में व्याप्त है। उन्होने ने कहा कि विवादित स्थल का तुलनात्मक महत्व सम्बन्धित टिप्पणियां और अवलोकन यह है कि मस्जिद इस्लाम धर्म में नवाज अदा करने का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है, को आक्षेपित निर्णय में व्याप्त माना गया है जैसे की हिन्दू पक्षकारों ने विवादित स्थल में सफलतापूर्वक दावा किया है कि विवादित स्थ्ल, जिसे भगवान राम का जन्म स्थान बताया गया है को अनुच्छेद 25 और 26 के द्वारा संरक्षित किया गया है। डा. धवन ने आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय के विभिन्न अवलोकनों को सन्दर्भित करते हुए अपने प्रस्तुतिकरण का समर्थन किया है। उन्होंने उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ दायर अपील में लिए गए विभिन्न आधारों का भी उल्लेख किया है।

77. श्री परासरन और श्री तुषार मेहता ने उपरोक्त दलीलों का खंडन करते हुए कहा कि भले ही इस्माइल फारुकी के निर्णय को पक्षकारों के अधिवक्ताओं ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपने प्रस्तुतिकरण में संदर्भित किया जाना चाहिए और आक्षेपित निर्णय में देखा जाना चाहिए कि किसी भी तरह आक्षेपित निर्णय इस्माइल फारुकी के मामले में की गई टिप्पणियों से प्रभावित नहीं होता है।

78. उच्च न्यायालय द्वारा लगाए गए कुछ निर्णयों और कुछ अपीलों में लिए गए कुछ आधारों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जो हमारे सामने हैं। न्यायमूर्ति एस.

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यू. खान ने इस्माइल फारुकी के मामले का उल्लेख करते हुए अपने फैसले में निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख किया:-

> "एक मस्जिद भले ही इसका निर्माण मस्जिद के रूप किया जाये तो उसे मस्जिद नहीं माना जा सकता है यदि उसमें कोई नवाज अदा नही की जाती है और यह मस्जिद शाहिद गंज बनाम एस. जी. पी. सी. अमृतसर, एआईआर 1940 पीसी 116 में अनुमोदित डॉ. एम. इस्माइल फारूकी बनाम भारत संघ, 1994 (6) एस. सी. 360 में प्रिवी काउंसिल द्वारा आयोजित गैर-मुसलमानों के कब्जे और उपयोग में है। तदनुसार, जब तक कि यह साबित नहीं हो जाता है कि विवादित परिसर में नवाज अदा की जा रही थी, या हिंदुओं के पास विशेष रूप से निर्मित भाग और आंतरिक अहाते में नहीं था, इसे मस्जिद या एक निरंतर मस्जिद के रूप में 22/23 दिसंबर, 1949 तक अवधारित नहीं किया जा सकता है । मामला स्थापित किया गया और कुछ हिंदू दलों का तर्क है कि 1855 तक मस्जिद में कोई नमाज़ अदा नहीं की गई थी, बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। यदि किसी मस्जिद को कई गजेटर्स , पुस्तकों आदि में मस्जिद के रूप में संदर्भित किया जाता है और कुछ और नहीं कहा जाता है तो इसका मतलब है कि यह उपयोग में एक मस्जिद है। एक निष्क्रिय मस्जिद जहां नमाज़ कभी नहीं अदा की जाती है, जब भी मस्जिद के रूप में उल्लेख किया जाता है, को आगे निष्क्रिय माना जाने के लिए बाध्य है और उपयोग में नहीं है। यदि मस्जिद का निर्माण बाधित नहीं किया जा सकता है, तो इसमें नमाज अदा करने से कैसे बाधित किया जा सकता है। इसके अलावा, 1856 या 1857 में रेलिंग द्वारा विवादित परिसर को विभाजित करने में कोई मतलब नहीं था यदि मुसलमान तब तक निर्मित हिस्से में नमाज़ अदा नहीं करते थे। 1855 के दंगों में विवादित परिसर में शरण लिए हुए सत्तर मुसलमानों की हत्या कर दी गई थी। इतनी बड़ी पराजय के पश्चात पहली बार उस समय नमाज अदा नहीं की जा सकी।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

79. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय में इस्माइल फारुकी के मामले पर भी गौर किया है। डॉ. धवन ने श्री रविशंकर प्रसाद द्वारा आक्षेपित निर्णय के प्रस्तर

3501 और 3502 में दिये गये बयान का उल्लेख किया:-

> 3501. श्री प्रसाद ने तर्क दिया कि हिंदुओं का विश्वास है कि भगवान राम अयोध्या का जन्म भगवान विष्णु के अवतार के रूप में हुआ जो हिंदू धर्म का अभिन्न अंग हैं, जिन्हें उनकी पूजा, अनुशरण और प्रथाओं को मानने से इनकार नहीं किया जा सकता है और पुलिस आयुक्त और अन्य बनाम आचार्य जगदीशानंद अवधूत और एक अन्य, (2004)12 एससीसी 770 (पैरा 9) और काशी विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी (सुप्रा) के श्री आदि विशेश्वर को संदर्भित करता है। संविधान के अनुच्छेद 25 के अधीन लोक व्यवस्था का गठन के आदेश के लिए, उन्होंने दलबीर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1962 एससी 1106 (पैरा 8) पर अवलंब लिया।
>
> 3502. इसके बाद वह यह स्वीकार करता है कि श्रेष्ठ अधिकारिता के सिद्धांत को लागू करना, विवादित स्थल, हिंदुओं के लिए विशेष महत्व रखता है और किसी विशेष व्यक्ति या राज्य द्वारा भी इससे छेड़छाड नहीं किया जा सकता है और यहां तक कि कथित मस्जिद के लिए अधिग्रहण के प्रावधान भी इस संबंध में लागू नहीं होंगे, यह पहले से ही अवधारित और शीर्ष न्यायालय द्वारा देखा गया है कि विवादित भवन को मुसलमानों के लिए किसी विशेष महत्व का नहीं दिखाया जा सका। वह डॉ. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1994)6 एससीसी 360 (पैरा 65, 72,75 और 96) ; आचार्य महाराज श्री नरेंद्र प्रसाद जी, आनंद प्रसाद जी महाराज और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (1975)1 एससीसी 11.को संदर्भित करते है। अभियोक्ता (वाद 4) द्वारा मांगी गई राहत को विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 द्वारा वर्जित किया गया है

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

और वैश डिग्री कॉलेज, शामली और अन्य बनाम लक्ष्मी नारायण और अन्य, (1976)2 एससीसी 58 (पैरा 20 और 27); अमेरिकी एक्सप्रेस बैंक लिमिटेड बनाम कलकत्ता स्टील कंपनी और अन्य, (1993)2 एससीसी 199 में अवलंब लिया है

80. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस्माइल फारुकी वाद के पैरा 2723 को निम्नलिखित तरीके से अवधारित किया है:

2723. इस्माइल फारूकी (उपरोक्त) में, उच्चतम न्यायालय ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत भूमि के अधिग्रहण की वैधता की दलील पर विचार किया है कि एक बार जब मस्जिद का वक्फ बनाया जाता है, तो संपत्ति अल्लाह में निहित होती है और यह हमेशा एक वक्फ रहता है इसलिए ऐसी संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है। इस दलील को नकारते हुए, शीर्ष न्यायालय ने कहा कि सामान्य धार्मिक उद्देश्यों के संबंध में एक दलील को धर्म का एक अभिन्न हिस्सा नहीं कहा जा सकता है जो उपासकों को किसी अन्य स्थान पर पूजा के अधिकार से वंचित करेगा और इसलिए, ऐसी संपत्ति का अधिग्रहण राज्य द्वारा किया जा सकता है । हालाँकि, स्थिति अन्यथा होगी यदि धार्मिक संपत्ति विशेष महत्व की होती और ऐसी कई संपत्तियों में से एक नहीं हो सकती। इस संबंध में प्रासंगिक अवलोकन को पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी होगा:

78. इस न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किए गए विभिन्न विनिश्चयों से यह प्रतीत होता है कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन संरक्षण के अधीन रहते हुए, मस्जिदों, चर्चों, मंदिरों आदि जैसे धार्मिक उपासना स्थलों का अर्जन राज्य की प्रभुत्वसंपन्न शक्ति के अधीन किया जा सकता है इस तरह के अधिग्रहण से संविधान के अनुच्छेद 25 या अनुच्छेद 26 का उल्लंघन नहीं होता है। प्रबंधन को संभालने से संबंधित निर्णयों का संपत्ति अर्जित करने के लिए राज्य की संप्रभु शक्ति पर कोई असर नहीं पड़ता है। '

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> 82. जब प्रार्थना या पूजा की पेशकश एक धार्मिक प्रथा है, तो हर स्थान पर इसकी पेशकश जहां ऐसी प्रार्थना की जा सकती है, ऐसी धार्मिक प्रथा का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि उस धर्म के लिए जगह का कोई विशेष महत्व न हो ताकि एक आवश्यक या अभिन्न हिस्सा बन सके। किसी भी धर्म की पूजा के स्थान जो उस धर्म को एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए विशेष महत्व रखते हैं, एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं और उन्हें अलग और अधिक श्रद्धापूर्वक व्यवहार करना पड़ता है

81. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निर्णय में विभिन्न अन्य स्थानों पर इस्माइल फारुकी के मामले के निर्णयों के संदर्भ हैं जैसे निर्णय के पैरा 5 में जिसमें यह देखा गया है कि विवाद में भूमि का क्षेत्र , जिसे इस न्यायालय (उच्च न्यायालय) द्वारा न्यायनिर्णीत किया जाना है, अब इस्माइल फारूकी के मामले में निर्दिष्ट निर्णय तक ही सीमित है। निर्णय का प्रस्तर 5 इस प्रकार है:

> “5. डॉ. एम. इस्माइल फारुकी आदि बनाम भारत संघ और अन्य, (1994)6 एससीसी 360: एआईआर 1995 एससी 605 में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर, विवादित भूमि क्षेत्र जिसका इस न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन किया जाना है अब स्थगित कर दिया गया है जैसा कि ऊपर पैरा 4 में निर्दिष्ट किया गया है, अर्थात मुख्य छत वाली संरचना, आंतरिक अहाता और बाहरी अहाता। वास्तव में, सुविधा के उद्देश्य से छत वाली संरचना और सहान के तहत क्षेत्र को इसके बाद 'आंतरिक अहाते' के रूप में संदर्भित किया जाएगा और बचे हुए भाग को 'बाहरी अहाते' के रूप मेंह सन्दर्भित किया जाएगा। मोटे तौर पर, विवादित क्षेत्र का माप लगभग 130X80 वर्ग फीट है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

82. डॉ. धवन ने अपनी लिखित प्रस्तुतियाँ में कई अन्य स्थानों के विवरणों का उल्लेख किया है, जहां न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस्माइल फारुकी के मामले का उल्लेख किया है।

83. न्यायमूर्ति धरम वीर शर्मा ने एक असहमतिपूर्ण निर्णय देते हुए खंड III के प्रस्तर 3038 और 3039 में इस्माइल फारुकी के मामले में पक्षकारों को प्रस्तुत करने का उल्लेख किया है, विवाद्यक संख्या 19 (डी) पर विचार करते समय निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:

> प्रतिवादियों की ओर से यह तर्क दिया जाता है कि विचाराधीन इमारत इस्लामिक कानून के तहत मस्जिद नहीं थी। यह विवादित नहीं है कि संरचना पहले ही 6.12.1992 को ध्वस्त कर दी गई है। डॉ. एम. इस्माइल फारुकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1994)6 एससीसी 360 के अनुसार, माननीय शीर्ष न्यायालय ने पैरा 70 में कहा कि मस्जिद का पवित्र चरित्र भी खो सकता है। इस्लाम के सिद्धांतों के अनुसार अज़ान देने के लिए मीनारों की आवश्यकता होती है। मस्जिद में इबादत का एक सार्वजनिक स्थान नहीं हो सकता है जिसमें अज़ान का व्यवस्था उपलब्ध नहीं है, इसलिए विवादित संरचना को मस्जिद नहीं माना जा सकता है

84. इसके अलावा, न्यायमूर्ति धर्म वीर शर्मा ने श्री एचएस जैन को के बयान पर निम्नानुसार अवधारित किया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> श्री एच एस जैन, अधिवक्ता ने इस्माइल फारुकी के फैसले के पैरा 78 पर यह तर्क देने के लिए अवलंब किया कि चूंकि भगवान राम के जन्म स्थान को पूजा स्थल के रूप में माना जाता था जो प्राचीन काल से हिंदू के धार्मिक अभ्यास का अभिन्न अंग था। देवता का एक अलग स्थान होता अतः उसे श्रद्धापूर्वक व्यवहार करना पड़ता है

85. न्यायमूर्ति शर्मा ने यह मत व्यक्त किया है कि इस्माइल फारुकी के निर्णय के प्रस्तर 78 में, शीर्ष न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जन्मस्थान का हिंदुओं के लिए एक विशेष महत्व है और उसका स्थान भिन्न पायदान पर माना जाना चाहिए। पृष्ठ 3455 पर, इस्माइल फारुकी के मामले का उल्लेख करते हुए न्यायमूर्ति शर्मा द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां की गई हैं:

> माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने डॉ. इस्माइल फारुकी (उपरोक्त) के मामले में अयोध्या में कुछ क्षेत्र के अधिग्रहण के प्रावधानों की वैधता को बरकरार रखा और कहा कि केंद्र सरकार पूजा के किसी भी स्थान का अधिग्रहण कर सकती है। पैरा 78 सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि जन्म के स्थान का हिंदुओं के लिए एक विशेष महत्व है और इसे अलग-अलग पायदान पर माना जाना चाहिए, जो निम्नानुसार है:
>
> 78. जब प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक प्रथा है, तो हर स्थान पर इसकी पेशकश जहां ऐसी प्रार्थना की जा सकती है, ऐसी धार्मिक प्रथाका एक अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि उस धर्म के लिए जगह का कोई विशेष महत्व न हो ताकि एक आवश्यक या अभिन्न हिस्सा बन सके। किसी भी धर्म की पूजा के स्थान जो उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखते हैं, इसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के लिए, एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं और उन्हें अलग और अधिक श्रद्धापूर्वक माना जाता है

हिंदुओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि वादी दावा किए गए राहत के हकदार नहीं हैं और इस तरह की राहत विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, जो विशिष्ट अनुतोष अधिनियम 1963 की धारा 34 के बराबर है, इस आधार पर कि उनके पास श्रेष्ठ मौलिक अधिकार हैं। हिंदुओं के विचार निम्नानुसार हैं:

हिंदुओं को भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत मुसलमानों की तुलना में बेहतर मौलिक अधिकार है, जिन कारणों से पारंपरिक अनुष्ठान किए जाते हैं और पुण्य प्राप्त करने के लिए और मुक्ति प्राप्त करने के लिए ब्रह्मांड के स्वामी को चढ़ावा चढ़ाते हैं और जैसे कि यह हिंदू धर्म और धर्म का अभिन्न अंग है , इसे देखते हुए यह विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि वाद, मुकदमा अनुकरणीय लागत के साथ खारिज किए जाने के लिए उत्तरदायी है: '

86. डॉ. धवन ने आगे कहा कि न्यायमूर्ति शर्मा ने श्री पीएन मिश्रा द्वारा प्रस्तुत बयान पर अवलंब लिया है, जिन्होंने इस्माइल फारुकी के वाद के पैराग्राफ 77,78,80 और 82 पर अवलंब लिया था। डॉ. धवन ने श्री रविशंकर प्रसाद के बयान का भी उल्लेख किया है, जिसे न्यायमूर्ति शर्मा द्वारा देखा गया था कि राम जन्म भूमि में पूजा करने का हिंदुओं का अधिकार, प्राचीन काल से जारी रहना उनके धार्मिक अधिकार और विश्वास का एक अभिन्न अंग था और 1949 से न्यायिक आदेशों द्वारा भी बताया गया था। इस अधिकार को मजबूत बनाया गया है और इसे संरक्षित किया जाना है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

87. यद्यपि डा. धवन ने आक्षेपित निर्णय के विभिन्न अंशों का सन्दर्भ दिया है, जहां इस्माइल फारुकी के मामले का सन्दर्भ दिया गया है किंतु मुख्य प्रस्तर जहां इस्माइल फारुकी के मामले के संदर्भ में निष्कर्ष दिए गए हैं, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल के निर्णय के प्रस्तर 4049 से 4054 (खंड II) हैं, जैसा कि श्री तुषार मेहता, विद्वत अपर महाअधिवक्ता के द्वारा बताया है।

88. प्रस्तर 4049 और 4050 निम्नलिखित हैं:

> 4049. पक्षकरों के लिए कुछ विद्वान अधिवक्ताओं ने डां एम. इस्माइल फारूकी (उपरोक्त) के वाद के कुछ अशों को इस तरीके से पढने के बाद संविधान पीठ के फैसले पर अवलंब लेने की मांग की, जैसे कि शीर्ष अदालत ने कुछ पहलुओं पर अपनी राय व्यक्त की है जो हमारे सामने लंबित मुकदमों में इस न्यायालय के समक्ष विवादास्पद मुद्दे हैं और कहा कि उक्त अवलोकन इस न्यायालय के लिए बाध्यकारी हैं और इसलिए, उन पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है।

> 4050. श्री अय्यर, वरिष्ठ अधिवक्ता ने पूर्वोक्त निर्णय को पढ़ने की मांग की, जहां केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए श्वेत पत्र की सामग्री ने यह सुझाव देने के लिए उद्धृत किया कि ये भारत सरकार के निष्कर्ष हैं, जिन्होंने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा चिन्हित किया है और इसलिए, निष्कर्ष माना जाना चाहिए। यह सुझाव दिया जाता है कि उन मामलों में, यदि कोई हो, मुद्दों को शीर्ष न्यायालय के निर्णय द्वारा निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

89. उपरोक्त दलीलों को प्रस्तर 4051 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा सुना गया और स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया था, जो निम्नलिखित है:

> 4051. हालांकि, हम इस दलील में कोई बल नहीं पाते हैं। संविधान पीठ ने अयोध्या अधिनियम, 1993 की वैधता पर विचार किया, जिसके तहत अयोध्या में कुछ भूमि भी शामिल थी, जो भारत सरकार द्वारा अधिग्रहित किए जाने वाले इन मुकदमों में विषय वस्तु थी। इसके अलावा, शीर्ष न्यायालय के द्वारा संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत 7 जनवरी, 1993 को भारत के राष्ट्रपति द्वारा किए गए विशेष संदर्भ पर विचार कर रहा था, जिसमें निम्नलिखित प्रश्न पर शीर्ष न्यायालय की राय मांगी गई थी: "क्या एक हिंदू मंदिर या कोई हिंदू धार्मिक संरचना राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद (उक्त संरचना के आंतरिक और बाहरी अहाते के परिसर सहित) के निर्माण से पहले मौजूद है जिस क्षेत्र में संरचना खड़ी थी।"

90. उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इस्माइल फारुकी के मामले में कुछ तथ्यों का उल्लेख करने का मतलब यह नहीं है कि उन तथ्यों को इस न्यायालय द्वारा इस कारण से न्यायनिर्णयन किया गया था कि वे तथ्य न तो सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विवाद्यक में थे और न ही उनका न्यायनिर्णयन किया गया था। उपरोक्त संदर्भ में प्रासंगिक चर्चा अनुच्छेद 4053 में निहित है, जो निम्नलिखित है:

> 4053. यह इस संदर्भ में है कि अभिलेख में रखे गय कुछ तथ्यों का उल्लेख किया गया है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि उन तथ्यों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस कारण से न्यायनिर्णयन किया गया था कि वे तथ्य न तो न्यायालय के समक्ष विवाद्यक में थे और न ही वास्तव में

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

न्यायनिर्णयन किए गए हैं। एकमात्र प्रश्न जो विशेष रूप से विचारित और निर्णीत किया गया है कि भूमि के अधिग्रहण की शक्ति के तहत दी गई चुनौती के आलोक में आवश्यक था, जिस पर एक मस्जिद मौजूद थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मस्जिद समर्थक दलों ने एक विवाद उठाया कि इस्लाम के धार्मिक प्रथाओं के लिए इसके महत्व के बावजूद मूस्लिम विधि में विशेष स्थिति के कारण एक मस्जिद का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है। भूमि के अधिग्रहण के संदर्भ में इस तर्क को निर्णय के पैरा 68 (एआईआर) और इसके आगे के भाग को विचारित किया गया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि किसी मस्जिद में मुसलमानों के द्वारा इबादत और किसी मंदिर में हिंदुओं के द्वारा पूजा करने के अधिकार को केवल ब्रिटिश भारत में दीवानी अधिकार के रूप में मान्यता दी गई थी। मस्जिद शाहिदगंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, अमृतसर, ए. आई. आर. 1938 लाहौर 369 में लाहौर उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय पर अवलंब लेते हुए, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक मस्जिद यदि किसी गैर मुस्लिमों के द्वारा प्रतिकूल रूप से धारित कोई मस्जिद के रूप में अपने पवित्र चरित्र को खो देगी, तो सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि मस्जिद पवित्र है तो एक बार मस्जिद के रूप में यह हमेशा पूजा का स्थान मुस्लिम विधि में नही बनी रहती है जैसा कि भारतीय न्यायालयों द्वारा अनुमोदित है लाहौर उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि, "भारत में एक मस्जिद एक अचल संपत्ति थी और किसी विशिष्ट स्थान पर पूजा का अधिकार तब खो जाता है जब संपत्ति का अधिकार, जिस पर वह प्रतिकूल कब्जे से प्राप्त किया गया था समाप्त हो जाता है।" इन दोनों दृष्टिकोणों को प्रिवी काउंसिल द्वारा अनुमोदित किया गया था और सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त दृष्टिकोण का अनुशरण किया। इसके अलावा, स्वतंत्र रूप से भी न्यायालय का यह दृष्टिकोण भी था कि राज्य की संप्रभु शक्ति इसे संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार देती है। सार्वजनिक उपयोग के लिए व्यक्तिगत नागरिकों से संबंधित एक उपयुक्त निजी संपत्ति लेना प्रत्येक संप्रभु में निहित है। इस अधिकार को अमेरिकी कानून में प्रख्यात क्षेत्र के रूप में वर्णित किया गया है और राजनीतिक आवश्यकता की पेशकश के कराधान की शक्ति की तरह है और सरकार द्वारा एक निहित आरक्षण परआधारित माना जाता है कि इसके संरक्षण के तहत अपने नागरिकों द्वारा अधिग्रहित निजी संपत्ति ली जा सकती है या इसका उपयोग

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मालिक की इच्छाओं के बावजूद सार्वजनिक लाभ के लिए नियंत्रित किया जा सकता है। न्यायालय ने पूजा के अधिकार पर भी विचार किया कि क्या संविधान के अनुच्छेद 25 या 26 के अधीन मूल अधिकार प्रतिष्ठापित है और यह मत व्यक्त किया गया है, "जबकि प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक प्रथा है, हर स्थान पर इसकी पेशकश जहां ऐसी प्रार्थना की जा सकती है, ऐसी धार्मिक प्रथा का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि उस धर्म के लिए उस स्थान का कोई विशेष महत्व न हो ताकि उसका एक आवश्यक या अभिन्न हिस्सा बन सके। किसी भी धर्म की पूजा के स्थान, उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखते हैं, जो इसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए, एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं और उन्हें अलग और अधिक श्रद्धापूर्वक माना जाता है। अंततः संवैधानिक पीठ द्वारा बहुमत से कानून निर्धारित किया गया है कि मस्जिद के स्वत्व यदि विधि की यह स्थिती है तो अवधारित करने कोई कारण नही हो सकता है कि एक मस्जिद एक अद्वितीय या विशेष स्थिती के रूप में है तो धर्मनिरपेक्ष भारत में अन्य धर्मों के पूजा स्थलों से महत्व अधिक है ताकि राज्य के संप्रभु या विशेषाधिकार शक्ति के प्रयोग से उसकी प्रतिरक्षा की जा सके। एक मस्जिद इस्लाम के धर्म की प्रथा का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुसलमानों द्वारा नमाज़ (प्रार्थना) खुली जगह में भी दी जा सकती है। न्यायालय ने यह भी अवधारित किया कि जब तक किसी विशेष स्थान पर पूजा करने का अधिकार स्वयं उस अधिकार का एक अभिन्न अंग नहीं है, अर्थात, स्थान एक विशेष महत्व का है, इसकी अन्य संक्रसम्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता है। शीर्ष अदालत ने अधिनियम 1993 की वैधता पर विभिन्न सवालों के जवाब दिए और संदर्भ का जवाब देने से मना कर दिया और उसी तरह वापस कर दिया जैसे कि यह है। अधिनियम की धारा4 (3) के निरसन के कारण वाद को पुर्नजीवित किया गया, ये न्यायालय मूल वाद को विचारित करते समय पूरे मामलों कों गुणों के आधार पर निर्णीत किया जाना चाहिए जब तक कि कोइ विशेष विवाद्यक न दिखाया गया हो जो न्यायालय के ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करे कि मूल वाद के विचारण का मुद्दा शीर्ष न्यायालय के समक्ष पहले ही उठाया गया, तर्क दिया गया और निर्णीत किया जा चुका है, पक्षकारों की तरफ से उपस्थित विद्वत अधिवक्ता के द्वारा इस न्यायालय के समक्ष विभिन्न मुद्दों में शामिल मामलों के संबंध में ऐसी कोई निष्कर्ष

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं दिखा पाए हैं और इसलिए, हम पार्टियों के लिए अधिवक्ताओं के साथ समझौता नहीं कर रहे हैं जैसा कि अन्यथा तर्क दिया गया है।"

(हमारे द्वारा रेखांकित किया गया है)

91. उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि किसी मुद्दे को एक श्रेष्ठ न्यायालय द्वारा तभी तय किया जा सकता है जब इसे उठाया गया, तर्क दिया गया और इसमें निर्णय लिया गया। निम्नलिखित को अनुच्छेद 4054 में आयोजित किया गया था:

> 4054. एक मात्र तथ्य यह है कि श्वेत पत्र में भारत सरकार द्वारा कुछ तथ्यों पर ध्यान दिया गया है और उन तथ्यों को केवल शीर्ष अदालत ने श्वेत पत्र में उल्लिखित तथ्यों का उल्लेख करते हुए देखा है, यह नहीं कहा जा सकता है कि उन तथ्यों को माना जा सकता है जैसे कि उन्हें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सही माना गया है और न्यायनिर्णयन किया गया है। पूर्वता का नियम सर्वविदित है। विधि बनाने वाले श्रेष्ठ न्यायालय के प्राधिकारी के द्वारा बनायी गइ विधि निचली अदालतों के लिए बाध्य है बशर्ते कि न्यायालय द्वारा मामला तय किया गया हो। श्रेष्ठ न्यायालय के द्वारा एक मुद्दे के निर्णयन के लिए विचारण किया जा सकता जब इसे उठाया गया तर्क दिया गया और निर्णीत किया गया और केवल तब यह अन्य अदालतों के एक बाध्यकारी मिसाल है।

92. इस प्रकार, अपील के बहुतायत निर्णयों में यह उक्त दृष्टिकोण के बारे में बताता है और यह स्पष्ट करता कि उच्च् न्यायालय ने यह अवधारित किया की इस्माइल फारूकी के वाद के निर्णय में किसी मुद्दे को तय नहीं करता है जो वाद की विषय वस्तु है। इस्माइल फारुकी के निर्णय में जो भी अवलोकन किए गए हैं, वे मुकदमों

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

में निर्णय को नियंत्रित करने के लिए नहीं हैं और अभिलेख पर साक्ष्य के आधार पर वाद का फैसला किया जाना था। इस्माइल फारुकी के मामले में की गई संदिग्ध टिप्पणियों को केवल टिप्पणियों के रूप में माना जाना चाहिए, न कि सूट और इन अपीलों को तय करने के उद्देश्य से, उन्हें शासी कारक या प्रासंगिक नहीं माना जाना चाहिए। उक्त टिप्पणियों को पूरी तरह से भूमि अधिग्रहण के संदर्भ में किए गए अवलोकन के रूप में समझा जाना चाहिए और इससे अधिक कुछ नहीं।

93. यह उच्च न्यायालय के उपरोक्त निष्कर्ष के कारण है कि वाद, संख्या. 1 और 5 के वादी द्वारा आक्षेपित निर्णय के विरूद्ध दायर कई अपीलों का आधार लिया गया है, जिन आधारों को सन्दर्भित किया गया है और डॉ. राजीव धवन ने अपनी प्रस्तुतीकरण में उसका अवलंब लिया गया है अपील में लिया गया आधार, जिसमें डॉ. धवन द्वारा अपवाद लिया जा रहा है:

(i) स्थल का विभाजन प्रभावी रूप से अनुच्छेद 25 द्वारा संरक्षित स्थल पर हिंदू धर्म के अभिन्न और आवश्यक भाग के रूप में पूजा करने के अधिकार को समाप्त कर देगा;

(ii) इस क्षेत्र में कथित मुस्लिम संरचना को कभी भी इस्लामी धर्म का अनिवार्य या अभिन्न अंग होने का अभिवचन नहीं किया गया।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

94. इन अपीलों में इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त आधारों पर ध्यान दिया और विचारण किया जाना बाकी है।

95. हम पहले ही इस न्यायालय द्वारा इस्माइल फारुकी के मामले के अनुच्छेद 78 और 82 में दी गई टिप्पणियों की सीमा और प्रकृति पर विचार कर चुके हैं। इस्माइल फारुकी के मामले में निर्णय में होने वाली अभिव्यक्ति 'विशेष महत्व' और 'तुलनात्मक महत्व' को भी पूर्वगामी प्रस्तर में हमारे द्वारा ध्यान दिया गया और समझाया गया है। इस्माइल फारुकी के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों को ऊपरोक्त के जैसे समझा जाना चाहिए। यह प्रश्न कि क्या आक्षेपित निर्णय में, इस्माइल फारुकी के मामले पर निर्भरता उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय को प्रभावित करता है और किसी भी स्पष्टीकरण या सुधार का एक कार्य है, जिसे हमें वर्तमान अपीलों में पक्षकारों के विद्वत अधिवक्ता की सहायता से करना होगा। इस प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकालते है कि उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के द्वारा इस्माइल फारूखी के निर्णय पर अवलंब लेना और अपीलार्थी के लिए विद्वत अधिवक्ता के द्वारा अवलंब लेना और इस्माइल फारुकी के मामले के निर्णय के बल पर इन अपीलों में आधार लेना, सभी प्रश्नगत हैं, अपील के गुणावणुण के आधार पर, जिन्हें अपीलों में संबोधित करने की आवश्यकता है। इस प्रकार , उपरोक्त प्रस्तुतिकरण अपीलकर्ता को प्रतिवाद करने में मदद नहीं करता है कि इस्माइल फारुकी के मामले के फैसले पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

बड़ी पीठ के संदर्भ में अन्य आधार

96. कुछ पक्षों के उपस्थित विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राजू रामचन्द्रन ने कहा जैसा कि डॉ. राजीव धवन द्वारा रद्द किए गए कुछ अतिरिक्त आधारों पर इस्माइल फारुकी के मामले पर पुनर्विचार के लिए बड़ी बेंच के संदर्भ में दबाया गया है। श्री राजू रामचंद्रन ने कहा कि मामले के महत्व को देखते हुए इस मामले को इस्माइल फारुकी के फैसले पर पुनर्विचार के लिए संविधान पीठ को भेजा जाना चाहिए। उन्होनें ने कहा कि बहुत से उदाहरण है जहाँ न्यायालय ने मामलें के महत्व के समझने के लिए बड़ी पीठों को मामलें को सन्दर्भित किया था। उन्होनें ने कहा कि उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांकित 10.07.1989 के द्वारा उच्च् न्यायालयों वाद के महत्व को देखते हुए वाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ से विचारण करवाने के मामलें को अपने पास मगां लिया था। वाद बहुत महत्वपूर्ण बन गया है और अपील सभी पक्षों के द्वारा दाखिल की गई है और मामला इतना बड़ा है कि यह उचित है कि मामले पर विचार करने के लिए मामले को बड़ी संख्या की पैीठ के पास भेजा जाए। श्री रामचंद्रन ने इस न्यायालय के कई निर्णयों का उल्लेख किया है और उन पर अवलंब लिया है, जिन्हें हम आगे देखेंगे।

97. श्री राजू रामचंद्रन की दलीलों को विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के पराशरण और श्री सी. एस. वैद्यनाथन के द्वारा खंडन किया गया है। उनका मानना है कि यदि संवैधानिक सिद्धांत शमिल है, तो मामलें को एक बड़ी को

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

भेजा जा सकता है, लेकिन वर्तमान ऐसा मामला नहीं है जहां संवैधानिक व्याख्या का कोई सिद्धांत शामिल है, इसलिए मामले के संदर्भ को एक बड़ी पीठ के पास भेजने से अस्वीकार करने की आवश्यकता है। श्री परासरन का कहना है कि वर्तमान अपील एक वाद से उत्पन्न होती है जहां एक मुकदमे में मुद्दों को तय करने के लिए साक्ष्यों का मूल्याकंन किया जाना चाहिए, जिसे पांच न्यायाधीशों द्वारा करने की आवश्यकता नहीं है। उन्होने कहा कि पाँच न्यायाधीश के द्वारा केवल राष्ट्रपति चुनाव के वाद के साक्ष्यों का मूल्याकनं किया जाता रहा है।

98. इससे पहले कि हम पक्षकारों के लिए विद्वत अधिवक्ता की दलील को सुने, संविधान पीठ द्वारा सुनवाई के लिए एक मामले के संदर्भ के बारे में संवैधानिक प्रावधान है जिसके द्वारा पांच न्यायाधीशों को शामिल किया जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 145 (3) में यह उपबंध है कि ऐसे न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या, जो संविधान के निर्वचन के बारे में या अनुच्छेद 143 के अधीन किसी निर्देश को सुनने के प्रयोजन के लिए विधि के सारवान प्रश्न से संबंधित किसी मामले का विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए हैं, पांच होगी। अनुच्छेद 145 (3) का परंतुक उपबंध करता है:–

> "बशर्ते कि, जहां न्यायालय अनुच्छेद 132 के अलावा इस अध्याय के किसी भी प्रावधान के तहत अपील की सुनवाई कर रहा है, जिसमें पांच से कम न्यायाधीश हैं और अपील की सुनवाई के दौरान न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि अपील में संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का सारवान प्रश्न निहित है जिसका निर्धारण इस अपील के निस्तारण के

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

लिए आवश्यक है, ऐसा न्यायालय इस खंड द्वारा अपेक्षित इस प्रकार के किसी प्रश्न के विनिश्चय के उद्देश्य से गठित न्यायालय राय के लिए संदर्भित करेगा और राय प्राप्त होने पर ऐसी राय के अनुरूप अपील का निस्तारण करेगा"

99. परंतुक के अनुसार, पाँच न्यायाधीशों से कम संख्या में किसी अपील की सुनवाई कर रहे न्यायाधीशों द्वारा निम्न दो शर्तों के पूरा होने पर पाँच न्यायाधीशों की पीठ को सन्दर्भित किया जा सकता है:–

(i) न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि अपील में इस संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न निहित है।

(ii) जिसका निर्धारण अपील के निस्तारण के लिए आवश्यक है।

100. यथा उपरोक्त अनुच्छेद 145(3)का परंतुक, इस प्रकार स्पष्ट इंगित करता है कि यथा उपरोक्त ध्यातब्य दोनों शर्तों के पूरा होने पर पाँच न्यायाधीशों से कम संख्या वाली पीठ किसी मामले की सुनवाई पाँच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया जाना सन्दर्भित कर सकता है।**अब्दुल रहीम इस्माइल सी. रहिमतुल्ला बनाम बाम्बे राज्य, एआईआर 1959 एससी 1315** के मामले में इस न्यायालय के पास अनुच्छेद 145(3) पर विचार करने का अवसर था। उपरोक्त मामले में, अनच्छेद 19(1)(d), (e) और अनुच्छेद 19 की उपधारा (5) विचारार्थ आये। **इब्राहीम वजीर मवात बनाम बाम्बे राज्य एवं अन्य एआईआर 1954 एससी 229** के मामले में पाँच न्यायाधीश वाली पीठ ने पहले ही धारित किया था कि भारतीय नागरिक से यह पूर्वापेक्षा

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि भारत में प्रवेश करने से पहले पासपोर्ट प्रस्तुत करे, भारत में प्रवेश करने पर एक उचित निर्बंधन है। **अब्दुल रहीम इस्माइल (उपरोक्त)** के मामले में दो न्यायाधीश पीठ के समक्ष पासपोर्ट नियम,1950 के नियम 3 को चुनौती दी गयी थी जिसमें यह उपबंधित था कि भारत के बाहर से आने वाला कोई भी व्यक्ति भारत में जल, थल या वायुमार्ग से तब तक प्रवेश या प्रवेश करने का प्रयास नहीं करेगा जब तक कि उसके पास वैध पासपोर्ट न हो। आपत्ति यह थी कि अधिनियम की धारा 3 और नियमन का नियम 3, जहां तक इसका संबंध भारतीय नागरिकों से आशयित था, संविधान विरुद्ध है क्योंकि वे अनुच्छेद 19(1)(d)और (e) के विपरीत है।

इस न्यायालय ने धारित किया कि मामला पाँच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पहले ही निर्णीत होने के कारण संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। प्रस्तर 6 में निम्नवत धारित किया गया :–

> "6. ... हालांकि यह कहा गया कि चूंकि एक संवैधानिक प्रश्न उठाया गया है , इस मामले का निर्णय पाँच से कम न्यायाधीशों द्वारा नहीं हो सकता। अतः, मामले को संवैधानिक पीठ को सन्दर्भित किया जाना चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 145(3) कहता है कि संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि के किसी सारवान प्रश्न का निर्धारण करने के लिए या अनुच्छेद 143 के अन्तर्गत किसी सन्दर्भ की सुनवाई करने के लिए बैठने वाले न्यायाधीशों की न्यूनतम संख्या पाँच होगी। यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उठाया गया प्रश्न इस न्यायालय की पाँच न्यायाधीशों वाली पीठ द्वारा निर्णीत है। चूंकि हमारे समक्ष उठाया गया प्रश्न इस न्यायालय द्वारा पहले ही निर्णीत है, यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न उठता है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

101. **भगवान स्वरूप लाल बिशन लाल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1965 एससी 682** के मामले में, इस न्यायालय ने धारित किया कि संविधान के किसी उपबंध के निर्वचन का सारवान प्रश्न तब नहीं उत्पन्न हो सकता जब उस विषय पर विधि को इस न्यायालय द्वारा अन्तिम एवं प्रभावी रूप से अभिनिर्णीत किया जा चुका है। प्रस्तर 11 में निम्नवत कहा गया है :–

> "11. ... ... विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उठाये गये प्रश्न में संविधान के उपबंध के निर्वचन का प्रश्न निहित है और इसलिए इस आरोपी की अपील पाँच से अन्यून न्यायाधीशों वाली पीठ को संदर्भित किया जाना होगा। संविधान के अनुच्छेद 145(3) के अनुसार, संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि के सारवान प्रश्न वाले मामले ही पाँच से अन्यून न्यायाधीशों द्वारा सुने जाएंगे। जम्मू और कश्मीर बनाम ठाकुर गंगा सिंह, एआईआर 1960 एससी 356 के मामले में इस न्यायालय ने धारित किया कि संविधान के उपबंध के निर्वचन का सारवान प्रश्न तब उत्पन्न नहीं हो सकता जब उस विषय पर विधि अन्तिम और प्रभावी रूप से इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित की जा चुकी है। ... ...
>
> xxxxxxxxxxxxxxxxxxxx
>
> चूंकि उठाया गया प्रश्न इस न्यायालय द्वारा पहले ही अभिनिर्णीत है, केवल प्रतिपादित सिद्धान्त की वर्तमान मामले में प्रयोज्यता ही शेष बचती है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि उठाये गये प्रश्न में संविधान के अनुच्छेद 145(3) के अर्थों में संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का सारवान प्रश्न निहित है।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

102. **पीपुल्स युनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पीयूसीएल) एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (2003) 4 एससीसी 399** के वाद में तीन न्यायाधीश वाली पीठ को अनुच्छेद 145(3) पर भी विचार करने का अवसर मिला। यह तर्क दिया गया कि संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का एक सारवान प्रश्न उत्पन्न हुआ है, अतः मामले को पाँच न्यायाधीशों वाली पीठ को संदर्भित किया जाना चाहिए। तीन न्यायाधीश वाली पीठ ने पाया कि उठाया गया प्रश्न पहले ही **भारत संघ बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म एवं अन्य, 2002(5) एससीसी 294 – (तीन न्यायाधीशों वाली पीठ का निर्णय)** के मामले में अभिनिर्णीत है और संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न नहीं बचता अतः प्रस्तर सं. 28,32 और 78 में निम्नवत धारित किया गया :–

> "28. वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण जेटली और विद्वान महान्यायवादी श्री किरित एन. रावल ने कहा कि इन याचिकाओं में निहित प्रश्न संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का एक सारवान प्रश्न है। अतः मामले को पाँच न्यायाधीशों वाली पीठ को संदर्भित किया जा सकता है।
>
> 32. *एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म*[1] के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय से यह स्पष्ट है कि विद्वान महान्यायवादी द्वारा ऐसा कोई तर्क नहीं दिया गया जो भारत संघ की ओर से दायर अपील में प्रस्तुत हुए कि उस मामले में निहित प्रश्न का विनिश्चय संविधान के अनुच्छेद 145(3) में यथा उपबंधित पाँच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किये जाने की आवश्यकता है। हमारे समक्ष उठाया गया प्रश्न अंतिम रूप से अभिनिर्धारित किया जा चुका है और संविधान के निर्वचन के संबंध में विधि का कोई सारवान प्रश्न

1

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं बचता। अतः मामले को पाँच न्यायाधीशों की पीठ को संदर्भित किये जाने की आवश्यकता नहीं है।

78. उपरोक्त बहस से जो बात सामने आती है वह यह है:–

xxxxxxxxxxxxxxxxxx

(c) *एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म* के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय अंतिम है और उस संवैधानिक प्रावधान के निर्वचन का कोई प्रश्न नहीं है जिसमें अनुच्छेद 145(3) के अन्तर्गत संदर्भ की आवश्यकता है।"

103. वृहद पीठ को संदर्भित किये जाने के प्रश्न पर इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा दिये गये एक अन्य निर्णय पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वह है–**सेंट्रल बोर्ड ऑफ दाउदी बोहरा कम्यूनिटी एंड एनादर बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2005) 2 SCC 673**। इस न्यायालय की संविधान पीठ ने उच्चतम न्यायालय नियम, 1966 और अनुच्छेद 141 और 145 (2) के प्रावधानों पर ध्यान देते हुए निर्णय के प्रस्तर 12 में पाया कि वृहद पीठ द्वारा दिये गये निर्णय में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि न्यूनतर या समान न्यायाधीशों की संख्या वाले पीठ पर बाध्यकारी होगा। न्यूनतर न्यायाधीश संख्या वाली पीठ वृहद पीठ द्वारा प्रतिपादित विधि से असहमत नहीं हो सकती। संदेह की स्थिति में, न्यूनतर न्यायाधीश संख्या वाली पीठ वाई उस पीठ से वृहत्तर पीठ के सामने किये जाने की प्रार्थना कर सकती है जिसका निर्णय विचार के लिए आया है। प्रस्तर 12(3) में, उपरोक्त सिद्धान्त के दो अपवाद भी पाये गये, जो निम्न प्रभाव वाले हैं:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"(3) उपरोक्त नियमों के दो अपवाद हैं : (i) उक्त नियम मुख्य न्यायाधीश के विवेकाधिकार को बाध्य नहीं करते जिसमें रोस्टर बनाने की शक्ति निहित होती है और जो किसी विशिष्ट मामले की किसी भी संख्या बल की पीठ के समक्ष सुनवाई किया जाना निर्दिष्ट कर सकता ;और (ii) उपरोक्त प्रतिपादित नियम के बावजूद यदि मामला एक बार वृहद पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आ चुका है और वह पीठ ही यह मानती है कि न्यूनतर संख्याबल वाली पीठ द्वारा अपनाया गया विधिक दृष्टिकोण जो संदेह के घेरे में है,में सुधार या पुनर्विचार की आवश्यकता है तो अपवाद के रूप में (और एक नियम के रूप में नहीं) और इसके द्वारा दिए गए कारणों से, यह विशिष्ट संदर्भ या पीठ गठन या ऐसे सूचीकरण हेतु मुख्य न्यायाधीश के आदेश देते हुए मामले की सुनवाई और युक्तियुक्तता की जांच कर सकता है। रघुबीर सिंह व अन्य बनाम हंसोली देवी और अन्य (उपरोक्त)के मामले में ऐसी स्थिति थी। "

104. वर्तमान मामले में, चूंकि श्री राजू रामचंद्रन और डॉ धवन का कथन **इस्माइल फारूकी** के मामले पर पुनर्विचार करने के लिए संविधान पीठ को संदर्भित किये जाने के संबंध में है, जैसा कि उपरोक्त देका गया इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 145(3) के संबंध में प्रतिपादित विधि के मद्देनजर प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। श्री राजू रामचंद्रन और डॉ धवन दोनों ने इस न्यायालय द्वारा 26.03.2018 को रि.या. (सी) 222 वर्ष 2018 – **समीना बेगम बनाम भारत संघ और अन्य** में पारित आदेश पर भारी अवलंब लिया है। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा इस मुद्दे के महत्व को देखते हुए संविधान पीठ को संदर्भित किया गया है। दिनांक 26.03.2018 के आदेश का अवलोकन इंगित करता है कि उन रिट याचिकाओं में चुनौती निकाह हलाला,निकाह मुताह और निकाह मिस्यार सहित बहुविवाह की प्रचलित

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रथा से संबंधित है जो इस आधार पर है कि वे असंवैधानिक हैं। **शायरा बानो आदि बनाम भारत संघ और अन्य आदि,** (2017) 9 **एससीसी** 1 के मामले में इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ के फैसले का जिक्र करते हुए, जहां इस न्यायालय ने घोषणा की कि तलाकेबिद्दत या तीन तलाक की प्रथा अनुच्छेद 25 द्वारा संरक्षित नहीं है और यह एक आवश्यक धार्मिक प्रथा नहीं है, यह तर्क दिया गया था कि **शायरा बानो (उपरोक्त)** में पांच न्यायाधीशों की खंडपीठ का निर्णय निकाह हलाला, निकाह मुताह और निकाह मिस्यार के पहलुओं पर विचार नहीं किया। इस प्रकार, यह प्रश्न कि क्या वे धार्मिक प्रथाएं अनुच्छेद 25 द्वारा संरक्षित हैं या नहीं, तीन न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रिट याचिका में काफी हद तक शामिल था। तीन न्यायाधीशों की पीठ इस नतीजे पर पहुंची कि ऊपर बताई गई अवधारणाएं संविधान पीठ द्वारा अभिनिर्धारित नहीं की गई हैं, इसलिए इस मुद्दे के महत्व को देखते हुए संविधान पीठ को संदर्भित किया गया था। 26.03.2018 दिनांकित आदेश द्वारा दिया गया ऊपर उल्लिखित तथ्यों के आलोक में था और वर्तमान मामले में श्री राजू रामचंद्रन द्वारा दिये गये तर्कों का समर्थन नहीं करता है।

105. अब हम उन मामलों पर आते हैं जिनका अवलंब श्री राजू रामचंद्रन द्वारा अपने तर्क के समर्थन में लिया गया है।

106. **हैदराबाद इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य** (1995)5 **एससीसी 338** के मामले में इस न्यायालय का निर्णय एक ऐसा ही आधार था जिसमें एक तीन न्यायाधीश पीठ ने पूर्व के निर्णय अर्थात

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

खण्डेलवाल मेटल एंड इंजीनियरिंग वर्क्स एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1995) 3 **एससीसी** 620 के मामले में निर्णय के युक्तियुक्तता पर संदेह व्यक्त किया। इसी तरह **एस.एस. राठौर बनाम म.प्र. राज्य** 1988(SUPP) **एससीसी** 522 का मामला भी ऐसा ही था जिसमें **सीताराम गोयल बनाम म्यूनिसिपल बोर्ड कानपुर एवं अन्य एआईआर 1958 एससी** 1036 के मामले में पाँच न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णय की युक्तियुक्तता पर संदेह व्यक्त किया गया। आगे दो निर्णयों में मत विभिन्नता या मत विरोध होने के कारण इस न्यायालय के निर्णयों को संदर्भित किया गया जो इस न्यायालय द्वारा **अश्विनी कुमार एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** (1996)7 **एससीसी** 577 और **बलसारिया कंस्ट्रक्शन प्रा. लि. बनाम हनुमान सेवा ट्रस्ट एवं अन्य** (2006) 5 **एससीसी** 662 के मामले में दिये गये निर्णय हैं। इसलिए ये मामले भी तर्क का समर्थन नहीं करते। **अच्चन रिज्वी एवं अन्य (I) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** (1994) 6 **एससीसी** 751 और **अच्चन रिज्वी (II) एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** (1994)6 **एससीसी** 752 के मामलों में इस न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय ऐसे ही मामले थे जिनमें अनमानना याचिकाओं में अन्तरिम आवेदन दिये व अभिनिर्धारित किये गये। सन्दर्भ से संबंधित कोई भी सिद्धान्त नहीं पाया गया। उक्त निर्णयों का वृहत्तर पीठ को सन्दर्भित किये जाने के विषय के संबंध में प्रासंगिकता नहीं है। इसी तरह **मो.असलम उर्फ भूरे बनाम भारत संघ एवं अन्य** (2008) 2 **एससीसी** 576 के वाद में इस न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय ऐसा ही मामला था जिसमें इस न्यायालय द्वारा **इस्माइल फारूकी** के मामले की भांति 67.703 एकड़ भूमि के अधिग्रहण के संबंध में

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अंतरिम आदेश पारित किया गया था। इस निर्णय को वृहत्तर पीठ को संदर्भित किये जाने के संबंध में कोई प्रासंगिकता नहीं है।

मो.असलम उर्फ भूरे बनाम भारत संघ एवं अन्य (2003) **4 एससीसी** 1 के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया है जो कि पाँच न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णीत मामला था। अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत संलग्न भूमि अर्थात विवादित ढ़ाचे से संलग्न भूमि को उच्च न्यायालय में लंबित वाद में अंतिम निर्णय आने तक संरक्षित किये जाने के संबंध में एक जनहित याचिका दायर की गयी थी जो **इस्माइल फारूकी** के वाद में निर्णय आने के बाद बहाल हो गयी थी। पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने कई टिप्पणियों और निर्देशों को संज्ञान में लिया जो कि इस्माइल फारूकी के वाद में पारित की गयी थी और अंततः यह निर्देश दिया कि 13.3.2002 को इस न्यायालय द्वारा पारित और 14.3.2002 को संशोधित अंतरिम आदेश इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा वाद के निस्तारण किये जाने तक न केवल साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखने के लिए अपितु अधिनियम के अन्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए भी कार्यशील रहना चाहिए। रिट याचिका को तद्नुसार निस्तारित किया गया। वृहत्तर पीठ को संदर्भित किये जाने संबंधी ऐसा कोई सिद्वान्त उक्त वाद में पारित नहीं किया गया जो विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का समर्थन करे।

107. **विनोद कुमार शान्तिलाल गोसालिया बनाम गंगाधर एवं अन्य 1980 (SUPP) एससीसी 340** के मामले में दो न्यायाधीशों के एक निर्णय को भी अवलंब लिया गया है जिसमें निम्न आदेश पारित किया गया था:–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

" पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात हमने निर्णय आरक्षित किया। न्यायिक आयुक्त पढ़कर और दस्तावेजों को देखकर तथा पक्षकारों के तर्कों पर सावधानी पूर्वक विचार करने के पश्चात हमें यह लगता है कि इन अपीलों में अत्यधिक महत्व का सारवान प्रश्न निहित है। जोकि गोवा दमन और दीव के वर्तमान क्षेत्र में खनन पट्टा से संबंधित बहुत से मामलों को शासित करेगा। इसीलिए हम यह निर्देश देते हैं कि इस मामले को वृहत्तर पीठ के समक्ष रखा जाय। इन अपीलों को आदेश हेतु माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय के समक्ष रखा जाय।"

108. उपरोक्त आदेश दो न्यायाधीश पीठ द्वारा पारित किया गया था। जिसमें अपील को इस तथ्य के कारण कि अपील में अत्यधिक महत्व का विधि का सारवान प्रश्न निहित है माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय के समक्ष रखे जाने का निर्देश दिया था। उक्त प्रकरण को मामले को संविधान पीठ के समक्ष रखने हेतु निर्दिष्ट करने वाले आदेश के रूप में नहीं देखा जा सकता है न ही उपरोक्त आदेश से संविधान पीठ को सन्दर्भित करने संबंधी कोई उपधारणा निकलती है जो कि विद्वान अधिवक्ता की मदद कर सके। एक अन्य निर्णय जिसका अवलंब लिया गया है वह न्यायमूर्ति ई.एस. वेंकटरामैया द्वारा पारित एक आदेश है। **रामजेठ मलानी बनाम भारत संघ (1984)3 एससीसी 696** के मामले में अवकाश कालीन न्यायमूर्ति उपरोक्त आदेश रिट याचिका (आपराधिक) में पारित किया गया था। उपरोक्त मामले में विषय पंजाब एक्शन के बाद निरूद्ध किये गये सिख नेताओं की रिहाई से संबंधित था। आदेश में दिये गये विषयों में एक यह था कि यह समुदाय के बड़े हिस्से की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित था। न्यायालय का यह मत था कि संबद्ध प्रश्न एकल न्यायाधीश के लिए बहुत बड़े व जटिल थे। न्यायालय ने विचार व्यक्त

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

किया कि इन और इनके समान मामलों को इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुना जाना चाहिए। उपरोक्त आदेश निर्णय में यथा दृश्टब्य विशेष परिस्थितियों में पारित किया गया था और किसी मामले को संविधान पीठ को संदर्भित किये जाने संबंधी कोई विधिक सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया गया था। इस प्रकार उपरोक्त आदेश मामले के विशिष्ट तथ्यों के सन्दर्भ में था।

109. **कृषन कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य (1989) 2 एससीसी 504** के मामले में पाया गया कि इस मामले पर इस न्यायालय के निर्णीत वाद नहीं है, अतः न्यायालय ने टिप्पणी की कि उपरोक्त के दृष्टिगत मामलों को वृहत्तर पीठ को सन्दर्भित किया जाना चाहिए। पुनश्च वह दो न्यायाधीश पीठ का निर्णय था और ऐसा कोई निर्देश नहीं था कि आदेश में अभिकल्पित वृहत्तर पीठ को सन्दर्भित किया जाना चाहिए जो विषय का अभिनिर्धारण करने वाले तीन न्यायाधीशों की पीठ होनी चाहिए थी। **भारत संघ बनाम एम. गोपाल कृष्णैया 1995 (SUPP)4 एससीसी 81** के मामले में **दिल्ली परिवहन निगम बनाम डीटीसी मजदूर कांग्रेस एवं अन्य 1991 (SUPP) 1 एससीसी 600** के मामले में संविधान पीठ द्वारा दिये गये पुराने निर्णय पर दृष्टिपात किया गया और इस प्रश्न पर विचार किया गया कि क्या **दिल्ली परिवहन निगम (उपरोक्त)** और **सेंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन लि. एवं अन्य बनाम बैजनाथ गांगुली एवं अन्य (1986) 3 एससीसी 156** के निर्णय की तार्किकता जो स्थायी कर्मचारियों पर लागू होती थी, नियतकालिक निदेशकों तक विस्तारित की जा सकती थी। इस प्रकार यह एक संदर्भित प्रश्न था कि क्या

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

संविधान पीठ का निर्णय उपरोक्त मामलों में लागू होता था जो कि स्वंय मामले के विशिष्ट तथ्यों के आलोक में दिया गया निर्णय है और वृहत्तर पीठ को सन्दर्भित किये जाने के संबंध में कोई अनुपात नहीं बताता।

110. इसी तरह **सिंडिकेट बैंक बनाम प्रभा डी. नाइक एवं अन्य (2002)10 एससीसी 686** के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ ने पुर्तगाली सिविल कोड के निर्वचन पर विचार करने और परिसीमन अधिनियम की प्रयोज्यता हेतु वृहत्तर पीठ को संदर्भित किया। सन्दर्भ केवल संविधान पीठ को नहीं था और केवल वृहत्तर पीठ को था जो कि तीन न्यायाधीशों की भी हो सकती थी। इसी तरह **चरनजीत सिंह बनाम रवींद्र कौर (2008) 17 एससीसी 650** के मामले में प्रश्न के महत्व को देखते हुए दो न्यायाधीशों की पीठ ने वृहत्तर पीठ को सन्दर्भित किया था। दो न्यायाधीश पीठ का सन्दर्भ संविधान पीठ को नहीं था। इसलिए यह तर्क का समर्थन नहीं करता। **भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण बनाम भारत संचार निगम लि. (2014)3 एससीसी 304** के मामले का प्रभाव भी समान प्रभाव वाला है जिसमें दो न्यायाधीश की पीठ ने वृहत्तर पीठ को संदर्भित किया था। **सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया बनाम सहारा इंडिया रियल एस्टेट कार्पोरेशन एवं अन्य (2014) 8 एससीसी 751** के मामले में तीन न्यायाधीश की पीठ द्वारा पारित किया गया एक पुराना निर्णय लागू कराया गया इसलिए तीन न्यायाधीश पीठ को संदर्भित किया गया जो कि पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ को संदर्भित किये जाने का मामला नहीं था। **राजीव धवन बनाम गुलशन कुमार महाजन एवं अन्य (2014) 12 एससीसी 618** के

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

मामले में इस न्यायालय का निर्णय अवमानना याचिका से संबंधित मामला था जो कि वर्तमान विवाद से संबंधित मामला नहीं है। रामचंद्रन द्वारा अवलंबित अंतिम निर्णय **विवेक नारायण शर्मा बनाम भारत संघ (2017) 1 एससीसी 388** का निर्णय है। तीन न्यायाधीश पीठ रू. 500/– और रू. 1000/– के नोटों का विमुद्रीकरण करने वाली 08.11.2016 दिनांकित अधिसूचना पर विचार कर रहा था। अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत दाखिल रिट याचिका और अंतरण याचिकाओं में विमुद्रीकरण के विभिन्न पहलू विचार विमर्श के लिए आये। प्रस्तर 3 में निम्नवत अवलोकन किया गया :–

> "3. इन प्रश्नों के उत्तरों का सार्वजनिक महत्व और दूरगामी निहितार्थों को दृष्टि में रखते हुए हमें यह निर्देश देना उचित लगता है कि मामले को अधिकृत प्रकथन के लिए पाँच न्यायाधीशों की वृहत्तर पीठ के समक्ष रखा जाय। रजिस्ट्री तद्नुरूप उपयुक्त पीठ का गठन करने के लिए कागजातों को माननीय मुख्य न्यायाधीश महोदय के समक्ष रखेगा।"

111. उपरोक्त पृष्ठभूमि में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने मामले को पांच न्यायाधीशों की वृहत्तर पीठ समक्ष रखने का निर्देश दिया है।

112. वर्तमान मामला ऐसा मामला है जिसमें अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 30.09.2010 दिनांकित निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है। जिसके द्वारा चार मूल वाद, जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा इसे स्थानांतरित किये गये थे, अभिनिर्धारित किये गये हैं। चार वाद विवादित ढ़ाचे पर अपने स्वत्व का दावा करते हुए दाखिल किये गये थे। पक्षकारों ने कई हजार पन्नों वाले वृहद साक्ष्य प्रस्तुत किये। न्यायालय ने इसके समक्ष प्रस्तुत

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

साक्ष्यों का विश्लेषण कर अभिनिर्धारित किया है कि ये सिविल वाद इन अपीलों को जन्म देते हैं। इन अपीलों में उत्पन्न विषय निःसंदेह महत्वपूर्ण विषय हैं। जिनकी इन अपीलों में सुनवाई किया जाना है एवं अभिनिर्णीत किये जाने हैं। सामान्यतः वाद से उत्पन्न अपील दो न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष रखे जाते हैं। लेकिन मामले के महत्व को देखते हुए वर्तमान अपील को पहले ही तीन न्यायाधीश पीठ के समक्ष रखा गया है। उपरोक्त कारण से हम श्री राजू रामचन्द्रन के इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि इन अपीलों को **इस्माइल फारूकी** के वाद में संविधान पीठ के निर्णय पर विचार करने के लिए पाँच न्यायाधीशों की संविधान पीठ को सन्दर्भित किया जाना चाहिए।

113. समाप्त करने से पहले हमें हिन्दू और मुसलमान समुदाय के सदस्यों को यह स्मरण रखना चाहिए कि **इस्माइल फारूकी** के मामले में न्यायमूर्ति एस.यू. खान और बहुमत की ओर से बोलने वाले न्यायमूर्ति जे.एस.वर्मा के सुचिन्तित संदेश को ध्यान में रखना चाहिए। न्यायमूर्ति एस .यू.खान ने निम्नलिखित अपील की है:

> "मुस्लिमों को इस पर भी विचार करना चाहिए कि वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व मुस्लिमों का दूसरों से संबंध के बनिस्बत इस्लाम की वास्तविक शिक्षाओं को जानना चाहता है। शत्रुता, मित्रता, सहिष्णुता, शांति, दूसरों को प्रभावित करने का अवसर या जहां और जब भी संभव हो दूसरों पर हमला करना या क्या? इस संबंध में भारत के मुसलमानों की स्थिति विशिष्ट है। वे यहां पर शासक रहे, उन पर शासन किया गया और अब वे सत्ता में सहभागी हैं (सचमुच कनिष्ठ सहभागी)। वे बहुमत में नहीं हैं लेकिन वे नगण्य अल्पमत में भी नहीं हैं। मुस्लिमों के अधिकांश सदस्य व्यापक बहुमत में हैं। जो उन्हें प्रश्नगत समस्याओं से

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अप्रभावित बनाता है या ऐसे नगण्य अल्पमत में हैं कि उन्हें महत्वहीन बना देता है। भारतीय मुसलमानों को धार्मिक शिक्षाओं और ज्ञान की एक वृहद विरासत प्राप्त है। इसलिए वे विश्व को वास्तविक स्थिति बताने में सबसे अधिक सक्षम हैं। उन्हें वर्तमान विवाद के समाधान में अपनी भूमिका से शुरुआत करनी चाहिए।"

114. न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा ने निर्णय के प्रस्तर 156 में हिंदू धर्म में महान आशा व्यक्त की जो एक सहिष्णु विश्वास है। प्रस्तर 156 में यह अवधारित किया गया:

"156. अन्तिम आदेश पारित करने से पूर्व सामान्य प्रकृति की कुछ टिप्पणियां उचित प्रतीत होती हैं। हिन्दू धर्म एक सहिष्णु मत है। यह इतना सहिष्णु है कि इसमें इस्लाम , क्रिश्चियनिटी, पारसी, यहूदी,बौद्ध, जैनियों और सिखों को शरण प्रदान किया और अपनी भूमि पर सहायता दी। हमें इसमें संदेह नहीं कि आधुनिक हिन्दुओं को मंदिर बनाने के लिए दूसरों का पूजा स्थल हटाने में कोई रूचि है। हमारी यह आशा है कि एक मध्यममार्गीय मत को व्यक्त किया जाएगा और सामुदायिक भातृत्व से अयोध्या के विवाद का एक सर्वमान्य समाधान न्यायालय द्वारा इसे हल किये जाने से पहले ही खोज लिया जाएगा।"

115. हमें इस प्राचीन देश की समृद्ध संस्कृति और विरासत का भी स्मरण है जो सदैव पूरे विश्व के लिए महान शिक्षा और प्रेरणा का विषय रहा है।

116. महान राजा अशोक ने 245 ई.पू. (ईसा से पूर्व) ने दुनिया को कई संदेश दिए थे जो कि शिलालेखों में उकेरे गए हैं जो दूसरों के विश्वास के प्रति श्रद्धा दर्शाते हैं। महान राजा अशोक के बारहवें शिलालेख में कहा गया है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"राजा, देवताओं का प्रिय, धार्मिक विश्वास के हर रूप का सम्मान करता है, लेकिन किसी भी उपहार या सम्मान को धर्म के पदार्थ की वृद्धि के रूप में नहीं मानता है; जिसका मूल 109 है, अपने स्वयं के विश्वास का सम्मान करना और कभी भी दूसरों की निंदा नहीं करना। जो अलग तरह से कार्य करता है वह अपने ही धर्म को नुकसान पहुंचाता है जबकि वह दूसरे के धर्म को गलत बताता है।' मेरे संरक्षण में सभी प्रकार के धर्मों ग्रंथों का पालन किया जाएगा।' "

117. डॉ. एस. राधाकृष्णन, भारत के सबसे विद्वान और सम्मानित पूर्व राष्ट्रपति, ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **"द हिंदू व्यू ऑफ लाइफ"** में "धर्म के संघर्ष" के विषय पर विचार करते हुएन जीवन के हिंदू दृष्टिकोण में आशा व्यक्त की है। डॉ राधाकृष्णन के शब्दों में :

"यह बात – कि धर्मों के संघर्ष की समस्या का हिंदू समाधान भविष्य में स्वीकार किए जाने की संभावना है, मुझे काफी हद तक निश्चित लगती है। अपने लक्ष्य को चुनने की स्वतंत्रता में अपने अपार विश्वास के साथ लोकतंत्र की भावना और उन्हें साकार करने के प्रयास में अपने मार्ग को निर्देशित करना इसकी पुष्टि करती है। वह कुछ भी अच्छा नहीं है जो स्वयं चुना नहीं गया है; कोई भी दृढ़ संकल्प मूल्यवान नहीं है जो आत्मनिर्णय नहीं है। विभिन्न धर्म धीरे–धीरे एक दूसरे के साथ रहना सीख रहे हैं। धर्मों की संसद और सभी पंथों के उदार विचारकों के सम्मेलन आपसी समझ और सद्भाव को बढ़ावा देते हैं। तुलनात्मक धर्म का अध्ययन अन्य धर्मों के प्रति एक निष्पक्ष दृष्टिकोण विकसित कर रहा है। यह सभी धर्मों की मौलिक एकता को रेखांकित कर रहा है और समय की आवश्यकता प्रत्येक धर्म में रूझान को निर्धारित करता है। हम धर्मों के अंतर्संबंधों के बारे में स्पष्ट रूप से सोचना सीख रहे हैं। हम विभिन्न धर्मों को एक दूसरे से असंगत रूप में नहीं बल्कि पूरक के रूप में देखते हैं, और सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। अन्य धर्मों के साथ निकट संपर्क ने इस विश्वास को दूर कर दिया है कि केवल इस या उस धर्म ने साहस

> और धैर्य, निस्वार्थ प्रेम और रचनात्मक ऊर्जा के व्यक्ति पैदा किए हैं।हर महान धर्म ने अपने अनुयायियों को वासना के वेग, कामना के बल और क्रोध के अंधेपन का समाधान किया है। ऐसा लगता है कि ब्रह्मांडीय योजना में मूलभूत धर्म का अपना स्थान है, क्योंकि भव्य फूल उन मैली जड़ों को सही ठहराते हैं जिनसे वे पल्लवित होते हैं।"

118. हमें विश्वास है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति एस .यू. खान एवं न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा निर्णय के प्रस्तर 156 में दी गयी उक्तियां दोनों समुदायों को उनके विचार, कर्म और कार्य में मार्गदर्शन करेंगे।

119. निष्कर्ष रूप में, हम फिर से यह स्पष्ट करते हैं कि **इस्माइल फारूकी** के मामले में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, की गयी टिप्पणियां भूमि अधिग्रहण के संदर्भ में की गयी थीं। वे उक्तियां न तो वादों के निर्णय के लिए प्रासंगिक थे और न ही इन अपीलों के अभिनिर्धारण के लिए।

120. पूर्वगामी बहस के दृष्टिगत, हमारा यह विचार है कि **इस्माइल फारूकी** मामले (**उपरोक्त**) में इस न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले को पुनर्विचार के लिए संदर्भित करने का कोई आधार नहीं दिया गया है।

121. हम दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं, विशेष रूप से श्री एजाज मकबूल और पी.वी. योगेश्वरन द्वारा दी गयी सहायता की प्रशंसा करते है जिन्होंने विभिन्न खंडों को व्यवस्थित तरीके से संकलित करने में न्यायालय को बहुत सहायता प्रदान की है, जो इस मुद्दे को सुनने और अभिनिर्धारित करने में न्यायालय के लिए बहुत सहायक रहा है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

122. जिन अपीलों पर इस न्यायालय द्वारा काफी लंबी अवधि से विचार नहीं किया गया है उन्हें अब सुनवाई के लिए 29 अक्टूबर, 2018 से प्रारम्भ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाए।

... ...

(मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा)

... ... **... ...**

(न्यायमूर्ति अशोक भूषण)

नई दिल्ली

सितम्बर 27, 2018

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

प्रतिवेद्य

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय

दीवानी अपीलीय अधिकारिता

सिविल अपील सं. 10866–10867 वर्ष 2010

एस सिद्दीकी (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि .....

अपीलार्थी(गण)

बनाम

महन्त सुरेश दास एवं अन्य इत्यादि .....प्रत्यर्थी

(गण)

सिविल अपील सं. **4768-4771** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **2636** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं.**821** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **4739** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **4905-4908** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **2215** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **4740** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **2894** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **6965** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **4192** वर्ष **2011**

सिविल अपील सं. **5498** वर्ष **2011**

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

सिविल अपील सं. 7226 वर्ष 2011

सिविल अपील सं. 8096 वर्ष 2011

डायरी सं. 22744 वर्ष 2017

निर्णय

न्यायमूर्ति एस.अब्दुल नजीर

1. मुझे अपने विद्वान बंधु न्यायमूर्ति अशोक भूषण के विद्वतापूर्ण निर्णय को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरे विद्वान बंधु ने माना है कि **डॉ इस्माइल फारूकी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1994) 6 एससीसी 360 (संक्षेप में 'इस्माइल फारूकी')** के फैसले के पैराग्राफ 82 में की गई प्रश्नांकित टिप्पणियां इन अपीलों के अभिनिर्धारण के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। इसलिए, माननीय न्यायमूर्ति महोदय ने निष्कर्ष निकाला है कि इन अपीलों को इस न्यायालय की संविधान पीठ को संदर्भित करने के लिए कोई आधार नहीं दिया गया है। मैं अपने बंधु द्वारा व्यक्त इस विचार को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। हालांकि, मैं निर्णय के पैरा 63 से 75 में निहित *प्राड्निर्णय* के प्रश्न पर उनकी राय से ससम्मान सहमत हूं और इस निर्णय को अन्य मुद्दों तक सीमित रखा है।

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

2. चूंकि मेरे विद्वान बंधु ने मामले के तथ्य और पक्षकारों के प्रतिद्वंदी तर्कों को विस्तार से रखा है, इसलिए उन्हें दोहराना आवश्यक नहीं है। इसलिए, मैंने केवल कुछ प्रासंगिक तथ्य बताए हैं।

3. **इस्माइल फारूकी** के मामले में, न्यायालय ने अयोध्या अधिनियम, 1993 (संख्या 33 वर्ष 1993) (संक्षिप्त में '1993 अधिनियम') के अन्तर्गत अधिग्रहण की पृष्ठभूमि और भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए भारत के राष्ट्रपति द्वारा इस न्यायालय को सन्दर्भित करने के कारणों का उल्लेख प्रारम्भ में ही किया है। यहां उल्लिखित विशेष संदर्भ में विचार और राय के लिए निम्नलिखित प्रश्न था:

> "क्या उस क्षेत्र में राम जन्म भूमि–बाबरी मस्जिद (ऐसी संरचना के आंतरिक और बाहरी प्रांगण के परिसर सहित) के निर्माण से पहले कोई हिंदू मंदिर या कोई हिंदू धार्मिक संरचना मौजूद थी? "

4. तथ्यों का वर्णन करने के पश्चात, न्यायालय ने 1993 के अधिनियम की संवैधानिक वैधता की जांच की। इस मुद्दे पर, न्यायालय का निष्कर्ष था कि संसद के पास उक्त कानून को अधिनियमित करने की विधायी क्षमता है और धारा 4(3) को छोड़कर, 1993 का संपूर्ण अधिनियम संवैधानिक रूप से वैध है। ऐसा निर्णय लेते हुए, न्यायालय ने प्रस्तर 51 में दोनों समुदायों के लिए विवादित स्थल के "तुलनात्मक महत्व" पर चर्चा की। जो कि निम्नानुसार पुनर्प्रस्तुत है:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"51. यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि तीर्थ स्थान के रूप अयाध्या को हिंदुओं के लिए विशेष महत्व का कहा जाता है क्योंकि प्राचीन मान्यता है कि भगवान राम का जन्म वहां हुआ था, मुस्लिम समुदाय के लिए मस्जिद का महत्व मीर बाकी द्वारा 1528 ई. में बनवाई गयी एक प्राचीन मस्जिद के रूप में था। एक मस्जिद के रूप में, यह मुसलमानों द्वारा पूजा का एक धार्मिक स्थान था। यह दोनों समुदायों के लिए विवादित स्थल के तुलनात्मक महत्व को इंगित करता है और यह भी कि अधिग्रहण का प्रभाव हिंदू समुदाय के अधिकार और हित पर समान रूप से है। इस पहलू का उल्लेख केवल इस तर्क के संदर्भ में किया गया है कि हिंदुओं के पक्ष में और मुसलमानों के विरुद्ध होने के कारण संपूर्ण विधान, न कि केवल उसकी धारा 7, गैर धर्मनिरपेक्ष है।"

5. उपरोक्त निष्कर्ष के बाद, प्रस्तर 65 से 82 में न्यायालय ने इस प्रश्न का परीक्षण किया कि क्या क्या मस्जिद अधिग्रहण से मुक्त है। इन प्रस्तरों में, प्रस्तर 77, 78 और 80 की गयी उक्तियां वर्तमान मामले के लिए महत्वपूर्ण हैं और निम्नानुसार पुनर्प्रस्तुत की जाती हैं: –

"**77**. यह ध्यातब्य है कि संविधान के अनुच्छेद 26 के विपरीत अनुच्छेद 25 में संपत्ति का कोई संदर्भ नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्रत्याभूत धर्म के आचरण, मानने और प्रचार करने के अधिकार में संपत्ति हासिल करने या स्वत्व या कब्जे का अधिकार शामिल नहीं है। इसी प्रकार यह अधिकार किसी भी पूजा स्थल पर पूजा के अधिकार तक विस्तृत नहीं है जिससे किसी विशेष स्थान पर पूजा करने में कोई बाधा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत प्रत्याभूत धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन हो जाय। संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण धार्मिक आचरण के लिए है जो धर्म का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग है। कोई कृत्य / आचरण एक धार्मिक आचरण हो सकता है लेकिन आवश्यक नहीं कि उस धर्म के आचरण का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग हो।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

78. हालांकि पूजा या उपासना करना एक धार्मिक प्रथा है, लेकिन हर स्थान पर पूजा की जा सकती हो, इसे करना धार्मिक आचरण का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग नहीं होगा जब तक कि उस स्थान का उस धर्म के लिए ऐसा विशेष महत्व न हो कि वह उसका एक आवश्यक या अभिन्न अंग हो जाय। किसी धर्म के लिए विशेष महत्व रखने वाले धार्मिक स्थल जो उस धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग हों, वे एक अलग पायदान पर होते हैं और उनके साथ अलग और अधिक सम्मानजनक व्यवहार किया जाना चाहिए।

80. यह तर्क दिया गया है कि किसी मस्जिद को मुस्लिम विधि में एक विशेष स्थान प्राप्त है और एक बार किसी मस्जिद की स्थापना हो जाने और उसमें नमाज़ हो जाने पर वह हमेशा के लिए अल्लाह की संपत्ति हो जाती है और वह कभी भी दाता या संस्थापक को को वापस नहीं होती और इस्लामी आस्था को मानने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसी मस्जिद में नमाज अदा कर सकता है और अगर ढांचा गिरा दिया जाए तो भी वह जगह वही रहती है जहां नमाज अदा की जा सकती है। जैसा कि इससे पूर्व बताया गया है, ब्रिटिश भारत में, किसी मस्जिद को ऐसी कोई सुरक्षा नहीं दी गई थी और मस्जिद को परिसीमा क़ानून के प्रावधानों के अधीन किया गया था, जिससे उस संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे छूट जाने पर मुसलमानों का उस विशेष मस्जिद में नमाज़ अदा करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।"

(प्रभाव वर्धित)

6. प्रस्तर 82 में इस न्यायालय ने इस स्थिति को संक्षेप में निम्नवत प्रस्तुत किया:

"82. सही स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भारत में प्रयोज्य मुस्लिम विधि के तहत, एक मस्जिद का मालिकाना हक प्रतिकूल कब्जे से खो सकता है (देखें एम. हिदायतुल्ला लिखित *मुल्लाज प्रिंसिपल ऑफ मोहम्मडन लॉ*, 19वां संस्करण, – धारा 217; और शहीद गंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा [AIR 1940 PC

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

116, 121]। यदि ऐसी विधिक स्थिति है, तो यह मानने का कोई कारण नहीं हो सकता है कि एक मस्जिद को एक अद्वितीय या विशेष दर्जा प्राप्त है, जो कि धर्मनिरपेक्ष भारत में अन्य धर्मों के पूजा स्थलों की तुलना में उच्च है, जिससे राज्य की संप्रभु या विशेषाधिकार शक्ति के प्रयोग से अधिग्रहण से बचाया जा सके। **मस्जिद इस्लाम धर्म के आचरण का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुसलमानों द्वारा नमाज (प्रार्थना) कहीं भी की जा सकती है, यहां तक कि खुले में भी।** तदनुसार, इसका अधिग्रहण भारत के संविधान के प्रावधानों द्वारा निषिद्ध नहीं है। संप्रभु शक्ति के प्रयोग में राज्य द्वारा अधिग्रहण से प्रतिरक्षा के उद्देश्य से एक इस्लामी देश में एक मस्जिद की स्थिति के बावजूद, संविधान के तहत भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकाचार में अधिग्रहण से इसकी स्थिति और प्रतिरक्षा अन्य धर्मों के पूजा स्थल, अर्थात् चर्च, मंदिर आदि के समान और बराबर है। यह अन्य धर्मों के पूजा स्थलों की तुलना में न अधिक है और न ही कम है। स्पष्टतः, किसी भी धार्मिक स्थान का अधिग्रहण केवल असामान्य और असाधारण परिस्थितियों में एक बड़े राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इस तरह के अधिग्रहण के परिणामस्वरूप धर्म का पालन करने का अधिकार खत्म नहीं होना चाहिए, यदि उस स्थान का महत्व ऐसा हो। इस शर्त के अधीन, किसी भी धर्म के पूजा स्थल की तरह मस्जिद के लिए अधिग्रहण की शक्ति उपलब्ध है। पूजा करने का अधिकार हरेक स्थान पर नहीं है, जब तक कि प्रभावी ढंग से इसका आचरण किया जा सकता है, एवं किसी विशेष स्थान पर पूजा करने का अधिकार स्वयं उस अधिकार का अभिन्न अंग न हो।"

(प्रभाव वर्धित)

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ राजीव धवन ने तर्क दिया है कि उपरोक्त प्रस्तरप में व्यक्त उक्ति कि , "मस्जिद इस्लाम के धर्म के आचरण का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुसलमानों द्वारा नमाज (प्रार्थना) कहीं भी की जा सकती है, खुले में भी।" विधि के विपरीत है और न्यायालय यह बयान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

देने के लिए आस्था की जांच करने के लिए बाध्य था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विशेष महत्व और तुलनात्मक महत्व की अवधारणाओं पर उक्तियां आधारहीन हैं। इसके अलावा, उनका तर्क है कि एक धर्म के अनिवार्य हिस्से का गठन करने वाले तत्व मुख्य रूप से उसी धर्म के सिद्धांत के संदर्भ में निर्धारित किये जाने चाहिए, जैसा कि इस न्यायालय के **सात–न्यायाधीशों की संविधान पीठ**, द्वारा **आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास** बनाम **श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामीयार ऑफ श्री शिरूर मठ** 1954 एससीआर 1005 (संक्षेप में **'शिरूर मठ'**) के मामले में किया गया है। यह भी कहा गया है कि **शिरूर मठ** के मामले में "अनिवार्यता" की व्यापक कसौटी को बाद के पांच और दो न्यायाधीशों के फैसलों से नहीं काटा जा सकता है। "अभिन्न" "आवश्यक" के साथ विनिमेय है। बाद वाले को पूर्व वाले के उपयोग से बेकार नहीं किया जा सकता है। यह कई गलत समझ के मूल में हो सकता है और इसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, जब इस्माइल फारुकी के मामले में "विशेष महत्व" की बात करते होती है, तो यह ठीक अभिन्नता की त्रुटि है। उन्होंने यह भी कहा कि इस्माइल फारूकी के मामले में प्रस्तर 78 में प्रयुक्त कसौटी आवश्यक और अभिन्न था, भले ही "या" शब्द का प्रयोग किया गया था। न्यायालय आस्था के तत्वों की जांच करने में विफल रहा और अपने सहज ज्ञान से असिद्ध टिप्पणियों किया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में इस न्यायालय के कुछ निर्णयों का भी अवलंब लिया है। **इस्माइल फारूकी** के मामले में इस विषय पर कोई परीक्षण न होने के कारण मामला बड़ी बेंच को भेजा जाना चाहिए। डॉ. धवन आगे कहते हैं कि आक्षेपित निर्णय **इस्माइल फारूकी** के मामले में की गयी आपत्तिजनक

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

टिप्पणियों से प्रभावित था। उन्होंने इस संबंध में हमें आक्षेपित निर्णय के विभिन्न प्रस्तरों से अवगत कराया। डॉ धवन ने अपने इस तर्क के समर्थन में आक्षेपित निर्णय में की गई विभिन्न टिप्पणियों का भी उल्लेख किया है कि **इस्माइल फारूकी** के वाद ने उक्त निर्णय को प्रभावित किया है।

8. दूसरी ओर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री परासरन, ने तर्क दिया है कि **इस्माइल फारूकी** के वाद में आपत्तिजनक टिप्पणियां कि मस्जिद इस्लाम के आचरण का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है, को वाद संपत्ति के 1993 के अधिनियम के तहत अधिग्रहण की वैधता के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। उनका कहना है कि इस न्यायालय ने यह नहीं कहा है कि मुसलमानों द्वारा नमाज़ पढ़ना एक अनिवार्य धार्मिक प्रथा नहीं है। इसने केवल यह कहा कि विद्यमान प्रत्येक मस्जिद में नमाज अदा करने का अधिकार आवश्यक धार्मिक आचरण नहीं है। लेकिन यदि किसी धर्म के पूजा स्थल का उस धर्म के लिए एक विशेष महत्व है, जो उसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए पर्याप्त है, तो वह एक अलग पायदान पर खड़ा होगा और उससे अलग और अधिक सम्मानजनक व्यवहार करना होगा।
यह तर्क दिया जाता है कि अनुच्छेद 25 के तहत मुस्लिम समुदाय का नमाज अदा करने का मौलिक अधिकार वर्तमान मामले में प्रभावित नहीं होगा क्योंकि बाबरी मस्जिद उस धर्म के लिए विशेष महत्व वाली मस्जिद नहीं थी।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

9. हमने वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री सी.एस. वैद्यनाथन, राजू रामचंद्रन, एस.के. जैन, तथा अपर सोलिसिटर जनरल श्री तुषार मेहता एवं विद्वान अधिवक्ता श्री पी.एन. मिश्रा को भी सुना।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं ने मस्जिद के विषय में इस्लामी धार्मिक ग्रंथ, पवित्र कुरान के प्रासंगिक अंश और पवित्र कुरान पर प्रबुद्ध प्रवचनों को अपने संबंधित तर्कों के समर्थन में प्रस्तुत किया है कि क्या मस्जिद इस्लाम धर्म के आचरण का एक अनिवार्य हिस्सा है या नहीं।

11. **इस्माइल फारुकी** के वाद से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं का मुख्य तर्क यह था कि मुस्लिम कानून में विशेष दर्जा के कारण मस्जिद का अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है। संविधान पीठ ने इस पहलू पर फैसले के प्रस्तर 65 से एक अलग शीर्षक "मस्जिद – अधिग्रहण से प्रतिरक्षा" के तहत चर्चा की है। विशेष रूप से प्रस्तर 74 में, न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण के विषयगत, धार्मिक पूजा स्थलों, जैसे मस्जिदों, चर्चों, मंदिरों, आदि को अधिग्रहण की राज्य की संप्रभु शक्ति के तहत अधिग्रहीत किया जा सकता है। इस तरह का अधिग्रहण स्वयं संविधान के अनुच्छेद 25 या अनुच्छेद 26 का उल्लंघन नहीं करता है। इसके अलावा, प्रस्तर 77 में न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 25 में संविधान के अनुच्छेद 26 के विपरीत संपत्ति का कोई संदर्भ नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्रत्याभूत धर्म को मानने, आचरण और प्रचार करने के अधिकार में संपत्ति हासिल करने या स्वत्व या रखने का अधिकार शामिल

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

नहीं है। इसी तरह, यह अधिकार प्रत्येक पूजा स्थल पर पूजा के अधिकार तक विस्तृत नहीं है, जिससे किसी स्थान पर पूजा करने में कोई बाधा संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत प्रत्याभूत धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन कर हो जाए। इसके अतिरिक्त, प्रस्तर 78 में, यह नोट किया गया कि किसी भी धर्म के पूजा स्थलों का उस धर्म के लिए विशेष महत्व होता है। इसे धर्म का एक अनिवार्य या अभिन्न अंग बनाने के लिए, एक अलग स्तर पर होना होता है और उनसे अलग और अधिक सम्मानजनक व्यवहार किया जाना चाहिए। प्रस्तर 82 में स्थिति का संक्षेपण करते हुए, न्यायालय ने कहा कि मस्जिद इस्लाम धर्म के आचरण का एक अनिवार्य हिस्सा नहीं है और मुसलमानों द्वारा नमाज़ कहीं भी यहां तक कि खुले में भी पढ़ी जा सकती है।

12. जिन बातों से किसी धर्म का आवश्यक भाग गठित होता है वह प्राथमिक तौर पर स्वयं उस धर्म के सिद्धान्तों मान्यताओं और विश्वासों के संदर्भ में अभिनिश्चित किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त को सिद्धान्त **शिरूर मठ** के पृष्ठ संख्या 1025 में प्रतिपादित किया गया है:–

> "...विद्वान अटार्नी जनरल उस अनुच्छेद के उपखण्ड़ 2(ए) पर जोर देते हैं और उनका तर्क यह है कि वे सभी गतिविधियां जो धर्म से जुड़ी हो सकती है किन्तु वास्तव में इसका भाग नहीं हैं वे राज्य के प्रति उत्तरदायी हैं।
>
> हमरा मानना है कि ऐसी व्यापक शर्तों का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए। **प्रथमतः जो धर्म का आवश्यक भाग बनती है उसे प्राथमिक तौर पर उस धर्म के सिद्धान्तों मान्यताओं और विश्वासों के संदर्भ में अभिनिश्चित करना होगा। यदि हिन्दू धर्म का कोई भी पंथ यह विहित करता है कि भगवान को भोग दिन में किसी विशेष समय पर**

लगाया जाना चाहिए, और प्रत्येक वर्ष मनाये जाने वाले सामारोहों को विशेष तरीके से प्रत्येक वर्ष निश्चित तरीकों से किया जाना चाहिए अथवा पाठ किया जाना चाहिए और पवित्र आग की आरती ली जानी चाहिए इस सभी को धर्म का भाग माना जाएगा और केवल यह तथ्य कि धन खर्च होता है अथवा साधुओं और नौकरों की नियुक्ति अथवा बाजार की वस्तुओं का प्रयोग इनको धर्मनिर्पेक्ष क्रियाकलाप नहीं बनाएंगी, यह सभी धार्मिक प्रथाएँ हैं और इन्हें अनुच्छेद 26(ब) के तहत धर्म विषयक माना जाना चाहिए। अनुच्छेद 25 (2) (ए) कहता है कि राज्य धार्मिक गतिविधियों को नियंत्रित नहीं कर सकती है चूंकि यह संविधान द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता है, राज्य केवल उन परिस्थितियों में इन्हें नियंत्रित कर सकती है जब यह लोक व्यवस्था, स्वास्थ्य और सुरक्षा के प्रति खतरा उत्पन्न कर दें, किन्तु राज्य आर्थिक, राजनैतिक और वाणिज्यिक गतिविधियों पर नियंत्रण आरोपित कर सकती है भले ही वे धार्मिक प्रथाओं से जुड़ी हों।"

(प्रभाव वर्धित)

13. आगे पृष्ठ 1028–1029 में निम्नलिखित कथन किया गया है:

"**इसलिए अनुच्छेद 26(बी) के तहत किसी भी धार्मिक संस्था अथवा ईकाई को यह तय करने की पूरी स्वतंत्रता है कि वे कौन सी प्रथाएं रीतिवरिवाज है जो उनके धार्मिक मत के अनुसार आवश्यक हैं और किसी भी बाहरी प्राधिकारी को इन मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है।** वास्तव में इन धार्मिक संस्कारों में खर्च की मात्रा धार्मिक अधिपत्य से जुड़ी सम्पत्ति के प्रशासन का मामला होगा और धर्मनिरपेक्ष प्राधिकारियों सक्षम विधायन द्वारा बनाये गये विधि के अनुरूप इसे नियंत्रित कर सकते हैं क्योंकि यह रीति रिवाजों पर फिजूल खर्च कर किसी संस्था और इसके धर्मदाय को नष्ट करने का किसी धर्म का व्यादेश नहीं हो सकता है।""

(प्रभाव वर्धित)

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

14. **रतीलाल प्रेमचन्द्र गांधी बनाम बम्मभी राज्य एवं अन्य 1954** एस.सी.आर.**1055**, के मामले में इस न्यायलय की संवैधानिक पीठ ने निम्नानुसार धारित किया:

> "यह ध्यान दिया जाए कि धर्म आस्तिक होना नहीं है और वास्तव में भारत में बौद्ध और जैन जैसे धर्म है जो ईश्वर की सत्ता अथवा परम सत्ता पर विश्वास नहीं करते हैं। **धर्म विश्वास और सिद्धान्तों पर आधारित होता है और इसको वे लोग मान्यता प्रदान करते है जो यह दावा करते हैं कि धर्म उनकी आध्यात्मिक उन्नति के सहायक है। लेकिन यह कहना सही नहीं होगा जैसा कि बाम्बे उच्च न्यायालय के एक विद्वान न्यायमूर्ति के विचारों से दर्शित होता है धर्म कुछ भी नहीं है बल्कि यह एक आस्था और विश्वास है।**
>
> xxx xxx
>
> xxx
>
> .....**किसी भी बाहरी प्राधिकारी को यह कहने का हक नहीं है कि ये सब धर्म का आवश्यक भाग नहीं है और राज्य के धर्म निरपेक्ष प्राधिकारी को यह अधिकार नहीं है कि वह ट्रस्ट सम्पत्ति के प्रशासन की आड़ में उनपर किसी भी तरह से रोक लगायें अथवा प्रतिषेधित करें।**"
>
> (प्रभाव वर्धित)

15. **श्री वेंकटारमन्ना देवारू एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य 1958** एस.सी.आर. **895** के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के पास 1949 में यथासंशोधित मद्रास टेम्पल एन्ट्री अथॉरिसेशन एक्ट, 1947 के संदर्भ में भारत के संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 पर विचार करने का अवसर था। इस न्यायालय ने श्रीरूर मठ का संदर्भ देकर निम्नानुसार धारित किया:

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> "16 (3)...अब, धार्मिक मामलों का सटीक अभिधान को इस न्यायायल ने कमिश्नर , हिन्दू धर्मदाय, मद्रास बनाम श्री श्रीरूर मठ के लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामियार 1954 एस.सी.आर. 2015 के मामले में विचारित कर उस मामले में यह धारित किया कि इसने न केवल धर्म से जुड़े हुए सिद्धान्त एवं मान्यता बल्कि इसकी प्रथा भी समाहित थी, अथवा इसको हिन्दू धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों के शर्तों में लाना न केवल इसके गान को बल्कि इसके भक्ति एवं कर्मकाण्ड़ को भी..."

16. **दुर्गेश कमेटी, अजमेर एवं अन्य बनाम सैय्यद हुसैन अली एवं अन्य (1962) 1** एस.सी.आर. **383** के मामले में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने विवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार कर इस प्रकार धारित किया हैः–

> "**इस प्रकार उस पवित्र स्थान, इसके विकास और धर्मदाय तथा इसके प्रबंधन से जुड़ी कहानी की विस्तृत समीक्षा करने के उपरान्त यह जांच करना उचित होगा कि इसके सिद्धान्तों और मान्यताओं की प्रकृति क्या है जिसका कुतर्क किया जाता है।** ऐसी जांच हमे यह तय करने में मदद करेगी क्या चिश्ती सम्प्रदाय को अनुच्छेद 26 के तहत धार्मिक सत्ता है अथवा उसका एक भाग है।
>
> (प्रभाव वर्धित)

17. **सरदार सैय्यदना ताहिर सैफ्फुद्दीन साहेब बनाम बाम्बे राज्य** 1962 सप्लीमेंट्री (2) एस.सी.आर. 496 के मामले में यह न्यायालय उस विधि की वैधता पर विचार कर रहा था जो अपने सदस्यों को समाज से बहिष्कृत करने वाले धार्मिक सत्ता के अधिकार के साथ हस्तक्षेप करती थी। इस संदर्भ में अनुच्छेद 25 और 26 पर विचार किया गया। इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ कई निर्णयों का संदर्भ देकर इस प्रकार धारित किया हैः–

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अंश पर इस न्यायालय ने कमिश्नर हिन्दू धर्मदाय बनाम श्री श्रीरूर मठ के श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामीयार;महन्त जगन्नाथ रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य;श्री वेंकटरमन्ना देवारा बनाम मैसूर राज्य; दुर्गेश कमेटी; अजमेर बनाम सैय्यद हुसैन अली और अन्य कई मामलों में विचारित किया गया और इन प्रावधानों से स्थापित मुख्य सिद्धान्तों को इन निर्णयों द्वारा विवाद से परे रखा गया है। प्रथम,इस अनुच्छेद का संरक्षण धार्मिक सिद्धान्त और मान्यता तक सीमित नहीं है बल्कि यह धर्म के संबंध में किये गये कार्यों तक विस्तृत है इसलिए इसमें कर्मकाण्ड़ों, अनुपालन, अनुष्ठानों और पूजा पद्धति के लिए गारन्टी समाहित है जो धर्म के अभिन्न भाग है। **द्वितीय, जो धर्म और धार्मिक कर्मकाण्ड़ आवश्यक अंग है न्यायालय को उन्हें उस धर्म विशेष के संदर्भ में निर्णीत करना होगा और इसमें वे कर्मकाण्ड़ शामिल हैं जिनकों उस समुदाय अपने धर्म के अंग के रूप में मान्यता प्रदान किया है।"**

(प्रभाव वर्धित)

18. **तिलकायत श्री गोविन्द लाल जी महाराज बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य** (1964) 1 एस. सी.आर. 561 के मामले में इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ नाथवारा टेम्पल एक्ट, 1949 (अधिनियम संख्याक 8 वर्ष 1949) की वैधता पर विचार कर थी। इस मामले में मुख्य रूप से नाथवारा अध्यादेश, 1949 (संख्यांक 2 वर्ष 1949) को चुनौती दी गयी जो 6 फरवरी 1949 जारी हुआ। इसके बाद इस अधिनियम द्वारा इस अध्यादेश को निरसित कर दिया गया और याचिकाकर्ता को अपनी याचिका में संशोधन करने की अनुमति प्रदान की गयी। यह तर्क दिया गया कि यदि इस मंदिर को सार्वजनिक मंदिर बना दिया जाए तब यह अधिनियम अवैध हो जाएगा क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

उल्लंघन करता है। न्यायायल ने विरोधी तर्कों पर विचार कर न्यायालय ने इस प्रकार धारित किया:–

> "इस प्रश्न का निस्तारण करने में कि क्या कोई धार्मिक कर्मकाण्ड़ उस धर्म का अभिन्न अंग है कि नहीं तब इसकी जांच की जानी चाहिए कि उस धर्म को मानने लोग इसको ऐसा मानते है कि नहीं। यह सूत्र कुछ मामलों में प्रयोग करने पर समस्या पैदा कर देगा। खानपान और परिधान संबंधी मामले को ही ले लीजिए। यदि किसी मामले में उस समुदाय का एक वर्ग दावा करता है कि कुछ धार्मिक अनुष्ठान करते समय सफेद कपड़ा पहनना उस धर्म का अभिन्न अंग है जबकि अन्य वर्ग तर्क देता है कि पीला वस्त्र पहनना चाहिए, सफेद वस्त्र उस धर्म का अभिन्न अंग नहीं है, तब न्यायालय इस प्रश्न का निस्तारण कैसे करे? ऐसा ही खानपान के संबंध में विवाद खड़ा हो सकता है। जिन मामलों में विवादास्पद साक्ष्य प्रस्तुत किये जाते हैं वहां पर न्यायालय विवाद को सुलझाने के लिए आँख बंद करके उस सूत्र का प्रयोग नहीं कर पाएगी तब वह समुदाय यह तय करता है कि कौन सा कर्मकाण्ड़ उस धर्म विशेष का अभिन्न अंग है क्योंकि समुदाय की आवाज न्यायलय की आवाज को दबा सकती है और इसलिए यह सूत्र गिर जाएगा। **इस प्रश्न को सदैव न्यायालय को तय करना चाहिए ऐसा करने में न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या प्रश्नगत प्रथा धार्मिक प्रकृति का है अथवा नहीं और यदि ऐसा है तब क्या इसे उस धर्म का अभिन्न अथवा आवश्यक अंग माना जा सकता है, और ऐसे विषय पर न्यायालय का निष्कर्ष सदैव न्यायालय के समक्ष उस समुदाय की चेतना और उस धर्म की मान्यता के संबंध में रखे गये साक्ष्य पर निर्भर करेगा।** ऐसा इस सम्भावित जटिलता के प्रकाश में है जो कुछ मामलों में उत्पन्न हो सकता है जिसका इस न्यायालय ने दुर्गेश कमेटी अजमेर बनाम सैय्यद हुसैन (1962) 1 एस.सी.आर. 383 पृष्ठ संख्या 411 में सावधान हो गया और अवलोकन किया कि प्रश्नगत कर्मकाण्ड़ को उस धर्म विशेष का अभिन्न अंग माना जाना जाना चाहिए सकता है जब उक्त धर्म उस प्रथा को अभिन्न एवं आवश्यक अंग माने अन्यथा पूर्णतया धर्मनिर्पेक्ष प्रथा ,जो उस धर्म का अभिन्न एवं आवश्यक अंग नहीं है, जिनकी धर्म की तरह स्वीकार कर ली जाती है, तब वह भी दावा

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

करेंगी कि कि उन्हें भी अनुच्छेद 25(1) के अर्थों में धार्मिक प्रथा माना चाए।

(प्रभाव वर्धित)

19. उक्त निर्णयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्या कोई प्रथा किसी धर्म का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है कि नहीं एक ऐसा प्रश्न है जिसका निर्धारण उस धर्म के सिद्धान्त, मान्यताएं एवं विश्वास पर विचार करके किया जाएगा। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अनिवार्य प्रथा का अंग होने वाले प्रथाओं की विस्तृत परीक्षण की आवश्यकता होती है जैसा पूर्वोक्त निर्णयों से दर्शित किया गया है।

20. इस बिन्दु पर काशी विश्वनाथ मंदिर, वाराणसी के **श्री आदि विश्वेश्वर एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य (1997) 4** एस.सी.सी. **606** प्रस्तर **28**, के मामले में लिये गये अवलोकनों का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैः–

"**अनिश्चितता का सिद्धान्त अपने आप में निश्चायक तत्व नहीं है। यह निर्णीत करने में कि क्या धर्म अथवा धार्मिक प्रथाओं अथवा विश्वास की कोई विशेष बात उस धर्म का अभिन्न अंग है इस परिस्थिति पर विचार किया जाए।** यह तय किया जाना चाहिए कि क्या वह समुदाय उन प्रथाओं अथवा मामलों को **अभिन्न मानता है**। भले ही यह निश्चायक न हो फिर भी यह एक ऐसा तथ्य है जिस पर ध्यान आकर्षित किया जाए। प्रश्नगत प्रथा धार्मिक प्रकृति की है और क्या इसे उस धर्म का अभिन्न और आनिवार्य अंग माना जा सकता है और यदि न्यायाल अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालता है कि यह उस धर्म का

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अभिन्न एवं अनिवार्य अंग है तब संविधान का अनुच्छेद 25 उसको संरक्षण प्रदान करता है।

(प्रभाव वर्धित)

21. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है पक्षकारों ने अपने–अपने तर्कों के समर्थन में इस्लाम पर आधारित विभिन्न पुस्तकों को प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत मामले में उस धर्म के सिद्धान्त, मान्यताओं और विश्वास की जांच किये बिना प्रश्नगत निष्कर्ष निकालने में न्यायालय द्वारा लिये गये दृष्टिकोण पर हम चिंतित हैं। **इस्माइल फारूखी** ने बिना विस्तृत जांच किये प्रस्तर 82 में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला हैः "इस्लाम धर्म में मस्जिद प्रथा का अभिन्न अंग नहीं है और मुस्लिम नमाज (प्रार्थना) कहीं भी पढ़ सकते हैं, यहां तक खुले में भी।"

22. अब प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित निर्णय **इस्माइल फारूखी** द्वारा निकाले गये प्रश्नगत निष्कर्षों से प्रभावित हुआ है कि नहीं। आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से दर्शित होता है कि पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत विद्वान बहस के दौरान अधिवक्ता इस्माइल फारूकी के अनेक प्रस्तरों को बार–बार उदृत किया और इस्माइल फारूखी में जो प्रश्नगत निष्कर्ष निकाले गये हैं उसका भी मजबूत अवलम्ब लिया है।

23. न्यायमूर्ति डी.वी. शर्मा द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय के कुछ प्रस्तरों को पृष्ठ संख्या 3038–3039, 3061, 3392, 3429, 3439 पर उल्लेख किया गया जिसमें **इस्माइल फारूखी** उदृत किये गये है और जिसे निम्नलिखित रूप में पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"विवाद्य संख्या 19 (डी)– जब यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया कि इसमें मीनार नहीं थे तब क्या उस विवादित भवन को इस्लामिक विधि के तहत मस्जिद नहीं माना जा सकता था?

निष्कर्षः

बचाव पक्षकार की तरफ से यह दलील दी गयी कि इस्लामिक विधि के तहत विवादित भवन मस्जिद नहीं थी। इस पर विवाद नहीं है कि दिनांक 06.12.1992 को उस विवादित ढ़ांचे को गिरा दिया गया है। डॉ. इस्माइल फारूखी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 1994 (6) एस.सी.सी. 960 के अनुसार शीर्ष न्यायलय ने प्रस्तर 70 पर यह धारित किया कि मस्जिद की पवित्र प्रकृति को नष्ट किया जा सकता है। इस्लामिक मान्यता के अनुसार अजान देने के लिए मीनार जरूरी होता है। जहां पर अजान नहीं होती है वह प्रार्थना का समाजिक स्थल नहीं हो सकता है। इसलिए विवादित स्थल को मस्जिद नहीं माना जा सकता है।

इस्लामिक मान्यता के अनुसार जहां पर वजू और तीन ओर से गलियारे द्वारा घिरा हुआ स्थान न हो वहां मस्जिद नहीं हो सकती है। इस प्रकार उक्त चर्चाओं के दृष्टिगत इसकी मजबूत संभावना है कि कि बिना मीनार के कोई मस्जिद नहीं बनायी जा सकती हो। विवाद्य संख्या 19 (डी) वादीगणों के विरूद्ध और बचावपक्षों के पक्ष में तदनुरूप निर्णीत हो जाता है।

[इस निर्णय की मुद्रित संस्करण
पृष्ठ संख्या 3038–3039 दिया गया है।]

"बचाव पक्षकार आगे दावा करते हैं कि 1858 से वाद संपत्ति पूर्णयता मुस्लिमों के कब्जें में नहीं थी। आगे यह कथन किया गया कि १९५८ और उसके बाद हिन्दुओं के कब्जे के दृष्टिगत जो कि प्रदर्श 15, 16, 18, 20 27, 31 से स्पष्ट है आंगन के बाहरी भाग पर पूरी तरह से हिन्दुओं का कब्जा था और भीतरी आँगन में पूरी तरह से मुस्लिमों का कब्जा नहीं था बल्कि 1934 तक दोनों का संयुक्त कब्जा था। 1934 में मुस्लिमों को आँगन के भीतरी भाग से हटा दिया गया और वादीगणों ने स्वीकार किया है कि मुस्लिमों को 22/23 दिसम्बर, 1934 को भीतरी आँगन से हटाया गया। इस प्रकार मुस्लिम मत के अनुसार इस सम्पत्ति

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

को मस्जिद माना जाए। इस संदर्भ में इस विवाद को पहले ही प्रिवी कौंसिल द्वारा मस्जिद शाहिब गंज बनाम शिरोमणी गुरूद्वारा कमेटी, अमृतसर ए.आई.आर. 1940 पी.सी. 116 में पारित निर्णय में सुलझा दिया था। उक्त दृष्टिकोण को डॉ. एम. इस्माइल फारूखी बनाम भारत संघ, 1994 (6) एस.सी.सी. 360 प्रस्तर 70 में पारित निर्णय में अनुमोदित कर दिया गया जो महत्वपूर्ण है और इस प्रकार है..."

[पृष्ठ संख्या 3061 इस निर्णय का मुद्रित संस्करण]

"श्री जैन ने डॉ. एम. इस्माइल फारूखी बनाम भारत संघ, 1994 (6) एस.सी.सी. 360 प्रस्तर 78 का अवलम्ब लिया जो इस प्रकार है जो निम्न रूप में प्रस्तुत किया गया हैः

"जबकि प्रार्थना अथवा पूजा करना धार्मिक प्रथा हो तब इसका उन जगहों पर प्रार्थना किया जाना जहां यह की जा सकती है, ऐसे धार्मिक प्रथा का आवश्यक एवं अभिन्न अंग नहीं होगी जब तक कि उस जगह का उस धर्म के लिए विशेष स्थान न हो जिससे वह उसके लिए आवश्यक एवं अभिन्न अंग बन जाए। किसी भी धर्म के पूजा स्थल जो उस धर्म में विशेष महत्व रखती है उन्हें उस धर्म का आवश्यक एवं अभिन्न अंग बनाने के लिए अलग पायदान पर रखना होगा और अलग से और अधिक महत्व का मानना होगा।"

अधिवक्ता श्री एच. एस. जैन ने आगे कथन किया कि चूंकि भगवान राम के जन्म स्थान को पूजा स्थल माना गया जो स्मर्णातीत काल से धार्मिक क्रिया कलाप का अभिन्न अंग था। यह देवता हैं और अलग पायदान पर खड़े होते हैं और इनके साथ सम्मानजनक व्यवहार करना होगा। श्री जैन ने आगे तर्क दिया कि संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत यथा उपबंधित संवैधानिक आदेश के दृष्टिगत चूंकि इस स्थान की सदैव से पूजा होती आ रही है इसलिए न्यायालय ने इसको पूजा स्थल माना है क्योंकि धार्मिक पुस्तक और आस्था के आधार पर हिन्दू इसे जन्म स्थान मानते हैं क्योंकि 12 वीं केसे पूर्व के साक्ष्य बताते हैं कि इस स्थान पर प्राचीन कालन मंदिर बनाये गये इसलिए श्री जैन के अनुसार शताब्दी में मंदिर का निर्माण किय गया था। रामजन्म भूमि के स्थल को गठित करने के लिए शक्तिशाली साक्ष्य मौजूद है और न्यायालय को इसे मानना पड़ेगा। इस प्रकार यह वाद जो हिन्दू की पूजा में बाधा पहुंचाता है जिसे खारिज कर दिया जाना चाहिए और इस आधार पर विनिर्दिष्ट

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अनुतोष अधिनियम, 1877 की धारा 42 ज अब विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम,1963 की धारा 34 के तहत कोई अनुतोष नहीं प्रदान किया जा सकता है।"

[इस निर्णय की मुद्रित संस्करण पृष्ठ संख्या 3392]

"भगवान राम ने अयोध्या में अवतार लिया था जो जन्म स्थान के रूप में हिन्दू आस्था एवं विश्वास का मूल भाग है जो हजारों सालों से मौजूद है और उसकी पूजा की जा रही है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 25 मूल अधिकार के तौर पर इसको संरक्षण प्रदान करता है और इस अधिकार को समाप्त करने संबंधी न्यायालय से किसी अनुतोष की मांग नहीं की जा सकती है।

यह तथ्य कि राम जन्म भूमि हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है यहां पर पूजा करना हिन्दू धर्म का मौलिक अधिकार है और इस अधिकार को वाद दायर कर प्रवर्तित कराया जा सकता है जो माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित कई निर्णयों से स्पष्ट हो सकता है।"

[इस निर्णय की मुद्रित संस्करण पृष्ठ संख्या 3429]

"जन्म स्थान पर रामलला की पूजा संबंधी हिन्दुओं के धार्मिक अधिकार संविधान के प्रवर्तन के पूर्व ही मजबूत हो गये और इसे संरक्षित किये जाने की जरूरत है।

यह सर्वविदित है कि भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950 को अँगीकृत हुआ। इससे पूर्व हिन्दुओं के पूजा संबंधी अधिकार सम्मक रूप से न्यायिक आदेशों द्वारा मान्यता प्राप्त थे।

वास्तव में, भारत सरकार के शासकीय दस्तावेद के प्रस्तर 1.2 में जो तर्क इस्माइल फारूखी मामले में दिये गये हैं उसको सर्वोच्च अदालत ने उक्त निर्णय के प्रस्तर 9 पृष्ठ 380 में अभिलिखित किया है। जो इस प्रकार हैः "इस सिविल वादों में अन्तरिम आदेश पक्षकारों को मूर्ति को हटाने और पूजा में बाधा डालने से रोकता है। इसलिए दिसम्बर 1949 से 06.12.1992 तक इस ढ़ांचे को मस्जिद के तौर पर प्रयोग नहीं किया गया था।"

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

यह उल्लिखित किया जाना अति महत्वपूर्ण है कि 1949 के बाद पहली बार मुस्लिमों ने 18 दिसम्बर, 1961 में अपने अधिकारों को अपोषणीय बताया।"

[इस निर्णय की मुद्रित संस्करण पृष्ठ संख्या 3439]

24. इसी प्रकार सुधीर अग्रवाल द्वारा पारित निर्णय में इस्माइल फारूखी को इस निर्णय के मुद्रित संस्करण में पृष्ठ संख्या 2015 उदृत किया गया जो इस प्रकार हैः

"3501. श्री प्रसाद ने प्रार्थना किया कि हिन्दुओं का यह विश्वास कि भागवान विष्णु ने भगवान राम के रूप में अयोध्या में अवतार लिया है, हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है और इस मान्यता एवं विश्वास को खारिज नहीं किया जा सकता है और उन्होने *पुलिस कमिश्नर एवं अन्य बनाम आचार्य जगदीश्वरानंद एवं अन्य*, (2004) 12 एस.सी.सी. 770 (प्रस्तर 9) एवं *श्री आदि विशेश्वर, काशी विश्वनाथ मंदिर (उपरोक्त)* का संदर्भ दिया। संविधान का अनुच्छेद 25 के तहत किन चीजों से लोक व्यवस्था का गठन होता है इस बात को दर्शित करने के लिए उन्होंने *दलबीर सिंह एवं बनाम पंजाब राज्य* ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1106 (प्रस्तर 8) का अवलम्ब लिया।

3502. आगे उन्होंने कथन किया कि एमीनेंट डोमेन का सिद्धान्त लगाकर उस विवादित स्थल, जो हिन्दुओं के लिए विशेष महत्व रखता है, में कोई व्यक्ति अथवा राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, यहां तक अधिग्रहण के प्रावधान भी उस पर लागू नहीं होते हैं। यद्यपि मस्जिद के संबंध में शीर्ष न्यायालय ने पहले ही यह अभिनिर्णीत कर अवलोकन किया कि विवादित भवन को मुस्लिमों के लिए विशेष महत्व का नहीं दर्शित किया जा सकता है। उन्होंने डी.एम. इस्माइल फारूखी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य (1994) 6 एस.सी.सी. 360 (प्रस्तर 65, 72, 75, 96) , आचार्य महर्षि नरेंद्र प्रसाद जी आनन्द प्रसाद जी महाराज एवं अन्य गुजरात राज्य एवं अन्य, (1975) 1 एस.सी.सी. 11 का संदर्भ दिया है। वाद–4 में वादी ने जिस अनुतोष की मांग की है

उद्घोषणा

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

वह विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के तहत बाधित है और उन्होंने कार्यकारी परिषद, वैश डिग्री कॉलेज, शामली एवं अन्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य (1976) 2 एस.सी.सी. 58 प्रस्तर 20, 27) तथा अमेरिकन एक्सप्रेस बैंक लिमिटेड़ बनाम कलकत्ता स्टील कम्पनी एवं अन्य (1993) 2 एस.सी.सी. 199 (प्रस्तर 22) का अवलम्ब लिया गया है।"

25. इस्माइल फारुकी पर विचार करने के बाद, न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने प्रस्तर 2722 से 2725 में निम्नानुसार राय दी है:

"2722 चौथा दृष्टिकोण: यह एक देवता है जिसने अपने अधिकारों के प्रवर्तन के लिए वर्तमान वाद दायर किया है। जैसा कि उन्होंने सामान्य रूप से अनुरोध किया है, जहां तक मामले में धार्मिक बंदोबस्ती में हिंदुओं का संबंध है, उनके लिए विशिष्ट और अद्वितीय महत्व में एक स्थान है और इस तरह का कोई अन्य स्थान नहीं हो सकता है। यदि इस स्थान को संविधियों के प्रावधान लागू होने के द्वारा लोप/विलुप्त होने की अनुमति दी जाती है, तो परिसीमा हो सकती है या अन्यथा, धर्म का पालन करने के मौलिक अधिकार से हिंदुओं को स्थायी रूप से वंचित कर दिया जाएगा क्योंकि धर्म का प्रतिदाय या स्थान आने वाले सभी समय के लिए विलुप्त हो जाएगा और इस तरह का स्थान कहीं और नहीं बनाया जा सकता है।

2723. इस्माइल फारूकी (उपरोक्त) में, सुप्रीम कोर्ट ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत भूमि अधिग्रहण की वैधता की याचिका पर विचार किया है कि एक बार मस्जिद का वक्फ बनने के बाद, संपत्ति सर्वशक्तिमान में निहित हो जाती है और यह हमेशा वक्फ रहती है इसलिए ऐसी संपत्ति का अर्जन नहीं किया जा सकता है। इस तर्क को खारिज करते हुए शीर्ष न्यायालय ने कहा कि सामान्य धार्मिक उद्देश्यों के संबंध में एक तर्क को धर्म का अभिन्न अंग नहीं कहा जा सकता है जो उपासकों को अन्यत्र पूजा के अधिकार से वंचित करेगा और इसलिए ऐसी संपत्ति राज्य द्वारा अर्जित की जा सकती है। हालाँकि, यह स्थिति दूसरे प्रकार की होगी यदि धार्मिक संपत्ति विशेष महत्व की होती और

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

इस तरह की कई संपत्तियों में से एक नहीं हो सकती। इस संबंध में प्रासंगिक अवलोकन को पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी होगा:

> "78. उच्च न्यायालय द्वारा पारित पश्चात संदर्भित अनेक निर्णयों से स्पष्ट होता है कि अनुच्चेद 26 और 26 के अधीन रहते हुए मस्जीद, मंदिर, चर्च इत्यादि पूजा स्थल को राज्य अपने संप्रभु शक्ति के तहत अधिग्रहण कर सकती है। ऐसा अधिग्रहण संविधान के अनुच्चेद 26 और 26 को भंग नहीं करता है। उस स्थल का प्रबंधन से संबंधित निर्णय राज्य को यह शक्ति नहीं प्रदान करता कि वह उस संम्पत्ति अधिग्रहण करे।
> 82. जबकि पूजा करना अथवा पूजा एक धार्मिक प्रथा हो और ऐसी पूजा को उन सभी स्थानों पर करना जहां पर वह की जा सकती है तब तक ऐसी धार्मिक प्रथा का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग नहीं बनेगी जबतक वह स्थान उस धर्म के लिए विशेष महत्व का न हो जिससे कि वह उसका अनिवार्य एवं आवश्यक अंग न बन जाए। किसी भी धर्म का पूजा स्थल जो उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखता है उसे उस धर्म का अनिवार्य एवं अभिन्न अँग बनाने के लिए अलग पायदान पर होना चाहिए और उसे अलग एवं अधिक महत्व देना होगा।"

2724. उपरोक्त निष्कर्ष से यह प्रकट होता है कि यदि धर्मदाय ऐसी प्रकृति का हो जो विशेष महत्व का हो अथवा विशेष प्रकृति का हो जो हर जगह नहीं संभव हो, तब सरकार के द्वारा ऐसी संपत्ति के अधिग्रहण संविधान के अनुच्चेद 25 के तहत प्रदत्त पूजा के अधिकार से वंचित करने का प्रभाव रखेगी, ऐसा अधिग्रहण भले ही सांविधिक प्रावधानों के तहत हो तब भी ऐसा अधिग्रहण अनुज्ञेय नहीं हो सकता है। हमें इस दलील को सांविधिक सीमा तक ले जाने के पर्याप्त कारण प्राप्त होते हैं क्योंकि अधिग्रहण से संबंधित विधान विशेष महत्व के धार्मिक स्थान तक विस्तृत नहीं किया जा सकता है जो विशेष स्थान पर पूजा के अधिकार समाप्त करने का प्रभाव रखता हो अन्यथा यह प्रावधान

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

अधिकारातीत हो जाएगा और यही बात सांविधिक परिसीमा पर भी लागू होगी और ऐसा ही होगा, यह ध्यान दिया जाए कि इस सीमा तक परिसीमा संबंधी विधान का लाभ नहीं लिया जा सकेगा जहां पर देनदार की संपत्ति की प्रकृति ऐसी प्रकृति की है कि यह पूजा के अधिकार के समाप्ति का प्रभाव रखता जो विशिष्ट प्रकृति और विशेष महत्व का है। यह संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन करेगा।

2725. वास्तव में यह तर्क वाद 4 के वादियों को उपलब्ध हो सकता था और क्या उन्होंने इसे प्रकट भी किया है कि विवादित मस्जिद उनके लिए विशेष महत्व का स्थान था लेकिन इस बात को शीर्ष न्यायालय ने पहले ही विचारित किया था कि दूसरी मस्जिदों की तरह यह भी एक मस्जिद है और इस स्थान का अधिग्रहण कर लेने से मुस्लिमों के मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होगा। वे कहीं भी प्रार्थना कर सकते हैं जैसे वे यहां पर कर सकते थे। हिन्दुओं को एक पायदान पर नहीं रखा गया है। हिन्दुओं के अनुसार यह भगवान राम का जन्म स्थान है और ऐसा ही होगा, कोई अन्य स्थान नहीं है जहां पर स्मर्णातीत काल से ऐसा विश्वास कायम रहा हो। हिन्दुओं से इतर अन्य लोगों के कार्यों द्वारा एक बार इस स्थल की पहचान खो जाती है तो अनुच्छेद 25 के तहत प्रदत्त हिन्दुओं को मिला यह अधिकार समाप्त हो जाएगा। प्रस्तुत मामले में परिसीमा संबंधी प्रावधानों को आकर्षित न करने का यह एक अन्य कारण है।

26. इसी प्रकार डी.वी. शर्मा ने जो निष्कर्ष निकाला इस प्रकार हैः

"कोई संप्रभु सरकार अपने संप्रभु शक्ति का प्रयोग करके भी भूमि अथवा सम्पत्ति का अधिग्रहण नहीं कर सकती है जो लोगों की आस्था, उस पवित्र स्थल अथवा उस संस्थान की बुनियाद को समाप्त कर दे।

जो स्पष्ट रूप से अनुसरण करता है वह यह कि कोई भी संप्रभु सरकार हिन्दू धर्म के बुनियाद यनी रामजन्म भूमि को समाप्त नहीं कर सकती है। पूजा के अधिकार को इस मामले के अन्य पक्षकार को हस्तान्तरण करके केवल वाद के माध्यम से समाप्त होने दिया जाए, वादी ने सुनिश्चित किया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

कि रामजन्म स्थल पर पूजा का मौलिक अधिकार सदैव के लिए समाप्त हो गया है।

महत्वपूर्ण मामले

(बी) डॉ. इस्माइल फारूखी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य 1994 (6) एस.सी.सी. प्रस्तर 76 पृष्ठ 416 – आचार्य महर्षि नरेन्द्र प्रसाद जी आनन्द प्रसाद जी महाराज बनाम गुजरात राज्य 1976 2 एस.सी.आर. 317 पृष्ठ 327–328 (ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 2098 पृष्ठ 2103) में निम्नानुसार धारित किया:

> हालांकि फिर भी एक चीज स्पष्ट है कि अनुच्छेद 26 धार्मिक मामले के प्रबंधन हेतु स्थावर तथा जंगम सम्पत्ति को स्वामित्व रखने और अधिग्रहण करने के अधिकार को संरक्षण प्रदान करती है। हलांकि यह अधिकार राज्य के सम्पत्ति को अधिग्रहण करने के अधिकार को नहीं छीनती है। दूसरी तरफ राज्य द्वारा धार्मिक प्रभुत्व के अधीन सम्पत्ति के अधिग्रहण इस तरह से साबित किया जा सकता है कि स्थावर तथा जंगम सम्पत्ति को स्वामित्व रखने और अधिग्रहण करने के इसके अधिकार को समाप्त कर देगा अथवा किसी धार्मिक संस्थान बने रहने के लिए भी नकारात्मक होगा, इस प्रश्न का परीक्षण अन्य आलोक में करना होगा।

प्रस्तर 82. मस्जिद इस्लाम धर्म का अभिन्न अंग नहीं है और मुस्लिमों द्वारा नमाज कहीं भी पढ़ी जा सकती है यहां तक कि इसको खुले स्थान में भी पढ़ा जा सकता है। तदनुरूप इसका अधिग्रहण भारत के संविधान के प्रावधानों के तहत निषिद्ध नहीं है। स्पष्ट है किसी भी धार्मिक स्थान का अधिग्रहण केवल असमान्य अपरिहार्य परिस्थित बड़े राष्ट्रीय हित के लिए किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसे अधिग्रहण से उस धर्म के आचरण करने के अधिकार का विलोपन न हो जाए, यदि वह स्थान विशेष महत्व का हो।

नोट (अ) अयोध्या में राम जन्म भूमि जहां पर रामलला विराजमान हैं वह धार्मिक महत्व का स्थान है जैसा कि उक्त निर्णय में वर्णित किया गया

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

है। यदि संप्रभु प्राधिकारी विशेष अधिकारिता की शक्तियों के तहत इसको प्राप्त न कर पाये तब प्रतिवादियों, जो वाद संख्या 4 में प्राइवेट पक्षकार हैं, की दलील पर इसे मान लिया जाए तो इसका परिणाम यह होगा कि हिन्दू जिसे पवित्र स्थल मानते हैं उसकी मान्यता अस्वीकृत हो जाएगी।

नोट (ब) पृष्ठ 413 प्रस्तर 65 इस्माइल फारूखी– मस्जिद के विशेष महत्व के विषय में कोई भी तर्क नहीं दिया गया जिससे वह इस्लाम का अभिन्न अंग बन जाए। इसलिए बाबरी मस्जिद का इस्लाम के अभिन्न हिस्से संबंधी कोई प्रश्न नहीं उठता है और इस बात को वादपत्र में नहीं उठाया गया है अथवा इससे संबंधित कोई साक्ष्य दिया गया है अथवा कोई तर्क दिया गया हो कि उक्त मस्जिद का इस्लाम धर्म के आचरण करने में कोई महत्व रहा हो।

[इस निर्णय का मुद्रित संस्करण, पृष्ठ संख्या 3438–3439]

निष्कर्ष ..... शीर्ष न्यायालय ने 1993 में निर्णीत इस्माइल फारूखी (उपरोक्त) मामले में अयोध्या के कुछ भागों में अधिग्रहण के प्रावधानों की वैधता को बरकरार रखते हुए अभिनिर्णीत किया कि केंद्र सरकार किसी भी पूजा स्थल का अधिग्रहण कर सकती है। प्रस्तर 78 में शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्णित किया कि वह जन्म स्थान हिन्दुओं के लिए विशेष महत्व रखता है और इसे अन्यों से अलग माना जाना चाहिए जो इस प्रकार हैः

> "78. जबकि प्रार्थना और पूजा एक धार्मिक प्रथा हो तब इसे कहीं भी किये जाने से वह उस धर्म का अभिन्न अंग नहीं बन जाएगा जब तक कि वह स्थान उस धर्म के लिए विशेष महत्व का न हो। किसी धर्म के पूजा स्थल जिसका उस धर्म में विशेष महत्व है उसे उस धर्म का अनिवार्य एवं आवश्यक अंग बनने के लिए अलग पायदान पर खड़ा होना होगा तथा उसे अलग से और अधिक सम्मान देना होगा।"

हिन्दुओं की तरफ से यह तर्क दिया गया है कि वादकारी दावाकृत अनुतोष के हकदार नहीं हैं क्योंकि यह अनुतोष विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1877 की 42 द्वारा बाधित है जो विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की 34 से संगत नहीं है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"हिन्दुओं के पास भारत के संविधान के 25 और 26 के तहत प्रद्त्त मौलिक अधिकार मुस्लिमों से श्रेष्ठ हैं। जिसका कारण यह है कि प्रथागत कर्मकाण्ड़ों को करने से और भगवान की सेवा करने से पुण्य मिलता है और मुक्ति मिलती है क्योंकि यह हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग है। उक्त के दृष्टिगत न्यायालय विनम्र आग्रह है कि प्रस्तुत मामले को अनुकरणीय वाद व्यय सहित खारिज कर दिया जाए।

2. डॉ. एम. इस्माइल फारूखी बनाम भारत संघ (1994) 6 एस.सी.सी. 360 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायलय ने अभिनिर्णीत किया कि संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्रदत्त धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार कहीं पर भी पूजा करने के अधिकार तक विस्तृत नहीं है जिससे कहीं पर भी पूजा करने पर लगाए गये प्रतिबंध से संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत मिले धार्मिक अधिकार उल्लंघन हो।

संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के तहत संरक्षण उस धर्म के आचरण करने का अभिन्न अंग का निर्माण करती है। जबकि प्रार्थना और पूजा एक धार्मिक आचरण हो तब प्रत्येक स्थान पूजा जहां पर इसे किया जा सकता है उससे यह ऐसे धार्मिक आचरण का अभिन्न अंग नहीं बनेगा जब तक कि वह उस धर्म के लिए विशेष महत्व का न बन जाए। किसी धर्म के पूजा स्थल जिसका उस धर्म में विशेष महत्व है उसे उस धर्म का अनिवार्य एवं आवश्यक अंग बनने के लिए अलग पायदान पर खड़ा होना होगा तथा उसे अलग से और अधिक सम्मान देना होगा।

किसी भी धर्म का पूजा स्थल जो उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखता हो तो उसे उस धर्म के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य अंग बनने के लिए अलग पायदान पर खड़ा होना होगा और अलग से और अधिक महत्व देना होगा। उक्त निर्णय का अवलम्ब लेकर यह कथन किया गया कि राम जन्म भूमि हिन्दुओं के लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि हिन्दुओं का मानना है कि यहां पर आने और पूजा करने से पुण्य की प्राप्ति होती है तथा मोक्ष मिलता है और इस विश्वास की जांच कोई भी न्यायालय नहीं कर सकता है और न ही किसी ऐसी व्यक्ति द्वारा चुनौती दिया जा सकता है जिसको हिन्दू धर्म को कोई आस्था न हो क्योंकि यह हिन्दुओं की

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

आस्था है जिसको संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत संरक्षण प्राप्त है। उक्त निर्णय का महत्वपूर्ण प्रस्तर 77 और 78 इस प्रकार हैः

> 77. इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि अनुच्छेद 25 में सम्पत्ति का संदर्भ नहीं दिया गया है जैसा कि अनुच्छेद 26 में दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 25 के तहत प्रदत्त धर्म को मानने आचरण करने प्रचार करने के अधिकार में सम्पत्ति को ग्रहण करने कब्जा करने धारण करने का अधिकार शामिल नहीं है। इसी प्रकार यह अधिकार किन्ही अथवा सभी पूजा स्थल पर पूजा करने के अधिकार तक विस्तृत नहीं है जिससे कि उस विशेष स्थान पर पूजा करने की बाधा संविधान के अनुच्छेद 25 और अनुच्छेद 26 के तहत प्रदत्त अधिकार का उल्लंघन करे। संविधान के अनुच्छेद 25 और अनुच्छेद 26 का संरक्षण धार्मिक प्रथा के लिए है उस धर्म के अभिन्न एवं आवश्यक अंग का निर्माण करता है। कोई प्रथा धार्मिक प्रथा हो सकती है लेकन यह आवश्यक नहीं है कि वह उस धर्म की आवश्यक एवं अभिन्न अंग का निर्माण करे।
>
> 78. जबकि प्रार्थना करना अथवा पूजा एक धार्मिक प्रथा हो, और प्रत्येक जगह ऐसा करना जहां पर ऐसी प्रार्थना की जा सकती है वह ऐसी धार्मिक प्रथा का आवश्यक अनिवार्य अंग नहीं होगी जब तक कि वह स्थान उस धर्म के लिए विशेष महत्व न रखता हो जिससे कि वह उस धर्म विशेष का आवश्यक एवं अभिन्न अंग बन जाए। किसी भी धर्म का पूजा स्थल जो उस धर्म के लिए विशेष महत्व रखता हो तो उसे उस धर्म के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य अंग बनने के लिए अलग पायदान पर खड़ा होना होगा और अलग से और अधिक महत्व देना होगा।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

3. डॉ. इस्माइल फारूखी बनाम भारत संघ (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्णीत किया कि इस्लाम धर्म में मस्जिद धार्मिक प्रथा का आवश्यक अंग नहीं है और नमाज (प्रार्थना) कहीं भी पढ़ी जा सकती है, खुले स्थान में भी। पूजा का अधिकार किन्हीं अथवा प्रत्येक स्थान पर नहीं है भले ही यह कितने समय तक प्रभावी रूप से की जा सके जबतक कि उस स्थान विशेष में पूजा का अधिकार स्वयं में उस अधिकार का अभिन्न अंग न हो। विधि के उक्त अनुपात का अवलम्ब लेकर यह कथन किया गया कि श्री राम जन्म स्थान, वादपत्र में जो बाबरी मस्जिद के रूप में दर्शित है, पर बिना प्रार्थना किए इसे कहीं और किया जा सकता है लेकिन श्री रामजन्म भूमि के स्थान पर किसी अन्य जगह पूजा नहीं की जा सकती है क्योंकि जो पुण्य श्री राम जन्म भूमि पर पूजा करके प्राप्त होता है कहीं और पूजा करके नहीं प्राप्त किया जा सकता है और यह हिन्दुओं के पवित्र दैवीय मूर्ति के प्रतिकूल होगा हिन्दुओं के सबसे पवित्र गर्भ गृह को विलुप्त कर देगा। उक्त निर्णय के सुसंगत प्रस्तर 80 से 87 इस प्रकार हैं:

> 80. यह तर्क दिया गया है कि मस्जिद मुस्लिम विधि में विशेष स्थान रखता है और एक बार जब मस्जिद का निर्माण हो जाता है और ऐसी मस्जिद में नमाज पढ़ी जाती है तो तब वह सम्पत्ति अल्लाह में निहित जाती है और तब वह सम्पत्ति दानकर्ता, मस्जिद का निर्माण करने वाले व्यक्ति पुनः नहीं मिल सकती है और कोई भी व्यक्ति जो इस्लाम में विश्वास रखता है ऐसी मस्जिद में नमाज पढ़ सकता है और भले ही यदि उस ढ़ांचे को तोड़ दिया जाए तब भी उस स्थान का वही महत्व रहता है जहां पर नमाज पढ़ी जा सकती है। जैसा कि यहां पूर्व में दर्शित है कि ब्रिटिश भारत में मस्जिद को ऐसा कोई भी संरक्षण नहीं दिया गया और मस्जिद परिसीमा विधि के प्रावधानों के अधीन थी जिसके द्वारा किसी विशेष मस्जिद में मुस्लिमों के पूजा के अधिकार समाप्त हो जाते थे जो उस सम्पत्ति पर प्रतिकूल कब्जे द्वारा समाप्त हो गये।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

81. जनरल क्लाजेज ऐक्ट की धारा 3 (26) भारतीय विधि में दी गयी सम्पत्तियों के वर्गीकरण का वर्णन करती है। संविधान का अनुच्छेद 367 संवैधानिक उद्देश्यों के लिए सम्पत्ति के इस धर्मनिर्पेक्ष संकल्पना को अंगीकार करता है। एक मंदिर, चर्च या मस्जिद इत्यादि अचल सम्पत्ति है और वह अनुच्छेद 25 तथा 26 के अधीन है। प्रत्येक अचल सम्पत्ति का अधिग्रहण किया जा सकता है। यदि सही से देखा जाए तो मस्जिद को किसी भी प्रकार का अतिरिक्त संरक्षण नहीं मिलता है जो अन्य धर्मों के प्रार्थना स्थल को प्राप्त नहीं है।

82. उचित स्थिति को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है। भारत में लागू मुस्लिम विधि के अनुसार मस्जिद का स्वत्व प्रतिकूल कब्जे द्वारा समाप्त किया जा सकता है। (देखें– हिदायतुल्ला द्वारा रचित मुस्लिम विधि पर मुल्ला के सिद्धान्त, 19 वां संस्करण, धारा 217 ; और शाहिबगंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा)

यदि विधि में वह स्थिति होती है तब इसको मानने के कोई कारण नहीं कि राज्य द्वारा अधिग्रहण से बचने के लिए धर्मनिर्पेक्ष भारत में अन्य धर्मों के पूजा स्थल की अपेक्षा उच्च मस्जिद में अद्वितीय अथवा विशिष्ट प्रास्थिति है। इस्लाम धर्म का आचरण करने के लिए कोई मस्जिद अनिवार्य अंग नहीं है और नमाज मुस्लिमों द्वारा कहीं भी यानी खुले में भी पढ़ी जा सकती है। तदनुरूप मस्जिद का अधिग्रहण किया जा सकता है जो भारत के संविधान के प्रावधानों द्वारा वर्जित नहीं है। सम्प्रभु शक्ति के प्रयोग में राज्य द्वारा अधिग्रहण से बचने के उद्देश्यों के लिए किसी इस्लामिक देश में किसी मस्जिद की प्रास्थिति से कोई फर्क नहीं पड़ता है , इसकी प्रास्थिति और भारत की धर्मनिर्पेक्ष छवि में अधिग्रहण से बचाव वही है जो अन्य धर्मों के पूजा स्थल जैसे कि चर्च मंदिर इत्यादि को प्राप्त है। यह अन्य धर्मों के पूजा स्थल से कम अथवा ज्यादा नहीं है। स्पष्ट है किसी भी धार्मिक स्थान का अधिग्रहण केवल

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

> असाधारण और विशेष परिस्थितियों में बड़े राष्ट्रीय हित के लिए किया जा सकता है और यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे अधिग्रहण से उस धर्म को मानने के अधिकार समाप्त न हो जाए यदि उस स्थान का महत्व ऐसा हो। शर्तों के अधीन रहते हुए अधिग्रहण की शक्ति मस्जिद के लिए उपलब्ध है जैसे किसी भी धर्म के पूजा के अन्य स्थानों को प्राप्त है। किसी भी अथवा प्रत्येक जगह पर पूजा का अधिकार तब तक नहीं मिलता जब तक प्रभावी रूप से इसका आचरण न किया जाए नहीं तो किसी विशेष स्थान पर पूजा का अधिकार स्वयं में उस अधिकार का अभिन्न हिस्सा न बन जाए।
> [उस निर्णय का मुद्रित संस्करण पृष्ठ संख्या 3454–3458]

27. अतः स्पष्ट है कि **स्माइल फारूखी** के मामले में जो आपत्तिजनक निष्कर्ष निकाला गया वह निश्चित रूप से आक्षेपित निर्णय में समाहित हो चुका है। इस प्रकार आक्षेपित निर्णय **इस्माइल फारूखी** के मामले में निकाले गये आपत्तिजनक निर्णय से प्रभावित हुआ ऐसा स्पष्ट एवं अन्तर्निहित दोनों रूप से दावा किया जा सकता है। आगे **इस्माइल फारूखी** का मामला प्रथम दृष्टया आवश्यक तत्वों की प्रायोज्यता अथवा समाकलित परीक्षण के संबंध में अलग दृष्टिकोण अपनाता है जिसे संवैधानिक महत्व के विषय के रूप में हल किये जाने की आवश्यकता है। मेरे विचार में **इस्माइल फारूखी** के मामले को **शिरूर मठ** और अन्य निर्णयों से पुष्ट किये जाने की आवश्यकता है जिसका संदर्भ इस निर्णय के प्रस्तर 14 से 18 एवं 20 में दिया गया है।

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

28. इस मामले की गम्भीरता और महत्व को इसी आक्षेपित निर्णय में न्यायमूर्ति एस. यू खान द्वारा निकाले गये निष्कर्ष के माध्यम से अच्छे से समझा जा सकता है, जो इस प्रकार हैः

> "यहां जमीन एक छोटा सा टुकड़ा है (1500 वर्ग यार्ड) जहां देवता पैर रखने से डरते हैं। यह असंख्य बारूदी सुरंगो से भरा है। हमें इसे साफ करना है। कुछ समझदार लोगों ने हमें ऐसा न करने की हिदायद दी। हम मूर्खों की तरह यह नहीं जाने के लिए कहा नहीं हम उड़ जाएंगे। हालांकि फिर भी हमें यह जोखिम लेना होगा। ऐसा कहा जाता है कि जीवन में सबसे बड़ा खतरा, जिस समय वैसी परिस्थिति हो, खतरा न उठाना। एक बार देवताओं को मनुष्य के सामने झुकाया गया। कभी–कभी उन्हें उक्त सम्मान को न्यायोचित ठहराना चाहिए। यह उन अवसरों में से एक है। हम सफल हो अथवा असफल? कोई भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता है।
>
> तदनुरूप, यहां जो कुछ कहा गया वह उस निर्णय का अनुसरण करता है जिसके लिए पूरा देश बेसब्री से इंतजार कर रहा है।"

29. यहां यह कहना सुसंगत है कि **समीना बेगम बनाम भारत संघ एवं अन्य** [रिट याचिका (सिविल) संख्या 222 वर्ष 2018] तीन न्यायाधीशों वाली पीठ ने दिनांकित 26.03.2018 के आदेश द्वारा बहु–विवाह जिसमें निकाह हलाला, निकाह मुता, निकाह मीसा शामिल है,से संबंधित मामले को संवैधानिक पीठ को संदर्भित किया है। उक्त मामले में संदर्भ के लिए आदेश इस प्रकार हैः

> "याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवकता ने कथन किया कि इन रिट याचिकाओं बहु विवाह की प्रथा जिसमें निकाह हलाला, निकाह मुता, निकाह मीशा शामिल है,को इसलिए चुनौती दी गयी है क्योंकि यह असंवैधानिक है। इस रुख के समर्थन में कई आधार गिनाए गये कि कैसे

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

ये प्रथाएँ ेजो वैयक्तिक विधि अन्तर्गत आती हैं,संविधान के तहत न्यायिक समीक्षा से बच नहीं सकती हैं। उनके द्वारा यह तर्क दिया गया कि शायरा बानो इत्यादि बनाम भारत संघ एवं अन्य इत्यादि (2017) 9 एस.सी.सी. 1 के मामले में संवैधानिक पीठ में अधिकतर न्यामूर्तियों ने इन पक्षों को विचारित नहीं किया है। उन्होंने इस बिन्दु पर जोर डालने के लिए इस निर्णय के कई प्रस्तरों पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि उक्त विवाद्यों को वास्तव में प्रस्तुत नहीं किया गया है क्योंकि इन पक्षों पर कोई चित्रण नहीं किया गया है।

इस निर्णय का परिशीलन करने पर हम पक्षकारों/वादकारियों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों को सही पाते हैं कि संवैधानिक पीठ द्वारा इन अवधारणाओं को नहीं निर्णीत किया गया है।

xxx xxx xxx

xxx xxx xxx

इस बिन्दु पर, बार के समक्ष यह तर्क दिया गया है कि इस विवाद्य के महत्व के दृष्टिगत, मामले को संवैधानिक पीठ के समक्ष रखा जाना चाहिए। उक्त तर्क को स्वीकार कर यह निर्देश दिया जाता है कि मामले को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखा जाए ताकि समुचित संवैधानिक पीठ गठित कर रिट याचिकाओं से विचारण हेतु उत्पन्न उन विवाद्यको का निपटारा किया जा सके।"

(प्रभाव वर्धित)

30. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की दो न्यायमूर्तियों वाली पीठ ने दिनांक 06.07.2018 को **ज्योति जागरण मंच बनाम एस.डी.एम.सी. एवं अन्य**, सिविल अपील संख्या 5820 वर्ष 2018, के मामले में सार्वजनिक पार्क में वर्ष में एक बार रामलीला और पूजा की अनुज्ञा देने वाले नीति निर्णय से संबंधित मामले को संवैधानिक पीठ को संदर्भित किया है, जिसमें इस प्रकार अभिनिर्णीत किया गया हैः

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

"इस आक्षेपित आदेश की प्रामाणिक प्रति लगाने से छूट की मांग करने वाला आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

अपील अनुज्ञात।

नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल, प्रधान पीठ, नई दिल्ली ने एक आदेश जारी कर याची के उस आवेदन को खारिज कर दिया है जिसमें उसने सार्वजनिक पार्क में 'माता की चौकी' बैठाने की मांग की थी। याची ने स्पष्ट तौर पर पूर्व में पारित किये गये निर्णयों का अवलम्ब लिया है जिसमें सार्वजनिक पार्क में वर्ष में एक बार रामलीला और पूजा की अनुज्ञा देने वाले नीति निर्णय शामिल हैं।

इस अपील से संवैधानिक महत्व का एक बड़ा प्रश्न खड़ा होता है कि क्या ऐसे क्रियाकलाप राज्य के कब्जे वाले परिसर में अनुज्ञात किये जा सकते हैं जबकि हमारे संविधान की प्रकृति पंथ निरपेक्ष है। इसलिए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति ने उक्त मामल की सुनवाई हेतु समुचित संवैधानिक पीठ गठित किये जाने का आदेश दिया।"

(प्रभाव वर्धित)

31. **सुनीता तिवारी बनाम भारत संघ एवं अन्य**, {रिट याचिका (सिविल) संख्या 286 वर्ष 2017}, के मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायमूर्तियों वाली पीठ महिलाओं का खतना अथवा खफ़ की प्रथा पर रोक लगाने संबंधी प्रश्न पर विचार कर रहा था। प्रत्यर्थियों की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस मामले को प्राधिकारित निर्णय के लिए बड़ी पीठ को संदर्भित किया जाना चाहिए क्योंकि यह प्रथा उस धार्मिक पंथ की आवश्यक एवं अभिन्न अंग है। भारत के विद्वान अटार्नी जनरल ने भी कथन किया कि इस मामले को पड़ी पीठ को संदर्भित किया जाना चाहिए। दिनांक 24.09.2018

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

के आदेश द्वारा इस मामले को बड़ी पीठ को संदर्भित कर दिया गया, जिसका महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैः

> **"वाद की प्रकृति, धार्मिक समुदायों पर प्रभाव और कई संलग्न कारकों के प्रति सम्मान के साथ हमें उन प्रश्नों को विरचित न करना उल्टा प्रतीत होता है जिन्हें वृहत्तर पीठ द्वारा करना होगा। हम यह भी उचित मानते हैं कि वृहत्तर पीठ इस मुद्दे पर सभी दृष्टिकोणों से विचार करे।**
> उक्त के दृष्टिगत हमारा विचार यह है कि इस मामले को वृहत्तर पीठ के समक्ष रखा जाना चाहिए। रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि प्रस्तुत मामले के सभी कागजात इस संबंध में समुचित निर्देश हेतु भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाय।"
>
> (प्रभाव वर्धित)

32. इसमें शामिल मुद्दों की संवैधानिक महत्व और उपयोगिता पर विचार करने के उपरान्त इस मामले को वृहद पीठ को संदर्भित करने के निम्नलिखित अपेक्षाएँ हैंः

(a) क्या शिरूर मठ और उपरोक्त उल्लिखित मामलों के आलोक में, किसी अनिवार्य प्रथा को विश्वास, मान्यताओं और प्रश्नगत रीति रिवाज में आस्था की विस्तृत जाँच किये बगैर निर्णीत किया जा सकता है?

(b) क्या अनिवार्य रीति रिवाज को निर्धारित करने का परीक्षण अनिवार्यता और समग्रता दोनों है?

(c) क्या अनुच्छेद 25 केवल विशेष महत्व की आस्था और प्रथाओं या आस्था द्वारा मान्यता प्राप्त अनिवार्य रीति रिवाज को संरक्षित करती हैं?

(d) क्या अनुच्छेद 15, 25 और 26 (सपठित अनुच्छेद 14), आस्था के तुलनात्मक महत्व को अनुज्ञात करती हैं?

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।

33. रजिस्ट्री को निर्देशित किया जाता है कि वे मामले पर समुचित आदेशों हेतु माननीय मुख्य न्यायधीश के समक्ष पर प्रस्तुत करें।

.....

(न्यायमूर्ति एस. अब्दुल नजीर)

नई दिल्ली

27 सितम्बर, 2018

<u>उद्घोषणा</u>

"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बिंधत प्रयोग के लिये है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नही किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जायेगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिये मान्य होगा"।